हिन्दी समिति प्रन्यमाला संख्या-२१३

# 

चतुर्थ भाग (अध्याय १ से २५)

नुल लेखकः

धारता अप्यासीपाध्याय, खाँ व पाण्डुराङ्ग हायने काणी

Q12 152N6.4

नाश्यप, एम० ए०



उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रभाग) राजर्षि पुरुषोत्त्रयदास दण्डन हिन्दी भवन यहात्या गाँधी पार्ग, सर्वायक G12 8524 152N6.4 Kane, landuranga Venan Dharmashastra ka itihas. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

.

Q12 152NG.4 SJ.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY

Jangamawadimath, Varanssi

Acc. No. 232

#### SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR (LIBRARY) JANGAMAWADIMATH, VARANASI

....

Please return this volume on or before the date last stamped Overdue volume will be charged 1/- per day.

	•
The second secon	THE RESERVE THE PROPERTY OF THE PARTY OF THE

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

## हिन्दी सिमिति ग्रन्थमाला संख्या---२१३

## धर्म शास्त्र का इतिहास

चतुर्थ भाग (अध्याय १ से २५) (वत, उत्सव, काल, पञ्चाङ्ग, शान्ति, पुराण-अनुशीलन आदि)

भारत-रत्न, महामहापाध्याय डॉ॰ पाण्डुरङ्ग वामन काणे अस्ति एक, एल० एल० एम० पुमें एक, एल० एल० एम०

ACC No.

अर्जुन चौबे काश्यप, एम० ए०





## उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

(हिन्दी समिति प्रभाग) राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ अकाशक

विनोद चन्द्र पाण्डेय निदेशक उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान रुखनऊ

Q179 152NG.4

सर्वाधिकार सुरक्तित उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, छखनऊ

संस्करण

प्रथम-१९७३

द्वितीय-१९८४

तृतीय-१९९६

SRI JAGADGURU VISHWAR DHY . JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL

LIBRARY

ACC No......8524

प्रतियाँ २१००

मूल्य १९५ = ०० हपये Jangemawadimath, Varanasi
Acc. No

मुद्रक महाबीर प्रेस भेळूपुर, वाराणसी

## प्रथम संस्करण का प्रकाशकीय

. . .

मं एक ऐसा व्यापक शब्द है जो सामने आते ही किसी जाित या समाज का इतिहास और उसके जीवन की मूमिका प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। 'घमं' शब्द में जाित विशेष की सम्यता, संस्कृति, आजार-विचार, रहन-सहन, रीित-रिवाज तथा जीवन प्रणाली की प्रिक्रिया और निदर्शन प्रस्तुत होता है। घमं की परिमाषा मी हमारे दार्शनिकों, चिन्तकों और मनीिषयों ने अपने-अपने समय, विचार और चिन्तन के परिणाम स्वरूप मिन्न-मिन्न रूपों में प्रस्तुत की है। 'घारणाद धर्म इत्याहु:' के अनुसार घर्म जीवन का मूलाघार है। इसी से मनुष्य को प्रेरणा और प्रकाश उपलब्ध होता है। यही धर्म जीवन की गितिविधि और प्रगति में सहायक होता है। कहने का अर्थ यह है कि धर्म वस्तुत: संकुचित नहीं, अपितु विशद, महान् और उदात्त मावना से प्रकाशमान होता है। संसार में जितने भी धर्म हैं, उनका अपना महत्व और स्वत्व तो है ही, किन्तु हिन्दू धर्म और हिन्दू जाित की अपनी विशेष महत्ता और सत्ता रही है। हिन्दू धर्म अन्य सभी धर्मों और जाितयों का समादर और सम्मान करने में अप्रणी रहा है।

इसी हिन्दू घम की शास्त्रीय विशेषताओं तथा इसके अन्तर्गत उपलब्ध विभिन्न शासाओं और क्षेत्रों का विशव परिचय एवं सैद्धान्तिक विवरण प्रस्तुत ग्रंथ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में अंकित करने की चेष्टा की गयी है। इसके सम्मान्य और विद्वान् रचनाकार मारत-रत्न पांडुरंग वामन काणे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखक और प्राच्य इतिहास एवं साहित्य के मनीषी चिन्तक रहे हैं। उन्होंने संस्कृत और संस्कृति के साहित्य का प्रगाढ़ अध्ययन तो किया ही, किन्तु उनकी सबसे महत्वपूर्ण साधना और सेवा यह है कि हमें इस प्रकार के अनमोल और महत्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध हुए। श्री काणे जैसे राष्ट्रीय ख्याति के विद्वानों के विद्यान्यसन और निष्ठा की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। ऐसे विद्वानों और मनीषियों के प्रति हम कृतज्ञ हैं। उनकी इन कृतियों से जिज्ञासुओं और आनेवाली पीढ़ी को प्रेरणा और प्रकाश मिलेगा, हमारा यह निश्चित मत है। हमें यह कहने में संकोच नहीं कि 'धर्मशास्त्र का इतिहास' हमारे मारतीय जीवन का इतिहास है 'और इसमें हम अपने अतीत की गौरवमयी गाथा और नियामक सूत्रों का निर्देश और सन्देश प्राप्त करते हैं। विद्वान् लेखक ने बड़े मनोयोग और श्रम से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इसे एक तरह से हिन्दू जाति का विश्वकोश कहें तो अन्यथा न होगा। इसमें लेखक ने धर्म, धर्मशास्त्र, जाति, वर्ण, उनके कर्तव्य, अधिकार, संस्कार, आचार-विचार, यज्ञ, दान, प्रतिष्ठा, व्यवहार, तीर्थ, व्रत, काल आदि का ववेचन करते हुए सामाजिक परम्परा और उसकी उपलब्धियों का विस्तृत और आवश्यक विवरण प्रस्तुत किया है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, रामायण, महामारत आदि ग्रंथों से संकेत सूत्र और सन्दर्ग एकत्र करना कितना कठिन है, इसकी कल्पना की जा सकती है।

'घर्मशास्त्र का इतिहास' पाँच मागों में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक इसका चौथा माग है। इन सभी मागों की एक संयुक्त अनुक्रमणिका हम अलग पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत करेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कागज की महर्घता और मुद्रण, वेष्टन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि हो जाने पर भी हमने इसका मूल्य पहले छपे हुए मागों की माँति ही रखा है। हमें विश्वास है कि प्रचार और प्रसार की दृष्टि से हमारे इस आयास का स्वागत किया जायगा। हमारी यह चेष्टा होगी कि भविष्य में भी हम इस प्रकार के महनीय ग्रन्थ उचित मूल्य पर ही अपने पाठकों को उपलब्ध करायें।

हम एक बार पुनः हिन्दी के छात्रों, पाठकों, अध्यापकों, जिज्ञासुओं और विद्वानों से, विशेषतः उन लोगों से जिन्हें मारत और मारतीयता के प्रति विशेष ममत्व और अपनत्व है, यह अनुरोध करना चाहेंगे कि वे इस प्रन्य का अवश्य ही अध्ययन करें। इससे उन्हें बहुत कुछ प्राप्त होगा। इससे अधिक कुछ कहा नहीं जा सकता।

हमारी अभिलाषा है, यह ग्रन्थ प्रत्येक परिवार में मुलम हो और समादृत हो।

सघन्यवाद!

काशीनाथ उपाध्याय 'भ्रमर'

सचिव,

हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन

कार्तिकी पूर्णिमा, सं० २०३० (१९७३ ई०) रार्जीव पुरुषोत्तमदास टण्डन, हिन्दी भवन, महात्मा गांघी मार्ग, लखनऊ

द्वितीय संस्करण का प्रकाशकीय

भारतरन पी०वी० काणे द्वारा रिचत धर्मशास्त्र का इतिहास राष्ट्र की अनमोल थाती बन गया है। इसमे वैदिक काल से लेकर आज तक के विधि-विधानों का सम्यक् निरूपण है। पाँच भागों में संकलित एवं प्रस्थापित धर्म का अथं, धर्मशास्त्रों का परिचय, वर्ण, आश्रम, संस्कार, आह्मिक, दान, प्रतिष्ठा, श्रौत-यज्ञादि, राजधर्म (शासक और शासन व्यवस्था), व्यवहार, सदाचार, पातक प्रायश्चित, कर्मविपाक, अन्त्येष्टि, अशौच, शुद्धि, श्राद्ध, तीथंयाता, व्रत, उत्सव, काल एवं शान्ति तथा तंत्र-मंत्र अभिचार आदि के विवेचन के रूप में हिन्दूधर्म का ऐसा विश्वकोष अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं। हिन्दी संस्थान का सौभाग्य है कि ऐसे ऋषि-कल्प चिन्तन का मराठी से हिन्दी में अव्याहत अनुवाद वह प्रकाशित कर सका। ज्यों-ज्यों सुधी-विवारक गागर में सागर की कहावत चिरतार्थ करने वाली इस ग्रन्थावली से परिचित होते जा रहे हैं त्यों-त्यों इसकी माँग बढ़ती जा रही है। सांस्कृतिक साधना के बिखरे सूत्रों का तारतम्य जोड़े बिना किसी राष्ट्र की आत्मा नहीं सँवारी जा सकती। देखते-देखते प्रथम तीनों भागों के द्वितीय मंस्करण समाप्त हो गए और चौथे पाँचवें भाग का भी पुतर्मद्रण अनिवार्य हो गया। मूल मराठी से हिन्दी में अनुवाद हो जाने का एक लाभ यह हुआ कि अन्य प्रादेशिक भाषाओं को यह सहज ही मुलभ हो सका। आज न इसके आह्नतीय अध्वर्यु पी० वी० काणे महोदय ही हमारेबीच हैं और न इसके अग्निचित अनुवादक अर्जुन काश्यप ही। हम उनकी तपः पूत स्मृति में श्रद्धानत होते हुए अत्यंत विनम्रभाव से इस नये संस्करण को प्रबुद्ध पाठकों के करों में अपित करते हुए किचित विलम्ब के प्रति विशेष संकुचित हैं।

वि० सं० २०४० (सन् १६८४) शके १६०५। राजींव पुरूषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

सविनय,

शिव मंगल सिंह 'सुमन'

## प्रकाशकीय

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के प्रकाशनों में "धर्मशास्त्र का इतिहास" अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है। भारतीय धर्मशास्त्र से परिचय प्राप्त करने के लिए सुधी पाठक इस ग्रन्थ का पारायण अत्यन्त मनोयोग से करते हैं।

भारतरत्न पी० वी० काणे द्वारा रचित ''धर्मशास्त्र का इतिहास'' वस्तुतः राष्ट्र की अमूल्य निधि बन गया है। श्री अर्जुन चौबे ने इस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर हिन्दी-पाठकों का विशेष उपकार किया है।

"धर्मशास्त्र का इतिहास" पाँच भागों में प्रकाशित हुआ है। इसके सभी भाग अत्यन्त उपयोगी और ज्ञान-वर्द्धक हैं। अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए पाठकों द्वारा सभी भागों का हार्दिक स्वागत किया गया है। इसके चौथे भाग को भी पर्याप्त लोक-प्रियता प्राप्त हुई है। इसका प्रथम संस्करण सन् १९७३ में और द्वितीय संस्करण सन् १९८४ में प्रकाशित हुआ है। धर्मशास्त्र का इतिहास (चतुर्थं भाग) के तृतीय संस्करण को प्रकाशित करते हुए हुई की अनुभूति स्वाभाविक ही है।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि विद्वान् मनीषी, जिज्ञासु पाठक, शोधार्थी आदि घर्मशास्त्र का इतिहास (चतुर्थं भाग) तृतीय संस्करण के रूप में पाकर इसमें निहित ज्ञान से लाभान्वित होंगे।

> विनोद चन्द्र पाण्डेय निदेशक उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ

#### प्राक्कथन

वहारमयूल' के संस्करण के लिए सामग्री संकलित करते समय मेरे ध्यान में आया कि जिस प्रकार मैंने 'साहित्यदर्गण' के संस्करण में प्राक्कथन के रूप में 'अलंकार साहित्य का इतिहास'' नामक एक प्रकरण लिखा है, उसी पद्धित पर 'व्यवहारमयूल' में भी एक प्रकरण संलग्न कर दूँ, जो निश्चय ही घमंशास्त्र के मारतीय छात्रों के लिए पूर्ण लामप्रद होगा। इस दृष्टि से मैं जैसे जैसे धमंशास्त्र का अध्ययन करता गया, मुझे ऐसा दीख पड़ा कि सामग्री अत्यन्त विस्तृत एवं विशिष्ट है, उसे एक संक्षिप्त परिचय में आबद्ध करने से उसका उचित निरूपण न हो सकेगा। साथ ही उसकी प्रचुरता के समुचित परिज्ञान, सामाजिक मान्यताओं के अध्ययन, तुलनात्मक विधिशास्त्र तथा अन्य विविध शास्त्रों के लिए उसकी जो महत्ता है, उसका भी अपेक्षित प्रतिपादन न हो सकेगा। निदान, मैंने यह निश्चय किया कि स्वतन्त्र रूप से धमंशास्त्र का एक इतिहास ही लिपबद्ध करूँ। सर्वप्रथम, मैंने यह सोचा, एक जिल्द में आदि काल से अब तक के धमंशास्त्र के कालकम तथा विमिन्न प्रकरणों से युक्त ऐतिहासिक विकास के निरूपण से यह विषय पूर्ण हो जायगा। किन्तु धमंशास्त्र में आने वाले विविध विषयों के निरूपण के बिना यह ग्रन्थ सांगोपांग नहीं माना जा सकता। इस विचार से इसमें वैदिक काल से लेकर आज तक के विधि-विधानों का वर्णन आव-रयक हो गया। मारतीय सामाजिक संस्थानों में और सामान्यतः भारतीय इतिहास में जो कान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं तथा भारतीय जनजीवन पर उनके जो प्रभाव पड़े हैं, वे बड़े गम्भीर हैं।

यद्यपि उच्च कोटि के विश्वविद्यालय के विद्वानों ने धर्मशास्त्र के विशिष्ट विषयों पर विवेचन का प्रशस्त कार्य किया है, फिर मी, जहाँ तक मैं जानता हूँ, किसी लेखक ने धर्मशास्त्र में आये हुए समग्र विषयों के विवेचन का प्रयास नहीं किया। इस दृष्टि से अपने ढंग का यह पहला प्रयास माना जायगा। अतः इस महत्त्वपूर्ण कार्य से यह आशा की जाती है कि इससे पूर्व के प्रकाशनों की न्यूनताओं का ज्ञान भी समभव हो सकेगा। इस पुस्तक में जो त्रृटि, दुरूहता और अदक्षता प्रतीत होती हैं, उनके लिए लेखनकाल की परिस्थित एवं अन्य कारण अधिक उत्तरदायी हैं। इन बातों की ओर घ्यान दिलाना इसलिए आवश्यक है कि इस स्वीकारोक्ति से मित्रों को मेरी कठिनाइयों का ज्ञान हो जाने से उनका भ्रम दूर होगा और वे इस कार्य की प्रतिकूल एवं कटु आलोचना नहीं करेंगे। अन्यथा, आलोचकों का यह सहज अधिकार है कि प्रतिपाद्य विषय में की गयी अशुद्धियों और संकीर्णताओं की कटु से कटु आलोचना करें।

आद्योपान्त इस पुस्तक के लिखते समय एक बड़ा प्रलोमन यह था कि घर्मशास्त्र में व्याख्यात प्राचीन एवं मध्य कालीन मारतीय रीति, परम्परा एवं विश्वासों की अन्य जन समुदाय और देशों की रीति, परम्परा तथा विश्वासों से तुलना की जाय। किन्तु मैंने यथासंमव इस प्रकार की तुलना से दूर रहने का प्रयास किया है। फिर मी, कमी-कमी कितपय कारणों से मुझे ऐसी तुलनाओं में युक्त होना पड़ा है। अधिकांश लेखक (मारतीय तथा यूरोपीय) इस प्रवृत्ति के हैं कि वे आज का मारत जिन कुप्रथाओं से आक्रान्त है, उनका पूरा उत्तरदायित्व

जातिप्रथा एवं वर्मेशास्त्र में निर्दिष्ट जीवन-पद्धित पर डाल बेते हैं, किन्तु इस विचार से सर्वथा सहमत होना वड़ा कि कि व श वेत है। अतः मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि विश्व के पूरे जनसमुदाय का स्वमाव साघारणतः एक जैसा है और उसमें निहित सुप्रवृत्तियाँ एवं दुष्प्रवृत्तियाँ समी देशों में एक सी ही हैं। किसी भी स्थान विशेष में आरम्भ कालिक आचार पूर्ण लामप्रद रहते हैं, फिर आगे चलकर सम्प्रदायों में उनके दुष्पयोग एवं विकृतियाँ समान रूप से स्थान ग्रहण कर लेती हैं। चाहे कोई देश विशेष हो या समाज, वे किसी न किसी रूप में जाति-प्रथा या उससे मिन्न प्रथा से आवद रहते आये हैं।

संस्कृत ग्रन्थों से लिये गये उद्धरणों के सम्बन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है। ये उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये तकों की मावनाओं को समझने में एक सीमा तक सहायक होंगे। साथ ही, मारतवर्ष में इनके लिए अपेक्षित पुस्तकों को सुलम करने वाले पुस्तकालयों या साधनों का मी अमाव है। उपर्युक्त कारणों से सहस्रों उद्धरण पादिटप्पणियों में उल्लिखित हुए हैं। अधिकांश उद्धरण प्रकाशित पुस्तकों से एवं बहुत थोड़े से अवतरण पाण्डुलिपियों और ताझ-लेखों से उद्धृत हुए हैं। शिलालेखों, ताझपत्रों के अमिलेखों या अवतरणों के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार का संकेत अभिन्नेत है। इन तथ्यों से एक बात और प्रमाणित होती है कि धर्मशास्त्र में निहित विधियाँ जो कई हजार वर्षों से जनसमुदाय द्वारा आचरित हुई हैं तथा शासकों द्वारा विधि के रूप में स्वीकृत हुई हैं, उनसे यह निश्चित होता है कि ऐसे नियम पंडितम्मन्य विद्वानों या कल्पनाशास्त्रियों द्वारा संकलित काल्पनिक नियम मात्र नहीं रहे हैं। वे व्यवहार्य होते रहे हैं। जिन पुस्तकों के मुझे जगातार उद्धरण देने पड़े हैं और जिनसे मैं पर्याप्त लामान्वित हुआ हूँ, उनमें से कुछ ग्रंथों का उल्लेख आवश्यक है। यथा—बूमफील्ड की 'वैदिक अनुक्रमणिका', प्रोफेसर मैकडानल और कीथ की 'वैदिक अनुक्रमणिकाएँ', मैक्समूलर द्वारा सम्पादित 'प्राच्य धर्म पुस्तकें।'

इसके अतिरिक्त में असाधारण विद्वान् डा० जाली का स्मरण करता हूँ जिनकी पुस्तक को मैंने अपने सामने आदर्श के रूप से रखा है। मैंने निम्नलिखित प्रमुख पंडितों की कृतियों से भी बहुमूल्य सहायता प्राप्त की है, जो इस क्षेत्र में मुझसे पहले कार्य कर चुके हैं, जैसे डा० बुहुलर, राव साहब बी० एन० मंडलीक, प्रोफेसर हापिकन्स, श्री एम० एम० चक्रवर्ती तथा श्री के० पी० जायसवाल। मैं 'वाई' के परमहंस केवलानन्द स्वामी के सतत साहाह्य और निर्देश (विशेषतः श्रीत माग) के लिए, पूना के चिन्तामणि दातार द्वारा दर्श-पौर्णमास के परामर्श और श्रौत के अन्य अध्यायों के प्रति सतर्क करने के लिए, श्री केशव लक्ष्मण ओगले द्वारा अनुक्रमणिका भाग पर कार्य करने के लिए और तर्कतीर्थ रघुनाथ शास्त्री कोकजे द्वारा सम्पूर्ण पुस्तक को पढ़कर सुझाव और संशोधन देने के लिए असाधारण आमार मानता हूँ। मैं इंडिया आफिस पुस्तकालय (लंदन) के अधिकारियों का और डा॰ एस॰ के॰ वेल्बेल्कर, महामहोपाघ्याय प्रोफेसर कुप्पुस्वामी शास्त्री, प्रोफेसर रंगस्वामी आयंगर, प्रोफेसर पी० पी० एन० शास्त्री, डा० भवतोष मट्टाचार्य, डा० आल्सडोर्फ, प्रोफेसर एच० डी० बेलणकर, विल्सन कालेज बम्बई आदि का बहुत ही कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अपने अधिकार में सुरक्षित संस्कृत की पाण्डुलिपियों के बहुमूल्य संकलनों के अवलोकन की हर संमव सुविधाएँ प्रदान कीं। विभिन्न प्रकार के निदेशन में सहायता देने के लिए मैं अपने मित्र समुदाय तथा डा॰ बी॰ जी॰ परांजपे, डा॰ एस॰ के॰ दे, श्री पी॰ के॰ गोडे और श्री जी॰ एन॰ वैद्य का [एवं प्रस्तुत हिन्दी संस्करण के सम्प्रादन में सुझ-बूझ के साथ संशोधनार्थ सतर्क रहने के लिए श्री चिरंजीव शर्मा शास्त्री का- 'प्रका •'] आभार मानता हूँ। हर प्रकार की संहायता के बावजूद इस पुस्तक में होने वाली न्युनताओं, च्युतियों और उपेक्षाओं से मैं पूर्ण परिचित हूँ। अतः इन सब किमयों के प्रति कृपाल होने के लिए में विद्वानों से प्रार्थना करता है।

—पाण्डुरंग वामन काणे

## विषय-सूची

## (पञ्चम खण्ड, अध्याय १ से २५ तक, पूर्वार्घ)

सच्य	ाय विषय प्राप्त का अपनिष्ठ में अपनिष्ठ	वृद्ध
₹.	ऋवेद में व्रत	13416
₹.	वैदिक साहित्य में व्रत, उनकी परिभाषा एवं महत्ता	· ·
₹.	व्रतों के अधिकारी, लाम, विमाजन, काल	२०
٧.	चैत्र-प्रतिपदा, रामनवमी, अक्षयतृतीया, परशुरामजयन्ती, दशहरा, सावित्री-व्रत	32
	एकादशी	80
	चातुर्मास्य	४९
9.	नागपंचमी, मनसापूजा, रक्षाबन्धन, जन्माष्टमी	48
6.	हरितालिका, गणेशचतुर्थी, ऋषिपंचमी	40
	नवरात्र या दुर्गापूजा	६३
<b>?o.</b>	विजयादशमी एवं दीपावली	90
28.	मकरसंक्रान्ति एवं महाशिवरात्रि	69
	होलिका एवं ग्रहण	69
₹₹.	वर्तों एवं उत्सवों की सूची	९६
8.	काल-बारणा	२३८
4.	काल की इकाइयाँ	२४७
	मुहुर्त	२६७
9.	घार्मिक कृत्यों के मुहूर्त	780
C. 1	पंचांग, संवत्, वर्ष, मास आदि की कूछ गणनाएँ	383
9. =	कल्प, मन्वन्तर, महायुग, युग	३३०
0.	शान्ति का वैदिक अर्थ एवं विधियाँ	Territorio de la
8. 3	कतिपय विशिष्ट शान्तियाँ	383
२. पृ	रुराण साहित्य का उद्गम एवं विकास	३५३
₹. पृ	रुराणों एवं उपपुराणों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ	३७३
٧, E	वर्मशास्त्र पर पुराणों का प्रमाव	885
4. 7	मारत से बौद्ध घर्म के विलीन होने के कारण	४९२
		8/8

## उद्ध रण-संकेत

अग्नि = अग्निपुराण
अ० वे० या अथर्व० = अथर्ववेद
अनु० या अनुशासन० = अनुशासन पर्व
अन्त्येष्टि० = नारायण की अन्त्येष्टिपद्धति
अ० क० दी० = अन्त्यकर्मदीपक
अर्थशास्त्र, कौटिल्य० = कौटिलीय अर्थशास्त्र
आ० गृ० सू० या आपस्तम्बध्मं० = आपस्तम्बध्मंसूत्र
आप० म० पा० या आपस्तम्बध्मं० = आपस्तम्बध्मंसूत्र
आप० म० पा० या आपस्तम्बध्मं० = आपस्तम्बध्मंसूत्र
आप० म० पा० या आपस्तम्बध्यो० = आपस्तम्बध्येतसूत्र
आप० म० पा० या आपस्तम्बध्यो० = आपस्तम्बश्रोतसूत्र
आप्त्व० गृ० सू० या आप्त्वलायनगृ० = आव्वलायनगृह्यसूत्र
आव्व० गृ० प० या आव्वलायन गृ० प० = आव्वलायनगृह्यसूत्र

ऋ० या ऋग्०=ऋग्वेदसंहिता

ए० आ० या ऐतरेय आ०=ऐतरेयारण्यक

ए० आ० या ऐतरेय आ०=ऐतरेय ब्राह्मण
क० उ० या कठोप०=कठोपनिषद्
कल्विज्यं०=कल्विज्यंविनिणय
कल्प० या कल्पतरु, कृ० क०=लक्ष्मीघर का कृत्यकल्पतरु
कात्या० स्मृ० सा०=कात्यायनस्मृतिसारोद्धार
का० श्रौ० सू० या कात्यायनं श्रौ०=कात्यायन श्रौतसूत्र
काम० या कामन्दक=कामन्दकीय नीतिसार
कौ० या कौटिल्य० या कौटिलीय०=कौटिलीय अर्थशास्त्र
कौ०=कौटिल्य का अर्थशास्त्र (डॉ० शाम शास्त्री का
संस्करण)
कौ० ब्रा० उप० या कौषीतिकब्रा०=कौषीतिकब्राह्मण-

उपनिषद्
गं० भ० या गंगाभ० या गंगाभिक्त० = गंगाभिक्ततरंगिणी
गंगावा० या गंगावाक्या० = गंगावाक्यावली
गरुड़ = गरुड़पुराण
गृ० र० या गृहस्थ० = गृहस्थरत्नाकर

गौ या गौ० घ० सू० या गौतमधर्म०-गौतमधर्मसूत्र गौ० पि० सु० या गौतमपिं०=गौतमपित्मेधसूत्र चतुर्वर्गं = हेमाद्रि की चतुर्वर्गचिन्तामणि या केवल हेमाद्रि छा० उप० या छान्दोग्य-उप०=छान्दोग्योपनिषद् जीमूत०=जीमूतवाहन जै॰ या जैमिनि॰=जैमिनिपूर्वमीमांसासूत्र जै० उप०=जैमिनीयोपनिषद् जै॰ न्या॰ मा॰=जैमिनीयन्यायमालाविस्तर ताण्ड्य • = ताण्ड्यमहाबाह्मण ती० क० या ती० कल्प० = तीर्थकल्पतरु तीर्थ प्र० या ती० प्र०=तीर्थप्रकाश ती० चि० या तीर्थचि०=वाचस्पति का तीर्थचिन्तामणि तै० आ० या तैत्तिरीया०=तैत्तिरीयारण्यक तै ० उ० या तैत्तिरीयोप = तैत्तिरीयोपनिषद् तै० त्रा० =तैत्तिरीय ब्राह्मण तै॰ सं॰=तैत्तिरीय संहिता त्रिस्थली वा त्रि से = महोजि का त्रिस्थली सेतुसा-त्रिस्थली = नारायण मट्ट का त्रिस्थली सेतु

नारद० या ना० स्मृ०=नारदस्मृति
नारदीय० या नारद०=नारदीयपुराण
नीतिवा० या नीतिवाक्या०=नीतिवाक्यामृत
निर्णय० या नि० सि०=निर्णयसिन्धु
पद्म०=पद्मपुराण
परा० मा०=पराशरमाधवीय
पाणिनि या पा०=पाणिनि की अष्टाध्यायी
पार० गृ० या पारस्करगृ०=पारस्करगृह्मसूत्र
पू० मी० सू० या पूर्वमी०=पूर्वमीमांसासूत्र
प्रा० त० या प्राय० तत्त्व०=प्रायश्चित्ततत्त्व
प्रा०, प्राय० प्र० या प्रायश्चित्तप्र०=प्रायश्चित्तप्रकरण
प्राय० प्रका० या प्राय प्रकाश=प्रायश्चित्तप्रकरण

प्राय० वि०, प्रा० वि० या प्रायश्चित्तवि०=प्रायश्चित्त-विवेक

प्रा॰ म॰ या प्राय॰ म॰=प्रायश्चित्तमयूख
प्रा॰ सं।॰ या प्राय॰ सा॰=प्रायश्चित्तसार
बु॰ सु॰=बुधभूषण
बृ॰ या वृहस्पति॰=बृहस्पतिस्मृति
वृ॰ उ॰ या वृह॰ उप॰=बृहतारण्यकोपनिषद्
बृ॰ सं॰ या बृहत्सं॰=बृहत्संहिता
बौ॰ गृ॰ सू॰ या बौधायनगृ॰=बौधायनगृह्यसूत्र
बौ॰ घ॰ सू॰ या बौधाय घ॰ या बौधायनधर्म॰=

वौघायनधर्मसूत्र

बौ० श्रौ० सू० या बौघा० श्रौ० सू०=बौघायनश्रौतसूत्र त्र०, त्रह्मा० या त्रह्मपु०=त्रह्मपुराण त्रह्माण्ड०=त्रह्माण्डपुराण मवि० पु० या भविष्य०=भविष्यपुराण मत्स्य०=मत्स्यपुराण म० पा० या मद० पा०=मदनपारिजात मनु या मनु०=मनुस्मृति मानव० या मानवगृह्म०=मानवगृह्मसूत्र मिता०=मिताक्षरा (विज्ञानेश्वर कृत याज्ञवल्क्यस्मृति-टीका)

मी० कौ० या मीमांसाकौ०=मीमांसाकौस्तुम (खण्डदेव) मेघा० या मेघातिथि=मनुस्मृति पर मेघातिथि की टीका या मनुस्मृति के टीकाकार मेघातिथि

मैत्री-उप० = मैत्र्युपनिषद्
मै० सं० या मैत्रायणी० = मैत्रायणी संहिता
य० घ० सं० या यतिष्ठमं० = यतिष्ठमंसंग्रह
या०, याज्ञ या याज्ञ० = याज्ञवल्क्यस्मृति
राज० = कल्हण की राजतरंगिणी
रा० घ० कौ० या राज० कौ० = राजधमंकौस्तुभ
रा० नी० प्र० या राजनी० प्र० = मित्र मिश्र का राजनीतिप्रकाश

राज ० र वा राजनीतिर ० = चण्डेश्वर का राजनीति-रत्नाकर

वाज सं या वाजसनेयी सं वाजसनेयी संहिता

वायु०=वायुपुराण
वि० चि० या विवादचि०=वाचस्पति मिश्र का विवादचिन्तामणि
वि० र० या विवादर०=विवादरत्नाकर
विश्व० या विश्वरूप=याज्ञवल्क्यस्मृति की विश्वरूपकृत
टीका
विष्णु०=विष्णुपुराण
विष्णु या वि० घ० सू०=विष्णुधर्मसूत्र
वी० मि०=वीरमित्रोदय
वै० स्मा० या वैखानस०=वैखानसस्मातंसूत्र
व्यव० त० या व्यवहार०=रघुनन्दन का

व्यवहारतत्त्व व्य० नि० या व्यवहारनि० = व्यवहारनिर्णय व्य॰ प्र॰ या व्यवहारप्र॰=मित्र मिश्र का व्यवहारप्रकाश व्य० म० या व्यवहारम०=नीलकण्ठ का व्यवहारमयूख व्य० मा० या व्यव० मा० = जीमूतवाहन की व्यवहारमातृका व्यव॰ सा॰=व्यवहारसार श० ब्रा० या शतपथब्रा० = शतपथब्राह्मण शातातप=शातातपस्मृति शां० गृ० या शांखायनगृ०≔शांखायनगृह्यसूत्र शां० बा० या शांखायनबा०=शांखायनबाह्मण शां० श्रौ० सू० या शांखायन श्रीत०=शाखायनश्रौतसूत्र शान्ति =शान्तिपर्व शुक्र० या शुक्रनीति०=शुक्रनीतिसार शु० कौ० या शुद्धिकौ० = शुद्धिकौमुदी शु॰ क॰ या शुद्धिकल्प॰=शुद्धिकल्पतरु (शुद्धि पर) शु॰ प्र॰ या शुद्धिप्र॰=शुद्धिप्रकाश शूद्रकम०=शूद्रकमलाकर श्रा० क० ल० या श्राद्धकल्प०=श्राद्धकल्पलता श्रा० कि० कौ० या श्राद्धिकया०=श्राद्धिकया-कौमुदी

श्रा॰ प्र॰ या श्राद्धप्र॰=श्राद्धप्रकाश श्रा॰ वि॰ या श्राद्धवि॰=श्राद्धविवेक स॰ श्रौ॰ सू॰ या सत्या॰ श्रौ॰=सत्याषाढश्रौतसूत्र स॰ वि॰ या सरस्वतीवि॰=सरस्वतीविलास सा॰ बा॰ या साम॰ बा॰ सामविधान ब्राह्मण स्कन्द या स्कन्दपु॰ स्कन्दपुराण स्मृ० च॰ या स्मृतिच॰ स्मृतिचन्द्रिका स्मृ० मु॰ या स्मृतिमु॰ स्मृतिमुक्ताफल

सं० कौ० या संस्कारकौ०=संस्कारकौस्तुम सं० प्र०=संस्कारप्रकाश सं० र० मा० या संस्कारर०=संस्काररत्नमाला हि० गृ० या हिरण्य० गृ०=हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र

#### इंग्लिश नामों के कतिपय संकेत

ए० जी० = (एंश्येण्ट जियाग्रफी आव इण्डिया)

ए-इन० ए० = आइने अकवरी (अबुल फजल कृत)

ए० आई० आर० =आल इण्डिया रिपोर्टर

ए० एस० आर० = आक्यालाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स

ए० एस० डब्लू० आई० =आर्क्यालाजिकल सर्वे आव वेस्टर्न इण्डिया

बी॰ बी॰ आर॰ ए॰ एस॰ ≔बाम्बे ब्रांच, रायल एशियाटिक सोसाइटी

बी॰ ओ॰ आर॰ आई॰ = मण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना

सी० आई० आई० =कार्पस इंस्क्रिप्शनम् इण्डिकेरम्

ई० आई० =एपिग्रैफिया इण्डिका (एपि० इण्डि०)

आई० ए० =इण्डियन एण्टिक्वेरी (इण्डि० ऐण्टि०)

आई० एच० क्यू० =इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली

जे० ए० ओ० एस० = जर्नल आव दि अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी

जे० ए० एस० बी० =जर्नल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बेंगाल

जे० बी० ओ० आर० एस० = जर्नल आव दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी

जे० आर० ए० एस० =जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (लन्दन)

एस० बी० ई० = सैकेड बुक आव दि ईस्ट (मैक्समूलर द्वारा संपादित)



## 培

## प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों तथा लेखकों का काल-निर्धारण

[इनमें से बहुतों का काल सम्मावित, कल्पनात्मक एवं विचाराधीन है । ई० पू० चईसा के पूर्व; ई० उ० चईसा के उपरान्त]

४०००-१००० (ई० पू०)

ः यह कैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों एवं उपनिषदों का काल है। ऋग्वेद, अथर्व-वेद एवं तैत्तिरीय संहिता तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण की कुछ ऋचाएँ ४००० ई० पू० के बहुत पहले की भी हो सकती हैं, और कुछ उपनिषदें (जिनमें कुछ वे भी हैं जिन्हें विद्वान् लोग अत्यन्त प्राचीन मानते हैं) १००० ई० पू० के पश्चात्कालीन भी हो सकती हैं। (कुछ विद्वान् प्रस्तुत लेखक की इस मान्यता को कि वैदिक संहिताएँ ४००० ई० पू० प्राचीन हैं, नहीं स्वीकार करते)। ब्लूमफील्ड वैदिक साहित्य की उत्पत्ति २००० ई० पू० मानते हैं (रिलीजन आव दी वेद, पृ० २०, न्यूयार्क, १९०८) तथा वैदिक भावनाओं एवं सिद्धान्तों का प्रचलन इससे बहुत पहले से स्वीकार करते हैं। विटर्रानत्ज का कथन है कि यह अधिक संभव है कि वैदिक साहित्य का अज्ञात काल १२०० या १५०० ई० पू० की अपेक्षा २००० ई० पू० से २५०० ई० पू० के अधिक समीप है (प्राब्लम्स आव इंडियन लिटरेचर, पृ० २०, कलकत्ता)। कुछ पश्चिमी विद्वान् वास्तविक तथ्यों के रहते हुए भी अपनी मान्यता पर ही अधिक जोर देते हैं। ये अन्य उपलब्ध मारतीय साहित्य और अपुष्ट अनुमानों का विश्वास अधिक करते हैं।

८००-५०० (ई० पू०)

: यास्क की रचना निरुक्त।

८००-४०० (ई० पू०)

: प्रमुख श्रीतसूत्र (यथा आपस्तम्ब, आश्वलायन, बौधायन, कात्यायन, सत्याषाढ़ आदि) एवं कुछ गृह्यसूत्र (यथा आपस्तम्ब एवं आश्वलायन)।

५००-३०० (ई० पू०)

ः गौतम, आपस्तम्ब, बौधायन, विसष्ठ के धर्मसूत्र एवं पारस्कर तथा कुछ

अन्य लोगों के गृह्यसूत्र।

५००-३०० (ई० पू०)

: पाणिनि।

५००-२०० (ई० पू०)

: भगवद्गीता।

```
४००--२०० (ई० पू०)
                         ः जैमिनि का पूर्वमीमांसासूत्र।
३००---२०० (ई० पू०)
                         ः पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक लिखने वाले वररुचि कात्यायन।
३०० (ई० पू०) १०० (ई० उ०) : कौटिल्य का अर्थशास्त्र (अपेक्षाकृत पहली सीमा के आसपास) ।
२०० (ई० पू०) १०० (ई० उ०) : मनुस्मृति।
१५० (ई० पू०) १०० (ई० उ०) : पतञ्जलि का महाभाष्य (संभवतः अपेक्षाकृत प्रथम सीमा के आसपास) ।
१०० (ई० पू०) १०० (ई० उ०) : उपवर्ष, पूर्व एवं उत्तर मीमांसासूत्रों के वृत्तिकार।
१०० (ई० पू०) ३०० (ई० उ०) : योगसूत्र के रचयिता पतञ्जिल।
१००--३०० (ई० उ०)
                          : याज्ञवल्क्यस्मृति।
१००-३०० (ई० उ०)
                          ः विष्णुघर्मसूत्र।
१००-४०० (ई० उ०)
                          ः नारदस्मृति ।
२००-५०० (ई० उ०)
                          ः वैखानसस्मार्तसूत्र ।
२००-४०० (ई० उ०)
                          : जैमिनि के पूर्वमीमांसासूत्र के भाष्यकार शबर (अपेक्षाकृत पूर्व समय के
                           आसपास)।
२५०-३२५ (ई० उ०)
                          : ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका।
३००--५०० (ई० उ०)
                          : वृहस्पतिस्मृति (अभी तक इसकी प्रति नहीं मिल संकी है)। एस॰ बी॰
                            ई० (जिल्द ३३) में व्यवहार के अंश अनूदित हैं और प्रो॰ रंगस्वामी
                            आयंगर ने धर्म के बहुत से विषय संगृहीत किये हैं जो गायकवाड़
                            ओरिएण्टल सीरीज द्वारा प्रकाशित हैं।
३००—६०० (ई० उ०)
                          : कुछ विद्यमान पुराण, यथा-वायु०, विष्णु०, मार्कण्डेय०, ब्रह्माण्ड, मत्स्य०, कूर्म०।
४००-६०० (ई० उ०)
                          : कात्यायनस्मृति (अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है)।
४००-५०० (ई० उ०)
                          : माठरवृत्ति, सांख्यकारिका पर।
४००--५०० (उ० ई०)
                          : व्यासरचित योगसूत्रभाष्य।
           (ई० उ०)
                          : आर्यभट, 'आर्यभटीयम्' के लेखक
-308.
                          : युक्तिदीपिका , सांख्यकारिका की व्याख्या।
५५०-७०० (ई० उ०)
                          : वराहमिहिर; पंचसिद्धान्तिका, वृहत्संहिता, बृहज्जातक आदि के लेखक।
५००-५७५ (ई० उ०)
                          : कादम्वरी एवं हर्षचरित के लेखक बाण।
६००-६५० (ई० उ०)
                          : पाणिनि की अष्टाध्यायी पर 'काशिका'-व्यास्याकार वामन--जयादित्य।
६५०-६६० (ई० उ०)
६५०-७०० (ई० उ०)
                          : कुमारिल का तन्त्रवार्तिक, श्लोकंवार्तिक, टुप्टीका।
                          : मण्डन मिश्र, विधिविवेक, भावनाविवेक आदि के लेखक (मीमांसक)।
६८०-७२५ (ई० उ०)
                          : गौडपाद, सांख्यकारिका के व्याख्याकार एवं शंकराचार्य के परम-गुरु।
७००--७५० (उ० ई०)
                          : उम्बेक (प्रसिद्ध मीमांसक)।
७००--७५० (ई० उ०)
                          : शालिकनाथ (प्रसिद्ध मीमांसक)।
७१०--७७० (ई० उ०)
                           : वाचस्पति मिश्र, योगभाष्य, भामती आदि के लेखक।
८२०--९०० (ई० उ०)
                          : अधिकांश स्मृतियाँ, यथा-पराशर, शंख, देवल तथा कुछ पुराण, यथा-
६००-९०० (ई० उ०)
                            अग्नि०, गरुड्०, विष्णुधर्मोत्तर०।
```

```
: महान् अद्वैतवादी दार्शनिक शंकरांचार्य।
  ७८८-८२० (उ० ई०)
                              : याज्ञवल्क्यस्मृति के टीकाकार विश्वरूप (सुरेश्वराचार्य)।
  ७९०-८५० (ई० उ०)
                              : मनुस्मृति के टीकाकार मेघातिथि।
  ८२५-९०० (ई० उ०)
                              : वराहमिहिर कृत बृहज्जातक के टीकाकार उत्पल।
  ७८०-८७० (ई० उ०)
                              : पार्थसारिय मिश्र, शास्त्रदीपिका, तन्त्ररत्न, न्यायरत्न के लेखक।
  ९००-११०० (ई० उ०)
                              : मवनाथ या मवदेव, न्यायविवेक के लेखंक।
 १०५०-११५० (ई० उ०)
                              ः लक्ष्मीघर, कृत्यकल्पतरु (कल्पतरु) निवन्धकार।
 ११००--११३० (ई० उ०)
                              : बहुत से ग्रन्थों के लेखक घारेश्वर मोज।
 १००५-१०५० (ई० उ०)
                              : याज्ञवल्क्यस्मृति-टीका मिताक्षरा के लेखक विज्ञानेश्वर।
 १०८०-११०० (ई० उ०)
                              : मनुस्मृति के टीकाकार गोविन्दराज।
 १०८०-११०० (ई० उ०)
                              : कल्पतरु या कृत्यकल्पतरु नामक विशाल धर्मशास्त्र-विषयक निवन्घ के लेखक
 ११००-११३० (ई० उ०)
                                लक्ष्मीघर।
                              : दायमाग, कालविवेक एवं व्यवहारमातुका के लेखक जीमूतवाहन।
 ११००--११५० (ई० उ०)
                              : प्रायश्चित्तप्रकरण एवं अन्य ग्रन्थों के रचयिता भवदेव भट्ट।
 ११००--११५० (ई० उ०)
                              : अपरार्क, शिलाहारराजा ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर एक टीका लिखी।
 ११००--११३० (ई० उ०)
                              : मास्कराचार्य, जो सिद्धान्तशिरोमणि के, जिसका लीलावती एक अंश है,
 १११४--११८३ (ई० उ०)
                                प्रणेता हैं।
११२७--११३८ (ई० उ०)
                              : सोमेश्वर देव का मानसोल्लास या अभिलिषतार्थविन्तामणि।
११५०--११६० (ई० उ०)
                              : कल्हण की राजतरंगिणी।
११५०--११८० (ई० उ०)
                              : हारलता एवं पितृदयिता के प्रणेता अनिरुद्ध मट्ट।
११५०-१२०० (ई० उ०)
                              : श्रीघर का स्मृत्यर्थसार।
११५०--१३०० (ई० उ०)
                              : मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक।
                              : गौतम एवं आपस्तम्बधर्मसूत्रों तथा कुछ गृह्यसूत्रों के टीकाकार हरदत्त।
११५०--१३०० (ई० उ०)
                              : वल्लाससेन, बंगाल (गौड) के राजा, अद्भुतसागर, दानसागर आदि के
११५८--११८३ (ई० उ०)
                                लेखक।
११७५-१२०० (ई० उ०)
                              : धनञ्जय के पुत्र एवं ब्राह्मणसर्वस्व के प्रणेता हलायुघ।
१२००-१२२५ (ई० उ०)
                              : देवण्ण मट्ट की स्मृतिचन्द्रिका।
१२६०-१२७० (ई० उ०)
                              : हेमाद्रि का चतुर्वर्गचिन्तामणि।
१२००-१३०० (ई० उ०)
                              : वरदराज का व्यवहारनिर्णय।
१२७५-१३१० (ई० उ०)
                              : पितृमन्ति, समयप्रदीप एवं अन्य ग्रन्थों के प्रणेता श्रीदत्त।
१३००-१३७० (ई० उ०)
                              : गृहस्थरत्नाकर, विवादरत्नाकर, क्रियारत्नाकर आदि के
                                                                                  रचियता
                                चण्डेश्वर।
१३००-१३८६ (ई० उ०)
                              : वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों के भाष्यों के संग्रहकर्ता सायण।
१३००-१३८६ (ई० उ०)
                              : पराशरस्मृति की टीका पराशरमाघवीय तथा अन्य ग्रन्थों के रचयिता एवं
                                सायण के माई माघवाचार्य।
```

१३६०—१३९० (ई० उ०)	: मदनपाल एवं उसके पुत्र के संरक्षण में मदनपारिजात एवं महार्णवप्रकाश संगृहीत किये गये।
१३६०—१४४८ (ई० उ०)	: गंगावाक्यावली आदि ग्रन्थों के प्रणेता विद्यापित के जन्म एवं मरण की तिथियाँ। देखिए इण्डियन ऐण्टीक्वेरी (जिन्द १४, पृ० १९०-१९१), जहाँ देवींसह के पुत्र शिविंसह द्वारा विद्यापित को प्रदत्त विसपी नामक ग्राम-दान के शिलालेख में चार तिथियों का विवरण उपस्थित किया गया है (यथा शक १३२१, संवत् १४५५, ल० स० २८३ एवं सन् ८०७)।
१३७५—१४५० (ई० उ०)	: याज्ञवल्क्य की टीका दीपकलिका, प्रायश्चित्तविवेक, दुर्गोत्सविवेक एवं अन्य ग्रन्थों के लेखक शूलपाणि।
१३७५—१५०० (ई० उ०)	: विशाल निबन्ध धर्मतत्त्वकलानिधि (श्राद्ध, व्यवहार आदि के प्रकाशों में विभाजित) के लेखक एवं नागमल्ल के पुत्र पृथ्वीचन्द्र।
१४००—१५०० (ई० उ०)	: तन्त्रवार्तिक के टीकाकार सोमेश्वर की न्यायसुघा ।
१४००१४५० (ई० उ०)	: मिसरू मिश्र का विवादचन्द्र।
१४२५—१४५० (ई० उ०)	: मदनसिंह देव राजा द्वारा संगृहीत विशाल निबन्ध मदनरत्न ।
१४२५—१४६० (ई० उ०)	: शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक आदि के लेखक रुद्रघर।
१४२५—१४९० (ई० उ०)	: शुद्धिचिन्तामणि तीर्थचिन्तामणि आदि के रचिमता वाचस्पति।
१४४०१५०० (ई० उ०)	दण्डिववेक, गंगाकृत्यविवेक आदि के रचियता वर्षमान ।
१४९०१५१५ (ई० उ०)	: दलपित का नृसिंहप्रसाद, जिसके माग हैं-श्राद्धसार, तीर्थसार
	: आदि।
१५००१५२५ (ई० उ०)	ः प्रतापरुद्रदेव राजा के संरक्षण में संगृहीत सरस्वतीविलास।
१५००१५४० (ई० उ०)	ः शुद्धिकौमुदी, श्राद्धित्रयाकौमुदी आदि के प्रणेता गोविन्दानन्द।
१५१३—१५८० (ई० उ०)	: प्रयोगरत्न, अन्त्येष्टिपद्धति, त्रिस्थलीसेतु के लेखक नारायण मट्ट।
१५२०१५७५ (ई० उ०)	ः श्राद्धतत्व, तीर्थतत्व, प्रायश्चित्ततत्त्व आदि के लेखक रघुनन्दन।
१५२०—१५८९ (ई० उ०)	ः टोडरमल के संरक्षण में टोडरानन्द ने कई सौस्यों में शुद्धि, तीर्यं, प्रायश्चित्त,
	कर्मविपाक एवं अन्य १५ विषयों पर ग्रन्थ लिखे।
१५५४१६२६ (ई० उ०)	: अप्पय्य दीक्षित, विधिरसायन आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक।
१५५४—१६२६ (ई० उ०) १५६०—१६२० (ई० उ०)	: अप्पय्य दीक्षित, विधिरसायन आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक। : द्वैतनिर्णय या घर्मद्वैतनिर्णय के लेखक शंकर मटूट।
१५६०—१६२० (ई० उ०)	ः द्वैतनिर्णय या घर्मद्वैतनिर्णय के लेखक शंकर मटूट।
	: द्वैतनिर्णय या घर्मद्वैतनिर्णय के लेखक शंकर मटूट। : वैजयन्ती (विष्णुघर्मसूत्र की टीका), श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका एवं दत्तकमीमांसा के लेखक नन्द पण्डित।
१५६०—१६२० (ई० उ०) १५९०—१६३० (ई० उ०)	: द्वैतनिर्णय या घर्मद्वैतिनिर्णय के लेखक शंकर मटूट। : वैजयन्ती (विष्णुघर्मसूत्र की टीका), श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका एवं दत्तकमीमांसा के लेखक नन्द पण्डित। : निर्णयसिन्धु शूद्रकमलाकर आदि २० प्रन्थों के लेखक कमलाकर मट्ट।
१५६०—१६२० (ई० उ०)	: द्वैतनिर्णय या घर्मद्वैतनिर्णय के लेखक शंकर मटूट। : वैजयन्ती (विष्णुघर्मसूत्र की टीका), श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका एवं दत्तकमीमांसा के लेखक नन्द पण्डित।
१५६०—१६२० (ई० उ०) १५९०—१६३० (ई० उ०) १६१०—१६४० (ई० उ०)	: द्वैतनिर्णय या घर्मद्वैतिनिर्णय के लेखक शंकर मटूट। : वैजयन्ती (विष्णुघर्मसूत्र की टीका), श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका एवं दत्तकमीमांसा के लेखक नन्द पण्डित। : निर्णयसिन्धु शूद्रकमलाकर आदि २० प्रन्थों के लेखक कमलाकर मट्ट।
१५६०—१६२० (ई० उ०) १५९०—१६३० (ई० उ०) १६१०—१६४० (ई० उ०) १६००—१६६५ (ई० उ०)	: द्वैतिनिर्णय या घर्मद्वैतिनिर्णय के लेखक शंकर मटूट। : वैजयन्ती (विष्णुघर्मसूत्र की टीका), श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका एवं दत्तकमीमांसा के लेखक नन्द पण्डित। : निर्णयसिन्घु शूद्रकमलाकर आदि २० प्रन्थों के लेखक कमलाकर मट्ट। : खण्डदेव, मीमांसक, माट्टदीपिका आदि के लेखक।
१५६०—१६२० (ई० उ०) १५९०—१६३० (ई० उ०) १६१०—१६४० (ई० उ०) १६००—१६६५ (ई० उ०)	: द्वैतिनिर्णय या घर्मद्वैतिनिर्णय के लेखक शंकर मदूर। : वैजयन्ती (विष्णुघर्मसूत्र की टीका), श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका एवं दत्तकमीमांसा के लेखक नन्द पण्डित। : निर्णयसिन्धु शूद्रकमलाकर आदि २० प्रन्थों के लेखक कमलाकर मट्ट। : खण्डदेव, मीमांसक, माट्टदीपिका आदि के लेखक। : मित्र मिश्र का वीरिमित्रोदय, जिसके माग हैं तीर्थप्रकाश, प्रायश्चित्तप्रकाश,

#### - 88 -

१६२०—१६९० (ई० उ०)	ः गागामट्ट (विश्वेश्वर) मट्टचिन्तामणि आदि के लेखक।
१६४५—१६७५ (ई० उ०)	: राजधर्मकौस्तुम, स्मृतिकौस्तुम आदि के प्रणेता अनन्तदेव।
१७००—१७४० (ई० उ०)	: वैद्यनाथ का स्मृतिमुक्ताफल।
१६७०—१७५० (ई० उ०)	: तीर्थेन्दुशेखर, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, श्राद्धेन्दुशेखर-आदि लगभग ५० ग्रन्थों
	के लेखक नागेश मट्ट या नागोजिमट्ट ।
१७३०—१८२० (ई० उ०)	: मिताक्षरा पर 'वालम्मट्टी' नामक टीका के लेखक वालम्मट्ट ।
१७९० (ई० उ०)	ः वर्मसिन्धु के लेखक काशीनाथ उपाध्याय।

## पञ्चम् ख्राह वत, उत्सव, काल एवं शान्ति आदि

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

### अध्याय १

## ऋग्वेद में वत

वत शब्द की गणना संस्कृत के उन शब्दों में होती है, जिनका प्रचलन सहस्रों वर्ष पुराना है। 'वृत' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ-सम्बन्धी विकास के विषय में विद्वानों के बीच गम्मीर मतभेद रहे हैं। यहाँ पर बहुत ही संक्षेप में उनका विवरण उपस्थित किया जायगा।

'सेंट पीटर्स बर्ग कोश' में 'व्रत' की उत्पत्ति 'वृ' (वृत्र् वरणे, वरण करना, चुनना) से मानी गयी है, तथा उस कोश में इस शब्द के महत्त्वपूर्ण अर्थ इस प्रकार हैं--(१) संकल्प, आदेश, विधि, निर्दिष्ट व्यवस्था; (२) वशता, आज्ञापरता, सेवा; (३) स्वामित्व अथवा रिक्थ; (४) व्यवस्था, निर्धारित उत्तराधिकार, क्षेत्र; (५) वृत्ति, व्यापार, आचारिक कर्म, प्रवृत्ति में संलग्नता, आचार अथवा रीति; (६) धार्मिक कार्य, उपासना, कर्तव्यता; (७) कोई अनुब्ठान, धार्मिक या तपस्या-सम्बन्धी कर्म या आचरण-सेवन, संकल्प, पुनीत कर्म; (८) सामान्य रूप से संकल्प, निश्चित हेतु; (९) अन्य विशिष्ट अर्थ। मैक्समूलर ने इसकी व्युत्पत्ति 'वृ' से की है, जिसका अर्थ है 'रक्षण करना', और प्रतिपादित किया है कि इसका प्रारम्भिक अर्थ इस मान में था, जिसे हम आवेष्टित, रक्षित, पृथक् रूप से रक्षित के अर्थ में लेते हैं, आगे चलकर इसका अर्थ हुआ निर्णीत, निश्चित, विधि (कानून), विघान और पुनः कालान्तर में अर्थ-विकास हुआ 'आधिपत्य या सत्ता।' ह्विटनी ने मैक्समूलर की व्युत्पत्ति को असन्तोषजनक मानकर उसे सेंट पीटर्सबर्ग के कोश से निकाल दिया और घोषित किया कि उन्हें 'वु' (वरण करना) से इसकी व्युत्पत्ति करना अमान्य है। उन्होंने यह मी कहा कि 'वृ' से संकल्प, अनुशासन (आदेश) अर्थ नहीं निकलता, केवल 'वरण करना या अधिक मान देना' उपयुक्त ठहरता है। किन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया है कि 'वरण करने' एवं 'अनुशासन' में सम्बन्ध अवश्य है। उन्होंने विरोध उपस्थित किया कि 'त' का आगम या प्रत्यय के रूप में प्रयोग बहुत ही कम होता है, और कहा कि यदि कोई तुल्यार्थक शब्द है तो वह है 'मर्त' जो 'मृ' (मरना) से बना है। उन्होंने 'व्रत' का 'वृत्' (वृतु वर्तने, प्रवृत्त रहना या प्रारम्म करना या आगे बढ़ना) से व्युत्पादन अधिक अच्छा माना है। यद्यपि उन्होंने यह माना है कि 'वृत्' से 'अ' प्रत्यय के साथ 'व्रत' की व्युत्पत्ति अपवाद रूप में ही है। उन्होंने सोचा कि व्रज' एवं 'त्रद' शब्द उनकी व्युत्पत्ति को सँमाल लेते हैं और कहा कि 'व्रत' शब्द ऋग्वेद में गति-सम्बन्धी कियापदों, यथा-- चर्', 'सश्च्' या 'सच्' के साथ बहुधा आता है।

१. देखिए JBBRAS, खण्ड २९ (१९५४), पृष्ठ १-२८।

### वर्मशास्त्र का इतिहास

8

प्रो॰ वी॰ एम्॰ आप्टें ने ह्विटनी की बात मानी है छौर कहा है कि 'वृत्' से ही 'वृत' ब्युत्पन्न हुआ है। उन्होंने बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि 'वृ' का 'वरण करना या चुनना' सथा 'रक्षण करना' या 'आवेष्टित करना' अर्थ असम्मव है। उन्होंने कहा है कि ऋग्वेद में कोई व्रत शब्द ऐसा नहीं है जिंससे 'संकल्प या इच्छा, आदेश, आज्ञाकारिता अथवा निर्दिष्ट हेतु' का अर्थ प्रकट हो सके। उनका मत है कि 'वृत्' का अर्थ न केवल 'आगे बढ़ना या प्रवृत्त रहना या आरम्म करना' है (जैसा कि ह्विटनी ने प्रतिपादित किया है), प्रत्युत इसका अर्थ 'अभिमुख होना अर्थात् घूम जाना, अपनी ओर अभिमुख होना, चतुर्दिक् घूम जाना, एक ही स्थान पर परिभ्रमण करना या आगे बढ़ना' मी है, अतः 'वृत' शब्द का अर्थ न केवल विधि, कर्म का क्रम या विधि, आचार-विधि है, प्रत्युत इसका अर्थ 'चक्राकार गति या परिभ्रमण' तथा 'वृत्ताकार मार्ग' मी है।

प्रस्तुत लेखक के मत से ह्विटनी एवं प्रो॰ आप्टे के मत त्रुटिपूर्ण हैं। 'वृत्' से 'व्रत' की व्युत्पत्ति अमान्य है। उन पदों में जहाँ घातु 'वृत्' 'अभि', 'आ', 'नि', 'परि', 'प्र' या 'वि' नामक उपसर्गों के साथ प्रयुक्त हुई है, उनसे 'वृत्' के मौलिक अर्थ को निकालने में हमें सहायता नहीं मिलती, क्योंकि उपसर्ग बहुघा घातु का अर्थ ही परिवर्तित कर देते हैं, और यह सन्देहास्पद है कि 'वृत्' घातु अपने वास्तविक रूप में ही ऋग्वेद में 'आगे बढ़ना' (ह्विटनी के मतानुसार) के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। यह भी नहीं माना जा सकता कि बिना उपसर्गों के प्रयुक्त 'वृत्' घातु ऋग्वेद में 'वक्ताकार या वृत्ताकार घूमना या आगे बढ़ना' (प्रो॰ आप्टे के मतानुसार) के अर्थ में आयी है। प्रस्तुत लेखक के मतानुसार 'वृत्' का सीघा अर्थ है 'होना, ठहरना, पालन करना।' ऋग्वेद में 'वृत्' का प्रयोग इसके आगे या पीछे बिना उपसर्ग के बहुत कम हुआ है।

प्रो० आप्टे ने आरोप लगाया है कि विद्वानों ने बहुधा द्वत के अर्थों के लिए अपने को केवल 'विधि, विधान, आदेश, यज्ञ, संकल्प, निर्विष्ट हेतु, कर्तव्य' तक ही सीमित रखा है, उन्होंने ऋग्वेद में प्रयुक्त अर्थ 'मार्ग या वृत्ताकार मार्ग' की ओर अपना ध्यान नहीं दिया है। उनके मतानुसार ऋग्वेद में विणत दिव्य दतों का अर्थ है स्विगिक पय, दिव्य फेरे, समय समय पर स्वयं देवों द्वारा आकाश के चारों ओर फेरा लगाना', न कि किसी विशिष्ट देवता द्वारा निर्धारित पुनीत विधियां या कानून। 'ओरायन' (पृ० १५४) में लिखित तिलक के इस निर्देश पर कि ऋग्वेद में विणत 'ऋत का पय' राशि-चक्र की विस्तृत मेखला है, जिसका अतिक्रमण ज्योतिष्मान् तारागण कमी नहीं करते, प्रो० आप्टे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि ऋग्वेद के ऋत शब्द का अर्थ है राशि-चक्र की मेखला।' किन्तु प्रसिद्ध वैदिक विद्वानों को यह सिद्धान्त अमान्य है। परन्तु प्रस्तुत लेखक के मत से ऋग्वेद में 'ऋत' तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जिनमें एक है 'प्रकृति की गति' या 'अखिल ब्रह्माण्ड में नियमित सामान्य विधा या व्यवस्था।' 'वह पथ जिसके द्वारा आदित्यों का दल ऋत को पहुँचता है' (ऋ० १।४१।४) या 'ऋत का चक्र, जिसमें १२ तीलियाँ (१२ राशियाँ या मास) हैं, बिना थके लगातार आकाश में चक्कर लगाते रहते हैं, (ऋ० १।१६४।११)—ये उदाहरण प्रथम अर्थ के लिए पर्याप्त हैं। किन्तु ऋत के ये अर्थ व्रत के अर्थ पर कुछ

२. देखिए डकन कालेज रिसर्च इंस्टीच्यूट, पून। का बुलेटिन, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ४०७-४८८।

३. स्वर्भानोरघ यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्। ऋ ५।४०।६; रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह। न चक्रमभि बाघते। ऋ ८।५।३४; नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते। ऋ०१०।३४।९।

W. Annals of the B. O. R. I. Silver Jubilee Volume, PP. 55-56.

प्रकाश नहीं डालते। 'ऋत' एवं 'व्रत' समानार्थंक नहीं हैं। प्रो॰ आप्टे का मत ठीक नहीं है। 'ऋत' शब्द मारोपीय है, किन्तु व्रत शब्द हिन्द-ईरानी मी नहीं है, मारोपीय होने की तो बात ही निराली है।

प्रो॰ आप्टे ने प्रतिपादित किया है कि 'व्रत' शब्द के अर्थ-सम्बन्धी विकास के दो समानान्तर स्वरूप हैं, यथा दिव्य स्वरूप एवं मानवीय स्वरूप। किन्तु 'व्रत' शब्द के अर्थ में इस प्रकार का अन्तर नहीं स्वीकृत किया जा सकता। प्रो॰ आप्टे ने दिव्य स्वरूप के लिए छह तथा मानवीय स्वरूप के लिए चार, अर्थात् 'व्रत' के अर्थों का कुछ मिलाकर दस दलों में वाँटा है। उन्होंने 'व्रत' के लिए कुछ मिलाकर ६० अंग्रेजी अर्थ दिये हैं, जब कि ऋग्वेद में कुछ २२० वार 'व्रत' शब्द आया है। हम इस विषय में यहाँ पर अधिक विस्तार में नहीं जायेंगे।

अव प्रस्तुत लेखक अपने मत के अनुसार ऋग्वेद में प्रयुक्त 'व्रत' शब्द की व्युत्पत्ति उपस्थित करेगा। यह शब्द 'वृ' (वरण करना) धातु से बना है। इस धातु से 'वर' (दूल्हा, जो किसी कन्या या उसके अभिमावक द्वारा कई व्यक्तियों में से चुना जाता है) शब्द निकला है (ऋ० ९।१०१।१४ एवं १०।८५।८-९)। वरण करना दरण करने वाले व्यक्ति की इच्छा या संकल्प पर निर्मर रहता है। अतः 'वृ' का तात्पर्य इच्छा करना मी है। इस प्रकार जब 'व्रत' शब्द 'वृ' से निकला है और उसके साथ 'त' लगा हुआ है तो 'व्रत' का अर्थ हुआ 'जो संकिल्पत है' या केवल संकल्प या इच्छा। जो ज्यक्ति शक्ति-सम्पन्न या अधिकारी होता है उसकी इच्छा अन्य लोगों के लिए आदेश या कानून (विधि) होती है। मक्तजन विश्वास करते हैं कि देवों ने कुछ अनुशासन अथवा आदेश निर्धारित किये हैं जिनका वे स्वयं तथा अन्य जीवगण अनुसरण करते हैं। इससे 'विधि, विधान या कानून' का माव स्पष्ट हो जाता है। किसी उच्चाधिकारी का आदेश आरोपित होता है और उसका अर्थ होता है आज्ञापालन करने की कर्तव्यता। जब आदेश पालित होते हैं, और उसी प्रकार कर्तव्य बहुत समय तक सम्पादित होते रहते हैं तो वे कर्तव्यता या अनुप्रह-बन्धन अर्थात् परम्परानुगत आचारों या व्यवहारों का रूप पकड़ लेते हैं। जब लोग एसा विश्वास करते हैं या अनुमव करते हैं कि उन्हें कुछ कर्म देवों द्वारा निर्धारित समझ कर करने चाहिए, तब थार्मिक उपासना एवं कर्तव्य के माव की सृष्टि होती है। जब कोई व्यक्ति देवों के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए अपने आचरण या मोजन पर विशिष्ट रोक लगाता है तो वह पुनीत संकल्प या धार्मिक आचार-कर्म का रूप घारण कर लेता है। इस प्रकार 'वृ' से व्युत्पन्न 'व्रत' शब्द के कतिपय अर्थ हैं आदेश या विधि (कानून), आज्ञापालन या कर्तव्यता, धार्मिक या नैतिक व्यवहार, धार्मिक उपासना या आचरण, पुनीत या गम्मीर संकल्प या स्वीकरण तथा आचरण-सम्बन्धी कोई भी संकल्प। ऋग्वेद में जहाँ भी 'व्रत' शब्द आया है उसका अर्थ उपर्युक्त अर्थी में ही बैठ जाता है।

यहाँ पर हम िह्नटनी एवं प्रो॰ आप्टे द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं मतान्तरों की व्याख्या स्थानाभाव के कारण नहीं कर सकेंगे। इतना ही कहना पर्याप्त है कि प्रो॰ आप्टे ने 'व्रत' शब्द की जो व्युत्पत्ति 'वृत्' धातु से की है वह उद्धरणों से सिद्ध नहीं होती। आज से लगमग कम-से-कम २५ शताब्दियों पूर्व यास्क ने 'व्रत' की

जो व्युत्पत्ति 'वृ' (वृब् घातु) से की, वह अधिकांश विद्वानों को मान्य है।

यहाँ पर 'ऋत', 'वत' एवं 'धर्मन्' शब्दों के पारस्परिक सम्बन्धों एवं उनके अर्थों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। 'ऋत' के तीन अर्थों की व्याख्या इस महाग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड में की जा चुकी है। 'वत' की व्याख्या ऊपर हो चुकी है। ऋग्वेद में 'धर्मन्' प्रयुक्त हुआ है, न कि 'धर्म'। 'धर्म' शब्द की व्याख्या इस महाग्रन्थ के प्रथम खण्ड के आरम्भ में की जा चुकी है। ऋग्वेद में 'धर्मन्' शब्द कभी-कभी पुंल्लिंग में तथा बहुधा विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है (ऋ० १।१८७।१, १०।९२।२)। १०।२१।३ (त्वं धर्माण आसते) में पुंल्लिंग है, अन्य स्थानों पर यह स्पष्ट रूप से नपुंसक लिंग में है (अतो धर्माण धारयन्) १।२२।१८, और देखिए ५।२६।६, ९।६४।१। इन मन्त्रों

4

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

में धर्म का अर्थ है 'धार्मिक कर्म या यज्ञ', जो स्पष्टतः 'व्रत' के एक अर्थ के सिन्नकट आ जाता है। १।१६४।४३ एवं ५० (=१०।९०।१६) में यज्ञों को आदिम-धर्मन् की संज्ञा दी गयी है (देखिए ३।१७)१ में प्रथमा धर्मा, एवं ३।३।१ में सनता धर्माणि)। कहीं-कहीं 'धर्मन्' का वास्तविक अर्थ नहीं है, यथा ४।५३।३ एवं ५।६३।७, जहां अर्थ है 'निर्दिष्ट नियम या आचारण के नियम।' कहीं-कहीं तो 'धर्मन्' का स्पष्ट अर्थ है 'व्रत', यथा ७।८९।५, 'जिसका अर्थ है 'जिल्ह नियम या आचारण के नियम।' कहीं-कहीं तो 'धर्मन्' का स्पष्ट अर्थ है 'व्रत', यथा ७।८९।५, 'जिसका अर्थ है 'जिल्ह हम विमोहित होकर या असावधानी के कारण आपके धर्मों के विरोध में हो जाये, हे वहण! हमें उस पाप के कारण हानि न पहुँचाओ' (और देखिए ऋ० १।२५।१)। ऋ० ६।७०।१ में आया है— 'धर्मन्' द्वारा पृथक्-पृथक् स्थिर रखे हुए हैं।" और देखिए ऋ० ८।४०।१, जहाँ स्वर्ग को अटल रूप से स्थिर रखना वहण के वर्तो में एक व्रत कहा गया है।

यद्यपि ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में 'वत' एवं 'घमंन्' के अर्थ मिलते जुलते-से प्रतीत होते हैं, तथापि कुछ ऐसे मी मन्त्र हैं जहां तीनों (ऋत, वत एवं घमंन्) या केवल दो ही पृथक्-पृथक् रूप से प्रकट हो जाते हैं। यहाँ एक वात लिख देना आवश्यक है, अथवंवेद के उन अंशों में, जिन्हें पाश्चात्य विद्वान् पश्चात्कालीन ठहराते हैं, 'घमं' शब्द 'घमंन्' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (यथा, १८।२१७, १४।१।५१)। ऋग्वेद के ५।६३।७ में तीनों शब्द आये हैं। ऐसा कहा गया है— 'हे विज्ञ मित्र एवं वरुण! आप लोग स्वमावतः (या अपने आचरण के स्थिर या अटल नियमों के अनुसार) असुर की जैसी आश्चर्यमय शक्ति से अपने धर्मों की रक्षा करते हैं; आप ऋत के नियमों के अनुसार सम्पूर्ण विश्व पर शासन करते हैं, आप स्वर्ग में सूर्य को, जो देवीप्यमान रथ के सदृश है, स्थापित करते हैं।" 'वत' एवं 'घमंन्' ऋग्वेद के ५।७२।२ एवं ६।७०।३ में मी प्रयुक्त हुए हैं। 'ऋत' एवं 'वत' १।६५।२, २।२७।८, ३।४।७ एवं १०।६५।८ में आये हैं। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि 'ऋत वह अखिल ब्रह्माण्डीय व्यवस्था है, जो अति प्राचीन काल से विराजमान है।' 'वत' का अर्थ है 'वे विधियाँ अथवा विघान' जो सभी देवों अथवा पृथक्-पृथक् व्यक्तिगत रूप से देवों द्वारा निर्धारित हैं। 'धमंन्' का अर्थ है धार्मिक कृत्य या यज्ञ या निर्विष्ट नियम।

कमशः ऋत की घारणा घुंघली पड़ती चली गयी और पृष्ठमूमि में छिप गयी तथा 'सत्य' ने उसे आत्मसात् कर लिया। 'घर्मन्' एक विमु (व्यापक) घारणा बन गया और 'व्रत' समाज के सदस्य के रूप में किसी व्यक्ति या केवल किसी व्यक्ति द्वारा पालित होने वाले पुनीत संकल्यों एवं आचरण-सम्बन्धी नियमों तक सीमित रह गया।

५. अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मावेनसो देव रीरिषः। ऋ ७ ७।८९।५। ६. धर्मणा मित्रावरुणा विपिश्चिता वता रक्षेथे असुरस्य मायया। ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजयः सूर्यमा बत्यो विवि चित्रयं रयम्। ऋ ० ५।६३।७।

#### अध्याय २

## वैदिक साहित्य, सूत्रों एवं स्मृतियों में वत; वतों की परिभाषा एवं महत्ता

गत अघ्याय में हमने ऋग्वेद में प्रयुक्त 'व्रत' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ-सम्बन्धी विकास के विषय में पढ़ लिया है। अब हम इस विषय में वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों का अवलोकन करेंगे। ऋग्वेद की कतिपय पंक्तियाँ अन्य वैदिक संहिताओं में भी भिलती हैं। इस प्रकार के स्थलों पर वृत देवी आदेश या आच-रण-सम्बन्धी नैतिक विधियों के अर्थ में आया है, उदाहरणार्थ, ऋग्वेद का १।२२।१९ तै० सं० के १।३।६।२ में आया है-"इन्द्र के सहायक मित्र विष्णु के कर्मों को देखो, जिनके द्वारा वह अपने वंतों अर्थात् आदेशों की रक्षा करता है।" यह अथर्ववेद (७।२६।६), वाज॰ सं॰ (६।४) में भी आया है। और देखिए ऋ॰ ८।११।३६, जो अयर्वे० १९।५९।१, वाज० सं० ४।१६, ते० सं० १।१।१४।४-५ एवं १।२।३।१ में भी पाया जाता है; ऋ० १।२४।१५ का उद्धरण वाज० सं० के १२।१२ एवं अथवं० के ७।८३। (८८) ३ एवं १८।४।५९ में पाया जाता है। ऋ० १०।१९१।३ सर्वथा अथर्व० ६।६४।२ है, केवल अथर्व० में ऋ० का 'व्रतम्' 'मनः' रूप में आया है (समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्)। ऋ० के ७।१०३।१ में, जहाँ ऐसा उल्लेख है कि मेढक, जो वर्ष मर मौन रूप से पड़े रहते हैं और वर्षागमन पर बोलने लगते हैं, उन ब्राह्मणों के समान माने गये हैं जो धार्मिक त्रत करते हैं (अथर्व० ४।१५।१३)। और देखिए ऋ० १०।१२।५ एवं अथर्व० १८।१।३३, ऋ० १०।२।४ एवं अथर्व० १९।५९।२ तथा ऋ० १।८४।१२ एवं अथर्व० २०।१०९।३। इन समी स्थलों में 'व्रतम्' एवं 'व्रतानि' उल्लिखित हैं। अग्नि को बहुधा 'व्रतपा' कहा गया है (ऋ॰ ५।२।८, ६।८।२, ८।११।१ एवं १०।३२।६); सूर्य को मी ऐसा ही कहा गया है (ऋ० १।८३।५)। अन्य संहिताओं में अग्नि को 'व्रतपा' तथा 'व्रतपति' कहा गया है। मिलाइए अथर्वे० २०।२५।५ (सूर्यो व्रतपाः) एवं ऋ० १।८३।५ तथा अथर्व० १९।५९।१ (त्वमग्ने व्रतपा असि) एवं ऋ० ८।११।१। वाज० सं० (१।५) में आया है --- हे अग्नि !

- १. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सला । ऋ० १।२२।१९।
- २. व्रतमुपैष्यन् ब्रूयादग्ने व्रतपते वर्तं चरिष्यामीति । तै० सं० १।६।७।२; अग्ने व्रतपते वर्तं चरिष्यामि तन्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि । वाज० सं० १।५; अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधी-दमहं य एवास्मि सोऽस्मि । वाज० सं० २।२८; अग्ने व्रतपते त्वं व्रतानां व्रतपतिरसि । तै० सं० १।३१४।३; व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह । अथर्व० ७।७४ (७८)।४; देखिए शतप्य १।१।१।२ जिसमें वाज० सं० १।५ एवं २।२८ उल्लिखित हैं।

6

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

वतों के पति, में वृत करूँगा। मैं इसे पूर्ण कर सकूँ। मेरा यह संकल्प सफल हो, यहाँ मैं असत्य से सस्य की ओर जाऊँ।" तै० सं० (१।३।४।३) ने भी अग्नि को वृतपति कहा है।

वैदिक संहिताओं में कहीं-कहीं व्रत को किसी देवता या देवताओं के आदेश के रूप में लिया गया है (देखिए तैं । सं० ४।३।११।१, २, ३ या अथर्व ० ७।४० (४१)१, ७।६८ (७०) १)। किन्तु संहिताओं (ऋग्वेदीय संहिताओं के अतिरिक्त), ब्राह्मणों, उपनिषदों में बहुधा अधिक स्थलों पर व्रत दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, यथा (१) घामिक कृत्य या संकल्प या आचरण तथा मोजन-सम्बन्धी रोक (जब कि व्रत घारण किया जाता है). अथवा (२) विशिष्ट मोजन, जो किसी धार्मिक कृत्य या संकल्प में संलग्न व्यक्ति के लिए व्यवस्थित किया जाता है, यथा गाय का दूध, यवागू (जो की लपसी या माँड़) या गर्म दूध तथा दही का मिश्रण (आमिक्षा)। यास्क ने निरुक्त में ये दोनों अर्थ दिये हैं। प्रथम अर्थ के लिए देखिए तै० सं० २।५।५।६ (यह उसका व्रत है; उसे असत्य नहीं बोलना चाहिए, मांस नहीं खाना चाहिए, स्त्री-गमन नहीं करना चाहिए और न उसे रेह से वस्त्र स्वच्छ करना चाहिए, क्योंकि देवता लोग यह सब नहीं करते); तै० सं० ५।७।६।१, जहाँ आया है. 'पक्षी अग्नि ही हैं, अग्नि चयन करने वाला जब पक्षी (का मांस) खाता है तो (समझना चाहिए कि) वह अग्नि खा रहा है, ऐसा करने से उसको क्लेश प्राप्त होगा; (अतः) उसे यह वत (पक्षी का मांस न खाना) वर्ष मर करना चाहिए, क्योंकि व्रत एक वर्ष से अधिक नहीं चलता।" शांखायन ब्राह्मण (६।६) में आया है, 'उसे व्रत करना है, अर्थात् उसे सूर्योदय एवं सूर्यास्त नहीं देखना है।" तै० सं० (१।२६।६) में आया है, "यह वृत उसके लिए (जिसने आरुणभेतुक-चयन कृत्य कर लिया है) है, उसे वर्षा होते समय दौड़ना नहीं चाहिए, उसे जल में मत्र त्याग या मल-त्याग नहीं करना चाहिए, थूकना नहीं चाहिए, नग्न-स्नान नहीं करना चाहिए, कमल-दल या सोने पर पर नहीं रखना चाहिए और न कछुवा का मांस खाना चाहिए।"

बृहदारण्यकोपनिषद् (१।५।२१-२३) में आया है, 'अब व्रत के विषय में मीमांसा आरम्म होती है; प्रजापित ने अंगों की सर्जना की, जो सीजत होकर एक-दूसरे से स्पर्धा करने लगे; वाक् (वाणी) ने कहा, मैं केवल बोलूंगी (अन्य कुछ न कहंगी)...अतः केवल एक ही व्रत करना चाहिए, यथा केवल मीतर साँस लेनी चाहिए, वायु नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि (यदि कोई अंग किसी दूसरे अंग का कम कर दे) इससे दुर्दान्त मृत्यु पकड़ लेगी।" तैं उप० (३।७-१०) में आया है, 'अन्न (मोजन) की निन्दा नहीं करनी चाहिए, यही व्रत है।.. अन्न

३. व्रतमिति कर्मनाय निवृत्तिकर्म वारयतीति सतः। इदमपीतरद् व्रतमेतस्मादेव वृणोतीति सतः। अन्नमपि व्रतमुच्यते। यदावृणोति क्षरीरम्। निरुक्त २।१४।

४. तस्य व्रतमुद्धन्तमेवनं नेक्षेतास्तं यन्त चेति। ज्ञां० बा० ६।६। जैमिनि (४।१।३) ने इस कथन की ओर किया संकेत है और ज्ञावर का कथन है कि ये प्रजापित-व्रत हैं, ये पुरुषायं हैं न कि कत्वर्थ, इससे सूर्योदय एवं सूर्यास्त न देखने के संकल्प या व्रत की ओर संकेत है। आपस्तम्बधमंसूत्र (१।११।३१।२०, उद्धन्तमस्तं यन्तं चादित्यं दर्शने वर्जयेत्), मनु० (४।३७), विसष्ठधमंसूत्र (१२।१०-१२) ने इस तथा अन्य नियमों का निर्धारण सभी स्नातकों के लिए किया है।

५. अयातो व्रतमीमांसा। प्रजापितहं कर्माणि ससृजे तानि सृष्टान्यन्योन्येनास्पर्धन्त विष्याम्येवाहिमिति बाग्दश्रे।... तस्मादेकमेव व्रतं चरेत्प्राण्याच्चेवापान्याच्च नेन्मा पाप्मा मृत्युराप्नुवदिति। बृह० उप० १।५।२१-२३। यही वाक्य वेदान्तसूत्र ३।३।४३ का आचार है।

## वैदिक साहित्य, सूत्रों एवं स्मृतियों में व्रत

(मोजन) नहीं त्यागना चाहिए, यही वर्त है, अन्न (मोजन) अधिक बनाना चाहिए... (आश्रय के इच्छुक व्यक्ति को) आश्रय देना अस्वीकार नहीं करना चाहिए, यही वर्त है, अतः किसी विधि से अधिक अन्न प्राप्त करना चाहिए।' छान्दोग्योपनिषद् (अञ्याय २, खण्ड १३-२१) में उन विधानों के सम्बन्ध में, जो सामनों की उपासना के समय, तप्त सूर्य के लिए वर्षा होने पर, ऋतुओं, लोकों, पालतू पश्चों, ब्राह्मणों के विरोध में कुछ न कहने के विषय में हैं तथा वर्ष भर (या कभी भी नहीं) मांसन खाने के विषय में हैं, 'तद् वर्तम्' का उल्लेख कई बार हुआ है।

वत के दूसरे अर्थ के लिए वैदिक साहित्य के कुछ उद्धरण निम्न हैं—तै० सं० (६।२।५।१) में आया है, 'वह (दीक्षित) वत करता है, पहले एक स्तन से, फिर दो से, फिर तीनों से और अन्त में चारों स्तनों से दूध पीता है, इसे क्षुरपवि वत कहते हैं, यवागू (दीक्षित) क्षत्रिय का वत है, आमिक्षा (गर्म दूध तथा दही का मिश्रण) वैश्य का वत है।' शतपथन्नाह्मण (३।२।२।१० एवं १६) ने व्यवस्था दी है कि वैदिक यज्ञ के लिए दीक्षित व्यक्ति को दूध पीने का वत लेना चाहिए। ऐतरेय न्नाह्मण (१।२५।४) में व्यवस्था है कि दीक्षित उपसद् दिनों में वत के रूप में चार स्तनों से दूध लेता है, फिर तीन, दो तथा एक से लेता है। मिलाइए तैत्तिरीय आरण्यक (२।८), जहाँ न्नाह्मण याज्ञिक (यजमान) के लिए दूध, क्षत्रिय के लिए यवागू तथा वैश्य के लिए आमिक्षा की व्यवस्था दी हुई है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में 'व्रत' शब्द के दो गीण रूप आ चुके थे, यथा (१) व्यक्ति के आचरण के लिए उचित व्यवस्था तथा (२) उपवास, अर्थात् याज्ञिक (यजमान) का रात मर गाहंपत्य अग्नि के संमीप रहना या उपवास करना। प्रथम का उदाहरण ऐतरेय ब्राह्मण के अन्त में आता है, 'यह व्रत उसके लिए है (उस राजा के लिए जिसने 'ब्रह्मण: परिमर:' नामक व्रत लिया है), उसे अपने शत्रु के बैठने के पूर्व नहीं बैठ जाना चाहिए (उसके बैठने के उपरान्त बैठना चाहिए), (सूचना मिलने पर) यदि वह सोचता है कि शत्रु खड़ा है तो उसे मी खड़ा हो जाना चाहिए; अपने शत्रु के लेट जाने पर पर ही लेटना चाहिए, यदि वह समझता है कि उसका शत्रु बैठ गया है तो उसे बैठना चाहिए, उसे अपने शत्रु के सोने के पूर्व ही नहीं सोना चाहिए, यदि वह जानता है कि उसका शत्रु जगा हुआ है तो उसे मी सजग रहना चाहिए; यदि उसके शत्रु का सिर पाषाण की मौति कठोर रहे (या शत्रु के सिर पर पाषाण का टोप हो) तो मी वह (राजा जो परिमर व्रत करता है) शीघ्र उसे पछाड़ देता है' (ऐ० ब्रा० ८१२८)।

वृत का दूसरा गौण अर्थ उपवास ठहरता है (अर्थात् यजमान दर्श-इष्टि एवं पूर्णमास-इष्टि में गाहँपत्य तथा अन्य अग्नियों के पास रात्रि बिताता है और उपवास करता है या भोजन की मात्रा कम करता है), 'वह दर्श एवं पूर्णमास इष्टियों में उपवास इसलिए करता है कि देवता लोग बिना वृत में लगे हुए व्यक्ति की हिंव को नहीं ग्रहण करते, अतः वह (देवताओं को प्रसन्न करने के लिए) उपवास करता है कि जिससे वे उसके यंज्ञ-कमं में माग लें' (देखिए ऐतरेय ब्राह्मण ७।२)।

?

0 .

इ. अन्नं न निन्द्यात्। तद् वतम्।...अन्नं बहु कुर्वीत तद् वतम्।...न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद् वतम्। तस्त्राद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। तै० उप० ३ (भृगुवल्ली), ७-१०।

७. अथैकं स्तनं व्रतम् पैत्यथ द्वावथ त्रीनथ चतुर एतद्वे क्षुरपिव नाम व्रतं . . . यवागू राजन्यस्य व्रतं . . . आमिका वैश्यस्य पयो ब्राह्मणस्य . . . तै० सं० ६।२।३।१-३। क्षुरपिव अथर्ब० (१२।५।२० एवं ५५) में भी आया है।

उत्पर कहे गये व्रत के दोनों अर्थ श्रीत सूत्रों में पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ आप० श्री० सू० ४।२।५-७, ४।१६।११, ५।७।६ एवं १६, ५।८।१, ५।२५।२-२०, ९।३।१५, ११।१।७, ९।१८।९; आरुव० श्री० सूत २।२।७,३।१३।१-२; जां० श्री० सू० २।३।२६, जिनमें प्रथम अर्थ प्रकट होता है तथा आ० श्री० सू० १०।२०।४, १०।१७।६, ११।१५।३ एवं ६ में दूसरा अर्थ (यथा मोजन या दूध आदि) । गृह्य सूत्रों एवं धर्मसूत्रों में भी व्रत के ये दो अर्थ प्रकट होते हैं। उदाहरणार्थ आरुव० गृ० सू० ३।१०।५-७ में आया है—'उसके लिए ये वत हैं, उसे रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिए, नग्न-स्नान नहीं करना चाहिए, वर्षा होते समय नहीं दौड़ना चाहिए आदि'; पारस्कर गृ० सू० के अनुसार स्नातकों को समावर्तन के उपरान्त तीन दिनों तक कुछ वत करने पड़ते हैं, यथा मांस न खाना, जल-प्रहण के लिए मिट्टी के पात्र को न लेना, स्त्रियों, शूदों, शबों, कौओं को न देखना, शूदों से न बोलना, सूर्यीमिमुख होकर मल-मूत्र न त्यागना और न यूकना, या ये कर्म न करके केवल सत्य बोलना। गौतम (८।१५), शांखायन-गृह्य (२।११-१२), गोमिल गृ० (३।१।२६-३१) आदि ने कुछ ऐसे व्रतों का उत्लेख किया है (जो अब अपचलित हैं) जिन्हें प्रत्येक वेदपाठी छात्र को करना अनिवार्य था। आप० घ० सू० (२।११११) ने विवाहोपरान्त पति-पत्नी के लिए यह निर्घारित किया है कि वे दिन में केवल दो बार खायें, मरपेट नहीं खायें, पर्व के दिनों में उपवास करें। इसी प्रकार उसमें (१।११।३०।६, १।११।३१) स्नातकों के लिए वतों की व्यवस्था है (अथ स्नातकव्रतानि)। पाणिनि (३।२।८०) में एक विशिष्ट सूत्र है 'वते'। और देखिए पाणिनि (३।१।२१)।

प्रायश्चित्तों में बहुत से कठोर नियमों के पालन का व्रत लेना पड़ता है। मनुस्मृति (१११११७, १७०, १७६ एवं १८१), याज्ञवल्क्य (३१५१, २५२, २५४, २५८), शंख (१७१६, २२, ४६, ६१, ६२) आदि स्मृतियों ने इन्हें व्रत की संज्ञा दी है। महामारत में व्रत मुख्यतया धार्मिक संकल्प के रूप में आया है, जिसमें व्यक्ति को अन्न-सम्बन्धी या सामान्य व्यवहार में कुछ रुकावटों का पालन करना पड़ता है। देखिए वनपर्व २९६१३, उद्योग० ३९१७१-७२, शान्ति० ३५१३९, अनुशासन १०३१३४। महामारत में ऐसी आचरण-व्यवस्था के लिए मी नियम हैं, जिन्हें यह आवश्यक नहीं कि हम धार्मिक कहें, उदाहरणार्थ समापर्व (५८१६) में युधिष्ठिर कहते हैं कि यह मेरा शास्वत व्रत है कि मैं बुलाये जाने पर जूआ खेलना अस्वीकार नहीं कर सकता। 'व्रत' शब्द के गौण अर्थों के अतिरिक्त इसके मुख्य अर्थ का प्रयोग ई० सन् की प्रथम शताब्दियों से आगे धार्मिक संकल्प के रूप में मी ब्राह्य था, जो किसी तिथि, सप्ताह-दिन, मास में लिया जाता था, और जो किसी देवी या देवता की पूजा करने पर किसी वांछित फल की प्राप्ति के लिए होता था, ऐसी स्थित में अन्न एवं आचरण में किसी प्रकार के नियन्त्रण की व्यवस्था होती थी। इसी अर्थ में हम इस विमाग में व्रत का प्रयोग करेंगे।

त्रत प्रायश्चित्त-स्वरूप हो सकते हैं या बन्धन रूप में, यथा ब्रह्मचारी या स्नातक या गृहस्थ के लिए व्यवा इच्छा-जिनत या स्वारोपित, जिनसे किसी विशिष्ट साध्य की उपलिब्ध हो। प्रायश्चित्त-सम्बन्धी वर्णन कलेख इस महाग्रन्थ के चीथे खण्ड में हो चुका है। ब्रह्मचारियों, स्नातकों एवं गृहस्थों के व्रतों का वर्णन दूसरे खण्ड में किया जा चुका है। इस पाँचवें खण्ड में हम स्वारोपित (स्वतः गृहीत) व्रतों की मीमांसा करेंगे।

१. आहूतोऽहं न निवर्ते कवाचित्तवाहितं शाश्वतं वै व्रतं मे। सभापर्व ५८।१६।

समी घर्मों में संकल्पों एवं वृतों की व्यवस्था है। प्राचीन एवं नवीन बाइबिल (टेस्टामेण्ट) में वृतों की पुनीतता का उल्लेख है। देखिए इसैआह १९।२१, जाब २२।२७, साम २२।२५, एक्ट २१।२३। जैनों में पंच महान् वृत तथा बौद्धों में पंचशील हैं।

वत की विस्तारपूर्वक परिभाषा के विषय में मध्यकाल के निबन्धों में बड़ी विवेचना उपस्थित की गयी है। शबर (जैमिनि, ६।२।२०) ने निष्कर्ष निकाला है कि वृत एक मानस किया है, जो प्रतिज्ञा के रूप में होती है, यथा 'मैं यह नहीं करूँगा।' मेधातिथि (मन् ४।१३) ने इसे स्वीकार किया है। अग्निपुराण ने व्यवस्था दी है कि शांस्त्र द्वारा घोषित नियम ही वत है, इसी को तप भी कहा गया है; वत को तप कहा गया है, क्योंकि इससे कर्ता को सन्ताप मिलता है; इसे नियम भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें ज्ञान के कतिपय अंगों पर नियन्त्रण करना पड़ता है। मनु (२।३) ने घोषित किया है कि संकल्प सभी कामों (इच्छाओं) का मल है, सभी यज्ञों, सभी वतों का मूल है, और इनकी विशेषताएँ अर्थात् यम संकल्प से ही उत्पन्न होते हैं। " किन्तु प्रत्येक संकल्प वर्त नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह विचारणीय है कि अमरकोश के अनुसार 'नियम' एवं 'वर्त' समानार्थी हैं और वृत में उपवास आदि होते हैं जो पुण्य उत्पन्न करते हैं। " आप॰ घ॰ सू॰ (१।२।५७) में आया है कि 'तप' शब्द ब्रह्मचारी के आचार-नियमों के लिए प्रयुक्त होता है (नियमेषु तपः शब्दः)। मिताक्षरा (याज्ञ० १।१२९) के अनुसार व्रत मानसिक संकल्प है जिसके द्वारा कुछ किया जाता है या कुछ नहीं किया जाता है, दोनों कर्तव्य रूप में लिये जाते हैं। इसीलिए श्रीदत्त ने अपने समयप्रदीप में सम्मवतः शबर एवं मिताक्षरा से संकेत लेकर वर्त की परिमाषा यों की है—'यह एक निर्दिष्ट संकल्प है जो किसी विषय से सम्बन्धित है, जिससे हम कर्तव्य के साथ अपने को बाँघते हैं (स्वकर्मविषयो नियतः संकल्पो वतम्)। उन्होंने यह मी कहा है कि यह मावात्मक (मैं इसे अवश्य करूँगा) या अमावात्मक (मुझे इसे नहीं करना चाहिए) हो सकता है। उन्होंने आएं कहा है कि वह संकल्प, जिसके साथ कोई प्रतिबन्ध लगा हो और जो शास्त्रों द्वारा निर्धारित न हो, वत नहीं कहलाता, यथा यदि कोई ऐसा कहे कि वह उपवास करेगा यदि उसके पिता मना न करें, नहीं तो वह

९. शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्। नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव वमावयः॥ व्रतं हि कर्तृसन्तापात्तप इत्यभिषीयते। इन्द्रियप्रामनियमान्नियमञ्चाभिषीयते॥ अग्नि० १७५।२-३। यही क्लोक गरुड़पुराण (१।१२८।१) में भी है।

१०. संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः। व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥ मनु (२।३३)। याज्ञ० (३।३१२-३१३) ने दस यमों का उल्लेख किया है, यथा ब्रह्मचर्यं, दया, ऑहसा, दम आदि, एवं दस नियमों का वर्णन किया है, यथा स्नान, मौन, उपवास, शौच आदि; किन्तु योगसूत्र में केवल पाँच यमों (ऑहसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः) एवं पाँच नियमों (शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः) का उल्लेख है। मनु (४।२०४) एवं अत्रि (श्लोक ४७) ने व्यवस्था दी है कि यमों का पालनं अवश्यमेव होना चाहिए। (अर्थात् ये प्रमुख कर्तव्य हैं), किन्तु नियमों में ऐसी बात नहीं है। वायुपुराण (१६।१७-१९) ने बहुत से नियम बताये हैं (जिनमें ऑहसा, अस्तेय एवं ब्रह्मचर्य भी हैं)। एकादशीतत्त्व ने मनु (२।३) का उद्घरण देते हुए व्याख्या की है कि 'अनेन कर्मणा इदमिष्टं फलं साध्यते इत्येवंविषया बुद्धिः संकल्पस्सदनन्तरिमष्ट-साधनतया अवगते तिस्मन् इच्छा जायते ततस्तदर्थं प्रयत्नं कुर्वीत इत्येवं यज्ञाः संकल्पसम्भवाः।'

११. नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुष्पकम्। अमरकोश।

नहीं करेगा; तो यह वत नहीं कहा जायगा, क्योंकि वत में संकल्प प्रमुख विषय है। यदि कोई दुर्बल बुद्धि का व्यक्ति या अज्ञानी व्यक्ति बिना किसी संकल्प के वृत करे तो वह मात्र शरीर-क्लेश कहा जायगा न कि वृत। कृत्यरत्नाकर ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा उपस्थापित वत की कई परिमाषाएँ दी हैं, जिनमें देवेश्वर की परिमाषा यों है-- 'वृत वह है जो वृतकाण्ड में परिगृहीत है।' यह परिमाषा परिमाषा-सम्बन्धी प्रयास की निराशा की द्योतक है और जिज्ञासु को पूर्व स्थिति में ही छोड़ देती है। संकल्प का त्रत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है; यह लघु-विष्णु की उक्ति के आधार पर कहा गया है—'ऋितकों का वरण यज्ञ का प्रारम्भ है, संकल्प व्रत का और जप (किसी इष्ट देवता के सम्मान में) मन्त्रों का।" शूलप।णि ने श्रीदत्त के समान ही व्रत की परिमाषा की है। लक्ष्मीवर ने कृत्यकल्पतक में व्रत की परिमाषा नहीं की है। प्रो० के० वी० रंगस्वामी आयंगर ने क्रत्यकल्पतर के व्रतकाण्ड की मूमिका में कहा है कि रघुनन्दन ने अपने व्रततत्त्व में व्रत की परिमाषा करने का प्रयास छोड दिया है। किन्तु प्रो० आयगर ने यह नहीं देखा कि रघुनन्दन ने अपने एकादशीतत्त्व में व्रत की परिमाषा की मीमांसा की है और इसी से उन्होंने अपने व्रततत्त्व में उसे पुनः नहीं लिखा। रघूनन्दन नारायण एवं श्रीदत्त की परिमाषाएँ उल्लिखित करते हैं और वृत की संकल्प मानने की सन्नद्ध नहीं होते, प्रत्युत यह कहते हैं कि वत का तात्पर्य है माँति-माँति के कृत्य जिनके लिए संकल्प किया जाता है, वत एक नियम है (निय-न्त्रित करने वाली विधि) जो शास्त्रों द्वारा व्यवस्थित है, उपवास द्वारा विशिष्टीकृत है, यह प्रत्येक नियम नहीं है, यथा ऋतुकालामिगामी स्यात् (याज्ञ० १।७९, मन् ३।४५)। व्रतप्रकाश (वीरमित्रीदय का एक अंश) ने वत को एक विशिष्ट संकल्प माना है जो विद्वानों को वत के रूप में मली माँति विदित है, जैसे कि मन्त्र वे हैं जो विद्वानों के बीच में मन्त्रों के रूप में विख्यात हैं। धर्मसिन्धु (पृ० ९) ने व्रत को पूजा आदि से समन्वित घामिक कृत्य माना है। यद्यपि प्रत्येक वृत के मूल में और इसके लिए आग्रह के फलस्वरूप कोई संकल्प अवश्य होना चाहिए, अतः ऐसा लगता है कि रधुनन्दन एवं धर्मसिन्धु की परिभाषाएँ वृत के लोकप्रिय अर्थ की द्योतक हैं। किसी वर्त में कई बातें सम्मिलित रहती हैं, यथा स्नान, प्रातः सन्ध्या, संकल्प, होम, पूजा (इष्ट देवता की), उपवास, ब्राह्मणों, कुमारियों या विवाहित स्त्रियों, दरिद्रों को मोजन-दान, गी, घन, वस्त्र, मिटाई आदि का दान तथा व्रत की अविध के मीतर आचरण-सम्बन्धी कुछ विशिष्ट नियमों का परिपालन। इनमें कुछ का वर्णन विस्तार के साथ आगे किया जायगा, किन्तु कुछ यहीं वर्णित होंगे।

अग्निपुराण (१७५।१२) में आया है कि व्रत करने वाले की प्रति दिन स्नान करना चाहिए, सीमित मात्रा में मोजन करना चाहिए, गुरु, देवों एवं ब्राह्मणों का सम्मान करना चाहिए, क्षार, क्षौद्र, लवण, मधु एवं मांस का त्याग कर देना चाहिए। देवल का कथन है कि पूर्व रात्रि में बिना कुछ खाए स्नान करने के उपरान्त मन की एकाग्र करके, सूर्य तथा अन्य देवों का आवाहन करके व्यक्ति की प्रातःकाल व्रत का आरम्म करना चाहिए। मध्यकाल के लेखकों ने व्रत के विषय में पूर्वकालीन संक्षिप्त उल्लेखों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर उपस्थित किया है। व्रतकाल-विवेक का कथन है कि संकल्प के पूर्व नारायण-स्मरण एवं नमस्कार होना चाहिए। गणेश की पूजा के विषय में मतभेद है। व्रतकालविवेक में आया है कि गणेश-पूजा अन्य देवों की पूजा के पहले करना कोई आवश्यक नहीं है।

१२ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतजापयोः। नान्वीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया।। लघुविष्णु, मदनपारिजात (पृ०४२३) द्वारा उद्घृत, स्मृत्यर्थसार (पृ०१७), व्रतकालविवेक (पृ०९)।

### वत-नियमों में होम और पूजा

सामान्य नियम तो यह है कि व्रत का संकल्प प्रातःकाल होना चाहिए, किन्तु यहाँ मी विरोधी मत प्रंकाशित किये गये हैं (देखिए मविष्यपुराण, उत्तर, ११।६-८)।

होम एवं पूजा में अन्तर है। प्राचीन धर्माधिकारियों के मत से वैदिक मन्त्रों के साथ होम स्त्रियों एवं शूद्रों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए। सिद्धान्त रूप से तीन वर्ण वैदिक मन्त्रों के साथ होम कर सकते हैं, किन्तु, विद्वान् ब्राह्मणों का कहना है कि कल्यिय में योग्य क्षत्रिय एवं वैश्य नहीं पाये जाते। कमलाकर मट्ट जैसे लेखकों ने यहाँ तक कह डाला कि शूद्र पुराणों को नहीं पढ़ सकते, वे केवल ब्राह्मणों द्वारा उनका पारायण सुन सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश में लोग केवल पूजा करने लगे और अग्नि में होम करना कम होने लगा। कुछ लेखकों के मत से उसी देवता के लिए होम होना चाहिए जिसके अनुग्रह के लिए व्रत किया जाता है। वर्षमान आदि लेखकों के मत से व्रत में होम इष्ट देव के सम्मान में होना चाहिए या वह केवल व्याहृतिहोम होना चाहिए (होम के साथ मू: स्वाहा, मुब: स्वाहा, स्व: स्वाहा, मूर्मुव: स्व: स्वाहा)। अग्निपुराण (१७५१६०) के अनुसार सामान्य रूप से सभी व्रतों के अन्त में जप, होम एवं दान होना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर में व्यवस्था है कि जो उपवासन्त्रत करता है उसे इष्ट देव के मन्त्रों का मौन पाठ करना चाहिए, इष्ट देव का घ्यान करना चाहिए, उस देव के विषय की कथाएँ सुननी चाहिए, उसकी मूर्ति की पूजा करनी चाहिए, उसके नामों का उच्चारण करना चाहिए तथा अन्य लोगों को नाम-गायन करते हुए सुनना चाहिए।

पूर्वमीमांसा के लेखकों ने होम, याग एवं दान के अन्तर या भेद को समझाया है। शबर (जै० ४।२।२८) ने संक्षेप में कहा है— अपना सम्पूर्ण त्याग तीनों कृत्यों में पाया जाता है, किन्तु याग वह है जिसमें इष्ट देव के निमित्त किसी वस्तु का त्याग होता है और वह मन्त्र के साथ होता है, किन्तु होम में एक बड़ी बात और है, और वह है अग्नि में किसी वस्तु को छोड़ना; दान में अपनी किसी वस्तु का त्याग करना होता है जो अन्ततोगत्वा दूसरे की हो जाती है। एक स्थान पर ज्ञवर (जै० ९।१।६) ने याग को केवल देवता की पूजा माना है (अपि च यागो नाम देवता-पूजा)।

मनु (२।१७६) एवं याज्ञ० (१।९९।१००, १०२) से प्रकट होता है कि देवतापूजा एवं होम में अन्तर है। देवतापूजा होम के उपरान्त होती है, जैसा कि मरीचि एवं हारीत (स्मृतिच० १, पृ० १९८ एवं स्मृतिमु०, आह्निक, पृ० ३८३ में उद्धृत) से पता चलता है। देवतापूजा के विषय में हमने इस महाग्रन्थ के दितीय खण्ड में देख लिया है। कुछ बातें जो वहाँ छूट गयी हैं, यहाँ दी जा रही हैं। देवपूजा की विधि में १६ उपचार होते हैं, किन्तु उनकी संख्या ३६ या ३८ तक भी है और कम भी बतायी गयी है, यथा १३, १४, १२, १० या ५। इस विषय में मतैक्य नहीं है। वह केवल दो कर सकता है, यथा चन्दन एवं पुष्प, यदि इतना भी न कर सके तो श्रद्धा मात्र पर्याप्त है (वर्षित्रयाकौमुदी, पृ० १५७ में उद्धृत कालिकापुराण)। शवर (जै० ५।१।४) के माष्य (कम से कम चौथी शताब्दी के उपरान्त नहीं) से प्रकट है कि उपचारों का कम तब तक व्यवस्थित हो चुका था। व्रताक एवं वर्षित्रयाकौमुदी (पृ० २००-२०१) के मत से सभी व्रतों में सामान्य रूप से पुरुषसूक्त (ऋ० १०।९०) के प्रत्येक मन्त्र

१३. ३८ उपचारों के लिए देखिए व्रतराज पृ० ४४। एकादशीतस्व (पृ० १८) में ३६ उपचार उद्घृत हैं। प्रथंचतार में १६ उपचार निम्न हैं—आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचनीयकम्। मधुपक्राचमस्तानवसनाभरणानि च॥ सुगृत्धं सुमनोधूपदीपनैवेद्यवन्दनम्। प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांश्च षोडशः॥

का पाठ प्रत्येक उपचार के साथ कम से होना चाहिए (यथा आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीयक, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपनीत, अनुलेपन या गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा, प्रदक्षिणा)। कुछ ग्रन्थों में इनमें प्रत्येक के साथ एक या अधिक पौराणिक मन्त्रों का भी समावेश पाया जाता है। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि ये उपचार (विशेषतः पुष्प, गन्ध, धूप, दीप एवं नैवेद्य) वैदिक युग में नहीं थे और आगे चलकर अनार्यों से ग्रहण किये गये। ऋग्वेद (१०।१८४।२) एवं अथर्व० (३।२२।४) में अश्विनी का वर्णन नील कमलों की माला से युक्त किया गया है (पुष्करसजा); मरुतों को भी माला-युक्त विणत किया गया है (ऋ० ५।५३।४)। ऋग्वेद के मन्त्रों में (३।५९।१ एवं ५) घृत के साथ हव्य देने का उल्लेख है। देवों से अपूप, पुरोडाश, धाना, दूध, दही, मधु आदि बाने की प्रार्थना की गयी है (ऋ०-३।५३।८, ३।५२।१-७, ४।३२।१६, ८।९१।२; अथर्व० १८।४।१६-२६)। यह सब मृति के समक्ष नैवेद्य देने की ओर संकेत है। शतपथ ब्राह्मण (१।१।११) में 'उपचार' शब्द 'सन्मान' अथवा सम्मान प्रकट करने की विधि के अर्थ में प्रयुक्त है। तै० आ० (१०।४०) में 'मेघा-जनन' नामक मन्त्र का उल्लेख है, जो जातकर्म के अवसर पर शिशु के कान में कहा जाता था—'सविता देव, सरस्वती देवी एवं नील कमलों की माला धारण करने वाले अश्विनीकुमार देव तुममें मेधा (बुद्धि) उत्पन्न करें। इसके प्रमाण हैं कि गृह्य सूत्रों से बहुत पहले १६ उपचारों में बहुत से विख्यात थे, निघण्टु (३।१४) में ऐसे ४४ किया शब्दों का उल्लेख है जिनका अर्थ है 'पूजा', जिनमें 'पूजयित' भी है। और देखिए शब्द 'सूपाणिः' (ऋ० ३।३३।६), जिसे निरुक्त में समझाते हुए कहा गया है कि 'पाणि' शब्द 'पण' से बना है जिसका अर्थ है सम्मान देना, लोग हाथों को जोड़कर देवों की पूजा करते हैं। अतः प्रकट है कि निरुक्त के पूर्व 'नमस्कार' पूजा करने का एक रूप था। और देखिए ऋग्वेद (३।३१।१) जिसमें 'सपर्यन्' शब्द निघण्टु द्वारा 'पूजयन् 'का समानार्थक माना गया है। पाणिनि (५।३।९९) और महामाष्य से प्रकट है कि उन दिनों देवों की प्रतिमाएँ बनती थीं, बिकती थीं, जिससे कि उनकी पूजा हो। " आरव॰ गृ॰ सू॰ (१।२४।७) ने व्यवस्था दी है कि जब ऋत्विक्, आचार्य, दूलह, राजा, स्नातक या सम्बन्धी (श्वशूर, चाचा, मामा आदि के सद्श) को मधुपर्क देना हो तो प्रत्येक के बारे में अतिथि को आसन, पाद-प्रक्षालन के लिए जल, अर्घ्यंजल, आचमन-जल, मधु-मिश्रण तथा गाय की तीन बार घोषणा होनी चाहिए। इसी सूत्र ने एक अन्य स्थान पर गन्ध, माल्य, धूप, दीप, आच्छादन (वस्त्र) श्राद्ध के समय ब्राह्मणों को देने की बात चलायी है (४।८।१)। उपर्युक्त मन्त्रों में ही १६ में ९ उपचारों का उल्लेख हो गया है। धर्मसूत्रों के काल में ही 'पूजा' गौण अर्थ में होने लगी (अर्थात् बिना गन्ध, पुष्प आदि के सम्मान देना)। याज्ञ० (१।२२९) ने श्राद्ध में आवाहन, अर्घ्य, गन्ध, माल्य, घूप, दीप आदि का उल्लेख किया है। जब मूर्ति-पूजा का प्रचलन हो गया तो उपचार, जो योग्य व्यक्तियों के सम्मान एवं पूजा के लिए व्यवस्थित थे, आगे चलकर इसके साथ प्रयुक्त हो गये। प्रस्तुत लेखक के मत से यह सिद्धान्त कि पूजा एवं उपचार द्रविड़ों या अनायों से ग्रहण किये गये हैं, सिद्ध नहीं किया जा सकता और केवल कल्पनापरक है, वास्तव में मूर्ति-पूजा स्वदेशोद्भव विकास है। मध्य काल के लेखकों ने बड़ी सावधानी

१४. जीविकार्ये चापण्ये । पा० (५।३।९९); मौर्येोहरण्याणिभिरचीः प्रकल्पिताः। भवेत्तासु न स्यात्। यास्त्वेताः संप्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति। महाभाष्य। सोने एवं घन के लोभी मौर्य लोग बेचने के लिए शिव, स्कन्द की प्रतिमाएँ बनाते थे, जिन्हें 'शिवक' आदि कहा जाता था। किन्तु उन्हें, जो पूजा के निमित्त प्रतिष्ठापित होती थीं और जो पुजारियों की जीविका की साधन थीं, 'शिव', 'स्कन्द' आदि कहा जाता था। महाभाष्य (पा० १।१।२५) में आया है, 'काश्यपग्रहणं पूजार्थम्'।

से प्रकट किया है कि वास्तव में याग (वैदिक या अन्य यज्ञ) एवं पूजा में कोई मौलिक भेद नहीं है, क्योंकि दोनों में इष्ट देव के लिए कुछ दिया जाता है।

वत पर लिखे गये कुछ ग्रन्थों ने विस्तार के साथ बहुत-से उपचारों के विषय में लिखा है, विशेषतः पुष्पों के विषय में, जो मूर्ति-पूजा में चढ़ाये जाते हैं; पुष्प चढ़ाने के फलों, गन्ध के विविध प्रकारों या धूप, भोजन आदि के विषय में प्रमूत विस्तार पाया जाता है (हेमाद्रि, कृत्यरत्नाकर, पृ० ७०-७१, ७७-७९, वर्षिक्रयाकीमुदी, पृ० १५६-१८१)। स्थानामाव से हम यहाँ संक्षेप में लिखेंगे। बहुत-सी बातें द्वितीय खण्ड में आ चुकी हैं, जो बातें वहाँ नहीं दी हुई हैं उन्हें दिया जा रहा है। स्मृतिच० (पृ० २०१) ने पद्मपुराण का उद्धरण दिया है कि गन्धों में चन्दन परम पुनीत है. अगर, चन्दन से उत्तम है, गहरे रंग वाला (कृष्ण) अगर और मी उत्तम है, पीला अगर कृष्ण से श्रेष्ठ है। हेमाद्रि ने 'चतुः सम' की व्याख्या की है, इसे त्वक्, पत्रक, लवंग एवं केसर (या कस्तूरी के दो माग, चन्दन के चार, केसर के तीन एवं कपूर का एक) कहा है। इन्होंने सर्वगन्य को कुंकुम (केसर), चन्दन, उशीर (खस), मुस्ता, लामज्ज (सुगंन्धित घास की जडें), कपूर तथा तीन सुगंधित वस्तुएँ (यथा वक्, एला, पत्रक) माना है तथा 'यक्षकर्दम' को कपूर, अगरु, कस्तूरी, चन्दन एवं कक्कोल ठहराया है। अग्निपुराण (२०२।१) ने सर्वप्रथम कहा है कि हरि पुष्प, गन्ध, धूप, दीप एवं नैवेद्य से प्रसन्न होते हैं और फिर ऐसे पुष्पों का विभेद किया है जो चढ़ाने के योग्य या अयोग्य हैं। कल्पतरु (व्रत, पृ० १८०-१८१) ने मविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व, १९७।१-११) का उद्धरण देकर पूजा में प्रयुक्त विविध पुष्पों के पुण्य-फलों का उल्लेख किया है, यथा मालती पुष्प के उपयोग से पुजारी देवता का सामीप्य पाता है, करवीर पुष्प से स्वास्थ्य एवं अतुलनीय सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, मल्लिका के उपयोग से समी प्रकार के आनन्द मिलते हैं, पुण्डरीक (कमल) से कल्याण एवं अधिक काल तक रहने वाली सम्पत्ति मिलती है, सुगन्धि-युक्त कुञ्जक से सर्वोत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होता है, कमल (श्वेत एवं नील) से निष्कलंक ख्याति मिलती है, विविध मुकुरकों से रोग-निवारण होता है, मन्दार से कुष्ट के सभी प्रकारों का क्षय होता है, बिल्व से धन-प्राप्ति होती है, अर्क से सूर्यं कल्याण करता है, बकुल पुष्पों की माला से सुन्दर कन्या प्राप्त होती है, किशुक पुष्प से पूजित होने पर सूर्य दु:ख का हरण करता है, अगस्त्य पुष्पों से इष्ट देव सफलता देते हैं, कमल-पुष्प-पूजा से सुन्दर पत्नी मिलती है, वनमाला से थकावट दूर होती है, अशोक पुष्प से सूर्य-पूजा करने पर त्रुटियाँ नहीं होतीं और जपा पुष्प से पूजित होने पर सूर्य पूजक को दुःखरहित करता है। निवन्धों में धूप के विषय में भी बहुत कुछ लिखा गया है। कल्पतर (वत, पू० १८२-१८३) में आया है-चन्दन जलाने से सूर्य पूजक के सिन्निकट आता है (अर्थात् अनुग्रह करता है), जब अगर जलाया जाता है तो वह बांछित फल देता है, स्वास्थ्य चाहने वाले को गुग्गुल जलाना चाहिए, पिण्डांग के प्रयोग से सूर्य स्वास्थ्य, घन एवं सर्वोत्तम कल्याण देता है, कुण्डक के प्रयोग से कृतार्थता मिलती है, श्रीवासक से व्यापार में सफलता मिलती है तथा रस एवं सर्जरस के प्रयोग से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। बाण ने चण्डिका के मन्दिर में गुग्गुल के जलने का वर्णन किया है (कादम्बरी, पूर्वार्घ)। कल्पतरु (व्रत, पृ० ६-७), हेमाद्रि (व्रत), कृत्यरत्नाकर (पु० ७८) ने मविष्यपुराण का उद्धरण देते हुए 'अमृत', 'अनन्त', 'यक्षांग', 'महांग' नामक धूपों का उल्लेख किया है। मिवष्यपुराण (ब्राह्मपर्व, १९८।१९) में आया है कि पुष्पों में 'जाती' सर्वश्रेष्ठ है, कुण्डक सर्वोत्तम घूप है, सुगंधित पदार्थों में केसर सर्वश्रेष्ठ है, गन्धों में चन्दन सर्वोपिर है, दीप के लिए घृत सर्वोत्तम है तथा नैवेद्य मोजनों में मोदक मिठाई सर्वश्रेष्ठ है। यह बात विचारणीय है कि गुग्गुल तथा अन्य पदार्थों का जलाना व्याव-हारिक महत्त्व भी रखता है, क्योंकि इससे मक्खी-मञ्छरों का विनाश होता है (देखिए गरुड़० १।१७७।४८-८९)।

यह वास्तव में सत्य है कि अधिकांश वर्तों में ब्राह्मणों को खिलाया जाता था, किन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं है कि दरिद्रों, अन्धों एवं निराश्रितों को सर्वथा छोड़ दिया जाता था। बहुत-से वर्तों में यह स्पष्ट रूप से व्यवस्था दी हुई है कि दरिद्रों, अन्धों एवं निराश्रितों को मोजन दिया जाना चाहिए। अवियोगव्रत की चर्चा करते हुए कल्पतर (व्रत, पृ० ७५) एवं हेमाद्रि ने कालिकापुराण से एक लम्बा उद्धरण दिया है जिसमें ऐसी व्यवस्था है कि व्रत-दिवस पर स्वादिष्ठ एवं सुगंबित अन्न एवं हिच्यूणं पेय दीनों, अन्धों, विधरों आदि को देना चाहिए। अरेर देखिए कल्पतर (व्रत), पृ० ३९० (हरि-व्रत), पृ० ३९१ (पात्रव्रत), पृ० ३९७ (महाव्रत), हेमाद्रि एवं कृत्य० र०, पृ० ४८१ (शिव-प्रत्वत), कृत्य र०, पृ० ४६१ (मित्रसप्तमी)। मित्रध्य० (उत्तर, २२।३३-३४) ने कहा है कि व्रत करने वाले रात्रव्रत), कृत्य र०, पृ० ४६१ (मित्रसप्तमी)। मित्रध्य० (उत्तर, २२।३३-३४) ने कहा है कि व्रत करने वाले वालिए कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्धों, दीनों एवं निराश्रितों को मोजन दे। श्राद्धों, विशेषतः गयाश्राद्ध में पुराणों ने पर्याप्त व्यय करने की बात चलायी है और यथाशितत कम व्यय करने वालों की मर्त्सना की है (देखिए मत्स्य० १००।३६)। उमयद्वादशीव्रत पर मित्रध्योत्तर में आया है कि व्रती को कम व्यय नहीं करना चाहिए। और देखिए कालिकापुराण, पद्म० (६१३९।२१), मत्स्य० (६२।३४, ९१।१०९, ९५। ३२,९८।१२)।

वती को कुछ विशेष गुणों से समन्वित होना चाहिए। अग्निपुराण (१७५।१०-११) में दस गुणों का वर्णन है, यथा क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहवन, सन्तेष एवं अस्तेय। ये दस धर्म समी व्रतों के लिए हैं। देवल के अनुसार ब्रह्मचर्य, शौच, सत्य एवं आमिषवर्जन नामक चार वरिष्ठ गुण हैं। ब्रह्मचर्य का नाश पर-स्त्री को देखने, स्पर्श करने एवं बात करने से हो जाता है, किन्तु मासिक धर्म की निवृत्ति के उपरान्त आज्ञापित दिनों में अपनी पत्नी से सम्मोग करना वर्जित नहीं है। नारदीयपुराण (पूर्वार्ध, ११०।४८) में आया है कि सभी वतों में ब्रह्मचर्य की व्यवस्था है, उनमें केवल यज्ञिय मोजन ही करना चाहिए। हविष्यास कई प्रकार से परिमाषित है। मनु (३।२५७) ने व्यवस्था दी है कि मुनियों के योग्य मोजन (यथा नीवार), दूध, सोमरस, अनुपस्कृत (जो दुर्गंघियुक्त न हो) मांस, अक्षारलवण (प्राकृतिक नमक) यज्ञिय मोजन कहे गये हैं। यद्यपि स्मृतियों में मांस (श्राद्ध कर्म में) का प्रयोग निषिद्ध नहीं है किन्तु देवलस्मृति आदि के मतानुसार व्रतों में इसका निषेध होना चाहिए। कृत्य र० (पृ० ४००) ने समयप्रदीप का लम्बा उद्धरण देकर वृत-काल के मोजन पर प्रकाश डाला है, यथा सर्वप्रथम यव (जौ), उसकी अनुपस्थिति में ब्रीहि (चावल), इसके अभाव में अन्य मोजन, किन्तु माष (उरद), कोद्रव, चना, मसूर, चीन एवं कपित्थ को छोड़कर। मोजन के विषय में बहुत-से पुराणों में मतभेद है, क्या खाया जाय, क्या छोड़ दिया जाय, स्पष्ट नहीं हो। पाता। इसके विस्तार में हम नहीं जायँगे। पद्म० में आया है कि नक्तव्रत में छः बातें की जानी चाहिए, यथा हविष्य मोजन, स्नान, सत्य भाषण, अल्प मोजन, अग्नि-पूजन, पृथिवी-शयन। मजबल के अन्सार काँसा, मांस, मसूर, चना, कोद्रव, शाक, मधु तथा दूसरे के घर में पका अन्न वर्जित है। व्रत के दिन, हारीत के अनुसार वृती को पतितों, पाषण्डियों, नास्तिकों से बातन हीं करनी चाहिए और न असत्य-माषण तथा अश्लील बात कहनी चाहिए। शान्ति । (१५।३९) में आया है कि वृती को स्त्रियों, शूद्रों एवं पतितों से बातचीत नहीं करनी चाहिए। और देखिए बृहद्योगी-याज्ञवल्क्यस्मृति (७।१४७-१४८)।

पुराणों ने तीर्थयात्राओं के सदृश वर्तों की भी महिमा गायी है। ई० पू० में ही वैदिक मार्गियों द्वारा किये जाने वाले वर्तों का प्रचलन समाप्त हो चुका था तथा वैदिक यज्ञों से सम्बन्धित वर्त भी बहुत कम होते थे। गृह्य एवं धर्मसूत्रों तथा मनु एवं याज्ञ ० जैसी प्राचीन स्मृतियों में भी पौराणिक काल के वर्तों को महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं

१५. दीनान्धविधरादीनां तिह्ने वानिवारितम्। कल्पयेदन्नपानं च सुमृष्टं रुच्यमात्मनः।। हेमाद्रि (व्रत ११४४३), कृत्य र० (पृ०४५५): प्रणम्य भोजयेद् भक्त्या व्रतिनश्च द्विजैः सह। कल्पयेद् भोजनं श्रेष्ठं सर्वेष्वेध तपस्विषु। दीनान्धकृपणानां च सर्वेषामनिवारितम्।। हे० (व्रत, २, पृ०३८२), पात्रव्रत।

प्राप्त हो सका था। प्राचीन यज्ञ-सम्बन्धी विधि के विरोध में जैन एवं बौद्ध धर्म आ खड़े हुए थे। सामान्य जनता को जैन एवं बौद्ध प्रभावों में पड़ने से रोकने के लिए वैदिक धर्मावलम्बी विद्वानों ने सम्भवतः व्रतों की प्रमूत महत्ता गायीं है और उनके कर्ताओं को स्वर्ग एवं आध्यात्मिक फलों का प्रलोमन दिया है। यज्ञों की अपेक्षा वृत सरल थे। वतों में कुछ सामान्य लोक-न्यवहार मी सम्मिलित हो गये, यथा कुक्कुटी-मर्कटी-व्रत, शीतलावत आदि। ब्रह्मपुराण (२९।६१) का कथन है, 'केवल एक दिन की सूर्य-पूजा से उत्पन्न फल विपुल दक्षिणा वाले सैकड़ों वैदिक यज्ञों अथवा ब्राह्मणों द्वारा भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।' पद्मपुराण (३।४-२७) ने जयन्तीवृत की प्रशंसा में लिखा है कि इसके ब्रती के शरीर में सभी देवता एवं तीर्थ अवस्थित हो जाते हैं। गरुड़पुराण (हेमानि, ब्रत, २, पृ० ८६९) में आया है कि कांचनपुरी-व्रत गंगा, कुरुक्षेत्र, काशी एवं पुष्कर से भी अधिक पवित्र करने वाला है। मविष्य० (उत्तर, ७।१) का कथन है कि व्यक्ति व्रतों, उपवासों एवं नियमों की नौका द्वारा नरकों के समुद्र को बड़ी सरलता से पार कर जाता है। महामारत एवं पद्मपुराण (५३।४-६) में ऐसा आया है कि मनु द्वारा व्यवस्थित कृत्य तथा वैदिक कृत्य कल्यियुग में नहीं किये जा सकते, अतः युधिष्टिर से बहुत सरल, अल्पव्ययसाघ्य, अल्पकष्टकर किन्तु अत्यधिक फल देने वाले ऐसे मार्ग की घोषणा की गयी, जो पुराणों का सार था, यथा दोनों पक्षों की एकादशी को नहीं खाना चाहिए, जो ऐसा करता है, वह नरक नहीं जाता। मविष्यपुराण में वर्णित उमयद्वादशीवत के विषय में कहा गया है कि प्रमास, गया, पुष्कर, वार।णसी, प्रयाग या पूर्व एवं पश्चिम तथा उत्तर के सभी तीर्थ कार्तिक वृत से श्रेष्ठ नहीं हैं। अनुशासनपर्व (१०६।६५-६७) में घोषित हुआ है कि उपवास से बढ़कर या उसके वरावर कोई तप नहीं है और दरिद्र व्यक्ति यज्ञों का फल उपवास से प्राप्त कर सकते हैं। वराह पुराण (३९।१७-१८) में एक प्रश्न है---'एक दरिद्र किस प्रकार परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है ?' उत्तर मिला है कि वह व्रतों एवं उपवासों से ऐसा कर सकता है। लिंगपुराण (पूर्वार्ध, ८३।४) ने व्यवस्था दी है कि जो एक वर्ष तक नक्त व्रत (केवल एक बार संघ्या को खाना) करता है और प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी तिथियों में शिव-पूजा करता है वह समी यज्ञों का फल पाता है और परम लक्ष्य की प्राप्ति करता है। भविष्य० में आया है कि जो ब्राह्मण पवित्र अग्नियाँ (श्रौत एवं स्मार्त) नहीं रखते, वे व्रतों, उपवासों, आचरण-सम्बन्धी नियन्त्रणों, भाँति-माँति के दानों और विशेषतः विशिष्ट तिथियों पर उपवास से देवों को प्रसन्न रख सकते हैं।

मत्स्य०, ब्रह्म० एवं अन्य पुराणों का प्रमुख मन्तव्य है कम प्रयास से अधिक फल की प्राप्ति। ब्रह्मपुराण में आया है कि किल्युग में केवल किशव का नाम लेने से व्यक्ति को वही फल मिलता है जो कृतयुग में गम्मीर मनोयोग, त्रेता में यज्ञों तथा द्वापर में (मूर्ति) पूजा से प्राप्त होता था। मत्स्य० में आया है—महिष ऐसे यज्ञों की प्रशंसा नहीं करते जिनमें पशुओं का हनन होता है; जिनका धन तप है वे यथाशक्ति (खेतों आदि से एकत्र) अन्नों, मूलों, फलों, शाकों एवं जलपात्रों के दान से स्वर्ग में अटल स्थिति प्राप्त करते हैं, तप कई कारणों से यज्ञों से श्रेष्ट है। पद्मपुराण ने तो अत्युक्ति की सीमा तोड़ दी है—किवल हिर ही उस व्यक्ति की श्रेष्टता बता सकते हैं जो कार्तिक में मिनत के साथ हिर (एकादशी) के दिन एक दीप का दान करता है, या विष्णु-न्नत सर्वोत्तम है और एक सौ पुनीत वैदिक यज्ञ इसके बराबर नहीं हैं। ऐसी ही बात स्कन्दपुराण (हेमाद्रि द्वारा 'व्रत' में उद्धृत, खण्ड १, पृ० ३१८, ३२१) में मी है—देव लोग नियन्त्रण रखने वाले नियमों (अर्थात् व्रतों) से अपने स्थान प्राप्त कर सके, वे व्रतों के गुणों के कारण ही तारागण की मौति देवीप्यमान हैं।

वैदिक यज्ञों एवं व्रतों में विशिष्ट अन्तर भी थे। अधिकांश यज्ञों का फल था स्वर्ग-प्राप्ति, किन्तु पुराणों के अनुसार अधिकांश वर्तों से इसी लोक में प्रकट फल प्राप्त होते हैं। और भी, व्रतों का सम्पादन सभी कर सकते हैं, यहाँ तक कि शूद्र, कुमारियाँ, विवाहित स्त्रियाँ, विधवाएँ तथा वेश्याएँ भी।

.कुछ वत ब्रह्मचारियों के लिए नियत थे (वेद-व्रत) और कुछ स्नातकों के लिए। इस विषय में हमने खण्ड दो में पढ़ लिया है। ईसा की प्रथम शताब्दियों पूर्व एवं पश्चात् वतों की व्यवस्था प्रचलित थी. जैसा कि आप॰ घ॰ सू॰, कालिंदास के नाटकों, मृच्छकटिक एवं रत्नावली से सिद्ध होता है। देखिए आप॰ घ॰ सू॰ २।८। १८-२०।३-९। शाकुन्तल (अंक २) में कथन है कि दुष्यन्त की माता ने व्रत किया था। विक्रमोर्वशीय में रोहिणी-चान्द्रायण-त्रत की ओर संकेत है। रघुवंश (१३।६७) में आंसियार-त्रत का उल्लेख है। मृच्छकटिक (अंक १) में अभिरूपपति नामक वत का, जो मर्तृ-प्राप्ति वत के सदृश है, वर्णन है। रत्नावली में (अंक १ के अन्त में) मदन-महोत्सव उल्लिखित है। लगता है, ईसा की प्रथम तीन शताब्दियों में व्रतों की संख्या अधिक नहीं थी। कालान्तर में इनकी संख्या लगमग एक सहस्र हो गयी। तिथियों एवं ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों के आरम्भिक निबन्धों में एक है राजा मोज (११वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) द्वारा लिखित राजमार्तण्ड, जिसमें लगमग २४ वर्तों का उल्लेख है। लक्सीघर (१२वीं शताब्दीं का पूर्वार्ध) के कृत्यकल्पतरु में लगभग १७५ वर्तों का उल्लेख है। शूलपाणि (१३७५-१४३० ई०) के व्रतकालविवेक में केवल ११ व्रतों का वर्णन है। हेमाद्रि ने ७०० व्रतों के नाम बतलाये हैं। इससे प्रकट होता है कि तेरहवीं शताब्दी के अन्त में, जब मारत के अधिकांश मागों पर बाह्य आकामकों ने अधिकार कर लिया था, मन्दिर तोड़े-फोड़े जा रहे थे, सहस्रों जन विधर्म में सम्मिलित किये जा रहे थे, उन दिनों विद्वान एवं अभिज्ञ लोग विशाल बौद्धिक कार्य (हेमाद्रि का महाग्रन्थ २२०० पृष्टों में छपा है) में संलग्न थे, या व्रतों, यात्राओं एवं श्राद्धों पर अनुल सम्पत्ति व्यय कर रहे थे और इस बात से अनिमज्ञ थे कि उनके चतुर्दिक् राजनीतिक एवं वार्मिक मय खड़े हो रहे हैं।

महामहोपाघ्याय गोपीनाथ किवराज द्वारा सम्पादित व्रतकोश (सरस्वती मवन सीरीज) में १६२२ व्रत हैं। यह संख्या भ्रामक है, क्योंकि कहीं-कहीं एक ही नाम के विभिन्न पर्याय आ गये हैं और कई व्रत एक ही व्रत के अन्तर्गत आ गये हैं तथा उनमें कुछ शान्तियों, उत्सवों एवं स्नानों के नाम परिगणित हो गये हैं। यदि ठीक से नामकरण किया जाय तो व्रतकोश में लगभग १००० व्रतों की ही गणना हो सकेगी।

व्यवित प्राप्त करने पर उसे समाप्त अवश्य कर लेना चाहिए, दयों कि प्रमादवश छोड़ देने पर बड़े कष्टदायक प्रतिफल मुगतने पड़ते हैं। छागलेय ने घोषित किया है—यदि व्यक्ति प्रथम अंगीकार कर लेने पर, आगे मोहवशात् वर का त्याग कर देता है तो वह जीता हुआ चाण्डाल बन जाता है और भरने पर कुता। ऐसी स्थिति में, जब व्यक्ति लालचवश, असावधानी के कारण या प्रमादवश वर्त को तोड़ देता है तो उसे पुनः करने के लिए तीन दिनों का उपवास करना पड़ता है तथा मुण्डन कराना होता है। निर्णयसिन्धु के मत से उसे वर्त का शेषांश केवल पूरा करना होता है या शूलपाणि के अनुसार फिर से आरम्म करना पड़ता है। वराहपुराण में आया है कि जो व्यक्ति एकादशी के दिन व्रतारम्भ करता है और मूर्खतावश छोड़ देता है तो वह बुरी दशा को प्राप्त होता है।

बत के मध्य में मृत्यु हो जाने से वत-फल नष्ट नहीं होता। अंगिरा ने व्यवस्था दी है कि यदि कोई व्यक्ति किसी लाम के लिए धार्मिक कर्म करता है और पूर्ण होने के पूर्व मर जाता है, तो मृत्यु के पश्चात् भी उसे पूर्ण फल प्राप्त होता है। ऐसा ही मनु ने भी कहा है।

अशौच में कोई वर्त नहीं करना चाहिए। किन्तु विष्णुधर्मसूत्र (२२।४९) में ऐसी व्यवस्था है कि अशौच से राजा को राजकीय कर्तव्यों के पालन में कोई बांधा नहीं पड़ती और न वर्ती को ही अपने वर्त के सम्पादन में। लघु-विष्णु में ऐसा आया है कि वर्त, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप में आरम्भ कर दिये जाने पर अशौच नहीं लगता, किन्तु आरम्भ होने के पूर्व अशौच का प्रभाव पड़ता है, अर्थात् तब ये कर्म आरम्भ नहीं किये जा सकते। यही बात याज्ञ० (३।२८-२९) में भी है। शास्त्रों में ऐसा आया है कि सभी जीवों, रोग, प्रभाद (कार्य को टालना

या विस्मरण करना), गुरुशासन के मय से व्रत नहीं टूटता, जब तक (इस प्रकार का) मय केवल एक बार उत्पन्न हो। मत्स्य , अग्निपुराण एवं सत्यव्रत में ऐसी व्यवस्था है कि जब स्त्री लम्बी अवधि का व्रत आरम्म कर दे तो मासिक धर्म हो जाने (रजस्वला हो जाने), गर्मवती हो जाने, जनन हो जाने से व्रत मंग नहीं होता, बल्क व्रत इस प्रकार के अशौच में अन्य व्यक्ति द्वारा चलाया जा सकता है, किन्तु उपवास आदि शारीरिक कृत्य चलते रहने चाहिए। कुछ ऐसे विषय भी हैं जिनसे व्रत मंग नहीं होता, यथा जल पीता, जड़-मूल, फल, दूध, यज्ञिय पदार्थ का सेवन, किसी ब्राह्मण की इच्छा या आदेश, गुरु की आज्ञा एवं दवा-प्रयोग। हेमाद्रि के मत से दूध पीना आदि वर्त पर प्रमान नहीं डालता यदि वर्ती स्त्री हो, बच्चा हो या अधिक पीड़ा में हो। वर्ती को निम्न वार्ते छोड़ देनी चाहिए—शरीर या सिर पर तेल लगाना, ताम्बूल-सेवन, चन्दन-लेप, या ऐसे कर्म जिनसे शारीरिक शक्ति या उत्तेजना बढ़े।

उपवास किन दशाओं में खण्डित होता है, इसका आगे विचार किया जायगा।

होम के विषय में कुछ शब्द अपेक्षित हैं। स्त्रियाँ मन्त्रों के साथ होम नहीं कर सकतीं (मनु ९।१८)। उनके लिए पुरोहित ही होम करता है। यदि किसी वस्तु का निर्देश नहों तो आहुित घृत की होती है (गोमिल का कर्म-प्रदीप, १।११३)। आहुितयों की संख्या १०८, २८ या ८ या उतनी होनी चाहिए जिसका निर्देश हो। समयप्रदीप में उस अग्नि के विषय में लम्बा विवेचन पाया जाता है, जिसमें होम किया जाता है। याज्ञ० (१।९७) के मत से आहिताग्नि (जिसने अपने घर में पवित्र अग्नि प्रतिष्ठापित कर रखीहो) को विवाहित होने पर अपनी प्रतिष्ठापित अग्नि का प्रयोग करना चाहिए। कुछ लोगों के मत से याज्ञ० का नियम केवल गृह्य कृत्यों के लिए ही है, और आहिताग्नि को अपने वतों में सामान्य अग्नि का प्रयोग करना चाहिए। जिसके पास स्मार्त अग्नि नहों उसे भी सामान्य अग्नि में ही वत-होंम करना चाहिए या पुरोहित द्वारा होम कराना चाहिए।

#### अध्याय ३

# व्रताधिकारी, व्रत द्वारा इच्छित वस्तुलाभ, व्रतों का श्रेणी-विभाजन, व्रत-सम्बन्धी साहित्य, व्रतों के लिए काल

वतों के अधिकारी कौन लोग हैं ? सभी जातियों के लोग, यहाँ तक कि शूद्र भी वताधिकारी हैं। देवल ने व्यवस्था दी है—'इसमें सन्देह नहीं कि व्रतों, उपवासों, नियमों तथा शरीरोत्ताप (शरीर को कंष्ट देने) से पापों से छुटकारा मिलता है।' स्त्रयाँ भी वतों की अधिकारी हैं। पुराणों एवं निवन्धों ने केवल स्त्रियों के लिए कुछ वतों की व्यवस्था की है। मन् (५।१५५), विष्णुधर्मसूत्र एवं कतिपय पुराणों ने व्यवस्था दी है कि कोई स्त्री पृथक् रूप से यज्ञ, कोई पृथक् व्रत या उपवास नहीं कर सकती, वह पति-शुश्रूषा से ही स्वर्ग में सम्मान प्राप्त करती है। विष्णुवर्मसूत्र (२५।१६) में आया है कि वह स्त्री, जो पति के जीवित रहते किसी उपवासयुक्त व्रत को करती है, अपने पति की आयु हरती है और स्वयं नरक में जाती है। परलोक-कल्याण के लिए जो कुछ नारी विना पिता, पति या पुत्र की सहमति के करती है, वह विफल होता है (आदित्यपूराण, हेमाद्रि, वत, १, प्० ३२ में उद्धृत)। मध्यकाल के निबन्धों ने इन बातों की व्याख्या इस प्रकार की है कि कुमारी, विवाहित नारी एवं विधवा किसी व्रत के सम्पादन के पूर्व कम से कम अपने पिता, पित एवं पुत्र से सम्मति ले ले। इससे स्पष्ट है कि निर्दिष्ट व्यक्तियों से सहमति लेकर नारी स्वयं कोई स्वतन्त्र नत कर सकती है। निबन्धों को इस विषय में शंख-लिखित के सूत्र से सहायता मिल जाती है (देखिए स्मृतिचन्द्रिका, २, पृ० २९१)। पति की आज्ञा से नारी जप, दान, तप आदि कर सकती है (लिंगपुराण, पूर्वार्घ, ८४।१६)। क्या नारी अन्य व्यक्ति से होम कराये ? इस विषय में विभिन्न मत हैं (देखिए मनु २।६६, ९।१८ एवं याज्ञ० १।१३)। पराशर का अनुगमन करते हुए व्यवहारमयूख ने प्रतिपादित किया है कि शूद्र किसी ब्राह्मण द्वारा होम करा सकता है, शूद्रों एवं नारियों के लिए इस विषय में एक ही नियम है अतः किसी व्रत में नारी ब्राह्मण के द्वारा होम करा सकती है। और देखिए रुद्रधर (शुद्धिविवेक के लेखक) एवं वाचस्पति । निर्णयसिन्ध् (३,पूर्वार्घ, प० २४९) ने नारी द्वारा किये जाने वाले व्रत में होम के विषय में व्यवहारमयूख

१. व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तया। वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेम्यो न संशयः।। देवल (हेमाद्रि द्वारा व्रत, खण्ड १, पृ० ३२५ में उद्घृत)।

२. नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। पति शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।। मनु (५।१५५), विष्णुधर्मसूत्र (२५।१५)। देखिए हेमाद्रि, व्रत्, भाग १, पृ० ३२६ एवं व्र० का० वि०, पृ० ११।

३. पत्या जीवित या योषिदुपवासं वर्त चरेत्। आयुः सा हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छित।। विष्णु० घ० सू० २५।१६। यही अंगिरा (५।४०) में भी है।

की बात मानी है। मत्स्य० में आया है कि गर्भवती स्त्री अथवा हाल ही में जिसे सन्तानोत्पत्ति हुई हो ऐसी स्त्री उपवास न करके केवल नक्तव्रत (केवल एक बार सन्ध्या काल के उपरान्त मोजन) करे तथा आशौच से युक्त कुमारी या कोई नारी (रजस्वला या किसी अन्य दशा में ) किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वृत करा ले, किन्तु पवित्र हो या अपवित्र, उसे उपवास तो करना ही चाहिए (तिथितत्त्व, पृ० १२१-१२२)।

व्याधि या दुर्घटना आदि में पड़ा हुआ व्यक्ति किसी प्रतिनिधि द्वारा व्रत करा सकता है। इस विषय में कुछ निश्चित नियम बने हैं। सत्याषाढश्रीतसूत्र (३।१) में आया है—'स्वामी (यजमान), पत्नी, पुत्र, उचित देश एवं काल, अग्नि, इष्टदेव, कृत्य एवं शास्त्र के अंश के विषय में प्रतिनिधि की व्यवस्था नहीं है। समी धार्मिक कृत्य तीन श्रेणियों में विमाजित हैं, यथा नित्य (अपरिहार्य), नैमित्तिक (जब कोई निमित्त या अवसर हो या घटना घटे) एवं काम्य (किसी अभिप्राय या वस्तु की प्राप्ति के लिए किया गया)। इस विषय में इस महाग्रन्थ के चौथे खण्ड में लिखा जा चुका है। त्रिकाण्डमण्डन (२।२-३ एवं ८) ने इन तीनों कृत्यों के विषय में निम्नोक्त नियम लिखे हैं, "काम्य कृत्यों में प्रतिनिधि नहीं होता, नित्य एवं नैमित्तिक में प्रतिनिधि की व्यवस्था होती है, कुछ लोग प्रारम्म हो गये काम्य कृत्यों में प्रतिनिधि की बातें चलाते हैं। मन्त्र, देव, अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय या दक्षिणाग्नि), ऋिया (यथा प्रयाज), ईश्वर (स्वामी या यजमान) के लिए प्रतिनिधि नहीं होता; कुछ लोगों के मत से देश एवं काल के विषय में प्रतिनिधि नहीं होता। अग्निहोत्री (यदि उसकी पत्नी मृत हो गयी हो) सोने या कुज़ की प्रतिमा बना सकता है, किन्तु पत्नी अपने पति के स्थान पर किसी प्रतिनिधि या प्रतिमा को रखकर कोई कृत्य नहीं कर सकती।" यदि वृती आरम्म कर देने पर अयोग्य हो जाय तो प्रतिनिधि द्वारा वृत पूर्ण करा सकता है। ऐसे प्रतिनिधि ये हैं--पुत्र, पत्नी, माई, पति, बहिन, शिष्य, पुरोहित (दक्षिणा के लिए) तथा कोई मित्र। पैठीनिस का कथन है कि पत्नीद्वारा संकल्पित वत पति तथा पति द्वारा संकल्पित वत पत्नी कर सकती है, यदि दोनों अयोग्य हैं तो कोई अन्य व्यक्ति कर सकता है, इस प्रकार व्रत मंग नहीं होता (निर्णयसिन्ध्, पृ० २९, कालनिर्णय, पृ० २६२)। कात्यायन (कालनिर्णय, पृ० २६२-२६३) में आया है-- जो अपने पिता या माता, माई, पित के लिए, विशेषतः अपने गुरु के लिए उपवास करता है वह सौ गुनी श्रेष्ठता प्राप्त करता है, यदि कोई अपने पितामह के लिए एकादशी का उपवास करता है, वह पूरा फल पाता है। प्रतिनिधि-सम्बन्धी ये नियम सभी वर्णों के लिए हैं।

यह एक अद्मुत बात है कि म्लेच्छों को मी (यदि वे श्रद्धालु हों और वर्तों में विश्वास रखते हों) वर करने की व्यवस्था दी गयी है, जैसा कि हेमाद्रि में उद्धृत देवीपुराण के शब्दों से प्रकट होता है। शान्तिपर्व (६५।१३-२५) में इन्द्र ने राजा मान्धाता से कहा है कि यवनों, किरातों, गान्धारों, चीनों, शबरों, वर्वरों, शकों, आन्ध्रों आदि को अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, वे वेद में व्यवस्थित कृत्यों को कर सकते हैं, वे मृत पितरों का श्राद्ध कर सकते हैं, जन-कल्याण के लिए कूप खुदवा सकते हैं और ब्राह्मणों को दान दे सकते हैं। मविष्य० (ब्राह्मपर्व, १६।-६१-६२) का कथन है कि हैहयों, तालजंघों, तुर्कों, यवनों एवं शकों ने ब्राह्मणों के गौरव की प्राप्ति की इच्छा से प्रतिपदा को उपवास किया।

एक अन्य विचारणीय बात यह है कि महाभारत के अनुसार ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों को लगातार तीन दिनों तक उपवास नहीं करना चाहिए, किन्तु वैश्य एवं शूद्र लगातार दो दिनों तक उपवास कर सकते हैं। यही बात देवल ने भी कही है।

४. क्वचिन्म्लेच्छानामप्यधिकारो हेमाद्रौ देवीपुराणे। स्नातैः प्रमुदितैर्ह् ष्टैर्काह्मणेः क्षत्रियैर्नृपैः। वैक्यैः हार्द्वैभक्तियुक्तैम्लेंच्छेरन्यैक्च मानवैः। स्त्रीभिक्च कुरुवार्द्दल तद्विधानमिवं श्रुणु ॥ त्रतार्कः। मन्य एवं वर्तमान काल के अधिकांश प्रचलित वर्त काम्य हैं, अर्थात् ऐसे वर्त जिनसे इस लोक में या कमी-कमी परलोक या दोनों में किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हों। अधिकांश में वर्त सांसारिक हैं, किन्तु उन पर धार्मिक रंग चढ़ा हुआ है, यद्यपि कुछ अनुशासन लगे हुए हैं, यथा उपवास, पूजा, ब्रह्मचर्य, सत्य-माषण, किन्तु उनमें मौतिक दृष्टिकोण पाया जाता है; ये सामान्य जन की इच्छाओं से अभिप्रेरित हैं। काम्य वातें बहुत-सी हैं, उनके विषय में थोड़ा प्रकाश डाला जाता है। अग्निपुराण (१७५१४४ एवं ५७) में उनकी चर्चा इस प्रकार है—धर्म (पुण्प), सन्तित, धन, सौन्दर्य, सौमाग्य, सदाचरण, कीर्ति, विद्या, आयु, श्चिता, आनन्दोपभोण, स्वर्ग, मोक्ष आदि। कल्पतर (वत, पृ० १-२) के अनुसार वर्त से ब्रह्मलोक, शिवलोक, वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है, आनन्द एवं विजय का उपभोण होता है; कृत, त्रेता, द्वापर एवं कल्पयुगों में सुजय, राम, धनञ्जय एवं विक्रम नामक राजाओं को लोक-शासन वर्तों से ही प्राप्त हुआ, शंकर ने हिर से कहा है कि वर्त मनुष्य के लिए सर्वोत्तम कृत्य है; प्रत्येक युग में बहुत-से नियम व्यवस्थित हैं, किन्तु वे वर्तों के सोलहवें माग को भी नहीं पा सकते; विक्रम की गुणवती पुत्री वसुन्धरा, दशाण देश में रहती हुई, वर्तों के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकी; देवों, ऋषियों, सिद्धों आदि ने उपवास द्वारा ही परमोच्च पूर्णता प्राप्त की है।

#### वतों का श्रेणी-विभाजन

इस अध्याय में ऐसे ही वर्तों का उल्लेख है जो अधिकतर स्वारोपित या ऐच्छिक हैं, अतः उन्हें तीन श्रेणियों में विमाजित किया जा सकता है। पद्मपुराण (४।८४।४२-४४) में आया है—'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अकल्कता (कुटिलता या छाद्मिकता से दूर रहना), इन्हें मानस वर्त कहा जाता है, जिससे हिर प्रसन्न रहते हैं; दिन में केवल एक बार मोजन करना, नक्त (केवल एक बार सूर्यास्त के उपरान्त मोजन करना), उपवास (दिन मर का), अयाचित (ऐसा मोजन जो बिना माँगे मिल जाय), इन्हें मानवों के लिए कायिक वृत कहा जाता है; वैदाध्ययन, विष्णु के नामों को बार-बार स्मरण करना (विष्णु-कीर्तन), सत्यमाषण, अपैशुन्य (पीठ पीछे निन्दा न करना), इन्हें वाचिक वृत कहा जाता है। "

दूसरा विमाजन काल पर आधारित है, यथा एक दिन का, पाक्षिक, मासिक, एक ऋतु का, उत्तरायण या दिक्षणायन, वार्षिक या कई वर्षों वाला वरत। वर्त एक वर्ष का या एक वर्ष से अधिक का या जीवन मर का हो सकता है। किसी मास में किये जाने वाले वर्तों के बारे में कहते समय मलमास (अधिक मास) के प्रश्न पर मी विचार करना चाहिए। इसके विषय में हम काल आदि के विमाग में विवेचन करेंगे। धर्मशास्त्रों में तिथियों के विषय में लम्बा विवेचन पाया जाता है और इसके विषय में हम यहीं विवेचन करेंगे। काल एवं मुहूर्तों की व्याख्या आगे के विमाग में की जायगी। वर्तों में अधिकतर तिथि-वर्त हैं। हेमाद्रि में वारवर्तों, नक्षत्रवर्तों, योगवर्तों, संक्रान्तिवर्तों, मासवर्तों, ऋतुवर्तों, संवत्सरवर्तों एवं प्रकीर्णक वर्तों का अनुक्रमिक उल्लेख पाया जाता है। और देखिए कृत्य-कल्पतर। अधिकतर वर्त-सम्बन्धी ग्रन्थ आरम्भ में कुछ सामान्य बात कहने के उपरान्त तिथिवर्तों से ही वर्त-विवेचन का आरम्भ करते हैं। समयप्रदीप वाले वर्त-विवेचन का कम मिन्न है। वह गणेश-वर्तों के विवेचन के

५. ऑहसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता। एतानि मानसान्याहुर्वतानि हरितुष्टये।। एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासम्याचितम्। इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर।। वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्। अपैशुन्यमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुच्यते।। पद्म० (४।८४।४२-४४)। वराह० (३७।४-६)।

उपरान्त सूर्यंत्रतों, शिवत्रतों, विष्णुत्रतों आदि की व्याख्या उपस्थित करता है। कुछ व्रत न केवल किन्हीं निश्चित तिथियों में ही किये जाते हैं, प्रत्युत उनके लिए किसी निश्चित मास, सप्ताह या नक्षत्र या इनमें से सभी का होना आवश्यक माना जाता है। एक अन्य व्रत-विमाजन कर्ताओं की व्रत-योग्यता पर निर्मर है। व्रतों का अधिकांश सभी पुरुषों एवं नारियों के लिए होता है। कुछ तो, यथा हरितालिका एवं वटसावित्री केवल नारियों के लिए हैं, कुछ केवल पुरुषों के लिए होते हैं और कुछ तो ऐसे हैं जो केवल राजाओं या क्षत्रियों या वैश्यों के लिए हैं।

वतों का साहित्य विशाल है। सम्मवतः तीर्थयात्रा एवं श्राद्ध के विषयों के अतिरिक्त पुराणों ने किसी अन्य विषय पर उतना नहीं लिखा है जितना वतों पर। कुछ पुराणों में तो वतों पर सहस्रों इलोक रचे गये हैं, यथा मविष्य के ब्राह्मपर्व में ७५०० इलोक, उत्तरखण्ड में ५००० इलोकों से अधिक हैं, मत्स्य० में १२३० इलोक, वराह० में ७०० एवं विष्णुधर्मोत्तर में १६००। गणना की जाने पर पता चला है कि पुराणों में व्रतों पर लगमग २४००० इलोक हैं। व्रतों एवं उत्सवों के बीच विमाजन-रेखा खींचना दुस्तर है। बहुत-से उत्सवों में धार्मिक तत्त्वों का समावेश है और उसी प्रकार बहुत-से व्रतों में उत्सवों की गन्ध मिल जाती है। इस ग्रन्थ में कुछ ऐसे व्रतों का उत्लेख मिलेगा जिन्हें लोग सर्वथा उत्सव कह सकेंगे।

वतों की विषय-सामग्री काल एवं तिथि के विवेचन से परिपूर्ण है। वतों पर बहुत-से निबन्ध एवं टीकाएँ पायी जातीं हैं। इस विमाग में हम केवल वरों या उनके साथ तिथियों से सम्बन्धित ग्रन्थों की तालिका देंगे, काल एवं सामान्य मुहूर्तों वाले ग्रन्थों की चर्चा नहीं होगी। किन्तु ऐसा करने पर भी उलट-फेर का हो जाना तथा एक-दूसरे का समायेश हो जाना सम्मव है। जीमूतवाहन के कालविवेक के एक श्लोक में सात पूर्ववर्ती लेखकों के नाम आये हैं जिन्होंने धार्मिक कृत्यों के सम्बन्ध में काल का विवेचन किया है, यथा—जितेन्द्रिय, शंखधर, अन्धूक, सम्भ्रम, हरिवंश एवं योग्लोक। ये लेखक ११वीं शताब्दी के अर्ध माग के पूर्व हुए होंगे। किन्तु इन लेखकों में सभी के ग्रन्थ अभी उपलब्ध नहीं हो सके हैं। धारा के राजा मोज के दो ग्रन्थों में वतों के साथ काल का भी वर्णन है। इनमें से एक ग्रन्थ का नाम है राजमार्तण्ड, जो अभी अप्रकाशित है, किन्तु इसके बहुत-से श्लोक यत्र-तत्र उद्धृत हैं। राजमार्तण्ड वत-सम्बन्धी चर्चा का सबसे प्राचीन निबन्ध है। दूसरे ग्रन्थ का नाम है मूपालसमुच्चय या मूपालकृत्यसमुच्चय या वतों, दानों आदि पर कृत्यसमुच्चय। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है, किन्तु इसके उद्धरण निबन्धों में पाये जाते हैं।

वैदिक साहित्य, सुत्रों, रामायण, महामारत, पुराणों एवं राजमार्तण्ड के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों में विणत वर्तों का उल्लेख इस महाग्रन्थ में हुआ है—लक्ष्मीधर का कृत्यक्ल्पत्ए; जीमूतवाहन का कालविवेक; हेमादि की चतुर्वर्गचिन्तामणि (व्रत-सम्बन्धी); श्रीदत्त का समयप्रदीप (पाण्डुलिपि); चण्डेश्वर का कृत्यरत्नाकर; आदित्य-सूरि का कालादर्श (पाण्डुलिपि); माधव का कालनिर्णय या कालमाधव एवं कालनिर्णयकारिका; शूलपाणि के तिथिविवेक, व्रतकालविवेक एवं दुर्गोत्सविवेक; अल्लाडनाथ का निर्णयामृत; गोविन्दानन्द की वर्षित्रयाकोमुदी; गदाधर का कालसार; रघुनन्दन के तिथितत्त्व, एकादशीतत्त्व, जन्माष्टमीतत्त्व, दुर्गाचनपद्धित, कृत्यतत्त्व एवं व्रत-तत्त्व; मित्रमिश्र का व्रतप्रकाश (वीरमित्रोदय का एक माग) एवं समयप्रकाश (वीरमित्रोदय का एक माग); नीलकण्ठ का समयममूख या कालमयूख; शंकरमट्ट का व्रतार्क (पाण्डुलिपि); दिवाकर का तिथ्यक्तं; हारीत वेंकटनाथ का दर्शनिर्णय; शंकरमट्ट घारे की व्रतोद्यापनकौमुदी; विश्वनाथ का व्रतराज; विष्णुभट्ट की पुरुषार्थचिन्तामणि; अहल्याकामघेनु (पाण्डुलिपि); काशीनाथ का धर्मसिन्धु। इतमें व्रतों के लिए अत्यधिक महत्त्व के ग्रन्थ ये हैं—कृत्यक्लपतर (जिससे हेमादि एवं कृत्यरत्नाकर ने उद्घरण लिये हैं), हेमादि (व्रत), माधव का काल-निर्णय, कृत्यरत्नाकर, वर्षित्रयाकौमुदी; रघुनन्दन के ग्रन्थ एवं निर्णयसिन्धु। व्रतार्क एवं व्रतराज जैसे ग्रन्थ विशाल ग्रन्थ

हैं, किन्तु उनमें हेमादि के तथा अन्य ग्रन्थों के बहुत-से अंश ज्यों-के-त्यों रखे हुए हैं। इन कितपय ग्रन्थों में वर्तों का विवेचन असन्तुलित है, यथा वर्षिकयाकौ मुदी ने प्रतिपदा, द्वितीया एवं तृतीया के वर्तों का वर्णन केवल दो पृष्ठों (२९-३०) में किया है, किन्तु एकादशी पर २२ पृष्ठों का विवेचन है (पृ० ४२-६४)।

यह बात घ्यान में रखने योग्य है कि इस विमाग का सम्बन्ध धर्मशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में उल्लिखित एवं विवेचित वर्तों से है। स्त्रियों या जन जातियों या अशिक्षित व्यक्तियों द्वारा सम्पादित सभी वर्तों अथवा बंगाली, हिन्दी तथा मराठी माषाओं में लिखित ग्रन्थों में उल्लिखित वर्तों के विवरण का प्रयास यहाँ नहीं किया गया है। ऐसा करने से इस ग्रन्थ का आकार बहुत बढ़ जाता।

#### वतों के आरम्भ करनें के काल

निद्धित तिथियों पर होने वाले वतों के अतिरिक्त इसके विषय में विस्तारपूर्ण व्यवस्थाएँ की गयी हैं कि सामान्य एवं विशिष्ट रूप से वत एवं अन्य धार्मिक कृत्य किन्हीं निर्दिष्ट कालों में ही आरम्भ किये जायँ। उदाहरणार्थ, गार्ग्य का कथन है—'जब वृहस्पति एवं शुक ग्रह अस्त हो गये हों (आकाश में सूर्य के निकट होने से जब न दिखाई पड़ें) या जब वे वाल या वृद्ध कहे जाने की दशा में हों तथा मलमास में, तब न वत का और न उसके उद्यापन (समाप्त करने के कृत्य) का आरम्भ होना चाहिए' (हेमाद्रि, वत, पृ० २४५, नि० सि०, पृ० २३, मदनरत्ने गार्ग्यः)। वृहस्पति (गुष्ठ) एवं शुक्र की बालावस्था उनके उदय हो जाने के उपरान्त की एक निश्चित अविध है तथा वृद्धत्व या वार्षक उनके अस्त होने के पूर्व का एक निश्चित काल है। इन अवधि-कालों के विषय में एकमित नहीं है और ये काल विभिन्न देशों में विभिन्न हैं, ये परिस्थिति की कठिनाई के अनुसार भी माने जाते हैं, किन्तु वराहिमिहिर के मत से जो अधिक मान्य काल हो उसे मान लेना चाहिए। राजमार्तण्ड में इस विषय में कई क्लोफ हैं, जिनमें एक है—जब शुक्र पश्चिम में उदित होता है तो वह दस दिनों तक बाल होता है; पूर्व में अस्त होने पर एक पक्ष तक यह वृद्ध है, किन्तु पश्चिम में अस्त होता है तो तीन दिनों तक बाल होता है; पूर्व में अस्त होने पर एक पक्ष तक यह वृद्ध है, किन्तु पश्चिम में अस्त होता है तो यह पाँच दिनों तक वृद्ध है (और देखिए गाग्यं, हेमाद्रि, वत, १, पृ० २४६)। देवीपुराण में ऐसी व्यवस्था है कि जब गुष्ट या शुक्र सिंह राशि में हों तो कोई धार्मिक कर्म नहीं आरम्भ करना चाहिए। लल्ल (समयमयूख में उद्धृत) का कथन है कि गूर्वादित्य में (जब सूर्य वृहस्पति के गृह में हों अर्थात् धनु और मीन राशि में हों

६. यदि काणे के समान अन्य विद्वान् लेखक भारत के सामान्य जनों द्वारा सम्पादित वर्तो एवं उत्सवों, लोक-जीवन, वन-जीवन, पर्वत-जीवन अथवा विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न जीवन-पहलुओं का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन करें और इन सभी अध्ययनों का लेखा-जोखा उपस्थित किया जाय तो वह भारतीय समाजविज्ञान एवं नृ-शास्त्र पर अभूतपूर्व आलेखन सिद्ध होगा। कितप्यं अध्ययन हो चुके हैं, यथा प्रो० बी० के० सरकार का 'फोक एलिमेण्ट इन हिन्दू कल्चर', श्रीमती स्टीवेंसन का 'राइट्स आव दि ट्वाइस-बानं', अण्डरहिल का 'हिन्दू रिलिजस ईयर', बी० ए० गुप्ते का 'हिन्दू हालीडेज एण्ड सेरीमनीज', आर० सी० मुकर्जी का 'ऐंश्येण्ट इण्डियन फास्ट एण्ड फीस्ट्स', श्री ऋग्वेदी का मराठी ग्रन्थ 'हिस्ट्री आय आर्यन फेस्टीवल्स' आदि। कित्तु इन ग्रन्थों में (अण्डरहिल के ग्रन्थ में कुछ धर्मशास्त्रीय उल्लेख हैं) धर्मशास्त्र-सम्बन्धी उल्लेखों का सर्वथा अभाव है। आशा है इस संक्षिप्त अनुवाद से प्रेरित होकर विद्वान् जन इस महत्त्वपूर्ण कार्य में लगेंगे।

या जब बृहस्पित सूर्य के गृह में हों अर्थात् सिंह राशि में) किये गये कर्म निन्द्य हैं। व्रतराज के अनुसार नर्मदा के उत्तर में धार्मिक कृत्य सिंह राशि के बृहस्पित में नहीं करने चाहिए। किन्तु अन्य स्थानों में केवल सिंहांश में (अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी के प्रथम चरण में) कर्तव्य हैं। रत्नमाला (३।१५) के मत से सोमवार, बृहस्पितवार एवं शुक्रवार धार्मिक कर्मों में शुम हैं, किन्तु मंगलवार, शनिवार एवं रिववार को वही कर्म सफल होते हैं जिनके लिए स्पष्ट रूप से व्यवस्था दी गयी हो। मुजबल (पृ० २०९) के मत से मंगलवार सभी प्रकार के शुम कर्मों के लिए अनुपयोगी है, किन्तु कृषि, अध्ययन (सामवेद के) एवं युद्धों के लिए ठीक है।

काल तथा इसके विमाजन, यथा अयनों (उत्तर एवं दक्षिण), ऋनुओं, मास, पक्ष, सप्ताह, दिनों आदि के विषय में दार्शनिक विवेचन अन्य विमाग में किया जायगा। यहाँ तिथियों के विषय में विवेचना होगी।

'तिथि' शब्द ऋग्वेद एवं अन्य वैदिक संहिताओं में नहीं आता। किन्तू ऋग्वेद में भी इसके विषय में भावना एवं अनुमृति अवश्य रही होगी। पश्चात्कालीन वैदिक ग्रन्थों में 'अमावास्या' के दो प्रकार कहे गये हैं, सिनीवाली (वह दिन जब अमावास्या चतुर्दशी से मिल जाती है) एवं कह (जब अमावास्या दूसरे पक्ष की प्रतिपदा तिथि से मिल जाती है)। इसी प्रकार पूर्णमासी तो प्रकार की है, अनुमति (चतुर्दशी से मिली हुई) एवं राका (दूसरे पक्ष की प्रतिपदा से जुड़ी हुई)। ऋग्वेद में सिवीवाली को दैव रूप प्राप्त है, वह दो देवों की बहिन कही गयी है, उसे हविभाग प्राप्त होता है, उससे सन्तान की प्रार्थना की गयी है। बृहदारण्यकोपनिषद् (६।४।२१) में गर्माघान के लिए सिनीवाली एवं अश्विनों की आराधना की गयी है। ऋग्वेद (२।३२।४-५, अथर्व० ७।४८।१-२) में राका का भी ऐसा ही उल्लेख है। अनुमति के लिए देखिए ऋग्वेद (१०।५९।६ एवं १०।१६७।३)। वाज सं में प्रार्थना है-- आज अनुमति हमारे यज्ञ का अनुमोदन करे। निरुक्त (११।२९) में अनुमति एवं राका के विषय में विवेचन हुआ है, निरुक्तिकारों (व्युत्पत्ति करने वालों) के अनुसार अनुमति एवं राका देवों की पितनयाँ हैं, किन्तु याजिकों के मत से वे पूर्णमासी के दो प्रकार हैं, (श्रुति में) ऐसा ज्ञात है कि प्रथम पूर्णमासी अनुमति है और दूसरी राका। इसी प्रकार निरुक्त में सिनीवाली एवं कुहू के विषय में विवेचन है (११।३१)। अथर्व० (६।११।३) में प्रजापति, अनुमति एवं सिनीवाली एक साथ उल्लिखित हैं। कुहू का उल्लेख अथवंदेद में हुआ है, जहाँ उसे देवता कहा गया है और यज्ञ में उसका आ ह्वान हुआ है, जिससे वह याजक को सम्पत्ति एवं योदा पुत्र दे। तैं । सं । (१।८।८१) एवं श । ब्रा० (९।५।१।३८) में अनुमति, राका, सिनीवाली एवं कुहू का उल्लेख है और वे चरु (मात के हिवष्य) की अधिकारी मानी गयी हैं। अति प्राचीन अतीत में इन शब्दों का निर्माण कैसे हुआ, यह कठिन समस्या है। 'अनुमति' की व्युत्पत्ति 'मन्' से की जा सकती है, किन्तु पूर्णमासी एवं चतुर्दशी के संयोग को यह संज्ञा क्यों दी गयी, इस पर प्रकाश नहीं पड़ता। सम्मवतः 'कुहू' कुह (कहाँ) से बना है (ऋ० १।२४।१०, १०।४०।२), जो उस दिन को कहा जाता है जब चन्द्रकला तिरोहित रहती है और जब आदिम लोग आश्चर्य में पड़ कर पूछते थे "चन्द्र कंहाँ जाता है ?" किन्तु 'राका' एवं 'सिनीवाली' की व्युत्पत्ति दुस्तर है। अमावास्या को अथर्ववेद (७।७९, ८४।१-४) ने देवता के रूप में सम्बोधित किया है, जिनमें प्रथम मन्त्र में यज्ञ में उपस्थित होने तथा सम्पति एवं वीर पुत्र के लिए प्रार्थना की गयी है और दूसरे मन्त्र से संकेत मिलता है कि यह शब्द 'अमा' (एक साय या घर) एवं 'वस्' (वास करना) से बना है। शत० ब्रा० में आया है—'राजा सोम, अर्थात् चन्द्र देवों का मोजन है, जब वह (चन्द्र) आज की रात्रि पूर्व या पश्चिम में नहीं दिखाई देता तब वह इस पृथिवी पर आता है और यहाँ जलों एवं ओषधियों में प्रवेश कर जाता है, वह देवों की सम्पत्ति एवं मोजन है, जब वह (जलों एवं ओषधियों के) साथ रहता है तो वह (रात्रि) 'अमावास्या' कहलाती है' (१।६।४।५)। और देखिए शत० ना० (६।२।२।१६)।

ऐतरेय ब्राह्मण (४०।५) में आया है कि अमावास्या में चन्द्र सूर्य में मिल जाता है। यही बात आप० घ० सू० में मी है। अतः 'अमावास्या' नाम इसलिए पड़ा कि उस दिन (ऐसी कल्पना की गयी) चन्द्र रात्रि में जलों एवं ओषिघयों के साथ पृथिवी पर रहता है या उस रात्रि में वह सूर्य के साथ रहता है। कमी-कमी नाम विरोधी अर्थ में भी होते हैं, मुर्ख को समझदार एवं वीर को कायर बना दिया जाता है। इसी प्रकार अमावास्या को 'दर्श' मी कहा गया है, क्योंकि उस दिन चन्द्र नहीं दिखाई पड़ता (किन्तु दूसरे दिन दिखाई पड़ जायगा)। वैदिक साहित्य में एक अन्य प्रसिद्ध तिथि है 'अंष्टका' (पूर्णमासी के उपरान्त आठवाँ दिन, विशेषतः माघ मास में), जिस दिन पितरों को पिण्ड दिया जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल में भी चन्द्र के चार स्वरूप निर्धारित थे, यशा-पूर्ण चन्द्र, अध चन्द्र, चन्द्र का पूर्ण अमाव तथा उसके आठ दिनों के उपरान्त। तै ० ब्रा० (१।५।१०।५) में आया है कि १५वें दिन चन्द्र समाप्त-सा हो जाता है और पुन: १५वें दिन पूर्ण हो जाता है। इससे प्रकट है कि तैत्तिरीय बाह्मण के पूर्व यह मली मांति विदित था कि चान्द्र मास में ३० चन्द्र दिन (तिथियाँ) होते हैं। शत० ब्रा० (१।६।३।३५) में आया है कि 'प्रजापित की संधियाँ (जोड़), जब वे प्राणियों की सर्जना में प्रवृत्त थीं, ढीली पड़ गयीं; संवत्सर वास्तव में प्रजापित है और इसके (संवत्सर के) जोड़ दिन एवं रात्रि के दो सन्धि-स्थल, पूर्णमासी, अमावास्या एवं ऋतुओं के आरम्म (प्रथम दिन) हैं। अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता एवं अन्य वैदिक ग्रन्थों में पूर्णमासी एवं अमावास्या शब्द अधिकतर आते हैं, किन्तु ऋग्वेद में ये अनुपस्थित हैं। "आरम्भिक पूर्णमासी अनुमित है और वाद वाली राका, इसी प्रकार आरम्मिक अमावस्या सिनीवाली है और बाद वाली कुहू।" ऐसी उक्ति ऐतरेय ब्रा० (३२।९) में आयी है, जहाँ यह व्यक्त किया गया है कि 'यह वही तिथि है (जब धार्मिक कृत्य किये जाने चाहिए) और अकेली है जिससे सम्बन्धित होकर सूर्य अस्त होता है और उदित होता है। इससे स्पष्ट होता है कि ऐ० ब्रा० के पूर्व तिथियों के विषय में मतभेद उत्पन्न हो गया था।

'तिथि' शब्द संहिताओं में भी नहीं पाया जाता, किन्तु ऐत० ब्रा॰, गृह्य एवं धर्म सूत्रों में पाया जाता है।

गोमिलगृह्यसूत्र (१।१।१३ एवं २।८।१२ एवं २०) ने पित्रत्र अग्नि स्थापित करने के विषय में व्यवस्था देते हुए शुम तिथि एवं नक्षत्र के समवाय का उल्लेख किया है और एक स्थान पर तिथि एवं नक्षत्र तथा केवल तिथि के स्वामी का उल्लेख किया है। कौशीतकीगृह्य० (१।२५) ने उस तिथि को हिन देने की बात कही है जिस दिन शिशू उत्पन्न होता है और जलाशयों, कूपों, पोखरों के निर्माण के लिए शुक्ल पक्ष की किसी शुम तिथि की व्यवस्था दी है (५।२)।

निरुक्त (४।५) ने ऋ॰ ५।४।५ में अग्नि के लिए प्रयुक्त 'अतिथि' के दो अर्थ किये हैं, जिनमें एक है 'जो दूसरों के घरों में विशिष्ट तिथियों को पहुँचता है।" पाणिनि में तिथि के लिए कोई सूत्र नहीं है। पतञ्जलि ने

७. अतिथिः अभ्यतितः गृहान् भवति । अभ्येति तिथिषु परकुलानि इति वा। निरुक्त (४।५)। यहाँ अतिथि में 'अ' 'अत्' (या 'इ' ?) नामक मूल से परिकल्पित किया गया है। मिलाइए मनु (३।११२)। 'तिथि' शब्द 'तन्' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है फैलाना, जैसा कि मध्य काल के लेखकों का मत है। 'तन्यन्ते कल्या यस्मात्तस्मात्तास्त्रिथयः स्मृताः।' सिद्धान्तिशिरोमणि (माघव, पू० ९८ एवं पुरुषार्थचिन्तामणि, पू० ३२ में उद्धृत)। कालमाधव में आया है—तनोति विस्तारयित वर्धमानां क्षीयमाणां वा चन्त्रकलामेकां यः कालविशेषः सा तिथिः, यद्वा यथोक्तकलया तन्यते इति तिथिः। पू० ९८।

पूर्णमासी तिथि का उल्लेख किया है। इससे प्रकट होता है कि वैदिक कालों में (कम-से-कम ऐतरेय ब्राह्मण के पूर्व) विशिष्ट धार्मिक कृत्यों की उचित तिथियों के विषय में विभिन्न मत-मतान्तर थे। यह समय लगमग ३००० वर्ष पुराना है। 'तिथि' शब्द ई० पू० ८०० ई० के लगमग साधारण प्रयोग में आ गया था।

सुर्य से १२ अंश की दूरी तक जाने के लिए चन्द्र को जो समय लगता है उस अविव को तिथि कहा गया है। सूर्यसिद्धान्त में आया है--'तिथि चान्द्र दिन है, जब चन्द्र सूर्य को छोड़कर (अमावास्या के अन्तिम क्षण पर) प्रति दिन पूर्व दिशा में १२ अंश (माग) पार करता है। चन्द्र की गति अनियमित है, इसलिए चन्द्र १२ माग कमी-कभी ६० घटिकाओं में, कभी अधिक (६५ घटिकाओं तक) में और कभी-कभी कम घटिकाओं (५४ घटिकाओं तक) में पार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि कभी तो एक दिन में एक तिथि होती है और कभी दो तिथियाँ; अधिकतर एक दिन में दो तिथियाँ होती हैं, अर्थात् प्रातःकालः छठ है तो अपराह्म, सन्ध्याकाल एवं रात्रि में सप्तमी। यह भी सम्मव है कि एक दिन में तीन तिथियाँ हों, अर्थात् सोमवार को छठ की केवल दो घटिका शेष हों, तदुपरान्त सप्तमी केवल ५६ घटिकाओं की अवधि की हो और आगे अष्टमी उसी दिन दो घटिकाएँ अपने में समेट ले। इसका जलटा भी है; केवल एक तिथि तीन दिनों तक चलती रह सकती है। उदाहरणार्थ, सोमवार की अन्तिम दो घटिकाएँ छठ की प्रथम दो घटिकाएँ हों, तदुपरान्त मंगल की ६० घटिकाएँ छठ में ही समाहित हों और अन्तिम दो घटिकाएँ बुध के प्रातःकाल तक चलती रहें। जिस दिन तीन तिथियाँ पड़ जाती हैं वह राजमार्तण्ड के अनुसार अति पवित्र (शुम) दिन माना जाता है, किन्तु जब एक तिथि तीन दिनों तक चलती रहती है तो वह वैवाहिक कार्यों के लिए अशुम मानी जाती है। यह तिथि आक्रमण करने, शुम धार्मिक कृत्य करने या पुष्टिकर्म के लिए मी अशुम ठहरायी गयी है। यदि कोई तिथि सूर्योदय के पूर्व से आरम्म होती है अथवा इसका आरम्म सूर्योदय से मिल जाता है और आगे आने वाले सूर्योदय तक वह चलती रहती है तो ऐसी तिथि (यथा प्रतिपदा, द्वितीया आदि या जो भी हो) दोनों दिनों की होती है और एक ही नाम की दो तिथियाँ एक के उपरान्त एक प्रकट होती हैं। इसे उस तिथि की वृद्धि कहते हैं। यदि कोई तिथि सूर्योदय के कुछ देर उपरान्त आरम्म होती है और दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व समाप्त हो जाती है तो इसका किसी पूरे दिन के साथ संयोग नहीं हो सकता, तब उसे पंचांग में नहीं रखा जाता और तिथि-क्षय माना जाता है। दिन से तिथि छोटी होती है अतः वृद्धि की अपेक्षा क्षय का योग अधिक लग जाया करता है।

गोमिलगृह्यसूत्र से प्रकट है कि उसके बहुत पहले से बहुत सी तिथियों के साथ उनके देव या पित समन्वित हो चुके थे। वराहिमिहिर की बृहत्सिहिता (९८।१-२) में तिथिपितियों के नाम ये हैं—पहला ब्रह्मा, दूसरा ब्रह्मा, तीसरा हिर, चौथा यम, पाँचवाँ चन्द्र, छठा कार्तिकेय, सातवाँ इन्द्र, ८वें वसु लोग, ९वें नाग लोग, १०वाँ धर्म, ११वाँ शिव, १२वाँ सिवता, १३वाँ मदन, १४वाँ किल, १५वें विश्वेदेव लोग तथा अमावास्था के पितर लोग। इन तिथियों में इनके पितयों के अनुरूप कर्म किये जाने चाहिए। किन्तु अन्य लेखकों ने वराहिमिहिर से मिन्न तिथि-पितयों की सूची दी है। देखिए रत्नमाला (२), स्कन्दपुराण (१।१।३३।७८-८३), गरुड० (१।१३७।१६-१९) एमं नारदपुराण (१।५६।१३३-१३५)।

वराहिमिहिर ने तिथियों को पाँच दलों में बाँटा है—नन्दा, मद्रा, विजया या जया, रिक्ता एवं पूर्णा। उन्होंने यह कहा है कि इन तिथियों पर इनके पितयों के योग्य कर्म किये जाने चाहिए और सफलकाम होना चाहिए। इन तिथियों में किये गये कर्म उनके नाम के अनुरूप फल देते हैं। नन्दा तिथियाँ प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी हैं, मद्रा द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी हैं, विजया तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी हैं, रिक्ता चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी हैं, पूर्णा पंचमी, दशमी एवं पूर्णमा हैं। आथवंण ज्योतिष में भी यही बात पायी जाती है। उसमें आया है कि नन्दा, मद्रा,

जया, रिक्ता एवं पूर्णा के दिन हैं कम से शुक्रवार, बुधवार, मंगलवार, शनिवार एवं बृहस्पतिवार और इन दिनों में सफलता एवं मनोरथ की प्राप्ति होती है।

पहली से पन्द्रहवीं तिथि तक पन्द्रह निषिद्ध वस्तुओं के सेवन से जो हानि होती है उसके विषय में तिथितत्व (पृ० २७-२८) में उल्लेख है। निर्णयसिन्ध् (पृ० ३२) ने मूपाल के मुहर्तदीपक से उद्धरण देकर पहली से पन्द्रहवीं तिथि तथा अमावास्या को सेवन योग्य वस्तुओं एवं निषिद्ध कर्मों का वर्णन किया है। दूसरी बोर मिवष्य० (ब्राह्मपर्व, १६।१८-२०) ने पन्द्रहों तिथियों में सेवन करने योग्य वस्तुओं का उल्लेख किया है, यथा दूध प्रतिपदा को; पुष्प दितीया को; क्षार के अतिरिक्त समी कुछ तृतीया को; तिल, दूध, फल्ल्एवं शाक सप्तमी एवं अष्टमी को; आटा, बिना पका मोजन एवं घृत एकादशी को, पाय्स (दूध में पकाया हुआ चावल), गोमूत्र, जौ, जल जिसमें कुश डाला गया हो। और देखिए वामन० (१४।४८-५१)।

तिथियों द्वारा समय का गिनना बहुत प्राचीन किया है और भारतीय ही है। पिन्निमी विद्वानों ने मारतीय ज्योतिष, नक्षत्रविद्या आदि पर चीनी, बैंबीलोनी, अरबी, यूनानी प्रभावों की चर्चा तो की है, किन्तु किसी को ऐसा साहस नहीं हुआ कि वह यह सिद्ध करने का प्रयास करे कि तिथि-सिद्धान्त पर बाह्य प्रभाव पड़ा है। यूनानी प्रभाव के सिद्धान्तों पर अगले प्रकरण में वर्णन किया जायगा।

वैदिक (एवं स्मार्त) व्यवस्थाएँ तिथियों के अनुसार दो प्रकार की हैं—(१) दोनों पक्षों की एकादशी को करने योग्य बातों, यथा 'एकादशी को उपवास करना चाहिए' तथा (२) ऐसी व्यवस्थाएँ जो एकादशी को विजत बातों पर बल देती हैं, यथा 'एकादशी के दिन नहीं खाना चाहिए।' इस प्रकार की दोनों व्यवस्थाओं के लिए तिथियाँ अंग हैं। गर्ग के मत से तिथि, नक्षत्र, वार आदि पुण्य एवं पाप के साधन हैं, ये प्रधान कर्म में सहकारी हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूप से फलदायक नहीं हैं।'

तिथियों के दो प्रकार हैं—पूर्णा एवं सखण्डा। धर्मसिन्धु में उल्लिखित विमाजनों का वर्णन कुछ प्रन्थों में नहीं पाया जाता। निर्णयसिन्धु ने दो प्रकार दिये हैं, यथा शुद्धा एवं विद्धा। तिथ्यकं ने सम्पूर्णा एवं खण्डा दो प्रकार बताये हैं। स्कन्दपुराण में आया है—"प्रतिपत्प्रमृतयः सर्वा उदयादोदयाद्रवः। सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिताः॥" इस विषय में देखिए स्मृतिच० (२, प० ३५७) एवं तिथ्यकं (पृ०३)। जब कोई एक तिथि सूर्योदय से ६० नाड़िकाओं (घटिकाओं) तक पूरे दिन को घरती है तो उसे पूर्णा कहते हैं (अर्थात् तिथि का आरम्म टीक सूर्योदय से होता है और अन्त ठीक दूसरे सूर्योदय के पूर्व ६० घटिकाओं में हो जाता है)। इसके अतिरिक्त अन्य तिथियां सखण्डा कही जायँगी। पुनः सखण्डा के दो प्रकार हैं—शुद्धा एवं विद्धा। शुद्धा तिथि वह है जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक चलती है (शिवरात्रि आदि) या अर्थ रात्रि तक चलती है। अन्य सखण्डा तिथियां विद्धा कही जाती हैं। वेध के दो प्रकार हैं—प्रातःवेध एवं सन्ध्यावेध,

९. तिथितसत्रवारादि साधनं पुण्यपापयोः। प्रधानगुणभावेन स्वातन्त्रदेण न ते क्षमाः॥ गर्ग (तिथितत्त्व, पृ० ४ द्वारा उद्भुत)। और देखिए पृ० चि० (प० ३३)।

८. भूपाल:। कूष्माण्डं बृहती क्षारं मूलकं पनसं फलम्। धात्री शिरः कपालान्त्रं नलचर्मतिलानि च। सुरकमौगनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत्।। नि० सि० (पृ० ३२)। धात्री का अर्थ है आमलक, शिरः का नारिकेल, कपाल का अलाबु, अन्त्र का पटोलक, नल का शिम्बी एवं चर्म का मसूरिका। विशिष्ट तिथियों में निषिद्ध वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न परिणामों के विषय में तिथितत्त्व में विस्तार के साथ वर्णन है।

जिनमें प्रथम सामान्यतः सूर्योदय से ६ घटिकाओं तक चलकर दूसरी तिथि में मिल जाता है और दूसरा वह है जो सूर्यास्त के ६ घटिका पूर्व किसी दूसरी तिथि से मिल जाता है। कुछ तिथियों में ६ घटिकाओं की ही अविधि निर्धारित होती है।

जो तिथि ६० घटिकाओं वाली होती है और सूर्योदय से आरम्म होती है अर्थात् जब वह पूर्णा होती है तो कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु धर्मसिन्धु के अनुसार जब शुद्धा तिथि होती है तो कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। कुछ सामान्य नियम घ्यान देने योग्य हैं। श्रुति में आया है-- पूर्वाह्लो वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणामपराह्लः पित्णाम्' (शत ॰ न्ना ॰ २।४।२।८), अर्थात् दोपहर के पूर्व का समय देवों का, मध्या ह्न (दोपहर) वाला मनुष्यों का तथा अपराह्ण वाला पितरों का है। मन् (४।१५२) में आया है—'व्यक्ति को प्रातःकाल ये कर्तव्य करने चाहिए— शरीर की शुद्धि, दन्त धावन, स्नान, आँखों में अंजन लगाना एवं देव-पूजा पूर्वीह्ह में ही हो जानी चाहिए। अतः देवों के लिए दिन में किये जाने वाले सभी धार्मिक कृत्य निर्दिष्ट तिथियों में प्रातःकाल ही किये जाने चाहिए। किन्तु वे सभी वृत, जो संघ्याकाल या रात्रि में सम्पादित किये जाने वाले होते हैं, उसी तिथि में किये जाने चाहिए, मलें ही वह किसी दूसरी तिथि से मिश्रित (विद्धा) हो। यह बात घ्यान देने योग्य है कि मास के दोनों पक्षों में सभी तिथियाँ पूर्व या उपरान्त वाली तिथि को तीन मुहतीं (अर्थात् ६ घटिकाओं) से प्रभावित करती हैं। कुछ तिथियाँ कई घटिकाओं से वेध उत्पन्न करती हैं, यथा पंचमी १२ घटिकाओं से षष्ठी का, दशमी १५ घटिकाओं से एकादशी का वेध करती है। कभी-कभी विद्धा तिथियाँ धार्मिक कमों के योग्य ठहरती हैं, कभी-कभी सर्वथा प्रतिकृल ठहरती हैं। जब तक उचित तिथि का निश्चय न हो जाय तब तक श्रीत एवं स्मार्त कृत्य, वत, दान तथा अन्य कर्म, जैसा कि वेद द्वारा व्यवस्थित है, उचित फल नहीं देते। वह तिथि, जो कालव्यापी होती है (यथा प्रातः, मध्या ह्न, पूरे दिन आदि वाली) और जो किसी धार्मिक कृत्य के लिए प्रतिपादित रहती है, वह उस कृत्य के योग्य ठहरती है। पहला सिद्धान्त है कि काल (किसी कृत्य के लिए निर्धारित समय) केवल विस्तार नहीं है, प्रत्यत यह एक निमित्त (अवसर) है, जिसके होने से कृत्य होता है और जो कृत्य उसके मीतर नहीं सम्पादित होता, वह असम्पादित सा रह जाता है। देखिए तैं० सं० २।२।५।४। उसमें आया है-- वह व्यक्ति स्वर्गच्युत हो जाता है, जो दर्शपूर्णमास कृत्य करने में पूर्णमासी या अभावास्या के काल का अतिक्रमण कर देता है।' हेमाद्रि ने उचित काल में किये जाने वाले कृत्यों की महत्ता पर वल दिया है, और कहा है कि शिष्टों की निन्दा से बचने के लिए ही गौण काल का आश्रय लिया जाता है, या अपने सन्तोष देने के लिए, या जब कोई अन्य विकल्प नहीं होता।

यदि कोई तिथि दो दिनों वाली हो और निश्चित समय वाली हो, या वह निर्दिष्ट समय के एक माग तक ठहरने वाली हो, तो सामान्य नियम यह है कि युग्मवाक्य द्वारा निर्णय करना चाहिए। उदाहरणार्थ, मान लिया जाय, कोई व्रत किसी तिथि के दोपहर में होने वाला हो, तो वह तिथि दोपहर के समय दो दिनों में पायी जा सकती है, या मान लिया जाय कि कोई तिथि दोपहर के एक या दो घटिका उपरान्त आरम्म होती है और दूसरे दिन दोपहर के पूर्व एक या दो घटिका पहले ही समाप्त हो जाती है, तो ऐसी स्थिति में कौन-सी तिथि (पूर्व-विद्धा या पर-विद्धा) कृत्य के लिए उचित है, इसका निर्णय सामान्य सिद्धान्त के अनुसार युग्मवाक्य द्वारा किया जायगा। युग्मवाक्य का अनुवाद निम्न रूप से किया जा सकता है—'निम्न तिथियों के जोड़े बड़ा फल देने वाले होते हैं, यथा द्वितीया एवं तृतीया, चतुर्थी एवं पंचमी, षष्ठी एवं सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी, एकादशी एवं द्वादशी, चतुर्वशी एवं पूर्णिमा तथा अमावास्या एवं प्रतिपदा। इससे विपरीत, अन्य तिथियों के जोड़ों से मयंकर हानि होती है, इनसे संचित पुष्य समाप्त हो जाते हैं।' एक प्रश्न पूछा जा सकता है—जब द्वितीया प्रतिपदा से युक्त हो (पूर्वविद्धा) और दूसरे किन तृतीया से युक्त (परविद्धा) तो ऐसी स्थिति में द्वितीया तिथि को किया जाने वाला व्रत किस तिथि को

किया जाय ? इसका उत्तर है—सामान्य नियम यह है कि ऐसी स्थिति में जब कि द्वितीया तृतीया से संयुक्त हो तो उसी को उचित माना जाता है न कि उस द्वितीया को जो प्रतिपदा से संयुक्त हो। इसी प्रकार जब वर्त तृतीया को सम्पादित होने वाला हो और तृतीया द्वितीया से संयुक्त हो और चतुर्थी से मी मिली हो, तो ऐसी स्थिति में द्वितीया से संयुक्त तृतीया को उचित माना जाता है, न कि चतुर्थी से संयुक्त तृतीया को। परिणाम यह निकला कि प्रतिपदा एवं द्वितीया, तृतीया एवं चतुर्थी, पंचमी एवं षष्ठी, सप्तमी एवं अष्टमी, नवमी एवं दशमी, एकादशी एवं द्वादशी, त्रयोदशी एवं चतुर्दशी, पूणिमा एवं प्रतिपदा तथा अमावास्या एवं चतुर्दशी का सम्मिलन अनुचित ठहरता है। "

यहाँ यह बात घ्यान देने योग्य है कि उपयुँक्त नियमों में अपवाद भी होते हैं। कुछ लोगों के मत से ये नियम शुक्ल पक्ष की तिथियों से सम्बन्धित हैं न कि कृष्ण पक्ष से। किन्तु अपरार्क (पृ० २१६), कालनिर्णय (पृ० १७२), व्रतकालविवेक (भाग ७,पू० ८७), निर्णयसिन्धु (पृ० १८) के अनुसार उपर्युक्त नियम कृष्ण पक्ष की तिथियों से भी सम्बन्धित ठहराये गये हैं, क्योंकि अमावास्या का प्रतिपदा से संयुक्त होना इसे सिद्ध कर देता है। यह विचारणीय है कि युग्मवाक्य (जब कि यह कृष्ण पक्ष के लिए भी प्रयुक्त हो) कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तथा दोनों पक्षों की दशमी एवं त्रयोदशी की ओर संकेत नहीं करता। इस विषय में देखिए हेमाद्रि (काल, पृ० ९३), का० नि० (पृ० २३१), का० वि० (पृ० ५०१)। पितरों के कृत्यों से युग्मवाक्य का सम्बन्ध नहीं है। गृह्यपरिशिष्ट ने व्यवस्था दी है कि पितर लोग उस तिथि पर आते हैं जो सूर्यास्त के समय उपस्थित रहती है, और स्वयं ब्रह्मा ने ऐसी तिथि एवं अपराह्ण पितरों के लिए व्यवस्थित किये हैं (व० कि० कौ०, पृ० १६, व० का० वि०, पृ० ८६, तिथिविवेक, पृ० २२२)। अब इस विषय के विस्तार में हम यहाँ नहीं पड़ेंगे। अन्य बातों के लिए देखिए व० का० वि० (पृ० ८९), व० कि० कौ० (पृ० १०) आदि।

कालादर्श में एक विचित्र सिद्धान्त आया है कि तिथियों के क्षय एवं वृद्धि का कारण मनुष्यों के पुण्य एवं पाप हैं। इसमें तिथियों की कोटियाँ यों हैं खर्ब (६० घटिकाओं का उचित विस्तार), दर्प (६० घटिकाओं से अधिक विस्तार) एवं हिस्र या हिसा (६० घटिकाओं से कम का विस्तार)। देखिए राजमार्तण्ड (११३२)।

कुछ ग्रन्थों में एक सामान्य नियम की व्यवस्था है कि जब महीना के नाम वाले नक्षत्र में पूर्णिमा का चन्द्र हो और उसमें बृहस्पति मी हो तो उसके साथ 'महा' विशेषण लगता है। उदाहरणार्थ, कार्तिक की पूर्णिमा उस तिथि

१०. युग्मान्नियुगभूतानां षण्मुन्योवंसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्वश्या च पूर्णिमा।। प्रतिपद्यप्यमावास्या तिय्योर्युग्मं महाफलम्। एतद् व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुरा कृतम्।। यह हेमाद्रि द्वारा (काल पर, पृ० ६७) उद्धृत है। युग्म, अग्नि, युग, भूत, मुनि, वसु, रन्ध्र एवं रुद्र कम से २, ३, ४, ५, ७, ८, ९, ११ नामक संख्याओं के स्थान पर रक्षे गये हैं। माध्यमिक निबन्धों में ये पंक्तियां विभिन्न ग्रन्थों से उद्धृत मानी गयी हैं। स्मृतिच० (पृ० ३५०), अपरार्क (पृ० २१४, २१६), निर्णयसिन्धु (पृ० १८) ने इन्हें निगम (वैदिक उक्तियां) माना है; किन्दु कालविवेक (पृ० ४७५), त्र० का० वि० (पृ० २१४), व० कि० कौ० (पृ० २) ने इन्हें गृह्यपरिशिष्ट का माना है; तिथितत्व (पृ० ३) ने इन्हें निगम एवं गृह्यपरिशिष्ट दोनों ही की उक्तियां ठहराया है। ये पद्य अग्निपुराण (१७५।३६-३७) एवं गरुड़पुराण (१।१२८।१६-१७) के हैं। और देखिए कालादर्श, राजमार्तण्ड (११२३-२४), समयप्रदीप, जीमूतवाहनकृत कालविवेक (पृ० ४७५-५०२)।

में, जब चन्द्र एवं बृहस्पित कृत्तिका में हों, तो महाकार्तिकी तिथि कहलायेगी। राजमार्तण्ड एवं मिवष्य० में प्रतिपादित है कि कुछ तीर्थों में महाचैत्री आदि तिथियों (अन्य शेष ११ 'महा' पूणिमाओं के साथ) के दिन स्नान करने से बड़े फल प्राप्त होते हैं, यथा प्रयाग में महामाघी के दिन, नैमिषारण्य में महाफाल्गुनी पर, शालग्राम में महाचैत्री पर, महाद्वार में महावैशाखी पर, पुरुषोत्तम में महाज्यैष्ठी पर, कनखल में महाषाढ़ी पर, केदार में महाश्रावणी पर, बदरी में महामाद्री पर, कुब्जाम्र में महाश्विनी पर, पुष्कर में महाकार्तिकी पर, कान्यकुब्ज में महामागंशीर्षी पर तथा अयोध्या में महापौषी पर। देखिए राजमार्तण्ड (१३८९-१३९२), व० कि० की० (पृ० ८०, जहाँ ये बातें मिवष्य० में लिखित मानी गयी हैं) तथा हेमाद्रि (काल, पृ० ६४२)।

कुछ तिथियों में बहुत-से कर्म निषिद्ध ठहराये गये हैं। ऐसे कृत्यां एवं कर्मों की तालिकाएँ वड़ी लम्बी हैं। दो-एक उदाहरणार्थ पर्याप्त हैं। देवल (कृ० र०, पृ० ५४७, व० कि० कौ०, पृ० ८६) में आया है—पंचदशी, चतुर्दशी और विशेषतः अष्टमी को तैल, मांस, व्यवाय (मैथुन) एवं क्षुरकर्म का व्यवहार नहीं होना चाहिए। नारदीय (१।१५६।१४०-१४१) में व्यवस्था है कि षष्ठी को तैल, अष्टमी को मांस, चतुर्दशी को क्षुरकर्म एवं पूर्णिमा तथा अमावास्या को मैथुन का प्रयोग नहीं होना चाहिए। कुछ तिथियों में तैल, शाक, फल आदि वर्जित हैं (देखिए तिथितत्त्व,पृ० २७-२८)।

#### अध्याय ४

# पृथक् -पृथक् व्रतः चैत्र-प्रतिपदा, रामनवमी, अक्षयतृतीया, परशुराम-जयन्ती, दशहरा, सावित्री-व्रत

महामारत में वत के आरम्म के विषय में आया है '— 'जलपूर्ण ताम्र पात्र को हाथ में लेंकर. उत्तरामिमुल होकर उपवास का या जो भी वत घारण करने की बात मन में उठ उसका संकल्प करना चाहिए।' देवल (कल्प० वत, पृ० ४; स० प्र०, कृ० र०, पृ० ५४) में आया है— (गत रात्रि में) विना मोजन किये, स्नान करके, आचमन करके, सूर्य देवता तथा अन्य देवों के समक्ष घोषणा करके वत करना चाहिए। वराह० (३९।३२; का० नि० २६८; व० कि० कौ०, पृ० ६०-६१; ति० त०, पृ० ११० और देखिए नारदीय० १।२३।१५, जहाँ समान श्लोक आया है) में इस प्रकार का संकल्प है— 'एकादशी को निराहार रहकर मैं दूसरे दिन खाऊँगा, हे पुण्डरीकाक्ष (विष्णु), हे अच्युत, आप मेरे आश्रय बनें।' उपवास या वत के लिए संकल्प प्रातः करना चाहिए। दिन का पहला पाँचवाँ माग, जो तीन घटिकाओं का होता है, प्रातः कहलाता है। जब तिथि प्रातःकाल नहीं आरम्भ होती, प्रत्युत अपराह्ण में आरम्भ होती है, तब मी संकल्प प्रातःकाल ही किया जाता है। यह तब किया जाता है जब कि वत उसी तिथि को किया जाने चाला होता है, मले ही वह विद्धा हो। जब संकल्प नहीं किया जाता तो व्यक्ति को वत का फल बहुत कम होता है अौर आघा पुण्य समाप्त हो जाता है।

अब हम विमिन्न तिथियों को किये जाने वाले पृथक्-पृथक् व्रतों का विवेचन करेंगे। सर्वप्रथम प्रतिपदा-वृत पर प्रकाश डालेंगे।

हम आगे के प्रकरण में यह लिखेंगे कि प्राचीन एवं माध्यमिक कालों में किस प्रकार वर्षारम्भ करने वाले मास विभिन्न देशों में विभिन्न थे। यहाँ चैत्र की प्रतिपदा से आरम्भ करेंगे और मास का अमावास्या (अमान्त) से अन्त समझेंगे और चैत्र से आरम्भ कर प्रत्येक मास एवं उसकी तिथ्रियों में किये जाने वाले व्रतों एवं उत्सवों का उल्लेख करेंगे। शेष का विवरण व्रतों की सूची में उपस्थित किया जायगा।

१. गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङमुखः। उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद् बुधः॥ देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं तस्य सिध्यति। अन्यया तु वृथा मर्त्याः क्लिक्यन्ति स्वल्पबुद्धयः॥ क्लान्ति० (कालविवेक, पृ० ४५६; कल्पतरु, व्रत, पृ० ४; कृ० र०, पृ० ५४, व० क्रि० कौ०, पृ० ६१ में उद्धृत), अनुशासनपर्व (१२६।२०) में यही बात कुछ शब्द-अन्तरों के साथ आयी है। और देखिए ति० त० (पृ० ११०)।

२. संकल्पाकरणे फलहानिमाह भविष्यपुराणे। संकल्पेन विना राजन् यत्किंचित्कुरुते नरः। फलं चाल्पाल्पकं तस्य घर्मस्यार्घक्षयो भवेत्।। कृत्यकल्प० (पृ० ४२४)।

मारत के उन मागों में, जहाँ वर्ष का आरम्म चैत्र से होता है, प्रतिपदा तिथि को लोग धार्मिक कृत्यों एवं शुम आयोजनों द्वारा मनाते हैं। चैत्र के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि के कृत्यों पर ब्रह्मपुराण में जो आया है उस पर कालों के निबन्धों में लम्बा आस्यान है, यथा कल्पतर (नैयतकाल, पृ० ३७७-३८२), हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ३६०-३६५), कृत्यरत्नाकर (पृ० १०३-११०), व्रतराज (पृ० ४९-५३)। उस पुराण में आया है कि ब्रह्मा ने चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय संसार का निर्माण किया और उसी दिन से काल-गणना का शुभारम्म हुआ। उसी दिन सब कल्मषों (पापों) को नाश करने वाली महाशान्ति का कृत्य किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम ब्रह्मा की पूजा सभी ख्यात उपचारों के साथ की जानी चाहिए, इसके उपरान्त 'ओम्' एवं 'नमः' के साथ अन्य देवों की पूजा, प्रत्येक पल से लेकर सभी युगों की, दक्ष की कन्याओं की तथा अन्त में विष्णु की पूजा होनी चाहिए। इसके उपरान्त बाह्मणों का सम्मान मोजन एवं दक्षिणा से करना चाहिए, सम्बन्धियों एवं मृत्यों को मेंट या दान देना चाहिए, यविष्ठ नामक अग्नि में होम करना चाहिए, विशिष्ट भोजन बनवाना चाहिए तथा बड़े-बड़े उत्सव किये जाने चाहिए। मविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व, १६।४४; हेमाद्रि, व्रत, पू॰ ३३६ एवं वर्षित्रयाकौमुदी, प्० २८ में उद्धत) में आया है कि यह तिथि ब्रह्मा द्वारा सर्वश्रेष्ठ तिथि घोषित हुई है और इसे सर्वप्रथम पद (स्थान) मिला है, अतः इसे प्रतिपदा कहा जाता है। चैत्र प्रतिपदा की वर्ष के स्वामी की पूजा होती है, उस दिन प्रत्येक गृहस्थ द्वारा तोरण एवं पताकाएँ लगायी जाती हैं। उस दिन तेल लगाकर स्नान करना चाहिए, नीम की पत्तियाँ खायी जानी चाहिए, शक या संवत् का नाम (फल) पंचांग से सुनना चाहिए। इसी प्रकार वर्ष के स्वामी, देवताओं (वर्ष के मन्त्रियों), अन्नों एवं द्रवों आदि के देवों के नाम सुनने चाहिए। आजकल भी ये कृत्य देश में किसी-न-किसी रूप में किये जाते हैं।

प्रतिपदा का शुमारम्म प्रातःक ल होता है। जब प्रतिपदा दो दिनों तक सूर्योदय के समय हो तो प्रथम का वरण करना चाहिए, किन्तु यह किसी दिन सूर्योदय के समय न हो तो पूर्वविद्धा का ही वरण होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि सूर्योदय के उपरान्त चार घटिकाओं तक अमावास्या हो तो प्रतिपदा ५६ घटिकाओं की उस दिन तथा कुछ घटिका दूसरे दिन तक रहती है, ऐसी स्थिति में अमावास्या से संबद्ध होने पर भी वर्ष का आरम्म हो जाता है और दूसरे दिन पर-विद्धा होने पर द्वितीया तिथि को प्रतिपदा नहीं मानना चाहिए। यदि चैत्र में मलमास हो तो वहुत-से लोगों के मत से मलमास वाली प्रतिपदा से वर्ष का आरम्म मान लिया जाना चाहिए। समयम्यूख के अनुसार जब चैत्र मलमास हो तो वर्ष एवं वसन्त का आरम्म इसी से होता है, किन्तु तेल से स्नान एवं वर्षफल का श्रवण शुद्ध मास से करना चाहिए। धर्मसिन्धु (पृ० ३८) में आया है कि तैल-स्नान आदि कृत्यों के संकल्प में नये वर्ष का उच्चारण मलमास के प्रथम दिन से होना चाहिए, किन्तु ध्वजारोपण, निम्बपन्नाशन, वरसरादि फलश्रवण शुद्ध मास में किये जाने चाहिए। सामान्य विश्वास है कि चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा वर्ष के ३।। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुहूर्तों में एक है। साम्राज्य-लक्ष्मीपीटिका (पृ० १२८-१३२) में चैत्र-शुक्ल के इस महान् उत्सव का

३. चैत्रस्य मलमासत्वे तैलाभ्यंगशकश्रवणादि शुद्ध एव कार्यम्। यद्यपि वत्सरषसन्तयोः प्रवृत्तिर्घाता तथापि तत्प्रयुक्तकृत्यम्—षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः। पूवमधे परित्यज्य कर्तव्या उत्तरे किया।। इति वचनाबुत्कृष्योत्तर एव कार्यम्। स० म० (पृ० १३)। पु० चि० (पृ० ५७) ने इस मत का विरोध किया है। वर्षिक्रयाकौमुवी (पृ० २२७) ने 'पूर्वमधे परित्यज्य उत्तरार्ध प्रशस्यते' पढ़ा है। और देखिए राजमार्तच्छ (कालविवेक, पृ० १३९), ज्योतिःशास्त्र।

विस्तारपूर्वक वर्णन है, जो सर्वप्रथम राजा या प्रमुख अधिकारी या सात गाँव वाले मूमिपति द्वारा मनाया जाना चाहिए।

चैत्र मास की दूसरी महत्त्वपूर्ण तिथि है नवमी, जो शुक्ल पक्ष में होती है और जिस दिन विष्णु के सातवें अवतार राम की जयन्ती मनायी जाती है और उस दिन रामनवमी व्रत किया जाता है। इस विषय में हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ९४१-९४६), व० कि० कौ० (पृ० ५२३-५२९), तिथितत्त्व (पृ० ५९-६२), निर्णयसिन्धु (पृ० ८३-८६), मुकुन्दवन यित के शिष्य आनन्दवन यित की अगस्त्यसंहिता एवं रामार्चनचन्द्रिका आदि निबन्धों में विस्तार के साथ वर्णन है। यह विचित्र बात है कि इसका उल्लेख कृत्यकल्पत्त में, जो कृत्यों पर एक महत्त्वपूर्ण प्रन्थ है, नहीं मिलता। प्रतीत होता है, राम-सम्प्रदाय की प्रसिद्धि कृष्ण-सम्प्रदाय के उपरान्त हुई। अमरकोश ने विष्णु, नारायण, कृष्ण, वासुदेवं, देवकीनन्दन एवं दामोदर को एक-दूसरे का पर्याय माना है, इसने राम (दाश-रिष) का उल्लेख नहीं किया है, प्रत्युत उसे हलधर का पर्याय माना है। यहाँ हम रामनवमी का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। रामार्चनचन्द्रिका एवं व्रताक में प्रतिपादित है कि इसका सम्पादन सभी लोग कर सकते हैं, यहाँ तक कि इसके अधिकारी चाण्डाल भी हैं।

अगस्त्यसंहिता (हेमाद्रि, व्रत, भाग १, पृ० ९४१) में आया है कि राम का जन्म चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को मध्या हु में हुआ था, उस समय पुनर्वसु नक्षत्र में चन्द्र था, चन्द्र और वृहस्पति दोनों समन्वित थे, पाँच ग्रह अपनी उच्च अवस्था में थे, लग्न कर्कटक था और सूर्य मेष राशि में था। माधव के कालनिर्णय (पृ० २२९-२३०) में आया है—जब नवमी दो तिथियों में हो, तब यदि वह पहली तिथि के मध्या हु में हो तो व्रत उसी दिन होना चाहिए। किन्तु यदि नवमी दोनों दिनों के मध्या हु में पड़ती हो, या जब किसी मी दिन मध्या हु को नवमी न हो तो दशमी से युक्त नवमी में ब्रत होना चाहिए, न कि अष्टमी से युक्त नवमी में। यदि नवमी पुनर्वसु से संयुक्त हो तो वह तिथि अत्यन्त पुनीत ठहरती है। यदि अष्टमी, नवमी एवं पुनर्वसु एक स्थान पर हों तब भी नवमी दूसरे दिन (अर्थात् दशमी से संयुक्त विमी) होनी चाहिए। अन्य विस्तारों को हम यहीं छोड़ते हैं।

ऐसा कुछ लोगों का मत है कि रामनवमी नित्य वर्त है और सब के लिए है, किन्तु कुछ अन्य लेखकों के मत से यह केवल राम-मक्तों के लिए नित्य है और अन्य लोगों के लिए, जो विशिष्ट फल (पाप-मुक्ति या संसार-निवृत्ति या मुक्ति) चाहते हैं, काम्य है। अगस्त्यसंहिता में आया है— यह सब के लिए है, यह सांसारिक आनन्द एवं मुक्ति के लिए है। वह व्यक्ति मी, जो अशुद्ध है, पापिष्ठ है, यह सर्वोत्तम वर्त करके सब से सम्मान पाता है, और ऐसा हो जाता है मानो साक्षात् राम हो। जो व्यक्ति रामनवमी के दिन मोजन करता है वह कुम्भीपाक में घोर कष्ट पाता है। जो व्यक्ति एक रामनवमी वर्त भी कर लेता है उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसके पाप कट जाते हैं। और भी आया है— उस दिन सदा उपवास करना चाहिए, राम-पूजा करनी चाहिए, उसे रात्रि

४. सर्वेवामप्ययं घर्मो भुवितमुक्त्येकसाधनम्। अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्। पूज्यः स्यात् सर्वभूतानां यथा रामस्तयेज सः। यस्तु रामनवन्यां तु भुङक्ते स च नराधमः। कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः॥...एकामपि नरो भक्त्या श्रीरामनवर्मी मुने। उपोष्य कृतकृत्यः स्यात्सर्वपापः प्रमुच्यते॥ अगस्त्यसंहिता (हेर्नाद्वि, व्रत, भाग १, पृ० ९४२)। और देखिए नि० सि० (पृ० ८४), स्मृ० मु० (काल, पृ० ८३६)।

मर पृथिवी पर बैठकर जागरण करना चाहिए।' यहाँ 'सदा' शब्द से प्रकट होता है कि यह 'नित्य' वत है किन्तु अन्य लोगों के मत से यह 'काम्य' है, क्योंकि यहाँ पाप से मुक्ति का फल मी मिलता है। निर्णयसिन्धु एवं तिथितत्त्व जैसे प्रन्थों का निष्कर्ष है कि यह 'नित्य' एवं 'काम्य' दोनों है, जैसा कि "संयोगपृथक्त्व" नामक मीमांसा का न्याय कहता है; 'अग्निहोत्र' के प्रकरण में वेद का कहना है—'वह अग्नि में दिध का होम करता है'; वहीं दूसरा वचन है—'जो शारीरिक शक्ति चाहता है उसे अग्नि में दिध का होम करना चाहिए।' अर्थ यह है कि दो मिन्न वाक्यों में 'दिध' शब्द अलग-अलग वर्णित है, अतः दिध के साथ होम नित्य भी है और काम्य मी।

हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ९४१-९४६), नि० सि० (पृ० ८३-८६), तिथितत्त्व (पृ० ५९-६२), कृ० त० वि० (पृ० ९६-९८), व्रतराज (पृ० ३१९-२९), व्रताक (१७२-१८२) में रामनवमी व्रत की विधि इस प्रकार है—चैत्र के शुक्ल पक्ष की अण्टमी के दिन मक्त को स्नान करना चाहिए, सन्ध्या करनी चाहिए, एक ऐसे ब्राह्मण को आमन्त्रित कर सम्मानित करना चाहिए जो वेदज हो, शास्त्रज्ञ हो, राम की पूजा में मिक्त रखता हो, राम-मक्तों की विधि जानता हो, और जससे प्रार्थना करनी चाहिए, 'मैं राम की प्रतिमा का दान करना चाहता हूँ।' इसके जपरान्त शरीर में लगाने के लिए जस ब्राह्मण को तेल देना चाहिए, स्नान कराना चाहिए, खेत वस्त्र पहनाना चाहिए, पृष्प देना चाहिए, जसे सात्विक मोजन देना चाहिए और स्वयं भी तही खाना चाहिए तथा सदा राम का ध्यान करना चाहिए। जस दिन रात्रि में जसे एवं आचार्य (सम्मानित ब्राह्मण) को बिना मोजन किये रहना चाहिए, दिन मर राम-कथाएँ सुननी चाहिए और स्वयं तथा आचार्य को पृथिवी पर ही सुलाना चाहिए (खाट पर नहीं)।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर, स्नान, सन्ध्या-वन्दन करना चाहिए, चार द्वारों वाले ध्वजासंयुक्त मण्डप का निर्माण करना चाहिए, और तोरण, ध्वजा एवं पुष्पों से अलंकृत करना चाहिए। पूर्व द्वार पर शंख, चक्र एवं गरुड़, दक्षिण में धनुष एवं वाण, पश्चिम में गदा, तलवार एवं केयूर, उत्तर में कमल, स्वस्तिक-चिह्न एवं नीले रत्न रखने चाहिए। मण्डप में चार अंगुल ऊँची वेदिका बनानी चाहिए और मण्डप में पित्र गानों एवं नृत्यों का आयोजन होना चाहिए। उसे ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिए और तब संकल्प करना चाहिए कि 'मैं रामनवमी के दिन पूर्ण उपवास कर्षों। और राम-पूजा-में संलग्न राम की स्वर्ण-प्रतिमा बनवा कर राम को प्रसन्न करने के लिए उसका दान कर्षों।' इसके उपरान्त वह कहे—'मेरे गम्भीर पापों को राम दूर करें।' राम की मूर्ति को आधार पर रखना चाहिए, इस मूर्ति के दो हाथ होने चाहिए; जानकी की मूर्ति राममूर्ति की दाहिनी जाँच पर होनी चाहिए। मूर्ति को गंचामृत से स्नाम कराना चाहिए। इसके उपरान्त मूलमन्त्र का पाठ होना चाहिए और न्यासों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए।' उत्सव या पूजा मध्या ह्न में की आती है। ऋग्वेद के सोलह मन्त्रों (१०१०) एवं पौराणिक मन्त्रों के साथ सोलह उपचारों से राम की प्रतिमा का पूजन करना चाहिए, प्रतिमा के विभिन्न अंगों की मी पूजा करनी चाहिए (श्री राममद्राय नमः पादौ पूजयामि आदि)। इसके उपरान्त मूल मन्त्र के साथ वेदिका

५. ौविक भन्त्रों (ऋा० १०।९० के सीलह मन्त्रों) के साथ शरीर के कितपय अंगों का स्पर्श से पवित्रीकरण ही न्यास है। मूल मन्त्र या तो ६ अक्षर हैं, यथा 'श्री राम राम राम' या १३ अक्षर हैं, यथा 'श्रीराम जय राम जय जय राम।' आजकल पुजारी लोग ऋा० १०।३।३ को वैदिक मूलमन्त्र के रूप में कहते हैं—'भद्रो भद्रया सवमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्तकेतैर्द्युभिर्गिनिवित्रिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णेरिभ राममस्थात्।' यहाँ 'राम' शब्द आया है, किन्तु दूसरे अर्थ में। सायण ने अर्थ किया है—'रामं कृष्णं शार्वरं तकः।'

पर या कुण्ड में होम करना चाहिए और पुनः साघारण अग्नि में घृत या पायस (दूघ एवं शक्कर में पकाये हुए चावल) की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए। इसके उपरान्त आचार्य की कंकण, कुण्डल, अँगूठी, पुष्यों, वस्त्रों आदि से सम्मानित करना चाहिए और निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करना चाहिए—'हे राम, आज मैं आप से अनुग्रह प्राप्त करने के लिए आपकी इस स्वणं-प्रतिमा को, जो अलंकारों एवं वस्त्रों से सिज्जत है, दान-रूप में दूंगा।' उसे आचार्य को दक्षिणा तथा अन्य ब्राह्मणों को सोना, गाय, वस्त्रों का जोडा, अन्न यथाशक्ति देना चाहिए और ब्राह्मणों के साथ मोजन करना चाहिए। ऐसा करने से वह ब्राह्मण-हत्या जैसे महापातकों एवं जघन्य पापों से छुटकारा पा लेता है। जो व्यक्ति यह बत करता है मानो अपने हाथ में मुक्ति घारण कर लेता है और सूर्यग्रहण पर कुरुक्षेत्र में तुलापुरुष के दान का पुण्य प्राप्त करता है (देखिए तुलापुरुष महादान के लिए इस महाग्रन्थ का खण्ड दो)। हेमाद्रि में अपेक्षाकृत संक्षिप्त उल्लेख है, किन्तु तिथितत्त्व (पृ० ६१-६२), नि० सि० (पृ० ८५), व्रतार्क ने अगस्त्यसंहिता से अधिक ग्रहण कर विस्तार के साथ उल्लेख किया है। उनके मत से राम-प्रतिमा के पाइवं में मरत, शत्रुष्टन एवं लक्ष्मण की (हाथ में घनुष के साथ एवं दशरथ की मूर्तियाँ मी दाहिनी ओर हों तथा कौसल्या की प्रतिमा की मी पूजा होनी चाहिए जिसके साथ पौराणिक मन्त्र कहे जाने चाहिए। रामार्चनचन्द्रिका ने दस एवं पाँच आवरणों की पूजा की मी चर्चाकी है।

रामनवमी का व्रत चैत्र के मलमास में नहीं किया जाता। यही बात जन्माष्टमी एवं अन्य व्रतीं के साथ मी पायी जाती है।

वर्तमान समय में बहुत-से लोग रामनवमी पर उपवास नहीं करते, और कदाचित् ही कोई होम या प्रतिमा-दान करता है, किन्तु मध्याह्न काल में राम-मिन्दरों में उत्सव किये जाते हैं। आजकल नासिक, तिस्पित, अयोध्या एवं रामेश्वर में बड़ी धूमधाम के साथ यह उत्सव मनाया जाता है और सहस्रों व्यवित वहाँ जाते हैं। आजकल 'राम' नाम से बढ़कर कोई अन्य नाम हिन्दुओं की चिह्ना पर नहीं पाया जाता।

वैशास मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया एक महत्त्वपूर्ण तिथि है। इसे अक्षय-तृतीया कहते हैं। विष्णुधर्मसूत्र में इसका अति प्राचीन उल्लेख है। मस्त्य॰ (६५१९-७), नारदीय॰ (१११२१०) में यह उल्लिखित है। वहाँ आया है कि इस दिन उपवास करना चाहिए, वासुदेव की पूजा अक्षत चावल से की जानी चाहिए, उनसे अग्नि में होम करना चाहिए तथा उनका दान करना चाहिए। इस प्रकार के कृत्य से व्यक्ति सभी पापों से छुटकारा पाता है, जो कुछ उस दिन दान किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। मत्स्य॰ में आया है कि उस दिन जो भी कुछ दिया जाता है, या जिसका यज्ञ किया जाता है या जो कुछ कहा जाता है (जप), वह फल रूप में अक्षय होता है, इस तिथि का उपवास भी अक्षय फल देने वाला होता है, यदि इस तृतीया में कृत्तिका नक्षत्र हो तो वह विशिष्ट रूप से फल देने योग्य ठहरती है। मविष्य॰ (३०११-१९) में इसका विस्तार से उल्लेख है। उसमें आया है—'यह युगादि तिथियों में परिगणित होती है, क्योंकि कृत युग (सत्य युग) का आरम्म इसी से हुआ, इस दिन जो कुछ भी किया जाता है, यथा स्नान, दान, जप, अग्नि-होम, वेदाध्ययन, पितरों को जलतर्पण—सभी अक्षय होते हैं।' इसमें व्यवस्था है कि इस तिथि में जल-पात्रों, छत्रों एवं पादत्राणों के दान से इनमें कमी नहीं पड़ती, इसी से इसे अक्षय तृतीया कहते हैं। देखिए वि० ध० सू० (९०।१६-१७)। कन्नौज के राजा गोविन्दनन्द्र के 'लार' नामक दान-पत्रों से पता चलता है कि सं० १२०२ में मंगल की अक्षय-तृतीया (अन्नैल १५, ११४६ ई०)

के दिन राजा ने गंगा में स्नान करके किसी श्रीघर ठक्कुर को एक ग्राम दान दिया (एपि० इण्डिका, माग ७,पृ० ७९)। जब तृतीया पूर्वा में होती है तो उपर्युक्त घार्मिक कृत्य किये जाते हैं, किन्तु जब वह दो दिनो तक रहती है तो उनमें पश्चात्कालीन वाली वत के लिए उपयुक्त ठहरायी गयी है। विस्तार से अध्ययन के लिए देखिए हेमाद्रि (वत, माग १,पृ० ५००-५१२ एवं काल,पृ० ६१८), वतराज (पृ० ९३-९६) एवं स्मृ० कौ० (पृ० १०९)। इस तिथि में युगादि-श्राद्ध के पिण्ड नहीं दिये जाते। अक्षय-तृतीया वर्ष भर के अत्यन्त शुम ३॥ दिनों में से एक है (यह स्वयं है है)।

वैशाख के शुक्ल पक्ष की तृतीया को परशुरामजयन्ती भी मनायी जाती है। इसका सम्पादन रात्रि के प्रथम प्रहर में होता है (सूर्यास्तोत्तर त्रिमुहुर्तः प्रदोषः, धर्मासन्धु, पृ० ९)। स्कन्द० एवं मिवष्य० में आया है कि वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया को रेणुका के गर्म से विष्णु उत्पन्न हुए, उस समय नक्षत्र पुनर्वसु था, प्रहर प्रथम था, छह प्रह उच्च थे और राहु मिथुन राशि में था। परशुराम की प्रतिमा की पूजा की जाती है और 'जमदिनसुतो नीरः क्षत्रियान्तकरः प्रमो। गहाणाध्य मया दत्तं कृपया परमेश्वर।।' (धर्मासन्धु, पृ० ४६) नामक मन्त्र के साथ अध्य दिया जाता है। यदि तृतीया 'शुद्धा' (अन्य तिथि से न मिली हुई) हो तो उस दिन उपवास करना चाहिए, किन्तु यदि तृतीया दो दिनों वाली हो, प्रथम प्रहर वाली थोड़ी मी सन्ध्याकाल में हो तो उपरान्त वाले दिन को व्रत किया जाना चाहिए, नहीं तो (यदि तृतीया विद्धा हो और रात्रि के प्रथम प्रहर से आगे न बढ़े) तो दो दिनों में पहले वाले दिन उपवास करना चाहिए। परशुराम के कुछ मन्दिर भी हैं, विशेषतः कोंकण में, यथा चिष्कून में, जहाँ परशुरामज्यन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी जाती है। देखिए नि० सि० (प० ९५), स्मृ० कौस्तुम (पृ० ११२), पृ० चि० (८९), हेमाद्रि (वृत, माग १, पृ० ११७) जहाँ विस्तार से वर्णन है। मारत के बहुत से मागों में यह जयन्ती नहीं मनायी जाती। किन्तु दक्षिण में इसका सम्पादन होता है।

ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की दशमी को दशहरा नामक बत किया जाता है। ब्रह्मपुराण (६३।१५)में आया है कि ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी को 'दशहरा' कहते हैं क्योंकि यह दस पापों को नष्ट करती है (देखिए व० किं कौ०, पृ० २८०)। मनु (१२।५-७) ने दस पापों को तीन श्रेणियों में बाँटा है, यथा कायिक, वाचिक एवं मानस। राजमातंण्ड (१३९७-१४०५) ने इस बत का वर्णन किया है। नि० सि० (पृ० ९८) तथा अन्य निवन्धों में इसका अन्य आधार माना गया है, यथा ज्येष्ट शुक्ल दशमी को मंगलवार (वराह० के अनुसार) या बुधवार (स्कन्द० के अनुसार), हस्त नक्षत्र, व्यातिपात, गर (करण), आनन्द योग पर, जब कि चन्द्र एवं सूर्य कमशः कन्या एवं वृषम राशियों में हों; जब ये सब हों या इनमें अधिकांश हों, तो व्यक्ति को गंग-स्नान करके पापमुक्त होना चाहिए। बुधवार एवं हस्त से आनन्द योग होता है। ऐसा कल्पित है कि इसी तिथि पर गंगा

६. महाभारत में परशुराम की गाया (यथा २१ बार क्षत्रियों का नाश करना, कश्यप को पृथिवी का दान, राम के मिलने पर वीरता का ह्रास, महेन्द्र पर्वत पर निवास, पश्चिमी सागर को पीछे हटा देना आदि) पायी जाती है। देखिए आदि० (२१३, १०३।६२), सभा० (१४१२), बन० (११६।१४, ११७।९), उद्योग० (१७८।६२), द्रोग० (७०), कर्ण० (४२।३-९), शल्य० (४९।७-१०)। परशुराम के विषय में पुराणों में भी उल्लेख है, देखिए ब्रह्मा० (२१३।११३-१२३), वायु० (९१।६७-८६), ब्रह्माण्ड० (३।२१-४७ एवं ५७-५८, जहाँ गोक्षण एवं शूर्पारक की रक्षा की है), विष्णुधर्मोत्तर (११३५)। इनमें से कुछ अनुश्रुतियाँ २००० वर्ष से अधिक प्राचीन होंगी। रघुवंश (६।४२, ११।६४-९१) में भी परशुराम-सम्बन्धी किवदन्तियों का उल्लेख है।

पृथिवी पर मंगलवार को हस्त नक्षत्र में अवतरित हुईं, अतः प्रारम्मिक रूप में यह व्रत दशाश्वमेघ पर गंगा-स्तान, पूजा एवं दान से सम्बन्धित था। आगे चलकर यह किसी मी बड़ी नदी में स्तान करने, अर्घ्यं, तिल एवं जल-त्र्पण से सम्बन्धित हो गया। अन्य बातों के विस्तार के लिए देखिए काशीखण्ड, त्रिस्थलीसेतु, कृत्यतत्त्व (४३१), व्रतराज (पृ० ३५२-३५५), पु० चि० (पृ० १४४-१४५)। आजकल गंगोत्सव अधिकतर कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा एवं गंगा के तट पर अवस्थित प्रामों एवं नगरों में किया जाता है। वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार, नासिक में यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यदि ज्येष्ठ में मलमास हो तो उसी मास में इसे किया जाना चाहिए।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा (उत्तर में अमावस्या) को सधवा नारियाँ भारत के कतिपय भागों में आजकल मी सावित्री व्रत या वटसावित्री व्रत करती हैं। महामारत (वन०, अध्याय २९३-२९९) एवं पुराणों (मत्स्य०, अव्याय २०८-२१४; स्कन्द०, प्रमासखण्ड, अध्याय १६६; विष्णुधर्मोत्तर (२।३६-४१) में मारतीय नारियों के समक्ष पतिवृता के आदर्श के रूप में सावित्री की कथा बहुत ही प्रसिद्ध रही है। सावित्री एवं सत्यवान् की कथा वड़ी मार्मिक है और इसका उल्लेख बड़ी सदाशयता के साथ होता रहा है। हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० २५८-२७२) ने मिवष्योत्तर से प्राप्त ब्रह्मसावित्री व्रत तथा स्कन्द० से वटसावित्री व्रत का उल्लेख किया है। किन्तु प्रथम माद्रपद में त्रयोदशी से लेकर पूर्णिमा तक तीन दिनों में मनाया जाता है न कि ज्येंष्ठ में, और द्वितीय ज्येष्ठ की पूर्णिमा को सधवा द्वारा या पुत्रहीन विषवा द्वारा किया जाता है। व्रतकालविवेक (पृ० २०) ने द्वितीय अर्थात् वटसावित्री व्रत को महासावित्री वत कहा है। निर्णयसिन्धु (पृ० १००) ने हेमादि द्वारा उल्लिखित इस व्रत को भाद्रपद में माना है और कहा है कि यह उन दिनों प्रचलित था। व्रतप्रकाश में ब्रह्मसावित्री व्रत का उल्लेख है। किन्तु आज का प्रचलित वटसावित्री त्रत दसवीं शताब्दी के बहुत पहले से सम्पादित होता रहा होगा। अग्नि० (१९४।५-८) ने संक्षेप में एक वृत का उल्लेख किया है जो तत्त्वों के आधार पर आज के वटसावित्री वृत के समान ही है। राजमार्तण्ड (१३९४, कृ र०, पृ० १९२, वर्षेकियाकीमुदी, पृ० २६०, तिथितस्व, पृ० १२१) का कथन है— 'ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी को श्रद्धासमन्वित नारियाँ वैघव्य से छुटकारा पाने के लिए सावित्री वृत करती हैं। दक्षिण में इसका अनुसरण होता है। नि० सि० ने मविष्य० के आघार पर कहा है कि यह व्रत अमावास्या को किया जाता है, किन्तु कृत्यतत्त्व (पृ० ४३०) एवं तिथितत्त्व (पृ० १२१) के अनुसार यह ब्रत ज्येष्ठ की पूर्णिमा के उपरान्त कृष्ण चतुर्दशी को होता है।

यदि पूर्णिमा दो दिनों वाली होतो व्रत चतुर्दशी को पूर्णिमा से विद्धा होने की दशा में किया जाना चाहिए। यह व्रत तीन दिनों तक किया जाता है और द्वादशी या त्रयोदशी से आरम्म किया जाता है। किन्तु यदि चतुर्दशी १८ घटिकाओं की हो और उसके उपरान्त पूर्णिमा आ जाय तो चतुर्दशी को छोड़ दिया जाता है (काल-निर्णय,

वट की पूजा का सम्बन्ध सम्मवतः इस बात से है कि जब सत्यवान् की मृत्यु की घड़ी आयी तो उसने वट वृक्ष की छाया का आश्रय लिया, उसकी शाखा का सहारा लिया तथा अवरुद्ध श्वास से सावित्री से कहा कि मेरे सिर में पीड़ा है। व्रतराज (३१२-३२०) एवं अन्य मध्य काल के प्रन्थों में विधि का वर्णन है। 'मैं अपने पित एवं पुत्रों की लम्बी आयु एवं स्वास्थ्य तथा इस लोक एवं परलोक में वैधव्य से मुक्ति के लिए सावित्री व्रत करूँगी' ऐसा कहकर स्त्री इस व्रत का संकल्प करती है। उसे वट के मूलपर जल छिड़कना चाहिए, इसके चारों ओर घागा बाँधना चाहिए,

उपचारों के साथ उसकी पूजा करनी चाहिए और अपने सौन्दर्य, सद्नाम, सम्पत्ति एवं वैधव्य-मुक्ति के लिए सावित्री की पूजा (मूर्ति की या केवल मानसिक रूप से), उसके पैर से ऊपर तक का स्मरण करके करनी चाहिए। इसके उपरान्त यम एवं नारद की पूजा करनी चाहिए और पुजारी को 'वायन' अर्थात् दान देना चाहिए और दूसरे दिन उपवास तोड़ना चाहिए। वंगाल में वटसावित्री व्रत के स्थान पर ज्येष्ट कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को सावित्री चतुर्दशी मानी जाती है। यह चौदह वर्षों की होती है। यदि स्त्री तीन दिनों तक उपवास के योग्य न हो तो वह त्रयोदशी को नक्त, चतुर्दशी को अयाचित मोजन तथा पूर्णिमा को व्रत करे।"

७. त्रिरात्रं नियमं कुर्यादुपवासस्य भिक्तितः। अशक्ता चेत् त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया। अयाचितं चतुर्वश्यां गौर्णनास्यामुपोषणम्।। भविष्योत्तर (हेमाद्रि, व्रत, भाग २, पृ० २६९ द्वारा उद्धृत)। ब्रह्मसावित्री व्रत के लिए देखिए हेमाद्रि (भाग २, पृष्ठ २६९-२७२) जहां ब्रह्मा की पत्नी सावित्री की, जो हाथों में बीणा एवं पुस्तक लिये रहती हैं, पूजा का उल्लेख है।

## अध्याय ५ एकादशी

आषाढ़ मास में सब से महत्त्वपूर्ण तिथि है एकाबशी। पुराणों एवं मध्यकाल के निवन्धों में एकादशी के विषय में एक विशाल साहित्य है। एकादशी पर तो पृथक् रूप से कई निवन्ध हैं, यथा शूलपाणि का एकादशीविवेक एवं रघुनन्दन का एकादशीतत्व। इनके अतिरिक्त कालविवेक (पृ० ४२५-४५१), हेमाद्रि (काल, पृ० १४५-२८८), माघव कृत कालनिर्णय (पृ० २३३-२७५), वतराज (पृ० ३६१-४७५), कालतत्त्वविवेचन (पृ० ९४-१७२) ने एकादशी पर (विवेचन के लिए) सैंकड़ों पृष्ठ लिख डाले हैं। किन्तु हम स्थान-संकोच से संक्षेप में ही लिखेंगे।

यदि कोई पुराणों के कितपय कथनों की जाँच-पड़ताल करे तो पता चलेगा कि उनमें कुछ तो एकादशी के दिन केवल भोजन करना वर्जित करते हैं और कुछ एकादशी वर्त की व्यवस्था करते हैं। प्रथम के कुछ उदाहरण निम्न हैं। नारदीय में आया है—'सभी प्रकार के पाप एवं ब्राह्मण-हत्या के समान अन्य पाप हिर के दिन में मोजन में आश्रय लेते हैं; जो एकादशी के दिन मोजन करता है वह उन पापों का मागी होता है; पुराण वारम्वार यही रटते हैं 'जब हिर का दिन आता है तो मोजन नहीं करना चाहिए, मोजन नहीं करना चाहिए।'' इस व्यवस्था से एकादशी की विधि उस दिन कुछ भी पकी हुई वस्तु के न खाने में है। उन कथनों में जहाँ 'प्रत शब्द आया है, ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वे केवल वर्जना (यथा-मोजन न करना) करते हैं, प्रत्युत्त ये आवात्मक रूप मी रखते हैं, यथा प्रजापति वर्त में आता है, 'सूर्योदय नहीं देखना चाहिए', जिसकी व्याख्या जैमिनि (४।१।३-६ एवं ६।२।२०) ने की है। उदाहरणार्थ, मत्स्य० एवं मविष्य० में आया है, 'जब व्यक्ति एकादशी को उपवास करता है और ढादशी को खाता है, चाहे शुक्ल पक्ष में या कृष्ण पक्ष में, वह विष्णु के सम्मान में बड़ा वर्त करता है।' उन कथनों में, जहाँ 'उपवास' शब्द आया है और जो (एकादशी करने के कारण) फल की व्यवस्था देते हैं वहाँ ऐसा समझना चाहिए कि वे वर्त की भी व्यवस्था देते हैं न कि केवल किसी वस्तु के न सेवन की ही बात करते हैं। वे कथन भी, जो एकादशी के दिन भोजन करने की मर्त्या करते हैं, इस प्रकार भी समझे जा सकते हैं कि मागो

१. यानि कानि च पापानि बहुमहत्यासमानि च। अझमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राते हरिवासरे।। तानि पापान्यवाप्नोति भुञ्जानो हरिवासरे। रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो वरानने। न भोवतव्यं न भोवतव्यं संप्राप्ते हरिवासरे।। नारदीय (हेमाद्रि, कास्त्र, पृ० १५३; का० नि०, पृ० २३५)। और देखिए नारदीयपुराण (उत्तर, २४।४। २३।२४)। मिलाइए बहुमवैवर्त, कृष्णजन्म खण्ड, २६।२३ 'सत्यं सर्वाणि पापानि बहुमहत्यादिकानि च। सन्त्येवौदनमाश्रित्य श्रीकृष्णव्यतवासरे॥' एकादशीतत्त्व (पृ० १६)।

उन्होंने क्षेवल वत की बात चलायी है और वर्जना की नहीं। इस विषय में मीमांसा का नियम है--'जिसकी निन्दा की जाती है उसकी निन्दा में केवल प्रवृत्त रहना ही निन्दा नहीं है, प्रत्युत वह, जो निन्दित होता है उसके विरोधी कर्तव्य के सम्पादन की स्तुति के लिए होती है।" वे कथन जो ब्रत के विषय में प्रतिपादन करते हैं, दो प्रकार के हैं, यथा वे, जो एकादशी को नित्य मानते हैं, और वे, जो किसी वांछित वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रतिपादित हैं, अर्थात् काम्य । नारद (हेमाद्रि, काल, पृ० १५९; नि० सि० ३७) में आया है—'विष्णु के मक्त एवं वे जो विष्णु को परम लक्ष्य मानते हैं, उन्हें सदा प्रत्येक पक्ष में एकादशी के दिन उपवास करना चाहिए। कात्यायन (हेमाद्रि, काल, पृ० १६२; का० नि०, पृ० २३६; एकादशीतत्त्व, २८) में एकादशी के बारे में काम्य-विधि यों कही गयी है-- 'जो विष्णु को परम लक्ष्य मानता है, जो संसार-सागर पार करना चाहता है या जो ऐश्वर्य, सन्तित, स्वर्ग, मोक्ष आदि प्राप्त करना चाहता है, उसे दोनों पक्षों की एकादशी को मोजन नहीं करना चाहिए। इसका निष्कर्ष यह निकला कि एकादशी नित्य एवं कान्य दोनों है और यहाँ पर 'संयोग-पृथक्तव' (देखिए ऊपर 'रामनवमी' का वर्णम) का सिद्धान्त लागू होता है। दोनों पक्षों कीः एकादिशयों पर एकादशी वर्त केवल उन्हीं के लिए नित्य है जो गृहस्य नहीं हैं; यह व्रत गृहस्थों के लिए केवल शुक्ल पक्ष की एकादशी पर ही नित्य है, कृष्ण पक्ष में नहीं, क्योंकि देवल में आया है-दोनों पक्षों की एकादशी में पका मोजन नहीं करना चाहिए, यह वन में रहने वाले यतियों एवं मुनियों का धर्म है, किन्तु गृहस्य को ऐसा केवल शुक्ल पक्ष की एकादशी में करना चाहिए (नि॰ सि॰, ३६; समयप्रकाश, पृ॰ ६२; कालविवेक, पृ॰ ४२६; हेमाद्रि, काल॰, पृ॰ १५०; ए० त॰, पृ॰ ३६; ब्रह्मवै-वर्त ० ४।२६।३८)। पद्मपुराण में आया है कि गहस्थ को केवल शयनी (आषाढ़ शुक्ल ११) एवं बोधिनी (कार्तिक शुक्ल ११) के मध्य में पड़ने वाली कृष्ण एकादिशयों पर उपवास करना चाहिए, अन्य कृष्ण पक्ष की एकादिशयों पर नहीं (ब्रह्मवैवर्त ४।२६।३९; का० नि०,पू० २९; नि० सि०,पू० ३६; समयप्रकाश,पू० ६३। इन समी में पद्म का उद्धरण है)। नारद (हेमाद्रि, काल, पृ० १८३ आदि) में एक वचन आया है- पुत्रवान् गृही की संक्रान्ति पर, कृष्ण एकादशी पर एवं चन्द्रसूर्य-ग्रहण पर उपवास नहीं करना चाहिए।' निष्कर्ष यह निकला कि गृहस्थ को केवल शुक्ल एकादशी पर ही उपवास करना चाहिए (यही उसके लिए नित्य है), किन्तु वह काम्य वत शयनी एवं बोधिनी के मध्य में पड़ने वाली कृष्ण एकादिशयों पर भी कर सकता है, किन्तु यदि वह पुत्रवान् हो तो उसे शयनी एवं बोधिनी के मध्य में पड़ने वाली कृष्ण एकादिशयों में उपवास नहीं करना चाहिए। विधवा यति के सद्श है; सघवा को केवल शुक्ल पक्ष की एकादशी पर उपवास करना चाहिए। किन्तु यह ध्यान रखने योग्य हैं कि ये प्रतिबन्ध वैष्णवों के लिए नहीं हैं (देखिए ए० त०, पू० ३८; हेमाद्रि, काल, पू० १८१), उन्हें समी एकादशियों पर उपवास करना होता है। हेमाद्रि (व्रत, भाग १, पू० ९९९) का मत है कि सभी को दोनों पक्षों की एकादशियों पर उपवास करने का अधिकार है।

इस भाग के द्वितीय अध्याय में वर्तों की अतिशय प्रशंसा एवं महिमा के विषय में प्रकाश डाला जा चुका है। प्रायश्चित्तस्वरूप उपवासों के विषय में हमने इस ग्रन्थ के चौथे भाग में पढ़ लिया है। एकादशी पर किये जाने वाले उपवास की अतिशय प्रशंसा में पुराणों एवं निबन्धों में विस्तार के साथ अत्युक्तियाँ मरी पड़ी हैं। नारद-पुराण

२. न्याय यह है—"नहि निन्दा निन्दां निन्दितुं प्रवृत्ता अपि तु विषयं स्तोतुम्" (देखिए तन्त्रवार्तिकः जैमिनि ११२।७, पृ०११५)। शबर अधिक स्पष्ट हैं—"नहि निन्दा निन्दां निन्दितुं प्रयुज्यते। कि तिह । निन्दितादितरत् प्रशिक्षितुम्। तत्र न निन्दितस्य प्रतिषेषो गम्यते कित्वितरस्य विधिः। शबरभाष्य (जैमिनि, २।४।२१)।

में एकादशी-माहात्म्य पर एक लम्बी उक्ति है (हेमाद्रि, काल, पृ० १४६; का० नि०, पृ० २७३-२७४)। कुछ रलोकों का अर्थ यों है- एकादशीवृत से उत्पन्न अग्नि से सहस्रों जीवनों में किये गये पापों का ईंधन जलकर मस्म हो जाता है। अश्वमेघ एवं वाजपेय जैसे सहस्रों यज्ञ एकादशी पर किये गये उपवास के सोलहवें अंश तक भी नहीं पहुँच सकते। यह एकादशी स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है, राज्य एवं पुत्र देती है, अच्छी पत्नी देती है और शरीर को स्वास्थ्य देती है। गंगा, गया, काशी, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, देविका, यमुना, चन्द्रम,गा हरि के दिन के समान नहीं हैं।' देखिए पद्मपुराण (आदिखण्ड, ३१।१५७, १६०, १६१ एवं १६२)। अनुशासन (१०७।१३६, १३७ एवं १३९) में उपवास की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा है। पद्म० (ब्रह्मखण्ड, १५।२-४) में आया है-- 'एकादशी नाम श्रवण मात्र से यमदूत शंकित हो जाते हैं। सभी व्रतों में श्रेष्ठ शुम एकादशी पर उपवास करके हरि को प्रसन्न करने के लिए रात्रि भर जागना चाहिए और विष्णुमन्दिर के मण्डप को पर्याप्त रूप से सजाना चाहिए। जो व्यक्ति तुलसीदलों से हरिपूजा करता है वह एक दल से ही करोड़ों यज्ञों का फल प्राप्त करता है।' वराह॰ (अध्याय ३०) में आया है कि ब्रह्मा ने कुबेर की एकादशी दी और उसने (कुबेर ने) उसे उस व्यक्तित की दिया जो संयमित रहता है, शुद्ध रहता है, केवल वही खाता है जो पका हुआ नहीं है; कुनेर प्रसन्न होने पर सब कुछ देता है। पदा० (ब्रह्मखण्ड, १३।५३) ने एक नारी का आख्यान लिखा है--वह अति झगड़ालू थी, अएने प्रेमी के विषय में सोचती थी और इसके कारण वह अपने पति द्वारा निन्दित दुई और पीटी गयी। वह कोधित होकर विना मोजन किये रात्रि में मर गयी। वह उपवास करने के कारण (जो जान-बुझ कर या प्रसन्नतापूर्वक नहीं किया गया था, प्रत्युत कोघावेश में किया गया था) शुद्ध हो गयी। गरुड़पुराण (१।१२७।१२) में आया है कि यदि एक पलड़े पर सम्पूर्ण पृथियी का दान रखा जाय और दूसरे पर हरि का दिन (एकादशी) तो एकादशी महापूण्या एवं श्रेष्ठ ठहरती है। आषाढ़ शुक्ल की एकादशी को महा-एकादशी एवं शयनी कहा जाता है।

ऊपर हमने वतों के अधिकारियों से सम्बन्धित सामान्य नियमों का उल्लेख कर दिया है, अब यहाँ एकादशी से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट नियमों का वर्णन करेंगे। नारद (का० नि०, पृ० २५७; ए० त०, पृ० ३५) ने व्यवस्था दी है—'जो मानव आठ वर्ष से अधिक अवस्था का हो और ८० वर्ष से कम अवस्था का हो, यदि वह मोहवश एकादशी के दिन मोजन कर लेता है, वह पापी होता है।' यही बात कात्यायन में भी है। इन दोनों उल्लेखों से प्रकट है कि सभी जातियों एवं आश्रमों के लोगों को एकादशीवृत करने का अधिकार है, किन्तु उपर्युक्त वयों (उम्र) की दशाओं का पालन आवश्यक है।

लोगों की दुबंखताओं को घ्यान में रखकर ऋषियों ने एकादशी पर सम्पूर्ण उपवास के नियम को ढीला कर दिया। नारवंपुराण (उत्तरार्घ, २४।७-८) में आया है—'मूल, फल, दूध एवं जल का सेवन मुनीश्वर लोग एकादशी पर कर सकते हैं, किन्तु किसी ऋषि ने ऐसा नहीं प्रदिश्तित किथा है कि एकादशी पर पका हुआ मोजन खाना चाहिए।' वायुपुराण (का० नि०, पृ० २६१; का० वि०, पृ० ४३१; व० कि० कौ०, पृ० ५७) ने व्यवस्था दी है कि रात्रि में हिकथ्य, मात के अतिरिक्त कोई मोजन, फल, तिल, दूध, जल, घी, पंचगव्य, वायु, इनमें से प्रत्येक आगे वाला अपने से पीछे वाले से (एकादशी पर) अपेक्षाकृत गृहणीय है। वायुपुराण में सम्पूर्ण उपवास (जल मी नहीं) की चर्चा है। बौधायन (हेमाद्रि, काल, पृ० १७६); का० नि०, पृ० २६१) ने घोषित किया है कि जो पूर्ण उपवास के लिए अयोग्य हैं, या जो ८० वर्ष से अधिक वय वाले हें उन्हें एक मक्त होना चाहिए या अन्य विकल्पों का सहारा लेना चाहिए। मस्त्य० (व० कि० कौ०, पृ० ६९) में आया है कि जो एकादशी को उपवास करने में अशक्त हों उन्हें नक्त मोजन करना चाहिए (एक बार रात्रि में), यदि कोई बीमार हो तो दह अपनी ओर से अपने पुत्र या किसी अन्य को उपवास करने को कह सकता है।

मार्कण्डेय (है०, काल, पृ० १७६; का० नि०, पृ० २६१; का० वि०, पृ० ४३०) ने कहा है कि कोई एक मक्त, नक्त, अयाचित, पूर्णोपवास या दान की विधियों का आश्रय ले सकता है, किन्तु उसे (एकादशी के साथ) द्वादशीवत के सम्पादन के फलों से वंचित नहीं होना चाहिए। यहां पूर्ण उपवास के स्थान पर बहुत-से विकल्प रखे गये हैं, जिनकी व्याख्या आवश्यक है, किन्तु इसके पूर्व मनु (१११३०, शान्ति० १६५११७) का एक नियम द्रष्टव्य है—'यदि कोई प्रमु (शक्त) होने पर भी अर्थात् किसी कृत्य की प्रमुख व्यवस्थाओं के योग्य होने पर भी वचनों द्वारा प्रतिपादित विकल्पों का आश्रय लेता है, तो वह दुर्मति है और कृत्य से उत्पन्न पारलौकिक फलों की प्राप्ति नहीं कर सकता।' अतः एक मक्त, नक्त एवं अयाचित का सहारा पारलौकिक फलों की प्राप्ति नहीं कर सकता।' अतः एक मक्त, नक्त एवं अयाचित का सहारा तभी लेना चाहिए जब कि व्यक्ति कठोर व्रत का पालन करने में अशक्त हो। एक मक्त का अर्थ है आधे दिन के उपरान्त केवल एक बार दिन में खाना।

एकभक्त वृत भी है जो स्वतन्त्र रूप से भी सम्पादित होता है। अनुशासनपर्व (१०६।१७-३०) ने मार्गशीर्ष से कार्तिक तक किये जाने वाले एकमक्त वृत के लिए फल घोषित किये हैं और अन्य स्थान (१०७।१३-१२६). पर एक मास के तीस दिनों में किये गये वृत के फलों का विस्तार से उल्लेख किया है (देखिए कृत्यकल्पतरु, पृ० ४५७-४६८, जहाँ अनुशासन० का सम्पूर्ण उद्धरण है; हेमाद्रि, वृत, माग २, पृ० ९३० ३१) और देखिए कृत्यकल्पतरु (पृ० ४१९-४२१), कृ० र० (पृ० ४०६-७ और आगे) एवं हे० (वृत, माग २, पृ० ७४८ ७९८) जहाँ अनुशासन० (१०६।१७-३०) में विभिन्न स्थानों और मासों में किये जाने वाले एकमक्त का उल्लेख है।

नकत—िलगपुराण, नारद एवं अन्य पुराणों में नकत का वर्णन है (लिंग, पूर्वार्घ, ८३।१०।१२-१३६; नारद०, उत्तर, ४३।११-१२); मीख माँगना उपवास से श्रेष्ठ है, अयाचित मोजन मीख से उत्तम है, नक्त अयाचित से उत्तम है, अतः नक्त-विधि करनी चाहिए। हिवष्य खाना, स्नान, सत्यता, अल्प मोजन, अग्नि में आहुतियाँ देना, मूमिशयन—ये छः नक्त वत में किये जाने चाहिए। नक्त के समय के विषय में विमिन्न मत हैं। हेमाद्रि (काल, पृ० ११२-११५) ने नक्त काल का वर्णन विस्तार के साथ किया है। प्रथम नियम यह है कि नक्त वत में विद्धा होने पर वहीं तिथि ग्राह्य होती है जो प्रदोष में होती है। स्कन्द० के अनुसार सूर्यास्त के उपरान्त ६ घटिकाओं तक प्रदोष-अविध रहती है, किन्तु विश्वादर्श के मत में यह सूर्यास्त के उपरान्त ३ घटिकाओं की होती है। पुरुषार्थिचन्तामणि ने दूसरी अविध को प्रदोष की उचित अविध ठहराया है। कुछ लोगों ने तारागण के प्रकट हो जाने की अविध में नक्त को उचित ठहराया है और कुछ लोगों ने सूर्यास्त के पूर्व एक प्रहर (दो घटिका) की अविध ठीक मानी है। वास्तव में मुख्य काल वही है जब तारे प्रकट हो जाते हैं, अन्य काल गौण हैं। नक्त के दो अर्थ हैं—प्रथम काल-अविध तथा दूसरा नक्त-काल में मोजन-ग्रहण। उपवास के अतिरिक्त नक्त एक विशिष्ट वत भी है। देखिए वतो की तालिका।

अयान्ति का तात्पर्य है ऐसा मोजन करना जो बिना माँगे या प्रार्थना किये प्राप्त होता है। संकल्प यह है—'रात या दिन में में माँगकर या प्रार्थना करके प्राप्त कर मोजन नहीं करूँगा।' इसके लिए कोई निश्चित काल नहीं है, क्योंकि किसी भी समय किसी द्वारा मोजन लाया जा सकता है। किन्तु ऐसा मोजन केवल एक बार किया जाता है। यदि पत्नी या मृत्य बिना किसी निर्देश के पका मोजन ले आयें तो उसे ही खाना चाहिए।

'एक मकत', 'नक्त' एवं 'अयाचित' शब्द प्राचीन काल में प्रायश्चित्तों (यथा कृच्छू) के सिलिसिले में प्रयुक्त होते थे, जो कालान्तर में पुराणों द्वारा उपवास के विषय में प्रयुक्त हो गये (देखिए आप० घ० सू० १।९१२७।७; गौतम, २६।१-५; याज्ञ० ३।३१८)।

पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, अध्याय ३६) ने एकादशी के जन्म की एक कल्पनात्मक गाथा दी है।

#### धर्मशास्त्र का इतिहाल

पुराणों की अत्युक्तियों को छोड़ दिया जाय तो एकादशी पर किये जाने वाले उपवास की अन्तिहित धारणा आध्यात्मिक सिद्ध होती है। यह मन का अनुशासन है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रसन्नतापूर्वक उपवास करने से मनुष्य को गहित वासनाओं से निवृत्ति मिलती है और मन की ऐसी अवस्था हो जाती है जब कि परमारमा का अनुग्रह प्राप्त होता है। देखिए मगवद्गीता (२।५९)। वृहंदारण्यकोपनिषद् में आया है— 'ब्राह्मण लोग वेदाध्ययन, यज्ञों, दानों एवं निराहार से उस महान् आत्मा को जानने की इच्छा रखते हैं।"

88

एकादशी पर उपवास दो प्रकार का होता है - प्रथम वह है जिसमें निषेध का परिपालन होता है, यथा पका मोजन न ग्रहण करना, और दूसरा है वृत का रूप। प्रथम में सभी लोग, यहाँ तक कि पुत्रवान् गृहस्थ भी, कृष्ण पक्ष में भी इसे करते हैं, किन्तु दूसरे में सन्तितमान् गृहस्थ इसे कृष्ण पक्ष में नहीं करता; उसे संकल्प नहीं करना चाहिए, उसे केवल मोजन (पका मोजन) नहीं करना चाहिए, किन्तु ब्रह्मचर्य आदि का पालन करना चाहिए। शयनी एवं बोधिनी के मध्य कृष्ण पक्षों की एकादशियों पर पुत्रवान् गृहस्थों को भी यह व्रत करने का अधिकार है। इसी प्रकार जो विष्णु में लय हो जाता चाहते हैं, लम्बी आयु चाहते हैं, पुत्र चाहते हैं उन्हें दोनों पक्षों की एकादिशयों पर काम्य व्रत करना चाहिए। वैष्णव गृहस्थों को कृष्ण पक्ष की एकादिशयों पर मी उपवास करना चाहिए। एकादशी व्रत सभी के लिए नित्य है, यहाँ तक कि शिव, विष्णु एवं सूर्य के मक्तों के लिए भी। व्रत रूप में भी जपवास के दो प्रकार हैं, नित्य एवं काम्य। संक्षेप में निर्णयसिन्धु एवं घर्मसिन्धु में उल्लिखित ये ही नियम हैं। केवल उपवास एवं उपवास-व्रत में मुख्य अन्तर यही है कि प्रथम में कोई संकल्प नहीं होता, व्यक्ति केवल मोजन का त्याग करता है, किन्तु दूसरे में संकल्प होता है और अन्य बातें भी होती हैं।

अब हम एकादशीव्रत का संक्षिप्त वर्णन उपस्थित करेंगे। नारद० (पूर्वार्घ, २३।१२) में निम्न विधि है—दशमी तिथि में व्रती को दन्त धावन किया के उपरान्त स्नान करना चाहिए, विष्णु मूर्ति को पंचामृत से नहलाना चाहिए और उपचारों के साथ उसकी पूजा करनी चाहिए। एकादशी को स्नान करने के उपरान्त उसे मूर्ति को पंचामृत में स्नान कराकर चन्दन, पृष्पों आदि से विष्णु-पूजा करनी चाहिए और मन्त्रोज्चारण करना चाहिए-"एकादश्यां निराहार: स्थित्वा चाहं परेऽहिन । मोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे मवाच्युत ॥" (नारद, पूर्वार्घ, २३।१५)। उसे मोजन नहीं करना चाहिए, इन्द्रिय-निग्रह करना चाहिए, विष्णु-मूर्ति के समक्ष पृथिवी पर बैठना चाहिए, विष्णु से सम्बन्धित संगीत, गीत एवं नृत्य में संलग्न जागते रहना चाहिए तथा पुराणोक्त विष्णु-गाथाएँ सुननी चाहिए। द्वादशी को स्नान करके मूर्ति को दूध में स्नान करांकर निम्न प्रार्थना करनी चाहिए--- "अज्ञान-तिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव। प्रसीद सुमुखा भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो मव॥" (नारद, पूर्वार्ध, २३।२०; धर्मसिन्धु, पृ०२०; हे०, ब्रत, भाग १, पृ० १००७)। इसके उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन देना चाहिए तथा यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। तब आह्निक पंचयक्त (ब्रह्मयक्त, पितृयक्त, वैश्वदेव, बलि एवं अतिथिपूजन) करना चाहिए और स्वयं सम्बन्धियों के साथ मौन रूप से मोजन करना चाहिए। उपवास व्रत में संलग्न रहते समय चाण्डालों, महापापियों, नास्तिकों, कदाचरण करने वालों, परिनन्दकों को नहीं देखना चाहिए, उसे वृषली के परि, अयोग्य लोगों के लिए यज्ञ कराने वाले पुरोहित, धन-लिप्सा से मन्दिर-प्रतिमाओं की पूजा करने वाले, धन के लिए गाने

<sup>ै</sup>३. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। गीता २।५९। ४. स वा एष महानज आत्मा...तमेतं वेदानुवचनेन बाह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन। ब्ह० उप० ४।४।२२।

सन्

एवं दबा करने वाले, मागध, देव-ब्राह्मण विरोधी, दूसरे के यहाँ मोजन करने के अम्यासी या लोमी एवं बलात्कार करने वाले से बात नहीं करनी चाहिए। उपवास बत में संलग्न व्यक्ति को शरीर-मन से पवित्र रहना चाहिए, नियन्त्रित रहना चाहिए और सबका मला करने को उद्यत रहना चाहिए। मनु (३।१५२) का कथन है कि अन लेने वाले वैद्यों एवं पूजा-वृत्ति वाले पुजारियों को श्राद्ध में नहीं बुलाना चाहिए। एकावशी बत की विधि के विषय में ब्रह्मवैवर्त (४।२६।१-९२) में भी उल्लेख है। यह ध्यान देने योग्य है। कि एकावशी बत में होम की व्यवस्था नहीं है।

धीरे-धीरे ऊपर वर्णित विधि में बहुत-सी बातें जुड़ती चली गयीं। उपवास वत में संलग्न व्यक्ति को तीन दिनों के मीतर चार वार मोजन-त्याग करना चाहिए; दशमी को केवल एक बार मध्याह्न में खाना चाहिए, एकादशी को दोनों काल उपवास करना चाहिए तथा द्वादशी को एक बार मोजन त्याग करना चाहिए। सामान्य नियम यह है कि वतों के लिए संकल्प प्रातःकाल किया जाता है, किन्तु एकादशी में निबन्धों ने अपवाद रख दिये हैं। का० नि० (पृ० २६७) के मत से दशमी की रात्रि में नियमों के विषय में संकल्प करना चाहिए। यदि एकादशी दशमी से संयुक्त हो तो उपवास-संकल्प रात्रि में होना चाहिए, यदि दशमी अर्घ रात्रि से आगे बढ़ जाय और एकादशी इसमें संयुक्त हो जाय तो संकल्प दूसरे दिन अपराह्न में करना चाहिए। है० (वत, माग १, पृ० १००६) एवं का० नि० (पृ० २६८) ने व्यवस्था दी है कि पुष्पों आदि से अलंकृत मण्डप में विष्णु-प्रतिमा की पूजा होनी चाहिए। स्कन्द० (हे०, वत, माग १, पृ० १००८) में आया है कि द्वादशी को उपवास तोड़ते समय तुलसीदल से युक्त नैवेद्य ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इससे करोड़ों हत्याओं के पापों से छुटकारा मिलता है।

मध्यकालीन निबन्धों में एकादशी व्रत की विधि का अतिशय विस्तार किया गया है। देखिए धर्मसिन्यु

(प्०१९)। यहाँ स्थान-संकोच से इसका वर्णन नहीं किया जायगा।

एकादशी का धार्मिक स्वरूप बढ़ता गया और चान्द्र वर्ष के बारह महीनों की चौबीस एकादिशयों एवं मलमास की दो एकादिशयों को विभिन्न संज्ञाएँ दे दी गयीं। ये संज्ञाएँ कब दी गयीं, कहना सम्मव नहीं है, किन्तु कुछ तो २००० वर्ष प्राचीन हैं। नामों में अन्तर की व्याख्या यहाँ नहीं की जायगी। एक कारण यह प्रतीत होता है कि कुछ पुराणों में मास पूर्णिमान्त हैं तो कुछ में अमान्त, और पूर्णिमान्त गणना में जो माद्र कुष्ण है वह अमान्त गणना में श्रावण कृष्ण है।

ज्येष्ठ शुक्ल की एकादशी को निर्जला कहते हैं क्योंकि इसमें जल का मी प्रयोग नहीं होता, केवल स्नान करते समय या आचमन करते समय ही जल प्रयोग होता है। ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ मास में निर्जल रहना बड़ा कष्ट-साध्य होता है, अतः निर्जला एकादशी की विशिष्ट व्यवस्था की गयी है (हे०, व्रत, माग १, पृ० १०८९-१०९१)। आषाढ़ शुक्ल की एकादशी की रात्रि से कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन तक चार मासों तक विष्णु शयन करते हैं, अतः इन दो एकादशियों को कम से शयनी (विष्णु के शयन से सम्बन्धित) एवं प्रबोधिनी या प्रबोधनी (विष्णु के

५. चैत्र शुक्ल से लेकर एकादशों के २४ नाम कमशः ये हैं—कामबा, वरूथिनी, मोहिनी, अपरा, निर्जला, योगिनी, शयनी, कामिका (या कामदा), पुत्रदा, अजा, परिवर्तिनी, इन्बिरा, पापांकुशा, रमा, प्रबोधिनी (बोधिनी), उत्पत्ति, मोक्षदा, सफला, पुत्रदा, षट्तिला, जया, विजया, आमलकी (या आमर्दकी), पापमोचनी। मलमास की दो एकादशियों के नाम पद्म० ६१६४ एवं ६५ के अनुसार कमला एवं कामदा हैं, किन्तु अहल्याकामधेनु में केवल्यदा एवं स्वर्गवा हैं।

प्रविध्या जागरण से सम्बन्धित) कहा गया है। वर्षा काल में चार मासों तक मारत के बहुत-से मागों में यातायात की सुविधाएँ प्राचीन काल में नहीं थीं, इसी से सब काम ठप्प हो जाते थे और तमी विष्णु को मी शयन करते हुए परिकल्पित कर लिया गया है। यह मी सम्मव है कि विष्णु-शयन का सम्बन्ध वैदिक आयों के पूर्व पुरुषों की उन परिस्थितियों से हो जब कि वे उत्तरी अक्षांशों में रहते थे और जहाँ चार मासों तक सूर्य या तो दिखाई ही नहीं पड़ता या या बहुत ही मन्दा प्रकाश करता था। चार मासों का विष्णु-शयन अन्य रूपों से भी व्याख्यात हो स्कता है। ऐसा माना गया है कि विष्णु न-केवल अपने शेष सर्प पर सोते हैं, प्रत्युत वे माद्रपद की शुक्ल एकादशी को मानवों के सदृश करवट मी बदलते हैं। अतः माद्रपद की वह एकादशी परिवर्तिनी भी कही जाती है। इसी प्रकार अन्य तिथियों में देवों एवं देवियों के शयन की वात उठी है (देखिए राजमार्तण्ड, व० कि० कौ०, पृ० २८५-२८६ में उद्धृत)। विष्णु-शयन की तिथियों के विषय में भी अन्तर्मेद पाया जाता है, किसी मत से एकादशी को, किसी से द्वादशी को तथा तीसरे मत से आषाढ़ शुक्ल की १५वीं तिथि को विष्णु शयन करते हैं। वन० (२०३११२) के मत से विष्णु शेष के फण पर सोते हैं। कालिदास में भी शयन का उल्लेख है (मेघदूत)। वहुत-से कारणों के आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि विष्णु-शयन की अनुश्रुति कम-से-कम २००० वर्ष प्राचीन है।

पुराणों एवं निबन्धों में देवों के शयन की तिथियों के विषय में बड़ा विस्तार पाया जाता है। वामन० (१६१६-१६) में आया है—'आषाढ़ की एकादशी को विष्णु के शयन के लिए शेष नाग के फणों के समान शय्या बनानी चाहिए, शुद्ध होकर द्वादशी को आमन्त्रित ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर मगवान् को सुलाना चाहिए।' पुराणों में ऐसा आया है कि कामदेव आषाढ़ की त्रयोदशी को कदम्ब पुष्पों पर सोते हैं, यक्ष लोग चतुर्दशी को, शिव पूर्णिमा को व्याघ्र-चर्म पर, और ब्रह्मा, विश्वकर्मा, पार्वती, गणेश, यम, स्कन्द, सूर्य, कात्यायनी, लक्ष्मी, नागराज एवं साघ्य लोग कम से कृष्ण पक्ष की प्रथमा से एकादशी की तिथियों में सोते हैं। का० वि० (पृ० २२५), हेमाद्रि (काल, पृ० ८८८-८८९) के उद्धरणों से पता चलता है कि पवित्रारोपण (देवों को जनेऊ देना) एवं शयन के लिए कुबेर, लक्ष्मी, मवानी, गणेश, सोम, गुह, भास्कर, दुर्गा, माताएँ, वासुिक, ऋषिगण, विष्णु, काम एवं शिव कम से प्रथमा से लेकर चतुर्दशी तक की तिथियों के स्वामी हैं।

एक आवश्यक नियम स्मरण रखने योग्य है कि जिसका जो नक्षत्र हो या जिस तिथि का जो स्वामी हो, शयन, करवट-परिवर्तन तथा अन्य कार्य (जागरण आदि) उसी तिथि एवं नक्षत्र में होते हैं। शयन की तिथियों के विषय में प्रमूत मतभेद है। विस्तार-भय से हम इसे यहीं छोड़ते हैं।

एकादशी व्रत के अधिकारियों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं, वैष्णव एवं स्मार्त। पद्म० (३।१।२०-३२, ४।१०।६५-६६, ६।२५२।७४, ६।५९), विष्णु० (३।७।२०-३३, ३।८।९-१९), भागवत एवं कुछ निवन्धों में वैष्णव' शब्द परिमाषित है। वैष्णव वह है जो वैखानस, पांचरात्र आदि सम्प्रदायों के वैष्णव आगमों के अनुसार किय रहता है। वैष्णव-परिमाषा के लिए देखिए स्कन्दपुराण एवं प्रो० एस्० के० दे द्वारा लिखित 'वैष्णव फेय एवं मूवमेण्ट' (पृ० ३६४-३६६ एवं ४१३)।

जब एकादशी दशमी एवं द्वादशी से संयुक्त होती है तो किस तिथि पर उपवास किया जाय? इस प्रश्न का उत्तर व्यक्ति के बैष्णव एवं स्मार्त होने पर निर्मर है। इस विषय में जो नियम हैं, वे बड़े गूढ़ हैं और हम स्थान-संकोच से उनका विवेचन छोड़ रहे हैं। देखिए हे० (काल, पृ० २०६-२८८), का० नि० (पृ० २३३-२५६), ति० त० (पृ० १०४-१०८), स० प्र० (पृ० ६६-७४), नि० सि० (पृ० ३७-४४), स्मृतिमुक्ताफल (काल, पृ० ८३९-८४४) एवं घ० सि० (पृ० १६-१९)।

अन्य तिथियों की मौति एकादशी मी दो प्रकार की होती है, यथा सम्पूर्णा एवं विद्वा या खण्डा। जब तिथि ६० घटिकाओं की हो और सूर्योदय से आरम्म हो तो उसे सम्पूर्णा कहते हैं। गरुड़० एवं मविष्य० के मत से वही एकादशी सम्पूर्णा है जो सूर्योदय के पूर्व दो मुहुतों (अर्थात् ४ घटिका पूर्व). से आरम्म होती है और जब वह दिन मर रहने वाली होती है।

नारद एवं अन्य पुराणों ने दशमी से संयुक्त एकादशी की निन्दा की है। गान्धारी ने दशमी से संयुक्त एकादशी को उपवास किया, अतः उसके सौ पुत्र महाभारत में मारे गये। नारद० (पूर्वार्ध, अध्याय २९) ने एकादशी एवं द्वादशी का विवेचन किया है।

बह्मवैवर्तपुराण (हे०, काल, पृ० २५५-२५९) में एकादशी के चार वेघों का उल्लेख है, यथा अरुणोदय-वेस, अतिवेध, महावेध एवं योग। किन्तु यहाँ पर इनका वर्णन नहीं किया जायगा। वैष्णवों के लिए दशमी के सूर्योदय के उपरान्त ५६ घटिकाओं से अधिक विस्तृत होने पर जब एकादशी का आरम्म हो जाता है और वह दूसरे दिन पूरे दिन मर रहती है तब इसी को अरुणोदय-वेध कहा जाता है, और वैष्णव लोग ऐसी एकादशी को जो अरुणोदय वेध के उपरान्त आती है, उपवास नहीं कर सकते। यही बात तब भी होती है जब दशमी सूर्योदय के पूर्व ३, २ या १ घटिका तक चली आयी रहती है या दशमी तब तक रहती है जब तक सूर्य उदित होता रहता है और एकादशी का आरम्म होता है (अर्थात् जब एकादशी सूर्योदयवेध वाली रहती है)। ऐसी स्थित में भी उपवास नहीं होता, प्रत्युत वह द्वादशी को होता है। यदि द्वादशी तीन दिनों तक रहती है तो उसी दिन उपवास होता है जिस दिन द्वादशी सम्पूर्णा होती है और दूसरे दिन जब द्वादशी का अन्त होता है, पारण किया जाता है। उपर्युक्त दशाओं के अतिरिक्त अन्य स्थितियों में एकादशी के दिन उपवास तथा द्वादशी के दिन परण होता है। नारद० (पूर्वार्ध, २०। ४५) में आया है कि जब दो एकादशियाँ हों, चाहे शुक्ल पक्ष में या कृष्ण पक्ष में, गृहस्थ को प्रथम में तथा यतियों को दूसरी में उपवास करना चाहिए। संन्यासियों एवं विधवाओं के लिए वैष्णवों के नियम ही व्यवस्थित हैं। स्मार्त (वैष्णवों के अतिरिक्त अन्य) लोग अरुणोदयवेध से प्रमावित नहीं होते, वे सूर्योदयवेध का सिद्धान्त अपनाते हैं, अर्थात् यदि सूर्योदय के पूर्व दशमी हो और एकादशी सूर्योदय से आरम्म होती हो तो स्मार्त लोग एकादशी को उपवास करते हैं।

मोजन, शारीरिक एवं मान्सिक कार्यों के विषय में कुछ प्रतिबन्ध हैं जो कि संकल्प से लेकर पारण तक एकादशी वृत में चलते रहते हैं (हे०, वृत, माग १, पृ० १००८)। किसी व्यक्ति के मृत हो जाने पर मी यह वृत नहीं टूटता। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय निग्रह, देव-पूजा, होम, सन्तोष एवं अस्तेय नामक सामान्य धर्म सभी वृतों में पालित होते हैं। दशमी, एकादशी एवं द्वादशी पर विभिन्न नियम हैं, किन्तु ये एक-दूसरे से निल-से जाते प्रकट होते हैं। दशमी के लिए शाक, मांस, मसूर की दाल, (एकमक्त के उपरान्त) पुनर्मोजन, मैथुन, द्यूत, अधिक जलसेवन—वैष्णव लोगों को इनका त्याग करना चाहिए। मत्स्य० (हे०, काल, पृ० १९३) के अनुसार निम्न बारह त्याज्य हैं—काँसे के पात्र, मांस, सुरा, क्षौद्र (मधु), तैल, असत्य माषण, ज्यायाम, प्रवास (यात्रा), दिवास्वाप (दिन का शयन), धनार्जन, तिलंपिष्ट, मसूर की दाल।

एकादशी व्रत के उपवास के दिन बहुत-से प्रतिबन्ध हैं, आगे कुछ दिये जाते हैं पिततों, पाखण्डों, नास्तिकों आदि से सम्माषण, असत्य भाषण, ज्ञूत आदि। व्रत के दिन अन्त्यजों एवं ग्राम के बाहर रहने वालों से न बात करना तथा न उन्हें देखना, रजस्वला, पातिकयों, सूती नारियों (जिसने हाल ही में जनन किया हो) से भी सम्माषण करना या उनको देखना वर्जित है। और देखिए देवल (कृत्यकल्प, व्रत, पृ० ४, कृ० र०, पृ० ५७ आदि में उद्घृत), राज-मर्क्तण्ड (११६७) एवं व्यास (गरुड़०, १।१२८।६७; हे०, काल०, पृ० २०१)।

#### धर्मज्ञास्त्र का इतिहास

द्वादशों के दिन विष्णु-पूजा होती है और निम्न बातें नहीं की जाती हैं, यथा दिन-शयन, दूसरे का भोजन, दोपहर के उपरान्त पुनर्मोजन, मैथुन, मबु, काँसे के बरतन का प्रयोग, मांस एवं तैल का प्रयोग। और देखिए ब्रह्म-पूराण (हे०, कारू, पू० २०३)।

कुछ पुराणों (यथा ब्रह्मवैवर्त) ने आठ प्रकार की द्वादिशयों का उल्लेख किया है, यथा उन्मीलनी, वञ्जुली, विस्पर्शा, पक्षविधनी, जया, विजया, जयन्ती एवं पापनाशिनी। देखिए है० (काल, पृ० २६०-२६३), नि० सि०

(४३), स्मृ॰ की॰ (२५०-२५४) आदि। अन्य विस्तार यहाँ छोड़ा जा रहा है।

उद्यापन या पारण या पारणा के साथ एकादशी वृत का अन्त होता है। 'पारण' शब्द की व्युत्पत्ति कुछ लोगों ने "पार कर्मसमाप्ती" धातु से की है, जिसका अर्थ है 'किसी कृत्य को समाप्त करना।' कूर्म के अनुसार एकादशी को वृत एवं द्वादशी को पारण होना चाहिए। किन्तु त्रयोदशी को पारण नहीं होना चाहिए, क्यों कि वैसा करने से १२ द्वादशियों के पुष्प नष्ट हो जाते हैं। किन्तु ऐसी व्यवस्था होने पर भी कुछ विधियों में त्रयोदशी को पारण हो सकता है। यदि एक दिन पूर्व से एकादशी दशमी से संयुक्त हो और दूसरे दिन की द्वादशी से भी संयुक्त हो तो उपवास द्वादशी को होता है, किन्तु यदि उपवास के उपरान्त द्वादशी न हो तो त्रयोदशी के दिन पारण होता है। सामान्य नियम यह है कि सभी वृतों में पारण प्रातःकाल होता है।

84

#### अध्याय ६

## चातुर्मास्य

आषाढ़ शुक्ल एकादशी या द्वादशी या पूर्णिमा को या उस दिन जब सूर्य कर्क राशि में प्रविष्ट होता है, चातुर्मास्य वर्त का आरम्भ किया जाता है। यह चाहे जब आरम्म हो, कार्तिक शुक्ल द्वादशी को समाप्त हो जाता है। वृती को उस दिन उपवास एवं देव-पूजा करके ऐसा कहना चाहिए-- हे देव, मैंने यह वृत आपकी उपस्थिति में लिया है, यदि आप मेरे प्रति अनुप्रह करें तो यह निर्विष्न समाप्त हो जाय; व्रत ग्रहण के उपरान्त वीच ही में मैं मर जाऊँ तो आपके अनुग्रह से यह पूर्णरूपेण समाप्त माना जाय' (गरुड़० १।१२१।२-३)। जब गुरु (बृहस्पति) या शुक्र अस्त हो जायँ तब मी इसका आरम्भ किया जा सकता है। चार भासों तक प्रती की कुछ खांद्य पदार्थ त्याग देने होते हैं, यथा श्रावण में शाक, माद्रपद में दही, आश्विन में दूघ एवं कार्तिक में दालें। कुछ लोगों के मत से कुछ या सभी प्रकार के शाक त्यागने होते हैं। व्रती की शय्या-शयन, मांस, मधु आदि मी त्यागने पड़ते हैं। व्रत समाप्त होने पर व्रती ब्राह्मणों को निमन्त्रित कर मोजन कराता है और दक्षिणा देता है और प्रार्थना करता है—'हे प्रमु, आपको प्रसन्न करने के लिए मेरे द्वारा यह वत लिया गया था; हे जनार्दन जो भी दोष हो, आपकी कृपा से यह पूर्ण हो। ' यह व्रत आज भी, विशेषतः नारियों द्वारा सम्पादित होता है। चातुर्मास्य व्रत में कुछ वस्तुओं के त्याग के फलों के विषय में कृत्यतत्त्व (पृ० ४३५), व्रतार्क, व्रत प्रकाश एवं अन्य मध्यकालिक निवन्धों में मत्स्य० एवं मविष्य० (११६-९) के लम्बे-लम्बे उद्धरण पाये जाते हैं। कुछ वचन निम्न हैं--- गूड़-रयाग से मधुर स्वर प्राप्त होता है, तैल-त्याग से अंग सुन्दर हो जाते हैं, घृत-त्याग से सौन्दर्य मिलता है, शाक-त्थाग से वृद्धि एवं बहुपुत्र प्राप्त होते हैं, शाक एवं पत्रों के त्याग से पववान की प्राप्ति होती है तथा दिध-दुग्ध-त्याग से व्यक्ति गौओं के लोक में जाता है।

१. चातुर्मासिकन्नतग्रहणे कालचतुष्टम्। आषाढी पौर्णमासी शुक्ला एकादशी द्वादशी कर्कटसंकान्तिइच। का० वि० (पृ०३३२); हे० (न्नत, भाग २, पृ० ८०६); ति० त० (पृ०१११); गरुड़ (१।१२१।१) ने एकादशी एवं आषाढ़ी पौर्णमासी को चातुर्मास्य न्नत कहा है।

२. चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनाविध । मधुस्वरो भवेक्षित्यं नरो गुडविवर्जनात् । तैलस्य वर्जनादेव सुन्दरांगवाप्नु प्रजायते । कटुर्तेलपरित्यागात् शत्रुनाशमनानुयात् । ताम्बूलवर्जनाद् भोगो रक्तकण्ठः प्रजायते । घृतत्यागात्सुलावण्यं सर्वं स्निग्धं वपुभंयेत् । फलत्यागाच्च मितमान् बहुपुत्रः प्रजायते । शाक्तपत्रागात् पक्वाश्रादो नरो भवेत् । . . . दिधदुग्धपरित्यागात्गोलोकं लभते नरः ।। ब्रतप्रकाश, कृत्यतत्त्व (पृ०४३५) ।

9

40

वैदिक काल में चातुर्मास्य नामक यज्ञ होते थे जो फाल्गुन (या चैत्र), आषाढ़ एवं कार्तिक की पूर्णिमा के दिवसों में सम्मादित होते थे और कम से वैश्वदेव, वरुणप्रघास एवं साकमेध नाम से पुकारे जाते थे (शुनासीरीय नामक चौथे यज्ञ की चर्चा यहाँ नहीं होगी)। देखिए इस ग्रन्थ का खण्ड २। आप० श्रौ० सूत्र (८।४।१३) में स्पष्ट रूप से आया है कि वैश्वदेव (चातुर्मास्य के पर्व) का सम्पादन वसन्त में तथा वरुणप्रघास का वर्षा ऋतु में होताहै। यह घ्यान में रखने योग्य है कि इन ऋतु-सम्बन्धी यज्ञों में व्रती को कुछ कृत्यों का त्याग करना होता था, यथा शय्या-शयन, मांस, मधु, नमक, मैथुन एवं शरीरालंकरण जो एकादशीव्रत के प्रतिवन्धों से मिलते हैं। याज्ञ० (१।१२५) ने सोम यज्ञ को धनिक के लिए प्रति वर्ष करने की व्यवस्था दी है (अर्थात् इसे नित्य ठहराया है)। यही बात प्रत्येक अयन में पशुबन्ध के लिए तथा आग्रयणेष्टि (जो नवाच्न होने पर किया जाता है) एवं चातुर्मास्यों के लिए मी प्रयुक्त हुई है। यहाँ पर वैदिक चातुर्मास्यों की ओर संकेत किया गया है। ये पौराणिक काल के चातुर्मास्य वत नहीं हैं।

याज्ञवल्लयस्मृति में 'व्रत' शब्द प्रायश्चित्त के अर्थ में प्रयुक्त है (३।२५१, २५२, २५४, २६६, २६९, २८२, २९८, ३००)। उसमें 'व्रत' शब्द ब्रह्मचर्य के अर्थ में भी आया है (यथा ३।१५); और भोजन-व्यवस्था के अर्थ में भी 'व्रत' का प्रयोग है (३।२८९)। कहीं भी किसी दिन (तिथि), नक्षत्र आदि में किये जाने वाले कृत्यों के अर्थ में 'व्रत' शब्द नहीं आया है, जैसा कि हम पुराणों में पाते हैं। इससे प्रकट होता है कि याज्ञवल्क्यस्मृति के काल तक पुराणों में विणत व्रतों को प्रधानता नहीं प्राप्त हो सकी थी। इसके १००० से अधिक क्ले कों में कोई भी पौराणिक अर्थ में 'व्रत' शब्द का प्रयोग नहीं करते।

SRI JAGADGURU VISHWAMANDAL JANANA SIMHASAN JINANAMANDAL LIBRARY Jengemwedi Math, Verenedi ACC No. 2524

#### अध्याय ७

### नागपञ्चमी, मनसापूजा, रक्षाबन्धन, कृष्णजन्माष्टमी

श्रावण मास में बहुत से महत्त्वपूर्ण व्रत किये जाते हैं, जिनमें शुक्ल पक्ष की पंचमी को किया जाने वाला नागपंचमी व्रत प्रसिद्ध है। मारत के सभी मागों में नागपंचमी विभिन्न प्रकार से सम्पादित होती है। कुछ लोगों के मत से वर्ष मर के सर्वोत्तम शुम ३ दे दिनों में नाग पंचमी दे शुम दिन है। किन्तु कुछ लोग यह महत्त्व अक्षयतृतीया को देते हैं, जैसा कि हमने इस माग के चौथे अध्याय में देख लिया है। मिवष्य (ब्रह्म पर्व, ३२।१-३९) में नागपंचमी का विस्तार के साथ उल्लेख है (कु० क०, व्रत, पृ०८७ ९०; हे०, व्रत, माग १, पृ०५५७-५६०)। संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जाता है—जब लोग पंचमी को दूध से वासुकि, तक्षक, कालिय, मिणमद्र, ऐरावत, घृतराष्ट्र, कर्कोटक एवं घनव्जय नामक सपों को नहलाते हैं तो ये नाग उनके कुटुम्बों को अमयदान दे देते हैं। मिवष्य० (११३२) में यह कथा आयी है—नागों की माता कद्र ने अपनी बहिन विनता से बाजी लगायी कि इन्द्र के घोड़े उन्चेक्षवा की पूँछ काली है। विनता के अनुसार पूँछ एवं शरीर दोनों सफेद थे, किन्तु कद्र कहती थी कि पूँछ काली है किन्तु घोड़ा खेत है। कद्र ने अपने पुत्रों से पूँछ में लिपट जाने को कहा जिससे वह काली दृष्टिगोचर हो, किन्तु उन्होंने इस घोखेबाजी से अपने को विलग रखा, जिस पर कद्र ने उन्हें शाप दिया कि तुन्हें अगिन जला डालेगी (जनमेजय के सर्पसत्र में)। लोगों को चाहिए कि वे नागों की सोने, चाँदी या मिट्टी की प्रतिमाएँ बनायें और करवीर एवं जाती पुष्पों तथा गंघादि से उनकी पूजा करें। पूजा का परिणाम होगा सर्प-दंश से मुक्ति। और देखिए मिवष्योत्तर पुराण (अध्याय ३६) एवं हेमाद्रि (काल, पृ० ६२१); का० वि० (पृ० ४१३); कु० र० (पृ० २३४)। सौराष्ट्र में नागपंचमी श्रावण कृष्ण पक्ष में सम्पादित होती है।

बंगाल एवं दक्षिण भारत में (मह।राष्ट्र में नहीं) मनसा देवी-पूजन होता है जो अपने घर के आँगन में स्नुही (यूहर) की टहनी पर श्रावण के कृष्ण पक्ष की पंचमी को किया जाता है। देखिए राजमार्तण्ड, समयप्रदीप, कृत्यरत्नाकर, तिथितत्त्व आदि। सर्वप्रथम सर्प-मय से दूर रहने के लिए मनसा देवी-पूजन का संकल्प होता है, तब गन्ध, पूज्प, द्रीप एवं नैवेद्य दिया जाता है और तब अनन्त एवं अन्य नागों की पूजा होती है जिसमें प्रमुख रूप से दूध-घी का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। घर में नीम की पत्तियाँ रखी जाती हैं, स्वयंत्रती उन्हें खाता है और ब्राह्मणों को भी खिलाता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (२।४५-४६)ने मनसा देवी के जन्म, उसकी पूजा, स्तोत्र (प्रशंसा) के विषय में उल्लेख किया है।

दक्षिण मारत में श्रावण शुक्ल पंचमी को काठ की चौकी पर लाल चन्दन से सर्प बनाये जाते हैं या मिट्टी के पीले या काले रंगों के साँपों की प्रतिमाएँ बनायी या खरीदी जाती हैं और उनकी पूजा दूध से की जाती है। विभिन्न प्रकार के साँपों को लेकर सँपेरे घूमते रहते हैं, उनके साँपों को लोग दूध देते हैं और उन्हें धन भी देते हैं। SRI JACADCURU VICHAMANDAL SA SIMHASAN JINAMANDAL SA SIMHASAN JINAMAN SA SIMHAN SA SIMHAN SA SIMHASAN SA SIMHAN SA SIMHASAN SA SIMHASAN SA SIMHASAN SA SIMHASAN SA SIMHASAN SA SIMHAN SA SIMHAN

यदि पर्वमी के किंग्डी से संयुक्त हो तो षष्ठी से संयुक्त पंचमी को वरीयता प्राप्त होती है। वतकालविविक में आया है किंग्डिस सम्बद्धित्र में या उससे विहीन ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को मनसावत किया जाता है जिससे मनसा देवी विषधर सम्बद्धित की रक्षा करती हैं।

मारत में सर्प-पूजा का आरम्म कब हुआ यह एक किंटन समस्या है। ऋग्वेद में इस विषय में कोई संकेत नहीं मिलता। इतना अवश्य आया है कि इन्द्र अहि (सर्प) के शत्रु हैं (ऋ० २।३०।१, २।१९।३)। अहि-हत्या की चर्चा मी हुई है (ऋ० १।१६५।६, ३।४७।४)। और देखिए फण वाले अहि: को (ऋ० ६।७५।१४)। बृ० उप० (४।४।७ एवं प्रश्न० ४।५) में साँप ('पादोदर', जिसके पाँच शरीर के मीतर होते हैं) के केंचुल का उल्लेख है। और देखिए (ऋ० ९।८६।४४)। तै० सं० (४।२।८।३) एवं वाज० सं० (१३।६-८) में सर्पों को नमस्कार किये जाने की ओर संकेत है। अथवंवेद (८।१४।१३-१५) में तक्षक एवं घृतराष्ट्र नामक सर्पों के नाम आये हैं। काठक सं० (५-६) ने पितरों, सर्पों, गन्धवों, जलों एवं ओषधियों को 'पंचजन' कहा है, किन्तू ऐत० ब्रा० (१३।७) ने देवों, मनुष्यों, गन्धवों, अप्सराओं, सर्पों एवं पितरों को 'पंचजन' माना है। इससे प्रकट है कि पश्चात्कालीन वैदिक काल में सर्प लोग गन्धवों के समान एक जाति के अर्थ में लिये जाने लगे थे।

अवनि गृ० (२।१।१-१५), पारस्कर गृ० (२।१४) एवं अन्य गृह्यसूत्रों में श्रावण की पूर्णिमा को 'संपंबलि' 'कृत्य किये जाने का उल्लेख है। देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड २। महामारत में नागों का बहुत उल्लेख है। अवि० (३५ वां अध्याय) ने बहुत-से नागों (शेष से आरम्भ कर) का उल्लेख किया है और इसके १२३।७१ में तया उद्योग० (१०३।९-१६) में नागों के बहुत नाम आये हैं। अर्जुन ने जब १२ वर्ष के ब्रह्मचर्य का ब्रत िष्या था तो वे नागों के देश (ऐसी जाति जिसका चिह्न 'नाग' था) में गये थे और अपनी पृक्षर आकृष्ट नागकुमारी उल्लूपी से विवाह किया था। अरुदमेश के अरुव की रक्षा में आये हुए अर्जुन से मणिपुर में चित्रांगदा के पुत्र बश्चाहन ने युद्ध किया और अर्जुन को मार डाला, जो संजीवन रत्न से पुनर्जीवित किये गये (आरुवमेधिक पर्व, अध्याय ७९-८१)। सर्गों का सम्बन्ध विष्णु एवं शिव दोनों से हैं। विष्णु शेष नाग के फण की शय्या पर सोते हैं और शिव नागों को गले में यज्ञोभवीत के रूप में रखते हैं (वनपर्व २०३।१२ २७२।३८-३९; अनुशासन० १४।५५)। मगवद्गीता (१०१२८-२९) में मगवान् कृष्ण ने अपने को 'सर्पों' में वासुकि तथा 'नागों' में अनन्त कहा है। 'सर्प' एवं 'नाग' में क्या अन्तर किया गया है, स्पष्ट नहीं हो पाता। सम्मवतः 'सर्पं' शब्द समी रेंगने वाले जीवों तथा 'नाग' फन या फण वाले साँप के लिए प्रयुक्त है। पुराणों में नागों के विषय में बहुत-सी कथाएँ हैं। देखिए वोगेल कृत 'इण्डिएन सर्पेण्ट लोर' (१९२६) जहाँ महामारत, पुराणों एवं राजतरंगिणी के आधार पर कष्टसाध्य शोव-कार्य उपस्थित किया गया है। सम्भवतः वर्ष ऋतु में सर्प-दंश से बहुत-से लोग मर जाया करते थे, अतः सर्प-पूजा का आरम्म सर्प-मय से ही हुआ। आजकल मी प्रति वर्ष प्रायः १०,००० व्यक्ति मारत में सर्प-दंश से मृत हो जीते हैं,

१. यथा कृत्यकामघेनुघृतो व्यासः। ज्येष्ठशुक्लदशस्यां तु हस्तक्षें ब्रह्मरूपिणी। कश्यपान्मनसा देवी जातेति मनसा स्मृता। तस्मात्तां पूजयेत्तत्र वर्षे वर्षे विधानतः। अनन्ताद्यष्टनागांश्च नरो नियमतत्परः॥... हस्तनक्षत्रयुतदशाम्यां पूजयेदित्येको विधिः। केवलदशम्यामपीत्यपरश्च। कालविवेक (इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, जिल्द १७, संख्या ४, पूरक पृ० १६)।

२. नागवज्ञोपनीती च नागचर्मोत्तरच्छदः। अनुशासन० (१४।५५)। रुद्र का वर्णन यों है---सहस्रशीर्षा पुरुषः स्वय्तुकामस्त्वतीन्द्रियः। फटासहस्रविकटं शेषं पर्यक्रभाजनम् ।। वनपर्व (२७२।३८)।

जब कि जंगली हिंसक पशुओं से केवल ३००० के लगमग लोग मारे जाते हैं। गृह्यसूत्रों में विणत सपंबिल की पूरिणमा तिथि शुक्ल पक्ष की पंचमी में क्यों परिवर्तित हो गयी, ,स्पष्ट रूप से कारण नहीं ज्ञात हो पाता। विषुवत् रेखा पर पहले वर्षा हो जाने के थोड़े परिवर्तन के कारण ही ऐसा हो सका होगा। पीपल जैसे पवित्र वृक्षों के नीचे सपीं की प्रस्तर-प्रतिमाएँ द्रविड़ देश में साधारण रूप से प्राप्त होती हैं। दक्षिण में कुछ नाग-मन्दिर भी पाये जाते हैं, यथा सतारा जिले में बत्तिस शिरालेन एवं हैदराबाद में भोग पराण्देन नामक स्थानों में।

श्रावण की पूर्णिमा को अपराह्ण में एक कृत्य होता है जिसे रक्षाबन्धन कहते हैं। देखिए हे० (व्रत, माग २, पृ० १९०-१९५), नि० सि० (पृ० १२१), पु० चि० (पृ० २८४-२८५), व्रताकं। श्रावण की पूर्णिमा को सूर्योदय के पूर्व उठकर देवों. ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करने के उपरान्त अक्षत, तिल, धागों से युक्त रक्षा बनाकर धारण करना चाहिए। राजा के लिए महल में एक वर्गाकार मूमि-स्थल पर जल-पात्र रखा जाना चाहिए, राजा को मिन्त्रयों के साथ आसन ग्रहण करना चाहिए, वेश्याओं से घिर रहने पर गानों एवं आशीर्वचनों का ताता लगा रहना चाहिए; देवों, ब्राह्माणों एवं अस्त्र-शस्त्रों का सम्मान किया जाना चाहिए, तत्पश्चात् राजपुरोहित को चाहिए कि वह मन्त्र के साथ 'रक्षा' बाँधे—'आप को वह रक्षा बाँधता हूँ जिससे दानवों के राजा बिल बाँधे गये थे, हे रक्षा, तुम (यहाँ) से न हटो, न हटो।' समी लोगो को, यहाँ तक कि शूद्रों को मी, यथाशक्ति पुरोहितों को प्रसन्न करके रक्षा-बन्धन बँधवाना चाहिए। जब ऐसा कर दिया जाता है तो व्यक्ति वर्ष मर प्रसन्नता के साथ रहता है। हेमाद्रि ने मविष्योत्तरपुराण का उद्धरण देते हुए लिखा है कि इन्द्राणी ने इन्द्र के दाहिने हाथ में रक्षा बाँधकर उसे इतना योग्य बना दिया कि उसने असुरों को हरा दिया। जब पूर्णिमा चतुर्दशी या आने वाली प्रतिपदा से युक्त हो तो रक्षा-बन्धन नहीं होना चाहिए। इन दोनों से बचने के लिए रात्रि में ही यह छत्य कर लेना चाहिए।

यह कृत्य अब भी होता है और पुरोहित लोग दाहिनी कलाई में रक्षा बाँघते हैं और दक्षिणा प्राप्त करते हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं अन्य स्थानों में नारियाँ अपने माइयों की कलाई में रक्षा बाँघती हैं और मेटें लेती-देती हैं।

श्रावण की पूर्णिमा को पश्चिमी मारत (विशेषतः कोंकण एवं मलाबार में) न केवल हिन्दू, प्रत्पुत मुसलमान एवं व्यवसायी पारसी मी, समुद्र-तट पर जाते हैं और समुद्र को पुष्प एवं नारियल चढ़ाते हैं। श्रावण की पूर्णिमा को समुद्र में तूफान कम उठते हैं और नारियल इसीलिए समुद्र-देव (वरुण) को चढ़ाया जाता है कि वे व्यापारी जहाजों को सुविधा दे सकें।

श्रावण (अमान्त) कृष्णपक्ष की अष्टमी को कृष्णजन्माष्टमी या जन्माष्टमी वत एवं उत्सव प्रचलित है, जो मारत में सर्वत्र मनाया जाता है और सभी वर्तों एवं उत्सवों में श्रेष्ठ माना जाता है। कृछ पुराणोंमें ऐसा आया है कि यह माद्रपद के कृष्णपक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। इसकी व्याख्या यों है कि पौराणिक वचनों में मास पूर्णिमान्त हैं तथा इन मासों में कृष्ण पक्ष प्रथम पक्ष है। पद्म० (३।१३), मत्स्य० (५६), अग्नि० (१८३) में कृष्ण-जन्माष्टमी के माहात्म्य का विशिष्ट उल्लेख है।

कृष्ण-पूजा की प्राचीनता एवं कृष्ण के विषय में संक्षेप में कृष्ट कह देना आवश्यक है। छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६) में आया है कि कृष्ण देवकीपुत्र ने घोर आंगिरस से शिक्षाएँ ग्रहण कीं। कृष्ण नाम के एक वैदिक किंव थे जिन्होंने अश्वनों से प्रार्थना की है (ऋ० ८।८५।३)। अनुक्रमणी ने ऋ० ८।८६-८७ की कृष्ण-आंगिरस का माना

३. देवद्विजातिशस्ता मुल्त्रीरध्यैः समर्चयेत् प्रथमम् । तदनु पुरोधा नृपतेः रक्षां बध्नीत मन्त्रेणः ॥ येन बद्धो वल्की राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वामिश्वधनामि रक्षे मा चल मा चल ॥ भविष्योत्तर० (१३७।१९-२०)।

है। जैन परम्पराओं में कृष्ण २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ के समकालीन माने गये हैं और जैनों के प्राक्-इतिहास के ६३ महापुरुषों के विवरण में लगमग एक-तिहाई माग कृष्ण के सम्बन्ध में ही है। महामारत में कृष्ण-जीवन मरपूर है। महामारत में वे यादव राजकुमार कहे गये हैं, वे पाण्डवों के सबसे गहरे मित्र थे, बड़े मारी योद्धा थे, राजनीतिज्ञ एवं दार्शनिक थे। कितपय स्थानों पर वे परमात्मा माने गये हैं और स्वयं विष्णु कहे गये हैं (शान्ति, ४७।२८; द्रोण, १४६।६७-६८; कर्ण, ८७।७४; वन, ४९।२०; मीष्म, २१।१३-१५)। युधिष्टिर (द्रोण, १४९। १६-३३), द्रौपदी (वन, २६३।८-१६) एवं मीष्म (अनुशासन, १६७।३७-४५) ने कृष्ण के विषय में प्रशंसा-गान किये हैं। हरिवंश, विष्णु, वायु, मागवत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है जो महामारत में नहीं पाया जाता।

पाणिनि (४।३।९८) से प्रकट होता है कि इनके काल में कुछ लोग वासुदेवक एवं अर्जुनक भी थे, जिनका अर्थ है कम से वासुदेव एवं अर्जुन के मक्त । पतञ्जिल के महामाध्य के वार्तिकों में कृष्ण-सम्बन्धी व्यक्तियों एवं घटनाओं की ओर संकेत है, यथा वार्तिक सं० ६ (पा० ३।१।१२६) में 'कंस' तथा बिल के नाम; वार्तिक सं० २ (पा० ३।१।१३८) में 'गोविन्द'; एवं पा० ३।२।२१ के वार्तिक में वासुदेव एवं कृष्ण। पतञ्जिल में 'सत्यमामा' को 'मामा' मी कहा गया है। 'वासुदेववर्ग्यः', 'अकूरवर्ग्यः' (वार्तिक ११, पा० ४।२।१०४), 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुम्यश्च' (पा० ४।१।११४) में, उग्रसेन (को अन्धक कहा गया है) एवं वासुदेव तथा बलदेव (को वृष्णि कहा गया है) आदि शब्द आये हैं। अधिकांश विद्वानों ने पतञ्जिल को ई० पू० दूसरी शताब्दी का माना है। कृष्ण-कथाएँ इसके बहुत पहले की हैं। आदि० (१।२५६) एवं समा० (३३।१०-१२) में कृष्ण को वासुदेव एवं परमब्रह्म एवं विश्व का मूल कहा गया है। ई० पू० दूसरी या पहली शताब्दी के घोसुण्डी अभिलेख (एपि० इण्डि०, १६, पृ० २५-२७; ३१, पृ० १९८ एवं इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, ६१, पृ० २०३) में कृष्ण को 'मागवत एवं सर्वश्वर' कहा गया है। यही बात नानाघाट अभिलेखों (ई० पू० २०० ई०) में मी है। वेसनगर के गरुडच्वल अभिलेख में वासुदेव को 'देव-देव' कहा गया है। ये प्रमाण सिद्ध करते हैं कि ई० पू० ५०० के लगमग उत्तरी एवं मध्य मारत में वासुदेव की पूजा प्रचलित थी। अधिक प्रकाश के लिए देखिए श्री आर० जी० मण्डारकर कृत 'वैष्णविष्म, शैविज्म 'आदि (पृ० १-४५), जहाँ वैष्णव सम्प्रदाय एवं इसकी प्राचीनता के विषय में विवेचन उपस्थित किया गया है।

यह आश्चर्यजनक है कि कृष्णजन्माष्टमी पर लिखे गये मध्यकालिक ग्रन्थों ने मविष्य ०, मविष्योत्तर ०, स्कन्द ०, विष्णुधर्मोत्तर ०, नारदीय एवं ब्रह्मवैवर्त पुराणों से उद्धरण तो लिये हैं किन्तु उन्होंने उस मागवत पुराण को अछूता छोड़ रखा है जो पश्चात्कालीन मध्य एवं वर्तमानकालीन वैष्णवों का 'वेद' माना जाता है। मागवत में कृष्ण-जनम का विवरण संदिग्ध एवं साधारण है। वहाँ ऐसा आया है कि जन्म के समय काल सर्वगुणसम्पन्न एवं शोमन था, दिशाएँ स्वच्छ एवं गगन निर्मल एवं उडुगण युक्त था, वायु सुखस्पर्शी एवं गन्धवाही था और जब जनार्दन ने देवकी के गर्म से जन्म लिया तो अर्धरात्रि थी तथा अन्धकार ने सबको ढँक लिया था।

४. अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः। यहाँवाजनजन्मकं शान्तक्षंग्रहतारकम्।। दिशः प्रसेद्धुर्गगनं निमंलोडुगणोवयम्।...ववा वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः।...निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्वने। वेवक्पण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः॥ भागवत० १०।३।१-२, ४, ८। यहां 'अजनजन्मक्षं' शब्द का प्रयोग अपूर्व है—न विद्यते जनः जन्म यस्य स अजनः (प्रजापित, जो आत्मभू या स्वयंभू कहा गया है)। यहां 'अजनजन्मक्षं' का अर्थ, लगता है, जिसका जन्मनक्षत्र वह रोहिणी है जिसका प्रजापित (अजन) देवता है। दूसरे एवं चौथे क्लोकों में रघुवंश (३।१४) के पद 'दिशः प्रसेदुर्मक्तो ववुः सुखाः' की ध्वनि फूट रही है।

मिवष्योत्तर० (४४।१-६९) में कृष्ण द्वारा कृष्णजन्माष्टमी व्रत के बारे में युधिष्ठिर से स्वयं कहलाया गया है—मैं वसुदेव एवं देवकी से माद्र कृष्ण अष्टमी को उत्पन्न हुआ था, जब कि सूर्य सिंह राशि में था, चन्द्र वृषम में था और नक्षत्र रोहिणी था (७४-७५ रलेक)। जब श्रावण के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को रोहिणी-नक्षत्र होता है तो वह तिथि जयन्ती कहलाती है, उस दिन उपवास करने से सभी पाप जो बचपन, युवावस्था, वृद्धावस्था एवं बहुत-से पूर्वजन्मों में हुए रहते हैं, कट जाते हैं। इसका फल यह है कि यदि श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी को रोहिणी हो तो न यह केवल जन्माष्टमी होती है, किन्तू जब श्रावण की कृष्णाष्टमी से रोहिणी संयुक्त हो जाती है तो जयन्ती होती है।

अब प्रश्न यह है कि 'जन्माष्टमी व्रत' एवं 'जयन्ती व्रत' एक ही हैं या ये दो पृथक् व्रत हैं। कालनिर्णय (पृ० २०९) ने दोनों को पृथक् व्रत माना है, क्योंकि दो पृथक् नाम आये हैं, दोनों के निमित्त (अवसर) पृथक् हैं (प्रथम कृष्णपक्ष की अष्टमी है और दूसरी रोहणी से संयुक्त कृष्णपक्ष की अष्टमी), दोनों की विशेषताएँ पृथक् हैं, क्योंकि जन्माष्टमी व्रत में शास्त्र ने उपवास की व्यवस्था है और जयन्ती व्रत में उपवास, दान आदि की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी व्रत नित्य है (क्योंकि इसके न करने से केवल पाप लगने की बात कही गयी है) और जयन्ती व्रत नित्य एवं काम्य दोनों है, क्योंकि उसमें इसके न करने से न केवल पाप की व्यवस्था है प्रत्युत करने से फल प्राप्त की बात भी कही गयी है। एक ही क्लोक में दोनों के पृथक् उल्लेख भी हैं। हेमाद्रि, मदनरत्न, निर्णयिसन्धु आदि ने दोनों को मिन्न माना है। नि० सि० (पृ० १२६) ने यह भी लिखा है कि इस काल में लोग जन्माष्टमी व्रत करते हैं न कि जयन्ती व्रत। किन्तु जयन्ती निर्णय (पृ० २५) का कथन है कि लोग जयन्ती मनाते हैं न कि जन्माष्टमी। सम्मवतः यह भेद उत्तर एवं दक्षिण भारत का है।

वराहपुराण एवं हरिवेश में दो विरोधी बातें हैं। प्रथम के अनुसार कृष्ण का जन्म आषाढ़ शुक्ल द्वादशी को हुआ था। हरिवंश के अनुसार कृष्ण-जन्म के समय अभिजित् नक्षत्र था और विजय मुहूर्त था। सम्मवतः इन उक्तियों में प्राचीन परम्पराओं की छाप है।

मन्यकालिक निवन्धों में जन्माष्टमी व्रत के सम्पादन की तिथि एवं काल के विषय में भी विवेचन पाया जाता है (देखिए का० नि०, पृ० २१५-२२४); कृत्यतत्त्व, पृ० ४३८-४४४; तिथितत्त्व, पृ० ४७-५१। समयमयूख (५०-५१) एवं नि० सि० (पृ० १२८-१३०) में इस विषय में निष्कर्ष दिये गये हैं।

सभी पुराणों एवं जन्माष्टमी-सम्बन्धी प्रन्थों से स्पष्ट होता है कि कृष्णजन्म के सम्पादन का प्रमुख समय है श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी की अर्घरात्र (यदि पूणिमान्त होता है तो माद्रपद मास में किया जाता है)। यह तिथि दो प्रकार की है—(१) बिना रोहिणी नक्षत्र की तथा (२) रोहिणी नक्षत्र वाली। निर्णयामृत (पृ० ५६-५८) में १८ प्रकार हैं, जिनमें ८ शुद्धा तिथियाँ, ८ विद्धा तथा अन्य २ हैं (जिनमें एक अर्घरात्र में रोहिणी नक्षत्र वाली तथा दूसरी रोहिणी से युक्त नवमी, बुघ या मंगल को)। यहाँ पर विभिन्न मतों के विवेचन में हम नहीं पहेंगे। केवल तिथितत्त्व (पृ० ५४) से संक्षिप्त निर्णय दिये जा रहे हैं—यदि जयन्ती (रोहिणीयुक्त अष्टमी) एक दिन वाली है, तो उसीं दिन उपवास करना चाहिए, यदि जयन्ती न हो तो उपवास रोहिणी युक्त अष्टमी को होना चाहिए, यदि रोहिणी से युक्त दो दिन हों तो उपवास दूसरे दिन किया जाता है, यदि रोहिणी नक्षत्र न हो तो उपवास अर्घरात्र में अवस्थित अष्टमी को होना चाहिए या यदि अष्टमी अर्घरात्र में दो दिनों वाली हो या यदि वह अर्घरात्र में न हो तो उपवास दूसरे दिन किया जाना चाहिए।

यदि जयन्ती बुध या मंगल को हो तो उपवास महापुण्यकारी होता है और करोड़ों वर्तों से श्रेष्ठ माना जाता है और जो व्यक्ति बुध या मंगल से युक्त जयन्ती पर उपवास करता है वह जन्म-मरण से सदा के लिए छुट-कारा पा लेता है।

9.8

जन्माष्टमी वृत में प्रमुख कृत्य हैं उपवास, कृष्ण-पूजा, जागर (रात का जागरण, स्तोत्र-पाठ एवं कृष्ण-जीवन-सम्बन्धी कथाएँ सुनना) एवं पारण।

तिथितत्त्व (पृ० ४२-४७), समयमयूख (पृ० ५२-५७), कालतत्त्वविवेक (पृ० ५२-५६), व्रतराज (पृ० २७४-२७७), धर्मसिन्धु (पृ० ६८-६९) ने भविष्योत्तर० (अध्याय ५५) के आधार एर जन्माष्टमी व्रत-विधि पर लम्बे-लम्बे विवेचन उपस्थित किये हैं। यहाँ हम प्रथम दो से संक्षेप में विधि पर प्रकाश डालते हैं, क्योंकि दोनों में बहुत सीमा तक साम्य है।

वत के दिन प्रातः वती को सूर्यं, सोम (चन्द्र), यम, काल, दोनों सन्ध्याओं (प्रातः एवं सायं), पंच मूतों, दिन, क्षपा (रात्रि), पवन, दिक्पालों, मुमि, आकाश, खचरों (वायु-दिशाओं के निवासियों) एवं देवों का आह्वान करना चाहिए, जिससे वे उपस्थित हों। उसे अपने हाथ में जलपूर्ण ताम्र पात्र रखना चाहिए, जिसमें कुछ फल, पूष्प, अक्षत हां और मास आदि का नाम लेना चाहिए और संकल्प करना चाहिए-- मैं कृष्णजनमाष्टमी वृत कुछ विशिष्ट फल आदि तथा अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए करूँगा। तब वह वासुदेव की सम्बोधित चार मन्त्रों का पाठ करता है जिसके उपरान्त वह पात्र में जल डालता है। उसे देवकी के पुत्र-जनन के लिए प्रसूति-गृह का निर्माण करना चाहिए, जिसमें जल से पूर्ण शुम पात्र, आम्रदल, पुष्पमालाएँ आदि रखना चाहिए, अगर जलाना चाहिए और शुम वस्तुओं से अलंकरण करना चाहिए तथा षष्ठी देवी को रखना चाहिए। गृह या उसकी दीवारों के चर्तुादक् देवों एवं गन्धर्वों के चित्र बनवाने चाहिए (जिनके हाथ जुड़े हुए हों), वसुदेव (हाथ में तलवार से युक्त), देवकी, नन्द, यशोदा, गोपियों, कंस-रक्षकों, यमुना,नदी, कालिय नाग तथा गोकुल की घटनाओं से सम्बन्धित चित्र आदि बनवाने चाहिए। प्रसूति-गृह में परदों से युक्त बिस्तर तैयार करना चाहिए। व्रती को किसी नदी (या तालाब या कहीं मी) में तिल के साथ दोपहर में स्नान करके यह संकल्प करना चाहिए—'मैं कृष्ण की पूजा उनके सहगामियों के साथ करूँगा।' उसे सोने या चाँदी आदि की कृष्ण-प्रतिमा बनवागी चाहिए, प्रतिमा के गालों का स्पर्श करना चाहिए और मन्त्रों के साथ उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। उसे मन्त्र के साथ,देवकी व उनके शिशु श्री कृष्ण का घ्यान करना चाहिए तथा वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, बलदेव एवं चण्डिका की पूजा स्नान, धूप, गन्ध, नैवेद्य आदि के साथ एवं मन्त्रों के साथ करनी चाहिए। तब उसे प्रतीकात्मक ढंग से जातकर्म, नामि-छेटन, पष्ठीपूजा एवं नामकरण आदि संस्कार करने चाहिए: तब चन्द्रोदय (या अर्घरात्रि के थोड़ी देर उपरान्त) के समय किसी वेदिका पर अर्घ्य देना चाहिए, यह अर्घ्य रोहिणी युक्त चन्द्र को मी दिया जा सकता है, अर्घ्य में शंख से जल-अर्पण होता है जिसमें पुष्प, कुश, चन्दन-लेप डाले हुए रहते हैं, यह सब एक मन्त्र के साथ होता है। इसके उपरान्त वृती को चन्द्र का नमन करना चाहिए और दण्डवत् झुक जाना चाहिए तथा वासुदेव के विभिन्न नामों वाले श्लोकों का पाठ करना चाहिए और अन्त में प्रार्थनाएँ करनी चाहिए। वती को रात्रि नर कृष्ण की प्रशंसा के स्तोत्रों, पौराणिक कथाओं,

५. धूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः। ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्।। ति० त० (पृ० ४५) एवं स० म० (पृ० ५२)।

६. भूमि पर गिर, प्रणाम करते समय का एक मन्त्र यह है—शरणं तु प्रपद्यहं सर्वकामार्थसिद्धये। प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम्।। स० म० (पृ० ५४) एवं ति० त० (पृ० ४५)। दो प्रार्थनामन्त्र ये हैं—त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे। दुर्गतांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत् सकृत्। सोऽहं देवातिदुर्वृत्रस्त्राहि मां शोकसागरात्। पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे।। वही।

गानों एवं नृत्यों में संलग्न रहना चाहिए। दूसरे दिन श्रातः काल के कृत्यों के सम्पादन के उपरान्त, कृष्ण-प्रतिमा का पूजन करना चाहिए, ब्राह्मणों को मोजन देना चाहिए, सोना, गौ, वस्त्रों का दान 'मुझ पर कृष्ण प्रसन्न हों' शब्दों के साथ करना चाहिए। उसे "यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्। मौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥ सुजन्म-वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। शान्तिरस्तु दिवं चास्तु" का पाठ करना चाहिए तथा कृष्ण-प्रतिमा किसी ब्राह्मण को दे देनी चाहिए और पारण करने के उपरान्त ब्रत को समाप्त करना चाहिए (देखिए स० म०, पृ० ५५; ति० त०,पृ० ४३)।

विधि के अन्तरों के लिए देखिए घ० सि० (पृ० ६८-६९)। घर्मसिन्धु में आया है कि शूद्रों को वैदिक मन्त्र छोड़ देने चाहिए, किन्तु वे पौराणिक मन्त्रों एवं गानों का सम्पादन कर सकते हैं। समयमयूख एवं तिथितत्त्व में वैदिक मन्त्रों के प्रयोग का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता।

मध्यकालिक निबन्धों में जन्माष्टमी वर के प्रमुख उद्देश्य के विषय में चर्चा उठायी गयी है। कुछ लोगों के मत से उपवास एवं पूजा दोनों प्रमुख हैं (मविष्य०, समयमयूख, पृ० ४६; हे०, काल, पृ० १३१ में उद्धृत)। स० म० ने व्याख्या के उपरान्त निष्कर्ष निकाला है कि उपवास केवल 'अंग' है, किन्तु पूजा ही प्रमुख है। किन्तु तिथिन तत्त्व ने मविष्य० एवं मीमांस। सिद्धान्तों के आधार पर कहा है कि उपवास ही प्रमुख है और पूजा केवल 'अग' (अर्थात् सहायक तत्त्व) है। अब हम इस विषय को यहीं छोड़ते हैं, विशेष विवरण के लिए देखिए हारोत वेंकटन थकृत 'दशनिणंयी' का एक अंश 'जयन्तीनिणंय', जिसमें इस विषय का विशद विवेचन किया गया है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक वर्त के अन्त में पारण होता है, जो वर्त के दूसरे दिन प्रातः काल किया जाता है। जन्माष्टमी एवं जयन्ती के उपलक्ष्य में किये गये उपवास के उपरान्त पारण के विषय में कुछ विशिष्ट नियम हैं। ब्रह्मवैवर्तः (कालनिर्णय, पृ०२२६) में आया है—'जब तक अध्यमी चलती रहे या उस पर रोहिणी नक्षत्र रहे तब तक पारण नहीं करना चाहिए; जो ऐसा नहीं करता, शर्यात् जो ऐसी स्थिति में पारण कर लेता है वह अपने किये कराये पर पानी फेर देता है और उपवास से प्राप्त फलों को नष्ट कर देता है; अतः तिथि तथा नक्षत्र के अन्त में ही पारण करना चाहिए।' और देखिए नारदपुराण (का० नि०, पृ० २२७; ति० त०, पृ० ५२), अधिनपुराण, तिथितत्त्व एवं कृत्यतत्त्व (पृ० ४४१) आदि। पारण के उपरान्त वृती 'ओं मूताय' मूतेश्वराय 'मूतपतये मूतसम्मवाय गोविन्दाय नमो नमः' नामक मन्त्र का पाठ करता है। कुछ परिस्थितियों में पारण रात्रि में भी होता है, विशेषतः वैष्णवों में, जो व्रत को नित्य रूप में करते हैं न कि काम्य रूप में।

'उद्यापन' एवं 'पारण' के अर्थों में अन्तर है। एकादशी एवं जन्माष्टमी जैसे व्रत जीवन भर किये जाते हैं। उनमें जब कभी व्रत किया जाता है तो पारण होता है, किन्तु जब कोई एक व्रत केवल एक सीमित काल तक करता है और उसे समाप्त कर लेता है तो लसकी परिसमाप्ति का अन्तिम कृत्य है उद्यापन।

### अध्याय ८

# हरितालिका, गणेशचतुर्थी, ऋषिपंचमी एवं अनन्तचतुर्दशी

हरितालिका वर्त नारियों का वर्त है। यह माद्रपद के शुक्ल पक्ष की तृतीया को सम्पादित होता है। इस वर्त का कृत्यकल्पतर एवं हेमाद्रि में कोई उल्लेख नहीं है। पश्चात्कालीन मध्यकालिक निबन्ध, यथा निर्णयसिन्धु (पृ० १३३), व्रतार्क (४४), व्रतराज (पृ० १०३-११०) एवं अहल्याकामधेनु (२८२-२९५) इसका वर्णन करते हैं। राजमार्तण्ड (१२५७-१२५८) में भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को किये जाने वाले हरितालीचतुर्थी वृत का उल्लेख है और ऐसा लिखा गया है कि यह पार्वती को प्यारा (प्रीतिदायक) है। महाराष्ट्रीय नारियों में यह अत्यधिक प्रचलित है। इसका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। नारियों को तैल एवं त्रिफला (तिष्यफला) के लेप से स्नान कर रेशमी वस्त्र धारण करने चाहिए। तिथि आदि का नाम लेकर निम्न संकल्प करना चाहिए--- मम समस्तपापक्षय-पूर्वकं सप्तजन्मराज्याखण्डितसौमाग्यादिवृद्धये उमामहेश्वरप्रीत्यर्थं हरितालिकाव्रतमहं करिष्ये। तत्रादौ गणपितपूजनं करिष्ये' (व्रतराज, प० १०३)। उसे उमा एवं शिव का नमन करना चाहिए। मन्त्रों के साथ आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि सोलह उपचारों के सम्पादन से उमा-पूजन करना चाहिए। पुष्प देने के उपरान्त व्रती को पाँव से लेकर सिर तक उमा के सभी अंगों की पूजा करनी चाहिए। इसके उपरान्त धूप, दीप, नैवेद्य, आचमनीय, गन्ध (कपूर, चन्दन), ताम्बुल, पूगीफल, दक्षिणा, अलंकार, नीराजन (दीप डुलाना) के कृत्य किये जाने चाहिए। इसके उपरान्त उमा के विभिन्न नामों (गौरी, पार्वती आदि) एवं शिव के विभिन्न नामों (हर, महादेव, शम्मु आदि) से पूजा होनी चाहिए; पुष्प दान करना चाहिए, उमा एवं महेरवर की प्रतिमाओं की प्रदक्षिणा करनी चाहिए, प्रत्येक वार मन्त्र के साथ नमस्कार करना चाहिए, प्रार्थना एवं शुम वस्तुओं के साथ पात्रों में दान करना चाहिए। ध

यह व्रत बंगाल, गुजरात आदि में नहीं प्रचलित है।

माघवं (का० नि०, पृ० १७६) ने व्यवस्था दी है कि यदि तृतीया तिथि द्वितीया एवं चतुर्थी से संयुक्त हो तो वृत दूसरे दिन किया जाना चाहिए, जब कि तृतीया कुम से कम एक मुहूर्त (दो घटिका) तक अवस्थित रहे और तब चतुर्थी का प्रवेश हो।

-१. नमरकारभन्त्र यह है---'अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम । तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वरि ॥' प्रार्थनामन्त्र यह है---'पुत्रान् देहि धनं देहि साभाग्यं देहि सुद्रते । अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोस्तु ते ॥' वायनमन्त्र यह है----'साभाग्यारोग्यकामाय सर्वसम्पत्समृद्धये । गाँरीगाँरीशतुर्द्यर्थं वायनं ते ददाम्यहम् ॥'

वर्तमान समय में नारियाँ पार्वती, शिवलिंग एवं पार्वती की किसी सखी की मिट्टी की प्रतिमाएँ खरीद कर पूजा करती हैं।

इस व्रत का 'हरितालिका' नाम क्यों पड़ा, कहना कठिन है। व्रतराज (पृ० १०८) का कथन है कि यह व्रतराज (व्रतों में राजा) है और इसका यह नाम इसलिए पड़ा कि पार्वती अपने घर से अपनी सिखयों द्वारा ले जायी गयी थीं।

वतराज में आया है कि शिव ने अपनी वह वत-कथा पार्वती से कही थी, जिसके द्वारा उन्हें पार्वती प्राप्त हुई थीं और वे उनकी अर्घांगिनी हो सकी थीं। वराह० (अध्याय २२) में गौरी एवं शिव के विवाह का लम्बा उल्लेख है।

मारत के कितपय मागों में (किन्तु बंगाल एवं गुजरात में नहीं) माद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी को गणेश चतुर्थी का उत्सव किया जाता है। यह वरदचतुर्थी के नाम से भी विख्यात है (स॰ म॰,पृ॰ ३९)। इसका सम्पादन मध्या हु में होता है (का॰ नि॰,पृ॰ १८१ एवं नि॰ सि॰,पृ॰ १३३)। यदि चतुर्थी तिथि तृतीया और पंचमी से संयुक्त हो तथा मध्या हु में चतुर्थी हो तो तृतीया से संयुक्त चतुर्थी मान्य होती है। यदि मध्या हु में चतुर्थी न हो, किन्तु दूसरे दिन पंचमी से युक्त मध्या हु में हो तो परिवद्धा (आने वाली पंचमी से संयुक्त) को ही उत्सव होता है। संक्षेप में विधि यों है। आजकल मिट्टी की रागी हुई गणेश-प्रतिमा ली जाती है, उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है, १६ उपचारों के साथ विनायक-पूजा होती है। चन्दन से युक्त दो दूर्वी-दल प्रत्येक दस नामों से समर्पित किये जाते हैं, इस प्रकार कुल २० दूर्वी नैवेच रूप में, दस ब्राह्मणों को तथा शेष दस स्वयं व्रती या उसका कुटुम्ब खाता है। अन्य विवरणों के लिए देखिए पु॰ चि॰ (पृ॰ ९४) एवं व्रतराज (पृ॰ १४४-१५१)। यदि माद्रपद के कृष्णपक्ष की चतुर्थी रिववार या मंगलवार को पड़ती है तो उसे 'महती' चतुर्थी कहते हैं (घ० सि॰,पृ॰ ७२)। गणेश-पूजन में महत्त्वपूर्ण वैदिक मन्त्र है ऋ० २।२३।१ (तै॰ सं॰ २।३।१४।३ गणाना त्वा गणपितं हवामहे), जो वास्तव में ब्रह्मणस्पित को सम्बोधित है, किन्तु मध्य एवं वर्तमान काल की धारणाओं में गणेश ने उस वैदिक देवता की विशेषताएँ ग्रहण कर ली हैं। गणेशचतुर्थी में २१वीं संख्या महत्त्व रखती है।

घ्यान के लिए गणेश का जो स्वरूप निर्धारित है वह यों है—'उन सिद्धि-विनायक का घ्यान करना चाहिए जो एक दाँत वाले हैं, जिनके कर्ण सूप के समान हैं, जो नाग का जनेऊ धारण करते हैं और जो हाथों में पाश एवं अंकुश धारण करते हैं।'

माध्यमिक एवं वर्तमान काल में एक ऐसी धारणा रही है कि यदि कोई इस गणेशचतुर्थी को चन्द्र देख लेता है तो उस पर चोरी आदि का झूठा अभियोग लग जाता है। यदि कोई त्रुटिवश चन्द्र का दर्शन कर लेता है तो

- २. आलिभिर्हरिता यस्मात्तस्मात्सा हरितालिका। व्रतराज (पृ०१०८)। ऐसी कल्पना करना संभव है कि पार्वती की प्रतिमा हरिताल से पीले रंग में रेंगी जाती थी और इसी से 'हरितालिका' नाम पड़ा।
- ३. दस नाम ये हैं---गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशन, विनायक, ईशपुत्र, सर्वसिद्धि, एकदन्त, इभवनत्र, मूषकवाहन एवं कुम।रगुरु।
- ४. तत्र गणेशरूपं स्कान्दे—एकदन्तं शूर्पकर्णं नागयज्ञोपवीतिनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनाकम्। इति । नि० सि० (पृ० १३३) एवं स्मृतिकौ० (पृ० २१०) ।

उसे झुठे अभियोग के प्रतिफलों से छुटकारा पाने के लिए उस पौराणिक पद्य का पाठ करना चाहिए जो एक दाई द्वारा बच्चे से कहा गया था-- एक सिंह ने प्रजेनजित को मारा, सिंह को जाम्बवंत ने मार डाला, मत रोखो, हे सुकुमारक, यह तुम्हारी स्यमन्तक मणि है।' (देखिए, हे०, ब्रत् ०, भाग १, पृ० ५२९-५३०; वही, काल, पृ० ६८१; हरिवंश १।३८।३६; विष्णु० ४।१३।४२; वागु० ९६।४२; पदा० ६।२७६।१९; ब्रह्म० १६।३६) । 'सुकुमारक' किसी लड़के का नाम हो सकता है या भेवल प्यार का नाम हो सकता है। यह गाया मौसल पर्व (३।२३) एवं कतिपय पुराणों में आयी है। देखिए वायु (९६।२०-५२), अग्नि (१७५।४०-४४), मत्स्य (अध्याय ४५), विष्णु (४।१३।३-१८), मागवत (१०, उत्तरार्घ), पद्म (५।१३।७८-८३, ६।२७६।५६, ५-३७) एवं ब्रह्म (१६।१२-४५)। सूर्य ने प्रसेन के माई सत्राजित्को देदीप्यमान स्यमन्तक मणि दी जो प्रतिदिन ८ मार सोना उत्पन्न करती थी (मागवत १०।५६।११); कृष्ण ने इसे पाने का प्रयास किया, किन्तु नहीं पा सके। इस मणि से युक्त प्रसेन शिकार खेलने गया और सिंह द्वारा मार डाला गया, किन्तु मालुओं के नेता जाम्बवंत ने सिंह को मार डाला और स्यमन्तक ले ली और उसके साथ अपनी गुफा में चला गया। सत्राजित् एवं यादवों ने शंका की कि कृष्ण ने उस मणि को प्राप्त करने के लिए प्रसेन को मार डाला है। कृष्ण को यह अभियोग बहुत बुरा लगा और उन्होंने प्रसेन एवं सिंह के शवों को खोज निकाला और जब उन्होंने गुफा में दाई को उस प्रकार का सम्बोधन करते सुना तो उसमें प्रवेश किया। गुफा में कृष्ण एवं जाम्बवंत से मल्लयुद्ध हुआ। जब बहुत दिनों तक कृष्ण गुफा से बाहर नहीं निकले तो उनके अनुयायी यादव द्वारका चले आये और कृष्ण की मृत्य का सन्देश घोषित कर दिया। २१ दिनों के उपरान्त जाम्बवंत ने हार स्वीकार कर ली (मागवत में २८ दिन उल्लिखित हैं, १०।५८।२४) और कृष्ण से सन्धि कर ली तथा अपनी पुत्री जाम्बवर्ती का विवाह कृष्ण से कर दिया तथा स्यमन्तक मणि दहेज में देदी। द्वारका लौटने पर कृष्ण ने वह मणि प्रसेन के माई संत्राजित् को देदी और इस प्रकार झूठे अभियोग से उन्हें छुटकारा मिला। वायु (९६:५८) एवं मत्स्य (४५।३४) आदि पुराणों में आया है कि मिथ्यारोप से छुटकारा पाने वाले कृष्ण की यह गाथा जो सुनता है वह ऐसे मिथ्यारोप में नहीं फँसता। तिथितत्त्व (पृ० ३२) में ऐसी व्यवस्था है कि माद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को जो व्यक्ति असावधानी से चन्द्र देख लेता है उसे दाई वाली गाया का रलोक पानी के ऊपर पढ़-कर उस पानी को पी लेना चाहिए और स्यमन्तक मणि की कहानी सुन लेनी चाहिए।

जब माद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्थी को गणेश-पूजन होता है तो उसे शिवा तिथि कहा जाता है। जब गणेश का सम्मान माघ शुक्ल चतुर्थी को होता है तो उसे शान्ता तथा जब शुक्ल पक्ष की चतुर्थी मंगलवार को हो तो उसे सुखा कहा जाता है। देखिए हेमाद्रि (व्रत, माग १,पृ० ५१२ १३,पृ० ५१३ ५१४ एवं पृ० ५१५-५१९)।

आजकल गणेश सबसे अधिक प्रचलित देव हैं और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कृत्य में उनका आवाहन सर्वप्रथम होता है, वेज्ञान के देव हैं, साहित्य के अधिष्ठाता-देव हैं, सफलता दायक हैं और विघ्नविनाशक हैं।

गणेश-पूजन एवं गणेश-प्रतिमाओं के विषय में देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड दो। विशेष अध्ययन के लिए देखिए ब्रह्मवैवर्त का गणेशखण्ड (४६ अध्यायों में), गणपत्यर्थवैशीर्ष, अहल्याकामधेनु, कृत्यकल्पतरु (व्रत, पृ॰ ८४-८७) आदि।

माद्रपद के शुक्लपक्ष की पंचमी को ऋषिपञ्चमीवृत सम्पादित होता है। प्रथमतः यह सभी वर्णों के पुरुषों के लिए प्रतिपादित था, किन्तु अब यह अधिकांश में नारियों द्वारा किया जाता है। हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ॰ ५६८-५७२) ने ब्रह्माण्डपुराण को उद्धृत कर विशद विवरण उपस्थित किया है। व्यक्ति को नदी आदि में स्नान करने तथा आह्तिक कृत्य करने के उपरान्त अग्निहोत्रशाला में जाना चाहिए. सातों ऋषियों की प्रतिमाओं को पंचामृत में नहलाना चाहिए, उन पर चन्दन-लेप, कर्पूर लगाना चाहिए, पुष्पों, सुगन्धित पदार्थों, धूप, दीप, रुपेत

वस्त्रों, यज्ञोपवीतों, अधिक मात्रा में नैवेद्य से पूजा करनी चाहिए और मन्त्रों के साथ अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। इस वर्त में केवल शाकों का प्रयोग होता है और ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। इसके करने से समी पापों एवं तीनों प्रकार के दु:खों से छुटकारा मिलता है तथा सौमाग्य की वृद्धि होती है। जब नारी इसे सम्पादित करती है तो उसे आनन्द, शरीर-सौन्दर्य, पुत्रों एवं पौत्रों की प्राप्ति होती है।

पश्चात्कालीन निवन्ध व्रतार्क, व्रतराज (पृ० २००-२०६) आदि ने मिविष्योत्तर० से उद्धृत कर बहुत-सी वातें लिखी हैं, जहाँ कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को सुनायी गयी एक कथा मी है। जय इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र वृत्र का हनन किया तो उन्हें ब्रह्महत्या का अपराध लगा। उस पाप को चार स्थानों में बाँटा गया, यथा अग्नि (धूम से मिश्रित प्रथम ज्वाला), निदयों (वर्षाकाल के पंक्तिल जल), पर्वतों (जहाँ गोंद वाले वृक्ष उगते हैं) में तथा स्त्रियों (रजस्वला) में। अतः मासिक धर्म के समय लगे पाप से छुटकारा पाने के लिए 'ह वर्त स्त्रियों द्वारा किया जाना चाहिए।

इसका संकल्प यों है— 'अहं ज्ञानतोऽज्ञानतो वा रजस्वलावस्थायां कृतसंपर्कजिनितदोषपरिहारार्थमृषिपञ्चमीवर्त करिष्ये।' ऐसा संकल्प करके अरुम्धती के साथ सप्तिषयों की पूजा करनी चाहिए (व्रताक)। व्रतराज (पृ॰
२०१) के मत से इस वर्त में केवल शाकों या नीवारों था साँवा (श्यामाक) या कन्द-मूलों या फलों का सेवन करना
चाहिए तथा हल से उत्पन्न किया हुआ अन्न नहीं खाना चाहिए। आजकल जब पुरुष मी इस वर्त को करते हैं तो
वैदिक मन्त्रों का पाठ होता है, यथा कश्यप ऋषि के लिए ऋग्वेद (९११४१२), अन्नि के लिए ऋ॰ (५१७८१४),
भरद्वाज के लिए ऋ॰ (६१२५१९), विश्वामित्र के लिए ऋ॰ (१०१६७१४), गोतम के लिए ऋ॰ (११७८११),
जमदिन के लिए ऋ॰ (३१६२१८) एवं बसिष्ठ के लिए ऋ॰ (७१३१११)। अरुम्बती के लिए मी मन्त्र है—
"अत्रयंथानस्था स्थाद् विस्वरस्थाप्यरम्धती। कौशिकस्य यथा सती तथा त्वमिष मर्तिरा।' यह अरुम्बती के आवाहन
के लिए है। यह वर्त सात वर्षों का होता है। सात घड़े होते हैं और सात बाह्मण निमन्त्रित रहते हैं, जिन्हें अन्त में
ऋषियों की सातों प्रतिमाएँ (साने या चाँदी की) दान में दे दी जाती हैं। यदि सभी प्रतिमाएँ एक ही कलश में
रखी गयी हों तो वह कलश एक बाह्मण को तथा अन्यों को कलशों के साथ वस्त्र एवं दक्षिणा दी जाती है।

यदि पंचमी तिथि चतुर्थी एवं षष्ठी से संयुक्त हो तो ऋषिपंचमी वर्त चतुर्थी से संयुक्त पंचमी को किया जाता है न कि षष्ठीयुक्त पंचमी को। किन्तू इस विषय में मतभेद है। देखिए का० नि० (पृ० १८६), हेमाद्रि, माधव. निर्णयसिन्धु आदि।

५. अर्घ्यमन्त्रः। कश्यपोत्रिभंरद्वाजो विश्वामित्रोय गौतमः। जमदिग्नवंसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ गृह्णन्त्वर्घं मया दत्तं तुष्टा भवत मे सदा॥ हे० (व्रत, भाग १, पृ० ५७१); स्मृति कौ० (पृ० २१७); व्रतराज (पृ० २००)। वराहमिहिर की बृहत्संहिता (१३।५-६) में सप्तिषयों के नाम आये हैं (जो पूर्व से आरम्भ किये गये हैं) यथा मरीचि, विसष्ठ, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु; १३।६ में आया है कि साध्वी अक्ष्यती विसष्ठ के पास हैं।

६ तीन दुःख ये हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक। 'आध्यात्मिकादि मैत्रेय ज्ञात्वा तापत्रयं बुधः। उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यित्तकं लयम्।।' (विष्णु० ६।५।१)। आध्यात्मिक दुःख शारीरिक (रोग आदि) एवं मानिसक (ज्ञिन्ता, ईर्ष्या आदि) हैं; आधिभौतिक दुःख पशुओं, मनुष्यों, पिशाचों आदि से उत्पन्न होते हैं; आधिदैविक दुःखों की उत्पत्ति तुषारपात, पवन, वर्षा आदि से होती है।

**६२** 

ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्म में ऋषिपंचमी वृत समी पापों की मुक्ति के लिए समी लोगों के लिए व्यवस्थित था, किन्तु आगे चलकर यह केवल नारियों से ही सम्बन्धित रह गया। किन्तु सौराष्ट्र में इसका सम्पादन नहीं होता।

माद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को अनन्तचतुर्दशी का व्रत किया जाता है। इसका उल्लेख कृत्यकल्पतरु में नहीं है। इसमें अनन्त के रूप में हिर की पूजा होती है। पुरुष दाहिने तथा नारियाँ बाँये हाथ में अनन्त घारण करती हैं। रुई या रेशम के धागे कुंकमी रंग में रँग होते हैं और उनमें चौदह गाँठें होती हैं। इन्हीं धागों से अनन्त का निर्माण होता है। यह व्यक्तिगत पूजा है, इसका कोई सामाजिक धार्मिक उत्सव नहीं होता। अग्निपुराण (१९२। ७-१०) में इसका विवरण है। चतुर्दशी को दमें से बनी हिर की प्रतिमा की, जो कलश के जल में रखी होती है, पूजा होती है। वती को घान के एक प्रस्थ (प्रसर) आटे से रोटियाँ (पूड़ी) बनानी होती हैं जिनकी आधी वह ब्राह्मण को दे देता है और शेष अधाँश स्वयं प्रयोग में लाता है। यह व्रत नदी-तट पर किया जाना चाहिए, जहाँ हिर की कथाएँ सुननी चाहिए। हिर से इस प्रकार की प्रार्थना की जाती है—'हे वासुदेव, इस अनन्त संसार रूपी महासमुद्र में डूबे हुए लोगों की रक्षा करो तथा उन्हें अनन्त के रूप का ध्यान करने में संलग्न करों, अनन्त रूप वाले तुम्हें नमस्कार' (अग्नि० १९२१९)। इस मन्त्र से हिर की पूजा करके तथा अपने हाथ के उपरी माग में या गले में धागा बाँधकर या लटकाकर (जिस पर मन्त्र पढ़ा गया हों) व्रती अनन्त व्रत करता है तथा प्रसन्न होता है। यदि हिर अनन्त हैं तो १४ गाँठें हिर द्वारा उत्पन्न १४ लोकों की द्योतक हैं।

हेमाद्रि (वत, माग २, पृ० २६-३६) में अनन्त वत का विवरण विशद रूप से आया है, उसमें कृष्ण द्वारा मुंघिष्ठर से कही गयी कौण्डिन्य एवं उसकी स्त्री शीला की गाथा मी आयी है। कृष्ण का कथन है कि 'अनन्त' उनके रूपों का एक रूप है और वे काल हैं जिसे अनन्त कहा जाता है। अनन्त वत चन्दन, धूप, पुष्प, नैवेद्य के उपचारों के साथ किया जाता है। इस वत के विषय में अन्य वातों के लिए देखिए वर्षिक्रयाकौमुदी (पृ० ३२४-३३९), तिथितत्त्व (पृ० १२३), का० नि० (पृ० २७९), वतार्क आटि। ऐसा आया है कि यदि यह वत १४ वर्षों तक किया जाय तो वती विष्णुलोक की प्राप्ति कर सकता है (हेमाद्रि, वत, भाग २,पृ० ३५)।

इस ब्रत के उपयुक्त समय एवं तिथि के विषय में कई मत प्रकाशित हो गये हैं। माधव (का० नि॰० २७९) के अनुसार इस ब्रत में मध्याह्न कर्मकाल नहीं है किन्तु वह तिथि, जो सूर्योदय के समय तीन मुहूतों तक व्यवस्थित रहती है, अनन्तव्रत के लिए सर्वोत्तम है। किन्तु नि० सि० (पृ० १४२) ने इस मत का खण्डन किया है।

आजकल मा अनन्त चतुर्दशी व्रत किया जाता है, किन्तु व्रतियों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

## अध्याय ९ नवरात्र या दुर्गीत्सव

सम्पूर्ण मारत में आश्विन शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि से लेकर नवमी तक दुर्गापूजा का उत्सव, जिसे नवरात्र मी कहते हैं, किसी-न-किसी रूप में मनाया जाता है। कुछ ग्रन्थों (निर्णयामृत, पृ० ५६; स० म०, पृ० १५) ने व्यवस्था दी है कि दुर्गोत्सव शरद (आश्विन शुक्ल) एवं वसन्त (चैत्र शुक्ल) दोनों में अवश्य किया जाना चाहिए। किन्तु आश्विन का दुर्गोत्सव ही धूमधाम के साथ मनाया जाता है, विशेषत बंगाल, विहार एवं कामरूप में।

यदि व्यक्ति ९ दिनों तक यह उत्सव करने में असमर्थ हो तो उसे आश्विन शुक्ल सप्तमों से आरम्भ कर तीन दिनों तक कर लेना चाहिए। तिथितत्त्व (पृ० ६७ एवं १७३) ने दुर्गापूजा की अविधयों के बारे में कई विकल्प दिने हैं—(१) पूर्णिमान्त आश्विन के कृष्णपक्ष की नवमी से आश्विन शुक्ल की नवमी तक; (२) अश्विन शुक्ल की प्रथमा से नवमी तक; (३) षष्ठी से नवमी तक; (४) सप्तमी से नवमी तक; (५) महाष्टमी से नवमी तक; (६) केवल महाब्दमी पर। इन विकल्पों में बहुत-से कालिका एवं अन्य पुराणों में भी हैं।

दुर्गोत्सव पर विज्ञाल साहित्य है, वतों, तिथियों एवं पूजा पर लिखने वाले समी निवन्धों ने विश्वद प्रकाश डाला है। कुछ ग्रन्थ तो केवल इसी पर लिखित हैं, यथा शूलपाणि का दुर्गोत्सविववेक; दुर्गापूजाप्रयोगतत्त्व, जिसका रघुनन्दन लिखित दुर्गार्चनपद्धित एक अंश है; विद्यापित की दुर्गामिक्ततरंगिणी; विनायक (नन्दपण्डित) कृत नवरात्र-प्रदीप; उदयसिंह (१५वीं शती का अर्घाश) की दुर्गोत्सवपद्धित। इनके अतिरिक्त मार्कण्डेयपुराण (अत्र्याय ७८-९०) में 'देवीमाहात्म्य' (या सप्तशती या चण्डी) भी है, जिसमें विष्णु, शंकर, अग्नि एवं देवों से संगृहीत तेजों से उत्पन्न देवी का स्वरूप, उसके द्वारा शिव से त्रिशूल, विष्णु से चक्र, इन्द्र से वज्ज की प्राप्ति तथा महिषासुर, चण्ड, सुम्म एवं निशुम्म नामक दानवों का वध एवं विजय-प्राप्ति विणत है। कालिकापुराण, बृहन्नंदिकेश्वरपुराण एवं देवीपुराण ने भी दुर्गा एवं उसकी पूजा का विशद वर्णन उपस्थित किया है।

्यह पूजा मित्य एवं काम्य दोनों है। कालिकापुराण (६३।१२-१२) ने व्यवस्था दी है कि जो प्रमाद, छल, भरसर या मूर्खता के वश में आकर दुर्गोत्सव नहीं करता उसकी सभी कांक्षाएँ ऋद्ध देवी द्वारा नष्ट हो जाती हैं। यह काम्य भी है, क्योंकि दुर्गोत्सव करने से फलों की प्राप्ति मी होती है। सभी को देवी की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से अनुलनीय महत्ता प्राप्त होती है और धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। तिथितत्त्व (पृ० ६५) में आया है कि भवानी को प्रसन्न करने के लिए, उस वर्ष में आनन्द के लिए, भूत-पिशाचों के नाश के

१. शरद्वसन्तयोस्तुल्य एव दुर्गोत्सवः कार्यः। निणर्यामृत, पृ० ५६ एवं समयमयूख, पृ० १५।

एवं स्व-प्रसन्नता के लिए मवानी-पूजा करनी चाहिए। देवीपुराण में आया है — 'यह एक महान् एवं पितत्र कत है जो महान् सिद्धियाँ देता है, सभी शत्रुओं को नष्ट करता है, सभी लोगों का उपकार करता है, विशेषतः अति वृष्टियों में। यह पुनीत यज्ञों के लिए बाह्मणों द्वारा, मूमिपालन के लिए क्षत्रियों, गोघन के लिए वैश्यों, पुत्रों एवं सुखों के लिए शूद्रों, सौमाग्य के लिए नारियों, अधिक धन के लिए घनिकों द्वारा सम्पादित होता है, यह शंकर आदि द्वारा सम्पादित हुआ था।' आगे चलकर यह पूजा सामान्य सीमा पर उतर आयी, जैसा कि मार्कण्डेय० (८९।११-१२) में आया है — 'वार्षिक महापूजा में जो शरत्काल में होती है, मेरे माहात्म्य को मित्तपूर्वक सुनने से व्यक्ति सभी प्रकार की बाघा से निर्मुक्त एवं मेरे प्रसाद से धनघान्य से समन्वित हो जाता है।' मिवष्य० (पूजाप्रकाश, पृ० ३०९ में उद्धृत) से दुर्गा-पूजा की अतिशयोक्तिपूर्ण महत्ता प्रकट हो जाती है — 'अग्निहोत्र आदि कर्म, दक्षिणा से युक्त वेद-यज्ञ चण्डिकापूजा के सामने लाख का एक अंश भी नहीं है।'

यह दुर्गापूजा सभी लोगों द्वारा सम्पादित की जा सकती है। न-केवल चारों वर्णों के लोग ही इसे कर सकते हैं, प्रत्युत इसे अन्य लोग भी जो जातियों के बाहर हैं, कर संकते हैं। दुर्गापूजा का सामूहिक रूप भी है, यह केवल धार्मिक वत ही नहीं है, इसका सामाजिक महत्त्व है (यथा मित्रों को निमन्त्रित कर उनको खिलाना-पिलाना)। मिवष्य० (हें० वत, माग १, पृ० ९१०; ति० त०, पृ० ६८; नि० सि०, पृ० १६४; स्मृतिकौ०, पृ० २०१, का० त० नि०, पृ० २६७) में आया है—'इसका सम्पादन विन्ध्य पर्वत में (विन्ध्यवासिनी देवी के मिन्दर में), सभी स्थानों, नगरों, गृहों, ग्रामों एवं वनों में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, राजाओं, वैश्यों, शूद्रों द्वारा, मक्तों द्वारा, उनके द्वारा जिन्होंने स्नान कर लिया है, जो प्रमृदित एवं हिंपत हैं, म्लेच्छों तथा अन्य लोगों (प्रतिलोम आदि) द्वारा तथा नारियों द्वारा हो सकता है।' मिवष्य० (कृ० र०, पृ० ३५७; नि० सि०, पृ० ११४; ति० त०, पृ० ६८, कृत्यकल्प०, नैयतकालिक, पृ० ४१०) में यह भी आया है—'दुर्गापूजा म्लेच्छों आदि द्वारा, दस्युओं (चोरी करने वालों, निष्काणित हिन्दुओं) द्वारा, अंग, बंग एवं किलंग के लोगों द्वारा, किन्नरों, वर्बरों एवं शकों द्वारा की जाती है।' पश्चात्कालीन निबन्धों में यह सावधानीपूर्वक आया है कि म्लेच्छों को मन्त्रों के साथ जप या होम या पूजा का अधिकार नहीं है, जैसा कि शूद्व ब्राह्मण द्वारा ऐसा करते हैं, किन्तु वे लोग देवी के लिए पशुओं की बिल या सुरा-दान मानसिक रूप में कर सकते हैं। विश्व का साहण एसा करते हैं, किन्तु वे लोग देवी के लिए पशुओं की बिल या सुरा-दान मानसिक रूप में कर सकते हैं।

स्वन्द० एवं भविष्य० (ति० त०, पृ० ६८; का० त० वि०, पृ० २६९-२७०) में ऐसा उल्लेख हुआ है कि चिष्डका-पूजा के तीन प्रकार हैं—सात्त्यकी, राजसी एवं तामसी, जिनमें सात्त्विकी: पूजा में जप होता है, नैवेद्य दिया जाता है किन्तु मांस का प्रयोग नहीं होता; राजसी में बिल एवं नेवेद्य होता है और मांस का प्रयोग होता है; किन्तु तामसी में सुरा एवं मांस का प्रयोग होता है, किन्तु जप एवं मन्त्रों का प्रयोग नहीं होता। इस अन्तिम प्रकार का सम्पादन किरातों (वनवासी आदि) द्वारा होता है। रघुनन्दन ने प्रायश्चित्तत्त्व (पृ० ५२०) में लिखा है कि दुर्गापूजा में सुरा का प्रयोग किल्युग की प्रया नहीं है।

२. महासिद्धिप्रवं धन्यं सर्वशत्रुनिबर्हणम्। सर्वलोकोपकारार्थं विशेषादितवृष्टिषु। कृत्यपं (ऋत्वर्थं?) बाह्मणाद्यैश्च अत्रियमूर्मिपालने। गोधनार्थं विशा वत्स शूद्रैः पुत्रसुखायिभिः। सौभाग्यार्थं स्त्रिया कार्यमाद्यैश्च धनकांक्षिभिः। महावृतं महापुष्यं शंकराद्यैरनुष्ठितम्।। देवीपुराण (हे०, व्रत, भा १, पृ० ९०१; कृ० र०, पृ० ३५९; दुर्णभिक्ततरंगिणी, पृ० १५; ति० त०, पृ० ६७)।

३. अतो म्लेच्छावीनां न शूद्रवव् त्राह्मणद्वारापि जपे होमे समन्त्रकपूजायां वाधिकारः किन्तु तैस्तत्तदुपचाराणां सुराद्युपहारसहितानां पत्रवादिबलेश्च मनसोत्सर्गमात्रं वेवीमुद्दिश्य विधेयमिति सिद्धम्। स्मृतिकौ० (पृ० २९१)।

हमने देख लिया है कि आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक प्रमुख देव चार मासों के लिए शयन आरम्भ करते हैं। दुर्गा इन दिनों में आषाढ़ शुक्ल अष्टमी को शयन करने जाती हैं। अतः आश्विन में वे सोती रहेंगी। अतः उनके बोधन के लिए वचनों की व्यवस्था हुई है। किन्तू यहाँ मी मतैक्य नहीं है। तिथितत्त्व (पृ० ७१) में आया है कि यदि अठारह मुजाओं वाली देवी की पूजा करनी हो तो आश्विन के शुक्लपक्ष के पूर्व कृष्णपक्ष की नवमी तिथि पर देवी को जगाना चाहिए, किन्तु यदि दस मुजाओं वाली देवी की पूजा करनी हो तो आश्विन शुक्लपक्ष षष्टी की बोधन कराना चाहिए। किन्तु रघुनन्दन इस बात को अमान्य ठहराते हैं और कहते हैं कि दस मुजा वाली देवी का बोधन पिछले कृष्णपक्ष की नवमी को या शुक्लपक्ष की षष्टी को होना चाहिए। यदि बोधन नवमी की हो तो संकल्प इस प्रकार का होना चाहिए-- अमुकगोत्रः श्री-अमुकदेवशर्मा अतुलविमूतिकामः संवत्सरसुखकामो दुर्गाप्रीतिकामो वा वार्षिकशरत्कालीन-दुर्गामहापूजामहं करिष्ये' (दुर्गार्चनपद्धति, पृ० ६००)। व्रती आध्विन शुक्लपक्ष की प्रथमा को भी आरम्म कर सकता है और बोधन शुक्लपक्ष की षष्ठी को हो सकता है। संकल्प के उपरान्त ऋ० (७।१६।११) का पाठ होता है। इसके उपरान्त घट की प्रतिष्ठा होती है जिसमें जल, आम्रपल्लव या अन्य वृक्षों की टहनियाँ डाली जाती हैं और दुर्गा की पूजा १६ या ५ उपचारों से की जाती है। इसके उपरान्त चन्दन-लेप एवं त्रिफला (केशों को पवित्र करने के लिए) एवं कंघी चढ़ायी जाती है। द्वितीया तिथि को केशों को ठीक स्थान पर रखने के लिए रेशम की पट्टी दी जाती है। तृतीया को पैरों को रँगने के लिए अलक्तक, सिर के लिए सिन्दूर, देखने के लिए दर्पण दिया जाता है। चतुर्थी तिथि को देवी को मधुपर्क दिया जाता है, मस्तक पर तिलक के लिए चाँदी का एक टुकड़ा तथा आँखों के लिए अंजन दिया जाता है। पंचमी तिथि को अंगराग एवं शक्ति के अनुसार आमूषण दिये जाते हैं।

यदि दुर्गापूजा पष्ठी को (ज्येष्ठा नक्षत्र से संयुक्त हो या न हो) हो तो व्रती को प्रातःकाल बेल के वृक्ष के पास जाना चाहिए, और संकल्प करना चाहिए, वेदमन्त्र (ऋ० ७।१६।११) कहना चाहिए, घट-स्थापन करना चाहिए और विल्व वृक्ष को दुर्गा के समान पूजना चाहिए। यदि पूजा प्रतिपदा को ही आरम्म कर दी गयी हो तो व्रती को बेल वृक्ष के पास सायंकाल (चाहे ज्येष्ठा हो या न हो) जाना चाहिए और देवी का बोधन मन्त्र के साथ करना चाहिए—'रावण के नाश के लिए एवं राम पर अनुग्रह करने के लिए ब्रह्मा ने तुम्हें अकाल में जगाया, अतः मैं भी तुम्हें आदिवन की षष्ठी की सन्ध्या में जगा रहा हूँ।' दुर्गा-बोधन के उपरान्त व्रती को चाहिए कि वह बेल वृक्ष से यह कहे—'हे बेल वृक्ष, तुमने श्रीशैल पर जन्म लिया है और तुम लक्ष्मी के निवास हो, तुम्हें ले चलना है, चलो, तुम्हारी पूजा दुर्गा के समान करनी है।' इसके उपरान्त व्रती बेल वृक्ष पर मही (मिट्टी), गंध, शिला, धान्य, दूर्वा, पुष्प, फल, दही, घृत, स्विस्तक-सिन्दूर आदि को प्रत्येक के साथ मन्त्र का उच्चारण करके रखता है और उसे दुर्गा के शुम निवास के योग्य बनाता है। इसके उपरान्त वह दुर्गा-पूजा के मण्डप में आता है, आचमन करता है और अपराजिता लता को या नौ पौधों की पत्तियों को एक में गूँथता है। नव पत्रिका हैं कदली, दाड़िमी, धान्य, हरिद्रा, माणक, कचु, विल्व, अशोक, जयन्ती। प्रत्येक के साथ विशिष्ट मन्त्र का पाट होता है। इसी दिन दुर्गा की मिट्टी की प्रतिमा विल्व की शाखा के साथ घर में लायी जाती है और पूजित होती है। अन्य विवरण हम यहाँ नहीं दे पा रहे हैं।

सप्तमी तिथि को, चाहे वह मूल-नक्षत्र से युक्त हो या रहित हो, त्रती स्नान करके बिल्व (बेल) वृक्ष के पास जाता है, पूजा करता है, हाथ जोड़कर कहता है—'हे सौमाय्यशाली बिल्व, तुम सदा शंकर के प्यारे हो, तुमसे एक शाखा लेकर में दुर्गापूजा करूँगा; हेप्रमु, टहनी काटने से कष्ट का अनुमव न करना; हे बिल्व, तुम पेड़ों के राजा हो, मुँ तुमहें नमस्कार करता हूँ।' इस प्रकार कहकर वह दक्षिण-पश्चिम या उत्तर-पश्चिम दिशा को छोड़कर कहीं

से कोई शासा कार लेता है। उस शासा में फल हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं। कारते समय मन्त्र-पाठ होता है। इसके उपरान्त उस शासा को वृती पूजा-मण्डप में लाता है और एक पीढ़े पर रख देता है। इसके उपरान्त का विवरण स्थान-संकोच से छोड़ दिया जा रहा है। जानकारी के लिए देखिए कालिकापुराण (६१।११-२०); मत्स्य० (२६०।५६-६६), दु० म० त० (पृ० ४-५ एवं ७५-७६), व० कि० कौ० (पृ० ४१३-४१४); दुर्गार्चन० (पृ० ६६६-६७); का० त० वि० (पृ० २८५)।

दुर्गापूजा में पशु-बलि के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। कुछ बातें यहाँ दी जा रही हैं। कालिका-पुराण (७१।३-५ एवं ९५-९६) में दुर्गा एवं मैरव के सम्मान में बिल दिये जाने वाले जीवों का उल्लेख है—पक्षी, कच्छप (कछुआ), ग्राह, मछली, नौ प्रकार के मृग, मेंसा, गंवय, बैल, बकरी, नेवला, शूकर, खड्ग, कृष्ण हरिण, शरम, सिंह, व्याघ्र, मानव, व्रती का रक्त। किन्तु इनमें मादा जीवों का निषेध है और लिखा हुआ है कि जो मादा की बलि देता है, वह नरक में जाता है। बलि के पशु के कान कटे हुए नहीं होने चाहिए। सामान्यतः बकरे एवं मैंसे काटे जाते हैं। ऐसा आया है कि विन्ध्यवासिनी देवी पुष्प, घूप, विलेपन तथा अन्य पशुओं की बिल से उतनी प्रसन्न नहीं होतीं जितनी मेड़ों एवं मैंसों की बिल से (हे०, व्रत, माग १, पृ० ९०९)। वर्षित्रयाकौमुदी (पृ० ३९७) में आया है—'देवी को घोड़ा या हाथी की बलि कभी नहीं देन। चाहिए; यदि कोई ब्राह्मण सिंह, व्याघ्र या मनुष्य की बलि करता है तों वह नरक में पड़ता है और इस लोक में भी अल्प जीवन पाता है तथा सुख एवं समृद्धि से वंचित हो जाता है; यदि कोई ब्राह्मण अपना रक्त देता है तो वह आत्महत्या का अपराधी होता है; यदि कोई ब्राह्मण मुरा चढ़ाता है तो वह ब्राह्मण-स्थिति खो देता है। यदि सुरा-दान करना ही हो तो काँसे के पात्र मे नारियल-जल देना चाहिए या ताम्रपात्र में मधु देना चाहिए।' किन्तु कुछ मत उपर्युक्त कथन के विरोध में पड़ते हैं। कालिकापुराण (दु॰ मं॰ त॰, पृ॰ ५३) में आया है-अज, महिष एवं नर कम से बलि, महाबलि एवं अतिबलि घोषित हैं। यद्यपि पशु की बिल होती है किन्तु देवी को सामान्यतः उसका रक्त एवं सिर चढ़ाया जाता है। कालिका० (७१।२०-२२) में आया है कि मन्त्रपूत (मन्त्र के साथ चढ़ाया हुआ) शोणित (रक्त) एवं शीर्ष (सिर) अमृत कहे गये हैं। देवी-पूजा में कुशल वती गांस बहुत ही कम चढ़ाता है, केवल रक्त एवं सिर का प्रयोग होता है जो अमृत हो जात हैं। कालिका॰ में पुनः आया है कि शिवा (दुर्गा) बलि का सिर एवं मांस दोनों ग्रहण करती हैं, किन्तु व्रती को केवल रक्तं एवं सिर ही पूजा में चढ़ाना चाहिए, समझदार लोगों को चाहिए कि वे मांस का प्रयोग होम एवं मोजन में करें। दुर्गार्चनपदित में (पृ० ६६९-६७१) बिल किये जाने एवं रक्त-शीर्ष चढ़ाने के विषय में विस्तार के साथ लिखा है, जिसे हम स्थान-संकोच से यहाँ नहीं दे रहे हैं। अन्य बातों के लिए देखिए कालिका-पुराण। कुछ लोगों के हृदय पशु-बिल से द्रवित हो उठते हैं अतः कालिका० ने अन्य व्यवस्थाएँ दी हैं, यथा कूष्माण्ड-बलि, ईख, मद्य, आसव (गुड, पुष्पों एवं औषिधयों से प्राप्त)। इस विषय में और देखिए अहल्याकामधेनु। (इस समय नर-बलि अवैध घोषित है।)

ऐसा विश्वास बहुत प्राचीन काल से रहा है कि विल के जीव स्वर्ग में जाते हैं। देखिए ऋ० (१।१६२।२१, वाज० सं० २३।१६) एवं मनु (५।४२)। हेमाद्रि (ब्रत, माग १, पृ० ९०९) में आया है कि देवी की प्रसन्न करने के लिए जो पशु बाल होते हैं वे स्वर्ग को चले जाते हैं और जो उन्हें मारते हैं वे पापी नहीं होते।

४. 'ओम् छिन्धि छिन्धि फट् फट् हुं फट स्वाहा' इत्यनेन छेदयेत्। दुर्गार्चनपद्धति, पृ० ६६५; व० कि० कौ०, पृ० ४०१।

यहाँ तक विषयान्तर रहा। वास्तव में बिल नवमी तिथि को की जाती है। अभी अष्टमी तिथि के कृत्य का वर्णन करना शेष है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से युक्त या विहीन अष्टमी तिथि को, जिसे प्रहाष्टमी कहा जाता है, व्रती स्नान एवं आचमन करके पूर्व या उत्तर की ओर मुख होकर दमों के आसन पर बैठता है और अपने को पवित्र करता है। इसके उपरान्त वह प्राणायाम करता है और अपने विभिन्न अंगों (सिर से पैर तक) का न्यास करता है। इस विषय में देखिए दुर्गार्चनपद्धित (पृ० ६७८-६८१), नि० सि० (पृ० १७९-१८१)। अन्य विस्तार यहाँ छोड़ दिये जा रहे हैं।

महाष्टमी पूजा के दिन वृती उपवास करता है। किन्तु पुत्रवान् वृती ऐसा नहीं करता। अष्टमी तिथि को पूजा, नवमी तिथि को बिल, दशमी तिथि को देवी का विसर्जन आदि कृत्य किये जाते हैं।

अष्टमी तिथि को कुमारियों एवं ब्राह्मणों को खिलाया जाता है। देवीपुराण में आया है कि 'दुर्गा होम, दान एवं जप से उतनी प्रसन्नता नहीं व्यक्त करतीं जितनी कुमारियों को सम्मान देने से।' कुमारियों को दक्षिणा मी दी जाती है। और देखिए स्कन्द० जहाँ कुमारियों का विमाजन किया गया है—कुमारिका (दो वर्ष की), त्रिमूर्ति (तीन वर्ष की), कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्मवी, दुर्गा, सुमद्रा। इनका वर्णन हम यहाँ नहीं करेंगे।

अब हम संक्षेप में नवमी तिथि (महानवमी) का वर्णन करेंगे। नवमी को चाहे उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो या न हो, महाष्टमी के समान ही पूजा की जाती है। पुरानी क्रियाओं का ही पुनरावर्तन होता रहता है, अन्तर केवल यह होता है कि इस दिन अधिक पशुओं की बिल की जाती है। इस विषय में विस्तार के लिए देखिए राजनीतिप्रकाश (पृ० ४३९-४४४) जहाँ देवीपुराण से लम्बे उद्धरण लिये गये हैं।

दशमी तिथि को स्नान, आचमन के उपरान्त १६ उपचारों के साथ पूजा की जाती है। बहुत-से कृत्यों के उपरान्त, यथा मूर्ति से विभिन्न वस्तुओं को हटाकर, किसी नदी या तालाब के पास जाकर संगीत, गान एवं नृत्य के साथ मन्त्रोच्चारण करके प्रतिमा को प्रवाहित कर दिया जाता है। ऐसी प्रार्थना की जाती है—हे दुर्गा, विश्व की माता, आप अपने स्थान को चली जायँ और एक वर्ष के उपरान्त पुनः आयें। इसके उपरान्त शबरोत्सव होता है। इसका अर्थ यह है कि दशमी तिथि को देवी-प्रातेमा के जल-प्रवाह के उपरान्त शबरों (वनवासी, मील आदि) से सम्बन्धित कृत्य (दुर्गापूजा के उपरान्त आनन्दामिव्यक्ति के रूप में) किये जाने चाहिए। कालविवेक में आया है कि लोग विसर्जन के उपरान्त शबरों की माँति पत्तियों से देह को ढँककर, कीचड़ आदि से शरीर को पतिकर नृत्य, गान एवं संगीत में प्रवृत्त हो आनन्दातिरेक से प्रमावित हो जायँ। और देखिए कालिकापुराण (६२।२० एवं ४३; ६२।३१) जहाँ कीड़ाकौतुक, मंगल एवं शबरोत्सव आदि का उल्लेख है। शबरोत्सव से यही अर्थ निकाला जा सकता है कि देवी की दृष्टि में समी लोग बराबर हैं, अतः दशमी तिथि में सबको एक साथ मिलकर आनन्दोत्सव मनाना चाहिए। विसर्जन के उपरान्त लोग मित्रों के यहाँ जाते हैं और मिठाइयाँ खाते हैं। शबरोत्सव आजकल प्रचलित नहीं है।

प्रतिमा के लिए दो-एक बातें लिख देना आवश्यक है। ऐसी ही प्रतिमा का पूजन होता है जिसमें देवी सिंह एवं महिषासुर के साथ निर्मित हुई हों। मार्कण्डेय० (८०।३८ एवं ४०) में आया है कि देवी महिषासुर के गले पर चढ़ गयीं, उसे अपने त्रिशूल से मारा तथा अपनी मारी तलवार से उसके सिर को काट डाला और उसे मूमि पर गिरा दिया। आजकल देवी की प्रतिमा के साथ लक्ष्मी एवं गणेश की प्रतिमाएँ दाहिनी ओर तथा सरस्वती एवं कार्तिकेय की प्रतिमाएँ वायीं ओर बनी रहती हैं। प्रतिमा सोने, चाँदी, मिट्टी, धातु, पाषाण आदि की बन सकती है, यह केवल देवी का चित्र मात्र हो सकता है। देवी की पूजा लिंग में, वेदिका पर या पुस्तक में, पादुकाओं पर,

प्रतिमा में, चित्र में, त्रिशूल में, तलवार में या जल में हो सकती है। और देखिए गरुड़ एवं मिवष्यपुराण (दु॰ म॰ त॰,पृ॰ ४, ६ एवं ७)।

दुर्गा के बाहुओं के विषय में मतैक्य नहीं है। वराह० (९५।४१) में देवी के २० हाथ एवं २० हथियार हैं (९५।४२-४३)। देवीमागवत० (५।८।४४) में १८ हाथ कहे गये हैं। हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ९२३-९२४) ने आठ एवं दस हाथों का उल्लेख किया है। और देखिए विद्यापित (पृ० ६-७)।

'नवरात्र' शब्द के विषय में कई मत हैं। कुछ लोगों के अनुसार नवरात्र का तात्पर्य है '९ दिन एवं रात्रि'।
यह केवल समय का द्योतक है जिसमें वृत किया जाता है, यह कर्म का नाम नहीं है। किन्तु कुछ लोग इसे वृत से
सम्बन्धित मानते हैं, जो आठ दिनों तक चल सकता है जब कि तिथि-क्षय हो, या १० दिनों तक,
यदि-पहले दिन से नवें दिन तक तिथि की कोई वृद्धि हो। पहला मत कालतत्त्वविवेक (पृ० १६५) में तथा दूसरा
पुरुषार्थिचिन्तामणि (पृ० ६१) में प्रकाशित है। हम इसके विवेचन में यहाँ नहीं पड़ेंगे।

नवरात्र में दुर्गापूजा के प्रमुख विषय, चाहे वे ३ दिनों (सप्तमी से प्रारम्म होकर) तक चलें, या ९ दिनों (प्रथमा से नवमी) तक चलें, चार हैं, यथा स्नपन (प्रितमा-स्नान), पूजा, बिल एवं होम। ऊपर हमने स्थानामाव से स्नपन का विवेचन नहीं किया है। इस विषय में देखिए दुर्गार्चनपद्धित (पृ० ६७४), व्रतराज (पृ० ३४०) एवं अन्य निबन्ध। इन चारों कृत्यों में पूजा सबसे महत्त्वपूर्ण है और उपवास केवल पूजा का अंग है।

एक अन्य प्रश्न है—पूजा का समय क्या होना चाहिए? समयमयूख (पृ० १४) ने प्रातः काल, निर्णयसिन्धु (पृ० १६५) ने रात्रि काल माना है। किन्तु देवीपुराण एवं कालिकापुराण से व्यक्त होता है कि प्रातः, मध्याह्न एवं रात्रि तीनों ठीक हैं। इस प्रश्न के विषय में हम अन्य मतमतान्तरों का उल्लेख नहां करेंगे।

उपर कलश या घट के विषय में संकेत किया जा चुका है। पूर्ण कलश पिवतता एवं समृद्धि का प्रतीक है, ऐसा वैदिक काल से ही प्रकट है (ऋ०३।३२।१५ 'आपूर्णो अस्य कलशः')। इसके विषय में दुर्गामिक्ततरंगिणी (पृ०३), नि० सि० (पृ०७६७) व्रतराज (पृ०६२-६६) पुरुषार्थ चिन्तामणि (पृ०६६-६७) आदि में विशद उल्लेख है। दुर्गाचंत्र उति (पृ०६६३) में मी घट-स्थापन कृत्य का वर्णन है। यह दिन में किया जाता है न कि रात्रि में। पिवत्र मिट्टों की वेदिका बनती है, उस पर यव (जौ) एवं गेहूँ के अन्न बो दिये जाते हैं और वहाँ सोने, चाँदी, ताम्र या मिट्टों को वेदिका बनती है, उसमें जल मरा जाता है, जिसमें चन्दन, सर्वीषि, दूर्वा, पंचपल्लव, सात स्थानों की मिट्टों, फल, पंचरत्न एवं सोना डाल दिया जाता है। उपर्युक्त सभी कृत्यों के साथ वैदिक मन्त्रों का पाठ होता रहता है। घंट को वस्त्र से घेर दिया जाता है, उसके मुख पर पूर्णपात्र (चावल से युक्त) रख दिया जाता है और उस पर वरुण-पूजा की जाती है। इसके उपरान्त घट में दुर्गा का आवाहन किया जाता है, सभी देवों की प्रतिष्ठा होती है, उपचार किये जाते हैं, प्रार्थना की जाती है। अन्य बातें विस्तार-मय से छोड़ दी जा रही हैं।

हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ९०६) ने देवीपुराण से उद्धरण देकर अश्वों के सम्मान का उल्लेख किया है। दुर्गापूजा सबकी होती है। राजा या जिनके पास घोड़े होते हैं उन्हें द्वितीया तिथि से नवमी तक घोड़ों का सम्मान करना चाहिए। देखिए दुर्गामिक्ततरंगिणी (पृ० ५६-६३ एवं ६७-६९)। राजाओं को लोहाभिसारिका कृत्य करना पड़ता था। इस कृत्य को नीराजन भी कहा गया है। देखिए कृत्यकल्पतरु (पृ० ४०८-४१०) जहाँ नैयतकालिक विमाग में देवी-पूजा का उल्लेख है। इसमें दुर्गाष्टमी व्रत की चर्चा है, जिसके विषय में हेमाद्रि ने मी कुछ अन्तरों के साथ विवेचन उपस्थित किया है (व्रत, माग १, पृ० ८५६-८६२)।

दुर्गापूजा की प्राचीनता के विषय में हमने इस महाग्रन्थ के खण्ड दो में पढ़ लिया है। यहाँ कुछ विशेष बातों का उल्लेख हो रहा है। तै० सं० (१।८।६।१) में अम्बिका को शिव की बहिन कहा गया है, किंतु तै० आ० (१०।१८) में शिव को अम्बिका या उमा का पति कहा गया है। वन० (अध्याय ६) में दुर्गा को यशोदा एवं नन्द की लड़की कहा गया है और उसे वासुदेव की बहिन कहा गया है और काली, महाकाली एव दुर्गा की संज्ञा से विमिषत किया गया है। जब कृष्ण के कहने पर अर्जुन (भीष्म०, २३) ने दुर्गास्तोत्र का पाठ किया तो कई नामों का उल्लेख हुआ, यथा कुमारी, काली, कपाली, कपिला, मद्रकाली, महाकाली, चण्डी, कात्यायनी, कौशिकी, उमा। किन्तु महामारत की इन उक्तियों की तिथियों के समय के विषय में कुछ निश्चित निर्णय देना सम्मव नहीं है। साहित्यिक ग्रन्थों एवं सिक्कों से दुर्गा-पूजा की प्राचीनता पर कुछ निश्चित तालिका उपस्थित होती है। रघुवंश (सर्ग २) में पार्वती द्वारा लगाये गये देवदारुवृक्ष की रक्षा के निमित्त नियुक्त एक सिंह का उल्लेख है। पार्वती को गौरी (रघुवंश, २।२६ एवं कुमारसम्मव, ७।९५) एवं भवानी (कुमार० ७।८४), चण्डी (मेघदूत, १।३३). कहा गया है। कुमारसम्भव में शिव का अर्थनारीश्वर स्वरूप भी उल्लिखित है (७।२८)। उसी ग्रन्थ में माताओं (७।३०,३८), काली (मुण्डों का आभूषण धारण किये, ७।३९) के नाम आये हैं। मालतीमाधव (अंक ५) में चामुण्डा को पद्मावती नगरी में मानव-बिल दिये जाने का उल्लेख है। मुच्छकटिक (६।२७) में शम्म एवं निशम्म का दुर्ग द्वारा मारा जाना उल्लिखित है। यदि कालिदास का समय ३५०-४५० ई० है तो दुर्गापूजा ३०० ई० के पहले से अवश्य प्रचलित है। इस पर सिक्कों से मी प्रकाश पड़ता है। गुप्तकुल के सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रथम (३०५-३२५ ई०) के सिक्कों पर सिहवाहिनी देवी का चित्र है। तत्पूर्वकालीन कृषाण राजा 'कनिष्क' के सिक्कों पर भी चन्द्र एवं (बायों ओर झुके हुए) सिंह के साथ देवी का चित्र है, देवी के हाथ में पाश एवं राजदण्ड है। पाश एवं वाहन सिंह से प्रकट होता है कि वह देवी दुर्गा है न कि लक्ष्मी। इससे हम प्रथम या दूसरी शताब्दी तक पहुँच जाते हैं।

दो नवरात्रों (चैत्र एवं आश्विन) की व्यवस्था क्यों की गयी है ? यहाँ केवल अनुमान लगाने से कुछ प्रकाश मिल सकता है। यह सम्भव है कि ये दोनों पूजाएँ वसन्त एवं शरद् कालीन नवान्नों से सम्बन्धित रही हों। दुर्गापूजा पर शाक्त सिद्धान्तों एवं प्रयोगों का प्रभाव पड़ा है। घोष ने अपने ग्रन्थ 'दुर्गापूजा' में कल्पना की है कि वैदिक काल की उषा ही पौराणिक एवं तान्त्रिक दुर्गा है। किन्तु यह अभान्य है। कहाँ वेदकाल की सुन्दर एवं शोमनीय उषा और कहाँ कालिकापुराण की भयंकर दुर्गा ? दोनों के बीच में जोड़ने वाली कोई कड़ियाँ नहीं हैं। दुर्गा का सम्बन्ध ज्योतिष की (पांचवी-छठी राशि) सिहवाहिनी दुर्गा से हो सकता है, किन्तु इससे भी कोई विशिष्ट प्रकाश नहीं पड़ता।

इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (जिल्द २१ पृ० २२७-२३१) में श्री एन० जी बनर्जी ने उदयसिंह की दुर्गोत्सवपद्धित की ओर निर्देश किया है, जिसमें जय के लिए महानवमी एवं संकल्प से आरम्म हुआ है और अन्त किया गया है घोड़ों के प्रयाण करने के विवरण से, जो दशमी को होता है। इससे उन्होंने कहा है कि यह दुर्गापूजा आरम्म में सैनिक कृत्य था जो आगे चलकर धार्मिक हो गया। उन्होंने अपनी स्थापना के लिए रघुवंश (४१२४-२५) का हवाला दिया है जिसमें शरद् के आगमन पर रघु द्वारा आक्रमण करने के लिए शान्ति कृत्य (अक्वनीराजना) किया गया है। यह बात वृहत्संहिता (अध्याय, ४४) से भी सिद्ध की गयी है जहाँ घोड़ों, हाथियों एवं सैनिकों का नीराजन करना आक्विन या कार्तिक के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, द्वादशी या पूर्णिमा तिथियों में कहा गया है। किन्तु यह धारणा भ्रामक है, क्योंकि ऐसा वहुधा पाया गया है कि बहुत से उत्सव समान तिथियों में होते हैं, यथा उत्तर भारत में रामलीला का उत्सव नवरात्र से संयुक्त हो दस दिनों तक लता है। रामलीला एवं नवरात्र दोनों स्वतन्त्र कृत्य हैं।

#### अध्याय १०

# विजयादशमी एवं दिवाली (दीपावली)

आश्विन शुक्ल की दशमी को विजयादशमी कहा जाता है। इसका विशद वर्णन हेमाद्रि (व्रत, भाग १, प्० ९७०-९७३), निर्णयसिन्ध् (प्० ६९-७०), पुरुषार्थंचिन्तामणि (प्० १४५-१४८), व्रतराज (प्० ३५९-३६१), कालतत्त्वविवेचन (पृ० ३०९-३१२), धर्मसिन्धु (पृ० ९६) आदि में किया गया है। कालनिर्णय (पृ० २३१-२३३) के मत से शुक्ल पक्ष की जो तिथि सूर्योदय के समय उपस्थित रहती है उसे कृत्यों के सम्पादन के लिए उचित समझना चाहिए और यही बात कृष्ण पक्ष की उन तिथियों के विषय में भी पायी जाती है जो सूर्यास्त के समय उपस्थित रहती हैं। हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ९७३) ने विद्धा दशमी के विषय में दो नियम प्रतिपादित किये हैं—वह तिथि, जिसमें श्रवण-नक्षत्र पाया जाय, स्वीकार्य है तथा वह दशमी, जो नवमी से संयुक्त हो। किन्तु अन्य निबन्धों में तिथि-सम्बन्धी बहुत-से जटिल विवेचन उपस्थित किये गये हैं। दो-एक निम्न हैं। यदि दशमी नवमी तथा एकादशी से संयुक्त हो तो नवमी स्वीकार्य है यदि इस पर श्रवण नक्षत्र न हो। स्कन्दपुराण में आया है—'जब दशमी नवमी से संयुक्त हो तो अपराजिता देवी की पूजा दशमी को उत्तर-पूर्व दिशा में अपराह्य में होनी चाहिए। उस दिन कल्याण एवं विजय के लिए अपराजिता-पूजा होनी चाहिए।' (हे०, व्रत, माग १, पृ० ९७३, पुराणसमुच्चय का उदरण; नि॰ सि॰, पृ॰ १८९)। यह द्रष्टव्य है कि विजया-दशमी का उचित काल है अपराह्म, प्रदीष केवल गौण काल है। यदि दशमी दो दिनों तक चली गयी हो तो प्रथम (नवमी से संयुक्त) स्वीकृत होनी चाहिए। यदि दशमी प्रदोष काल में (किन्तु अपराह्न में नहीं) दो दिनों तक विस्तृत हो तो एकादशी से संयुक्त दशमी स्वीकृत होती है। जन्माष्टमी में जिस प्रकार रोहिणी मान्य नहीं है उसी प्रकार यहाँ श्रवण निणीत नहीं है। यदि दोनों दिन अपराह्न काल में दशमी न अवस्थित हो तो नवमी से संयुक्त दशमी मान ली जाती है, किन्तु ऐसी दशा में जब दूसरे दिन श्रवण-नक्षत्र हो तो एकादशी से संयुक्त दशमी मान्य होती है। ये निर्णय निर्णयसिन्धु के हैं। अन्य विवरणों एवं मतभेदों के लिए देखिए हे॰ (व्रत, मा० १, पृ० ९७३), नि० सि० (पृ० १२९), स० म० (पृ० ६९), मृगु (स० म०, पृ० ६९), घर्मसिन्धु (पृ० ९६-९७), मुहूर्तचिन्तामणि (११।७४)।

विजयादशमी वर्ष की तीन अत्यन्त शुभ तिथियों में एक है, अन्य दो हैं चैत्र शुक्ल की एवं कार्तिक शुक्ल की प्रतिपदा। इसीलिए भारत में बच्चे इस दिन अक्षरारम्भ करते हैं (सरस्वती पूजन), इसी दिन लोग नया कार्य

१. तथा च मार्कण्डेयः। शुक्लपक्षे तिथिर्प्राह्या यस्यामम्युदितो रिवः। कृष्णपक्षे तिथिर्प्राह्या यस्यामस्तिमितो रिवः इति।...तस्पूर्वोत्तरिवद्धयोर्द्शम्योः पक्षभेदेन व्यवस्था द्रष्टस्या। का० नि० (पृ० २३१-२३३)।

आरम्म करते हैं, मले ही चन्द्र आदि ज्योतिष के अनुसार ठीक से व्यवस्थित न हों, इसी दिन श्रवण-नक्षत्र में राजा रात्रु पर आक्रमण करते हैं और विजय तथा शान्ति के लिए इसे शुम मानते हैं।

इस शुम दिन के प्रमुख कृत्य हैं अपराजिता-पूजन, शमी-पूजन, सीमोल्लंघन (अपने ग्राम या राज्य की सीमा को लाँघना), घर को पुनः लौट थाना एवं घर की नारियों द्वारा अपने समक्ष दीप घुमवाना, नये वस्त्रों एवं आमूषणों को धारण करना, राजाओं के द्वारा घोड़ों, हाथियों एवं सैनिकों का नीराजन तथा परिक्रमण कराना।

दशहरा या विजयादशमी समी जातियों के लोगों के लिए एक महत्त्वपूर्ण दिन है, किन्तु राजाओं, सामन्तों

एवं क्षत्रियों के लिए यह विशेष रूप से शुम दिन है।

धर्मसिन्धु (पृ० ९६) में अपराजिता-पूजा की विधि संझेप में यों है— अपराह्ल में गाँव के उत्तर-पूर्व जाना चाहिए, एक स्वच्छ स्थल पर गोवर से लीप देना चाहिए, चन्दन से ८ कोणों का एक चित्र खींच देना चाहिए, संकल्प करना चाहिए (मम सकुटुम्बस्य क्षेमसिद्यर्थमपराजितापूजनं करिष्ये ; राजा के लिए—'मम सकुटुम्बस्य यात्रायां विजयसिद्ध्यर्थमपरा॰')। इसके उपरान्त उस चित्र (आकृति) के बीच में अपराजिता का आवाहन करना चाहिए और इसी प्रकार उसके दाहिने एवं बायें जया एवं विजया का आवाहन करना चाहिए और साथ ही 'क्रियाशक्ति को नमस्कार' एवं 'उमा को नमस्कार' कहना चाहिए। इसके उपरान्त 'अपराजितायै नमः, जयायै नमः, विजयायै नमः' मन्त्रों के साथ अपराजिता, जया, विजया की पूजा १६ उपचारों के साथ करनी चाहिए और यह प्रार्थना करनी चाहिए, 'हे देवी, यथाशक्ति जो पूजा मैंने अपनी रक्षा के लिए की है, उसे स्वीकार कर आप अपने स्थान को जा सकती हैं।' राजा के लिए इसमें कुछ अन्तर है। राजा को विजय के लिए ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए— वह अप-राजिता जिसने कण्ठहार पहन रखा है, जिसने चमकदार सोने की मेखला (करधनी) पहन रखी है, जो अच्छा करने की इच्छा रखती है, मुझे विजय दे', इसके उपरान्त उसे उपर्युक्त प्रार्थना करके विसर्जन करना चाहिए। तब सब को गाँव के बाहर उत्तर-पूर्व में उगे शमी वृक्ष की ओर जाना चाहिए और उसकी पूजा करनी चाहिए। शमी की पूजा के पूर्व या उपरान्त लोगों को सीमोल्लंघन करना चाहिए। कुछ लोगों के मत से विजय।दशमी के अवसर पर राम एवं सीता की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि उसी दिन राम ने लंका पर विजय प्राप्त की थी। राजा ढारा की जाने वाली पूजा के विषय में देखिए हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ९७०-७१), तिथितत्त्व (पृ० १०३)। निर्णयसिन्ध् एवं धर्मसिन्धु तथा अन्य निवन्धों में शमी-पूजा के विषय में कुछ अन्य विस्तार पाये जाते हैं। यदि शमी वृक्ष न हो तो अश्मन्तक वृक्ष की पूजा की जानी चाहिए।

इस अवसर पर कहीं-कहीं मैं से या बकरे की बिल दी जाती है। भारत में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व देशी राज्यों में, यथा बड़ोदा, मैसूर आदि रियासतों में विजयादशमी (या दशहरा जैसा कि प्रचलित है) के अवसर पर दरवार लगते थे और हौदों से युक्त हाथियों एवं दौड़ते तथा उछल कूद करते हुए घोड़ों की सवारियाँ राजधानी की

२. तथा भविष्य। शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका। घारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवाविनी।। करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं मुखं मया। तत्र निविध्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते।। इति। नि० सि० (पृ० १९०), पृ० चि० (पृ० १४७), घ० सि० (पृ० ९६))। विराटपर्व (अध्याय ५) में आया है कि जब पाण्डवों ने विराट की राजधानी में रहना चाहा तो उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र (यथा, प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष एवं तलवारें आदि) एक श्मशान के पास पहाड़ी पर स्थित शमी वृक्ष पर रख दिये थे। ऐसा भी परिकल्पित है कि राम ने लंका पर आक्रमण दशमी को ही किया था, जब श्रवण नक्षत्र था।

सड़कों पर निकलती थीं और जुलूस निकाला जाता था। प्राचीन एवं मध्य कालों में घोड़ों, हाथियों, मैनिकों एवं स्वयं का नीराजन उत्सव राजा लोग करते थे। कालिदास (रघु० ४।२४-२५) ने वर्णन किया है कि जब शरद ऋतु का आगमन होता था तो रघु 'वाजिनीराजना' नामक शान्ति कृत्य करते थे। वराह ने वृहत्संहिता (अध्याय ४४, कर्न द्वारा सम्पादित) में अश्वों, हाथियों एवं मानवों के शुद्धियुक्त कृत्य का वर्णन विस्तार से किया है। निर्णयसिन्धु ने सेना के नीराजन के समय के मन्त्रों का उल्लेख यों किया है—'हे सब पर शासन करने वाली देवी, मेरी वह सेना जो चार मागों (हस्ती, रथ, अश्व एवं पदाति) में विमाजित है, शत्रुविहीन हो जाय, और आपके अनुग्रह से मुझे सभी स्थानों में विजय-प्राप्ति हो।' तिथितत्त्व में ऐसी व्यवस्था है कि राजा को अपनी सेना को शक्ति प्रदान करने के लिए नीराजन करके जल्य या गोशाला के सभीप खंजन को देखना चाहिए और उसे निम्न मन्त्र से सम्बोधित करना चाहिए—'खंजन पक्षी, तुम इस पृथ्वी पर आये हो, तुम्हारा गला काला एवं शुम है, तुम सभी इच्छाओं को देने वाले हो, तुम्हें नमस्कार है।' तिथितत्त्व (पृ० १०३) ने खंजन के देखे जाने आदि के बारे में प्रकाश डाला है। वृहत्संहिता (अ० ४५) ने खंजन के दिखाई पड़ने तथा किस दिशा में कब उसका दर्शन हुआ आदि के विषय में घटित होने वाली घटनाओं का उल्लेख किया है। देखिए कृत्यरत्नाकर (पृ० ३६६-३७३), वर्षक्रियाकौमुदी (पृ० ४५०-४५१)। मनु (५।१४) एवं याज्ञ० (१।१७४) ने खंजन को उन पक्षियों में परिगणित किया है जिन्हें नहीं खाना चाहिए (सम्मवतः यह प्रतिबन्ध इसीलिए था कि यह पक्षी शकुन या शुम संकेत बताने वाला कहा जाता रहा है)।

उत्तरी भारत में रामलीला के उत्सव दस दिनों तक चलते रहते हैं और आश्विन की दशमी को समाप्त होते हैं, जिस दिन रावण एवं उसके साथियों की आकृतियाँ जलायी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त इस अवसर पर और भी कई प्रकार के कृत्य होते हैं, यथा हथियारों की पूजा, दशहरा या विजयादशमी से सम्बन्धित वृत्तियों (पेशों) के औजारों या यन्त्रों की पूजा। स्थान-संकीच से यह विवरण नहीं उपस्थित किया जायगा।

दशहरा उत्सव की उत्पत्ति के विषय में कई कल्पनाएँ की गयी हैं। मारत के कितपय मागों में नये अन्नों की हिव देने, द्वार पर धान की हरी एवं अनपकी वालियों को टाँगने तथा गेहूँ आदि के अंकुरों को कानों या मस्तक या पगड़ी पर रखने के कृत्य होते हैं, अतः कुछ लोगों का मत है कि यह कृषि का उत्सव है। कुछ लोगों के मत से यह रण-यात्रा का द्योतक है, क्योंकि दशहरा के समय वर्षा समाप्त हो जाती है, निदयों की बाढ़ थम जाती है, धान आदि कोष्ठागार में रखे जाने वाले हो जाते हैं। सम्भवतः यह उत्सव इसी दूसरे मत से सम्बन्धित है। मारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी राजाओं के युद्ध-प्रयाण के लिए यही निश्चित ऋतु थी। शमी-पूजा भी प्राचीन है। वैदिक यज्ञों के लिए शमी वृक्ष में उगे अश्वत्य (पीपल) की दो टहनियों (अरिणयों) से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। अग्नि शक्ति एवं साहस की द्योतक है, शमी की लकड़ी के कुन्दे अग्नि-उत्पत्ति में सहायक होते हैं। देखिए अथवंवेद (७।११११), तै० बा० (१।२।१।१६) एवं (१।२।१।७), तै० बा० (६।९।२) जहाँ शमी एवं अग्नि की पवित्रता एवं उपयोगिता की ओर मन्त्रसिक्त संकेत है। इस उत्सव का सम्बन्ध नवरात्र से भी है। क्योंकि इसमें महिषासुर के

३. कृत्वा नीराजनं राजा वालवृद्ध्यं यथा बलम्। शोभनं खंजनं पश्येष्जलगोगोष्ठसंनिधाः।। नीलग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद। पृथिन्यामवतीणोंसि खञ्जरीट नमोरतु ते।। ति० त० (पृ० १०३); नि० सि० (पृ० १९०), व० कि० कौ० (पृ० ४५०)।

विरोध में देवी के साहसपूर्ण कृत्यों का भी उल्लेख होता है और नवरात्र के उपरान्त ही वह उत्सव होता है। दशहरा या 'दसेरा' शब्द 'दश' (दस) एवं 'अहन्' से ही बना है। इस शब्द एवं ऊपर विणत 'दुर्गोत्सव' के साथ आये 'दशहरा' में अन्तर है। उत्तर मारत में विजया दशमी को दशहरा (दसेरा) भी कहा जाता है।

दिवाली—दीपों के उत्सव को सम्पूर्ण भारत में मान्यता प्राप्त है। किन्तु इसके कृत्य विभिन्न प्रकार से विभिन्न युगों एवं विभिन्न प्रान्तों में सम्पादित होते रहे हैं। किसी देव या देवी के सम्मान में किया गया यह केवल एक उत्सव नहीं है, जैसा कि कृष्णजन्माष्टमी या नवरात्र है। यह चार या पाँच दिनों तक चलता है और इसमें कई पृथक्-पृथक् कृत्य हैं। दीपावली के दिवस तो तीन ही हैं। इसे अधिक ग्रन्थों में दीपावली और कहीं-कहीं दीपालिका (भविष्योत्तर, अध्याय १४०, उपसंहार) संज्ञा दी हुई है। यदि इस उत्सव के किसी एक कृत्य पर विशेष बल दिया जाता है तो उसे सुखरात्र (राजमार्तण्ड, १३४६-१३४८ एवं कालविवेक, पृ० २३२, ४०३-४०४), यक्षरात्र (वात्स्यायन कामसूत्र, १।४।४२), सुखसुप्तिका (व्रतप्रकाश, हेमाद्रि, व्रत, भाग २,पृ० ३४८-३४९) की संज्ञाएँ मी प्राप्त हो गयी हैं। प्रो० पी० के० गोड ने इस उत्सव की प्राचीनता पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है (गंगानाथ झा इंस्टीच्यूट जर्नल, जिल्द ३,पृ० २०५-२१६)। मविष्योत्तर में दो अर्थ वाला एक पद्य मिलता है। नि० सि०, काल-तत्त्वविवेचन (पृ० ३१५) के अनुसार चतुर्दशी, अमावास्या एवं कार्तिक प्रतिपदा केतीन दिनों तक यह कीमुदी-उत्सव होता है।

सभी बातों के संयोग से दीपावली लगभग ५ दिनों तक चलती रहती है। इसमें पाँच दिनों तक पाँच कृत्य होते हैं, यथा धन-पूजा, नरकासुर पर विष्णु-विजय का उत्सव, लक्ष्मी-पूजा, बिल पर विष्णु की विजय का उत्सव, लक्ष्मी-पूजा, बिल पर विष्णु की विजय का उत्सव, लक्ष्मी-पूजा, बिल पर विष्णु की विजय का उत्सव, लूत-दिवस एवं माई-बहिन-प्यार के आदान-प्रदान का उत्सव। आक्विन (अमान्त) के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी से ही पाँच दिनों तक दीप-प्रकाश एवं पटाकों के छोड़ने के कृत्य होते रहते हैं। त्रयोदशी को 'धनतेरस' कहा जाता है। इस दिन धन्वन्तरि-जयन्ती का पर्व भी चिकित्सक लोग मनाते हैं। इसके पूर्व या उसी दिन घर, द्वार, आँगन स्वच्छ किये जाते हैं, लीपे-पोते जाते हैं, पात्र आदि को चमका दिया जाता है। देखिए पद्म ० (६।११४।४), स्कन्द० (निर्णयामृत का उद्धरण, नि० सि०, पु० २९६) एवं का० त० वि० (पु० ३२३)।

चतुर्दशी से लेकर चार दिनों के उत्सव का वर्णन भविष्योत्तर में विस्तार के साथ दिया हुआ है। कुछ अन्य

बातों का समावेश करते हुए हम इसी के आधार पर यहाँ प्रकाश डाल रहे हैं।

कार्तिक के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को दिनोदय में नरक से बचने के लिए तैल मालिश कर स्नान करना चाहिए, सिर पर अपामार्ग की टहनियों को घुमाना चाहिए और इनके साथ जोती हुई मूमि की मिट्टी एवं काँटे मी होने

४. उपशमितमेघनादं प्रज्विलतदशाननं रिमतरामम्। रामायणिमव सुभगं दीपिदनं हरतु वो दुरितम्।।
भविष्योत्तर० (१४०।७१)। प्रथम पंक्ति से दीपिदन एवं रामायण के तीन अंग-विशेष की ओर संकेत है।
उपशमिताः मेघानां नादाः यिसमन् (दीपिदन के सम्बन्ध में), उपशमितः मेघनादः यिसमन् (रामायण के सम्बन्ध में); प्रज्विलतानि दशानां दीपवर्तीनाम् आननानि अग्राणि यिसमन् (दीपिदन के साथ), प्रज्विलतः दशाननः रावणः यिसमन् (रामायण के साथ); रिमताः रामाः युवतयः यिसमन् (दीपिदन), रिमतः रामः येन (रामायण)।

५. इषासितचतुर्देश्यामिन्दुक्षयितथाविष । ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा वीपावली भवेत् । कुर्यात्संलग्नमेतच्च वीपोत्सविदनत्रयम् ॥ नारवसंहिता (नि० सि०, पृ० १९७, का० त० वि०, पृ० ३१५, व्रतराज, पृ० ५६३) ।

80

चाहिए। इसके उपरान्त तिल-युक्त जल का तर्पण यम को किया जाता है और उसके सात नाम लिये जाते हैं। पूराणों की व्यवस्था के अनुसार नरक के लिए (जिससे नरक में न पड़ना पड़े) एक दीप जलाना चाहिए और उसी सन्ध्या में ब्रह्मा, विष्ण, शिव आदि के मन्दिरों में, मठों, अस्त्रागारों, चैत्यों (वे उच्च स्थल जहाँ पुनीत वृक्ष-पौघे लगे रहते हैं), समामवनों, निदयों, मवन-प्राकारों, उद्यानों, कूपों, राजपथों एवं अन्तःपुरों में, सिद्धों, अर्हतों (जैन साधुओं), बुद्ध, चामुण्डा, भैरव के मन्दिरों, अश्वों एवं हाथियों की शालाओं में दीप जलाने चाहिए (मविष्योत्तर, १४०।१५-१७)। अन्य ग्रन्थों में ऐसा आया है कि इस दिन स्नान के बीच में अपामार्ग की टहनियों या पत्तियों या तुम्बी या प्रप्नाट की शाखाओं को शरीर पर घुमाना चाहिए, जिससे कि नरक (कष्ट) मग जाय और नरकासूर की स्मृति में चार दीप जलाने चाहिए। ऐसा आया है कि चतुर्दशी को लक्ष्मी तैल में और गंगा सभी जलों में निवास करने को दीपावली पर आती हैं और इसलिए जो व्यक्ति प्रातः तैल-स्नान करता है, वह यमलोक नहीं जाता। वर्तमान काल में दक्षिण में लोग चतुर्दशी को स्नान के उपरान्त कारीट नामक कडुवा फल पैर से कूचलते हैं, जो सम्मवतः नरकासुर के नाश का द्योतक है। तैल-स्नान अरुणोदय के समय होना चाहिए, किन्तु यदि किसी कारण ऐसा नहीं किया जा सके तो सूर्योदय के उपरान्त भी यह हो सकता है। धर्म सिन्धु (पृ०१०४) के मत से उस अवसर पर यतियों को भी तैल-स्नान करना चाहिए। सम्मवतः आरम्भिक रूप में यह चतुर्दशी नरकचतुर्दशी कही जाती थी, क्योंकि नरक से बचने के लिए यम को प्रसन्न रखना पड़ता है। आगे चलकर प्राग्ज्योतिष नगरी (कामरूप) के राजा नरकासुर के कृष्ण द्वारा वध की कथा इसमें संयुक्त हो गयी। जब पृथिवी का संपर्क कृष्ण के वराहावतार से हुआ तो नरकासुर की उत्पत्ति हुई। इसी कथा से नरकचतुर्दशी का मिलन हो गया। आजकल केवल नरकासुर का नाममात्र ले लिया जाता है, यमतर्पण नहीं किया जाता। विष्णु० (५।१९) एवं मागवत० (१०।५९, उत्तरार्ध) में नरकासुर के उपल्लवों (उपद्रवों, लूटखसोट) का वर्णन है। उसने देवताओं की माता अदिति के आमूषण छीन लिये, वरुण को छत्र से वंचित कर दिया, मन्दर पर्वत के मणिपर्वत शिखर को छीन लिया, देवताओं, सिद्धों एवं राजाओं की १६१०० कन्याएँ हर लीं और उन्हें प्रासाद में बन्दी बना लिया। कृष्ण ने उसे मार डाला। यदि पुराणों की बातें ऐतिहासिक तथ्य हैं तो उन्होंने कृपा कर उन कन्याओं से विवाह करके उन अमागी कन्याओं की सामाजिक स्थिति उन्नत कर दी।

६. मदनपारिजात (२९६) ने वृद्धमनु से उद्धृत कर विभिन्न नाम दिये हैं—'यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।। औदुम्बराय दक्ष्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥' व० क्रि० कौ० (पृ० ४५९), नि० सि० (पृ० १९९) में भी इसका उद्धरण है। और देखिए पद्म० (६।१२४।१३-१४)। चतुर्दशी होने के कारण यम के १४ नाम दिये हुए हैं। इन १४ नामों के लिए देखिए भविष्योत्तर० (१४०।१०) एवं हेमाद्रि (व्रत, भाग २, पृ० ३५२)।

७. अरुणोदयकालस्यैव मुख्यत्वप्रतिपादनात् । केनिचिन्निमित्तेनारुणोदयोदयकालेतिकान्ते सूर्योदयोत्तर-मप्यम्यंगः कर्तव्यः । पु० चि० (पृ० २४१) । और देखिए घ० सि० (पृ० १०४) ।

८. 'यमाय नमः यमं तर्पयामि' के रूप में यम तर्पण होता है। यह तर्पण दक्षिणदिशाभिमुख होकर तिलयुक्त जल से तीन अंजलियों से किया जाता है और जब पिता जीवित हों तो सच्य होकर या मृत हों तो अपसब्य होकर ऐसा करना चाहिए।

तिथितत्त्व (पृ० १२४) एवं कृत्यतत्त्व (पृ० ४५०-५१). के अनुसार इस चतुर्दशी को चौदह प्रकार के शाक-पातों का सेवन करना चाहिए।

वर्षित्रयानौमुदी, धर्मिसन्धु (पृ० १०४), पु० चि० (पृ० २५३), स० म० (पृ० ११७) आदि ग्रन्थों ने व्यवस्था दी है कि आश्विन कृष्णपक्ष की चतुर्दशी और अमावास्या की सन्ध्याओं को मनुष्यों को अपने हाथों ने उल्काएँ (मशाल) लेकर अपने पितरों को दिखाना चाहिए और इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए—'मेरे कुटुम्ब के वे पितर जिनका दाह-संस्कार हो चुका है, जिनका दाह-संस्कार नहीं हुआ है और जिनका दाह-संस्कार केवल प्रज्विलत अन्ति से (विना धार्मिक कृत्य के) हुआ है, परम गित को प्राप्त हों। ऐसे पितर लोग, जो यमलोक से यहाँ महालया श्राद्ध पर आये हैं (भाद्रपद या आश्विन के कृष्णपक्ष में, पूणिमान्त गणना के अनुसार) उन्हें इन उल्काओं से मार्गदर्शन प्राप्त हो और वे (अपने लोकों को) पहुँच जायँ।'

मध्यकालिक निबन्धों ने आश्विन कृष्णपक्ष (अमान्त) की चतुर्दशी पर निम्न कृत्यों की व्यवस्था की है—अभ्यंग स्नान (तैल स्नान), यम तर्पण, नरक के लिए दीपदान, रात्रि में दीपदान, उल्कादान (हाथ में मशाल लेना), शिव पूजा, महारात्रि-पूजा तथा केवल रात्रि में मोजन (नक्त) करना। अब केवल तीन (तैल स्नान, नरक-दीपदान एवं रात्रिदीपदान) ही प्रचलित हैं। स्नान के उपरान्त लोग नये वस्त्र एवं आमूषण धारण करते हैं, मिठाइयाँ और रात्रि में मौति-मौति के व्यंजन मोजन करते हैं। नि० सि० (पृ० १९७), पु० चि० (पृ० २४१), घ० सि० (पृ० १०४) में तैल-स्नान (अभ्यंग-स्नान) एवं त्रयोदशी से युक्त चतुर्दशी पर लम्बा विवेचन उपस्थित किया गया है। हम उसे यहाँ नहीं लिलेंगे। कृत्यतत्त्व (पृ० ४५०) में नरकचतुर्दशी को मूतचतुर्दशी की संज्ञा दी हुई है।

आश्विन कृष्णपक्ष चतुर्दशी, अमावास्या एवं कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को प्रातःकाल तैल-स्नान (तेल लगाकर स्नान करना) व्यवस्थित किया गया है, क्योंकि इससे धन एवं ऐश्वर्य मिलता है।

यह अभावास्या महत्त्वपूर्ण दिन है। इसमें प्रातःकाल तैल-स्नान करके अलक्ष्मी (दुर्माग्य एवं फटेहाली) को दूर करने के लिए लक्ष्मी-पूजा की जानी चाहिए। कुछ लोगों के मत से पीपल (अश्वत्य), उदुम्बर, प्लक्ष, आम्र एवं वट की छाल को पानी में उवाल कर स्नान करना चाहिए और स्त्रियों द्वारा अपने सामने दीपदान कराना चाहिए। अन्य विवरणों के लिए देखिए मविष्योत्तर (अध्याय १४०, इलोक १४-२९), हेमाद्रि (ब्रत, माग २, पृ० ३४८-३४९)। आजकल यह दिन वैश्यों एवं व्यापारियों द्वारा विशेष रूप से मनाया जाता है। वे अपने बही-खातों की पूजा करते हैं, अपने मित्रों, केताओं एवं अन्य व्यापारियों को निमन्त्रित करते हैं और उनका ताम्बूल एवं मिठाइयों से सत्कार करते हैं। पुराने खाते बन्द किये जाते हैं और नये खोले जाते हैं। ऐसी अनुश्रुति है कि ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को रक्षावन्धन (श्रावण पूर्णिमा), क्षत्रियों को दशहरा (विजयदशमी), वैश्यों को दिवाली एवं शूद्रों को होलिका के उत्सव दिये हैं। लक्ष्मी-पूजा की रात्रि को सुखरात्रि कहते हैं। देखिए कृत्यतत्त्व (पृ० ४५२), व० कि० कौ०, ध० सि० (पृ० १०७)। इस अवसर पर लक्ष्मी-पूजा के साथ-साथ कुवेर की पूजा भी होती है, जिससे सुख मिले। इससे इसी रात्रि को सुखरात्रि मी कहते हैं।

मिवण्योत्तर० (१४०।१४-२९) में अमावास्याकृत्य विणत है जो संक्षेप में यों है—प्रातःकाल अम्यंग-स्तान, देव-पितरों की पूजा, दहीं, दूघ, घृत से पार्वण-श्राद्ध, माँति-माँति के व्यंजनों से ब्राह्मण-मोजन; अपराह्ह में राजा की अपनी राजधानी में ऐसी घोषणा करानी चाहिए कि आज विल का आधिपत्य है, हे लोगो, आनन्द मनाओ। लोगों को अपने-अपने घरों में नृत्य एवं संगीत का आयोजन करना चाहिए, एक-दूसरे को ताम्बूल देना चाहिए, कुंकुम लगाना चाहिए, रेशमी वस्त्र धारण करना चाहिए, सोने एवं रत्नों के आमूषण धारण करने चाहिए। नारियों को सज-धजकर गोल बनाकर चलना चाहिए, सुन्दर कुमारियों को इधर-उधर चावल बिखेरने चाहिएऔर

विजय के लिए नीराजन (दीप घुमाना) करना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह अर्घरात्रि के समय राजधानी में घूमकर लोगों के आनन्दोत्सव का निरीक्षण करे। जब अर्घरात्रि बीत जाय और पुरुषों की आँखें नींद से मतवाली हो जाय तो नारियों को चाहिए कि वे सूपों एवं ढोलकों को पीट-पीटकर शोर-गुल करें और इस प्रकार अपने वृह-प्रांगण से अलक्ष्मी को मगायें।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा वर्ष की तीन अत्यन्त प्रमुख शुम तिथियों में परिगणित होती है। घ० सि० (पृ० १०६) में आया है कि यद्यपि चतुर्देशी एवं उसके आगे के तीन दिन दीपावली की संज्ञा से विमूषित हैं; तथापि वह दिन जो स्वाति-नक्षत्र से संयुक्त है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस दिन भी अभ्यंग-स्नान (तैल-स्नान) करने का नियम है। इस तिथि पर सबसे महत्त्वपूर्ण कृत्य है बलि-पूजन। मिवष्योत्तर० (१४०-४७-७३) में यह यों वर्णित है—रात्रि में पाँच प्रकार के रंगीन चूर्णों से खचित भूमि पर एक वृत्त पर दो हाथों वाले बलि की आकृति राजा द्वारा बनायी जानी चाहिए। आकृति पर सभी आमूषण हों, उसके पास विन्ध्याविल (बलि की पत्नी) भी हो और चारों बोर से क्ष्माण्ड, बाण, मुर आदि असुर घेरे हुए हों। मूर्ति या आकृति पर मुकुट एवं कर्णामूषण हों। राजा को अपने मन्त्रियों एवं माइयों के साथ प्रासाद के मध्य में भाँति-भाँति के कमलों से पूजा करनी चाहिए, चन्दन, धूप, नैवेद्य (मांस एवं मदिरा से युक्त) भोजन देना चाहिए और यह मन्त्र कहना चाहिए-"बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचन-सुत प्रमो। मविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।" अर्थात् 'विरोचन् के पुत्र राजा बलि, तुम्हें प्रणाम, देवों के शत्रु एवं मविष्य के इन्द्र, यह पूजा लो। इसके उपरान्त उसे क्षत्रियों की गाथाओं पर आधारित नृत्यों, गानों, नाटकों आदि का अवलोकन कर रात्रि मर जागना चाहिए। सामान्य लोगों को भी अपने घरों में बलि की प्रतिमा को पर्यंक पर सजाना चाहिए। यह प्रतिमा चावल से बनी हुई होनी चाहिए और उस पर पुष्प एवं फल रखे रहने चाहिए। जो कुछ मी थोड़ा या अधिक दान इस अवसर पर किया जाता है वह अक्षय होता है और विष्णु को प्रसन्न करता है। कृत्यतत्त्व (पृ०४५३) में आया है कि बिल को तीन पुष्पांजिलयाँ दी जानी चाहिए। भविष्योत्तर ने जोड़ दिया है कि यह तिथि बिल के राज्य का विस्तार करती है, इस पर किये गये स्नान एवं दान सौगुना फल देते हैं।

यदि प्रतिपदा अमावास्या या द्वितीया से संयुक्त हो, तो बिल-पूजा, जिसका समय रात्रि है, अमावास्या से संयुक्त प्रतिपदा को की जानी चाहिए। यही बात माधव ने भी कही है (कालनिर्णय, पृ० २६)।

बिल विष्णुमक्त प्रह्लाद के पुत्र विरोचन का पुत्र था। वन० (२८।२) में आया है कि एक वार विल ने अपने पितामह से पूछा कि 'कौन उत्तम है, क्षमा या तेज।' शान्ति० (२२५।१३) में ऐसा उल्लेख है कि बिल ने ब्राह्मणों से ईर्ष्या की। बिल बहुत शक्तिमान् था, उसने देवों का तेज छीन लिया। बिल की गाथा ब्रह्म० (७३), कूमैं० (११६७), वामन० (अघ्याय ७७ एवं ९२), स्कन्द० (अघ्याय २४५-२४६), भविष्यात्तर० (१४०) में आयी है। बिल ने अक्वमेघ यज्ञ किया। विष्णु ने वामन रूप घारण किया और बिल से तीन पग मूमि माँगी। यद्यपि शुक्र ने बिल को सचेत कर दिया था कि वामन और कोई नहीं साक्षात् विष्णु हैं, तथापि बिल ने तीन पग मूमि देने की प्रतिज्ञा की। वामन ने अपना रूप बढ़ाया और दो पगों से स्वर्ग एवं मूमिलोक को नाप लिया। जब वामन ने तीसरे पग के लिए मूमि माँगी तो बिल ने अपनी गरदन बढ़ा दी और इस प्रकार बिल पाताल लोक में दबा दिया गया। विष्णु ने प्रसन्न होकर बिल को पाताल लोक का अधिपित बना दिया और उसे मविष्य में होने वाले इन्द्र की स्थित प्रदान की। यह कथा अति प्राचीन है। महामाध्य (पाणिनि, ३।१।२६) में आया है—'जब कोई बिल-बन्धन की कथा कहता है या रंगमंच पर उसे खेलता है तो ऐसा कहा जाता है 'बिल बन्ध्यति' (वह बिल को बाँघता है), जब कि बिल बहुत पहले बन्दी हुआ था।' इससे प्रकट है कि बिल की कथा नाटकों या कविताओं में २००० वर्ष पहले आ गयी थी।

बिलप्रितिपदा को वामनपुराण में वीरप्रितिपदा और चूतप्रितिपदा मी कहा गया है (कृत्यतत्त्व, पृ० ४५२)। पुराणों में आया है कि उस दिन पार्वती ने चूतकीड़ा में शंकर को हराया, जिससे शंकर दुखी एवं पार्वती प्रसन्न हुईं। उस दिन की हार से वर्ष मर धन की हानि होती है और विजय से वर्ष कल्याणकारी होता है। मारत के कितपय मागों में इस दिन जूआ खेला जाता है, और बहुत-से लोग ह्युरते हैं या जीतते हैं। नेपाल जसे छोटे राज्य में बिलप्रितिपदा के दिन सन् १९५५ ई० में ३० लाख रुपयों की बाजी हारी -जीती गयी थी!

इस दिन मी वीपदान होता है। ऐसा वचन है— बिलराज्य के दिन दीपदान से लक्ष्मी स्थिर होती हैं, दीपदान से ही यह दीपावली कही गयी है। बिलराज्य आने पर जो दीपावली-उत्सव नहीं मनाता, उसके घर में किस प्रकार दीप जलेंगे?' (धर्मसिन्धु, पृ० १०६; पु० चि०, पृ० २४३-२४४)। बिलराज्य चतुर्दशी से लेकर तीन दिनों तक चलता है। अन्य बातें यहां छोड़ी जा रही हैं। विशेष विस्तार से अध्ययन के लिए देखिए घ० सि० (पृ० १०६), का० त० वि० (पृ० ३२१), नि० सि० (पृ० २०) आदि। प्रतिपदा को बहुत-से कृत्य होते हैं, यथा बलि-पूजा, दीपदान, गौओं एवं बैलों की पूजा, गोवर्धन की पूजा, मार्गपाली (सड़क की रिक्षका) को बाँधना, नववस्त्र-धारण, द्यूत-क्रीड़ा, पुरुषों एवं सधवा नारियों के समक्ष दीप घुमाना, एक शुम माला को बाँधना। आजकल इनमें केवल दो-तीन ही किये जाते हैं, बिल-पूजा, दीपदान एवं द्यूत-क्रीड़ा। अतः हम संक्षेप में ही लिखेंगे। गौओं, बछड़ों एवं बैलों को सजाकर उनकी पूजा दो मन्त्रों से की जाती है। इस दिन गायों को दुहा नहीं जाता, बैलों पर सामान नहीं ढोये जाते। यह कार्तिक प्रतिपदा को किया जाता है। यह जब द्वितीया से संयुक्त हो तो कृत्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि पुत्र, पत्नी या घन की हानि होती है, अतः वैसी स्थित में अमावास्या से युक्त प्रतिपदा ही मान्य ठहरायी गयी है। देवल के अनुसार प्रतिपदा को गौओं की पूजा से प्रजा, गौएँ एवं राजा समृद्धिशाली होते हैं।

गोवर्घन-पूजा में वे लोग, जो गोवर्घन पर्वत के पास रहते हैं, वहीं जाते हैं, और प्रातःकाल उसकी पूजा करते हैं, किन्तु वे लोग, जो दूर रहते हैं, गोबर से या मोज्यान से गोवर्घन बना लेते हैं या चित्र खींचकर सोलहों उपचारों से गोवर्घन एवं कृष्ण को पूजा करते हैं और मन्त्रों का पाठ करते हैं। उन मन्त्रों में इन्द्र द्वारा की गयी अति वृष्टि से गोकुल को कृष्ण द्वारा वचाये जाने की घटना की ओर संकेत है। बड़े पैमाने पर नैवेद्य मोग लगाया जाता है। इसी से, जैसा कि स्मृतिकौस्तुम (पृ० १७४) में आया है, गोवर्घन-पूजा को अन्नकूट (मोजन का टीला या शिखर) भी कहा गया है (विष्णुपुराण, ५।११।५-२५; वराह, १६४, पद्मपुराण)। आजकल बिहार एवं उड़ीसा में 'गायदाँड़' (गायदाण्) नामक उत्सव होता है जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अपराह्ह में सम्पादित होता है। उस दिन गायों के शरीर पर लाल एवं पीले रंग लगाये जाते हैं, सींगों पर तेल और गेरू लगाया जाता है। इस प्रकार से अलंकृत गौएँ एक छोटे छौने (सूअर के बच्चे) का पीछा करती हैं और अपने नोकीले सींगों से उसे मार डालती हैं। रस्सी से वेंचे हुए छौने को ग्वाला लोग गायों के बीच फेंकते हैं और गाएँ मड़क कर उसका पीछा करती हैं और अपने सींगों से उसे दवाती हैं। यह दृश्य सचमुच बड़ा बीमत्स होता है।

अपराह्ल में ही इस प्रतिपदा को मार्गपाली-बन्धन कृत्य किया जाता है। अपने घर के आचार के अनुसार कुश या काश की रस्सी बनायी जाती है और पूर्व दिशा में स्थित किसी वृक्ष या लम्बे स्तम्म में उसे बाँधा जाता है। उसका नमन करना होता है और मन्त्र के साथ प्रार्थना की जाती है। उस रस्सी के नीचे से सभी—राजा, ब्राह्मण आदि गौओं, हाथियों के साथ निकलते हैं। इसी प्रकार उसी ढंग की रस्सी से रस्साकशी की जाती है। एक और राजकुमार लोग और दूसरी ओर निम्न जाति के लोग होते हैं। यह कृत्य किसी मन्दिर के समक्ष, या महल में या चौराहे पर किया जाता है और समान संख्या में लोग दोनों ओर लग जाते हैं। यदि निम्न जाति के लोग जीत जाते हैं को समझा जाता है कि राजा उस वर्ष विजयी रहेगा (आदित्यपुराण, नि० सि०, पू० २०२; व्रतराज, पू०

७०)। प्रातःकाल (यदि प्रतिपदा द्वितीया से युक्त हो) नारियों द्वारा नीराजन-उत्सव किया जाता है। यदि प्रतिपदा थोड़ी देर रहने वाली हो तो द्वितीया की संघ्या में मंगलमालिका (शुम कृत्यों का एक समूह या शुम मालिकाओं का एक समूह) का कृत्य होता है।

उत्पर कहा जा चुका है कि आधिवन शुक्ल चतुर्दशी सहित इन तीन दिनों को कौमुदीमहोत्सव की संज्ञानिली है। मिविष्योत्तर एवं पद्म ॰ में 'कौमुदी' की व्युत्पत्ति 'कु' (पृथिवी!) एवं 'मुद्' (प्रसन्न होना) से की गयी है, जिसकों लोग इस पृथिवी पर आपस में प्रसन्नता की प्राप्ति करते हैं।' दूसरा अर्थ यह है कि इस उत्सव में 'बलि को कुमुदों' (कुमुदिनियों) का दान किया जाता है।

वैदिक काल में आश्विन या शरद् में बहुत-से कृत्य किये जाते थे, यथा आश्वयुजी एवं आग्रयण या नवसस्येष्टि। पहला कृत्य सात पाकयज्ञों में परिगणित है (गौतमधर्मसूत्र, ८।१९) जो आश्विन की पूर्णिमा को सम्पादित होता था। इन दोनों कृत्यों का वर्णन इस महाग्रन्थ के खण्ड २ में हो चुका है। किन्तु इन कृत्यों में हम दिवाली उत्सव की गन्ध नहीं पाते। दिवाली के उद्गम के विषय में कुछ कहना सम्मव नहीं है। इस विषय में कुछ परिकल्पनाएँ की गयी हैं जो यथातथ्य नहीं लगतीं (देखिए श्री बी० ए० गुप्ते का लेख 'दिवाली फोकलोर', इण्डियन एण्टोक्वेरी, जिल्द ३२, पृ० २३७-२३९)।

कार्तिक शुक्ल दितीया को एक सुन्दर उत्सव होता है, जिसका नाम है आतृद्वितीया या यमदितीया।
मविष्य० (१४।१८-७३) में आया है—कार्तिक शुक्ल दितीया को यमुना ने यम को अपने घर पर मोजन के लिए निमन्त्रित किया, इसी से इसे संसार में यमदितीया के नाम से घोषित किया गया; समझदार लोगों को इस दिन अपने घर में नघ्याह्न का मोजन नहीं करना चाहिए, उन्हें अपनी बहिन के घर में स्नेहवश खाना चाहिए; ऐसा करने से कल्याण या समृद्धि प्राप्त होती है। बहिनों को मेंट दी जानी चाहिए। सभी बहिनों को स्वर्णाभूपण, वस्त्र, आदर-सत्कार एवं मोजन देना चाहिए; किन्तु यदि बहिन न हो तो अपने चाचा या मौसी की पुत्री या मित्र की बहिन को बहिन मानकर ऐसा करना चाहिए। इसके विस्तार के लिए देखिए हेमाद्रि (व्रत, माग १, पृ० ३८४ ३८५; का० वि०, पृ० ४०५; कृ० र०, पृ० ४१३; व० कि० कौ०, पृ० ४७६-४७८; ति० त०, पृ० २९; नि० सि०, पृ० २०३; कृत्यतत्त्व, पृ० ४५३)।

श्रातृद्वितीया का उत्सव एक स्वतन्त्र कृत्य है, किन्तु यह दिवाली के तीन दिनों में सम्भवतः इसीलिए मिला लिया गया कि इसमें बड़ी प्रसन्नता एवं आह्लाद का अवसर मिलता है जो दिवाली की घड़ियों को बढ़ा देता है। माई दिरद्र हो सकता है, बिहन अपने पित के घर में सम्पत्ति वाली हो सकती है; वर्षों से मेंट नहीं हो सकी है आदि-आदि कारणों से द्रवीभूत होकर हमारे प्राचीन लेखकों ने इस उत्सव की परिकल्पना कर डाली है। माई-बिहन एक दूसरे-से मिलते हैं, बचपन के सुख-दुख की याद करते हैं। इस कृत्य में धार्मिकता का रंग भी जोड़ दिया गया है। ऋ० (१०।१०) में विणित यम एवं यमी का आख्यान यहाँ आ गया है।

पद्मपुराण में ऐसा आया है कि जो व्यक्ति अपनी विवाहिता बहिनों को वस्त्रों एवं आभूषणों से सम्मानित करता है, वह 'वर्ष मर किसी झगड़े में नहीं पड़ता और न उसे शत्रुओं का मय रहता है। मविष्योत्तर एवं पद्म के कहा है—'जिस दिन यम को यमुना ने इस लोक में स्नेहपूर्वक मोजन कराया, उस दिन जो व्यक्ति अपनी वहिन के हाथ का बनाया हुआ मोजन करता है वह धन और सुन्दर मोजन पाता है।'

वैदिक काल तथा मनु (२।११), याज्ञ० (१।५३) जैसी आरम्भिक काल की स्मृतियों के काल में भाई से विहीन कुमारियों के विवाह में कठिनाई होती थी। किन्तु इसी भावना या व्यवहार से भ्रातृ-द्वितीया का उद्गम मान लेना उचित नहीं है।

### अध्याय ११

# मकरसंकान्ति एवं महाशिवरात्रि

मकर-संक्रान्ति--यह एक अति महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य एवं उत्सव है। आज से लगमग ८० वर्ष पूर्व, उन दिनों के पंचांगों के अनुसार, यह १२वीं या १३वीं जनवरी को पड़ती थी, किन्तु अब विषुवतों के अग्रगमन (अयन-चलन) के कारण १३वीं या १४वीं जनवरी को पड़ा करती है। 'संक्रान्ति' का अर्थ है सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना, अतः वह राशि जिसमें सूर्य प्रवेश करता है, संक्रान्ति की संज्ञा से विख्यात है। जब सूर्य धनु राशि को छोड़कर मकर राशि में प्रवेश करता है तो मकरसंक्रान्ति होती है। राशियाँ वारह हैं, यथा मेष, वृषभ, मियुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्म, मीन । मलमास पड़ जाने पर भी वर्ष में केवल १२ राशियाँ होती हैं। प्रत्येक संक्रान्ति पवित्र दिन के रूप में ग्राह्य है। मत्स्य ० (अध्याय ९८) ने संक्रान्ति-त्रत का वर्णन किया है। एक दिन पूर्व व्यक्ति (नारी या पुरुष) को केवल एक वार मध्याह्न में मोजन करना चाहिए और संक्रान्ति के दिन दाँतों को स्वच्छ करके तिलयुक्त जल से स्नान करना चाहिए। व्यक्ति को चाहिए कि वह किसी संयमी ब्राह्मण गृहस्थ को मीजन सामग्रियों से युक्त तीन पात्र तथा एक गाय यम, रद्र एवं धर्म के नाम पर दे और चार श्लोकों को पढ़े, जिनमें एक यह है 'यथा भेदं' न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान् । तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरःशंकरः सदा।।' (मत्स्य० ९८।१७), अर्थात् 'मैं शिव एवं विष्णु तथा सूर्य एवं ब्रह्मा में अन्तर नहीं करता, वह शंकर, जो विश्वात्मा है, सदा कल्याण करने वाला हो' (दूसरे 'शंकर' शब्द का अर्थ है- शं कल्याणं करोति)। यदि हो सके तो व्यक्ति को चाहिए कि वह ब्राह्मण को आमूषणों, पर्यंक, स्वर्णपात्रों (दो) का दान करे। यदि वह दरिद्र हो तो ब्राह्मणको केवलफल दे। इसके उपरान्त उसे तैल-विहीन मोजन करना चाहिए और यथाशक्ति अन्य लोगों को मोजन देना चाहिए। स्त्रियों को भी यह ब्रत करना चाहिए। संक्रान्ति, ग्रहण, अमावास्या एवं पूर्णिमा पर गंगा-स्न<sup>र</sup>न महापुण्यदायक माना गया है, और ऐसा करने पर व्यक्ति ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। परयेक संक्रान्ति पर सामान्य जल (गर्म नहीं किया हुआ) से स्नान करना नित्यवर्म कहा जाता है, जैसा कि देवीपुराण (का० वि०, पृ०

१. रवेः संक्रमणं राशों संक्रान्तिरिति कथ्यते। स्नानदानतपःश्राद्धहोमादिषु महाफला।। नागरखण्ड (हे०, काल, पृ० ४१०); मेवादिषु द्वादशराशिषु क्रमेण सञ्चरतः सूर्यस्य पूर्वस्माद्वाशेरुत्तरराशों संक्रमणं प्रवेशः संक्रान्तिः। अतस्तद्राशिनामपुरःसरं सा संक्रान्तिव्यंपदिश्यते। का० नि० (पृ० ३३१)।

२. संकान्त्यां पक्षयोरन्ते ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। गंगास्नातो नरः कामाद् ब्रह्मणः सदनं व्रजेत्।। भविष्य० (क० कि० की०, पृ० ५१४)।

३८० का० नि०, पृ० ३३३ आदि में उद्धृत) में घोषित है—'जो व्यक्ति संक्रान्ति के पितर दिन पर स्नान नहीं करता वह सात जन्मों तक रोगी एवं निर्धन रहेगा; संक्रान्ति पर जो भी देवों को हव्य एवं पितरों को कव्य दिया जाता है वह सूर्य द्वारा मिवष्य के जन्मों में लौटा दिया जाता है।'

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा लिखित है कि केवल सूर्य का किसी राशि में प्रवेश मात्र ही पुनीतना का द्योतक नहीं है, प्रत्युत सभी ग्रहों का अन्य नक्षत्र या राशि में प्रवेश पुण्यकाल माना जाता है (का० नि०, पृ० ३४५)। हे० (काल, पृ० ४३७) एवं का० नि० (पृ० ३४५) ने कम से जैमिनि एवं ज्योति:शास्त्र से उद्धरण देकर सूर्य एवं ग्रहों की संक्षान्ति का पुण्यकाल के। घोषित किया है—'सूर्य के ।वषय में संक्षान्ति के पूर्व या पश्चात् १६ घटिकाओं का समय पुण्य समय है; चन्द्र के विषय में दोनों ओर एक घटी १३ पल पुण्यकाल है; मंगल के लिए ४ घटिकाएँ एवं एक पल; बुच के लिए ३ घटिकाएँ एवं १४ पल; बृहस्पति के लिए चार घटिकाएँ एवं ३७ पल; शुक्र के लिए ४ घटिकाएँ एवं १४ पल; बृहस्पति के लिए चार घटिकाएँ एवं ३७ पल; शुक्र के लिए ४ घटिकाएँ एवं एक पल तथा शनि के लिए ८२ घटिकाएँ एवं ७ पल।

ग्रहों की भी संत्रातियाँ होती हैं, किन्तु पश्चात्कालीन लेखकों के अनुसार 'संत्रान्ति' शब्द केवल रिव-संत्रान्ति के नाम से ही द्योतित है, जैसा कि स्मृतिकौस्तुम (पृ० ५३१) में उल्लिखित है।

वर्ष भर की १२ संक्रान्तियाँ चार श्रेणियों में विभक्त हैं—(१) दो अयन-संक्रान्तियाँ (मकर-संक्रान्ति, जब उत्तरायण का आरम्भ होता है एवं कर्कट-संक्रान्ति, जब दक्षिण।यन का आरम्भ होता है), (२) दो विषुव-संक्रान्तियाँ (अर्थात् मेष एवं तुला संक्रान्तियाँ, जब रात्रि एवं दिन बराबर होते हैं), (३) वे चार संक्रान्तियाँ, जिन्हें षडशीति-मुख (अर्थात् मिथुन, कन्या, घनु एवं मीन) कहा जाता है तथा (४) विष्णुपदी या विष्णुपद (अर्थात् वृषम, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्म) नामक संक्रान्तियाँ। रे

आगे चलकर संक्रान्ति का देवीकरण हो गया और वह साक्षात् दुर्गा कही जाने लगी। देवीपुराण (हे०, काल, पृ० ४१८-४१९; कृ० र०, पृ० ६१४-१६५ एवं कृत्यकल्प, पृ० ३६१-३६१) में आया है कि देवी वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन आदि के कम से सूक्ष्म-सूक्ष्म विमाग के कारण सर्वगत विमु रूप वाली है। देवी पुण्य तवं पाप के विमागों के अनुसार फल देने वाली है। संक्रान्ति के काल में किये गये एक कृत्य से मी कोटि-कोटि फलों की प्राप्ति होती है। धर्म से आयु, राज्य, पुत्र, सुख आदि की वृद्धि होती है, अधर्म से व्याधि, शोक आदि वढ़ते हैं। विषुव (मेष एवं तुला) संक्रान्ति के समय जो दान या जप किया जाता है या अयन (मकर एवं कर्कट संक्रान्ति) में जो सम्पादित होता है, वह अक्षय होता है। यही बात विष्णुपद एवं षडशीति-मुख के विषय में भी है।

३. पञ्चिसद्वान्तिकः (३।२३-२४, पृ० ९) ने परिभाषा की है—'मेषतुलादौ विषुवत् षडशीतिमुखं तुलादिभागेषु। षडशीतिमुखेषु रवेः पितृदिवसा येऽवशेषाः स्युः॥ षडशीतिमुखं कन्याचतुर्दशेऽष्टादशे च मिनुत्य। मीनस्य द्वाविशे षड्विशे कार्मुकस्यांशे॥' तुला आदियंस्याः सा तुलादिः कन्या। द्वादशैव भवन्त्येषां द्विज नामानि मे शृणु। एकं विष्णुपदं नाम षडशीतिमुखं तथा॥ विषुवं च तृतीयं च अन्ये द्वे दक्षिणोत्तरे॥ कुम्भालिगोहरिषु विष्णुपदं वदन्ति स्त्रीचापमीनिम्युने षडशीतिवक्त्रम्। अर्कस्य सौम्यमयनं शशिषाम्नि याम्यमुक्षे सर्षे विषुवति त्वजतौलिनोः स्यात्॥ ब्रह्मवैवर्तं (हे०, काल, पृ० ४०७)। कुछ शब्दों की व्याख्या आवश्यक है—अलि वृश्चिक, गो वृषभ, हरि सिंह, स्त्री कन्या, चाप धनुः, शशिषाम्नि शशिगृह कर्कटक, सौम्यायन उत्तरायण, याम्य दक्षिणायन (यम दक्षिण का अधिपति है), अष मकर, अज मेष, तौली (जो तराजू पकड़े रहता है) तुला।

सूर्य जब एक राज्ञि छोड़कर दूसरी में प्रवेश करता है तो उस काल का यथावत् ज्ञान हमारी मांसल आँखों से सम्मव नहीं है, अतः संक्रान्ति की ३० घटिकाएँ इघर या उघर के काल का द्योतन करती हैं (का० नि०, पृ० ३३३)।

सूर्यं का दूसरी राशि में प्रवेश-काल इतना कम होता है कि उसमें संक्रान्ति-कृत्यों का सम्प्रादन असम्मव है, अतः इसकी सिन्निय का काल उचित ठहराया गया है। देवीपुराण में संक्रान्ति-काल की लघुता का उल्लेख यों है—'स्वस्थ एवं सुखी मनुष्य जब एक बार पलक गिराता है तो उसका तीसवाँ काल 'तत्पर' कहलाता है, तत्पर का सौवाँ माग 'त्रुटि' कहा जाता है तथा त्रुटि के सौवें माग में सूर्यं का दूसरी राशि में प्रवेश होता है। सामान्य नियम यह है कि वास्तिवक काल के जितने ही समीप कृत्य हो वह उतना ही पुनीत माना जाता है।' इसी से संक्रान्तियों में पुण्यतम काल सात प्रकार के माने गये हैं— ३, ४, ५, ७, ८ ९ या १२ घटिकाएँ। इन्हीं अवधियों में वास्तिवक फल-प्राप्ति होती है। यदि कोई इन अवधियों के मीतर प्रतिपादित कृत्य न कर सके तो उसके लिए अधिकतम काल-सीमाएँ ३० घटिकाओं की होती हैं; किन्तु ये पुण्यकाल-अवधियाँ षडशीति (इसमें अधिकतम पुण्यकाल ६० घटिकाओं का है) एवं विष्णुपदी (जहाँ १६ घटिकाओं की इघर-उघर छूट है) को छोड़कर अन्य सभी संक्रान्तियों के लिए है।

ये वारह संक्रान्तियाँ सात प्रकार की (सात नामों वाली) हैं जो किसी सप्ताह के दिन या किसी विशिष्ट नक्षत्र के सम्मिलन के आधार पर उल्लिखित हैं; वे ये हैं—मन्दा मन्दाकिनी, घ्वांक्षी, घोरा महोदरी, राक्षसी एवं मिश्रिता। घोरा रिववार (मेष या कर्क या मकर संक्रान्ति) को, व्वांक्षी सोमवार को, महोदरी मंगल को, मन्दािकनी वृध को मन्दा वृहस्पति की, मिश्रिता शुक्र की एवं राक्षसी शनि की होती है। इसके अतिरिक्त कोई संक्रान्ति (यथा मेष या कर्क आदि) कम से मन्दा, मन्दाकिनी, घ्वांक्षी, घोरा, महोदरी, राक्षसी, मिश्रिता कही जाती है यदि वह कम से ध्रुव, मृदु, क्षिप्र, उग्र, चर, कूर या मिश्रित नक्षत्र से युक्त हो। २७ या २८ नक्षत्र निम्नोक्त रूप से सात दलों में विमाजित हैं--ध्रुव (या स्थिर)--उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरामाद्रपदा, रोहिणी; मृदु--अन्राधा, चित्रा, रेवती, मृगशीर्ष; क्षिप्र (या लघु)--हस्त, अश्विनी, पुष्य, अमिजित्; उप--पूर्वीफाल्गुनी, पूर्वीषाढा, पूर्वीमाद्रपदा, भरणी, मघा; चर--पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, स्वाती, शतमिषक्; ऋर (यातीक्षण)--मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आर्रेलेषा; मिश्रित (या मृद्तीक्ष्ण या साधारण) - कृत्तिका, विशाखा (देखिए बृहत्संहिता, ९८।६-११; कृ० क०, नैयत०, प० ३६१; हे०, काल, पु० ४०९; का० नि०, पु० ३४१-३४२; स० म०, पु० १३७। बृहत्संहिता ९८।९ एवं कृत्यकल्प०, नैयत • ने लघु दल में अभिजित् का उल्लेख नहीं किया है)। ऐसा उल्लिखित है कि ब्राह्मणों के लिए मन्दा, क्षत्रियों के लिए मन्दाकिनी, वैश्यों के लिए घ्वांक्षी, शूद्रों के लिए घोरा, चोरों के लिए महोदरी, मद्य-विकेताओं के लिए राक्षसी तथा चाण्डालों, पुनकसों तथा जिनकी वृत्तियाँ (पेशे) मयंकर हों एवं अन्य शिल्पियों के लिए मिश्रित संक्रान्ति श्रेयस्कर होती है (हे०, काल, पु० ४०९-४१० एवं व० कि० कौ०, प० २१० जहाँ देवीपूराण की उक्तियाँ उद्धत हैं )।

संक्रान्ति के पुण्यकाल के विषय में सामान्य नियम के प्रश्न पर कई मत हैं। शातातप (हे०, काल, पू० ४१७, का० वि०, पू० ३८२; कृत्यकलप०, नैयत०, पू० ३६१-३६२ एवं ३६५), जाबाल एवं मरीचि ने संक्रान्ति के धार्मिक कृत्यों के लिए संक्रान्ति के पूर्व एवं उपरान्त १६ घटिकाओं का पुण्यकाल प्रतिपादित किया है; किन्तु देवीपुराण एवं विस्ट (कृत्यकलप०, नैयत०, पू० ३६०; हे०, काल, पू० ४१८; स० म०, पू० १३७) ने १५ घटिकाओं के पुण्यकाल की व्यवस्था दी है। यह विरोध यह कहकर दूर किया गया है कि लघु अवधि केवल अधिक पुण्य फल देने के लिए है और १६ घटिकाओं की अवधि विष्णुपदी संक्रान्तियों के लिए प्रतिपादित है।

#### धर्मशास्त्र का इतिहास

संक्रान्ति दिन या रात्रि दोनों में हो सकती है। दिन वाली संक्रान्ति पूरे दिन मर पुण्यकाल वाली होती है। रात्रि वाली संक्रान्ति के विषय में हेमाद्रि, माघव आदि में लम्बे विवेचन उपस्थित किये गये हैं। एक नियम यह है कि दस संक्रान्तियों में (मकर एवं कर्कट को छोड़कर) पुण्यकाल दिन में होता है, जब कि वे रात्रि में पड़ती हैं। अन्य विवेचनों के विषय में देखिए तिथितत्त्व (पृ० १४४-१४५), धर्मसिन्धु (पृ० २-३)। हम विस्तार में यहाँ नहीं पड़ेंगे।

पूर्ण पुण्यलाम के लिए पुण्यकाल में ही स्नान-दान आदि कृत्य किये जाते हैं। सामान्य नियम यह है कि रात्रि में न तो स्नान किया जाता है और न दान। पराशर (१२।२०; स्मृति च० १,५० १२०) में आया है कि सूर्यकिरणों से पूत दिन में स्नान करना चाहिए, रात्रि में ग्रहण को छोड़कर अन्य अवसरों पर स्नान नहीं करना चाहिए। यही बात विष्णुधर्मसूत्र में भी है। किन्तु कुछ अपवाद मी प्रतिपादित हैं। मविष्य० (है०, काल, ५० ४३३; का० नि०, ५० ३३९) में आया है कि रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिए, विशेषतः रात्रि में दान तो नहीं ही करना चाहिए, किन्तु उचित अवसरों पर ऐसा किया जा सकता है, यथा ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा, जनन, मरण तथा इतिहास अवण में। और देखिए गोमिल (हे०, काल, ५० ४३२; नि० सि०, ५०७)। अतः प्रत्येक संक्रान्ति पर, विशेषतः मकर-संक्रान्ति पर स्नान नित्य कर्म है। दान निम्न प्रकार के किये जाते हैं—मेष में मेड, वृषम में गौएँ, मिथुन में वस्त्र, मोजन एव पेय पदार्थ, कर्कट में घृतधेनु, सिंह में सोने के साथ वाहन, कन्या, में वस्त्र एवं गौएँ, नाना प्रकार के अन्न एवं वास, मीन में नत्य पुष्प। अन्य विशेष प्रकार के विषय में देखिए स्कन्द० (है०, काल, ५० ४१५, नि० सि०, ५० २१८), विष्णुधर्मोत्तर, कालिका० (हे०, काल, ५० ४१३; कृत्यकल्प०, नैयत०, ५० ३६६-३६७, आदि।

मकर-संक्रान्ति के सम्मान में तीन दिनों या एक दिन का उपवास करना चाहिए। 'जो व्यक्ति तीन दिनों तक उपवास करता है और उसके उपरान्त स्नान करके अयन (सूर्य के उत्तरायण या दक्षिणायन) पर सूर्य की पूजा करता है, विषुव एवं सूर्य या चन्द्र के ग्रहण पर पूजा करता है तो वह वांछित इच्छाओं की पूर्णता पाता है।' वापस्तम्ब में आया है कि जो व्यक्ति स्नान के उपरान्त अयन, विषुव, सूर्यचन्द्र-ग्रहण पर दिन भर उपवास करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। किन्तु पुत्रवान् व्यक्ति को रिववार, संक्रान्ति एवं ग्रहणों पर उपवास नहीं करना चाहिए (वृद्धविस्ठ, हे०, काल, पृ० ४१२; व० कि० को०, पृ० ९१)।

४. स्कन्दे—धेनुं तिलमयीं राजन् दद्याद्यक्वोत्तरायणे। सर्वान् कामानवाप्नोति विन्दते परमं सुखम्।। विष्णुधर्मोत्तरे—उत्तरे त्वयने विप्रा वस्त्रदःनं महःफलम्। तिलपूर्वमनड्वाहं दस्त्वः। रोगैः प्रमुच्यते।। शिवरहस्ये। पुरा मकरसंक्रान्तौ शंकरो गोसवे कृते। तिलानुत्पादयामास तृप्तये सर्वदेहिनाम्। तस्मात्तस्यां तिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं वृधैः। देवतानां पितृणां च सोदकैस्तर्पणं तिलैः। तिला देयाश्च विप्रेभ्यः सर्वदेवोत्तरायणे। तिलांश्च भक्षयेत्पुण्यान् होतव्याश्च तथा तिलाः। तस्यां तिथौ तिलैहुंत्वा येऽर्चयन्ति द्विजोत्तमान्। त्रिदिवे ते विराजन्ते गोसहस्रप्रदायनः। तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः। सितलैस्तण्डुलैदेंवं पूजयेद्विधिवद् द्विजम्।। हे० (काल, पृ० ४१५-४१६); नि० सि० (पृ० २१८)ः। गोसहस्र १६ महादानों में एक है। देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड २। 'त्रिदिवे ते विराजन्ते' के साथ मिल।इए ऋ० (१०।१०७।२)ः 'उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदा सह ते सूर्येण।'

८२

राजमार्तण्ड में संक्रान्ति पर किये गये दानों के पुण्य-लाम पर दो क्लोक हैं — 'अयत-संक्रान्ति पर (किये गये दानों) का फल (सामान्य दिन के दान के) फल का कोटिगुना होता है और विष्णुपदी पर वह लक्षगुना होता है; षडशीति पर यह ८६००० गुना घोषित है (व० कि० कौ०, पृ० २१४; का० वि०, पृ० ३८२)। चन्द्र ग्रहण पर दान सौ गुना एवं सूर्य ग्रहण पर सहस्रगुना, विषुव पर शतसहस्रगुना तथा आकामार्व (आ आषाढ़, का कार्तिक, मा माघ, वै वैशाख) की पूणिमा पर अनन्त फलों को देने वाला है।' मविष्य० ने अयन एवं विषुव संक्रान्तियों पर गंगा-स्नान की प्रमूत महत्ता गायी है। देखिए वि० घ० सू० (३।३१९।३८-४५)।

कुछ लोगों के मत से संक्रान्ति पर श्राद्ध करना चाहिए। वि० घ० सू० (७७।१-२) में आया है—'आदित्य अर्थात् सूर्य के संक्रमण पर (जब सूर्य एक राशि से दूसरी में प्रवेश करता है), दोनों विषुव दिनों पर, अपने जन्म-नक्षत्र पर, (विवाह, पुत्र-जन्म के) विशिष्ट शुम अवसरों पर काम्य श्राद्ध करना चाहिए; इन दिनों के श्राद्ध से पितरों को असय सन्तोष प्राप्त होता है।' यहाँ पर भी विरोधी मत हैं। शूलपाणि के मत से संक्रान्ति-श्राद में पिण्डदान होनां चाहिए, किन्तु निर्णयसिन्धु (पृ० ६) के मत से श्राद्ध पिण्डविहीन एवं पार्वण की मौति होना चाहिए। संक्रान्ति पर कुछ कृत्य वर्जित भी थे। विष्णुपुराण (३।११।११८-११९, कृ० र०, पृ० ५४७ एवं व० कि० कौ०, पृ० २१६) में वचन है—'चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा एवं संक्रान्ति पर्व कहे गये हैं; जो व्यक्ति ऐसे अवसर पर सम्मोग करता है, तैल एवं मांस खाता है, वह 'विण्मूत्र-मोजन' नामक नरक (जहाँ का मोजन मल-मूत्र होता है) में पड़ता है।' ब्रह्मपुराण (व० कि० कौ०, पृ० २१६) में आया है—अष्टमी, पक्षों के अन्त की तिथियों में, रवि-संक्रान्ति के दिन तथा पक्षोपान्त (चतुर्दशी) में सम्मोग, तिल-मांस-मोजन नहीं करना चाहिए।

आजकल मकरसंक्रान्ति धार्मिक कृत्य की अपेक्षा सामाजिक अधिक है। उपवास नहीं किया जाता, कदाचित् कोई श्राद्ध करता हो, किन्तु बहुत-से लोग समुद्र या प्रयाग जैसे तीथों पर गंगा-स्नान करते हैं। तिल का प्रयोग अधिक होता है, विशेषतः दक्षिण में। तिल की महत्ता यों प्रद्शित है—'जो व्यक्ति तिल का प्रयोग छः प्रकार से करता है वह नहीं डूबता (अर्थात् वह असफल या अमागा नहीं होता); शरीर को तिल से नहाना, तिल से उवटना, सदा पवित्र रहकर तिलयुक्त जल देना (पितरों को), अग्नि में तिल डालना, तिलदान करना एवं तिल खाना।"

मकर संक्रान्ति पर अधिकांश में नारियाँ ही दान करती हैं। वे पुजारियों को मिट्टी या ताम्र या पीतल के पात्र, जिनमें सुपारी एवं सिक्के रहते हैं, दान करती हैं और अपनी सहेलियों को बुलाती हैं तथा उन्हें कुंकुम, हल्दी, सुपारी, ईख के टुकड़े अदि से पूर्ण मिट्टी के पात्र देती हैं। दक्षिण में पोंगल नामक उत्सव होता है, जो उत्तरी या पश्चिमी भारत में मनाये जाने वाली मकर-संक्रान्ति के समान है। पोंगल तिमल वर्ष का प्रथम दिवस है। यह उत्सव तीन दिनों का होता है। 'पोंगल' का अर्थ है 'क्या यह उबल रहा' या 'पकाया जा रहा है ?'

आज के ज्योति:शास्त्र के अनुसार जाड़ का अयन काल २१ दिसम्बर को होता है और उसी दिन से सूर्य उत्तरायण होते हैं। किन्तु भारत में वे लोग, जो प्राचीन पद्धतियों के अनुसार रचे पंचांगों का सहारा लेते हैं, उत्त-रायण का आरम्भ १४ जनवरी से मानते हैं। वे इस प्रकार उपयुक्त मकर संक्रान्ति से २३ दिन पीछे हैं। मध्यकाल के धर्मशास्त्र-ग्रंथों में यह बात उल्लिखित है, यथा हेमादि (काल,पृ० ४३६-४३७) ने कहा है कि प्रचलित संक्रान्ति से १२ दिन पूर्व ही पुण्यकाल पड़ता है, अतः प्रतिपादित दान आदि कृत्य प्रचलित संक्रान्ति दिन के १२ दिन पूर्व मी किये जा सकते हैं।

५. तिलोद्वर्ती तिलस्नायी शूर्चिनत्यं तिलोदकी । होता दाता च भोक्ता च षट्तिली नावसीदित ।। शातातप ।

मकर संक्रान्ति का उद्गम बहुत प्राचीन नहीं है। ईसा के कम-से-कम एक सहस्र वर्ष पूर्व ब्राह्मण एवं औपनिषदिक ग्रन्थों में उत्तरायण के छः मासों का उल्लेख है (शतपथ ब्राह्मण, २।१।३।१, ३ एवं ४; छान्दोग्योपनिषद, ४।१५।५ एवं ५।१०।१-२)। ऋ० (३।३३।७) में 'अयन' शब्द आया है, जिसका अर्थ है 'मार्ग' या 'स्थल'। गृह्म-सूत्रों में 'उदगयन' उत्तरायण का ही द्योतक है (आश्व० गृ०, १।४।१-२; कौषीतकी गृह्म, १।५; जै० ६।८।२३; आप० गृ० १।१।२) जहाँ स्पष्ट रूप से उत्तरायण आदि कालों में संस्कारों के करने की विधि विणत है। किन्तु प्राचीन श्रौत, गृह्म एवं धर्म सूत्रों में राशियों का उल्लेख नहीं है, उनमें केवल नक्षत्रों के सम्बन्ध में कालों का उल्लेख है। याज० स्मृति में मी राशियों का उल्लेख नहीं है, जैसा कि विश्वरूप की टीका से प्रकट है (याज० १।८०, सुस्थे इन्दी)। राशियों के विषय में हम काल एवं मुहुर्त के प्रकरण में अध्ययन करेंगे। 'उदगयन' बहुत शताब्दियों पूर्व से शुम काल माना जाता रहा है, अतः मकरसंक्रान्ति, जिससे सूर्य की उत्तरायण गित आरम्म होती है, राशियों के चलन के उपरान्त पवित्र दिन मानी जाने लगी। मकर-संक्रान्ति पर तिल को इतनी महत्ता क्यों प्राप्त हुई, कहना किटन है। सम्मवतः मकर-संक्रान्ति के समय जाड़ा होने के कारण तिल जैसे पदार्थों का प्रयोग सम्मव है। चाहे जो हो, ईसवी सन् के आरम्मकाल से अधिक प्राचीन मकर-संक्रान्ति नहीं है।

आजकल के पंचांगों में मकर-संक्रान्ति का देवीकरण भी हो गया है; वह देवी मान ली गयी है। संक्रान्ति किसी वाहन पर चढ़ती है, उसका प्रमुख वाहन हाथी जैसे वाहन-पशु हैं; उसके उपवाहन भी हैं; उसके वस्त्र काले, श्वेत या लाल आदि रंगों के होते हैं; उसके हाथ में घनुष या शूल रहता है, वह ल,ह या गोरोचन जैसे पदार्थों का तिलक करती है; वह युवा, प्रौढ या वृद्ध है; वह खड़ी या बैठी हुई विणत है; उसके पुष्पों, मोजन, आमूषणों का उल्लेख है; उसके दो नाम (सात नामों में) विशिष्ट हैं; वह पूर्व आदि दिशाओं से आती है और पश्चिम आदि दिशाओं को चली जाती है, और तीसरी दिशा की ओर झाँकती है; उसके अधर झुके हैं, नाक लम्बी है, उसके ९ हाय हैं। उसके विषय में अग्र सूचनाएँ ये हैं—संक्रान्ति जो कुछ ग्रहण करती है उसके मूल्य बढ़ जाते हैं या वह नष्ट हो जाता है; वह जिसे देखती है, वह नष्ट हो जाता है, जिस दिशा से वह आती हैं वहाँ के लोग सुखी होते हैं, जिस दिशा की वह चली जाती है वहाँ के लोग दुखी हो जाते हैं।

महाशिवरात्रि—िकसी मास के कृष्णपक्ष की चतुर्देशी शिवरात्रि कही जाती है, किन्तु माघ (फाल्गुन, पूर्णिमान्त) की चतुर्देशी सबसे महत्त्वपूणं है और महाशिवरात्रि कहलाती है। गरुड़ (११२४), स्कन्द (१११३२), पद्म (६१२४०), अग्नि (१९३) आदि पुराणों में उसका वर्णन है। कहीं-कहीं वर्णनों में अन्तर है किन्तु प्रमुख वातें एक-सी हैं। सभी में इसकी प्रशंसा की गयी है। जब व्यक्ति उस दिन उपवास करके विल्व-पत्तियों से शिव की पूजा करता है और रात्रि मर 'जागर' (जागरण) करता है, शिव उसे नरक से बचाते हैं और आनन्द एवं मोक्ष प्रदान करते हैं और व्यक्ति स्वयं शिव हो जाता है। दान, यज्ञ, तप, तीर्थयात्राएँ, वृत इसके कोटि-अंश के वरावर भी नहीं हैं। गरुड़पुराण में इसकी गाथा है—आबू पर्वत पर निषादों का राजा सुन्दरसेनक था, जी एक दिन अपने कुत्ते के साथ शिकार खेलने गया। वह कोई पशु मार न सका और मूख-प्यास से व्याकुल वह गहन वन में तालाव के किनारे रात्रि मर जागता रहा। एक बिल्व (बेल) के पेड़ के नीचे शिवलिंग था, अपने शरीर को आराम देने के लिए उसने अनजाने में शिवलिंग पर गिरी बिल्व-पत्तियाँ नीचे उतार लीं। अपने पैरों की घूल को स्वच्छ करने के लिए उसने तालाब से जल लेकर छिड़का और ऐसा करने से जल-बूदें शिवलिंग पर गिरी, उसका एक तीर, भी उसके हाथ से शिवलिंग पर गिर पड़ा और उसे उठाने में उसे लिंग के समक्ष झुकना पड़ा। इस प्रकार उसने अनजाने में ही शिवलिंग को नहलाया, खुआ और उसकी पूजा की और रात्रि मर जागता रहा। दूसरे दिन वह अपने घर लौट आया और पत्नी ढारा दिया गया मोजन किया। आगे चलकर जब वह मरा और यमहुतों दिन वह अपने घर लौट आया और पत्नी ढारा दिया गया मोजन किया। आगे चलकर जब वह मरा और यमहुतों

ने उसे पकड़ा तो शिव के सेवकों ने उनसे युद्ध किया और उसे उनसे छीन लिया। वह पाप-रहित हो गया और कुत्ते के साथ शिव का सेवक बनां। इस प्रकार उसने अज्ञान में ही पूण्यफल प्राप्त किया। यदि इस प्रकार कोई व्यक्ति ज्ञान में करे तो वह अक्षय पुण्यफल प्राप्त करता है। अग्निपूराण (१९३।६) में सुन्दरसेनक बहेलिया का उल्लेख हुआ है। स्कन्द॰ में जो कथा आयी है, वह लम्बी है-चण्ड नामक एक दृष्ट किरात था। वह जाल में मछलियाँ पकड़ता था और बहुत से पश्ओं एवं पक्षियों को मारता था। उसकी पत्नी मी बड़ी निर्मम थी। इस प्रकार बहुत-से वर्ष बीत गये। एक दिन वह पात्र में जल लेकर एक विल्व पेड़ पर चढ़ गया और एक बनैले शुकर को मारने की इच्छा से रात्रि मर जागता रहा और नीचे बहत-सी पत्तियाँ फेंकता रहा। उसने प्रात्र के जल से अपना मुख घोया जिससे नीचे के शिवलिंग पर जल गिर पड़ा। इस प्रकार उसने सभी विधियों से शिव की पूजा की, अर्थात् स्नापन किया (नहलाया), बेल की पत्तियाँ चढ़ायीं, रात्रि मर जागता रहा और उस दिन मूखा ही रहा। वह नीचे उतरा और एक तालाब के पास जाकर मछली पकड़ने लगा। वह उस रात्रि घर न जा सका था, अतः उसकी पत्नी बिना अन्न-जल के पड़ी रही और चिन्ताग्रस्त हो उठी। प्रातःकाल वह मोजन लेकर पहुँची, अपने पित को एक नदी के दूसरे तट पर देख मोजन को तट पर ही रखकर नदी को पार करने लगी। दोनों ने स्नान किया, किन्तु इसके पूर्व कि किरात भोजन के पास पहुँचे, एक कृत्ते ने भोजन चट कर लिया। पत्नी ने कुत्ते को मारना चाहा, किन्तु पित ने ऐसा नहीं करने दिया, क्योंकि उसका हृदय पसीज चुका था। तब तक (अमावास्या का) मध्या ह्न हो चुका था। शिव के दूत पति-पत्नी को लेने आ गये, क्योंकि किरात ने अनजाने में शिव की पूजा कर ली थी और दोनों ने चतुर्दशी पर उपवास किया था। दोनों शिवलोक को गये। पद्मपुराण (६।२४०।३२) में इसी प्रकार एक निषाद के विषय में उल्लेख हुआ है।

शिवरात्रि की प्रमुख बात के विषय में मतभेद है। तिथितत्त्व (पृ० १२५) के अनुसार इसमें उपवास प्रमुखता रखता है, उसमें शंकर के कथन को आधार माना गया है—'मैं उस तिथि पर न तो स्नान, न वस्त्रों, न धूप, न पूजा, न पुष्पों से उतना प्रसन्न होता हूँ जितना उपवास से।' किन्तु हेमाद्रि, माधव आदि ने उपवास, पूजा एवं जागरण तीनों को महत्ता दी है (हे०, काल, पृ० ३०९-३१०; का० वि०, पृ० २८९; स० म०, पृ० १०१)। देखिए स्कन्दपुराण (नागर खण्ड)।

कालनिर्णय (पृ० २८७) में 'शिवरात्रि' शब्द के विषय में एक लम्बा विवेचन उपस्थित किया गया है। क्या यह 'रूढ' है (यथा कोई विशिष्ट तिथि) या यह 'यौगिक' है (यथा प्रत्येक रात्रि, जब शिव से सम्बन्धित कर्य सम्पादित हों), या 'लाक्षणिक' (यथा व्रत, यद्यपि शब्द तिथि का सूचक है) या 'योगहढ' है (यौगिक एवं हृढ, यथा 'पंकज' शब्द)। निष्कर्ष यह निकाला गया है कि यह शब्द पंकज के सदृश योगहढ है जो कि पंक से अवश्य निकलता है (यहाँ यौगिक अर्थ है), किन्तु वह केवल पंकज (कमल) से ही सम्बन्धित है (यहाँ हृढि या परम्परा है) न कि मेढक से।

६. एवमज्ञानतः पुण्यं ज्ञानात्पुण्यमथाक्षयम्। गरुड्० (१।१२४।११)। लुब्धकः प्राप्तवान्पुण्यं पापी सुन्दरसेनकः।। अग्नि० (१९३।६)।

७. तथा च स्कन्दपुराणे। एवं द्वादशवर्षाणि शिवरात्रिमुपोषकः। यो मां जागरयते रात्रिं मनुजः स्वर्णमारुहेत्।। शिवं च पूजियत्वा यो जागित च चतुर्दशीम्। मातुः पयोष्ठरसं न पिबेत् स कदाचन।। नागरखण्डे। स्वयम्भूलिंगमभ्यच्यं सोभवासः सर्जागरः। अजानन्नपि निष्पापो निषादो गणतां गतः॥ हे० (काल, पृ० ३०९-३१०)।

25

शिवरात्रि नित्य एवं काम्य दोनों है। यह नित्य इसिलए है कि इसके विषय में वचन है कि यदि मनुष्य इसे नहीं करता तो पापी होता है, 'वह व्यक्ति जो तीनों लोकों के स्वामी रुद्र की पूजा मिनत से नहीं करता वह सहस्र जन्मों में भ्रमित रहता है।' ऐसे भी वचन हैं कि यह वत प्रति वर्ष किया जाना चाहिए—'हे महादेवी, पुरुष या पितवता नारी को प्रति वर्ष शिवरात्रि पर भिनत के साथ महादेव की पूजा करनी चाहिए।' यह वत काम्य भी है, क्योंकि इसके करने से फल मी मिलेते हैं।

ईशानसंहिता (का० नि०, पृ० २९०; नि० सि०, पृ० २२५; स० म०, पृ० १०१; कृत्यतत्त्व, पृ० ४६१) के मत से यह वर्त सभी प्रकार के मनुष्यों द्वारा सम्पादित हो सकता है—'सभी मनुष्यों को, यहाँ तक कि चाण्डालों को भी शिवरात्रि पापमुक्त करती है, आनन्द देती है और मुक्ति देती है।' ईशानसंहिता में व्यवस्था है—यदि विष्णु या शिव या किसी देव का मक्त शिवरात्रि का त्याग करता है तो वह अपनी पूजा (अपने आराध्यदेव की पूजा) के फलों को नष्ट कर देता है। जो इस वर्त को करता है उसे कुछ नियम मानने पड़ते हैं, यथा अहिसा, सत्य, अकोध, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा (का पालन करना होता है), उसे शान्त मन, कोधहीन, तपस्वी, मत्सरहीन होना चाहिए; इस वत का ज्ञान उसा को दिया जाना चाहिए जो गुरुपादानुरागी हो, यदि इसके अतिरिक्त किसी अन्य को यह दिया जाता है तो (ज्ञानदाता) नरक में पड़ता है।

इस बत का उचित काल है रात्रि, क्योंकि रात्रि में मूत, शक्तियाँ. शिव (जो त्रिशूलवारी हैं) घूमा करते हैं। अतः चतुर्दशी को उनकी पूजा होनी चाहिए (हे० काल, पृ० २०४; का० नि०, पृ० २९८)। स्कन्द० (११११३३१८२) में आया है कि कृष्ण पक्ष की उस चतुर्दशी को उपवास करना चाहिए, वह तिथि सर्वोत्तम है और शिव से सायुज्य उत्पन्न करती है। और देखिए हे० (काल, पृ० ३०४)। शिवरात्रि के लिए वही तिथि मान्य है जो उस काल से आच्छादित रहती है। उसी दिन वत करना चाहिए जब कि चतुर्दशी अर्थरात्रि के पूर्व एवं उपरान्त भी रहे (ईशानसंहिता, ति० त०, पृ० १२५; नि० सि०, पृ० ३२२)। हेमाद्रि में आया है कि शिवरात्रि नाम वाली वह चतुर्दशी जो प्रदोष कल में रहती है, वत के लिए मान्य होनी चाहिए; उस तिथि पर उपवास करना चाहिए, क्योंकि रात्रि में जागरण करना होता है (काल, पृ० ३०७)।

वृत के लिए उचित दिन एवं काल के विषय में पर्याप्त विमेद है। देखिए हेमाद्रि (काल, पृ० २९८-३०८), का० नि० (पृ० २९७), ति० त० (पृ० १२५-१२६), नि० सि० (पृ० २२२-२२४), पु० चि० (पृ० २४८-२५३) आदि। निर्णयामृत (देखिए नि० सि०, पृ० २३३ में उद्धृत) ने 'प्रदोष' शब्द पर वल दिया है, तथा अन्य प्रन्थों में 'निशीय' एवं अर्थरात्रि पर वल दिया है। यहाँ हम निर्णयकारों के शिरोमणि माधव के निर्णय प्रस्तुत कर रहे हैं। यदि चतुर्दशी प्रदोष-निशीय व्यापिनी हो तो व्रत उसी दिन करना चाहिए। यदि वह दो दिनों वाली हो (अर्थात् वह त्रयोदशी एवं अमावास्या दोनों से व्याप्त हो) और वह दोनों दिन निशीय-काल तक रहने वाली हो या दोनों दिनों तक इस प्रकार न उपस्थित रहने वाली हो तो प्रदोष-व्याप्त नियामक (निश्चय करने वाली) होती है;

९. प्रवोषव्यापिनी प्राह्मा शिवरात्रिचतुर्वशी। रात्रौ जागरणं यस्मात् तस्यात्तां समुपोषयेत्।। हे० (काल, पृ० ३०७)। देखिए व० कि० कौ० (पृ० ७४), जहाँ इस श्लोक का अर्थ दिया हुआ है (स्कन्दपुराण के मत से सूर्यास्त के उपरान्त दो मुहूतौं (६ घटिकाओं) तक प्रदोष होता है; किन्तु विश्वादर्श के अनुसार सूर्यास्त के उपरान्त तीन घटिकाओं तक प्रदोष होता है)। निर्णयामृते सर्वापि शिवरात्रि; प्रदोषव्यापिन्येव, अर्धरात्रवाक्यानि कैमुतिकन्यायेन प्रदोषस्तावकानीत्युक्तम् (नि० सि०, पृ० २३३)।

#### शिवरात्रि-मृत का विवान

जब चतुर्दशी दोनों दिनों तक प्रदोषव्यापिनी हो या दोनों दिनों तक उससे निर्मुक्त हो तो निशीय में रहने वाली ही नियामक होती है; किन्तु यदि वह दो दिनों तक रहकर केवल किसी से प्रत्येक दिन (प्रदोष या निशीय) व्याप्त हो तो जया से संयुक्त अर्थात् त्रयोदशी तिथि नियामक होती है। '°

प्राचीन कालों में शिवरात्रि के सम्पादन का विवरण गरुडपुराण (१।१२४।११-१३) में मिलता है—त्रयोदशी को शिव-सम्मान करने वती को कुछ प्रतिबन्ध मानने चाहिए। उसे घोषित करना चाहिए—'है देव, मैं चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करूँगा। मैं यथाशक्ति दान, तप एवं होम करूँगा। है शम्मु, मैं चतुर्दशी को मोजन नहीं करूँगा, केवल दूसरे दिन खाऊँगा। हे शम्म, आनन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए आप मेरे आश्रय बनें। वृती की वृत करके गुरु के पास पहुँचना चाहिए और पंचामत के साथ पंचगव्य से लिंग को स्नान कराना चाहिए। उसे इस मन्त्र का पाठ करना चाहिए 'ओम् नमः शिवाय।' चन्दन-लेप से आरम्भ कर सभी उपचारों के साथ शिव-पूजा करनी चाहिए और अग्नि में तिल, चावल एवं घृतयुक्त मात डालना चाहिए। इस होम के उपरान्त पूर्णाहुति (पूर्ण फल के साथ आहुति) करनी चाहिए और (शिव-विषयक) सुन्दर कथाएँ एवं गान सुनने चाहिए। वृती को पुनः अर्घरात्रि, रात्रि के तीसरे प्रहर एवं चौथे प्रहर में आहुतियाँ डालनी चाहिए। सूर्योदय के लगमग उसे 'ओम् नमः शिवाय' का मौन पाट करते हुए शिव-प्रार्थना करनी चाहिए—'हे देव, आपके अनुग्रह से मैंने निर्विष्न पूजा की है, हे लोकेश्वर, हे शिव, मुझे क्षमा करें। इस दिन जो भी पुण्य मैंने प्राप्त किया और मेरे द्वारा शिव को जो कुछ भी प्रदत्त हुआ है, आज मैंने आपकी कृपा से ही यह वत पूर्ण किया है; हे दयाशील, मुझ पर प्रसन्न हों, और अपने निवास को जायँ; इसमें कोई सन्देह नहीं कि केवल आपके दर्शन मात्र से मैं पिवत्र हो चुका हूँ। वती को चाहिए कि वह शिव-मक्तों को मोजन दे, उन्हें वस्त्र, छत्र आदि दे -- 'हे देवाधिदेव, सर्वपदार्थाधिपति, आप लोगों पर अनुग्रह करते हैं. मैंने जो कुछ श्रद्धा से दिया है उससे आप प्रसन्न हों।' इस प्रकार क्षमा माँग लेने पर व्रती को संकल्प करके १२ वर्ष तक इसे करना चाहिए। यश, धन, पुत्र, राज्य को प्राप्त करके वह शिवपुरी को जा सकता है। व्रती को वर्ष के १२ मासों की चतुर्दशी को जागरण करना चाहिए। व्यक्ति यह व्रत करके, १२ ब्राह्मणों को खिलाकर तथा दीपदान करके स्वर्ग प्राप्त कर सकता है।

तिथितत्त्व में कुछ मनोरंजक विस्तार पाया जाता है (पृ० १२७)। लिंग-स्नान रात्रि के प्रथम प्रहर में दूध से, दूसरे में दही से, तीसरे में घृत से और चौथे में मधु से कराना चाहिए। चारों प्रहरों के मन्त्र ये हैं—'हीं ईशानाथ नमः, 'हीं अघोराय नमः', 'हीं वामदेवाय नमः' एवं 'हीं सद्योजाताय नमः।' चारो प्रहरों में अर्घ्य के समय के मन्त्र मी विभिन्न हैं। ऐसा भी प्रतिपादित है कि प्रथम प्रहर में गान एवं नृत्य होने चाहिए। वर्ष क्रियाकौमुदी (पृ० ५१३) में आया है कि दूसरे, तीसरे एवं चौथे प्रहर में वृती को पूजा, अर्घ्य, जप एवं (शिव-सम्बन्धी) कथा-श्रवण करना चाहिए, स्तोत्रपाठ करना चाहिए एवं लेटकर प्रणाम करना चाहिए; प्रातःकाल वृती को अर्घ्यंजल के साथ क्षमा माँगनी चाहिए। यदि माघ कृष्ण चतुर्दशी रिववार या मंगलवार को पड़े तो वह वृत के लिए उत्तम होती है (स्कन्द०, पु० चि०, पृ० २५२-२५३; का० नि०, पृ० २९९; स० म०, पृ० १०४)। पश्चात्कालीन निबन्धों में, यथा तिथितत्त्व (पृ० १२६), कालतत्त्विववेक (पृ० १९७-२०३), पुरुषार्थचिन्तामणि (पृ० २५५-२५८), धर्म-

१०. दिनद्वये निशीयव्याप्तौ तदव्याप्तौ च प्रदोषव्याप्तिनियामिका। तथा दिनद्वयेषि प्रदोषव्याप्तौ तदव्याप्तौ च निशीयव्याप्तिनियामिका। एक कस्मिन् दिने एक कव्याप्तौ जयायोगो नियामकः। का० नि० (पृ० २९७)।

### धर्मशास्त्र का इतिहास

सिन्धु (पृ० १२७) आदि में शिवरात्रि विधि के विषय में लम्बा उल्लेख है। का० त० वि० (पृ० १६७) में आया है कि विभिन्न पुराणों में शिवरात्रि-व्रत-विधि विभिन्न रूप वाली है।

२४, १४ या १२ वर्षों तक शिवरात्रि वृत करने वाले को अवधि के उपरान्त उद्यापन करना पड़ता है। इस विषय में पु० चि० (पृ० २५८-२५९) एवं वृतराज (पृ० ५८६-५८७) आदि ग्रन्थों में अति विस्तार के साथ वर्णन है, जिसे हम यहाँ नहीं उल्लिखित करेंगे।

किसी भी शिवरात्रि के पारण के विषय में जितने वचन हैं ये विवाद-ग्रस्त हैं (नि० सि०, पृ० २२४; है०, काल, पृ० २९८; घ० सि०, पृ० १२६)। स्कन्द के दो वचन ये हैं—'जब कृष्णाष्टमी, स्कन्दषष्ठी एवं शिवरात्रि पूर्व एवं पश्चात् की तिथियों से संयुक्त हो जाती हैं तो पूर्व वाली तिथि प्रतिपादित कृत्य के लिए मान्य होती है और पारण प्रतिपादित तिथि के अन्त में किया जाना चाहिए; चतुर्दशी को उपवास और उसी तिथि को पारण वहीं व्यक्ति कर सकता है जिसने लाखों अच्छे कर्म किये हों।' धर्मसिन्धु (पृ० १२६) का निष्कर्ष यों है—'यदि चतुर्दशी रात्रि के तीन प्रहरों के पूर्व ही समाप्त हो जाय तो पारण तिथि के अन्त में होना चाहिए; यदि वह तीन प्रहरों से आगे चली जाय तो उसके बीच में ही सूर्योदय के समय पारण करना चाहिए, ऐसा माधव आदि का मत है।' निर्णयसिन्धु का मत यह है कि यदि चतुर्दशी तिथि रात्रि के तीन प्रहरों के पूर्व समाप्त हो जाय तो पारण चतुर्दशी के बीच में ही होना चाहिए न कि उसके अन्त में।

आजकल धर्मसिन्धु में उल्लिखित विधि का पालन कदाचित् ही कोई करता हो। उपवास किया जाता है, शिव-पूजा होती है और लोग शिव की कथाएँ सुनते हैं। सामान्य जन (कहीं-कहीं) ताम्रफल (बादाम), कमल-पुष्प-दल, अफीम-वीज, धतूरे आदि से युक्त या केवल माँग का सेवन करते हैं। बहुत से शिव-मन्दिरों में मूर्ति पर लगातार जलधारा से अभिषेक किया जाता है।

ऐतरेय ब्राह्मण (८।९) में प्रजापित के उस पाप का उल्लेख है जो उन्होंने अपनी पुत्री के साथ किया था। वे मृग बन गये। देवों ने अपने मयंकर रूपों से रुद्र का निर्माण किया और उनसे उस मृग को फाड़ डालने को कहा। जब रुद्र ने मृग को विद्व कर दिया तो वह (मृग) आकाश में चला गया। लोग इसे मृग (मृगशीर्ष) कहते हैं। रुद्र मृगव्याघ हो गये और (प्रजापित की) कन्या रोहिणी बन गयी और तीर (अपनी तीन घारों के साथ) तीन घारा वाले तारों के समान बन गया।

लिंगपुराण (व्रतराज, पृ०५७३-५८६) में एक निषाद की कथा है। निषाद ने एक मृग, उसकी पत्नी और उनके बच्चों को मारने के कम में शिवरात्रि व्रत के सभी कृत्य अज्ञात रूप से कर डाले। वह एवं गृग के कुटुम्ब के लोग अन्त में व्याघ के तारे के साथ मृगशीर्ष नक्षत्र बन गये।

शिवरात्रि व्रत का लम्बा उल्लेख मध्यकालिक निवन्धों में हुआ है, यथा हे० (व्रत, माग २, पृ० ७१-१२२), ति० त० (पृ० १२४-१३३), स्मृतिकी० (पृ० ४८१-५१२), पु० चि० (२४८-२८१), कालसार (पृ० १५८-१६७) आदि।

उपर्युक्त शिवरात्रि के अतिरिक्त अन्य शिवरात्रियाँ मी हैं, जिनमें व्रत किया जाता है, यथा हे० (व्रत, माग-२,पृ० ७१-८७; वही,पृ० ८७-९२; वही,पृ० ११४-१२२; वही पृ० १२८-१३०; किन्तु हम इनका वर्णन यहाँ स्थानामाव से नहीं करेंगे।

को पड़े और वह श्रवण-नक्षत्र में हो तो अत्यन्त महन्ती (महान् से महान्) की संज्ञा प्राप्त होती है। विष्णुधर्मो-त्तर पुराण (१।१६२।१-७१) ने श्रवण-द्वादशी के महात्म्य पर विस्तार से चर्चा की है। अन्य ८ द्वादिशयों के लिए देखिए गत अघ्याय ५।

महानन्दानवमी: माघ शुक्ल ९ को महानन्दा कहा गया है; तिथि-त्रतं; एक वर्ष तक; देवता, दुर्गी; चार मासों की अविध में वर्ष को ३ भागों में बाँटा जाता है; प्रत्येक अविध में धूप, नैवेद्य एवं देवी-नाम विभिन्न हैं; कर्ता की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है; कृत्यकल्पतरु (त्रतं० ३०६-३०७); हेमाद्रि (त्रतं० १, ९५५-९५६, भविष्यपुराण से उद्धरण)!

महानवमी: (१) यह दुर्गापूजा-उत्सव ही है, देखिए गत अध्याय-९, कृत्यकल्पतर (राजधमं०, पृ० १९१-१९५), राजनीतिप्रकाश (पृ० ४३९-४४४); हेमाद्रि (व्रत० १,९०३-९२०); निर्णयसिन्धु (१६१-१८५); कृत्यरत्नाकर (३४९-३६४); (२) आश्विन शुक्ल ९ या कार्तिक शुक्ल या मार्गशीर्ष शुक्ल की ९ पर; तिथिवत; देवता, दुर्गा; एक वर्ष तकः; पुष्प, धूप एवं स्नान-सामग्री कितपय मासों में विभिन्न; कुमारियों को भोजन; कर्ती देवी-लोक को जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० २९६-२९९); हेमाद्रि (व्रत० १,९३७-९३९, यहाँ दुर्गानवमी नाम है); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१३४); हेमाद्रि (काल, १०७)। देखिए गरुड्पुराण (१।१३३।३-१८ तथा अध्याय १३४); कालिकापुराण (अध्याय ६२)। एपि० इण्डिका (जिल्द १, पृ० २६०) में पुलकेशि महाराज द्वारा कार्तिक-महानवभी गुरुवार को दी गयी ८०० निवर्तन भूमि का उल्लेख है।

महानिशा : देखिए गत अध्याय-५, जहाँ इसका अर्थ बताया गया है; एकादशी एवं द्वादशी पर के निषेच । महापौर्णमासीवत : 'महा' के साथ सभी पौर्णमासियों पर; एक वर्ष तक हरि-पूजा; इस दिन का अल्प दान भी महान् पुण्यकारक होता है; हेमाद्रि (व्रत० २, १९६-१९७, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

महापाषी । गदाधरपद्धति (कालसार, ६००); देखिए कार्तिक के अन्तर्गत महाकार्तिकी।

महाफलद्वादशी: विशाखा-नक्षत्र के साथ पीष कृष्ण ११ पर; देवता, विष्णु; एक वर्ष तक; गासों में शरीर-पवित्रता (शुद्धि) के लिए कई वस्तुओं का प्रयोग तथा द्वादशी पर उन वस्तुओं का एक कर्म में दान, यथा— घी, तिल, चावल; मृत्यु के उपरान्त विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, १०९५-१०९६, विष्णुरहस्य से उद्धरण)।

महाफलव्रत: एक पक्ष के लिए, चार मासों या एक वर्ष के लिए; कर्ता को पहली से पन्द्रहवीं तिथि तक कुछ वस्तुओं को ही खाना पड़ता है, वस्तुओं का क्रम यों है—दूघ, पुष्प, सभी प्रकार का भोजन, किन्तु नमक नहीं, तिल, दूघ, पुष्प, तरकारियाँ, वेल, आटा, अपक्व भोजन, उपवास, घी, दूघ में चावल एवं गुड़ (उबाला हुआ), जौ, गोमूत्र एवं कुश से पवित्र किया हुआ जल। इन सभी दिनों तक एक निश्चित तिथि का प्रयोग; व्रत के एक दिन पूर्व तीन बार स्नान, उपवास, वैदिक मन्त्रों, गायत्री आदि का पाठ; बहुत से पुष्प, अन्त में सूर्यलोक; हेमादि (वृत २, ३९२-३९४, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

महाफल-सप्तमी: जब रिववार को सप्तमी एवं रेवती-नक्षत्र होता है अशोक की किलयों से दुर्गा-पूजा की जाती है और किलयां खायी जाती हैं; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०५)।

महाफाल्गुनी : देखिए कार्तिक के अन्तर्गत ; गदाघरपद्धित (कालसार, ५९९) ; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (३१४)।
महाभद्राष्टमी : बुधवार को पड़ने वाली पौष शुक्ल अष्टमी महाभद्रा कही जाती है और पित्रत्र मानी
जाती है; देवता, शिव ; स्मृतिकौस्तुभ (४३८) ; गदाघरपद्धित (कालसार, ६०५-६०६) ; पुरुषार्थचिन्तामणि
(१३८)।

30%

महाभावी : देखिए कार्तिक, जहाँ 'महा' के विषय का नियम दिया हुआ है।

महामाघी: जब सूर्यं श्रवण-नक्षत्र में तथा चन्द्र मघा में हो तो उसे महामाघी कहा जाता है; राजमार्तण्ड (१३६६) में आया है कि सूर्योदय के समय जल बोल उठता है—'मैं किस पापी को, आसवपायी को या ब्रह्म-हत्यारे को, शुद्ध कहूँ?'; वर्षकियाकौमुदी (४९०, मिवष्यपुराण से उद्धरण); स्मृतिकौस्तुम (४३९, पद्मपुराण) पुरुषार्थ-चिन्तामणि (३१३-३१४) में आया है कि जब शिन मेष में, चन्द्र एवं बृहस्पित सिंह में तथा सूर्य श्रवण-नक्षत्र में होता है तो महामाघी कहलाती है। अन्य मतों के लिए देखिए निर्णयितन्छ (२२१)। प्रयाग, अन्य पित्र निर्यो एवं तालाबों में प्रातःकाल महास्नान से पाप कट जाते हैं। तिमल देश में 'मख' एक वार्षिक मिन्दरोत्सव है और महामख १२ वर्षों में एक बार होता है जब कि महामघ नामक तालाब में (क्रुम्भकोणम् नामक स्थान में) स्नान के लिए एक बृहद् मेला लगता है; यह मेला प्रयाग के क्रुम्भ मेला के समान है। यह उत्सव 'ममंगम्' के नाम से विख्यात है और मघा नक्षत्र में पड़ने वाली पूर्णमा में तथा जब बृहस्पित मघा में या सिंह राशि में पड़ता हैतो यह मनाया जाता है। दक्षिणी पंचांगों के अनुसार यह सन् १९५५ ई० की २५ फरवरी को मनाया गया था। ऐसा प्रकाशित हुआ घा कि उस समय दो बजे रात्रि से प्रारम्भ होकर ८ से १० घण्टे तक लगभग एक लाख लोगों ने क्रुम्मकोणम् के महामखम् तालाब में स्नान किया था। तालाब से कीचड्युक्त जल बाहर निकाला गया था और कावेरी से नया जल भरा गया था।

यह आश्चर्य है कि मध्यकालीन निबन्धों में महामखम्या कुम्म मेला का कोई उल्लेख नहीं है। महान् हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग में संगम के पश्चिम भाग में एक बड़ा मेला लगाते थे और अपने कोष का धन बाँट देते थे।

महामागंशीर्षी : देखिए ऊपर कार्तिक के अन्तर्गत 'महा' विशेषण के विषय में।

महाराजवत : जब १४ वीं तिथि (शुक्ल या कृष्ण) आर्द्रा-नक्षत्र में हो या यह पूर्वाभाद्रपदा एवं उत्तरा भाद्रपदा से युक्त हो तो वह शिव को आनन्द देती है; १३ वीं तिथि को संकल्प; १४ वीं तिथि को एक के उपरान्त दूसरे से, यथा—तिल, गोमूत्र, गोबर, मिट्टी, पंचगव्य तथा अन्त में शुद्ध जल से स्नान; इसके उपरान्त शिव संकल्प मन्त्र 'यञ्जाग्रतो दूरम्' (शिवसंकल्पोपनिषद्, ८) का १००० बार जप तीन वर्षों के लिए तथा 'ओं नमः शिवाय' शूद्रों के लिए; पंचामृत, पंचगव्य, ईख के रस से शिव एवं उमा की प्रतिमाओं को स्नान कराना तथा कस्तूरी, कुंकुम आदि लगाना; दीप मालिका; शिव संकल्प या 'त्यंम्बकं यजामहे' मन्त्र के साथ सहस्त्रों बिल्व-दलों से हीम; मन्त्रों के साथ अर्घ्य; रात्रि भर जागर (जागरण); ५ या २ या १ गाय का दान; पंचगव्य पान के उपरान्त मौन रूप से भोजन; सभी बाघाएँ दूर हो जाती हैं और परम पद की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, १०३९-११४७, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

महालक्ष्मीपूजा: इस वृत के विषय में विभिन्न मत हैं। कृत्यसारसमुच्चय (पृ०१९) एवं अहल्याकामधेनु (५३५ वी-५३९ वी) के मत से—भाद्रपद शुक्ल ८ को आरम्भ तथा आषाढ़ कृष्ण ८ को समाप्त (पूणिमान्त गणना), यह १६ दिनों तक चलती है, प्रति दिन महालक्ष्मी-पूजा तथा महालक्ष्मी के विषय की गाथाओं का श्रवण। निर्णयसिन्धु (पृ०१५३-१५४) में भी यही अविध दी हुई है, किन्तु पहली बार किये जाने पर चार दोषों से बचना होता है, यथा—अवमदिन न हो, तिथि त्रयःस्पृक् न हो, नवमी से युक्त न हो, सूर्य हस्त-नक्षत्र के भाग में न हो। महाराष्ट्र में यह पूजा विवाहित नारियों द्वारा आषाढ़ शुक्ल ९ को मध्या ह्न में की जाती है और रात्रि में सभी विवाहित नारियां एक-साथ पूजा करती हैं, खाली घड़ों को हाथ में रखती हैं, उनमें श्वास लेती हैं और

अपने शरीर को भाँति-भाँति ढंगों से मोड़ती हैं। पुरुषाार्थ-चिन्तामणि (१२९-१३२) में इसके विषय में एक लम्बा विवेचन है। इसके मत से यह वृत नारियों एवं पुरुषों दोनों का है।

महालक्ष्मीवत : भावपद शुक्ल ८ को जब सूर्य कत्या राशि में होता है महालक्ष्मी की पूजा का आरम्भ होता है और जब सूर्य कत्या राशि के अर्घ भाग में होता है तो आगे की अष्टमी को समाप्ति होती है, इस प्रकार १६ दिन लगते हैं; यदि सम्भव हो तो ज्येष्ठा-नक्षत्र में चन्द्र की स्थिति में व्रत करना चाहिए; १६ वर्षों के लिए; नारियों एवं पुरुषों के लिए यहाँ १६ की संख्या (पुष्पों एवं फलों आदि के विषय में) महत्त्वपूर्ण है; कर्ता को दाहिने हाथ में १६ घागों एवं १६ गाँठों का एक डोरक (गण्डा) बाँघना चाहिए; लक्ष्मी कर्ता को तीन जीवनों तक नहीं त्यागतीं, वह हीर्घायु, स्वास्थ्य आदि पाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४९५-४९९); निर्णय-सिन्धु (१५३-१५४); स्मृतिकौस्तुभ (२३१-२३९); पुरुषाथं-चिन्तामणि (१२९-१३२); व्रतराज (३००-३१५)।

महालय: भाद्रपद का कृष्ण पक्ष इस नाम से विख्यात है तथा पार्वण श्राद्ध इन सभी या एक तिथि पर किया जाता है; तिथितत्त्व (१६६); वर्ष कित्यदीपक (८०)।

महावैसाखी: देखिए 'महा' उपाधि के लिए 'कार्तिक'। माधववर्मन के खानपुर दान पत्र में सतारा जिले में वर्ड ग्रामों का दान महावैसाखी पर किया गया उल्लिखित है; देखिए एपि० इण्डिका (जिल्द २७, पृ० ३१२)। प्रो० भिराशी ने इस दानपत्र की तिथि ५१०-५६० के बीच में रखी है।

महास्रतः (१) माघ या चैत्र में कोई गुड़ घेतु दे सकता है और स्वयं तृतीया पर केवल गुड़ का सेवन करता है; वह गोलोक जाता है; मत्स्यपुराण (१०१।३३); कृत्यकल्पत (व्रत० ४४६); कृत्यरत्नाकर (११८); गुड़ घेतु के लिए देखिए मत्स्यपुराण (८२); (२) शुक्ल चतुरंशी या अष्टमी पर उपवास, जब कि श्रवण-नक्षत्र का योग हो; तिथित्रत; देवता, शिव; राजाओं द्वारा सम्पादित; हेमाद्रि (व्रत० १, ८६४-८६५, कालोत्तर से उद्धरण); (३) कार्तिक अमावास्या या पूर्णिमा पर नियमों का पालन; घृत के साथ पायस का प्रयोग नक्त-विधि से; चन्दन एवं ईख का रस; आगे की प्रतिपदा पर उपवास; ८या १६ शैव ब्राह्मणों को भोज; देवता, शिव; पंचगव्य, घी, मबुआदि तथा अन्त में गर्म जल से शिव-प्रतिमाओं को स्नान; नैवेद्य; सपत्नीक आचार्य को सोना, वस्त्रों आदि का दान; १६ वर्षों तक विभिन्न तिथियों पर (वर्ष के आघार पर) नक्त एवं उपवास का प्रवन्ध; इससे दीर्घायु, सौन्दर्य, सौमाग्य की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, ३७७-३९१, कालिकापुराण से उद्धरण); (४) प्रत्येक पौर्णमासी पर उपवास एवं सकल ब्रह्म के रूपमें हिर की पूजा तथा प्रत्येक अमावास्या पर निष्कल (भागहीन) ब्रह्म की पूजा; एक वर्ष तक; सभी पापों से मुक्ति एवं स्वर्ग-प्राप्ति; १२ वर्षों तक करने से विष्णुलोक की प्राप्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९८।१-७); हेमाद्रि (व्रत० २, ४६१); 'सकल' का अर्थ है 'सावयव' (अवयवयुक्त), यथा—चारों हस्तों से युक्त विष्णु, 'निष्कल' का अर्थ है बिना अन्य भागों के (मुण्डकोपनिषद् २।२।९ में इसका उल्लेख है); (५) दोनों पक्षों में अष्टमी या चतुर्दशी पर नक्त-विधि एवं शिव-पूजा; एक वर्ष तक; परम लक्ष्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २,३९८, लिगपुराण से उद्धरण)।

महाक्वेताप्रियविधि : सूर्य-प्रहण के अवसर पर जब रिववार हो; महाक्वेता (तथा सूर्य) की पूजा; नक्त-विधि या उपवास; परम पद की प्राप्ति; कृत्यकल्पतरु (व्रत०, २१-२३); हेमाद्रि (व्रत० २, ५२७-५२८)। महाक्वेता नाम मन्त्र का है, यथा—'हींसः'; कृत्यरकल्पतरु (९), एवं हेमाद्रि (व्रत० २, ५२१)।

महाषच्ठी : जब कार्तिक शुक्ल ६ को सूर्य वृश्चिक राशि में हो और मंगल हो तो उसे महाषच्ठी कहते हैं; पूर्व दिन को उपवास; षच्ठी को अग्नि-पूजा, अग्नि का महोत्सव, ब्रह्म-भोज; सभी पाप कट जाते हैं; स्मृति-कौर्तुभ (३७८); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०२)।

महाष्ट्रमी: नवरात्र की आश्विन शुक्ल ८ को यह संज्ञा प्राप्त है; वर्ष किया की मुदी (४२८); निर्णसिसन्धु (१७८); समयमयूख (५९)।

महासप्तमी: माघ शुक्ल ५ को एक भक्त; षष्ठी को नवत, सप्तमी को उपवास; करवीर पुष्पों एवं लाख चन्दन-लेप से सूर्य-पूजा; एक वर्ष तक; माघ से आरम्भ कर वर्ष को चार मासों के तीन दलों में बाँटना, प्रत्येक दल में विभिन्न नैवंदा, पुष्प एवं घूप; अन्त्रमें एक रथ का बान; हेमाद्रि (व्रत० १, ६५९-६६०, भविष्यपुराण १।५१।१-१६ से उद्धरण)।

महिष्किनीपूचा: आषाढ़ शुक्ल ८ पर; तिथि; देवता, दुर्गा; महिषासुर को मारने वाली दुर्गा को हल्दी चूर्ण से युक्त जल से स्नान कराना; प्रतिमा पर चन्दन-लेप एवं कर्पूर लगाना; कुमारियों एवं ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा देना; दोप-प्रकाश; सभी कामनाओं की पूर्ति; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०९-११०); स्मृतिकौस्तुभ (१३८)।

महेन्ग्र-कृच्छ : कार्तिक शुक्ल ६ से प्रारम्भ ; केवल दूघ का सेवन ; दामोदर-पूजा ; हेमाद्रि (ज्ञत ० २, ७६९-७७०)।

महेश्वरक्रतः (१) फाल्गुन शुक्ल १४ से प्रारम्भ; उस दिन उपवास एवं शिव-पूजा; अन्त में गोदान; यदि वर्ष भर किया जाये तो पौण्डरीक यज्ञ की फल प्राप्ति; यदि वर्ष भर प्रत्येक मास की दोनों चतुर्देशियों पर किया जाय तो सभी कामनाओं की पूर्ति; हेमादि (व्रत० २, १५२); (२) दक्षिणा-मूर्ति को वर्ष भर प्रति दिन पायस एवं घी का अर्पण; अन्त में उपवास; भूमि, गाय एवं पलंग का दान; नन्दी (शिव-वाहन) की स्थिति की प्राप्ति; हेमादि (व्रत० १, ८६७, स्कन्दपुराण से उद्धरण); दक्षिणांमूर्ति शिव का एक रूप है; शंकराचार्य लिखित दक्षिणामूर्तिस्तोत्र (१९ इलोकों में) की बात कही जाती है।

महेरवराष्ट्रमी: मागंशीर्ष शुक्ल ९ से प्रारम्भ; शिव की पूजा, लिंग या प्रतिमा के रूप में या कमल पर; श्री एवं दूच से स्नान कराना; अन्त में गोदान; यदि वर्ष भर किया जाय तो अश्वमेध-यज्ञ का लाभ एवं शिवलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (वतः १,७४७-७४८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

महोत्सवस्त : चैत्र शुक्ल १४ पर; प्रति वर्ष शिव-प्रतिमा को दूष आदि से स्नान करा कर अंजन, दमनक, बिल्व-दल का अपण; चावल के चूर्ण से बने दीपों से प्रतिमा की आरती; विभिन्न खाद्य पदार्थों का नैवेद्य; ढोल बजाना; शिव-रथयात्रा; शिव प्रसन्न हों कहना; नक्त-विधि; हेमाद्रि (व्रत० २,१४८-१४९, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

महोदिष-अमावास्या : चतुर्दशी से युक्त माघ अमावास्या को किसी समुद्र में स्नान; अश्वमेध का फल; गदाघरपद्धति (कालसार, ६०३)।

माकरी-सप्तभी : मकर-राशि में जब सूर्य हो तो सप्तमी तिथि पर; वर्षित्रया कीमुदी (५००-५०१); व्रतकोश (पृ० २०३, संख्या ९०२)।

माघकृत्य : कृत्यरत्नाकर (४८७-५१४); वर्षंकियाकौमुदी (४९०-५१४); निर्णयसिन्धु (२१३-२२१); स्मृतिकौस्तुभ (४३९-५१३); गदाघरपद्धित (कालसार, ३७-४१)। माघ में कई महत्त्वपूर्ण वत होते हैं; यथा—ितल्वतुर्थी, रंथसप्तमी, भीष्माष्टमी, जो पृथक् रूप से विणत हुई हैं। कुछ बातें यहाँ दी जा रही हैं। माघ शुक्ल ४ को जमाचतुर्थी कहते हैं, क्योंकि लोगों (विशेषतः नारियों) द्वारा कुन्द एवं अन्य पुष्पों से, गुड़-अर्पण, नमक, यवक से गौरी-पूजा की जाती है; सघवा नारियों, ब्राह्मणों एवं गाय का सम्मान किया जाता है; कृत्यकल्पतर (नैयत्कालिक काण्ड, ४३७-४३८); कृत्यरत्नाकर (५०३); माघकृष्ण १२ को यम ने तिल उत्पन्न किया, वशरथ उसे पृथिवी पर ले आये और वो दिया, विष्णु को देवों ने तिल का स्वामी बनाया, अतः उस दिन उपवास कर तिल से हरि-पूजा करनी चाहिए, तिल से होम करना चाहिए, तिल-दान करना चाहिए और उसे खाना चाहिए; विष्णुवर्मसूत्र (९०।१९); कृत्यकल्पतर (नैत्यकालिक काण्ड ४३५-४३६); कृत्यरत्नाकर (४९५-४९६); माघ अमावास्या पर जब कि वह सोमवार को प्रातःकाल उपस्थित हो, लोगों को (विशेषतः नारियों को) अश्वत्य वृक्ष की परिक्रमा करनी चाहिए और दान देना चाहिए। यह कृत्य तिमल देश में प्रचलित है।

माधसप्तसी: माघ शुक्ल ७ पर; अंहणोदय के समय किसी नदी या बहते हुए जल में अपने संर पर बदर कृक्ष एवं अर्क पौधे की सात-सात पत्तियाँ रख कर स्नान करना; सात बदर फलों, सात अर्क-दलों, चावल, तिल, दूर्वा, अक्षतों एवं चन्दन के साथ मिश्रित जल से सूर्य को अर्घ्य देना; सप्तमी को देवी समझ कर तथा सूर्य को प्रणाम करना; कुछ लोगों के मत से यह स्नान तथा माघस्नान अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु कुछ लोग दोनों को दो मानते हैं; कृत्यरत्नाकर (५०९); वर्ष कियाकौमुदी (४९९-५०२); कृत्यतत्त्व (४५९); राजमार्तण्ड (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३६, पू० ३३२)।

माधस्तान: आरम्भिक कालों से ही गंगा या किसी बहते जल में प्रातः काल माघ मास में स्नान करना प्रशंसित रहा है। सर्वोत्तम काल वह है जब नक्षत्र अब भी दीख पड़ रहे हों, उसके उपरान्त वह काल अच्छा है जब तारे दिखाई पड़ रहे हों किन्तु सूर्य अभी वास्तव में दिखाई नहीं पड़ा हो, जब सूर्योदय हो जाता है तो वह काल स्नान के लिए अंच्छा काल नहीं कहा जाता। मास के स्नान का आरम्भ पीष शुक्ल ११ या पीष पूणिमा (पूणिमान्त गणना के अनुसार) से हो जाना चाहिए और व्रत (एक मास का) माघ शुक्ल १२ या पूणिमा को समाप्त हो जाना चाहिए; कुछ लोग इसे सीर गणना से संयुज्य कर देते हैं और व्यवस्था देते हैं कि वह स्नान जो माघ में प्रातःकाल उस समय किया जाता है, जब कि सूर्य मकर राशि में हो, पापियों को स्वगं लोक भेजता है; वर्ष किया कीमुदी (४९१, पद्मपुराण का उद्धरण); सभी नर-नारियों के लिए यह व्यवस्थित है; सब से अत्यन्त पुण्यकारी माघस्नान गंगा एवं यमुना के संगम पर है; पद्मपुराण (६, जहाँ अध्याय २१९ से २५० तक २८०० क्लोकों में माघस्नान के माहात्म्य का उल्लेख है); हेमाद्र (वत० २, ७८९-७९४); वर्ष कियाकौमुदी (४९०-४९१); राजमातंण्ड (१३९८); निणंयसिन्ध (२१३-२१६); स्मृतिकोस्तुम (४३९-४४१); पद्मपुराण (६।२३७। ४९-५०; एवं कृत्यतत्त्व (४५५-४५७) ने दानों एवं नियमों की विधि का वर्णन किया है। विष्णुधमंसूत्र (९०) के अन्तिम क्लोक में माघ एवं फाल्गुन में प्रातः स्नान की प्रशंसा गायी गयी है। देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द ११, प० ८८, माघ मेला)।

मातृयत : (१) अष्टमी पर; तिथि; देवता, माताएँ; उपवास; माताओं से भिनतपूर्वक क्षमा करना; माताएँ कल्याण एवं स्वास्थ्य देती हैं; हेमाद्रि (व्रत० १, ८७६); (२) आश्विन नवमी पर राजा तथा उनकी जाति के लोगों को माताओं (नाम दिये गये हैं) की पूजा करनी चाहिए और सफलता प्राप्त करनी चाहिए; वह नारी, जिसके पुत्र मृत हो जाते हैं अथवा जिसकी केवल एक सन्तान हो, इस व्रत के सम्पादन से सन्तितवती होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ९५१-९५२)।

मार्गपाली-बन्धन : कार्तिक शुक्ल १ पर; देखिए गत अध्याय-१०।

मार्गशीर्षकृत्य : देखिए कृत्यरत्नाकर (४४२-४७४); वर्षिकयाकौमुदी (४८२-४८७); निर्णयसिन्धु (२०९-२११); स्मृतिकौस्तुभ (४२७-४३२)। तिमल देश में पूरे मास भर पित्र माना जाता है और भजन-मण्डलियाँ प्रातःकाल घूमती रहती हैं। गीता (१०।३५) के अनुसार मासों में मार्गशोर्ष सर्वोत्तम है और वह भगहान् कृष्ण के समान माना गया है। कुछ बातें यहाँ दी जा रही हैं। कृतयुग (सत्ययुग) में देवों ने वर्ष का आरम्भ

मार्गशीर्षं की प्रथम तिथि से किया, ऋषि काश्यप ने कश्मीर नामक सुन्दर देश की रचना की; अतः इस पर उत्सव किया जाना चाहिए (कृत्यरत्नाकर ४५२); मार्गशीर्ष शुक्ल १२ पर उपवास करना चाहिए और ऐसा ही वर्ष भर करते रहना चाहिए; प्रत्येक द्वादशी पर विष्णु के केशव से ले कर दामोदर के बारह नामों में एक नाम लेना चाहिए और पूजा करनी चाहिए; कर्ता जातिस्मर (जो पूर्व जन्मों के कृत्यों को स्मरण कर लेता है) हो जाता है और वहां पहुँच जाता है, जहां से लौटना नहीं होता (अनुशासनपर्व अध्याय १०९; बृहत्संहिता १०४।१४-१६; मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर विशेषतः चन्द्र की पूजा की जानी चाहिए, क्योंकि उसी समय चन्द्र पर अमृत छिड़का गया था; गाय को नमक देना चाहिए; मां, बहन, पुत्री तथा अन्य नारी-सम्बन्धियों को नवीन वस्त्रों का जोड़ा देना चाहिए; नृत्य-गान का उत्सव होना चाहिए, जो लोग मंदिरा का सेवन करते हैं, उन्हें उस दिन ताजी मंदिरा ग्रहण करनी चाहिए; कृत्यकल्पतर (नैयत्कालिक, ४३२-४३३); कृत्यरत्नाकर (४७१-४७२) मार्गशीर्ष; पूर्णिमा पर दत्तात्रेय जयन्ती की जाती है, देखिए ऊपर।

मार्तण्डसप्तमी: पौष शुक्ल ७ से आरम्भ; उस दिन उपवास; 'मार्तण्ड' नाम लेते हुए सूर्य-पूजा; अपने को शुद्ध करने के लिए कर्ता को गोमूत्र या गोबर या दही या दूघ ग्रहण करना चाहिए; दूसरे दिन 'रिव' नाम पर सूर्य-पूजा; इसी प्रकार वर्ष भर प्रत्येक मास में दो दिनों की विधि तथा एक दिन एक गाय को घास आदि खिलाना; सूय-लोक की प्राप्ति; भविष्यपुराण (१।१०९।१-१३); हेमाद्रि (व्रत० १, ७५४-७५५), कृत्यकल्पतरु (नैयत्कालिक काण्ड, १४७-१४८)।

मसवत: मार्गशीर्ष से कार्तिक तक १२ मासों में कर्ता को निम्नलिखित का दान करना चाहिए— लवण घी, तिल, सात घान्य, रंगीन एवं सुन्दर वस्त्र, गेहूँ, जलपूर्णपात्र, कर्पूर के साथ चन्दन-लेप, नवनीन, छत्र, शक्कर या गुड़ से भरपूर लड्डू एवं दीप; अन्त में गोदान तथा दुर्गा, ब्रह्म, सूर्य या विष्णु की पूजा; हेमाद्रि (ब्रत० २, ८५३-८५४, देवीपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४४२-४४३)।

मासवतानि : अग्निपुराण (१९८); कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४१८-४३२); हेमाद्रि (व्रत० २, ७४४-७९९); दानसागर (५८९-६२१)।

मासोपनासवत: सभी वतों में यह सर्वोत्तम वत है। यह एक अति प्राचीन वत है। ई० पू० दूसरी शती में रानी नायनिका (नागनिका) ने इसे सम्पादित किया था (ए० एस० डब्ल्यू० आई०, जिल्द ५, पृ० ६०); इसका वर्णन अग्नि० (२०४।१-१८), गरुड० (१।१२२।१-७), पद्म० (६।१२१।१५-५४) में किया गया है। अग्निपुराण अति संक्षिप्त है, उसी को अति संक्षिप्त रूप में यहाँ दिया जा रहा है। कर्ता को सभी वैष्णव वर (यथा-द्वादशी) कर लेने चाहिए, गुरु का आदेश ले लेना चाहिए; अपनी शक्ति को देख कर आश्विन शुक्ल ११ से आरम्भ कर उसे ३० दिनों तक ले जाने का संकल्प करना चाहिए; किसी वानप्रस्थ व्यक्ति या यित या विघवा द्वारा यह सम्पादित होना चाहिए; पुष्पों आदि से प्रति दिन तीन बार विष्णु-पूजा होनी चाहिए; विष्णु की प्रशस्ति के गान गाये जाने चाहिए, विष्णु-क्यान करना चाहिए; व्यर्थ की (इघर-उघर की) बातों का त्याग होना चाहिए; वन की इच्छा का त्याग करना चाहिए; जो नियमों का पालन नहीं करते उन्हें नहीं छूना चाहिए; मंदिर में ३० दिनों तक रहना चाहिए; ३० दिनों के उपरान्त १२ वें दिन ब्रह्मभोज देना चाहिए, दक्षिणा देनी चाहिए तथा १३ ब्राह्मणों को आमन्तित कर पारण करना चाहिए, वस्त्रों का जोड़ा, आसन, पात्र, छत्र, खड़ाऊ दान-रूप में दिये, जाने चाहिए; एक पलंग पर विष्णु की स्वर्ण-प्रतिमा का पूजन होना चाहिए; अपनी स्वयं की प्रतिमा की वस्त्र आदि देना चाहिए; पलंग गुरु को दे दी जानी चाहिए; वह स्थान जहाँ कर्ता ठहरता है पवित्र हो जाता है; वह अपने प्रवं अपने परिवार के लोगों को स्वर्गलोक ले जाता है; यदि कर्ता व्रत के बीच में मूर्चिक्षत हो जाता है; वह अपने प्रवं अपने परिवार के लोगों को स्वर्गलोक ले जाता है; यदि कर्ता व्रत कर्त विच में मूर्चिक्षत हो जाता है; वह अपने प्रवं अपने परिवार के लोगों को स्वर्गलोक ले जाता है; यदि कर्ता व्रत कर्ता व्रत में मूर्चिक्षत हो जाता है; वह अपने पर्ण अपने परिवार के लोगों को स्वर्गलोक ले जाता है; यदि कर्ता व्रत कर्ता व्रत के बीच में मूर्चिक्षत हो जाता है

उसे दूघ, घी एवं फल का रस देना चाहिए; ब्राह्मणों की सम्मित से ऐसा करने से वत खण्डित नहीं होता; हेमाद्रि (वत ० २, ७७६-७८३, विष्णुरहस्य से उद्धरण) ।

मासरक्षपौर्णमसीव्रतः कार्तिके शुक्ल १५ पर आरम्भ; नक्त-विधि से मोजन; नमक से बने वृत्त, तथा चेन्दन-लेप से निर्मित चन्द्र की दस नक्षत्रों के साथ पूजा यथा—कार्तिक में कृत्रिका एवं रोहिणी के साथ, मार्गशीर्ष में मृगशिरा एवं आर्द्री के साथ...और यह कम आश्विन तक चला जाता है; सबवा नारियों का गुड़, बढ़िया भोजन, घी, दूघ आदि से सम्मान; स्वयं हविष्य भोजन करना; अन्त में सोने के साथ रंगीन वस्त्र का दान; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१९२।१-१५); नीलमतपुराण (पृ० ४७)।

त्रिसप्तमी: मार्गशीर्ष शुक्ल ७ को यह नाम मिला है; तिथि वत; देवता, मित्र (सूर्य); षष्ठी को मित्र-प्रतिमा को उसी विधि से स्नान कराया जाता है जैसा कि कार्तिक शुक्ल ११ को विष्णु-प्रतिमा को; सप्तमी को उपवास (फल खाये जा सकते हैं); रात्रि में जागर; विभिन्न पुष्पों, आटे के पक्वान्नों से सूर्य-पूजा; ब्राह्मणों, दिर्द्रों एवं असहायों को भोजन; अष्टमी को नर्तकों तथा अभिनेताओं के बीच घन का वितरण; नीलमतपुराण (पृ० ४६-४७, क्लोक ५६४-५६९); कृत्यरत्नाकर (४६०-४६१); कृत्यकल्पतरु (नैयत्कालिक काण्ड (४३२); वर्षिक्रयाकौमुदी (४८३); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०४)।

मुक्तः अरणव्रतः भाद्र शुक्ल सप्तमी पर; तिथिव्रत; देवता, शिव एवं उमा; शिव-प्रतिमा के समक्ष एक डोरक (धागों से बना गण्डा) रखना; आवाहन से आरम्भ कर १६ उपचारों के साथ शिव-पूजा; मोती एवं अध्य बहुमूल्य पत्थरों से युक्त सोने को आसन; उपचारों के उपरान्त मेखला में गण्डा बाँघना; ११०० मण्डकों एव विष्टकों का दान; दीर्घायु पुत्रों की प्राप्ति; निर्णयसिन्ध् (१३४), व्रतरत्नाकर (२४१-२४७)।

मृक्तिहार-सप्तमी: जब सप्तमी को हस्त नक्षत्र हो या पुण्य नक्षत्र हो तो यह त्रत किया जाना चाहिए; कर्ता को 'अर्क को प्रणाम' के साथ अर्क की टहनी से अपने दाँत स्वच्छ करने चाहिए; होम; गोबर से लीपे गये आँगन में लाल चन्दन के लेप से एक घोडरा-दल कमल बनाना चाहिए, जिसके प्रत्येक दल पर पूर्व से आरम्भ कर कतिपय देशों को प्रतिष्ठापित करना चाहिए; तब आवाहन से आरम्भ कर अन्य उपचार सम्पादित करने चाहिए; उस दिन उपवास; एक वर्ष तक ६ रसों (मधुर, लवण, तिक्त, कथाय, कटु, अम्ल) में किसी एक को दो मास तक खाना; १३ वें मास में पारण तथा एक कपिला गाय का दान; मोक्ष-प्राप्ति; हेमाद्रि (तत० २, ७८०-७८६)।

मुखनत : एक वर्ष तक ताम्बूल (मुखवास) का त्याग; वर्ष के अन्त में एक गाय का दान; कर्ता यक्षों का

अधिपति हो जाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ८६५, पद्मपुराण से उद्धरण)।

मूलगौरीवत: चैत्र शुक्ल ३ पर; तिल एवं जल से स्नान; स्वर्ण-फलों के साथ एवं पाँव से सिर तक शिव एवं गौरी की पूजा; १२ मासों में विभिन्न पुष्पों का उपयोग; इसी प्रकार विभिन्न पदार्थों को खाना या पीना; गौरी के विभिन्न नामों की पूजा; कर्ता को एक फल छोड़ देना चाहिए; अन्त में एक पलंग, सोने के बैल एवं गाय का दान; शिव ने गौरी से चैत्र शुक्ल तृतीया पर विवाह किया था; अग्निपुराण (१७८।१-२०)।

मृगशीर्षत्रतः श्रावण कृष्ण १ पर शिव ने तीन फलकों के एक बाण से हरिण रूप घारण किये हुए यज्ञ के तीन मुखों को भेदा था; कर्ता को मिट्टी से मृगशीर्ष की प्रतिमा बना कर तरकारियों एवं सरसों से युक्त आटे के

विभिन्न नैवंद्य से पूजा करनी चाहिए; हेमाद्रि (वत० १, ३५८-३५९); स्मृतिकौस्तुभ (१४६)।

मेचपालीतृतीया : आश्विन शुक्ल ३ को नर-नारियों का मेघपाली नामक लता से पूजा करनी चाहिए; यह स्ता बाटिकाओं, पहाड़ियों एवं मार्गों पर उगती है; इसकी पूजा विभिन्न प्रकार के फलों एवं सात धान्यों के अंकुरों के की जाती है; सभी पापों से विशेषतः त्रुटिपूर्ण तील-वटखरों एवं मापकों से व्यापार करने वालों के पापों से मुक्ति मिलती है; हेमाप्रिद्र (व्रत० १, ४१६-४१७, भविष्योत्तरपुराण १७।१-१४ से उद्धरण)।

मौनवत : (१) पूणिमान्त गणना से श्रावण के अन्त के उपरान्त साद्रपद १ से १६ दिनों तक कर्ता को दूर्वा की शाखाओं की १६ गाँठों बना कर दाहिने हाथ में (स्त्रियों को बायें हाथ में) रखना चाहिए; १६ वें दिन पानी लाने, गेहूँ को पीसने तथा उससे नैवंद्य बनाने तथा भोजन करते समय मौन रखना चाहिए; शिव-प्रतिमा या लिंग को जल, दूघ, दही, घी, मघु एवं शक्कर से स्नान करा कर पूजा करना तथा 'शिव प्रसन्न हों' ऐसा कहना; इससे सन्ति-प्राति एवं कामना-पूर्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४८२-४९२); निर्णयामृत (२६-२७); (२) ८, ६ या तीन मासों तक या एक मास, अर्घ मास या '१२, ६ या ३ दिनों तक या एक दिन तक मौन रहना; मौनव्रत से सर्वार्घ सिद्धि होती है ('मौन सर्वार्घ साधकम्', पृ० ८८०); कर्ता को भोजन करते समय 'हुं' भी नहीं कहना चाहिए; मन, वचन एवं कर्म से हिसा-त्याग; व्रत-समाप्ति पर चन्दन का लिंग-निर्माण तथा गन्ध एवं अन्य उपचारों से उसकी पूजा, मन्दिर की विभिन्न दिशाओं में सोने एवं पीतल के घण्टों का अर्पण; शैवों एवं ब्राह्मणों को भोज; सिर पर पीतल के पात्र में लिंग रख कर जन-मार्ग से मौन रूप से मन्दिर को जाना तथा मन्दिर-प्रतिमा के दाहिने पक्ष में लिंग-स्थापन और उसकी बार-बार पूजा; कर्ता शिव-लोक जाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ८७९-८८३, शिवधर्म के से उद्धरण)।

यक्षकर्वम : (यक्षों का प्रिय अंजन) पाँच सुगन्धित पदार्थों से निर्मित; देखिए गत अध्याय-२; हेमाब्रि (व्रत० १, १४३-४४); व्रतराज (पृ० १६)।

यज्ञसप्तमी: शुक्ल ७ पर, जब ग्रहण हो, विशेषतः जब संक्रान्ति हो; कर्ता एक बार हिवष्य भोजन करता है, वरुण को प्रणाम करता है, पृथिवी पर रखी दर्भ घास पर बैठता है; दूसरे दिन प्रातःकाल आरम्भ में एवं अन्त में वरुण की पूजा करता है। एक विस्तृत विधि व्यवस्थित है; माघ सप्तमी पर वरुण को, फाल्गुन ७ पर सूर्य को, चैत्र ७ पर अंशुमाली (सूर्य केंग एक नाम) को पूजित किया जाता है और इसी पर पौष तक कृत्य चला जाता है; वर्ष के अन्त में एक स्वर्ण रथ बनाया जाता है, जिसमें सातघोड़े जुते होते हैं, जिसके मध्य में सूर्य की एक स्वर्ण-प्रतिमा रहती है, जिसके चतुर्विक सूर्य के १२ नामों के प्रतिनिधियों के रूप में बारह ब्राह्मण बने रहते हैं, बारह मासों में १२ ब्राह्मण पूजित होते हैं:; रथ एवं एक गाय आचार्य को दान रूप में अपित; दिरद्र व्यक्ति ताम्र का रथ बना सकता है; कर्ता लम्बे क्षेत्रों का राजा हो जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १०७-११२); हेमाद्रि (व्रत० १, ७५७-७६०, भविष्यपुराण, १।५०।१-४२ से उद्धरण); ने लिखा है कि यहाँ वरुण का अर्थ है सूर्य।

यमचतुर्थी: शनिवार एवं भरणी नक्षत्र में पड़ने वाली चतुर्थी पर यम-पूजा; सात जन्मों तक पापों से मुक्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ५२३-५२४); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (९५, कूर्मपुराण से उद्धरण); यम भरणीनक्षत्र का स्वामी है।

यमतर्पण : तिलयुक्त जल की अंजलियों से यम के तीन नामों (यम, धर्मराज, अन्तक) को तीन बार तर्पण करना; एक वर्ष में किये गये पाप तुरत समाप्त हो जाते हैं।

यमवीपदान : कार्तिक कृष्ण १३ पर; रात्रि हो जाने पर घर के बाहर दीप-दान; इससे आकस्मिक मृत्यु से रक्षा होती है; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (२३१); स्मृतिकौस्तुभ (३६८)।

यमद्वितीया : देखिए गत अघ्याय-१०।

यमितियायात्रा : मुवनेश्वर की १४ यात्राओं में एक; गदाघरपद्धति (कालसार, १९३)।

यमद्रत: जो व्यक्ति (१) शुक्ल ५, ६, ८ या १४ को उपवास करता है तथा ब्रह्म-भोज कराता है, वह रोग-मुक्त हो जाता है और मुन्दर रूप पाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत०३८९); हेमाद्रि (व्रत०२,३७७, महाभारत से उद्धरण); (२) कृष्ण १४ को उपवास; यम के प्रत्येक नाम (यम, वर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल एवं सर्वभूतक्षय पर तिल-जल की सात अञ्जलियों का अपण; सभी पापों से मुक्ति; हेमाद्रि (व्रत०२,१५१, कूर्मपुराण से उद्धरण); (३) कार्तिक कृष्ण १४ पर स्नान एवं यम को तर्पण; (२) में दिये गये नामों के अनुसार जलांजिल का अपण, (यहाँ कुछ और नाम जुट गये हैं, यथा—वित्र, चित्रगुप्त); एक ब्राह्मण को तिलपूर्ण पात्र एवं सोने का दान; कर्ता मृत्यु पर दु:ख नहीं उटाता; हेमाद्रि (व्रत०२,१५१); (४) यदि राजा यम की पूजा दशमी को हो तो रोगों का निवारण हो जाता है; हेमाद्रि (व्रत०१,९८२, भविष्यपुराण से उद्धरण); (५) जब चतुर्थी रिववार को पड़ती है और वह भरणी-नक्षत्र से युक्त होती है तो यम के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए भैंसे एवं सोने का दान करना चाहिए; अहल्याकामघेन (३५७, कूर्मपुराण से उद्धरण)।

यमादर्शन-त्रयोदशी: मार्गशीर्ष की त्रयोदशी पर, जब कि यह रिववार एवं मंगलवार को छोड़ कर किसी भी शुभ दिन पर पड़ती है; पूर्वा ह्न में १३ ब्राह्मण निमन्त्रित होते हैं, उन्हें देह में लगाने के लिए तिल का तेल दिया जाता है, नहाने को पानी तथा खाने को भरपेट भोजन दिया जाता है; यह एक वर्ष तक प्रतिमास किया जाता है; ऐसा करने से कर्ता यम का मुख कभी भी नहीं देखता; हेमाद्रि (व्रत०२,९-१४, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); अहल्याकामधेनु (८६४)।

यमुनास्नान-तर्पण : यमुना के जल में खड़े हो कर विभिन्न नामों से यम का तिलयुक्त जल की तीन अंजिलयों से तर्पण ; गदाधरपद्धित (कालसार, ६०१)।

यात्रा: (उत्सवपूर्ण जुलूस या उत्सव) देखिए दोलयात्रा एवं रथयात्रा। अति प्राचीन कालों से ही देवों की यात्राएँ प्रसिद्ध रही हैं। कालप्रियानाथ की यात्रा के अवसर पर भवभूतिकृत महावीरचिरत का अभिनय किया गया था। देखिए रघुनन्दन द्वारा प्रणीत माना गया 'यात्रातत्त्व', जिसमें विष्णु की १२ यात्राओं का उल्लेख है। पुरुषोत्तम की यात्रा के अवसर पर मुरारिकृत अनर्घराघव का अभिनय किया गया था; देखिए एपि० इण्डिका (जिल्द १०,पृ० ७०) जहाँ महादेव पृथ्वीश्वर की देवद्रोणी (प्रतिमा-यात्रा) का उल्लेख है; कृत्यकल्पतर (राजधर्म० नृ० १७८-१८१) में देवयात्रा-विधि वर्णित है; राजनीतिप्रकाश (४१६-४१९)। प्रति वर्ष वैसाख से आगे ६ मासों तक, पहली से १५ वीं तिथि तक विभिन्न देवों की पूजा होती है यथा— ब्रह्मा की, जो तिथियों के स्वामी कहे जाते हैं।

युगावितिथियाँ : नारदपुराण (१।५६।१४७-१४८); हेमाद्रि (काल० ६४९-६५५); तिथितत्त्व (१८७); निर्णयसिन्ध (९४-९५); पुरुषार्थचिन्तामणि (८६-८९); विष्णुपुराण (३।१४।१२-१३); भुजबल निबन्ध (पृ०४२)।

युगादिवत : चारों युग, यथा — कृत, त्रेता, द्वापर एवं किल कम से वैसाख शुक्ल ३, कार्तिक शुक्ल ९, माद्रपद कृष्ण १३ एवं माघ अमावास्या पर आरम्भ हुए; इन तिथियों पर उपवास, दान, तप, जप एवं होम से साधारण फलों की अपेक्षा एक करोड़ गुना फल-प्राप्ति होती है; वैसाख शुक्ल ३ पर नारायण-लक्ष्मी की पूजा एवं लवण-घेनु का दान; कार्तिक शुक्ल ९ पर शिव-उमा की पूजा तथा तिल-घेनु का दान; माद्रपद कृष्ण १३ पर पितरों को सम्मान; माघ अमावस्या पर ब्रह्मगायत्री की पूजा तथा नवनीत-धेनु का दान; सभी मन, वचन एवं कर्म से किये गये पाप प्रभावहीन हो जाते हैं; हेमाद्रि (व्रत० २, ५१४-५१७, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

• -38

युगान्त्य-श्राद्ध : तीन दिनों तक सम्पादन; चारों युग कम से निम्नलिखित समयों पर अन्त को प्राप्त होते हैं; कृत का अन्त तब होता है जब सूर्य सिंह राशि में रहता है, त्रेता का अन्त वृश्चिक-संक्रान्ति में, द्वापर का वृष-संक्रान्ति में तथा किल का कुम्म-संक्रान्ति में; हेमाद्रि (काल० ६५६); कृत्यरत्नाकर (५४२-५४३'); कृत्यकल्पतरु (नैयत्कालिक काण्ड, ३७२)।

युगावतारवत: भाद्रपद कृष्ण १३ पर जब द्वापर-युग का आरम्भ हुआ; शरीर पर गोमूत्र, गोवर, दूर्वा एवं मिट्टी का प्रयोग और गहरे जल या तालाब में स्नान; यह करने से गया-श्राद्ध का फल मिलता है; विष्णु-प्रतिमा का घी, दूध एवं शुद्ध जल से स्नान; विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ५१८-५१९, भविष्यपुराण से उद्धरण)) कुछ लोगों का कथन है कि इस दिन त्रेतायुग का अभ्युदय हुआ था।

योगव्रत : विष्कम्भ व्यतीपात ऐसे योगों का उल्लेख आगे के प्रकरण 'काल' में किया जायगा; हेमाद्रि (व्रत २, ७०७-७१७); स्मृतिकौस्तुभ (५६३-५६४); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (५२)।

योगेश्वरव्रत या योगेश्वरद्वादशी: कार्तिक शुक्ल ११ को उपवास; चार जलपूर्ण घट, जिनके भीतर रत्त रखे गये हों, जिन पर चन्दन-लेप चिह्न लगे हों, जिनके चारों ओर श्वेत वस्त्र बँघा हो, जिनके ऊपर तिल एवं सोने से युक्त ताम्र-पात्र रखे गये हों, चार समुद्र समझे जाते हैं; घट के ढक्कन के बीच में हिर (जो योगेश्वर कहे जाते हैं) की प्रतिमा रखी जाती है और पूजित होती है; जागर,; दूसरे दिन चारों घट चार ब्राह्मणों को दे दिये जाते हैं, स्वर्ण-प्रतिमा किसी अन्य पाँचवें ब्राह्मण को दी जाती है; ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा; इस व्रत को घरणीव्रत भी कहा जाता है; कर्ता पापमुक्त हो जाता है और स्वर्गलोक जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३३६-३३९); हेमाद्र (व्रत० १,१०४१-१०४४,वराहपुराण ५०।४-२९ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४२७-४३०)।

रक्तसप्तमी: मार्गशीर्ष कृष्ण ७ पर; तिथिवत; लाल कमलों से सूर्य-पूजा या श्वेत पुष्पों एवं लाल चन्दन, वटक (बड़ा) एवं कृसर (चावल, मटर एवं मसालों से बना पक्वान्न) से सूर्य-प्रतिमा की पूजा; अन्त में लाल वस्त्रों के जोड़े का दान; (विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१७०।१-३)।

रक्षापज्यमी : भाद्र पद कृष्ण ५ पर; काले रंगों से सर्पों का चित्रांकन एवं पूजा; सर्प प्रसन्न होते हैं और वंशजों को कोई डर नहीं होता; गदाघरपद्धति (७८-७९)।

रक्षाबन्धन : श्रावण-पौर्णमासी पर; देखिए गत अध्याय- ७।

रङ्गपञ्चमी : फाल्गुन कृष्ण ५ पर; देखिए गत अध्याय-१२।

रटन्ती-चतुर्दशी: माघ कृष्ण १४ पर; तिथि; यम; अष्णोदय के समय स्नान; १४ नामों के साथ यम को तर्पण (कृत्यतत्त्व ४५० में यम के ये नाम उल्लिखित हैं); वर्षिकयाकौमुदी (४९७); कृत्यतत्त्व (४५७); गदाघरपद्धित (कालसार १५७-१५८); देखिए ऊपर प्रेत-चतुर्दशी।

रत्नषष्ठी: मृच्छकटिक (अंक ३) एवं चारुदत्त (अंक ३, पृ० ६३, भासलिखित) में उल्लिखित; वहाँ 'ननुषष्ठीम् उपवसामि' नामक शब्द आये हैं; किन्तु यह कहना कठिन है कि यह रत्नषष्ठी है या कोई और।

रत्नानि: (रत्न या बहुमूल्य वस्तुएँ) देखिए ऊपर 'पंचरत्न' जहाँ पाँच रत्नों के नाम आये हैं (सोना, हीरा, नीलम, पद्मराग एवं मोती); व्रतराज (१५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण का उद्धरण) ने नौ रत्नों के नाम दिये हैं, यथा—मोती, सोना, वैदूर्य, पद्मराग, पुष्पराग, गोमेद (हिमालय से प्राप्त), नीलम, गारुत्मत एवं मूँगा।

रयनवसी : आश्विन शुक्ल ९ (कृत्यकल्पतरु के अनुसार) या कृष्ण ९ (हेमाद्रि के अनुसार) ; तिथि ; दुर्गा ; उस दिन उपवास, दुर्गा-पूजा ; दर्गणों, चौरियों, वस्त्रों, छत्र, मालाओं आदि से सुसज्जित रथ पर या भैसे पर बैठी दुर्गा

की स्वर्ण प्रतिमा; जन-मार्ग से रथको ले जाकर दुर्गा-मन्दिर तक पहुँचना, प्रकाश; नृत्य एवं संगीत से जागर; दूसरे दिन प्रातः प्रतिमा-स्नान तथा दुर्गा के लिए रथ का समर्पण; एक सुन्दर पलंग, बैल एवं शीघ्र ही बच्चा देने वाली गाय का दान; कृत्यकल्पतरु (व्रत० २९४-२९८) हेमाद्रि (व्रत० १,९४६-९४८, मविष्यपुराण से उद्धरण)।

रथयात्रा : हेमाद्रि (व्रत० २, ४२०-४२४, देवीपुराण का उद्धरण) ने दुर्गा की रथयात्रा का वर्णन किया है; इत्यरत्नाकर (२५९-२६४) ने वही वर्णन किसी अन्य स्रोत से दिया है; भविष्यपुराण (११४८१३-१७) ने ब्रह्मा की रथयात्रा का वर्णन किया है; कृत्यरत्नाकर (४३८-४३९) एवं पूजाप्रकाश (२९३-३०७) ने उद्धरण दिया है; पृष्णोत्तम की १२ एवं भुवनेश्वर की १४ रथयात्राओं का वर्णन गदाघरपद्धित (कालसार, १८३-१९० एवं १९०-१९४) में हुआ है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४२४-४४०, भविष्पुराण का उद्धरण) ने सूर्य के रथयात्रोत्सव का विस्तृत उल्लेख किया है और कहा है (पृ० ४२५) कि यह इन्द्रध्वजोत्सव के समान है तथा दोनों प्रति वर्ष विभिन्न देशों में शान्ति के लिए तथा लोगों के सुख एवं स्वास्थ्य के लिए किये जाते हैं तथा इनका आरम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल से होना चाहिए। मथुरा में साम्बपुरदेव की रथयात्रा के लिए देखिए वाराहपुराण (१७७।५५-५६)। भविष्योत्तरपुराण (१३४।४०-७१) में रथ-निर्माण, जुलूस-व्यवस्था तथा रथ में प्रतिमा-स्थापन आदि का विस्तृत उल्लेख है।

रथसप्तमी: माघ शुक्ल ७ पर; तिथि; सूर्य; षष्ठी की रात्रि को संकल्प एवं नियमों का पालन; सप्तमी को उपवास; कर्ता को सोने या चाँदी का अरुव एवं सारथी से युक्त एक रथ बनवाना पड़ता है; सूर्य की स्तुति करनी होती है तथा मध्या ह्न काल में रथ को वस्त्र से आच्छादित मण्डप में ले जाना होता है तथा कुकुम, पुष्पों आदि से रथ की पूजा करनी पड़ती है; रथ में सूर्य की स्वणं प्रतिमा रखी जाती है; रथ एवं सारथी के साथ सूर्य-पूजा तथा मन्त्रोच्चारण और उसके साथ मनोकामना की अभिव्यक्ति; नृत्य एवं संगीत से जागर, कर्ता को पलकें नहीं वन्द करनी चाहिए अर्थात् वह उस रात्रि नहीं सोता; दूसरे दिन प्रातः स्नान, दान और गुरु को रथ का दान; हेमाद्रि (त्रत० १, ६५२-६५८, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)। यहाँ कृष्ण ने युधिष्ठिर से कामबोज के राजा यशोवर्मा की गाथा कही है कि किस प्रकार इस बत के संम्पादन से उसकी वृद्धावस्था में उत्पन्न पुत्र, जो सभी रोगों से विकल था, रोगमुक्त हो गया तथा चक्रवर्ती राजा हो गया। कालविवेक (१०१); हेमाद्रि (काल ६२४) ने मत्स्यपुराण का उद्धरण देते हुए कहा है कि मन्वन्तर के आरम्भ में इस तिथि पर सूर्य को रथ प्राप्त हुआ, अतः यह तिथि रथसप्तमी के नाम से विख्यात है। इसे महासप्तमी भी कहा जाता है (हेमाद्रि, काल०, ६२४)। देखिए तिथितत्त्व (३९); पुरुषार्थ चिन्तामणि (१०४-१०५); वतराज (२४९-२५३)। देखिए इण्डियन एण्टीक्वरी (जिल्द ११,पृ० ११२), राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग का सामनगढ़ दान-पत्र, शके सम्वत् ६७५ (७५३-५४ई०) जहाँ 'माघमास-रथसप्तमीम्' आया है। रथसप्तमी-माहात्म्य के लिए देखिये भविष्यपुराण (११५०)।

रथांगसप्तमी: माघ शुक्ल ५, ६ एवं ७ पर कम से एकभक्त, नक्त एवं उपवास; कुछ लोग ६ को उपवास एवं ७ को पारण की व्यवस्था देते हैं; इसे महासप्तमी भी कहा गया है (देखिए ऊपर), हेमाद्रि (व्रत॰ १, ६५९-६६०) एवं भविष्यपुराण (१।५१।१-१६) ने भी यही नाम दिया है।

रथोत्सव : आपाढ़ शुक्ल २ पर; जब पुष्य से संयुक्त हो तो कृष्ण, बलराम एवं सुभद्रा का रथोत्सव; पुष्य-नक्षत्र के न होने पर भी उत्सव किया जाना चाहिए; तिथितत्त्व (२९); निर्णयसिन्धु (१०७); स्मृतिकौस्तुभ (१३७)।

रम्भातृतीया: (१) ज्येष्ठ शुक्ल ३ पर; पूर्वाभिमुख हो कर पाँच अग्नियों (यथा—गार्हपत्य, दाक्षिणाग्नि, सम्य एवं आह्वनीय तथा ऊपर से सूर्य) के बीच में बैठना; ब्रह्मा एवं महाकाली, महालक्ष्मी, महामाया तथा सरस्वती के रूप में देवी की ओर मुख करना; ब्राह्मणों द्वारा संभी दिशाओं में होम; दंवी-पूजा तथा देवी के

समक्ष सौभाग्याष्टक नामक आठ द्रव्यों को रखना; सायंकाल सुन्दर घर के लिए स्तुति के साथ घद्राणी को सम्बोधित करना; इस के उपरान्त कर्ता (स्त्री या पुरुष) किसी ब्राह्मण को उसकी पत्नी के साथ सम्मान देता है और सूप में नैक्ड रख कर सघवा नारियों को समिपत करता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ४२६-४३०, भविष्योत्तर-पुराण १८।१-३६ से उद्धरण); कालंनिर्णय (१७६); तिथितत्व (३०-३१); यह व्रत विशेषतः नारियों के लिए है; (२) इसे यह नाम इसलिए मिला है कि रम्भा ने इसे सौभाग्य के लिए किया था; मार्गशीर्ष शुक्ल ३ पर; तिथि; पार्वती; एक वर्ष तक; विभिन्न नामों से प्रतिमास देवी-पूजा (मार्गशीर्ष में पार्वती, पौप में गिरिजा आदि); विभिन्न दान तथा विभिन्न पदार्थों का सेवन; हेमाद्रि (व्रत० १, पृ० ४३०-४३५, भविष्योत्तरपुराण २४।१-३६ से उद्धरण); गरुडपुराण (१।१२०)। यदि तृतीया, द्वितीया एवं चतुर्थी से युक्त हो तो यह व्रत द्वितीया से युक्त तृतीया पर किया जाना चाहिए; कालनिणय (१७४); देखिए अपर तृतीयाव्रत'।

रम्भात्रिरात्र-त्रत : ज्येष्ठ शुक्ल १३ पर आरम्भ; तिथि; तीन दिनों तक; सर्वप्रथम स्नान के उपरान्त नारी को केले की जड़ में पर्याप्त जल ढारना चाहिए, उसे घागों से बाँघना चाहिए, उस केले की रजत-प्रतिमा तथा उसके फल सोने के होने चाहिए; फिर उसकी पूजा; १३ को नंक्त, १४ को अयाचित तथा १५ को उपवास; उस वृक्ष को वर्ष भर जल देना चाहिए; उमा-शिव एवं श्विमणी-कृष्ण की पूजा; तीनों दिन कम से १३ १४ एवं १५ आहुतियों से होम; इस व्रत से पुत्रों की, सौन्दर्य की और सघवात्व आदि की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, २८३-२८८, स्कन्दपुराण से उद्धरण); वर्षिकयाकौमुदी (११); 'रम्भा' का अर्थ कदली (केला) भी है, अतः यह नाम है।

रविवारवत: रिववार को नक्त, आदित्यहृदय या महाश्वेता मन्त्र का जप; कामना-पूर्ति; वारवत; सूर्य देवता; स्मृतिकौस्तुम (५५६-५५७); वर्षकृत्यदीपक (४२३-५३६) ने विस्तृत उल्लेख किया है।

रिवन्नतः (१) माघ में दिन में तीन बार सूर्य-पूजा; एक मास में ही ६ मासों का पुण्य; हेमाद्रि (व्रत ० २, ७९६); (२) माघ में रिववार को; एक वर्ष तक सभी रिववारों को सूर्य-पूजा; कुछ निश्चित वस्तुओं पर कम से रहना या कुछ निश्चित वस्तुओं को न खाना; वर्ष कियाकौमुदी (३७-३८)।

रिविष्ठी : षष्ठी को उपवास एवं सप्तमी को सूर्य-पूजा; घन-प्राप्ति एवं रोग-मुक्ति; कालनिर्णय

रसकल्याणिनी: माघ शुक्ल ३ से आरम्भ; तिथि; दुर्गा; दुर्गा-प्रतिमा का मधु एवं चन्दन-लेप से स्नान, सर्वप्रथम प्रतिमा के दक्षिण पक्ष की तथा उसके उपरान्त वाम पक्ष की पूजा; उसके अंगों को विभिन्न नामों से युक्त कर पाँव से सिर तक की पूजा; १२ विभिन्न नामों (यथा—कुनुदा, माघवी, गौरी आदि) से, माघ से आरम्भ कर बारह मासों में देवी पूजा; माघ से कार्तिक तक प्रत्येक मास में कर्ता १२ वस्तुओं, यथा—लवण, गुड़, तवराज (दुग्घ?), मधु, पानक (मसालेदार रस), जीरक, दूध, दही, घी मार्जिका (रसाला या शिखरिणी), घान्यक, शक्कर में से कम से किसी एक का त्याग करता है; प्रत्येक मास के अन्त में किसी पात्र में इस मास में त्यागी हुई वस्तु को भर कर दान करना; वर्ष के अन्त में अँगूठे के बराबर गौरी को स्वर्ण-प्रतिमा का दान; पापों, चिन्ता एवं रोगों से मुक्ति; कृत्यक्त्पतर (६६-६९); हेमाद्रि (बत्त २, ४६१-४६५, पद्मपुराण ५।२२।१०५-१३५ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४९९-५०३, मतस्यपुराण ६२।१-२९ से उद्धरण)। 'रसाला' दही से बनता था और आज के महाराष्ट्र में प्रयुक्त 'श्री खण्ड' से मिलता-जुलता है, कृत्यरत्नाकर (५०१)।

राखी-पूर्णिमा : श्रावग गुवत पूर्णिमा नर; देखिर्गत अव्याय--७, 'रसाबन्धन'।

राधव द्वादशी: ज्येष्ठ शुक्ल १२ पर; राम-लक्ष्मण की स्वर्ण-प्रतिमा का पूजन; पद से शिर तक विभिन्न नामों से अंगों की पूजा (यथा—'ओं नमस्त्रिविकमायेति किटम्'); प्रातःकाल राम-लक्ष्मण की पूजा के उपरान्त घृतपूर्ण घट का दान; कर्ता के पाप कट जाते हैं और वह स्वर्गवास करता है, यदि उसे अन्य कामना की पूर्ति की अभिलाषा नहीं होती तो वह मोक्ष पद पा जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १२७-१२९); हेमाद्रि (व्रत० १,१०३४-१०३५); कृत्यरत्नाकर (१९०-१९१); सभी ने वाराहपुराण '(४५।१-१०) को उद्भृत किया है।

राजराजेश्वरस्रत: जब स्वाति नक्षत्र हो और बुघवार हो तो उस अष्टमी पर उपवास; पक्वान्नों एवं मिठाइयों के नैवेद्य से शिव-पूजा; शिव-प्रतिमा के समक्ष आचार्य को कण्ठहार, मुकुट, मेखला, कर्णफूल, दो अँगूठियाँ, एक हाथी या अश्व का दान; कर्ता अगणित वर्षों तक कुवेर की स्थिति प्राप्त कर लेता है, हेमाद्रि (यत० १, ८६४, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); 'राजराज' का अर्थ है 'कुबेर' एवं शिव का मित्र तथा राजराजेश्वर का अर्थ शिव या कुवेर (यक्षपति) हो सकता है।

राज्ञीस्नापन: चैत्र शुक्ल ८ पर; चैत्र कृष्ण ५ से तीन दिनों तक कश्मीर की भूमि रजस्वला मानी जाती है; प्रत्येक घर में सववा स्त्रियों द्वारा पुष्पों एवं चन्दन से घोयी जाती है और तब पुष्पों द्वारा सवौ पिघयों से युक्त जल से घोयी जाती है; तब लोग बाँसुरी-वादन सुनते हैं; पृथिवी सूर्य की रानी है; अतः यह नाम विस्थात हुआ है; कृत्यरत्नाकर (५३२-५३३, ब्रह्मपुराण से उद्धरण), नीलमतपुराण (पृ०५४) ने इसे फाल्गुन कृष्ण ५ से ८ तक माना है (सम्भवतः अमान्त गणना से)।

राज्यहादशीवत: मार्गशीर्ष शुक्ल १० पर संकल्प; एकादशी को उपवास एवं विष्णु-पूजा; सर्वोत्तम मोजन से होम; द्विजों के लिए मन्त्र 'तद् विष्णोः परमम्' (ऋ० १।२२।२०) तथा शूद्रों के लिए 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' नामक १२ अक्षरों का मन्त्र; जागर, संगीत एवं नृत्य; एक वर्ष तक; सभी द्वादिशयों पर मौन व्रत का कठोरता से पालन; कृष्ण द्वादशी पर भी ऐसी ही विधि केवल देव-पूजा लाल वस्त्र पहन कर तथा तेल के दीप (घृत के नहीं) के साथ; इस व्रत से कर्ता पहाड़ी की याटी का राजा हो जाता है; तीन वर्षों में कर्ता मण्डलेश्वर (प्रान्तपत्ति) हो जाता है तथा १२ वर्षों में राजा; हेमाद्रि (व्रत० १, १०६०-१०६३, विष्णुधर्मोत्तर-पुराण से उद्धरण)।

राज्यकत : ज्येष्ठ शुक्ल ३ पर वायु, सूर्य एवं चन्द्र की पूजा; प्रातःकाल किसी पवित्र स्थान पर वायु-पूजा, मध्याह्न में अग्नि में सूर्य-पूजा तथा सूर्यास्त पर जल में चन्द्र-पूजा; एक वर्ष; स्वर्ग-प्राप्त; तीन वर्षों तक करने से कर्ता ५ सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में रहता है; यदि १२ वर्षों तक थह ब्रत किया जाय तो लाख वर्षों तक स्वर्ग की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत् ४ १ ४५७-५७९, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

राज्याप्तिदशमी: कार्तिक शुक्ल १० से आरम्भ; कतु, दक्ष आदि दस विश्वेदेवों के रूप में केशव-पूजा; पूजा कृत्य मण्डलों या सोने या चाँदी की प्रतिमाओं में होता है; वर्ष के अन्त में हिरण्य-दान; विष्णुलोक की प्राप्ति, उसके उपरान्त कर्ता एक राजा या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण बनता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ९६५-९६६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। १० विश्वेदेवों के नाम हैं—चसु, सत्य, कतु, दक्ष, काल, काम, घृति, कुरु, पुरूरवा एवं माद्रव।

राधाट्यो : भाद्रपद की दोनों पक्षों की अष्टिमियों पर; राघा का जन्म भाद्र शुक्ल ७ को हुआ था; अष्टमी पर राघा-पूजा से सभी महापालक कट जाते हैं; पद्मपुराण (३।४।४३, ३।७।२१-२३)।

रामचन्द्रवोलोत्सव: चैत्र शुक्ल ३ पर; इस दिन पालने (झूले) पर रामचन्द्र की प्रतिमा रखी जाती है और एक मास तक झुलायी जाती है, जो लोग यह झूला देखते हैं वे एक सहस्र पापों से मुक्त हो जाते हैं; स्मृति-कौस्कुभ (९१)।

150

रामनवमी या रामजयन्ती : देखिए गत अध्याय-४।

रामनामलेखनवत : इसका आरम्भ रामनवमी या और किसी दिन भी किया जा सकता है; एक लाख या एक कोटि वार रामनाम लिखना चाहिए; केवल एक रामनामलेखन से महापातक कट जाता है (एकैंकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्); १६ उपचारों से रामनाम-पूजा; व्रतराज (३३०-३३२)। रामनाम के साथ जादू-सा लग गया और राम के १०८ एवं एक सहस्र नाम विख्यात हो गये।

राशिवत : कार्तिक से आगे के मासों में प्रत्येक पौर्णमासी पर; कार्तिक-पूर्णिमा पर नक्त-विधि एवं स्वर्ण मेष (मेड़ा) का दान; मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर राजा का दर्शन तथा एक जोड़ा (बैल) का दान तथा अन्त में एक दासी का दान; इस व्रत से ग्रहों के दुष्ट प्रभाव कट जाते हैं, सभी कामनाओं की प्राप्ति तथा सोमलोक में पहुँच; हेमाद्रि (व्रत० २, २३८-२३९, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

रिक्मण्यष्टमी: मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी पर; प्रथम वर्ष में कर्ता (स्त्री) को मिट्टी का एक द्वार वाला घर बना कर उसमें घर के सभी उपकरण, घान, घी आदि रख देना चाहिए और कृष्ण, घिनपणी, बलराम एवं उनकी पत्नी, प्रद्युम्न एवं उसकी पत्नी, अनिषद्ध एवं उषा, देवकी एवं वसुदेव की प्रतिमाएँ बनानी चाहिये; इन प्रतिमाओं की पूजा; प्रातःकाल चन्द्र को अर्घ्य; दूसरे दिन प्रातःकाल वह घर किसी कुमारी को दे देना चाहिए; दूसरे तीसरे एवं चौथे वर्ष उस घर में अन्य अंश जोड़ने चाहिये और उन्हें कुमारियों को दान करना चाहिये; पाँचवें वर्ष में पाँच द्वार वाला घर, छठें वर्ष में ६ द्वार वाला घर किसी कुमारी को देना चाहिए; सातवें वर्ष में सात द्वारों का घर बना कर, उसे क्वेत रंग से रंग कर उसमें पलंग, खड़ाऊँ (पाद-त्राण), दर्पण, ओखली एवं मूसल, पात्र आदि रखना चाहिए तथा कृष्ण, घिनपणी एवं प्रद्युम्न की स्वर्ण-प्रतिमाओं की पूजा करनी चाहिए, उपवास एवं जागर करके दूसरे प्रातःकाल उस घर एवं एक गाय को बाह्मण को दान रूप में दे देना चाहिए, बाह्मण -पत्नी को भी दान देना चाहिए; इस ब्रत के उपरात्त पुख्य कर्ता चिन्तामुक्त हो जाता है और स्त्री को कोई पुत्र-दुख नहीं होता; हेमाद्रि (ब्रत० १, ८५३-८५५, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

रद्रलक्षवित-त्रत : शिव-लिंग के समक्ष गाय के घी में डुबायी हुई रूई की वर्तियों (बातियों) से युक्त एक लाख दीपों का अर्पण; त्रत के पूर्व १६ उपचारों से लिंग-पूजा; त्रत का आरम्भ कार्तिक या माघ में, वैसाख या श्रावण में होता है और उसी मास में समाप्त होता है; कर्ता को घन, पुत्र एवं कामनापूर्ति प्राप्त होती है; स्मृतिकौस्तुम (४११-४१४)।

रबन्नत : (१) ज्येष्ठ के दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर (अर्थात् चार दिनों में); पाँच अग्नियों से तपों का सम्पादन तथा चौथे दिन सायंकाल स्वर्ण गाय का दान; देवता, रुद्र; हेमाद्रि (व्रत् २, ३९४, पद्मपुराण से उद्धरण), कृत्यकल्पतर (व्रत् ४५०, यहाँ पष्ठी एवं त्रयोदशी तिथि दी गयी है); मत्स्यपुराण (१०१।७६); (२) एक वर्ष तक एकभक्त-विधि; अन्त में एक स्वर्ण वैल एवं तिलघेनु का दान; यह सरवत्सर वत है; देवता, शंकर; इससे पापमोचन, चिन्ता-मुक्ति एवं शिव-लोक-प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत् ० २,८६६, पद्मपुराण से उद्धरण), कृत्यकल्पतर (व्रत् ० ४३९); मत्स्य (१०१।४); (३) कार्तिक शुक्ल ३ से प्रारम्भ; एक वर्ष तक गोमूत्र एवं नक्त-विधि से यावक का सेवन; सम्वत्सर-व्रत; गौरी एवं रुद्र; वर्ष के अन्त में गोदान; एक कल्प तक गौरी-लोक में वास; कृत्यकल्पतर (व्रत ० ४४५); मत्स्यपुराण (१०१।४२-५३)।

'रामनवसी: मार्गशीर्ष ९ पर आरम्भ; तिथिवत; चण्डिका देवी; नवमी को उपवास या नक्त या एकमक्त; आटे का त्रिशूळ बनाया जाता है, एक रजत कमल और स्वर्ण बीजकीय बना कर दुर्गा को समर्पित किया जाता है; दुर्गा सभी पापों को काट देती हैं; पौष एवं आगे के मासों में विभिन्न बनावटी पशुओं को

विभिन्न पात्रों में रख कर (यथा—चार दाँतों का एक स्वर्ण हाथी स्वर्ण पात्र में, स्वर्ण मेष स्वर्ण पात्र में) स्वाहा को दिया जाता है; कर्ता अगणित वर्षों तक चन्द्रलोक में रह कर अन्त में एक सुन्दर राजा बनता है; कृत्यकल्पतरु (व्रतं ० २८८-२९४) हेमादि (वृतं ० १, ९३३-९३७, भविष्यपुराण से उद्धरण)। रूप का अर्थ है 'बनायी हुई वस्तुएँ या पशु से मिलती-जुलती आकृति'। चित्रत देवियाँ हैं दुर्गा की आकृतियाँ या माताओं की आकृतियाँ।

रूप संक्रान्ति : संक्रान्ति दिन पर कर्ता तैल-स्नान करता है, स्वर्ण पात्र में थोड़ा सोना के साथ षी रखता है और किसी ब्राह्मण को दे देता है; उस दिन एकभक्त रहता है; संक्रान्तिव्रत है; सहस्र अश्वमेघ का फल, सौन्दर्य, दीर्घायु, स्वास्थ्य, घन एवं स्वर्ण की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२, ७३४, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

रूपसत्र : फाल्गुन पूणिमा के उपरान्त कृष्णाष्टमी पर जब मूल-नक्षत्र हो तो व्रत का आरम्भ होता है; नक्षत्र, उसके स्लामी, वरुण, चन्द्र एवं विष्णु की पूजा; होम; गुरु सम्मान; दूसरे दिन उपवास; केशव पूजा; केशव के पाद से शिर तक विभिन्न अंगों पर विभिन्न नक्षत्रों का न्यास; चैत्र शुक्ल के अन्त में सत्र-समाप्ति; अन्त में पुष्पों, धूप आदि से विष्णु-पूजा; ऋ० (१।२२।२०) के मन्त्र से होम; गुरु को दान; ब्रह्म-भोज; स्वर्ग में वास तथा लौटने पर राजा बनना; हेमादि (ब्रत०२, ६७१-६७५, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); देखिए बृहत्संहिता (१०४।६-१३) जहाँ यही व्रत चैत्र कृष्ण ८ को उपवास एवं नारायण तथा नक्षत्र की पूजा के साथ विणित है।

रूपावाप्ति: (१) पंचमी पर विश्वेदेवों की पूजा से स्वर्ग-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ५७४-५७५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); दस विश्वेदेवों के लिए देखिए ऊपर 'राज्याप्तिदशमी' एवं इस ग्रन्थ का मूल खण्ड ४, पृ० ४५७, टिप्पणी १०१८; (२) यह एक मासव्रत है; फाल्गुन पूर्णिमा की प्रथमा से चैत्र पूर्णिमा तक; शेषनाग के फण पर लेटे हुए केशव की प्रतिमा की पूजा; एकभक्त-विधि; पृथिवी पर शयन; तीन दिनों तक उपवास, उसके उपरान्त चैत्र पूर्णिमा पर पूजा; चाँदी एवं वस्त्रों का एक जोड़ा दान; इससे रूप (सौन्दर्य) की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २,७४४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ३।२०२।१-५ से उद्धरण)।

रोगमुक्ति : स्कन्द, रुद्र एवं यम के सेवकों की पूजा से रोगमुक्ति मिलती है; हेमाद्रि (व्रत०१, ६२८, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

रोगहिविधि: जब रिववार को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र हो तो सूर्य-प्रतिमा-पूजन; कर्ता रोग-मुक्त होता है और सूर्यछोक प्राप्त करता है; रात्रि में अर्क के पुष्पों से सूर्य-पूजा, अर्क के पुष्पों एवं पायस को खाना; रात्रि में पृथिवी पर सोना; सभी पापों से मुक्ति एवं सूर्यछोक-प्राप्ति; यह वारव्रत है; देवता सूर्य; कृरयक्रपत्र (व्रत०२०-२१); हेमाद्रि (व्रत०२,५२५-५२७,भिवष्योत्तरपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (६००-६०१)

रोच: यह मासोपवास, ब्राह्मरोच, कालरोच ऐसे कितपय वर्तों का नाम है; चैत्र शुक्ल १ पर प्रारम्भ; एक वर्ष तक; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२२२-२२३) ने इसका विवरण दिया है; अध्याय २२४ में नारियों के चंचल स्वभाव का उल्लेख है, किन्तु अन्त में निष्कर्ष है: 'नारियाँ पापों एवं विकारों की जड़ हैं तथा धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति के साधन भी हैं; उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, प्रत्युत रत्नों के समान उनकी रक्षा की जानी चाहिए (श्लोक, २५-२६)।

रोटक : श्रावण शुक्ल के प्रथम सोमवार पर आरम्भ; साढ़े तीन मासों के लिए; कार्तिक की चतुर्दशी पर उपवास तथा बिल्व दलों के साथ पूजा; पाँच रोटक (गेहूँ की रोटी जो लोहे के तवा या मिट्टी के थाल में पकायी जाती है) बनाये जाते हैं, एक नैवेष के लिए, दो ब्राह्मण एवं दो कर्ती के लिए; शिव-पूजा; पाँच वर्षों

तक; अन्त में सोने या चाँदी के दो रोटकों का दान; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, ३० बी०-३२ बी०); बिल्वरोटक-व्रत नाम भी है।

रोहिणीचन्द्र-शयन : मत्स्यपुराण (५७) ने इसका विस्तृत वर्णन किया है (श्लोक १-२८); पद्मपुराण (४१२४।१०१-१३०) में भी ये श्लोक पाये जाते हैं; यहाँ पर चन्द्र नाम के अन्तर्गत विष्णु की पूजा; जब पूर्णमा पर सोमवार हो, या पूर्णिमा पर रोहिणी-नक्षत्र हो तो पंचगव्य एवं सरसों से स्नान करना चाहिए तथा 'आपायस्व' (ऋ० १।९१।१६, सोम को सम्बोधित) मन्त्र को १०८ वार कहना चाहिए तथा एक शूद्र केवल 'सोम को प्रणाम, विष्णु को प्रणाम' कहता है; पुष्पों एवं फलों से विष्णु-पूजा, सोम के नामों का वाचन तथा रोहिणी (सोम की प्रिय पत्नी) को सम्बोधन; कर्ता को गोमूत्र पीना चाहिए, भोजन करना चाहिए, किन्तु मांस नहीं खाना चाहिए; केवल २८ कौर खाने चाहिए और चन्द्र को विभिन्न पुष्प अपित करने चाहिए; एक वर्ष तक; अन्त में एक पलंग, रोहिणी तथा चन्द्र की स्वर्णिम प्रतिमाओं का दान; ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए: 'हे कृष्ण, जिस प्रकार रोहिणी तुम्हें, जो कि सोम हो, त्याग कर नहीं भागती है इसी प्रकार में भी धन से पृथक् न किया जाऊँ; इससे रूप, स्वास्थ्य, दीर्घायु एवं चन्द्रलोक की प्राप्त होती है; कृत्यकल्पत्तर (व्रतकाण्ड, ३७८-३८२, मत्स्यपुराण का उद्धरण); हेमाद्र (व्रत० २, १७५-१७९, पद्मपुराण ५।२४।१०१-१३० से वे ही श्लोक); कृत्यकल्पतर (व्रत) एवं हेमाद्र (व्रत) ने इसे चन्द्ररोहिणीशयन कहा है। भविष्योत्तरपुराण (२०६। १-३०) ने भी इसे मत्स्यपुराण की माँति उल्लिखत किया है।

रोहिणोद्वादशी: श्रावण कृष्ण ११ पर कर्ता (पुरुष या स्त्री) किसी तालाव या उसके समान किसी अन्य स्थान पर गोवर से एक मण्डल बनाता है तथा चन्द्र एवं रोहिणी की आकृति बना कर पूजता है, नैवेद्य अपंण कर उसे किसी ब्राह्मण को दे देता है, इसके उपरान्त तालाब में प्रवेश करता है, चन्द्र एवं रोहिणी का ध्यान करता है, जल में हो पिसे हुए माप की १०० गोलियाँ, घी के साथ पाँच मोदक खाता है, बाहर निकलने पर किसी ब्राह्मण को भोजन एवं वस्त्र देता है; ऐसा प्रति वर्ष किया जाना चाहिए; हेमाद्रि (व्रत० १, १११३-१११४, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

रोहिणीवत: एक नक्षत्र वत; पाँच रत्नों से जड़ी ताम्रया स्वर्णिम रोहणी-प्रतिमा का निर्माण तथा दो वस्त्रों, पुष्पों, फलों एवं नेवैद्य से पूजा; उस दिन नक्त-विधि से भोजन; दूसरे दिन किसी विद्वान् गृहस्थ ब्राह्मण को प्रतिमा-दान; रोहिणी श्रीकृष्ण के जन्म के समय का नक्षत्र है; हेमाद्रि (वत० २, ५९८-५९९, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

रोहिणोस्नान: एक नक्षत्रव्रत; कर्ता एवं पुरोहित कृत्तिका पर उपवास करते हैं और रोहिणी पर कर्ता को पाँच घड़े जल से, जब वह दूध फेंकती वृक्ष-शाखाओं या पल्लवों, श्वेत पुष्पों, प्रियंगु एवं चन्दन-लेप से अलंकृत चावल-राशि पर खड़ा रहता है, नहलाया जाता है; विष्णु, चन्द्र, वरुण, रोहिणी एवं प्रजापित की पूजा; घी एवं सभी प्रकार के बीजों से उन सभी देवों को होम; मिट्टी, घोड़े के केश एवं खुर (टप् ) से बने तीन भागों में विभाजित एक सींग में एक बहुमूल्य पत्थर पहनना चाहिये; ऐसा करने से पुत्रों, घन, यश की प्राप्ति होती है हैमाद्रि (व्रत० २, ५९९-६००, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

रोहिण्याष्टमी: भाद्रपद कृष्णाष्टमी को, जब वह गेहिणी-नक्षत्र से युक्त होती है, जयन्ती कहा जाता है; जब अष्टमी अघंरात्रि के पूर्व एवं उपरान्त एक कला तक बढ़ी रहती है तो वह अत्यन्त पित्र काल माना जाता है और उसी समय भगवान् हिर का जन्म हुआ था; इस जयन्ती पर उपवास एवं हिर-पूजा से कर्ता के एक सी पूर्व जीवनों के पाप कट जाते हैं; यह रोहिणीवत एक सी एकादशीवतों से उत्तम है; राजमार्तण्ड (१२३१-१२५); कृत्यरत्नाकर (२५८); वर्षिक्याकीमुदी (२९८-३०४)।

रौप्रविनायकथाग : जब गुरुवार पर एकादशी एवं पुष्य-नक्षत्र हो या जब शनिवार रोहिणी से युक्त एकादशी में हो तो यह याग करना चाहिए; इससे पुत्रों एवं कल्याण की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत०२,५९१)।

लक्षनमस्कारत्रत-संकल्प: आषाढ़ धुक्ल ११ पर विष्णु को एक सौ सहस्र नमस्कार देना; कार्तिक पूर्णिमा को समाप्त; 'अतोदेवा' (ऋ० १।२२।१६-२१) के साथ विष्णु-प्रतिमा की पूजा; स्मृतिकौस्तुभ (४०६-४०७)।

लक्षवितवत: कार्तिक, वैसाख एवं माघ में आरम्भ; वैसाख सर्वोत्तम; पूर्णिमा पर तीन मासों में समाप्त; प्रतिदिन एक सहस्र बार्तियों से विष्णु एवं लक्ष्मी, ब्रह्मा एवं सावित्री, शिव एवं उमा की आरती उतारना; स्मृतिकौस्तुभ (४१०-४११); ब्रतार्क (पाण्डुलिपि ३९९-४०३ वी, वायुपुराण से उद्धरण)।

लक्षहोम : यह शान्ति है; देखिये शान्ति का प्रकरण; नृसिंहपुराण, अध्याय-३५; स्मृतिकौस्तुभ (४७५-४७९)।

लक्षणाद्वित : भाइपद कृष्ण ८ पर आरम्भ, जब कि आर्द्रा नक्षत्र हो; पंचामृत से स्नान करा कर, गन्ध, पुष्पों आदि से तथा मन्त्रों द्वारा जिनमें दोनों के नाम आये हों; शिव एवं उमा की पूजा; अर्घ्यं, घूप, गेहूँ के बने खाद्यान्नों (जिन पर मत्स्य आदि की आकृतियाँ बनी रहती हैं) पाँच रसों (दही, दूध, घी, मधु एवं शक्कर) तथा मोदकों के नैवेद्य; स्विणम प्रतिमाएँ एवं नैवेद्य की सामग्री किसी विद्वान् ब्राह्मण को देदी जाती हैं; पापमोचन, सौन्दर्य, घन, दीर्घ आयु एवं यश की प्राप्त; हेमाद्रि (व्रत०१, ८२६-८२९, मत्स्यपुराण से उद्धरण)।

लक्षेत्रवरी-मृत: देखिए कोटीश्वरीवृत, ऊपर।

लक्ष्मीपूजन: दीवाली में; देखिए गत अध्याय---१०; वर्षिक्रयाकीमुदी (४७२-४७६); तिथितत्त्व (१८६-१८७); निर्णयसिन्धु (२००)।

लक्ष्मीनारायणवत: फाल्गुन पूर्णिमा पर; तिथि; वर्ष भर प्रत्येक पूर्णिमा पर, वर्ष को ४ मासों के तीन भागों में बाँट कर; आषाढ़ से आगे चार मासों में श्रीघर एवं श्री के नामों का प्रयोग, कार्तिक को लेकर चार मासों में केशव एवं भूति के नामों का प्रयोग; रात्रि में प्रत्येक १५ पर चन्द्र को अर्घ्य; देह-शुद्धि के लिए प्रत्येक अविध में विभिन्न पदार्थों का प्रयोग, यथा—पंचगव्य, कुश-जल, सूर्य-किरण से तप्त जल; हेमाद्रि (व्रत०२, ६६४-६६६, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

लक्ष्मीप्रवत्तः हेमाद्रि (व्रत०२,७६९-७७१) में यह कृच्छवतों में परिगणित है; कार्तिक कृष्ण ७ से १० तक क्रम से दूघ, बिल्व-दलों, कमलों एवं कमल के रेशों का सेवन तथा एकादशी पर उपवास; इन दिनों में केशव-पूजा; विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२,७७०)।

लक्ष्मीवत: (१) प्रत्येक पंचमी पर उपवास एवं लक्ष्मी-पूजा; एक वर्ष; अन्त में स्वर्णिम कमल एवं एक गाय का दान; प्रत्येक जीवन में घनं-लाभ एवं विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०१, ५६८, यमपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (११८); (२) चैत्र शुक्ल ३ पर घी एवं श्वात खाना, ४ को घर के बाहर कमल वाले तालाब में स्नान तथा कमल में लक्ष्मी-पूजा; पंचमी को श्री के लिए लिखित स्तोत्र से कमलापंण; पंचमी को स्वर्ण-दान; एक वर्ष तक; विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।१५४।१-१५ से उद्धरण)।

लितकान्तादेवी वतः यह मंगल-चिष्डका हो है, देखिए ऊपर; तिथितत्त्व (४१)ने कालिकापुराण को उद्धृत करते हुए कहा है कि मंगल-चिष्डका हो लिलतकान्तादेवी है, जिसके दो हाथ होते हैं, जो गोरी होती है, लाल कमल पर विराजमान रहती है।

. 74

लिलतावत : माघ शुक्ल ३ परं; दोपहर को तिल एवं आमलक से किसी नदी में स्नान; पुष्पों आदि से देवी-पूजा; तामपत्र में जल, अक्षत एवं सोना रख कर एक बाह्मण के समक्ष रखा जाता है, जो मन्त्र के साथ कर्ता पर जल छिड़कता है; स्त्री सम्पादिका सोना का दान करती है, कुश डुबोये जल को पीती है, देवी-ध्यान में पृथिवी पर शयन करती रात्रि बिताती है; दूसरे दिन बाह्मणों एवं एक सबवा नारी का सम्मान; एक वर्ष तक, प्रत्येक मास देवी के १२ नामों में एक का प्रयोग (यथा—पहले मास में ईशानी, ८ वें में लिलता तथा १२ वें में गौरी), बारह मासों में शुक्ल ३ पर उपवास तथा १२ वस्तुओं में कम से एक का सेवन, यथा—कुश से पित्र किया हुआ जल, दूध, घी आदि; अन्त में एक बाह्मण एवं उसकी पत्नी को सम्मान; सम्पादिका को पुत्रों, रूप, स्वास्थ्य एवं सबवापन की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (वत० १, ४१८-४२१, भविष्योत्तर पुराण से उद्धरण)। अग्निपुराण (१७८।१-२) ने लिलता-तृतीया का उल्लेख किया है और कहा है कि चैत्र शुक्ल ३ को गौरी शिव से विवाहित हुई थीं। यही बात मत्स्यपुराण (६०।१४-१५) में भी है; मत्स्यपुराण (६०।११) में आया है कि सती को लिलता कहा जाता है, क्योंकि वह सभी लोकों में सर्वोत्तम है और रूप में सब से बढ़कर है। ब्रह्माण्डपुराण के अन्त में ४४ अध्यायों में लिलता सम्प्रदाय का विवेचन है।

लिलताषष्ठी: विशेषतः नारियों के लिए; भाद्रपद ६ पर एक नवीन बाँस की फुफेली (पात्र) में किसी नदी का बालू एकत्र कर उससे पाँच पिण्ड बनाकर उस पर लिलता देवी की पूजा विभिन्न प्रकार के २८ या १०८ पुष्पों एवं विभिन्न खाद्य पदार्थों के नैवेद्य से की जाती है; उस दिन सिखयों के साथ रात्रि में जागर; सप्तमी को सभी नैवेद्य किसी ब्राह्मण को अपित; कुमारियों को भोंजन, ५ या १० ब्राह्मण गृहणियों को भोंजन तथा 'लिलता मुझ पर प्रसन्न होवें' के साथ उनकी विदाई; हेमाद्रि (त्रत १. ६१७-६२०, भविष्योत्तरपुराण ४१।१-१८ से उद्धरण); व्रतरत्नाकर (२२०-२२१) का कथन है कि यह गुर्जर देश में अति प्रसिद्ध है।

लितासप्तमी: व्रतकालिविक (१३) में उल्लिखित; षष्ठी से युक्त सप्तमी को वरीयता प्राप्त है। लवणदान: मार्गशीर्ष पूणिमा पर जब मृगशिरा-नक्षत्र होता है; चन्द्रोदय काल पर स्वर्णिम केन्द्रवाले एक पात्र में एक प्रस्थ भूमि से निकाले हुए लवण का किसी ब्राह्मण को दान; इससे रूप एवं सौभाग्य की प्राप्ति; विष्णुचर्मसूत्र (९०।१-२); स्मृतिकौस्तुभ (४३०) तथा पुरुषार्थ-चिन्तामणि (३०६)।

लवण-संकान्तिवत : संकान्ति दिन पर स्नान के उपरान्त कुंकुम से अष्टदल कमल एवं बीज कीष की आकृति बनायी जाती है; सूर्य के चित्र की पूजा; चित्र के समक्ष लवणपूर्ण पात्र एवं गुड़ रखा जाता है और पात्र दान में दे दिया जाता है; एक वर्ष तक; अन्त में सूर्य की स्विणम प्रतिमा, एक गाय आदि का दान; यह संकान्तिवत है; हेमाद्रि (व्रत० २, ७३२-७३३, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

लावण्यगौरीवत : चैत्र शुक्ल ५ पर; तिमल लोगों द्वारा मनाया जाता है।

लवण्यव्रतः कार्तिक पूणिमा के उपरान्त प्रथमा से; किसी वस्त्र पर प्रद्युम्न का चित्र खींचकर या उसकी प्रतिमा की पूजा; नक्त-विधि; जब मार्गशीर्ष का अ।रम्भ हो तो तीन दिनों का उपवास; प्रद्युम्न-पूजा; घी से अग्नि में होम, लवण-युक्त मोजन ब्राह्मणों को; एक प्रस्थ लवण-चूर्ण, दो वस्त्र, सोना, पीतल-पात्र का दान; एक मास तक; यह म।स-व्रत है; इससे रूप एवं स्वर्ग की प्राप्ति; हेम।द्रि (व्रत० २, ७८५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।२०३।१-७ उद्धरण)।

लावण्यावाप्तिवत : हेमाद्रि (व्रत ० २, ७८५) ने यह नाम दिया है; देखिए ऊपर।

िलगवत : कार्तिक शुक्ल १४ से आरम्भ; शिव-पूजा; नक्त-विधि से भोजन; चावल के आटे से एक रित्त (केहुनी से वँधी मुब्टि तक की दूरी) लम्बा लिंग बनाना; लिंग पर एक प्रस्थ तिल डालना; मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को िंग पर कुंकुम का छिड़काव; इसी प्रकार वर्ष भर, विभिन्न मासों में विभिन्न चूर्ण, घूप, नेवैद्य आदि; महापातकी भी रुद्रलोक पहुँच जाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०-५६, कालोत्तर से उद्धरण)। लिंग का निर्माण पवित्र भस्म, सूखे गोबर, बालू या स्फटिक से हो सकता है, सर्वोत्तम उस मिट्टी से जो उन पहाड़ियों से प्राप्त होती है, जहाँ से नर्मदा बहती है।

लिंगाचंनवत: कार्तिक शुक्ल १३ पर जब कि शनिवार हो; शिव के एक सौ नामों का जप; पंचामृत से लिंग-स्नान; प्रदोष के समय लिंग-रूप में शिव-पूजा; स्कन्दपुराण (१।१७।५९-६१) ने वर्णन किया है और सौ नाम दिये हैं।

लीलावत : यह नीलवत ही है, देंखिए।

लोकन्नत: चैत्र शुक्ल से प्रारम्भ; उस दिन से सात दिनों तक कम से गोमूत्र, गोबर, दूघ, दही, घी, कुश डाला हुआ जल एवं उपवास का प्रयोग किया जाता है; महा व्याहृतियों (भूः, भुवः स्वः आदि) के साथ तिल-होम किया जाता है; अन्त में वस्त्र, पीतल, गौओं का दान होता है; कर्ता समाट् हो जाता है; हेमाद्रि (न्नत० २, ४६३, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६२।१-७ से उद्धरण)।

लोहाभिसारिककृत्य : अन्य रूपान्तर हैं 'लोहाभिहारिक' एवं लौहाभिसारिक; आदिवन शुक्ल १ से ८ तक; विजयेच्छुक राजा को यह कृत्य करना चाहिए; निर्णयसिन्धु (१७८-१७९); स्मृतिकौस्तुम (३३२-३३६); राजनीतिप्रकाश (४४४-४४६); समयमयूख (२८-३२); पुरुषचिन्तामणि (५९, ७०-७२)। दुर्गा की स्वणिम या रजत या मिट्टी की प्रतिमा का पूजन, इसी प्रकार राजकीय आयुघों एवं प्रतीकों की मन्त्रों से पूजा; एक कथा है कि लोह नामक एक राक्षस था, जो देवों द्वाराटुकड़ों में रूपान्तरित कर दिया गया, संसार में जो भी लोह (लोहा) एवं इस्पात है, वह सब उसी के अंगों के अंश हैं। 'लोहाभिसार' का अर्थ है लोहे के आयुधों (हथियारों अथवा अस्त्रों) पर चिह्न लगाना या उन्हें चमकाना ('लोहाभिहारोस्त्रभृतं राज्ञां नीराजनो विधिः'—अमरकोश)। जब कोईराजा आक्रमण के लिए प्रस्थान करता था तो उस पर पवित्र जल छिड़कने या दीपों की आरती करने को लोहाभिसारिक-कर्म कहा जाता था। उद्योगपर्व (१६०-९३) में हम पाते हैं: 'लोहाभिसारी निवृत्तः...'। नीलकण्ठ ने व्याख्या दी है कि इसमें हथियारों के समक्ष दीपों की आरती उतारना एवं देवताओं का आहवान करना होता है।

लोहित्यस्नान : ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान । देखिए 'ब्रह्मपुत्रस्नान', ऊपर ।

यंजुलीवत : वंजुली आठ महती द्वादिशयों में परिगणित है, देखिए गत अघ्याय-५। वंजुली वह द्वादशी है जो सम्पूर्ण दिन (सूर्योदय से सूर्यास्त तक) रहती है और दूसरे दिन तक रहती है जिससे द्वादशी को उपवास करना सम्भव हो सके और दूसरी तिथि पर पारण हो सके, किन्तु द्वादशी परही; नारायण की स्वर्णिम प्रतिमा की पूजा; सहस्रों राजसूय यज्ञों के समान पुण्य की प्राप्ति; निर्णयसिन्घु (४८); स्मृतिकौस्तुभ (२५२-२५३)।

बटसावित्रिवत : देखिए अध्याय-४।

बत्सराधियपूजा: (वर्ष के अधिपति की पूजा) चैत्र का वह दिन (जब वर्षारम्भ होता है) वर्ष के अधिपति को निश्चित करता है; देखिये गत अध्याय-४; स्मृतिकौस्तुभ (८७); पुरुषचिन्तामणि (५६)।

वत्सद्वादशी: कार्तिक कृष्ण १२ को ऐसा कहा जाता है; वछड़े सहित गाय को चन्दन-लेप से अलंकत किया जाता है, उसे मालाओं से, खुरों के पास ताम पत्र में अर्घ्य से, माष से बनी वृत्ताकार रोटी से सम्मानित किया जाता है; उस दिन तेल से बने, बटुली में पकाये भोजन से तथा दूध, घी, दही एवं मक्खन से दूर रहा जाता है; सुमयमयूख (९१-९२)।

वरचतुर्थों : मार्गशीर्ष शुक्ल ४ से प्रारम्भ ; तिथिवत ; प्रतिमास गंणेश-पूजन तथा उस दिन एक भक्त किन्तु क्षार एवं लवण का प्रयोग नहीं ; चार वर्षों तक, किन्तु दूसरे वर्ष में नक्त, तीसरे में अयाचित एवं जीथे में उपवास ; हेमादि (वत० १, ५३०-३१), स्कन्दपुराण से उद्धरण) ; कृतरत्नाकर (५०४) ; कालविवेक (१९०) ; वर्ष-कियाकौमुदी (४९८)।

वरदचतुर्थों : माघ शुक्ल ४ पर ; तिथिवत ; ४ को वरद (अर्थात् विनायक) की पूजा तथा ५ को कुन्द पुष्पों से पूजा ; समयप्रदीप (पाण्डुलिपि ४७ बी०) ; कृत्यरत्नाकर (५०४) एवं वर्षिक्रयाकौमुदी (४९८) का कथन है कि वरचतुर्थी केवल चतुर्थी तक सीमित है तथा पंचमी को कुन्द पुष्पों से पूजा श्रीपंचमी कहलाती है और 'वट' का अर्थ है 'विनायक'।

वरदाचतुर्थी: माघ शुक्ल ४ पर; तिथि; गौरी देवता; विशेषतः नारियों के लिए; गदाषरपद्धित (कालसार ७७); हेमाद्रि (व्रत० १, ५३१) में गौरी चतुर्थी का उल्लेख है, जो यही है। निर्णयसिन्धु (१३३) के अनुसार भाद्रपद शुक्ल ४ वरदचतुर्थी है, किन्तु पुरुषार्थचिन्तामणि (९५) के अनुसार मार्गशीर्थ शुक्ल ४ को इस नाम से पुकारा जाता है।

वरनवमी: प्रत्येक नवमी पर ९ वर्षों तक केवल आटा पर जीविका निर्वाह किया जाता है; तिथिवत; देवी; सभी कामनाओं की पूर्ति; यदि कर्ता जीवन भर बिना अग्नि पर पकाये नवमी पर भोजन करे तो उसे इहलोक एवं परलोक में अनन्त फल प्राप्त होते हैं; कृत्यकल्पतक (व्रत्त० २९६); हेमाद्रि (व्रत० १, ९३७, भविष्यपुराण से उद्धरण) ने इसे 'वरव्रत' नाम दिया है।

वरलक्ष्मीव्रतः श्रावण पूर्णिमा पर जब शुक्र पूर्व में स्थित रहता; घर के उत्तर पूर्व एक मण्डप का निर्माण, वहाँ कलश स्थापन जिस पर वरलक्ष्मी का आवाहन किया जाता है और श्रीसूक्त के साथ पूजा की जाती है; साम्राज्यलक्ष्मी-पीठिका (पृ० १४७-१४९)।

वरवतः (१) देखिए ऊपर वरनवमी; (२) सात दिनों तक उपवास करके किसी बाह्मण को घृतपूर्ण घट देने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है; सम्वत्सरव्रत; ब्रह्मा, देवता; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४४९); मत्स्यपुराण (१०१।६८) ने इसे घृतव्रत कहा है; हेमाद्रि (व्रत० २,८८६, पद्मपुराण से उद्धरण)।

वराटिकासप्तमी: किसी सप्तमी तिथि पर; कर्ता को केवल तीन वराटिकाओं (कौड़ियों) से ऋय किये हुए भोजन पर निर्वाह करना होता है, चाहे वह भोजन उसके लिए अनुचित ही क्यों न हो; सूर्य देवता; फल नहीं घोषित है; कृत्यकल्पतक (व्रत ० १८४); हेमाद्रि (व्रत ० १, ७२६, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

वराहद्वादशी: माघ शुक्ल १२ पर; तिथिव्रत; विष्णु के वराह रूप की पूजा; एकादशी पर संकल्प एवं पूजा; एक घट में, जिसमें सोने के टुकड़े या चाँदी या ताम्र के टुकड़े डाले रहते हैं तथा सभी प्रकार के बीज छोड़ दिये गये रहते हैं, वराह की एक स्विणम प्रतिमा रखदी जाती है और पूजा की जाती है; पुष्पों के मण्डप में जागर; दूसरे दिन प्रतिमा किसी विद्वान् एवं चरित्रवान् ब्राह्मण को देदी जाती है; सौभाग्य, घन, रूप-सौन्दर्य, आदर तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है; कृत्यकल्पतर (व्रत० ३१९-३२१); हेमाद्रि (व्रत० १, १०२७-१०२९), दोनों ने वराहपुराण (४१।१-१०) को उद्धृत किया है; गदाघरपद्धित (कालसार, १५१-१५२)।

वरुणव्रत : यदि कोई रात्रि भर पानी में खड़ा होकर दूसरे दिन प्रातः गोदान करता है तो वह वरुण लोक जाता है; कृत्यकल्पतरु (वृत० ४५०, ५२ वाँ षष्ठि व्रत); हेमाद्रि (वृत०२, ९०५, पद्मपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।७४; विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।१९५।१=३) में कुछ विभिन्न बातें हैं; भाद्रपद के आरम्भ से पूर्णिमा तक वरुण-पूजा; अन्त में छत्र, चप्पलों एवं दो वस्त्रों के साथ जलबेनु का दान। 'जलघेनु' शब्द अनु- शासनपर्व (७१।४१) एवं मत्स्यपुराण (५३।१३) में भो प्रयुक्त हुआ है; देखिये इस ग्रन्थ का खण्ड २,पृ० ८८०।

वर्णवत: यह चतुर्म् तिव्रत है जो चैत्र शुक्ल से चार मासों तक चलता है; चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ एवं आपाढ़ में कर्ता उपवास करता है और क्रम से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध को पूजता है तथा दान देता है, दान की वस्तुओं में कई प्रकार पाये जाते हैं, यथा—बाह्मण को यज्ञ की उपयोगी वस्तुएँ, क्षत्रिय को युद्धोपयोगी वैश्य को वाणिज्योपयोगी तथा शूद्र को श्रमोपयोगी वस्तुएँ दी जाती हैं; कर्ता को इन्द्रलोक प्राप्त होता है; हेमाद्रि (व्रत ० २, ८२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

वर्धापनविधि: (जन्मतिथि कृत्य एवं उत्सव)। शिशु के विषय में प्रत्येक मास में जन्मतिथि गर; राजा के लिए प्रतिवर्ष किया जाता है; नील या मुंकुम से १६ देवियों (यथा—कुमुदा, माघवी, गौरी, रुद्राणी, पावंती) के चित्र बनाये जाते हैं तथा एक वृत्त के बीच में सूर्य-चित्र बनाया जाता है, वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, उच्चे संगीत से उत्सव मनाया जाता है, बच्चे को स्नान करा कर देवियों की पूजा की जाती है; सींक से बने पात्रों (छितनियों) में मूल्यवान् पदार्थ, भोजन-सामग्री, पुरुप, फल आदि रख कर प्रत्येक देवी के सम्मान में ब्राह्मणों एवं सचवा नारियों को 'कुमुदा आदि देवियाँ मेरे बच्चे को स्वास्थ्य, सुख एवं दीर्घायु दें' के साथ, दान के रूप में दे दिया जाता है। माता-पिता अपने सम्बन्धियों के साथ भोजन करते हैं; राजा के विषय में इन्द्र एवं लोकपालों को हिवन्य दिया जाता है तथा वैदिक मन्त्र (यथा—ऋ० ६१४७।११, १०।१६११४) पढ़े जाते हैं; हेमाद्रि (व्रत० २,८८९-८९२, अथवंण-गोपथबाह्मण एवं स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

वर्षव्रत: चैत्र शुक्ल नवमी से आरम्भ; तिथिवृत; हिमालय, हेमकूट, प्रृंगवान्, मेरु, मलयवान्, गन्धमादन नामक वड़े पर्वतों की पूजा; उस दिन उपवास; अन्त में जम्बूद्वीप की रजत-आकृति का दान; हेमाद्रि (वृत० १, ९५९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। ब्रह्मपुराण (१८।१६), मत्स्यपुराण (११३।१०-१२) एतं वायुपुराण (१।८) में हिमालय, हेमकूट आदि को वर्षपर्वत की संज्ञा दी गयी है।

बल्लभोत्सव: महान् वैष्णव आचार्य वल्लभ के सम्मान में किया जाने वाला उत्सव; वल्लभ का जन्म सन् १४९७ ई० में माना जाता है; इन्होंने बहुत-से ग्रन्थ लिखे हैं और धर्म के प्रवृत्तिमार्गी पक्ष का समर्थन किया है और भागवत धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। यह उत्सव चैत्र कृष्ण एकादशी को होता है।

वसन्तपज्चमी : माघ शुक्ल पंचमी पर; तिथिवत; विष्णु-पूजा; बतरत्नाकर (२२०)।

वसन्तोत्सव: वायुपराण (६।१०-२१) में वसन्त के आगमन पर एक कवित्वमय विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है; मालविकाग्निमित्र एवं रत्नावली नामक नाटक इसी अवसर पर खेले गये थे, जैसा कि दोनों की प्रस्तावना में उद्घोषित हुआ है; प्रथम नाटक के तृतीय अंक में ऐसा चित्रित है कि इस उत्सव में लाल अशोक-पुष्प अपने प्रिय पात्रों के पास भेजे जाते हैं तथा उच्च कुल की पत्नियाँ अपने पतियों के साथ झूले पर बैठती हैं। निर्णयसिन्धु (२२९) ने इसकी तिथि चैत्र कृष्ण १ (पूर्णिमान्त गणना के अनुसार) मानी है, किन्तु पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१००) ने निर्णयामृत के अनुसार इसे माघ शुक्ल पंचमी की तिथि पर रखा है। पारिजात-मंजरी-नाटिका का प्रथम अंक चैत्र पर्व में वसन्तोत्सव कहा गया है; एपिग्रैफिया इण्डिका (जिल्द ८ पृ० ९९)।

वसुन्धरादेवीव्रत : अश्वघोष-निन्दमुख-अवदान में उल्लिखित; देखिये जे० आर० ए० एस्० (जिल्द ८, पू० १३-१४)।

• वसुन्नतः (१) आठवसुओं की, जो वास्तव में, वासुदेव के ही रूप हैं, पूजा; चैत्र शुक्ल अष्टमी पर उपवास; एक वृत्त में खिचे चित्र या प्रतिमाएँ; अन्त में गोदान; घन, अनाज एवं वसुलोक की प्राप्ति। आठ दसु ये हैं—धर. ध्रुव, सोम, आपः, अनिल, अनल, प्रत्यूष एवं प्रभास। देखिये अनुशासनपर्व (१५०।१६-१७), शत्स्यपुराण (५।२१), व्रह्माण्डपुराण (३।३।२१)। हेमाद्वि (व्रत० १, ८४८-८४९, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) पर्याप्त सोने के साथ गोदान, उस दिन केवल दुग्ध-सेवन; कर्ता सर्वोत्तम लक्ष्य की उपलब्धि करता है और पुनः जन्म नहीं लेता; हेमाद्वि (व्रत० २, ८८५, पद्मपुराण से उद्धरण)। इसमें गोदान की परमोच्च महत्ता है (इसे उभयतोमुखी कहा गया है। देखिये इस महाग्रन्थ का मूल (जिल्द २, पृ० ८७९)।

वस्तित्ररात्र : देखिये 'बस्तित्ररात्र' के अन्तर्गत।

विद्वित : (१) अग्नि-पूजा से अग्निष्टोम का फल; हेमाद्रि (व्रत० १,७९१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) चैत्र की अमावास्या पर आरम्भ; तिथिव्रत; प्रति वर्ष अमावास्या पर अग्नि-पूजा एवं तिल से होम; अन्त में हिरण्य-दान; हेमाद्रि (व्रत० २, २५५-२५६); विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९०।१-३)।

वाणिज्यलाभात: मूल-नक्षत्र एवं पूर्वाषाढ़ा पर उपवास; चार नवीन घड़ों के जल से, जिनमें शंख, मोती, लाल पौधों की जड़ें एवं सोना रखे गये हों; पूर्वाभिमुख हो स्नान किया जाता है, पुनः आँगन में विष्णु, वहण एवं चन्द्र की पूजा की जाती है, इन देवों के सम्मान में घी का होम; नीले वस्त्रों, चन्दन, मदिरा, श्वत पुष्पों का दान होता है; इससे विषक् सफलता प्राप्त करता है और समुद्र-व्यापार एवं कृषि में असफल नहीं होता; हेमाद्रि (व्रत०२, ६४८-६४९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

वामनजयन्ती: भावपद शुक्ल १२ पर; इस तिथि पर मध्याह्न में विष्णु का वामन अवतार हुआ था, उस समय श्रवण-नक्षत्र था; उस दिन उपवास; सर्वपापमोचन; गदाधरपद्धित (कालसार, पृ० १४७-१४८); वताकं (पाण्डुलिपि, २४४ ए से २४७ ए तक, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)। देखिये भागवतपुराण (८, अध्याय-१७-२३)। अध्याय १८ (क्लोंक ५-६) में ऐसा आया है कि वामन श्रावण मास की द्वादशी पर प्रकट हुए थे, जब कि श्रवण-नक्षत्र था, मुहूतं अभिजित था तथा यह तिथि विजयाद्वादशी कही जाती है; हेमाद्रि (व्रत० १, पृ० ११३८-११४५, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण) का अधिकांश व्रताकं में उद्धृत है।

वामनद्वादशी: चैत्र शुक्ल १२ पर; तिथिव्रत; विष्णु देवता; उस दिन उपवास; पाद से शिर तक पूजा; प्रत्येक अंग पर विभिन्न नाम (यथा—'वामनायेति वै पादम्'); श्वेत यज्ञोपवीत, छत्र, चप्पल एवं माला से युक्त वामन की स्विणम प्रतिमा; दूसरे दिन प्रातः 'विष्णु वामन के रूप में प्रसन्न हों' के साथ प्रतिमा-दान, जिसके साथ मार्गशीर्ष मास से आरम्भ कर कम से १२ नामों का (यथा—केशव, नारायण आदि) उच्चारण; फल—पुत्रहीन को पुत्र, घन चाहने वाले को थन; वराहपुराण (४३।१-१६); कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३२३-३२५); हेमादि (व्रत० १, १०३०-१०३२); वर्षित्रयाकौमुदी (३२०-३२१); निर्णयसिन्धु (१४०-१४१); स्मृतिकौस्तुभ (२४९-२५०)। कुछ ग्रन्थों के अनुसार वामन एकादशी को प्रकट हुए थे। इन मतों के लिए देखिये निर्णयसिन्धु (१४०)।

वायुवत: (१) वायु-पूजा; परमोच्च पद-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९१); (२) ज्येष्ठ शुक्ल १४ पर आरम्भ; तिथिवत; वायु देवता; एक वर्षे; प्रत्येक शुक्ल १४ पर उपवास; अन्त में दो वस्त्रों का दान; हेमाद्रि (व्रत० २, १५२, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१८५।१-३ से उद्धरण)।

वारकत: अग्निपुराण (अन्याय १९५); कृत्यकल्पतक (व्रत ८-३४); दान सागर (पृ ५६८-५७०); हेमाद्रि (व्रत० २,५२०-५९२); हेमाद्रि (काल० ५१७-५२०); कृत्यरत्नाकर (५९३-६१०); स्मृतिकौस्तुभ (५४९-५८८)। कुछ ग्रन्य, यथा—व्रतार्क, रिववार, सोमवार एवं मंगलवार के व्रतों का ही उल्लेख करते हैं।

वारलक्ष्मीवत : श्रावण-पूर्णिमा के निकटतम किसी शुक्रवार या श्रावण शुक्ल १४ पर; वारव्रत; लक्ष्मी देवी; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, ३५८ वी॰-३६२ वी; भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

वारियतः एक मासवतः; लगत। है देवता ब्रह्मा हैं; चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं माघ या पौष के चार मासों में, अयाचित-विधिः; अन्त में वस्त्रों, तथा भोजन से आच्छादित घट तथा तिल एवं हिरण्य से युक्त पात्र का दान; ब्रह्मलोक की प्राप्तिः; हेमाद्रि (व्रत० २, ८५७, पद्मपुराण से उद्धरण)।

वारणी: चैत्र कृष्ण १३ को, जब वह शतामिषज नक्षत्र (जिसके देवता वरुण हैं) में पड़े तो उसे वारुणी कहते हैं, जो एक करोड़ सूर्य-प्रहण के समान है; यदि यह इसके साथ शिनवार को पड़े तो वह महा-वारुणी कही जाती है; इन सब बातों के साथ यदि शुभ-योग पड़े तो इसे महा-महा-वारुणी कहा जाता है; वर्षत्रियाकीमुदी (५१८-५१९); कृत्यतत्त्व (४६३); स्मृतिकीस्तुभ (१०७); गदाधरपद्धित (६११, स्कन्दपुराण से उद्धरण); कालतत्त्वविवेचन (१८९-१९०)।

वासुदेवद्वादशी: आयाद शुक्ल १२ पर; तिथि; देवता, वासुदेव; वासुदेव के विभिन्न नामों एवं उनके व्यूहों के साथ पाद से शिर तक के सभी अंगों की पूजा; जलपात्र में रख कर तथा दो वस्त्रों से ढँक कर वासुदेव की स्वर्णिम प्रतिमा का पूजन तथा उसका दान; यह वर्त नारद द्वारा वसुदेव एवं देवकी को वताया गया था; कर्ता के पाप कट जाते हैं, उसे पुत्र की प्राप्ति होती है या नष्ट हुआ राज्य पुनः मिल जाता है; हेमादि (व्रत०१,१०३६-१०३७, बहुत-से क्लोक वराहपुराण के अध्याय ४६ के हैं)।

विघ्न-विनायक-व्रत : फाल्गुन से चार मासों के लिए; अहल्याकामवेनु (पाण्डुलिपि, ३५६)।

विजय: (१) आश्विन शुक्ल १० पर जब सूर्यास्त के उपरान्त तारागण उदित हो रहे हों, यह समय सभी कृत्यों के लिए अत्यन्त शुभ माना जाता है; स्मृतिकौस्तुभ (३५३); (२) यह नाम दिन के ११ वें मुहूर्त का भी हैं जब कि दिन १५ मुहूर्तों में विभाजित किया जाय; स्मृतिकौस्तुभ (३५३)।

विजय-धूप : हेमाद्रि (त्रत २, ५१, भविष्यंपुराण १।६८।३-४) में विणत।

विजयहादशी: (१) एकादशी पर संकल्प; श्रवण-नक्षत्र वाली हादशी पर उपवास; विष्णु की स्वण्मि प्रतिमा का निर्माण, जो पीत वस्त्र से आच्छादित रहती है; अर्घ्य के साथ पूजा; रात्रि में जागरण; दूसरे दिन सूर्योदय के समय प्रतिमा का दान; श्रवण-युक्त हादशी, जब िक सूर्य सिंह राशि में हो तथा चन्द्र श्रवण में हो भाद्रपद को छोड़ अन्य समय सम्भव नहीं होती; हेमाद्रि (व्रत० १, ११३६-११३८, अग्निपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (२८७-२८८); (२) जैसा िक हेमाद्रि (व्रत० १, ११३८-११४०) में वर्णित; (३) फाल्युन शृक्ल ११ या १२, जब िक वह पुष्य-नक्षत्र से युक्त हो, विजय की संज्ञा से विख्यात है; (४) भाद्रपद शुक्ल या कृष्ण ११ या १२, यदि व्धवार एवं श्रवण-नक्षत्र से युक्त हो तो विजय कहलाती है; शुक्ल के वत से स्वर्ग-प्राप्ति, कृष्ण के वत से पापमोचन; विष्णु देवता; हेमाद्रि (व्रत० १, ११५२-११५५, ब्रह्मवैवर्त से उद्धरण); कृत्यकल्पतर (व्रत, ३४८-३५०, आदित्यपुराण से उद्धरण)।

विजयविधि : वारव्रत; रिववार को प्राजापत्य (रोहिणी) नक्षत्र से युक्त शुक्ल ७ पर; सूर्य देवता; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १७-१८)।

विजयवत : इन्द्र के गज ऐरावत तथा की, मुख में लगे पट्टे के साथ तथा इन्द्र के अश्व उच्चैश्रवा की प्रतिमा; इससे विजय की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ५७६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विजया: यह नाम कई तिथियों को प्राप्त है, यथा—शुक्छ ७ जो रिववार को पड़ती है भविष्योत्तरपुराण ४३।२; वर्षिक्याक्तौमुदी ९; हेमाद्रि, काल, ६२५; पुरुषार्थिचिन्तामणि १०५; और देखिये विजयिविधि के अन्तर्गत; गरुड़पुराण (१।१३६।१-२) के अनुसार यदि द्वादशी या एकादशी श्रवण-नक्षत्र से युक्त हो तो उसे विजया कर्ति हैं; कृत्यकत्त्रतरु (वत०, ३४९); कृत्यरत्नाकर (२८७-२९१)। देखिये एपिग्रैफिया इण्डिका (३, ५३-

५६) एवं इण्डियन ऐष्टीक्वेरी (२५, पृ० ३४५); वर्षकियाकौमुदी (३६) में आया है कि जब विजया-सप्तमी में सूर्य इस्त नक्षत्र में हो तो उसे महा-महा कहते हैं; पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त शुक्ल ११ विजया के नाम से

घोषित है; हेमाद्रि (काल०, ६३३, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विजयासप्तमी : (१) रविवार से युक्त शुक्ल ७ पर; तिथिवत; सूर्य, देवता; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १२७-१२९) हेमाद्रि (व्रत० १, ६६३-६६४); दोनों भविष्योत्तरपुराण (४३।१-३०) को उद्धृत करते हैं; (२) माघ शुक्ल ७ पर; तिथि; सूर्य, देवता; उस दिन उपवास एवं सूर्य के एक सहस्र नामों का उच्चारण; हेमाद्रि (व्रत० १, पृ० ७०७-७१६) ने ये नाम दिये हैं; एक वर्ष तक; रोगों एवं पापों से मुक्ति: हेमाद्रि (व्रत० १, ७०५- ७१७); (३) गरुड़पुराण (१।१३०-७-८) ने एक अन्य प्रकार का व्रत दिया है जो सात सप्तिमयों में किया जाता है; उस दिन उपवास गेहूँ, माष, यव (जो), स्वस्तिक, पीतल, पत्थरों से पिसा भोजन, भवु, मैंथुन, मांस, मदिरा, तेल्युक्त स्नान, अंजन एवं तिल के प्रयोग का त्याग ।

विजयायज्ञसप्तमी : माघ शुक्ल ७ पर; तिथि; सूर्यं, देवता, एक वर्ष तक; प्रतिमास में सूर्यं का विभिन्न नाम प्रयुक्त; १२ ब्राह्मणों का सम्मान; अन्त में आचार्य को एक स्वर्णिम सूर्य प्रतिमा का, स्वर्णिम एथ एवं सारथी

के साथ दान; हेमाद्रि (ब्रट्ट० १, ७५७-७६०, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

वितस्तापूजा : भाद्रपद के अन्त में शुक्ल १० से आगे ७ दिनों तक वितस्ता (झेलम) का दर्शन, उसमें स्नान, उसका जल ग्रहण, पूजा एवं ध्यान किया जाता है; वितस्ता सती (पार्वती) का अवतार है; वितस्ता एवं सिन्धु के संगम पर विशिष्ट पूजा; नदी कें सम्मान में उत्सव, जिसमें अभिनेताओं एवं नर्त कों को सम्मानित किया जाता है; कृत्यरत्नाकर (२८६, ब्राह्मपुराण से उद्धरण)।

विद्याप्रतिपद्-प्रत : किसी मास की प्रथम तिथि पर; विद्या एवं धन के इच्छुक व्यक्ति को एक वर्गाकार आकृति में चावल से निर्मित विष्णु एवं लक्ष्मी की प्रतिमाओं की पूजा पूर्ण रूप से खिले कमलों (१००० या कुछ कम) दूघ एवं पायस से करनी चाहिये; उनके पाइवं में सरस्वती की भी पूजा होनी चाहिये, चन्द्र की पूजा भी की जाती है; गुरु-सम्मान; उस दिन उपवास; दूसरे दिन विष्णु-पूजा, आचार्य को स्वर्ण दान करके भोजन; हेम।द्रि (व्रत० १, ३३८-३४०, गरुड़पुराण से उद्धरण)।

विद्यावाप्तिवत : पौष पूर्णिमा के उपरान्त माघ की प्रथम तिथि से एक मास तक; तिल से हयग्रीव की पूजा; तिल से होम; प्रथम तीन दिनों तक उपवास; यह मासवत है; कर्ता विद्वान् हो जाता है; हेमाद्रि (व्रत ॰

२,७९६-७९७), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३; २०७।१-५ से उद्धरण) ।

विद्यावत : किसी मां की द्वितीया पर श्वेत चावल से वर्गाकार आकृति खींच कर, उसके मध्य में अप्ट दल कमल बना कर, उसके बोजकोष पर कमलयुक्त लक्ष्मी की आकृति खींची जानी चाहिये, आठ शक्तियों (यथा—सरस्वती, रित, मैत्री, विद्या आदि) की आकृति वना कर कमल-दली पर रखनी चाहिये, 'ओं सरस्वत्यै नमः' आदि के साथ शक्तियों को कमशः प्रणाम; चारों दिग्पालों एवं दिशा-कोणों के रक्षकों की आकृतियाँ बनायी जाती हैं; मण्डल में गुरु-रूप में चारों (व्यास, ऋतु, मनु, दक्ष), विसष्ठ आदि को स्थापित किया जाता है; जाती है; श्रीसूक्त (हिरण्यवर्णा हरिणाम्' से आरम्भ होने वाले खिलमुक्तों में विभिन्न पृथ्यों से इनकी पूजा एक), पुरुषसूक्त (ऋ०१०,९०) एवं विष्णु के स्तीत्र पढ़े जाते हैं; पुरोहितों को एक गाय, वैल एवं जलपूर्ण पात्र दिये जाते हैं; भुने हुए चावलों से युक्त पाँच पात्र (लाई से भरे पाँच कूंड) तिल, हल्दी-चूर्ण (स्त्री सम्पादिका हारा), सोना किसी गृहस्य को दिया जाता है तथा भूखे लोगों को भोजन दिया जाता है; शिष्य गुरु से विद्यादान

करने के लिए प्रार्थना करता है और गुरु प्रतिमाओं के समक्ष वैसा करता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ३८६-३८९, गरुड़-पुराण से उद्धरण)।

विधान-द्वादश-सप्तमी: चैत्र से आरम्भ कर १२ मासों की सप्तमी पर; विस्तृत विवेचन; कई नाम प्रसिद्ध हैं, यथा-मरिचसप्तमी, फलसप्तमी, अनोदना-सप्तमी; सभी में सूर्य देवता हैं; मन्त्र है 'ओं नमः सूर्याय'; हेमाद्रि (त्रत० १, ७९२-८०४, आदित्यपुराण से उद्धरण)।

विधान-सप्तमी: तिथि-अत; सूर्य देवता; माघ शुक्ल ७ पर आरम्भ; माघ से प्रारम्भ कर १२ मासों की सप्तमियों पर १२ वस्तुओं में केवल एक कम से ग्रहण किया जाता है, यथा—अर्क फूल का ऊपरी भाग; ताजा गोबर; मरिच, जल, फल, मूल (मूली), नक्त-विधि, उपवास, एकभक्त, दूध, केवल वायु-ग्रहण; घी; कालविबेक (४१९); वर्षिक्रयाकौमुदी (३७-३८); तिथितत्त्र (३६-३७); कृत्यतत्त्व (४२९-४६०); वर्षिक्रयाकौमुदी (३८) ने इसे रिवन्नत (जिसका सम्पादन माघ के प्रथम रिववार से आरम्भ कर रिववार को किया जाता है) से विभिन्न माना है।

विनायकचतुर्थी: (१) देखिये अपर गणंश-चतुर्थी (गत अध्याय-८)। (२) चतुर्थी को कर्ता तिल का भोजन दान करता है और स्वयं रात्रि में तिल एवं जल ग्रहण करता है; दो वर्षी तक; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ७९, भविष्यपुराण १।२२।१-२ का उद्धरण); हेमाद्रि (व्रत० १, ५१९-५२०) ने इसे गणपति-चतुर्थी कहां है।

विनायकत्रतः फाल्गुन शुक्ल ४ पर आरम्भ; तिथि; गणेश, देवता; चार मासों तक; प्रत्येक शुक्ल ४ पर कर्ता नक्त करता है, तिल से होम करता है, तिल का दान करता है; अन्त में पाँचवें मास में गणेश की स्विणिम प्रतिमा को पायस से पूर्ण चार ताम्र पात्रों एवं तिलपूर्ण एक पात्र के साथ दान करता है; सभी बाधाओं से मुक्ति; मविष्योत्तरपुराण (३३।१-१३)।

विनायकस्नपन-चतुर्थी : भविष्योत्तरपुराण (३२।१-३०, याजवल्क्यस्मृति १।२७१-२९४ के कितपय रलोक उद्धृत हैं) में; यह शान्ति है, न कि व्रत; इसका वर्णन शान्ति के विभाग में किया गया है।

विभूति-द्वावशी: कार्तिक, वैसाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन या आषाढ़ शुक्ल १० पर; नियमों के पालन का संकल्प; एकादशी पर उपवास, जनार्वन-प्रतिमा का पूजन; पाद से शिर तक विभिन्न अंगों की 'विभूतये नमः पादौ विकोशायेति जानुनी' आदि वचनों के साथ पूजा; विष्णु-प्रतिमा के समक्ष जलपूर्ण घट में स्वांश्म मछ्छी; रात्रि भर जागरण; दूसरे दिन प्रातः 'जिस प्रकार विष्णु अपनी महान् अभिव्यक्तियों से विमुक्त नहीं रहते, आप मुझे संसार की चिन्ताओं के पंक से मुक्त करें नामक प्रार्थना के साथ स्वांगम प्रतिमा एवं घट का दान; कर्ता को प्रति मास कम से दशावतारों, दत्तात्रेय एवं व्यास की प्रतिमाओं का दान करना चाहिये और यह दान करवादशी पर एक नील कमल के साथ किया जाता है; बारह द्वादशियों की परिसमाप्ति के उपरान्त गृह या आवार्य को एक लवणाचल, पलंग तथा उसके साथ के अन्य उपकरण, एक गाय, ग्राम (राजा या सामन्त द्वारा) या भूमि (ग्रामपित द्वारा) का दान तथा अन्य बाह्मणों को गायों एवं वस्त्रों का दान; यह विधि तीन वर्षों तक; पापों से मुक्सि, एक सौ पितरों की मुक्ति आदि; कृत्यकल्पतह (व्रतः, ३६४-३६७); हेमाद्रि (वृतः १, १०५७-१०६०) योनों में मस्यपुराण (१००१-३७) के उद्धरण; पर्यपुराण (५१२०१४-४२) के भी कुछ क्लोक उद्धृत हैं। लवणाचल-दान के किए देखिये मत्स्यपुराण (८४।१-९)।

विरूपाक्षत्रतः पौष शुक्ल १४ पर; एक वर्ष तक शिव-पूजा; अन्त में सभी सामग्रियों एवं एक ऊँट का िश्री बाह्मण को दान; राक्षसों एवं रोगों से मुक्ति एवं कामनाओं की पूर्ति; हेमाद्रि (शत० २, १५३, विष्णुवर्मोत्तरपुराज ३।१८६।१-३ से उद्धरण)।

विशोकहावशी: आश्विन शुक्ल १० को संकल्प: 'मैं एकादशी को उपवास तथा केशव-पूजा कहँगा और दूसरे दिन (द्वादशी को) भोजन कहँगा'; पाद से शिर तक केशव-पूजा; एक मण्डल का निर्माण, जिस पर चार कोणों वाली एक वेदी; वेदी पर एक सूप में विशोका (लक्ष्मी) की प्रतिमा-स्थापन और प्रार्थना 'विशोका चिन्ता दूर करे, घन एवं सफलता दें। सभी रातों में कुश से शुद्ध किये हुए जल का प्रयोग, नृत्य एवं संगीत; बाह्मणों की जोड़ियों का सम्मान; प्रत्येक मास में यही विधि; अन्त में पलंग, गुड़, घेनु एवं रूप्य के साथ लक्ष्मी-प्रतिमा का दान; मत्स्यपुराण (८१) ने वर्णन किया है और (८२) गुड़ घेनु को इस बत का एक अंग माना है। देखिये यह प्रन्थ (खण्ड २, पृ० ८८०-८८१) जहाँ गुड़ घेनु का वर्णन है। यहाँ संक्षेप में घेनुओं के दान पर प्रकाश डाला जा रहा है। मत्स्यपुराण (अघ्याय ८२।१७-२२) ने दस घेनुओं के नाम दिये हैं, यथा— गुड़, घृत, तिल, जल, क्षीर, मघु, शर्करा, दिघ, रस (अन्य जलीय पदार्थ) एवं गोघेनु (स्वयं गाय का दान)। जलीय घेनु पात्र में तथा अन्य राशि (एकत्र) में। कहीं-कहीं सुवर्णघेनु, नवनीत-घेनु, रत्नघेनु के नाम भी आये हैं। वराहपुराण (अघ्याय ९९-११०) में बारह घेनुओं का उल्लेख है, जिनमें मत्स्यपुराण की घृत एवं गोघेनु छूटी हुई हैं और नवनीत, लवण, कार्पास (कपास) एवं घान्य जोड़ दी गयी हैं।

विशोकषण्डी: माघ शुक्ल ५ पर काले तिल से स्नान तथा तिल एवं चावल से बना भोजन; षष्ठी पर स्विणिम कमल का निर्माण एवं सूर्य के रूप में करवीर पुष्पों तथा दो लाल वस्त्रों से पूजा तथा शोक-मुक्ति के लिए प्रार्थना; गोमूत्र पोना और शयन; सप्तमी को गुइ एवं ब्राह्मणों को दान, बिना तेल एवं नमक का मोजन-प्रहण, मौन-प्रहण तथा पुराण-प्रन्थों का श्रवण; यह एक वर्ष तक दोनों पक्षों में किया जाता है; अन्त में माघ शुक्ल सप्तमो को स्विणिम कमल के साथ एक घट, उपकरणों से युक्त पलंग एवं एक किपला गाय का दान; हेमाद्रि (व्रत० १, ६००-६०२, भविष्योत्तरपुराण ३८।१-७ से उद्धरण) कृत्यकल्पतह (वृत०, २११-२१२)।

विशोक-संकान्ति: जब अयन दिन या विषुव दिन पर व्यतिपातयोग हो तो कर्ता को तिलों से युक्त जल से स्नान करना चाहिये और एकभक्त रहना चाहिये; उसे पंचगव्य से सूर्य की स्वणिमप्रतिमा को नहलाना चाहिये, गन्म, पुष्प आदि अपित करना चाहिये, दो लाल वस्त्रों से आवृत करना चाहिये तथा उसे ताम्र पात्र में स्थापित करना चाहिये; पाद से शिर तक विभिन्न नामों से सूर्य-प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये; अध्यपंण, एक वर्ष; अन्त में सूर्य-पूजा, सूर्य को सम्बोधित मन्त्रों से होम; १२ कपिला गायों या दरिद्र होने पर एक गाय का दान; दोर्घायु, स्वास्थ्य एवं समृद्धि की प्राप्ति; यह संक्रान्ति-न्नत है; हेमाद्रि (न्नत० २ ७४२-७४३, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

विशोकसप्तमी : हेमाद्रि (व्रत० १, ७४६-७४७, भविष्यपुराण से उद्धरण, १३ वलोक मत्स्यपुराण ७५।१-१२ पद्मपुराण ५।२१।२३५-२४८ के हैं)।

विश्वरूपता : शुक्ल ८ या १४ पर जब यह रिववार एवं रेवती-नक्षत्र में पड़ती है; शिव, देवता; लिंग का महास्नान; कर्पूर, खेत कमल एवं अन्य आभूषण लिंग पर रखे जाते हैं, धूप के रूप में कर्पूर जलाया जाता है, घी एवं पायस का नैवेद्य; आचार्य को घोड़ा या गज का दान; कर्ता को पुत्र, राज्य, आनन्द, आदि की प्राप्ति, इसी से इस त्रत को विश्वरूप (अर्थात् सभी रूप वाला) कहा गया है; रात्रि में कुश-युक्त जल-ग्रहण एवं जागरण; हेमाद्रि (व्रत० १, ८६५-८६६, कालोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विश्ववत : (१) प्रत्येक मास की दशमी पर एक मक्त; तिथिवृत; एक वर्ष तक; अन्त में दस गायों तथा दस दिशाओं की स्वर्णिम या रजत प्रतिमाओं, एक दोना तिल के साथ, दान; कर्ती सम्राट् हो जाता है

और सभी णाप कट जाते हैं; कृत्यकल्पतक (४५१); हेमाद्रि (व्रत० १, ९८३, पद्मपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।८३); (२) एकादशी को विश्वदेवों की पूजा; कमल-दलों पर उनकी प्रतिमाएँ रखी जाती हैं; तिथिवत; देवता, विश्वदेव; घृत की घार, सिमघाओं, दही, दूघ एवं मधु का अर्पण; हेमाद्रि (व्रत० १, ११४८, भविष्यपुराण से उद्धरण)। यह व्रत वैश्वानर-प्रतिपद की भाँति है।

विश्वेदेव-दश्यमी-पूजा: कार्तिक शुक्ल १० से प्रारम्भ; तिथि; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७६।१) में दस विश्वेदेवों के नाम दिये गये हैं, जो केशव की अभिव्यक्तियाँ हैं; मण्डलों या प्रतिमा-रूपों में उनकी पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में स्वर्ण-दान; विश्वेदेवलोक की प्राप्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७६।१-५)।

विष्टिवत या विष्टि-भद्रा: करणों का वर्णन 'काल' के अन्तर्गत किया गया है। दो प्रकार के हैं: चर (चलायमान) एवं स्थिर। चर करण सात हैं, जिनमें विष्टि भी परिगणित है। देखिये वृहत्संहिता (९९।१)। विष्टि एक तिथि का अर्घांश है। ज्योतिष के ग्रन्थों ने इसे कुरूप राक्षसी के रूप में माना है। विष्टि में ३० घटिकाएँ होती हैं, जो असमान रूप में उसके मुख, गला, हृदय, नाभि, किट एवं पूछ में वितरित की गयी हैं (कम से ५, १, ११, ४, ६ एवं ३ घटिकाएँ); हेमाद्रि (वत० २, ७१९-७२४, भविष्योत्तरपुराण से उदरण); कालिनर्णय (३३०), स्मृतिकौस्तुभ (५६५-५६६) ने इसे सूर्य की पुत्री, शनि की बहन माना है, उसका मुख गघे का है, उसके तीन पाँव हैं, आदि। विष्टि सामान्यतः नाशकारिणी है और उसे शुभ कृत्यों के लिए त्याज्य ठहराया गया है; किन्तु इसका काल शत्रुओं के नाश एवं विष्ट देने के लिए उपयुक्त माना गया है (वृहत्संहिता ९९।४); विष्टि दिन पर उपवास; किन्तु यदि विष्टि रात्रि में हो तो दो दिनों तक एक भक्त रहना चाहिये; देवों एवं पितरों की पूजा के उपरान्त दर्भ घास से निर्मित विष्टि-प्रतिमा का पृष्पों आदि से पूजा; कृशर (चावल, मटर एवं मसाले से बनी खिचड़ी) का नैवेद्य; काले वस्त्र, काली गाय एवं काले कम्बल का दान; विष्टि एवं भद्रा का अर्थ एक ही है। हेमाद्रि (वत० २, ७१९-७२४); कालनिर्णय (३३०); स्मृतिकौस्तुभ (५६५-५६८)।

षिष्णु: विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।१२३) ने व्यवस्था दी है किन अवसरों पर कौन-से विष्णु नाम लिये जाने चाहिये, यथा—नदी पार करते समय (जब कि मत्स्य, कूर्म एवं वराह के नाम लिये जाते हैं) या जब ग्रह या नक्षत्र दुष्ट पड़ जायें या जब डाकुओं एवं व्याघ्रों आदि का डरहो (नृसिंह का स्मरण); इस पुराण (२।१२४) में चैत्र से आगे के मासों, या सप्ताहों, नक्षत्रों एवं तिथियों में कहे जाने वाले नामों की तालिका दी है; अध्याय—-१२५ में तीथों एवं कुछ देशों में ज ने के समय के नामों की सूची दी हुई है।

विष्णुत्रिमूर्तिवत: विष्णु के तीन रूप हैं, यथा—वायु, चन्द्र एवं सूर्य; ये तीनों रूप तीन लोकों की रक्षा करते हैं; वे मनुष्यों के शरीर के भीतर वात, पित्त एवं कफ के रूप में विराजमान रहते हैं, इस प्रकार विष्णु के तीन स्थूल रूप हैं; ज्येष्ठ शुक्ल ३ को उपवास कर के विष्णु-पूजा; प्रातः वायु-पूजा, मध्याह्न में अगिन में जौ एवं तिल से होम तथा रात्रि में जल में चन्द्र-पूजा; वर्ष भर शुक्ल ३ पर पूजा; स्वर्ग-प्राप्ति; यदितीन वर्षों तक किया जाये तो ५००० वर्षों तक स्वर्ग में स्थित; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१३६।१-२६)

विष्णुत्रिरात्रवतः कार्तिक शुक्ल नवमी पर; हरि एवं तुलसी की स्वर्णिम प्रतिमा की तीन दिनों तक पूजा तथा तुलसी एवं हरि का विवाह-सम्पादन; निर्णयसिन्धु (२०४) ।

विष्णुदेवकीवत: कार्तिक की प्रथम तिथि से प्रारम्भ; एक वर्ष तक; पंचगव्य से स्नान एवं उसका पान; बाण पुष्पों, चन्दन लेप एवं मधुर एवं पर्याप्त नैवेद्य से वासुदेव पूजा; एक मास तर्क हिंसा, असत्य, चौर्य, मांस एवं मधु का त्याग; विष्णु का अटल घ्यान; शास्त्र, यज्ञ या देवताओं की भत्संना न

करना; मौन रूप से प्रतिदिन नैवेश ग्रहण; मार्गशीर्ष, पौष एवं माघ में भी यही विधि , केवल पुष्पों, घूप एवं नैवेश में अन्तर; हेमाद्रि (व्रत० २, ६३६-६३८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। यह द्रष्टव्य है कि यह व्रत कृष्ण की माता देवकी को बताया गया था, जिसे उत्तम पुत्र की कामना थी; उसे वासुदेव के पूजन के लिए कहा गया; जो स्वयं उसके पुत्र थे।

विष्णु-पंचक: कार्तिक के अन्तिम पाँच दिनों को इस नाम से पुकारा जाता है; पाँच उपचारों, यथा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य से पाँच दिनों तक हरि एवं राघा की पूजा; सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और कर्ता स्वर्ग की प्राप्त करता है; पूजा की कई विधियाँ वर्णित हैं, यथा—एकादशी को पूजा, द्वादशी को गोमूत्र पीना, त्रयोदशी को दूध पीना, चतुर्दशी को दही खाना, पूणिमा को केराव पूजा तथा सायंकाल को पंचगव्य ग्रहण या तुलसी-दलों के साथ हरि-पूजा; पद्मपुराण (३।२३।१-३३)।

विष्मुरद या विष्मुरदी: वृषम, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ राशियों के नाम; कालनिर्णय (३३२); देखिये संक्रान्ति, गत अध्याय—११।

विष्णुषदस्रतः आषाढ़ में पूर्वाषाढ़-नक्षत्र पर आरम्भ; दूच या घी में स्थापित विष्णु के तीन पदों की पूजा; कर्ता केवल रात्रि में हविष्य-भोजन करता है; श्रावण में उत्तराषाढ़ पर गोविन्द एवं विष्णु के तीन पदों की पूजा; दान एवं भोजन विभिन्न होते हैं; भाद्रपद में पूर्वाषाढ़ पर, फाल्गुन में पूर्वाफाल्गुनी पर, चैत्र में उत्तराफाल्गुनी पर उसी प्रकार की पूजा; कर्ता स्वास्थ्य, समृद्धि प्राप्त करता है और विष्णुलोक जाता है; हेम।दि (व्रत०, २, ६६५-६६७, विष्णुधमोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विष्णुप्रबोध : कार्तिक में विष्णु का शयन से उठना; देखिये ऊपर गत अध्याय-५; हेमादि (काल०, ९०३-९०४); कृत्यरत्नाकर (४२१-४२५)।

विष्णुद्राप्तिवत: द्वादशी पर उपवास, 'नमो नारायणाय' के साथ सूर्य को अर्घ्य; रवेत पुष्पों एवं 'हे देवों में सर्वअंदेठ, हे पृथिवी के आश्रय, मेरे इन पुष्पों को कृपापूर्व क ग्रहण कर के, हे भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो' नामक मन्त्र के साथ विष्णु-पूजा; व्यंजन, चावल या जौ या नीवार (जंगली चावल, तिज्ञी आदि) के साथ रयामक (सावाँ) या साठी (वह धान जो ६० दिनों में हो जाता है) पर निर्वाह करना; इसके उपरान्त पारण; विष्णु लोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पतक (व्रत, ३४३-३४४); हेमाद्रि (व्रत० १, १२०३-१२०४, भविष्यपुराण से)।

विष्णुलक्षवित्वतः रुई की घूल एवं घास के टुकड़ों को किसी शुभ तिथि एवं लग्न में झाड़ कर एवं स्वच्छ कर ४ अंगुल लम्बा घागा बनाना, इस प्रकार के चार घागों से एक बत्ती (वर्ति) बनती है; इस प्रकार की एक सौ सहस्र बित्यों को घी में डुबो कर एक चौदी या पीतल के पात्र में जला कर विष्णु-प्रतिमा के समक्ष रखना; उचित काल है कार्तिक, माघ या वैसाख, अन्तिम सर्वोत्तम है; प्रति दिन एक या दो सहस्र बित्या विष्णु के समक्ष घुमायी जाती हैं; उपयुक्त मासों में किसी पूर्णिमा पर व्रत-सभाष्ति; तब उद्यापन; आजकल यह दक्षिण में नारियों द्वारा ही सम्पन्न होता है; वर्ष कृत्यदीपक (३८३-३९८)।

विष्णुद्धतः (१) एक कमल पर आकृति खींच कर विष्णु की पूजा; इस ब्रत की विधि वैश्वान रवृत के समान है; हेमाद्रि (व्रत० १,११७७ मविष्यपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष की १२ द्वादिशयों पर उपवास एवं गाय, वछड़े एवं हिरण्य का दान; कर्ता को परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० १,१२०२, पद्मपुराण से उद्धरण); वर्षिक्रयाकौमुदी (७०); (३) पौष शुक्ल द्वितीया पर प्रारम्भ; एक वर्ष तक ६ मासों को दो अविधियों में बाँट कर; कर्ता द्वितीया से चार दिनों तक कम से सरसों, तिल, वच (सुगन्धित जड़ वाला पौधा) एवं सवी विधियों

से युक्त जल से स्नान करता है; इन दिनों की पूजा में विष्णु के नाम हैं कम से कृष्ण, अच्युत, ह्षीकेश एवं केशव; कम से शानी, चन्द्र, शशांक एवं निशापित के रूप में चार तिथियों पर चन्द्रमा को अर्घ्यं, पूर्णचन्द्र तक कर्ता केवल एक बार मोजन करता है; पंचमी को दिक्षणा; यह वर्त प्राचीन राजाओं (दिलीप, दुष्यन्त), मुनियों (मरीचि, च्यवन) एवं उच्च कुलोत्पन्न नारियों (देवकी, सावित्री, सुभद्रा) द्वारा किया गया था; पाप-मुक्ति एवं इच्छा-पूर्ति; अनिपुराण (१७७।१५-२०); हेमाद्रि (व्रत० २, ४५८-४६०, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (४) आपाढ़ से लेकर चार मासों तक प्रातःकाल स्नान; कार्तिक पूर्णिमा पर गोदान एवं ब्रह्म-भोज; विष्णुलोक की प्राप्ति; छत्यकल्पतह (व्रत०, ४४४, मत्स्यपुराण १०१।३७ से उद्धरण), कृत्यरत्नाकर (२१९); (५) चैत्र चुक्ल ४ पर उपवास, चार रूपों के दलों में हरि-पूजा, यथा—नर, नारायण, हय एवं हंस; या मित्र, वरुण, इन्द्र एवं विष्णु, जिनमें प्रथम दो साध्य होते हैं और अन्तिम दो सिद्ध; १२ वर्षों तक; कर्ता को मोक्ष-मार्ग की उपलब्धि और वह सर्वोच्च के बरावर हो जाता है; विष्णुवर्मोत्तरपुराण (३।१५१।१-८)।

विष्णुशंकरवृत: इसमें उमामहेश्वरवृत की विधि प्रयुक्त होती है। इसका सम्पादन भाद्रपद या आध्वन में मृगिशिरा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराघा या ज्येष्ठा पर होता है; अन्तर यह है कि विष्णु के वस्त्र पीत होते हैं, विष्णु एवं शंकर के लिए दक्षिणा क्रम से सोना एवं मोती के रूप में होती है; हेमाद्रि (व्रत०२, ५९३-५९४, यहाँ इसे शंकर-नारायण-वृत कहा गया है); कृत्यरत्नाकर (२८३-२८३); दोनों देवीपुराण को ज्रदृत करते हैं।

विष्णुशयनोत्सव : आश्विन शुक्ल ११ या १२ पर; निर्णयसिन्धु (१०२), देखिए 'विष्णुशयन,' गत अध्याय ५; मलमास में नहीं होता।

विष्णुश्रृंखल-योग : जब द्वादशी एकादशी से युक्त हो एवं द्वादशी को श्रवण-नक्षत्र भी हो तो उसे विष्णुश्रृंखल कहा जाता है; उस दिन उपवास करने से पापमीचन हो जाता है और विष्णु से सायुज्य प्राप्त होता है; हेमादि (वत० १, २९५); कालविवेक (४६४); पुरुषार्यचिन्तामणि (२१६-२१९)।

बीरप्रतियवा : यह बिलप्रतिपदा ही है; देखिए गत अध्याय १०।

सौरव्रत : नवसी पर एकभन्त, कुमारियों को भोज, स्वर्णिम घट, दो वस्त्र एवं सोने का दान; एक वर्ष तक (प्रत्येक नवसी पर कुमारियों को भोज); प्रत्येक जीवन में सुन्दर रूप, शत्रु-विजय की प्राप्ति एवं शंकर की राजधानी में पहुँच; देवता शिव या उमा या दोनों; मत्स्यपुराण (१०१।२७-२८); कृत्यकल्पतरु (सत्त० ४४३); हेमाद्रि (व्रत० १,९५८, पद्मपुराण से उद्धरण), वर्षिकयाकौमुदी (४१)।

वीरासन : एक आसन जो सभी कृच्छों में प्रयुक्त होता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ३२२, गरुड़पुराण से उद्धरण एवं व्रत ० २, ९३२); यह अघमर्पणव्रत (शंखस्मृति १८।२) में भी प्रयुक्त होता है। सभी पाप नव्ट हो जाते हैं।

बृक्षोत्सविधि: वृक्षारोपण को अति महत्ता प्राप्त थी। मत्स्यपुराण (५९११-२०=पग्रपुराण ५१२४।१९२-२११) में वृक्ष के उत्सव की विधि दीं हुई है, संक्षेप में यों है—वाटिका में वृक्षों पर सर्वीषधियुक्त जल छिड़का जाता है, उनके चारों ओर वस्त्र बाँघे जाते हैं; स्विणम सुई से वृक्षों में छेद किया जाता है (कणंदेधन के समान); स्विणम शलाका से अंजन लगाया जाता है; वृक्षों के थालों पर ७ या ८ स्विणम फल रखे जाते हैं; वृक्षों के तलों में सोने के टुकड़ों से युक्त घट रखे जाते हैं; इन्द्र, लोकपालों एवं वनस्पित को होम किया जाता है; वृक्षों के बीच से खेत वस्त्रों, स्वर्णाभूषणों से युक्त तथा सींगों के पोरों पर स्वर्ण से सुक्षिजत गायें ले जायी जाती हैं; वृक्षों का स्वामी पुरोहितों को गोदान, स्विणम सिकड़ियाँ, अँगूठियाँ, वस्त्र आदि देता है और चार दिनों तक दूघ से ब्रह्म-भोज करता है; जी, काले तिलों, सरसों एवं पलाश की सिमधा से होम एवं चौथे दिन उत्सव; कृती की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मत्स्यपुराण (१५४।५१२) में ऐसा आया है कि एक पुत्र दस गहरे जला-

सयों के तथा एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के समान है। वराहपुराण (१७२।३६-३७) में ऐसा कहा गया है कि एक अच्छा पुत्र कुल की रक्षा करता है, उसी प्रकार पुष्पों एवं फलों से लदा एक वृक्ष स्वामी को नरक में गिरने से बचाता है, जो व्यक्ति ५ आग्न वृक्ष लगाता है वह नरक में नहीं जाता; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२९७-१३) ने वृक्षों के विषय में कहा है—'एक व्यक्ति द्वारा पालित वृक्षे वही कार्य करता है जो एक पुत्र करता है, बह अपने पुष्पों से देवों को प्रसन्न करता है, छाया से यात्रियों को, अपने फलों से मनुष्यों को सन्तुष्ट करता है; वृक्ष के रोपने वाले को नरक में नहीं गिरना पड़ता।'

षृथ्ताफ-स्याग-विधि: इस वत द्वारा जीवन सर या एक वर्ष या ६ मासों तक या ३ मासों तक वृन्ताक फल का त्याग करना पड़ता है; एक रात्रि भर भरणी या मघा नक्षत्र में उपवास करना होता है; एक वेदी पर यम, काल, चित्रगुप्त, मृत्यु एवं प्रजापित का आवाहन किया जाता है और गंघ आदि से पूजा की जाती है; तिल एवं घी से स्वाहा के साथ यम, नील, नीलकण्ठ, यमराज चित्रगुप्त, वैवस्वत के लिए होम किया जाता है; १०८ आहुतियाँ; सोने का बना एक वृन्ताक, काली गाय एवं बैल, अँगूठियाँ, कर्णमूल, छत्र, चप्पल, काले वस्त्र का जोड़ा एवं काले कम्बल का दान; बाह्मणों को भोजन; जो बृन्ताक को जीवन भर छोड़ देता है वह विष्णुलोक जाता है; जो ऐसा वर्ष भर या केवल एक मास करता है, नरक में नहीं पड़ता; यह प्रकीर्णक वत है; हेमादि (वत० २, ९०९-९१०, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

युन्यायनद्वावशी : कार्तिक शुनल १२ पर; यह तिमल प्रदेशों में प्रसिद्ध है।

वृष्णभवत: (१) शुक्ल ७ पर उपवास; श्वेत वस्त्रों से आवृत तथा घण्टी आदि आभूषणों से अलंकृत वैल का दान; तिथित्रत; शिव देवता; शिव लोक की प्राप्ति और राजा होना; हेमाद्रि (व्रत० १, ८८२, भविष्योत्तर पुराण से उद्धरण); (२) ज्येष्ठ अमावास्या पर बैलों की पूजा; काठ के बने बैलों को (एक दिन पूर्व ही) घर में स्थापित करना और गंध आदि से पूजा; धर्म कहकर उनकी प्रार्थना करना। धर्म को वहुषा वृष कहा गया है (मनु ८।१६, शान्तिपर्व ९०।१५)।

शृज्यतः (१) विष्णुत्रत के समान ही; (२) ऊपर वाला; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४४८, मत्स्यपुराण १०१।६४ का उद्धरण); कार्तिक पूर्णिमा पर साँड छोड़ना एवं नक्त-विधि; तिथिव्रत; देवता शिव;शिव-कोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, २४२)।

वृषोत्सर्ग : (साँड छोड़ना) चैत्र या कार्तिक की पूर्णिमा पर, रेवती नक्षत्र में, ३ वर्ष के उपरान्त एक बार; बैल तीन वर्ष का होना चाहिए, उसके साथ तीन वर्ष वाली चार या आठ गायें; कृत्यरत्नाकर (४३२-४३३, ब्रह्मपुराण से उद्धरण)। बहुषा किसी की मृत्यु के ११ दिनों के उपरान्त वृषोत्सर्ग होता है। देखिए इस महाग्रन्थ का मूल खण्ड २,पृ०९८३-९९७ एवं खण्ड ४,पृ०५३९-५४२; स्मृतिकौस्तुभ (३९०-४०५)।

वेदनतः यह चतुर्मृतिवृत है; चैत्र से ऋग्वेद-पूजा; नक्तविधि; वेद-श्रवण; अन्त में (ज्येष्ठ-पूर्णिमा) दो वस्त्रों, सोना, गाय, घृतपूर्ण पीतल के पात्र का दान; आधाढ़, श्रावण एवं भाद्र में यजुर्वेद-वृत; आधिवन, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष में सामवेद-वृत; पौष, माध एवं फाल्गुन में सभी वेदों का वृत; वास्तव में यह वेदों के आत्मा वासुदेव की पूजा है; १२ वर्षों तक; सभी दुःखों से मुक्ति, विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (वृत्त० २, ८२७-८२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१४१।१-७ से उद्धरण)।

बेश्यादत : हेमाद्रि (व्रत० २, पृ० ५४१-५४८, भिवष्योत्तरपुराण से उद्धरण) ने इस व्रत का उल्लेख किया है। उसमें कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को सुनायी गयी विस्मयकारी घटना का वर्णन है। श्री कृष्ण ने जब अपने पुत्र साम्ब के रूप से अपनी १६००० पत्नियों को आकृष्ट देखा तो उन्होंने उन्हें शाप दे दिया कि

मेरी मृत्यु के उपरान्त तुम्हें दस्यु लोग चुरा ले जायेंगे। यह भी कथा है कि नारद ने उन अप्सराओं को, जिन्होंने उनको प्रणाम नहीं किया था शाप दिया था कि वे नारायण की पित्नयाँ बनेंगी और अन्त में डाकुओं द्वारा भगा ली जायेंगी और वेश्या हो जायेंगी। कथा का सारांश यह है कि उन्हें महलों एवं मन्दिरों में वेश्या-वृत्ति करने की मित दी गयी और कहा गया कि वे घनहीन पुरुष को प्यार न करेंगी, उनका प्रमुख उद्देश्य होगा घनाजेंन, चाहे उनके पास आने वाला व्यक्ति सुन्दर हो या असुन्दर। यह आगे कहा गया है कि वे गायों, भूमि एवं सोने का दान (ब्राह्मणों को) करेंगी, हस्त या पुष्य या पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रिववार को सवीं षिष-जल से स्नान करेंगी, कामदेव की पाद से सिर तक पूजा करेंगी; काम की पूजा विष्णु के रूप में होती है; वेदज ब्राह्मण का सम्मान किया जाता है; उसे एक प्रस्थ (पसर) चावल दिया जाता है; वेश्या अपने शरीर का दान (उस ब्राह्मण को) रिववार को करती है और यह वर्ष भर चलता है, १३वें मास में पलंग, स्वर्ण सिकड़ी (हार) एकं कामदेव की प्रतिमा का दान; यह वर्त सभी वेश्याओं के लिए है; यह वारवत है; देवता अनंग (कामदेव); कृत्यकल्पतर (व्रत० २७-३१) में यह वर्त वर्णित है और इसे वेश्यादित्यवारानंगदान-व्रत कहा गया है।

बैकुष्ठचतुर्वशी: (१) कार्तिक शुक्ल १४ को वैकुष्ठ १४ कहा गया है; यदि विष्णु-पूजा करनी हो तो रात में की जानी चाहिए; निर्णयसिन्धु (२०६); (२) कार्तिक शुक्ल १४ पर हेमलम्ब वर्ष में अरुणोदय काल में ब्राह्म मुहूर्त में स्वयं विश्वेश्वर भगवान् ने वाराणसी में मणिकिणकाघाट पर स्नान किया था, पाशुपतव्रत किया था तथा उमा के साथ विश्वेश्वर की पूजा की थी एवं विश्वेश्वर की स्थापना की थी; निर्णयसिन्धु (२०६); स्मृतिकौस्तुभ (३८८-३८९); पुरुषार्थचिन्तामणि (२४६-२४७)।

वैतरणीवत: मार्गशीर्ष कृष्ण ११ को वैतरणी कहा जाता है; उस तिथि पर नियम-संकल्प लिया जाता है; रात्रि में एक काली गाय की, उसकी खुर से पूँछ तक पूजा की जाती है, उसके शरीर में चन्दन-लेप लगाया जाता है, चन्दन-लेप से सुगंधित जल से खुरों एवं सींगों को स्वच्छ किया जाता है और पौराणिक मन्त्रों से उसके अंगों की पूजा की जाती है; गाय द्वारा नरक की वैतरणी नदी पार की जाती है, अतः यह एकादशी, जिस दिन गाय का सम्मान होता है, इस नाम से पुकारी जाती है; यह वर्त चार मासों के ३-३ दलों में एक वर्ष तकः चलता है, जिनमें पके चावल, पके जी एवं पायस का नैवेद्य कम से मार्गशीर्ष से चार मासों, चैत्र से चार मासों तथा श्रावण से चार मासों में दिया जाता है; नैवेद्य का एक तिहाई भाग गाय, पुरोहित तथा कर्ता को दिया जाता है; वर्ष के अन्त में एक पलंग, एक गाय (स्वर्णिम), एक द्रोण लौह पुजारी को दिया जाता है; हेमाद्रि (वत॰ १, १११०-१११२, मविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); वतार्क (पाण्डुलिपि, २३० ए-२३१ वी); पद्मपुराण (६६८।२८) ने विवरण दिया है किन्तु कहा है कि मार्गशीर्ष कृष्ण १२ ही वैतरणी है।

वैनायक-वत: प्रत्येक चतुर्थी पर एक वर्ष तक नक्त-विधि; अन्त में एक गज का दान; तिथिवत; देवता गणेश; शिवलोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पतरु (व्रत, ४४८, मत्स्यपुराण १०१।६१ का उद्धरण); हेमाद्रि (व्रत॰ (१, ५३२, पद्मपुराण का उद्धरण)।

वैशाख-कृत्य : देखिए हेमाद्रि (व्रत०, २, ७४८-७५०); कृत्यरत्नाकर (१४५-१७९); वर्षिकया-कौमुदी (२४०-२५९); कृत्यतत्त्व (४२३-४३०); निर्णयसिन्धु (९०-९७); स्मृतिकौस्तुम (१०८-११७); गदाघरपद्धित (कालसार १५-२३)। वैशाख के कुछ व्रत, यथा—अक्षय तृतीया, अलग से विणत हैं। कुछ छोटी-मोटी बातें संक्षेप में यहाँ दी जा रही हैं। इस मास में प्रातःकालीन स्नान, उन स्नानों के साथ जो सूर्य की तुला एवं मकर राशियों में किये जाते हैं, बहुत महत्वपूर्ण है; राजमार्तण्ड; कृत्यरत्नाकर (१४९), कालविवेब, (४२३-

४२४); स्मृतिकौस्तुभ (१०६, १०८)। प्रातःस्नान का आरम्भ चैत्र पूणिमा या एकादशी या वैशाख पूणिमा से हो सकता है (निर्णयसिन्धु ९०); वैशाख-स्नान के माहात्म्य के लिए देखिए पद्मपुराण (४।८५। ४१-७०, वैशाख में प्रातःस्नान अश्वनेष के समान है); शुक्ल ७ को गंगा की पूजा, क्योंकि इसी दिन जह्न ने, जिन्होंने कोच में बाकर उसे थी लिया था, इसे अपने दाहिने कणें से मुक्त किया था, कृत्यकल्पत् (नैयतकाल्क ने, जिन्होंने कोच में बाकर उसे थी लिया था, इसे अपने दाहिने कणें से मुक्त किया था, कृत्यकल्पत् (नैयतकालक्काण्ड, ३८७); पद्मपुराण (४।८५।४१-४२); निर्णयसिन्धु (९५); स्मृतिकौस्तुभ (११२); वैशाख शुक्ल ७ को बुद्ध का जन्म हुआ था, उस तिथि से तीन दिनों तक उनकी प्रतिमा का पूजन होना चाहिए, विशेषतः जब पुष्य-नक्षत्र हो; कृत्यकल्पत् (नैयतकालिक ३८८); कृत्यरत्नाक् र (१६०)। शुक्ल ८ पर अपराजिता नामक दुर्गा की प्रतिमा को कर्पूर एवं जटामांसी से युन्त जल से स्नान कराकर पूजा तथा स्वयं आझरस से स्नान करना; निर्णयामृत (५६); स्मृतिकौस्तुभ (११३); वैशाख पूणिमा पर बद्धा ने काले एवं क्वेत तिल उत्पन्न किये थे, अतः उनसे युवत जल से स्नान करना चाहिए, उन्हें अग्न में अपित करना चाहिए, तिल एवं मचु का दान करना चाहिए; कृत्यक्लपत् (नैयत० ३८८); हेमाद्र (व्रत० २, १६७-१७१); कृत्यरत्नाकर (१६३-१६४); स्मृतिकौस्तुभ (११५-११६); निर्णयसिन्धु (९७)। श्रीलंका (सीलोन) में वैशाख-पूजा का आरम्भ 'दुत्तगामिनी (लगभग १००-७७ ई० पू०) के अन्तर्गत हुआ; देखिए वालपोल राहुल कृत 'बुद्धिन्म इन सीलोन', पृ० ८० (कोलम्बो, १९५६)।

वैद्यानर-वतः (१) प्रथम तिथि को अग्नि-पूजा तथा अग्नि में भी एवं सभी प्रकार के अभ का होम; प्रथम तिथि के स्वागी अग्नि को एक कमल के मध्य में बनाना चाहिए; प्रमुख मन्त्र हैं 'ओम् अग्निये नमः' (पूजा में) तथा 'ओम् अग्निये स्वाहा' (होम में); होम के लिए घृतिमिश्रित अन्न, घृतधारा, सिमघा आदि; हेमाद्रि (वत० १, ३५४-३५५, भिवष्यपुराण से उद्धरण); (२) वर्षा-ऋतु से आरम्भ कर चारों ऋतुंओं में बाह्मण को सिम्धा का दान तथा अन्त में घृतघेनु का दान; यह इत पापमोचन के लिए है; ऋतुव्रत है; कृत्यकल्पतरु (वत० ४४७); हेभाद्रि (वत० २, ३६०, पद्मपुराण से उद्धरण)।

वैष्णवद्गत : इसमें व्यक्ति आषाढ़ से आरम्भ कर चार मासों तक प्रतिदिन प्रातः स्नान करता है; अन्त में बहुमोज, गोदान एवं घृतपूर्ण घट का दान; मासव्रत; देवता विष्णु; हेमाद्रि (व्रत०२,८१८,पद्मपुराण से उद्धरण)।

श्यतीपातस्रत: व्यतीपात २७ योगों (विष्कम्भ, प्रीति आदि) में एक है; भुजवल० (पृ० ३७, इलोक १३६-१३८) ने इसकी व्याख्या कई प्रकार से की है, वर्षिकयाकौमुदी (२४२)। इस विषय में देखिए आगे का खच्याय 'काल'। हेमाद्रि (म्नत० २, ७०८-७१७)। व्यतीपात दिन पर एक बड़ी नदी में पंचगव्य के साथ नहाना चाहिए; एक स्विणम कमल पर १८ हाथों वाले व्यतीपात की स्विणम प्रतिमा रखी जानी चाहिए, उसकी पूजा गन्च आदि से होनी चाहिए; उस दिन उपवास; एक वर्ष तक; १३वें व्यतीपात पर उद्यापन; भी, दूध, तिल तथा दूध गिराने वाले वृक्षों की सिमवाओं से 'व्यतीपाताय स्वाहा' के साथ सी आहुतियाँ, व्यतीपात सूर्य एवं चन्द्र का पुत्र माना जाता है। देखिए इण्डियन एंग्टोक्वेरी (जिल्द २३, पृ० ११७, संख्या २७ शिलालेख, शक संवत् ११९९, १२७७ ई०), जहाँ व्यतीपात-पुण्य का उल्लेख हैं, और देखिए वही, जिल्द २०, पृ० २९२-२९३, जहाँ व्यतीपात के कई वर्ष दिये गये हैं।

ख्यास-पूजा: आषाढ़-पूर्णिमा पर; विशेषतः संन्यासियों द्वारा; स्मृतिकौस्तुभ (१४४-१४५); पुरुषायंचिन्तामणि (२८४); तिमल देश में यह ज्येष्ठ शुक्ल १५ (मिथुन) पर की जाती है।

व्याहृतिवत : चैत्र शुक्ल १ से आरम्भ ; किसी बड़ी नदी में स्नान के उपरान्त सात दिनों तक गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत, कुशयुक्त जल का कम से पान एवं अन्त में (सातवें दिन) उपवास ; प्रति दिन महाव्या- हतियों (भू:, भुव:, सव:, महः, जनः, तपः एवं सत्यम्) के साथ तिल से होम; एक वर्ष तक प्रतिमास; अन्त में दिल्लणां, नवीन यस्त्र, सोना, पीतल के पात्र, दुघारू गाय का दान; कर्ता सम्राट् हो जाता है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६२।१-७)। व्याहृतियों एवं महाव्याहृतियों के लिए देखिए इस महाग्रन्थ का मूल खण्ड २, पृ० ३०१, टिप्पणी ७१३।

व्योमवृतः श्वेत च-दनलेप से अँगूठे भर का व्योम बनाकर सूर्य के समक्ष रख देना चाहिए; करवीर पुष्पों से सूर्य-पूजा; प्रतिमा के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर क्रम से कुंकूम, अगुरु, श्वेत चन्दन एवं चतुःसम एवं मध्य में लाल चन्दन रखना चाहिए; एन्त्र यह है 'खखोल्काय नमः'; देवता सूर्य; हेमाद्रि (व्रत० २, ९०४-५, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

व्योमवर्ष्ठी: व्योम (आकाश) में सूर्य का (प्रतिमा का नहीं) एवं व्योम का पूजन; एक प्रस्थ वाले पात्र में घी एवं मधु, एक प्रस्थ तिल एवं तीन प्रस्थ चावरु का सूर्य को अर्पण; तिथि के साय सूर्य-पूजा; सूर्यलोक प्राप्ति: हेमाद्रि (त्रत० ४, ६१६-६१७, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

वतराजतृतीयाव्रत : तृतीया तिथि को कपड़े के दो टुकड़ों पर रोचना, कर्पूर एवं नील से उमा एवं शिव की प्रतिमाएँ खींचकर स्वर्ण-कण्टहार एवं रत्नों से दो पौराणिक मन्त्रों के साथ पृथक् रूप से सम्बोधित करके उनकी पूजा; होम; इस वत के सम्पादन से पति, पुत्र, भ्राता से वियोग नहीं होता; विशेषतः स्त्रियों के लिए; हेमाद्रि (व्रत ० १, ४८४-४८५, देवीपुराण से उद्धरण)।

ब्रतषिट : मत्स्यपुराण (अध्याय १०१) एवं पद्मपुराण (५।२०।४३-१४४) ने ६० व्रतों का (अधिकांश समान शब्दों में) उल्लेख किया है, जिनका कृत्यकल्पतरु (व्रत० पृ० ४३९-४५१) में विवरण उपस्थित किया गया है।

शक्रध्वजमहोत्सव : देखिए ऊपर 'इन्द्रध्वजोत्थानोत्सव', विस्तृत विवरण के लिए देखिए विष्णुघर्मोत्तर पुराण (२।१५४-१५७)। भोजकृत सर्स्वतीकण्ठाभरण (साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थ) के ५।९५ में शकार्चा उत्सव का उल्लेख हुआ है।

शक्ततः (१) आश्विन शुक्ल ५ से; हेमाद्रि (व्रत०१, १२०४; (२) आश्विन पूणिमा पर उपवास, इन्द्र, उनकी पत्नी शची, ऐरावत, वज्ज, मातुलिंग (मातिल?) की गन्ध आदि से पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में हिरण्य-दान; इन्द्र-लोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२, २३७, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१९६।१-३ से उद्धरण); (३) खुले अवकाश में भोजन; एक वर्ष तक; अन्त में गोदान; शक्र-लोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२,८६६, पद्मपुराण से उद्धरण)।

शंकरनारायणवत : देखिए ऊपर 'विष्णु-शंकरवत'; कृत्यकल्पतरु (व्रत ॰ ४१६-४१७); हेमाद्रि (व्रत ॰ २, ६९३-६९४, देवीपुराण से उद्धरण)।

शंकराकंबत: रिववार को पड़ने वाली अष्टमी पर; शंकर की दाहिनी आँख में स्थित सूर्य की पूजा; अर्घ-चन्द्र की आकृति में कुकुम एवं लाल चन्दन से एक वृत्त बनाकर उसमें स्वर्ण से जड़ित एक माणिक रखना, जिसे शंकर की आँख कहा जायगा; तिथिवत; देवता शंकर की आँख के रूप में अर्क (सूर्य); यदि माणिक न हो तो सोना ही प्रयुक्त होना चाहिए।

शंकराचार्यजयन्ती : दक्षिण भारत मे चैत्र शुक्ल ५ पर, किन्तु महाराष्ट्र में वैशाख शुक्ल १० पर।

श्चतिभवास्नान : धनिष्ठा नक्षत्र में कर्ता एवं पुरोहित दोनों का उपवास; भद्रासन पर बैटकर कर्ता हारा शंख एवं मोतियों से युक्त सौ घड़ों से स्नान करना, उसके उपरान्त नवीन वस्त्र भारण करके केशव, वरुण, चन्द्र, शतिभषा नक्षत्र (जिसके देवता वरुण हैं) की गन्ध आदि से पूजा; आचार्य को पेय पदार्थों, गाय, घट एवं सोने का दान तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा; कर्ता को शमी, शाल्मली एवं बाँस के पत्रों के अग्र भागों के तीन आवरणों से आच्छादित एक रत्न घारण करना चाहिए; सभी रोगों से मुक्ति; नक्षत्र-त्रत; देवता विष्णु एवं वरुण; हेमाद्रि (त्रत० २, ६५३-५४, विष्णु धर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शत्रुनाशनवत: कुंकुम, श्वेत पुष्प, गुग्गुल घूप, घृतदीप एवं लाल वस्त्र से वासुदेव की पूजा; नक्षत्रव्रत; इससे शत्रुओं का नाश; हेमाद्रि (व्रत० २, ५९७, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शनिप्रदोषव्रत : कार्तिक मास से आगे रिववार को पड़ने वाली त्रयोदशी पर: एक वर्ष तक; सन्तित के लिए; शिव-पूजा; सूर्यास्त के उपरान्त भोजन-प्रहण; स्मृतिकौस्तुभ (४०-४१); पुरुषार्थिचन्तामणि (२२५-२२९); व्रतार्क (२६५ ए-२६९ बी)।

शिवारवत: श्रावण के प्रत्येक शिनवार को शिन की लौहप्रतिमा को पंचामृत से स्नान कराना, पुष्पों, फलों आदि का दान एवं शिन के नामों का उच्चारण, यथा—कोणस्थ, पिगल, बभ्रु, कृष्ण, रौद्र, अन्तक, यम, सौरि (सूर्यं का पुत्र), शनैश्चर, मन्द (शिन की मन्द गित का द्योतक); श्रावण के चार शिनवारों के नैवेद्य हैं—चावल एवं उदं एक साथ पकाया हुआ, पायस, अम्बिली (चावल के आटे एवं मक्खन वाले दूध से बनी लप्सी) एवं पूरिका (गेहूँ की रोटी); स्मृतिकौस्तुभ (५५५-५६), इसमें स्कन्दपुराण से उद्भृत शनेश्चर का स्तोत्र है।

शनिवार को तेल से स्नान तथा किसी ब्राह्मण को तैल-दान; काले पुप्पों से शनि-पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में तेल-युक्त लोहे या मिट्टी के आघार में शनि की लौहप्रतिमा का काले वस्त्रों के एक जोड़े के साथ दान; ब्राह्मण के लिए मंत्र है 'शन्नो देवीरिमष्टये' तथा अन्य वर्णों के लिए पौराणिक मन्त्र हैं जो शनि की (जहाँ कोण नाम आया है, जो सम्भवतः यूनानी शब्द है) स्तुति के लिए वने हैं; इस ब्रत से शनि से उत्पन्न सभी कष्ट कट जाते हैं, हेमाद्रि (ब्रत० २, ५८०-५८६, भविष्योत्तर० से उद्भृत); स्मृतिकौ० (५५५)।

शमीपूजन : शमी वृक्ष की पूजा ; देखिए विजयादशमी, गत अध्याय १० ; स्मृतिकौस्तुभ (३५५)।

शम्भुवत : जो व्यक्ति एक वर्ष तक मैंस के दूघ से बने घी के दो सहस्र पलों को अग्नि में होम करता है वह नन्दी की स्थिति पा लेता है, संवत्सरव्रत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत० २, ८६६-८६७, पद्मपुराण से उद्धरण)।

शयन : विष्णु एवं अन्य देवी-देवताओं का शयन ; देखिए गत अध्याय ५ ; हेमाद्रि (काल० (८९७-९१५) ; कालविवेक (२६५-२७३)।

शब्यादान: पलंग का दान; यह कई वर्तों में होता है, यथा—मासोपवास वर्त, शर्करा-सप्तमी बादि में; स्मृतिकौस्तुभ (४१७-४१८)।

शकरासप्तमी: चैत्र शुक्ल ७ पर प्रातःकाल तिलयुक्त जल से स्नान; एक वेदी पर कुंकुम से कमल एवं बीज-कोष बनाना और उस पर 'नमः सिनतें' के साथ घूप एवं पुष्पों का अपंण; एक घट का स्थापन जिसमें एक हिरण्य-खण्ड डाल दिया जाता है, जिसके ढक्कन पर गुड़ रखा रहता है; पौराणिक मन्त्र से पूजन; पंचगव्य प्रहण; घट के पास पृथिवी पर लेटना और घीरे-घीरे सौर मन्त्र (ऋ० १।५०) का पाठ; अष्टमी को सभी उपयुक्त पदार्थों का दान तथा शकरा, घी, पायस से ब्रह्म-भोज और स्वयं बिना नमक एवं तैल का भोजन; एक वर्ष तक प्रत्येक मास में यही विधि; वर्ष के अन्त में उपकरण-युक्त पलंग, शर्करा, सोना, गाय एवं गृह (यदि सम्भव हो सके) तथा १ से १००० तक के निष्कों से बने एक स्विणम कमल का दान होना चाहिए; जब सूर्य अमृत पीने लगे तो कुछ बूँदें चावल, मुद्ग एवं ईख पर गिर पड़ी; तिथिवत; देवता सूर्य; इस वत से चिन्ता

दूर होती है, पुत्रोत्पत्ति, दीर्घाव एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है; मत्स्यपुराण (७७।१-१७); कृत्यकल्पतरु (व्रत॰ २१४-२१७); हेमाद्रि (व्रत॰ १, ६४२-६४३, पद्मपुराण ५।२१।२६३-२७९ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (१५७-१५९, मत्स्यपुराण से उद्धरण); मिविष्योत्तरपुराण (४९।१-१८) में भी मत्स्यपुराण के क्लोक पाये जाते हैं।

शाक: शाक के दस रूप हैं, थथा—जड़ें, पत्तियां, अंकुर, कलियां, फल, तना, बीज (चना आदि), छाल, पुष्प एनं छत्रक (कुकुरमुत्ता); हेमाद्रि (व्रत० १, ४७); निर्णयसिन्धु (१०५); व्रतरत्नाकर (१७)।

शाकसप्तमी: कार्तिक शुक्ल ७ रर आरम्म; प्रत्येक मास वर्ष भर; पूरे वर्ष को ४-४ मासों के तीन दलों में विभाजित करना; पंचमी को एकमक्त, षष्ठी को नक्त तथा सप्तमी को उपवास; ब्राह्मणों का मसालेदार तरकारियों से भोज और स्वयं रात्रि में भोजन; तिथिवत; सूर्य देवता; प्रत्येक चार मासों की अविघ में पुष्पों (अगस्ति, सुगन्धित पुष्पों, करवीर) से, अंजनों या लेपों (कुंकुम, श्वेत चन्दन एवं लाल चन्दन) से, घूपों (अपराजित, अगुरु, गुग्गुल) और नंवेद्यों (पायस, गुड़ रोटी, पकाया हुआ भात) से पूजा; अन्त में ब्रह्म-भोज, पुराणों का पाठ सुनना; कृत्यकल्पतरु (वत० १०३-१०७), हेमाद्रि (वत० १, ७६०-७६३); कृत्यरत्नाकर (४१७-४१९) ने भविष्यपुराण (११४७।४७-७२) को उद्धृत किया है।

शान्ता-चतुर्यो : माघ शुक्ल ४ को शान्ता कहा जाता है; उपनास एवं गणेश-पूजा; तिथिवत; देवता गणेश; होम; घृत-गुड़ से पकाये गये चावल एवं नमक का नैवेद्य; स्नान, दान एवं साधारण आहुतियों से एक सहस्र गुना पुण्य; हेमाद्रि (व्रत० १, ५१३-५१४, भविष्यपुराण १।३१।६-१० से उद्धरण)।

शान्ति-पंचमी: भाद्रपद की पंचमी पर; काले एवं अन्य चूणों से सपीं की आकृतियाँ तथा गन्च आदि से पूजा, आश्विन पंचमी पर दभों से सपीकृतियाँ बनाकर उनकी पूजा, इन्द्राणी की पूजा भी; कर्ता से सपं प्रसन्न हो जाते हैं; मन्त्र यह है—'कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा'; कृत्यकल्पतरु (व्रत०१,९५,केवल आश्विन पंचमी पर); हेमाद्रि (व्रत०१,५६३-५६४, भविष्यपुराण १।३७।१-३ एवं १।३८।१-५ से उद्धरण)।

शान्तिवत : (१) तृतीया को वेदी का निर्माण और उस पर क्वेत चावल से मण्डल बनाना, नर्रासह का आवाहन और ऐसी प्रतिमा की स्थापना जिसमें उस अवतार के सभी चिह्न पाये जायें तथा विभिन्न प्रकार के पुष्पों, बिल्वफल, तिल आदि से अलंकरण; विभिन्न उपचारों से पूजः, नृत्य, गीत एवं संगीत; प्रतिमा के समक्ष एक जलपूर्ण कलश तथा आठ दिशाओं में आठ कलशों का स्थापन; तिल, घृत आदि से विस्तृत रूप से होम तथा तर्पण एवं जप; सभी कष्टों, रोगों एवं पापों का निवारण; हेमाद्रि (व्रत० १, ४६५-४७१, गरुहपुराण से उद्धरण); (२) कार्तिक शुक्ल ५ पर; एक वर्ष तक खट्टे पदार्थों का त्याग; रात्रि में हरि-प्रतिमा का पूजन (प्रतिमा में हरि शेषनाग पर शयन करते हों और अपने एक पैर को लक्ष्मी की गोद में रखे हों); पाद से सिर तक के अंगों की पूजा, प्रत्येक अंग को आठ नागों (वासुकि, तक्षक, काल्यि, मणिभद्र, ऐरावत, घृतराष्ट्र, कर्कोटक एवं घनंजय) से सम्बन्धित करना तथा सभी नागों की प्रतिमाओं को दूध से नहलाना; तिल एवं दूध का होम; अन्त में स्विणम नागः गाय एवं हिरण्य का दान; सर्प-दंश के भय का नाश; काल्विवेक (९६-९७); हेमाद्रि (व्रत० १, ५५६-५५७), दोनों ने वराहपुराण (६०।१-८) से उद्धरण दिया है।

शाम्भरायणीवत: एक नक्षत्रवत; देवता अच्युत; सात वर्षों तक; १२ नक्षत्रों, यथा—कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य...से वर्ष के १२ मासों के नाम, यथा कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष आदि; कार्तिक में आरम्भ, नैवेद्य, प्रथम चार मासों के लिए खिचड़ी (कृशर), फाल्गुन से आगे के मासों में संयाव तथा आषाढ़ से आगे के चार मासों में पायस; बाह्मणों को नैवेद्य का ही भोज; बाह्मणी नारी शांभरायणी (जिससे बृहस्पतिको इन्द्र के पूर्व के

विषय में पूछा था) की प्रतिमा का स्थापन; कृष्ण ने इस श्रद्धेया नारी की गाथा सुनायी है; हेमाद्रि (व्रत० २, ६५९-६६५, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

शिल्यत : प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की प्रथम तिथि पर एकभक्त की विधि; एक वर्ष तक; अन्त में किपला-गोदान; वैश्वानरलोक की प्राप्ति; अग्नि० (१७६।६-७); वर्षिक० (२९, मत्स्य० १०१।९२ से उद्धरण)।

शितायत: चतुर्थी पर एकभक्त विधि से भोजन, सर्वप्रथम एक गृहस्य और उसके उपरान्त ७ घरों को नमक, घनियाँ, जीरा मिरच, हींग, सोंठ एवं मनःशिला के साथ हल्दी देना; इससे समृद्धि की प्रांप्ति; हेमाद्रि (व्रत०१,५३१-५३२; भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (९६-९८)।

शिरोक्त : विसष्ठवर्मसूत्र २६। १२; मुण्डक उ० ३।२।१०, इसके भाष्य में शंकराचार्य कहते हैं कि यह अथर्ववेदियों में प्रचलित, अग्नि (ज्ञान के प्रतीक) को सिर पर घारण करने की एक विधि है।

शिवकृष्णाष्टमी: मार्गशीर्षं कृष्ण अष्टमी पर; तिथिवत; देवता शिव; एक वर्ष तक प्रत्येक अष्टमी पर शिवलिंग की पूजा; प्रत्येक मास शिव के विभिन्न नाम एवं कार्तिक तक विभिन्न पदार्थों का सेवन; सभी पापों से मुक्ति; भविष्योत्तरपुराण (७५।१-३०), व्रतप्रकाश (पाण्डुलिपि १४१ बी-१४३ ए)।

शिवचतुर्वशीवत: मार्गशीर्ष शुक्ल १३ (अमान्त गणना के अनुसार) पर एकभक्त; शिव-प्रार्थना; चतुर्दशी को उपवास; श्वेत कमलों, गन्य आदि से पाद से लेकर सिर तक शंकर एवं उमा की पूजा; यही कार्तिक १४ तथा अन्य चतुर्दशियों पर किया जाना चाहिए; मार्गशीर्ष से लेकर आगे के सभी १२ मारों में विभिन्न नामों से शंकर को प्रणाम; प्रत्येक मास में १२ पदार्थों में से (यथा—गोमूत्र, गोवर, दूघ, दही आदि) किसी एक का पान; विभिन्न पुष्पों का प्रयोग, यथा—मन्दार, मालती आदि; एक या १२ वर्षों तक कार्तिक में; वर्ष के अन्त में एक नील वृष का उत्सर्ग; किसी विद्वान् एवं सुचरित्रवान् बाह्मण को घट के साथ पलंग का दान; एक सहस्र अश्वमेघों का फल, महापातक भी कट जाते हैं; मत्स्यपुराण (९५१५-३८); कृत्यकल्पतह (वृत्त ३७०-३७४); हेमादि (वृत २, ५८-६१); कृत्यरत्नाकर (४६६-४७१); निर्णयसिन्धु (२२६)।

शिवनक्तवत : (१) कृष्ण ८ या १४ पर नक्त-विधि; इहलोक में आनन्द एवं मृत्यूपरान्त शिवलोक; कृत्यकल्पतरु (३८६); हेमाद्रि (व्रत० २, ३९८, भविष्यपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष तक प्रत्येक पर्व पर नक्त; एक वर्ष तक शिव-पूजा; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३८६); (३) अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी एवं चतुर्दशी पर कर्ता केवल एकमक्त रहता है,पृथिवी पर रखा भोजन करता है; एक वर्ष तक; कृत्यक० (व्रत ३८६-३८७)।

शिवनसन्न-पुरुषप्रत: फाल्गुन शुक्ल में जब हस्त नक्षत्र हो तो उपवास करने में असमर्थ रहने वाले को सस प्रत का संकल्प करना चाहिए; यह नक्षत्रव्रत है; शिव देवता; पाद से लेकर सिर तक शिव के अंगों की पूजा, शिव के विभिन्न नामों का प्रयोग हस्त (जिस पर यह आरम्भ होता है) एवं अन्य २६ नक्षत्रों से सम्बन्धित होता है; नक्त-विधि, किन्तु तेल एवं नमक का प्रयोग नहीं; पात्र में घी के साथ एक प्रस्थ चावल का दान, पारण में शिव एवं उमा की स्विणिम प्रतिमाओं तथा उपकरणों से युक्त पलंग का दान; हेमादि (व्रत० २, ७०३-७०६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शिवयोगयुक्त शिवरात्रियत : शिव योग के साथ माघ कृष्ण १४ पर; तिथित्रत; शिव देवता; उस राजा की कथा जो पूर्व जन्म में चोरी की प्रवृत्ति वाला था; हेमाद्रि (व्रत० २, ८७-९२, स्कन्द० से उद्धरण)।

िश्वरस्त्रत : हेमन्त (मार्गशीर्ष एवं पौष) एवं माघ में एकभक्त; माघ के अन्त में विभिन्न रंगों से सिज्जित एवं चार वैलों वाले रथ का निर्माण; एक आढक चावल के आटे से एक लिंग बनाकर रथ में स्थापित करना; रात्रि में जन-मार्ग पर रथ को हाँककर शिव मन्दिर में लाना; प्रकाश एवं नाच-गान के साथ जागर;

दूसरे दिन प्रातः शिवभक्तों, अंघों, दरिद्रों एवं दलितों को भोजन; यह ऋतुव्रत है; शिव को रथ दान; हेमाद्रि (व्रत० २, ८५९-८६०, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शिवरात्रिवत : देखिए 'महाशिवरात्रि' के अन्तर्गत।

शिविलगायत : शिव-लिंग पर श्वेत चन्दन का लेप, खिले श्वेत कमलों से पूजा एवं प्रणाम; एक अँगूठे के वराबर छोटे लिंग को दक्षिणामूर्ति के समीप स्थापित कर दिल्व दलों से पूजा, घूप आदि अन्य उपचारों का अर्पण; सभी पापों से मुक्ति एवं शिवलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ८८७-८८९, शिवधर्मोत्तर पुराण से उद्धरण)।

शिवस्रत : (१) आषाढ़ पूर्णिमा से चार मासों तक नख-परित्याग एवं बैंगन का सेवन वर्जित; कार्तिक पूर्णिमा पर एक स्वर्णिम घट को घी एवं मघु से भरकर दान; कृत्यकल्पतर (व्रत० ४४०-४४१, मत्स्यपुराण ११।११-१२ से उदरण); (२) मार्गशीर्ष से कार्तिक तक शिव-पूजा; शिव के समक्ष प्रत्येक मास में कप से आटे से बनी निम्नलिखित वस्तुओं का दान-घोडा, गज, रथ, ११ बैलों का एक झण्ड; एक चन्द्र-ज्योति (या कर्प्र का) घर, जिसमें दास-दासियाँ हों तथा अन्य गृहस्थी के उपकरण हों, धान से पूर्ण सात पात्र, दो सी फल एवं गुग्गुल, दान का एक 'मण्डल,' जिसमें खाद्य पदार्थ एवं चित्र हों, पूष्पों से निर्मित एक यान (गाड़ी) ; गुग्गुल घूप एवं देवदार, विल्व के बीज, घी एवं अगुरु भाद्रपद मास में जलाये जाते हैं; आश्विन मास भर अर्क की पतियों सं बने दोने में दूध एवं घी; एक दोने में ईख का रस जो वस्त्र से ढँका रहता है; वर्ष के अन्त में शिवमक्तों को भोज एवं पेय तथा सोने एवं वस्त्र का दान; हेमाद्रि (व्रतं २, ८१९-८२१, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (३) पीष से मार्गशीर्थ तक दोनों पक्षों की चतुर्दशी या अष्टमी या पुणिमा पर; विशिष्ट पूजा, यथा-एक प्रस्थ जौ, दूध एवं घी से पूर्ण शर्करा का नैवेदा; एक वैल के साथ एक वितस्ति ऊँचाई की जौ के आटे की कपिला गौ का निर्माण; माघ में ११ बाह्मणों एवं ४ गैंडों को खिलाना, फाल्गुन में नकुल को खिलाना, चैत्र में आटे की शिव-प्रतिमा, इसी प्रकार सभी मासों में विभिन्न पदार्थों का आटे से निर्माण; एक वर्ष तक; हेमाद्रि (व्रत० २, ३९८-४००, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (४) दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर उपवास एवं अपराह्ण में शिव-पूजा; जप एवं होम; गुरु-सम्मान; पंचगव्य के तीन चुलुकों (चुल्लुओं) का पान; दूसरे दिन केवल हिवष्य भोजन ; पूरे जीवन भर करना ; शिवलोक में तीन पीढियों का निवास ; हेमाद्रि (व्रत० २, ३४३, कालोत्तरपूराण से उद्धरण); (५) पौष में आरम्भ ; गेहूँ, चावल एवं दूध के पदार्थों को नक्त-विधि से खाना; दोनों पक्षों की अष्टमी पर उपवास, भूमि-शयन ; पूर्णिमा पर घृत से रुद्र-स्नान ; इसे एक वर्ष के लिए मार्गशीर्ष तक करना; विभिन्न मासों में विभिन्न पदार्थों का उपयोग; लिंगपुराण (८३।१३-५४); (६) एक अयन से दूसरे अयन (६ मासों) तक; पुष्प एवं घी का अर्पण; अन्त में पुष्पार्पण, पायस एवं घी से ब्रह्म-भोज; घृतघेनुं का दान; इससे घन एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति; कृत्यरत्नाकर (२१९, अग्निपुराण से उद्धरण); (७) आषाढ़ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक नाखून न कटाना; अन्त में सोने के साथ मधु एवं घृत से पूर्ण एक घट का दान; कर्ता रुद्रलोक जाता है; कृत्यरत्नाकर (२१९-२२०); वर्षिक्रयाकीमुदी (२९२) 1

शिववतेषु-पूजा : वतराज (पृ० ५७-६१) ने शिव की सभी पूजाओं की विधि का उल्लंख किया है।

शिवशक्तिमहोत्सव-म्रत : काशी या श्रीशैल जैसे शिवक्षेत्र में शिव एवं शक्ति के सम्मान में अष्टमी-युक्त नवमी पर उत्सव; कालनिर्णय (१९७)।

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

शिवा-चतुर्यों : माद्रपद शुक्ल ४ को शिवा कहा जाता है; उस दिन स्नान, दान, उपवास एवं जप से सीगुना पुण्य होता है; तिथिवत; देवता गणेश; हेमाद्रि (व्रत० १, ५१२-५१३, भविष्यपुराण १।३१।१-५ से उदरण)।

शियोपासनवत : दोनों पक्षों की अष्ट्रमी एवं चतुर्दशी पर उपवास एवं शिव-पूजा; एक वर्ष तक; कर्ता को सत्र करने का पुण्य प्राप्त होता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३८५-३८६)।

शिवपवित्रवेत : आषाढ़ पूर्णिमा पर शिव-पूजा; शिव को यज्ञोपवीत-दान एवं शिवभक्तों को भोजन; पुनः कार्तिक पूर्णिमा पर शिव-पूजा; संन्यासियों को वस्त्र-दान एवं दक्षिणा; हेमाद्रि (व्रत्त० २, ८४३, शिवधर्मों-तरपुराण से उद्धरण)।

शीतलावत: श्रावण कृष्ण ७ पर कलश स्थापित कर उस पर शीतला की प्रतिमा का पूजन एवं आठ वर्ष या उससे कम अवस्था की ७ कुमारियों को भाजन, इससे वैधव्य से मुक्ति, वरिद्रता का नाश, पुत्रोत्पत्ति आदि का लाभ; व्रतार्क (पाण्डुलिपि १११-११३); अहल्याकामधेनु (पाण्डुलिपि ४३८ बी-४४० बी)। कुछ लोग इसे श्रावण शुक्ल ७ पर करते हैं। यह केवल नारियों के लिए है। नैवेस केवल घी एवं दही का होता है।

शीतलाष्टमी: दैत्र कृष्ण ८ पर शीतला को माता माई (चेचक की देवी) कहा जाता है; शीतला-पूजा; रात-दिन आठ घृत-दीपों से पूजा तथा गाय के दूध एवं उशीर (एक प्रकार की सुगन्धित जड़, सस) से सुगन्धित जल छिड़कना; गदहा, झाडू एवं सूप का पृथक्-पृथक् दान; कृत्यतत्त्व (४६२); अहल्याकामधेनु (पाण्डुलिपि, ५५८ बी-५६१ ए); गदहा शीतला का वाहन है; शीतला नंगी दर्शायी गयी हैं, उनके हाथ में झाडू एवं घट तथा सिर पर सूप रहता है; देखिए फार्बेस रसमाला (जिल्द २, पृ० ३२२-३२५) एवं ए० सी० सेन कृत वंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर' (शीतला-मंगल किवता, पृ० ३६५-३६७)।

शीतलासप्तमी : श्रावण कृष्ण ७ पर; व्रतराज (२३७-२४१)।

शील-वत: (१) यह शिवव्रत ही है; कृत्यकल्पतर (व्रत० ४४४-४४५, मत्स्यपुराण १०१।३८-३९ से उद्धरण); (२)तृतीया को बिना पका भोजन (सम्भवतः) एक वर्ष तक; तिथिव्रत; देवता शिव; अन्त में गोदान; कर्ता पुनः जन्म नहीं लेता; कृत्यकल्पतर (वृत०४४९), हेमाद्रि (वृत०१,४८४, पद्मपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।७०) ने इसे 'श्रेयोव्रत' कहा है; मत्स्यपुराण (१०१।३४) के मत से शीलव्रत पृथक् है।

शीलावाप्तिवत : आग्रहायणी (मार्गशीर्ष) पूर्णिम। के उपरान्त एक मास तक वाराह की पूजा; घी से वाराह-प्रतिमा का स्नान, अग्नि में घृतार्पण, नैवेद्य; घृत-दान; पौष पूर्णिमा एवं इसके दो दिनों पूर्व उपवास एवं एक ब्राह्मण को घृतपूर्ण पात्र एवं सोने का दान; कर्ता को शील (चरित्र एवं नैतिकता) की प्राप्ति; विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।२०८।१-५); हेमाद्रि (व्रत० २, ७८६-७८७)।

शुक्रवत : जब शुक्रवार ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त होता है तो नक्त-विधि से रहना; जब सप्तमी को ऐसा शुक्रवार हो तो पीतल या रजत के पात्र में शुक्र की स्वींणम प्रतिमा रखकर वस्त्रों, चन्दन-लेप से पूजा की जाती है; प्रतिमा के समक्ष पायस एवं घी रखा जाता है और उसे 'शुक्र दुष्ट ग्रह-प्रभावों को दूर करें तथा स्वास्थ्य एवं दीघं आयु दें' नामक प्रार्थना के साथ प्रतिमा सहित दान दे दिया जाता है; वारवत; देवता शुक्र; हेमाद्रि (वत० २, ५७९-५८०, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); और देखिए अग्निपुराण (१९५।५)।

शुद्धि-त्रत : शरद् के अन्तिम ५ दिनों पर या बारह मासों की एकादिशियों पर; तिथिवत; देवता हिर; जब समुद्र मथा गया तो ५ गौ उदित हुई; उनसे पाँच पवित्र वस्तुएँ उत्पन्न हुई, यथा—गोबर, नो-रोचना, दूप, मूत्र, दही एवं घृत; गोबर से श्रीवृक्ष नामक बिल्ववृक्ष उगा, क्योंकि उस पर लक्ष्मी

रहती हैं; गोरोचना से सभी शुभकामनाएँ उत्पन्न हुईं, गोमूत्र से गुग्गुल उत्पन्न हुआ, गोदुग्ध से विश्व की सम्पूर्ण शिक्त उदित हुईं, वही से सभी शुभ वस्तुएँ एवं घृत से सभी प्रमृद्धि उत्पन्न हुईं; अतः दूध, दही एवं घृत से हिर-स्नान एवं गुग्गुल, दीप आदि से हिरिपूजा की जाती है, पूजा अगस्त्य-पुष्पों से भी की जाती है; कर्ता को विष्णुलोक-प्राप्ति एवं नरकवासी पितरों को स्वर्ग-प्राप्ति, जलघेनु, घृतघेनु, मधुधेनु का दान; सभी पापों से मुक्ति; हेमादि (वृत्त० १, ११५६-११५८, अग्निपुराण से उद्धरण)।

शुक्लद्वादशी : देखिए नीचे शुभद्वादशी।

शुमद्वादशी: मार्गशीर्ष शुक्ल १ को आरम्भ; १ से ९ तक एक भक्त; १० को स्नानोपरान्त मध्याह्व में केशव-पूजा; दोनों पक्षों की द्वादशी पर (मार्गशीर्ष से चार मासों तक) तिल एवं हिरण्य का दान; चैत्र से चार मासों में भूसी निकाले हुए अन्नों एवं सोने से पूर्ण पात्रों का दान; इसी प्रकार अन्य चार मासों में गोविन्द-पूजा; कार्तिक शुक्ल १२ पर सात पातालों, पर्वतों से युक्त पृथिवी की स्विणम प्रतिमा का निर्माण और उसके समक्ष हिर-प्रतिमा स्थापन एवं हिर-पूजा; जागर (रात भर जागना), दूसरे दिन प्रातः २१ ब्राह्मणों में से प्रत्येक को एक गाय, एक वैल, एक जोड़ा वस्त्र, अँगूठी, सोने का कंगन एवं कर्णफूल, एक ग्राम (यदि कर्ता राजा हो) का दान तथा कृष्ण १२ पर पृथिवी की रजत-प्रतिमा बनाकर उसका दान; कर्ता को समृद्धि एवं विष्णु-लोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पतरु (वत० ३४०-३४३); हेमाद्रि (वत० १, ११०१-११०३, वराहपुराण ५५।१-५९ से उद्धरण)।

शुभसप्तमी : आदिवन शुक्ल ७ पर; किपला गाय की पूजा तथा ता ख्रपात्र में एक प्रस्थ तिल तथा एक स्विणिम बैल का, वस्त्रों, पुष्पों एवं गुड़ का 'अर्यमा प्रसन्न हों' के साथ दान; तिथित्रत; देवता अर्यमा; प्रति मास एक वर्ष तक; मत्स्यपुराण (८०।१-१४); कृत्यकल्पत्र (त्रत० २३१-२२३); हेमाद्रि (त्रत० १, ६४८-६५०, पद्मपुराण ५।२१।३०७-३२१ से उद्धरण); मिवष्योत्तरपुराण (५१।१-१४)।

शूलप्रदानवृत: एक वर्ष तक सभी अमावास्याओं पर उपवास; तिथिवृत; वर्ष के अन्त में आट से निर्मित विश्वल तथा सोने या चाँदी का कमल शिव को अर्पण और उसे अपने सिर पर रखना तथा दान; अहिंसा के नियमों का पालन, ब्रह्मचर्य, भूमि-शयन आदि का पालन; हेमाद्रि (व्रत० २, २५२-२५३, शिवधमों त्तरपुराण से उद्धरण)।

शैलवतः (१) पर्वत-पूजा; इच्छा-पूर्ति एवं आनन्द-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९६, विष्णुधर्मोत्तर-पुराण से उद्धरण); (२) चैत्र शुक्ल १ से सात दिनों तक प्रति दिन सात पर्वतों, यथा—महेन्द्र, मलय, सद्धा, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र की पूजा; जौ से होम, केवल जौ का सेवन; एक वर्ष तक; अन्त में २० प्रस्थ जौ का दान; कर्ता राजा शत्रुओं पर विजय एवं पृथिवी-राज्य पाता है; हेमादि (व्रत० १, ४६३-४६४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६१।१-७ से उद्धरण)।

शैवनक्षत्रवतः फाल्गुन शुक्त में हस्त-नक्षत्र से आरम्भ; नक्त-विधि किन्तु तेल एवं नमक का त्याग; शिव-पूजन, पाद से सिर तक हस्त से आरम्भ कर सभी नक्षत्रों को समन्वित कर 'शिव।येति च हस्तेन पादौ सम्पूजयेद् विभोः' के रूप से पूजा; सभी नक्त-दिनों में घृतपूर्ण पात्र के साथ एक प्रस्थ चावल का दान; पारण पर शिव एवं उमा की प्रतिमाओं, एक सुसज्जित पलंग तथा गाय का दिन; नक्षत्रवत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत० २, ७०३-७०६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शैवमहाव्रतः (१) पीप ८ से आरम्भ; लगातार नक्त-विधि, किन्तु दोनों पक्षों की अष्टमी पर उपवास; दिन में तीन बार शिव-पूजा, होम, भूमि-शयन; पौष पूर्णिमा पर घी से महापूजा; आठ ब्राह्मणों को भोज, एक

जोड़ी गायों एवं एक कपिल बैल का दान; माघ एवं आगे के मासों में मार्गशीर्ष तक विभिन्न मोजनों से नक्त-विधि; मासवत; हेमाद्रि (व्रत० २,८४३-८४८); (२) कार्तिक में नक्त-विधि; मास के अन्त में गुड़ एवं घृत-युक्त तिल-रोटी का अर्पण; अष्टमी एवं चतुर्दशी को उपवास; मार्गशीर्ष से आगे के मासों में शिव से सम्बन्धित पदार्थों का शिव-प्रतिमा को अर्पण; मासव्रत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत०२,८४८-८५३, शिवधर्मपुराण से उद्धरण)।

शैवोपवासवत : एक वर्ष तक प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर उपवास; देवता शिव; हेमाद्रि (वत० २, ३९७, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

शौर्यवत: आश्विन शुक्ल ७ पर संकल्प, ८ पर उपवास, ९ पर आटे से बना भोजन एवं दुर्गा-पूजा तथा ब्रह्म-भोज; एक वर्ष तक यही विधि; तिथिवत; देवता दुर्गा; अन्त में कुमारियों को भोजन तथा उन्हें वस्त्र आदि का दान तथा 'देवी मुझ पर प्रसन्न हों' से प्रार्थना; बिना विद्या पढ़े ज्ञान की उत्पत्ति, दुर्बल व्यक्ति शौर्य वाला हो जाता है, लुप्त राज्य प्राप्त हो जाता है। वराहपुराण (६४,१-६); कृत्यकल्पतरु (व्रत० २७३); हेमादि (व्रत० १,९५७-९५८); कृत्यरत्नाकर (३६४-३६५)।

श्यामामहोत्सव : देखिए ऊपर 'द्राक्षा-भक्षण'; हेमाद्रि (व्रत० रं, ९१५, आदित्यपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (३०३-३०४)।

श्येनग्रासनिविध : कार्तिक शुक्ल ४,८,९ या १४ पर; स्त्रियों के लिए; कृत (सत्य) युग में नारियाँ देवी तक पहुंचाने के लिए श्येन (बाज) को एक ग्रास देती थीं; किन्तु आजकल ऐसा नहीं किया जाता, अब नारियाँ भोजन अपने पितयों के पास ले जाती हैं और उसके उपरान्त खाती हैं; हेमाद्रि (ब्रह्ट० २, ६४१-६४३, ब्राटित्यपुराण से उद्धरण)।

श्रवणद्वादशी: (१) भाद्रपद शुक्ल १२ को जब कि श्रवण-मक्षत्र हो; एकादशी को उपवास; द्वादशी को गंगा-यमुना के पिवत्र जल से घोये गये मिट्टी के पात्र में भात एवं दही का दान; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३४८, वायुपुराण से उद्धरण); (२) श्रवण-नक्षत्र में १२ पर उपवास; जनार्दन-पूजा; १२ द्वादिशयों का पुण्य फल; यदि श्रवण-द्वादशी बुधवार को पड़े तो उसे महान् कहा जाता है; प्रिथिवत; देवता विष्णु; हेमाद्रि (व्रत० १, ११६२-११७१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।१६१।१-८ से उद्धरण); अग्निपुराण के १५ श्लोक पाये जाते हैं; अधिकांश निबन्ध इसका विस्तृत वर्णन उपस्थित करते हैं; हेमाद्रि (काल० २८९-२९८); कालविवेक (४५९-४६४); निर्णयसिन्धु (१३७-१४०); स्मृतिकौस्तुभ (२४०-२४९); पद्मपुराण (६।७०) में इसकी गाथा एवं माहात्म्य है; और देखिए गरुद्धुराण (१, अध्याय १३६)।

श्राद्धवत : केशव-प्रतिमा के समक्ष शिव-प्रतिमा पर चन्दन-लेप लगाना तथा जलघेनु एवं घृतचेनु का दान; सभी पापों से मुक्ति एवं शिव-लोक-प्राप्ति; संवत्सर-व्रत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत० २, ८६३, पद्मपुराण से उद्धरण)।

श्रावण-कृत्य : कृत्यकल्पत्र (नैयतकालिक, ३९५-३९७); कृत्यरत्नाकर (२१८-२५४); वर्षिक्रयाकौमुदी (२९२); कृत्यतत्त्व (४३७-४३८); निर्णयसिन्घु (१०९-१२२); स्मृतिकौस्तुभ (१४८-२००); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (२१५-२२२)।

श्रावण में वहुत-से महत्वपूर्ण व्रत किये जाते हैं, यथा—नागपंचमी, अशून्यशयनव्रत,कृष्ण-जन्माष्टमी जिनका उल्लेख यहाँ पर यथास्थान किया गया है। यहाँ पर फुछ वाते दी जा रही हैं। ऐसी धारणा है कि उन निदयों को छोड़कर जो सीघे समृद्र में गिरती हैं, अन्य निदयाँ उस समय रजस्वन्ता (मासिक धर्म में) कही जाती हैं जब कि सूर्यं कर्क एवं सिंह राशि में होता है, उस समय उनमें स्नान नहीं किया जाता, जो घाराएँ १००८ घनु लम्बी नहीं होतीं, वे निदयाँ नहीं कहलातीं, वे केवल छिद्र या गर्त कहलाती हैं। देखिए गोभिलस्मृति (१।१४१-१४२); निर्णयसिन्धु (१०९-११०); (एक घनु ४ हाथ)। श्रावण में कितपय देव विभिन्न तिथियों पर पित्रारोपणव्रत (देखिए इसी सूची में) पर बुलाये जाते हैं; श्रावण में प्रति सोनवार को उपवास करना चाहिए या नक्त-विधि करनी चाहिए (स्मृतिकौस्तुभ १३९); दोनों पक्षों की नविभयों पर कौमारी नाम से दुर्गा की पूजा करनी चाहिए (कृत्यरत्नाकर २४४, स्मृतिकौस्तुभ २००); तिमल प्रदेशों में श्रावण कृष्ण १ को सभी वैदिक बाह्मण गायत्री का जप १००८ वार करते हैं। श्रावण की अमावास्या को कुशोत्पाटिनी कहा जाता है क्योंकि उस दिन कुश एकत्र किये जाते हैं (कृत्यरत्नाकर ३१६, स्मृतिकौस्तुभ २५२)। इम अमावास्या पर अपुत्रवती नारियाँ या वे नारियाँ, जिनकी सन्तान वचपन में ही मर जाती है, उपयास करती हैं, ब्रह्माणी एवं अन्य माताओं की प्रतिमाओं के लिए आठ कलश स्थापित करती हैं।

श्रावणिकावत: मार्गशीर्ष शुक्ल ८ एवं १४ पर; स्नान करके मध्या ह्न के समय कर्ता को कई नारियों या एक नारी (यदि वह धनहीन हो) या सुचरित्र ब्राह्मण सगोत्र नारियों एवं एक विद्वान् एवं सुचरित्रवान् ब्राह्मण को आमन्त्रित करना चाहिए, उनके चरणों को पखारना चाहिए, उन्हें अर्घ्य देना चाहिए, गन्ध आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए तथा भोजन देना चाहिए; नारियों के समक्ष सूतों एवं मालाओं से आवृत १२ जलपूर्ण घट रखे जाने चाहिए, अपने सिर एक घट रखना चाहिए तथा केशव का घ्यान करना चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए कि वह पितृ-ऋणों, देव-ऋणों एवं मनुष्य-ऋणों से मुक्त हो जाये; नारियाँ आशीर्वचन देती हैं - ऐसा ही हो'; तिथिव्रत; देवता श्रावण्य नामक देवियाँ, जो ब्रह्मा से जाकर कर्ता जो कुछ अच्छा या बुरा करता है, कहती हैं; हेमाद्रि (व्रत० २, १३४-१३९, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

श्रोपंचमी : (१) मार्गशीर्ष शुक्ल ५ पर लक्ष्मी की स्वर्णिम, रजत, ताम्र, काष्ठ या मिट्टी की प्रतिमा का निर्माण या किसी वस्त्र-खण्ड पर उसका चित्र खींच कर पुष्पों से पूजा तथा आपादमस्तक पूजा; पतिव्रता नारियों का कुंकुम, पुष्पों, भोजन एवं प्रणाम आदि से सम्मान; एक घृतपूर्ण पात्र के साथ एक प्रस्थ चावल का दान तथा 'लक्ष्मी मुझसे प्रसन्न हों' ऐसा कहना; प्रत्येक मास में लक्ष्मी के विभिन्न नामों से ऐसा ही एक वर्ष तक करना; अन्त में एक मण्डप में लक्ष्मी-प्रतिमा-पूजन, प्रतिमा का एक गाय के साथ दान तथा साफल्य के लिए श्री से प्रार्थना; २१ पीढ़ियों तक समृद्धि; हेमाद्रि (व्रत० १, ५३७-५४३, भविष्योत्तरपुराण, अध्याय ३७।१-५८ से कुछ विभिन्नता के साथ उद्धरण); (२) सफलता के लिए अन्य वृत है श्रवण-नक्षत्र या उत्तराफाल्गुनी एवं सोमवार के साथ पंचमो पर; चौथ पर एकभक्त; दूसरे दिन बिल्व वृक्ष की पूजा, जिसके नीचे आठ दिशाओं में आठ कलश रखे रहते हैं; इन कलशों में पवित्र जल, रत्न, दूर्वा, श्वेत कमल आदि छोड़े जाते हैं; लक्ष्मी की प्रार्थना एवं पूजा; कलश के मध्य में नारायण का आवाहन एवं नारायण-प्रतिमा-पूजन; एक वर्ष तक या जब तक सफलता न प्राप्त हो जाये; हेमाद्रि (व्रत० १, ५४६-५५२, गरुड्पुराण से उद्धरण); (३) माघ शुक्ल ५ पर जलपूर्ण पात्र में या शालग्राम प्रस्तर पर लक्ष्मी-पूजा, क्योंकि उस दिन वे विष्णु के आदेश पर इस विश्व में आयीं; भुजबलनिबन्ध (पु० ३६३, पाण्डुलिपि) के मत से पूजा कुन्द पुष्पों से होती है; कृत्यतत्त्व (४५७-४५८); पुरुषार्थचिन्तामणि (९८) के मत से पूजा माघ शुक्ल ५ को किन्तु स्मृतिकौस्तुभ (४७९) के मत से उस दिन काम एवं रित की पूजा होती है और वसन्तोत्सव किया जाता है; (४) चैत्र शुक्ल ५ पर लक्ष्मी-पूजा; जीवन भर समृद्धि की प्राप्ति; नीलमतपुराण (पृ० ६२, श्लोक ७६६-७६८); स्मृतिकौस्तुभ (९२)।

श्रीप्राप्तिवत: (१) हेमाद्रि (व्रत० १, ५७५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण) के मत से जो कमल में रखकर लक्ष्मी-प्रतिमा का पूजन करता है, वह एक यज का फल प्राप्त करता है; (२) वैशाख पूर्णिमा के उपरान्त पहली तिथि पर प्रारम्भ; एक मास तक पुष्पों-फलों आदि से नारायण एवं लक्ष्मी की पूजा; धान एवं विल्व फल से होम; दूध एवं दूध से बने पदार्थों से ब्रह्म-भोज; ज्येष्ठ में तीन दिनों तक उपनास; सोने एवं दो वस्त्रों का दान; हेमाद्रि (व्रत० २, ७५१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।२११।१-५ से उद्धरण)।

श्रीवृक्षनवमी: भाद्रपद शुन्ल नवमी पर; सूर्योदय पर तिल, गेहूँ से बने पदार्थों आदि से बिल्व पेड़ की सात वार पूजा; उससे प्रार्थना करना एवं उसे प्रणाम करना; उस दिन बिना आग पर पके भोजन (यथा दही, फल आदि) को भूमि पर रखकर खाना, तेल एवं नमक न खाना; तिथिवत; देवता लक्ष्मी का निवास बिल्व; पीड़ा-क्लेश से मुनित एवं धन-प्राप्ति का लाभ; हेमाद्रि (व्रत० १, ८८७-८८८; भविष्योत्तरपुराण ६०।१-१० से उद्धरण)।

श्रीव्रत: (१) चैत्र शुक्ल पंचमी तिथि पर केवल एक वार लक्ष्मी-पूजन से एक वर्ष के पूजन के लाभ प्राप्त होते हैं; हैमाद्रि (व्रत० १ ५७५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से एक क्लोक); (२) चैत्र शुक्ल तृतीया पर भात एवं घृत का सेवन, एवं रात्रि में भूमि-शयन; चतुर्थी पर घर के वाहर (नदी आदि में) स्नान, पंचमी पर वास्तविक या निर्मित कमल पर घृत-दोप से लक्ष्मी-पूजन, श्रीसूक्त से कमल के दलों तथा विल्वपत्रों के माथ होम; पर्याप्त दूघ एवं घृत से ब्रह्म-भोज; हविष्य भोजन; एक वर्ष तक; शौर्य, सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ४६६-४६८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१५४।१-१५ से उद्धरण)।

षर्-तिला-द्वादशी: फाल्गुन कृष्ण १२ पर जब श्रवण-नक्षत्र हो तिल से देवों की पूजा; तिल का होम, मन्दिरों में तिल से दीप जलाना, निल-दान, पितरों को निल-युक्त जल से तर्पण देना तथा तिल खाना; बिष्णु ने इस तिथि पर उपवास किया था तथा अपने पितरों को तिल एवं पिण्ड दिये थे; कृत्यरत्नाकर (५१९)।

षट्-तिली: जो माघ शुक्ल एकादशी पर, जब कि चन्द्र मृगशिरा नक्षत्र में हो, उपवास करता है तथा द्वादशी को तिल-सम्बन्धी ६ कियाएँ करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है। वर्ष कियाकौ मुदी (५०५); तिथितत्त्व (११३-११४); गदाघरपद्धित (कालसार, १५१)। तिल के ६ कृत्य ये हैं—शरीर पर तिल जवटना; तिलयुक्त जल से स्तान, तिल से होम, तिल-दान, तिल-जल से पितृ-तर्पण एवं तिल-भोजन; मिलाइए कृत्यरत्नाकर (५१९)।

षडक्षर-मन्त्र : महाश्वेता मन्त्र में ६ अक्षर हैं, हेमाद्रि (व्रत० २, ५२१); दूसरा है 'खलोल्काय नमः' कृत्यकल्पतरु (व्रत० ९)।

षण्मतिव्रत : चैत्र शुक्ल ६ पर ६ ऋतुओं की पूजा का आरम्भ; ऋतु-व्रत; देवता ऋतुएँ; कम से फलों एवं पुष्पों, रूक्ष वस्तुओं (ग्रीष्म में), मीठी वस्तुओं (वर्षा में), भोजन एवं लवण (शरद में), कटु (तिव्रत) एवं अम्ल (खट्टे) पदार्थों (हेमन्त में), तीक्षण पदार्थों (शिशिर में) से ६ ऋतुओं का सम्मान करना; प्रत्येक षष्ठी पर उपवास, नक्त-विधि (५ प्रकार के पदार्थों का त्याग, केवल ऋतु-सम्बन्धी पदार्थों का ही सेवन); एक वर्ष तक; हेमाद्रि (त्रत० २, ८५८-८५९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१५६।१-७ से उद्धरण)।

षष्टिवत : मत्स्यपुराण (१०१।१-८३) में ६० व्रतों का उल्लेख है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४३९-४५१); इन्हें रुद्र ने अपनी पत्नी को बताय। है।

षष्ठीदेवी : ब्रह्मवैदर्त (२।४३।३-७२) में आया है कि पष्ठी, मंगलचण्डी एवं मनसा प्रकृति के अंश हैं, पष्ठी बच्चों की देवी हैं, उन्हें माताओं में देवसेना कहा गया है, वे स्कन्द की पत्नी हैं, वे बच्चों की रक्षा करती हैं,

उन्हें दीर्घ जीवन देती हैं; इस पुराण में सूतिका-गृह में शिशु-जन्म के छठे दिन देवी-पूजा की कथा आयी है; सूर्तिका-पष्ठी के लिए देखिए कृत्यतत्त्व (४७१-४७५)।

षष्ठीव्रतः (१) पंचमी को उपवास; ६ या ७ को सूर्यपूजा; अश्वमेष-यज्ञ का लाभ; हेमाद्रि (व्रत॰ १, ६२७, ब्रह्मपुराण से उद्धरण); (२) शुक्छ ६ पर जब मंगल होता है; विभिन्न मासों में व्रत करना; अक्षय फल की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत॰ १, ६२७-६२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

षष्ठीवत (बहुवचन में) : भविष्यपुराण (१।३९-४६), भविष्योत्तरपुराण (अध्याय ३८-४२), कृत्य-कल्पतरु (व्रत० ९८-१०३); यहाँ केवल ३ व्रत हैं; हेमाद्रि (व्रत० १,५७७-६२९, यहाँ २१ व्रतों का उल्लेख है); हेमाद्रि (काल, ६२२-६२४); कालनिर्णय (१८९-१९२); तिथितत्त्व (३४-३५); समयमयूख (४२-४३); पुरुषार्थचिन्तामणि (१००-१०३); व्रतरत्नाकर (२२०-२३६)।

जय पट्टी पंचमी या सप्तमी से युक्त हो तो सामान्य नियम यह है कि सप्तमी से युक्त पट्टी पर वृत एवं उपवास करना चाहिए, केवल स्कन्दपट्टी में पंचमी से युक्त पट्टी को वरीयता मिलती है; कालनिर्णय (१९०); निर्णयामृत (४८); समयमयूख (४२); पुरुषार्थचिन्तामणि (१००-१०१); पट्टी कार्तिकेय (या स्कन्द)को प्रिय है, क्योंकि उस तिथि पर उनका जन्म हुआ था और उसी तिथि पर वे देवों के सेनापित बनाये गये थे; भविष्यपुराण (११३९।१-१३); हेमादि (काल० ६२२, ब्रह्मपुराण से उद्धरण); कृत्यकल्पतरु (नैयतकालिक, ३८२-३८३)।

कुछ बातें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। स्कन्द पाठी के स्वामी हैं और प्रति पष्ठी पर सुगंधित पुष्पों, दीपों, वस्त्रों, काक के खिलौनों, घण्टो, दर्पण एवं चामर से उनकी पूजा होनी चाहिए; कार्तिकेय की पूजा विशेष रूप से राजाओं द्वारा चम्पा के फूलों से होनी चाहिए; कृत्यग्रताकर (२७६); मागंशीर्प शुक्ल ६ को महापष्ठी कहा जाता है; हेमाद्रि (काल, ६२३-६२४)। देखिए नारदपुराण (१।४५।१-५१) जहाँ वर्ष के वारह मासों में किये जाने वाले पष्टीव्रतों का उल्लेख है।

संवत्सरव्रत : चैत्र शुक्ल पर आरम्भ; पाँच दिनों तक; अग्नि, सूर्य, सोम, प्रजापित एवं महेश्वर को एक युग के पाँव वर्षों के रूप में माना गया है, यथा—संवत्सर, परिवत्सर, इंग्टापूर्त (इदावत्सर?), अनुवत्सर एवं उद्यत्सर; उन्हें एक मण्डल में कम से नीले, श्वेत, लाल, श्वेत-पीत एवं काले पुष्पों से स्थापित करना चाहिए; तिल, चावल, जौ, घी, श्वेत सरसों से कम से होम वरना चाहिए; पाँच दिनों तक नक्त; अन्त में ५ सुवर्णों का दान; यह पंचमूर्तिवृत है; हेमादि (वृत० २, ४०९-४२०, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। वैदिक साहित्य में एक युग के पाँच वर्षों को विभिन्न नाम दिये गये हैं; अथर्ववेद (६।५५।३); तै० सं० (५।७।२-३); तै० ब्रा० (१।४।१०।१)।

संदरसरव्रत : (बहुवचन में) विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१।८२।८-२०, यहाँ ६० वर्षों के नाम आये हैं, यथा—प्रभव, विभव आदि) ; कृत्यकल्पतरु (व्रतकाण्ड, ४३५-४५१) ; हेमाद्रि (व्रत० २, ८६२-८६७) । संवरसरारम्भविधि : हेमाद्रि (व्रत० १, ३६०-३६५) । देखिए ऊपर 'चैत्र प्रतिपदा।'

संकष्टचतुर्थी: श्रावण कृष्ण ४ पर चन्द्रोदय (अर्थात् सूर्यास्त के उपरान्त ८ घटिकाओं पर) के समय गणेश-प्रतिमा-पूजा, एक कलश-स्थापन; १६ उपचार; मोदकों (१००८, १०८, २८ या ८) का निर्माण; दिन भर उपवास या चन्द्रोदय होने तक भोजन न ग्रहण करना; जीवन भर या २१ वर्षों तक या एक वर्ष तक; आचार्य को दान; २१ ब्राह्मणों को भोजन; स्मृतिकौस्तुभ (१७१-१७७); व्रतरत्नाकर (१२०-१२७); वर्षकृत्यदीपक (६८); धर्मसिन्धु (७४); यह व्रत जीवन भर या २१ वर्षों तक किया जा सकता है; ऐसा कहा गया है कि तारकासुर को हराने के लिए इसे शिव ने भी किया था।

संकष्टहर-गणपितवत : माघ कृष्ण ४ पर; तिथिवत; चन्द्रोदय पर; देवता गणेश; व्रतरत्नाकर (१७६-१८८) ने विस्तृत उल्लेख किया है, जिसमें ऋ० (१०१६३।३, ४।५०।६), पुरुषसूक्त (ऋ० १०।९०) के मन्त्र तथा नारदपुराण के एवं अन्य पौराणिक मन्त्र दिये गये हैं; १६ उपचार; २१ नामों के साथ गणेश की पूजा, उतनी ही संख्या में दूर्वा की शाखाएँ, उतनी ही संख्या में भृङ्गराज, विल्व, वदरी, धत्तूर, शमी की पत्तियाँ एवं लाल फूल; गणपित के १०८ नामों से पूजों; अन्त में पूजक को ५ मोदक एवं दक्षिणा; ऐसा आया है कि व्यास ने यह वत युधिष्ठिर को बताया था; संकष्ट का अर्थ है कष्ट या विपत्ति, 'कष्ट' का अर्थ है 'क्लेश', 'सम्' उसके आधिक्य का द्योतक है।

संक्रान्तिवतः देखिए हेमाद्रि (व्रत० ७२७-७४३, कुल १६); हेमाद्रि (काल, ४०७-४३८); कृत्य-रत्नाकर (६१३-६२१); कालनिर्णय (३३१-३४६); वर्षिक्रयाकौमुदी (२०४-२३१); स्मृतिकौस्तुम (५३१-५४५); व्रतरत्नाकर (७२९-७३८); पुरुषार्थचिन्तामणि (३५७-३६६)।

संकान्तिस्नान: देखिए गत अध्याय ११; हेमाद्रि (व्रत० २, ७२८-७३०, देवीपुराण से उद्धरण) में जल में कुछ डालकर १२ संकान्तियों पर स्नान करने की विधि है।

संघाटक-वृत: कार्तिक शुक्ल १ पर आरम्भ, उस दिन एक भक्त; द्वितीया एवं तृतीया पर उपवास; चतुर्थी पर पारण; तिथिवृत; देवता शिव; यदि एक पक्ष में किया जाय तो ७ मासों तक किन्तु यदि दोनों पक्षों में, तो ३ मासों तक; एक पुरुष एवं एक स्त्री की दो स्वर्ण प्रतिमाओं का निर्माण तथा पंचामृत से स्नान; जागर; भूमि-शयन; आचार्य को प्रतिमा-दान; नारी का पित एवं पुत्र से वियोग नहीं होता; इस व्रत से पार्वती ने शिव को प्राप्त किया; हेमादि (व्रत० २, ३७०-३७५, व्राहपुराण से उद्धरण)।

सत्कुलावाप्तिवत: मार्गशीर्ष शुक्ल १ पर आरम्भ; तीन रंगों के पुष्पों एवं लेपों से विष्णु-पूजा; विमधुरों, तीन दीपों का अर्पण; जौ एवं तिल का होम; तीन घातुओं (सोना, रजत एवं ताम्र) का दान; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२०१।१-५)।

सत्यनारायणवत: वंगाल, विहार, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में अत्यन्त प्रचलित; भविष्यपुराण (प्रतिसर्गपर्व), अध्याय २४-२९ में निरूपित; महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इसे मुसलमानी प्रभाव से आकान्त माना है। आरम्भिक काल में (और बहुत-से स्थानों में आज भी) इसे 'सत्यपीर की पूजा' कहा जाता है; स्कन्दपुराण के रेवालण्ड (वंगवासी संस्करण) में उल्लिखित है। देखिए जे० बी० ओ० आर० एस्० (जिल्द १६, पृ० ३२८) जहाँ उपर्युक्त लेखक ने कहा है कि 'सीनीं' की मुस्लिम विधि हिन्दुओं द्वारा सत्यनारायण की कथा में अपना ली गयी। यह वत आधुनिक मध्यम वर्ग के लोगों एवं नारियों में अत्यधिक प्रचलित है। इस वत की कथाओं के लिए देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द ३,पृ० ८३-८५)। ऐसा आया है कि विष्णु ने नारद से इस वत का उल्लेख किया था। किसी भी दिन सत्यनारायण-पूजा की जा सकती है; नैवेद्य सवा सेर या सवा मन, जिसमें केला, घृत, दूध, गेहूँ का आटा, गुड़ या शर्करा सम्मिलित रहते हैं; ये सभी मिला दिये जाते हैं; यजमान को कथा सुननी चाहिए और प्रसाद ग्रहण करना चाहिए; गीत, नृत्य एवं जागर; तब लोग अपने-अपने घर जाते हैं; इससे सभी कामनाओं की पूर्ति होती है; एक बाह्मण, एक लकड़हारे, साधु नामक विणक् एवं उसकी पुत्री कलावती की कथाएँ; इन गाथाओं में सत्यनारायण प्रतिहिसक एवं ईर्ष्यालु प्रकट किये गये हैं; ये कथाएँ स्कन्द-पुराण के रेवाखण्ड से ली गयी कही गयी हैं।

सदायत: इसे 'अन्नदानमाहात्म्य' कहा गया है; हेमाद्रि (व्रत०२,४६९-४७५) में भविष्योत्तरपुराण का जद्धरण आया है कि कृष्ण ने युधिष्ठिर से दूसरों को अन्न (भोजन) देने की महत्ता बतायी है और कहा है कि राम

एवं लक्ष्मण को ब्रह्म-भोज न देने के कारण वनवास भोगना पड़ा, राजा क्वेत को स्वर्ग में भी भूख की पीड़ा सहनी पड़ी, क्योंकि उसने भूखे ब्राह्मणों को भोजन नहीं दिया था। इस व्रत का अर्थ है सदा भोजन (व्रत) देना। आजकल इसे 'सदावर्त', 'सदावर्त' या 'सदावर्त' कहते हैं। हेमाद्रि (व्रत० २, ४७१) में एक क्लोक है 'भोजन प्राणियों का जीवन है, यही उनकी शक्ति है, शौर्य है और सुख है, अतः अन्नदाता प्रत्येक वस्तु का दाता कहा जाता है, देखिए तैं उप० (१।११।२): अतिथि-देवो भव; और देखिए अथवं० (९।६) एवं कठोपनिषद् (१।१।७)।

सन्तानदत्रत: तिथित्रत; जो कार्तिक पूर्णिमा को अपनी या दूसरे की कन्या को विवाह में देता है, निदयों के संगम पर उपवास करता है, वह सुखद लक्ष्य की प्राप्ति करता है; हेमाद्रि (वृतः २, २३८, भविष्यो-त्तरपुराण से उद्धरण)।

सन्तानाष्टमी: चैत्र कृष्ण ८ पर; तिथिव्रत; कृष्ण एवं देवकी की पूजा; उपवास; एक वर्ष के लिए; चार मासों की अविध में अष्टमी पर कृष्ण-प्रतिमा का घी से स्नान एवं घी का दान; हेमाद्रि (व्रत ० १, ८४६-८४७, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ३।२१७।१-११ का उद्धरण)।

संध्या : सूर्योदय के पूर्व एवं सूर्यास्त के उपरान्त तीन घटिकाओं (७२ मिनटों) की अविध ; इस अविध में निम्निलिखित चार कार्य नहीं किये जाने वाहिए—भोजन करना, सम्भोग करना, सोना एवं वेदाघ्ययन ; हेमाद्रि (काल, ६९४-६९७) ; पुरुषार्थविन्तामणि (४६) ; वृहज्जातक (७।१) पर उत्पल ने वराह को उद्धृत करके लिखा है कि सूर्य के क्षितिज के नीचे चले जाने तथा तारों के प्रकट होने तथा पूर्व में अर्य-चन्द्र के प्रकाश होने तक की अविध को संध्या कहते हैं।

सप्तद्वीपव्रतः चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ; सात दिनों तक क्रम से सात द्वीपों, यथा—जम्बू, शाक (शकों का), कुश,कौंच, शाल्मलि, गोमेद एवं पुष्कर की पूजा; घी से होम एवं सात धान्यों का दान; नक्त-विधि एवं भूमि-शयन; एक वर्ष; चाँदी से वने द्वीपों की आकृति का दान; कल्पान्त तक स्वर्ग में स्थिति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१५९।१९७)।

सप्तमी-निर्णय : जब सप्तमी पष्ठी एवं अष्टमी से विद्ध होतो सप्तमी का वृत पष्ठी से विद्ध सप्तमी पर होना चाहिए, किन्तु यदि किसी कारण से पष्ठी से युक्त सप्तमी न मानो जाय तो अष्टमी से युक्त सप्तमी ग्रहण करनी चाहिए; कालनिर्णय (१९२-१९४); तिथितत्त्व (३५-३६); पुरुषार्थचिन्तामणि १०३-१०४)।

सप्तमीलोकव्रत : सप्तमी पर सात लोकों की पूजा; इससे महान् ज्ञान एवं अद्वितीय स्थिति की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत॰ १, ७९२, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से एक श्लोक)।

सप्तमीवत : (बहुवचन में) मत्स्यपुराण (अध्याय ७४-८०); पद्मपुराण (५।२१।२१५-३२१); भवि-ध्योत्तरपुराण (४३-५३); नारदपुराण (१।११६।१-७२); कृत्यक्त्पतरु (व्रत० १०३-२२५, कुल ४४ वर्त); हेमाद्रि (व्रत० १,६३२-८१०,६२ वर्त); वर्षित्रयाकौमुदी (३५-३८); तिथितत्त्व (३६-४०); व्रतरत्नाकर (२३१-२५५)। सप्तमी-पूजा की प्रशंसा के लिए देखिए विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६९।१-७)।

सप्तमीस्नापन : मत्स्यपुराण (६८।१-४२) ने विशद वर्णन किया है; हेमाद्रि (व्रत०१, ७६३-७६८)। इसे रोगों, दुर्भाग्यों, क्लेशों एवं शिशु-मृत्युओं को रोकने के लिए किया जाता है। यह नष्टसन्तान वाली नारी से उत्पन्न शिशु के सातवें मास में या शुक्ल ७ पर किया जाता है, किन्तु जन्मतिथि पर नहीं किया जाता; चावल एवं दूध की आहुतियाँ सूर्य, रुद्र एवं माताओं को दो जाती हैं. सूर्य के लिए ऋ० (१।५०) की ऋचाएँ तथा रुद्र के लिए ऋ० (१।४३) की ऋचाएँ सुनायी जाती हैं; अर्क एवं पलाश की समिधाएँ, जौ, काल तिल

एवं घृत की १०८ आहुतियाँ; चार दिशाओं में चार कलश, मध्य में पाँचवाँ कलश, सभी कलशों में रतन, सर्वीषियाँ, कई स्थानों की मिट्टी डाली जाती है, सात विवाहित स्त्रियाँ नष्ट-सन्तान नारी के ऊपर जल का मार्जन करती हैं तथा सूर्य, चन्द्र एवं देवों का आवाहन बच्चे की सुरक्षा के लिए करती हैं; आचार्य को यम की स्वणंप्रतिमा दो जाती है; सूर्य एवं किपला गाय की पूजा; कर्ता देवों को अपित किये गये भोजन को प्रसाद रूप में ग्रहण करता है।

सप्तमूर्तिद्रत : (बहुवचन में) विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१५७-१६६)।

सप्तिषद्यतः (१) सप्तिर्षियों की पूजा से उन ऋषियों तक पहुँच एवं ऋषिस्थिति प्राप्त होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) चैत्र शुक्ल से सात दिनों के लिए सात ऋषियों, यथा—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, त्रतु एवं विसष्ठ की फलों, पुष्पों, गाय के दूध से पूजा; उन दिनों नक्तिविधि; तिल एवं महाव्याहृतियों से होम; एक वर्ष तक; अन्त में अग्निहोत्री को कृष्ण हरिण का चर्म देना; मोक्ष-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६५।१-७ से उद्धरण)।

सप्तवारवतः कृत्यकल्पतरु (व्रत० २५-२७); हेमाद्रि (व्रत० २, ५२०-५९२); कृत्यरत्नाकर (५९३-६०४)।

सम्तम्यर्क-झतः राजमार्तण्ड (क्लोक ११७२-११७३)।

सप्तसप्तमीकल्प: शुक्ल पक्ष में किसी रिववार को; जब सूर्य उत्तरायण का आरम्भ करता है और जब कोई पुरुप नक्षत्र होता है; सभी सात सप्तिमयों पर ब्रह्मचर्य-पालन, नक्त-विधि; ७ राप्तिमयाँ इस प्रकार हैं—अकंसम्पुट, मिन्द्र, निम्ब, फल, अनोदना, विजया एवं कामिकी; पाँचवीं पर एक्भक्त तथा छठी पर संभोग-वर्जन एवं मधु तथा मांस का त्याग; पत्तों पर सात नाम लिखकर, एक घट में डालकर किसी बच्चे से (जो इन सात नामों के अर्थ को नहीं जानता) एक पत्ता निकलवाना और उसे सातवीं सप्तमी मानना; एक वर्ष तक; सभी आकांक्षाओं की पूर्ति एवं सूर्यलोक तक पहुँच; कृत्यकल्पत्तरु (व्रत्त० १८९-१९१); हेमाद्रि (व्रत० १, ६८७-६८९, भविष्यपुराण १।२०८।२-३२ से उद्धरण)।

सप्तसागर-व्रत या सप्तसमुद्र-व्रत: चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ; कम से सुप्रभा, कांचनाक्षा, विशाला, मानभोद्भवा, मेघनादा, सुवेणु एवं विमलोदका की पूजा; उनके नाम पर दही से होम; ब्राह्मणों को दही से युक्त भोज; एक वर्ष तक; तीर्थस्थान पर किसी ब्राह्मण को सात वस्त्रों का दान; इसे सारस्वत व्रत भी कहा जाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०७, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। उपर्युक्त सरस्वती नदी की संज्ञाएँ या उसकी सात सहायक नदियों के नाम हैं, अतः 'सारस्वत' नाम अधिक उपयुक्त लगता है। देखिए विष्णुधर्मोत्तर० (३।१६४।१७)।

सप्तसुन्दरक-श्रत: पार्वती की, उसके सात नामों, यथा—कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा एवं अम्बिका के साथ पूजा; सात दिनों तक सात बुमारियों (लगभग ८ वर्षीया) को भोजन देना; ६ दिनों तक उपर्युक्त सात नामों में किसी एक का प्रयोग तथा 'कुमुदा प्रसन्न हों' ऐसा कहना; सातवें दिन सातों का आवाहन तथा गन्ध, पुष्प आदि तथा पान, सिन्दूर, नारियल आदि से सम्मान करना; पूजा के उपरान्त प्रत्येक के सामने दर्पण दिखाना; इससे सौन्दर्य एवं सौभाग्य की प्राप्ति तथा पाप-मुक्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, ८८६-८८७, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

समुद्रवत : चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ ; सात दिनों तक प्रतिदिन ; लवण, दूध, घी, दिधमण्ड, जलमिशित मदिरा, गन्ना के रस एवं मीठे दही से पूजा ; रात्रि में हिविष्य-भोजन ; घी से होम ; एक वर्ष तक ; अन्त में एक दुधारू गाय का दान ; राजा सम्पूर्ण विश्व का अधिपति हो जाता है ; स्वास्थ्य, धन एवं स्वर्ग की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ४६४-४६५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६०।१-७ से उद्धरण) । कभी-कभी समुद्र के सात प्रकार कहे गये हैं, यथा वायुपुराण (४९।१२३) एवं कूर्मपुराण (१।४५।४) में, और वे हैं लवण, ईख के रस, मद्य, दूध, घी, दही एवं जल के समुद्र।

समुद्र-स्तान: पूर्णिमा एवं अमावास्या जैसे पर्वदिनों पर समुद्र में स्नान करना चाहिए, किन्तु मंगलवार एवं शुक्रवार को नहीं; समुद्र एवं अश्वत्थ वृक्ष का सम्मान करना चाहिए, किन्तु उन्हें छूना नहीं चाहिए, किन्तु शनिवार को अश्वत्थ का स्पर्श किया जा सकता है; सेतु अर्थात् रामेश्वरम् में स्नान करने के लिए काल सम्बन्धी कोई अवरोध नहीं है; धर्मसिन्ध् (३६)।

सम्पद्-गोरिश्वत : माघ शुक्ल १ पर; बुम्भ मास में सभी विवाहित एवं अविवाहित नारियों के लिए। सम्पद्-व्रत : पंचमी को लक्ष्मी-पूजन एवं उपवास; एक वर्ष तक; वर्ष के अन्त में क्लश में कुछ सोना रखकर दान; कर्ता प्रत्येक जन्म में धनी होता है और विष्णु-लोक जाता है; यह षष्ठी का व्रत है; कृत्यकल्पतरु (व्रत ४४१-४४२, मत्स्यपुराण १०१।१९-२०); वर्षिक्याकौमुदी (३४, मत्स्यपुराण से उद्धरण)।

सम्पुट-सप्तमी : देखिए ऊपर 'अर्कसम्पुटसप्तमी'।

सम्पूर्णवतः किसी त्रुटि या अवरोध या विघ्नविनायकों द्वारा दूषित विये गये सभी वर्तों को यह वर पूर्ण कर देता है; किसी देव की अपूर्ण पूजा में उस देव की स्वर्ण या रजत प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए; उसके निर्माण के एक मास उपरान्त किसी ब्राह्मण द्वारा उसे दूध, दही, घी एवं उत्तर से स्नान कराकर पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए तथा चन्दन लेप से सिक्त जलपूर्ण कला से उस देव को अध्यं देना चाहिए और अपूर्ण पूजा को पूर्ण करने के निमित्त प्रार्थना करनी चाहिए और 'स्वाहा' के साथ आहुतियाँ दी जानी चाहिए; आचार्य द्वारा 'तुम्हारी अपूर्ण पूजा पूर्ण हो गयी हैं कहा जाना चाहिए। पुराण ने जोड़ा है—'देव ब्राह्मणों की बात मान लेते हैं; ब्राह्मणों में सभी देव अवस्थित रहते हैं; उनके वचन असत्य नहीं होते'; हेमाद्रि (व्रत० २, ८७६-८७९, मिवष्यो-त्तरपुराण से उद्धरण)।

लम्प्रान्ति-द्वावशी: पौप कृष्ण १२ पर; अच्युत (कृष्ण) की पूजा; नास्तिकों आदि से न बोलना; वर्ष के दो भागों में; पौप से ६ मासों में कमशः पुण्डरी काक्ष के रूप में, माधव रूप में (माध में), विश्व रूप रूप में (फाल्गुन में), पुरुषोत्तम रूप में (चैत्र में), अच्युत रूप में (वैशाख में) तथा जय रूप में (ज्येष्ठ में); प्रथम ६ मासों में स्नान एवं भोजन में तिल का प्रयोग; आपाढ़ से आगे के ६ मासों में पंचगव्य; इन ६ मासों में भी पूर्वोवत नामों से ही पूजा; एकादशी को वत तथा द्वादशी को नक्त या एकभकत; वर्ष के अन्त में एक गाय, वस्त्र, हिरण्य, अन्न, भोजन, आसन एवं पलंग का 'केशव प्रसन्न हों' के साथ दान; सभी कामनाओं की पूर्ति, इसो से व्रत का नाम सम्प्राप्ति है; हेमादि (त्रत० १, १०९४-१०९५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सम्भोग-इत : दो प्रथम एवं दो पंचमी तिथियों पर उपवास; सूर्य का ध्यान, पत्नी के साथ छेटे हुए भी न तो प्रेम प्रदक्षित करना और न संभोग करना; ऐसा करने से सहस्रों वर्षों के तप के बराबर फल होता है; कृत्यकल्पतरु (ब्रत० ३८८); हेमाद्रि (ब्रत० २, ३९४, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

सरस्वतीपूजाविधि : आञ्चिन शुक्ल में मूल-नक्षत्र पर सरस्वती का आवाहन, प्रतिदिन पूजा और श्रवण (जो मूल से चौथा नक्षत्र है) पर विसर्जन कुल; चार दिनों तक सामान्यतः आश्चिन शुक्ल ७ से १० तक; व्रतराज (२४८-२४९); दर्पकृत्यदीपक (९३ एवं २६८-२६९); दोनों ग्रन्थों में ऐसा आया है कि इन दिनों अन्ययन, अध्यापन एवं पुस्तक-लेखन वर्जित है।

सरस्वतीस्थापन: आश्विन शुक्ल नवमी पर सरस्वती को पुस्तकों में स्थापित किया जाता है; वर्षकृत्यदीपक (९२-९३ एवं २६८-२६९)। तिमल देशों में एक विशिष्ट सरस्वती-पूजा होती है, जिसमें बड़े-बूढ़ों एवं छोटों की पुस्तकों एकत्र की जाती हैं, कन्याएँ एवं विवाहित नारियाँ अपनी संगीत-पुस्तकों एवं वीणा लाती हैं और सब की पूजा सरस्वती के रूप में की जाती है। शिल्पकारों एवं श्रमिकों में आज के दिन आयुषपूजा (उनके व्यापारिक यन्त्रों की पूजा) होती है।

सरिद्वत : मनोनुकूल नदी की पूजा; पुण्य प्राप्त होता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९०, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); कुछ लोग इसे सप्तमी-व्रतों के अन्तर्गत रखते हैं।

सर्पपंचमी : पंचमी को पयोत्रत करना चाहिए, किसी ब्राह्मण को एक स्वर्ण-सर्प का दान करना चाहिए; इससे सर्पों से भय नहीं होता; हेमाद्रि (व्रतः १, ५६७, ाविष्यपुराण से उद्धरण)।

सर्पबलि : देखिए स्मृतिकौस्तुभ (१७०-१७१)।

सर्पविषापह-पंचमी: श्रावण कृष्ण ५ पर; द्वार के दोनों ओर गोवर से सपों की आकृति बनाना; गेहूँ, दूघ, भुने अन्नों, दही, दूर्वाशाखाओं, पृष्पों आदि से उनकी पूजा; सपं प्रसन्न हो जाते हैं, सात पीढ़ियों तक सपों का मय नहीं रहता; हेमाद्रि (व्रत० १, ५६४-५६५, स्कन्दपुराण के प्रभास-खण्ड से उद्धरण); कृत्यकल्पतरु (९४, भनिष्यपुराण १।३२।६२-६४ से उद्धरण); हेमाद्रि (व्रत० १, ५६४)।

सर्वकामव्रतः (१) माघ कृष्ण १४ पर पितरों की पूजा; यज्ञ करने का पुण्य; हेमाद्रि (व्रत०२,१५५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) मार्गशीर्ष ११ पर उपवास, चन्द्र तथा मंगरु, सूर्य, निर्म्हति (मृत्यु एवं विपत्ति की देवी), वरुण, अग्नि, रुद्र, मृत्यु, दुर्गा आदि ११ देवी-देवताओं की पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में एक गोदान; रुद्र होके की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०१,११५१,विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सर्वकामावान्तिवत : इसमें कार्तिक से १२ मालाएँ (सरणियाँ) होती हैं; कार्तिक पूर्णिमा पर पड़ने वाली कृत्तिका पर उपवास एवं एक वर्ष तक गन्ध, पुष्पों आदि से नरिसह-पूजा; वर्ष के अन्त में श्वेत वछड़े के साथ एक श्वेत गाय एवं चाँदो का दान; शत्रुओं से मुक्ति; मार्गशीर्ष से आगे आश्विन तक, उस नक्षत्र पर उपवास जिसके उपरान्त पूर्णिमाएँ ज्ञापित होती हैं तथा कृष्ण, उनके रूपों एवं अवतारों की विभिन्न नामों से (मार्गशीर्ष में अनन्त, पौष में वलदेव, माध में वराह...) पूजा; वर्ष के अन्त में किये गये दान विभिन्न होते हैं; इससे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, पाप नष्ट होते हैं और स्वर्ग-प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, ६५५-६५९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सर्वगन्थ : (सभी सुगन्धित द्रव्य)। ये विभिन्न ढंगों से उल्लिखित हैं। हेमाद्रि (व्रत० १,४४) ने दो रूप दिये हैं: (१) कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी एवं कुंकुम को बराबर मात्रा में सर्वगन्ध कहा जाता है; (२) कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, चन्दन, कक्कोल।

सर्वफल्त्याग : मार्गशीर्ष शुक्ल ३, ८, १२ या १४ पर या अन्य मासों की इन्हीं तिथियों पर; बाह्मणों को पायस का भोज; एक वर्ष तक १८ घान्यों में कोई एक घान्य, सभी फलों एवं कन्दों का त्याग, किन्तु ओषि के रूप में इनका ग्रहण हो सकता है; रुद्र, उनके बैल एवं घर्मराज (यम) की स्वर्ण-प्रतिमाओं का निर्माण; स्वर्ण, रजत एवं ताम्र के १६ चित्र, प्रत्येक दल में बड़े-बड़े फल (यथा बेल आदि), छोटे-छोटे फल (उदुम्बर, नारियल), कन्द (सुवर्णकन्द आदि); अन्नराशि पर दो जलपूर्ण कलश; एक पलंग; ये सभी पदार्थ एक गाय के साथ किसी गृहस्थ ब्राह्मण को दे दिये जाते हैं; 'मुझे अक्षय फल प्राप्त, हो' का कथन; मत्स्यपुराण (९६।१-२५)।

सर्वमंगलत्रयोदशी: प्रति मास शुक्ल १३ पर एकभक्त या नक्त या उपवास तथा कृष्ण, बलभद्र एवं गंगला (दुर्गा) देवी (जिसे अंकावंका कहा जाता है) की पूजा; इन तीनों के स्मरण या इन तीनों की प्रतिमाओं की पूजा एवं पुष्प, मांस एवं मदिरा अपंण से सभी कठिनाइयों पर विजय; हेमाद्रि (व्रत० २, १६-१७, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा था कि उनके मुरु सान्दीपनि ने जब दक्षिणा के रूप में उनसे अपने मृत पुत्र को जीवित कर देने को कहा तो उन्होंने (कृष्ण ने) देवी का व्यान किया और मृत पुत्र को पुनर्जीवित कर दिया।

सर्वज्ञत : शनिवार को पड़ने वाली शुक्ल १३ पर शिव-पूजा तथा उपवास; महापातकों से मुक्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, २४)।

सर्वाप्ति-व्रत : यह चतुर्मूतिव्रत है; एक वर्ष तक चार मासों की तीन अविधयों में; विष्णु के चार रूप है : वल, ज्ञान, ऐश्वयं एवं शक्ति; वासुदेव, संकर्षण, रुद्र एवं अनिरुद्ध पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर की चार दिशाओं के चार मुख हैं जो वल, ज्ञान आदि रूपों के प्रितिनिधि हैं; चैत्र से आगे के चार मासों में पूर्व से उत्तर के रूपों की पूजा; किसी ब्राह्मण को दिये जाने वाले दान-पदार्थ चैत्र में गृहस्थी के लिए उपयोगी होते हैं, वैशाख में युद्ध-सामग्री के योग्य, ज्येष्ठ में कृषि के लिए उपयोगी तथा आपाढ़ में यज्ञ के लिए उपयोगी होते हैं; यही विधि आगे की अविधयों में, यथा श्रावण तथा मार्गशीर्ष से आरम्भ होने वाले मासों में लागू होती है; स्वर्ग की प्राप्ति, इन्द्रलोक एवं विष्णु से सालोक्य की उपलब्ध; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०२-५०३, विष्णु-धर्मोत्तर० ३११४०११-१३ से उद्धरण)।

सर्वाप्तिसप्तमी: माघ कृष्ण ७ पर; ध्यानपूर्वक सूर्य-पूजा; एक वर्ष तक; वर्ष की दो अवधियों में; प्रथम ६ मासों में तिल का स्नान एवं भोजन में प्रयोग, इन मासों में सूर्य के नाम कम से माघ मास से ये हैं: मार्तण्ड, अर्क, चित्रभानु, विभावसु, भग एवं हंस; दूसरी अवधि के ६ मासों में स्नान एवं भोजन में पंचगव्य का प्रयोग; रात्रि में भोजन किन्तु नमक एवं तेल का त्याग; सभी इच्छाओं की पूर्ति; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १६८-१६९); हेमाद्रि (व्रत० १, ७३५-७३६, भविष्यपुराण १।१०८।१-१२ से उद्धरण)।

सर्वेषिः मुख्य ओपिधयाँ, यथा—मुरा, मांसी, वचा, कुष्ठ, शैलज, दो हरिद्राएँ, शुष्ठी (सूखी अदरख), चम्पक एवं मुस्ता; अग्निपुराण (१७७।१३); मदनरत्न (शान्ति पर); कृत्यकल्पतरु (शान्तिक); वर्षित्रयाकौ मुदी (२१२, दस नाम आये हैं); पुरुपार्थिचन्तामणि (३०७); ब्रतराज (१६, दस नाम किन्तु विभिन्न रूप से); हेमाद्रि (ब्रत० १, पृ० ४९) में आया है—'कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्। वचा चम्पकमुस्ते च सर्वेषध्यो दश स्मृताः॥'

सर्पसप्तमी: तिथिवत; देवता सूर्य; सात सप्तिमियों पर कर्ता सूर्याभिमुख हो अपनी हथेली पर पंचगव्य या अन्य द्रव पदार्थ रखता है तथा प्रथम से सातवीं सप्तमी तक क्रम से एक से आरम्भ कर सात सरसों रखकर उन्हें देखता है और अपने मन में कोई कामना करता है तथा सरसों से सम्बन्धित मन्त्र का उच्चारण कर बिना दांत मिलाये पी जाता है; होम एवं जप; पुत्रों, धन एवं कामनाओं की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत्त० १, ६८६-६८७, भविष्यपुराण से उद्धरण), कृत्यकल्पतरु (व्रत० १८७-१८८)।

सस्योत्सव: (तैयार हो गये अनाजों का उत्सव) शुक्ल पक्ष में किसी शुभ तिथि, नक्षत्र एवं मुहुर्त पर खेत में संगीत, गान के साथ जाना, अग्न जलाकंर होम करना, कुछ पके अनाज लेकर वैदिक मन्त्रों के साथ देवों एवं पितरों को अपित करना; कर्ता दही से मिलाकर पका अन्न खाता है और उत्सव करता है; हेमाद्रि (न्नत॰ २, ९१४, ब्रह्मपुराण)।

7 29

सहस्रभोतनिविध : सहस्र बाह्यणों को भोज देने की विधि; स्मृतिकौस्तुभ (४५४-४५५, बौधायनसूत्र का उद्धरण)। इसे अपने घर या किसी मन्दिर में करना चाहिए; पके भोजन से तथा घृत से होस, विष्णु के १२ नामों, यथा—केशव, नारायण आदि का प्रयोग; भाँति-भाँति के दान।

सागरततः यह चतुर्मूतिवृत है; मासवृत; श्रावण से चार मासों तक; चार जलपूर्ण घटों को चार समुद्रों के रूप में (हिर के चार रूप, यथा—वासुदेव, संकर्षण आदि) पूजना; इन मासों के सभी दिनों में किसी नदी में स्नान; प्रतिदिन होम; कार्तिक के अन्तिम दिन में ब्राह्मणों को सम्मान एवं तिल के तेल का दान; स्वगं-प्राप्त; हेमाद्रि (ब्रत० २, ८२९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१४५।१-६ से उद्धरण)।

साधनवज्ञामीव्रत : शुक्ल एवं कृष्ण की दशमी पर; यह एकादशी का एक अंग है; अहल्याकामघेनु (पाण्डुलिपि ६४०)।

साध्यक्षतः मार्गशीर्षं शुक्ल १२ पर; तिथिवतः, देवता साध्य गणः एक वर्षं तकः साध्य गणः १२ अधंदेव कहे जाते हैं; हेमाद्रि (वतः १,११७३, विष्णुवर्मोत्तरपुराण ३।१८१।१-३ से उद्धरण); विष्णुवर्मोत्तरपुराण ने १२ साध्यों के नाम दिये हैं।

सामजत: यह संवत्सरवत है; एक वर्ष तक गोवर से बने वृत्त में शिव एवं कृष्ण की प्रतिमा को स्नान कराना; अन्त में किसी सामवेदी ब्राह्मण को तिलघेनु के साथ एक स्वर्णघट का दान; कृत्यकल्पतरु (व्रतः ४४२-४४३, मत्स्यपुराण १०१।२५-२६ से उद्धरण); हेमाद्रि (व्रतः २,८६४,पद्मपुराण के श्लोक)।

सारस्थतन्नतः (१) यह संवत्सरन्नत है; मत्स्यपुराण (६६।३-१८); कृत्यकल्पतरु (न्नत०४३५-४३६); हेमाद्रि (न्नत०१,५५३-५५५; ग्रुकल पक्ष की उस तिथि पर जिसके अपने प्रिय देवता स्वामी हों या पंचमी पर, रिववार को या किसी शुभ दिन पर आरम्भ; दोनों संघ्याओं में एवं भोजन करते समय मौन नत; सरस्वती-पूजा तथा सुवासिनियों (सघवा नारियों) का सम्मान; पद्मपुराण (५।२२।१७८-१९४); भविष्योत्तरपुराण (३५।३-१९); (२) एक वर्ष तक दोनों संघ्याओं में मौन-साघन; वर्ष के अन्त में घृतपूर्ण घट, दो वस्त्रों, तिल एवं एक घण्टे का दान; सरस्वती-लोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पतरु (न्नत० ४४१); हेमाद्रि (न्नत० २,८६२, पद्मपुराण से उद्धरण); यह मत्स्यपुराण (१०१।१७-१८) में विणित है; (३) चैत्र श्रुकल १ से प्रारम्भ कर सात दिनों तक; सुप्रमा, कांचनाक्षी, विशाला, मानसरोवर, निनादा, सुवेणु, विमलोदका (ये सभी सरस्वती के या उसकी शाखाओं के नाम हैं) की पूजा; प्रतिदिन दही से होम; दही से मिश्रित ब्रह्म-भोज; रात में घृत के साथ भात खाना; एक वर्ष तक; अन्त में अर्थात् फाल्गुन कृष्ण में अन्तिम सात दिनों तक एक से आरम्भ कर कम से सात वस्त्रों का दान; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६४।१-७)।

सार्वभी मजत : कार्तिक शुक्ल १० से आरम्भ; उस दिन दही एवं पके भोजन से नक्त-विधि; पवित्र भोजन से दस दिशाओं की पूजा; विभिन्न रंगों के पुष्पों एवं भोज्य पदार्थों से ब्राह्मणों का सम्मान; एक वर्ष तक; जो राजा इसे करता है, वह विजयी एवं सम्राट् हो जाता है; कृत्यकल्पतरु (वृत० ३०९); हेमाद्रि (वृत० १, ९९२-९९३),दोनों में वराहपुराण (६५।१-६) से उद्धरण; कृत्यरत्नाकर(४२०); विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६४-१-७)।

सावित्रीवत : देखिए गत अघ्याय ४।

सिहस्य-गुर : जब बृहस्पति सिंह राशि में रहता है तो शत्रु पर आक्रमण, विवाह, उपनयन, गृह-प्रवेश, देवप्रतिमा स्थापना तथा कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है; मलमासतत्त्व (पृ० ८२८); भुजबलनिबन्ध (पृ० २७४); शुद्धिकौमुदी (पृ० २२२)। ऐसा विश्वास है कि सिहस्थ बृहस्पति में सभी तीर्थस्थान गोदावरी में आ जाते हैं, अतः उस समय उसमें स्नान करना चाहिए (ऐसा काल एक वर्ष तक रहता है)। सिहस्थ गुरु में विवाह

एवं उपनयन के सम्पादन के विषय में कई मत हैं, कुछ लोगों का कथन है कि विवाह एवं अन्य शुभ कमें ममा नक्षत्र वाले बृहस्पति (अर्थात् सिंह के प्रथम १३ अंश में) में विजित हैं। अन्य लोगों का कथन है कि गंगा एवं गोदावरी के मध्य के प्रदेशों में विवाह एवं उपनयन सिंहस्थ गुरु के सभी दिनों में विजित हैं; किन्तु अन्य कृत्य मधा नक्षत्र में स्थित गुरु के अतिरिक्त कभी भी किये जा सकते हैं। अन्य लोग ऐसा कहते हैं कि जब सूर्य मेष राशि में हो तो सिंहस्थ गुरु का कोई अवरोध नहीं है। इस विवेचन के लिए देखिए स्मृतिकौस्तुम (पृ० ५५७-५५९)। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अमृत का कुम्भ जो समुद्र से प्रकट हुआ, सर्वप्रथम देवों द्वारा हरिद्वार में रखा गया, तब प्रयाग में और उसके उपरान्त उज्जैन तथा अन्त में नासिक के पास व्यम्बकेश्वर में रखा गया।

सितसप्तमी: मार्गशीर्ष शुक्ल ७ पर उपवास, कमलों एवं श्वेत पुष्पों से सूर्य या उसकी प्रतिमा की पूजा; अन्त में श्वेत वस्त्रों का दान; हेमाद्रि (त्रत० १, ७७८-७७९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सितासप्तमी : भुवनेश्वर में ; १४ यात्राओं में एक यात्रा; माघ शुक्ल सप्तमी पर; गदाघरपद्धित (कालसार, १९१)।

सिद्ध : शुक्रवार, प्रथमा, षष्ठी, एकादशी, त्रयोदशी, नक्षत्रों में पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराषाढा, हस्त, श्रवण एवं रैवती को सिद्ध कहा जाता है। इनमें सभी शुभ कृत्य किये जाते हैं; निर्णयामृत (३०)।

तिद्धार्थकादिसप्तभी: माघ या मार्गशीर्प शुक्ल ७ पर, यदि अस्वस्थता हो तो किसी भी मास की सप्तमी पर; सूर्योदय के पूर्व आधे प्रहर (लगभग चार घटिकाओं) तक दाँतों को विशिष्ट वृक्षों की टहनियों से स्वच्छ किया जाता है (जिनमें प्रत्येक किसी कामना की पूर्ति के योग्य मानी जाती है, यथा मचूक से पुत्र प्राप्त होते हैं, अर्जुन से सौभाग्य स्थिर होता है, निम्ब से समृद्धि प्राप्त होती है, अश्वत्य से यश मिलता है...आदि)। जब दातुन फैंक दी जाती है तो उसके गिरने के ढंग से शकुन निकाले जाते हैं। सात सप्तिमियाँ मनायी जाती हैं, पहली सरसों से, दूसरी अर्क की किलयों से, तीसरी से सातवीं सप्तमी कम से मरिच, निम्ब, ६ फलों, भोजन (भात नहीं) से; जप, होम, सूर्य-पूजा, सूर्य-प्रतिमा के समक्ष सोना; गायत्री का पाठ (ऋ० ३।६२।१०); सूर्य-प्रतिमा के समक्ष सोते समय आये हुए स्वप्नों का निरूपण; विभिन्न पुष्पों से सूर्य-पूजा करने से विभिन्न लाभ, यथा—कमलों से यश, मन्दार से कुष्ठ हरण, अगस्त्य से सफलता आदि; ब्रह्म-भोज एवं रंगीन वस्त्रों, सुगन्धों, पुष्पों, हविष्य भोजन, एक गाय का दान; कृत्यकल्पतह (व्रत० १७२-१८०); हेमाद्रि (व्रत० १,६७९-६८५, भविष्यपुराण १।१९३।२-२१ से उद्धरण); कृत्यकल्पतह (व्रत०) ने भविष्यपुराण (१९७।१-१०) को उद्धृत किया है।

सिद्धिवनायकत्रत: शुक्ल ४ पर या जब श्रद्धा एवं भिक्त से प्रेरित कोई हर्षपूर्ण जागरण हो तब गणेश की पूजा; तिलयुक्त जल से स्नान; गणेश की हिरण्य या रजत की प्रतिमा की पूजा; पंचामृत से प्रतिमास्नान तथा गन्ध, पुष्पों, घूप दीप एवं नैवेद्य का, गणाध्यक्ष, विनायक, उमासुत, रुद्रप्रिय, विध्ननाशन के नामों के साथ अर्पण; २१ दूर्वाशाखाओं का अर्पण, २१ मोदक प्रतिमा के समक्ष रखे जाते हैं, एक गणेश के लिए, १० पुजारी तथा १० कर्ता के लिए; विद्या, घन एवं युद्ध में सिद्धि (सफलता) की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ५२५-५२९, स्कन्दपुराण से उद्धरण); स्मृतिकौस्तुभ (२१०-२१६); पुरुषार्थचिन्तामणि (९५); व्रतराज (१४३-१५१)।

सीतलाषष्ठी : माघ शुक्ल ६ पर; बंगाल में प्रचलित; गुजरात में श्रावण कृष्ण ८ पर सीतलासप्तमी; उत्तर भारत में फाल्गृन (चैत्र) कृष्ण ८ पर सीतलाष्टमी।

सीतापूजा: (१) 'सीता' का अर्थ है 'कर्पित भूमि'। कृत्यरत्नाकर (५१८, ब्रह्मपुराण से उद्धरण) में आया है कि नारद के कहने पर दक्ष के पुत्रों द्वारा फाल्गुन कृष्ण ८ को पृथिवी मापी गयी थी; अतः देव एवं पितर लोग

0

उस दिन अपूर्पों (पूओं) के साथ श्राद्ध की अभिलाषा करते हैं; (२) राम की पत्नी सीता की पूजा, जो फाल्गुन कृष्ण ८ को उत्पन्न हुई थीं; कृत्यरत्नाकर (५२६-५२९ एवं ५१८)। और देखिए 'फाल्गुनकृत्य' के अन्तर्गत।

सीमोल्लंघन : देखिए 'विजयादशमी' के अन्तर्गत, गत अध्याय १०; तिथितत्त्व (१०३); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१४५-१४८)।

सुकलत्रप्राप्तिवत : कुमारियों, सघवाओं एवं विधवाओं के लिए; नक्षत्रवत; देवता नारायण; कुभारी को तीन नक्षत्रों, यथा—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा एवं उत्तराभाद्रपदा को जगन्नाथ की पूजा करनी चाहिए तथा 'माघव' नाम लेना चाहिये, प्रियंगु एवं लाल पुष्पों का अर्पण करना चाहिये तथा कुंकुम का लेप करना चाहिये; 'माघव को प्रणाम' के साथ मघु एवं घी से होम; सुन्दर पित की प्राप्ति; हेमादि (व्रत०२, ६२८-६३०, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); शिव ने इस व्रत का वर्णन पार्वती से किया था।

मुकुलित्ररात्रक्त : मार्गशीर्ष मास में उस तिथि को जो त्र्यहस्पृक् हो, इसे किया जाता है; तीन दिनों तक उपवास; श्वेंत, पीत एवं लाल पुष्पों, तीन लेपों तथा गुग्गुल, कुटुक (कटुक?) एवं राल की घूप से त्रिविकाम (विष्णु) की पूजा; त्रिश्वुर का अर्पण; तीन दीप; जौ, तिल एवं सरसों से होम; त्रिलोह (सोना, रजत एवं ताम्च) का दान; हेमाद्रि (ब्रत० २, ३२२-३२३, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। 'त्रिमध्र' एवं 'त्र्यहस्पृक्' को इनके अन्तर्गत देखिए।

सुक्रतत्तीया-वृतः हस्त-नक्षत्र में श्रावण शुक्ल ३ पर; तिथिव्रत; नारायण एवं लक्ष्मी की पूजा; तीन वर्षों के लिए; सन्त्र ये हैं—'विष्णोर्नु कम्' (ऋ० १।१५४।१) एवं 'सक्तुमिव' (ऋ० १०।७२।२); व्रतराज (१०१-१०३); कृष्ण ने इस व्रत का वर्णन अपनी बहिन सुभद्रा से किया है।

युक्ततहादशी: तिथिव्रत; देवता विष्णु; फाल्गुन शुक्ल ११ पर उपवास एवं द्वादशी पर विष्णु-पूजा; एकादशी को दिन एवं रात्रि में 'नमो नारायणाय' का जप; कर्ता द्वारा कोघ ईच्या, लोभ, शठता आदि का त्याग; 'यह संसार व्यर्थ है' का स्मरण करना; यही विधि द्वादशी को भी; एक वर्ष तक प्रतिमास; अन्त में हरि की स्वर्ण-प्रतिमा को पूजा एवं एक गाय के साथ उसका दान; कर्ता नरक का दर्शन नहीं करता; हेमाद्रि (व्रत०१, १०७९-१०८१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सुलरात्रि या सुलरात्रिका : दीवाली (आश्विन अमावास्या) के लक्ष्मीपूजन को ऐसा कहा गया है; समयप्रदीप (पाण्डुलिपि, ४१ बी०), कृत्यतत्त्व (४३१); वर्षकियाकौमुदी (४६७-४६९); कालविवेक (४०३-४०४); दे० गत अघ्याय १०।

मुखन्नत : (१) कृष्ण ७ पर उपवास तथा कृष्ण ८ पर नन्त; इहलोक में सुख एवं परलोक में स्वर्ग; हैमाद्रि (न्नत॰ २, ५०९, मिवष्यपुराण से एक क्लोक); कृत्यकल्पतर (न्नत॰ ३८७, यहाँ तिथियाँ ६ एवं ७ हैं); (२) चतुर्दशी पर देवों की पूजा; शेष स्पष्ट नहीं है; हेमाद्रि (न्नत॰ २, १५५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (३) अष्टमी पर ऋषियों की पूजा करने से सुख की प्राप्ति; हेमाद्रि (न्नत॰ १, ६२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से आधा क्लोक); (४) जब शुक्ल ४ को मंगलवार हो तो नक्त; चार चतुर्थियों पर किया जाने वाला; मंगल की पूजा (मंगल उमा के पुत्र कहे गये हैं); सिर पर मिट्टी रखना, उसे सारे शंरीर पर लगाकर स्नान करना; दूर्वा, अक्वत्य, शमी एवं गौ को छूना; १०८ आहुतियों से मंगल के लिए होम; सोने या रजत या ताम्र या सरल काष्ठ या देनदार या चन्दन के पात्र में मंगल की प्रतिमा को रखकर उसकी पूजा; हेमाद्रि (न्नत॰ १, ५१४-५१९, भविष्यपुराण से उद्धरण); पुरुषार्थचिन्तामणि (९५); (५) षष्टिन्नत (मत्स्यपुराण १०१।७३); कृत्यकल्पतर (न्नत॰ ४५०); स्पष्ट नहीं है।

सुलसुन्तिका : यह सुलरात्रि ही है; हेमाद्रि (वत० २,३४८-३४९, आदिन्यदुराज से उद्धरण); कृत्यकल्पतरु (नैयतकालिक, ४२१-४२२)।

खुखचतुर्थी : शुनल पक्ष में चतुर्थी जब मंगलवार को पड़ती है तो उसे सुखचतुर्थी वा सुखदाचतुर्थी कहते हैं; हेमाद्रि (व्रत० १, ५१४ भविष्यपुराण १।३१।१६ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (२७१); वर्षिक्रयाकौमुदी (३१, देवीपुराण से उद्धरण)।

सुगतिद्वादशी: फाल्गुन शुक्ल ११ से प्रारम्भ; तिथिवत, कृष्ण देवता; उस दिन उपवास, कृष्ण-पूजा; १०८ दार कृष्ण का नाम-जप; एक वर्ष तक; ४-४ मासों के कम से ३ अविधयों में विभाजित; फाल्गुन से आरम्भ होने वाले चार मासों में कृष्ण-नामजप एवं कृष्ण-प्रतिमा के पादों पर जल की तीन धाराएँ; आधाढ़ से आश्विन तक की दूसरी अविध में केशव-नामजप (जिससे कि मृत्यु के समय केशव नाम स्मरण हो सके); तीसरी अविध में विष्णुनाम का जप; दैवी सुख एवं विष्णुलोक की प्राप्ति होती है; हेमादि (व्रत०१,१०८१-१०८२,विष्णधर्मोत्तर-पुराण ३।२१५।४-२२ से उद्धरण)।

सुगतिषीयनासीकल्प: (पीर्णमासी?) फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा पर; तिथिव्रत; देवता विष्णु; कर्ता तेल एवं नमक का त्याग करके नक्त-विधि से रहता है; एक वर्ष तक, ४ मासों की तीन अविधियों में; लक्ष्मी के साथ केशव की पूजा; उस दिन नास्तिकों, पाषण्डियों, महापातिकयों एवं चाण्डालों से नहीं बोलना चाहिए; हिर एवं लक्ष्मी को चन्द्र एवं रात्रि के समान माना जाता है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२१६-।१७)।

सुगतिवत : (१) देवों के स्वामी की पूजा से सर्वोत्तम स्थिति की प्राप्ति; हेमाद्रि (द्रत० १,७९२, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष तक सभी अष्टिमियों पर नक्त-विधि से भोजन करना; अन्त में गोदान; इन्द्र की स्थिति की प्राप्ति; तिथित्रत; देवता इन्द्र; हेमाद्रि (द्रत० १,८८१, पश्चपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।५६); अहल्याकामधेनु (पाण्डुलिपि ५६१ बी) ने इसे सुगत्यष्टमी कहा है।

सुजन्महादशी: पौष शुक्ल १२ पर जब कि यह ज्येच्ठा-नक्षत्र पर पड़ती है; तिथिव्रत; देवता विच्णु; उपवास के साथ एक वर्ष तक प्रति मास विच्णु-पूजा; प्रति मास कम से घी, चावल, जौ, सोना, पकाये जौ, जल, पकाये अस, छत्र, पायस, गन्ना-रसं, चन्दन एवं वस्त्र का दान और कम से निम्नलिखित को ग्रहण करना—गोमूत्र, जल, घी, हरी तरकारियाँ, दूर्वा, दही, चावल, जौ, तिल, सूर्य की किरणों से गर्म किया गया जल, दर्भयुक्त जल, दूब; रोग-मुक्त, मेघावी, प्रसन्न हो जाता है तथा उस कुल में पुनः उत्पन्न होता है जहाँ घन, अस आदि का प्राचुर्य होता है और जिन्ता नहीं व्यापती; हेमादि (ब्रत० १, ११७४-७५, विच्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सुजन्मावाप्तिव्रतः यह संकान्तिव्रत है; जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है तो उस दिन इसका आरम्भ होता है; यह वर्ष की सभी १२ संकान्तियों पर किया जाता है; प्रति संकान्ति पर उपवास, क्रम से सूर्य, भागंव राम (परशुराम) कृष्ण, विष्णु, वराह, नर्रासह, दाशरिथ राम, राम (बलराम), मत्स्य की प्रतिमाओं की पूजा; इनके चित्र भी किसी वरत्र पर बनाकर पूजे जा सकते हैं; प्रत्येक संक्रान्ति पर उपयुक्त नाम से होम; एक वर्ष तक; अन्त में जलघेनु का, छत्र एवं चप्पलों के साथ दान; प्रत्येक मास में सोने एवं दो वस्त्रों का दान; दीपमाला से रात्र में पूजा; कर्ता निम्न पशुओं एवं म्लेच्छों में जन्म नहीं पाता; हेमाद्र (व्रत० २, ७२७-७२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); पुरुषार्थचिन्तामणि (१२); हेमाद्रि ने तुला एवं अन्य दो आगे वाली राशियों में पूजा का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९९) में ऐसा आया है कि जब सूर्य कम से तुला, वृश्चिक एवं घनु राशि में प्रवेश करता है तो कम से वामन, त्रिविकम एवं अश्वशीर्ष (हयग्रीव) की पूजा होती है।

### धर्मशास्त्र का इतिहास

पुरर्शनष्ठि : इसे कोई क्षत्रिय या राजा सम्पादित करता है; किसी चक्र की नाभि पर कमल से मण्डल खींचने के उपरान्त पष्ठी पर उपवास, बीजकोष पर सुदर्शन (विष्णु-चक्र) की स्थापना, लोकपालों के आयुघों की स्थापना दलों पर होती है; कर्ता के बाहु सक्षम रहते हैं; लाल चन्दन-लेप, सरसों, लाल कमल, लाल वस्त्रों आदि से पूजा; गुड़ युक्त मोजन, रोटियों एवं फलों का नैवेद्य; शत्रुओं के नाश, युद्ध में विजय एवं सेना की रक्षा के लिए सुदर्शन के मन्त्रों का पाठ; विष्णु के चनुष (शार्ज़), गदा आदि तथा गरुड़ की पूजा; राजा को सिहासन पर वैठाया जाता है और एक युवा स्त्री उसकी आरती उतारती है; यह कृत्य किसी अशुभ लक्षण के उदित होने पर तथा जन्म-नक्षत्र पर भी किया जाता है; हेमाद्रि (ब्रत० १, ६२०-६२४, गरुड़पुराण से उद्धरण)।

सुदेशजन्मावाप्ति : यह 'सुजन्मावाप्तिव्रत' ही है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९९।१-१०)।

सुर्ग-पूजा और उसके उपरान्त विष्णु-पूजा; तिथिवत; देवता, विष्णु; कर्ता को विचार, वचन एवं कर्म से पवित्र रहना होता है; एक जलपूर्ण कलका की स्थापना, जिसमें कुंकुम, मोती एवं बहुमूल्य रत्न डाले गये रहते हैं, उसे वस्त्र से ढँक दिया जाता है, उसमें केशव की स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा; पौष, मांच तथा आगे के अन्य मासों की द्वादिश्यों पर विष्णु के विभिन्न नामों (यथा—नारायण, मांघव आदि) की पूजा; एक वर्ष तक; प्रतिमायुक्त १२ कलकों कां बाह्मणों को दान, इसी प्रकार १२ गायों, वस्त्रों या (यदि धनहीन हो) एक गाय तथा सोने से युक्त पात्र का दान; हैमाद्रि (व्रत० १, १०६३-१०७२, विष्णुपुराण से उद्धरण); अग्निपुराण (१८८।११) ने नामद्वादशी की चर्चा की है।

मुख्यद्वादशी: पीप कृष्ण १२ पर जब कि पुष्य नक्षत्र हो; एकादशी को उपवास तथा द्वादशी को एक पूर्ण घट में, जिसके ऊपर एक पात्र में तिल रखा गया हो, हिर की स्विणिम या रजत प्रतिमा का पूजन; तिलयुक्त भोजन का नैवेद्य; पुरुषसूक्त (ऋ० १०।९०) के मन्त्रों के साथ अग्नि में तिल की आहुतियाँ; उस रात्रि जागर; घर एवं प्रतिमा का दान; कुरूपता से छुटकारा; हेमाद्रि (व्रत० १, १२०५-१२१३); शिव ने इसे उमा को बताया और कहा कि सत्यभामा ने इससे लाभ उठाया; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, २४७ए) ने इसे गुर्जरों में प्रचलित माना है।

सुवत : चैत्र शुक्ल ८ से वासुदेव के रूपों, आठ वसुओं की गन्ध, पुष्पों आदि से पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में एक गोदान; सभी कामनाओं की पूर्ति एवं विष्णुलोक की प्राप्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७२।१-७)।

सूर्यनक्तवत: यह वार-व्रत है; देवता सूर्य; इसमें रिववार को नक्त-विधि का प्रयोग करना चाहिए; जब हस्त नक्षत्र हो तो उस रिववार को एक अक्त तथा उसके उपरान्त प्रत्येक रिववार को नक्त। सूर्यास्त काल पर १२ दलों वाले एक कमल का चित्र लाल चन्दन से खींचना और पूर्व से आरम्भ कर आठ दिशाओं में विभिन्न नामों (यथा—सूर्य, दिवाकर) का न्यास; कमल के बीजकोष के पूर्व में सूर्य के घोड़ों का न्यास; ऋग्वेद एवं सामवेद के प्रथम मन्त्रों एवं तैत्तिरीय संहिता के प्रथम चार मन्त्रों के साथ अर्घ्य; एक वर्ष तक; कर्ता रोग-मुक्त होता है, सन्तित एवं वन की उपलब्धि करता है तथा सूर्य लोक जाता है; हेमादि (व्रत०२, ५३८-५४१, मत्स्यपुराण से उद्धरण)।

सूर्यपूजाप्रशंसा: विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।१७१।१-७) ने एक वर्ष तक सभी सप्तिमयों पर सूर्य-पूजा या एक वर्ष तक रिववार पर नक्त-विधि से भोजन करने या सूर्योदय पर सदा सूर्य-पूजा करने से उत्पन्न फलों का उल्लेख किया है। भविष्यपुराण (१।६८।८-१४) ने सूर्य-पूजा के लिए उपयुक्त विशिष्ट पुष्पों तथा उनके अर्पण से उत्पन्न फलों का उल्लेख किया है।

सूर्यरथयात्रा-माहात्म्य : भविष्यपुराण (१।५८) । सूर्य की रथयात्रा माघ में प्रारम्भ होती है। यदि प्रति वप न की जाय तो एक बार करने के १२ वर्षों के उपरान्त इसे सम्पादित करना चाहिए; इसे अल्पाविधयों में तोड़ कर नहीं करना चाहिए; सूर्य के रथ पर शूद्र नहीं चढ़ सकता। आषाढ़, कार्तिक एवं माघ की पूर्णिमाएँ इस यात्रा के लिए अत्यन्त पनित्र मानी जाती हैं, इसे रिववार को पड़ने वाली पष्ठी या सप्तमी पर भी किया जा सकता है।

सूर्यद्रत : (१) वब्ठी पर उपवास तथा सप्तमी पर भास्कर प्रसन्न हों के साथ सूर्य-पूजा; सभी रोगों से मुक्ति ; क़त्यकल्पतरु (व्रतः ३८८-३८९) ; (२) माघ में प्रातःकाल स्नान तथा किसी गृहस्थ एवं उसकी पत्नी का पुष्पों, वस्त्रों, आभूषणों एवं भोज से सम्मान ; सीभाग्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति ; हेमाद्रि (ब्रत० २, ७९४, पद्मपुराण से उद्धरण), कृत्यकृत्पतरु (व्रतः ४४४, मत्स्यपुराण १०१।३६-४७ के सगान ही); (३) आश्विन में आरम्भ, जब शुक्ल पक्ष के रिववार को चतुर्दशी हो; तिथिवत; देवता शिव; शिविंछंग के लिए विशिष्ट स्नान, लेप रूप में रोचना का प्रयोग तथा लाल पुष्पों से पूजा; कपिला गाय के घी एवं दूध से नैवेद्य; किसी शैव ब्राह्मण को दान; कुंबुम से युक्त भोजन-दान ; इससे पुत्रों की उत्पत्ति होती है ; हेमाद्रि (व्रत ० २, ६४-६५, कालोत्तरपुराण से उद्धरण) ; (४) रिववार को कर्ता और कर्म करता है तथा गुड़ एवं नमक से युक्त रोटियों से सूर्य की पूजा करता है और उस दिन ननत रखता है; सभी कामनाओं की पूर्ति, सूर्य-लोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रतः १,७७९-७८०, विष्णुद्यमीत्तरपुराण से उद्धरण); (५) चैत्र शुक्ल ६ एवं ७ पर सूर्य-पूजा; क्वेत मिट्टी से एक वेदिका का निर्माण, जिस पर रंगीन चूर्णों से आठ दल वाले एक कमल की आकृति; बीजकोष पर सूर्य-प्रतिमा का स्थापन, पूर्व दिशा से आरम्भ कर आठ दिशाओं में अर्घ देवों, देवियों एवं मुनियों का चित्र खीचना तथा वसन्त से आरम्म कर सभी ६ ऋतुओं में ऐसे दो को रखना; भी की आहुतियाँ, १०८ बार सूर्य को तथा ८ बार अन्य लोगों को; एक वर्ष तक; अन्त में गोदान एवं स्वर्ण-दान, सूर्यलोक की प्राप्ति; यदि १२ वर्षों तक किया जाय तो सायुज्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रतः १, ७७०-७७४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।१६७।११-१५, १६८।१-३० से उद्धरण); (६) मार्गशीर्ष में (रिववार को?) आरम्भ कर १२ मासों के लिए; लाल चन्दन से किसी ताम्रपत्र पर बीजकोष के साथ १२ दलों वाले कमल का चित्र तथा उस पर सूर्य-पूजा; कितपय मासों में देवता के विभिन्न नाम (यथा-मार्गशीर्ष में मित्र, पौष में विष्णु, माघ में वरुण आदि); नैवेद्य तथा कर्ता द्वारा खाये जाने वाला विशिष्ट पदार्थ; विभिन्न पाप-मुक्ति एवं कामना-पूर्ति; हेमाद्रि (त्रत० २, ५५२-५५७, सौरधमं से उद्धरण); यह वारत्रत है; (७) पूरे पौष भर नक्त तथा दोनों सप्तिमियों पर उपवास; पौष में सूर्य एवं अग्नि की प्रतिदिन तीन बार पूजा; कृत्यरत्नाकर (४७५-४७६, मिवष्य पुराण से उदरण)।

सूर्यपष्ठी : भाद्रपद शुक्ल में १ से ५ तक एकभक्त, ६ को उपवास एवं सूर्य-प्रतिमा की पूजा; एक वर्ष तक; प्रत्येक मास में आदिस्य के विभिन्न नान; अन्त में विस्तृत उद्यापन; हेमाद्रि (व्रत० १, ६०८-६१५, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); निर्णयक्षित्यु (१३४)।

सूर्याब्दमी : देखिए अपर 'अर्काब्टमी'।

सोमवती-अमावास्या : सोमवार की अमावास्या अति पुनीत होती है; कालविवेक (४९२, भविष्यपुराण से); हेमाद्रि (काल, ६४३); वर्षिकयाकौमुदी (९): आज के दिन लोग (विशेषतः नारियाँ) अश्वत्य वृक्ष के पास जाती हैं, विष्णु-पूजा करती हैं तथा वृक्ष की १०८ बार प्रदक्षिणा करती हैं; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, ३५० बी-३५६); वर्मिसन्धु (२३); व्रतार्क का कथन है कि इसका उल्लेख निबन्धों में नहीं हुआ है, यह मात्र प्रचलन पर आधृत है।

सोमवारव्रतः (बहुवचन में); हेमाद्रि (व्रत० २, ५५७-५६६, केवल २ का उल्लेख); व्रताकं (पाण्डु-लिपि ३७९ वी-३८२वी); स्मृतिकौस्तुभ (१४९); वर्षकृत्यदीपक (४३७-४४३)। सामान्य नियम यह है—श्रावण, वैशाख, कार्तिक या मार्गशीर्ष के प्रयम सोमवार पर आरम्भ; शिव-पूजा; उस दिन पूर्ण उपवास या नक्त; वर्ष-

कृत्यदीपक में सोमवारवत एवं उसके उद्यापन का विस्तृत ब्यौरा उपस्थित किया गया है। अब भी श्रावण के सोमवार विशेष रूप से पवित्र माने जाते हैं।

सोमक्त : (१) जब किसी पक्ष में अष्टमी सोमवार को पड़े तो शिव-पूजा होनी चाहिए, शिव-प्रतिमा का हायाँ भाग शिव का तथा बायाँ भाग हरि एवं चन्द्र का होता है; पंचामृत से लिंगस्नान, दक्षिण भाग में चन्दन एवं कर्पूर का प्रयोग तथा वाम भाग में कुंकुम, अगुरु, उशीर, नीराजन का देव एवं देवी के २५ दीपों के साथ प्रयोग; सपलीक बाह्मणों को भोज; एक या पाँच वर्षों के लिए; कृत्यकल्पतर (वत० २६९-२७१); हेमाद्रि (वत० १, ८२९-८३१, कालिकापुराण से उद्धरण); (२) वैशाख-पूर्णिमा पर एक ताझपात्र में जल भरकर उसमें शंकर-प्रतिमा रखना और उसे वस्त्र से ढक देना तथा गन्य एवं पुष्पों से पूजना तथा 'लोकस्वामी महादेव, जो चन्द्र का ह्य बारण करते हैं, मुझ पर प्रसन्न हों के साथ उसका दान ; कृत्यकल्पतर (व्रत० ३५३) ; हेमाद्रि (वत० २, १७४-१७५); इत्यरत्नाकर (१६६-१६७); सभी ने भविष्यपुराण को उदृत किया है; (३) शुक्ल २ को लवण-पूर्ण पात्र का दान करना चाहिए; एक वर्ष तक; अन्त में गोदान; शिवलोक प्राप्ति; कृत्यकल्पतर (ब्रत० ४५१, मत्स्यपुराण १०१।८१ में ५९वाँ षष्ठित्रत); हेमाद्रि (व्रत० १, ३८९, पद्मपुराण से उद्धरण); (४) जब अष्टमी रोहिणी नक्षत्र में पड़ती है तो इसका सम्पादन; पंचामृत से शिव-स्नान तथा लिंग या प्रतिमा पर कर्पूर एवं चन्दन-लेप का प्रयोग तथा ब्वेत पुल्मों से पूजा; एक घट क्वेत शर्करा के चूर्ण से मिश्रित दूध नैवेद के रूप में; जागर; इससे दीर्घ आयु, यश आदि की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ८६३, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (५) माघ शुक्ल १४ पर उपवास तथा १५ पर लिंग को वेदी के साथ घृत-युक्त कम्बल से आवृत करना, दो काली गायों का दान; जागर तथा सगीत एवं नृत्य; हेमाद्रि (व्रत० २, २३९-२४०, अविष्यपुराण से उद्धरण); (६) मार्गशीर्ष भुक्ल के प्रथम सोमवार या चैत्र के या किसी भी सोमवार को, जब कि पूजा करने की प्रेरणा बड़ी उद्दाम हो, शिवपूजा करती चाहिए; स्वेत पुष्पों (मालती, कुन्द आदि) से शिव-पूजा, चन्दन लेप का प्रतिमा या लिंग पर प्रयोग; नैवेद्य; होम; हेमादि (व्रत० २, ५५८-५६६, स्कन्दपुराण से उद्धरण) ने फलों का वर्णन किया है; (७) एक वर्ष तक प्रति सोमवार को ८ बाह्मणों को भोज देना चाहिए; अन्त में शिव की एक रजतप्रतिमा का दान; 'तत्पुरुषाय विदाहे॰' (मैत्रा॰ सं॰ २।९।१, तै॰ आरण्यक १०।४६) नामक मन्त्र के साथ शिव एवं उमा की पूजा; पद्मपुराण (४।१०८।८२-९०)।

सोनायन-श्रत: एक मास के लिए; सात दिनों तक एक गाय के चारों थनों के दूध पर निर्वाह करना; सात दिनों तक केवल तीन थनों के दूध पर तथा के सात दिनों तक एक थन के दूध पर तथा तीन दिनों तक उपनास; इससे सभी पाप कट जाते हैं; भिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।३२४, मार्कण्डेयपुराण से उद्धरण)।

सोबाण्डमीत : तिथितत; देवता शिव एवं उमा; सोमवारयुक्त नवमी पर रात्रि में शिव एवं उमा की पूजा; पंचगव्य से प्रतिमा-स्नान; वामदेव तथा अन्य नामों से शिव-पूजा; प्रतिमा के दक्षिण माग में चन्दन एवं कर्पूर का तथा वाम माग में कुंकुम एवं तुरुष्क (लोबान) का प्रयोग; देवी के सिर पर नीलम तथा शिव के सिर पर मोती रखे जाते हैं और खेत एवं लाल पुष्पों से पूजा; सद्योजात नाम के साथ तिल का होम; हेमाद्रि (ब्रत० १, ८३३-८३५, स्कन्दपुराण से उद्धरण); मविष्योत्तरपुराण (५९।१-२३) ने इन्हीं शब्दों में इस ब्रत का उल्लेख किया है; वामदेव, सद्योजात, अघोर, तत्पुरुष, ईशान शिव के पाँच मूख कहे जाते हैं; देखिए तै० आ० (९०।४३-४७)!

सौस्यवत: माघ की अप्टमी या एक।दशी या चतुर्दशी पर एकभक्त एवं श्वेत वस्त्रों, चप्पलों (पादुकाओं), क म्बल, छत्र, जल तथा पात्र का अभावप्रस्त व्यक्ति को दान; हेमाद्रि (वत० २, ४४०, भविष्यपुराण से उद्धरण)। सौगन्ध्य-मतः यह ऋतु-मत है; देवता शिव एवं केशव; हेमन्त एवं शिशिर में पुष्पों का तथा फाल्गुन पूर्णिमा को तीन प्रकार के सुगन्धित पत्रों का त्याग; 'शिव एवं केशव प्रसन्न हों' के साथ कुछ सोने का दान; हेमाद्रि (व्रत० २,८६०)।

सौभाग्यतृतीयात्रतः (१) फाल्गुन शुक्ल की तृतीया पर नक्त-विधि; लक्ष्मी के साथ हिर या उमा के साथ शिव (क्योंकि दोनों शास्त्रों एवं पुराणों में एक ही कहे गये हैं) की पूजा; मधु, घी एवं तिल से होम; एक वर्ष तक तीन अविधयों में; फाल्गुन से ज्येष्ठ के मासों तक बिना नमक या घी के गेहूँ से बने भोजन का प्रयोग, भूमि-शयन; कार्तिक से मांघ तक जी से बने भोजन का प्रयोग; माघ शुक्ल ३ पर रुद्र एवं गौरी या हरि एवं श्री की स्वर्ण-प्रतिमा का निर्माण और उसका मबु, घी, तिल-तैल, गृङ, नमक तथा गोदुग्ध युक्त ६ पात्रों के साथ दान; कर्ती सात जन्मों तक भाग्यवान् एवं सुन्दर बन जाता है; कृत्यकल्पतरु (यत, ७५-७७, वराहपुराण ५८।१-१९ से उद्धरण); हेमाद्र (इत० १, ४७९-४८०); कृत्यरत्नाकर (५२३-५२४)।

सौभाग्यवत : (१) कार्तिक पूर्णिमा पर १६ दलों वाले चित्रित कमल के बीजकोष पर स्थापित चन्द्र-प्रतिमा की पूजा; कमल के किजल्कों (अंशुओं) पर २८ नक्षत्रों (अभिजित् को लेकर) की पूजा, पित्यों. पर तिथियों एवं उनके स्वामियों की पूजा; व्रत के अन्त में दो वस्त्रों का दान; दस दिन उपवास या नक्त; इस व्रत से कल्याण, सीन्दर्य एवं संभोग-आनन्द की प्राप्ति होती हैं; हेमाद्रि (व्रत० २, २३५-२३६, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष तक फाल्गुन एवं आगे की तृतीया पर नमक का त्याग; अन्त में एक घर एवं पलंग का सारी सामग्रियों के साथ दान तथा पावंती प्रसन्न हों के साथ एक सपत्नीक बाह्मण का सम्मान; कर्ता गीरीलोक वासी हो जाता है; तिथिवत; देवता गौरी; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४४१, मत्स्यपुराण १०१।१५-१६); हेमाद्रि (व्रत० १, ४८३, गरुडपुराण से उद्धरण); वर्षेक्रियाकीमुदी (२९-३०, यहाँ लवणम्' के स्थान पर 'शयनम्' आया है); अग्निपुराण (१७८।२४-२५) में भी यही श्लोक है; (३) पंचमी पर चन्द्र का पूजक दीर्घायु, घन एवं यद्य पाता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ५७४, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सौभाग्यत्रथन-त्रतः चैत्र शुक्ल ३ पर पंचगव्य एवं सुगंधित जल से गौरी एवं शिव की प्रतिमाओं का स्मान (इसी दिन गौरी का जन्म हुआ था); देवी एवं शिव के आपाद मस्तक एवं केश को प्रणाम; प्रतिमाओं के समक्ष सौभाग्याण्टक; दूसरे दिन प्रातः स्विणम प्रतिमाओं का दान; एक वर्ष तक प्रत्येक तृतीया पर यही विधि; चैत्र से आगे प्रत्येक मास में विभिन्न पदार्थों का सेवन, विभिन्न मन्त्रों का प्रयोग, देवी के विभिन्न नामों का उपयोग, विभिन्न पुष्पों का प्रयोग; एक वर्ष तक एक फल का त्याग; अन्त में सामग्री के साथ एक पलंग, एक स्विणम गाय एवं वैल का दान; सौभाग्य, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, दीर्घायु की प्राप्ति; मत्स्यपुराण (६०११-४९); इत्यकल्पतर (त्रत० ५६-६०), मत्स्यपुराण ६०११४-४८ का उद्धरण); हेमाद्र (त्रत० १,४४४-४४९, मत्स्यपुराण ६०।१४-४८ का उद्धरण); ये श्लोक पद्मपुराण (५।२४।२२२-२७८) एवं भविष्योत्तरपुराण (२५११-४२) में भी पाये जाते हैं।

सौभाष्यसंक्रान्ति : यह संक्रान्तिवत है; व्यतीपात वाले अयन या विषव दिन या संक्रान्ति दिन पर; एक भक्त; सूर्य-पूजा; दो वस्त्रों एवं सौभाग्याष्टक का किसी सपत्नीक ब्राह्मण को दान; एक वर्ष तक; ब्रह्म-भोज; लवण-पर्वत, स्विणम कमल एवं स्विणम सूर्य-प्रतिमा का दान; हेमाद्रि (ब्रत० २, ७३५-७३६, स्कृत्दपुराण से उद्धरण)।

सौभाष्यपुर्वरी : मार्गशीर्ष या माघ कृष्ण की तृतीया पर; तियिव्रत; देवता उमा; उस दिन उपवास; एक वर्ष तक; प्रत्येक मास में उमा के विभिन्न नाम; पुष्प, फल, नैवेद्य तथा कर्ता द्वारा खाये जाने वाले सामान

# - 438 per

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

वादि का अर्पण; व्रतार्क (पाण्डुलिपि ५६ ए-६० वी): व्रतराज (११४-१२०, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); इसका सम्पादन चतुर्थी से युक्त तृतीया को हो सकता है किन्तु द्वितीया से युक्त तृतीया को नहीं।

सौभाग्यावाप्तिवृतः यह मासवृत है; देवता कृष्ण; माघ पूर्णिमा (पूर्णिमान्त गणना के अनसार) के उपरान्त प्रथम तिथि पर; कृष्ण-प्रतिमा या बस्त्र पर खिंबत कृष्ण-चित्र की पूजा; प्रियंगु से सुगंधित किये गये जल से कर्ती द्वारा स्नान करना; प्रियंगुयुक्त चरु (भात) का अर्पण एवं उसी से होम; एक मास तक; फाल्गुन पूर्णिमा पर तीन दिनों के उपवास के उपरान्त कुंकुम से रेंगे दो वस्त्रों, मधुपूर्ण पात्र आदि का दान; इससे सौभाग्य एवं सौन्दर्यं की प्राप्ति; हेमादि (वत० २, ७९९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।२०४।१-५ से उद्धरण)।

सौभाग्याष्टक: मत्स्यपुराण (६०।८-९) के अनुसार आठ सौभाग्य वस्तुएँ ये हैं—गन्ना, पारा, निष्पाव (घोएवं दूष से प्रयुक्त गेहूँ का पदार्थ), दही (गाय के दूध का), जीरा, धनियाँ, कुंसुंभ एवं लवण; हेमाद्रि (ज्ञत० १,४८-४९); कृत्यरत्नाकर (११५'); व्रतराज (१६); और देखिए पद्मपुराण (५।२४।२५१); भविष्योत्तरपुराण (२५।९)।

सौम्य-विधि: जब रिववार को रोहिणी-नक्षत्र हो तो उसे सौम्य नाम से पुकारा जाता है; इस दिन पर स्तान, दान, जप, होम, पितरों एवं देवों के तर्पण से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है; नक्त-विधि एवं लाल कमलों, लाल चन्दन लेप, सुगन्ध बूप एव पायस (नैवेद्य के रूप में) से सूर्य-पूजा; पापों से मुक्ति; कृत्यकल्पतर (ब्रत० १३-१४); हेमादि (ब्रत० २, ५२४)।

सौम्यवतः हेमन्त एवं शिशिर ऋतुओं के पुष्पों का त्याग, फाल्गुन पूर्णिमा पर 'शिव एवं केशव प्रसन्न हों' के साथ अपराह्म में सोने के तीन पुष्पों का दान; मत्स्यपुराण (१०१।१३-१४); कृत्यकल्पतरु (वत० ४४१)।

सौरित्रिविकथ-वृतः यह मास-यत है; देवता सूर्य; तीन मासों या तीन वर्णों तकः; कार्तिक में जगन्नाथ या सूर्य की पूजा, एक भक्त तथा एक ब्राह्मण को रात्रिकाल का भोजन-दान; यही विधि मार्गशीर्प एवं पीप में सूर्य की पूजा विभाकर एवं दिवाकर के रूप में; युवावस्था एवं मध्यमावस्था में किये गय पाप तथा यहाँ तक कि महापाप भी कट जाते हैं; इसे 'त्रिविकभ' इसिलए कहा जाता है कि सूर्य के तीन नाम व्यक्ति को तीन मासों या तीन वर्षों में मुक्ति देते हैं; हेमादि (वृत्त० २, ८५६, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

सौरनक्तवत : यह वारत्रत है; देवता सूर्य; हस्त नक्षत्र के साथ रिववार को किया जाता है; ब्राह्मणों का सम्मान; सभी रोगों से मुक्ति; हेमादि (व्रत० २, ५२१, नृसिंहपुराण से उद्धरण)।

सौरवतः मत्स्यपुराण (१०११६३, एक षष्टियत); कृत्यकल्पतरु (वत० ४४८); हेमाद्रि (वत० १, ७८७, पद्मपुराण से उद्धरण); सप्तमी को उपवास; देवता सूर्य; एक वर्ष तक; अन्त में सोने वेः कमल, गायों का कुछ सोने एवं भोजनपूर्ण घट के साथ दान; इससे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।

स्कल्बच्छी: आषाढ़ शुक्ल की षष्ठी को इस नाम से कहा जाता है; एक दिन पूर्व से उपवास करके षष्ठी को कुमार अर्थात् कार्तिकेय की पूजा; निर्णयामृत (४९); पुरुषार्थचिन्तामणि (१०१); स्मृतिकौस्तुभ (१३८)। निर्णयामृत में इतना और आया है कि भाद्रपद ६ को दक्षिणापथ में कार्तिकेय का दर्शन कर लेने से बहा-हत्या से गम्भीर पापों-जैसे मुक्ति मिल जाती है; और देखिए कृत्यरत्नाकर (२७५-२७७)। तमिल प्रदेश में स्कन्दषष्ठी महत्वपूर्ण है और इसका सम्पादन मन्दिरों या किन्हीं भवनों में होता है; हेमाद्रि (काल, ६२२), कृत्यरत्नाकर (११९)ने ब्रह्मपुराण से उद्धरण देकर वताया है कि स्कन्द की उत्पत्ति अमावास्या को अनि से हुई थी, दे चैत्र शुक्ल ६ को प्रत्यक्ष हुए थे, देवों द्वारा सेनानायक बनाये गये थे तथा तारकासुर का वस किया था, अतः उनकी पूजा दीपों, वस्त्रों, अलंकरण, मुर्गी (खिलीनों के रूप में) आदि से की जानी चाहिए, अथवा

उनकी पूजा बच्चों के स्वास्थ्य के लिए सभी शुक्ल षष्ठियों पर करनी चाहिए; तिथितत्त्व (३५) ने चैत्र शुक्ल ६ को स्कन्दषष्ठी कहा है; स्मृतिकौस्तुभ (९३)।

स्कन्दषष्ठीवृतः कार्तिक शुक्ल ६ को केवल फलाहार, दक्षिणाभिमुख होकर कार्तिकेय को अर्घ्यं तथा एक मन्त्र के साथ दही, घी, जल एवं पुष्प चढ़ाना; कर्ती को रात्रि में भूमि पर रखा गया भोजन करना चाहिए; ऐसा करने से सफलता, सम्पत्ति, दीर्घ आयु, स्वास्थ्य, नष्ट राज्य की प्राप्ति होती है; शुक्ल या कृष्ण की षष्ठी को तेल का सेवन नहीं करना चाहिए; भविष्यपुराण (११३९।१-१३); कृत्यक्त्पत्तरु (वृत्त०, ९९-१०१); हेमाद्रि (वृत्त० १, ६०४-६०५); कृत्यरत्नाकर (४१५-४१६)। देखिए 'षष्ठी-वृत्तों' के अन्तर्गत, जहाँ ऐसा व्यक्त किया गया है कि पंचमी से युक्त षष्ठी को वरीयता दी गयी है। गदाधरपद्धित (कालसार, ८३-८४) ने स्कन्दषष्ठी को चैत्र कृष्ण में रखा है।

स्त्रीपुत्रकामावाप्तिव्रत: यह मास-व्रत है; देवता सूर्य; जो नारी कार्तिक में एकमक्त रहकर, अहिंसा जैसे सदाचरणों का पालन करती हुई गुड़युक्त भात के नैवेद्य को सूर्य के लिए अपित करती है तथा पष्ठी या सप्तमी (दोनों पक्षों में) को उपवास करती है, वह सूर्यलोक को पहुँचती है और जब पुनः इस लोक में आती है तो किसी राजा या मनीनुकूल पुरुष को पित रूप में पाती है; मार्गशीर्ष से आगे के मासों के लिए विशिष्ट नियम बने हैं; हेमादि (व्रत० २, ८२१-८२४, भविष्यपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४०६)।

स्नापनसप्तमीव्रत : शिशु-अवस्था में ही मृतं हो जाने वाले बच्चों की माता के लिए; भविष्योत्तरपुराण (५२।१-४०)।

स्नुहीविटपे-मनसापूजा : श्रावण कृष्ण ५ पर मनसा-देवी की पूजा; आँगन में स्नुही पौघे की टहनी पर; सर्प-दंश का भय दूर हो जाता है; तिथितत्त्व (३३), और देखिए गत अघ्याय ७।

स्नेहनतः यह मास-न्रत है; देवता सम्भवतः विष्णु (?); आषाढ़ से लेकर चार मासों में तेल के साथ स्नान का त्याग; केवल पायस एवं घी का सेवन; अन्त में तिल के तेल से पूर्ण एक घट का दान; इससे लोगों का स्नेह मिलता है; हेमाद्रि (व्रत ० २, ८१८, पद्मपुराण से उद्धरण)।

स्यमन्तक (मणि) ः इसकी गाथा हरिवंश (१।३८) में है, देखिए गत अध्याय ८, गणेश-चतुर्थी के अन्तर्गत । इस विषय का प्रसिद्ध श्लोक 'सिंह : प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥" हरिवंशपुराण (१।३८।३६) में पाया जाता है।

स्वर्णगौरीवत: भाद्र शुक्ल ३ को; देवता गौरी; केवल नारियों के लिए; १६ उपचारों से गौरी की पूजा; पुत्रों, धन एवं सौभाग्य की प्राप्त के लिए देवी से प्रार्थना; उद्यापन पर १६ पुरवों (कुल्हड़ों) में १६ खाद्य पदार्थ भरकर तथा वस्त्र से ढँककर गृहस्य ब्राह्मणों एवं उनकी पत्नियों को दान; व्रतार्क (पाण्डुलिपि ४१ ए-४४ वी); व्रतराज (९६-९७) में आया है कि यह कर्णाटक प्रान्त में व्यवहार रूप में प्रचलित है।

स्विस्तिकव्रत : आषाढ़ ११ या १५ से चार मासों तक; पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों के लिए समान; कर्णाटक में प्रचलित; पाँच रंगों में स्विस्तिक खींचकर विष्णु के समक्ष रखना; मिन्दर या भूमि पर विष्णु-पूजा; वृतार्क (पाण्डुलिपि, ३५६ वी-३५८, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

हंसवतः पुरुषसूक्त के पाठ के साथ स्नान; उसी के पाठ के साथ तर्पण एवं जप; अष्टदल कमल के चित्र के मध्य में स्थापित हंस नाम से पुष्पों आदि द्वारा जनार्दन की पूजा; होम; गोदान; एक वर्ष तक, सभी कामनाओं की पूर्ति; विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।२२५।१-९)।

हनुमत्-जयन्ती : चैत्र शुक्ल १५ पर।

ह्यपंचमी या हयपूजावत : चैत्र शुक्ल ५ को इन्द्र का अश्व उच्चै श्रवा समुद्र से प्रकट हुआ था, अतः उस दिन उसकी पूजा गन्धवों (चित्ररथ, चित्रसेन आदि) के साथ की जाती है, क्योंिक वे उसके बन्धु कहे गये हैं; पूजा में संगीत, मिठाइयों, पोलिकाओं, दही, गुड़, दूध, चावल के आटे का उपयोग किया जाता है, इससे दीर्घ आयु, स्वास्थ्य, युद्ध में विजय की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ५७३, शालिहोत्र से उद्धरण); स्मृतिकौस्तुभ (९२)। इसे मत्स्यजयन्ती भी कहा गया है; अहल्याकामघेनु (पाण्डुलिपि, ३६० बी)।

हरकालीवत: माघ शुक्ल ३, तिथिवत; देवता देवी; स्त्रियों के लिए; जौ के हरे अंकुरों पर स्थापित उमा के रात्रि भर घ्यान में अवस्थित रहना, दूसरे दिन स्नान, देवी-पूजा एवं भोजन; १२ मासों में देवी के विभिन्न नामों का उपयोग तथा विभिन्न पदार्थों का सेवन; अन्त में एक सपत्नीक ब्राह्मण को दान; रोगों से मुक्ति, सात जन्मों तक सघवापन, पुत्र, सौन्दर्य आदि की प्राप्ति; शंकर ने पार्वती से पूछा है कि आपने (पार्वती ने) मेरी आघी देह पाने के लिए कौन-सा वत किया था।

हरतृतीया-व्रतः माघ शुक्ल ३ पर; तिथिव्रत; देवता उमा एवं महेश्वर; एक मण्डप में अष्टदल कमल का आलेखन; आठ दिशाओं में उमा के आठ नामों का न्यास, यथा—गौरी, लिलता, उमा, स्वधा, वामदेवी आदि; चित्र के मध्य में उमा-महेश्वर की स्थापना; गन्ध एवं पुष्पों से पूजा; चावल से पूर्ण एक कलश की स्थापना; घी की आठ तथा तिल की सौ आहुतियों से होम; प्रत्येक प्रहर (कुल ८ प्रहर) में स्नान एवं होम; दूसरे दिन एक सपत्नीक बाह्मण का सम्मान; इसे चार वर्षों तक करना चाहिए। इसके उपरान्त उद्यापन; आचार्य को उमा एवं महेश्वर की स्वर्ण प्रतिमा दान में दे दी जाती है; इससे सौभाग्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है; हेमादि (व्रत० १, ४८०-४८२)।

हरत्रिरात्रवृत : विल्व वृक्ष के तले बैठकर तीन दिनों तक उपवास करने एवं हर के नाम का एक लाख वार स्मरण करने से भ्रूणहत्या जैसे पाप भी कटं जाते हैं; हेमाद्रि (वृत्त०२, ३१८, सौरपुराण से उद्धरण)।

हरवत : अष्टमी पर कमलदल पर चित्र बनाकर उस पर हर की पूजा करना; घी एवं सिमघा से होम; हेमाद्रि (व्रतः १,८८१, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

हरिकालीवत: भाद्रपद शुक्ल की तृतीया को सूप में उगाये गये सात धान्यों के अंकुरों पर काली की पूजा; सबवा नारियाँ उसे रात्रि में किसी तालाब में ले जाकर उसका विसर्जन करती हैं; हेमाद्रि (व्रत० १, ४३५-४३९, भविष्योत्तरपुराण २०११-२८)। कथा यों हैं—काली दक्ष की पुत्री थीं, वे काले रंग की थीं और भहादेव से उनका विवाह हुआ था। एक बार देवों की सभा में महादेव ने उन्हें अंजन के समान काली कहा। वे कोधित हो उठीं और अपने रंग को घास की भूमि पर छोड़कर अग्नि में कूद पड़ीं। वे पुनः गौरी के रूप में उत्पन्न हुई और महादेव की पत्नी बनीं। काली द्वारा त्यक्त काला रंग कात्यायनी वन गया, जिन्होंने देवों के कायों में बड़ी सहायता की। देवों ने उन्हें वरदान दिया कि जी व्यक्ति उनकी पूजा हरी घास में करेगा वह प्रसन्नता, दीर्घायु एवं सौभाग्य प्राप्त करेगा। प्रकाशित हेमाद्रि (व्रत) में 'हरिकाली' शब्द आया है, किन्तु यहाँ 'हरि' (विष्णु) के विषय में कोई प्रक्न नहीं उठता। सम्भवतः यहाँ 'हरि' का अर्थ है 'पिंगल' रंग (काली एक बार भूरी या पिंगला थी, गोरी नहीं थी)।

हरिकोडाशयन या हरिकोडायन : कार्तिक या वैशाख १२ पर; तिथिवत; देवता हरि; मधुयुक्त ताम्र-पात्र में चार हाथ वाले नृसिंह की स्मर्णिम प्रतिमा की स्थापना, हाथों के रूप में माणिक, नखों के रूप में मूँगा का प्रयोग होता है और इसी प्रकार वक्ष, कानों, आँखों एवं सिर पर अन्य बहुमूल्य रत्न रखे जाते हैं; पात्र में जल भरा जाता है; जागर से पूजा; कर्ता को वन या युद्ध में भय नहीं मिलता, उसे वन एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३९२-३९३); हेमाद्रि (व्रत० २, ३७६-३७७, नृसिंहपुराण से उद्धरण)।

हरितालिकावत : देखिए गत अध्याय ८। हरितिथ : द्वादशी, स्मृतिकौस्तुभ (२९)।

हरिप्रबोधोत्सव : कार्तिक में विष्णु के जागरण का उत्सव, देखिए गत अध्याय ५।

हरिवासर: हरि का दिन। इस विषय में विभिन्न मत हैं; वर्षिकियाकीमुदी (१४) का कथन है कि एकादशी हरिका दिन हैन कि द्वादशी। गरुड़पुराण (१।१२७।१२) एवं नारदपुराण (२।२४।६ एवं ९) ने एकादशी को हरिवासर कहा है। कृत्यसारसमुच्चय (४३) ने मत्स्यपुराण को उद्धृत करते हुए कहा है कि यदि आषाढ़ शुक्ल द्वादशी बुववार को पड़ती है और वह अनुराघा-नक्षत्र में रहती है, यदि भाद्रपद शुक्ल द्वादशी बुववार को पड़ती है और उस समय रेवती नक्षत्र रहता है तो उसे हरिवासर कहा जाता है। स्मृतिकौस्तुभ (२९) के अनुसार द्वादशी हरितिथि है।

हरिव्रतः (१) पूर्णिमा एवं अमावास्या पर एक भवत-विधि; इस व्रत के सम्पादन से नरक में जाना नहीं होता; इन तिथियों पर पुण्याहवाचन एवं 'जय' जैसे शब्दों के साथ हरि-पूजा; एक ब्राह्मण को खिलाना, उसे प्रणाम करना तथा अन्य ब्राह्मणों, अंधों, असहायों एवं दिलतों को भोज देना; हेमाद्रि (व्रत० २, ३७३, नर्रासहपुराण से उद्धरण); कृत्यक न्पतरु (व्रत० ३८९-३९०); (२) द्वादशी को उपवास करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० १,११७२, वराहपुराण से उद्धरण)।

हरिशयन : आपाढ़ में विष्णु का शयन ; देखिए गत अध्याय ५।

हल्लष्ठी : भाद्रपद कृष्ण ६ को इस नाम से पुकारा जाता है; निर्णयसिन्धु (१२३)।

हिबच्य : कुछ व्रतों में यिज्ञय द्रव्य ; कृत्यरत्नाकर (४००) ; तिथितत्त्व (१०९) ; निर्णयसिन्धु (१०६)।

हस्तगौरीवत: भाद्रपद शुक्ल ३ पर; धन-धान्य से पूर्ण राज्य की प्राप्ति के लिए कृष्ण द्वारा कुती को सुनाया गया व्रत; व्रतार्क (पाण्डुलिपि ५० वी-५२ वी), अहल्याकामधेनु (२८० वी); गौरी, हर एवं हेरम्ब (गणेश) का ध्यान; १३ वर्षों तक; १४वें वर्ष में उद्यापन।

हिमपूजा: पुष्पों एवं दूध के नैवेद्य से चन्द्र, विष्णु के वाम नेत्र की पूर्णिमा पर पूजा; गायों को नमक देना; माता, विहन, पुत्री को नये वस्त्रों से सम्मानित करना; यदि हिमालय के पास हों तो पितरों को हिम से मिश्रित मधु, तिल एवं घी देना चाहिए और जहाँ घी न हो 'हिम-हिम' का उच्चारण करना चाहिए तथा ब्राह्मणों को घृतपूर्ण माप का भोजन देना चाहिए; गीतों एवं नृत्य के साथ उत्सव तथा श्यामा-देवी की पूजा; सुरा पीने वालों को ताजी सुरा दी जाती हैं; कृत्यरत्नाकर (४७१-४७२, ब्रह्मपुराण से उद्धरण)।

हृदयविधि : देखिए कृत्यकल्पतरु (वृत्तं १९-२०); हेमाद्रि (वृत्तं २,५२६); और देखिए आदित्य-

वार' के अन्तर्गत।

होस-विधि : गृह्यसूत्रों में होम-विधि दी हुई है; हेमाद्रि (व्रत० १, ३०९-३१०)।

होलिका : देखिए गत अध्याय १२।

## अध्याय १४ काल-धारणा

दर्शन शास्त्र की मुख्य एवं बड़ी समस्याओं में 'दिक्' एवं 'काल' के रूप की समस्या है। स्वभावतः प्रश्न उठते हैं—क्या दिक् एवं काल अन्ततोगत्वा वास्तविक हैं? क्या हमारा अवगम्य विश्व दिशाविहीन एवं कालविहीन है ? क्या अखिल विश्व का आरम्भ काल से है ? क्या दिक् एवं काल द्रव्य-वस्तुएँ हैं या वास्तविक या वस्तुओं के गुण या सम्बन्ध हैं ? अति प्राचीन काल से अब तक इन समस्याओं के विषय में मत-मतान्तर पाये जाते रहे हैं। अतः यहाँ संस्कृतः ग्रन्थों में आकलित काल-सम्बन्धी आलेखनों, कल्पनाओं एवं धारणाओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन आवश्यक हो जाता है।

ऋग्वेद में 'काल' शब्द केवल एक बार आया है'—'जिस प्रकार द्यूत खेलने वाला 'कृत' (उत्क्षेप, ऊँची फेंक') को उचित काल में एकत्र करता है' (१०१४२।९: 'कृत यच् श्वध्नी विचिनोति काले')। अथवंवेद में दो सूक्त हैं (१९१५३।१-१० एवं १९१५४।१-५) जिनमें काल की उच्चतम धारणा व्यक्त होती है। कुछ विस्मयावह मन्त्रों का अनुवाद यों है—'काल सात रिमयों (लगामों) वाले, सहस्र आँखों वाले, अजर एवं पर्याप्त वीज (शक्ति) वाले अश्व को हाँकता है अर्थात् लेकर चलता है; विज्ञ कवि लोग उस पर चढ़ते हैं (जिस प्रकार कोई रथ पर चढ़ता है); सभी भुवन उसके चक्र (पहिए) हैं; उसी ने सभी भुवनों को एक किया और उसी ने स्वयं सभी भुवनों की परिक्रमा की; पिता होकर वह सभी (भुवनों) का पुत्र बना; उससे बढ़कर, सचमुच, कोई अन्य तेज नहीं हैं; काल में मन है, काल में प्राण (उच्छ्वास) है; काल में नाम समाहित है; ये सभी जीव इसके आगमन से प्रसन्न होते हैं; काल ने प्रजा (जीवों) की उत्पत्ति की; आरम्भ में काल ने प्रजापित को उत्पन्न किया; स्वयम्भू कश्यप काल से उभरे और (इसी प्रकार) तप भी काल से निकले; काल पुत्र ने अतीत (भूत) एवं भविष्य (भव्य) की उत्पत्ति की; काल से ऋचाएँ एवं यजु (यज्ञ सम्बन्धी नियम) उत्पन्न हुए; यह लोक एवं परम लोक, पुण्यलोक एवं पुण्य (पित्र)) विघृतियाँ, इन सभी लोकों को ब्रह्म द्वारा पूर्णत्या जीतकर काल परम देव की भाँति चलता रहता है (निवास करता है)।"

१. मिलाइए 'कृतं न इवघ्नी विजिनोति देवने।' ऋ० (१०।४३।५) एवं अथवंवेद (२०।१७।५) को ऋ० (१०।४२।९) एवं अथवंवेद (७।५०।६ तथा २०।८९।९) 'कृतिमव इवघ्नी विजिनोति काले' से; और वही 'इवघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमादत्' ऋ० (२।१२।४); ऋ० (१०।४१।५) की व्याख्या छान्दोग्योपनिषद् (४।११४) में यों है — 'यया कृताय विजितायाघरेयाः संयन्ति' (जिस प्रकार छोटे दाव बड़े दाव द्वारा आत्मसात होकर विजयी को प्राप्त होते हैं)।

२. कालो अश्वो वहति सप्तरिमः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चका

#### काल की प्राचीन बारजा

उपर्युक्त वचनों से प्रकट होता है कि अति आरम्भिक वैदिक काल में भी 'काल' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता था—(१) सामान्य रूप से काल (जैसा कि आधुनिक संस्कृत एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में) एवं (२) वह काल (महाकाल) जो परम तत्त्व के समनुरूप है या सृष्टि का मूल है। दूसरा अर्थ भी, जैसा कि हम आगे देखेंगे, बहुत-से संस्कृत ग्रन्थों (पुराणों के सिहत) में दृढ रूप से अवधारित है।

शतपथन्नाह्मण (१।७।३।३ एवं २।४।२।४) में 'काल' का प्रयोग 'समय' या 'उचित समय' के अर्थ में हुआ है— 'वह (ऋढ एड, जो आंहुतियों के भाग से वंचित किया गया था) उत्तर की ओर उस समय उड़ा जब कि स्विष्टकृत् आहुतियाँ दी जा रही थीं' (१।७।३।३); प्रजापित ने (जब पशु उनके पास पहुँचे) कहा— 'जब कभी तुम्हें उचित

काल पर कुछ मिले या अनुचित काल पर मिले, तुम खा सकते हों (२।४।२।४)।

विद्वानों द्वारा अति प्राचीन कही जाने वाली उपनिपदों के वचन भी दिये जा सकते हैं। छान्दोग्योपनिषद् (२।३११) ने 'काल' का प्रयोग 'अन्त होने' के अर्थ में किया है। बृहदारण्यकोपनिषद् (१।२१४) में भी आया है— 'उसने आकांक्षा की 'मेरा दूसरा स्वत्व भी प्रकट हो जाता।' उसने उसे कुछ काल पर्यन्त तक, एक वर्ष तक, उत्पन्न किया, और उसके उपरान्त बहुत काल तक उसे पालित किया।' उसी उपनिपद में गाग्य एवं राजा अजातशत्र के संवाद में गाग्य ने बहुत-से पदार्थ वतलाये, जिनकी उसने ब्रह्म के समान उपासना की और राजा ने उनके विषय में इन शब्दों में उत्तर दिया, 'प्राण (उच्छ्वास) काल के पूर्व उसे नहीं त्यागता' एवं 'काल के पूर्व मृत्यू उसके पास नहीं आती।' यहाँ 'काल' शब्द निश्चित समय का सूचक है। और देखिए कौपीतिक ब्राह्मण जो वृ० उ० (२।११० एवं १२) के समान ही 'काल' शब्द प्रयुक्त करता है। श्वेताश्वतर उप० (१।१-२) में 'काल' शब्द सृष्टि के कारण या मूल के अर्थ में आया है— 'कारण क्या है? क्या यह ब्रह्म है? हम कहाँ से उत्पन्न होते हैं? हम किससे जीवित रहते हैं? हम किस पर प्रतिष्ठित हैं? (या हम कहाँ जा रहे हैं?)...काल या स्वभाव या आवश्यकता या संयोग या तत्त्व या योनि (प्रकृति) या पुरुष, यही विचारणीय है (इनमें से कोई कारण है)। कुछ कियों (ऋषियों) ने स्वभाव को कारण माना है, जैसा कि हमने उपर अथवेंवेद में देख लिया है। माण्डूक्योपनिपद् का कथन है कि ओंकार त्रिविघ काल (भूत, वर्तमान एवं भविष्य) से उपर है। क्र

भुवनानि विक्का ।। स एवं सं भुवनान्याभरत् स एवं सं भुवनानि पर्यंत् । पिता सन्नभवत्पुत्र एवां तस्माहै नान्यत्परमस्ति तेजः ।। काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ।। कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयम्भूः कक्ष्यपः कालात्तपः कालावजायत ।। अथवंवेद (१९।५३।१, ४, ७, १०); कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा । कालावृचः समभवन्यजुः कालावजायत ।। इमं च लोकं परमं च लोकं पुष्पाक्ष्य लोकान् विधृतीक्ष्य पुष्पाः । सर्वाल्लोकानिभिज्तित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ।। अथवं ० (१९।५४।५) । ऋग्वेद (९।११४।२) में कक्ष्यप ऋषि के रूप में हैं, पौराणिक कथाओं में वे अदिति के पति हैं; अदिति को ऋ० (१।८९।१०) में माता, पिता एवं पुत्र कहा गया है, अतः सम्भवतः यहाँ क्ष्यप प्रजापित ही हैं। अथवं ० (८।५।१४) में आया है कि कक्ष्यप ने रक्षारत्न को उत्पन्न किया की : 'कक्ष्यपस्त्वामसृजत क्ष्यपस्त्वा समैरयत ।' यहाँ 'विधृति' का सम्भवतः अर्थ है 'लोकों को पृथक् करने वाली सोमाएँ।'

३. किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः। कालः स्वभावो त्यितिर्यदृच्छा भूतामि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।। व्वे० उप० (१।१-२); स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्ममानाः।

मैत्री उपनिषद् (६।१४-१६) में काल पर एक लम्बा विवेचन है। पहले आया है—'ऐसा कहीं पर कहा गया है कि अन्न इस सम्पूर्ण संसार की योनि है, काल अन्न की योनि है; सूर्य काल की योनि है।' इसमें पुनः आया है—'काल से सभी जीव उत्पन्न होते हैं, काल से ही वे वृद्धि प्राप्त करते हैं और काल में ही समाप्त हो जाते हैं; काल मूर्ति है (निश्चित रूप या सीमाएँ) और अमूर्तिमान् (रूपरिहत) है।' इसके उपरान्त इसने उद्घोषित किया है, 'ब्रह्म के वास्तव में दो रूप हैं, काल एवं अक्ताल। जो सूर्य के पूर्व है वह अकाल है अर्थात् कालरिहत है (यही ब्रह्म का रूप है) और यह भागविहीन है। किन्तु जो सूर्य के साथ आरम्भित होता है वह काल है और उसके भाग भी हैं; वर्ष काल का वह रूप है जिसके भाग हैं। ये सभी जीव वर्ष द्वारा उत्पन्न होते हैं, ये उत्पन्न जीव वर्ष द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वर्ष में ही उनका क्षय हो जाता है। अतः वर्ष प्रजापित है, काल है, अन्न है, ब्रह्म का निवास) है और आत्मा है।' फिर ऐसा कहा गया है, 'काल सभी जीवों को महान् आत्मा में पकाता है (पचाता है), किंतु जो व्यक्ति उसे जानता है जिसमें 'काल पचता है, वेही वेदज है।' यहाँ मैत्री उप० ने काल को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है, और पश्चात्कालीन कालानुभूति की वारणा व्यक्त की है—सूर्य की गतियों पर निर्घारित काल तथा ब्रह्म के स्वरूप से सम्बन्धित काल। और देखिए महानारायण उप० (११।१४), 'अहमेव कालो नाहं कालस्य', जहाँ काल को नारायण (ईस्वर) कहा गया है।

महाभारत में भी काल पर कई बार लिखा गया है। आदिपर्व (१।२४८-२५०) में आया है, 'काल भूतों (प्राणियों) की सर्जना करता है, काल प्रजाओं (लोगों) का नाश करता है; प्रजो के संहार में संलग्न काल काल को शमित करता है। काल शुभ एवं अशुभ स्थितियाँ उत्पन्न करता है; काल सबको समाप्त करता है और पुनः सबकी सृष्टि करता है, काल ही ऐसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। "यही बात स्त्रीपर्व में भी है। और देखिए शान्तिपर्व (अध्याय २२४ एवं २२७), आश्वमेधिकपर्व (अध्याय ४५।१-९)।

भगवद्गीता में कई स्थानों पर 'काल' शब्द 'सामान्य समय' या 'यथा समय' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (यथा ४।२,८।७ एवं २७,८।२३,१७।२०)। इसमें 'काल' शब्द कृष्ण के लिए भी प्रयुक्त हुआ है जिन्हें पर ब्रह्म कहा गया है (यथा १०।३० एवं ३३,११।३२)।

पाणिनि ने सामान्य अर्थ में, काल की अविधयों या ठीक समय के अर्थ में ही 'काल' शब्द को रखा है। देखिए पतञ्जिल (पाणिनि ३।३।१६७)। पतञ्जिल ने (पाणिनि २।२।५ के दूसरे वार्तिक में) काल-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की चर्चा की है। उनका कहना है—'लोग उसको काल कहते हैं जिसके द्वारा कठोर वस्तुओं की वृद्धि (उपचय) एवं क्षय (अपचय) लक्षित होता है, और वही (काल) रात्रि एवं दिन कहा जाता है जब कि

इवेता० (६।१)। चराह की बृहत्संहिता इस अन्तिम की ओर संकेत करती है, यथा—'कालं कारणमेके, स्वभावमपरे परे जगुः कर्म।' येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः। इवे० उ० (६।२); आदिः स संयोगिनिमत्तहेतुः परित्रकालादकालोपि दृष्टः। इवे० उप० (६।५); मिलाइए माण्डूक्योपिनिषद् 'भूतं भवद् भविष्यमिति सर्वमोकार एव। यस्यान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।'

४. कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः । संहरत्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः । कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान् ।। कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः । कालः सुप्तेषु जार्गात कालो हि दुरितकमः ।। स्त्रीपर्व (२।२४) । और देखिए शान्तिपर्व (२२१।४१) एवं गरुड़० (१।१०८।७) ।

वह किया से संयुक्त हो जाता है। वह किया क्या है? उत्तर है, 'आदित्य (सूर्य) की गति।' जब वही गित बार-बार होती है तो मास एवं संवत्सर (वर्ष) होता है।'

मनुस्मृति (१।२१) में परमात्मा को काल और उसके विभागों (१।२४, काल कालविभक्तीश्च) का सृष्टिकर्ता कहा गया है। परमात्मा विश्व-सृष्टि के उपरान्त अपने में विलीन होता प्रदिश्ति किया गया है, और बार-बार एक कालाविध को दूसरी कालाविध से चूसता या पीड़ित करता हुआ प्रकट किया गया है (आत्मन्यन्तर्दं भूयः काल कालेन पीडयन्)।

सांख्य ने काल को अपने २५ तत्त्वों में परिगणित नहीं किया है। किन्तु इस पद्धित में काल को अखूता नहीं छोड़ा गया है। सांख्यकारिका में १३ कारण बताये गये हैं, ३ आभ्यन्तर और १० बाह्य। बाह्य कारणों का सम्बन्ध वर्तमान से दिशत है और आभ्यन्तर कारणों का भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों से (सांख्यकारिका १३३)।

वैशेषिकसूत्र (२।२।६-९) ने काल को नौ द्रव्यों में रखा है (पदार्थ १।५)। कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जो काल को भूत या भविष्य मानते हैं और उसे वर्तमान की संज्ञा देने को तत्पर नहीं हैं। न्यायसूत्र इसे नहीं मानता और कहता है कि काल भूत, वर्तमान एवं भविष्य है (२।१।३९-४३)। पतंजिल (पा० ३।२।१२३) से प्रकट होता है कि उनके समय में कुछ ऐसे दार्शनिक थे जो वर्तमान काल को नहीं मानते थे।

जयन्त भट्ट की न्यायमंजरी में काल पर बृहत् व्याख्या है। सर्वप्रथम इसमें उन लोगों के मतों का विवरण है जो काल की स्थिति को पृथक इकाई के रूप में मानने को सन्नद्ध नहीं हैं। इन लोगों के अनुसार काल, घट आदि के समान, प्रत्यक्षीकृतन नहीं है और क्षिप्रता एवं मन्दता की भावनाएँ केवल निरीक्षित-प्रभावो पर ही निर्भर हैं। यदि काल द्रव्य है, जो कि वैशेषिकों के मत से विभू एवं नित्य है, तो उसे भूत, वर्तमान एवं भविष्य के रूप में कैसे कहा जा सकता है? इन विरोधों के उत्तर में बुछ लोग कहते हैं--काल का प्रत्यक्षीकरण सीधे ढंग से होता है, क्योंकि यह मन के अपने विभिन्न प्रभावों के रूप में प्रकट होता है; ऐसे विभिन्न अनुभव, यथा 'ये विषय एक-के उपरान्त घटित हुए', 'यह बहुत देर के उपरान्त घटित हुआ', 'यह शीघ्रता से हो गया', नहीं व्याख्यायित हो सकते यदि काल का अस्तित्व न माना जाय। बुछ लोगों का मत है कि काल केवल अनुमानित है और इसका प्रत्यक्षीकरण सीघे ढंग से नहीं हो सकता। उनके तर्क हैं-- यह कहकर कि काल का सीघे ढंग से प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि काल का अस्तित्व नहीं है; यह अनुमान लगाना कि काल का अस्तित्व है, उचित है, जैसा कि चन्द्र का पिछली ओर का रूप होता है, यद्यपि हम उसके सामने का ही रूप देख पाते हैं। अतः काल पृथक् इकाई के रूप में अवस्थित है, जैसा कि हम सामान्य अनुभव से क्षिप्रता, मन्दता, साथ-साथ घटित होना आदि जानते हैं। एक व्यक्ति वृढ़ा है या युवा है, इसका ज्ञान बिना काल-ज्ञान के नहीं हो सकता। काल आकाश की भौति विभु है, एक है और नित्य है। जब काल एक है, विभु है और नित्य है तो इसके तीन विभाग (भूत, वर्तमान एवं भविष्य) कैसे सम्भव हैं ? इसका उत्तर यों है-वास्तव में काल के विभाग नहीं हैं, ये विभाग तो कल्पनापरक हैं और ये काल की किया के द्योतक हैं। यदि हम किसी व्यक्ति के विषय में यह कहें कि वह वर्तमान में चावल पकाता हैं (ओदनं पचित ) तो यह 'पके चावल' के परिणाम के विशिष्ट स्वभाव के कारण है, जो कई कियाओं का प्रतिफल मात्र है, यथा अग्नि पर पात्र रखने से लेकर पृथिवी पर उतार कर रखने तक। तब हम इसे वर्तमान कहते

५. सात पदार्थी (प्राचीन काल में ६) में द्रव्य एक पदार्थ है। पदार्थ वह है जिसको नाम विया जा सके और जो जात हो, वह ऐसा नहीं है जिसकी केवल भौतिक अवधारणा मात्र हो सके।

हैं। जब हम उन कियाओं की शृंखला पर घ्यान देते हैं जिसके फलस्वरूप चावल पका तो हम भूत काल की अर्थ लगाते हैं (उन कियाओं से जो अन्त में निःशेष हुई)। वास्तव में यह स्वयं कियाओं की विशिष्टताओं पर निर्फार है।

यह ब्यान देने योग्य है कि रघुनाथ शिरोमणि ने 'पदार्थ-निरूपण' (नव्यन्याय सम्प्रदाय के एक ग्रन्थ) में

निरूपित किया है कि दिक्, काल एवं परब्रह्म एक ही हैं, वे पृथक् पदार्थ नहीं हैं।

योगसूत्रभाष्य (३।५१) में काल के विषय में एक मनोरंजक किन्तु गूढ़ विवेचन उपस्थित किया गया है। सूत्र इस प्रकार है—'क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्' अर्थात् क्षणों एवं उनके क्रमों पर संयम करने से विवेकजन्य ज्ञान उत्पन्न होता है। इस पर भाष्य यों है—'जिस प्रकार एक परमाणु द्रव्य है जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तक पहुँच सकता है, उसी प्रकार क्षण काल है जो परम अपकर्ष तक (सूक्ष्म से-सूक्ष्म सीमा तक) पहुँच सकता है'... आदि-आदि। इस विवेचन से यही प्रकट होता है कि योगसूत्र एवं इसके भाष्य ने यही माना है कि काल द्रव्य नहीं है, कोई प्रकट बास्तविकता नहीं है, यह केवल एक शब्द है, एक मानसिक धारणा है जो प्रत्यक्षीकरण या भौतिक पदार्थों की विशेषता (विशेषण था उपाधि) की अनुभूति मात्र है, यह परिवर्तित वस्तुओं से सम्बन्धित है, इसकी गणना हम वस्तुओं की गति या परिवर्तन से करते हैं, यह केवल शशकर्यंग (खरगोश के सींग) के समान नहीं है।

बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में भी काल के विषय में विवेचन है। प्रज्ञाकर गुप्त (लगभग ७०० ई०) के प्रमाणबातिकभाष्य या वातिकालंकार में वैशेषिकसूत्र एवं प्रशस्तपाद का खण्डन है। इसमें यह प्रतिपादित है कि काल कोई
पृथक् सत्तानहीं है,यदि काल का कोई आरम्भ नहीं है और यह अनन्त है तो समय की दूरी एवं निकटता की धारणा
नहीं हो सकती, दूरी, सिन्नकटता या क्षिप्रता उन कियाओं से भिन्न नहीं हैं जिनके विषय में वे पूर्व ज्ञान देती हैं। बौद्ध
मत भी कहता है कि काल कोई वस्तु नहीं है, यह विचार मात्र है, यह केवल मनुष्य के इन्द्रियज्ञान-भण्डार एवं प्रज्ञा
की स्वानुभूतिमय (आत्मगत) दशा है, अपने में यह नास्तित्व का द्यांतक है, यह कर्ता से भिन्न है। किन्तु जैन
सिद्धान्त के अनुसार छः पदार्थ हैं, यथा जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल एवं काल, अर्थात् काल की पृथक्

सत्ता है।

कित्पय पुराणों में भी काल के विषय में विवेचन है। कूर्मपुराण (१, अघ्याय ५) में काल का स्वरूप यों आया है—'यह पूजनीय काल अनन्त, अजर एवं अमर है। यह सर्वगत्व, स्वतन्त्रत्व, सर्वात्मत्व रूप से महेश्वर है। यों तो बहुत-से ब्रह्मा, रुद्र, नारायण एवं अन्य देव हैं, किन्तु यह घोषित है कि एक ही भगवान् काल है। देव काल से ही सघट हैं और पुनः काल द्वारा कविलत होते हैं। काल की शिवत से ब्रह्मा, नारायण, ईश (शिव) प्राकृत लय को प्राप्त होते हैं और पुनः काल के योग से उत्पन्न होते हैं। इसी से पर ब्रह्मा, प्रकृति, वासुदेव एवं शंकर की सृष्टि होती है। अतः विश्व कालात्मक है। वही अकेला परमेश्वर है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर (१।७२।१-७) जहाँ ये ही बातें दूसरे का से आयी हैं। वायु एवं कूर्म दोनों में आया है—'काल जीवों की सर्जना एवं संहार करता है, सभी काल के वश में हैं, काल किसी अन्य के वश में नहीं हैं' (वायु, ३२।२९-३०, कूर्म, २।२।१६)। और देखिए विष्णुपुराण (१।२। १३-१५-२६), ब्रह्मपुराण, भागवतपुराण (३।११।३-७)।

ज्योतिष के ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में आया है—'काल लोकों का अन्त करने वाला है; दूसरा प्रकार (काल-भेद) कलनात्मक है, जिससे गणना की जाती है।' काल के दो प्रकार हैं—स्थूल एवं सूक्ष्म, जिन्हें मूर्त भी कहा जाता है और अमूर्त भी। काल-विभाजन प्राण (उच्छ्वास) आदि मूर्त हैं और त्रुटि आदि अमूर्त है। चरकसंहिता (सूत्र-स्थान १।४८०) ने काल को ९ द्रव्यों में गिन रखा है और कहा है कि यह अचेतन है। यह प्रकट है कि यह वैशेषिक

सिद्धान्त से मेल रखता है। सुश्रुतखंहिता (२।३-५) में भी काल-विषयक विवेचन है। दार्शनिक वैयाकरणों में भर्तृहिरि (वाक्यपदीय के लेखक) ने प्रकीणंककाण्ड (कालसमुद्देश, १, ३, ३२) में कहा है कि काल एक द्रव्य है, विमु है, अन्य कियाओं से पृथक् अनन्त सत्ता वाला है। स्थानाभाव से और कुछ लिखना सम्भव नहीं है। जो लोग काल के विषय में विशेष अध्ययन करना चाहते हैं वे श्री हारानचन्द्र मट्टाचार्य द्वारा लिखित एवं प्रकाशित 'कालसिद्धान्त-दिशंनी' का अध्ययन कर सकते हैं, क्योंकि उस ग्रन्थ में विभिन्न सम्प्रदायों, शासाओं एवं संस्कृत ग्रन्थों में प्रतिपादित काल सम्बन्धी दार्शनिक धारणाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन है। हम यहाँ पर पश्चिमी सिद्धान्तों की न व्याख्या करेंगे और न भारतीय दृष्टिकोण से उनकी तुलना ही।

प्राचीन समय से ही काल के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विभाजन का आलेखन होता आया है। वार्ज कं (३२।२) में आया है—'सभी निमेष (पलक गिरने की अविधर्यां) परम पुरुष से उद्भूत हैं, वह पुरुष विद्युत् के समान देदीप्यमान है।' और देखिए महानारायण उप० (१।८)। बृ० उप० (३।८।९) में आया है—'अक्षर ब्रह्म के आधिपत्य में सूर्य एवं चन्द्र दूर-दूर स्थित हैं, इसी प्रकार निमेष, मुहुर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, ऋतुएँ, वर्ष पृथक्-पृथक् हैं।' महानारायण उप० (१।८-९) में काल की इकाइयां यों हैं—'निमेष, कलाएँ, मुहुर्त, काष्ठाएँ, अर्घमास, मास, ऋतुएँ एवं वर्ष। मनु (१।६४) में आया है कि १८ निमेष एक काष्ठा के, ३० काष्ठाएँ एक कला के, ३० कलाएँ एक मुहुर्त के, ३० मुहुर्त एक अहोरात्र (रात-दिन) के बराबर हैं। वराहमिहिर की वृहत्संहिता (२,पृ० २२) एवं प्रशस्तपाद (वैशेषिक सूत्र, २।२।४६ के) भाष्य में प्रारम्भिक काल वाली काल-विभाजन-सूची यों है—'व्यवहार में आने वाली इकाइयों का कारण काल है और उसके खण्ड हैं—क्षण, लव, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, याम (प्रहर या दिन का टै भाग), अहोरात्र, अर्घमास, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर (वर्ष), युग, मन्वन्तर, कल्प, प्रलय एवं महाप्रलय।' पुराणों में भी निमेष से प्रलय या कल्प तक के काल-विभाजन उल्लिखत हैं (देखिए ब्रह्म २३१६-१२; कूर्म १।५।६-१४; पद्म ५।३। ४-२०; वाय ५७।६-३५)। निमेष (पलक गिरने के समय) को वायु एवं विष्णुघर्मोत्तर ने ऐसा काल कहा है जो एक लघु अक्षर के उच्चारण में लगता है। विष्णुघर्मोत्तर ने कहा है कि निमेष से लघु काल की भौतिक अवघारणा सम्भव नहीं है।

काल की इकाइयों की संख्या, नाम एवं समय के विषय में मतैक्य नहीं है। यथा मनु (१।६४)—१८ निमेष १ काष्ठा, ३० काष्ठा १ कला, ३० कला १ मुहूर्त, ३० मुहूर्त १ अहोरात्र। कौटिल्य (अर्थशास्त्र २, अध्याय २०, पृ०१०७-१०८, शामशास्त्रीसंस्करण)—२ त्रुट (या त्रुटि?) = लव, २ लवं = निमेष, ५ निमेष = काष्ठा, ३० काष्ठा = कला, ४० कला = नाड़िका, २ नाड़िका = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र। कुछ पुराणों में वही नाम आदि हैं—१५ निमेष = काष्ठा = कला, ४० कला = नाड़िका, २ नाड़िका = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र (वायु ५०।१६९, ५७।७ = मत्स्य १४२।४, विष्णु २।८।५९, ब्रह्माण्ड २।२९।६, शान्ति० २३२। १२)। अमरकोश—१८ निमेष = काष्ठा, ३० काष्ठ = कला, ३० कला = क्षण, १२ क्षण = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र। भागवत (२।११।३-१०)—२ परमाणु = अणु, ३ अणु = त्रसरेणु, ३ त्रसरेणु = त्रुटि, १०० त्रुटि = वेघ, ३ वेघ = लव, ३ लव = निमेष, ३ निमष = क्षण, ५ क्षण = काष्ठा, १५ लघु = नाड़िका, २ नाड़िका = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र। आथर्वण ज्योतिष—१२ निमेष = लव, ३० लव = कला, ३० कला = त्रुटि, ३० त्रुटि = मुहूर्त। यह तालिका किसी तालिका से नहीं मिलती। अहोरात्र से प्रलय की इकाइयों का उल्लेख आगे होगा।

आगे कुछ कहने के पूर्व कुछ बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है। ईसा से कई शताब्दियों पूर्व ज्योतिष . वेदांगों में परिगणित था। मुण्डकोपनिषद् (१।१।४-५) में अपरा विद्या को यों कहा गया है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथवंवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिष। आपस्तग्ब-धर्मसूत्र (२।४।८।११) में भी

देवों के छः अंगों का उल्लेख है। पाणिनीय शिक्षा (क्लोक ४१-४२) में नक्षत्र-तारकों की गतियों के विज्ञान को वेद की आंख कहा गया है। ज्योतिष, जो (ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का) वेदांग है, केवल ज्योतिःशास्त्र-सम्बन्धी वातों से ही सम्बन्धित था। वेदांगज्योतिष (यजुर्वेद का, क्लोक ३, ४) में आया है—वेदों की उत्पत्ति यज्ञों के प्रयोग के लिए हुई; यज्ञ कालानुपूर्वी हैं अर्थात् वे काल के कम से चलते हैं; अतः जो कालविधानशास्त्र ज्योतिष को जानता है, वह यज्ञों को भी जानता है। जिस प्रकार मयूरों के सिर पर कंलेंगी होती है, नागों (सपीं) के सिर पर मणि होती है, उसी प्रकार गणित वेदांगशास्त्रों का मूर्धन्य है। इससे प्रकट है कि उस समय गणित एवं ज्योतिष समानार्थी शब्द थे। वृद्ध-वासिष्ठसिद्धान्त में आया है—'यह शास्त्र वेद की आंख है।' आगे चलकर ज्योतिष के तीन स्कन्ध हो गये—तन्त्र (गणित द्वारा ग्रहों की गतियों का ज्ञान प्राप्त करना और उन्हें निश्चित करना), होरा (जिसका सम्बन्ध कुण्डली बनाने से है और इसे जातक भी कहा जाता है) तथा शाखा, जो एक विस्तृत स्कन्ध वा और जिसमें शक्रन-परीक्षण, लक्षण-परीक्षण एवं भविष्यसूचन का विवरण था। इन तीनों स्कन्धों पर रचित प्रस्थ को संहिता कहा गया। जो इन तीनों स्कन्धों (गणित, होरा एवं शाखा) का ज्ञाता होता था, उसे संहितापारग कहा जाता था। तीसरे स्कन्ध को शाखा क्यों कहा गया इसका समृचित समाधान नहीं दिया जा सका है। होरा के तीन उपविभाग थे—जातक या जन्म, यात्रा या यात्रिक एवं विवाह।

गृह्यसूत्रों एवं घमंसूत्रों में यह बात पायी जाती है कि वे ज्योतिष-सम्बन्धी आवश्यकताओं एवं जानकारी को ज्योतिषशास्त्रकों से लेते थे। गोमिल-गृह्यसूत्र (१।५।१३) में आया है—'इस बात पर पृथक् ग्रन्थ है, उसे पढ़ना चाहिए या पवों (अमावास्या या पूर्णिमा) के विषय में जानकार लोगों से पूछना चाहिए।' प्राचीन एवं मध्य काल के ज्योतिष-कान के विषय में गहरे मतमेद रहे हैं। वास्तव में, घमंशास्त्र के इतिहास में इसका विवेचन नहीं होना चाहिए, क्योंकि उस विषय पर लिखने के लिए एक पृथक् ग्रन्थ की आवश्यकता पड़गी। किन्तु ज्योतिष की दो शाखाओं (होरा एवं शाखा) का घमंशास्त्र पर बड़ा प्रभाव पड़ा है, अतः कुछ वातों का उल्लेख आवश्यक है। यद्यपि घमंशास्त्रकारों ने ज्योतिष से बहुत कुछ लिया है, किन्तु वे ज्योतिःशास्त्र के शब्दों को अन्तिम सिद्धान्त मानने को सम्बद्ध नहीं रहा करते थे। यदि ज्योतिःशास्त्र एवं घमंशास्त्र के सिद्धान्तों में कहीं विरोध उत्पन्न होता था तो वे चमंशास्त्र को ही मान्यता देते थे। उदाहरणार्थं, मान लिया जाय कि एक व्यक्ति ने सप्तमी पर 'एक भवत-त्रत' किया है। संकल्प सामान्य नियम के अनुसार प्रातःकाल किया जाता है। मान लिया कि वह सप्तमी षष्ठी एवं अष्टमी से संयुक्त है और सप्तमी दिन के दस बजे से आरम्भ होती है। ऐसी स्थिति में 'युमवावय' के अनुसार षष्ठी से संयुक्त सप्तमी को वत के लिए मान्यता प्राप्त होगी और संकल्प प्रातःकाल करना पड़ेगा, किन्तु वास्तव में ज्योतिष के अनुसार तिथि उस समय षष्ठी ही रहेगी। देवल के मत से धार्मिक स्नान, दान एवं व्रतों के प्रयोग के लिए तिथि पूरे दिन भर रहेगी यदि सूर्य उस तिथि की अविध में ही अस्त हो जाय। अन्य उदाहरणों के लिए देखिए कुछ र७ (पृ० २९९) एवं स्मृतिकों० (तिथि,पृ० १२)।

भारत की ज्योतिष-विद्या एवं फिलत ज्योतिष के विषय में वेबर, ह्विटनी, थिवो आदि पाश्चात्य विद्वानों ने किल्पत आघारों पर प्रमाणरिहत सिद्धान्त बघारे हैं। वे यह भूल जाते हैं कि संस्कृत साहित्य का एक विशाल अंश नष्ट हो चुका है, जिसका पता अब नहीं चल सकता। यही बात यूनान के विषय में भी है (टाल्मी के ऐल्मगेस्ट के उपरान्त यूनान का बहुत-सा साहित्य नहीं प्राप्त होता)। दूसरी बात यह है कि वे यह बात भूल जाते हैं कि जो कुछ साहित्य अवशेष हैं वह घार्मिक हैन कि ऐतिहासिक; और जो कुछ बातें गणित के विषय की मिलती हैं वे केवल विषय प्रतिपादन के सिलसिले में ही आ गयी हैं। जिसका उल्लेख हुआ है और उस सिलसिले में जो कुछ छूट गया है उससे यह नहीं समझना चाहिए कि और अन्य वातें थीं ही नहीं। कुछ बातों के मेल से, यथा संस्थाओं एवं

ब्यवहारगत बातों की कृतिपय समानताओं से यह नहीं समझना चाहिए कि एक ने दूसरे से कुछ उघार लिया है। सानवमन सब स्थानों पर समान है, इसकी आवश्यकताओं, वातावरण आदि में बहुत कुछ समानताएँ हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए कि किसी स्थान-विशेष के लोग ही बौद्धिक शक्तियों में एकाधिकार रखते रहे हैं। १९वीं शताब्दी में जिन लोगों ने भारतीय साहित्य एवं विषयों पर लिखा है उनमें अधिकांश लोग यूनान एवं रोम के साहित्य से शिक्षित थे और वे यूनानी दर्शन, गणित, कलाओं एवं मिली सम्यता से अभिभूत थे। जब बेबिलोन एवं मध्य-पूर्व एशिया के भारतीय आलेखन सामने आने लगे तो लोगों की आँखें खुलीं। निम्नोक्त विद्वानों ने विश्व की आँखें खोल दीं—सर लियोनार्ड वुली, ग्लैनविले, सर टामस हीथ, सार्टन आदि ने यह सिद्ध कर दिया कि यूनानियों ने सुमेर के लोगों, मिलियों, वेबिलोन के लोगों से बहुत कुछ सीखा। यह कहना बचपन सिद्ध हो गया कि यूनान से ही ज्ञान विज्ञान का श्रीगणेश हुआ था। बेबिलोन के लोग यूनानियों से गणित के विषय में बहुत आगे थे। टाल्मी ने वेबिलोन से बहुत कुछ प्राप्त किया था। इंग्लैण्ड, फांस, जर्मनी, रूस एवं अमेरिका, जो आज विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे हैं, टाल्मी को ही गणित-गुरु मानते हैं, किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि उन्होंने अरब से दशमलव का ज्ञान प्राप्त किया। अरब वालों का गणितगुरु भारत था। यहाँ इस विषय में अधिक नहीं लिखा जायगा।

ज्योति:शास्त्र एवं फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में गुछ मत-मतान्तर हैं। आकाश के ग्रह, नक्षत्र, सूर्यं, चन्द्र, उनके ग्रहण, धूमकेतु, तारों का टूटना आदि ऐसी विस्मयकारी वस्तुएँ हैं जिन्हें देखकर लोगों के मन में भय, कौतूहल एवं जिज्ञासा की भावनाएँ उत्पन्न होती रही होंगी। कालान्तर में ज्योति:शास्त्र एवं फलित ज्योतिष की उत्पत्ति हुई। प्राचीन काल में दोनों शब्द एक ही अर्थ रखते थे। कुछ लोगों के मत से ज्योति:शास्त्र फलित ज्योतिष पर आधारित है। किन्तु प्रो० न्यूगेबोर एवं श्री पीटर डोएग इस मत को नहीं मानते। किन्तु लगता है, दोनों प्राचीन हैं और वे एक-दूसरे से प्रभावित होते रहे हैं। आजकल के बहुत-से लोग फलित ज्योतिष की बातों को गुलगपाड़ा टहराते हैं। किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। क्या हम ज्वार-भाटों, ग्रहणों, अन्धड़-तूफानों, वर्षा आदि के विषय में भविष्यवाणियाँ नहीं करते? आकाश के ग्रह-नक्षत्र हमारे जीवन को अवश्य प्रभावित करते हैं।

किन्तु वास्तविक वात यह नहीं है। हमें यह देखना है कि क्या ज्योतिषाचार्यों एवं फलित ज्योतिष के जानकारों ने ग्रहों, नक्षत्रों आदि के विषय में यथातथ्य नियमों एवं विधियों का निर्माण करके यथातथ्य निष्कर्षे नहीं निकाले हैं ? क्या उनके ज्ञान से हमारे अनुदिन के जीवन पर प्रकाश नहीं पड़ता है ?

ज्योतिःशास्त्र एवं फलित ज्योतिष सम्बन्धी संस्कृत-साहित्य, बृख एक-दूसरे से मिल जाते हुए भी, तीन कालाविधयों में बाँटा जा सकता है। प्रथम युग है वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों का, जो अति आदिकालीन युगों से लगभग ईसा पूर्व ८०० के मध्य का है। दूसरा युग वह है जिसमें वेदांगज्योतिष, श्रौत, गृह्म एवं वर्म सूत्र, मनु, याज-वल्क्य, गर्ग के ग्रन्थों तथा सूर्यप्रज्ञित जैसे जैन ग्रन्थों का निर्माण हुआ और जो तीसरी शताब्दी तक चलता रहा। तीसरा युग ईसा की प्रथम शताब्दी से प्रारम्भ हुआ, जिसमें सिद्धान्त नामक ग्रन्थ प्रणीत हुए और जिसमें आर्यभट (४७६ ई० में उत्पन्न), वराहिमिहिर (४७५ ई० से ५५० ई० तक), ब्रह्मगुप्त (सन् ५९८ ई० में उत्पन्न) आदि ग्रन्थकार थे।

यहाँ पर उन ग्रन्थों की ओर कुछ संकेत किया जायगा जो विस्तार से अध्ययन के उपरान्त भारतीय ज्योति:शास्त्र एवं दैवज्ञविद्या (फलित ज्योतिप) पर प्रभूत प्रकाश डालते हैं। सन् १८९६ ई० में प्रकाशित एवं शंकर बालकृष्ण दीक्षित द्वारा लिखित तथा सन् १९३१ ई० में उनके पुत्र द्वारा पुनः सम्पादित मराठी ग्रन्थ 'हिन्दू ज्योति:शास्त्र का इतिहास' महत्त्वपूर्ण है। दीक्षित ने यह प्रतिपादित किया है कि भारतीय ज्योति:-

38€

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

बास्त्र पूर्णेरूपेण स्वतन्त्र है और इस पर कोई बाहरी छाप नहीं है। अन्य ग्रन्थ या लेख ये हैं—डेविस का 'एस्ट्रॉनॉमिकल कम्प्यूटेशंस आव दि हिन्दूल' (एशियाटिक रिसर्चेज, जिल्द ३ पृ० २०९-२७७); बेण्टली का 'हिस्टॉरिकल व्यू आव हिन्दू एस्ट्रॉनॉमी' (वही, जिल्द ६, पृ० ५३७-५८८); कोलब्रुक के 'मिसलेनिएस एसेज' (जिल्द २, पृ० ३२१-३७३); वारेन का 'काल-संकलित'; जिल्स का 'इण्डियन मेट्रालॉजी'; बृहत्संहिता पर कर्न की भूमिका; बर्गेस, ह्विटनी (जे० ए० ओ० एस०, जिल्द ६, पृ० १४१-४९८); और देखिए वही, जिल्द ८ (पृ० १-९४); वराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका (थिबो एवं सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित); प्रो० वेबर का 'उब्र डेन वेदकैलेण्डर, नामेंस ज्योतिषम्', मैक्समूलर का ऋग्वेद; बाल गंगाधर तिलक का 'ओरायन' एवं 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज'; थिबो का 'इण्डियन ऐस्ट्रॉनामी, ऐस्ट्रॉलॉजी एण्ड मैथमेटिक्स'; अलबरूनी का 'इण्डिया'; इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द २३, पृ० १५४-१५९; जिल्द २४, पृ० ८५-१००); इण्डियन हिस्ट्रोरिकल क्वाटरली (जिल्द ४, १९२८, पृ० '६८-७७); वही (जिल्द ४, पृ० ४७९-५१२); मेनन का 'ऐश्येण्ट ऐस्ट्रॉनामी एवं कॉस्मामॉनी'; दत्त एवं सिंह का 'हिस्ट्री आव हिन्दू मैथमेटिक्स'; दफ्तरी का 'भारतीय-ज्योतिःशास्त्र-निरीक्षण।' इसी प्रकार बहुत से लेख एवं ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

<sup>\*</sup> यह प्रसिद्ध मराठी ग्रन्थ पं० विश्वनाथ झारखण्डी द्वारा हिन्दी में अनूदित होकर 'हिन्दी समिति' द्वारा (सन् १९६३ में दितीय आवृत्ति) प्रकाशित हो चुका है।

### अध्याय १५

### काल की इकाइयाँ

अब हम 'युग' से पूर्ववर्ती 'मुहूर्त' तक की काल-इकाइयों का उल्लेख करेंगे। 'मन्वन्तर', 'कल्प' एवं 'प्रलय' पर चर्चा आगे होगी।

ऋग्वेद में 'युग' शब्द कम-से-कम ३३ बार विभिन्न अर्थों में आया है। इस विषय में देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड ३। दो अर्थ स्पष्टतया उभर उठते हैं -अल्पाविध एवं दीर्घाविध। ऋ० (१।१५८।६) में आया है---'ममता के पुत्र दीर्घतमा दस युगों में बूढ़े हुए, वे ब्रह्मा, बड़े याजक और अपने लक्ष्य की ओर वहने वाली नदियों (जलों) के नेता बने। " यहाँ 'युग' दस वर्ष से अधिक अवधि का द्योतक नहीं हो सकता, सम्भवतः पाँच वर्षों की अविध का द्योतक है। ऋ० (३।२६।३) में आया है—'अपनी माता के पास हिनहिनाते हुए अश्व के समान वैश्वानर (अग्नि) प्रत्येक युग (प्रति दिन, सायण) में बुःशिकों द्वारा प्रज्वलित किया जाता है।' वेदांगज्योतिष (क्लोक १ एवं ५) में युग पाँच वर्षों का द्योतक है। अतएव हम ऋग्वेद के 'युग' को पाँच वर्ष की अवधि के रूप में ले सकते हैं। ऋ॰ (३।५५।१८) में पाँच वर्ष की इकाइयों की (जिनमें प्रत्येक ६ ऋतुओं में विभाजित है) ओर गूढ़ संकेत है। ऋग्वेद में संवत्सर का अर्थ एक वर्ष है (१।११०।४; १।१४०।२; १।१६१।१३; १।१६४।४४; ७।१०३। १, ७, ९; १०।१९०।२)। ऋ० (१०।६२।२) में 'परिवत्सर' शब्द आया है। 'संवत्सर' एवं 'परिवत्सर' शब्द सहिताओं में प्रयुवत पाँच वर्षों वाले युग के पाँच नामों में आये हुए दो नाम हैं। जिस प्रकार ऋग्वेद में 'युग' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार यह सम्भव है कि 'संवत्सर' एवं 'परिवत्सर' शब्द केवल एक वर्ष के अर्थ में या पाँच वर्षों के वृत्त के अर्थ में प्रयुक्त हुए हों। तै० सं० (५।५।७।१-३) में संवत्सर के साथ रुद्र को नमस्कार किया गया है, दाहिने, पीछे, उत्तर एवं ऊपर कम से परिवत्सर, इदावत्सर, इदुवत्सर एवं वत्सर के साथ रुद्र को नमस्कार अपित किया गया है। वाज । सं । (२७।४५) ने इन पाँचों के नाम लिये हैं, केवल इदुवत्सर के स्थान पर इदावत्सर का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार अथर्ववेद (६।५५।२) में इदावत्सर, परिवत्सर एवं संवत्सर को नमस्कार किया गया है। तै॰ बा॰ (१।४।१०।१) में अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा एवं वायु कम से संवत्सर, परिसंवत्सर, इदावत्सर एवं अनुवत्सर कहे गये हैं; वहाँ वर्षों के चार नामों का चार चातुर्मास्यों से सम्बन्ध जोड़ा गया है, यथा वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साक् मेघ एवं शुनासीरीय। इससे प्रकट है कि संहिताओं में भी नाम (सामान्यतः पाँच) एक निर्दिष्ट

१. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे। अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः।। ऋ० (१।१५८।६); अश्वो न कन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगे युगे। ऋ० (३।२६।३); सायण ने 'युगे युगे' को 'प्रतिदिनम्' माना है। देखिए बृहद्देवता (४।२४) जहाँ दोर्घतमा को कथा आयो है।

२. पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापितम्। वेदांगज्योतिष, इलोक १; माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्ण-समापितः। युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते॥ वही, क्लोक ५।

कम में उल्लिखित हैं। इस बात को थिबो महोदय अपने ग्रन्थ 'ग्रुण्ड्रिस' (पृ०९) में हठवाद का आश्रय लेकर ठीक नहीं मानते और कहते हैं कि वैदिक काल में पञ्चवर्षीय युग का ज्ञान नहीं सिद्ध किया जा सकता। यह द्रष्टिव्य है कि कौटिल्य ने पञ्चसंवत्सर युग का उल्लेख किया है और साथ ही साथ २।। वर्ष एवं ५ वर्ष के अन्त के दो मलमासों को उसमें रखा है।

महाभारत में भी पंचवर्षीय युग का उल्लेख है (सभापर्व, ११।३८)। पितामहसिद्धान्त ने, जो अप्राप्य है, युग को सूर्य एवं चन्द्र का पंच-वर्ष माना है और कहा है कि ३० मासों के उपरान्त एक मलमास जुड़ता है। यह उदाहरण वराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका में है।

अत्य प्रश्न है—वैदिक काल में वर्ष का क्या विस्तार था? ऋ० (१।१६४।११-१३ एवं ४८) में आया है—'ऋत के चक (पिहए) के बारह अर (तीलियाँ) हैं; यह आकाश में चतुर्दिक् घूमता है; यह कभी नहीं धकता (जरा को प्राप्त नहीं होता)। हे अग्नि, इसमें (चक्र में) ७२० पुत्रों के जोड़े निवास करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पिता (सूर्य) के, जो नीचे पानी गिराता है, पाँच पैर एवं बारह आकृतियाँ हैं, वह द्यौ (आकाश) के सुदूर अर्घ भाग में पूर्णता के साथ रहता है। अन्य लोग कहते हैं कि वह (सूर्य) जो सबको देखता है, निम्न (स्थान) में अवस्थित हैं जिसमें सात चक्र एवं छः अर (तीलियाँ) हैं; सभी भुवन पाँच अरों वाले घूमते चक्र में निवास करते हैं; एक चक्र (पिहआ) एवं बारह प्रधियाँ (अन्त या धारा, जहाँ अर या तीलियाँ चक्र से मिलती हैं अथवा जो पूरे चक्र को आकृति को प्रथित करती हैं) तथा तीन नाभियाँ—वह कौन है जो तुम्हें (भली भाँति) जानता है?; उस (चक्र अर्थात् वर्ष) में ३६० अति अस्थिर खूँटियाँ हैं। '' उपर्यूक्त वचनों में द्रष्टा ऋषि ने रहस्यात्मक एवं लाक्षणिक ढंग से वर्ष को ३ भागों में, ५ या ६ ऋतुओं में, १२ मासों में, ३६० दिनों, ७२० अहोरात्रों में पृथक्-पृथक् बाँटा है। यह कहना सम्भव है कि ऋत का चक्र राशिमण्डल है जो बारह भागों (द्वादशार, अर्थात् १२ अरों) में विभाजित है। किन्तु इस विभाजन को ठीक से मन में रख लेना कठिन कार्य है। ऋ० (११६४।१५) में आया है—'व कहते है कि उनका जो एक साथ उत्पन्न हैं, सातवाँ एक ही से उत्पन्न है; देवों से केवल ६ जुड़वाँ ऋषि उत्पन्न हुए हैं।' यहाँ ६ ऋतुओं की ओर संकेत हैं, जिनमें प्रत्येक में दो मास हैं, सातवों में केवल एक हैं

- ३. पञ्चसंवत्सरो युगिमिति।...एवमधंतृतीयानामब्दानामियमासकम्। ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पञ्चाब्दान्ते च पश्चिमम्॥ अर्थशास्त्र २, अध्याय २० (देशकालमान) पृ० १०९।
- ४. क्षणा लवा मुट्टर्ताश्च दिवा रात्रिस्तयेद च। अर्थमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च भारत।। संवत्सराः पञ्चयुगमहोरात्रश्चतुर्विथः। सभा० ११।३७-३८।
- ५. रिवशिशनोः पञ्च युगं वर्षाणे पितामहोपिदिष्टानि। अधिमास्त्रिश्चर्भिर्मासैरवमो द्विष्टिचा तु॥ पञ्चिसा० (१२।१)। वराह के मत से पैतामहिसद्धान्त ने शक २' (८० ई०) अर्थात् शक वर्ष २ से नवीन युग का आरम्भ माना है। अतः सम्भवतः यह लगभग सन् ८० ई० में प्रणात हुआ।
- ६. यह सम्पूर्ण सुक्त (१।१६४) प्रहेलिकापूर्ण है। ऋ० (१।१६४।२) में आया है कि रथ (सूर्य) में सात घोड़े जुते हैं, इसका एक हा चक्र (पिहुआ) है जिसमें तोन नाभियाँ हैं। चक्र का अर्थ है वर्ष, तोन नाभियाँ तोन ऋतुएं हैं, प्राध्म, वर्षा एवं जाड़ा। ऋठे (१।१६४।१२ एव १३) में चक्र ६ या ५ तीलियों वाला कहा गया है; चक्र के १२ अर या प्रधियाँ मास के द्योतक हैं। देखिए निरुक्त (४।२७); मिलाइए आदिपर्व (३।६०) जो ऋ० (१।१६४।११-१३) के सकान है।

(१३वाँ या मलमास) तथा १३वाँ मास घार्मिक कृत्यों के लिए उपयुक्त नहीं है। अथवंवेद (५।१४।४) में भी आया है कि संवत्सर में वारह अर हैं और मासों में ३०। इससे ऋ० १।१६४।११-१३ एवं ४८ के अर्थ पर प्रकाश पड़ जाता है। ब्राह्मणों में भी वर्ष में ३६० दिन एवं ७२० अहोरात्र कहे गये हैं (शतपथ ब्रा० ९।१।१।४३; ऐत० ब्रा० ७।७)।

वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों में १३वें मास (अधिक मास या मलमास) की चर्चा है (देखिए तैं० सं० ४।६।७।१-२; कीषीतिक ब्रा० १९।२)। तै० सं० (१।१४।४, ६।५।३।४) ने स्पष्ट रूप से १३वें मास ('संस्प' या अंहस्पत्य) का उल्लेख किया है। और देखिए वाज० सं० (७।३० एवं २२।३: अंहस्पत्य), मैत्रायणी सं० (३।१२।१३: संस्पं)। कीषीतिक ब्रा० (५।८) ने १३वें मास को शुनासीरीय यज्ञ से सम्बन्धित किया है। मैत्रायणी सं० (१।१०।८) ने 'ऋतुयाजी' एवं 'चातुर्मास्य-याजी' के अन्तर को लक्षित किया है। प्रथम वह है जो यह समझकर यज्ञ करता है कि 'अब वसन्त आ गया है, वर्षारम्भ हो गया है, शरद् का आगमन हुआ है; चातुर्मास्य-याजी वह है जो १३वें मास को इ्यान में रखकर यज्ञ करता है। 'ऋ वेदीय काल या तै० सं० के काल में मास किस प्रकार प्रयुक्त हुआ, स्पष्ट नहीं है। केवल यही स्पष्ट है कि एक पूरा मास जोड़ दिया गया। अतः थिवो (ग्रुज्ड्सि, पृ० ७) का यह कथन कि सभी वैदिक वचनों से केवल ३६० दिनों वाला वर्ष-मात्र व्यक्त होता है, आमक है। ऋ वेदीय भारतीयों को वह वर्ष ज्ञात था जिसमें एक मास जुड़ता था (अर्थात् ३९० दिन वाला वर्ष, जिसमें मलमास होता था)। अतः उन दिनों दो कैलेण्डरों (पंचागों) की वात ज्ञात थी; प्रथम धार्मिक कृत्यों के लिए ३६० दिनों का (३० दिनों वाले १२ मास) था, और दूसरा जिसमें एक और मास जुड़ता था, जिससे वर्ष के क्रम को भली भाँति जाना जा सके। आगे चलकर ३६० दिनों वाला वर्ष 'सावन' नाम से विख्यात हुआ (सवन का अर्थ है यज्ञ में सोमरस निकालना) और लगभग ३० मासों के उपरान्त एक मास जोड़ दिया जाता था जिससे चान्द्र वर्ष (३५४ दिनों वाला) सौर वर्ष की संगति में बैठ सके।

शतपथ बा० (२।१।३।२) में सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन की गितियों का उल्लेख है, यद्यपि 'अयन' शब्द वहाँ नहीं प्रयुक्त है, यथा 'स यत्रोदगावर्तते देवेषु तर्हि भवित।...यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तर्हि भवित।' ऋ० (३।३३।०) में अयन शब्द 'गित या मार्ग' के अर्थ में आया है (आयत्रापो अयनिमच्छमानाः)। पश्चात्कालीन साहित्य में उत्तरायण एवं दक्षिणायन शब्द भरपूर अपने ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। छः मासों तक उत्तर तथा छः मासों तक दक्षिण में सूर्य की गितियाँ वृ० उप० (६।२।१५-१६) में भी उल्लिखित हैं। वसन्त एवं ग्रीष्म उत्तरायण के प्रमुख भाग हैं, अतः इनके अनुषंग में तथा समनुरूपता की दृष्टि से वर्षा ऋतु भी देवों की पूजा के लिए है।

ऋतुओं के विषय में अस्पष्ट कथन हैं। ऋ० (१।१५) में 'ऋतुना' शब्द कई बार आया है, किन्तु एक बार 'ऋतून्' भी आया.है—'हे इन्द्र, ऋतु के अनुसार ब्राह्मण की सम्पत्त (सश्रीक पात्रों) से सोम का पान करो।' ऋ० (२।३६ एवं ३७) को ऋतव्य सूनत कहते हैं। स्वयं ऋ० पाँच ऋतुओं का उल्लेख करता है, यथा वसन्त (१०।१६१। ४, १०।९०।६), ग्रीष्म (१०।९०।६), ग्रावृट् (७।१०३।३ एवं ९), शरद् (२५ बार, २।१२।११, ७।६६।११, १०।१६१।४ आदि), हेमन्त (१०।१६१।४), किन्तु स्पष्ट रूप से 'शिशिर' का उल्लेख नहीं है। अथवंवेद (६।५५।२) में छः ऋतुओं के नाम आये हैं, किन्तु कम से नहीं (ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद्वर्षाः स्विते नो दघात)। ऐत० ब्रा० (१।१) में पाँच ऋतुओं का उल्लेख है, हेमन्त एवं शिशिर एक साथ हैं। शतपथ ब्रा० (२।१।३।१६)ने कहा है कि संवत्सर में छः ऋतुएं हैं। अथवंवेद (६।६१।२)में सात ऋतुओं का उल्लेख है, किन्तु इससे परेशान होने की बात नहीं है, क्योंकि सातवीं ऋतु सम्भवतः मलमास है जो अथवं० (५।६।४) में स्पष्ट रूप से उल्लिखत है। तै० सं० (४।४।११।१) में छः ऋतुओं में प्रत्येक को दो मास वाली कहा गया है। वसन्त को

प्रथम स्थान मिला है (तै॰ बा॰ १।१।२।६)। शतपथ बा॰ (२।१।३।१-५) ने वसन्त एवं ग्रीष्म को देवों की, शरद, हेमन्त एवं शिशिर को पितरों की ऋतुओं के रूप में विणित किया है, इसी प्रकार मास का शुकल पक्ष, दिन एवं पूर्वा हू देवों के लिए तथा कृष्ण पक्ष, रात्रि एवं अपराह्म पितरों के लिए मान्य ठहराया है, और अन्त में व्यवस्था दो है कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को कम से वसन्त, ग्रीष्म एवं शरद ऋतु में पवित्र अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए। अशोक के समय में 'वर्ष' (जो ब्युत्पत्ति के अनुसार वर्षा ऋतु का द्योतक है) एवं 'संवत्सर' शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे।

कुछ पाश्चात्य विद्वान् यह कहते हैं कि वेदकालीन भारतीयों को ग्रहों का ज्ञान नहीं था। किन्तु उनके कथन भ्रामक हैं। थिवो महोदय ने वेद-कालीन भारतीयों को ऋतु-ज्ञान-विहीन कहा था, जो उपर्युवत विवेचन से आमक ठहरता है। इसी प्रकार उनकी ग्रह-विषयक वारणाएँ भी त्रुटिपूर्ण हैं। थिबो (ग्रुण्ड्रिस, पृ० ६, ११) एवं केयी (पृ० ३३) यह सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि भारतीयों में ऐसे उच्च ज्ञानों तक पहुँचने की शक्ति ही नहीं थी, ग्रह-पूजा, जो याज्ञ (१।२९५-३०८) में वर्णित हैं, वैदिक काल में नहीं प्रचलित थी। कम-से-कम बृहस्पित की ओर दो मन्त्र संकेत करते हैं। ऋ० (३।७।७) में आया है---'सात अध्वर्यु (याजक) पाँच ऋिंवजों के साथ प्रिय एवं पक्षी (अग्नि) के निहित पद की रक्षा करते हैं, वैल खाते हुए, निरायु, पूर्व में आनिन्दत होते हैं, देव लोग देवों के लिए वने नियमों का अनुसरण करते हैं। यहाँ पाँच अध्वर्यु या बैल पाँच ग्रहों के द्योतक हैं। इसी प्रकार उसने (इन्द्र ने) द्यावा, पृथिबी एवं रोदर्सा (आकाश एवं पृथिवी के मध्य स्थल) को भर दिया। वह पाँच देवों का विभिन्न रूपों में अधीक्षण करता है, ४९ देवों (मरुतों) का उचित ऋतुओं में, ३४ प्रकाशों का, जो उसके समान ही हैं, उनके विभिन्न नियमों के अनुसार अर्घाक्षण करता है।" 'ये पाँच वैल जो व्योम के वीच में स्थित हैं' (ऋ॰ १।१०५।१०)। ऋ० (१०।१२३।१ एवं ५) में जो 'वेन' शब्द आया है वह वेनस (शुक्र) का द्योतक हो सकता है। इसकी पाँचवी ऋचा का अर्थ यों हैं—'अप्सरा (युवा नारी) उषा (या विद्युत्) मुसकान के साथ अपने प्रेमी की ओर उन्मुख होती हुई, उच्च व्योम में वेन को घारण करती है, वह वेन के स्थानों में घूमती है और मुनहले पंख पर उसके साथ बैठती है। 'पूर्व में सूर्योदय के पूर्व उदित होते हुए शुक्र तारे का यह सुन्दर वर्णन है।

- ७. बृहस्पितः त्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्। सप्तास्यस्तु विजयते रवेण वि सप्तरिक्षरघ-मत्तमांसि ॥ ऋ० (४।५०। ४;अथर्व०२०।८८।४; बृहस्पितः प्रथमं जायमानस्तिष्यं नक्षत्रमित्तसम्बभूव । अंध्ठो देवानां पृतनासु जिष्णुः दिशो नृ सर्वा अभयं नो अस्तु ॥ तं० बा० (३।१।१।५)। तिष्य शब्द पुष्य का द्योतक है और इसके अधिष्ठाता (देवता) बृहस्पित हैं (तं० बा०, वहीं); यहाँ तक कि आगे के प्रन्थ, यथा गोभिलगृह्य (३।३।१४) में तंषी का अर्थ है पौषी (पौर्णमासो)। तिष्य ऋ० (५।५४।१३) में आया है। और देखिए ऋ० (१०।६४।८)।
- ८. आ रोवसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्तः। चतुस्त्रिशता पुरुषा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा वित्रतेन ॥ ऋ० (१०।५५।३)। यह गूढ़ अयं युक्त पद्य इन्द्रं की प्रशंसा में है। पाँच देव वे ग्रह हैं जो एक साथ ही नहीं प्रकट होते हैं, प्रत्युत वे अपनी ऋतु के अनुसार (ऋतुशः) प्रकट होते हैं। ३४ प्रकाश हैं—सूर्य, चन्द्र, ५ ग्रह, २७ नक्षत्र। लुडविंग एवं ओल्डेनबर्ग ने यह व्याख्या स्वीकृत की है। ३४ की कोई अन्य उचित एवं सन्तोषदायिनी व्याख्या नहीं है।

मास के विषय में आगे बहुत कुछ लिखा जायगा। शब्द 'मास्' या 'मास' है। 'मास्' शब्द ऋ॰ (११२५।८, ४११८।४, १०१५२३) में है— 'वह (अग्नि) प्रत्येक दिन एवं प्रत्येक 'मास्' में प्रकट होता है' (ऋ॰ ३१३१।९)।ऋ॰ (५१७८।९)में भी 'मास्' आया है (वह शिश् जो मां के पेट में दस 'मास्' रहता है जीविता-वस्था में निकल आये...)। 'मास्' का अर्थ चन्द्र भी है (ऋ॰ ८।९४१२, १०११२।७—सूर्ये ज्योतिरदघुमस्यिक्तून्, अर्थात् देवों ने सूर्य में ज्योति तथा चन्द्र में अन्धकार रख दिया)। 'मास्' (चन्द्र) एवं 'मास' (महीना) भारोपीय हैं, क्योंकि यह शब्द विभिन्न रूपों में भारोपीय भाषाओं में प्रयुक्त होता है।

कृतिपय ग्रन्थों में नक्षत्रों के विषय में लम्बे-लम्बे विवेचन उपस्थित किये गये हैं। 'नक्षत्र' शब्द के तीन ंअर्थ हैं—(१) सामान्य तारागण, (२) राशि-चक्र के २७ समान भागएवं (३) राशि-चक्र के तारा-दल (जि**नमें** प्रत्येक के साथ एक या अधिक तारे होते हैं)। प्रस्तुत लेखक के मत से वैदिक संहिता में प्रथम एवं तृतीय अर्थ में ही 'नक्षत्र' का प्रयोग हुआ है। यह हो सकता है कि राशियाँ २७ समान भागों में विभक्त थीं और उन्हें नक्षत्र कहा गया, किन्तू सरलतर एवं अधिक रूप में प्रारम्भिक ढंग था अधिक प्रभावशाली तारों से तारा-दलों को अभिव्यक्त करना, यथा कृत्तिकाएँ, मगिशराएँ, और उन्हें 'नक्षत्र' शब्द से सुचित करना। 'नक्षत्र' शब्द वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों में कई बार आया है। देखिए ऋ० (१।५०।२ : चोरों के समान नक्षत्र-गण, रात्रियों के समान सूर्य को लक्ष्य वनाने के लिए, जो संसार को देखता है, चले जाते हैं); ऋ० (३।५४।१९, ७।८६।१,१०।१११।७, १०।८५। २)। इन स्थानों पर 'नक्षत्र' शब्द 'तारे' के अर्थ में आया है। किन्तु ऋ० (१०।८५।२ एवं १०।६८।११) में (पितरों ने नक्षत्रों के साथ व्योम को अलंकृत किया), लगता है, 'नक्षत्र' शब्द विख्यात २७ तारा-पुंजों का द्योतक है। शत० बा० ने कृत्तिकाओं (जो पूर्व दिशा से विचलित नहीं होतीं) एवं अन्य नक्षत्रों में (जो विचलित हो जाते हैं) भेद प्रकट किया है। दूसरा शब्द है 'स्तु' (जो भारोपीय है) जो ऋ॰ (श६८।५, श८७।१, श१६६।२ आदि) में आया है और इसका सम्बन्घ है आकाश के अलंकरण से। ऋक्ष शब्द 'तारा' के अर्थ में आया है (ऋ॰ १।२४।१०)—'ये ऋक्ष जो उच्च स्थिर हैं, रात्रि में दिखाई पड़ते हैं, किन्तु दिन में वे कहाँ चले जाते हैं?' यह सप्तर्षि-मण्डल का द्योतक है। अथर्ववेद (६१४०११) में स्पष्ट रूप से सप्तर्षि-मण्डल की ओर संकेत हैं-... सप्तिपियों को आहति देने से हमें अभय प्राप्त हो।' शत० बा० (२।१।२।४) का कहना है कि प्राचीन काल में सप्तिष (सात ऋषि) 'ऋक्ष' कहे जाते थे। ऋ० (५।५६।३, ८।२४।२७ एवं ८।६८।१५) में 'ऋक्ष' शब्द का अर्थ 'भाल' (रीछ) या अन्य कुछ है। हमने ऊपर देख लिया है कि ऋ० (१'०।५५।३) में २७ नक्षत्रों की ओर संकेत मिलता है। इसके अतिरिक्त ऋ o तिष्य एवं अघा तथा अर्जुनी (१०।८५।१३) का उल्लेख करता है जिनमें अन्तिम दो अथर्ववेद के अनुसार मघा एवं फाल्गुनी हैं। यह सम्भव है कि या तो अघा एवं मघा दोनों ऋग्वेदीय काल में एक ही नक्षत्र के नाम थे, या तै० सं० एवं अथर्ववेद के समयों में अघा मघा के नाम का द्योतक हो गया। अघा एवं अर्जुनी के, जो २७ नक्षत्रों में सम्मिलित थे, अतिरिक्त ऋग्वेद मृगशीर्ष, पुनर्वसु, शतिभिषक् तथा कुछ अन्य नक्षत्रों के नाम भी लेता है। नक्षत्र २७ या २८ (उत्तराषाढा के उपरान्त तथा श्रवण के पूर्व अभिजित को जोड़ने से) हैं। वैदिक साहित्य, वेदांगज्योतिष, यहाँ तक कि याज्ञवल्वयस्मृति में भी नक्षत्रों का वर्णन कृत्तिका से अपभरणी (या भरणी) तक हुआ है, किन्तु तीसरी या चौथी शताब्दी से अब तक के ग्रन्थों में अश्विनी से रेवती तक होता है।

अब हम नक्षत्रों के नामों, उनके देवताओं, लिंग एवं उनमें रहने वाले तारों की सूची देंगे । नामों एवं नक्षत्र-देवों के विषय में मत-मतान्तर हैं। पूर्ण सूचियाँ तैं० सं० (४।४।१०।१-३), तैं० ब्रा० (१।५ एवं ३।१), अथवंवेद (२।१३।३०) एवं वेदांगज्योतिष में मिलती हैं।

## मधार्मी की सूबी, उनके नाम, देवता आदि

वर्मशास्त्र का इतिहास										
तारों की संक्या	तै॰ सं॰ (३।१।४।१) में सात नाम हैं, यथा अम्बा, दुला आदि (बहुला)	~	१ बहुवचन, तै० ब्रा०-११५, क्ठिक, मैत्रा०	२ (तै० ब्रा० १।५), तै०स०, काठ०, मैत्रा० (पुरिल्लग)	्र १ काठ० एवं मैत्रा०	•				
<u>जिं</u>	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसक लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिग पुल्लिग	पुरिल्लग				
वेदांग- ज्योतिष २५-२६ (ऋ०), ३६।४० य०केवस्त	असि	प्रजापति	सीम	ਲ ਅ	अदिति	बृहस्पति				
मैत्रायणी सं० २। १३।२०	कृत्तिका	रोहिणी	इन्वका (देवता, मरुत)	ie justinia	पुनबस्	तिष्य				
क्रिक सं • ३९। १३	अपिका	रोहिणी	इन्वका (देवता, मरुत)	ां चि	पुनर्बसु	तिष्य				
अथवं वेद १९।७। २-५	किसी नक्षत्र के देवता का नाम नहीं	रोहिणी	मृगशीर्ष	अप्र	पुनवसु	5				
तै० <b>बा</b> ० ३।१।४-५	कृत्तिका.	रोहिणी	मृगशीर्ष या इन्वका	अप्र	पुनर्वसु	तिव्य				
तै ० ब्रा.० १।५	<b>कृ</b> त्तिकृ।	रोहिणी	इन्वका	् <u>ब</u> रू	पुनर्वसु	तिव्य				
तै॰ सं॰ ४१४।१०। १-३	अपिक <u>ा</u>	रोहिणी	मृगशीर्ष	आद्री ,	पुनवस	तिव्य				
वे दिक देवता	भिन	प्रजापति	सोम	px .	अदिति	बृहस्पति				
वर्तमान नाम -	अतिक <u>ा</u>	रोग्हिजी	मृगशीर्ष	आद्रां	पुनर्वमु	र्वेख				
व दिक नाम नाम	कृतिका	रोहिणी	मृगशीर्ष	आर्द्ध	पुनर्वसु	तिष्य				
संस्था	~	~	mr .	>	مو	Ubr				

## नक्षत्रों का प्राचीन उल्लेख

बहुवचन	बहुवचन	स्त्रील्मि बहुवचन, २ (अथर्वे०, तै० द्वा० १।५, ३११; १ (तै० सं०)	१; २ तै ० ब्रा० शप्।३।१।४।६०	१; काठ० में २	~	% - मेत्रा०	२ नपुंसक लि॰, काठ॰, मैत्रा॰	बहुवचन, पुल्लिंग, तै० ब्रा० ३।१।५।१	~	या स्त्रीस्थिंग, २ (विचृतौ), नपु॰ १ मूल, काठ॰, तै॰ । ब्रा॰३।१।५।३,स्त्री॰ १ (मलबहेंणी)
स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	वुल्लिग	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिय नप्सक लिय	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	पुंल्खिया 
सर्पाः	पितरः	भग	अर्थमा	सविता	त्वध्टा	वाद	इन्द्राग्नी	मित्र '	12°	
आश्लेषा  सर्पाः	मधा	फाल्युनी: (भग, देवता)	काल्गुनी (दे० अर्थमा)		वित्रा (स्तरम	निष्ट्यम्	विशाखम्	अनुराधा	ज्येष्ठा (बरुण)	मूलम् (निऋति)
आश्लेषा	मबा	फाल्युनी: (मग, देवता)	उत्तरा फाल्गुनीः (अर्थना)।	हुस्त	वित्रा (ज्ञाह्या)	निष्ट्या (बायु)	विशासम्	अनुराघा	ज्येष्ठा (इन्द्र)	मूलम् (निऋति)
आरलेषा	मधा	पूर्वा फाल्मुनी	अविणित	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखे	अनुराधा	ज्येष्ठा	म् अ अ
आश्रेषा	मबा	फाल्युनी	फाल्युनी	हस्त	नित्रा (ज्यहरा)	निष्ट्या (बायु)	विशासे	अनुराधा	ज्येदठा	मूल (निऋति)
आश्रेषा	मधा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तर फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	निष्टया (बायु)	विशाक्षे	अनुराधा	रोहिणी	मूलव ् वी
आश्रेषा	मबा	फाल्गुनी	. फाल्पुनी	हस्त	िचत्रा	स्वाती	विशाखे	अनुराघा	रोहिणी	विचृतौ (पितरः)
सर्पाः	<b>पितरः</b>	अर्थमा	भग	सिविता	in in	ू व	इन्द्रानी	मित्र	ומי הא	मितर:
आलेश्षा	मबा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तरा फाल्मुनी	BHT.	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराघा	ड्येष्ठा	्र अ
आश्रवा	मवा	फाल्मुनी	फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाला	अनुराधा	रोहिणी	विचृतौ
9	V	0.	0	~ ~	2	er 0~	>	5~	W.	200

## वर्मशास्त्र का इतिहास

बहुवचन	वहुव बर्ग	~	a.	बहुवचन	१ अथवं० एवं मैत्रा०	बहुबचन, तै॰ झा॰ ११५ एवं ३११ अन्यों में	(या स्त्रीलिंग ?) बहुवचत	~	۲,	ब्रह्मच म्
स्त्रीरिलग	स्त्रीलिंग	नप् सक लिंग	स्त्रीरिकम	स्त्रीलिंग	पुंहिल्लग नप्सकि	पुंक्लिंग स्त्रीलिंग	पुंहिल्लग	स्त्रीलिंग	पुँिल्लग	स्त्रोलिंग
अतप:	विश्वेदेवाः	अनुहिल- बित	विष्णु	वस		अज एकपात्	अहिबु- हन्य	भूब	अश्विती (दोनों अश्विती कुमार)	म
अपिहा	अयादा	अभिजिंत् ( बह्या )	श्रोणा	(ावष्णु) श्रविष्ठा	शतभिषक् (इन्द्र)	प्रोष्ठपदा (अहिब्रुं- ष्ट्य)	पोष्ठपदा (अज एकपात्)	रेवती	अश्वयुजा ।	मर्पाः
अवाहा	उत्तरा-	अवर्णित	अश्वत्य	श्रविका	शतिभषक् (वरुण)	प्रोष्ठपदा	उत्तरे पोष्ठमदा (अहिबुँ- घृनिय)	रेवती	अरवयुजी	अपभरणीः
अपादा	उत्तरा	अभिजित्	श्रवण	श्रविष्ठा	शतमिषक्		प्रोध्ठपदा	रेवती	अश्वयुजी	भर्ष्य:
अषाढाः	अपांढा:	अभिजित् (बह्या)	श्रोपा	श्रविष्ठा	शतिभषक् (वरुण)	प्रोष्ठिपदा	प्रोष्ठपदा (अहिबु- घ्निय)	रेबती	अश्वयूजी	भरवी
पूर्वाषाढा	उत्तरा-	अभिजित् (देवता <sub>बदी</sub> )	श्रोपा	श्रविष्ठा	शताभिषक (इन्द्र)	प्रोष्ठपदा	प्रोष्ठपदा (अहिबु- ध्निय	रेबती	अश्वयुजी	अपभरणी
अवाढा	अयादा	अनुहिल्ल-	श्रोणा	श्रविष्ठा	शत मिष्म्	प्रोप्ठियदा	प्रोष्ठिपदा (अहिबँ- घ्निय	रवती	अश्वय जा	अपभरणी
अत्तः:	विश्वेदेवा:	ब्रह्मा	विष्णु	वस	क्र	अज एकपाद्	अहिबु- घ्निय	वूवा	अश्विनी- दुःमार (दोनों)	सम
पूर्वाषाढा	उत्तरा- पाढा	अभिजित् (अवर्णितः)	श्रवण	वनिष्ठा	शतमिषक्	पूर्वा साद्रपदा	उत्तरा	रेवती	अश्विनी	भरणी
अवाहा	"अवाढा	अभिजित्	श्रोणा	श्रविष्ठा	शतभिषक् शतमिषक्	प्रोप्ठिपदा	प्रोष्ठिपदा	रेबती	अश्वयुजी	अपभरणी
22	<b>%</b>	ô	38	33	E C .	%	52 .	ري م	30	35

इस सूची को देखने से पता चलता है कि नक्षत्रों के नामों में कहीं-कहीं भेद है। देवता भी कहीं-कहीं भिन्न हैं। कहीं-कहीं नक्षत्र में केवल एक तारा है, तो कहीं दो, तीन या अधिक। एक प्रश्न उठता है—तै० सं० एवं तै० ब्राह्मण तथा तै० ब्रा० (१।५) एवं ै० ब्रा० (३।१) में अन्तर क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि तै० सं० का वचन अपेक्षाकृत प्राचीन है। तै० ब्रा० से कई शताब्दियों पूर्व तै० सं० का प्रयणन हुआ था। किन्तु तै० ब्रा० (१।५) अपने (३।१) से अन्तर क्यों रखता है? इसका उत्तर भी कठिन है। इस विवेचन को स्थानाभाव से हम यहीं छोड़ते हैं।

अब एक प्रश्न उठता है—क्या भारतीय नक्षत्र यहीं के हैं या किसी बाहरी देश से उनका ज्ञान प्राप्त किया गया? प्रसिद्ध फांसीसी ज्योतिःशास्त्रज्ञ विओट का कहना है कि भारतीयों ने नक्षत्र-ज्ञान चीनियों से ग्रहण किया है और द्विटनी महोदय भी इस मत के समर्थक हैं। कुछ अन्य विद्वानों ने यह भी कहा है कि भारतीयों ने नक्षत्र-ज्ञान बेबिलोन के लोगों या अरव लोगों से प्राप्त किया है। हम इसके विवेचन में नहीं पड़ना चाहते। स्वयं अरव लोगों ने कहा है कि उन्होंने भारतीय सिद्धान्तों से ही अपना ज्योतिःशास्त्र बनाया। अतः यह विवाद हम यहीं छोड़ते हैं (देखिए थिवो, ग्रुण्ड्रिस, पृ० १४)। बड़े विद्वान् अधिकतर दुराग्रह करते हैं और तथ्य से अपनी आंखें बन्द कर लेते हैं। सिद्ध्यू के चीनी सिद्धान्त में पहले केवल २४ नक्षत्र थे जो आगे चलकर लगभग ई० पू० ११०० (देखिए थिवो, ग्रुण्ड्रिस, पृ० १३) में २८ हो गये। वैदिक ग्रन्थों में २४ नक्षत्रों की कोई चर्चा नहीं है। बेबिलोन एवं चीन में राशियों का सम्बन्ध धार्मिक कृत्यों से नहीं था। वैदिक काल में कोई व्यक्ति किसी निर्दिष्ट नक्षत्र में अग्नि प्रज्वलित किये विना कोई यज्ञ नहीं कर सकता था। माम, फाल्गुन, चैत्र आदि मासों के नाम नक्षत्रों के आधार पर ही बने, और यह बात संस्कृत भाषा में ही पायी जाती है, यूनानी, लैटिन या चीनी में नहीं। नक्षत्रों के देवता-गण वैदिक हैं, उनके बेबिलोनी या चीनी नाम नहीं पाये जाते। बेबिलोन में जो आलेख प्राप्त हुए हैं उनमें नक्षत्रों की गणना वैसी नहीं है जैसी कि हम वैदिक साहित्य में पाते हैं। तैत्तिरीय संहिता और तै० ब्रा० के बहुत पहले से वैदिक लोगों ने नक्षत्रों की संस्था (२७ या २८) निश्चित कर ली थी। नक्षत्रों, उनके नामों, उनके देवताओं आदि के कम यज्ञिय कृत्यों में समाहित हो चुके थे।

सभी नक्षत्रों के नाम महत्वपूर्ण (सार्थक) हैं और उनके साथ अनुश्रुतियाँ भी बँघी हुई हैं। उदाहरणार्थ, आर्द्रा का अर्थ है 'भींगा हुआ', यह नक्षत्र आर्द्रा नाम से इसी लिए प्रख्यात हुआ क्योंकि जब सूर्य इसमें अवस्थित हो तो वर्षा आरम्भ हो जाती है। पुनर्वसु का सम्भवतः यह नाम इसीलिए पड़ा कि घान एवं जी के अनाज जो भूमि में पड़े थे अब नये घान के रूप में अंगुरित हुए। पुष्य नाम इसीलिए पड़ा कि नये अंगुर बढ़े और फलित-पोषित हुए। आश्रेषा या आक्लेषा नाम इसीलिए पड़ा कि घान या जी के पौधे इतने बढ़ गये कि वे एक-दूसरे का आलिंगन करने लगे। मघा नाम इसलिए पड़ा कि घान या अन्य पौधे खड़े अन्नों के रूप है। गये, जो स्वयं घन है। कृतिका नाम इसलिए पड़ा कि वे (६ या ७) चित्तकवरे मृगचमं के समान हैं, जिस पर वेद के छात्र वेदाध्ययन के लिए आसन जमाते थे। इन तथ्यों के रहते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतीयों पर नक्षत्र-सम्बन्धी बाहरी ऋण है। जिन लोगों ने बाहरी ऋण की बात कही है, उनके पास कोई उचित प्रमाण नहीं है। दुराग्रहों एवं कल्पनाओं का सहारा ही कुछ विद्वानों की हठवादिता के मूल में है। केवल एक ही बात इन दुराग्रहियों को मिलती है कि भारतीयों की नक्षत्र-गणना जो २८ तक है, बेबिलीन एवं चीनियों में भी पायी जाती है और इसीलिए कितप्र विचारक किन्तु हठवादी विद्वानों ने यह कहने का साहस किया कि लगभग ३५०० वर्ष से अधिक पहले भारतीयों ने नक्षत्र-ज्ञान उधार लिया। वहीं यह कल्पना भी सम्भव थी कि बेबिलीन एवं चीन के लोगों ने भीरतीयों से यह ज्ञान प्राप्त किया या भारत, बेबिलीन एवं चीन ने किसी एक प्रागैतिहासिक मूल से यह ज्ञान प्राप्त किया। बिओट (फेंच, बिओ), वेवर एवं ह्विटनी के सिद्धान्तों का खण्डन तिल्क ने 'ओराएन' (विशेषतः पृ० ६१-९५) में किया है

एवं प्रो० जैकोबी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि कृत्तिका से आरम्भ नक्षत्र-श्रेणी प्राचीनतम व्यवस्था नहीं थी, प्रत्युत भारतीयों के पास इससे भी प्राचीन व्यवस्था थी, जिसमें महाविषुव के काल से आरम्भ कर मृगशीर्ष नक्षत्र से नक्षत्र-श्रेणी की गणना होती थी। विशेष अध्ययन के लिए देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी की जिल्दें (२३, पृ० १५४-१५९; पृ० २३८-२४९; ३६१-३६९; जिल्द ४८, पृ० ९५-९७) जहाँ बिओ, वेबर, बुहलर, थिबो आदि की मान्यताएँ व्यक्त हैं। यास्क ने नक्षत्र की व्युत्पत्ति 'नक्ष्' (जाना) घातु से की है, शतपथ बा० (२।१।२।१७-१८) एवं तै० बा० (२।७।१८) ने इसकी व्युत्पत्ति 'न + क्षत्र' से की है और पाणिनि (६।३।७५) ने इसे स्वीकार किया है। यह 'नक्षत्र' शब्द ऋ० (६।६७।६) में सूर्य के लिए भी प्रयुक्त है। तै० बा० (१।५।२।१) ने बताया है कि किस प्रकार किसी घामिक कृत्य के लिए नक्षत्र को जानना चाहिए; व्यक्ति को चाहिए कि वह सूर्योदय के पूर्व एवं उसके समय, जब सूर्य की प्रथम किरणें उतरती हैं, आकाश को देखे जहाँ नक्षत्र परिद्यित होता है, जब सूर्य प्रकट होता है तो नक्षत्र उसके पश्चिम में रहता है, उसी समय उसे, जो कुछ करना है, करना चाहिए। ऐसा आया है कि ऋषि मतस्य ने इसी विधि से 'यज्ञेषु' एवं 'शतद्युम्न' की महत्ता स्थापित की थी (तै० बा० १।५।२।१)।

ऐतरेयब्राह्मण (३।४४) के जैसे आरम्भिक काल में वैदिक भारतीय इस निष्कर्ष पर पहुँच गये ये कि सूर्य एक है और वह फमां अस्त नहीं होता — 'यह सूर्य वास्तव में न तो अस्त होता है और न जिंदा। जब लोग ऐसा सोचते हैं कि वह (सूर्य) अस्त होता है तो यह होता है कि वह दिन के अन्त में पहुँचता है, जलटा हो जाता है, नीचे रात्रि बनाता है और ऊपर दिन। जब लोग ऐसा सोचते हैं कि प्रातःकाल जिंदत होता है, तो जसका अर्थ है कि वह रात्रि के अन्तिम रूप में पहुँच कर उलटा हो जाता है, नीचे दिन बनाता है और ऊपर रात्रि। वह वास्तव में कभी भी नहीं अस्त होता है।' यह 'सूर्यप्रज्ञित' में जिल्लिखत जैन सिद्धान्त के विरोध में जाने वाली एक हृदयग्राही जित्त है, क्योंकि जैन सिद्धान्त के अनुसार दो सूर्य एवं दो चन्द्र हैं। ग्रीस (यूनान) में हिराविलटस (ई० पू० ६००) ने भी भ्रामक जिन्त कही थी कि एक नया सूर्य प्रति दिन जन्म लेता है और मरता है (इयेस्लर, पू० ४२)।

ब्राह्मण काल में भारतीयों ने विषुव-काल का ज्ञान कर लिया था (विषुव को यज्ञिय वर्ष के मध्य में रखा गया था, उस दिन रात-दिन बराबर थिस्तार के थे)। तैं ॰ ब्रा॰ (१।२।३) में आया है—'जब कोई दो पक्षों को या शाला के झुकने वाले दो भागों को किसी बाँस या घरन से लगाते हैं तो वह मध्य में होती है, इसी प्रकार लोग दिवाकार्त्य दिन का उपयोग दो पक्षों (अर्घ वर्षों) के मध्य में करते हैं।''

- ९ स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति। तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रीमेवाधस्तात्कुरुतेऽहः परस्तात्। अथ यदेनं प्रात्रव्देतीति मन्यन्ते रात्रिरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवा-वस्तात्कुरुते रात्रि परस्तात्। स वा एष न कदाचन निम्लाचित। ए० ब्रा० (३१४४)। यह विचार कुछ पुराणों ने भा प्रहण किया है, उदाहरणार्थ, विष्णुपुराण (२।८।१५)। ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुटसि० (११।३) में जन सिद्धान्त का खण्डन किया है। और देखिए पञ्चितिद्धान्तिका (१३।८)।
- १०. एकविश्वनेतदहल्पयन्ति विश्ववन्तं मध्ये संवत्सरस्य । ऐ० ब्रा० (४।१८ या १८।४) । यथा शालायं पक्षसी मन्यमं वंशनिम समायच्छति एवं संवत्सरस्य पक्षसी दिवाकीत्यंमिभसंतन्विन्त नार्तिमाध्छेन्ति । तं० व्रा० (१।२।३) । ताण्ड्यबाह्मण (४।६।३-१३ एवं ४।७।१) ने विश्वव दिन का उल्लेख किया है और प्रतिपादित किया है कि दिवाकित्यंसीम का गान उस दिन होना चाहिए, क्योंकि देवों ने उस अन्धकार को, जिससे किसी असुर के पुत्र स्वर्भानु ने

यहाँ पर जान-बूझकर वैदिक काल के ज्योतिष-ज्ञान का विवरण थोड़ा लम्बा कर दिया गया है।
कुछ यूरोपीय विद्वानों ने, जिन्होंने प्राचीन एवं मध्यकालिक भारत की ज्योतिष-सम्बन्धी उपलब्धियों पर
लिखा है, भारतीय ज्योतिःशास्त्र तथा सामान्य रूप से सभी भारतीय पक्षों पर अपमानजनक एवं तिरस्कारपूणं
उक्तियाँ कही हैं। यहाँ कुछ ही उदाहरण दिये जा रहे हैं। थिबो (ग्रुण्ड्रिस, पृ०३) ने कृपापूर्वक यह उद्घोषित
किया है कि यूनानी प्रभाव के पूर्व का भारतीय ज्ञान न-कुछ सा है और जो कुछ है वह मात्र प्रारम्भिक अवस्था का
है। ह्विटनी (जे० ए० ओ० एस०, जिल्द ६, पृ० ४७१) महोदय ने भी अपने क्षुद्र ज्ञान का परिचय दिया है। वे
अमेरिका के संस्कृतज्ञ पण्डित रहे हैं, किन्तु उन्होंने हिन्दू-मस्तिष्क की उपलब्धियों को गौण स्थान दिया है। उनके
सहकर्मी श्री बर्गेस तो और आगे वढ़ गये हैं। यह है पश्चिमी विद्वानों के अल्प ज्ञान, हठवादिता, विरोधपक्षता
आदि का रूप।

किन्तु क्या हम ह्विटनी महोदय को उन्हीं के शब्दों में उत्तर नहीं दे सकते हैं? टाल्मी के उपरान्त लगभग १४०० वर्षों तक ह्विटनी महोदय तथा अन्य अहंकारी पाश्चात्य लेखकों के पूर्वज लोगों ने ज्योतिय के क्षेत्र में कोई भी नवीन ज्ञान नहीं जोड़ा और अवीध रूप में गुलाम के समान टाल्मी के एल्मागेस्ट पर ही टिके रहे और यूरोपीय अन्यकार-युग के प्रणेता बने रहे। उस लूथर ने भी, जिसने पोप के अधिकार का खुलकर विरोध किया था, कोर्पानकस को मूर्ख कहा और उसे ज्योतिःशास्त्र को उलट देने का अपराधी माना, बाइबिल की निर्भरता स्थापित की और घोषित किया कि जोशुआ ने सूर्य को, न कि पृथिवी को, स्थिर रहने का आदेश दिया (जोशुआ, १०।१२)। यह उलटी गित है, जो कुछ बाइबिल में है वही सत्य है! हाय रे बुद्धि और उसका चमत्कार! ह्विटनी आदि तथाकथित विद्वानों को लूथर के समान कथनों एवं अपने अल्प ज्ञान, हठवादिता आदि पर लज्जा आनी चाहिए थी, इत्यलम्।

प्रस्तुत लेखक सभी पारचात्य लेखकों से, जो भारतीयता-शास्त्र में अभिरुचि रखते हैं तथा कुछ यूनानी लेखकों की उपलिचयों के चकाचौंघ में पड़े हुए हैं, निवेदन करता है कि वे सर नार्मन लाकीअर (डान आव ऐस्ट्रॉनामी, १८९४ ई०) के निम्नोक्त शब्दों को पढ़ें—'ऐनेक्जिमैण्डर ने कहा कि पृथिवी की आकृति वर्तुलाकार थी और उन दिनों के प्रत्येक ज्ञात स्थान उस वर्तुल रूप की चपटी सीमा पर अवस्थित थे; और प्लेटो ने, इस आधार पर कि ज्यामिति का अतिपूर्ण रूप घन है, कल्पना की कि पृथिवी घनाकार है, और यूनानियों द्वारा ज्ञात पृथिवी इसकी ऊपरी सतह पर थी। इन विषयों में अतिदर्पित यूनानी मस्तिष्क कुछ भी उन्नित नहीं कर सका था और अपने पूर्वज वैदिक याजकों से बहुत पीछे था (पृ० ८)।' यदि ज्ञान के दो-एक क्षेत्रों में यूनानी आगे बढ़े तो विश्व के अन्य भागों के कुछ लोग अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों में बहुत आगे थे। प्रस्तुत लेखक उनसे यह भी निवेदन करता है कि वे सार्टन महोदय की लिखत 'ए हिस्ट्री आव साइंस' की भूमिका

सूर्य को विद्ध कर डाला था, दिवाकीत्यं से नष्ट कर दिया, और वर्ष का आत्मा विषुव है तथा इसके दोनों पक्ष चतुर्विक् चलते रहते हैं। देखिए इस महाप्रन्थ का खण्ड २, जहाँ 'गवामयन', सांवत्तरिक सत्र एवं विषुव दिन की अवस्थित के विषय में लिखा हुआ है। यह नहीं भूलना चाहिए कि विषुव केवल एक ज्योतिःशास्त्रीय अविध है और वह वैज्ञानिक यन्त्रों के बिना ठीक से निरोक्षित नहीं हो सकती। यिज्ञय वर्ष में केवल ३६० दिन होते हैं तथा विषुव नामक दिन मध्य में होता है तो इस प्रकार दिनों की कुल संख्या ३६१ हुई, किन्तु सौर वर्ष में लगभग ३६५ दिन होते हैं तो विषुव के समय रात एवं दिन की बराबरी केवल लगभग होगी।

(पृ०९) पढ़ें, जहाँ सार्टन महोदय ने पाश्चात्य लेखकों की अक्षम्य भूलों की ओर संकेत किया है, यथा मिस्र के वैज्ञानिक प्रयासों, मैसोपोटामिया बादि अन्य देशों की वैज्ञानिक उपलब्धियों पर पाश्चात्य लेखकों का ध्यान नहीं गया है। वे बचपने के साथ यही कहते हैं कि विज्ञान का आरम्भ यूनान से हुआ, और वे यूनानी अन्धविश्वासों को खिपाने का प्रयत्न करते हैं। १९वीं एवं २०वीं शताब्दियों के लेखकों के लिए यह उचित नहीं था कि वे किसी देश के लोगों की निन्दा करके उसे नीचे रख दें और किसी देश को आकाश में उछाल दें। उन्हें प्रमाणयुवत, संतुलित, पक्षपातरहित होकर, विश्व के प्राचीन लोगों की उपलब्धियों पर सचेत होकर निर्णय देना चाहिए था।

वैदिक काल की प्राचीनता के विषय में विभिन्न मत हैं। जैकोबी, दीक्षित, तिलक आदि ने इसे ई० पू० ४००० या इससे भी अधिक माना है। विन्टरनित्ज ने ई० पू० २५००, मैक्सम्यूलर तथा उनके अनुसरणकर्ता पारचात्य विद्वानों ने वैदिक साहित्य को ई० पू० १५०० से ई० पू० ८०० के बीच रखा है। यदि हम अन्तिम मत भी स्वीकार कर लें तो यह प्रकट होता है कि वैदिक साहित्य में ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों में पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी, जो यूनान से किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं की जा सकती थी। यूनान का कोई ऐसा साहित्य नहीं है जो निश्चितता के साथ ई० पू० ९०० या ८०० के पूर्व रखा जा सके। युनान में होमर की कविताएँ एवं हेसिओड के ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन युनानी साहित्य हैं। होमर में सूर्य, चन्द्र, प्रातः एवं सायं, तारा, प्लेइआडस (कृत्तिका), ह्याडेस, ओराइन, ग्रेट बियर, सिरियस (ओराइन का कुत्ता), बूटेस का उल्लेख है, जिन्हें हेसिओड ने भी उल्लिखित किया है। हेसिओड का कथन है कि जाड़े के ६० दिनों के उपरान्त वसन्त का आगमन हुआ, किन्तु उसमें विषुव दिनों का उल्लेख नहीं है। इस बात से स्पष्ट है कि वैदिक ज्योति:शास्त्र इन दो यूनानी लेखकों से कई शताब्दियों पूर्व (यदि हजारों वर्ष पूर्व नहीं) इनसे कई गुना विकसित था। "भारतीयों एवं चीनियों के अतिरिक्त अति प्राचीन लोग हैं मिस्री, बेबिलोनी, हिट्टाइट एवं चाल्डियन लोग। मिस्र के विषय में कैम्ब्रिज ऐंश्येण्ट हिस्ट्री (जिल्द २, पृ० २१८) में आया है कि वहाँ के लोग गणित का उपयोग ज्योति:शास्त्र में नहीं के वरावर करते थे। हिट्टाइटों एवं चाल्डियनों में कोई ऐसी बात नहीं थी और न किसी पाश्चात्य लेखक ने ऐसा कहा ही है कि भारतीयों को उनसे कुछ प्राप्त हुआ था। ई० पू० ८०० के करीब भी होमर एवं हेसिओड का ज्योतिष ज्ञान बहुत अल्प था। हिप्पार्कस, जो प्राचीन काल का सबसे बड़ा ज्योतिःशास्त्रज्ञ कहा गया है, और जिसने अपना कार्य लगभग ई० पू० १३० में पूरा किया, मैसोपोटैमिया में किये गये ई० पू० ७४७ ई० के निरीक्षणों की जानकारी रखता था। टाल्मी ने लगभग १५० ई० में लिखा और उसका ग्रन्थ एल्मागेस्ट हिप्पार्कस द्वारा किये गये निरीक्षणों पर आघारित था और टाल्मी के पूर्वजों के सारे कार्य भी हिप्पार्कस पर ही आघारित थे, जो टाल्मी के स्पष्ट कार्यों के समक्ष ठहर न सके और या तो उनका पठन-पाठन बन्द हो गया या वे नष्ट हो गये। फलित ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव के बारे में आगे लिखा जायगा, किन्तु थोड़े-से शब्द भारतीय सिद्धान्तों एवं पश्चात्कालीन ग्रन्थों के विषय में लिख देना आवश्यक है।

पहली बात यह है कि सिद्धान्त-सम्बन्धी भारतीय ग्रन्थ यह नहीं स्वीकार करते कि भारतीय ज्योति:शास्त्र का आधार यवन-ज्ञान था और न ज्योति:शास्त्र के ग्रन्थों में उतनी संख्या में यूनानी मूल

११. देखिए 'ग्रीक ऐस्ट्रानॉमी' (टी॰ एल॰ हीय, १९३२), भूमिका पृ॰ ११-१२ एवं सर नार्मन लाकीएर लिखित 'डान आव ऐस्ट्रानॉमी (१८९४), पृ॰ १३३, जहाँ यह उल्लिखित है कि जाब की पुस्तक एवं होमर तथा हैसिआड में केवल थोड़े से तारों का ज्ञान पाया जाता है।

वाले शब्द ही प्राप्त होते, जितने कि वराहमिहिर के फलित ज्योतिष में। पञ्चिसद्धान्तिका के विषयों में कहीं भी यूनानी शब्द का मूल प्रकट नहीं होता। वेबर आदि ने वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त 'रोमक' एवं 'पौलिश' पर अधिक निर्भरता व्यक्त की है। यदि रोमक शब्द अलेक्जैंड्रिया का है तो इससे यह नहीं सिद्ध होता कि इन सिद्धान्तों पर यूनानी प्रभाव है। मध्यकाल का कोई ग्रन्थ या पंचांग प्रमुख रूप से रोमक सिद्धान्त पर आघरित था, इस विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता। १२ वर्ष का विस्तार है ३६५ दिन, ५ घण्टे, ५५ मिनट एवं १२ सेकण्ड, जो हिप्पार्कस की गणना से मिलता है और जिसे टॉल्मी ने मान लिया है (थिबो, ग्रुण्ड्रिस, पृ० ४२)। वराह द्वारा अहर्गण के लिए व्यवस्थित नियम (रोमक सिद्धान्त के अनुसार) यवनपुर (उज्जियनी नहीं) के मध्या ह्न के लिए ठीक उतरता है। पश्चिम के विद्वानों ने इस बात पर कभी नहीं सोचा कि रोमक-सिद्धान्त जो संस्कृत में था, किसी ऐसे यूनानी द्वारा, अधिक सम्भव है, प्रणीत हो सकता है, जो भारतिनवासी रहा हो तथा संस्कृत एवं युनानी दोनों भाषाओं या अलेक्जैंड्रिया के ज्योति:शास्त्र का ज्ञाता रहा हो, तथा टाल्मी और यहाँ तक कि हिप्पार्कस का पूर्वकालीन रहा हो, तथा इसी से वराह ने अपने करण में उसका निष्कर्ष दिया हो, क्योंकि उन्होंने अपने प्रसिद्ध फलिल ज्योतिष ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' में यवन-दृष्टिकोण का उल्लेख किया है और अधिकतर अपना मतभेद प्रकट किया है। इंतना ही नहीं, वराह यूनानी फलित ज्योतिष के प्रति उदार भी थे-पवन, सचमुच म्लेच्छ हैं और यह शास्त्र उनमें सम्यक् रूप से व्यवस्थित है; यवन भी पूजित हैं, मानो वे भी ऋषि हों। तब फलित ज्योतिष के पण्डित किसी बाह्मण के विषय में क्या कहा जाय? (अर्थात् वह ब्राह्मण तो उनसे भी अधिक पूजिंत होगा)।" यहाँ पर 'शास्त्र' शब्द 'होरा-शास्त्र' का द्योतक है। किन्तु वराह ने अन्यत्र ऐसी प्रशंसा यूनानियों के विषय में नहीं की है, उनके ज्योति:शास्त्र एवं गणित की योग्यता की चर्चा नहीं की है। उन्होंने यूनानियों को ज्योतिःशास्त्र के विषय में कोई मान्यता नहीं दी, और न उनके सिद्धान्तों का कोई आधार माना। उन्होंने अपने फिलत ज्योतिष-सम्बन्धी ग्रन्थ में प्रयुक्त शब्दों की सिन्निधि में कोई ग्रीक (युनानी) शब्द नहीं प्रयुक्त किया है।

१२. केवल यही बात नहीं यो कि रोमक सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया गया, प्रत्युत बहुत पहले छठी शताब्दी में ब्रह्मगुप्त (५९८ ई० में उत्पन्न)ने इसकी भत्संना की और इसका स्मृतियों में समावेश करना अमान्य ठहरा दिया : 'युगमन्वन्तरकल्पाः कालपरिच्छेदकाः स्मृतावुक्ताः। यस्मान्न रोमके ते स्मृतिबाह्यो रोमकस्तस्मात्।।' बाह्यस्फुट- सिद्धान्त (१।१३)।

१३. म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्बक् शास्त्रिमिवं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते कि पुनर्वेविवद् द्विजः॥ बृहत्संहिता (२।१५, कर्न का सम्पादन)। अलबरूनी (सचौ, जिल्द १, पृ० २३) ने भी इस पद्य की ओर संकेत किया है। पाणिनि (४।१।४९) में बारह शब्द (इन्द्रवरण...यवनमातुलाचार्याणामानुक्) आये हैं जिनके अधिकांश के साथ पत्नी के अर्थ में 'आनी' प्रत्यय लगा है। 'यवन' शब्द 'इओनिया' (ionia) का स्पष्ट आवर्तन है, जो एशिया नाइनर के तट पर २०-३० मील चौड़ा पहाड़ी भूमि-खण्ड है। पाणिनि ने अलेक्चेण्डर तथा उसके साथ या बाद के आने वाले यूनानियों की चर्चा नहीं की है, जैसा कि पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं। ई० पू० छठी शताब्दी में माइलेटस यूनान का सबसे समृद्ध नगर था। पाणिनि के काल में यवनानी शब्द का अर्थ था यवन की पत्नी, किन्तु कात्यायन के काल में यह शब्द यूनानी लिपि का द्योतक था। आगे चलकर सभी ग्रीसवासी इओ निया के रहने वाले लोगों के समान 'यवन' कहे जाने लगे। देखिए विल ड्यूरों कृत 'लाइक आव ग्रीस' (१९३९), पृ० १३४ एवं सार्टोन कृत 'ए हिस्ट्री आव साइंस', पृ० १६२।

## वर्मशास्त्र का इतिहास

थिबो (गुण्ड्रिस,पृ०४२) का कथन है कि 'पुलिश' शब्द निश्चित रूप से अभारतीय है। यह अति आश्चर्य का विषय है कि पश्चिमी विद्वान् लेखक किसी शब्द की अभारतीयता को सिद्ध करने में इतने निश्चयात्मक हो उठते हैं। संस्कृत में कुछ अति प्राचीन शब्द ये हैं—पुलस्त्य, पुलह, "पौलस्त्य (कुबेर), जिनमें 'पुलिश' शब्द के कई तत्त्व समाहित हैं। आज भी ऐसे नाम आते हैं, यथा नवार्बोसह। सिद्धान्तों को पैतामह एवं पौलिश इसलिए कहा गया है कि वे पितामह एवं पुलिश द्वारा प्रणीत हुए थे। थिबो का कथन है कि अलबरूनी ने 'पुलिश' को 'पौलुस'नामक यूनानी लेखक माना है। किन्तु भारतीय एवं यूनानी लेखकों के नामों से परिचित होते हुए भी अलबरूनी आज के पाश्चात्य लेखकीं के समान भूल कर सकता है। वेबर, जो अपने अध्ययन एवं परिश्रम के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं. ऐसी मूल करते हैं तो औरों की तो बात ही दूसरी है। यह बात अभिज्ञानशाकुन्तल में पाये जाने वाले उस उल्लेख के सद्श है, जहाँ शकुन्तला के पुत्र के नौकर ने यह कहा है कि लड़का नामों के सादश्य से अम में पड़ गया। स्वयं थिबो ने स्वीकार किया है कि यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि पौलिश सिद्धान्त युनान के फलित ज्यौतिष के जाता पौल्स (या पौलस) के ग्रन्थ से सम्बन्धित है। पौलिश-सिद्धान्त अपेक्षाकृत केवल ज्योतिःशास्त्र की बातों से सम्बन्धित है। हमने ऊपर देख लिया है कि पितामह-सिद्धान्त लगभग ८० ई० में प्रणीत हुआ था। अतः उस सिद्धान्त ने सन् १५० ई० में प्रणीत टाल्मी से कुछ भी उघार नहीं लिया। अब हम इस विषय पर इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि जिन भारतीयों ने संस्कृत भाषा के तत्त्वों को इतने परिमाजित एवं वैज्ञानिक ढंग से माँजा एवं परिशद्ध किया (पाणिनि), जिन्होंने 'योग' जैसे मानस अनुशासन की व्यवस्था की, अक्षरों के उच्चारण-सम्बन्धी मुलांगों पर प्रकाश डाला, जिन्होंने प्रातिशाख्यों एवं शालाओं के ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिन्होंने सर्वप्रथम बीजगणित के सिद्धान्तों का नियमन किया, जिन्होंने विश्व को दशमलव का ज्ञान दिया, जिसके आधार पर आज का गणित आघारित है, जिन्होंने अपने शून्य के ज्ञान को अरबों द्वारा यूरोप में भेजा, आदि-आदि, वे भारतीय किसी अन्य पिछड़े देश से ज्ञान-ऋण कैसे ले सकते हैं ?

हमने वैदिक काल के ज्योतिःशास्त्र-सम्बन्धी वचनों का अध्ययन किया है। अब हम वैदिक वचनों के अन्तर्गत फिलत ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान का विवेचन करेंगे। मानव-मन भविष्य-ज्ञान के लिए अति उत्सुक रहता है और कुछ दिनों, कालों एवं परिणामों को शुभ या अशुभ मानने को सन्नद्ध रहता है। अति प्राचीन काल में लोगों द्वारा भविष्य की जानकारी के लिए बहुत से साधनों का आश्रय लिया जाता था। सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहों की जो स्थिति जन्म के समय जैसी होती है, उसके आधार पर जो भविष्यवाणी की जाती है वही फिलत ज्योतिष का विषय है। ऐसी सामान्य धारणा है। किन्तु अति प्राचीन काल में ऐसी धारणा कम-से-कम इसी अर्थ में नहीं थी। असीरिया में आकाश-स्थितियों एवं ग्रहों की दशाओं के आधार पर अन्न-उत्पत्ति, बाढ़ों, अन्यड़ों, आन्नमणों एवं अन्य उपद्रवों के विषय में फिलत-ज्योतिष द्वारा भविष्यवाणी की जाती थी। आकाश के नक्षत्रों एवं पृथिवी की घटनाओं का सम्बन्ध देवों के विचारों से समझा जाता था और आसन्न घटनाएँ उनसे परिलक्षित की जाती थी। हम इसे मौतिक फिलत ज्योतिष परचात्कांलीन

250

१४. 'पुलस्त्य' शब्द अपराकं द्वारा (१२वीं शती का पूर्वार्ष) लगभग बारह बार और स्मृतिचन्द्रिका (१३वीं शती का पूर्वार्ष) द्वारा लगभग तीस बार प्रयुक्त हुआ है। इन स्थानों पर वह एक स्मृतिकार कहा गया है। स्मृतिचित्रका ने 'पुलह' को स्मृतिकार कहा है। मनु (१।३५) ने 'पुलस्त्य' एवं 'पुलह' को प्रजापित के दस पुत्रों में परिगणित किया है। पुलस्त्य एवं पुलह सप्तिवियों में दो ऋषि हैं (बृहत्सिंहिता, १३।११)।

विकास है। स्वप्नों, पक्षियों की उड़ानों एवं स्वरों, भेड़ों के यक्कत (कलेजे) पर पड़ें संकैतों (जो बेविलोन या रोम में देव-यज्ञों के समय काट जाते थे) से भी कुशल दैवज्ञ लोग भविष्यवाणियाँ किया करते थे।

ऋग्वेद में भी शुभ दिनों की चर्चा है, यथा सुदिनत्वे अह्नाम् (३।८।५, ३।२३।४, ७।८८।४ एवं १०।७०।१), सुदिनत्वम ह्नाम् (२।२१,६), सुदिनेष्व ह्नाम् (४।३७।१)। १५ कुछ ऐसी उक्तियाँ भी हैं जहाँ यज्ञ आदि के शुभ दिनों के लिए आकांक्षा प्रकट की गयी हैं (ऋ० ४।४।७, ५।६०।५, ७।११।२, ७।१८।२, १।१२४।२ एवं १०।३९।१२)। १६

ऋग्वेद-काल में अघा (मघा) में गौएँ दूलह के घर भेजी जाती थीं और विवाहोपरान्त दुलहिन अर्जुनी (या फाल्गुनी) नक्षत्र में रथ में बैठकर अपने पित के घर जाती थी। इसी के आघार पर विवाह के लिए वौघायनगृह्यसूत्र में रोहिणी, मृगशीर्ष, उत्तराफाल्गुनी एवं स्वाती का उल्लेख हुआ है।

काठक सं० (८।१), शतपथ ब्रा० (२।१।२), तै० ब्रा० (१।२।६-७) के अनुसार अग्न्याघेय (पवित्र अग्नि की स्थापना) का सम्पादन सात नक्षत्रों में किसी दिन या वसन्त, ग्रीष्म या शरद् ऋतु में कर्ता के वर्ण के अनुसार होता था, किन्तु सोमयज्ञ के लिए अपवाद भी रखा गया था। ऐसा आया है कि सोमयज्ञ का अभिकांक्षी व्यक्ति किसी भी ऋतु में अग्न्याधेय कर सकता था और उससे उसे ऐश्वर्य की प्राप्ति होती थी।

प्राचीन वैदिक उक्तियों में प्राकृतिक (भौतिक) फिलत ज्योतिष एवं व्यक्तिपरक फिलत ज्योतिष का अन्तर प्रकट नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ, तै॰ सं॰ (मैत्रेण कृषन्ते, १।८।४।२) में प्रतिपादित है कि अनुराघा में, जिसके देवता मित्र हैं, लोगों को खेत में हल चलाना चाहिए। पारस्करगृह्म॰ (२।१३) में आया है कि लोगों को (अपने खेत में) लांगल (हल) पुण्याह (शुभ दिन) में या इन्द्र देवता (वर्षा इन्द्र के हाथ में रहती है) वाले ज्येष्ठा (नक्षत्र) में रखना चाहिए (पुण्याहे लांगल योजनं ज्येष्ठ्या वेन्द्रदेवत्यम्)। वहीं यह भी आया है कि यदि व्यक्ति यह कामना करता है कि उसकी पुत्री अपने पित की प्रियाहो तो उसे चाहिए कि वह अपनी पुत्री का विवाह निष्ट्या (स्वाती) नक्षत्र में करे; यदि वह ऐसा करता है तो उसकी पुत्री पितिप्रिया हो जाती है और अपने पिता के घर नहीं लौट कर आती (तै॰ ब्रा॰ २।१३)। कृत्तिका से लेकर विशाखा तक के नक्षत्र देवनक्षत्र कहे गये हैं और उनमें सम्पादित कृत्य पुण्याह (पवित्र या शुभ दिन) पर सम्पादित माने जाते हैं। अथवैवेद (६।११०।२-३) के काल में ऐसा विश्वास था कि ज्येष्ठा या विचृत् (मूल नक्षत्र) में उत्पन्न बच्चा या किसी व्याघ्न-सदृश नक्षत्र (भयंकर नक्षत्र) में उत्पन्न बच्चा या तो स्वयं मर जाता है या अपने माता-पिता की मृत्यु का कारण बनता है।

१५. पोषं रयोणामिरिष्टि तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुविनत्वमह्नाम् । ऋ० २।२१।६; जातो जायते सुविनत्ये अह्नां समर्थं आ विदये वर्धमानः । ऋ० ३।८।५; नि त्या दघे वर आ पृथिव्या इलायास्परे सुविनत्वे अह्नाम् । वृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ऋ० ३।२३।४ ।

१६. यूनानी लोग क्षयोन्मुल चन्द्र को अशुभ एवं बढ़ते चन्द्र को शुभ मानते थे। हेसिओडी पढ़ित (जो ऋग्वेद से कई शतान्दियों पश्चात् की है) भी शुभाशुभ दिनों की चर्चा करती है, यद्यपि हेसिओड यह स्वीकार करता है कि इसमें मतंक्य नहीं है। हेसिओड ने मास की पाँचवीं तिथि को विशिष्ट रूप से वीजत माना है; अपोलों के लिए यूनान में सातवीं तिथि पवित्र थी और बेबिलोन में भी सातवीं पवित्र तिथि थी।

१७. ज्येष्ठव्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्परिपाह्येनम् । अत्येनं नेवव् दुरितानि विश्वा वीर्घायुत्याय बातशारवाय ॥ व्याच्रेह्मचजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमान सुवीरः । स मा वधीत्पतरं वर्षमानो मा मातरं प्रमिनीच्य-निम्नीम् ॥ अथवंदेव (६११०१२-३)। इससे प्रकट है कि कुछ नक्षत्र (तै॰ का॰ १।५।२।१ या ३।१।२।८) तो शुग्र एवं कुछ अशुभ (यया ज्ये ब्टा, मूल)
ये। बृहदारण्यकोपनिषद् (६।३।१) से प्रकट है कि कुछ नक्षत्र पुस्क (पुरुषवाची या पुल्लिंग) थे— "यदि कोई व्यक्ति ऐसी कामना करे 'मैं महत्ता को प्राप्त करूँ तो उसे उत्तरायण में किसी शुक्ल पक्ष में बारह दिनों तक केवल दूध का भोजन करना चाहिए और किसी पुस्क नक्षत्र में किसी पुण्य दिन में अग्नि में आहुति देनी चाहिए।"

उपर्युक्त उदाहरणों से व्यक्त है कि आरिम्सक वैदिक कालों में भविष्यवाणियाँ नक्षत्रों के आधार पर की जाती थीं, और जन्म का कोई नक्षत्र शुभ या अशुभ माना जाता था। पाणिनि के समय में, पुष्य नक्षत्र शुभ माना जाता था, उसे उन्होंने 'सिघ्य' नाम से पुकारा है। किन्तु इन प्रारम्भिक युगों में कोई ऐसे नियम नहीं बन पाये थे जिनसे ग्रेहों का किसी नक्षत्र में प्रभाव जाना जा सके और न कुण्डलियाँ ही बनती थीं, जिनमें ग्रहों, नक्षत्रों एवं राशियों के घर आदि बने हों। उन दिनों प्रधानतया केवल नक्षत्रों, दिनों एवं भौतिक लक्षणों तथा शारीरिक लक्षणों तक ही भविष्यवाणियाँ सीमित थीं। देखिए पाणिनि १।४।३९ (राधीक्ष्योर्यस्य विप्रक्तः), ४।३।७३ (अणृगयनादिभ्यः) एवं काशिका (पाणिनि ३।२।५३) जिसमें जायाध्नस्तिलकालकः, पतिष्की पाणिरेखा (हथेली की रेखा) के उदाहरण हैं।

ऋग्वेद (२१४२।१ एवं ३; निरुक्त ९।४) में कुछ ऐसे मन्त्र हैं जो कपिञ्जल-जैसे पिक्षयों की बोलियों से घटने वाली शुभ या अशुभ घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। बृहत्संहिता (९८।१४) ने प्रतिपादित किया है कि यात्रा में संलग्न व्यक्ति को पिक्षगण यह बताते हैं कि पूर्व जन्मों में उसके कर्म अच्छे थे या बुरे और उनके फल क्या हैं। पशुओं एज पिक्षयों के परिदर्शन, उड़ान, स्वर से सम्बन्ध रखने वाले शकुनों के विषय में वराहिमिहिर के योगयात्रा ग्रन्थ में तथा अद्भुतसागर (१० ५६९-५८२) में पर्याप्त विस्तार पाया जाता है। योगयात्रा (१४।२० एवं २६) में आया है कि बात्रा करते समय कुछ पक्षी या पशु व्यक्ति की दाहिनी दिशा या दिक्षण दिशा में हों तो शुभ होता है और जब चाष पक्षी अपने मुख में कुछ लेकर व्यक्ति की दाहिनी और उड़ जाता है तो कल्याण होता है।

शुभाशुभ दिनों एवं नक्षत्रों से सम्बन्धित भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि लोग निरीक्षणों में व्यस्त हो गये तथा निर्णय देने लगे, जिसके फलस्वरूप 'नक्षत्र विद्या' का उदय हुआ। छान्दोग्योपनिषद् (७।१।२ एवं ७।७।१) में इस विद्या की चर्चा है। जब नारद ज्ञान के लिए महान् आचार्य सनत्कुमार के पास गये तो आचार्य ने उनसे पूछा कि वे क्या-क्या पढ़ चुके हैं। इस पर नारद ने विद्याओं की एक लम्बी सूची सुनायी जिसमें चार वेदों, इतिहास-पुराण आदि के साथ नक्षत्र-विद्या (ज्योति:-शास्त्र एवं फलित ज्योतिष) का भी उल्लेख है। आजकल की भाँति उन दिनों भी नक्षत्र-निरीक्षकों, फलितज्योतिषियों आदि के विषय में विचित्र घारणाएँ प्रचलित थीं। बहुघा लोग ऐसे लोगों की प्रबंचनाओं में फँस जाते थे और निराशा के नद में डूबने-उतराने लगते थे। देखिए तै० न्ना० (३।४।४) एवं वाज ॰ सं ॰ (३०।१० एवं २०) जहाँ एक 'नक्षत्रदर्श' (नक्षत्रनिरीक्षक) प्रज्ञान के समक्ष अभियुक्त के रूप में लाया गया है और 'गणक' (नक्षत्रों एवं ग्रहों की गतियों की गणना करने वाला) ग्राम के मुखिया के साथ जंलजन्तुओं के बीच फेंक दिया गया है। मनु ने भी नक्षत्र विद्या से जीविका चलाने वाले को उन ब्राह्मणों के साथ उल्लिखित किया है जिन्हें देव-कृत्य एवं श्राद्ध में न बुलाये जाने की व्यवस्था है (३।१६२)। मनु (६।५०) ने साघुओं को उत्पातों (भूचाल आदि), शारीरिक गतियों (आँख फड़कना आदि) या नक्षत्रविद्या या अंगविद्या (हास देखना आदि) के द्वारा जीविका चलाने की मनाही की है। हारीत एवं शंख-लिखित के प्राचीन सूत्रों ने घोषित किया है कि नक्षत्रजीवियों एवं नक्षत्रादेशवृत्तियों (जो नक्षत्रों का संदेश कहकर जीविका चलाते हैं) को अन्य बाह्मणों की यंक्ति में बैठने की अयोग्यता प्राप्त है (कृत्यकल्पतरु, श्राद्ध, पृ० ८८ में उद्धृत)। यही बात सुमन्तु ने (कु॰ क॰ त॰, पृ॰ ९१) 'मूल्यसांवत्सरिक' (जो घन के लिए फलित ज्योतिष का उपयोग करता है) के विषय में कही है। देखिए विष्णुवर्मसूत्र (४२।७)। तेविज्जसुत्त (सैकेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द ११, पू० १९६-१९८

एवं दिग्घनिकाय (१, पृ० ६८) में महाशील ने बौद्ध साघुओं के लिए ऐसी वृत्ति की भत्संना की है जो मनुष्य की आयु बताकर, भविष्यवाणियाँ (ग्रहण, तारा गिरना, विजय, हार आदि) करके प्राप्त की जाती है। किन्तु बुद्ध ने केवल नक्षत्राघ्ययन वांछित माना है (सै० वु० ई०, जिल्द २०, पृ० २९२-२९४)। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने '(९वाँ अधिकरण, चौथा अध्याय, पृ० ३५१, शामशास्त्री सम्पादन, १९१९) लाभविष्नों में तिथिनक्षत्र की शुभाशुभता को परिगणित किया है। दि इन उक्तियों से स्पष्ट है कि ईसा के कई शताब्दियों पूर्व वे लोग निन्दित समझे जाते थे जो फलित ज्योतिष द्वारा जीविका चलाते थे।

कौटिल्य ने फलित ज्योतिष की अति निर्भरता की निन्दा की है न कि उसके ज्ञान की। उसने राजा के पुरोहित के लिए जिन गुणों को आवश्यक माना है उनमें नक्षत्रविद्या का गुण भी सिम्मिलित है (अर्थज्ञास्त्र ११९, पृ० १५-१६)। यही बात कौटिल्य के कई सौ वर्ष उपरान्त याज्ञवल्क्य ने भी कही है—'पुरोहित प्रकुर्वित दैवज्ञ-मुिंदतोदितम्। दण्डनीत्यां च कुशलमथवांगिरसे तथा।।' जिसका अर्थ है—'राजा को ऐसा पुरोहित नियुक्त करना चाहिए जो दैवज्ञ हो (फलित ज्योतिष-विशारद हो), शाखानुशासित वातों से शासन-शास्त्र (दण्डनीति) में प्रवीण हो और अथर्ववेद के ऐन्द्रजालिक कृत्यों में पारंगत भी हो (याज्ञ० १।३।१३)।'

नक्षत्रों पर आधारित फलित ज्योतिष के विकास के विषय में कुछ ऐसे वचन भी प्राप्त होते हैं जो कुछ अंशों में पश्चात्कालीन कुण्डली-पद्धति के 'गृहों' के समनुरूप हैं। इसके विषय में संकेत मिलते हैं, किन्तु वे अति प्राचीन नहीं हैं। वैखानसस्मार्तसूत्र (४।१४) में जन्म, कर्म, सांघातिक, सामुदायिक एवं वैनाशिक नामक नक्षत्रों का उल्लेख है और इनकी व्याख्या वराह ने (योगयात्रा में) एवं विष्णुधर्मीत्तरपुराण ने की है। योगयात्रा (९।१-३ एवं १०) में आया है-'जिस नक्षत्र में व्यक्ति उत्पन्न होता है उसे आद्य (प्रथम ) कहते हैं, आद्य से दसवाँ कर्म कहा जाता है, आद्य से सोलहवाँ नक्षत्र सांघातिक कहा जाता है (सांघातिक का अर्थ है एक दल या व्यक्ति-समूह), आद्य से अठारहनाँ समुदाय (संग्रह या समूह), २३वाँ वैनाशिक (मृत्यु या नाश से सम्बन्धित), २५वाँ मानस कहलाता है, इस प्रकार सभी व्यक्ति छ: नक्षत्रों (पहले, १० वें, १६ वें, १८ वें, २३ वें एवं २५ वें) से सम्बन्धित हैं। लोगों का कथन है कि राजा नी नक्षत्रों से सम्बन्धित है, तीन अतिरिक्त वे हैं जो राजा की जाति, देश एवं उस नक्षत्र से सम्बन्धित हैं जिसमें राज्याभिषेक हुआ रहता है।' योगयात्रा एवं विष्णधर्मोत्तर० (१।७८।१४-१६) में आगे आया है-- जब जन्म-नक्षत्र किसी बुरे नक्षत्र या उसके स्वरूप से प्रभावित हो जाता है तो व्याधि, धन-क्षत्र एवं झगड़े होते हैं; जब कर्म-नक्षत्र (इस प्रकार) प्रभावित होता है तो संकल्प में असफलता मिलती है; जब सांघातिक (१६वाँ) प्रभावित होता है तो धोखा मिलता है; जब सामुदायिक (१८वें) की ऐसी गति होती है तो एकत्र घन का क्षय होता है; जब वैनाशिक (२३वें) के साथ ऐसा होता है तो वांछित वस्तुओं का नाश होता है; जब मानस (२५वाँ) प्रभावित होता है तो चिन्ताकुलता एवं अप्रसन्नता का उदय होता है। जब सभी (छः) नक्षत्रों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता तो व्यक्ति स्वस्य होता है, आनन्द पाता है, उसका शरीर भली-भाँति पोषित होता है और उसे घन प्राप्त होता है। किन्तु सभी नक्षत्र (छः) प्रभावित हो जाते हैं तो व्यक्ति का नाश होता है और तीन के साथ छः नक्षत्र प्रभावित रहते हैं तो राजा की भी गति वैसी होती है। यदि अभिषेक नक्षत्र प्रभावित हो तो राज्य की हानि होगी, यदि

१८. लाभविष्नः कामः कोषः साष्यसं मंगलितिथिनक्षत्रेष्टि (ष्ट ?) त्विमिति । 'नक्षत्रमितपुच्छन्तं बालम-थॉतिवर्तते । अयों ह्ययंस्य नक्षत्रं कि करिष्यन्ति तारकाः ॥ साषना प्राप्नुवन्त्यर्थान् नरा यत्नशतैरिष । अर्थेरर्थाः प्रबच्यते नजाः प्रविनजैरिव ॥' (अर्थशास्त्र, ९, ४, पृ० ३५१, शामशास्त्री, १९१९) । देश-नक्षत्र प्रभावित हो तो देश एवं राजधानी पर केष्ट पड़ेगा और यदि राजा की जाति प्रभावित हो तो राजा की बोमारी की भविष्यवाणी होनी चाहिए। राजा की जाति के विषय में ये नक्षत्र हैं—तीन पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा एवं पूर्वाभाद्रपदा) तथा कृत्तिका ब्राह्मण-जाति के राजा के लिए हैं; तीन उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा एवं उत्तराभाद्रपदा) तथा पुष्य क्षत्रिय राजा के लिए; अनुराधा, मघा एवं रोहिणी कृषक जाति के राजा के लिए; पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् एवं अश्विनी विणक् जाति के राजा के लिए हैं। देश के नक्षत्रों का उल्लेख बहत्संहिता के १४ वें अध्याय में है। यहाँ वराहमिहिर टाल्मी से दो बातों में अन्तर रखते हैं: (१) वराह देशों को राशियों से शासित न मानकर केवल नक्षत्रों से मानते हैं; (२) वराह ने अपने को भारत तक सीमित रखा है, किन्तु टाल्मी (टेट्राबिब्लोस, ११।३,पू० १५७-१५९) ने उस समय के सभी ज्ञात देशों का स्पर्श किया है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है जो इस सिद्धान्त का खण्डन करती है कि वराह ने टाल्मी या पश्चात्कालीन यूनानी लेखकों की नकल की है। सम्पूर्ण भारत ९ भागों में बाँटा गया है--मध्यदेश एवं वे भूमिखण्ड जो पूर्व से लेकर उत्तर-पूर्व तक आठ भागों में बेंटे हैं; प्रत्येक भूमिखण्ड कृत्तिका से आगे के तीन-तीन नक्षत्र-दलों से सम्बन्धित है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर० (१।८६।१-९)। जब ९ खण्डों में प्रत्येक के तीन नक्षत्रों का दल सूर्य, मंगल या शनि से प्रभावित होता हैं तो उन सभी नक्षत्रों से प्रभावित देश विपत्तियों में फँसते हैं। और देखिए मार्कण्डेय पूराण (५८।१०-५४)। विष्णुधर्मोत्तरः (१।८९।१-१३), योगयात्रा (९।१३-१८) एवं पराशर (अद्भृतसागर, पृ० २७१-२७४ में उद्धृत) हारा उपर्युक्त नौ नक्षत्रों से उपाहत (प्रभावित) फलों को दूर करने के लिए शान्ति-कृत्यों की व्यवस्था बतलायी गयी है।

यह घ्यान में रखना चाहिए कि फलित ज्योतिष में १२ राशियों एवं १२ भावों (स्थानों या घरों) में कर्म नाम १०वें भाव को दिया गया है और मृत्यु (विनाश) ८वें भाव को।

महाभारत एवं रामायण में कितपय ऐसे कथन हैं जहाँ किन्हीं नक्षत्रों के सम्बन्ध में ग्रह सामान्यतया लोगों पर आपित डाते, सेनाओं एवं व्यक्तियों को कष्ट में डालते कहे गये हैं। यथा, जब राम एवं रावण में प्रचण्ड युद्ध चल रहा था और रावण का पक्ष प्रबल पड़ रहा था तो रामायण (युद्धकाण्ड १०३।३० एवं ३१) में आया है—'रोहिणी, जिसके देवता प्रजापित हैं और जो चन्द्र की प्रिया है, बुध द्वारा आच्छादित है अतः इससे लोगों का अशुभ है।' इसी प्रकार यह आया है—'आकाश में विशाखा नक्षत्र, जिसके देवता इन्द्र एवं अग्नि हैं और जो कोसलों का नक्षत्र हैं, मंगल द्वारा घिरा हुआ है।' महाभारत में ग्रहों, नक्षत्रों एवं तिथियों की स्थितियों के विषय में बहुत अधिक कथन हैं, जिन्हें सुलझाना असम्भव सा है। देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड ३। यहाँ हम शकुनों एवं भविष्यवाणियों पर ही लिख रहे हैं। भीष्मपवं (३।१२, १३, १६ एवं १७) में हम पढ़ते हैं, 'चित्रा नक्षत्र का अतिक्रमण करके एक क्वेत ग्रह अवस्थित है; इसमें कुछओं का नाश ही कोई देखता है; पुष्य नक्षत्र का अतिक्रमण करके धूमकेतु खड़ा है; यह घोर (भयंकर) महान् ग्रह दोनों सेनाओं का अशिव करेगा। एक क्वेत प्रज्वलित ग्रह, जो धूम छोड़ता

१९. प्राजापत्यं व नक्षत्रं रोहिणीं शिक्षनः प्रियाम् । समात्रम्य बुवस्तस्यौ प्रजानामशुभावहः ॥ कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्त-िमन्द्राग्निदेवतम् । आक्रम्यांगारकस्तस्यौ विशाखामिष चाम्बरे ॥ रामायण (युद्धकाण्ड १०३। ३० एवं ३३) । बालकाण्ड (५।५-६) में आया है कि कोसल देश सरयूतीर पर स्थित है, अयोध्या इसकी राजधानी है । र्ष्युवंश (४।७०) में राम के पूर्वज रघु कोसलेश्वर कहे गये हैं । बृहत्संहिता (१४।८-१०) के अनुसार कोसल उत्तर-पूर्व में प्रयस्त देश है, और उसके नक्षत्र हैं आक्लेषा, मघा एवं पूर्वा ।

को पड़े और वह श्रवण-नक्षत्र में हो तो अत्यन्त महन्ती (महान् से महान्) की संज्ञा प्राप्त होती है। विष्णुवर्मों तर पुराण (१।१६२।१-७१) ने श्रवण-द्वादशी के महात्म्य पर विस्तार से चर्ची की है। अन्य ८ द्वादिशयों के लिए देखिए गत अघ्याय ५।

महानन्दानवमी: माघ शुक्ल ९ को महानन्दा कहा गया है; तिथि-त्रतं; एक वर्ष तक; देवता, दुर्गी; चार मासों की अविध में वर्ष को ३ भागों में बाँटा जाता है; प्रत्येक अविध में घूप, नैवेद्य एवं देवी-नाम विभिन्न हैं; कर्ता की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है; क्रत्यकल्पतरं (ब्रतं० ३०६-३०७); हेमाद्रि (ब्रतं० १, ९५५-९५६, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

महानवमी: (१) यह दुर्गापूजा-उत्सव ही है, देखिए गत अध्याय-९, कृत्यकल्पतरु (राजधमं०, पृ० १९१-१९५), राजनीतिप्रकाश (पृ० ४३९-४४४); हेमाद्रि (जत० १,९०३-९२०); निर्णयसिन्धु (१६१-१८५); कृत्यरत्नाकर (३४९-३६४); (२) आश्विन शुक्ल ९ या कार्तिक शुक्ल या मार्गशीर्ष शुक्ल की ९ पर; तिथिवत; देवता, दुर्गा; एक वर्ष तकः; पुष्प, धूप एवं स्नान-सामग्री कितपय मासों में विभिन्न; कुमारियों को भोजन; कर्ता देवी-लोक को जाता है; कृत्यकल्पतरु (ज्ञत० २९६-२९९); हेमाद्रि (ज्ञत० १,९३७-९३९, यहाँ दुर्गानवमी नाम है); पुरुपार्थ-चिन्तामणि (१३४); हेमाद्रि (ज्ञाल, १०७)। देखिए गरुड्पुराण (१।१३३।३-१८ तथा अध्याय १३४); कालिकापुराण (अध्याय ६२)। एपि० इण्डिका (जिल्द १, पृ० २६०) में पुलकेशि महाराज डारा कार्तिक-महानवमी गुरुवार को दी गयी ८०० निवर्तन भूमि का उल्लेख है।

महानिशाः देखिए गत अध्याय-५, जहाँ इसका अर्थ बताया गया है; एकादशी एवं द्वादशी पर के निषेच । महापौर्णमासीव्रतः 'महा' के साथ सभी पौर्णमासियों पर; एक वर्ष तक हरि-पूजा; इस दिन का अल्प दान भी महान् पुण्यकारक होता है; हेमाद्रि (व्रत० २, १९६-१९७, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

महापाषी । गदाघरपद्धति (कालसार, ६००); देखिए कार्तिक के अन्तर्गत महाकार्तिकी।

सहाफलद्वादशी: विशाला-नक्षत्र के साथ पीष कृष्ण ११ पर; देवता, विष्णु; एक वर्ष तक; गासों में शरीर-पवित्रता (शुद्धि) के लिए कई वस्तुओं का प्रयोग तथा द्वादशी पर उन वस्तुओं का एक कम में दान, यथा— घी, तिल, चावल; मृत्यु के उपरान्त विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, १०९५-१०९६, विष्णुरहस्य से उद्धरण)।

महाफलवत: एक पक्ष के लिए, चार मासों या एक वर्ष के लिए; कर्ता को पहली से पन्द्रहवीं तिथि तक कुछ वस्तुओं को ही खाना पड़ता है, वस्तुओं का क्रम यों है—दूघ, पुष्प, सभी प्रकार का मोजन, किन्तु नमक नहीं, तिल, दूघ, पुष्प, तरकारियाँ, वेल, आटा, अपक्व भोजन, उपवास, घी, दूघ में चावल एवं गुड़ (उवाला हुआ), जौ, गोमूत्र एवं कुश से पवित्र किया हुआ जल। इन सभी दिनों तक एक निश्चित तिथि का प्रयोग; व्रत के एक दिन पूर्व तीन बार स्नान, उपवास, वैदिक मन्त्रों, गायत्री आदि का पाठ; बहुत से पुण्य, अन्त में सूर्यलोक; हेमाद्रि (वत २, ३९२-३९४, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

महाफल-सप्तमी: जब रिववार को सप्तमी एवं रेवती-नक्षत्र होता है अशोक की किलयों से दुर्गा-पूजा की जाती है और किलयों खायी जाती हैं; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०५)।

महाफाल्गुनी: देखिए कार्तिक के अन्तर्गत; गदाघरपद्धित (कालसार, ५९९); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (३१४)। महाभद्राष्टमी: बुधवार को पड़ने वाली पौष शुक्ल अष्टमी महाभद्रा कही जाती है और पृवित्र मानी जाती है; देवता, शिव; स्मृतिकौस्तुभ (४३८); गदाघरपद्धित (कालसार, ६०५-६०६); पुरुषार्थचिन्तामणि (१३८)।

308

महाभादी : देखिए कांतिक, जहाँ 'महा' के विषय का नियम दिया हुआ है।

महामाधी: जब सूर्यं श्रवण-नक्षत्र में तथा चन्द्र मघा में हो तो उसे महामाघी कहा जाता है; राजमार्तण्ड (१३६६) में आया है कि सूर्योदय के समय जल बोल उठता है—'मैं किस पापी को, आसवपायी को या ब्रह्म-हत्यारे को, शुद्ध कहूँ?'; वर्षक्रियाकौमुदी (४९०, भविष्यपुराण से उद्धरण); स्मृतिकौस्तुम (४३९, पद्मपुराण) पुरुषार्थ-चिन्तामणि (३१३-३१४) में आया है कि जब शिन मेष में, चन्द्र एवं 'बृह्स्पित सिंह में तथा सूर्य श्रवण-नक्षत्र में होता है तो महामाघी कहलाती है। अन्य मतों के लिए देखिए निर्णयित्य (२२१)। प्रयाग, अन्य पवित्र निर्यों एवं तालावों में प्रातःकाल महास्तान से पाप कट जाते हैं। तिमल देश में 'मख' एक वार्षिक मन्दिरोत्सव है और महामख १२ वर्षों में एक बार होता है जब कि महामघ नामक तालाब में (क्रुम्मकोणम् नामक स्थान में) स्नान के लिए एक बृहद् मेला लगता है; यह मेला प्रयाग के कुम्भ मेला के समान है। यह उत्सव 'ममंगम्' के नाम से विख्यात है और मघा नक्षत्र में पड़ने वाली पूर्णमा में तथा जब बृहस्पित मघा में या सिंह राशि में पड़ता हैतो यह मनाया जाता है। दक्षिणी पंचांगों के अनुसार यह सन् १९५५ ई० की २५ फरवरी को मनाया गया था। ऐसा प्रकाशित हुआ था कि उस समय दो बजे रात्र से प्रारम्भ होकर ८ से १० घण्टे तक लगभग एक लाख लोगों ने कुम्मकोणम् के महामखम् तालाब में स्नान किया था। तालाब से कीचड़युक्त जल बाहर निकाला गया था और कावेरी से नया जल भरा गया था।

यह आश्चर्य है कि मध्यकालीन निबन्धों में महामखम् या कुम्भ मेला का कोई उल्लेख नहीं है। महान् हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष प्रयाग में संगम के पश्चिम भाग में एक बड़ा मेला लगाते थे और अपने कोष का धन बाँट देते थे।

महामार्गशीर्षी : देखिए अपर कार्तिक के अन्तर्गत 'महा' विशेषण के विषय में।

महाराजवत: जब १४ वीं तिथि (शुक्ल या कृष्ण) आर्द्रा-नक्षत्र में हो या यह पूर्वाभाद्रपदा एवं उत्तरा भाद्रपदा से युक्त हो तो वह शिव को आनन्द देती है; १३ वीं तिथि को संकल्प; १४ वीं तिथि को एक के उपरान्त दूसरे से, यथा—तिल, गोमूत्र, गोबर, मिट्टी, पंचगव्य तथा अन्त में शुद्ध जल से स्नान; इसके उपरान्त शिव संकल्प मन्त्र 'यज्जाग्रतो दूरम्' (शिवसंकल्पोपनिषद्, ८) का १००० बार जप तीन वर्षों के लिए तथा 'ओं' नमः शिवाय' शूद्रों के लिए; पंचामृत, पंचगव्य, ईख के रस से शिव एवं उमा की प्रतिमाओं को स्नान कराना तथा कस्तूरी, कुंकुम आदि लगाना; दीप मालिका; शिव संकल्प या 'त्यंम्बकं यजामहे' मन्त्र के साथ सहस्त्रों बिल्व-दलों से हीम; मन्त्रों के साथ अर्घ्य; रात्रि भर जागर (जागरण); ५ या २ या १ गाय का दान; पंचगव्य पान के उपरान्त मौन रूप से भोजन; सभी बाघाएँ दूर हो जाती हैं और परम पद की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, १०३९-११४७, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

महालक्ष्मीपूजा: इस वृत के विषय में विभिन्न मत हैं। कृत्यसारसमुच्चय (पृ० १९) एवं अहल्याकामधेनु (५३५ बी-५३९ बी) के मत से—भाद्रपद शुक्ल ८ को आरम्भ तथा आषाढ़ कृष्ण ८ को समाप्त (पूर्णमान्त गणना), यह १६ दिनों तक चलती है, प्रति दिन महालक्ष्मी-पूजा तथा महालक्ष्मी के विषय की गाथाओं का श्रवण। निर्णयसिन्धु (पृ० १५३-१५४) में भी यही अविध दी हुई है, किन्तु पहली बार किये जाने पर चार दोषों से अचना होता है, यथा—अवमदिन न हो, तिथि त्रयःस्पृक् न हो, नवमी से युक्त न हो, सूर्य हस्त-नक्षत्र के भाग में न हो। महाराष्ट्र में यह पूजा विवाहित नारियों द्वारा आषाढ़ शुक्ल ९ को मध्याह्न में की जाती है और रात्रि में सभी विवाहित नारियाँ एक-साथ पूजा करती हैं, खाली घड़ों को हाथ में रखती हैं, उनमें श्वास लेती हैं और

अपने शरीर को भाँति-भाँति ढंगों से मोड़ती हैं। पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१२९-१३२) में इसके विषय में एक लम्बा विवेचन है। इसके मत से यह वृत नारियों एवं पुरुषों दोनों का है।

महालक्ष्मीवत : भावपद शुक्ल ८ को जब सूर्य कत्या राशि में होता है महालक्ष्मी की पूजा का आरम्भ होता है और जब सूर्य कत्या राशि के अर्घ भाग में होता है तो आगे की अष्टमी को समाप्ति होती है, इस प्रकार १६ दिन लगते हैं; यदि संम्भव हो तो ज्यष्ठा-नक्षत्र में चन्द्र की स्थिति में व्रत करना चाहिए; १६ वर्षों के लिए; नारियों एवं पुरुषों के लिए यहाँ १६ की संख्या (पुष्पों एवं फलों आदि के विषय में) महत्त्वपूर्ण है; कर्ता को दाहिने हाथ में १६ घागों एवं १६ गाँठों का एक डोरक (गण्डा) बाँघना चाहिए; लक्ष्मी कर्ता को तीन जीवनों तक नहीं त्यागतीं, वह रीर्घायु, स्वास्थ्य आदि पाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४९५-४९९); निर्णय-सिन्धु (१५३-१५४); स्मृतिकौस्तुभ (२३१-२३९); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१२९-१३२); व्रतराज (३००-३१५)।

महालय: भाद्रपद का कृष्ण पक्ष इस नाम से विख्यात है तथा पार्वण श्राद्ध इन सभी या एक तिथि पर किया जाता है; तिथितत्त्व (१६६); वर्ष कित्यदीपक (८०)।

महावैसाखी : देखिए 'महा' उपाधि के लिए 'कार्तिक'। माधववर्मन के खानपुर दान पत्र में सतारा जिले में व ई ग्रामों की दान महावैसाखी पर किया गया उल्लिखित है; देखिए एपि० इण्डिका (जिल्द २७, पृ० ३१२)। प्रो० भिराशी ने इस दानपत्र की तिथि ५१०-५६० के बीच में रखी है।

महान्नतः (१) माघ या चैत्र में कोई गुड़बेनु दे सकता है और स्वयं तृतीया पर केवल गुड़ का सेवन करता है; वह गोलोक जाता है; मत्स्यपुराण (१०१।३३); कृत्यकल्पतर (वत० ४४६); कृत्यरत्नाकर (११८); गुड़बेनु के लिए देखिए मत्स्यपुराण (८२); (२) शुक्ल चतुर्दशी या अष्टमी पर उपवास, जब कि श्रवण-नसत्र का योग हो; तिथित्रत; देवता, शिव; राजाओं द्वारा सम्पादित; हेमाद्रि (वत० १, ८६४-८६५, कालोत्तर से उद्धरण); (३) कार्तिक अमावास्या या पूर्णिमा पर नियमों का पालन; घृत के साथ पायस का प्रयोग नक्त-विधि से; चन्दन एवं ईख का रस; आगे की प्रतिपदा पर उपवास; ८या १६ शैव बाह्मणों को मोज; देवता, शिव; पंचगव्य, घी, मबु आदि तथा अन्त में गर्म जल से शिव-प्रतिमाओं को स्नान; नैवेद्ध; सपत्नीक आचार्य को सोना, वस्त्रों आदि का दान; १६ वर्षों तक विभिन्न तिथियों पर (वर्ष के आघार पर) नक्त एवं उपवास का प्रवन्ध; इससे दीर्घायु, सौन्दर्य, सौभाग्य की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (वत० २, ३७७-३९१, कालिकापुराण से उद्धरण); (४) प्रत्येक पौर्णमासी पर उपवास एवं सकल बह्म के रूपमें हिर की पूजा तथा प्रत्येक अमावास्या पर निष्कल (भागहीन) ब्रह्म की पूजा; एक वर्ष तक; सभी पापों से मुक्त एवं स्वर्ग-प्राप्ति; १२ वर्षों तक करने से विष्णुलोक की प्राप्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९८।१-७); हेमाद्रि (वत० २, ४६१); 'सकल' का अर्थ है 'सावयव' (अवयवयुक्त), यथा—चारों हस्तों से युक्त विष्णु, 'निष्कल' का अर्थ है बिना अन्य मागों के (मुण्डकोपनिषद् २।२।९ में इसका उल्लेख है); (५) दोनों पक्षों में अष्टमी या चतुर्दशी पर नक्त-विधि एवं शिव-पूजा; एक वर्ष तक; परम लक्ष्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (वत० २, ३९८, लिगपुराण से उद्धरण)।

महाक्वेताप्रियविधि : सूर्य-ग्रहण के अवसर पर जब रिववार हो; महाक्वेता (तथा सूर्य) की पूजा; नक्त-विधि या उपवास; परम पद की प्राप्ति; कृत्यकल्पतर (वत०, २१-२३); हेमाद्रि (वत० २, ५२७-५२८)। महाक्वेता नाम मन्त्र का है, यथा—'ह्रींसः'; कृत्यरकल्पतर (९), एवं हेमाद्रि (वत० २, ५२१)।

महायब्दी: जब कार्तिक शुक्ल ६ को सूर्य वृश्चिक राशि में हो और मंगल हो तो उसे महायुब्दी कहते हैं; पूर्व दिन को उपवास; यब्दी को अग्नि-पूजा, अग्नि का महोत्सव, ब्रह्म-भोज; सभी पाप कट जाते हैं; स्मृति-कौस्तुम (३७८); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०२)।

महाख्तमी: नवरात्र की आश्विन शुक्ल ८ को यह संज्ञा प्राप्त है; वर्षत्रियाकीमुदी (४२८); निर्णयसिन्धु (१७८); समयमयूख (५९)।

सहासप्तमी: माघ शुक्ल ५ को एक भक्त; षष्ठी को नक्त, सप्तमी को उपवास; करवीर पुष्पों एवं लाल बन्दन-लेप से सूर्य-पूजा; एक वर्ष तक; माघ से आरम्भ कर वर्ष को चार मासों के तीन दलों में बाँटना, प्रत्येक दल में विभिन्न नैवंद्य, पुष्प एवं त्रूप; अन्त्र, में एक रथ का दान; हेमाद्रि (व्रत०१,६५९-६६०, भविष्यपुराण १।५१।१-१६ से उद्धरण)।

महिष्किनीपूजा: आषाढ़ शुक्ल ८ पर; तिथि; देवता, दुर्गा; महिषासुर को मारने वाली दुर्गा को हल्दी कूण से युक्त जल से स्नान कराना; प्रतिमा पर चन्दन-लेप एवं कर्पूर लगाना; कुमारियों एवं ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा देना; दीप-प्रकाश; सभी कामनाओं की पूर्ति; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१०९-११०); स्मृतिकौस्तुभ (१३८)।

महेन्द्र-कृष्ण : कार्तिक शुक्ल ६ से प्रारम्भ; केवल दूव का सेवन; दामोदर-पूजा; हेमाद्रि (वृत्त० २, ७६९-७७०)।

महेश्वरजतः (१) फाल्गुन शुक्ल १४ से प्रारम्भ; उस दिन उपवास एवं शिव-पूजा; अन्त में गोदान; यदि वर्ष भर किया जाये तो पौण्डरीक यज्ञ की फल प्राप्ति; यदि वर्ष भर प्रत्येक मास की दोनों चतुर्दशियों पर किया जाय तो सभी कामनाओं की पूर्ति; हेमाद्रि (व्रत०२,१५२); (२) दक्षिणा-मूर्ति को वर्ष भर प्रति दिन पायस एवं घी का अर्पण; अन्त में उपवास; भूमि, गाय एवं पलंग का दान; नन्दी (शिव-वाहन) की स्थिति की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०१,८६७, स्कन्दपुराण से उद्धरण); दक्षिणामूर्ति शिव का एक रूप है; शंकराचार्य लिखित दक्षिणामूर्तिस्तोत्र (१९ श्लोकों में) की बात कही जाती है।

महेश्वराष्ट्रमी: मार्गशीर्ष शुक्ल ९ से प्रारम्भ; शिव की पूजा, लिंग या प्रतिमा के रूप में या कमल पर; शी एवं दूष से स्नान कराना; अन्त में गोदान; यदि वर्ष भर किया जाय तो अश्वमेध-यज्ञ का लाभ एवं शिवलोक शी प्राप्ति; हेमाद्रि (वतर्व १, ७४७-७४८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सहोत्सवंत : चैत्र शुक्ल १४ पर; प्रति वर्ष शिव-प्रतिमा को दूघ आदि से स्नान करा कर अंजन, दमनक, बिल्व-दल का अपंण; चावल के चूर्ण से बने दीपों से प्रतिमा की आरती; विभिन्न खाद्य पदार्थों का नैवेद्य; ढोल बजाना; शिव-रथयात्रा; 'शिव प्रसन्न हों' कहना; नक्त-विधि; हेमाद्रि (त्रत० २,१४८-१४९, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

महोदधि-अमावास्या : चतुर्दशी से युक्त माघ अमावास्या को किसी समुद्र में स्नान; अश्वमेध का फल; गदाघरपद्धति (कालसार, ६०३)।

माकरी-सप्तमी : मकर-राशि में जब सूर्य हो तो सप्तमी तिथि पर; वर्षित्रया कौमुदी (५००-५०१); व्रतकोश (पृ० २०३, संख्या ९०२)।

माध्कृत्य : कृत्यरत्नाकर (४८७-५१४); वर्षिकयाकौमुदी (४९०-५१४); निर्णयसिन्यु (२१३-२२१); स्मृतिकौस्तुभ (४३९-५१३); गदाघरपद्धित (कालसार, ३७-४१)। माघ में कई महत्त्वपूर्ण व्रत होते हैं, यथा—तिल्वतुर्थी, रथसप्तमी, मीष्माष्टमी, जो पृथक् रूप से वीणत हुई हैं। कुछ बातें यहाँ दी जा रही हैं। माघ शुक्ल ४ को उमाचतुर्थी कहते हैं, क्योंकि लोगों (विशेषतः नारियों) द्वारा कुन्द एवं अन्य पृष्पों से, गुड़-अपंण, नमक, यवक से गौरी-पूजा की जाती है; सघवा नारियों, ब्राह्मणों एवं गाय का सम्मान किया जाता है; कृत्यकल्पतर (नैयत्कालिक काण्ड, ४३७-४३८); कृत्यरत्नाकर (५०३); माघकृष्ण १२ को यम ने तिल उत्पन्न किया, वशरथ उसे पृथियों पर ले आये और वो दिया, निष्णु को देवों ने तिल का स्वामी बनाया, अतः उस दिन उपवास कर तिल से हिर-पूजा करनी चाहिए, तिल से होम करना चाहिए, तिल-दान करना चाहिए और उसे खाना चाहिए; निष्णुवर्मसूत्र (९०।१९); कृत्यकल्पतरु (नैत्यकालिक काण्ड ४३५-४३६); कृत्यरत्नाकर (४९५-४९६); माघ अमावास्या पर जब कि वह सोमवार को प्रातःकाल उपस्थित हो, लोगों को (निशेषतः नारियों को) अश्वत्थ वृक्ष की परिक्रमा करनी चाहिए और दान देना चाहिए। यह कृत्य तिमल देश में प्रचलित है।

भावसप्तसी: माघ शुक्ल ७ पर; अरुणोदय के समय किसी नदी या बहते हुए जल में अपने सर पर बदर वृक्ष एवं अर्क पौघे की सात-सात पत्तियाँ रख कर स्नान करना; सात बदर फलों, सात अर्क-दलों, चावल, तिल, दूर्वा, अक्षतों एवं चन्दन के साथ मिश्रित जल से सूर्य को अर्घ्य देना; सप्तमी को देवी समझ कर तथा सूर्य को प्रणाम करना; कुछ लोगों के मत से यह स्नान तथा माघस्नान अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु कुछ लोग दोनों को दो मानते हैं; कृत्यरत्नाकर (५०९); वर्ष कियाकौमुदी (४९९-५०२); कृत्यतत्त्व (४५९); राजमातंण्ड (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३६, पृ० ३३२)।

माघस्नान: आरम्भिक कालों से ही गंगा या किसी बहते जल में प्रातः काल माघ मास में स्नान करना प्रशंसित रहा है। सर्वोत्तम काल वह है जब नक्षत्र अब भी दीख पड़ रहे हों, उसके उपरान्त वह काल अच्छा है जब तारे दिखाई पड़ रहे हों किन्तु मूर्य अभी वास्तव में दिखाई नहीं पड़ा हो, जब सूर्योदय हो जाता है तो वह काल स्नान के लिए अंच्छा काल नहीं कहा जाता। मास के स्नान का आरम्भ पीष शुक्ल ११ या पीष पूर्णिमा (पूर्णिमान्त गणना के अनुसार) से हो जाना चाहिए और त्रत (एक मास का) माघ शुक्ल १२ या पूर्णिमा को समाप्त हो जाना चाहिए; कुछ लोग इसे सीर गणना से संयुज्य कर देते हैं और व्यवस्था देते हैं कि वह स्नान जो माघ में प्रातःकाल उस समय किया जाता है, जब कि सूर्य मकर राशि में हो, पापियों को स्वगंलोक भेजता है; वर्षिक्रया कौमुदी (४९१, पद्मपुराण का उद्धरण); सभी नर-नारियों के लिए यह व्यवस्थित है; सब से अत्यन्त पुण्यकारी माघस्नान गंगा एवं यमुना के संगम पर है; पद्मपुराण (६, जहाँ अध्याय २१९ से २५० तक २८०० कलोकों में माघस्नान के माहात्म्य का उल्लेख है); हेमाद्र (त्रत० २, ७८९-७९४); वर्षिक्रयाक्रीमुदी (४९०-४९१); राजमार्तण्ड (१३९८); निर्णयसिन्ध (२१३-२१६); स्मृतिकौस्तुम (४३९-४४१); पद्मपुराण (६।२३७। ४९-५०; एवं क्रत्यतत्त्व (४५५-४५७) ने दानों एवं नियमों की विधि का वर्णन किया है। विष्णुधूमंसूत्र (९०) के अन्तिम क्लोक में माघ एवं फाल्गुन में प्रातः स्नान की प्रशंसा गायी गयी है। देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द ११, पृ० ८८, माघ मेला)।

मातृष्यत : (१) अष्टमी पर; तिथि; देवता, माताएँ; उपवास; माताओं से मिन्तपूर्वक क्षमा करना; माताएँ कल्याण एवं स्वास्थ्य देती हैं; हेमाद्रि (व्रत० १, ८७६); (२) आदिवन नवमी पर राजा तथा उनकी जाति के लोगों को माताओं (नाम दिये गये हैं) की पूजा करनी चाहिए और सफलता प्राप्त करनी चाहिए; वह नारी, जिसके पुत्र मृत हो जाते हैं अथवा जिसकी केवल एक सन्तान हो, इस व्रत के सम्पादन से सन्ततिवती होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ९५१-९५२)।

मार्गपाली-बन्धन : कार्तिक शुक्ल १ पर; देखिए गत अध्याय-१०।

मार्गशीर्षकृत्य : देखिए कृत्यरत्नाकर (४४२-४७४); वर्षिकयाकौमुदी (४८२-४८७); निर्णयसिन्धु (२०९-२११); स्मृतिकौस्तुभ (४२७-४३२)। तिमल देश में पूरे मास भर पवित्र माना जाता है और भजन-मण्डलियाँ प्रातःकाल घूमती रहती हैं। गीता (१०।३५) के अनुसार मासों में मार्गशोर्ष सर्वोत्तम है और वह भगवान् कृष्ण के समान माना गया है। कुछ बातें यहाँ दी जा रही हैं। कृतयुग (सत्ययुग) में देवों ने वर्ष का आरम्भ

मागंशीषं की प्रथम तिथि से किया, ऋषि काश्यप ने कश्मीर नामक सुन्दर देश की रचना की; अतः इस पर उत्सव किया जाना चाहिए (कृत्यरत्नाकर ४५२); मागंशोषं शुक्ल १२ पर उपवास करना च्राहिए और ऐसा ही वर्ष भर करते रहना चाहिए; प्रत्येक द्वादशी पर विष्णु के केशव से ले कर दामोदर के बारह नामों में एक नाम लेना चाहिए और पूजा करनी चाहिए; कर्ता जातिस्मर (जो पूर्व जन्मों के कृत्यों को स्मरण कर लेता है) हो जाता है और वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ से लौटना नहीं होता (अनुशासनपर्व अध्याय १०९; बृहत्सहिता १०४।१४-१६; मागंशीषं पूणिमा पर विशेषतः चन्द्र की पूजा की जानी चाहिए, क्योंकि उसी समय चन्द्र पर अमृत छिड़का गया था; गाय को नमक देना चाहिए; मा, बहन, पुत्री तथा अन्य नारी-सम्बन्धियों को नवीन वस्त्रों का जोड़ा देना चाहिए; नृत्य-गान का उत्सव होना चाहिए, जो लोग मंदिरा का सेवन करते हैं, उन्हें उस दिन ताजी मंदिरा ग्रहण करनी चाहिए; कृत्यकल्पतक (नैयत्कालिक, ४३२-४३३); कृत्यरत्नाकर (४७१-४७२) मागंशीषं; पूर्णिमा पर दत्तात्रेय जयन्ती की जाती है, देखिए अपर।

सार्तण्डसप्तमी: पौष शुक्ल ७ से आरम्भ; उस दिन उपवास; 'मार्तण्ड' नाम लेते हुए सूर्य-पूजा; अपने को शुद्ध करने के लिए कर्ता को गोमूत्र या गोबर या दही या दूध ग्रहण करना चाहिए; दूसरे दिन 'रिवि' नाम पर सूर्य-पूजा; इसी प्रकार वर्ष भर प्रत्येक मास में दो दिनों की विधि तथा एक दिन एक गाय को घास आदि खिलाना; सूथ-लोक की प्राप्ति; भविष्यपुराण (१।१०९।१-१३); हेमाद्रि (व्रत० १, ७५४-७५५), कृत्यकल्पतर (नैयत्कालिक काण्ड, १४७-१४८)।

सस्त्रतः मार्गशीर्षं से कार्तिक तक १२ मासों में कर्ता को निम्नलिखित का दान करना चाहिए— लवण घी, तिल, सात घान्य, रंगीन एवं सुन्दर वस्त्र, गेहूँ, जलपूर्णपात्र, कर्पूर के साथ चन्दन-लेप, नवनीन, छत्र, शक्कर या गुड़ से भरपूर लड्डू एवं दीप; अन्त में गोदान तथा दुर्गा, ब्रह्म, सूर्य या विष्णु की पूजा; हेमाद्रि (व्रत० २, ८५३-८५४, देवीपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४४२-४४३)।

मासवतानि : अग्निपुराण (१९८); कृत्यकल्पतरु (व्रत०४१८-४३२); हेमाद्रि (व्रत०२, ७४४-७९९); दानसागर (५८९-६२१)।

मासोपनासबत: सभी वर्तों में यह सर्वोत्तम वर्त है। यह एक अति प्राचीन वर्त है। ई० पू० दूसरी शती में रानी नायनिका (नागनिका) ने इसे सम्पादित किया था (ए० एस० डब्ल्यू० आई०, जिल्द ५, पृ० ६०); इसका वर्णन अग्नि० (२०४।१-१८), गरुड० (१।१२२।१-७), पद्म० (६।१२१।१५-५४) में किया गया है। अग्निपुराण अति संक्षिप्त है, उसी को अति संक्षिप्त रूप में यहाँ दिया जा रहा है। कर्ता को सभी वैष्णव वर्त (यथा—द्वादशी) कर लेने चाहिए, गुरु का आदेश ले लेना चाहिए; अपनी शक्ति को देख कर आदिवन शुक्ल ११ से आरम्भ कर उसे ३० दिनों तक ले जाने का संकल्प करना चाहिए; किसी वानप्रस्थ व्यक्ति या यित या विघवा द्वारा यह सम्पादित होना चाहिए; पुष्पों आदि से प्रति दिन तीन वार विष्णु-पूजा होनी चाहिए; विष्णु की प्रशस्ति के गान गाये जाने चाहिए, विष्णु-ध्यान करना चाहिए; व्यर्थ की (इघर-उघर की) बातों का त्याग होना चाहिए; वन की इच्छा का त्याग करना चाहिए; जो नियमों का पालन नहीं करते उन्हें नहीं छूना चाहिए; मंदिर में ३० दिनों तक रहना चाहिए; ३० दिनों के उपरान्त १२ वें दिन ब्रह्मभोज देना चाहिए, दक्षिणा देनी चाहिए तथा १३ ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर पारण करना चाहिए, वस्त्रों का जोड़ा, आसन, पात्र, छत्र, खड़ाऊ दान-रूप में दिये, जाने चाहिए; एकं पर्लंग पर विष्णु की स्वर्ण-प्रतिमा का पूजन होना चाहिए; अपनी स्वयं की प्रतिमा की वस्त्र आदि देना चाहिए; पर्लंग गुरु को दे दी जानी चाहिए; वह स्थान जहाँ कर्ता ठहरता है पिवत्र हो जाता है; वह अपने प्रतं अपने परिवार के लोगों को स्वर्गलोक ले जाता है; यदि कर्ता व्रत के बीच में मूर्चिक्त हो जाय तो

उसे दूघ, घी एवं फल का रस देना चाहिए; ब्राह्मणों की सम्मति से ऐसा करने से व्रत खण्डित नहीं होता; हेमाद्रि (व्रत ० २, ७७६-७८३, विष्णुरहस्य से उद्धरण)।

मासरक्षपौर्णमसीवृतः कार्तिकं शुक्ल १५ पर आरम्भ; नक्त-विधि से भोजन; नमक से बने वृत्त, तथा चेन्दन-लेप से निर्मित चन्द्र की दस नक्षत्रों के साथ पूजा यथा—कार्तिक में कृत्रिका एवं रोहिणी के साथ, मार्गशीर्प में मृगशिरा एवं आर्द्रों के साथ...और यह कम आश्विन तक चला जाता है; सघवा नारियों का गुड़, बिढ़्या भोजन, घी, दूध आदि से सम्मान; स्वयं हिवष्य भोजन करना; अन्त में सोने के साथ रंगीन वस्त्र का दान; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१९२।१-१५); नीलमतपुराण (पृ० ४७)।

त्रिसप्तमी: मार्गशीर्ष शुक्ल ७ को यह नाम मिला है; तिथि त्रत; देवता, मित्र (सूर्य); षष्ठी को मित्र-प्रतिमा को उसी विधि से स्नान कराया जाता है जैसा कि कार्तिक शुक्ल ११ को विष्णु-प्रतिमा को; सप्तमी को उपवास (फल खाये जा सकते हैं); रात्रि में जागर; विभिन्न पुष्पों, आटे के पक्वान्नों से सूर्य-पूजा; ब्राह्मणों, दिरद्वों एवं असहायों को भोजन; अष्टमी को नर्तकों तथा अभिनेताओं के बीच धन का वितरण; नीलमतपुराण (पृ० ४६-४७, क्लोक ५६४-५६९); कृत्यरत्नाकर (४६०-४६१); कृत्यकल्पतरु (नैयत्कालिक काण्ड (४३२); वर्षित्रयाकौमदी (४८३); पृरुषार्थ-चिन्तामणि (१०४)।

मुक्ताभरणव्रत : भाद्र शुक्ल सप्तमी पर; तिथिव्रत; देवता, शिव एवं उमा; शिव-प्रतिमा के समक्ष एक डोरक (धागों से बना गण्डा) रखना; आवाहन से आरम्भ कर १६ उपचारों के साथ शिव-पूजा; मोती एवं अय बहुमूल्य पत्थरों से युक्त सोने को आसन; उपचारों के उपरान्त मेखला में गण्डा बाँचना; ११०० मण्डकों एव वेष्टकों का दान; दीर्घायु पुत्रों की प्राप्ति; निर्णयसिन्ध् (१३४), व्रतरत्नाकर (२४१-२४७)।

मृक्तिद्वार-सप्तमी: जब सप्तमी को हस्त नक्षत्र हो या पुण्य नक्षत्र हो तो यह त्रत किया जाना चाहिए; कर्ती को 'अर्क को प्रणाम' के साथ अर्क की टहनी से अपने दाँत स्वच्छ करने चाहिए; होम; गोबर से लीपे गये आँगन में लाल चन्दन के लेप से एक वोडश-दल कमल बनाना चाहिए, जिसके प्रत्येक दल पर पूर्व से आरम्भ कर कितपय देवों को प्रतिष्ठापित करना चाहिए; तब आवाहन से आरम्भ कर अन्य उपचार सम्पादित करने चाहिए; उस दिन उपवास; एक वर्ष तक ६ रसों (मधुर, लवण, तिक्त, कथाय, कटु, अम्ल) में किसी एक कोदो मास तक खाना; १३ वें मास में पारण तथा एक कपिला गाय का दान; मोक्ष-प्राप्ति; हेमाद्र (व्रत० २, ७८०-७८६)।

मुखबत : एक वर्ष तक ताम्बूल (मुखवास) का त्याग; वर्ष के अन्त में एक गाय का दान; कर्ता यक्षों का अधिपति हो जाता है; हेंमादि (व्रत० २, ८६५, पद्मपुराण से उद्धरण)।

मूलगौरीवत: चैत्र शुक्ल ३ पर; तिल एवं जल से स्नान; स्वर्ण-फलों के साथ एवं पाँव से सिर तक शिव एवं गौरी की पूजा; १२ मासों में विभिन्न पुष्पों का उपयोग; इसी प्रकार विभिन्न पदार्थों को खाना या पीना; गौरी के विभिन्न नामों की पूजा; कर्ता को एक फल छोड़ देना चाहिए; अन्त में एक पलंग, सोने के बैल एवं गाय का दान; शिव ने गौरी से चैत्र शुक्ल तृतीया पर विवाह किया था; अग्निपुराण (१७८।१-२०)।

मृगशीर्षत्रतः श्रावण कृष्ण १ पर शिव ने तीन फलकों के एक बाण से हरिण रूप घारण किये हुए यज्ञ के तीन मुखों को भेदा था; कर्ता को मिट्टी से मृगशीर्ष की प्रतिमा बना कर तरकारियों एवं सरसों से युक्त आटे के विभिन्न नैवंद्य से पूजा करनी चाहिए; हेमादि (व्रत० १, ३५८-३५९); स्मृतिकौस्तुभ (१४६)।

सेघपालीतृतीया : आश्विन शुक्ल ३ को नर-नारियों का मेघपाली नामक लता से पूजा करनी चाहिए; यह स्ता बाटिकाओं, पहाड़ियों एवं मार्गों पर उगती है; इसकी पूजा विभिन्न प्रकार के फलों एवं सात घान्यों के अंकुरों से की जाती है; सभी पापों से विशेषत: श्रुटिपूर्ण तील-बटखरों एवं मापकों से व्यापार करने वालों के पापों से मुनित मिलती है; हेमाप्रिद्र (व्रत० १, ४१६-४१७, भविष्योत्तरपुराण १७।१-१४ से उद्धरण)।

मौनव्रत: (१) पूर्णिमान्त गणना से श्रावण के अन्त के उपरान्त भावपद १ से १६ दिनों तक कर्ता को दूर्वी की शाखाओं की १६ गाँठें बना कर दाहिने हाथ में (स्त्रियों को वायें ह्यु में) रखना चाहिए; १६ वें दिन पानी लाने, गेहूँ को पीसने तथा उससे नैवेद्य बनाने तथा भोजन करते-समय मौन रखना चाहिए; शिव-प्रतिमा या लिंग को जल, दूध, दही, घी, मधु एवं शक्कर से स्नान करा कर पूजा करना तथा 'शिव प्रसन्न हों' ऐसा कहना; इससे सन्तिन्प्राति एवं कामना-पूर्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४८२-४९२); निर्णयामृत (२६-२७); (२) ८, ६ या तीन मासों तक या एक मास, अर्घ मास या १२, ६ या ३ दिनों तक या एक दिन तक मौन रहना; मौनव्रत से सर्वार्घ सिद्धि होती है ('मौन सर्वार्यसाधकम्', पृ० ८८०); कर्ता को भोजन करते समय 'हुं' भी नहीं कहना चाहिए; मन, वचन एवं कर्म से हिंसा-त्याग; व्रत-समाप्ति पर चन्दन का लिंग-निर्माण तथा गन्ध एवं अन्य उपचारों से उसकी पूजा, मन्दिर की विभिन्न दिशाओं में सोने एवं पीतल के घण्टों का अर्पण; शैवों एवं ब्राह्मणों को भोज; सिर पर पीतल के पात्र में लिंग रख कर जन-मार्ग से मौन रूप से मन्दिर को जाना तथा मन्दिर-प्रतिमा के दाहिने पक्ष में लिंग-स्थापन और उसकी बार-वार पूजा; कर्ता शिव-लोक जाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ८७९-८८३, शिवधर्म ० से उद्धरण)।

यक्षकर्वम : (यक्षों का प्रिय अंजन) पाँच सुगन्धित पदार्थों से निर्मित; देखिए गत अध्याय-२; हेमाद्रि (व्रत० १, १४३-४४); व्रतराज (पृ० १६)।

यज्ञसप्तमी: शुक्ल ७ पर, जब ग्रहण हो, विशेषतः जब संक्रान्ति हो; कर्ता एक वार हिवष्य भोजन करता है, वरुण को प्रणाम करता है, पृथिवी पर रखी दर्भ घास पर बैठता है; दूसरे दिन प्रातःकाल आरम्भ में एवं अन्त में वरुण की पूजा करता है। एक विस्तृत विधि व्यवस्थित है; माघ सप्तमी पर वरुण को, फाल्गुन ७ पर सूर्य को, चैत्र ७ पर अंशुमाली (सूर्य को एक नाम) को पूजित किया जाता है और इसी पर पौप तक कृत्य चला जाता है; वर्ष के अन्त में एक स्वर्ण रश्र बनाया जाता है, जिसमें सातघोड़ जुते होते हैं, जिसके मध्य में सूर्य की एक स्वर्ण-प्रतिमा रहती है, जिसके चतुर्दिक सूर्य के १२ नामों के प्रतिनिधियों के रूप में बारह ब्राह्मण बने रहते हैं, बारह मासों में १२ ब्राह्मण पूजित होते हैं:; रथ एवं एक गाय आचार्य को दान रूप में अपित; दरिद्र व्यक्ति ताम्र का रथ बना सकता है; कर्ता लम्बे क्षेत्रों का राजा हो जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १०७-११२); हेमाद्रि (व्रत० १, ७५७-७६०, भविष्यपुराण, १।५०।१-४२ से उद्धरण); ने लिखा है कि यहाँ वरुण का अर्थ है सूर्य।

यमचतुर्थी : शनिवार एवं भरणी नक्षत्र में पड़ने वाली चतुर्थी पर यम-पूजा; सात जन्मों तक पापों से मुक्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ५२३-५२४); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (९५, कूर्मपुराण से उद्धरण); यम भरणीनक्षत्र का स्वामी है।

यमतर्पण : तिलयुक्त जल की अंजलियों से यम के तीन नामों (यम, घर्मराज, अन्तक) को तीन बार तर्पण करना; एक वर्ष में किये गये पाप तुरत समाप्त हो जाते हैं।

यमदीपदान : कार्तिक कृष्ण १३ पर; रात्रि हो जाने पर घर के बाहर दीप-दान; इससे आकस्मिक मृत्यु से रक्षा होती है; पुरुषार्थ-चिन्तामणि (२३१); स्मृतिकौस्तुभ (३६८)।

यमद्वितीया : देखिए गत अध्याय-१०।

यमितियायात्रा : भुवनेश्वर की १४ यात्राओं में एक; गदाघरपद्धति (कालसार, १९३)।

थमव्रत : जो व्यक्ति (१) शुक्ल ५, ६, ८ या १४ को उपवास करता है तथा ब्रह्म-भोज कराता है, वह रोग-मुक्त हो जाता है और सुन्दर रूप पाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत ॰ ३८९); हेमाद्रि (व्रत ॰ २, ३७७, महाभारत से उद्धरण); (२) कृष्ण १४ को उपवास; यम के प्रत्येक नाम (यम, घमराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल एवं सर्वभूतक्षय पर तिल-जल की सात अञ्जलियों का अर्पण; सभी पापों से मुक्ति; हेमाद्रि (व्रत ॰ २, १५१, कूमपुराण से उद्धरण); (३) कार्तिक कृष्ण १४ पर स्नान एवं यम को तर्पण; (२) में दिये गये नामों के अनुसार जलांजिल का अर्पण, (यहाँ कुछ और नाम जुट गये हैं, यथा—िवत्र, चित्रगुप्त); एक ब्राह्मण को तिलपूर्ण पात्र एवं सोने का दान; कर्ता मृत्यु पर दुःख नहीं उठाता; हेमाद्रि (व्रत ॰ २, १५१); (४) यदि राजा यम की पूजा दशमी को हो तो रोगों का निवारण हो जाता है; हेमाद्रि (व्रत ॰ १, ९८२, भविष्यपुराण से उद्धरण); (५)जब चतुर्थी रविवार को पड़ती है और वह भरणी-नक्षत्र से युक्त होती है तो यम के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए भैंसे एवं सोने का दान करना चाहिए; अहल्याकामधेनु (३५७, कूर्मपुराण से उद्धरण)।

यमादर्शन-त्रयोदशी: मार्गशीर्ष की त्रयोदशी पर, जब कि यह रिववार एवं मंगलवार को छोड़ कर किसी भी शुभ दिन पर पड़ती है; पूर्वाह्न में १३ ब्राह्मण निमन्त्रित होते हैं, उन्हें देह में लगाने के लिए तिल का तेल दिया जाता है, नहाने को पानी तथा खाने को भरपेट भोजन दिया जाता है; यह एक वर्ष तक प्रतिमास किया जाता है; ऐसा करने से कर्ता यम का मुख कभी भी नहीं देखता; हेमाद्रि (व्रत०२,९-१४, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); अहल्याकामधेनु (८६४)।

यमुनास्नान-तर्पण: यमुना के जल में खड़े हो कर विभिन्न नामों से यम का तिलयुक्त जल की तीन अंजिलयों से तर्पण; गदाघरपद्धति (कालसार, ६०१)।

यात्रा: (उत्सवपूर्ण जुलूस या उत्सव) देखिए दोलयात्रा एवं रथयात्रा। अति प्राचीन कालों से ही देवों की यात्राएँ प्रसिद्ध रही हैं। कालप्रियानाय की यात्रा के अवसर पर भवभूतिकृत महावीरचरित का अभिनय किया गया था। देखिए रघुनन्दन द्वारा प्रणीत माना गया 'यात्रातत्त्व', जिसमें विष्णु की १२ यात्राओं का उल्लेख है। पुरुषोत्तम की यात्रा के अवसर पर मुरारिकृत अनर्घराघव का अभिनय किया गया था; देखिए एपि० इण्डिका (जिल्द १०,पृ० ७०) जहाँ महादेव पृथ्वीश्वर की देवद्रोणी (प्रतिमा-यात्रा) का उल्लेख है; कृत्यकल्पतर (राजघर्म० २०१७८-१८१) में देवयात्रा-विधि वर्णित है; राजनीतिप्रकाश (४१६-४१९)। प्रति वर्ष वैक्षाख से आगे ६ मासों तक, पहली से १५ वी दिथि तक विभिन्न देवों की पूजा होती है यथा—ब्रह्मा करें, जो तिथियों के स्वामी कहे जाते हैं।

युगादितिथियाँ : नारदपुराण (१।५६।१४७-१४८); हेमाद्रि (काल० ६४९-६५५); तिथितत्त्व (१८७); निर्णयसिन्ध् (९४-९५); पुरुषार्थचिन्तामणि (८६-८९); विष्णुपुराण (३।१४।१२-१३); भुजबल निबन्ध (पृ०४२)।

युगादिवत : चारों युग, यथा—कृत, त्रेता, द्वापर एवं किल कम से वैसाख शुक्ल ३, कार्तिक शुक्ल ९, भाद्रपद कृष्ण १३ एवं माघ अमावास्या पर आरम्भ हुए; इन तिथियों पर उपवास, दान, तप, जप एवं होम से साधारण फलों की अपेक्षा एक करोड़ गुना फल-प्राप्ति होती है; वैसाख शुक्ल ३ पर नारायण-लक्ष्मी की पूजा एवं लवण-धेनु का दान; कार्तिक शुक्ल ९ पर शिव-उमा की पूजा तथा तिल-घेनु का दान; भाद्रपद कृष्ण १३ पर पितरों को सम्मान; माघ अमावस्या पर ब्रह्मगायत्री की पूजा तथा नवनीत-धेनु का दान; सभी मन, त्रचन एवं कर्म से किये गये पाप प्रभावहीन हो जाते हैं; हेमाद्रि (ब्रत० २, ५१४-५१७, भविष्योक्षरपुराण से उद्धरण)।

युगान्त्य-श्राद्धः तीन दिनों तक सम्पादन; चारों युग कम से निम्नलिखित समयों पर अन्त को प्राप्त होते हैं; कृत का अन्त तब होता है जब सूर्य सिंह राशि में रहता है, त्रेता का अन्त वृश्चिक संक्रान्ति में, द्वापर का वृष-संक्रान्ति में तथा किल का कुम्म-संक्रान्ति में; हेमाद्रि (काल० ६५६); कृत्यरत्नाकर (५४२-५४३); कृत्यकल्पतरु (नैयत्कालिक काण्ड, ३७२)।

युगावतारवत: भाद्रपद कृष्ण १३ पर जब द्वापर-युग का आरम्भ हुआ; शरीर पर गोमूत्र, गोबर, दूर्वा एवं मिट्टी का प्रयोग और गहरे जल या तालाब में स्नान; यह करने से गया-श्राद्ध का फल मिलता है; विष्णु-प्रतिमा का घी, दूव एवं शुद्ध जल से स्नान; विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ५१८-५१९, भविष्यपुराण से उद्धरण)) कुछ लोगों का कथन है कि इस दिन त्रेतायुग का अम्युदय हुआ था।

योगव्रत : विष्कम्भ व्यतीपात ऐसे योगों का उल्लेख आगे के प्रकरण 'काल' में किया जायगा; हेमाद्रि (व्रत० २, ७०७-७१७); स्मृतिकौस्तुभ (५६३-५६४); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (५२)।

योगेश्वरव्रत या योगेश्वरद्वादशी: कार्तिक शुक्ल ११ को उपवास; चार जलपूर्ण घट, जिनके भीतर रत्न रखे गये हों, जिन पर चन्दन-लेप चिह्न लगे हों, जिनके चारों ओर श्वेत वस्त्र बँघा हो, जिनके ऊपर तिल एवं सोने सेयुक्त ताम्र-पात्र रखे गये हों, चार समुद्र समझे जाते हैं; घट के ढक्कन के बीच में हिर (जो योगेश्वर कहें जाते हैं) की प्रतिमा रखी जाती है और पूजित होती है; जागर,; दूसरे दिन चारों घट चार ब्राह्मणों को दे दिये जाते हैं, स्वर्ण-प्रतिमा किसी अन्य पाँचवें ब्राह्मण को दी जाती है; ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा; इस वृत को घरणीवृत भी कहा जाता है; कर्ता पापमुक्त हो जाता है और स्वर्गलोक जाता है; कृत्यकल्पत्र (वृत् ० ३३६-३३९); हेमाद्र (वृत् ० १,१०४१-१०४४,वराहपुराण ५०।४-२९ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४२७-४३०)।

रक्तसप्तमी: मार्गशीर्ष कृष्ण ७ पर; तिथिव्रत; लाल कमलों से सूर्य-पूजा या श्वेत पुष्पों एवं लाल चन्दन, वटक (बड़ा) एवं कृसर (चावल, मटर एवं मसालों से बना पक्वान्न) से सूर्य-प्रतिमा की पूजा; अन्त में लाल वस्त्रों के जोड़े का दान; (विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१७०।१-३)।

रक्षापज्यमी : भाद्र पद कृष्ण ५ पर; काले रंगों से सर्पों का चित्रांकन एवं पूजा; सर्प प्रसन्न होते हैं और वंशजों को कोई डर नहीं होता; गदाघरंपद्धति (७८-७९)।

रक्षाबन्धन : श्रावण-पौर्णमासी पर; देखिए गत अध्याय-- ७।

रङ्गपण्चमी : फाल्गुन कृष्ण ५ पर; देखिए गत अध्याय-१२।

रटन्ती-चतुर्दशी: माघ कृष्ण १४ पर; तिथि; यम; अरुणोदय के समय स्नान; १४ नामों के साथ यम को तर्पण (कृत्यतत्त्व ४५० में यम के ये नाम उल्लिखित हैं); वर्षिक्रयाकौमुदी (४९७); कृत्यतत्त्व (४५७); गदाघरपद्धित (कालसार १५७-१५८); देखिए ऊपर प्रेत-चतुर्दशी।

रत्नषष्ठी: मृच्छकटिक (अंक ३) एवं चारुदत्त (अंक ३, पृ० ६३, भासलिखित) में उल्लिखित; वहाँ 'तन पष्ठीम् उपवसामि' नामक शब्द आये हैं; किन्तु यह कहना कठित है कि यह रत्नपष्ठी है या कोई और।

रत्नानि : (रत्न या बहुमूल्य वस्तुएँ) देखिए ऊपर 'पंचरत्न' जहाँ पाँच रत्नों के नाम आये हैं (सोना, हीरा, नीलम, पद्मराग एवं मोती); व्रतराज (१५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण का उद्धरण) ने नौ रत्नों के नाम दिये हैं, यथा—मोती, सोना, वैदूर्य, पद्मराग, पुष्पराग, गोमेंद (हिमालय से प्राप्त), नीलम, गारुत्मत एवं मूँगा।

रयनवमी : आश्विन शुक्ल ९ (कृत्यकल्पतरु के अनुसार) या कृष्ण ९ (हेमाद्रि के अनुसार); तिथि; दुर्गा; उस दिन उपवास, दुर्गा-पूजा; दर्पणों, चौरियों, वस्त्रों, छत्र, मालाओं आदि से सुसज्जित रथ पर या मैंसे पर बैठी दुर्गा

की स्वर्ण प्रतिमा; जन-मागं से रवको ले जाकर दुर्गा-मन्दिर तक पहुँचना, प्रकाश; नृत्य एवं संगीत से जागर; दूसरे दिन प्रातः प्रतिमा-स्नान तथा दुर्गा के लिए रथ का समर्पण; एक सुन्दर पलंग, बैल एवं शीघ्र ही बच्चा देने वाली गाय का दान; कृत्यकल्पतरु (व्रत० २९४-२९८) हेमाद्रि (व्रत० १,९४६-९४८, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

रथयात्रा : हेमाद्रि (व्रत० २, ४२०-४२४, देवीपुराण का उद्धरण) ने दुर्गा की रथयात्रा का वर्णन किया है; इत्यरत्नाकर (२५९-२६४) ने वही वर्णन किसी अन्य स्रोत से दिया है; भविष्यपुराण (१।१८।३-१७) ने बह्या की रथयात्रा का वर्णन किया है; कृत्यरत्नाकर (४३८-४३९) एवं पूजाप्रकाश (२९३-३०७) ने उद्धरण दिया है; पुरुपोत्तम की १२ एवं भुवनेश्वर की १४ रथयात्राओं का वर्णन गदाघरपद्धति (कालसार, १८३-१९० एवं १९०-१९४) में हुआ है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४२४-४४०, भविष्पुराण का उद्धरण) ने सूर्य के रथयात्रोत्सव का विस्तृत उल्लेख किया है और कहा है (पृ० ४२५) कि यह इन्द्रध्वजीत्सव के समान है तथा दोनों प्रति वर्ष विभिन्न देशों में शान्ति के लिए तथा लोगों के सुख एवं स्वास्थ्य के लिए किये जाते हैं तथा इनका आरम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल से होना चाहिए। मथुरा में साम्बपुरदेव की रथयात्रा के लिए देखिए वाराहपुराण (१७७।५५-५६)। भविष्योत्तरपुराण (१३४।४०-७१) में रथ-निर्माण, जुलूस-व्यवस्था तथा रथ में प्रतिमा-स्थापन आदि का विस्तृत उल्लेख है।

रयसप्तमी: माघ शुक्ल ७ पर; तिथि; सूर्य; षष्ठी की रात्रि को संकल्प एवं नियमों का पालन; सप्तमी को उपवास; कर्ता को सोने या चाँदी का अरव एवं सारयी से युक्त एक रय बनवाना पड़ता है; सूर्य की स्तुति करनी होती है तथा मध्या ह काल में रय को वस्त्र से आच्छादित मण्डप में ले जाना होता है तथा कुंकुम, पुष्पों आदि से रथ की पूजा करनी पड़ती है; रय में सूर्य की स्वणं प्रतिमा रखी जाती है; रय एवं सारयी के साथ सूर्य-पूजा तथा मन्त्रोच्चारण और उसके साथ मनोकामना की अभिव्यक्ति; नृत्य एवं संगीत से जागर, कर्ता को पलकें नहीं वन्द करनी चाहिए अर्थात् वह उस रात्रि नहीं सोता; दूसरे दिन प्रातः स्नान, दान और गुरु को रय का दान; हेमाद्रि (त्रत० १, ६५२-६५८, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)। यहाँ कृष्ण ने युधिष्ठिर से काम्बोज के राजा यशोधर्मा की गाथा कही है कि किस प्रकार इस ब्रत के संम्पादन से उसकी वृद्धावस्था में उत्पन्न पुत्र, जो सभी रोगों से विकल था, रोगमुक्त हो गया तथा चक्रवर्ती राजा हो गया। कालविबेक (१०१); हेमाद्रि (काल ६२४) ने मत्स्यपुराण का उद्धरण देते हुए कहा है कि मन्वन्तर के आरम्भ में इस तिथि पर सूर्य को रथ प्राप्त हुआ, अतः यह तिथि रथसप्तमी के नाम से विख्यात है। इसे महासप्तमी भी कहा जाता है (हेमाद्रि, काल०, ६२४)। देखिए तिथितत्व (३९); पृष्ठवार्थ चिन्तामणि (१०४-१०५); वतराज (२४९-२५३)। देखिए इण्डियन एण्टीक्वरी (जिल्द ११,पृ० ११२), राष्ट्रकूट राजा दिलदुर्ग का सामनगढ़ दान-पत्र, शके सम्वत् ६७५ (७५३-५४ई०) जहाँ 'माघमास-रथसप्तमीम्' आया है। रथसप्तमी-माहात्म्य के लिए देखिये भविष्यपुराण (११५०)।

रथांगसप्तमी: माघ शुक्ल ५, ६ एवं ७ पर कम से एकभक्त, नक्त एवं उपवास; कुछ लोग ६ को उपवास एवं ७ को पारण की व्यवस्था देते हैं; इसे महासप्तमी भी कहा गया है (देखिए ऊपर), हेमाद्रि (व्रत०

१, ६५९-६६०) एवं भविष्यपुराण (१।५१।१-१६) ने भी यही नाम दिया है।

रथोत्सव : आषाढ़ शुक्ल २ पर; जब पुष्य से संयुक्त हो तो कृष्ण, बलराम एवं सुभद्रा का रथोत्सव; पुष्य-नक्षत्र के न होने पर भी उत्सव किया जाना चाहिए; तिथितत्त्व (२९); निर्णयसिन्घु (१०७); स्मृतिकौस्तुभ (१३७)।

रम्भातृतीया: (१) ज्येष्ठ शुक्ल ३ पर; पूर्वाभिमुख हो कर पाँच अग्नियों (यथा—गाईपत्य, दाक्षिणाग्नि, सम्य एवं आहवनीय तथा ऊपर से सूर्य) के बीच में बैठना; ब्रह्मा एवं महाकाली, महालक्ष्मी, महामाया तथा सरस्वती के रूप में देवी की ओर मुख करना; ब्राह्मणों द्वारा संभी दिशाओं में होम; दंवी-पूजा तथा देवी के

समक्ष सौभाग्याष्टक नामक आठ द्रव्यों को रखना; सायंकाल सुन्दर घर के लिए स्तुति के साथ घद्राणी को सम्बोधित करना; इस के उपरान्त कर्ता (स्त्री या पुरुष) किसी ब्राह्मण को उसकी पत्नी के साथ सम्मान देता है और सूप में नैवेद्य रख कर सधवा नारियों को समिपत करता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ४२६-४३०, भविष्योत्तर-पुराण १८।१-३६ से उद्धरण); कालंनिर्णय (१७६); तिथितत्त्व (३०-३१); यह व्रत विशेषतः नारियों के लिए है; (२) इसे यह नाम इसलिए मिला है कि रम्भा ने इसे सौभाग्य के लिए किया था; मार्गशीर्ष शुक्ल ३ पर; तिथि; पार्वती; एक वर्ष तक; विभिन्न नामों से प्रतिमास देवी-पूजा (मार्गशीर्ष में पार्वती, पौष में गिरिजा आदि); विभिन्न दान तथा विभिन्न पदार्थों का सेवन; हेमाद्रि (व्रत० १, पृ० ४३०-४३५, भविष्योत्तरपुराण २४।१-३६ से उद्धरण); गरुडपुराण (१।१२०)। यदि तृतीया, द्वितीया एवं चतुर्थी से युक्त हो तो यह व्रत द्वितीया से युक्त तृतीया पर किया जाना चाहिए; कालनिणय (१७४); देखिए ऊपर तृतीयावृत'।

रम्भात्रिरात्र-व्रत : ज्येष्ठ शुक्ल १३ पर आरम्भ; तिथि; तीन दिनों तक; सर्वप्रथम स्नान के उपरान्त नारी को केले की जड़ में पर्याप्त जल ढारना चाहिए, उसे घागों से बाँघना चाहिए, उस केले की रजत-प्रतिमा तथा उसके फल सोने के होने चाहिए; फिर उसकी पूजा; १३ को नंकत, १४ को अयाचित तथा १५ को उपवास; उस वृक्ष को वर्ष भर जल देना चाहिए; उमा-शिव एवं एकिमणी-कृष्ण की पूजा; तीनों दिन क्रम से १३ १४ एवं १५ आहुतियों से होम; इस व्रत से पुत्रों की, सौन्दर्य की और सघवात्व आदि की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, २८३-२८८, स्कन्दपुराण से उद्धरण); वर्षकियाकौमुदी (११); 'रम्भा' का अर्थ कदली (केला) भी है, अतः यह नाम है।

रिववारवतः रिववार को नक्त, आदित्यहृदयं या महाश्वेता मन्त्र का जपः; कामना-पूर्तः; वारव्रतः; सूर्यं देवताः; स्मृतिकीस्तुभ (५५६-५५७); वर्षकृत्यदीपक (४२३-५३६) ने विस्तृत उल्लेख किया है।

रिवत : (१) माघ में दिन में तीन बार सूर्य-पूजा; एक मास में ही ६ मासों का पुण्य; हेमाद्रि (ब्रत॰ २,७९६); (२) माघ में रिववार को; एक वर्ष तक सभी रिववारों को सूर्य-पूजा; कुछ निश्चित वस्तुओं पर कम से रहना या कुछ निश्चित वस्तुओं को न खाना; वर्ष कियाकौ मुदी (३७-३८)।

रविषडी: षष्ठी को उपवास एवं सप्तमी को सूर्य-पूजा; घन-प्राप्ति एवं रोग-मुक्ति; कालनिर्णय (१९०. लिंग पुराण से उद्धरण)

रसकल्पाणिनी: माघ शुक्ल ३ से आरम्भ; तिथि; दुर्गा; दुर्गा-प्रतिमा का मधु एवं चन्दन-लेप से स्नान, सर्वप्रथम प्रतिमा के दक्षिण पक्ष की तथा उसके उपरान्त वाम पक्ष की पूजा; उसके अंगों को विभिन्न नामों से युक्त कर पाँव से सिर तक की पूजा; १२ विभिन्न नामों (यथा—अुमुदा, माघवी, गौरी आदि) से, माघ से आरम्भ कर बारह मासों में देवी पूजा; माघ से कार्तिक तक प्रत्येक मास में कर्ता १२ वस्तुओं, यथा—लंबण, गुड़, तवराज (दुग्व?), मधु, पानक (मसालेदार रस), जीरक, दूघ, दही, घी मार्जिक। (रसाला या शिखरिणी), घान्यक, शक्कर में से कम से किसी एक का त्याग करता है; प्रत्येक मास के अन्त में किसी पात्र में इस मास में त्यागी हुई वस्तु को भर कर दान करना; वर्ष के अन्त में अँगूठे के बरावर गौरी को स्वर्ण-प्रतिमा का दान; पापों, चिन्ता एवं रोगों से मुक्ति; कृत्यकल्पतर (६६-६९); हेमाद्रि (ब्रत० २, ४६१-४६५, पद्मपुराण ५।२२।१०५-१३५ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४९९-५०३, मत्स्यपुराण ६२।१-२९ से उद्धरण)। 'रसाला' दही से बनता था और आज के महाराष्ट्र में प्रयुक्त 'श्री खण्ड' से मिलता-जुलता है, कृत्यरत्नाकर (५०१)।

राखी-पूर्णिया : श्रावग तुवत पूर्णिमा नर; देखिए गत अव्याय--७, 'रक्षावन्यन'।

राधव द्वादशी: ज्येष्ठ शुक्ल १२ पर; राम-लक्ष्मण की स्वर्ण-प्रतिमा का पूजन; पद से शिर तक विभिन्न नामों से अंगों की पूजा (यथा—'ओं नमस्त्रिविक्रमायेति किटम्'); प्रातःकाल राम-लक्ष्मण की पूजा के उपरान्त घृतपूर्ण घट का दान; कर्ता के पाप कट जाते हैं और वह स्वर्गवास करता है, यदि उसे अन्य कामना की पूर्ति की अभिलाषा नहीं होती तो वह मोक्ष पद पा जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १२७-१२९); हेमाद्वि (व्रत० १,१०३४-१०३५); कृत्यरत्नाकर (१९०-१९१); सभी ने वाराहपुराण '(४५।१-१०) को उद्धत किया है।

राजराजेश्वरव्रत : जब स्वाति नक्षत्र हो और बुघवार हो तो उस अष्टमी पर उपवास; पक्ष्वाक्षों एवं मिठाइयों के नैवेद्य से शिव-पूजा; शिव-प्रतिमा के समक्ष आचार्य को कण्ठहार, मुकुट, मेखला, कर्णफूल, दो अँगूठियाँ, एक हाथी या अश्व का दान; कर्ता अगणित वर्षों तक कुवेर की स्थिति प्राप्त कर लेता है, हेमाद्रि (त्रत०१, ८६४, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); 'राजराज' का अर्थ है 'कुबेर' एवं शिव का मित्र तथा राजराजेश्वर का अर्थ शिव या कुवेर (यक्षपति) हो सकता है।

राजीस्नापन: चैत्र शुक्ल ८ पर; चैत्र कृष्ण ५ से तीन दिनों तक कश्मीर की भूमि रजस्वला मानी जाती है; प्रत्येक घर में सबवा स्त्रियों द्वारा पृष्पों एवं चन्दन से घोयी जाती है और तब पुरुषों द्वारा सर्वों घिषयों से युक्त जल से घोयी जाती है; तब लोग बाँ मुरी-वादन सुनते हैं; पृथिवी सूर्य की रानी है; अतः यह नाम विख्यात हुआ है; कृत्यरत्नाकर (५३२-५३३, ब्रह्मपुराण से उद्धरण), नीलमतपुराण (पृ० ५४) ने इसे फाल्गुन कृष्ण ५ से ८ तक माना है (सम्भवतः अमान्त गणना से)।

राज्यद्वादशीवत : मार्गशीर्ष शुक्ल १० पर संकल्प; एकादशी को उपवास एवं विष्णु-पूजा; सर्वोत्तम मोजन से होम; द्विजों के लिए मन्त्र 'तद् विष्णोः परमम्' (ऋ० १।२२।२०) तथा शूद्रों के लिए 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' नामक १२ अक्षरों का मन्त्र; जागर, संगीत एवं नृत्य; एक वर्ष तक; सभी द्वादिशयों पर मौन व्रत का कठोरता से पालन; कृष्ण द्वादशी पर भी ऐसी ही विधि केवल देव-पूजा लाल वस्त्र पहन कर तथा तेल के दीप (घृत के नहीं) के साथ; इस वृत से कर्ता पहाड़ी की घाटी का राजा हो जाता है; तीन वर्षों में कर्ता मण्डलेश्वर (प्रान्तपित) हो जाता है तथा १२ वर्षों में राजा; हेमाद्रि (वृत० १, १०६०-१०६३, विष्णुधर्मोत्तर-पुराण से उद्धरण)।

राज्यक्षतः ज्येष्ठ शुक्ल ३ पर वायु, सूर्य एवं चन्द्र की पूजा; प्रातःकाल किसी पवित्र स्थान पर वायु-पूजा, मध्याह्न में अग्नि में सूर्य-पूजा तथा सूर्यास्त पर जल में चन्द्र-पूजा; एक वर्ष; स्वर्ग-प्राप्ति; तीन वर्षों तक करने से कर्ता ५ सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में रहता है; यदि १२ वर्षों तक यह ब्रत किया जाय तो लाख वर्षों तक स्वर्ग की प्राप्ति; हेमादि (व्रत ६ १, ४५७-५७९, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

राज्याप्तिदशमी: कार्तिक शुक्ल १० से आरम्भ; कतु, दक्ष आदि दस विश्वेदेवों के रूप में केशव-पूजा; पूजा कृत्य मण्डलों या सीने या चाँदी की प्रतिमाओं में होता है; वर्ष के अन्त में हिरण्य-दान; विष्णुलोक की प्राप्ति, उसके उपरान्त कर्ता एक राजा या ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण बनता है; हेमाद्रि (व्रत ० १, ९६५-९६६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। १० विश्वेदेवों के नाम हैं—वसु, सत्य, कतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुरू, पुरूरवा एवं माद्रव।

राधाष्ट्रमी: भाद्रपद की दोनों पक्षों की अष्टिमियों पर; राघा का जन्म भाद्र शुक्ल ७ को हुआ था; अष्टमी पर राघा-पूजा से सभी महापातक कट जाते हैं; पद्मपुराण (३।४।४३, ३।७।२१-२३)।

रामचन्द्रवोलोत्सव: चैत्र शुक्ल ३ पर; इस दिन पालने (झूले) पर रामचन्द्र की प्रतिमा रेखी जाती है और एक मास तक झुलायी जाती है, जो लोग यह झूला देखते हैं वे एक सहस्र पापों से मुक्त हो जाते हैं; स्मृति-कौस्नु भ (९१)।

रामनवमी या रामजयन्ती : देखिए गत अध्याय-४।

रामनामलेखनवत: इसका आरम्भ रामनवमी या और किसी दिन भी किया जा सकता है; एक लाख या एक कोटि वार रामनाम लिखना चाहिए; केवल एक रामनामलेखन से महापातक कट जाता है (एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्); १६ उपचारों से रामनाम-पूजा; व्रतराज (३३०-३३२)। रामनाम के साथ जादू-सा लग गया और राम के १०८ एवं एक सहस्र नाम विख्यात हो गये।

राशिव्रत : कार्तिक से आगे के मासों में प्रत्येक पौर्णमासी पर; कार्तिक-पूर्णिमा पर नक्त-विधि एवं स्वर्ण मेष (मेड़ा) का दान; मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर राजा का दर्शन तथा एक जोड़ा (बैल) का दान तथा अन्त में एक दासी का दान; इस वर्त से ग्रहों के दुष्ट प्रभाव कट जाते हैं, सभी कामनाओं की प्राप्ति तथा सोमलोक में पहुँच; हेमाद्रि (ग्रत॰ २, २३८-२३९, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

हिमाण्यष्टमी: मार्गशोर्ष कृष्णाष्टमी पर; प्रथम वर्ष में कर्ता (स्त्री) को मिट्टी का एक द्वार वाला घर बना कर उसमें घर के सभी उपकरण, वान, घी आदि रख देना चाहिए और कृष्ण, हिनमणी, बलराम एवं उनकी पत्नी, प्रद्युम्न एवं उसकी पत्नी, अनिरुद्ध एवं उषा, देवकी एवं वसुदेव की प्रतिमाएँ बनानी चाहिये; इंन प्रतिमाओं की पूजा; प्रातःकाल चन्द्र को अर्घ्य; दूसरे दिन प्रातःकाल वह घर किसी कुमारी को दे देना चाहिए; दूसरे तीसरे एवं चौथे वर्ष उस घर में अन्य अंश जोड़ने चाहिये और उन्हें कुमारियों को दान करना चाहिये; पाँचवें वर्ष में पाँच द्वार वाला घर, छठें वर्ष में ६ द्वार वाला घर किसी कुमारी को देना चाहिए; सातवें वर्ष में सातद्वारों का घर बना कर, उसे खेत रंग से रंग कर उसमें पलंग, खड़ाऊँ (पाद-त्राण), दर्पण, ओखली एवं मूसल, पात्र आदि रखना चाहिए तथा कृष्ण, हिममणी एवं प्रद्युम्न की स्वर्ण-प्रतिमाओं की पूजा करनी चाहिए, उपवास एवं जागर करके दूसरे प्रातःकाल उस घर एवं एक गाय को बाह्मण को दान रूप में दे देना चाहिए, ब्राह्मण -पत्नी को भी दान देना चाहिए; इस वत के उपरान्त पुरुष कर्ता चिन्तामुक्त हो जाता है और स्त्री को कोई पुत्र-दुख नहीं होता; हेमाद्रि (त्रत० १, ८५३-८५५, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

उद्रलक्षवित-व्रत : शिव-लिंग के समक्ष गाय के घी में डुवायी हुई रूई की वित्यों (बातियों) से युक्त एक लाख दीपों का अर्पण; व्रत के पूर्व १६ उपचारों से लिंग-पूजा; व्रत का आरम्भ कार्तिक या माघ में, दैसाख या श्रावण में होता है और उसी मास में समाप्त होता है; कर्ता को घन, पुत्र एवं कामनापूर्ति प्राप्त होती है; स्मृतिकौस्तुभ (४११-४१४)।

रुव्रत : (१) ज्येष्ठ के दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर (अर्थात् चार दिनों में); पाँच अग्नियों से तपों का सम्पादन तथा चौथे दिन सायंकाल स्वर्ण गाय का दान; देवता, रुद्र; हेमाद्रि (व्रत २, ३९४, पद्मपुराण से उद्धरण), कृत्यकल्पतर (व्रत ४५०, यहाँ षष्ठी एवं त्रयोदशी तिथि दी गयी है); मत्स्यपुराण (१०१।७६); (२) एक वर्ण तक एकभक्त-विधि; अन्त में एक स्वर्ण वैल एवं तिलघेनु का दान; यह सर्वत्सर व्रत है; देवता, शंकर; इससे पापमोचन, चिन्ता-मुक्ति एवं शिव-लोक्-प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत ० २, ८६६, पद्मपुराण से उद्धरण), कृत्यकल्पतर (व्रत ० ४३९); मत्स्य (१०१।४); (३) कार्तिक शुक्ल ३ से प्रारम्भ; एक वर्ष तक गोमूत्र एवं नक्त-विधि से यावक का सेवन; सम्वत्सर-व्रत; गौरी एवं रुद्र; वर्ष के अन्त में गोदान; एक कल्प तक गौरी-लोक में वास; कृत्यकल्पतर (व्रत ० ४४५); मत्स्यपुराण (१०१।४२-५३)।

रामनवमी: मार्गशीर्ष ९ पर आरम्भ; तिथिवत; चिष्डिका देवी; नवमी को उपवास या नक्त या एकमक्त; आटे का त्रिशूल बनाया जाता है, एक रजत कमल और स्वर्ण बीजकोप बना कर दुर्गा को समिपत किया जाता है; दुर्गा सभी पापों को काट देती हैं; पौष एवं आगे के मासों में विभिन्न बनावटी पशुओं को

विभिन्न पात्रों में रख कर (यथा—चार दाँतों का एक स्वर्ण हाथी स्वर्ण पात्र में, स्वर्ण मेष स्वर्ण पात्र में) स्वाहा को दिया जाता है; कर्ता अगणित वर्षों तक चन्द्रलोक में रह कर अन्त में एक सुन्दर राजा बनता है; कृत्यकल्पतरु (त्रत० २८८-२९४) हेमाद्रि (त्रत० १, ९३३-९३७, भविष्यपुराण से उद्धरण)। रूप का अर्थ है वनायी हुई वस्तुएँ या पशु से मिलती-जुलती आकृति'। चित्रत देवियाँ हैं दुर्गा की आकृतियाँ या माताओं की आकृतियाँ।

रूप संक्रान्ति : संक्रान्ति दिन पर कर्ता तैल-स्नान करता है, स्वर्ण पात्र में थोड़ा सोना के साथ घी रखता है और किसी ब्राह्मण को दे देता है; उस दिन एकभक्त रहता है; संक्रान्तिव्रत है; सहस्र अश्वमेघ का फल, सौन्दर्य, दीर्घायु, स्वास्थ्य, घन एवं स्वर्ण की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२, ७३४, स्कन्दप्राण से उद्धरण)।

रूपसत्र : फाल्गुन पूर्णिमा के उपरान्त कृष्णाष्टमी पर जब मूल-नक्षत्र हो तो व्रत का आरम्भ होता है; नक्षत्र, उसके स्खामी, वरुण, चन्द्र एवं विष्णु की पूजा; होम; गुरु सम्मान; दूसरे दिन उपवास; केशव पूजा; केशव के पाद से शिर तक विभिन्न अंगों पर विभिन्न नक्षत्रों का न्यास; चैत्र शुक्ल के अन्त में सत्र-समाप्ति; अन्त में पुष्पों, धूप आदि से विष्णु-पूजा; ऋ० (१।२२।२०) के मन्त्र से होम; गुरु को दान; ब्रह्म-भोज; स्वर्ग में वास तथा लौटने पर राजा बनना; हेमाद्रि (व्रत० २, ६७१-६७५, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); देखिए वृह्त्संहिता (१०४।६-१३) जहाँ यही व्रत चैत्र कृष्ण ८ को उपवास एवं नारायण तथा नक्षत्र की पूजा के साथ विणित है।

रूपाबाप्ति: (१) पंचमी पर विश्वेदेवों की पूजा से स्वर्ग-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत् १, ५७४-५७५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); दस विश्वेदेवों के लिए देखिए ऊपर 'राज्याप्तिदशमी' एवं इस ग्रन्थ का मूल खण्ड ४, पृ० ४५७, टिप्पणी १०१८; (२) यह एक मासव्रत है; फाल्गुन पूर्णिमा की प्रथमा से चैत्र पूर्णिमा तक; शेषनाग के फण पर लेटे हुए केशव की प्रतिमा की पूजा; एकभक्त-विधि; पृथिवी पर शयन; तीन दिनों तक उपवास, उसके उपरान्त चैत्र पूर्णिमा पर पूजा; चाँदी एवं वस्त्रों का एक जोड़ा दान; इससे रूप (सौन्दर्य) की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २,७४४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ३।२०२।१-५ से उद्धरण)।

रोगमुक्ति : स्कन्द, रुद्र एवं यम के सेवकों की पूजा से रोगमुक्ति मिलती है; हेमाद्रि (व्रत०१, ६२८, विष्णुधर्मोत्तरपूराण से उद्धरण)।

रोगहिविधि: जब रिववार को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र हो तो सूर्य-प्रतिमा-पूजन; कर्ता रोग-मुक्त होता है और सूर्य लोक प्राप्त करता है; रात्रि में अर्क के पुष्पों से सूर्य-पूजा, अर्क के पुष्पों एवं पायस को खाना; रात्रि में पृथिवी पर सोना; सभी पापों से मुक्ति एवं सूर्य लोक-प्राप्ति; यह वारत्रत है; देवता सूर्य; कृत्यवरूपतरु (व्रत०२०-२१); हेमाद्वि (व्रत०२,५२५-५२७,भिवष्योत्तरपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (६००-६०१)

रोच: यह मासोपवास, ब्राह्मरोच, कालरोच ऐसे कितपय वर्तों का नाम है; चैत्र शुक्ल १ पर प्रारम्भ; एक वर्ष तक; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२२२-२२३) ने इसका विवरण दिया है; अध्याय २२४ में नारियों के चंचल स्वभाव का उल्लेख है, किन्तु अन्त में निष्कर्ष है: 'नारियाँ पापों एवं विकारों की जड़ हैं तथा धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति के साधन भी हैं; उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, प्रत्युत रत्नों के समान उनकी रक्षा की जानी चाहिए (श्लोक, २५-२६)।

रोटक: श्रायण शुक्ल के प्रथम सोमवार पर आरम्भ; साढ़े तीन मासों के लिए; कार्तिक की चतुर्दशी पर उपवास तथा बिल्व दलों के साथ पूजा; पाँच रोटक (गेहूँ की रोटी जो लोहे के तवा या मिट्टी के थाल में पकायी जाती है) बनाये जाते हैं, एक नैवेश के लिए, दो ब्राह्मण एवं दो कर्ती के लिए; शिव-पूजा; पाँच वर्षों

तक; अन्त में सोने या चाँदी के दो रोटकों का दान; ब्रतार्क (पाण्डुलिपि, ३० बी०-३२ बी०); बिल्वरोटक-ब्रत नाम भी है।

रोहिणीचन्द्र-शयन : मत्स्यपुराण (५७) ने इसका विस्तृत वर्णन किया है (श्लोक १-२८); पद्मपुराण (४१२४।१०१-१३०) में भी ये श्लोक पाये जाते हैं; यहाँ पर चन्द्र नम्म के अन्तर्गत विष्णु की पूजा; जब पूर्णिमा पर सोमवार हो, या पूर्णिमा पर रोहिणी-नक्षत्र हो तो पंचगव्य एवं सरसों से स्नान करना चाहिए तथा 'आपायस्व' (ऋ० १।९१।१६, सोम को सम्बोधित) मन्त्र को १०८ वार कहना चाहिए तथा एक शूद्र केवल 'सोम को प्रणाम, विष्णु को प्रणाम' कहता है; पुष्पों एवं फलों से विष्णु-पूजा, सोम के नामों का वाचन तथा रोहिणी (मोम की प्रिय पत्नी) को सम्बोधन; कर्ता को गोमूत्र पीना चाहिए, भोजन करना चाहिए, किन्तु मांस नहीं खाना चाहिए; केवल २८ कौर खाने चाहिए और चन्द्र को विभिन्न पुष्प अपित करने चाहिए; एक वर्ष तक; अन्त में एक पलंग, रोहिणी तथा चन्द्र की स्वर्णिम प्रतिमाओं का दान; ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए: 'हे कृष्ण, जिस-प्रकार रोहिणी तुम्हें, जो कि सोम हो, त्याग कर नहीं भागती है इसी प्रकार में भी घन से पृथक् न किया जाऊँ'; इससे रूप, स्वास्थ्य, दोर्घायु एवं चन्द्रलोक की प्राप्त होती है; कृत्यकल्पतर (व्रतकाण्ड, ३७८-३८२, मत्स्यपुराण का उद्धरण); हेमाद्र (व्रत० २, १७५-१७९, पद्मपुराण ५।२४।१०१-१३० से वे ही श्लोक); कृत्यकल्पतर (व्रत) एवं हेमाद्र (व्रत) ने इसे चन्द्ररोहिणीशयन कहा है। भविष्योत्तरपुराण (२०६। १-३०) ने भी इसे मत्स्यपुराण की माँति उल्लिखत किया है।

रोहिणोद्वादशो : श्रावण कृष्ण ११ पर कर्ता (पुरुष या स्त्री) किसी तालाव या उसके समान किसी अन्य स्थान पर गोवर से एक मण्डल बनाता है तथा चन्द्र एवं रोहिणो की आकृति बना कर पूजता है, नैवेद्य अपण कर उसे किसी ब्राह्मण को दे देता है, इसके उपरान्त तालाव में प्रवेश करता है, चन्द्र एवं रोहिणो का ध्यान करता है, जल में हो पिसे हुए माष की १०० गोलियाँ, घी के साथ पाँच मोदक खाता है, बाहर निकलने पर किसी ब्राह्मण को भोजन एवं वस्त्र देता है; ऐसा प्रति वर्ष किया जाना चाहिए; हेमाद्रि (व्रत० १, १११३-१११४, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

रोहिणोन्नतः एक नक्षत्र वृतः; पाँच रत्नों से जड़ी ताम्रया स्वर्णिम रोहणी-प्रतिमा का निर्माण तथा दो वस्त्रों, पुष्पों, फलों एवं नेवैद्य से पूजा; उस दिन नक्त-विधि से भोजन; दूसरे दिन किसी विद्वान् गृहस्थ ब्राह्मण को प्रतिमा-दान; रोहिणी श्रीकृष्ण के जन्म के समय का नक्षत्र है; हेमाद्रि (व्रत० २, ५९८-५९९, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

रोहिणीस्नान: एक नक्षत्रवत; कर्ता एवं पुरोहित कृत्तिका पर उपवास करते हैं और रोहिणी पर कर्ती को पाँच घड़े जल से, जब वह दूघ फेंकती वृक्ष-शाखाओं या पल्लवों, श्वेत पुष्पों, प्रियंगु एवं चन्दन-लेप से अलंकृत चावल-राशि पर खड़ा रहता है, नहलाया जाता है; विष्णु, चन्द्र, वरुण, रोहिणी एवं प्रजापित की पूजा; घी एवं सभी प्रकार के बीजों से उन सभी देवों को होम; मिट्टी, घोड़े के केश एवं खुर (टप) से बने तीन भागों में विभाजित एक सींग में एक बहुमूल्य पत्थर पहनना चाहिये; ऐसा करने से पुत्रों, घन, यश की प्राप्ति होती है हैमादि (व्रत० २, ५९९-६००, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

रोहिण्याष्टमी: भाद्रपद कृष्णाष्टमी को, जब वह रोहिणी-नक्षत्र से युक्त होती है, जयन्ती कहा जाता है; जब अष्टमी अर्घरात्रि के पूर्व एवं उपरान्त एक कला तक बढ़ी रहती है तो वह अत्यन्त पवित्र काल माना जाता है और उसी समय भगवान् हरि का जन्म हुआ था; इस जयन्ती पर उपवास एवं हरि-पूजा से कर्ता के एक सौ पूर्व जीवनों के पाप कट जाते हैं; यह रोहिणीव्रत एक सौ एकादशीव्रतों से उत्तम है; राजमार्तण्ड (१२३१-१२५); कृत्यरत्नाकर (२५८); वर्षिक्रयाकौमुदी (२९८-३०४)।

रौद्रविनायकयागः जव गुरुवार पर एकादशी एवं पुष्य-नक्षत्र हो या जव शनिवार रोहिणी से युक्त एकादशी में हो तो यह याग करना चाहिए; इससे पुत्रों एवं कल्याण की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत०२,५९१)।

ख्सनमस्कारत्रत-संकल्प: आषाढ़ धुक्ल ११ पर विष्णु को एक सौ सहस्र नमस्कार देना; कार्तिक पूर्णिमा को समाप्त; 'अतोदेवा' (ऋ० १।२२।१६-२१) के साथ विष्णु-प्रतिमा की पूजा; स्मृतिकौस्तुभ (४०६-४०७)।

लक्षवित्वतः कार्तिक, वैसाख एवं माघ में आरम्भ; वैसाख सर्वोत्तम; पूणिमा पर तीन मासों में समाप्त; प्रतिदिन एक सहस्र बातियों से विष्णु एवं लक्ष्मी, ब्रह्मा एवं सावित्री, शिव एवं उमा की आरती उतारना; स्मृतिकौस्तुभ (४१०-४११); ब्रतार्क (पाण्डुलिपि ३९९-४०३ वी, वायुपुराण से उद्धरण)।

लक्षहोम : यह शान्ति है; देखिये शान्ति का प्रकरण; नृसिहपुराण, अंध्याय-३५; स्मृतिकीस्तुभ (४७५-४७९)।

लक्षणार्वाततः भाद्रपद कृष्ण ८ पर आरम्भ, जब कि आर्द्रा नक्षत्र हो; पंचामृत से स्नान करा कर, गन्ध, पुष्पों आदि से तथा मन्त्रों द्वारा जिनमें दोनों के नाम आये हों; शिव एवं उमा की पूजा; अर्घ्य, घूप, गेहूँ के बने खाद्यान्नों (जिन पर मत्स्य आदि की आकृतियाँ बनी रहती हैं) पाँच रसों (दही, दूध, घी, मधु एवं शक्कर) तथा मोदकों के नैवेद्य; स्विणम प्रतिमाएँ एवं नैवेद्य की सामग्री किसी विद्वान् ब्राह्मण को देदी जाती हैं; पापमोचन, सौन्दर्य, घन, दीर्घ आयु एवं यश की प्राप्त; हेमाद्रि (व्रत०१, ८२६-८२९, मत्स्यपुराण से उद्धरण)।

लक्षेत्रवरी-वृत: देखिए कोटीववरीवृत, ऊपर।

लक्ष्मीपूजन: दीवाली में; देखिए गत अघ्याय---१०; वर्षिक्रयाकीमुदी (४७२-४७६); तिथितत्त्व (१८६-१८७); निर्णयसिन्चु (२००)।

लक्ष्मीनारायणवत: फाल्गुन पूर्णिमा पर; तिथि; वर्ष भर प्रत्येक पूर्णिमा पर, वर्ष को ४ मासों के तीन भागों में बाँट कर; आषाढ़ से आगे चार मासों में श्रीघर एवं श्री के नामों का प्रयोग, कार्तिक को लेकर चार मासों में केशव एवं भूति के नामों का प्रयोग; रात्रि में प्रत्येक १५ पर चन्द्र को अर्घ्य; देह-शुद्धि के लिए प्रत्येक अविध में विभिन्न पदार्थों का प्रयोग, यथा—पंचगव्य, कुश-जल, सूर्य-किरण से तप्त जल; हेमाद्रि (व्रत० २, ६६४-६६६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

लक्ष्मीप्रवत्तः हेमाद्रि (वृत० २, ७६९-७७१) में यह कृच्छवतों में परिगणित है; कार्तिक कृष्ण ७ से १० तक कम से दूध, बिल्व-दलों, कमलों एवं कमल के रेशों का सेवन तथा एकादशी पर उपवास; इन दिनों में केशव-पूजा; विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (वृत० २, ७७०)।

लक्ष्मीवत: (१) प्रत्येक पंचमी पर उपवास एवं लक्ष्मी-पूजा; एक वर्ष; अन्त में स्वर्णिम कमल एवं एक गाय का दान; प्रत्येक जीवन में वन-लाभ एवं विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०१, ५६८, यमपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (११८); (२) चैत्र शुक्ल ३ पर घी एवं भात खाना, ४ को घर के बाहर कमल वाले तालाव में स्नान तथा कमल में लक्ष्मी-पूजा; पंचमी को श्री के लिए लिखित स्तोत्र से कमलापंण; पंचमी को स्वर्ण-दान; एक वर्ष तक; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१५४।१-१५ से उद्धरण)।

लितकान्तादेवी यत: यह मंगल-चण्डिका हो है, देखिए ऊपर; तिथितत्त्व (४१)ने कालिकापुराण को उद्धृत करते हुए कहा है कि मंगल-चण्डिका ही लिलतकान्तादेवी है, जिसके दो हाथ होते हैं, जो गोरी होतो है, लाल कमल पर विराजमान रहती है।

24

लिलतावत: माघ शुकल ३ पर; दोपहर को तिल एवं आमलक से किसी नदी में स्नान; पुष्पों आदि से देवी-पूजा; तामपत्र में जल, अक्षत एवं सोना रख कर एक ब्राह्मण के समक्ष रखा जाता है, जो मन्त्र के साथ कर्ता पर जल छिड़कता है; स्त्री सम्पादिका सोना का दान करती है, कुश डुबोये जल को पीती हैं, देवी-ध्यान में पृथिवी पर शयन करती रात्रि विताती है; दूसरे दिन ब्राह्मणों एवं एक सघवा नारी का सम्मान; एक वर्ष तक, प्रत्येक मास देवी के १२ नामों में एक का प्रयोग (यथा—पहले मास में ईशानी, ८ वें में लिलता तथा १२ वें में गौरी), बारह मासों में शुक्ल ३ पर उपवास तथा १२ वस्तुओं में कम से एक का सेवन, यथा—कुश से पिवत्र किया हुआ जल, दूब, घी आदि; अन्त में एक ब्राह्मण एवं उसकी पत्नी को सम्मान; सम्पादिका को पुत्रों, रूप, स्वास्थ्य एवं सचवापन की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (वत० १, ४१८-४२१, भविष्योत्तर पुराण से उद्धरण)। अग्निपुराण (१७८११-२) ने लिलता-तृतीया का उल्लेख किया है और कहा है कि चैत्र शुक्ल ३ को गौरी शिव से विवाहित हुई थीं। यही बात मत्स्यपुराण (६०१४-१५) में भी है; मत्स्यपुराण (६०११) में आया है कि सती को लिलता कहा जाता है, क्योंकि वह सभी लोकों में सर्वोत्तम है और रूप में सब से बढ़कर है। ब्रह्माण्डपुराण के अन्त में ४४ अध्यायों में लिलता सम्प्रदाय का विवेचन है।

लिताषष्ठी: विशेषतः नारियों के लिए; भाइपद ६ पर एक नवीन वाँस की फुफेली (पात्र) में किसी नदी का बालू एकत्र कर उससे पाँच पिण्ड बनाकर उस पर लिलता देवी की पूजा विभिन्न प्रकार के २८ या १०८ पुष्पों एवं विभिन्न खाद्य पदार्थों के नैवेद्य से की जाती है; उस दिन सिखयों के साथ रात्रि में जागर; सप्तमी को सभी नैवेद्य किसी ब्राह्मण को अपित; कुमारियों को भोजन, ५ या १० ब्राह्मण गृहणियों को भोजन तथा 'लिलता मुझ पर प्रसन्न होवें' के साथ उनकी विदाई; हेमाद्रि (व्रत १, ६१७-६२०, भविष्योत्तरपुराण ४१।१-१८ से उद्धरण); व्रतरत्नाकर (२२०-२२१) का कथन है कि यह गर्जर देश में अति प्रसिद्ध है।

लितासप्तमी: व्रतकालिविके (१३) में उल्लिखित; षष्ठी से युक्त सप्तमी की वरीयता प्राप्त है। लवणदान: मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर जब मृगशिरा-नक्षत्र होता है; चन्द्रोदय काल पर स्वर्णिम केन्द्रवाले एक पात्र में एक प्रस्थ मूमि से निकाले हुए लवण का किसी बाह्मण को दान; इससे रूप एवं सौभाग्य की प्राप्त; विष्णुधर्मसूत्र (९०।१-२); स्मृतिकौस्तुभ (४३०) तथा पुरुषार्थ-चिन्तामणि (३०६)।

लवण-संकान्तिवतः संकान्ति दिन पर स्नान के उपरान्त कुंकुम से अष्टदल कमल एवं बीज कोष की आकृति बनायी जाती है; सूर्य के चित्र की पूजा; चित्र के समक्ष लवणपूर्ण पात्र एवं गुड़ रखा जाता है और पात्र दान में दे दिया जाता है; एक वर्ष तक; अन्त में सूर्य की स्विणम प्रतिमा, एक गाय आदि का दान; यह संकान्तिवत है; हेमाद्रि (वत० २, ७३२-७३३, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

लावण्यगौरीव्रत : चैत्र शुक्ल ५ पर; तिमल लोगों द्वारा मनाया जाता है।

लवण्यवतः कार्तिक पूर्णिमा के उपरान्त प्रथमा से; किसी वस्त्र पर प्रद्युम्न का चित्र खींचकर या उसकी प्रतिमा की पूजा; नक्त-विधि; जब मार्गशीर्षं का आरम्भ हो तो तीन दिनों का उपवास; प्रद्युम्न-पूजा; घी से अग्नि में होम, लवण-युक्त मोजन ब्राह्मणों को; एक प्रस्थ लवण-चूर्ण, दो वस्त्र, सोना, पीतल-पात्र का दान; एक मास तक; यह मास-व्रत है; इससे रूप एवं स्वर्ण की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ७८५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।२०३।१-७ उद्धरण)।

लावण्यावाप्तिवतः हेमाद्रि (व्रत० २, ७८५) ने यह नाम दिया है; देखिए ऊपर।

लिंगवत : कार्तिक शुक्ल १४ से आरम्भ; शिव-पूजा; नक्त-विधि से भोजन; चावल के आटे से एक रित्न (केंहुनी से बँधी मुब्टि तक की दूरी) लम्बा लिंग बनाना; लिंग पर एक प्रस्थ तिल डालना; मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को

िलग पर कुंकुम का छिड़काव; इसी प्रकार वर्ष भर, विभिन्न मासों में विभिन्न चूर्ण, धूप, नेवैद्य आदि; महापातकी भी रुद्रलोक पहुँच जाता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०-५६, कालोत्तर से उद्धरण)। लिंग का निर्माण पवित्र मस्म, सूखे गोबर, बालू या स्फटिक से हो सकता है, सर्वोत्तम उस मिट्टी से जो उन पहाड़ियों से प्राप्त होती है, जहाँ से नर्मदा बहती है।

लियाचंनवत: कार्तिक शुक्ल १३ पर जब कि शनिवार हो; शिव के एक सी नामों का जप; पंचामृत से लिंग-स्नान; प्रदोष के समय लिंग-रूप में शिव-पूजा; स्कन्दपुराण (१।१७।५९-६१) ने वर्णन किया है और सी नाम दिये हैं।

लीलावत : यह नीलवत ही है, देंखिए।

लोकता: चैत्र शुक्ल से प्रारम्भ; उस दिन से सात दिनों तक कम से गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुश डाला हुआ जल एवं उपवास का प्रयोग किया जाता है; महा व्याहृतियों (भू:, भुव: स्व: आदि) के साथ तिल-होम किया जाता है; अन्त में वस्त्र, पीतल, गौओं का दान होता है; कर्ता समाट् हो जाता है; हेमाद्रि (ब्रत० २, ४६३, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६२।१-७ से उद्धरण)।

छोहाभिसारिककृत्य : अन्य रूपान्तर हैं 'लोहाभिहारिक' एवं लौहाभिसारिक; आदिवन शुक्ल १ से ८ तक; विजये च्छुक राजा को यह कृत्य करना चाहिए; निर्णयसिन्धु (१७८-१७९); स्मृतिकौस्तुम (३३२-३३६); राजनीतिप्रकाश (४४४-४४६); समयमयूख (२८-३२); पुरुषचिन्तामणि (५९, ७०-७२)। दुर्गो की स्वणिम या रजत या मिट्टी की प्रतिमा का पूजन, इसी प्रकार राजकीय आयुधों एवं प्रतीकों की मन्त्रों से पूजा; एक कथा है कि लोह नामक एक राक्षस था, जो देवों द्वाराटुकड़ों में रूपान्तरित कर दिया गया, संसार में जो भी लोह (लोहा) एवं इस्पात है, वह सब उसी के अंगों के अंश हैं। 'लोहाभिसार' का अर्थ है लोहे के आयुघों (हथियारों अथवा अस्त्रों) पर चिर्न लगाना या उन्हें चमकाना ('लोहाभिहारोस्त्रभृतं राज्ञां नीराजनो विधिः'—अमरकोश)। जब कोईराजा आक्रमण के लिए प्रस्थान करता था तो उस पर पवित्र जल छिड़कने या दीपों की आरती करने को लोहाभिसारिक-कर्म कहा जाता था। उद्योगपर्व (१६०-९३) में हम पाते हैं: 'लोहाभिसारी निर्वृत्तः...'। नीलकण्ठ ने व्याख्या दी है कि इसमें हथियारों के समक्ष दीपों की आरती उतारना एवं देवताओं का आहवान करना होता है।

लोहित्यस्नान : ब्रह्मपुत्र नदी में स्नान । देखिए 'ब्रह्मपुत्रस्नान', ऊपर ।

बंजुलीवत : वंजुली आठ महती द्वादिशयों में परिगणित है, देखिए गत अध्याय-५। वंजुली वह द्वादशी है जो सम्पूर्ण दिन (सूर्योदय से सूर्यास्त तक) रहती है और दूसरे दिन तक रहती है जिससे द्वादशी को उपवास करना सम्भव हो सके और दूसरी तिथि पर पारण हो सके, किन्तु द्वादशी पर ही; नारायण की स्वर्णिम प्रतिमा की पूजा; सहस्रों राजसूय यशों के समान पुण्य की प्राप्ति; निर्णयसिन्धु (४८); स्मृतिकौस्तुभ (२५२-२५३)।

बटसावित्रिवत : देखिए अघ्याय-४।

वत्सराचियपूजा: (वर्ष के अधिपति की पूजा) चैत्र का वह दिन (जब वर्षारम्भ होता है) वर्ष के अधिपति को निश्चित करता है; देखिये गत अध्याय-४; स्मृतिकौस्तुभ (८७); पुरुषचिन्तामणि (५६)।

बत्सद्वादशी: कार्तिक कृष्ण १२ को ऐसा कहा जाता है; बछड़े सहित गाय को चन्दन-लेप से अलंकत किया जाता है, उसे मालाओं से, खुरों के पास ताम पत्र में अर्घ्य से, माप से बनी वृत्ताकार रोटी से सम्मानित किया जाता है; उस दिन तेल से बने, बटुली में पकाये भोजन से तथा दूध, घी, दही एवं मक्खन से दूर रहा जाता है; समयमयूख (९१-९२)।

वरचतुर्थों : मार्गशीर्थ शुक्ल ४ से प्रारम्भ ; तिथिव्रत ; प्रतिमास गणेश-पूजन तथा उस दिन एक भक्त किन्तु क्षार एवं लवण का प्रयोग नहीं ; चार वर्षों तक, किन्तु दूसरे वर्ष में नक्त, तीसरे में अयाचित एवं जीथे में उपदास ; हेमाद्रि (वत० १, ५३०-३१), स्कन्दपुराण से उद्धरण) ; कृतरत्नाकर (५०४) ; कालविवेक (१९०) ; वर्ष-क्रियाकीमुदी (४९८)।

वरदचतुर्थों : माघ शुक्ल ४ पर; तिथिवत; ४ को वरद (अर्थात् विनायक) की पूजा तथा ५ को कुन्द पुष्पों से पूजा; समयप्रदीप (पाण्डुलिपि ४७ बी०); कृत्यरत्नाकर (५०४) एवं वर्षिक्रयाकीमुदी (४९८) का कथन है कि वरचतुर्थी केवल चतुर्थी तक सीमित है तथा पंचमी को कुन्द पुष्पों से पूजा श्रीपंचमी कहलाती है और 'वट' का अर्थ है 'विनायक'।

वरदाचतुर्थी: माघ शुक्ल ४ पर; तिथि; गौरी देवता; विशेषतः नारियों के लिए; गदाघरपद्धित (कालसार ७७); हेमाद्रि (वत० १, ५३१) में गौरी चतुर्थी का उल्लेख है, जो यही है। निर्णयसिन्धु (१३३) के अनुसार भाद्रपद शुक्ल ४ वरदचतुर्थी है, किन्तु पुरुषार्थचिन्तामणि (९५) के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल ४ को इस नाम से पुकारा जाता है।

वरनवमी: प्रत्येक नवमी पर ९ वर्षों तक केवल आटा पर जीविका निर्वाह किया जाता है; तिथिवत; देवी; सभी कामनाओं की पूर्ति; यदि कर्ता जीवन गर बिना अग्नि पर पकाये नवभी पर भोजन करे तो उसे इहलोक एवं परलोक में अनन्त फल प्राप्त होते हैं; इत्यकल्पतरु (व्रत० २९६); हेमाद्रि (व्रत० १, ९३७, भविष्यपुराण से उद्धरण) ने इसे 'वरव्रत' नाम दिया है।

वरलक्ष्मीव्रतः श्रावण पूर्णिमा पर जब शुक्र पूर्व में स्थित रहता; घर के उत्तर पूर्व एक मण्डप का निर्माण, वहाँ कलश स्थापन जिस पर वरलक्ष्मी का आवाहन किया जाता है और श्रीसूक्त के साथ पूजा की जाती है; साम्राज्यलक्ष्मी-पीठिका (पृ० १४७-१४९)।

बरवतः (१) देखिए ऊपर वरनवमी; (२) सात दिनों तक उपवास करके किसी बाह्मण को घृतपूर्ण घट देने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है; सम्वत्सरव्रत; ब्रह्मा, देवता; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४४९); मत्स्यपुराण (१०१।६८) ने इसे घृतव्रत कहा है; हेमाद्रि (व्रत० २,८८६, पद्मपुराण से उद्धरण)।

बराटिकासप्तमी: किसी संप्तमी तिथि पर; कर्ता को केवल तीन वराटिकाओं (कौड़ियों) से ऋय किये हुए भोजन पर निर्वाह करना होता है, चाहे वह भोजन उसके लिए अनुचित ही क्यों न हो; सूर्य देवता; फल नहीं घोषित है; कृत्यकल्पतक (व्रत० १८४); हेमाद्रि (व्रत० १,७२६,भविष्यपुराण से उद्धरण)।

वराहद्वादशी: माघ शुक्ल १२ पर; तिथिवत; विष्णु के वराह रूप की पूजा; एकादशी पर संकल्प एवं पूजा; एक घट में, जिसमें सोने के टुकड़े या चाँदी या ताम्र के टुकड़े डाले रहते हैं तथा सभी प्रकार के बीज छोड़ दिये गये रहते हैं, वराह की एक स्विणम प्रतिमा रखदी जाती है और पूजा की जाती है; पुष्पों के मण्डप में जागर; दूसरे दिन प्रतिमा किसी विद्वान् एवं चरित्रवान् ब्राह्मण को देदी जाती है; सौभाग्य, घन, रूप-सौन्दर्य, आदर तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है; कृत्यकल्पत्र (व्रत० ३१९-३२१); हमाद्वि (व्रत० १, १०२७-१०२९), दोनों ने वराहपुराण (४१।१-१०) को उद्धृत किया है; गदाघरपद्धति (कालसार, १५१-१५२)।

बरुणवत: यदि कोई रात्रि भर पानी में खड़ा होकर दूसरे दिन प्रातः गोदान करता है तो वह वरुण लोक जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत् ४५०, ५२ वाँ षष्ठि व्रत); हेमाद्रि (व्रत् २, ९०५, पद्मपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।७४; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९५।१=३) में कुछ विभिन्न बातें हैं; भाद्रपद के आरम्भ से पूर्णिमा तक वरुण-पूजा; अन्त में छत्र, चप्पलों एवं दो वस्त्रों के साथ जलबेनु का दान। 'जलबेनु' शब्द अनु-

शासनपर्व (७१।४१) एवं मत्स्यपुराण (५३।१३) में भी प्रयुक्त हुआ है; देखिये इस ग्रन्थ का खण्ड २,पृ० ८८०।

वर्णवतः यह चतुर्मूतिवत है जो चैत्र शुक्ल से चार मासों तक चलता है; चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ एवं आपाड़ में कर्ता उपकास करता है और क्रम से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध को पूजता है तथा दान देता है, दान की वस्तुओं में कई प्रकार पाये जाते हैं, यथा—ब्राह्मण को यज्ञ की उपयोगी वस्तुएँ, क्षत्रिय को युद्धोपयोगी वैश्य को वाणिज्योपयोगी तथा शूद्र को श्रमोपयोगी वस्तुएँ दी जाती हैं; कर्ता को इन्द्रलोक प्राप्त होता है; हेमाद्र (ब्रत० २, ८२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

वर्षापनिविध : (जन्मतिथि कृत्य एवं उत्सव)। शिशु के विषय में प्रत्येक मास में जन्मतिथि गर; राजा के लिए प्रतिवर्ष किया जाता है; नील या कुंकुम से १६ देवियों (यथा—कुमुदा, माघवी, गौरी, रुद्राणी, पावंती) के चित्र बनाये जाते हैं तथा एक वृत्त के वीच में सूर्य-चित्र बनाया जाता है, वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, रुँचे संगीत से उत्सव मनाया जाता है, बच्चे को स्नान करा कर देवियों की पूजा की जाती है; सींक से बने पात्रों (छितनियों) में मूल्यवान् पदार्थ, भोजन-सामग्री, पुष्प, फल आदि रख कर प्रत्येक देवी के सम्मान में ब्राह्मणों एवं सचवा नारियों को 'कुमुदा आदि देवियाँ मेरे बच्चे को स्वास्थ्य, सुख एवं दीर्घायु दें' के साथ, दान के रूप में दे दिया जाता है। माता-पिता अपने सम्बन्धियों के साथ भोजन करते हैं; राजा के विषय में इन्द्र एवं लोकपालों को हिन्य दिया जाता है तथा वैदिक मन्त्र (यथा—ऋ० ६१४७।११, १०।१६१।४) पढ़े जाते हैं; हेमादि (ब्रत० २,८८९-८९२, अथवंण-गोपथब्राह्मण एवं स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

वर्षत्रतः चैत्र शुक्ल नवमी से आरम्भ; तिथित्रत; हिमालय, हेमकूट, शृंगवान्, मेरु, मलयवान्, गन्धमादन नामक वड़े पर्वतों की पूजा; उस दिन उपवास; अन्त में जम्बूद्वीप की रजत-आकृति का दान; हेमादि (व्रत॰ १, ९५९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। ब्रह्मपुराण (१८।१६), मत्स्यपुराण (११३।१०-१२) एवं वायुपुराण (१।८) में हिमालय, हेमकूट आदि को वर्षपर्वत की संज्ञा दी गयी है।

बल्लभोत्सव: महान् वैष्णव आचार्य वल्लभ के सम्मान में किया जाने वाला उत्सव; वल्लभ का जन्म सन् १४९७ ई० में माना जाता है; इन्होंने बहुत-से ग्रन्थ लिखे हैं और धर्म के प्रवृत्तिमार्गी पक्ष का समर्थन किया है और भागवत धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। यह उत्सव चैत्र कृष्ण एकादशी को होता है।

वसन्तपज्यमो : माघ शुक्ल पंचमी पर; तिथिवत; विष्णु-पूजा; ब्रतरत्नाकर (२२०)।

बसन्तोत्सव : वायुपुराण (६।१०-२१) में वसन्त के आगमन पर एक किंदिवमय विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है; मालविकाग्निमित्र एवं रत्नावली नामक नाटक इसी अवसर पर खेले गये थे, जैसा कि दोनों की प्रस्तावन। में उद्घोषित हुआ है; प्रथम नाटक के तृतीय अंक में ऐसा चित्रित है कि इस उत्सव में लाल अशोक-पुष्प अपने प्रिय पात्रों के पास भेजे जाते हैं तथा उच्च कुल की पत्नियाँ अपने पतियों के साथ झूले पर बैठती हैं। निर्णयसिन्धु (२२९) ने इसकी तिथि चैत्र कृष्ण १ (पूर्णिमान्त गणना के अनुसार) मानी है, किन्तु पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१००) ने निर्णयामृत के अनुसार इसे माघ शुक्लपंचमी की तिथि पर रखा है। पारिजात-मंजरी-नाटिका का प्रथम अंक चैत्र पर्व में वसन्तोत्सव कहा गया है; एपिग्रीफिया इण्डिका (जिल्द ८ प० ९९)।

वसुन्धरादेवीव्रतः अश्वघोष-नित्दमुख-अवदान में उल्लिखित; देखिये जे० आर० ए० एस्० (जिल्द ८, पृ० १३-१४)।

' वसुन्नतं : (१) आठवसुओं की, जो वास्तव में, वासुदेव के ही रूप हैं, पूजा; चैत्र शुक्ल अष्टमी पर उपवास; एक वृत्त में खिचे चित्र या प्रतिमाएँ; अन्त में गोदान; घन, अनाज एवं वसुलोक की प्राप्ति। आठ दसु ये हैं—घर. ध्रुव, सोम, आपः, अनिल, अनल, प्रत्यूष एवं प्रभास । देखिये अनुशासनपर्व (१५०।१६-१७), मत्स्यपुराण (५।२१), वृह्माण्डपुराण (३।३।२१) । हेमाद्रि (व्रत० १, ८४८-८४९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) पर्याप्त सोने के साथ गोदान, उस दिन केवल दुग्ध-सेवन; कर्ता सर्वोत्तम लक्ष्य की उपलब्धि करता है और पुनः जन्म नहीं लेता; हेमाद्रि (वृत० २, ८८५, पद्मपुराण से उद्धरण)। इसमें गोदान की परमोच्च महत्ता है (इसे उभयतोमुखी कहा गया है। देखिये इस महाग्रन्थ का मूल (जिल्द २, पृ० ८७९)।

वस्तित्ररात्र : देखिये 'बस्तित्ररात्र' के अन्तर्गत।

विद्वितः (१) अग्नि-पूजा से अग्निष्टोम का फल; हेमाद्रि (व्रत० १,७९१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) चैत्र की अमावास्या पर आरम्भ; तिथिव्रत; प्रति वर्ष अमावास्या पर अग्नि-पूजा एवं तिल से होम; अन्त में हिरण्य-दान; हेमाद्रि (व्रत० २, २५५-२५६); विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९०।१-३)।

वाणिज्यलाभवत : मूल-नक्षत्र एवं पूर्वाषाढ़ा पर उपवास; चार नवीन घड़ों के जल से, जिन में शंख, मोती, लाल पौधों की जड़ें एवं सोना रखे गये हों; पूर्वाभिमुख हो स्नान किया जाता है, पुन: आँगन में विष्णु, वर्षण एवं चन्द्र की पूजा की जाती है, इन देवों के सम्मान में घी का होम; नीले वस्त्रों, चन्दन, मदिरा, श्वत पुष्पों का दान होता है; इससे विणक सफलता प्राप्त करता है और समुद्र-च्यापार एवं कृषि में असफल नहीं होता; हेमाद्रि (व्रत० २, ६४८-६४९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

वामनजयन्ती: भावपद शुक्ल १२ पर; इस तिथि पर मध्या ह्न में विष्णु का वामन अवतार हुआ था, उस समय श्रवण-नक्षत्र था; उस दिन उपवास; सर्वपापमोचन; गदाधरपद्धित (कालसार, पृ० १४७-१४८); वताकं (पाण्डुलिपि, २४४ ए से २४७ ए तक, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)। देखिये भागवतपुराण (८, अध्याय-१७-२३)। अध्याय १८ (क्लोंक ५-६) में ऐसा आया है कि वामन श्रावण मास की द्वादशी पर प्रकट हुए थे, जब कि श्रवण-नक्षत्र था, मुहूतं अभिजित था तथा यह तिथि विजयाद्वादशी कही जाती है; हेमाद्रि (वत० १, पृ० ११३८-११४५, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण) का अधिकांश व्रताकं में उद्धृत है।

यामनद्दादशी: चैत्र शुक्ल १२ पर; तिथिव्रत; विष्णु देवता; उस दिन उपवास; पाद से शिर तक पूजा; प्रत्येक अंग पर विभिन्न नाम (यथा— 'वामनायेति वै पादम्'); श्वेत यज्ञोपवीत, छत्र, चप्पल एवं माला से युक्त वामन की स्विणम प्रतिमा; दूसरे दिन प्रातः 'विष्णु वामन के रूप में प्रसन्न हों' के साथ प्रतिमा-दान, जिसके साथ मार्गशीषं मास से आरम्भ कर कम से १२ नामों का (यथा—केशव, नारायण आदि) उच्चारण; फल-पुत्रहीन को पुत्र, घन चाहने वाले को थन; वराहपुराण (४३।१-१६); कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३२३-३२५); हेमादि (व्रत० १, १०३०-१०३२); वर्षकियाकौमृदी (३२०-३२१); निर्णयसिन्धु (१४०-१४१); स्नृतिकौस्तुभ (२४९-२५०)। कुछ प्रन्थों के अनुसार वामन एकादशी को प्रकट हुए थे। इन मतों के लिए देखिये निर्णयसिन्धु (१४०)।

वायुवत: (१) वायु-पूजा; परमोच्च पद-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९१); (२) ज्येष्ठ शुक्ल १४ पर वारम्भ; तिथिवत; वायु देवता; एक वर्ष; प्रत्येक शुक्ल १४ पर उपवास; अन्त में दो वस्त्रों का दान; हेमाद्रि (व्रत० २, १५२, विष्णूघर्मोत्तरपुराण ३।१८५।१-३ से उद्धरण)।

वारक्रतः अग्निपुराण (अध्याय १९५); कृत्यकल्पतरु (व्रत ८-३४); दान सागर (पृ ५६८-५७०); हेमाद्रि (व्रत २,५२०-५९२); हेमाद्रि (काल० ५१७-५२०); कृत्यरत्नाकर (५९३-६१०); स्मृतिकीस्तुभ (५४९-५८८)। कुछ प्रन्य, यथा - व्रतार्क, रिववार, सोमवार एवं मंगलवार के व्रतों का हो उल्लेख करते हैं।

वारलक्सीवत: श्रावण-पूर्णिमा के निकटतम किसी शुक्रवार या श्रावण शुक्ल १४ पर; वारवत; लक्ष्मी देवी; वतार्क (पाण्डुलिपि, ३५८ वी॰-३६२ वी; भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

वारिवत: एक मासवत; लगत। है देवता ब्रह्मा हैं; चैत्र, ज्येष्ठ, आषाढ़ एवं माध या पौष के चार मासों में, अयाचित-विधि; अन्त में वस्त्रों, तथा भोजन से आच्छादित घट तथा तिल एवं हिरण्य से युवत पात्र का दान; ब्रह्मलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ८५७, पद्मपुराण से उद्धरण)।

वारणी: चैत्र कृष्ण १३ को, जब वह शतामिषज नक्षत्र (जिसके देवता वरुण हैं) में पड़े तो उसे वारुणी कहते हैं, जो एक करोड़ सूर्य-प्रहण के समान है; यदि यह इसके साथ शिनवार को पड़े तो वह महा-वारुणी कही जाती है; इन सब बातों के साथ यदि शुभ-योग पड़े तो इसे महा-महा-वारुणी कहा जाता है; वर्षत्रियाकीमुदी (५१८-५१९); कृत्यतत्त्व (४६३); स्मृतिकीस्तुभ (१०७); गदाघरपद्धित (६११, स्कन्दपुराण से उद्धरण); कालतत्त्वविवेचन (१८९-१९०)।

वासुदेवद्वादशी: आषाढ़ शुक्ल १२ पर; तिथि; देवता, वासुदेव; वासुदेव के विभिन्न नामों एवं उनके व्यूहों के साथ पाद से शिर तक के सभी अंगों की पूजा; जलपात्र में रख कर तथा दो वस्त्रों से ढँक कर वासुदेव की स्वर्णिम प्रतिमा का पूजन तथा उसका दान; यह ब्रत नारद द्वारा वसुदेव एवं देवकी को वताया गया था; कर्ता के पाप कट जाते हैं, उसे पुत्र की प्राप्ति होती है या नब्ट हुआ राज्य पुनः मिल जाता है; हेमाद्रि (ब्रत० १, १०३६-१०३७, वहुत-से क्लोक वराहपुराण के अध्याय ४६ के हैं)।

विघ्न-विनायक-द्रत: फाल्गुन से चार मासों के लिए; अहल्याकामधेनुं (पाण्डुलिपि, ३५६)।

विजय: (१) आश्विन शुक्ल १० पर जब सूर्यास्त के उपरान्त तारागण उदित हो रहे हों, यह समय सभी कृत्यों के लिए अत्यन्त शुभ माना जाता है; स्मृतिकीस्तुभ (३५३); (२) यह नाम दिन के ११ वें मुहूर्त का भी है जब कि दिन १५ मुहूर्तों में विभाजित किया जाय; स्मृतिकौस्तुभ (३५३)।

विजय-धूप : हेमाद्रि (व्रत २, ५१, भविष्यपुराण १।६८।३-४) में विणत।

विजयद्वादशी: (१) एकादशी पर संकल्प; श्रवण-नक्षत्र वाली द्वादशी पर उपवास; विष्णु की स्वर्णिम प्रतिमा का निर्माण, जो पीत वस्त्र से आच्छादित रहती है; अध्यं के साथ पूजा; रात्रि में जागरण; दूसरे दिन सूर्योदय के समय प्रतिमा का दान; श्रवण-युक्त द्वादशी, जब कि सूर्य सिंह राशि में हो तथा चन्द्र श्रवण में हो साद्रपद को छोड़ अन्य समय सम्भव नहीं होती; हेमाद्रि (व्रत० १, ११३६-११३८, अग्निपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (२८७-२८८); (२) जैसा कि हेमाद्रि (व्रत० १, ११३८-११४०) में विणत; (३) फाल्पुन शृक्ल ११ या १२, जब कि वह पुष्य-नक्षत्र से युक्त हो, विजय की संज्ञा से विख्यात है; (४) भौद्रपद शुक्ल या कृष्ण ११ या १२, यदि व्धवार एवं श्रवण-नक्षत्र से युक्त हो तो विजय कहलाती है; शुक्ल के व्रत से स्वर्ग-प्राप्ति, कृष्ण के व्रत से पापमोचन; विष्णु देवता; हेमाद्रि (व्रत० १, ११५२-११५५, ब्रह्मवैवर्त से उद्धरण); कृत्यकल्पतरु (व्रत, ३४८-३५०, आदित्यपुराण से उद्धरण)।

विजयविधि : वारत्रत; रिववार को प्राजापत्य (रोहिणी) नक्षत्र से युक्त शुक्ल ७ पर; सूर्य देवता; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १७-१८)।

विजयद्रतः इन्द्र के गज ऐरावत तथा की, मुख में लगे पट्टे के साथ तथा इन्द्र के अश्व उच्चैश्रवा की प्रतिमा; इसमे विजय की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ५७६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विजया: यह नाम कई तिथियों को प्राप्त है, यथा—शुक्ल ७ जो रिववार को पड़ती है भविष्योत्तरपुराण ४३।२; वर्षिक्रयाकौमुदी ९; हेमाद्रि, काल, ६२५; पुरुषार्थेचिन्तामणि १०५; और देखिये विजयविधि के अन्तर्गत; गरुड़पुराण (१।१३६।१-२) के अनुसार यदि द्वादशी या एकादशी श्रवण-नक्षत्र से युक्त हो तो उसे विजया कर्ते हैं; कृत्यकत्वतरु (व्रत०, ३४९); कृत्यरत्नाकर (२८७-२९१)। देखिये एपिग्रैफिया इण्डिका (३, ५३-

५६) एवं इण्डियन ऐण्टीक्वेरी (२५, पृ० ३४५); वर्षिकयाकीमुदी (३६) में आया है कि जब विजया-सप्तमी में सूर्य इस्त नक्षत्र में हो तो उसे महा-महा कहते हैं; पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त शुक्ल ११ विजया के नाम से घोषित है; हेम्मद्रि (काल०, ६३३, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्घरण)।

विजयासप्तमी: (१) रिववार से युक्त शुक्ल ७ पर; तिशिव्रत; सूर्य, देवता; कृत्यकल्पतरु (व्रत० १२७-१२९) हेमाद्रि (व्रत० १, ६६३-६६४); दोनों भिवष्योत्तरपुराण (४३।१-३०) को उद्धृत करते हैं; (२) माघ शुक्ल ७ पर; तिथि; सूर्य, देवता; उस दिन उपवास एवं सूर्य के एक सहस्र नामों का उच्चारण; हेमाद्रि (व्रत० १, पृ० ७०७-७१६) ने ये नाम दिये हैं; एक वर्ष तक; रोगों एवं पापों से मुक्ति: हेमाद्रि (व्रत० १, ७०५- ७१७); (३) गरुड़पुराण (१।१३०-७-८) ने एक अन्य प्रकार का व्रत दिया है जो सात सप्तिमयों में किया जाता है; उस दिन उपवास गेहूँ, माप, यव (जौ), स्वस्तिक, पीतल, पत्थरों से पिसा भोजन, भवु, मैंयुन, मांस, मंदिरा, तेल्युक्त स्नान, अंजन एवं तिल के प्रयोग का त्याग।

विजयायज्ञसप्तमी : माघ शुक्ल ७ पर; तिथि; सूर्य, देवता, एक वर्ष तक; प्रतिमास में सूर्य का विभिन्न नाम प्रयुक्त; १२ ब्राह्मणों का सम्मान; अन्त में आचार्य को एक स्वर्णिम सूर्य प्रतिमा का, स्वर्णिम रथ एवं सारथी के साथ दान; हेमाद्रि (ब्रट.० १, ७५७-७६०, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

वितस्तापूजा: भाद्रपद के अन्त में शुक्ल १० से आगे ७ दिनों तक वितस्ता (झेलम) का दर्शन, उसमें स्नान, उसका जल ग्रहण, पूजा एवं ध्यान किया जाता है; वितस्ता सती (पार्वती) का अवतार है; वितस्ता एवं सिन्धु के संगम पर विशिष्ट पूजा; नदी के सम्मान में उत्सव, जिसमें अभिनेताओं एवं नर्तकों को सम्मानित किया जाता है; कृत्यरत्नाकर (२८६, ब्राह्मपुराण से उद्धरण)।

विद्याप्रतिपव्-वतः किली मास की प्रथम तिथि पर; विद्या एवं घन के इच्छुक व्यक्ति को एक वर्गाकार आकृति में चावल से निर्मित विष्णु एवं लक्ष्मी की प्रतिमाओं की पूजा पूर्ण रूप से खिले कमलों (१००० या कुछ कम) दूष एवं पायस से करनी चाहिये; उनके पार्वं में सरस्वती की भी पूजा होनी चाहिये, चन्द्र की पूजा भी की जाती है; गुरु-सम्मान; उस दिन उपवास; दूसरे दिन विष्णु-पूजा, आचार्यं को स्वर्ण दान करके भोजन; हेम।दि (व्रत० १, ३३८-३४०, गरुड़पुराण से उद्धरण)।

विद्यावान्तिवात: पौष पूर्णिमा के उपरान्त माघ की प्रथम तिथि से एक मास तक; तिल से हयग्रीव की पूजा; तिल से होम; प्रथम तोन दिनों तक उपवास; यह मासव्रत है; कर्ता विद्वान् हो जाता है; हेमाद्रि (व्रत ० २,७९६-७९७), विष्णुद्यमीतरपुराण (३; २०७।१-५ से उद्धरण)।

विद्यावत : किसी मास की द्वितीयः पर श्वेत चावल से वर्गाकार आकृति खींच कर, उसके मध्य में अप्य दल कमल बना कर, उसके बोजकोष पर कमलयुक्त लक्ष्मी की आकृति खींची जानी चाहिये, आठ शिवतरों (यथा—सरस्वती, रित, मैत्री, विद्या आदि) को आकृति बना कर कमल-दलों पर रखनी चाहिये, 'ओं सरस्वत्यें नमः' आदि के साथ शिवतयों को कमशः प्रणाम; चारों दिग्पालों एवं दिशा-कोणों के रक्षकों को आकृतियाँ बनायी जाती हैं; मण्डल में गुरु-रूप में चारों (व्यास, कतु, मनु, दक्ष), विसष्ट आदि को स्थापित किया जाता है; विभिन्न पुष्पों से इनकी पूजा जाती है; श्रीसूक्त (हिरण्यवर्णा हिरणाम्' से आरम्भ होने वाले खिलम्पतों में एक), पुरुषसूक्त (ऋ० १०.९०) एवं विष्णु के स्तोत्र पढ़े जाते हैं; पुरोहितों को एक गाय, वैल एवं जलपूण पात्र दियं जाते हैं; भुने हुए चावलों से युक्त पाँच पात्र (लाई से भरे पाँच कूंडे) तिल, हल्दी-चूर्ण (स्त्रो सम्पादिका हारा), सोना किसी गृहस्य को दिया जाता है तथा मुखे लोगों को भोजन दिया जाता है; शिष्य गुरु से विद्यादान

करने के लिए प्रार्थना करता है और गुरु प्रतिमाओं के समक्ष वैसा करता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ३८६-३८९, गरुड़पुराण से उद्धरण)।

विषात-हादश-सप्तकी : चैत्र से आरम्भ कर १२ मासों की सप्तमी पर; विस्तृत विवेचन; कई नाम प्रसिद्ध हैं, यथा—मरिचसप्तमी, फलसप्तमी, अनोदना-सप्तमी; सभी में सूर्य देवता हैं; मन्त्र है 'ओं नम: सूर्याय'; हेमाद्रि (त्रत० १, ७९२-८०४, आदित्यपुराण से उद्धरण)।

विधान-सप्तभी: तिथि-व्रत; सूर्य देवता; माघ शुक्ल ७ पर आरम्भ; माघ से प्रारम्भ कर १२ मासों की सप्तिमयों पर १२ वस्तुओं में केवल एक कम से ग्रहण किया जाता है, यथा—अर्क फूल का ऊपरी भाग; ताजा गोबर; मरिच, जल, फल, मूल (मूली), नक्त-विधि, उपवास, एक भक्त, दूध, केवल वायु-ग्रहण; घी; कालविवेक (४१९); वर्षिकयाकौमुदी (३७-३८); तिथितत्त्व (३६-३७); कृत्यतत्त्व (४२९-४६०); वर्षिकयाकौमुदी (३८) ने इसे रिवव्रत (जिसका सम्पादन माघ के प्रथम रिववार से आरम्भ कर रिववार को किया जाता है) से विभिन्न माना है।

विनायकचतुर्थी: (१) देखिये उपर गणंश-चतुर्थी (गत अध्याय-८)। (२) चतुर्थी को कर्ता तिल का भोजन दान करता है और स्वयं रात्रि में तिल एवं जल ग्रहण करता है; दो वर्षों तक; कृत्यकल्पतर (ग्रत० ७९, भविष्यपुराण १।२२।१-२ का उद्धरण); हेमाद्रि (व्रत० १, ५१९-५२०) ने इसे गणपति-चतुर्थी कहां है।

विनायकस्रत: फाल्गुन शुक्ल ४ पर आरम्भ; तिथि; गणेश, देवता; चार मासों तक; प्रत्येक शुक्ल ४ पर कर्ता नक्त करता है, तिल से होम करता है, तिल का दान करता है; अन्त में पाँचवें मास में गणेश की स्विणम प्रतिमा को पायस से पूर्ण चार ताम्र पात्रों एवं तिलपूर्ण एक पात्र के साथ दान करता है; सभी बाधाओं से मुक्ति; मविष्योत्तरपुराण (३३।१-१३)।

विनायकस्नपन-चतुर्थी : मिवष्योत्तरपुराण (३२।१-३०, याजवल्न्यस्मृति १।२७१-२९४ के कितपय क्लोक उद्धृत हैं) में; यह शान्ति है, न कि वत; इसका वर्णन शान्ति के विभाग में किया गया है।

विभूति-द्वावशी: कार्तिक, वैसाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन या आषाढ़ शुक्ल १० पर; नियमों के पालन का संकल्प; एकादशी पर उपवास, जनार्दन-प्रतिमा का पूजन; पाद से शिर तक विभिन्न अंगों की 'विभूतये नमः पादौ विकोशायिति जानुनी' आदि वचनों के साथ पूजा; विष्णु-प्रतिमा के समक्ष जलपूणं घट में स्विण्य मछली; रात्रि भर जागरण; दूसरे दिन प्रातः 'जिस प्रकार विष्णु अपनी महान् अभिव्यक्तियों से विमुक्त नहीं रहते, आप मुझे संसार की चिन्ताओं के पंक से मुक्त करें 'नामक प्रार्थना के साथ स्विण्य प्रतिमा एवं घट का दान; कर्ता को प्रति मास कम से दशावतारों, दत्तात्रय एवं व्यास की प्रतिमाओं का दान करना चाहिये और यह दान करवादशी पर एक नील कमल के साथ किया जाता है; बारह द्वादशियों की परिसमाप्ति के उपरान्त गुरु या आचार्य को एक लवणाचल. पलंग तथा उसके साथ के अन्य उपकरण, एक गाय, प्राम (राजा या सामन्त द्वारा) या भूमि (ग्रामपित द्वारा) का दान तथा अन्य बाह्मणों को गायों एवं वस्त्रों का दान; यह विधि तीन वर्षों तक; पापों से मुक्ति, एक सौ पितरों की मुक्ति आदि; कृत्यकल्पतर (व्रत०, ३६४-३६७); हेमाद्र (व्रत० १, १०५७-१०६०) दोनों में मत्त्वपुराण (१००१-३७) के उद्धरण; पर्यपुराण (५१२०१४-४२) के भी कुछ रलोक उद्धृत हैं। लवणाचल-दान के लिए देखिये मत्त्यपुराण (८४।१-९)।

विरूपाक्षत्रतः पौष शुक्ल १४ पर; एक वर्ष तक शिव-पूजा; अन्त में सभी सामग्रियों एवं एक ऊँद का किशी ब्राह्मण को दान; राक्षसों एवं रोगों से मुक्ति एवं कामनाओं की पूर्ति; हेमाद्रि (अत॰ २, १५३, विष्णुपर्मोत्तरपुराज ३।१८६।१-३ से उद्धरण)।

विशोक द्वावशी: आश्विन शुक्ल १० को संकल्प: 'मैं एकादशी को उपवास तथा केशव-पूजा करूँगा और दूसरे दिन (द्वादशी को) भोजन करूँगा'; पाद से शिर तक केशव-पूजा; एक मण्डल का निर्माण, जिस पर चार कोणों वाली एक वेदी; वेदी पर एक सूप में विशोका (लक्ष्मी) की प्रतिमा-स्थापन और प्रार्थना 'विशोका चिन्ता दूर करे, घन एवं सफलता दें। सभी रातों में कुश से शुद्ध किये हुए जल का प्रयोग, नृत्य एवं संगीत; ब्राह्मणों की जोड़ियों का सम्मान; प्रत्येक मास में यही विधि; अन्त में पलंग, गुड़, घेनु एवं रूप्य के साथ लक्ष्मी-प्रतिमा का दान; मत्स्यपुराण (८१) ने वर्णन किया है और (८२) गुड़ घेनु को इस व्रत का एक अंग माना है। देखिये यह ग्रन्थ (खण्ड २, पृ० ८८०-८८१) जहाँ गुड़ घेनु का वर्णन है। यहाँ संक्षेप में घेनुओं के दान पर प्रकाश डाला जा रहा है। मत्स्यपुराण (अघ्याय ८२।१७-२२) ने दस घेनुओं के नाम दिये हैं, यथा— गुड़, घृत, तिल, जल, क्षीर, मघु, शर्करा, दिघ, रस (अन्य जलीय पदार्थ) एवं गोघेनु (स्वयं गाय का दान)। जलीय घेनु पात्र में तथा अन्य राशि (एकत्र) में। कहीं कहीं सुवर्णघेनु, नवनीत-घेनु, रत्नघेनु के नाम भी आये हैं। वराहपुराण (अघ्याय ९९-११०) में बारह घेनुओं का उल्लेख है, जिनमें मत्स्यपुराण की घृत एवं गोघेनु छूटी हुई हैं और नवनीत, लवण, कार्पास (कपास) एवं घान्य जोड़ दी गयी हैं।

विशोकषाठी: माघ शुक्ल ५ पर काले तिल से स्नान तथा तिल एवं चावल से बना भोजन; षष्ठी पर स्विणिम कमल का निर्माण एवं सूर्य के रूप में करवीर पुष्पों तथा दो लाल वस्त्रों से पूजा तथा शोक-मुक्ति के लिए प्रार्थना; गोमूत्र पीना और शयन; सप्तमी को गुरु एवं ब्राह्मणों को दान, बिना तेल एवं नमक का भोजन-प्रहण, मौन-प्रहण तथा पुराण-प्रन्थों का श्रवण; यह एक वर्ष तक दोनों पक्षों में किया जाता है; अन्त में माघ शुक्ल सप्तमो को स्विणिम कमल के साथ एक घट, उपकरणों से युक्त पलंग एवं एक किपला गाय का दान; हेमाद्रि (व्रत० १, ६००-६०२, भविष्योत्तरपुराण ३८।१-७ से उद्धरण) कृत्यकल्पतर (व्रत०, २११-२१२)।

विशोक-संक्रान्ति: जब अयन दिन या विषुव दिन पर व्यतिपातयोग हो तो कर्ता को तिलों से युक्त जल से स्नान करना चाहिये और एकभक्त रहना चाहिये; उसे पंचगव्य से सूर्य की स्विणमप्रतिमा को नहलाना चाहिये, गन्ध, पुष्प आदि अपित करना चाहिये, दो लाल वस्त्रों से आवृत करना चाहिये तथा उसे ताम्र पात्र में स्थापित करना चाहिये; पाद से शिर तक विभिन्न नामों से सूर्य-प्रतिमा की पूजा करनी चाहिये; अध्यपंण, एक वर्ष; अन्त में सूर्य-पूजा, सूर्य को सम्बोधित मन्त्रों से होम; १२ किपला गायों या दिद्र होने पर एक गाय का दान; दीर्घायु, स्वास्थ्य एवं समृद्धि की प्राप्ति; यह संक्रान्ति-न्नत है; हेमाद्रि (न्नत० २ ७४२-७४३, स्कन्दपुराण से उद्धरण)।

विशोकसप्तमी : हेमाद्रि (व्रत॰ १, ७४६-७४७, भविष्यपुराण से उद्धरण, १३ वलोक मत्स्यपुराण ७५।१-१२ पद्मपुराण ५।२१।२३५-२४८ के हैं)।

विश्वरूपत्रत : शुक्ल ८ या १४ पर जब यह रिववार एवं रेवती-नक्षत्र में पड़ती है; शिव, देवता; लिंग का महास्नान; कर्पूर, श्वेत कमल एवं अन्य आभूषण लिंग पर रखे जाते हैं, घूप के रूप में कर्पूर जलाया जाता है, घी एवं पायस का नैवेद्य; आचार्य को घोड़ा या गज का दान; कर्ती को पुत्र, राज्य, आनन्द, आदि की प्राप्ति, इसी से इस द्रत को विश्वरूप (अर्थात् सभी रूप वाला) कहा गया है; रात्रि में कुश-युक्त जल-ग्रहण एवं जागरण; हेमाद्रि (द्रत० १, ८६५-८६६, कालोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विश्वतः (१) प्रत्येक मास की दशमी पर एक भक्त; तिथिवत; एक वर्ष तक; अन्त में दस गायों तथा दस दिशाओं की स्विणम या रजत प्रतिमाओं, एक दोना तिल के साथ, दान; कर्ता सम्राट् हो जाता है

और सभी पाप कट जाते हैं; कृत्यकल्पतर (४५१); हेमाद्रि (व्रत० १, ९८३, पद्मपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।८३); (२) एकादशी को विश्वेदेवों की पूजा; कमल-दलों पर उनकी प्रतिमाएँ रखी जाती हैं; तिथिवत; देवता, विश्वेदेव; घृत की घार, सिमघाओं, दही, दूघ एवं मघु का अर्पण; हेमाद्रि (व्रत० १, ११४८, मविष्यपुराण से उद्धरण)। यह व्रत वैश्वानर-प्रतिपद की भौति है।

विश्वेदेव-स्थामी-पूजा: कार्तिक शुक्ल १० से प्रारम्भ; तिथि; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७६।१) में दस विश्वेदेवों के नाम दिये गये हैं, जो केशव की अभिव्यक्तियाँ हैं; मण्डलों या प्रतिमा-रूपों में उनकी पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में स्वर्ण-दान; विश्वेदेवलोक की प्राप्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७६।१-५)।

विष्टिन्नत या चिष्टि-भन्ना : करणों का वर्णन 'काल' के अन्तर्गत किया गया है। दो प्रकार के हैं : चर (चलायमान) एवं स्थिर। चर करण सात हैं, जिनमें विष्टि भी परिगणित है। देखिये बृहत्संहिता (९९।१)। विष्टि एक तिथि का अर्घांश है। ज्योतिष के ग्रन्थों ने इसे कुरूप राक्षसी के रूप में माना है। विष्टि में ३० घटिकाएँ होती हैं, जो असमान रूप में उसके मुख, गला, हृदय, नाभि, किट एवं पूछ में वितरित की गयी हैं (क्रम से ५, १, ११, ४, ६ एवं ३ घटिकाएँ); हेमाद्रि (व्रत० २, ७१९-७२४, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); कार्लानर्णय (३३०), स्मृतिकौस्तुभ (५६५-५६६) ने इसे सूर्य की पुत्री, शिन की बहन माना है, उसका मुख गये का है, उसके तीन पाँव हैं, आदि। विष्टि सामान्यतः नाशकारिणी है और उसे शुभ कृत्यों के लिए त्याज्य ठहराया गया है: किन्तु इसका काल शत्रुओं के नाश एवं विष्ट देने के लिए उपयुक्त माना गया है (बृहत्संहिता ९९।४); विष्ट दिन पर उपवास; किन्तु यदि विष्ट रात्रि में हो तो दो दिनों तक एक भक्त रहना चाहिये; देवों एवं पितरों की पूजा के उपरान्त दर्भ घास से निर्मित विष्टि-प्रतिमा का पृष्पों आदि से पूजा; कृशर (चावल, मटर एवं मसाले से बनी खिचड़ी) का नैवेद्य; काले वस्त्र, काली गाय एवं काले कम्बल का दान; विष्टि एवं भद्रा का अर्थ एक ही है। हेमाद्रि (व्रत० २, ७१९-७२४); कालनिर्णय (३३०); स्मृतिकौस्तुभ (५६५-५६८)।

बिष्णु: विष्णुवर्मोत्तरपुराण (३।१२३) ने व्यवस्था दी है किन अवसरों पर कौन-से विष्णु नाम लिये जाने चाहिये, यथा—नदी पार करते समय (जब कि मत्स्य, कूर्म एवं वराह के नाम लिये जाते हैं) या जब ग्रह या नक्षत्र दुष्ट पड़ जायें या जब डाकुओं एवं व्याघ्रों आदि का डर हो (नृसिंह का स्मरण); इस पुराण (२।१२४) में चैत्र से आगे के मासों, या सप्ताहों, नक्षत्रों एवं तिथियों में कहे जाने वाले नध्मों की तालिका दी है; अध्याय—-१२५ में तीथों एवं कुछ देशों में ज ने के समय के नामों की सूची दी हुई है।

विष्णुत्रिम्तित्रतः विष्णु के तीन रूप हैं, यथा—वायु, चन्द्र एवं सूर्य; ये तीनों रूप तीन लोकों की रक्षा करते हैं; वे मनुष्यों के शरीर के भीतर वात, पित्त एवं कफ के रूप में विराजमान रहते हैं, इस प्रकार विष्णु के तीन स्थूल रूप हैं; ज्येष्ठ शुक्ल ३ को उपवास कर के विष्णु-पूजा; प्रातः वायु-पूजा, मध्याह्न में अग्नि में जौ एवं तिल से होम तथा रात्रि में जल में चन्द्र-पूजा; वर्ष मर शुक्ल ३ पर पूजा; स्वर्ग-प्राप्ति; यदितीन वर्षों तक किया जाये तो ५००० वर्षों तक स्वर्ग में स्थिति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१३६।१-२६)

विष्णुत्रिरात्रवतः कार्तिक शुक्ल नवमी पर; हरि एवं तुलसी की स्वर्णिम प्रतिमा की तीन दिनों तक पूजा तथा तुलसी एवं हरि का विवाह-सम्पादन; निर्णयसिन्धु (२०४)!

विष्णुदेवकीव्रत : कार्तिक की प्रथम तिथि से प्रारम्भ; एक वर्ष तक; पंचगव्य से स्नान एवं उसका पान; बाण पुष्पों, चन्दन लेप एवं मधुर एवं पर्याप्त नैवेद्य से वासुदेव पूजा; एक मास तक हिंसा, असत्य, चौर्य, मांस एवं मधुका त्याग; विष्णु का अटल ध्यान; शास्त्र, यज्ञ या देवताओं की भत्संना न

करना; मौन रूप से प्रतिदिन नैवेश प्रहण; मार्गशीर्ष, पीष एवं माघ में भी यही विधि , केवल पुष्पों, घूप एवं नैवेश में अन्तर; हेमाद्रि (वत० २, ६३६-६३८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। यह द्रष्टव्य है कि यह वत कृष्ण की माता देवकी को बताया गया था, जिसे उत्तम पुत्र की कामना थी; उसे वासुदेव के पूजन के लिए कहा गया; जो स्वयं उसके पुत्र थे।

विष्णु-पंचक: कार्तिक के अन्तिम पाँच दिनों को इस नाम से पुकारा जाता है; पाँच उपचारों, यथा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेदा से पाँच दिनों तक हरि एवं राधा की पूजा; सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और कर्ता स्वर्ग-की प्राप्त करता है; पूजा की कई विधियाँ विणित हैं, यथा—एकादशी को पूजा, द्वादशी को गोमूत्र पोना, त्रयोदशी को दूच पीना, चतुर्दशी को दही खाना, पूणिमा को केशव पूजा तथा सायंकाल को पंचगव्य ग्रहण या तुलसी दलों के साथ हरि-पूजा; पद्मपुराण (३।२३।१-३३)।

विश्वपुरद था विश्वपुरती : वृषभ, सिंह, वृष्टिचक एवं कुम्भ राशियों के नाम; कालनिर्णय (३३२); देखिये संक्रान्ति, गत अध्याय—११।

विष्णुपदयत : आषाढ़ में पूर्वाषाढ़-नक्षत्र पर आरम्भ; दूघ या घी में स्थापित विष्णु के तीन पदों की पूजा; कर्ता केवल रात्रि में हविष्य भोजन करता है; श्रावण में उत्तराषाढ़ पर गोजिन्द एवं विष्णु के तीन पदों की पूजा; दान एवं भोजन विभिन्न होते हैं; भाद्रपद में पूर्वाषाढ़ पर, फाल्गुन में पूर्वाफाल्गुनी पर, चैत्र में उत्तराफाल्गुनी पर उसी प्रकार की पूजा; कर्ता स्वास्थ्य, समृद्धि प्राप्त करता है और विष्णुलोक जाता है; हेम।दि (व्रत०, २, ६६५-६६७, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

विष्णुप्रवोध: कार्तिक में विष्णु का शयन से उठना; देखिये ऊपर गत अध्याय-५; हेमाद्रि (काल०, ९०३-९०४); कृत्यरत्नाकर (४२१-४२५)।

विष्णुश्राप्तिवतः द्वादशी पर उपवास, 'नमो नारायणाय' के साथ सूर्य को अर्घ्य; स्वेत पुष्पों एवं 'हे देवों में सर्वश्रेष्ठ, हे पृथिवी के आश्रय, मेरे इन पुष्पों को कृपापूर्व के ग्रहण कर के, हे भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो' नामक मन्त्र के साथ विष्णु-पूजा; व्यंजन, चावल या जौ या नीवार (जंगली चावल, तिन्नी आदि) के साथ स्थामक (सावाँ) या साठी (वह घान जो ६० दिनों में हो जाता है) पर निर्वाह करना; इसके उपरान्त पारण; विष्णु लोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पतरु (व्रत, ३४३-३४४); हेमाद्रि (व्रत० १, १२०३-१२०४, भविष्यपुराण से)।

विष्णुलसर्वातवार : रुई की घूल एवं घास के टुकड़ों को किसी शुभ तिथि एवं लग्न में झाड़ कर एवं स्वच्छ कर ४ अंगुल लम्बा घागा बनाना, इस प्रकार के चार घागों से एक बत्ती (वर्ति) बनती है; इस प्रकार की एक सौ सहस्र बत्तियों को घी में डुबो कर एक चौदी या पीतल के पात्र में जला कर विष्णु-प्रतिमा के समक्ष रखना; उचित काल है कार्तिक, माघ या वैसाख, अन्तिम सर्वोत्तम है; प्रति दिन एक या दो सहस्र बत्तियाँ विष्णु के समक्ष घुमायी जाती हैं; उपयुक्त मासों में किसी पूणिमा पर व्रत-सभाष्ति; तब उद्यापन; आजकल यह दक्षिण में नारियों द्वारा ही सम्पन्न होता है; वर्षं कृत्यदीपक (३८३-३९८)।

विष्णुव्रतः (१) एक कमल पर आकृति लींच कर विष्णु की पूजा; इस व्रत की विधि वैश्वानरव्रत के समान है; हेमाद्रि (व्रत० १,११७७ भविष्यपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष की १२ द्वादिशयों पर उपवास एवं गाय, वछड़े एवं हिरण्य का दान; कर्ता को परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० १,१२०२, पद्मपुराण से उद्धरण); वर्षिक्रयाकोमुदी (७०); (३) पौष शुक्ल द्वितीया पर प्रारम्भ; एक वर्ष तक ६ मासों को दो अविधयों में बाँट कर; कर्ता द्वितीया से चार दिनों तक कम से सरसों, तिल, वच (सुगन्वित जड़ वाला पौधा) एवं सवी विधयों

सेयुक्त जल से स्नान करता है; इन दिनों की पूजा में विष्णु के नाम हैं कम से कृष्ण, अन्युत, ह्वीकेश एवं केशव; कम से श्रा, चन्द्र, शशांक एवं निशापित के रूप में चार तिथियों पर चन्द्रमा को अर्घ्यं, पूर्णचन्द्र तक कर्ता केवल एक बार मोजन करता है; पंचमी को दिक्षणा; यह त्रत प्राचीन राजाओं (दिलीप, दुष्यन्त), मुनियों (मरीचि, च्यवन) एवं उच्च कुलोत्पन्न नारियों (देवकी, सावित्री, सुभद्रा) द्वारा किया गया था; पाप-मुक्ति एवं इच्छा-पूर्ति; अग्निपुराण (१७७।१५-२०); हेमाद्रि (व्रत० २, ४५८-४६०, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (४) आषाढ़ से लेकर चार मासों तक प्रातःकाल स्नान; कार्तिक पूर्णिमा पर गोदान एवं ब्रह्म-भोज; विष्णुलोक की प्राप्य; छत्यकल्पतरु (व्रत०, ४४४, मत्स्यपुराण १०१।३७ से उद्धरण), कृत्यरत्नाकर (२१९); (५) चैत्र शुक्ल ४ पर उपवास, चार रूपों के दलों में हरि-पूजा, यथा—नर, नारायण, हय एवं हंस; या मित्र, वरुण, इन्द्र एवं विष्णु, जिनमें प्रथम दो साध्य होते हैं और अन्तिम दो सिद्ध; १२ वर्षों तक; कर्ता को मोक्ष-मार्ग की उपलब्धि और वह सर्थोंच्च के बरावर हो जाता है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१५१।१-८)।

दिष्णुशंकरत्वतः इसमें उमामहेश्वरवत की विधि प्रयुक्त होती है। इसका सम्पादन भाष्ट्रपद या आहिवन में मृगिशिरा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, अनुराधा या ज्येष्ठा पर होता है; अन्तर यह है कि विष्णु के वस्त्र पीत होते हैं, विष्णु एवं शंकर के लिए दक्षिणा कम से सोना एवं मोती के रूप में होती है; हेमाद्रि (व्रत० २, ५९३-५९४, यहाँ इसे शंकर-नारायण-व्रत कहा गया है); कृत्यरत्नाकर (२८३-२८३); दोनों देवीपुराण को उद्धृत करते हैं।

विष्णुअयनोत्सव : आश्विन शुनल ११ या १२ पर; निर्णयसिन्धु (१०२), देखिए 'विष्णुशयन,' गत

अच्याय ५; मलमास में नहीं होता।

विष्णुश्रुंखल-घोग : जब द्वादशी एकादशी से युक्त हो एवं द्वादशी को श्रवण-नक्षत्र भी हो तो उसे विष्णुश्रुंखल कहा जाता है; उस दिन उपवास करने से पापमीचन हो जाता है और विष्णु से सायुज्य प्राप्त होता है; हेमादि (त्रत० १, २९५); कालविवेक (४६४); पुरुषार्थंचिन्तामणि (२१६-२१९)।

बीरप्रतिपदा : यह बलिप्रतिपदा ही है; देखिए गत अध्याय १०।

बीरक्षतः नवमी पर एकभक्त, कुमारियों को भोज, स्वर्णिम घट, दो वस्त्र एवं सोने का दान; एक वर्ष तक (प्रत्येक नवमी पर कुमारियों को भोज); प्रत्येक जीवन में सुन्दर रूप, शत्रु-विजय की प्राप्ति एवं शंकर की राजधानी में पहुँच; देवता शिव या उमा या दोनों; मत्स्यपुराण (१०१।२७-२८); कृत्यकल्पतक (ब्रत्र० ४४३); हेमाद्रि (व्रत० १,९५८, पद्मपुराण से उद्धरण), वर्षित्रयाकौमुदी (४१)।

बीरासन : एक आसन जो सभी कृच्छों में प्रयुक्त होता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ३२२, गरुड़पुराण से उद्धरण एवं वृत ० २, ९३२); यह अघमर्थणवृत (शंखस्मृति १८।२) में भी प्रयुक्त होता है। सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

वृक्षोत्सविधि : वृक्षारोपण को अति महत्ता प्राप्त थी। मत्स्यपुराण (५९।१-२०=पद्मपुराण ५।२४।१९२-२११) में वृक्ष के उत्सव की विधि दी हुई है, संक्षेप में यो है—वाटिका में वृक्षों पर सर्वीषिधमुक्त जल छिड़का जाता है, उनके चारों ओर वस्त्र बाँघे जाते हैं; स्विणम मुई से वृक्षों में छेद किया जाता है (कणंदेवन के समान); स्विणम शलाका से अंजन लगाया जाता है; वृक्षों के थालों पर ७ या ८ स्विणम फल रखे जाते हैं; वृक्षों के तलों में सोने के टुकड़ों से युक्त घट रखे जाते हैं; इन्द्र, छोकपालों एवं वनस्पित को होम किया जाता है; वृक्षों के बीच से श्वेत वस्त्रों, स्वर्णामूपणों से युक्त तथा सींगों के पोरों पर स्वर्ण से सुसिज्जत गायें ले जायी जाती हैं; वृक्षों का स्वामी पुरोहितों को गोदान, स्विणम सिकड़ियाँ, अँगूठियाँ, वस्त्र आदि देता है और चार दिनों तक दूध से ब्रह्म-भोज करता है; जी, काले तिलों, सरसों एवं पलाश की सिमधा से होम एवं चौथे दिन उत्सव; कर्ता की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। मत्स्यपुराण (१५४।५१२) में ऐसा आया है कि एक पुत्र दस गहरे तला-

सयों के तथा एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के समान है। वराहपुराण (१७२।३६-३७) में ऐसा कहा गया है कि एक अच्छा पुत्र कुल की रक्षा करता है, उसी प्रकार पुष्पों एवं फलों से लदा एक वृक्ष स्वामी को नरक में गिरने से बचाता है, जो व्यक्ति ५ आम्र वृक्ष लगाता है वह नरक में नहीं जाता; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२९७-१३) ने वृक्षों के विषय में कहा है—'एक व्यक्ति द्वारा पालित वृक्षे वही कार्य करता है जो एक पुत्र करता है, वह अपने पुष्पों से देवों को प्रसन्न करता है, छाया से यात्रियों को, अपने फलों से मनुष्यों को सन्तुष्ट करता है; वृक्ष के रोपने वाले को नरक में नहीं गिरना पड़ता।'

वृत्ताक-रयाग-विधि: इस वृत द्वारा जीवन भर या एक वर्ष या ६ मासों तक या ३ मासों तक वृन्ताक फल का त्याग करना पड़ता है; एक रात्रि भर भरणी या मघा नक्षत्र में उपवास करना होता है; एक वेदी पर यम, काल, चित्रगुप्त, मृत्यु एवं प्रजापित का आवाहन किया जाता है और गंघ आदि से पूजा की जाती है; तिल एवं भी से स्वाहा के साथ यम, नील, नीलकण्ठ, यमराज चित्रगुप्त, वैवस्वत के लिए होम किया जाता है; १०८ आहुतिया; सोने का बना एक वृन्ताक, काली गाय एवं बैल, अँगूठिया, कर्णफूल, छत्र, चप्पल, काले वस्त्र का जोड़ा एवं काले कम्बल का दान; बाह्मणों को भोजन; जो बृन्ताक को जीवन भर छोड़ देता है वह विष्णुलोक जाता है; जो ऐसा वर्ष भर या केवल एक मास करता है, नरक में नहीं पड़ता; यह प्रकीर्णक व्रत है; हेमाद्रि (वत० २, ९०९-९१०, मविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

वृत्वावनद्वावशी : कार्तिक शुक्ल १२ पर; यह तमिल प्रदेशों में प्रसिद्ध है।

वृषभवत: (१) शुक्ल ७ पर उपवास; श्वेत वस्त्रों से आवृत तथा घण्टी आदि आभूषणों से अलंकृत बैल का दान; तिथिवत; शिव देवता; शिव लोक की प्राप्ति और राजा होना; हेमाद्रि (व्रत० १,८८२, सविष्योत्तर पुराण से उद्धरण); (२) ज्येष्ठ अमावास्या पर बैलों की पूजा; काठ के बने बैलों को (एक दिन पूर्व ही) घर में स्थापित करना और गंघ आदि से पूजा; धर्म कहकर उनकी प्रार्थना करना। धर्म को बहुषा वृष कहा गया है (मनु ८।१६, शान्तिपर्व ९०।१५)।

वृष्यतः (१) विष्णुव्रत के समान ही; (२) ऊपर वाला; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४४८, मत्स्यपुराण १०१।६४ का उद्धरण); कार्तिक पूर्णिमा पर साँड छोड़ना एवं नक्त-विधि; तिथिव्रत; देवता शिव;शिव-छोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, २४२)।

वृषोत्सर्गः (साँड छोड़ना) चैत्र या कार्तिक की पूर्णिमा पर, रेवती नक्षत्र में, ३ वर्ष के उपरान्त एक बार; बैल तीन वर्ष का होना चाहिए, उसके साथ तीन वर्ष वाली चार या आठ गायें; कृत्यरत्नाकर (४३२-४३३, ब्रह्मपुराण से उद्धरण)। बहुघा किसी की मृत्यु के ११ दिनों के उपरान्त वृषोत्सर्ग होता है। देखिए इस महाग्रन्थ का मूल खण्ड २,पृ०९८३-९९७ एवं खण्ड ४,पृ०५३९-५४२; स्मृतिकौस्तुम (३९०-४०५)।

वेदन्त : यह चतुर्मूर्तिव्रत है; चैत्र से ऋग्वेद-पूजा; नक्तविधि; वेद-श्रवण; अन्त में (ज्येष्ठ-पूर्णमा) दो वस्त्रों, सोना, गाय, घृतपूर्ण पीतल के पात्र का दान; आषाढ़, श्रावण एवं भाद्र में यजुर्वेद-व्रत; आशिवन, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष में सामवेद-व्रत; पौष, माघ एवं फाल्गुन में सभी वेदों का व्रत; वास्तव में यह वेदों के आत्मा वासुदेव की पूजा है; १२ वर्षों तक; सभी दुःखों से मुक्ति, विष्णुलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ८२७-८२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१४१।१-७ से उद्धरण)।

वेश्यादत : हेमाद्रि (व्रत० २, पृ० ५४१-५४८, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण) ने इस व्रत का उल्लेख किया है। उसमें कृष्ण द्वारा युचिष्ठिर को सुनायी गयी विस्मयकारी घटना का वर्णन है। श्री कृष्ण ने जब अपने पुत्र साम्ब के रूप से अपनी १६००० पत्नियों को आकृष्ट देखा तो उन्होंने उन्हें आप दे दिया कि

मेरी मृत्यु के उपरान्त तुम्हें दस्यु लोग चुरा ले जायेंगे। यह भी कथा है कि नारद ने उन अप्सराओं को, जिन्होंने उनको प्रणाम नहीं किया था शाप दिया था कि वे नारायण की पित्नयाँ बनेंगी और अन्त में डाकुओं द्वारा भगा ली जायेंगी और वेश्या हो जायेंगी। कथा का सारांश यह है कि उन्हें महलों एवं मन्दिरों में वेश्या-वृत्ति करने की मित दी गयी और कहा गया कि वे घनहीन पुरुष को प्यार न करेंगी, उनका प्रमुख उद्देश्य होगा घनाजंन, चाहे उनके पास आने वाला व्यक्ति सुन्दर हो या असुन्दर। यह आगे कहा गया है कि वे गायों, भूमि एवं सोने का दान (ब्राह्मणों को) करेंगी, हस्त या पुष्य या पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त रिववार को सवौं घिष्ट-जल से स्नान करेंगी, कामदेव की पाद से सिर तक पूजा करेंगी; काम की पूजा विष्णु के रूप में होती है; वेदज ब्राह्मण का सम्मान किया जाता है; उसे एक प्रस्थ (पसर) चावल दिया जाता है; वेश्या अपने शरीर का दान (उस ब्राह्मण को) रिववार को करती है और यह वर्ष भर चलता है, १३वें मास में पलंग, स्वर्ण सिकड़ी (हार) एवं कामदेव की प्रतिमा का दान; यह व्रत सभी वेश्याओं के लिए है; यह वारव्रत है; देवता अनंग (कामदेव); कृत्यकल्पतर (व्रत० २७-३१) में यह व्रत वर्णित है और इसे वेश्यादित्यवारानंगदान-व्रत कहा गया है।

वैकुण्ठचतुर्वशी: (१) कार्तिक शुक्ल १४ को वैकुण्ठ १४ कहा गया है; यदि विष्णु-पूजा करनी हो तो रात में की जानी चाहिए; निर्णयसिन्घु (२०६); (२) कार्तिक शुक्ल १४ पर हेमलम्ब वर्ष में अरुणोदय काल में बाह्य मुहुर्त में स्वयं विश्वेश्वर भगवान् ने वाराणसी में मणिकिणकाघाट पर स्नान किया था, पाशुपतव्रत किया था तथा उमा के साथ विश्वेश्वर की पूजा की थी एवं विश्वेश्वर की स्थापना की थी; निर्णयसिन्घु (२०६); स्मृतिकौस्तुभ (३८८-३८९); पुरुषार्थचिन्तामणि (२४६-२४७)।

वैतरणीवत : मार्गशीर्ष कृष्ण ११ को वैतरणी कहा जाता है; उस तिथि पर नियम-संकल्प लिया जाता है; रात्रि में एक काली गाय की, उसकी खुर से पूँछ तक पूजा की जाती है, उसके शरीर में चन्दन-लेप लगाया जाता है, चन्दन-लेप से सुगंघित जल से खुरों एवं सींगों को स्वच्छ किया जाता है और पौराणिक मन्त्रों से उसके अंगों की पूजा की जाती है; गाय द्वारा नरक की वैतरणी नदी पार की जाती है, अतः यह एकादशी, जिस् दिन गाय का सम्मान होता है, इस नाम से पुकारी जाती है; यह वत चार मासों के ३-३ दलों में एक वर्ष तक चलता है, जिनमें पके चावल, पके जी एवं पायस का नैवेद्य कम से मार्गशीर्ष से चार मासों, चैत्र से चार मासों तथा आवण से चार मासों में दिया जाता है; नैवेद्य का एक तिहाई भाग गाय, पुरोहित तथा कर्ता को दिया जाता है; वर्ष के अन्त में एक पलंग, एक गाय (स्विणम), एक द्रोण लीह पुजारी को दिया जाता है; हेमाद्र (वत० १, १११०-१११२, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); वतार्क (पाण्डुलिप, २३० ए--२३१ बी); पद्मपुराण (६६८।२८) ने विवरण दिया है किन्तु कहा है कि मार्गशीर्ष कृष्ण १२ हो वैतरणी है।

वैनायक-द्रत: प्रत्येक चतुर्थी पर एक वर्ष तक नक्त-विधि; अन्त में एक गज का दान; तिथिव्रत; देवता गणेश; शिवलोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पतरु (व्रत, ४४८, मत्स्यपुराण १०१।६१ का उद्धरण); हेमाद्रि (व्रत॰ (१, ५३२, पद्मपुराण का उद्धरण)।

वैशाख-कृत्य : देखिए हेमाद्रि (व्रत०, २, ७४८-७५०); कृत्यरत्नाक् र (१४५-१७९); वर्षेकिया-कौमुदी (२४०-२५९); कृत्यतत्त्व (४२३-४३०); निर्णयसिन्धु (९०-९७); स्मृतिकौस्तुम (१०८-११७); गदाघरपद्धित (कालसार १५-२३)। वैशाख के कुछ वत, यथा—अक्षय तृतीया, अलग से विणत हैं। कुछ छोटी-मोटी बातें संक्षेप में यहाँ दी जा रही हैं। इस मास में प्रातःकालंग स्नान, उन स्नानों के साथ जो सूर्य की तुला एवं मकर राशियों में किये जाते हैं, बहुत महत्वपूर्ण है; राजमार्तण्ड; कृत्यरत्नाकर (१४९), कालविवेद, (४२३-

४२४); स्मृतिकौस्तुम (१०६, १०८)। प्रातःस्नान का आरम्भ चैत्र पूणिमा या एकादशी या वैशाख पूणिमा से हो सकता है (निर्णयसिन्षु ९०); वैशाख-स्नान के माहात्म्य के लिए देखिए पद्मपुराण (४।८५) ४१-७०, वैशाख में प्रातःस्नान करवमेष के समान है); शुक्ल ७ को गंगा की पूजा, क्योंकि इसी दिन ज ह्र ते, जिन्होंने कोघ में आकर उसे पी लिया था, इसे अपने दाहिने कर्ण से मुक्त किया था, कृत्यकल्पतरु (नैयतका-लिक्काण्ड, ३८७); पद्मपुराण (४।८५।४१-४२); निर्णयसिन्धु (९५); स्मृतिकौस्तुम (११२); वैशाख शुक्ल ७ को बुद्ध का जन्म हुआ था, उस तिथि से तीन दिनों तक उनकी प्रतिमा का पूजन होना चाहिए, विशेषतः जब पुष्य नक्षत्र हो; कृत्यकल्पतरु (नैयतकालिक ३८८); कृत्यरत्नाकर (१६०)। शुक्ल ८ पर अपराजिता नामक दुर्गा की प्रतिमा को कर्पूर एवं जटामांसी से युक्त जल से स्नान करावर पूजा तथा स्वयं आग्रस से स्नान करना; निर्णयामृत (५६); स्मृतिकौस्तुभ (११३); वैशाख पूर्णिमा पर श्रह्मा ने काले एवं घवेत तिल उत्पन्न किये थे, अतः उनसे युक्त जल से स्नान करना चाहिए, उन्हें अग्नि में अग्ति करना चाहिए, तिल एवं मचु का दान करना चाहिए; कृत्यकल्पतरु (नैयत० ३८८); हेमाद्र (अत० २, १६७-१७१); कृत्यरत्नाकर (१६३-१६४); स्मृतिकौस्तुभ (११५-११६); निर्णयसिन्धु (९७)। श्रीलंका (सीलोन) में वैशाख-पूजा का आरम्भ 'दुत्तगायिनी (लगभग १००-७७ ई० पू०) के अन्तर्गत हुआ; देखिए वालपोल राहुल कृत 'बुडिज्म इन सीलोन', पृ० ८० (कोलम्बो, १९५६)।

बैश्वानर-व्रत : (१) प्रथम तिथि को अग्नि-पूजा तथा अग्नि में वी एवं सभी प्रकार के अन्न का होम; प्रथम तिथि के स्वामी अग्नि को एक कमल के मध्य में बनाना चाहिए; प्रमुख मन्त्र हैं 'ओम् अग्निय नमः' (पूजा में) तथा 'ओम् अग्निय स्वाहा' (होम में); होम के लिए घृतमिश्रित अन्न, घृतधारा, सिमधा आदि; हेमाद्रि (व्रत ०१,३५४-३५५, भिवष्यपुराण से उद्धरण); (२) वर्षा व्रह्मत से आरम्भ कर चारों ऋतुओं में ब्राह्मण को सिमधा का दान तथा अन्त में घृतचेन का दान; यह व्रत पापमोचन के लिए है; ऋतुव्रत है; कृत्यकल्पतरु (व्रत ०४४७); हेभाद्रि

(वत० २, ३६०, पषपुराण से उद्धरण)।

बैज्जबन्नत : इसमें व्यक्ति आषाढ़ से आरम्भ कर चार मासों तक प्रतिदिन प्रातः स्नान करता है; अन्त में ब्रह्मभोज, गोदान एवं वृतपूर्ण घट का दान; मासन्नत; देवता निष्णु; हेमाद्रि (न्नत० २,८१८, पद्मपुराण से उद्धरण)।

ध्यतीपातमतः व्यतीपात २७ योगों (विष्कम्भ, प्रीति आदि) में एक है; भुजबल० (पृ० ३७, बलोक १३६-१३८) ने इसकी व्याख्या कई प्रकार से की है, वर्षिक्रयाकौमुदी (२४२)। इस विषय में देखिए आगे का बच्याय 'काल'। हेमादि (वत० २, ७०८-७१७)। व्यतीपात दिन पर एक बड़ी नदी में पंचगव्य के साथ नहाना चाहिए; एक स्विणम कमल पर १८ हाथों वाले व्यतीपात की स्विणम प्रतिमा रखी जानी चाहिए, उसकी पूजा गन्य आदि से होनी चाहिए; उस दिन उपवास; एक वर्ष तक; १३वें व्यतीपात पर उद्यापन; घी, दूघ, तिल तथा दूघ गिराने वाले वृक्षों की सिमधाओं से 'व्यतीपाताय स्वाहा' के साथ सौ आहुतियाँ, व्यतीपात सूर्य एवं चन्द्र का पुत्र माना जाता है। देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द २३, पृ० ११७, संख्या २७ शिललेख, शक संवत् ११९९, १२७७ ई०), जहाँ व्यतीपात-पुण्य का उल्लेख हैं, और देखिए वही, जिल्द २०, पृ० २९२-२९३, जहाँ व्यतीपात के कई वर्ष दिये गये हैं।

च्यास-पूजा: जाषाढ़-पूर्णिमा पर; विशेषतः संन्यासियों द्वारा; स्मृतिकौस्तुभ (१४४-१४५); पुरुषार्यंचिन्तामणि (२८४); तमिल देश में यह ज्येष्ठ शुक्ल १५ (मिथुन) पर की जाती है।

व्याहृतिद्वत : चैत्र शुक्ल १ से आरम्भ ; किसी वड़ी नदी में स्नान के उपरान्त सात दिनों तक गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घृत, बुशयुक्त जल का कम से पान एवं अन्त में (सातवें दिन) उपवास ; प्रति दिन महाव्या-

हृतियों (भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: एवं सत्यम्) के साथ तिल से होम; एक वर्ष तक प्रतिमास; अन्त में दिलिणा, नवीन वस्त्र, सोना, पीतल के पात्र, दुघारू गाय का दान; कर्ता सम्राट् हो जाता है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६२।१-७)। व्याहृतियों एवं महाव्याहृतियों के लिए देखिए इस महाग्रन्थ का मूल खण्ड २, पृ० ३०१, टिप्पणी ७१३।

ब्योमवतः श्वेत चन्दनलेप से अँगूठे भर का व्योम बनाकर सूर्य के समक्ष रख देना चाहिए; करवीर पुष्पों से सूर्य-पूजा; प्रतिमा के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर क्रम से कुंकुम, अगुरु, श्वेत चन्दन एवं चतुःसम एवं मध्य में लाल चन्दन रखना चाहिए; एन्त्र यह है 'खखोल्काय नमः'; देवता सूर्य; हेमाद्रि (व्रत० २, ९०४-५, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

व्योमषष्ठी: व्योम (आकाश) में सूर्य का (प्रतिमा का नहीं) एवं व्योम का पूजन; एक प्रस्थ वाले पात्र में घी एवं मयु, एक प्रस्थ तिल एवं तीन प्रस्थ चावल का सूर्य को अर्पण; तिथि के साथ सूर्य-पूजा; सूर्यलोक प्राप्ति: हेमाद्रि (त्रत० ४, ६१६-६१७, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

वतराजत्तीयावत : तृतीया तिथि को कपड़े के दो टुकड़ों पर रोचना, कर्पूर एवं नील से उमा एवं शिव की प्रतिमाएँ खींचकर स्वर्ण-कण्टहार एवं रत्नों से दो पौराणिक मन्त्रों के साथ पृथक् रूप से सम्बोधित करके उनकी पूजा; होम; इस ब्रत के सम्पादन से पति, पुत्र, भ्राता से वियोग नहीं होता; विशेषतः स्त्रियों के लिए; हेमादि (ब्रत ० १, ४८४-४८५, देवीपुराण से उद्धरण)।

ब्रतषिट : मत्स्यपुराण (अघ्याय १०१) एवं पद्मपुराण (५।२०।४३-१४४) ने ६० व्रतों का (अधिकांश समान शब्दों में) उल्लेख किया है, जिनका कृत्यकल्पतरु (व्रत० पृ० ४३९-४५१) में विवरण उपस्थित किया गया है।

शक्ष्वजमहोत्सव: देखिए ऊपर 'इन्द्रध्वजोत्थानोत्सव', विस्तृत विवरण के लिए देखिए विष्णुधर्मोत्तर पुराण (२।१५४-१५७)। भोजकृत सरस्वतोकण्ठाभरण (साहित्य-शास्त्र के ग्रन्थ) के ५।९५ में शकार्चा उत्सव का उल्लेख हुआ है।

शक्यत: (१) आश्विन शुक्ल ५ से; हेमाद्रि (व्रत०१, १२०४; (२) आश्विन पूर्णिमा पर उपवास, इन्द्र, उनकी पत्नी शची, ऐरावत, वज्ज, मातुर्लिंग (मातिल?) की गन्व आदि से पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में हिरण्य-दान; इन्द्र-लोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२, २३७, विष्णुघर्मोत्तरपुराण ३।१९६।१-३ से उद्धरण); (३) खुले अवकाश में भोजन; एक वर्ष तक; अन्त में गोदान; शक्र-लोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०२,८६६, पद्मपुराण से उद्धरण)।

शंकरनारायणव्रत : देखिए ऊपर 'विष्णु-शंकरव्रत'; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४१६-४१७); हेमाद्रि (व्रत० २,६९३-६९४, देवीपुराण से उद्धरण)।

शंकरार्कवत : रिववार को पड़ने वाली अष्टमी पर; शंकर की दाहिनी आँख में स्थित सूर्य की पूजा; अर्ध-चन्द्र की आकृति में कुकुम एवं लाल चन्दन से एक वृत्त बनाकर उसमें स्वर्ण से जड़ित एक माणिक रखना, जिसे शंकर की आँख कहा जायगा; तिथिवत; देवता शंकर की आँख के रूप में अर्क (सूर्य); यदि माणिक न हो तो सोना ही प्रयुक्त होना चाहिए।

शंकराचार्यजयन्ती : दक्षिण भारत मे चैत्र शुक्ल ५ पर, किन्तु महाराष्ट्र में वैशाख शुक्ल १० पर। शतिभिषास्नान : धनिष्ठा नक्षत्र में कर्ता एवं पुरोहित दोनों का उपवास; भद्रासन पर वैरुकर कर्ता हारा शंख एवं मोतियों से युक्त सौ घड़ों से स्नान करना, उसके उपरान्त नवीन वस्त्र धारण करके केशव, वरुण, चन्द्र, शतिभषा नक्षत्र (जिसके देवता वरुण हैं) की गन्ध आदि से पूजा; आचार्य को पेय पदार्थों, गाय, घट एवं सोने का दान तथा बाह्मणों को दक्षिणा; कर्ता को शमी, शाल्मली एवं बाँस के पत्रों के अग्र भागों के तीन आवरणों से आच्छादित एक रत्न धारण करना चाहिए; सभी रोगों से मुक्ति; नक्षत्र-व्रत; देवता विष्णु एवं वरुण; हेमाद्रि (व्रत० २, ६५३-५४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शत्रुनाशनवत : कुंकुम, श्वेत पुष्प, गुग्गुल घूप, घृतदीप एवं लाल वस्त्र से वासुदेव की पूजा; नक्षत्रवत;

इससे शत्रुओं का नाश; हेमाद्रि (व्रत० २, ५९७, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शनिप्रदोषप्रत : कार्तिक मास से आगे रिववार को पड़ने वाली त्रयोदशी पर: एक वर्ष तक; सन्तित के लिए; शिव-पूजा; सूर्योस्त के उपरान्त भोजन-ग्रहण; स्मृतिकौस्तुभ (४०-४१); पुरुषार्थीचन्तामणि (२२५-

२२९); वतार्क (२६५ ए-२६९ बी)।

श्वानियाद्वत : श्रावण के प्रत्येक शनिवार को शनि की लौहप्रतिमा को पंचामृत से स्नान कराना, पुष्पों, फलों आदि का दान एवं शनि के नामों का उच्चारण, यथा—कोणस्थ, पिगल, बभ्रु, कृष्ण, रौद्र, अन्तक, यम, सौरि (सूर्यं का पुत्र), शनैश्चर, मन्द (शनि की मन्द गित का द्योतक); श्रावण के चार शनिवारों के नैवेद्य हैं—चावल एवं उदं एक साथ पकाया हुआ, पायस, अम्बिली (चावल के आट एवं मक्खन वाले दूघ से बनी लप्सी) एवं पूरिका (गेहूँ की रोटी); स्मृतिकौस्तुभ (५५५-५६), इसमें स्कन्दपुराण से उद्धृत शनंश्चर का स्तीत्र है।

शनिवार को तेल से स्नान तथा किसी ब्राह्मण को तैल-दान; काले पुप्पों से शनि-पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में तेल-युक्त लोहे या मिट्टी के आघार में शिन की लौहप्रतिमा का काले वस्त्रों के एक जोड़े के साथ दान; ब्राह्मण के लिए मंत्र है 'शन्नो देवीरिमण्टये' तथा अन्य वर्णों के लिए पौराणिक मन्त्र हैं जो शिन को (जहाँ कोण नाम आया है, जो सम्भवतः यूनानी शब्द है) स्तुति के लिए वने हैं; इस ब्रत से शिन से उत्पन्न सभी कष्ट कट जाते हैं, हेमाद्रि (ब्रत ० २, ५८०-५८६, भविष्योत्तर० से उद्धृत); स्मृतिकी० (५५५)।

शमीपूजन : शमी वृक्ष की पूजा; देखिए विजयादशमी, गत अध्याय १०; स्मृतिकौस्तुम (३५५)।

शम्भुवत : जो व्यक्ति एक वर्ष तक भैंस के दूघ से बने घी के दो सहस्र पलों को अग्नि में होम करता है वह नन्दी की स्थिति पा लेता है, संवत्सरव्रत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत० २, ८६६-८६७, पचपुराण से उद्धरण)।

शयन : विष्णु एवं अन्य देवी-देवताओं का शयन ; देखिए गत अध्याय ५ ; हेमाद्रि (काल० (८९७-

९१५); कालविवेक (२६५-२७३)।

शस्यादान : पलंग का दान ; यह कई व्रतों में होता है, यथा-मासोपवास व्रत, शर्करा-सप्तमी

बादि में; स्मृतिकौस्तुभ (४१७-४१८)।

शकरासप्तमी: चैत्र शुक्ल ७ पर प्रातःकाल तिल्युक्त जल से स्नान; एक वेदी पर कुंकुम से कमल एवं बीज-कोष बनाना और उस पर 'नमः सिवत्रें' के साथ घूप एवं पुष्पों का अपंण; एक घट का स्थापन जिसमें एक हिरण्य-खण्ड डाल दिया जाता है, जिसके ढक्कन पर गुड़ रखा रहता है; पौराणिक मन्त्र से पूजन; पंचगव्य प्रहण; घट के पास पृथिवी पर लेटना और घीरे-घीरे सौर मन्त्र (ऋ० १।५०) का पाठ; अष्टमी को सभी उपयुक्त पदार्थों का दान तथा शर्करा, घी, पायस से ब्रह्म-भोज और स्वयं बिना नमक एवं तैल का भोजन; एक वर्ष तक प्रत्येक मास में यही विधि; वर्ष के अन्त में उपकरण-युक्त पलंग, शर्करा, सोना, गाय एवं गृह (यदि सम्भव हो सके) तथा १ से १००० तक के निष्कों से बने एक स्वर्णिम कमल का दान होना चाहिए; जब सूर्य अमृत पीने छगे तो कुछ बूँदें चावल, मुद्ग एवं ईख पर गिर पड़ी; तिथिव्रत; देवता सूर्य; इस व्रत से चिन्ता

दूर होती है, पुत्रोत्पत्ति, दीर्घायु एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है; मत्स्यपुराण (७७।१-१७); कृत्यकल्पतर (व्रत॰ २१४-२१७); हेमाद्रि (व्रत॰ १, ६४२-६४३, पद्मपुराण ५।२१।२६३-२७९ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (१५७-१५९, मत्स्यपुराण से उद्धरण); मविष्योत्तरपुराण (४९।१-१८) में भी मत्स्यपुराण के क्लोक पाये जाते हैं।

शाक : शाक के दस रूप हैं, थथा—जड़ें, पत्तियां, अंकुर, किलयां, फल, तना, बीज (चना आदि), छाल, पुष्प एनं छत्रक (कुकुरमुत्ता); हेमाद्रि (व्रत० १, ४७); निर्णयसिन्घु (१०५); व्रतरत्नाकर (१७)।

शाकसप्तमी: कार्तिक शुक्ल ७ ऱर आरम्म; प्रत्येक मास वर्ष भर; पूरे वर्ष को ४-४ मासों के तीन दलों में विभाजित करना; पंचमी को एकमक्त, षष्ठी को नक्त तथा सप्तमी को उपवास; ब्राह्मणों का मसालेदार तरकारियों से भोज और स्वयं रात्रि में भोजन; तिथिवत; सूर्य देवता; प्रत्येक चार मासों की अविध में पुष्पों (अगस्ति, सुगन्धित पुष्पों, करवीर) से, अंजनों या लेपों (कुंकुम, श्वेत चन्दन एवं लाल चन्दन) से, घूपों (अपराजित, अगृह, गुग्गुल) और नंवेद्यों (पायस, गुड़ रोटी, पकाया हुआ भात) से पूजा; अन्त में ब्रह्म-भोज, पुराणों का पाठ सुनना; कृत्यकल्पतह (व्रत० १०३-१०७), हेमाद्रि (व्रत० १, ७६०-७६३); कृत्यरत्नाकर (४१७-४१९) ने भविष्यपुराण (१,४७।४७-७२) को उद्धत किया है।

शान्ता-चतुर्यो : माघ शुक्ल ४ को शान्ता कहा जाता है; उपनास एवं गणेश-पूजा; तिथिवत; देवता गणेश; होम; घृत-गुड़ से पकाये गये चावल एवं नमक का नैवेद्य; स्नान, दान एवं साधारण आहुतियों से एक सहस्र गुना पुण्य; हेमाद्रि (व्रत० १, ५१३-५१४, भविष्यपुराण १।३१।६-१० से उद्धरण)।

शान्ति-पंचमी: भाद्रपद की पंचमी पर; काले एवं अन्य चूर्णों से सपों की आकृतियाँ तथा गन्घ आदि से पूजा, आश्विन पंचमी पर दभों से सपीकृतियाँ बनाकर उनकी पूजा, इन्द्राणी की पूजा भी; कर्ता से सपं प्रसन्न हो जाते हैं; मन्त्र यह है—'कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा'; कृत्यकल्पतर (व्रत०१,९५,केवल आश्विन पंचमी पर); हेमाद्रि (व्रत०१,५६३-५६४, मविष्यपुराण १।३७।१-३ एवं १।३८।१-५ से उद्धरण)।

शान्तिवत : (१) तृतीया को वेदी का निर्माण और उस पर क्वेत चावल से मण्डल बनाना, नर्रासह का आवाहन और ऐसी प्रतिमा की स्थापना जिसमें उस अवतार के सभी चिह्न पाये जायें तथा विभिन्न प्रकार के पुष्पों, बिल्वफल, तिल आदि से अलंकरण; विभिन्न उपचारों से पूजः, नृत्य, गीत एवं संगीत; प्रतिमा के समक्ष एक जलपूर्ण कलश तथा आठ दिशाओं में आठ कलशों का स्थापन; तिल, घृत आदि से विस्तृत रूप से होम तथा तपंण एवं जप; सभी कष्टों, रोगों एवं पापों का निवारण; हेमाद्रि (व्रत० १, ४६५-४७१, गरुहपुराण से उद्धरण); (२) कार्तिक शुक्ल ५ पूर; एक वर्ष तक खट्टे पदार्थों का त्याग; रात्रि में हरि-प्रतिमा का पूजन (प्रतिमा में हरि शेषनाग पर शयन करते हों और अपने एक पैर को लक्ष्मी की गोद में रखे हों); पाद से सिर तक के अंगों की पूजा, प्रत्येक अंग को आठ नागों (वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, घृतराष्ट्र, कर्कोटक एवं घनंजय) से सम्बन्धित करना तथा सभी नागों की प्रतिमाओं को दूध से नहलाना; तिल एवं दूध का होम; अन्त में स्वर्णम नाग. गाय एवं हिरण्य का दान; सर्प-दंश के भय का नाश; कालविवेक (९६-९७); हेमाद्रि (व्रत० १, ५५६-५५७), दोनों ने वराहपुराण (६०।१-८) से उद्धरण दिया है।

शास्मरायणीवत: एक नक्षत्रवत; देवता अच्युत; सात वर्षों तक; १२ नक्षत्रों, यथा—कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्य...से वर्ष के १२ मासों के नाम, यथा कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष आदि; कार्तिक में आरम्भ, नैवेद्य, प्रथम चार मासों के लिए खिचड़ी (कृशर), फाल्गुन से आगे के मासों में संयाव तथा आषाढ़ से आगे के चार मासों में पायस; ब्राह्मणों को नैवेद्य का ही भोज; ब्राह्मणी नारी शांभरायणी (जिससे बृहस्पति ने इन्द्र के पूर्व के

विषय में पूछा था) की प्रतिमा का स्थापन; कृष्ण ने इस श्रद्धेया नारी की गाया सुनायी है; हेमाद्रि (व्रत० २, ६५९-६६५, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

शिखितत : प्रत्येक मास के दोनों पत्नों की प्रथम तिथि पर एकमक्त की विधि; एक वर्ष तक; अन्त में किपला-गोदान; वैश्वानरलोक की प्राप्ति; अग्नि० (१७६।६-७); वर्षकि० (२९, मत्स्य० १०१।९२ से उद्धरण)।

शितावत: चतुर्थी पर एक भक्त विधि से भोजन, सर्वप्रथम एक गृहस्य और उसके उपरान्त ७ घरों को नमक, घनियाँ, जीरा मरिच, हींग, सींठ एवं मनःशिला के साथ हल्दी देना; इससे समृद्धि की प्राप्त; हेमाद्रि (ब्रत० १,५३१-५३२; प्रविच्योत्तरपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (९६-९८)।

शिरोलत : विसष्ठधर्मसूत्र २६। १२; मुण्डक उ० ३। २। १०, इसके माष्य में शंकराचार्य कहते हैं कि

यह अथवंवेदियों में प्रचलित, अग्नि (ज्ञान के प्रतीक) को सिर पर घारण करने की एक विधि है।

शिवकृष्णाष्ट्रमो : मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी पर; तिथिवत; देवता शिव; एक वर्ष तक प्रत्येक अष्टमी पर शिवलिंग की पूजा; प्रत्येक मास शिव के विभिन्न नाम एवं कार्तिक तक विभिन्न पदार्थों का सेवन; सभी पापों से मुक्ति; भविष्योत्तरपुराण (७५।१-३०), व्रतप्रकाश (पाण्डुलिपि १४१ वी-१४३ ए)।

शिवचतुर्वशीद्धतः मार्गशीर्षं शुक्ल १३ (अमान्त गणना के अनुसार) पर एकभक्त; शिव-प्रार्थना; चतुर्वशी को उपवास; श्वेत कमलों, गन्ध आदि से पाद से लेकर सिर तक शंकर एवं उमा की पूजा; यहीं कार्तिक १४ तथा अन्य चतुर्दशियों पर किया जाना चाहिए; मार्गशीर्षं से लेकर आगे के सभी १२ मासों में विभिन्न नामों से शंकर को प्रणाम; प्रत्येक मास में १२ पदार्थों में से (यथा—गोमूत्र,गोबर, दूध, दही आदि) किसी एक का पान; विभिन्न पुष्पों का प्रयोग, यथा—मन्दार, मालती आदि; एक या १२ वर्षों तक कार्तिक में; वर्ष के अन्त में एक नील वृष का उत्सर्ग; किसी विद्वान एवं सुचरित्रवान बाह्मण को घट के साथ पलंग का दान; एक सहस्र अश्वमेघों का फल, महापातक भी कट जाते हैं; मत्स्यपुराण (९५।५-३८); कृत्यकल्पतक (व्रत० ३७०-३७४); हमादि (वृत० २,५८-६१); कृत्यरत्नाकर (४६६-४७१); निर्णयसिन्धु (२२६)।

शियनक्तवतः (१) कृष्ण ८ या १४ पर नक्त-विधि; इहलोक में आनन्द एवं मृत्यूपरान्त शिवलोक; कृत्यकल्पतर (३८६); हेमाद्रि (वृत० २, ३९८, भविष्यपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष तक प्रत्येक पर्व पर नक्त; एक वर्ष तक शिव-पूजा; कृत्यकल्पतर (वृत० ३८६); (३) अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी एवं चतुर्दशी पर कृती केवल एकमक्त रहता है, पृथिवी पर रखा भोजन करता है; एक वर्ष तक; कृत्यक० (वृत ३८६-३८७)।

शिवनक्षत्र-पुरुषक्षतः फाल्गुन शुक्ल में जब हस्त नक्षत्र हो तो उपवास करने में असमर्थ रहने वाले को सस बत का संकल्प करना चाहिए; यह नक्षत्रवंत है; शिव देवता; पाद से लेकर सिर तक शिव के अंगों की पूजा, शिव के विभिन्न नामों का प्रयोग हस्त (जिस पर यह आरम्भ होता है) एवं अन्य '२६ नक्षत्रों से सम्बन्धित होता है; नक्त-विधि, किन्तु तेल एवं नमक का प्रयोग नहीं; पात्र में घी के साथ एक प्रस्थ चावल का दान, पारण में शिव एवं उमा की स्वणिम प्रतिमाओं तथा उपकरणों से युक्त पलंग का दान; हेमादि (व्रत० २, ७०३-७०६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शिवयोगयुक्त शिवरात्रिवत : शिव योग के साथ माघ कृष्ण १४ पर; तिथिवत; शिव देवता; उस राजा की कथा जो पूर्व जन्म में चोरी की प्रवृत्ति वाला था; हेमाद्रि (व्रत० २, ८७-९२, स्कन्द० से उद्धरण)।

शिवरथवात : हेमन्त (मार्गशीर्ष एवं पौष) एवं माघ में एक भक्त; माघ के अन्त में विभिन्न रंगों से सिजित एवं चार वैलों वाले रथ का निर्माण; एक आढक चावल के आटे से एक लिंग बनाकर रथ में स्थापित करना; रात्रि में जन-मार्ग पर रथ को हाँककर शिव मन्दिर में लाना; प्रकाश एवं नाच-गान के साथ जागर;

दूसरे दिन प्रातः शिवभक्तों, अंघों, दिरद्रों एवं दिलतों को भोजन; यह ऋतुवत है; शिव को रथ दान; हेमाद्रि (व्रत० २, ८५९-८६०, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शिवरात्रिक्त : देखिए 'महाशिवरात्रि' के अन्तर्गत।

शिविलगसत : शिव-िलग पर श्वेत चन्दन का लेप, खिले श्वेत कमलों से पूजा एवं प्रणाम; एक अँगूठे के बराबर छोट िलग को दक्षिणामूर्ति के समीप स्थापित कर बिल्व दलों से पूजा, घूप आदि अन्य उपचारों का अर्पण; सभी पापों से मुक्ति एवं शिवलोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत ० २, ८८७-८८९, शिवधर्मोत्तर पुराण से उद्धरण)।

शिववत : (१) आपाढ़ पूर्णिमा से चार मासों तक नख-परित्याग एवं बैंगन का सेवन वर्जित; कार्तिक पूर्णिमा पर एक स्वर्णिम घट को घी एवं मधु से भरकर दान; कृत्यकल्पतर (वत ४४०-४४१, मत्स्यपुराण ११।११-१२ से उद्धरण); (२) मार्गशीर्ष से कार्तिक तक शिव-पूजा; शिव के समक्ष प्रत्येक मास में कम से आटे से बनी निम्नलिखित वस्तुओं का दान—घोड़ा, गज, रथ, ११ बैलों का एक झुण्ड; एक चन्द्र-ज्योति (या कर्पूर का) घर, जिसमें दास-दासियाँ हों तथा अन्य गृहस्थी के उपकरण हों, धान से पूर्ण सात पात्र, दो सी फल एवं गुगगुल, दान का एकं 'मण्डल,'जिसमें खाद्य पदार्थ एवं चित्र हों, पुष्पों से निर्मित एक यान (गाड़ी) ; गुगगुल घूप एवं देवदार, विल्व के बीज, घी एवं अगुरु भाद्रपद मास में जलाये जाते हैं; आदिवन मास भर अर्क की पतियों सं बने दोने में दूध एवं घी; एक दोने में ईख का रस जो वस्त्र से ढेंका रहता है; वर्ष के अन्त में शिवमक्तों की भोज एवं पेय तथा सोने एवं वस्त्र का दान ; हेमाद्रि (त्रत् २,८१९-८२१, कालोत्तरपुराण से उढरण) ; (३) पौप से मार्गशीर्थ तक दोनों पक्षों की चतुर्दशी या अष्टमी या पूर्णिमा पर; विशिष्ट पूजा, यथा—एक प्रस्य जी, दूघ एवं घी से पूर्ण शर्करा का नैवेदा; एक बैल के साथ एक वितस्ति ऊँचाई की जी के आटे की कपिला गी का निर्माण; माघ में ११ ब्राह्मणों एवं ४ गैंड़ों को खिलाना, फाल्गुन में नकुल को खिलाना, चैत्र में आटे की शिव-प्रतिमा, इसी प्रकार सभी मासों में विभिन्न पदार्थों का आटे से निर्माण; एक वर्ष तक; हेमाद्रि (व्रत० २, ३९८-४००, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (४) दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर उपवास एवं अपराह्ह में शिव-पूजा; जप एवं होम; गुरु-सम्मान; पंचगव्य के तीन चुलुकों (चुल्लुओं) का पान; दूसरे दिन केवल हिवष्य भोजन ; पूरे जीवन भर करना ; शिवलोक्ष में तीन पोढियों का निवास ; हेमादि (त्रत० २,३४३, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (५) पौष में आरम्भ ; गेहूँ, चावल एवं दूध के पदार्थों को नक्त-विधि से खाना; दोनों पक्षों की अब्टमी पर उपवास, भूमि-शयन ; पूर्णिमा पर घृत से छ्द्र-स्नान ; इसे एक वर्ष के लिए मार्गशीर्ष तक करना; विभिन्न मासों में विभिन्न पदार्थों का उपयोग; लिंगपुराण (८३।१३-५४); (६) एक अयन से दूसरे अयन (६ मासों) तक; पुष्प एवं घी का अर्पण; अन्त में पुष्पार्पण, पायस एवं घी से ब्रह्म-भोज; घृतघेनु का दान; इससे घन एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति; कृत्यरत्नाकर (२१९, अग्निपुराण से उद्धरण); (७) आषाढ़ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक नाखून न कटाना; अन्त में सोने के साथ मधु एवं घृत से पूर्ण एक घट का दान; कर्ता रुद्रलोक जाता है; कृत्यरत्नाकर (२१९-२२०); वर्षिक्रयाकीमुदी (२९२) 1

शिवस्रतेषु-पूजा : व्रतराज (पृ० ५७-६१) ने शिव की सभी पूजाओं की विधि का उल्लंख

किया है। शिवशक्तिमहोत्सव-म्रत: काशी या श्रीशैल जैसे शिवक्षेत्र में शिव एवं शक्ति के सम्मान में अष्टमी-युक्त नवमी पर उत्स्वव; कालनिर्णय (१९७)।

## वर्णशास्त्र का इतिहास

शिषा-षतुर्यो : माद्रपद शुक्ल ४ को शिवा कहा जाता है; उस दिन स्नान, दान, उपवास एवं जप से सीगुना पुण्य होता है; तिश्रिव्रत; देवता गणेश; हेमाद्रि (व्रत० १,५१२-५१३, भविष्यपुराण १।३१।१-५ से उद्धरण)।

शियोपासनवत : दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर उपवास एवं शिव-पूजा; एक वर्ष तक; कर्ता को सत्र करने का पुण्य प्राप्त होता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३८५-३८६)।

शिवपवित्रतंत : आषाढ़ पूर्णिमा पर शिव-पूजा; शिव को यज्ञोपवीत-दान एवं शिवभक्तों को भोजन; पुनः कार्तिक पूर्णिमा पर शिव-पूजा; संन्यासियों को वस्त्र-दान एवं दक्षिणा; हेमाद्रि (इत० २, ८४३, शिवधर्मो-त्तरपुराण से उद्धरण)।

शीतलावत: श्रावण कृष्ण ७ पर कलश स्थापित कर उस पर शीतला की प्रतिमा का पूजन एवं आठ वर्ष या उससे कम अवस्था की ७ कुमारियों को भोजन, इससे वैषव्य से मुक्ति, दरिद्रता का नाश, पुत्रोत्पत्ति आदि का लाभ; व्रतार्क (पाण्डुलिपि १११-११३); अहल्याकामचेनु (पाण्डुलिपि ४३८ वी-४४० वी)। कुछ लोग इसे श्रावण शुक्ल ७ परकरते हैं। यह केवल नारियों के लिए है। नैवेदा केवल घी एवं दही का होता है।

शीतलाष्टमी: चैत्र कृष्ण ८ परशीतला को माता माई (चेचक की देवी) कहा जाता है; शीतला-पूजा; रात-दिन बाठ घृत-दीपों से पूजा तथा गाय के दूघ एवं उशीर (एक प्रकार की सुगन्धित जड़, खस) से सुगन्धित जल छिड़कना; गदहा, झाडू एवं सूप का पृथक्-पृथक् दान; कृत्यतत्त्व (४६२); अहल्याकामधेनु (पाण्डुलिपि, ५५८ बी-५६१ ए); गदहा शीतला का वाहन है; शीतला नंगी दर्शायी गयी हैं, उनके हाथ में झाडू एवं घट तथा सिर पर सूप रहता है; देखिए फार्बेस रसमाला (जिल्द २, पृ० ३२२-३२५) एवं ए० सी० सेन कृत बंगाली लैंग्वेज एण्ड लिटरेंचर' (शीतला-मंगल कविता, पृ० ३६५-३६७)।

शीतलासप्तभी : श्रावण कृष्ण ७ पर; दतराज (२३७-२४१)।

शील-त्रत : (१) यह शिवत्रत ही है; कृत्यकल्पतरु (त्रत० ४४४-४४५, मत्स्यपुराण १०१।३८-३९ से उद्धरण); (२) तृतीया को बिना पका भोजन (सम्भवतः) एक वर्ष तक; तिथित्रत; देवता शिव; अन्त में गोदान; कर्ता पुनः जन्म नहीं लेता; कृत्यकल्पतरु (त्रत०४४९), हेमाद्रि (त्रत०१,४८४, पद्मपुराण से उद्धरण); मत्स्यपुराण (१०१।७०) ने इसे 'श्रेयोद्रत' कहा है; मत्स्यपुराण (१०१।३४) के मत से शीलत्रत पृथक् है।

शीलाबाप्तिवत : आग्रहायणी (मार्गशीर्ष) पूर्णिम। के उपरान्त एक मास तक वाराह की पूजा; घी से वाराह-प्रतिमा का स्नान, अग्नि में घृतार्पण, नैवेद्य; घृत-दान; पौष पूर्णिमा एवं इसके दो दिनों पूर्व उपवास एवं एक ब्राह्मण को घृतपूर्ण पात्र एवं सोने का दान; कर्ता को शील (चरित्र एवं नैतिकता) की प्राप्ति; विष्णुघर्मोत्तरपुराण (३।२०८।१-५); हेमाद्रि (व्रत० २, ७८६-७८७)।

शुक्रवत : जब शुक्रवार ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त होता है तो नक्त-विधि से रहना; जब सप्तमी को ऐसा शुक्रवार हो तो पीतल या रजत के पात्र में शुक्र की स्विणम प्रतिमा रखकर वस्त्रों, चन्दन-लेप से पूजा की जाती है; प्रतिमा के समक्ष पायस एवं घी रखा जाता है और उसे 'शुक्र दुष्ट ग्रह-प्रभावों को हूर करें तथा स्वास्थ्य एवं दीघं आयु दें' नामक प्रार्थना के साथ प्रतिमा सहित दान दे दिया जाता है; वारवत; देवता शुक्र; हेमाद्रि (व्रत० २, ५७९-५८०, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); और देखिए अग्निपुराण (१९५।५)।

शुद्धि-त्रत : शरद् के अन्तिम ५ दिनों पर या बारह मासों की एकादिशयों पर; तिथिवत; देवता हिरि; जब समुद्र मथा गया तो ५ गो उदित हुई; उनसे पाँच पवित्र वस्तुएँ उत्पन्न हुई, यथा—गोबर, गो-रोचना, दूष, मूत्र, दही एवं घृत; गोबर से श्रीवृक्ष नामक बिल्ववृक्ष उगा, क्योंकि उस पर लक्ष्मी

रहती हैं; गोरोचना से सभी शुभकामनाएँ उत्पन्न हुईं, गोमूत्र से गुग्गुल उत्पन्न हुआ, गोंदुग्ध से विश्व की सम्पूणं शिक्त उदित हुई, दही से सभी शुभ वस्तुएँ एवं घृत से सभी प्रमृद्धि उत्पन्न हुईं; जातः दूध, दही एवं घृत से हिर-स्नान एवं गुग्गुल, दीप आदि से हिर्पूजा की जाती है, पूजा अगस्त्य-पुष्पों से भी की जाती है; कर्ता को विष्णुलोक-प्राप्ति एवं नरकवासी पितरों को स्वर्ग-प्राप्ति, जलघेनु, घृतघेनु, मघुधेनु का दान; सभी पापों से मुक्ति; हेमादि (वृत्त० १, ११५६-११५८, अग्निपुराण से उद्धरण)।

शुक्लद्वादशी : देखिए नीचे शुभद्वादशी।

शुमद्वादशी: मार्गशीर्ष शुक्ल १ को आरम्भ; १ से ९ तक एक भक्त; १० को स्नानोपरान्त मध्याह्व में केशव-पूजा; दोनों पक्षों की द्वादशी पर (मार्गशीर्ष से चार मासों तक) तिल एवं हिरण्य का दान; चैत्र से चार मासों में भूसी निकाले हुए अन्नों एवं सोने से पूर्ण पात्रों का दान; इसी प्रकार अन्य चार मासों में गोविन्द-पूजा; कार्तिक शुक्ल १२ पर सात पातालों, पर्वतों से युक्त पृथिवी की स्विणम प्रतिमा का निर्माण और उसके समक्ष हिर-प्रतिमा स्थापन एवं हिर-पूजा; जागर (रात भर जागना), दूसरे दिन प्रातः २१ ब्राह्मणों में से प्रत्येक को एक गाय, एक बैल, एक जोड़ा वस्थ, अँगूठी, सोने का कंगन एवं कर्णफूल, एक ग्राम (यदि कर्ता राजा हो) का दान तथा कृष्ण १२ पर पृथिवी की रजत-प्रतिमा बनाकर उसका दान; कर्ता को समृद्धि एवं विष्णु-लोक की प्राप्ति; कृत्यकल्पत्र (ब्रत० ३४०-३४३); हेमाद्रि (ब्रत० १, ११०१-११०३, वराहपुराण ५५।१-५९ से उद्धरण)।

शुभसप्तमी : आदिवन शुक्ल ७ पर; कपिला गाय की पूजा तथा ताम्रपात्र में एक प्रस्थ तिल तथा एक स्विणम बैल का, वस्त्रों, पुष्पों एवं गुड़ का 'अर्थमा प्रसन्न हों' के साथ दान; तिथिवत; देवता अर्थमा; प्रति मास एक वर्ष तक; मत्स्यपुराण (८०।१-१४); कृत्यकल्पतरु (व्रत० २३१-२२३); हेमाद्रि (व्रत० १,

६४८-६५०, पद्मपुराण ५।२१।३०७-३२१ से उद्धरण); भविष्योत्तरपुराण (५१।१-१४)।

शूलप्रदानव्रत : एक वर्ष तक सभी अमावास्याओं पर उपवास; तिथिव्रत; वर्ष के अन्त में आट से निर्मित विश्रूल तथा सोने या चाँदी का कमल शिव को अर्पण और उसे अपने सिर पर रखना तथा दान; अहिसा के नियमों का पालन, ब्रह्मचर्य, भूमि-शयन आदि का पालन; हेमाद्रि (व्रत ० २, २५२-२५३, शिवधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शैलवत: (१) पर्वत-पूजा; इच्छा-पूर्ति एवं आनन्द-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९६, विष्णुघर्मोत्तर-पुराण से उद्धरण); (२) चैत्र शुक्ल १ से सात दिनों तक प्रति दिन सात पर्वतों, यथा—महेन्द्र, मलय, सहा, शृक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र की पूजा; जौ से होम, केवल जौ का सेवन; एक वर्ष तक; अन्त में २० प्रस्थ जौ का दान; कर्ती राजा शत्रुओं पर विजय एवं पृथिवी-राज्य पाता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ४६३-४६४,

विष्णुवर्मोत्तरपुराण ३।१६१।१-७ से उद्धरण)।

शैवनक्षत्रवत: फाल्गुन शुक्ल में हस्त-नक्षत्र से आरम्भ; नक्त-विधि किन्तु तेल एवं नमक का त्याग; शिव-पूजन, पाद से सिर तक हस्त से आरम्भ कर सभी नक्षत्रों को समन्वित कर 'शिव।येति च हस्तेन पादौ सम्पूजयेद् विमोः' के रूप से पूजा; सभी नक्त-दिनों में घृतपूर्ण पात्र के साथ एक प्रस्थ चावल का दान; पारण पर शिव एवं उमा की प्रतिमाओं, एक सुसज्जित पलंग तथा गाय का दान; नक्षत्रवत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत० २, ७०३-७०६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

शैवमहावत : (१) पौष ८ से आरम्म; लगातार नक्त-विघि, किन्तु दोनों पक्षों की अष्टमी पर उपवास; दिन में तीन बार शिव-पूजा, होम, भूमि-शयन; पौष पूर्णिमा पर घी से महापूजा; आठ ब्राह्मणों को भोज, एक

जोड़ी गायों एवं एक किपल बैल का दान; माघ एवं आगे के मासों में मार्गशीर्प तक विभिन्न भोजनों से नक्त-विधि; मासबत; हेमाद्रि (व्रत० २, ८४३-८४८); (२) कार्तिक में नक्त-विधि; मास के अन्त में गुड़ एवं घृत-युक्त तिल-रोटी का अर्पण; अष्टमी एवं चतुर्दशी को उपवास; मार्गशीर्ष से आगे के मासों में शिव से सम्बन्धित पदार्थों का शिव-प्रतिमा को अर्पण; मासव्रत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत०२, ८४८-८५३, शिवधर्मपुराण से उद्धरण)।

शैवोपवासवत : एक वर्ष तक प्रत्येक मास के दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी पर उपवास; देवता शिव; हेमाद्रि (वत० २, ३९७, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

शौर्यंत्रत : आश्विन शुक्ल ७ पर संकल्प, ८ पर उपवास, ९ पर आटे से बना भोजन एवं दुर्गा-पूजा तथा व्रह्म-भोज; एक वर्ष तक यही विधि; तिथिवत; देवता दुर्गा; अन्त में कुमारियों को भोजन तथा उन्हें वस्त्र आदि का दान तथा 'देवी मुझ पर प्रसन्न हों' से प्रार्थना; विना विद्या पढ़े ज्ञान की उत्पत्ति, दुर्बल व्यक्ति शौर्य वाला हो जाता है, लुप्त राज्य प्राप्त हो जाता है। वराहपुराण (६४,१-६); कृत्यकल्पत्त (व्रत० २७३); हेमादि (व्रत० १,९५७-९५८); कृत्यरत्नाकर (३६४-३६५)।

क्यामामहोत्सव : देखिए ऊपर 'द्राक्षा-भक्षण'; हेमाद्रि (वृत्त० २, ९१५, आदित्यपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (२०३-३०४)।

स्येनग्रासनविधि: कार्तिक शुक्ल ४,८,९ या १४ पर; स्त्रियों के लिए; कृत (सत्य) युग में नारियाँ देवी तक पहुँचाने के लिए स्येन (बाज) को एक ग्रास देती थीं; किन्तु-आजकल ऐसा नहीं किया जाता, अब नारियाँ भोजन अपने पतियों के पास ले जाती हैं और उसके उपरान्त खाती हैं; हेमाद्रि (ब्रह्त २, ६४१-६४३, ब्राब्त्यिपुराण से उद्धरण)।

श्रवणद्वादशी: (१) आद्रपद शुक्ल १२ को जब कि श्रवण-मक्षत्र हो; एकादशी को उपवास; द्वादशी को गंगा-यमुना के पिवत्र जल से बोये गये मिट्टी के पात्र में भात एवं दही का दान; कृत्यकल्पतरु (त्रत० ३४८, वायुपुराण से उद्धरण); (२) श्रवण-नक्षत्र में १२ पर उपवास; जनार्दन-पूजा; १२ द्वादिशयों का पुण्य फल; यदि श्रवण-द्वादशो बुधवार को पड़े तो उसे महान् कहा जाता है; भिथित्रत; देवता विष्णु; हेमाद्रि (त्रत० १, ११६२-११७१, विष्णुचर्मोत्तरपुराण १।१६१।१-८ से उद्धरण); अग्निपुराण के १५ श्लोक पाये जाते हैं; अधिकांश निबन्ध इसका जिस्तृत वर्णन उपस्थित करते हैं; हेमाद्रि (काल्ड० २८९-२९८); कालविवेक (४५९-४६४); निर्णयसिन्धु (१३७-१४०); स्मृतिकौस्तुभ (२४०-२४९); पद्मपुराण (६।७०) में इसकी गाथा एवं माहात्म्य है; और देखिए गरुहपुराण (१, अध्याय १३६)।

श्राद्धवत : केशव-प्रतिमा के समक्ष शिव-प्रतिमा पर चन्दन-लेप लगाना तथा जलघेनु एवं घृतघेनु का दान; सभी पापों से मुक्ति एवं शिव-लोक-प्राप्ति; संवत्सर-व्रत; देवता शिव; हेमाद्रि (व्रत० २, ८६३, पद्मपुराण से उद्धरण)।

श्रावण-कृत्य : कृत्यकल्पतरु (नैयतकालिक, ३९५-३९७); कृत्यरत्नाकर (२१८-२५४); वर्षित्रयाकौमुदी (२९२); कृत्यतत्त्व (४३७-४३८); निर्णयसिन्धु (१०९-१२२); स्मृतिकौस्तुभ (१४८-२००); पुरुषार्थ- चिन्तामणि (२१५-२२२)।

श्रावण में बहुत-से महत्वपूर्ण व्रत किये जाते हैं, यथा—नागपंचमी, अश्न्यशयनव्रत, कृष्ण-जन्माष्टमी जिनका उल्लेख यहाँ पर यथास्थान किया गया है। यहाँ पर गुष्ठ वातें दी जा रही हैं। ऐसी घारणा है कि उन निदयों को छोड़कर जो सीघे समृद्र में गिरती हैं, अन्य निदयों उस समय रजस्वला (मासिक घर्म में) कही जाती हैं

जब कि सूर्य कर्क एवं सिंह राशि में होता है, उस समय उनमें स्नान नहीं किया जाता, जो घाराएँ १००८ घनु लम्बी नहीं होतीं, वे नदियाँ नहीं कहलातीं, वे केवल छिद्र या गर्त कहलाती हैं। देखिए गोमिलस्मृति (१।१४१-१४२); निर्णयसिन्धु (१०९-११०); (एक घनु ४ हाथ)। श्रावण में कृतिपय देव विभिन्न तिथियों पर पिवत्रा-रोपणत्रत (देखिए इसी सूची में) पर बुलाये जाते हैं; श्रावण में प्रति सोनवार को उपवास करना चाहिए या नक्त-विधि करनी चाहिए (स्मृतिकौस्तुभ १३९); दोनों पक्षों की नविभयों पर कौमारी नाम से दुर्गा की पूजा करनी चाहिए (कृत्यरत्नाकर २४४, स्मृतिकौस्तुभ २००); तिमल प्रदेशों में श्रावण कृष्ण १ को सभी वैदिक ब्राह्मण गायत्री का जप १००८ वार करते हैं। श्रावण की अमावास्या को कुशोत्पादिनी कहा जाता है क्योंकि उस दिन कुश एकत्र किये जाते हें (कृत्यरत्नाकर ३१६, स्मृतिकौस्तुभ २५२)। इस अमावास्या पर अपुत्रवती नारियाँ या वे नारियाँ, जिनकी सन्तान बचपन में ही मर जाती है, उपपास करती हैं, ब्रह्माणी एवं अन्य माताओं की प्रतिमाओं के लिए आठ कलश स्थापित करती हैं।

श्रावणिकावत : मार्गशीर्ष शुक्ल ८ एवं १४ पर; स्नान करके मध्या ह्न के समय कर्ता को कई नारियों या एक नारी (यदि वह धनहीन हो) या सुचरित्र बाह्मण सगोत्र नारियों एवं एक विद्वान् एवं सुचरित्रवान् बाह्मण को आमन्त्रित करना चाहिए, उनके चरणों को पखारना चाहिए, उन्हें अर्ध्य देना चाहिए, गन्ध आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए तथा भोजन देना चाहिए; नारियों के समक्ष सूतों एवं मालाओं से आवृत १२ जलपूर्ण घट रखे जाने चाहिए, अपने सिर एक घट रखना चाहिए तथा केशव का ध्यान करना चाहिए, प्रार्थना करनी चाहिए कि वह पितृ-ऋणों, देव-ऋणों एवं मनुष्य-ऋणों से मुक्त हो जाये; नारियां आशीर्वचन देती हैं -'ऐसा ही हो'; तिथिवत; देवता श्रावण्य नामक देवियाँ, जो बह्मा से जाकर कर्ता जो कुछ अच्छा या बुरा करता है, कहती हैं; हेमाद्रि (व्रत०२, १३४-१३९, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

श्रोपंचमी : (१) मार्गशीर्ष शुक्ल ५ पर लक्ष्मी की स्वर्णिम, रजत, ताम्र, काष्ठ या मिट्टी की प्रतिमा का निर्माण या किसी वस्त्र-लण्ड पर उसका चित्र खींच कर पूज्यों से पूजा तथा आपादमस्तक पूजा; पतिव्रता न।रियों का कुंकुम, पुष्पों, भोजन एवं प्रणाम आदि से सम्मान; एक घृतपूर्ण पात्र के साथ एक प्रस्थ चावल का दान तथा 'लक्ष्मी मुझसे प्रसन्न हों' ऐसा कहना; प्रत्येक मास में लक्ष्मी के विभिन्न नामों से ऐसा ही एक वर्ष तक करना; अन्त में एक मण्डप में लक्ष्मी-प्रतिमा-पूजन, प्रतिमा का एक गाय के साथ दान तथा साफल्य के लिए श्री से प्रार्थना; २१ पीढ़ियों तक समृद्धि; हेमाद्रि (व्रत० १, ५३७-५४३, भविष्योत्तरपुराण, अध्याय ३७।१-५८ से कुछ विभिन्नता के साथ उद्धरण); (२) सफलता के लिए अन्य त्रत है श्रवण-नक्षत्र या उत्तराफाल्गुनी एवं सोमवार के साथ पंचमो पर; चौथ पर एकभनत; दूसरे दिन बिल्व वृक्ष की पूजा, जिसके नीचे आठ दिशाओं में आठ कलश रखे रहते हैं; इन कलशों में पवित्र जल, रतन, दूर्वा, श्वेत कमल आदि छोड़े जाते हैं; लक्ष्मी की प्रार्थना एवं पूजा; कलश के मध्य में नारायण का आवाहन एवं नारायण-प्रतिमा-पूजन; एक वर्ष तक या जब तक सफलता न प्राप्त हो जाये; हेमाद्रि (व्रत ० १, ५४६-५५२, गरुड्पुराण से उद्धरण); (३) माघ शुक्ल ५ पर जलपूर्ण पात्र में या शालग्राम प्रस्तर पर लक्ष्मी पूजा, क्योंकि उस दिन वे विष्णु के आदेश पर इस विश्व में आयीं; भुजबलनिबन्ध (पु० ३६३, पाण्डुलिपि) के मत से पूजा कुन्द पुष्पों से होती है; कृत्यतत्त्व (४५७-४५८); पुरुषार्थविन्तामणि (९८) के मत से पूजा माघ शुक्ल ५ को किन्तु स्मृतिकौस्तुभ (४७९) के मत से उस दिन काम एवं रित की पूजा होती है और वसन्तोत्सव किया जाता है; (४) चैत्र शुक्ल ५ पर लक्ष्मी-पूजा; जीवन भर समृद्धि की प्राप्ति; नीलमतपुराण (पृ० ६२, श्लोक ७६६-७६८); स्मृतिकौस्तुभ (९२)।

श्रीप्राप्तिवत: (१) हेमाद्रि (व्रत० १, ५७५, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण) के मत से जो कमल में रखकर लक्ष्मी-प्रतिमा का पूजन करता है, वह एक यज्ञ का फल प्राप्त करता है; (२) वैशाख पूर्णिमा के उपरान्त पहली तिथि पर प्रारम्भ; एक मास तक पुष्पों-फलों आदि से नारायण एवं लक्ष्मी की पूजा; धान एवं बिल्व फल से होम; दूघ एवं दूघ से बने पदार्थों से ब्रह्म-भोज; ज्येष्ट में तीन दिनों तक उपनास; सोने एवं दो वस्त्रों का दान; हेमाद्रि (व्रत० २, ७५१, विष्णुवर्मोत्तरपुराण ३।२११।१-५ से उद्धरण)।

श्रीवृक्षनवमी: भाद्रपद शुक्ल नवमी पर; सूर्योदय पर तिल, गेहूँ से बने पदार्थों आदि से बिल्व पेड़ की सात बार पूजा; उससे प्रार्थना करना एवं उसे प्रणाम करना; उस दिन बिना आग पर पके भोजन (यथा दही, फल आदि) को भूमि पर रखकर खाना, तेल एवं नमक न खाना; तिथिव्रत; देवता लक्ष्मी का निवास बिल्व; पीड़ा-क्लेश से मुक्ति एवं धन-प्राप्ति का लाभ; हेमादि (व्रत ०१, ८८७-८८८; भविष्योत्तरपुराण

६०।१-१० से उद्धरण)।

श्रीवत : (१) चैत्र शुक्ल पंचमी तिथि पर केवल एक बार लक्ष्मी-पूजन से एक वर्ष के पूजन के लाभ प्राप्त होते हैं; हेमाद्रि (व्रत० १ ५७५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से एक क्लोक); (२) चैत्र शुक्ल तृतीया पर भात एवं घृत का सेवन, एवं रात्रि में भूमि-शयन; चतुर्थी पर घर के बाहर (नदो आदि में) स्नान, पंचमी पर वास्तविक या निर्मित कमल पर घृत-दीप से लक्ष्मी-पूजन, श्रीसूक्त से कमल के दलों तथा विल्वपत्रों के साथ होम; पर्याप्त दूध एवं घृत से ब्रह्म-भोज; हविष्य भोजन; एक वर्ष तक; शौर्य, सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ४६६-४६८, विष्णुधर्मोत्तनपुराण ३।१५४।१-१५ से उद्धरण)।

धर्-तिला-द्वादशी: फाल्गुन कृष्ण १२ पर जब श्रवण-नक्षत्र हो तिल से देवों की पूजा; तिल का होम, मन्दिरों में तिल से दीप जलाना, निल-दान, पितरों को निल-युक्त जल से तर्पण देना तथा तिल खाना; विष्णु ने इस तिथि पर उपवास किया था तथा अपने पितरों को तिल एवं पिण्ड दिये थे; कृत्यरत्नाकर (५१९)।

षट्-तिली: जो माघ शुक्ल एकादशी पर, जब कि चन्द्र मृगिशरा नक्षत्र में हो, उपवास करता है तथा द्वादशी को तिल-सम्बन्धी ६ कियाएँ करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है। वर्ष कियाकौमुदी (५०५); तिथितत्त्व (११३-११४); गदाघरपद्धित (कालसार, १५१)। तिल के ६ कृत्य ये हैं—शरीर पर तिल उवटना; तिलयुक्त जल से स्नान, तिल से होम, तिल-दान, तिल-जल से पितृ-तर्पण एवं तिल-भोजन; मिलाइए कृत्यरत्नाकर (५१९)।

षडक्षर-मन्त्र : महाश्वेता मन्त्र में ६ अक्षर हैं, हेमाद्रिं (व्रत० २, ५२१); दूसरा है 'खलोल्काय नमः' कृत्यकल्पतरु (व्रत० ९)।

षण्मतिवत: चैत्र शुक्ल ६ पर ६ ऋतुओं की पूजा का आरम्भ; ऋतु-त्रत; देवता ऋतुएँ; कम से फलों एवं पुष्पों, रूक्ष वस्तुओं (ग्रीष्म में), मीठी वस्तुओं (वर्षा में), भोजन एवं लवण (शरद में), कटु (तिक्त) एवं अम्ल (खट्टे) पदार्थों (हेमन्त में), तीक्षण पदार्थों (शिशिर में) से ६ ऋतुओं का सम्मान करना; प्रत्येक पष्ठी पर उपवास, नक्त-विधि (५ प्रकार के पदार्थों का त्याग, केवल ऋतु-सम्बन्धी पदार्थों का ही सेवन); एक वर्ष तक; हेमादि (वत० २, ८५८-८५९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१५६।१-७ से उद्धरण)।

षष्टिवत : मत्स्यपुराण (१०१।१-८३) में ६० व्रतों का उल्लेख है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४३९-४५१); इन्हें रुद्र ने अपनी पत्नी को बताया है।

षष्ठीदेवी : ब्रह्मवैवर्त (२।४३।३-७२) में आया है कि पष्ठी, मंगलचण्डी एवं मनसा प्रकृति के अंश हैं, पष्ठी बच्चों की देवी हैं, उन्हें माताओं में देवसेना कहा गया है, वे स्कन्द की पत्नी हैं, वे बच्चों की रक्षा करती हैं,

उन्हें दीर्घ जीवन देती हैं; इस पुराण में सूतिका-गृह में शिशु-जन्म के छठे दिन देवी-पूजा की कथा आयी है; सूरिक:-पण्ठी के लिए देखिए कृत्यतत्त्व (४७१-४७५)।

षष्ठीवतः (१) पंचमी को उपवास; ६ या ७ को सूर्यपूजा; अश्वमेध-यज्ञ का लाभ; हेमाद्रि (वत॰ १, ६२७, ब्रह्मपुराण से उद्धरण); (२) शुक्ल ६ पर जव मंगल होता है; विभिन्न मासों में व्रत करना; अक्षय फल की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत॰ १, ६२७-६२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

षष्ठीवत (बहुवचन में) : भविष्यपुराण (१।३९-४६), भविष्योत्तरपुराण (अध्याय ३८-४२), कृत्य-कल्पतरु (व्रत० ९८-१०३); यहाँ केवल ३ व्रत हैं; हेमाद्रि (व्रत० १,५७७-६२९, यहाँ २१ व्रतों का उल्लेख है); हेमाद्रि (काल, ६२२-६२४); कालनिर्णय (१८९-१९२); तिथितत्त्व (३४-३५); समयमयूख (४२-४३); पुरुषार्थविन्तामणि (१००-१०३); व्रतरत्नाकर (२२०-२३६)।

जव पब्ठी पंचमी या सप्तमी से युक्त हो तो सामान्य नियम यह है कि सप्तमी से युक्त पब्ठी पर व्रत एवं उपवास करना चाहिए, केवल स्कन्दपष्ठी में पंचमी से युक्त पब्ठी को वरीयता मिलती है; कालनिर्णय (१९०); निर्णयामृत (४८); समयमयूख (४२); पुरुपार्थचिन्तामणि (१००-१०१); पष्ठी कार्तिकेय (या स्कन्द)को प्रिय है, क्योंकि उस तिथि पर उनका जन्म हुआ था और उसी तिथि पर वे देवों के सेनापित बनाये गये थे; भविष्यपुराण (११३९११-१३); हेमादि (काल० ६२२, ब्रह्मपुराण से उद्धरण); कृत्यकल्पतरु (नैयतकालिक, ३८२-३८३)।

कुछ बातें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। स्कन्द पाठी के स्वामी हैं और प्रति पष्ठी पर सुगंधित पुष्पों, दीपों, वस्त्रों, काक के खिलौनों, घण्टो, दर्पण एवं चामर से उनकी पूजा होनी चाहिए; कार्तिकेय की पूजा विशेष रूप से राजाओं द्वारा चम्पा के फूलों से होनी चाहिए; कृत्यग्त्नकर (२७६); मार्गशीर्प शुक्ल ६ को महापष्ठी कहा जाता है; हेमाद्रि (काल, ६२३-६२४)। देखिए नारदपुराण (१।४५।१-५१) जहाँ वर्ष के वारह मासों में किये जाने वाले पष्टीव्रतों का उल्लेख है।

संवत्सरव्रत : चैत्र गुक्ल पर आरम्भ; पाँच दिनों तक; अग्नि, सूर्य, सोम, प्रजापित एवं महेक्वर को एक युग के पाँच वर्षों के रूप में माना गया है, यथा—संवत्सर, परिवत्सर, इण्टापूर्त (इदावत्सर?), अनुवत्सर एवं उद्वत्सर; उन्हें एक मण्डल में कम से नोले, क्वेत, लाल, क्वेत-पीत एवं काले पुष्पों से स्थापित करना चाहिए; तिल, चावल, जौ, घो, क्वेत सरसों से कम से होम वरना चाहिए; पाँच दिनों तक नक्त; अन्त में ५ सुवर्णों का दान; यह पंचमूर्तिव्रत है; हेमाद्रि (व्रत० २, ४०९-४२०, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। वैदिक साहित्य में एक युग के पाँच वर्षों को विभिन्न नाम दिये गये हैं; अथवंवेद (६।५५।३); तै० सं० (५।७।२-३); तै० ब्रा० (१।४।१०।१)।

संवत्सरवत : (बहुवचन में) विष्णुधर्मोत्तरपुराण (१।८२।८-२०, यहाँ ६० वर्षों के नाम आये हैं, यथा—प्रभव, विभव आदि); कृत्यकल्पतरु (ब्रतकाण्ड, ४३५-४५१); हेमाद्रि (ब्रत० २, ८६२-८६७)।

संबत्सरारम्भविधि : हेमाद्रि (व्रत० १, ३६०-३६५) । देखिए ऊपर 'चैत्र प्रतिपदा ।'

संकटचतुर्थी: श्रावण कृष्ण ४ पर चन्द्रोदय (अर्थात् सूर्यास्त के उपरान्त ८ घटिकाओं पर) के समय गणेश-प्रतिमा-पूजा, एक कलश-स्थापन; १६ उपचार; मोदकों (१००८, १०८, २८ या ८) का निर्माण; दिन भर उपवास या चन्द्रोदय होने तक भोजन न प्रहण करना; जीवन भर या २१ वर्षों तक या एक वर्ष तक; आचार्य को द्रान; २१ ब्राह्मणों को भोजन; स्मृतिकीस्तुभ (१७१-१७७); वतरत्नाकर (१२०-१२७); वर्षकृत्यदीपक (६८); धर्मसिन्धु (७४); यह वृत जीवन भर या २१ वर्षों तक किया जा सकता है; ऐसा कहा गया है कि तारकासुर को हराने के लिए इसे शिव ने भी किया था।

संकट्टहर-गणपितवत: माघ कृष्ण ४ पर; तिथिवत; चन्द्रोदय पर; देवता गणेश; व्रतरत्नाकर (१७६-१८८) ने विस्तृत उल्लेख किया है, जिसमें ऋ० (१०१६३।३, ४।५०।६), पुरुषसूक्त (ऋ० १०।९०) के मन्त्र तथा नारदपुराण के एवं अन्य पौराणिक मन्त्र दिये गये हैं; १६ उपचार; २१ नामों के साथ गणेश की पूजा, उतनी ही संख्या में दूर्वी की शाखाएँ, उतनी ही संख्या में भृङ्गराज, बिल्ब, बदरी, धत्तूर, शमी की पत्तियाँ एवं लाल फूल; गणपित के १०८ नामों से पूजी; अन्त में पूजक को ५ मोदक एवं दक्षिणा; ऐसा आया है कि व्यास ने यह वत युधिष्ठिर को बताया था; संकष्ट का अर्थ है कष्ट या विपत्ति, 'कष्ट' का अर्थ है 'क्लेश', 'सम्' उसके आधिक्य का द्योतक है।

संक्रान्तिवत : देखिए हेमाद्रि (व्रत० ७२७-७४३, कुल १६); हेमाद्रि (काल, ४०७-४३८); कृत्य-रत्नाकर (६१३-६२१); कालनिर्णय (३३१-३४६); वर्षिकयाकौमुदी (२०४-२३१); स्मृतिकौस्तुम (५३१-५४५); व्रतरत्नाकर (७२९-७३८); पुरुषार्थचिन्तामणि (३५७-३६६)।

संकान्तिस्नान: देखिए गत अध्याय ११; हेमाद्रि (व्रत० २, ७२८-७३०, देवीपुराण से उद्धरण) में जल में कुछ डालकर १२ संकान्तियों पर स्नान करने की विधि है।

संघाटक-यत : कार्तिक शुक्ल १ पर आरम्भ, उस दिन एक भक्त; द्वितीया एवं तृतीया पर उपवास; चतुर्थी पर पारण; तिथित्रत; देवता शिव; यदि एक पक्ष में किया जाय तो ७ है मासों तक किन्तु यदि दोनों पक्षों में,तो ३ है मासों तक; एक पुरुष एवं एक स्त्री की दो स्वर्ण प्रतिमाओं का निर्माण तथा पंचामृत से स्नान; जागर; भूमि-शयन; आचार्य को प्रतिमा-दान; नारो का पित एवं पुत्र से वियोग नहीं होता; इस ज़त से पावंती ने शिव को प्राप्त किया; हेमाद्रि (वत० २, ३७०-३७५, वराहपुराण से उद्धरण)।

सत्कुलावाप्तिक्षतः मार्गशीर्षं शुक्ल १ पर आरम्भ; तीन रंगों के गुष्पों एवं लेपों से विष्णु-पूजा; त्रिमबुरों, तीन दीपों का अर्पण; जी एवं तिल का होम; तीन धातुओं (सोना, रजत एवं ताम्र) का दान; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२०१।१-५)।

सत्यनारायणव्रत : वंगाल, विहार, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में अत्यन्त प्रचिलत; भविष्यपुराण (प्रतिस्तर्गपर्व), अध्याय २४-२९ में निरूपित; महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इसे मुसलमानी प्रभाव से आकान्त माना है। आरम्भिक काल में (और बहुत-से स्थानों में आज भी) इसे 'सत्यपीर की पूजा' कहा जाता है; स्कन्दपुराण के रवाखण्ड (वंगवासी संस्करण) में उल्लिखित है। देखिए जे० बी० ओ० आर० एस्० (जिल्द १६, पृ० ३२८) जहाँ उपर्युक्त लेखक ने कहा है कि 'सीनीं' की मुस्लिम विधि हिन्दुओं द्वारा सत्यनारायण की कथा में अपना ली गयी। यह वत आधुनिक मध्यम वर्ग के लोगों एवं नारियों में अत्यधिक प्रचलित है। इस वत की कथाओं के लिए देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द ३,पृ० ८३-८५)। ऐसा आया है कि विष्णु ने नारद से इस वत का उल्लेख किया था। किसी भी दिन सत्यनारायण-पूजा की जा सकती है; नैवेद्य सवा सेर या सवा मन, जिसमें केला, घृत, दूध, गेहूँ का आटा, गुड़ या शर्करा सम्मिलित रहते हैं; ये सभी मिला दिये जाते हैं; यजमान को कथा सुननी चाहिए और प्रसाद ग्रहण करना चाहिए; गीत, नृत्य एवं जागर; तव लोग अपने-अपने घर जाते हैं; इससे सभी कामनाओं की पूर्ति होती है; एक ब्राह्मण, एक लकड़हारे, साधु नामक विणक् एवं उसकी पुत्री कलावती की कथाएँ; इन गाथाओं में सत्यनारायण प्रतिहिसक एवं ईप्यालु प्रकट किये गये हैं; ये कथाएँ स्कन्द-पुराण के रेवाखण्ड से ली गयी कही गयी हैं।

सदावत : इसे 'अन्नदानमाहात्म्य' कहा गया है; हेमाद्रि (व्रत० २,४६९-४७५) में भविष्योत्तरपुराण का उद्धरण आया है कि कृष्ण ने युधिष्ठिर से दूसरों को अन्न (भोजन) देने की महत्ता बतायी है और कहा है कि राम

एवं लक्ष्मण की ब्रह्म-भोज न देने के कारण वनवास भोगना पड़ा, राजा श्वेत को स्वर्ग में भी भूल की पीड़ा सहनी पड़ी, क्योंकि उसने भूखे ब्राह्मणों को भोजन नहीं दिया था। इस व्रत का अर्थ है सदा भोजन (व्रत) देना। आजकल इसे 'सदावर्त', 'सदावर्त' या 'सदावर्त' कहते हैं। हेमाद्रि (व्रत० २, ४७१) में एक श्लोक है 'भोजन प्राणियों का जीवन है, यही उनकी शक्ति है, शौर्य है और सुख है, अतः अन्नदाता प्रत्येक वस्तु का दाता कहा जाता है, देखिए तैं० उप० (१।११।२): अतिथि-देवो भव; और देखिए अथवं० (९।६) एवं कठोपनिषद् (१।१।७)।

सन्तानदन्नत: तिथित्रत; जो कार्तिक पूर्णिमा को अपनी या दूसरे की कन्या को विवाह में देता है, नदियों के संगम पर उपवास करता है, वह सुखद लक्ष्य की प्राप्ति करता है; हेमाद्रि (व्रतः २, २३८, भविष्यो-त्तरपुराण से उद्धरण)।

सन्तानाष्ट्रमी : चैत्र कृष्ण ८ पर; तिथिवत; कृष्ण एवं देवकी की पूजा; उपवास; एक वर्ष के लिए; चार मासों की अविध में अष्ट्रमी पर कृष्ण-प्रतिभा का घी से स्नान एवं घी का दान; हेमाद्रि (व्रत०१,८४६-८४७,

विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ३।२१७।१-११ का उद्धरण)।

संध्या: सूर्योदय के पूर्व एवं सूर्यास्त के उपरान्त तीन घटिकाओं (७२ मिनटों) की अविध ; इस अविध में निम्निलिखित चार कार्य नहीं किये जाने वाहिए—भोजन करना, सम्भोग करना, सोना एवं वेदाघ्ययन ; हेमाद्रि (काल, ६९४-६९७) ; पुरुपार्थिचन्तामणि (४६) ; वृहज्जातक (७।१) पर उत्पल ने वराह को उद्धृत करके लिखा है कि सूर्य के क्षितिज के नीचे चले जाने तथा तारों के प्रकट होने तथा पूर्व में अर्थ-चन्द्र के प्रकाश होने तक की अविध को संध्या कहते हैं।

सप्तद्वीपवत : चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ; सात दिनों तक क्रम से सात द्वीपों, यथा—जम्बू, शाक (शकों का), कुश, क्रींच, शाल्मलि, गोमेद एवं पुष्कर की पूजा; घी से होम एवं सात घान्यों का दान; नक्त-विधि एवं भूमि-शयन; एक वर्ष; चाँदो से बने द्वीपों की आकृति का दान; कल्पान्त तक स्वर्ग में स्थिति; विष्णुघर्मोत्तरपुराण

(३११५९११९७)।

सप्तमी-निर्णय : जब सप्तमी पष्ठी एवं अष्टमी से विद्ध हो तो सप्तमी का वृत पष्ठी से विद्ध सप्तमी पर होना चाहिए, किन्तु यदि किसी कारण से पष्ठी से युक्त सप्तमी न मानो जाय तो अप्टमी से युक्त सप्तमी ग्रहण करनो चाहिए; कालनिर्णय (१९२-१९४); तिथितत्त्व (३५-३६); पुरुषार्थचिन्तामणि १०३-१०४)।

सप्तमीलोकब्रत : सप्तमी पर सात लोकों की पूजा; इससे महान् ज्ञान एवं अद्वितीय स्थिति की प्राप्ति

होती है; हेमाद्रि (व्रत॰ १, ७९२, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से एक श्लोक)।

सप्तमीवत : (बहुवचन में) मतस्यपुराण (अव्याय ७४-८०); पद्मपुराण (५।२१।२१५-३२१); भिव-व्योत्तरपुराण (४३-५३); नारदपुराण (१।११६।१-७२); कृत्यकल्पतरु (व्रत० १०३-२२५, कुल ४४ वर्त); हेमाद्रि (व्रत० १,६३२-८१०,६२ वर्त); वर्षत्रियाकौमुदी (३५-३८); तिथितत्त्व (३६-४०); व्रतरत्नाकर (२३१-२५५)। सप्तमी-पूजा की प्रशंसा के लिए देखिए विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६९।१-७)।

सप्तमीस्नापन: मत्स्यपुराण (६८।१-४२) ने विशव वर्णन किया है; हेमाद्रि (व्रत०१, ७६३-७६८)। इसे रोगों, दुर्भाग्यों, कलेशों एवं शिशु-मृत्युओं को रोकने के लिए किया जाता है। यह नष्टसन्तान वाली नारी से उत्पन्न शिशु के सातवें मास में या शुक्ल ७ पर किया जाता है, किन्तु जन्मतिथि पर नहीं किया जाता; चावल एवं दूध की आहुतियाँ सूर्य, रुद्र एवं माताओं को दो जाती हैं. सूर्य के लिए ऋ० (१।५०) की ऋचाएँ तथा रुद्र के लिए ऋ० (१।४३) की ऋचाएँ सुनायी जाती हैं; अर्क एवं पलाश की समिधाएँ, जी, काल तिल

एवं घृत की १०८ आहुतियाँ; चार दिशाओं में चार कलश, मध्य में पाँचवाँ कलश, सभी कलशों में रत्न, सर्वीषियाँ, कई स्थानों की मिट्टी डाली जाती है, सात विवाहित स्त्रियाँ नष्ट-सन्तान नारी के ऊपर जल का मार्जन करती हैं तथा सूर्य, चन्द्र एवं देवों का आवाहन बच्चे की सुरक्षा के लिए करती हैं; आचार्य को यम की स्वर्णप्रतिमा दी जाती है; सूर्य एवं कपिला गाय की पूजा; कर्ता देवों को अपित किये गये भोजन को प्रसाद हम में ग्रहण करता है।

सप्तम्तिवत : (बहुवचन में) विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१५७-१६६)।

सप्तिषवत : (१) सप्तिषियों की पूजा से उन ऋषियों तक पहुँच एवं ऋषिस्थिति प्राप्त होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) चैत्र शुक्ल से सात दिनों के लिए सात ऋषियों, यथा—मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह, कतु एवं विस्ष्ट की फलों, पुष्पों, गाय के दूध से पूजा; उन दिनों नक्तिविधि; तिल एवं महाव्याहृतियों से होम; एक वर्ष तक; अन्त में अग्निहोत्री को कृष्ण हरिण का चर्म देना; मोक्ष-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६५।१-७ से उद्धरण)।

सप्तवारव्रत : कृत्यकल्पतरु (व्रत० २५-२७); हेमाद्रि (व्रत० २, ५२०-५९२); कृत्यरत्नाकर (५९३-६०४)।

सप्तम्यर्क-अतः राजमार्तण्ड (श्लोकः ११७२-११७३)।

सप्तसप्तमीकत्प : शुक्ल पक्ष में किसी रिववार को; जब सूर्य उत्तरायण का आरम्भ करता है और जब कोई पुरुष नक्षत्र होता है; सभी सात सप्तिमयों पर ब्रह्मचर्य-पालन, नक्त-विधि; ७ राप्तिमियाँ इस प्रकार हैं— अर्कसम्पुट, मरिच, निम्ब, फल, अनोदना, विजया एवं कामिकी; पाँचवीं पर एकभक्त तथा छठी पर संभोग-वर्जन एवं मधु तथा मांस का त्याग; पत्तों पर सात नाम लिखकर, एक घट में डालकर किमी बच्चे से (जो इन सात नामों के अर्थ को नहीं जानता) एक पत्ता निकलवाना और उसे सातवीं सप्तमी मानना; एक वर्ष तक; सभी आकांक्षाओं की पूर्ति एवं सूर्यलोक तक पहुँच; कृत्यकल्पत्तरु (व्रत० १८९-१९१); हेमादि (व्रत० १, ६८७-६८९, भविष्यपुराण १।२०८।२-३२ से उद्धरण)।

सप्तसागर-वृत या सप्तसमुद्र-वृत: चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ; कम से सुप्रभा, कांचनाक्षा, विशाला, मानभोद्भवा, मेघनादा, सुवेणु एवं विमलोदका की पूजा; उनके नाम पर दही से होम; ब्राह्मणों को दही से युक्त भोज; एक वर्ष तक; तीर्थस्थान पर किसी ब्राह्मण को सात वस्त्रों का दान; इसे सारस्वत वृत भी कहा जाता है; हेमादि (वृत० २, ५०७, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। उपर्युक्त सरस्वती नदी की संज्ञाएँ या उसकी सात सहायक नदियों के नाम हैं, अतः 'सारस्वत' नाम अधिक उपयुक्त लगता है। देखिए विष्णुघर्मोत्तर० (३।१६४।१७)।

सप्तसुन्दरक-मत: पार्वती की, उसके सात नामों, यथा—कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा एवं अम्विका के साथ पूजा; सात दिनों तक सात बुमारियों (लगभग ८ वर्षीया) को भोजन देना; ६ दिनों तक उपर्युक्त सात नामों में किसी एक का प्रयोग तथा 'कुमुदा प्रसन्न हों' ऐसा कहना; सातवें दिन सातों का आवाहन तथा गन्य, पुष्प आदि तथा पान, सिन्दूर, नारियल आदि से सम्मान करना; पूजा के उपरान्त प्रत्येक के सामने दर्पण दिखाना; इससे सौन्दर्य एवं सौमाग्य की प्राप्ति तथा पाप-मुक्ति होती है; हेमाद्रि (वत० २, ८८६-८८७, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

समुद्रयत : चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ ; सात दिनों तक प्रतिदिन ; लवण, दूध, घी, दिधमण्ड, जलमिश्रित मदिरा, गृत्रा के रस एवं मीठे दहीं से पूजा ; रात्रि में हिविष्य-भोजन ; घी से होम ; एक वर्ष तक ; अन्त में एक दुधारू गाय का दान ; राजा सम्पूर्ण विश्व का अधिपति हो जाता है ; स्वास्थ्य, धन एवं स्वर्ग की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ४६४-४६५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१६०।१-७ से उद्धरण) । कभी-कभी समुद्र के सात प्रकार कहे गये हैं, यथा वायुपुराण (४९।१२३) एवं कूर्मपुराण (१।४५।४) में, और वे हैं लवण, ईख के रस, मद्य, दूध, घी, दही एवं जल के समुद्र।

समुद्र-स्तान: पूर्णिमा एवं अमावास्या जैसे पर्वदिनों पर समुद्र में स्नान करना चाहिए, किन्तु मंगळवार एवं शुक्रवार को नहीं; समुद्र एवं अश्वत्य वृक्ष का सम्मान करना चाहिए, किन्तु उन्हें छूना नहीं चाहिए, किन्तु शनिवार को अश्वत्य का स्पर्श किया जा सकता है; सेतु अर्थात् रामेश्वरम् में स्नान करने के छिए काळ सम्बन्धी कोई अवरोध नहीं है; धर्मसिन्ध् (३६)।

सम्पद्-गौरोबत : माघ शुक्ल १ पर; कुम्भ मास में सभी विवाहित एवं अविवाहित नारियों के लिए। सम्पद्-वत : पंचमी को लक्ष्मी-पूजन एवं उपवास; एक वर्ष तक; वर्ष के अन्त में कलश में कुछ सोना रखकर दान; कर्ता प्रत्येक जन्म में घनी होता है और विष्णु-लोक जाता है; यह पष्ठी का वत है; कृत्यकल्पतरु (वत० ४४१-४४२, मत्स्यपुराण १०१।१९-२०); वर्षत्रियाकौमुदी (३४, मत्स्यपुराण से उद्धरण)।

सम्पुट-सप्तमी : देखिए ऊपर 'अर्कसम्पुटसप्तमी'।

सम्पूर्णवतः किसी बृटि या अवरोध या विघ्नविनायकों द्वारा दूषित विथे गये सभी वर्तों को यह वत पूर्ण कर देता है; किसी देव की अपूर्ण पूजा में उस देव की स्वर्ण या रजत प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए; उसके निर्माण के एक मास उपरान्त किसी ब्राह्मण द्वारा उसे तूध, दही, घी एवं उत्तर से स्नान कराकर पुर्णों आदि से पूजा करनी चाहिए तथा चन्दन लेप से सिक्त जलपूर्ण कला से उस देव को अध्यं देना चाहिए और अपूर्ण पूजा को पूर्ण करने के निमित्त प्रार्थना करनी चाहिए और 'स्वाहा' के साथ आहुतियाँ दी जानी चाहिए; आचार्य द्वारा 'तुम्हारी अपूर्ण पूजा पूर्ण हो गयी है' कहा जाना चाहिए। पुराण ने जोड़ा है—'देव ब्राह्मणों की बात मान लेते हैं; ब्राह्मणों में सभी देव अवस्थित रहते हैं; उनके वचन असत्य नहीं होते'; हेमाद्रि (व्रत ० २, ८७६-८७९, मिनप्यो-त्तरपुराण से उद्धरण)।

सम्प्राप्ति-द्वादशी: पौप कृष्ण १२ पर; अच्युत (कृष्ण) की पूजा; नास्तिकों आदि से न बोलना; वर्ष के दो भागों में; पौप से ६ मासों में कमशः पुण्डरी काक्ष के रूप में, माधव रूप में (माध में), विश्व रूप रूप में (फाल्गुन में), पुरुषोत्तम रूप में (चैत्र में), अच्युत रूप में (वैशाख में) तथा जय रूप में (ज्येष्ठ में); प्रथम ६ मासों में स्नान एवं भोजन में तिल का प्रयोग; आपाद से आंगे के ६ मासों में पंचगव्य; इन ६ मासों में भी पूर्वोवत नामों से ही पूजा; एकादशी को वृत तथा द्वादशी को नक्त या एक भक्त; वर्ष के अन्त में एक गाय, वस्त्र, हिरण्य, अन्न, भोजन, आसन एवं पलंग का 'केशव प्रसन्न हों' के साथ दान; सभी कामनाओं की पूर्ति, इसो से वृत का नाम सम्प्राप्ति है; हेमाद्वि (तृत० १, १०९४-१०९५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सम्भोग-वृत: दो प्रथम एवं दो पंचमी तिथियों पर उपवास; सूर्य का ध्यान, पत्नी के साथ छेटे हुए भी न तो प्रेम प्रदर्शित करना और न संभोग करना; ऐसा करने से सहस्रों वर्षों के तप के बराबर फल होता है; कृत्यकल्पतर (वृत्त० ३८८); हेमाद्रि (वृत० २, ३९४, मिबध्यपुराण से उद्धरण)।

सरस्वतीपूजाविधि : आश्विन शुक्ल में मूल-नक्षत्र पर सरस्वती का आवाहन, प्रतिदिन पूजा और श्रवण (जो मूल से चौथा नक्षत्र है) पर विसर्जन कुल; चार दिनों तक सामान्यतः आश्विन शुक्ल ७ से १० तक; व्रतराज (२४८-२४९); दर्पकृत्यदीपक (९३ एवं २६८-२६९); दोनों ग्रन्थों में ऐसा आया है कि इन दिनों अध्ययन, अध्यापन एवं पुस्तक-लेखन वर्जित है।

सरस्वतीस्थापन: आश्विन शुक्ल नवमी पर सरस्वती को पुस्तकों में स्थापित किया जाता है; वर्षकृत्यदीपक (९२-९३ एवं २६८-२६९)। तिमल देशों में एक विशिष्ट सरस्वती-पूजा होती है, जिसमें बड़े-बूढ़ों एवं छोटों की पुस्तकों एकत्र की जाती हैं, कन्याएँ एवं विवाहित नारियाँ अपनी संगीत-पुस्तकों एवं वीणा लाती हैं और सब की पूजा सरस्वती के रूप में की जाती है। शिल्पकारों एवं श्रमिकों में आज के दिन आयुधपूजा (उनके व्यापारिक यन्त्रों की पूजा) होती है।

सरिदन्त : मनोनुकूल नदी की पूजा; पुण्य प्राप्त होता है; हेमाद्रि (व्रत० १, ७९०, विष्णुधर्मोत्तरपुराण

से उद्धरंण); दुः छ लोग इसे सप्तमी-त्रतों के अन्तर्गत रखते हैं।

सर्पंचमी : पंचमी को पयोच्नत करना च।हिए, किसी ब्राह्मण को एक स्वर्ण-सर्प का दान करना चाहिए; इससे सर्पों से भय नहीं होता; हैमाद्रि (व्रतः १, ५६७, :ाविष्यपुराण से उद्धरण)।

सपंबति : देखिए समृतिकौस्तुभ (१७०-१७१)।

सर्पविषापह-पंचमी: श्रावण कृष्ण ५ पर; द्वार के दोनों ओर गोवर से सर्पों की आकृति बनाना; गेहूँ, दूव, भुने अन्नों, दही, दूर्वाशाखाओं, पुष्पों आदि से उनकी पूजा; सर्प प्रसन्न हो जाते हैं, सात पीढ़ियों तक सर्पों का मय नहीं रहता; हेमादि (व्रत० १, ५६४-५६५, स्कन्दपुराण के प्रभास-खण्ड से उद्धरण); कृत्यकल्पत्र ('९४, भिनिष्यपुराण १।३२।६२-६४ से उद्धरण); हेमादि (व्रत० १, ५६४)।

सर्वकामवत: (१) माघ कृष्ण १४ पर पितरों की पूजा; यज्ञ करने का पुण्य; हेमाद्रि (व्रत०२,१५५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) मार्गशीर्ष ११ पर उपवास, चन्द्र तथा मंगल, सूर्य, निर्ऋति (मृत्यु एवं विपत्ति की देवी), वरुण, अग्नि, रुद्र, मृत्यु, दुर्गा आदि ११ देवी-देवताओं की पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में एक गोदान; रुद्रलोको की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत०१,११५१,विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सर्वकामावान्तिवृतः इसमें कार्तिक से १२ मालाएँ (सरणियाँ) होती हैं; कार्तिक पूणिमा पर पड़ने वाली कृत्तिका पर उपवास एवं एक वर्षं तक गन्ध, पुण्पों आदि से नर्रीसह-पूजा; वर्ष के अन्त में श्वेत वछड़े के साथ एक श्वेत गाय एवं चाँदी का दान; शत्रुओं से मुक्ति; मार्गशीर्ष से आगे आश्विन तक, उस नक्षत्र पर उपवास जिसके उपरान्त पूर्णिमाएँ ज्ञापित होती हैं तथा कृष्ण, उनके रूपों एवं अवतारों की विभिन्न नामों से (मार्गशीर्ष में अनन्त, पौष में बलदेव, माघ में वराह...) पूजा; वर्ष के अन्त में किये गये दान विभिन्न होते हैं; इससे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, पाप मध्ट होते हैं और स्वर्ग-प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (वृत्त० २, ६५५-६५९, विष्ण्धर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सर्वगन्ध : (सभी सुगन्धित द्रव्य)। ये विभिन्न ढंगों से उल्लिखित हैं। हेमाद्रि (व्रत० १,४४) ने दो रूप दिये हैं: (१) कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी एवं कुंकुम को बराबर मात्रा में सर्वगन्ध कहा जाता है; (२) कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, चन्दन, कक्कोल।

सर्वफल्त्यागः मार्गशीर्षं शुक्ल ३, ८, १२ या १४ पर या अन्य मासों की इन्हीं तिथियों पर; बाह्मणों को पायस का मोज; एक वर्ष तक १८ घान्यों में कोई एक घान्य, सभी फलों एवं कन्दों का त्याग, किन्तु ओषि के रूप में इनका ग्रहण हो सकता है; रुद्र, उनके बैल एवं धर्मराज (यम) की स्वर्ण-प्रतिमाओं का निर्माण; स्वर्ण, रजत एवं ताम्र के १६ चित्र, प्रत्येक दल में बड़े-बड़े फल (यथा बेल आदि), छोटे-छोटे फल (उदुम्बर, नारियल), कन्द (सुवर्णकन्द आदि); अन्नराशि पर दो जलपूर्ण कलश; एक पलग; ये सभी पदार्थ एक गाय के साथ किसी गृहस्य ब्राह्मण को दे दिये जाते हैं; 'मुझे अक्षय फल प्राप्त हो' का कथन; मत्स्यपुराण (९६।१-२५)। सर्वमंगलत्रयोदशी: प्रति मास शुक्ल १३ पर एकभक्त या नक्त या उपवास तथा कृष्ण, बलभद्र एवं मंगला (दुर्गा) देवी (जिसे अंकावंका कहा जाता है) की पूजा; इन तीनों के स्मरण या इन तीनों की प्रतिमाओं की पूजा एवं पुष्प, मांस एवं मदिरा अपंण से सभी किठनाइयों पर विजय; हेमाद्रि (व्रत०२, १६-१७, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); कृष्ण ने युविष्ठिर से कहा था कि उनके मुरु सान्दीपनि ने जब दक्षिणा के रूप में उनसे अपने मृत पुत्र को जीवित कर देने को कहा तो उन्होंने (कृष्ण ने) देवी का घ्यान किया और मृत पुत्र को पुनर्जीवित कर दिया।

सर्वन्नतः शनिवार को पड़ने वाली शुक्ल १३ पर शिव-पूजा तथा उपवास; महापातकों से मुक्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, २४)।

सर्वाप्ति-ज्ञत: यह चतुर्मूतिवत है; एक वर्ष तक चार मासों की तीन अविधयों में; विष्णु के चार रूप है: वल, ज्ञान, ऐक्वर्य एवं शिवत; वासुदेव, संकर्षण, रुद्र एवं अनिरुद्ध पूर्व, दक्षिण, पिक्चम एवं उत्तर की चार दिशाओं के चार मुख हैं जो वल, ज्ञान आदि रूपों के प्रतिनिधि हैं; चैत्र से आगे के चार मासों में पूर्व से उत्तर के रूपों की पूजा; किसी ब्राह्मण को दिये जाने वाले दान-पदार्थ चैत्र में गृहस्थी के लिए उपयोगी होते हैं, वैशाख में युद्ध-सामग्री के योग्य, ज्येष्ट में कृषि के लिए उपयोगी तथा आषाढ़ में यज्ञ के लिए उपयोगी होते हैं; यही विधि आगे की अविधियों में, यथा श्रावण तथा मार्गशीर्ष से आरम्भ होने वाले मासों में लागू होती है; स्वर्ग की प्राप्ति, इन्द्रलोक एवं विष्णु से सालोक्य की उपलब्धि; हेमाद्रि (व्रत० २, ५०२-५०३, विष्णु-धर्मीत्तर० ३।१४०।१-१३ से उद्धरण)।

सर्वाप्तिसप्तमी: माघ कृष्ण ७ पर; ध्यानपूर्वक सूर्य-पूजा; एक वर्ष तक; वर्ष की दो अवधियों में; प्रथम ६ मासों में तिल का स्नान एवं भोजन में प्रयोग, इन मासों में सूर्य के नाम कम से माघ मास से ये हैं: मार्तण्ड, अर्क, चित्रभान, विभावसु, भग एवं हंस; दूसरी अवधि के ६ मासों में स्नान एवं भोजन में पंचगव्य का प्रयोग; रात्रि में भोजन किन्तु नमक एवं तेल का त्याग; सभी इच्छाओं की पूर्ति; कृत्यकल्पतर (वत० १६८-१६९); हेमाद्रि (वत० १, ७३५-७३६, भविष्यपुराण १।१०८।१-१२ से उद्धरण)।

सवांषिः मुख्य ओषियाँ, यथा—मुरा, मांसी, वचा, कुष्ठ, शैलज, दो हरिद्राएँ, शुष्ठी (सूखी अदरख), चम्पक एवं मुस्ता; अग्निपुराण (१७७।१३); मदनरत्न (शान्ति पर); कृत्यकल्पतरु (शान्तिक); वर्षिक्रयाकौमुदी (२१२, दस नाम आये हैं); पुरुषार्थचिन्तामणि (३०७); व्रतराज (१६, दस नाम किन्तु विभिन्न रूप से); हेमाद्रि (व्रत० १, पृ० ४९) में आया है—'कुष्ठ मांसी हरिद्रे हे मुरा शैलेयचन्दनम्। वचा चम्पकमुस्ते च सर्वापध्यो दश स्मृताः॥'

सर्पपसप्तमी: तिथित्रत; देवता सूर्य; सात सप्तिमयों पर कर्ता सूर्याभिमुख हो अपनी हथेली पर पंचगव्य या अन्य द्रव पदार्थ रखता है तथा प्रथम से सातवीं सप्तमी तक कम से एक से आरम्भ कर सात सरसों रखकर उन्हें देखता है और अपने मन में कोई कामना करता है तथा सरसों से सम्बन्धित मन्त्र का उच्चारण कर बिना दाँत मिलाये पी जाता है; होम एवं जप; पुत्रों, घन एवं कामनाओं की प्राप्ति; हेमाद्रि (त्रत० १, ६८६-६८७, भविष्यपुराण से उद्धरण), कृत्यकल्पतर (त्रत० १८७-१८८)।

सस्योत्सव: (तैयार हो गये अनाजों का उत्सव) शुक्ल पक्ष में किसी शुभ तिथि, नक्षत्र एवं मुहुर्त पर खेत में संगीत, गान के साथ जाना, अग्न जलाकर होम करना, कुछ पके अनाज लेकर वैदिक मन्त्रों के साथ देवों एवं पितरों को अपित करना; कर्ता दही से मिलाकर पका अन्न खाता है और उत्सव करता है; हेमाद्रि (व्रत० २, ९१४, न्नह्मपुराण)। सहस्रभोजनिविधि : सहस्र जाह्मणों को भोज देने की विधि ; स्मृतिकौस्तुभ (४५४-४५५, बौधायनसूत्र का उद्धरण)। इसे अपने घर या किसी मन्दिर में करना चाहिए; पके भोजन से तथा घृत से होम, विष्णु के १२ नामों, यथा—केशव, नारायण आदि का प्रयोग; भाँति-भाँति के दान।

सागरक्रत: यह चतुर्मूर्तिवत है; मासव्रत; श्रावण से चार मासों तक; चार जलपूर्ण घटों को चार समुद्रों के रूप में (हरि के चार रूप, यथा—वासुदेव, संकर्षण जादि) पूजना; इन मासों के सभी दिनों में किसी नदी में स्नान; प्रतिदिन होम; कार्तिक के अन्तिम दिन में ब्राह्मणों को सम्मान एवं तिल के तेल का दान; स्वर्ग-प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत २, ८२९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१४५।१-६ से उद्धरण)।

साधनदशमीव्रत : शुक्ल एवं कृष्ण की दशमी पर; यह एकादशी का एक अंग है; अहल्याकामघेनु (पाण्डुलिपि ६४०)।

साध्यव्रत : मार्गशीर्ष शुक्ल १२ पर; तिथिव्रत; देवता साध्य गण; एक वर्ष तक; साध्य गण १२ अर्घदेव कहे जाते हैं; हेमाद्रि (व्रत० १, ११७३, विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३।१८१।१-३ से उद्धरण); विष्णुधर्मोत्तरपुराण ने १२ साध्यों के नाम दिये हैं।

सामजत: यह संवत्सरव्रत है; एक वर्ष तक गोबर से बने वृत्त में शिव एवं कृष्ण की प्रतिमा को स्नान कराना; अन्त में किसी सामवेदी ब्राह्मण को तिलघेनु के साथ एक स्वर्णघट का दान; कृत्यकल्पतरु (व्रत॰ ४४२-४४३, मत्त्यपुराण १०१।२५-२६ से उद्धरण); हेमाद्रि (व्रत॰ २,८६४, पद्मपुराण के क्लोक)।

सारस्वतन्नतः (१) यह संवत्सरव्रत है; मत्स्यपुराण (६६।३-१८); कृत्यकल्पतर (व्रत० ४३५-४३६); हेमाद्रि (व्रत० १,५५३-५५५; बुक्ल पक्ष की उस तिथि पर जिसके अपने प्रिय देवता स्वामी हों या पंचमी पर, रिववार को या किसी गुभ दिन पर आरम्भ; दोनों संघ्याओं में एवं भोजन करते समय मौन व्रत; सरस्वती-पूजा तथा सुवासिनियों (सघवा नारियों) का सम्मान; पद्मपुराण (५।२२।१७८-१९४); भविष्योत्तरपुराण (३५।३-१९); (२) एक वर्ष तक दोनों संघ्याओं में मौन-साधन; वर्ष के अन्त में घृतपूर्ण घट, दो वस्त्रों, तिल एवं एक घण्टे का दान; सरस्वती-लोक की प्राप्त; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ४४१); हेमाद्रि (व्रत० २,८६२, पद्मपुराण से उद्धरण); यह मत्स्यपुराण (१०१।१७-१८) में विणित है; (३) चैत्र शुक्ल १ से प्रारम्भ कर सात दिनों तक; सुप्रभा, कांचनाक्ष्मी, विशाला, मानसरोवर, त्रिनादा, सुवेणु, विमलोदका (ये सभी सरस्वती के या उसकी शाखाओं के नाम हैं) की पूजा; प्रतिदिन दही से होम; दही से मिश्रित ब्रह्म-भोज; रात में घृत के साथ भात खाना; एक वर्ष तक; अन्त में अर्थात् फाल्गुन कृष्ण में अन्तिम सात दिनों तक एक से आरम्भ कर कम से सात वस्त्रों का दान; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६४।१-७)।

सार्वभौमन्नतः कार्तिक शुक्ल १० से आरम्भ; उस दिन दही एवं पके भोजन से नक्त-विधि; पवित्र भोजन से दस दिशाओं की पूजा; विभिन्न रंगों के पुष्पों एवं भोज्य पदार्थों से ब्राह्मणों का सम्मान; एक वर्ष तक; जो राजा इसे करता है, वह विजयी एवं सम्राट् हो जाता है; कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३०९); हेमाद्रि (व्रत० १, ९९२-९९३), दोनों में वराहपुराण (६५।१-६) से उद्धरण; कृत्यरत्नाकर (४२०); विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१६४-१-७)।

साबित्रीवृतः देखिए गत अध्याय ४।

सिहस्य-गुर : जब बृहस्पित सिंह राशि में रहता है तो शत्रु पर आक्रमण, विवाह, उपनयन, गृह-प्रवेश, देवप्रतिमा स्थापना तथा कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है; मलमासतत्त्व (पृ० ८२८); भुजबलिनबन्ध (पृ० २७४); शुद्धिकीमुदी (पृ० २२२)। ऐसा विश्वास है कि सिहस्थ बृहस्पित में सभी तीर्थस्थान गोदावरी में आ जाते हैं, अतः उस समय उसमें स्नान करना चाहिए (ऐसा काल एक वर्ष तक रहता है)। सिहस्थ गुरु में विवाह

एवं उपनयन के सन्पादन के विषय में कई मत हैं, कुछ लोगों का कथन है कि विवाह एवं अन्य सुभ कर्म ममा नक्षत्र वाले वृहस्पित (अर्थात् सिंह के प्रथम १३ ई अंश में) में विजित हैं। अन्य लोगों का कथन है कि गंगा एवं गोदावरी के मध्य के प्रदेशों में विवाह एवं उपनयन सिहस्थ गुरु के सभी दिनों में विजित हैं; किन्तु अन्य कृत्य मधा नक्षत्र में स्थित गुरु के अतिरिक्त कभी भी किये जा सकते हैं। अन्य लोग ऐसा कहते हैं कि जब सूर्य मेष राशि में हो तो सिहस्थ गुरु का कोई अवरोध नहीं है। इस विवेचन के लिए देखिए स्मृतिकौस्तुभ (पृ० ५५७-५५९)। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अमृत का कुम्भ जो समुद्र से प्रकट हुआ, सर्वप्रथम देवों द्वारा हरिद्वार में रखा गया, तब प्रयाग में और उसके उपरान्त उज्जैन तथा अन्त में नासिक के पास व्यम्बकेश्वर में रखा गया।

स्तितसप्तमी: मार्गशीर्ष शुक्ल ७ पर उपवास, कमलों एवं स्वेत पुष्पों से सूर्य या उसकी प्रतिमा की पूजा; अन्त में स्वेत वस्त्रों का दान; हेमाद्रि (व्रत० १, ७७८-७७९, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सितासप्तमी : भुवनेश्वर में ; १४ यात्राओं में एक यात्रा ; माघ शुक्ल सप्तमी पर ; गदाघरपद्धित (कालसार, १९१)।

सिद्धः शुक्रवार, प्रथमा, षष्ठी, एकादशी, त्रयोदशी, नक्षत्रों में पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराषाढा, हस्त, श्रवण एवं रेवती को सिद्ध क्षहा जीता है। इनमें सभी शुभ कृत्य किये जाते हैं; निर्णयामृत (३०)।

सिद्धार्थकादिसप्तमी: माघ या मार्गशीर्थ शुक्ल ७ पर, यदि अस्वस्थता हो तो किसी भी मास की सप्तमी पर; सूर्योदय के पूर्व आधे प्रहर (लगभग चार घटिकाओं) तक दांतों को विशिष्ट वृक्षों की टहनियों से स्वच्छ किया जाता है (जिन में प्रत्येक किसी कामना की पूर्ति के योग्य मानी जाती है, यथा मचूक से पुत्र प्राप्त होते हैं, अर्जुंत से सौभाग्य स्थिर होता है, निम्ब से समृद्धि प्राप्त होती है, अश्वत्थ से यश मिलता है...आदि)। जब दातुन फैंक दी जाती है तो उसके गिरने के ढंग से शकुन निकाले जाते हैं। सात सप्तिमर्यां मनायी जाती हैं, पहली सरसों से, दूसरी अर्क की किलयों से, तीसरी से सातवीं सप्तमी कम से मिरच, निम्ब, ६ फलों, भोजन (भात नहीं) से; जप, होम, सूर्य-पूजा, सूर्य-प्रतिमा के समक्ष सोता; गायत्री का पाठ (ऋ० ३।६२।१०); सूर्य-प्रतिमा के समक्ष सोते समय आये हुए स्वप्नों का निरूपण; विभिन्न पुष्पों से सूर्य-पूजा करने से विभिन्न लाभ, यथा—कमलों से यश, मन्दार से कुष्ठ हरण, अगस्त्य से सफलता आदि; ब्रह्म-भोज एवं रंगीन वस्त्रों, सुगन्धों, पुष्पों, हिवष्य भोजन, एक गाय का दान; कृत्यकल्पतर (व्रत० १७२-१८०); हेमाद्रि (व्रत० १,६७९-६८५, भविष्यपुराण १।१९३।२-२१ से उद्धरण); कृत्यकल्पतर (व्रत०) ने भविष्यपुराण (१९७।१-१०) को उद्धत किया है।

सिद्धिवनायकवत: शुक्ल ४ पर या जब श्रद्धा एवं भिक्त से प्रेरित कोई हर्पपूर्ण जागरण हो तब गणेश की पूजा; तिलयुक्त जल से स्नान; गणेश की हिरण्य या रजत की प्रतिमा की पूजा; पंचामृत से प्रतिमास्नान तथा गन्ध, पुष्पों, धूप दीप एवं नैवेद्य का, गणाध्यक्ष, विनायक, उमासुत, रुद्रप्रिय, विध्ननाशन के नामों के साथ अर्पण; २१ दूर्वाशाखाओं का अर्पण, २१ मोदक प्रतिमा के समक्ष रखे जाते हैं, एक गणेश के लिए, १० पुजारी तथा १० कर्ता के लिए; विद्या, धन एवं युद्ध में सिद्धि (सफलता) की प्राप्ति; हेमाद्रि (त्रत० १, ५२५-५२, स्कन्दपुराण से उद्धरण); स्मृतिकौस्तुभ (२१०-२१६); पुरुपार्थविन्तामणि (९५); व्रतराज (१४३-१५१)।

सीतलाषष्ठी : माघ शुक्ल ६ पर; बंगाल में प्रचलित; गुजरात में श्रावण कृष्ण ८ पर सीतलासप्तमी; उत्तर भारत में फाल्गृन (चैत्र) कृष्ण ८ पर सीतलाष्टमी।

सीतापूजा: (१) 'सीता' का अर्थ है 'कर्षित भूमि'। कृत्यरत्नाकर (५१८, ब्रह्मपुराण से उद्धरण) में आया है कि नारद के कहने पर दक्ष के पुत्रों द्वारा फाल्गुन कृष्ण ८ को पृथिवी मापी गयी थी; अतः देव एवं पितर लोग उस दिन अपूर्णे (पूओं) के साथ श्राद्ध की अभिलाषा करते हैं; (२) राम की पत्नी सीता की पूजा, जो फाल्गुन कृष्ण ८ को उत्पन्न हुई थीं; कृत्यरत्नाकर (५२६-५२९ एवं ५१८)। और देखिए 'फाल्गुनकृत्य' के अन्तर्गत।

सीमोल्लंघन : देखिए 'विजयादशमी' के अन्तर्गत, गत अध्याय १०; तिथितत्त्व (१०३); पुरुषार्थ-चिन्तामणि (१४५-१४८)।

सुकलश्रप्राप्तिवतः कुमारियों, सघवाओं एवं विधवाओं के लिए; नक्षत्रवत; देवता नारायण; कुमारी को तीन नक्षत्रों, यथा—उत्तराफालगुनी, उत्तराषाढ़ा एवं उत्तराभाव्रपदा को जगन्नाथ की पूजा करनी चाहिए तथा 'माघव' नाम लेना चाहिये, प्रियंगु एवं लाल पुष्पों का अर्पण करना चाहिये तथा कुंकुम का लेष करना चाहिये; 'माघव को प्रणाम' के साथ मघु एवं घी से होम; सुन्दर पित की प्राप्ति; हेमादि (व्रत० २, ६२८-६३०, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); शिव ने इस व्रत का वर्णन पार्वती से किया था।

सुकुलितरात्रयतः मार्गशीर्षं मास में उस तिथि को जो त्र्यहस्पृक् हो, इसे किया जाता है; तीन दिनों तक उपवास; रवेत, पीत एवं लाल पृष्पों, तीन लेपों तथा गुग्गुल, कुटुक (कटुक?) एवं राल की घूप से त्रिविकम (विष्णु) की पूजा; त्रिसघुर का अपंण; तीन दीप; जौ, तिल एवं सरसों से होम; त्रिलोह (सोना, रजत एवं ताम्र) का दान; हेमाद्रि (व्रत॰ २, ३२२-३२३, विष्णुघर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)। 'त्रिमघुर' एवं 'व्यहस्पृक्' को इनके अन्तर्गत देखिए।

सुक्रततृतीया-ग्रतः हस्त-नक्षत्र में श्रावण शुक्ल ३ पर; तिथिवत; नार।यण एवं लक्ष्मी की पूजा; तीन वर्षों के लिए; मन्त्र ये हैं—'विष्णोर्नुं कम्' (ऋ० १।१५४।१) एवं 'सक्तुमिव' (ऋ० १०।७२।२); ब्रत्तराज (१०१-१०३); कृष्ण ने इस व्रत का वर्णन अपनी वहिन सुभद्रा से किया है।

सुक्टतहादशी: तिथिव्रत; देवता विष्णु; फाल्गुन शुक्ल ११ पर उपवास एवं द्वादशी पर विष्णु-पूजा; एकादशी को दिन एवं रात्रि में 'नमो नारायणाय' का जप; कर्ती द्वारा कोच ईर्ष्या, लोभ, शठता आदि का त्याग; 'यह संसार व्यर्थ है' का स्मरण करना; यही विधि द्वादशी को भी; एक वर्ष तक प्रतिमास; अन्त में हरि की स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा एवं एक गाय के साथ उसका दान; कर्ता नरक का दर्शन नहीं करता; हेमाद्रि (व्रत०१, १०७९-१०८१, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सुखरात्रि या सुखरात्रिका : दीवाली (आश्विन अमावास्या) के लक्ष्मीपूजन को ऐसा कहा गया है; समयप्रदीप (पाण्डुलिपि, ४१ बीं०), कृत्यतत्त्व (४३१); वर्षिक्रयाकौमुदी (४६७-४६९); कालविवेक (४०३-४०४); दे० गत अध्याय १०।

सुखन्नतः (१) कृष्ण ७ पर उपवास तथा कृष्ण ८ पर नन्त; इहलोक में सुख एवं परलोक में स्वर्ग; हेमाद्रि (न्नत० २, ५०९, प्रविष्यपुराण से एक क्लोक); कृत्यकल्पतरु (न्नत० ३८७, यहाँ तिथियाँ ६ एवं ७ हैं); (२) चतुर्दशी पर देवों की पूजा; शेप स्पष्ट नहीं है; हेमाद्रि (न्नत० २, १५५, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (३) अष्टमी पर ऋषियों की पूजा करने से सुख की प्राप्ति; हेमाद्रि (न्नत० १, ६२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से आधा क्लोक); (४) जब शुक्ल ४ को मंगलवार हो तो नक्त; चार चतुर्थियों पर किया जाने वाला; मंगल की पूजा (मंगल उमा के पुत्र कहे गये हैं); सिर पर मिट्टी रखना, उसे सारे शरीर पर लगाकर स्नान करना; दूर्वा, अश्वत्य, शमी एवं गौ को छूना; १०८ आहुतियों से मंगल के लिए होम; सोने या रजत या ताम्र या सरल काष्ठ या देवदाष् या चन्दन के पात्र में मंगल की प्रतिमा को रखकर उसकी पूजा; हेमाद्रि (न्नत० १, ५१४-५१९, भविष्यपुराण से उद्धरण); पुरुषार्थचिन्तामणि (९५); (५) षष्टिन्नत (मत्स्यपुराण १०१।७३); कृत्यकल्पतरु (न्नत० ४५०); स्पष्ट नहीं है।

खुलसुप्तिकाः यह सुखरात्रि ही है; हेमाद्रि (तत० २,३४८-३४९, आदिन्यपुराण से उद्धरण); कृत्यकल्पतर (नैयतकालिक, ४२१-४२२)।

सुखजनुर्यो : शुक्ल पक्ष में चनुर्यी जब मंगलवार को पड़ती है तो उसे सुखचनुर्यी वा सुखदाचनुर्यी कहते हैं; हेमाद्रि (वत० १, ५१४ मिवष्यपुराण १।३१।१६ से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (२७१); वर्षिक्रयाकौमुदी (३१, देवीपुराण से उद्धरण)।

सुगितद्वादशी: फाल्गुन शुक्ल ११ से प्रारम्भ; तिथिवत, कृष्ण देवता; उस दिन उपवास, कृष्ण-पूजा; १०८ वार कृष्ण का नाम-जप; एक वर्ष तक; ४-४ मासों के कम से ३ अविधयों में विभाजित; फाल्गुन से आरम्भ होने वाले चार मासों में कृष्ण-नामजप एवं कृष्ण-प्रतिमा के पादों पर जल की तीन घाराएँ; आषाढ़ से आश्विन तक की दूसरी अविध में केशव-नामजप (जिससे कि मृत्यु के समय केशव नाम स्मरण हो सके); तीसरी अविध में विष्णुनाम का जप; दैवी सुख एवं विष्णुलोक की प्राप्ति होती है; हेमादि (यत०१,१०८१-१०८३,विष्णघर्मोत्तर-पुराण ३।२१५।४-२२ से उद्धरण)।

खुगितजीश्रमासीकल्य: (पौर्णमासी?) फाल्गुन शुक्ल पूणिमा पर; तियिव्रत; देवता विष्णु; कर्ता तेल एवं नमक का त्याग करके नक्त-विधि से रहता है; एक वर्ष तक, ४ मासों की तीन अविधियों में; लक्ष्मी के साथ केशव की पूजा; उस दिन नास्तिकों, पाषण्डियों, महापातिकयों एवं चाण्डालों से नहीं बोलना चाहिए; हरि एवं लक्ष्मी को चन्द्र एवं रात्रि के समान माना जाता है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२१६-।१७)।

सुणतिव्रतः (१) देवों के स्वामी की पूजा से सर्वोत्तम स्थिति की प्राप्ति; हेमाद्रि (द्रत० १,७९२, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष तक सभी अष्टिमियों पर नक्त-विधि से ओजन करना; अन्त में गोदान; इन्द्र की स्थिति की प्राप्ति; तिथिव्रत; देवता इन्द्र; हेमाद्रि (प्रतं० १,८८१, पद्मपुराण से उद्धरण); सत्स्यपुराण (१०१।५६); अहल्याकामधेनु (पाण्डुलिपि ५६१ वी) ने इसे सुगत्यष्टमी कहा है।

सुजन्महादशी: पौप शुक्ल १२ पर जब कि यह ज्येष्ठा-नक्षत्र पर पड़ती है; तिथिव्रत; देवता विष्णु; उपवास के साथ एक वर्ष तक प्रति मास विष्णु-पूजा; प्रति मास कम से धी, चायल, जौ, सोना, पकाये जो, जल, पकाये अत्र, छत्र, पायस, गन्ना-रसे, चन्दन एवं वस्त्र का दान और कम से निम्नलिखित को ग्रहण करना—गोमूत्र, जल, घी, हरी तरकारियाँ, दूर्वा, दही, चावल, जौ, तिल, सूर्य की किरणों से गर्म किया गया जल, दर्भयुक्त जल, दूघ; रोग-मुक्त, मेघावी, प्रसन्न हो जाता है तथा उस कुल में पुनः उत्पन्न होता है जहाँ घन, अन्न आदि का प्राचुर्य होता है और चिन्ता नहीं व्यापती; हेमादि (ब्रत० १, ११७४-७५, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सुजन्मावाध्तिव्रतः यह संक्रान्तिव्रत है; जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है तो उस दिन इसका आरम्भ होता है; यह वर्ष की सभी १२ संक्रान्तियों पर किया जाता है; प्रति संक्रान्ति पर उपवास, कम से सूर्य, भागव राम (परशुराम) कृष्ण, विष्णु, वराह, नर्रासह, दाशरिय राम, राम (बलराम), मत्स्य की प्रतिमाओं की पूजा; इनके चित्र भी किसी वत्त्र पर बनाकर पूजे जा सकते हैं; प्रत्येक संक्रान्ति पर उपयुक्त नाम से होम; एक वर्ष तक; अन्त में जलवेनु का, छत्र एवं चप्पलों के साथ दान; प्रत्येक मास में सोने एवं दो वस्त्रों का दान; दीपमाला से रात्रि में पूजा; कर्ता निम्न पशुओं एवं म्लेच्छों में जन्म नहीं पाता; हेमाद्रि (व्रत० २, ७२७-७२८, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); पुरुषार्थचिन्तामणि (१२); हेमाद्रि ने तुला एवं अन्य दो आगे वाली राशियों में पूजा का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९९) में ऐसा आया है कि जब सूर्य कम से तुला, वृश्चिक एवं घनु राशि में प्रवेश करता है तो कम से वामन, त्रिविकम एवं अश्वशीर्ष (हयग्रीव) की पूजा होती है।

सुदर्शनष्ठि : इसे कोई क्षत्रिय या राजा सम्पादित करता है; किसी चक्र की नाभि पर कमल से मण्डल खींचने के उपरान्त पष्ठी पर उपवास, बीजकोष पर सुदर्शन (विष्णु-चक्र) की स्थापना, लोकपालों के आयुघों की स्थापना दलों पर होती है; कर्ता के बाहु सक्षम रहते हैं; लाल चन्दन-लेप, सरसों, लाल कमल, लाल वस्त्रों आदि से पूजा; गुड़ युक्त भोजन, रोटियों एवं फलों का नैवेद्य; शत्रुओं के नाश, युद्ध में विजय एवं सेना की रक्षा के लिए सुदर्शन के मन्त्रों का पाठ; विष्णु के बनुष (शाङ्कों), गदा आदि तथा गएड़ की पूजा; राजा को सिहासन पर बैठाया जाता है और एक युवा स्त्री उसकी आरती उतारती है; यह कृत्य किसी अशुभ लक्षण के उदित होने पर तथा जन्म-नक्षत्र पर भी किया जाता है; हेमादि (ब्रत० १, ६२०-६२४, गरुड़पुराण से उद्धरण)।

मुदेशजन्मावाप्ति : यह 'सुजन्मावाप्तिव्रत' ही है; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१९९।१-१०)।

सुनामहादशी: मार्गशीर्ष शुक्ल की द्वादशी पर; दशमी को एकभक्त; एकादशी पर उपवास; सर्वप्रथम सूर्य-पूजा और उसके उपरान्त विष्णु-पूजा; तिथिवत; देवता, विष्णु; कर्ता को विचार, वचन एवं कर्म से पवित्र रहना होता है; एक जलपूर्ण कलशकी स्थापना, जिसमें द्वुंकुम, मोती एवं बहुमूल्य रत्न डाले गये रहते हैं, उसे वस्त्र से ढेंक दिया जाता है, उसमें केशव की स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा; पीप, माघ तथा आगे के अन्य मासों की द्वादिशयों पर विष्णु के विभिन्न नामों (यथा—नारायण, माघव आदि) की पूजा; एक वर्ष तक; प्रतिमायुक्त १२ कलशों कां ब्राह्मणों को दान, इसी प्रकार १२ गायों, वस्त्रों या (यदि घनहीन हो) एक गाय तथा सोने से युक्त पात्र का दान; हेमादि (त्रत्त० १, १०६३-१०७२, विष्णुपुराण से उद्धरण); अग्निपुराण (१८८।११) ने नामद्वादशी की चर्चा की है।

पुरुषद्वादशी: पौष कृष्ण १२ पर जब कि पुष्य नक्षत्र हो; एकादशी को उपवास तथा द्वादशी को एक पूर्ण घट में, जिसके ऊपर एक पात्र में तिल रखा गया हो, हिर की स्विणम या रजत प्रतिमा का पूजन; तिलयुक्त मोजन का नैवेद्य; पुष्पसूक्त (ऋ० १०।९०) के मन्त्रों के साथ अग्नि में तिल की आहुतियाँ; उस रात्रि जागर; घर एवं प्रतिमा का दान; कुरूपता से छुटकारा; हेमाद्रि (व्रत० १, १२०५-१२१३); शिव ने इसे उमा को बताया और कहा कि सत्यभामा ने इससे लाभ उठाया; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, २४७ए) ने इसे गुर्जरों में प्रचलित माना है।

सुत्रत: चैत्र शुक्ल ८ से वासुदेव के रूपों, आठ वसुओं की गन्ध, पुष्पों आदि से पूजा; एक वर्ष तक; अन्त में एक गोदान; सभी कामनाओं की पूर्ति एवं विष्णुलोक की प्राप्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७२।१-७)।

सूर्यनक्तात : यह वार-त्रत है; देवता सूर्य; इसमें रिववार की नक्त-विधि का प्रयोग करना चाहिए; अब हस्त नक्षत्र हो तो उस रिववार को एक भक्त तथा उसके उपरान्त प्रत्येक रिववार को नक्त। सूर्यास्त काल पर १२ दलों वाले एक कमल का चित्र लाल चन्दन से खींचना और पूर्व से आरम्भ कर आठ दिशाओं में विभिन्न नामों (यथा—सूर्य, दिवाकर) का न्यास; कमल के बीजकोष के पूर्व में सूर्य के घोड़ों का न्यास; ऋग्वेद एवं सामवेद के प्रथम मन्त्रों एवं तैतिरीय संहिता के प्रथम चार मन्त्रों के साथ अर्घ्य; एक वर्ष तक; क्तीं रोग-मुक्त होता है, सन्तित एवं यन की उपलिध करता है तथा सूर्यलोक जाता है; हेमाद्रि (त्रत०२, ५३८-५४१, मत्स्यपुराण से उद्धरण)।

सूर्यपूजाप्रशंसाः विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।१७१।१-७) ने एक वर्ष तक सभी सप्तिमियों पर सूर्य-पूजा या एक वर्ष तक रिववार पर नक्त-विधि से मोजन करने या सूर्योदय पर सदा सूर्य-पूजा करने से उत्पन्न फलों का उल्लेख किया है। भविष्यपुराण (१।६८।८-१४) ने सूर्य-पूजा के लिए उपयुक्त विशिष्ट पुष्पों तथा उनके अर्पण से उत्पन्न फलों का उल्लेख किया है।

सूर्यरथयात्रा-माहात्स्य : भिवष्यपुराण (१।५८) । मूर्य की रथयात्रा माघ में प्रारम्भ होती हैं। यदि प्रति वय न की जाय तो एक बार करने के १२ वर्षों के उपरान्त इसे सम्पादित करना चाहिए; इसे अल्पाविधयों में तोड़ कर नहीं करना चाहिए; सूर्य के रथ पर शूद्र नहीं चढ़ सकता। आषाढ़, कार्तिक एवं माघ की पूणिमाएँ इस यात्रा के लिए अत्यन्त पनित्र मानी जाती हैं, इसे रिववार को पड़ने वाली षडिंग या सप्तमी पर भी किया जा सकता है।

सूर्यक्त : (१) वंद्री पर उपवास तथा उप्तमी पर भास्कर प्रसन्न हों के साथ सूर्य-पूजा; सभी रोगों से मुक्ति ; कृत्यकल्पतरु (वत ० ३८८-३८९) ; (२) माघ में प्रातःकाल स्नान तथा किसी गृहस्थ एवं उसकी पत्नी का पुष्पों, वस्त्रों, आभूषणों एवं भोज से सम्मान; सीभाग्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० २, ७९४, पद्मपुराण से उद्धरण), कृत्यक्रपतरु (व्रत० ४४४, मत्स्यपुराण १०१।३६-४७ के समान ही); (३) आश्विन में आरम्भ, जब शुक्ल पक्ष के रिववार को चतुरंशी हो; तिथिवत; देवता शिव; शिविंछंग के लिए विशिष्ट स्नान, लेप रूप में रोचना का प्रयोग तथा लाल पुष्पों से पूजा; कपिला गाय के घी एवं दूध से नैवेद्य; किसी शैव ब्राह्मण को दान; कुंकुभ से युक्त भोजन-दान; इससे पुत्रों की उत्पत्ति होती है; हेमाद्रि (वत० २, ६४-६५, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (४) रिववार को कर्ता और कर्म करता है तथा गुड़ एवं नमक से युक्त रोटियों से सूर्य की पूजा करता है और उस दिन नक्त रखता है; सभी कामनाओं की पूर्ति, सूर्य-लोक की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १,७७९-७८०, विष्णुवर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (५) चैत्र शुक्ल ६ एवं ७ पर सूर्य-पूजा; ब्वेत मिट्टी से एक वेदिका का निर्माण, जिस पर रंगीन चूर्णों से आठ दल वाले एक कमल की आर्क़ात; बीजकोष पर सूर्य-प्रतिमा का स्थापन, पूर्व दिशा से आरम्भ कर आठ दिशाओं में अबं देवों, देवियों एवं मुनियों का चित्र खींचन। तया वसन्त से आरम्म कर सभी ६ ऋतुओं में ऐसे दो को रखना; धो की आहुतियाँ, १०८ बार सूर्य को तथा ८ बार अन्य लोगों को; एक वर्ष तक; अन्त में गोदान एवं रवर्ण-दान, सूर्यलोक की प्राप्ति; यदि १२ वर्षों तक किया जाय तो सायुज्य की प्राप्ति; हेमाद्रि (व्रत० १, ७७०-७७४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण १।१६७।११-३५, १६८।१-३० से उद्धरण); (६) मार्गशीर्ष में (रिववार को?) आरम्भ कर १२ मासों के लिए; लाल चन्दन से किसी ताम्रपत्र पर बीजकोष के साथ १२ दलों वाले कमल का चित्र तथा उस पर सूर्य-पूजा; कृतिपय मासों में देवता के विभिन्न नाम (यथा-मार्गशीर्प मैं मित्र, पौप में विष्ण, माघ में वरुण आदि); नैवेद्य तथा कर्ता द्वारा खाये जाने वाला विशिष्ट पदार्थ; विभिन्न पाप-मुक्ति एवं कामना-पूति; हेमाद्रि (त्रत० २, ५५२-५५७, सीरधमं से उद्धरण); यह वारत्रत है; (७) पूरे पीष भर नक्त तथा दोनों सप्तमियों पर उपवास; पौष में सूर्य एवं अग्नि की प्रतिदिन तीन बार पूजा; कृत्यरत्नाकर (४०५-४७६, भविष्य पुराण से उदरण)।

सूर्यपच्छी : भाइपद शुक्ल में १ से ५ तक एकभक्त, ६ की उपवास एवं सूर्य-प्रतिमा की पूजा; एक वर्ष तक; प्रत्येक मास में आदित्य के विभिन्न नाम; अन्त में विस्तृत उद्यापन; हेमाद्रि (व्रत० १, ६०८-६१५, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); निर्णयसिन्धु (१३४)।

सूर्याष्ट्रमी : देखिए अपर 'अर्काष्ट्रमी'।

सोमवती-अमावास्था : सोमवार की अमावास्या अति पुनीत होती है; कालविवेक (४९२, मिवण्यपुराण से); हेमाद्रि (काल, ६४३); वर्षिकयाकीमुदी (९): आज के दिन लोग (विशेषतः नारियां) अश्वत्य वृक्ष के पास जाती हैं, विण्णु-पूजा करती हैं तथा वृक्ष की १०८ बार प्रदक्षिणा करती हैं; व्रताकं (पाण्डुलिपि, ३५० बी-३५६); वर्मीसन्धु (२३); व्रताकं का कथन है कि इसका उल्लेख निवन्धों में नहीं हुआ है, यह मात्र प्रचलन पर आधृत है।

सोमवारव्रतः (बहुवचनं में); हेमाद्रि (व्रत० २, ५५७-५६६, केवल २ का उल्लेख); व्रतार्क (पाण्डु-लिपि ३७९ बी-३८२ वी); स्मृतिकीस्तुभ (१४९); वर्षकृत्यदीपक (४३७-४४३)। सामान्य नियम यह है—श्रावण, वैशास, कार्तिक या मार्गशीर्ष के प्रयम सोमवार पर आरम्भ; शिव-पूजा; उस दिन पूर्ण उपवास या नक्त; वर्ष-

२३२

कृत्यदीपक में सोमवारवत एवं उसके उद्यापन का विस्तृत ब्यौरा उपस्थित किया गया है। अब भी श्रावण के सोमवार विशेष रूप से पवित्र माने जाते हैं।

सोमक्त : (१) जब किसी पक्ष में अष्टमी सोमवार को पड़े तो शिव-पूजा होनी चाहिए, शिव-प्रतिमा का हायां माग शिव का तथा बायां माग हरि एवं चन्द्र का होता है; पंचामृत से लिंगस्नान, दक्षिण भाग में चन्दन एवं कर्पूर का प्रयोग तथा वाम माग में कुंकुम, अगुरु, उशीर, नीराजन का देव एवं देवी के २५ दीपों के साथ प्रयोग; सपत्नीक बाह्मणों को मोज; एक या पाँच वर्षों के लिए; कृत्यकल्पतर (व्रत० २६९-२७१); हेमाद्रि (व्रत० १, ८२९-८३१, कालिकापुराण से उद्धरण); (२) वैशाख-पूर्णिमा पर एक ताम्रपात्र में जल भरकर उसमें शंकर-प्रतिया रखना और उसे वस्त्र से ढक देना तथा गन्च एवं पुष्पों से पूजना तथा 'लोकस्वामी महादेव, जो चन्द्र का स्प बारण करते हैं, मुझ पर प्रसन्न हों के साथ उसका दान; कृत्यकल्पतर (व्रत ० ३५३); हेमाद्रि (व्रत ० २, १७४-१७५); कृत्यरत्नाकर (१६६-१६७); सभी ने भविष्यपुराण को उद्भृत किया है; (३) शुक्ल २ को लवण-पूर्ण पात्र का दान करना चाहिए; एक वर्ष तक; अन्त में गोदान; शिवलोक प्राप्ति; कृत्यकल्पतर (व्रत ० ४५१, मत्स्यपुराण १०१।८१ में ५९वाँ षष्ठिवत); हेमाद्रि (व्रत० १, ३८९, पद्मपुराण से उद्धरण); (४) जब अष्टमी रोहिणी नक्षत्र में पड़ती है तो इसका सम्पादन; पंचामृत से शिव-स्नान तथा लिंग या प्रतिमा पर कर्पूर एवं इन्दन-लेप का प्रयोग तथा दवेत पुष्पों से पूजा; एक घट दवेत शर्करा के चूर्ण से भिश्वित दूध नैवेद्य के रूप में; जागर; इससे दीर्घ आयु, यश आदि की प्राप्ति; हेमाद्रि (वत० १, ८६३, कालोत्तरपुराण से उद्धरण); (५) माघ शुक्ल १४ पर उपवास तथा १५ पर लिंग को वेदी के साथ घृत-युक्त कम्बल से आवृत करना, दो काली गायों का दान; जागर तथा सगीत एवं नृत्य; ड्रेमाद्रि (व्रत० २, २३९-२४०, भविष्यपुराण से उद्धरण); (६) मार्गशीर्ष शुक्ल के प्रथम सोमवार या चैत्र के या किसी भी सोमवार को, जब कि पूजा करने की प्रेरणा बड़ी उद्दाम हो, शिवपूजा करनी चाहिए; क्वेत पुष्पों (मालती, कुन्द आदि) से शिव-पूजा, चन्दन लेप का प्रतिमा या लिंग पर प्रयोग; नैवेद्य; होस; हेमाद्रि (व्रत० २, ५५८-५६६, स्कन्दपुराण से उद्धरण) ने फलों का वर्णन किया है; (७) एक वर्ष तक प्रति सोमवार को ८ बाह्मणों को भोज देना चाहिए; अन्त में शिव की एक रजतप्रतिमा का दान; 'तत्पुरुषाय विदाहे॰' (मैत्रा० सं० २।९।१, तै० आरण्यक १०।४६) नामक मन्त्र के साथ शिव एवं उमा की पूजा; पद्मपुराण (४।१०८।८२-९०)।

सोमार्यन-मत: एक मास के लिए; सात दिनों तक एक गाय के चारों थनों के दूघ पर निर्वाह करना; सात दिनों तक केवल तीन थनों के दूघ पर, आगे के सात दिनों तक एक थन के दूघ पर तथा तीन दिनों तक उपवास; इससे सभी पाप कट जाते हैं; मिताक्षरा (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।३२४, मार्कण्डेयपुराण से उदरण)।

सोबाष्टमीत : तिथितत; देवता शिव एवं उमा; सोमवारयुक्त नवमी पर रात्रि में शिव एवं उमा की पूजा; पंचगव्य से प्रतिमा-स्नान; वामदेव तथा अन्य नामों से शिव-पूजा; प्रतिमा के दक्षिण मान में चन्दन एवं कपूर का तथा वाम मान में कुंडुम एवं तुरुष्क (लोबान) का प्रयोग; देवी के सिर पर नीलम तथा शिव के सिर पर मोती रखे जाते हैं और श्वेत एवं लाल पुज्यों से पूजा; सद्योजात नाम के साथ तिल का होम; हेमाद्रि (ज्ञत० १, ८३३-८३५, स्कन्दपुराण से उद्धरण); मविष्योत्तरपुराण (५९।१-२३) ने इन्हीं शब्दों में इस ब्रत का उल्लेख किया है; वामदेव, सद्योजात, अघोर, तत्पुष्ण, ईशान शिव के पाँच मुख कहे जाते हैं; देखिए तैं० आ० (९०।४३-४७)।

सौक्यवतः माय की अष्टमी या एक।दशी या चतुर्दशी पर एकभक्त एवं ख्वेत वस्त्रों, चप्पलों (पादुकाओं), क म्बल, छत्र, जल तथा पात्र का अभावग्रस्त व्यक्ति को दान; हेमाद्रि (द्रत० २, ४४०, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

सौगन्थ्य-मत: यह ऋतु-मत है; देवता शिव एवं केशव; हेमन्त एवं शिशिर में पुष्पों का तथा फाल्गुन पूर्णिमा को तीन प्रकार के सुगन्धित पत्रों का त्याग; 'शिव एवं केशव प्रसन्न हों' के साथ कुछ सोने का दान; हेमाद्रि (म्रत० २, ८६०)।

सौभाग्यतृतीयात्रतः (१) फाल्गुन सुक्ल की तृतीया पर नक्त-विधि; लक्ष्मी के साथ हिर या उमा के साथ शिव (क्योंकि दोनों शास्त्रों एवं पुराणों में एक ही कहे गये हैं) की पूजा; मधु, घी एवं तिल से होम; एक वर्ष तक तीन अविधयों में; फाल्गुन से ज्येष्ठ के मासौं तक बिना नमक या घी के गेहूँ से बने भोजन का प्रयोग, भूमि-शयन; कार्तिक से मांघ तक जौ से बने भोजन का प्रयोग; मांघ शूक्ल ३ पर रुद्र एवं गौरी या हिर एवं श्री की स्वर्ण-प्रतिमा का निर्माण और उसका मधु, घी, तिल-तैल, गृड़, नमक तथा गोदुग्ध युक्त ६ पात्रों के साथ दान; कर्ती सात जन्मों तक भाग्यवान् एवं सुन्दर बन जाता है; कृत्यक्लपत्र (वृत, ७५-७७, वराहपुराण ५८।१-१९ से उद्धरण); हेमादि (इत० १, ४७९-४८०); कृत्यरतनाकर (५२३-५२४)।

सौभाष्यव्रतः (१) कार्तिक पूणिमा पर १६ दलों वाले चित्रित कमल के बीजकोष पर स्थापित चन्द्र-प्रतिमा की पूजा; कमल के किंजल्कों (अंजुओं) पर २८ नक्षत्रों (अभिजित् को लेकर) की पूजा, पित्तयों पर तिथियों एवं उनके स्वामियों की पूजा; वृत के अन्त में दो वस्त्रों का दान; दस दिन उपवास या नक्त; इस वृत से कल्याण, सीन्दर्य एवं संमोग-आनन्द की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (वृत० २, २३५-२३६, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण); (२) एक वर्ष तक फाल्गुन एवं आगे की तृतीया पर नमक का त्याग; अन्त में एक घर एवं पलंग का सारी सामग्रियों के साथ दान तथा 'पावंती प्रसन्न हों' के साथ एक सपत्नीक ब्राह्मण का सम्मान; कर्ता गौरीलोक वासी हो जाता है; तिथिवृत; देवता गौरी; कृत्यकल्पतष्ठ (वृत्त० ४४१, मत्त्यपुराण १०१।१५-१६); हेमाद्रि (वृत्त० १, ४८३, गरुडपुराण से उद्धरण); वर्षिक्रयाकौमुदी (२९-३०, यहाँ 'लवणम्' के स्थान पर 'शयनम्' आया है); अग्निपुराण (१७८।२४-२५) में भी यही रलोक है; (३) पंचमी पर चन्द्र का पूजक दीर्घाय, धन एवं यश पाता है; हेमाद्रि (वृत्त० १, ५७४, विष्णुधर्मोत्तरपुराण से उद्धरण)।

सौभाग्यशयन-त्रतः चैत्र शुक्ल ३ पर पंचगव्य एवं सुगंधित जल से गौरी एवं शिव की प्रतिमाओं का स्क्रान (इसी दिन गौरी का जन्म हुआ था); देवी एवं शिव के आपाद मस्तक एवं केश को प्रणाम; प्रतिमाओं के समक्ष सौभाग्याष्टक; दूसरे दिन प्रातः स्वर्णिम प्रतिमाओं का दान; एक वर्ष तक प्रत्येक तृतीया पर यही विधि; चैत्र से आगे प्रत्येक मास में विभिन्न पदार्थों का सेवन, विभिन्न मन्त्रों का प्रयोग, देवी के विभिन्न नामों का उपयोग, विभिन्न पुष्पों का प्रयोग; एक वर्ष तक एक फल का त्याग; अन्त में सामग्री के साथ एक पलंग, एक स्वर्णिम गाय एवं वैल का दान; सौभाग्य, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, दीर्घायु की प्राप्ति; मत्स्यपुराण (६०।१-४९); कृत्यकल्पतर (त्रत० ५६-६०), मत्स्यपुराण ६०।१४-४८ का उद्धरण); हेमाद्रि (त्रत० १,४४४-४४९, मत्स्यपुराण ६०।१४-४८ का उद्धरण); ये क्लोक पद्मपुराण (५।२४।२२२-२७८) एवं भविष्योत्तरपुराण (२५।१-४२) में भी पाये जाते हैं।

सीभाष्यसंक्रान्तः यह संक्रान्तित्रत है; व्यतीपात व ले अयन या विषव दिन या संक्रान्ति दिन पर; एक भवत; सूर्य-पूजा; दो वस्त्रों एवं सीभाग्याष्टक का किसी सपत्नीक ब्राह्मण की दान; एक वर्ष तक; ब्रह्म-भोज; लवण-पर्वत, स्विणम कमल एवं स्विणम सूर्य-प्रतिमा का दान; हेमाद्रि (व्रत० २, ७३५-७३६, स्कृन्दपुराण से चद्ररण)।

सौभाग्यसुन्दरी : मार्गशीर्ष या माघ कृष्ण की तृतीया पर; तिथिव्रत; देवता उमा; उस दिन उपवास; एक वर्ष तकः; प्रत्येकः मास में उमा के विभिन्न नाम; पुष्प, फल, नैवेद्य तथा कर्ता द्वारा खाये जाने वाले सामान

आदि का अपंण; व्रतार्क (पाण्डुलिपि ५६ ए-६० वी); व्रतराज (११४-१२०, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण); इसका सम्पादन चतुर्थी से युक्त तृतीया को हो सकता है किन्तु द्वितीया से युक्त तृतीया को नहीं।

सौभाग्यावाप्तिवृतः यह मासवृत है; देवता कृष्ण; माघ पूर्णिमा (पूर्णिमान्त गणना के अनसार) के उपरान्त प्रथम तिथि पर; कृष्ण-प्रतिमा या वस्त्र पर खिलत कृष्ण-चित्र की पूजा; प्रियंगु से सुगधित किये गये जल से कर्ता द्वारा स्नान करना; प्रियंगुयुक्त चरु (भात) का अर्पण एवं उसी से होम; एक मास तक; फाल्गुन पूर्णिमा पर तीन दिनों के उपवास के उपरान्त कुंडु म से रेंगे दो वस्त्रों, मधुपूर्ण पात्र आदि का दान; इससे सौभाग्य एवं सौन्दर्य की प्राप्ति; हेमादि (वत० २, ७९९, विष्णुघर्मोत्तरपुराण ३।२०४।१-५ से उद्धरण)।

सौभाग्याष्टक: मत्स्यपुराण (६०।८-९) के अनुसार आठ सौभाग्य वस्तुएँ ये हैं—गन्ना, पारा, निष्पाव (घो एवं दूघ से प्रयुक्त गेहूँ का पदार्थ), दही (गाय के दूघ का), जीरा, घनियाँ, कुंसुंभ एवं लवण; हेमाद्रि (ज्ञत० १,४८-४९); कृत्यरत्नाकर (११५'); व्रतराज (१६); और देखिए पद्मपुराण (५।२४।२५१); भविष्योत्तरपुराण (२५।९)।

सौम्य-विधि : जब रिववार को रोहिणी-नक्षत्र हो तो उसे सौम्य नाम से पुकारा जाता है; इस दिन पर स्नान, दान, जप, होम, पितरों एवं देवों के तर्पण से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है; नक्त-विधि एवं लाल कमलों, लाल चन्दन लेप, सुगन्ध बूप एव पायस (नैवेद्य क्ले रूप में) से सूर्य-पूजा; पापों से मुक्ति; कृत्यकल्पतर (ब्रत० १३-१४); हेमादि (ब्रत० २, ५२४)।

सौम्यवतः हेमन्त एवं शिशिर ऋतुओं के पुष्पों का त्याग, फाल्गुन पूर्णिमा पर 'जिय एवं केशव प्रसन्न हों' के साथ अपराह्न में सोने के तीन पुष्पों का दान; मत्स्यपुराण (१०१।१३-१४); कृत्यकल्पतरु (व्रत०४४१)।

सौरत्रिविकम-कतः यह मास-यत है; देवता सूर्य; तीन मासों या तीन वर्षों तकः; कार्तिक में जगन्नाथ या सूर्य की पूजा, एकभक्त तथा एक ब्राह्मण को रात्रिकाल का भोजन-दानः; यही विधि मार्गशीर्प एवं पौप में सूर्य की पूजा विभाकर एवं दिवाकर के रूप में; युवावस्था एवं मध्यमावस्था में किये गये पाप तथा यहाँ तक कि महापाप भी कट जाते हैं; इसे 'त्रिविकम' इसिल्ए कहा जाता है कि सूर्य के तीन नाम व्यक्ति को तीन मासों या तीन वर्षों में मुक्ति देते हैं; हेमादि (वृत् ० २, ८५६, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

सौरनक्तवत : यह वारव्रत है; देवता सूर्य; हस्त नक्षत्र के साथ रिबवार को किया जाता है; ब्राह्मणों का सम्मान; सभी रोगों से मुक्ति; हेमादि (व्रत० २, ५२१, नृसिहपुराण से उद्धरण)।

सौरवतः मत्स्यपुराण (१०१।६३, एक षष्टिवत); कृत्यकल्पतरु (वत० ४४८); हेमाद्रि (वत० १, ७८७, पद्मपुराण से उद्धरण); सप्तमी की उपवास; देवता सूर्य; एक वर्ष तक; अन्त में सीने के कमल, गायों का कुछ सीने एवं भोजनपूर्ण घट के साथ दान; इससे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है।

स्कन्दपच्छी: आषाढ़ शुक्ल की षष्ठी को इस नाम से कहा जाता है; एक दिन पूर्व से उपवाम करके षष्ठी को कुमार अर्थात् कार्तिकेय की पूजा; निर्णयामृत (४९); पुरुषार्थचिन्तामणि (१०१); स्मृतिकांस्तुभ (१३८)। निर्णयामृत में इतना और आया है कि भाइपद ६ को दक्षिणापथ में कार्तिकेय का दर्शन कर छेने से ब्रह्म-हत्या से गम्भीर पापों-जैसे मुक्ति मिल जाती हैं; और देखिए कृत्यरत्नाकर (२७५-२७७)। तमिल प्रदेश में स्कन्दपष्ठी महत्वपूर्ण है और इसका सम्पादन मन्दिरों या किन्हीं भवनों में होता है; हेमाद्रि (काल, ६२२); कृत्यरत्नाकर (११९)ने ब्रह्मपुराण से उद्धरण देकर वताया है कि स्कन्द की उत्पत्ति अमावास्या को अग्नि से हुई थी, दे चैत्र शुक्ल ६ को प्रत्यक्ष हुए थे, देवों द्वारा सेनानायक बनाये गये थे तथा तारकासुर का वध किया था, अतः उनकी पूजा दीपों, वस्त्रों, अलंकरण, मुर्गों (खिलीनों के रूप में) आदि से की जानी चाहिए, अथवा

उनकी पूजा बच्चों के स्वास्थ्य के लिए सभी शुक्ल षष्ठियों पर करनी चाहिए; तिथितत्त्व (३५) ने चैत्र शुक्ल ६ को स्कन्दषष्ठी कहा है; स्मृतिकौस्तुभ (९३)।

स्कन्वषष्ठीव्रतः कार्तिक शुक्ल ६ को केवल फलाहार, दक्षिणाभिमुख होकर कार्तिकेय को अर्घ्य तथा एक मन्त्र के साथ दही, घी, जल एवं पुष्प चढ़ाना; कर्ता को रात्रि में भूमि पर रखा गया भोजन करना चाहिए; ऐसा करने से सफलता, सम्पत्ति, दीर्घ आयु, स्वास्थ्य, नष्ट राज्य की प्राप्ति होती है; शुक्ल या कृष्ण की षष्ठी को तेल का सेवन नहीं करना चाहिए; भविष्यपुराण (११३९११-१३); कृत्यकल्पतरु (व्रत०, ९९-१०१); हेमाद्रि (व्रत० १, ६०४-६०५); कृत्यरत्नाकर (४१५-४१६)। देखिए 'षष्ठी-व्रतों' के अन्तर्गत, जहाँ ऐसा व्यक्त किया गया है कि पंचमी से युक्त षष्ठी को वरीयता दी गयी है। गदाघरपद्धित (कालसार, ८३-८४) ने स्कन्दषष्ठी को चैत्र कृष्ण में रखा है।

स्त्रीपुत्रकामावाप्तित्रत: यह मास-वृत है; देवता सूर्य; जो नारी कार्तिक में एकभक्त रहकर, अहिंसा जैसे सवाचरणों का पालन करती हुई गुड़युक्त भात के नैये को सूर्य के लिए अपित करती है तथा पष्ठी या सप्तमी (दोनों पक्षों में) को उपवास करती है, वह सूर्यलोक को पहुँचती है और जब पुनः इस लोक में आती हैं तो किसी राजा या मनोनुकूल पुरुष को पित रूप में पाती है; मार्गशीर्ष से आगे के मासों के लिए विशिष्ट नियम बने हैं; हेमाद्रि (त्रत० २, ८२१-८२४, भविष्यपुराण से उद्धरण); कृत्यरत्नाकर (४०६)।

स्नापनसप्तमीव्रत : शिशु-अवस्था में ही मृत हो जाने वाले वच्चों की माता के लिए; भविष्योत्तरपुराण (५२।१-४०)।

स्नुहीविटपे-मनसापूजा: श्रावण कृष्ण ५ पर मनसा-देवी की पूजा; आँगन में स्नुही पौघे की टहनी पर; सर्प-दंश का भय दूर हो जाता है; तिथितत्त्व (३३), और देखिए गत अध्याय ७।

स्नेहनतः यह मास-न्नत है; देवता सम्भवतः विष्णु (?); आषाढ़ से लेकर चार मासों में तेल के साथ स्नान का त्याग; केवल पायस एवं घी का सेवन; अन्त में तिल के तेल से पूर्ण एक घट का दान; इससे लोगों का स्नेह मिलता है; हेमाद्रि (न्नत ० २, ८१८, पद्मपुराण से उद्धरण)।

स्यमन्तक (मणि) : इसकी गाथा हरिवंश (१।३८) में है, देखिए गत अघ्याय ८, गणेश-चतुर्थी के अन्तर्गत । इस विषय का प्रसिद्ध श्लोक 'सिंह : प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ।।" हरिवंशपुराण (१।३८।३६) में पाया जाता है।

स्वर्णगौरीव्रतः भाद्र शुक्ल ३ कों; देवता गौरी; केवल नारियों के लिए; १६ उपचारों से गौरी की पूजा; पुत्रों, धन एवं सौभाग्य की प्राप्ति के लिए देवी से प्रार्थना; उद्यापन पर १६ पुरवों (कुल्हड़ों) में १६ खाद्य पदार्थ भरकर तथा वस्त्र से ढँककर गृहस्य ब्राह्मणों एवं उनकी पत्नियों को दान; ब्रतार्क (पाण्डुलिपि ४१ ए-४४ वी); ब्रतराज (९६-९७) में आया है कि यह कर्णाटक प्रान्त में व्यवहार रूप में प्रचलित है।

स्वस्तिकव्रत : आषाढ़ ११ या १५ से चार मासों तक; पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों के लिए समान; कर्णाटक में प्रचलित; पाँच रंगों में स्वस्तिक खींचकर विष्णु के समक्ष रखना; मन्दिर या भूमि पर विष्णु-पूजा; व्रतार्क (पाण्डुलिपि, ३५६ बी-३५८, भविष्योत्तरपुराण से उद्धरण)।

हंसवत: पुरुषसूक्त के पाठ के साथ स्नान; उसी के पाठ के साथ तर्पण एवं जप; अष्टदल कमल के चित्र के मध्य में स्थापित हंस नाम से पुष्पों आदि द्वारा जनार्दन की पूजा; होम; गोदान; एक वर्ष तक, सभी कामनाओं की पूर्ति; विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।२२५।१-९)।

हनुमत्-जयन्ती : चैत्र शुक्ल १५ पर।

ह्यपंचमी या हयपूजावत : चैंत्र शुक्ल ५ को इन्द्र का अश्व उच्चै:श्रवा समुद्र से प्रकट हुआ था, अतः उस दिन उसकी पूजा गन्धवों (चित्ररथ, चित्रसेन आदि) के साथ की जाती है, क्योंकि वे उसके बन्धु कहे गये हैं; पूजा में संगीत, मिठाइयों, पोलिकाओं, दही, गुड़, दूध, चावल के आटे का उपयोग किया जाता है, इससे दीर्घ आयु, स्वास्थ्य, युद्ध में विजय की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (ब्रत० १, ५७३, शालिहोत्र से उद्धरण); स्मृतिकीस्तुभ (९२)। इसे मत्स्यजयन्ती भी कहा गया है; अहल्याकामघेनु (पाण्डुलिपि, ३६० वी)।

हरकालीवत: भाष शुक्ल ३, तिथिवत; देवता देवी; स्त्रियों के लिए; जौ के हरे अंजुरों पर स्थापित उमा के रात्रि भर घ्यान में अवस्थित रहना, दूसरे दिन स्नान, देवी-पूजा एवं भोजन; १२ मासों में देवी के विभिन्न नामों का उपयोग तथा विभिन्न पदार्थों का सेवन; अन्त में एक सपत्नीक ब्राह्मण को दान; रोगों से मुक्ति, सात जन्मों तक सववापन, पुत्र, सौन्दर्य आदि की प्राप्ति; शंकर ने पार्वती से पूछा है कि आपने (पार्वती ने) मेरी आघी देह पाने के लिए कौन-सा वृत किया था।

हरतृतीया-त्रतः भाष शुक्ल ३ पर; तिथिव्रत; देवता उमा एवं महेश्वर; एक मण्डप में अष्टदल कमल का आलेखन; आठ दिशाओं में उमा के आठ नामों का न्यास, यथा—गौरी, लिलता, उमा, स्वधा, वामदेवी आदि; चित्र के मध्य में उमा-महेश्वर की स्थापना; गन्ध एवं पुष्पों से पूजा; चावल से पूर्ण एक कलश की स्थापना; घी की आठ तथा तिल की सौ आहुतियों से होम; प्रत्येक प्रहर (कुल ८ प्रहर) में स्नान एवं होम; दूसरे दिन एक सपत्नीक ब्राह्मण का सम्मान; इसे चार वर्षों तक करना चाहिए। इसके उपरान्त उद्यापन; आचार्य को उमा एवं महेश्वर की स्वर्ण प्रतिमा दान में दे दी जाती है; इससे सौभाग्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ४८०-४८२)।

हरत्रिरात्रवत : बिल्व वृक्ष के तले बैठकर तीन दिनों तक उपवास करने एवं हर के नाम का एक लाख बार स्मरण करने से भ्रूणहत्या जैसे पाप भी कट जाते हैं; हेमाद्रि (व्रत०२, ३१८, सौरपुराण से उद्धरण)।

हरजत : अष्टमी पर कमलदल पर चित्र बनाकर उस पर हर की पूजा करना; घी एवं सिमधा से होम; हेमाद्रि (त्रतः १,८८१, भविष्यपुराण से उद्धरण)।

हरिकालीवृत: भाद्रपद शुक्ल की तृतीया को सूप में उगाये गये सात घान्यों के अंकुरों पर काली की पूजा; सवना न्यरियाँ उसे रात्रि में किसी तालाब में ले जाकर उसका विसर्जन करती हैं; हेमाद्रि (वृत्त० १, ४३५-४३९, भिवष्योत्तरपुराण २०११-२८)। कथा यों हैं—काली दक्ष की पुत्री थीं, वे काले रंग की थीं और महादेव से उनका विवाह हुआ था। एकं बार देवों की सभा में महादेव ने उन्हें अंजन के समान काली कहा। वे कोचित हो उठीं और अपने रंग को घास की भूमि पर छोड़कर अग्नि में कूद पड़ीं। वे पुनः गौरी के रूप में उत्पन्न हुई और महादेव की पत्नी बनीं। काली द्वारा त्यवत काला रंग कात्यायनी वन गया, जिन्होंने देवों के कायों में वड़ी सहायता की। देवों ने उन्हें वरदान दिया कि जो व्यक्ति उनकी पूजा हरी घास में करेगा वह प्रसन्नता, दीर्घायु एवं सौभाग्य प्राप्त करेगा। प्रकाशित हेमाद्रि (वृत्त) में 'हरिकाली' शब्द आया है, किन्तु यहाँ 'हरिं (विष्णु) के विषय में कोई प्रश्न नहीं उठता। सम्भवतः यहाँ 'हरिं का अर्थ है 'पिंगल' रंग (काली एक बार भूरी या पिंगला थी, गोरी नहीं थी)।

हरिकीडाशयन या हरिकीडायन : कार्तिक या वैशाख १२ पर; तिथिवत; देवता हरि; मघुयुक्त ताम्र-पात्र में चार हाथ वाले नृसिंह की स्मर्णिम प्रतिमा की स्थापना, हाथों के रूप में माणिक, नखों के रूप में मूँगा का प्रयोग होता है और इसी प्रकार वक्ष, कानों, आँखों एवं सिर पर अन्य बहुमूल्य रत्न रखें जाते हैं; पात्र में जल भरा जाता है; जागर से पूजा; कर्ता को वन या युद्ध में भय नहीं मिलता, उसे घन एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है; कृत्यकल्पत्तरु (ब्रत्त० ३९२-३९३); हेमाद्रि (ब्रत० २,३७६-३७७,नृसिंहपुराण से उद्धरण)।

हरितालिकाव्रत : देखिए गत अध्याय ८। हरितिथि : द्वादशी, स्मृतिकौस्तुभ (२९)।

हरिप्रबोधोत्सव : कार्तिक में विष्णु के जागरण का उत्सव, देखिए गत अध्याय ५।

हरिवासर : हरि का दिन। इस विषय में विभिन्न मत हैं; वर्षिक्रियाकौमुदी (१४) का कथन है कि एकादशी हरिका दिन हैन कि द्वादशी। गरुड़पुराण (१।१२७।१२) एवं नारदपुराण (२।२४।६ एवं ९) ने एकादशी को हरिवासर कहा है। कृत्यसारसमुच्चय (४३) ने मत्स्यपुराण को उद्भृत करते हुए कहा है कि यदि आषाढ़ शुक्ल द्वादशी बुधवार को पड़ती है और वह अनुराधा-नक्षत्र में रहती है, यदि भाद्रपद शुक्ल द्वादशी बुधवार को पड़ती है और उस समय रेवती नक्षत्र रहता है तो उसे हरिवासर कहा जाता है। स्मृतिकौस्तुभ (२९) के अनुसार द्वादशी हरितिथि है।

हरिव्रत : (१) पूर्णिमा एवं अमावास्या पर एक भक्त-विधि; इस व्रत के सम्पादन से नरक में जाना नहीं होता; इन तिथियों पर पुण्याहवाचन एवं 'जय' जैसे शब्दों के साथ हरि-पूजा; एक ब्राह्मण को खिलाना, उसे प्रणाम करना तथा अन्य ब्राह्मणों, अंधों, असहायों एवं दिल्तों को भोज देना; हेमाद्रि (व्रत० २, ३७३, नर्रासहपुराण से उद्धरण); कृत्यकल्पतरु (व्रत० ३८९-३९०); (२) द्वादशी को उपवास करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है; हेमाद्रि (व्रत० १, ११७२, वराहपुराण से उद्धरण)।

हरिशयन : आपाढ़ में विष्णु का शयन; देखिए गत अध्याय ५।

हल्लक्डी : भाद्रपद कृष्ण ६ को इस नाम से पुकारा जाता है; निर्णयसिन्ध् (१२३)।

हिवष्य : कुछ वर्तों में यिज्ञय द्रव्य; कृत्यरत्नाकर (४००); तिथितत्त्व (१०९); निर्णयसिन्धु (१०६)। हस्तगौरोवत : माद्रपद शुक्ल ३ पर; धन-धान्य से पूर्ण राज्य की प्राप्ति के लिए कृष्ण द्वारा कुत्ती को

सुनाया गया वृत्त; व्रतार्क (पाण्डुलिपि ५० वी-५२ वी), अहल्याकामवेनु (२८० वी); गौरी, हर एवं हेरम्ब (गणेश) का ध्यान; १३ वर्षों तक; १४वें वर्ष में उद्यापन।

हिमपूजा: पुष्पों एवं दूव के नैवेद्य से चन्द्र, विष्णु के वाम नेत्र की पूर्णिमा पर पूजा; गायों को नमक देना; माता, वहिन, पुत्री को नये वस्त्रों से सम्मानित करना; यदि हिमालय के पास हों तो पितरों को हिम से मिश्रित मधु, तिल एवं घी देना चाहिए और जहाँ घी न हो 'हिम-हिम' का उच्चारण करना चाहिए तथा ब्राह्मणों को घृतपूर्ण माष का मोजन देना चाहिए; गीतों एवं नृत्य के साथ उत्सव तथा श्यामा-देनी की पूजा; सुरा पीने वालों को ताजी सुरा दी जाती है; कृत्यरत्नाकर (४७१-४७२, ब्रह्मपुराण से उद्धरण)।

हृदयिबिध : देखिए कृत्यकल्पतरु (व्रतं० १९-२०); हेमाद्रि (व्रतं० २, ५२६); और देखिए 'आदित्य-वार' के अन्तर्गत।

होम-विधि : गृह्यसूत्रों में होम-विधि दी हुई है; हेमाद्रि (वृत० १, ३०९-३१०)।

होलिका : देखिए गत अध्याय १२।

# अध्याय १४

दर्शन शास्त्र की मुख्य एवं बड़ी समस्याओं में 'दिक्' एवं 'काल' के रूप की समस्या है। स्वभावतः प्रश्न उठते हैं—क्या दिक् एवं काल अन्ततोगत्वा वास्तविक हैं? क्या हमारा अवगम्य विश्व दिशाविहीन एवं कालविहीन है? क्या अखिल विश्व का आरम्भ काल से हैं? क्या दिक् एवं काल द्रव्य-वस्तुएँ हैं या वास्तविक या वस्तुओं के गुण या सम्बन्ध हैं? अति प्राचीन काल से अब तक इन समस्याओं के विषय में मत-मतान्तर पाये जाते रहे हैं। अतः यहाँ संस्कृत ग्रन्थों में आकलित काल-सम्बन्धी आलेखनों, कल्पनाओं एवं धारणाओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन आवश्यक हो जाता है।

ऋष्वेद में 'काल' शब्द केवल एक बार आया है'—'जिस प्रकार द्यूत खेलने वाला 'कृत' (उत्क्षेप, कँची फेंक) को उचित काल में एकत्र करता है' (१०।४२।९: 'कृतं यच् श्वद्मी विचिनोति काले')। अथवंवेद में दो सूक्त हैं (१९।५३।१-१० एवं १९।५४।१-५) जिनमें काल की उच्चतम घारणा व्यक्त होती है। कुछ विस्मयावह मन्त्रों का अनुवाद यों हैं—'काल सात रिश्मयों (लगामों) वाले, सहस्र आँखों वाले, अजर एवं पर्याप्त बीज (शक्ति) वाले अश्व को हाँकता है अर्थात् लेकर चलता है; विज्ञ कवि लोग उस पर चढ़ते हैं (जिस प्रकार कोई रय पर चढ़ता है); सभी भुवन उसके चक्र (पिहए) हैं; उसी ने सभी भुवनों को एक किया और उसी ने स्वयं सभी भुवनों की परिक्रमा की; पिता होकर वह सभी (भुवनों) का पुत्र बना; उससे बढ़कर, सचमुच, कोई अन्य तेज नहीं है; काल में मन है, काल में प्राण (उच्छ्वास) है; काल में नाम समाहित है; ये सभी जीव इसके आगमन से प्रसन्न होते हैं; काल ने प्रजा (जीवों) की उत्पत्ति की; आरम्भ में काल ने प्रजापित को उत्पन्न किया; स्वयम्भू कश्यप काल से उभरे और (इसी प्रकार) तप भी काल से निकले; काल पुत्र ने अतीत (भूत) एवं भविष्य (भव्य) की उत्पत्ति की; काल से ऋचाएँ एवं यजु (यज्ञ सम्बन्धी नियम) उत्पन्न हुए; यह लोक एवं परम लोक, पुण्यलोक एवं पुण्य (पिवत्र) विघृतियाँ, इन सभी लोकों को ब्रह्म द्वारा पूर्णत्या जीतकर काल परम देव की भाँति चलती रहता है (निवास करता है)।'

१. मिलाइए 'कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने।' ऋ० (१०।४३।५) एवं अथवंवेद (२०।१७।५) को ऋ० (१०।४२।९) एवं अथवंवेद (७।५०।६ तथा २०।८९।९) 'कृतिमिव श्वघ्नी विचिनोति काले' से; और वही 'श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमादत्' ऋ० (२।१२।४); ऋ० (१०।४१।५) की व्याख्या छान्दोग्योपनिषद् (४।१।४) में यों है — 'यथा कृताय विजितायाषरेयाः संयन्ति' (जिस प्रकार छोटे दाव बड़े दाव द्वारा आत्मसात होकर विजयी को प्राप्त होते हैं)।

२. कालो अश्वो वहित सप्तरिमः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमा रोहिन्त कवयो विपिश्चतस्तस्य चका

जपर्युक्त वचनों से प्रकट होता है कि अति आरम्भिक वैदिक काल में भी 'काल' शब्द दो अथों में प्रयुक्त होता था—(१) सामान्य रूप से काल (जैसा कि आधुनिक संस्कृत एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं में) एवं (२) वह काल (महाकाल) जो परम तत्त्व के समनुरूप है या सृष्टि का मूल है। दूसरा अर्थ भी, जैसा कि हम आगे देखेंगे, बहुत-से संस्कृत ग्रन्थों (पुराणों के सिहत) में दृढ रूप से अवधारित है।

शतपथब्राह्मण (१।७।३।३ एवं २।४।२।४) में 'काल' का प्रयोग 'समय' या 'उचित समय' के अर्थ में हुआ है—'वह (कुढ़ रुद्र, जो आंहुतियों के भाग से वंचित किया गया था) उत्तर की ओर उस समय उड़ा जब कि स्विष्टकृत् आहुतियाँ दी जा रही थीं' (१।७।३।३); प्रजापित ने (जब प्रशु उनके पास पहुँचे) कहा—'जब कभी तुम्हें उचित

काल पर कुछ मिले या अनुचित काल पर मिले, तुम खा सकते हो' (२।४।२।४)।

विद्यानों द्वारा अति प्राचीन कही जाने वाली उपनिषदों के वचन भी दिये जा सकते हैं। छान्दोग्योपनिषद् (२१३११) ने 'काल' का प्रयोग 'अन्त होने' के अर्थ में किया है। वृहदारण्यकोपनिषद् (११२१४) में भी आया है— 'उसने आकांक्षा की 'मेरा दूसरा स्वत्व भी प्रकट हो जाता ।' उसने उसे कुछ काल पर्यन्त तक, एक वर्ष तक, उत्पन्न किया, और उसके उपरान्त बहुत काल तक उसे पालित किया।' उसी उपनिषद् में गार्य एवं राजा अजातशत्रु के संवाद में गार्य ने बहुत-से पदार्थ बतलाये, जिनकी उसने ब्रह्म के समान उपासना की और राजा ने उनके विषय में इन शब्दों में उत्तर दिया, 'प्राण (उच्छ्वास) काल के पूर्व उसे नहीं त्यागता' एवं 'काल के पूर्व मृत्यु उसके पास नहीं आती।' यहाँ 'काल' शब्द निश्चित समय का सूचक है। और देखिए कौषीतिक ब्राह्मण जो वृं० उ० (२१११० एवं १२) के समान ही 'काल' शब्द प्रयुक्त करता है। श्वेताश्वतर उप० (१११-२) में 'काल' शब्द पृष्टि के कारण या मूल के अर्थ में आया है— 'कारण क्या है? क्या यह ब्रह्म है? हम कहाँ से उत्पन्न होते हैं? हम किससे जीवित रहते हैं? हम किस पर प्रतिष्ठित हैं? (या हम कहाँ जा रहे हैं?)...काल या स्वभाव या आवश्यकता या संयोग या तत्त्व या योनि (प्रकृति) या पुरुष, यही विचारणीय है (इनमें से कोई कारण हो। कुछ कियों (ऋषियों) ने स्वभाव को कारण माना है, तथा अन्य मोहित लोगों ने काल को इसका कारण माना है।' यहाँ 'काल' शब्द सृष्टि का कारण माना गया है, जैसा कि हमने ऊपर अथवंवेद में देख लिया है। माण्डूक्योपनिषद् का कथन है कि ओंकार त्रिविघ काल (भूत, वर्तमान एवं भविष्य) से ऊपर है।'

भुवनानि विश्वा ।। स एवं सं भुवनान्या शर् स एवं सं भुवनानि पर्येत् । पिता सन्नभवत्पुत्र एषां तस्माहै नान्यत्परमस्ति तेजः ।। काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ।। कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिस् । स्वयम्भूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत ।। अथवंवेद (१९।५३।१, ४,७,१०); कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा । कालादृचः समभवन्यजुः कालादजायत ।। इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्याश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः । सर्वां लोकानिभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ।। अथवं० (१९।५४।५) । ऋग्वेद (९।११४।२) में कश्यप ऋषि के रूप में हैं, पौराणिक कथाओं में वे अदिति के पति हैं; अदिति को ऋ० (१।८९।१०) में माता, पिता एवं पुत्र कहा गया है, अतः सम्भवतः यहाँ कश्यप प्रजापति ही हैं । अथवं० (८।५।१४) में आया है कि कश्यप ने रक्षारत्न को उत्पन्न किया की : 'कश्यपस्त्वासमृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।' यहां 'विषृति' का सम्भवतः अर्थ है 'लोकों को पृथक् करने वाली सीमाएँ।'

३. किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः । कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतामि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ॥ इवे० उप० (१।१-२); स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्ममानाः । मैत्री उपनिषद् (६११४-१६) में काल पर एक लम्बा विवेचन है। पहले आया है—'ऐसा कहीं पर कहा गया है कि अस इस सम्पूर्ण संसार की योनि है, काल अस की योनि है; सूर्य काल की योनि है।' इसमें पुनः आया है—'काल से सभी जीव उत्पन्न होते हैं, काल से ही वे वृद्धि प्राप्त करते हैं और काल में ही समाप्त हो जाते हैं; काल मूर्ति है (निश्चित रूप या सीमाएँ) और अमूर्तिमान् (रूपरिहत) है।' इसके उपरान्त इसने उद्घोषित किया है, 'ब्रह्म के वास्तव में दो रूप हैं, काल एवं अकाल। जो सूर्य के पूर्व है वह अकाल है अर्थात् कालरहित है (यही ब्रह्म का रूप है) और यह भागविहीन है। किन्तु जो सूर्य के साथ आरम्भित होता है वह काल है और उसके भाग भी हैं; वर्ष काल का वह रूप है जिसके भाग हैं। ये सभी जीव वर्ष द्वारा उत्पन्न होते हैं, ये उत्पन्न जीव वर्ष द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वर्ष में ही उनका क्षय हो जाता है। अतः वर्ष प्रजापित है, काल है, अस है, ब्रह्मनोड (ब्रह्म का निवास) है और आत्मा है।' फिर ऐसा कहा गया है, 'काल सभी जीवों को महान् आत्मा में पकाता है (पचाता है), किंतु जो व्यक्ति उसे जानता है जिसमें 'काल पचता है, वही वेदज है।' यहाँ मैत्री उप० ने काल को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है, और पश्चात्कालीन कालानुभूति की घारणा व्यक्त की है—सूर्य की गतियों पर निर्घारित काल तथा ब्रह्म के स्वरूप से सम्बन्धित काल। और देखिए महानारायण उप० (११११४), 'अहमेव कालो नाहं कालस्य', जहाँ काल को नारायण (ईश्वर) कहा गया है।

महाभारत में भी काल पर कई बार लिखा गया है। आदिपर्व (१।२४८-२५०) में आया है, काल भूतों (प्राणियों) की सर्जना करता है, काल प्रजाओं (लोगों) का नाश करता है; प्रजा के संहार में संलग्न काल काल को शिमत करता है। काल शुभ एवं अशुभ स्थितियाँ उत्पन्न करता है; काल सबको समाप्त करता है और पुनः सबकी सृष्टि करता है, काल ही ऐसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। पैसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। प्राप्त करता है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। प्राप्त करता है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है; काल अजेय है। प्राप्त करता है काल जाने पर जागता रहता है। काल पर जागता रहता है काल अजेय है। प्राप्त करता है। काल पर जागता रहता है। काल पर जागता रहता है। काल पर जागता रहता है। जागता रहता है। काल पर जागता रहता है। जागता है। जागता है। जागता रहता है। जागता है। जागता रहता है। जागता है। जागता रहता है। जागता है। जागता रहता है। जागता रहता है। जागता रहता है। जागता है। जागता रहता ह

भगवद्गीता में कई स्थानों पर 'काल' शब्द 'सामान्य समय' या 'यथा समय' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (यथा ४।२,८।७ एवं २७,८।२३,१७।२०)। इसमें 'काल' शब्द कृष्ण के लिए भी प्रयुक्त हुआ है जिन्हें पर ब्रह्म कहा गया है (यथा १०।३० एवं ३३,११।३२)।

पाणिनि ने सामान्य अर्थ में, काल की अविधयों या ठीक समय के अर्थ में ही 'काल' शब्द को रखा है। देखिए पतञ्जिल (पाणिनि ३।३।१६७)। पतञ्जिल ने (पाणिनि २।२।५ के दूसरे वार्तिक में) काल-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की चर्चा की है। उनका कहना है—'लोग उसको काल कहते हैं जिसके द्वारा कठोर वस्तुओं की वृद्धि (उपचय) एवं क्षय (अपचय) लक्षित होता है, और वही (काल) रात्रि एवं दिन कहा जाता है जब कि

इवेता० (६।१)। घराह की बृहत्संहिता इस अन्तिम की ओर संकेत करती है, यथा—'कालं कारणभेके, स्वभावमपरे परे जगुः कर्म।' येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद्यः। इवे० उ० (६।२); ब्रादिः स संयोगनिमित्तहेतुः परित्रकालादकालोपि वृष्टः। इवे० उप० (६।५); मिलाइए माण्डूक्योपनिषद् 'भूतं भवद् भविष्यमिति सर्वमोकार एव। यध्वान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।'

र्थः कालः सृजित भूतानि कालः संहरते प्रजाः । संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः । कालो हि कुरुते भावान् सर्वलोके शुभाशुभान् ।। कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजिते पुनः । कालः सुप्तेषु जार्गात कालो हि दुरितकमः ।। स्त्रीपर्व (२।२४) । और देखिए शान्तिपर्व (२२१।४१) एवं गण्ड० (१।१०८।७) ।

धह किया से संयुक्त हो जाता है। वह किया क्या है? उत्तर है, 'आदित्य (सूर्य) की गति।' जब वही गति बार-बार होती है तो मास एवं संवत्सर (वर्ष) होता है।'

मनुस्मृति (१।२१) में परमात्मा को काल और उसके विभागों (१।२४, कालं कालविभक्तीश्च) का सृष्टिकर्ता कहा गया है। परमात्मा विश्व-सृष्टि के उपरान्त अपने में विलीन होता प्रदिश्ति किया गया है, और बार-बार एक कालाविध को दूसरी कालाविध से चूसता या पीड़ित करता हुआ प्रकट किया गया है (आत्मन्यन्तदंधे भूयः कालं कालेन पीडयन्)।

सांख्य ने काल को अपने २५ तत्त्वों में परिगणित नहीं किया है। किन्तु इस पद्धित में काल को अखूता नहीं छोड़ा गया है। सांख्यकारिका में १३ कारण बताये गये हैं, ३ आभ्यन्तर और १० बाह्य। बाह्य कारणों का सम्बन्ध वर्तमान से दिशत है और आभ्यन्तर कारणों का भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों से (सांख्यकारिका १३३)।

वैशेपिकसूत्र (२।२।६-९) ने काल को नौ द्रव्यों में रखा है (पदार्थ १।५)। कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जो काल को भूत या भविष्य मानते हैं और उसे वर्तमान की संज्ञा देने को तत्पर नहीं हैं। न्यायसूत्र इसे नहीं मानता और कहता है कि काल भूत, वर्तमान एवं भविष्य है (२।१।३९-४३)। पतंजिल (पा॰ ३।२।१२३) से प्रकट होता है कि उनके समय में कुछ ऐसे दार्शनिक थे जो वर्तमान काल को नहीं मानते थे।

जयन्त भट्ट की न्यायमंजरी में काल पर वृहत् व्याख्या है। सर्वप्रथम इसमें उन लोगों के मतों का विवरण हैं जो काल की स्थिति को पृथक् इकाई के रूप में मानने को सन्नद्ध नहीं हैं। इन लोगों के अनुसार काल, घट आदि के समान, प्रत्यक्षीकृतन नहीं है और क्षिप्रता एवं मन्दता की भावनाएँ केवल निरीक्षित-प्रभावों पर ही निर्भर हैं। यदि काल द्रव्य है, जो कि वैशेषिकों के मत से विभु एवं नित्य है, तो उसे भूत, वर्तमान एवं भविष्य के रूप में कैसे कहा जा सकता है ? इन विरोघों के उत्तर में कुछ लोग कहते हैं —काल का प्रत्यक्षीकरण सीधे ढंग से होता है, क्योंकि यह मन के अपने विभिन्न प्रभावों के रूप में प्रकट होता है; ऐसे विभिन्न अनुभव, यथा 'ये विषय एक-के उपरान्त घटित हुए', 'यह बहुत देर के उपरान्त घटित हुआ', 'यह शीघ्रता से हो गया', नहीं व्यास्यायित हो सकते यदि काल का अस्तित्व न माना जाय। कुछ लोगों का मत है कि काल केवल अनुमानित है और इसका प्रत्यक्षीकरण सीघे ढंग से नहीं हो सकता। उनके तर्क हैं—'यह कहकर किं काल का सीघे ढंग से प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता, यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि काल का अस्तित्व नहीं है; यह अनुमान लगाना कि काल का अस्तित्व है, उचित है, जैसा कि चन्द्र का पिछली ओर का रूप होता है, यद्यपि हम उसके सामने का ही रूप देख पाते हैं। अतः काल पृथक् इकाई के रूप में अवस्थित है, जैसा कि हम सामान्य अनुभव से क्षिप्रता, मन्दता, साथ-साथ घटित होना आदि जानते हैं। एक व्यक्ति बूढ़ा है या युवा है, इसका ज्ञान बिना काल-ज्ञान के नहीं हो सकता। काल आकाश की भांति विभू है, एक है और नित्य है। जब काल एक है, विभू है और नित्य है तो इसके तीन विभाग (भूत, वर्तमान एवं भविष्य) कैसे सम्भव हैं ? इसका उत्तर यों है-वास्तव में काल के विभाग नहीं हैं, ये विभाग तो कल्पनापरक हैं और ये काल की किया के द्योतक हैं। यदि हम किसी व्यक्ति के विषय में यह कहें कि वह वर्तमान में चावल पकाता हैं (ओदनं पचित) तो यह 'पके चावल' के परिणाम के विशिष्ट स्वभाव के कारण है, जो कई कियाओं का प्रतिफल मात्र है, यथा अग्नि पर पात्र रखने से लेकर पृथिवी पर उतार कर रखने तक। तब हम इसे वर्तमान कहते

५. सात पदार्थों (प्राचीन काल में ६) में द्रव्य एक पदार्थ है। पदार्थ वह है जिसको नाम विया जा सके और जो जात हो, वह ऐसा नहीं है जिसकी केवल भौतिक अवधारणा मात्र हो सके।

हैं। जब हम उन कियाओं की शृंखला पर व्यान देते हैं जिसके फलस्वरूप चावल पंका तो हम भूत काल की सर्थ लगाते हैं (उन कियाओं से जो अन्त में निःशेष हुईं)। वास्तव में यह स्वयं कियाओं की विशिष्टताओं पर निर्फार है।

यह ज्यान देने योग्य है कि रघुनाथ शिरोमणि ने 'पदार्थ-निरूपण' (नव्यन्याय सम्प्रदाय के एक ग्रन्थ) में

निरूपित किया है कि दिक्, काल एवं परब्रह्म एक ही हैं, वे पृथक् पदार्थ नहीं हैं।

योगसूत्रभाष्य (३।५१) में काल के विषय में एक मनोरंजक किन्तु गूढ़ विवेचन उपस्थित किया गया है। सूत्र इस प्रकार है—'क्षणतत्त्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्' अर्थात् क्षणों एवं उनके कमों पर संयम करने से विवेकजन्य ज्ञान उत्पन्न होता है। इस पर भाष्य यों है—'जिस प्रकार एक परमाणु द्रव्य है जो सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तक पहुँच सकता हैं, उसी प्रकार क्षण काल है जो परम अपकर्ष तक (सूक्ष्म से-सूक्ष्म सीमा तक) पहुँच सकता हैं'...आदि-आदि। इस विवेचन से यही प्रकट होता है कि योगसूत्र एवं इसके भाष्य ने यही माना है कि काल द्रव्य नहीं है, कोई प्रकट बास्तिबकता नहीं है, यह केवल एक शब्द है, एक मानसिक घारणा है जो प्रत्यक्षीकरण या भौतिक पदार्थों की विशेषता (विशेषण या उपाधि) की अनुभूति मात्र है, यह परिवर्तित वस्तुओं से सम्बन्धित है, इसकी गणना हम वस्तुओं की गति या परिवर्तन से करते हैं, यह केवल शशकर्श्य (खरगोश के सींग) के समान नहीं है।

बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों में भी काल के विषय में विवेचन है। प्रज्ञाकर गुप्त (लगभग ७०० ई०) के प्रमाणबार्तिकभाष्य या वार्तिकालकार में वैशेषिक सूत्र एवं प्रशस्तपाद का खण्डन है। इसमें यह प्रतिपादित है कि काल कोई
पृथक् सत्तानहीं है, यदि काल का कोई आरम्भ नहीं है और यह अनन्त है तो समय की दूरी एवं निकटता की धारणा
नहीं हो सकती, दूरी, सिन्नकटता या क्षिप्रता उन कियाओं से भिन्न नहीं हैं जिनके विषय में वे पूर्व ज्ञान देती हैं। बौद्ध
मत भी कहता है कि काल कोई वस्तु नहीं है, यह विचार मात्र है, यह केवल मनुष्य के इन्द्रियज्ञान-भण्डार एवं प्रज्ञा
की स्वानुभूतिमय (आत्मगत) दशा है, अपने में यह नास्तित्व का छोतक है, यह कर्ता से भिन्न है। किन्तु जैन
सिद्धान्त के अनुसार छः पदार्थ हैं, यथा जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल एवं काल, अर्थात् काल की पृथक्

सता है।

कितपय पुराणों में भी काल के विषय में विवेचन है। कूर्मपुराण (१, अध्याय ५) में काल का स्वरूप यों आया है—'यह पूजनीत्र काल अनन्त, अजर एवं अमर है। यह सर्वगत्व, स्वतन्त्रत्व, सर्वात्मत्व रूप से महेश्वर है। यों तो बहुत-से ब्रह्मा, छद्र, नारायण एवं अन्य देव हैं, किन्तु यह घोषित है कि एक ही भगवान् काल है। देव काल से ही सष्ट हैं और पुनः काल द्वारा कवलित होते हैं। काल की शिवत से ब्रह्मा, नारायण, ईश (शिव) प्राकृत लय को प्राप्त होते हैं और पुनः काल के योग से उत्पन्न होते हैं। इसी से पर ब्रह्मा, प्रकृति, वासुदेव एवं शंकर की सृष्टि होती है। अतः विश्व कालात्मक है। वही अकेला परमेश्वर है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर (१।७२।१-७) जहाँ ये ही बातें दूसरे बंग से आयी हैं। वायु एवं कूर्म दोनों में आया है—'काल जीवों की सर्जना एवं संहार करता है, सभी काल के वश में हैं, काल किसी अन्य के वश में नहीं हैं' (वायु, ३२।२९-३०, कूर्म, २।२।१६)। और देखिए विष्णुपुराण (१।२। १३-१५-२६), ब्रह्मपुराण, भागवतपुराण (३।११।३-७)।

ज्योतिप के ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त में आया है—'काल लोकों का अन्त करने वाला है; दूसरा प्रकार (काल-भेद) कलनात्मक है, जिससे गणना की जाती है।' काल के दो प्रकार हैं—स्थूल एवं सूक्ष्म, जिन्हें मूर्त भी कहा जाता है और अमूर्त भी। काल-विभाजन प्राण (उच्छ्वास) आदि मूर्त हैं और त्रुटि आदि अमूर्त है। चरकसंहिता (सूत्र-स्थान १।४८०) ने काल को ९ द्रव्यों में गिन रखा है और कहा है कि यह अचेतन है। यह प्रकट है कि यह वैशेषिक

सिंद्धान्त से मेल रखता है। सुश्रुतखंहिता (२।३-५) में भी काल-विषयक विवेचन है। दार्शनिक वैयाकरणों में मतृंहरि (वाक्यपदीय के लेखक) ने प्रकीणंककाण्ड (कालसमुद्देश, १,३,३२) में कहा है कि काल एक द्रव्य है, विमु है, अन्य कियाओं से पृथक् अनन्त सत्ता वाला है। स्थानामाव से और कुछ लिखना सम्भव नहीं है। जो लोग काल के विषय में विशेष अध्ययन करना चाहते हैं वे श्री हारानचन्द्र मट्टाचार्य द्वारा लिखित एवं प्रकाशित 'कालसिद्धान्त-दिशंनी' का अध्ययन कर सकते हैं, क्योंकि उस ग्रन्थ में विभिन्न सम्प्रदायों, शासाओं एवं संस्कृत ग्रन्थों में प्रतिपादित काल सम्बन्धी दार्शनिक धारणाओं का विस्तारपूर्वक विवेचन है। हम यहाँ पर पश्चिमी सिद्धान्तों की न व्याख्या करेंगे और न भारतीय दृष्टिकोण से उनकी तुलना ही।

प्राचीन समय से ही काल के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विभाजन का आलेखन होता आया है। वार्जं० सं० (३२।२) में आया है—'सभी निमेष (पलक गिरने की अविधर्या) परम पुरुष से उद्भूत हैं. वह पुरुष विद्युत् के समान देवीप्यमान हैं।' और देखिए महानारायण उप० (१।८)। बृ० उप० (३।८।९) में आया है—'अक्षर ब्रह्म के आधिपत्य में सूर्य एवं चन्द्र दूर-दूर स्थित हैं, इसी प्रकार निमेष, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, ऋतुएँ, वर्ष पृथक्-पृथक् हैं।' महानारायण उप० (१।८-९) में काल की इकाइयाँ यों हैं—'निमेष, कलाएँ, मुहूर्त, काष्टाएँ, अर्धमास, मास, ऋतुएँ एवं वर्ष। मनु (१।६४) में आया है कि १८ निमेष एक काष्टा के, ३० काष्टाएँ एक कला के, ३० कलाएँ एक मुहूर्त के, ३० मुहूर्त एक अहोरात्र (रात-दिन) के बराबर हैं। वराहमिहिर की वृहत्संहिता (२,पृ० २२) एवं प्रशस्तपाद (वैशेषिक सूत्र, २।२।४६ के) भाष्य में प्रारम्भिक काल वाली काल-विभाजन-सूची यों है—'व्यवहार में आने वाली इकाइयों का कारण काल है और उसके खण्ड हैं—क्षण, लव, निमेष, काष्टा, कला, मुहूर्त, याम (प्रहर या दिन का ट्रै भाग), अहोरात्र, अर्थमास, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर (वर्ष), युग, मन्वन्तर, कल्प, प्रलय एवं महाप्रलय।' पुराणों में भी निमेष से प्रलय या कल्प तक के काल-विभाजन उल्लिखत हैं (देखिए ब्रह्म २३१।६-१२; कूम १।५।६-१४; पद्म ५।३। ४-२०; वाय ५७।६-३५)। निमेष (पलक गिरने के समय) को वाय एवं विष्णुधर्मोत्तर ने ऐसा काल कहा है जो एक लघु अक्षर के उच्चारण में लगता है। विष्णुधर्मोत्तर ने कहा है कि निमेष से लघु काल की भौतिक अवधारणा सम्भव नहीं है।

काल की इकाइयों की संख्या, नाम एवं समय के विषय में मतैक्य नहीं है। यथा मनु (१।६४)—१८ निमेष १ काष्ठा, ३० काष्ठा १ कला, ३० कला १ मुहूर्त, ३० मुहूर्त १ अहोरात्र। कौटिल्य (अर्थशास्त्र २, अघ्याय २०, पृ०१०७-१०८, शामशास्त्रीसंस्करण)—२ त्रुट (या त्रुटि?) =लव, २ लवं = निमेष, ५ निमेष =काष्ठा, ३० काष्ठा = कला, ४० कला = नाड़िका, २ नाड़िका = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र। युःछ पुराणों में वही नाम आदि हैं—१५ निमेष =काष्ठा, ३० काष्ठा = कला, ४० कला = नाड़िका, २ नाड़िका = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र (वायु ५०।१६९, ५७।७ = मत्स्य १४२।४, विष्णु २।८।५९, ब्रह्माण्ड २।२९।६, शान्ति० २३२। १२)। अमरकोश—१८ निमेष =काष्ठा, ३० काष्ठ = कला, ३० कला = क्षण, १२ क्षण = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र। भागवत (२।११।३-१०)—२ परमाणु = अणु, ३ अणु = त्रसरेणु, ३ त्रसरेणु = त्रुटि, १०० त्रुटि = वेघ, ३ वेघ = लव, ३ लव = निमेष, ३ निमष = क्षण, ५ क्षण = काष्ठा, १५ काष्ठा = लघु, १५ लघु = नाड़िका, २ नाड़िका = मुहूर्त, ३० मुहूर्त = अहोरात्र। आयर्वण ज्योतिष — १२ निमेष = लव, ३० लव = कला, ३० कला = त्रुटि, ३० त्रुटि = मुहूर्त। यह तालिका किसी तालिका से नहीं मिलती। अहोरात्र से प्रलय की इकाइयों का उल्लेख आगे होगा।

आगे कुछ कहने के पूर्व कुछ बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है। ईसा से कई शताब्दियों पूर्व ज्योतिष वेदांगों में परिगणित था। मुण्डकोपनिषद् (१।१।४-५) में अपरा विद्या को यों कहा गया है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुवत, छन्द एवं ज्योतिष। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र (२।४।८।११) में भी

बेदों के छः अंगों का उल्लेख है। पाणिनीय शिक्षा (श्लोक ४१-४२) में नक्षत्र-तारकों की गतियों के विज्ञान को वेद की आँख कहा गया है। ज्योतिष, जो (ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का) वेदांग है, केवल ज्योतिःशास्त्र-सम्बन्धी वातों से ही सम्बन्धित था। वेदांगज्योतिष (यजुर्वेद का, श्लोक ३, ४) में आया है—'वेदों की उत्पत्ति यज्ञों के प्रयोग के लिए हुई; यज्ञ कालानुपूर्वी हैं अर्थात् वे काल के कम से चलते हैं; अतः जो कालविधानशास्त्र ज्योतिष को जानता है, वह यज्ञों को भी जानता है। जिस प्रकार मयूरों के सिर पर कंलेंगी होती है, नागों (सपीं) के सिर पर मणि होती है, उसी प्रकार गणित वेदांगशास्त्रों का मूर्धन्य है।' इससे प्रकट है कि उस समय गणित एवं ज्योतिष समानार्थी शब्द थे। वृद्ध-वासिष्ठसिद्धान्त में आया है—'यह शास्त्र वेद की आँख है।' आगे चलकर ज्योतिष के तीन स्कन्ध हो गये—तन्त्र (गणित द्वारा ग्रहों की गतियों का ज्ञान प्राप्त करना और उन्हें निश्चित करना), होरा (जिसका सम्बन्ध कुण्डली बनाने से है और इसे जातक भी कहा जाता है) तथा शाखा, जो एक विस्तृत स्कन्ध वा और जिसमें शकुत-परीक्षण, लक्षण-परीक्षण एवं भविष्यसूचन का विवरण था। इन तीनों स्कन्धों पर रचित शत्य को संहिता कहा गया। जो इन तीनों स्कन्धों (गणित, होरा एवं शाखा) का ज्ञाता होता था, उसे संहितापारण कहा जाता था। तीसरे स्कन्ध को 'शाखा' क्यों कहा गया इसका समृचित समाधान नहीं दिया जा सका है। होरा के तीन उपविभाग थे—जातक या जन्म, यात्रा या यात्रिक एवं विवाह।

गृह्यसूत्रों एवं घमंसूत्रों में यह बात पायी जाती है कि वे ज्योतिष-सम्बन्धी आवश्यकताओं एवं जानकारी को ज्योतिषशास्त्रज्ञों से लेते थे। गोभिल-गृह्यसूत्र (१।५।१३) में आया है—'इस बात पर पृथक् ग्रन्थ है, उसे पढ़ना चाहिए या पवाँ (अमावास्या या पूर्णिमा) के विषय में जानकार लोगों से पूछना चाहिए।' प्राचीन एवं मध्य काल के क्योतिष-ज्ञान के विषय में गहरे मतभेद रहे हैं। वास्तव में, घमंशास्त्र के इतिहास में इसका विवेचन नहीं होना चाहिए, क्योंकि उस विषय पर लिखने के लिए एक पृथक् ग्रन्थ की आवश्यकता पड़गी। किन्तु ज्योतिष की दो शाखाओं (होरा एवं शाखा) का धमंशास्त्र पर बड़ा प्रभाव पड़ा है, अतः कुछ बातों का उल्लेख आवश्यक है। मच्यिप धमंशास्त्रकारों ने ज्योतिष से बहुत कुछ लिया है, किन्तु वे ज्योतिःशास्त्र के शब्दों को अन्तिम सिद्धान्त मानने को सम्बद्ध वहीं रहा करते थे। यदि ज्योतिःशास्त्र एवं धमंशास्त्र के सिद्धान्तों में कहीं विरोध उत्पन्न होता था तो वे बमंशास्त्र को ही मान्यता देते थे। उदाहरणार्थ, मान लिया जाय कि एक व्यक्ति ने सप्तमी पर 'एकभक्त-वृत' किया है। संकल्प सामान्य नियम के अनुसार प्रातःकाल किया जाता है। मान लिया कि वह सप्तमी षण्ठी एवं अष्टमी से संयुक्त है और सप्तमी दिन के दस बजे से आरम्भ होती है। ऐसी स्थिति में 'युग्मवावय' के अनुसार षष्टी से संयुक्त सप्तमी को त्रत के लिए मान्यता प्राप्त होगी और संकल्प प्रातःकाल करना पड़ेगा, किन्तु वास्तव में ज्योतिष के अनुसार तिथि उस समय षष्टी ही रहेगी। देवल के मत से धार्मिक स्नान, दान एवं व्रतों के प्रयोग के लिए तिथि पूरे दिन भर रहेगी यदि सूर्य उस तिथि की अविध में ही अस्त हो जाय। अन्य उदाहरणों के लिए देखिए कुछ र० (पृ० २९९) एवं स्मृतिकौं (तिथि, पृ० १२)।

भारत की ज्योतिष-विद्या एवं फिलत ज्योतिष के विषय में वेबर, ह्विटनी, थिबो आदि पाश्चात्य विद्वानों ने किल्पत आघारों पर प्रमाणरिहत सिद्धान्त बघारे हैं। वे यह भूल जाते हैं कि संस्कृत साहित्य का एक विशाल अंश नष्ट हो चुका है, जिसका पता अब नहीं चल सकता। यही बास यूनान के विषय में भी है (टाल्मी के ऐल्मगेस्ट के उपरान्त यूनान का बहुत-सा साहित्य नहीं प्राप्त होता)। दूसरी बात यह है कि वे यह बात भूल जाते हैं कि जो उछ साहित्य अवशेष हैं वह धार्मिक हैं न कि ऐतिहासिक; और जो कुछ बातें गणित के विषय की मिलती हैं वे केवल विषय प्रतिपादन के सिलसिले में ही आ गयी हैं। जिसका उल्लेख हुआ है और उस सिलसिले में जो कुछ छूट गया है उससे यह नहीं समझना चाहिए कि और अन्य बातें थीं ही नहीं। कुछ बातों के मेल से, यथा संस्थाओं एवं

ब्यवहारगत बातों की कृतिपय समानताओं से यह नहीं समझना चाहिए कि एक ने दूसरे से कुछ उद्यार लिया है। मानवमन सब स्थानों पर समान है, इसकी आवश्यकताओं, वातावरण आदि में बहुत कुछ समानताएँ हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए कि किसी स्थान-विशेष के लोग ही वौद्धिक शक्तियों में एकाधिकार रखते रहे हैं। १९वीं शताब्दी में जिन लोगों ने भारतीय साहित्य एवं विषयों पर लिखा है उनमें अधिकांश लोग यूनान एवं रोम के साहित्य से शिक्षत थे और वे यूनानी दर्शन, गणित, कलाओं एवं मिस्री सम्यता से अभिभूत थे। जब वेबिलोन एवं मध्य-पूर्व एशिया के भारतीय आलेखन सामने आने लगे तो लोगों की आँखें खुलीं। निम्नोक्त विद्वानों ने विश्व की आँखें खोल दीं—सर लियोनाड बुली, ग्लैनिवले, सर टामस हीथ, सार्टन आदि ने यह सिद्ध कर दिया कि यूनानियों ने सुमेर के लोगों, मिस्रियों, वेबिलोन के लोगों से बहुत कुछ सीखा। यह कहना बचपन सिद्ध हो गया कि यूनान से ही ज्ञान विज्ञान का श्रीगणेश हुआ था। वेबिलोन के लोग यूनानियों से गणित के विषय में बहुत आगे थे। टाल्मी ने वेबिलोन से बहुत कुछ प्राप्त किया था। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, रूस एवं अमेरिका, जो आज विज्ञान के क्षेत्र में बहुत आगे हैं, टॉल्मी को ही गणित-गुरु मानते हैं, किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि उन्होंने अरब से दशमलव का ज्ञान प्राप्त किया। अरब वालों का गणितगुरु भारत था। यहाँ इस विषय में अधिक नहीं लिखा जायगा।

ज्योतिःशास्त्र एवं फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में वृष्ठ मत-मतान्तर हैं। आकाश के ग्रह, नक्षत्र, सूर्यं, चन्द्र, उनके ग्रहण, धूमकेतु, तारों का टूटना आदि ऐसी विस्मयकारी वस्तुएँ हैं जिन्हें देखकर लोगों के मन में भय, कौतूहल एवं जिज्ञासा की भावनाएँ उत्पन्न होती रही होंगी। कालान्तर में ज्योतिःशास्त्र एवं फलित ज्योतिष की उत्पत्त हुई। प्राचीन काल में दोनों शब्द एक ही अर्थ रखते थे। कुछ लोगों के मत से ज्योतिःशास्त्र फलित ज्योतिष पर आधारित है। किन्तु प्रो० न्यूगेबोर एवं श्री पीटर डोएग इस मत को नहीं मानते। किन्तु लगता है, दोनों प्राचीन हैं और वे एक-दूसरे से प्रभावित होते रहे हैं। आजकल के बहुत-से लोग फलित ज्योतिष की वातों को गुलगपाड़ा ठहराते हैं। किन्तु वास्तव में ऐसी वात नहीं है। क्या हम ज्वार-भाटों, ग्रहणों, अन्धड़-तूफानों, वर्षा आदि के विषय में भविष्यवाणियाँ नहीं करते? आकाश के ग्रह-नक्षत्र हमारे जीवन को अवश्य प्रभावित करते हैं।

किन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। हमें यह देखना है कि क्या ज्योतिषाचार्यों एवं फलित ज्योतिष के जानकारों ने ग्रहों, नक्षत्रों आदि के विषय में यथातथ्य नियमों एवं विधियों का निर्माण करके यथातथ्य निष्कर्ष नहीं निकाले हैं ? क्या उनके ज्ञान से हमारे अनुदिन के जीवन पर प्रकाश नहीं पड़ता है ?

ज्योतिःशास्त्र एवं फलित ज्योतिष सम्बन्धी संस्कृत-साहित्य, बुछ एक-दूसरे से मिल जाते हुए भी, तीन कालाविधयों में बाँटा जा सकता है। प्रथम युग है वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों का, जो अति आदिकालीन युगों से लगभग ईसा पूर्व ८०० के मध्य का है। दूसरा युग वह है जिसमें वेदांगज्योतिष, श्रीत, गृह्म एवं धर्म सूत्र, मनु, याज-वल्क्य, गर्ग के प्रन्थों तथा सूर्यप्रज्ञप्ति जैसे जैन ग्रन्थों का निर्माण हुआ और जो तीसरी शताब्दी तक चलता रहा। तीसरा युग ईसा की प्रथम शताब्दी से प्रारम्भ हुआ, जिसमें सिद्धान्त नामक ग्रन्थ प्रणीत हुए और जिसमें आयंभट (४७६ ई० में उत्पन्न), वराहिमिहिर (४७५ ई० से ५५० ई० तक), ब्रह्मगुप्त (सन् ५९८ ई० में उत्पन्न) आदि ग्रन्थकार थे।

यहाँ पर उन ग्रन्थों की ओर कुछ संकेत किया जायगा जो विस्तार से अध्ययन के उपरान्त भारतीय ज्योति:शास्त्र एवं दैवज्ञविद्या (फलित ज्योतिप) पर प्रभृत प्रकाश डालते हैं। सन् १८९६ ई० में प्रकाशित एवं शंकर बालकुष्ण दीक्षित द्वारा लिखित तथा सन् १९३१ ई० में उनके पुत्र द्वारा पुनः सम्पादित मराठी ग्रन्थ 'हिन्दू ज्योति:शास्त्र का इतिहास' महत्त्वपूर्ण है। दीक्षित ने यह प्रतिपादित किया है कि भारतीय ज्योति:-

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

शास्त्र पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है और इस पर कोई बाहरी छाप नहीं है। \* अन्य ग्रन्थ या लेख ये हैं—डेविस का 'एस्ट्रॉनांमिकल कम्प्यूटेशंस आव दि हिन्दूज' (एशियाटिक रिसर्चेज, जिल्द ३ पृ० २०९-२७७); वेण्टली का 'हिस्टॉरिकल ल्यू
आव हिन्दू एस्ट्रानॉमी' (वही, जिल्द ६, पृ० ५३७-५८८); कोलबुक के 'मिसलेनिएस एसेज' (जिल्द २, पृ० ३२१३७३); वारेन का 'काल-संकलित'; जिंवस का 'इण्डियन मेट्रालॉजी'; बृहत्संहिता पर कर्न की भूमिका; बर्गेस,
ह्विटनी (जे० ए० ओ० एस०, जिल्द ६, पृ० १४१-४९८); और देखिए वही, जिल्द ८ (पृ० १-९४); वराहिमिहिर
की पंचसिद्धान्तिका (थिवो एवं सुघाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित); प्रो० वेबर का 'उब्र डेन वेदकैलेण्डर, नामेंस
ज्योतिषम्', मैक्समूलर का ऋग्वेद; बाल गंगाघर जिलक का 'ओरायन' एवं 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज'; थिवो का
'इण्डियन ऐस्ट्रॉनामी, ऐस्ट्रॉलॉजी एण्ड मैथमेटिक्स'; अलबरूनी का 'इण्डिया'; इण्डियन एण्टीक्वेरी (जिल्द २३,
पृ० १५४-१५९; जिल्द २४, पृ० ८५-१००); इण्डियन हिस्ट्रोरिकल क्वाटंरली (जिल्द ४, १९२८, पृ०
'६८-७७); वही (जिल्द ४, पृ० ४७९-५१२); मेनन का 'ऐश्येण्ट ऐस्ट्रॉनामी एवं कॉस्मामॉनी'; दत्त एवं
सिंह का 'हिस्ट्री आव हिन्दू मैथमेटिक्स'; दफ्तरी का 'भारतीय-ज्योतिःशास्त्र-निरीक्षण।' इसी प्रकार बहुत से
लेख एवं ग्रन्थ प्रकाशित हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

386

<sup>\*</sup> यह प्रसिद्ध मराठी ग्रन्थ पं० विश्वनाथ झारखण्डी द्वारा हिन्दी में अनूदित होकर 'हिन्दी समिति' द्वारा (सन् १९६३ में द्वितीय आवृत्ति) प्रकाशित हो चुका है।

# अध्याय १५ काल की इकाइयाँ

अव हम 'युग' से पूर्ववर्ती 'मुहूर्त' तक की काल-इकाइयों का उल्लेख करेंगे। 'मन्वन्तर', 'कल्प' एवं 'प्रलय' पर चर्चा आगे होगी।

ऋग्वेद में 'युग' शब्द कम-से-कम ३३ वार विभिन्न अर्थों में आया है। इस विषय में देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड ३। दो अर्थ स्पष्टतया उभर उठते हैं-अल्पाविध एवं दीर्घाविध। ऋ० (१।१५८।६) में आया है-'ममता के पुत्र दीर्घतमा दस युगों में वूढ़े हुए, वे ब्रह्मा, बड़े याजक और अपने लक्ष्य की ओर वहने वाली नदियों (जलों) के नेता बने।" यहाँ 'युग' दस वर्ष से अधिक अविध का द्योतक नहीं हो सकता, सम्भवतः पाँच वर्षों की अविध का द्योतक है। ऋ॰ (३।२६।३) में आया हैं—'अपनी माता के पास हिनहिनाते हुए अश्व के समान वैश्वानर (अग्नि) प्रत्येक युग (प्रति दिन, सायण) में बुःशिकों द्वारा प्रज्वलित किया जाता है।' वेदांगज्योतिष ( হলोक १ एवं ५) में युग पाँच वर्षों का द्योतक है। अतएव हम ऋग्वेद के 'युग' को पाँच वर्ष की अविध के रूप में ले सकते हैं। ऋ॰ (३।५५।१८) में पाँच वर्ष की इकाइयों की (जिनमें प्रत्येक ६ ऋतुओं में विभाजित है) ओर गूढ़ संकेत है। ऋग्वेद में संवत्सर का अर्थ एक वर्ष है (शारश्वा४; शार्थवार; शार्दशार्य; शार्दशार्थ; ७।१०३। १, ७, ९; १०।१९०।२)। ऋ० (१०।६२।२) में 'परिवत्सर' शब्द आया है। 'संवत्सर' एवं 'परिवत्सर' शब्द संहिताओं में प्रयुक्त पाँच वर्षों वाले युग के पाँच नामों में आये हुए दो नाम हैं। जिस प्रकार ऋग्वेद में 'युग' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार यह सम्भव है कि 'संवत्सर' एवं 'परिवत्सर' शब्द केवल एक वर्ष के अर्थ में या पाँच वर्षों के वृत्त के अर्थ में प्रयुक्त हुए हों। तै० सं० (५।५।७।१-३) में संवत्सर के साथ रुद्र को नमस्कार किया गया है, दाहिने, पीछे, उत्तर एवं ऊपर कम से परिवत्सर, इदावत्सर, इदुवत्सर एवं वत्सर के साथ रुद्र को नमस्कार अर्पित किया गया है। वाज एसं० (२७।४५) ने इन पाँचों के नाम लिये हैं, केवल इदुपत्सर के स्थान पर इदावत्सर का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार अथर्ववेद (६।५५।२) में इदावत्सर, परिवत्सर एवं संवत्सर को नमस्कार किया गया है। तै॰ ब्रा॰ (१।४।१०।१) में अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा एवं वायु ऋम से संवत्सर, परिसंवत्सर, इदावत्सर एवं अनुवत्सर कहे गये हैं; वहाँ वर्षों के चार नामों का चार चातुर्मास्यों से सम्बन्ध जोड़ा गया है, यथा वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साक्मेघ एवं शुनासीरीय। इससे प्रकट है कि संहिताओं में भी नाम (सामान्यतः पाँच) एक निर्दिष्ट

१. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे। अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारिथः॥ ऋ० (१।१५८।६); अश्वो न कन्दञ्जिनिभः सिमध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगे युगे। ऋ० (३।२६।३); सायण ने 'युगे युगे' को 'प्रतिदिनम्' माना है। देखिए बृहद्देवता (४।२४) जहाँ दोर्घतमा को कथा आयो है।

२. पञ्चसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापितम्। वेदांगज्योतिष, क्लोक १; माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकुष्ण-समापितः। युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते॥ वही, क्लोक ५।

कम में उल्लिखित हैं। इस बात को थिवो महोदय अपने ग्रन्थ 'ग्रुण्ड्रिस' (पृ०९) में हठवाद का आश्रय लेकर ठीक नहीं मानते और कहते हैं कि वैदिक काल में पञ्चवर्षीय युग का ज्ञान नहीं सिद्ध किया जा सकता। यह द्रष्टिच्य है कि कौटिल्य ने पञ्चसंवत्सर युग का उल्लेख किया है और साथ ही साथ २।। वर्ष एवं ५ वर्ष के अन्त के दो मलमासों को उसमें रखा है।

महाभारत में भी पंचवर्षीय युग का उल्लेख है (सभापर्व, ११।३८)। पितामहिसिद्धान्त ने, जो अप्राप्य है, युग को सूर्य एवं चन्द्र का पंच-वर्ष माना है और कहा है कि ३० मासों के उपरान्त एक मलमास जुड़ता है। यह

उदाहरण वराहमिहिर की पंचसिद्धान्तिका में है।

अन्य प्रश्न है—वैदिक काल में वर्ष का क्या विस्तार था? ऋ० (१।१६४।११-१३ एवं ४८) में आया है—ंऋत के चक (पिहए) के बारह अर (तीलियाँ) हैं; यह आकाश में चतुर्दिक् घूमता है; यह कभी नहीं यकता (जरा को प्राप्त नहीं होता)। हे अग्नि, इसमें (चक्र में) ७२० पुत्रों के जोड़े निवास करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि पिता (सूर्य) के, जो नीचे पानी गिराता है, पाँच पैर एवं बारह आकृतियाँ हैं, वह हाँ (आकाश) के सुदूर अर्घ भाग में पूर्णता के साथ रहता है। अन्य लोग कहते हैं कि वह (सूर्य) जो सबको देखता है, निम्न (स्थान) में अवस्थित है जिसमें सात चक्र एवं छः अर (तीलियाँ) हैं; सभी भुवन पाँच अरों वाले घूमते चक्र में निवास करते हैं; एक चक्र (पिहआ) एवं बारह प्रधियाँ (अन्त या घारा, जहाँ अर या तीलियाँ चक्र से मिलती हैं अथवा जो पूरे चक्र को आकृति को प्रथित करती हैं) तथा तीन नाभियाँ—वह कौन है जो तुम्हें (भली भाँति) जानता है?; उस (चक्र अर्थात् वर्ष) में ३६० अति अस्थिर खूटियाँ हैं। 'रं उपर्युक्त वचनों में द्रष्टा ऋषि ने रहस्यात्मक एवं लाक्षणिक ढंग से वर्ष को ३ भागों में, ५ या ६ ऋतुओं में, १२ मासों में, ३६० दिनों, ७२० अहोरात्रों में पृथक्-पृथक् बाँटा है। यह कहना सम्भव है कि ऋत का चक्र राशिमण्डल है जो बारह मागों (द्रादशार, अर्थात् १२ अरों) में विभाजित है। किन्तु इस विभाजन को ठीक से मन में रख लेना कठिन कार्य है। ऋ० (१।१६४।१५) में आया है—'वे कहते हैं कि जनका जो एक साथ उत्पन्न हैं, सातवाँ एक ही से उत्पन्न है; देवों से केवल ६ जुड़वाँ ऋषि उत्पन्न हुए हैं।' यहाँ ६ ऋतुओं की ओर संकेत हैं, जिनमें प्रत्येक में दो मास हैं, सातवीं में केवल एक है

३. पञ्चसंवत्सरो युगिमिति।...एवमधंतृतीयानामब्दानामधिमासकम्। ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पञ्चाब्दान्ते च पश्चिमम्॥ अयंशास्त्र २, अध्याय २० (देशकालमान) पृ० १०९।

४. क्षणा लवा मुहूर्ताञ्च दिवा रात्रिस्तथेव च। अर्घमासाञ्च मासाञ्च ऋतवः षट् च भारत ॥ संवत्सराः पञ्चयुगमहोरात्रञ्चर्त्रावधः। सभा० ११।३७-३८।

५. रिवशिशनोः पञ्च युगं वर्षाणि पितामहोपिदिष्टानि । अधिमास्त्रिशद्भिर्मासंरवमो द्विषष्टचा तु ॥ पञ्चिसि० (१२।१) । वराहं के मत से पैतामहिसिद्धान्त ने 'शक २' (८० ई०) अर्थात् शक वर्ष २ से नवीन युग का आरम्भ माना है । अतः सम्भवतः यह स्मभग सन् ८० ई० में प्रणात हुआ ।

६. यह सम्पूर्ण सुन्त (१।१६४) प्रहेलिकापूर्ण है। ऋ० (१।१६४।२) में आया है कि रथ (सूर्य) में सात घोड़े जुते हैं, इसका एक हा चक्र (पिह्आ) है जिसमें तोन नाभियाँ हैं। चक्र का अर्थ है वर्ष, तोन नाभियाँ तोन ऋतुएँ हैं, ग्राप्म, वर्षा एवं जाड़ा। ऋ० (१।१६४।१२ एव १३) में चक्र ६ या ५ तीलियों वाला कहा गया है; चक्र के १२ अर या प्रधियाँ मास के द्योतक हैं। देखिए निरुक्त (४।२७); मिलाइए आदिपर्व (३।६०) जो ऋ० (१।१६४।११-१३) के समान है।

(१३वाँ या मलमास) तथा १३वाँ मास घार्मिक कृत्यों के लिए उपयुक्त नहीं है। अथर्ववेदं (५।१४।४) में भी आया है कि संवत्सर में बारह अर हैं और मासों में ३०। इससे ऋ० १।१६४।११-१३ एवं ४८ के अर्थ पर प्रकाश पड़ जाता है। ब्राह्मणों में भी वर्ष में ३६० दिन एवं ७२० अहोरात्र कहे गये हैं (शतपथ ब्रा० ९।१।१।४३; ऐत० ब्रा० ७।७)।

वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों में १३वें मास (अधिक मास या मलमास) की चर्चा है (देखिए तै॰ सं॰ ४।६।७।१-२; कौषीतिक ब्रा॰ १९।२)। तै॰ सं॰ (१।१४।४, ६।५।३।४) ने स्पष्ट रूप से १३वें मास ('संसपं'या अंहस्पत्य) का उल्लेख किया है। और देखिए वाज॰ सं॰ (७।३० एवं २२।३: अंहस्पत्य), मैत्रायणी सं॰ (३।१२।१३: संसपं)। कौषीतिक ब्रा॰ (५।८) ने १३वें मास को शुनासीरीय यज्ञ से सम्बन्धित किया है। मैत्रायणी सं॰ (१।१०।८) ने 'ऋतुयाजी' एवं 'चातुर्मास्य-याजी' के अन्तर को लक्षित किया है। प्रथम वह है जो यह समझकर यज्ञ करता है कि 'अब वसन्त आ गया है, वर्षारम्भ हो गया है, शरद्का आगमन हुआ है; चातुर्मास्य-याजी वह है जो १३वें मास को ध्यान में रखकर यज्ञ करता है। 'ऋवेदीय काल या तै॰ सं॰ के काल में मास किस प्रकार प्रयुक्त हुआ, स्पष्ट नहीं है। केवल यही स्पष्ट है कि एक पूरा मास जोड़ दिया गया। अतः थिवो (ग्रुज्ड्रिस, पृ० ७) का यह कथन कि सभी वैदिक वचनों से केवल ३६० दिनों वाला वर्ष-मात्र व्यक्त होता है, भ्रामक है। ऋवेदीय भारतीयों को वह वर्ष ज्ञात था जिसमें एक मास जुड़ता था (अर्थात् ३९० दिन वाला वर्ष, जिसमें मलमास होता था)। अतः उन दिनों दो कैलेण्डरों (पंचांगों) की बात ज्ञात थी; प्रथम धार्मिक कृत्यों के लिए ३६० दिनों का (३० दिनों वाले १२ मास) था, और दूसरा जिसमें एक और मास जुड़ता था, जिससे वर्ष के क्रम को भली माँति जाना जा सके। आगे चलकर ३६० दिनों वाला वर्ष 'सावन' नाम से विख्यात हुआ (सवन का अर्थ है यज्ञ में सोमरस निकालना) और लगभग ३० मासों के उपरान्त एक मास जोड़ दिया जाता था जिससे चान्द्र वर्ष (३५४ दिनों वाला) सौर वर्ष की संगति में बैठ सके।

शतपथ ब्रा० (२।१।३।२) में सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन की गितियों का उल्लेख है, यद्यपि 'अयन' शब्द वहाँ नहीं प्रयुक्त है, यथा 'स यत्रोदगावर्तते देवेषु तिंह भवित।...यत्र दक्षिणावर्तते पितृषु तिंह भवित।' ऋ॰ (३।३३।०) में अयन शब्द 'गित या मार्ग' के अर्थ में आया है (आयत्रापो अयनिमच्छमानाः)। पश्चात्कालीन साहित्य में उत्तरायण एवं दक्षिण।यन शब्द भरपूर अपने ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। छः मासों तक उत्तर तथा छः मासों तक दक्षिण में सूर्य की गितयाँ वृ० उप० (६।२।१५-१६)में भी उल्लिखत हैं। वसन्त एवं ग्रोष्म उत्तरायण के प्रमुख भाग हैं, अतः इनके अनुषंग में तथा समनुरूपता की दृष्टि से वर्षा ऋनु भी देवों की पूजा के लिए है।

ऋतुओं के विषय में अस्पष्ट कथन हैं। ऋ० (१।१५) में 'ऋतुना' शब्द कई बार आया है, किन्तु एक बार 'ऋतून्' भी आया.है—'हे इन्द्र, ऋतु के अनुसार ब्राह्मण की सम्पत्ति (सश्रीक पात्रों) से सोम का पान करो।' ऋ० (२।३६ एवं ३७) को ऋतव्य सूक्त कहते हैं। स्वयं ऋ० पाँच ऋतुओं का उल्लेख करता है, यथा वसन्त (१०।१६१। ४, १०।९०।६), ग्रीष्म (१०।९०।६), प्रावृट् (७।१०३।३ एवं ९), शरद् (२५ बार, २।१२।११, ७।६६।११, १०।१६१।४ आदि), हेमन्त (१०।१६१।४), किन्तु स्पष्ट रूप से 'शिशार' का उल्लेख नहीं है। अथवंवेद (६।५५।२) में छः ऋतुओं के नाम आये हैं, किन्तु कम से नहीं (ग्रीष्मो हेमन्तः शिशारो वसन्तः शरद्धर्षाः स्विते नो दघात)। ऐत० ब्रा० (१।१) में पाँच ऋतुओं का उल्लेख है, हेमन्त एवं शिशार एक साथ हैं। शतप्य ब्रा० (२।१।३।१६)ने कहा है कि संवत्सर में छः ऋतुऐ हैं। अथवंवेद (६।६१।२)में सात ऋतुओं का उल्लेख है, किन्तु इससे परेशान होने की बात नहीं है, क्योंकि सातवीं ऋतु सम्भवतः मलमास है जो अथवं० (५।६।४) में स्पष्ट रूप से उल्लिखत है। तै० सं० (४।४।११।१) में छः ऋतुओं में प्रत्येक को दो मास वाली कहा गया है। वसन्त को

प्रथम स्थान मिला है (तै॰ बा॰ १।१।२।६)। शतमथ बा॰ (२।१।३।१-५) ने वसन्त एवं ग्रीष्म को देवों की, शर्द, हेमन्त एवं शिशर को पितरों की ऋतुओं के रूप में विणत किया है, इसी प्रकार मास का शुक्ल पक्ष, दिन एवं पूर्वा हूं देवों के लिए तथा कृष्ण पक्ष, रात्रि एवं अपराह्म पितरों के लिए मान्य ठहराया है, और अन्त में व्यवस्था दो है कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को कम से वसन्त, ग्रीष्म एवं शरद् ऋतु में पवित्र अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए। अशोक के समय में 'वर्ष' (जो ब्युत्पत्ति के अनुसार वर्षा ऋतु का द्योतक है) एवं 'संवत्सर' शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे।

कुछ पाश्चात्य विद्वान् यह कहते हैं कि वेदकालीन भारतीयों को ग्रहों का ज्ञान नहीं था। किन्तु उनके कथन भ्रामक हैं। थिबो महोदय ने वेद-कालीन भारतीयों को ऋतु-ज्ञान-विहीन कहा था, जो उपर्युवतः विवेचन से भामक ठहरता है। इसी प्रकार उनकी ग्रह-विषयक घारणाएँ भी त्रुटिपूर्ण हैं। थिबो (ग्रुण्ड्रिस, पृ० ६, ११) एवं केयी (पृ० ३३) वह सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि भारतीयों में ऐसे उच्च ज्ञानों तक पहुँचने की शक्ति ही नहीं थी, ग्रह-पूजा, जो याज्ञ (१।२९५-३०८) में वर्णित है, वैदिक काल में नहीं प्रचलित थी। कम-से-कम बृहस्पित की अोर दो मन्त्र संकेत करते हैं। ऋ॰ (३।७।७) में आया है—'सात अध्वर्यु (याजक) पाँच ऋत्विजों के साथ प्रिय एवं पक्षी (अग्नि) के निहित पद की रक्षा करते हैं, बैल खाते हुए, निराय, पूर्व में आनिन्दत होते हैं, देव लोग देवों के लिए बने नियमों का अनुसरण करते हैं। यहाँ पाँच अध्वर्यु या बैल पाँच ग्रहों के द्योतक हैं। इसी प्रकार उसने (इन्द्र ने) द्यावा, पृथिनी एवं रोदसी (आकाश एवं पृथिवी के मध्य स्थल) को भर दिया। वह पाँच देवों का विभिन्न रूपों में अधीक्षण करता है, ४९ देवों (मरुतों) का उचित ऋतुओं में, ३४ प्रकाशों का, जो उसके समान हो हैं, उनके विभिन्न नियमों के अनुसार अर्घाक्षण करता है।' 'ये पाँच बैल जो व्योम के बीच में स्थित हैं' (ऋ॰ १।१०५।१०)। ऋ० (१०।१२३।१ एवं ५) में जो 'वेन' शब्द आया है वह वेनस (शुक्र) का द्योतक हो सकता है। इसकी पाँचवी ऋचा का अर्थ यों है—'अप्सरा (युवा नारी) उषा (या विद्युत्) मुसकान के साथ अपने प्रेमी की ओर उन्मुख होती हुई, उच्च व्योम में वेन को घारण करती है, वह वेन के स्थानों में घूमती है भीर सुनहले पंख पर उसके साथ बैठती हैं।' पूर्व में सूर्योदय के पूर्व उदित होते हुए शुऋ तारे का यह सुन्दर वर्णन है।

७. बृहस्पतिः त्रयमं जायनानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्। सप्तास्यस्तु विजयते रवेण वि सप्तरिश्मरघम्तमांसि ॥ ऋ० (४।५०। ४;अथवं०२०।८८।४; बृहस्पतिः प्रथमं जायमानस्तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव । अध्वे वेवानां पृतनासु जिष्णुः दिशो नु सर्वा अभयं नो अस्तु ॥ तं० बा० (३।१।१।५)। तिष्य शब्द पुष्य का द्योतक है और इसके अधिष्ठाता (देवता) बृहस्पति हैं (तं० बा०, वही); यहाँ तक कि आगे के ग्रन्थ, यथा गोभिलगृह्य (३।३।१४) में तंषी का अर्थ है पौषी (पौर्णमासो)। तिष्य ऋ० (५।५४।१३) में आया है। और देखिए ऋ० (१०।६४।८)।

८. आ रोवसी अपूणादोत मध्यं पञ्च देवां ऋतुकाः सप्तसप्त । चतुस्त्रिशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण क्योतिषा क्रितेन ।। ऋ० (१०।५५।३)। यह गूढ़ अर्थ युक्त पद्य इन्द्र की प्रशंसा में है। पाँच देव वे ग्रह हैं जो एक साथ ही नहीं प्रकट होते हैं, प्रत्युत वे अपनी ऋतु के अनुसार (ऋतुकाः) प्रकट होते हैं। ३४ प्रकाश हैं—सूर्य, चन्द्र, ५ ग्रह, २७ नक्षत्र। लुडविंग एवं ओल्डेनबर्ग ने यह व्याख्या स्वीकृत की है। ३४ की कोई अन्य उचित एवं सन्तोषदायिनी व्याख्या नहीं है।

मास के विषय में आगे बहुत कुछ लिखा जायगा। शब्द 'मास्' या 'मास' है। 'मास्' शब्द ऋ॰ (११२५।८, ४११८।४, १०।५२।३) में हैं— 'वह (अग्नि) प्रत्येक दिन एवं प्रत्येक 'मास्' में प्रकट होता हैं (ऋ॰ ३।३११९)। ऋ॰ (५।७८।९) में भी 'मास्' आया है (वह शिश् जो माँ के पेट में दस 'मास्' रहता है जीविता-वस्या में निकल आये...)। 'मास्' का अर्थ चन्द्र भी हैं (ऋ॰ ८।९४।२, १०।१२।७—सूर्ये ज्योतिरदघुमस्यिक्तून्, अर्थात् देवों ने सूर्य में ज्योति तथा चन्द्र में अन्धकार रख दिया)। 'मास्' (चन्द्र) एवं 'मास' (महीना) भारोपीय हैं, क्योंकि यह शब्द विभिन्न रूपों में भारोपीय भाषाओं में प्रयुक्त होता है।

कतिपय ग्रन्थों में नक्षत्रों के विषय में लम्बे-लम्बे विवेचन उपस्थित किये गये हैं। 'नक्षत्र' शब्द के तीन अर्थ हैं—(१) सामान्य तारागण, (२) राशि-चक्र के २७ समान भाग एवं (३) राशि-चक्र के तारा-दल (जिनमें प्रत्येक के साथ एक या अधिक तारे होते हैं)। प्रस्तुत लेखक के मत से वैदिक संहिता में प्रथम एवं तृतीय अर्थ में ही 'नक्षत्र' का प्रयोग हुआ है। यह हो सकता है कि राशियाँ २७ समान भागों में विभक्त थीं और उन्हें नक्षत्र कहा गया, किन्तु सरलतर एवं अधिक रूप में प्रारम्भिक ढंग था अधिक प्रभावशाली तारों से तारा-दलों को अभिव्यक्त करना, यथा कृत्तिकाएँ, मृगिकाराएँ, और उन्हें 'नक्षत्र' शब्द से सूचित करना। 'नक्षत्र' शब्द वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों में कई बार आया है। देखिए ऋ॰ (१।५०।२ : चोरों के समान नक्षत्र-गण, र्ात्रियों के समान सूर्य को लक्ष्य बनाने के लिए, जो संसार को देखता है, चले जाते हैं); ऋ० (३।५४।१९, ७।८६)१,१०।१११।७, १०।८५। २)। इन स्थानों पर 'नक्षत्र' शब्द 'तारे' के अर्थ में आया है। किन्तु ऋ० (१०।८५।२ एवं १०।६८।११) में (पितरों ने नक्षत्रों के साथ व्योम को अलंकृत किया), लगता है, 'नक्षत्र' शब्द विख्यात २७ तारा-पुंजों का द्योतक है। शत० त्रा० ने कृत्तिकाओं (जो पूर्व दिशा से विचलित नहीं होतीं) एवं अन्य नक्षत्रों में (जो विचलित हो जाते हैं) भेद प्रकट किया है। दूसरा शब्द है 'स्तृ' (जो भारोपीय है) जो ऋ॰ (शह८।५, श८७।१, शाह६६।२ आदि) में आया है और इसका सम्बन्घ है आकाश के अलंकरण से। ऋक्ष शब्द 'तारा' के अर्थ में आया है (ऋ॰ १।२४।१०)—'ये ऋक्ष जो उच्च स्थिर हैं, रात्रि में दिखाई पड़ते हैं, किन्तु दिन में वे कहाँ चले जाते हैं ?' यह सप्तर्षि-मण्डल का द्योतक है। अथर्ववेद (६।४०।१) में स्पष्ट रूप से सप्तर्षि-मण्डल की ओर संकेत है---सप्तर्षियों को आहृति देने से हमें अभय प्राप्त हो। शत० जा० (२।१।२।४) का कहना है कि प्राचीन काल में सप्तर्षि (सात ऋषि) 'ऋक्ष' कहे जाते थे। ऋ० (५।५६।३,८।२४।२७ एवं ८।६८।१५) में 'ऋक्ष' शब्द का अर्थ 'भालु' (रीछ) या अन्य कुछ है। हमने ऊपर देख लिया है कि ऋ० (१०।५५।३) में २७ नक्षत्रों की ओर संकेत मिलता है। इसके अतिरिक्त ऋ • तिष्य एवं अघा तया अर्जुनी (१०।८५।१३) का उल्लेख करता है जिनमें अन्तिम दो अथर्ववेद के अनुसार मघा एवं फाल्गुनी हैं। यह सम्भव है कि या तो अघा एवं मघा दोनों ऋ खेदीय काल में एक ही नक्षत्र के नाम थे, या तै॰ सं॰ एवं अथर्ववेद के समयों में अघा मघा के नाम का द्योतक हो गया। अघा एवं अर्जुनी के, जो २७ नक्षत्रों में सम्मिलित थे, अतिरिवत ऋग्वेद मृगशीर्ष, पुनर्वसु, शतिभवक् तथा कुछ अन्य नक्षत्रों के नाम भी लेता है। नक्षत्र २७ या २८ (उत्तरापाढा के उपरान्त तथा श्रवण के पूर्व अभिजित को जोड़ने से) हैं। वैदिक साहित्य, वेदांगज्योतिष, यहाँ तक कि याज्ञवल्वयस्मृति में भी नक्षत्रों का वर्णन कृत्तिका से अपभरणी (या भरणी) तक हुआ है, किन्तु तीसरी या चौथी शताब्दी से अब तक के ग्रन्थों में अश्विनी से रेवती तक होता है।

अब हम नक्षत्रों के नामों, उनके देवताओं, लिंग एवं उनमें रहने वाले तारों की सूची देंगे। नामों एवं नक्षत्र-देवों के विषय में मत-मतान्तर हैं। पूर्ण सूचियाँ तै० सं० (४।४।१०।१-३), तै० ब्रा० (१।५ एवं ३।१), अथर्ववेद (२।१३।३०) एवं वेदांगज्योतिष में मिलती हैं।

# मधानों की सूची, उनके नाम, देवता आदि

वर्मशास्त्र का इतिहास										
तारों की संक्या	तै॰ सं० (३।१।४।१) में सात नाम हैं, यथा अन्वा, दुला आदि (बहुला)	~	१ बहुवचन, तै॰ ब्रा० ११५, काठक, मैत्रा०	२ (तै० ब्रा० १।५), तै०सं०, काठ०, मैत्रा० (पुल्लिग)	२ १ काठ० एवं मैता०	•				
<b>题</b>	स्त्रीकिंग	स्त्रीलिंग	नपुंसक लिंग	स्त्रीकिंग	पुरिल्लग पुरिल्लग	पुल्लिंग				
वेदांग- ज्योतिष २५-२६ (ऋ०), ३६।४० य० केवल देवनाम	अभिन	प्रजापति	सीम	A PA	अदिति	बृहस्पति				
मैत्रायणी सं २। १३।२०	कृत्तिका	रोहिणी	इन्वका (देवता, मरुत)	व	पुनवैसु	तिष्य				
काठक सं ३९।१३	<b>कृ</b> त्तिका	रोहिणी	इन्वका (देवता, महत )	्राष्ट्र वि	पुनबंसु	तिव्य				
अथवं वेद १९।७। २-५	किसी नक्षत्र के देवता का नाम नहीं	रोहिणी	मृगशीर्ष	आर्द्धा	पुनर्वसु	्रह्				
तै० <b>झा</b> ० ३।१४-५	कृत्तिका	रोहिषी	मृगशीर्ष या इन्वका	आर्द्रा	पुनर्बसु	तिव्य				
तै	श्रित्	रोहिंगी	इन्वका	ख जिल्ल	पुनर्बेसु	तिव्य				
ति सं ० ४ - ३ १ - ३	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशीर्ष	आद्री	पुनबंस	तिव्य				
े विक देवता - देवता	असिन	प्रजापति	सोम	भू भू	अदिति	बृहस्पति				
नाम	कृत्तिकृ।	रोहिणी	मृगशीर्ष	आद्री	पुनर्बमु	तेव्य				
्वीदक नाम	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशीष	आद्री	पुनवसु	तिव्य				
मंख्या	~	or	m	>>	5	Ur				

स्त्रीलिंग   बहुवचन	स्त्रीलिंग   बहुवचन	स्त्रीलिंग बहुवचन, २ (अथवै०, तै० बा० ११५, ३११; १ (तै० सं०)	लिया १; २ तै ० ब्रा० ११५।३।१।४।१०	ल्या १; काठ० में २	लेग १	लिंग १ कि मैशाः	लिंग २ नपुसक लिंठ, काठ०, मैत्रा०	लिंग वहुवचन, पुरिल्ग, तै० ब्रा० ३।१।५।१	जिंग १	ग्या स्त्रीस्थित, २ (विचृती), नयु॰ १ मूल, काठ॰, तै॰ बा॰३।१।५।३,स्त्री॰ १ (मूलबहुणी)
- E	स्त्र	 	स्वीलिंग	पुल्लिग	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग नप्तक लिंग	स्त्रीकिंग	स्त्रीलिंग	स्त्रीलिंग	पुंल्लिग
सर्पाः	पितरः	भूग	अर्थमा	सिविता	त्वष्टा	वै	इन्द्राग्नी	मित्र	IX IX	
आश्लेषा	मबा	फाल्युनी: (मग, देवता)	फाल्मुनी (दे० अर्गमा)		वित्रा (जारा)	निष्ट्यम् निष्ट्यम्	विशाखम्	अनुराघा	ज्येष्ठा (बहण्	(निन्धः ति)
आरलेपा	मबा	फाल्जुनी: (भग, देवता)	उत्तरा फाल्मुनी: (अर्थमा)	हस्स	वित्रा (ज्वाद्रा)	निष्ट्या (बायु)	विशासम्	अनुराघा	ज्येष्ठा (इन्द्र)	(निक्रम (निक्रमि
अारलेषा	मबा	पूर्वा फाल्गुनी	अवणित	हस्त	िबत्रा	स्वाती	विशाले	अनुराघा	ज्येष्ठा	भू अ
आश्रेषा	मबा	फाल्गुनी	फाल्गुनी	हस्त	चित्रा (त्वहरा)	(नव्य (नायु)	विशाले	अनुराघा	ज्येष्ठा	मूल (निऋति)
आश्रेषा	मचा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तर फाल्मुनी	हस्त	चित्रा	निष्टया (बायु)	विशाले	अनुराधा	रोहिणी	मूलक इंगी
आश्रेषा	मचा	फाल्गुनी	फाल्युनी	हुस्य	िनत्रा	स्वाती	विशाले	अनुराधा	रोहिणी	विचृतौ (पितरः)
सर्पाः	पितरः	अर्थमा	भूग	सिविता	tux lur	ত ত	इन्द्राग्नी	मित्र	in in	पितरः
आलेश्षा	मधा	पूर्वा फाल्युनी	उत्तरा फाल्गुनी	इस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा े	is it
आश्रेषा	मवा	फाल्गुनी	फाल्युनी 	हस्य	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	रोहिणी	विचृतौ
9	V	•	°~	~~	25	m o	>> ~	<i>5</i>	or or	2 ~

२५४

# धर्मशास्त्र का इतिहास

<u>ब</u> हुव व	वहुव व न	•	o.	बहुवचन	१ अथर्वे एवं मैत्रा०	बहुवचन, तै० झा० ११५ एवं ३११ अन्यों में	(या स्त्रीलिंग ?) बहुवचन	~	٨٢ .	बहुव च मे
स्त्रीहिया	स्त्रीलिय	नप्ंसक लिंग	स्त्रोहिंग	स्त्रीलिंग	पुरिल्ज्य मपुसक	पुंल्लिंग स्त्रीलिंग	पुं ल्लिम	स्त्रीलिंग	पुंिल्लग	स्त्रीलिंग
अपि:	विश्वेदेवाः	अनुहिल- बित	विष्णु	वैस		अज एकपात्	अहिबुं- हन्य	पूषा	अश्विनौ (दोनों अश्विनी कुमार)	यम
आषाढा	अवाहा	अमिजिंत् (शह्या)	श्रीपात (जिल्ला)	श्रविष्ठा	शतभिषक् (इन्द्र)	प्रोप्ठपदा (अहिब्- हन्य)	पोष्ठपदा (अज एकपात्)	रेवती	अश्वयुज]	भरजीः
अनादा	उत्तरा-	अवर्णित	अश्वत्य	श्रविष्ठा	शतिभषक् (बरुण)	प्रोप्ठपदा	उत्तरे पोष्ठपदा (अहिबुं- घ्निय)	रेबती	अश्वयुजी	अपभरणीः
अवादा	डकरा	अभिजित्	श्रवण	श्रीविष्ठा	शतमिषक्		प्रोध्ठपदा	रेवती	अश्वयुजी	भर्ष्य:
अषाढाः	अषांदाः	अभिजित् (बह्या)	श्रोवा	श्रविष्ठा	शतिभवक् (वरुण)	प्रोष्ठपदा	प्रोष्ठयदा (अहिबुँ- घ्निय)	रेवती	अश्वयुजी.	भरजी
पूर्वापाढा	उत्तरा- षाढा		क्रीव	श्रिक्ठा	शतामिषक् (इन्द्र)	प्रोष्ठपदा	प्रोच्ठपदा (अहिबुँ- घ्निय	रवती	अश्वपुत्री	अपभरणी
अवादा	अवाहा	अनुहिल्छ-	श्रुवा	श्रविष्ठा	शतिभवक् ।	प्रोप्ठिपदा	प्रोष्ट्यदा (अहिंबुँ- घ्निय	रेबती	अश्वयुजी	अपभरणी
अपि:	   विश्वेदेवा: 	ब्रह्मा	विल्ली	वसे	וני הג	अज एकपाद्	अहिबु- घृनिय	वूषा	अहिबनी- कुमार (दोनों)	표
पूर्वाषाढा	उत्तरा- षाढा	(अविणित्) (अविणितः)	श्रवण	<b>ब</b> िमच्छा	शतमिषक्	पूर्वा साद्रपदा	भाइपदा	रेवती	अश्विमी	भरणी
- अवाहा	अवाहा	अभिजित्	श्रोवा	श्रविष्ठा	शतमिषक् <mark>शतमिषक्</mark>	प्रोष्ठिपदा	श्रोष्टञ्पदा	रवती	अश्वयुवा	अपभरणी
. 22	8	3	35	33	Er Cr	\$ ° °	25	D. D.	9 %	22.

इस सूची को देखने से पता चलता है कि नक्षत्रों के नामों में कहीं-कहीं भेद है। देवता भी कहीं-कहीं भिन्न हैं। कहीं-कहीं नक्षत्र में केवल एक तारा है, तो कहीं दो, तीन या अधिक। एक प्रश्न उठता है— तै॰ सं॰ एवं तै॰ न्नाह्मण तथा तै॰ ना॰ (१।५) एवं ै॰ ना॰ (३।१) में अन्तर क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि तै॰ सं॰ का वचन अपेक्षाकृत प्राचीन है। तै॰ ना॰ से कई शतान्दियों पूर्व तै॰ सं॰ का प्रयणन हुआ था। किन्तु तै॰ ना॰ (१।५) अपने (३।१) से अन्तर क्यों रखता है? इसका उत्तर भी कठिन है। इस विवेचन को स्थानाभाव से हम यहीं छोड़ते हैं।

अब एक प्रश्न उठता है—नया भारतीय नक्षत्र यहीं के हैं या किसी बाहरी देश से उनका ज्ञान प्राप्त किया गया? प्रसिद्ध फांसीसी ज्योति:शास्त्रज्ञ विओट का कहना है कि भारतीयों ने नक्षत्र-ज्ञान चीनियों से प्रहण किया है और द्विटनी महोदय भी इस मत के समर्थक हैं। कुछ अन्य विद्वानों ने यह भी कहा है कि भारतीयों ने नक्षत्र-ज्ञान बेबिलोन के लोगों या अरब लोगों से प्राप्त किया है। हम इसके विवेचन में नहीं पड़ना चाहते। स्वयं अरब लोगों ने कहा है कि उन्होंने भारतीय सिद्धान्तों से ही अपना ज्योति:शास्त्र बनाया। अतः यह विवाद हम यहीं छोड़ते हैं (देखिए थिबो, ग्रुण्ड्रिस, पृ० १४)। वड़े विद्वान् अधिकतर दुराग्रह करते हैं और तथ्य से अपनी आंखें बन्द कर लेते हैं। सिद्दयू के चीनी सिद्धान्त में पहले केवल २४ नक्षत्र थे जो आगे चलकर लगभग ई० पू० ११०० (देखिए थिबो, ग्रुण्ड्रिस, पृ० १३) में २८ हो गये। वैदिक ग्रन्थों में २४ नक्षत्रों की कोई चर्चा नहीं है। बेबिलोन एवं चीन में राशियों का सम्बन्ध धार्मिक कृत्यों से नहीं था। वैदिक वाल में कोई व्यक्ति किसी निर्दिष्ट नक्षत्र में अग्नि प्रज्वलित किये बिना कोई यज्ञ नहीं कर सकता था। माच, फाल्गुन, चैत्र आदि मासों के नाम नक्षत्रों के आधार पर ही बने, और यह बात संस्कृत भाषा में ही पायी जाती है, यूनानी, लैटिन या चीनी में नहीं। नक्षत्रों के देवता-गण वैदिक हैं, उनके बेबिलोनी याचीनी नाम नहीं पाये जाते। वेबिलोन में जो आलेख प्राप्त हुए हैं उनमें नक्षत्रों की गणना वैसी नहीं है जैसी कि हम वैदिक साहित्य में पाते हैं। तैत्तिरीय संहिता और तै० बा० के बहुत पहले से वैदिक लोगों ने नक्षत्रों की संख्या (२७ या २८) निश्चित कर ली थी। नक्षत्रों, उनके नामों, उनके देवताओं आदि के तम यशिय कृत्यों में समाहित हो चुके थे।

सभी नक्षत्रों के नाम महत्वपूणं (सार्थंक) हैं और उनके साथ अनुश्रुतियाँ भी बँघी हुई हैं। उदाहरणार्थं, आर्द्रा का अर्थ हैं 'भींगा हुआ', यह नक्षत्र आर्द्रा नाम से इसी लिए प्रख्यात हुआ क्योंकि जब सूर्य इसमें अवस्थित हो तो वर्षा आरम्भ हो जाती हैं। पुनवंसु का सम्भवतः यह नाम इसीलिए पड़ा कि घान एवं जौ के अनाज जो भूमि में पड़े थे अब नये घान के रूप में अंकुरित हुए। पुष्य नाम इसीलिए पड़ा कि घान एवं जौ के अनाज जो भूमि में पड़े थे अब नये घान के रूप में अंकुरित हुए। पुष्य नाम इसीलिए पड़ा कि घान एवं जौ के अनाज जो भूमि में पड़े थे अब नये घान के रूप में अंकुरित हुए। पुष्य नाम इसीलिए पड़ा कि वे एक-दूसरे का आलिंगन करने ठगे। मघा नाम इसिलिए पड़ा कि घान या अन्य पीघे खड़े अन्नों के रूप में हो गये, जो स्वयं घन है। कृतिका नाम इसिलिए पड़ा कि वे (६ या ७) चितंक से मृग्चमं के समान हैं, जिस पर वेद के छात्र वेदाध्ययन के लिए आसन जमाते थे। इन तथ्यों के रहते हुए यह कैसे कहा जा सकता है कि भारतीयों पर नक्षत्र-सम्बन्धी बाहरी ऋण है। जिन लोगों ने बाहरी ऋण की बात कही है, उनके पास कोई उचित प्रमाण नहीं है। दुराग्रहों एवं कल्पनाओं का सहारां ही कुछ विद्वानों की हठवादिता के मूल में है। केवल एक ही बात इन दुराग्रहियों को मिलती है कि भारतीयों की नक्षत्र-गणना जो २८ तक है, बेबिलोन एवं चीनियों में भी पायी जाती है और इसीलिए कितिया विचारक किन्तु हुठवादी विद्वानों ने यह कहने का साहस किया कि लगभग ३५०० वर्ष से अधिक पहले भारतीयों ने नक्षत्र-ज्ञान उधार लिया। वहीं यह कल्पना भी सम्भव थी कि वेबिलोन एवं चीन के लोगों ने भारतीयों से यह ज्ञान प्राप्त किया। वहीं यह कल्पना भी सम्भव थी कि वेबिलोन एवं चीन के लोगों ने भारतीयों से यह ज्ञान प्राप्त किया या भारत, बेबिलोन एवं चीन ने किसी एक प्रार्गतिहासिक मूल से यह ज्ञान प्राप्त किया। विओट (फेंच, विजो), वेबर एवं ह्विटनी के सिद्धान्तों का खण्डन तिलक ने 'ओराएन' (विशेषतः पृ० ६१-९५) में किया है

एवं प्रो० जैकोबी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि कृतिका से आरम्भ नक्षत्र-श्रेणी प्राचीनतम व्यवस्था नहीं थीं, प्रत्युत भारतीयों के पास इससे भी प्राचीन व्यवस्था थीं, जिसमें महाविषु व के काल से आरम्भ कर मृगशीर्ष नक्षत्र से नक्षत्र-श्रेणी की गणना होती थी। विशेष अध्ययन के लिए देखिए इण्डियन एण्टीक्वेरी की जिल्दें (२३, पृ० १५-१५९; पृ० २३८-२४९; ३६१-३६९; जिल्द ४८, पृ० १५-९७) जहाँ विओ, वेबर, बुहलर, थिबो आदि की मान्यताएँ व्यक्त हैं। यास्क ने नक्षत्र की व्युत्पत्ति 'नक्ष्' (जाना) घातु से की है, शतपथ बा० (२११२११७-१८) एवं तै० बा० (२१७११८) ने इसकी व्युत्पत्ति 'न सत्त्र' से की है और पाणिनि (६१३१७५) ने इसे स्वीकार किया एवं तै० बा० (११५१२११) ने बताया है कि किस प्रकार किसी वामिक कृत्य के लिए नक्षत्र को जानना चाहिए; व्यक्ति को चाहिए कि वह सूर्योदय के पूर्व एवं उसके समय, जब सूर्य की प्रथम किरणें उत्तरती हैं, आकाश को देखे जहाँ नक्षत्र परिदिश्त होता है, जब सूर्य प्रकट होता है तो नक्षत्र उसके पश्चिम में रहता है, उसी समय उसे, जो कुछ करना है, करना चाहिए। ऐसा आया है कि ऋषि मत्स्य ने इसी विधि से 'यज्ञेषु' एवं 'शतबुम्न' की महत्ता स्थापित की थी (तै० बा० ११५१२११)।

ऐतरेयब्राह्मण (३।४४) के जैसे आरम्भिक काल में वैदिक भारतीय इस निष्कर्ष पर पहुँच गये ये कि सूर्य एक है और वह कभा अस्त नहीं होता — 'यह सूर्य वास्तव में न तो अस्त होता है और न उदित। जब लोग ऐसा सोचते हैं कि वह (सूर्य) अस्त होता है तो यह होता है कि वह दिन के अन्त में पहुँचता है, उलटा हो जाता है, नीचे रात्र बनाता है और ऊपर दिन। जब लोग ऐसा सोचते हैं कि प्रातःकाल उदित होता है, तो उसका अर्थ है कि वह रात्रि के अन्तिम रूप में पहुँच कर उलटा हो जाता है, नीचे दिन बनाता है और ऊपर रात्रि। वह वास्तव में कभी भी नहीं अस्त होता है।' यह 'सूर्यप्रज्ञित' में उल्लिखित जैन सिद्धान्त के विरोध में जाने वाली एक हृदयग्राही उदित है, क्यों कि जैन सिद्धान्त के अनुसार दो सूर्य एवं दो चन्द्र है। ग्रांस (यूनान) में हिराविलटस (ई० पू० ६००) ने भी भ्रामक उक्ति कहीं थी कि एक नया सूर्य प्रति दिन जन्म लेता है और मरता है (इयेस्लर, पृ० ४२)।

ब्राह्मण काल में भारतीयों ने विषुव-काल का ज्ञान कर लिया था (विषुव को यज्ञिय वर्ष के मध्य में रखा गया था, उस दिन रात-दिन बराबर विस्तार के थे)। तै० ब्रा० (१।२।३) में आया है—'जब कोई दो पक्षों को या शाला के झुकने वाले दो भागों को किसी बाँस या घरन से लगाते है तो वह मध्य में होती है, इसी प्रकार लोग दिवाकात्यं दिन का उपयोग दो पक्षों (अर्घ वर्षों) के मध्य में करते हैं।''

९. स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति। तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रोमेवाषस्तात्कुरुतेऽहः परस्तात्। अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्तं रात्ररेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवा-वस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्। स वा एष न कदाचन निम्लाचित। ऐ० ब्रा० (३।४४)। यह विचार कुछ पुराणों ने भा प्रहण किया है, उदाहरणार्थ, विष्णुपुराण (२।८।१५)। ब्रह्मगुप्त ने ब्राह्मस्फुटसि० (११।३) में जैन सिद्धान्त का खण्डन किया है। और देखिए पञ्चसिद्धान्तिका (१३।८)।

१०. एक विश्वनेत दह रूपयन्ति विश्वन्तं मध्ये संवत्सरस्य । ए० बा० (४।१८ या १८।४) । यथा शालायं पक्षसी मध्यमं वंशनिम समायच्छिति एवं संवत्सरस्य पक्षसो दिवाकार्त्यमिमसंतन्विन्त नार्तिमाच्छिन्ति । त० बा० (१।२।३) । ताण्ड्यबाह्मण (४।६।३-१३ एवं ४।७।१) ने विषुव दिन का उल्लेख किया है और प्रतिपादित किया है कि दिवाकार्त्यसाम का गान उस दिन होना चाहिए, क्योंकि देवों ने उस अन्धकार को, जिससे किसी असुर के पुत्र स्वर्भानु ने

यहाँ पर जान-बूझकर वैदिक काल के ज्योतिष-ज्ञान का विवरण थोड़ा लम्बा कर दिया गया है। कुछ यूरोपीय विद्वानों ने, जिन्होंने प्राचीन एवं मध्यकालिक भारत की ज्योतिष-सम्बन्धी उपलब्धियों पर लिखा है, भारतीय ज्योतिःशास्त्र तथा सामान्य रूप से सभी भारतीय पक्षों पर अपमानजनक एवं तिरस्कारपूणं उक्तियाँ कही हैं। यहाँ कुछ ही उदाहरण दिये जा रहे हैं। थिबो (ग्रुण्ड्रिस,पृ०३) ने कृपापूर्वक यह उद्घोषित किया है कि यूनानी प्रभाव के पूर्व का भारतीय ज्ञान न-कुछ सा है और जो कुछ है वह मात्र प्रारम्भिक अवस्था का है। ह्विटनी (जे० ए० ओ० एस०; जिल्द ६,पृ० ४७१) महोदय ने भी अपने क्षुद्र ज्ञान का परिचय दिया है। वे अमेरिका के संस्कृतज्ञ पण्डित रहे हैं, किन्तु उन्होंने हिन्दू-मस्तिष्क की उपलब्धियों को गौण स्थान दिया है। उनके सहकर्मी श्री वर्गेस तो और आगे बढ़ गये हैं। यह है पश्चिमी विद्वानों के अल्प ज्ञान, हठवादिता, विरोधपक्षता आदि का रूप।

किन्तु क्या हम ह्विटनी महोदय को उन्हीं के शब्दों में उत्तर नहीं दे सकते हैं? टाल्मी के उपरान्त लगभग १४०० वर्षों तक ह्विटनी महोदय तथा अन्य अहंकारी पाश्चात्य लेखकों के पूर्वज लोगों ने ज्योतिष के क्षेत्र में कोई भी नवीन ज्ञान नहीं जोड़ा और अबोध रूप में गुलाम के समान टाल्मी के एल्मागेस्ट पर ही टिके रहे और यूरोपीय अन्यकार-युग के प्रणेता बने रहे। उस लूथर ने भी, जिसने पोप के अधिकार का खुलकर विरोध किया था, कोर्पानकस को मूर्ख कहा और उसे ज्योति:शास्त्र को उलट देने का अपराधी माना, बाइबिल की निर्मरता स्थापित की और घोषित किया कि जोशुआ ने सूर्य को, न कि पृथिवी को, स्थिर रहने का आदेश दिया (जोशुआ, १०१२)। यह उलटी गति है, जो कुछ बाइबिल में है वही सत्य है! हाय रे बुद्धि और उसका चमत्कार! ह्विटनी आदि तथाकथित विद्वानों को लूथर के समान कथनों एवं अपने अल्प ज्ञान, हठबादिता आदि पर लज्जा आनी चाहिए थी, इत्यलम्।

प्रस्तुत लेखक सभी पाश्चात्य लेखकों से, जो मारतीयता-शास्त्र में अभिरुचि रखते हैं तथा कुछ यूनानी लेखकों की जपलिंघयों के चकाचींघ में पड़े हुए हैं, निवेदन करता है कि वे सर नामंन लाकी अर (डान आव ऐस्ट्रॉनामी, १८९४ ई०) के निम्नोक्त शब्दों को पढ़ें—'ऐनेक्जिमैण्डर ने कहा कि पृथिवी की आकृति वर्तुलाकार थी और उन दिनों के प्रत्येक ज्ञात स्थान उस वर्तुल रूप की चपटी सीमा पर अवस्थित थे; और प्लेटो ने, इस आघार पर कि ज्यामिति का अतिपूर्ण रूप घन है, कल्पना की कि पृथिवी घनाकार है, और यूनानियों द्वारा ज्ञात पृथिवी इसकी ऊपरी सतह पर थी। इन विषयों में अतिदिप्त यूनानी भस्तिक कुछ भी उन्नित नहीं कर सका था और अपने पूर्वज वैदिक याजकों से बहुत पीछे था (पृ० ८)।' यदि ज्ञान के दो-एक क्षेत्रों में यूनानी आगे बढ़े तो विश्व के अन्य भागों के कुछ लोग अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों में बहुत आगे थे। प्रस्तुत लेखक उनसे यह भी निवेदन करता है कि वे सार्टन महोदय की लिखित 'ए हिस्ट्री आव साइंस' की भूमिका

सूर्य को विद्ध कर डाला था, दिवाकीत्यं से नष्ट कर दिया, और वर्ष का आत्मा विषुव है तथा इसके दोनों पक्ष चतुर्दिक् चलते रहते हैं। देखिए इस महाप्रन्थ का खण्ड २, जहाँ 'गवामयन', सांवत्तरिक सत्र एवं विषुव दिन की अवस्थित के विषय में लिखा हुआ है। यह नहीं भूलना चाहिए कि विषुव केवल एक ज्योतिःशास्त्रीय अवधि है और वह वैज्ञानिक यन्त्रों के बिना ठीक से निरीक्षित नहीं हो सकती। यज्ञिय वर्ष में केवल ३६० दिन होते हैं तथा विषुव नामक दिन मध्य में होता है तो इस प्रकार दिनों की कुल संख्या ३६१ हुई, किन्तु सौर वर्ष में लगभग ३६५ है दिन होते हैं तो विषुव के समय रात एवं दिन की बराबरी केवल लगभग होगी।

(पु॰ ९) पढ़ें, जहाँ सार्टन महोदय ने पाश्चात्य लेखकों की असम्य भूलों की ओर संकेत किया है, यथा मिस्र के वैज्ञानिक प्रयासों, मैसोपोटामिया आदि अन्य देशों की वैज्ञानिक उपलब्धियों पर पाश्चात्य लेखकों का ध्यान नहीं गया है। वे वचपने के साथ यही कहते हैं कि विज्ञान का आरम्भ यूनान से हुआ, और वे यूनानी अन्धविश्वासों को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। १९वीं एवं २०वीं शताब्दियों के लेखकों के लिए यह उचित नहीं था कि वे किसी देश के लोगों की निन्दा करके उसे नीचे रख दें और किसी देश को आकाश में उछाल दें। उन्हें प्रमाणयुक्त, संतुलित, पक्षपातरहित होकर, विश्व के प्राचीन लोगों की उपलब्धियों पर सचेत होकर निर्णय देना चाहिए था।

वैदिक काल की प्राचीनता के विषय में विभिन्न मत हैं। जैकोबी, दीक्षित, तिलक आदि ने इसे ई० पू० ४००० या इससे भी अधिक माना है। विन्टरनित्ज ने ई० पू० २५००, मैक्सम्यूलर तथा उनके अनुसरणकर्ता पारचात्य विद्वानों ने वैदिक साहित्य को ई० पू० १५०० से ई० पू० ८०० के बीच रखा है। यदि हम अन्तिम मत भी स्वीकार कर लें तो यह प्रकट होता है कि वैदिक साहित्य में ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों में पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी, जो यूनान से किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं की जा सकती थी। युनान का कोई ऐसा साहित्य नहीं है जो निश्चितता के साथ ई० पू० ९०० या ८०० के पूर्व रखा जा सके। युनान में होमर की कविताएँ एवं हेसिओड के प्रत्य अत्यन्त प्राचीन यूनानी साहित्य हैं। होमर में सूर्य, चन्द्र, प्रातः एवं सायं, तारा, प्लेइआडस (कृत्तिका), ह्याडेस, ओराइन, ग्रेट बियर, सिरियस (ओराइन का कुत्ता), बूटेस का उल्लेख है, जिन्हें हेसिओड ने भी उल्लिखित किया है। हेसिओड का कथन है कि जाड़े के ६० दिनों के उपरान्त वसन्त का आगमन हुआ, किन्तु उसमें विषुव दिनों का उल्लेख नहीं है। इस बात से स्पष्ट है कि वैदिक ज्योति:शास्त्र इन दो यूनानी लेखकों से कई शताब्दियों पूर्व (यदि हजारों वर्ष पूर्व नहीं) इनसे कई गुना विकसित था। १९ भारतीयों एवं चीनियों के अतिरिक्त अति प्राचीन लोग हैं मिस्री, बेबिलोनी, हिट्टाइट एवं चाल्डियन लोग। मिस्र के विषय में कैम्ब्रिज ऐंश्येण्ट हिस्ट्री (जिल्द २, पृ० २१८) में आया है कि वहाँ के लोग गणित का उपयोग ज्योतिःशास्त्र में नहीं के बराबर करते थे। हिट्टाइटों एवं चाल्डियनों में कोई ऐसी बात नहीं थी और न किसी पावचात्य लेखक ने ऐसा कहा ही है कि भारतीयों को उनसे कुछ प्राप्त हुआ था। ई० पू० ८०० के करीब भी होमर एवं हेंसिओड का ज्योतिष ज्ञान बहुत अल्प था। हिप्पार्कस, जो प्राचीन काल का सबसे बड़ा ज्योति:शास्त्रज्ञ कहा गया है, और जिसने अपना कार्य लगभग ई० पू० १३० में पूरा किया, मैसोपोटैमिया में किये गये ई० पू० ७४७ ई० के निरीक्षणों की जानकारी रखता था। टाल्मी ने लगभग १५० ई० में लिखा और उसका ग्रन्थ एल्मागेस्ट हिप्पार्कस द्वारा किये गये निरीक्षणों पर आघारित था और टाल्मी के पूर्वजों के सारे कार्य भी हिप्पार्कस पर ही आघारित थे, जो टाल्मी के स्पष्ट कार्यों के समक्ष ठहर न सके और या तो उनका पठन-पाठन बन्द हो गया या वे नष्ट हो गये। फलित ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव के बारे में आगे लिखा जायगा, किन्तु थोड़े-से शब्द भारतीय सिद्धान्तों एवं पश्चात्कालीन ग्रन्थों के विषय में लिख देना आवश्यक है।

पहली बात यह है कि सिद्धान्त-सम्बन्धी भारतीय ग्रन्थ यह नहीं स्वीकार करते कि भारतीय ज्योति:शास्त्र का आधार यवन-ज्ञान था और न ज्योति:शास्त्र के ग्रन्थों में उतनी संख्या में यूनानी मूल

११. देखिए 'ग्रीक ऐस्ट्रानॉमी' (टी॰ एल॰ हीय, १९३२), भूमिका पृ॰ ११-१२ एवं सर नार्मन लाकीएर लिखित 'डान आव ऐस्ट्रानॉमी (१८९४), पृ॰ १३३, जहाँ यह उल्लिखित है कि जाब की पुस्तक एवं होमर तथा हैसिआड में केवल थोड़े से तारों का ज्ञान पाया जाता है।

वाले शब्द ही प्राप्त होते, जितने कि वराहमिहिर के फलित ज्योतिष में। पञ्चिसद्धान्तिका के विषयों में कहीं भी यूनानी शब्द का मूल प्रकट नहीं होता। वेबर आदि ने वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त 'रोमक' एवं 'पौलिश' पर अधिक निर्भरता व्यक्त की है। यदि रोमक शब्द अलेक्जैंड्रिया का है तो इससे यह नहीं सिद्ध होता कि इन सिद्धान्तों पर यूनानी प्रभाव है। मध्यकाल का कोई ग्रन्थ या पंचांग प्रमुख रूप से रोमक सिद्धान्त पर आघरित था, इस विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता। १२ वर्ष का विस्तार है ३६५ दिन, ५ घण्टे, ५५ मिनट एवं १२ सेकण्ड, जो हिप्पार्कस की गणना से मिलता है और जिसे टॉल्मी ने मान लिया है (थिबो, ग्रुण्ड्रिस, पृ० ४२)। वराह द्वारा अहर्गण के लिए व्यवस्थित नियम (रोमक सिद्धान्त के अनुसार) यवनपुर (उज्जयिनी नहीं) के मध्या ह्न के लिए ठीक उतरता है। पश्चिम के विद्वानों ने इस बात पर कभी नहीं सोचा कि रोमक-सिद्धान्त जो संस्कृत में था, किसी ऐसे यूनानी द्वारा, अधिक सम्भव है, प्रणीत हो सकता है, जो भारतिनवासी रहा हो तथा संस्कृत एवं यूनानी दोनों भाषाओं या अलेकजैंड्रिया के ज्योतिःशास्त्र का ज्ञाता रहा हो, तथा टाल्मी और यंहाँ तक कि हिप्पार्कस का पूर्वकालीन रहा हो, तथा इसी से वराह ने अपने करण में उसका निष्कर्ष दिया हो, क्योंकि उन्होंने अपने प्रसिद्ध फलिस ज्योतिष ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' में यवन-दृष्टिकोण का उल्लेख किया है और अधिकतर अपना मतभेद प्रकट किया है। इतना ही नहीं, वराह यूनानी फलित ज्योतिष के प्रति उदार भी थे-- यवन, सचमुच म्लेच्छ हैं और यह शास्त्र उनमें सम्यक् रूप से व्यवस्थित है; यवन भी पूजित हैं, मानो वे भी ऋषि हों। तव फलित ज्योतिष के पण्डित किसी बाह्मण के विषय में क्या कहा जाय? (अर्थात् वह ब्राह्मण तो उनसे भी अधिक पूजित होगा)।" यहाँ पर 'शास्त्र' शब्द 'होरा-शास्त्र' का द्योतक है। किन्तु वराह ने अन्यत्र ऐसी प्रशंसा यूनानियों के विषय में नहीं की है, उनके ज्योति:शास्त्र एवं गणित की योग्यता की चर्चा नहीं की है। उन्होंने यूनानियों को ज्योति:शास्त्र के विषय में कोई मान्यता नहीं दी, और न उनके सिद्धान्तों का कोई आधार माना। उन्होंने अपने फलित ज्योतिष-सम्बन्धी ग्रन्थ में प्रयुक्त शब्दों की सिन्निधि में कोई ग्रीक (यूनानी) शब्द नहीं प्रयुक्त किया है।

१२. केवल यही बात नहीं थी कि रोमक सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया गया, प्रत्युत बहुत पहले छठी शताब्दी में ब्रह्मगुप्त (५९८ ई० में उत्पन्न)ने इसकी भत्संना की और इसका स्मृतियों में समावेश करना अमान्य ठहरा दिया : 'युगमन्यन्तरकल्पाः कालपरिच्छेदकाः स्मृतावुक्ताः। यस्मान्न रोमके ते स्मृतिवाह्यो रोमकस्तस्मात्।।' ब्राह्मस्फुद-सिद्धान्त (१।१३)।

१३. म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्बक् शास्त्रिमिवं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते कि पुनर्वेवविद् द्विजः।। वृहत्संहिता (२११५, कर्न का सम्पादन)। अलबरूनी (सचौ, जिल्द १, पृ० २३) ने भी इस पद्य की ओर संकेत किया है। पाणिनि (४१११४९) में बारह शब्द (इन्द्रवरुण...यवनमातुलाचार्याणामानुक्) आये हैं जिनके अधिकांश के साथ पत्नी के अर्थ में 'आनी' प्रत्यय लगा है। 'यवन' शब्द 'इओनिया' (ionia) का स्पष्ट आवर्तन है, जो एशिया नाइनर के तट पर २०-३० मील चौड़ा पहाड़ी भूमि-खण्ड है। पाणिनि ने अलेक्चेण्डर तथा उसके साथ या बाद के आने वाले यूनानियों की चर्चा नहीं की है, जैसा कि पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं। ई० पू० छठी शताब्दी में माइलेटस यूनान का सबसे समृद्ध नगर था। पाणिनि के काल में यवनानी शब्द का अर्थ था यवन की पत्नी, किन्तु कात्यायन के काल में यह शब्द यूनानी लिपि का द्योतक था। आगे चलकर सभी ग्रीसवासी इओ निया के रहने वाले लोगों के समान 'यवन' कहे जाने लगे। देखिए विल ड्यूर्ग कृत 'लाइक आव ग्रीस' (१९३९), पृ० १३४ एवं सार्टोन कृत 'ए हिस्ट्री आव साइंस', पृ० १६२।

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

250

थिबो (ग्रुण्ड्रिस,पृ०४२) का कथन है कि 'पुलिश' शब्द निश्चित रूप से अभारतीय है। यह अति आश्चर्य का विषय है कि पश्चिमी विद्वान् लेखक किसी शब्द की अभारतीयता को सिद्ध करने में इतने निश्चयात्मक हो चठते हैं। संस्कृत में कुछ अति प्राचीन शब्द ये हैं--पुलस्त्य, पुलह, "पौलस्त्य (कुबेर), जिनमें 'पुलिश' शब्द के कई तत्त्व समाहित हैं। आज भी ऐसे नाम आते हैं, यथा नवावसिंह। सिद्धान्तों को पैतामह एवं पौलिश इसलिए कहा गया है कि वे पितामह एवं पुलिश द्वारा प्रणीत हुए थे। थिबो का कथन है कि अलवरूनी ने 'पुलिश' को 'पौलुस' नामक यूनानी लेखक माना है। किन्तु भारतीय एवं यूनानी लेखकों के नामों से परिचित होते हुए भी अलबरूनी आज के पाश्चात्य लेखकों के समान भूल कर सकता है। वेबर, जो अपने अध्ययन एवं परिश्रम के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, ऐसी मूल करते हैं तो औरों की तो बात ही दूसरी है। यह बात अभिज्ञानशाकुन्तल में पाये जाने वाले उस उल्लेख के सद्श है, जहाँ शकुन्तला के पुत्र के नौकर ने यह कहा है कि लड़का नामों के सादृश्य से अस में पड़ गया। स्वयं थिबो ने स्वीकार किया है कि यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि पौलिश सिद्धान्त यूनान के फलित ज्यौतिष के ज्ञाता पौलुस (या पौलस) के ग्रन्थ से सम्बन्धित है। पौलिश-सिद्धान्त अपेक्षाकृत केवल ज्योति:शास्त्र की बातों से सम्बन्धित है। हमने ऊपर देख लिया है कि पितामह-सिद्धान्त लगभग ८० ई० में प्रणीत हुआ था। अतः उस सिद्धान्त ने सन् १५० ई० में प्रणीत टाल्मी से कुछ भी उघार नहीं लिया। अब हम इस विषय पर इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि जिन भारतीयों ने संस्कृत भाषा के तत्त्वों को इतने परिमार्जित एवं वैज्ञानिक ढंग से माँजा एवं परिशुद्ध किया (पाणिनि), जिन्होंने 'योग' जैसे मानस अनुशासन की व्यवस्था की, अक्षरों के उच्चारण-सम्बन्धी मुखांगों पर प्रकाश डाला, जिन्होंने प्रातिशाख्यों एवं शाखाओं के ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिन्होंने सर्वप्रथम बीजगणित के सिद्धान्तों का नियमन किया, जिन्होंने विश्व को दशमलव का ज्ञान दिया, जिसके आघार पर आज का गणित आघारित है, जिन्होंने अपने शून्य के ज्ञान को अरबों द्वारा यूरोप में भेजा, आदि-आदि, वे भारतीय किसी अन्य पिछड़े देश से ज्ञान-ऋण कैसे ले सकते हैं ?

हमने वैदिक काल के ज्योतिःशास्त्र-सम्बन्धी वचनों का अध्ययन किया है। अब हम वैदिक वचनों के अन्तर्गत फिलत ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान का विवेचन करेंगे। मानव-मन भविष्य-ज्ञान के लिए अति उत्सुक्ष रहता है और कुछ दिनों, कालों एवं परिणामों को शुभ या अशुभ मानने को सन्नद्ध रहता है। अति प्राचीन काल में लोगों द्वारा भविष्य की जानकारी के लिए बहुत से साधनों का आश्रय लिया जाता था। सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहों की जो स्थित जन्म के समय जैसी होती है, उसके आधार पर जो भविष्यवाणी की जाती है वही फिलत ज्योतिष का विषय है। ऐसी सामान्य धारणा है। किन्तु अति प्राचीन काल में ऐसी धारणा कम-से-कम इसी अर्थ में नहीं थी। असीरिया में आकाश-स्थितियों एवं ग्रहों की दशाओं के आधार पर अन्न-उत्पत्ति, बाढ़ों, अन्यड़ों, आन्नमणों एवं अन्य उपद्रवों के विषय में फिलत-ज्योतिष द्वारा भविष्यवाणी की जाती थी। आकाश के नक्षत्रों एवं पृथिबी की घटनाओं का सम्बन्ध देवों के विचारों से समझा जाता था और आसन्न घटनाएँ उनसे परिलक्षित की जाती थीं। हम इसे भौतिक फिलत ज्योतिष कह सकते हैं (नैच्यूरल एस्ट्रालाजी), पंचांग-सम्बन्धी फिलत ज्योतिष परचात्कालीन

१४. 'पुलस्त्य' शब्द अपराकं द्वारा (१२वीं शती का पूर्वार्घ) लगभग बारह बार और स्मृतिचिन्द्रका (१३वीं शती का पूर्वार्घ) द्वारा लगभग तीस बार प्रयुक्त हुआ है। इन स्थानों पर वह एक स्मृतिकार कहा गया है। स्मृति-चिन्द्रका ने 'पुलह' को स्मृतिकार कहा है। मनु (१।३५) ने 'पुलस्त्य' एवं 'पुलह' को प्रजापित के दस पुत्रों में परिगणित किया है। पुलस्त्य एवं पुलह सप्तिवियों में वो ऋषि हैं (बृहत्संहिता, १३।११)।

विकास है। स्वप्नों, पक्षियों की उड़ानों एवं स्वरों, भेड़ों के यक्नत (कलेजे) पर पड़ें संकेतीं (जो बेबिलोन या रोम में देव-यज्ञों के समय काटे जाते थे) से भी कुशल दैवज्ञ लोग भविष्यवाणियाँ किया करते थे।

ऋग्वेद में भी शुभ दिनों की चर्चा है, यथा सुदिनत्वे अह्नाम् (३।८।५, ३।२३।४, ७।८८।४ एवं १०।७०।१), सुदिनत्वम ह्नाम् (२।२१।६), सुदिनेष्व ह्नाम् (४।३७।१)। कुछ ऐसी उक्तियां भी हैं जहाँ यज्ञ आदि के शुभ दिनों के लिए आकांक्षा प्रकट की गयी हैं (ऋ० ४।४।७, ५।६०।५, ७।११।२, ७।१८।२, १।१२४।२ एवं १०।३९।१२)। ध

ऋग्वेद-काल में अघा (मघा) में गौएँ दूलह के घर भेजी जाती थीं और विवाहोपरान्त दुलहिन अर्जुनी (या फाल्गुनी) नक्षत्र में रथ में बैठकर अपने पित के घर जाती थी। इसी के आघार पर विवाह के लिए वौधायनगृह्यसूत्र में रोहिणी, मृगशीर्ष, उत्तराफाल्गुनी एवं स्वाती का उल्लेख हुआ है।

काठक सं० (८।१), शतपथ बा० (२।१।२), तै० बा० (१।२।६-७) के अनुसार अग्न्याघेय (पवित्र अग्नि की स्थापना) का सम्पादन सात नक्षत्रों में किसी दिन या वसन्त, ग्रीष्म या शरद् ऋतु में कर्ता के वर्ण के अनुसार होता था, किन्तु सोमयज्ञ के लिए अपवाद भी रखा गया था। एसा आया है कि सोमयज्ञ का अभिकांक्षी व्यक्ति किसी भी ऋतु में अग्न्याधेय कर सकता था और उससे उसे ऐश्वर्य की प्राप्त होती थी।

प्राचीन वैदिक उक्तियों में प्राकृतिक (भौतिक) फलित ज्योतिष एवं व्यक्तिपरक फलित ज्योतिष का अन्तर प्रकट नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ, तै॰ सं॰ (मैत्रेण कृपन्ते, १।८।४।२) में प्रतिपादित है कि अनुराचा में, जिसके देवता मित्र हैं, लोगों को खेत में हल चलाना चाहिए। पारस्करगृह्म॰ (२।१३) में आया है कि लोगों को (अपने खेत में) लांगल (हल) पुण्याह (शुभ दिन) में या इन्द्र देवता (वर्षा इन्द्र के हाथ में रहती है) वाले ज्येष्ठा (नक्षत्र) में रखना चाहिए (पुण्याहे लांगल योजनं ज्येष्ठ्या वेन्द्रदेवत्यम्)। वहीं यह भी आया है कि यदि व्यक्ति यह कामना करता है कि उसकी पुत्री अपने पित की प्रिया होतो उसे चाहिए कि वह अपनी पुत्री का विवाह निष्ट्या (स्वाती) नक्षत्र में करे; यदि वह ऐसा करता है तो उसकी पुत्री पतिप्रिया हो जाती है और अपने पिता के घर नहीं लौट कर आती (तै॰ बा॰ २।१३)। कृत्तिका से लेकर विशाखा तक के नक्षत्र देवनक्षत्र कहे गये हैं और उनमें सम्पादित कृत्य पुण्याह (पवित्र या शुभ दिन) पर सम्पादित माने जाते हैं। अथवंवेद (६।११०।२-३) के काल में ऐसा विश्वास था कि ज्येष्ठा या विचृत् (मूल नक्षत्र) में उत्पन्न बच्चा या किसी व्याघ्र-सदृश नक्षत्र (भयंकर नक्षत्र) में उत्पन्न बच्चा या तो स्वयं मर जाता है या अपने माता-पिता की मृत्यु का कारण बनता है। "

१५. पोषं रयीणामिरिष्टि तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुविनत्वमह्नाम् । ऋ० २।२१।६; जातो जायते सुविनत्वे अह्नां समर्थं आ विदये वर्धमानः । ऋ० ३।८।५; नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इलायास्पदे सुविनत्वे अह्नाम् । वृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने विदीहि ॥ ऋ० ३।२३।४ ।

१६. यूनानी लोग क्षयोन्मुल चन्द्र को अशुभ एवं बढ़ते चन्द्र को शुभ मानते थे। हेसिओडी पद्धति (जो ऋन्वेद से कई शताब्दियों पश्चात् की है) भी शुभाशुभ दिनों की चर्चा करती है, यद्यपि हेसिओड यह स्वीकार करता है कि इसमें मतेक्य नहीं है। हेसिओड ने मास की पाँचवीं तिथि को विशिष्ट रूप से विजत माना है; अपोलो के लिए यूनान में सातवीं तिथि पवित्र थी और बेबिलोन में भी सातवीं पवित्र तिथि थी।

१७. ज्येष्ठव्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात्परिपाह्येनम् । अत्येनं नेषव् बुरितानि विद्वया दोर्घायुत्वाय । क्याच्रेह्मचजनिष्ट वोरो नक्षत्रजा जायमान सुबीरः । स मा बर्षात्पितरं वर्षमानो मा मातरं प्रमिनीच्य-निश्रीम् ॥ अथवंवेव (६।११०।२-३)।

इससे प्रकट है कि कुछ नक्षत्र (तै॰ बा॰ १।५।२।१ या ३।१।२।८) तो शुम एवं कुछ अशुभ (यथा ज्येष्ठा, मूल)
थे। बृहदारण्यकोपनिषद् (६।३।१) से प्रकट है कि कुछ नक्षत्र पुंस्क (पुरुषवाची या पुल्लिंग) थे— "यदि कोई
व्यक्ति ऐसी कामना करे 'मैं महत्ता को प्राप्त कहें" तो उसे उत्तरायण में किसी शुक्ल पक्ष में बारह दिनों तक केवल
दूध का भोजन करना चाहिए और किसी पुंस्क नक्षत्र में किसी पुण्य दिन में अग्नि में आहुति देनी चाहिए।"

उपर्युक्त उदाहरणों से व्यक्त है कि आरम्भिक वैदिक कालों में भविष्यवाणियाँ नक्षत्रों के आघार पर की जाती थीं, और जन्म का कोई नक्षत्र शुभ या अशुभ माना जाता था। पाणिनि के समय में, पुष्य नक्षत्र शुभ माना जाता था, उसे उन्होंने 'सिन्य' नाम से पुकारा है। किन्तु इन प्रारम्भिक युगों में कोई ऐसे नियम नहीं बन पाये थे जिनसे ग्रेहों का किसी नक्षत्र में प्रभाव जाना जा सके और न कुण्डलियाँ ही बनती थीं, जिनमें ग्रहों, नक्षत्रों एवं राशियों के घर आदि बने हों। उन दिनों प्रधानतया केवल नक्षत्रों, दिनों एवं भौतिक लक्षणों तथा शारीरिक लक्षणों तक ही भविष्यवाणियाँ सीमित थीं। देखिए पाणिनि १।४।३९ (राधीक्ष्योर्यस्य विप्रक्तः), ४।३।७३ (अणृगयनादिभ्यः) एवं काशिका (पाणिनि ३।२।५३) जिसमें जायाष्ट्रनिस्तलकालकः, पतिष्की पाणिरेखा (हथेली की रेखा) के उदाहरण हैं।

ऋग्वेद (२।४२।१ एवं ३; निष्कत ९।४) में कुछ ऐसे मन्त्र हैं जो कपिञ्जल-जैसे पिक्षयों की बोलियों से घटने वाली शुभ या अशुभ घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। वृहत्संहिता (९८।१४) ने प्रतिपादित किया है कि बाता में संलग्न व्यक्ति को पिक्षगण यह बताते हैं कि पूर्व जन्मों में उसके कर्म अच्छे थे या बुरे और उनके फल क्या हैं। पशुओं एवं पिक्षयों के पिरदर्शन, उड़ान, स्वर से सम्बन्ध रखने वाले शकुनों के विषय में वराहिमिहिर के योगयात्रा ग्रन्थ में तथा अद्भुतसागर (पृ० ५६९-५८२) में पर्याप्त विस्तार पाया जाता है। योगयात्रा (१४।२० एवं २६) में आया है कि यात्रा करते समय कुछ पक्षी या पशु व्यक्ति की दाहिनी दिशा या दिक्षण दिशा में हों तो शुभ होता है और जब चाप पक्षी अपने मुख में कुछ लेकर व्यक्ति की दाहिनी ओर उड़ जाता है तो कल्याण होता है।

शुभाशुभ दिनों एवं नक्षत्रों से सम्बन्धित भावनाओं का परिणाम यह हुआ कि लोग निरीक्षणों में व्यस्त हो गये तथा निर्णय देने लगे, जिसके फलस्वरूप 'नक्षत्र विद्या' का उदय हुआ। छान्द्रोग्योपनिषद् (७।१।२ एवं ७।७।१) में इस विद्या की चर्चा है। जब नारद ज्ञान के लिए महान् आचार्य सनत्कुमार के पास गये तो आचार्य ने उनसे पूछा कि वे क्या-क्या पढ़ चुके हैं। इस पर नारद ने विद्याओं की एक लम्बी सूची सुनायी जिसमें चार वेदों, इतिहास-पुराण आदि के साथ नक्षत्र-विद्या (ज्योति:-शास्त्र एवं फलित ज्योतिष) का भी उल्लेख है। आजकल की माँति उन दिनों भी नक्षत्र-निरीक्षकों, फलितज्योतिषियों आदि के विषय में विचित्र घारणाएँ प्रचलित थीं। बहुषा लोग ऐसे लोगों की प्रबंचनाओं में फँस जाते थे और निराशा के नद में डूबने-उतराने लगते थे। देखिए तै० ग्रा० (३।४।४) एवं वाज ० सं० (३०।१० एवं २०) जहाँ एक 'नक्षत्रदर्श' (नक्षत्रतिरीक्षक) प्रज्ञान के समक्ष अभियुक्त के रूप में लाया गया है और 'गणक' (नक्षत्रों एवं ग्रहों की गतियों की गणता करने वाला) ग्राम के मुखिया के साथ जंलजन्तुओं के बीच फेंक दिया गया है। मनु ने भी नक्षत्र विद्या से जीविका चलाने वाले को उन ब्राह्मणों के साथ उल्लिखित किया है जिन्हें देव-कृत्य एवं श्राद्ध में न बुलाये जाने की व्यवस्था है (३।१६२)। मनु (६।५०) ने सामुओं को उत्पातों (मूचाल आदि), शारीरिक गतियों (आँख फड़कना आदि) या नक्षत्रविद्या या अंगविद्या (हास देखना आदि) के द्वारा जीविका चलाने की मनाही की है। हारीत एवं शंख-लिखित के प्राचीन सूत्रों ने घोषित किया है कि नक्षत्रजीवियों एवं नक्षत्रादेशवृत्तियों (जो नक्षत्रों का संदेश कहकर जीविका चलाते हैं) को अन्य बाह्मणों की पंक्ति में बैठने की अयोग्यता प्राप्त है (कृत्यकल्पतरु, श्राद्ध, पृ० ८८ में उद्धृत)। यही बात सुमन्तु ने (इ० क० त०, पृ० ९१) 'मूल्यसांवत्सरिक' (जो घन के लिए फलित ज्योतिष का उपयोग करता है) के विषय में कहीं है। देखिए निष्णुवर्मसूत्र (४२।७)। तेनिष्जसुत्तं (सैकेड नुक आव दि ईस्ट, जिल्द ११, पू० १९६-१९८

एवं दिग्धनिकाय (१, पृ० ६८) में महाबी छ ने बौद्ध साधुओं के लिए ऐसी वृत्ति की भत्संना की है जो मनुष्य की आयु बताकर, भविष्यवाणियाँ (ग्रहण, तारा गिरना, विजय, हार आदि) करके प्राप्त की जाती है। किन्तु बुद्ध ने केवल नक्षत्राष्ट्रयम वांछित माना है (पै० वृ० ई०, जिल्द २०, पृ० २९२-२९४)। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने '(९वाँ अधिकरण, चौथा अध्याय, पृ० ३५१, आमआस्त्री सम्पादन, १९१९) लाभविष्नों में तिथि-नक्षत्र की शुभाशुभता को परिगणित किया है। दन उनित्यों में स्पष्ट है कि ईसा के कई शताब्दियों पूर्व वे लोग निन्दित समझे जाते थे जो फलित ज्योतिय द्वारा जीविका जलते थे।

कौटिल्य ने फिल्त ज्योतिष की अति निर्मरता की निन्दा की है न कि उसके ज्ञान की। उसने राजा के पुरोहित के लिए जिन गुणों की आवश्यक माना है उनमें नक्षत्रविद्या का गुण भी सम्मिल्ति है (अर्थज्ञास्त्र ११९, पृ० १५-१६)। यही वात कौटिल्य के कई सी वर्ष उपरान्त याज्ञवल्य ने भी कही है—'पुरोहित प्रकुर्वित दैनज्ञ-मुदितोदितम्। दण्डनीत्यां च कुशलमथवींगिरसे तथा।।' जिसका अर्थ है—'राजा को ऐसा पुरोहित नियुक्त करना चाहिए जो दैनज्ञ हो (फिल्त ज्योतिय-विद्यारद हो), शाखानुशासित वातों से शासन-शास्त्र (दण्डनीति) में प्रवीण हो और अथर्ववेद के ऐन्द्रजालिक इत्यों में पारंगत भी हो (याज्ञ० १।३।१३)।'

नक्षत्रों पर आधारित फलित ज्योतिष के विकास के विषय में कुछ ऐसे वचन भी प्राप्त होते हैं जो कुछ अंशों में पश्चात्कालीन कुण्डली-पद्धति के 'गृहों' के समनुरूप हैं। इसके विषय में संकेत मिलते हैं, किन्तु वे अति प्राचीन नहीं हैं। वैखानसस्मार्तसूत्र (४।१४) में जन्म, कर्म, सांघातिक, सामुदायिक एवं वैनाशिक नामक नक्षत्रों का उल्लेख है और इनकी व्याख्या वराह ने (योगयात्रा में) एवं विष्णुवर्मोत्तरपुराण ने की है। योगयात्रा (९।१-३ एवं १०) में आया है— 'जिस नक्षत्र में व्यक्ति उत्पन्न होता है उसे आद्य (प्रथम )कहते हैं, आद्य से दसवाँ कर्म कहा जाता है, आद्य से सोलहवाँ नक्षत्र सांघातिक कहा जाता है (सांघातिक का अर्थ है एक दल या व्यक्ति-समूह), आदा से अठारहनाँ समुदाय (संग्रह या समूह), २३वाँ वैनाशिक (मृत्यु या नाश से सम्बन्धित), २५वाँ मानस कहलाता है, इस प्रकार सभी व्यक्ति छ: नक्षत्रों (पहले, १० वें, १६ वें, १८ वें, २३ वें एवं २५ वें) से सम्बन्धित हैं। लोगों का कथन है कि राजा नौ नक्षत्रों से सम्बन्धित है, तीन अतिरिक्त वे हैं जो राजा की जाति, देश एवं उस नक्षत्र से सम्बन्धित हैं जिसमें राज्याभिषेक हुआ रहता है।' योगयात्रा एवं विष्णुधर्मोत्तर० (१।७८।१४-१६) में आगे आया है---'जब जन्म-नक्षत्र किसी बुरे नक्षत्र या उसके स्वरूप से प्रभावित हो जाता है तो व्याधि, धन-क्षय एवं झगड़े होते हैं; जब कर्म-नक्षत्र (इस प्रकार) प्रभावित होता है तो संकल्प में असफलता मिलती है; जब सांघातिक (१६वाँ) प्रभावित होता है तो धोखा मिलता है; जब सामुदायिक (१८वें) की ऐसी गित होती है तो एकत्र घन का क्षय होता है; जब वैनाशिक (२३वें) के साथ ऐसा होता है तो वांछित वस्तुओं का नाश होता है; जब मानस (२५वाँ) प्रभावित होता हैं तो चिन्ताकुलता एवं अप्रसन्नता का उदय होता है। जब सभी (छः) नक्षत्रों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता तो व्यक्ति स्वस्य होता है, आनन्द पाता है, उसका शरीर भली-भाँति पोषित होता है और उसे घन प्राप्त होता है। किन्तू सभी नक्षत्र (छः) प्रभावित हो जाते हैं तो व्यक्ति का नाश होता है और तीन के साथ छ: नक्षत्र प्रभावित रहते हैं तो राजा की भी गति वैसी होती है। यदि अभिषेक नक्षत्र प्रभावित हो तो राज्य की हानि होगी, बदि

१८. लाभविष्नः कामः क्रोषः साष्यसं मंगलतिथिनक्षत्रेष्टि (ष्ट ?) त्विमिति। 'नक्षत्रमितिषुच्छन्तं बालम-र्थोतिवर्तते। अयो ह्ययंस्य नक्षत्रं कि करिष्यन्ति तारकाः॥ साधना प्राप्नुवन्त्यर्थान् नरा यत्नशतैरपि। अर्थेरर्थाः प्रबच्यते नजाः प्रविगर्जरिय॥' (अर्थशास्त्र, ९, ४, षु० ३५१, शामज्ञास्त्री, १९१९)।

देश-नक्षत्र प्रभावित हो तो देश एवं राजघानी पर कष्ट पड़ेगा और यदि राजा की जाति प्रभावित हो तो राजा की बोमारी की भविष्यवाणी होनी चाहिए। राजा की जाति के विषय में ये नक्षत्र हैं—तीन पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा एवं पूर्वाभाद्रपदा) तथा कृतिका ब्राह्मण-जाति के राजा के लिए हैं; तीन उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा एवं उत्तराभाद्रपदा) तथा पुष्य क्षत्रिय राजा के लिए; अनुराघा, मघा एवं रोहिणी कृषक जाति के राजा के लिए; पुनर्वसु, हस्त, अभिजित् एवं अश्विनी विणक् जाति के राजा के लिए हैं। देश के नक्षत्रों का उल्लेख बृहत्संहिता के १४ वें अध्याय में है। यहाँ वराहमिहिर टाल्मी से दो बातों में अन्तर रखते हैं: (१) वराह देशों को राशियों से शासित न मानकर केवल नक्षत्रों से मानते हैं; (२) वराह ने अपने को भारत तक सीमित रखा है, किन्तु टाल्मी (टेट्राबिब्लोस, ११।३,पृ० १५७-१५९) ने उस समय के सभी ज्ञात देशों का स्पर्श किया है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है जो इस सिद्धान्त का खण्डन करती है कि वराह ने टाल्मी या पश्चात्कालीन यूनानी लेखकों की नकल की है। सम्पूर्ण भारत ९ भागों में बाँटा गया है—मध्यदेशे एवं वे भूमिखण्ड जो पूर्व से लेकर उत्तर-पूर्व तक आठ भागों में बँटे हैं; प्रत्येक भूमिखण्ड कृत्तिका से आगे के तीन-तीन नक्षत्र-दलों से सम्बन्धित है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर० (१।८६।१-९)। जब ९ खण्डों में प्रत्येक के तीन नक्षत्रों का दल सूर्य, मंगल या शनि से प्रभावित होता है तो उन सभी नक्षत्रों से प्रभावित देश विपत्तियों में फँसते हैं। और देखिए मार्कण्डेय पुराण (५८।१०-५४)। विष्णुधर्मोत्तरः (१।८९।१-१३), योगयात्रा (९।१३-१८) एवं पराशर (अदभतसागर, पु० २७१-२७४ में उद्धत) द्वारा उपर्युंक्त नी नक्षत्रों से उपाहत (प्रभावित) फलों की दूर करने के लिए शान्ति-कृत्यों की व्यवस्था बतलायी गयी है।

यह घ्यान में रखना चाहिए कि फलित ज्योतिष में १२ राशियों एवं १२ भावों (स्थानों या घरों) में कर्म नाम १०वें भाव को दिया गया है और मृत्यू (विनाश) ८वें भाव को।

महाभारत एवं रामायण में कितपय ऐसे कथन हैं जहाँ किन्हीं नक्षत्रों के सम्बन्ध में ग्रह सामान्यतया लोगों पर आपित डाते, सेनाओं एवं व्यक्तियों को कष्ट में डॉलते कहे गये हैं। यथा, जब राम एवं रावण में प्रचण्ड युद्ध चल रहा था और रावण का पक्ष प्रबंल पड़ रहा था तो रामायण (युद्धकाण्ड १०३।३० एवं ३१) में आया है—'रोहिणी, जिसके देवता प्रजापित हैं और जो चन्द्र की प्रिया है, बुध द्वारा आच्छादित है अतः इससे लोगों का अशुभ है।' इसी प्रकार यह आया है—'आकाश में विशाखा नक्षत्र, जिसके देवता इन्द्र एवं अग्नि हैं और जो कोसलों का नक्षत्र हैं, मंगल द्वारा घिरा हुआ है।' महाभारत में ग्रहों, नक्षत्रों एवं तिथियों की स्थितियों के विषय में बहुत अधिक कथन हैं, जिन्हें सुलझाना असम्भव सा है। देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड ३। यहाँ हम शबुनों एवं भविष्यवाणियों पर ही लिख रहे हैं। मीष्मपर्व (३।१२,१३,१६ एवं १७) में हम पढ़ते हैं, 'चित्रा नक्षत्र का अतिक्रमण करके एक स्वेत ग्रह अवस्थित है; इसमें कुरुओं का नाश ही कोई देखता है; पुष्य नक्षत्र का अतिक्रमण करके धूमकेतु खड़ा है; यह घोर (भयंकर) महान् ग्रह दोनों सेनाओं का अशिव करेगा। एक स्वेत प्रज्वलित ग्रह, जो धूम छोड़तां

१९. प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शिश्तनः प्रियाम्। समाक्रम्य बुबस्तख्यौ प्रजानामशुभावहः॥ कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्त-मिन्द्राग्निदेवतम्। आक्रम्यांगारकस्तस्यौ विशाखामपि चाम्बरे॥ रामायण (युद्धकाण्ड १०३। ३० एवं ३३)। बालकाण्ड (५।५-६) में आया है कि कोसल देश सरयूतीर पर स्थित है, अयोध्या इसकी राजधानी है। रघुवंश (४।७०) में राम के पूर्वज रघु कोसलेश्वर कहे गये हैं। बृहत्संहिता (१४।८-१०) के अनुसार कोसल उत्तर-पूर्व यें प्रचम देश है, और उसके नक्षत्र हैं आदलेषा, मधा एवं पूर्वा।

हुआ अग्नि-सा है, इन्द्र देवता वाले तेजस्वी ज्येष्ठा-नक्षत्र को घेरे हुए है; एक निर्मम जूमकेतु चित्रा एवं स्वाती में स्थित होकर रोहिणी, सूर्य एवं चन्द्र को पीड़ित कर रहा है।"

मंगल के विषय में कितपय कथन परस्पर-विरोधी हैं। उदाहरणार्थ, उद्योगपर्व (१४३।९) का कथन है— 'ज्येष्ठा में वक्र मंगल मित्र देवता वाली अनुराधा को खोज रहा है, मानो मृत्यु ला रहा है'; भीष्मपर्व (३।१४) में आया हैं— 'मंगल मधा में वक्र है, वृहस्पित श्रवण में है तथा शिन भग देवता वाले नक्षत्र (पूर्वाफाल्गुनी) को पीड़ित कर रहा है।' शिन के विषय में भी कथन हैं— 'महाद्युतिमान् एवं तीक्ष्ण ग्रह शिन नक्षत्र (प्रजापित वाली, रोहिणी) को पीड़ित कर रहा है और लोगों को और पीड़ा देगा'; 'शिन रोहिणी को अितक्रान्त करके खड़ा है; बृहस्पित एवं शिन विशाखा के पास हैं।'

महाभारत-कथनों में एक द्रष्टव्य बात यह है कि जहाँ वे सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहों की स्थितियों को, उनके नक्षत्रों के सम्बन्घ में, बताते हैं, वे कहीं भी ग्रहों की स्थितियों को उनकी राशियों अथवा सप्ताह-दिनों (यथा मंगल, रिव आदि) के सम्बन्ध में नहीं बताते।

आधर्वण-ज्योतिष (१०११-११) ने नक्षत्र-ज्योतिष-सिद्धान्त को अन्य रूप से दर्शाया है। इसमें आया है—'मनुष्य के जन्म से १० वाँ नक्षत्र कर्म कहलाता है; १९ वाँ गर्माधानक; दूसरा, ११ वाँ एवं २० वाँ मिलकर सम्पत्कर (समृद्धि लाने वाला); तीसरा, १२ वाँ एवं २१ वाँ मिलकर विपत्कर; चौथा, १३ वाँ एवं २२ वाँ मिलकर क्षेम; ५ वाँ, १४ वाँ एवं २३ वाँ मिलकर प्रत्वर; छठा, १५ वाँ एवं २४ वाँ मिलकर साधक; ७ वाँ, १७ वाँ एवं २५ वाँ मिलकर नैधन; ८ वाँ, १७ वाँ एवं २६ वाँ मिलकर मैत्र; नवाँ, १८ वाँ एवं २७ वाँ मिलकर परममेत्र कहलाते हैं। ये ९ नक्षत्र-वल हैं (जिनमें प्रत्येक में ३ नक्षत्र हैं, कुल नक्षत्र २७ हैं)। प्रथम एवं दूसरे ९ संख्या में कम हैं। ये नाम पुनः १२ भावों से समन्वित होते हैं—जन्म (तन् या लग्न), सम्पत् (धन, दूसरा भाव), कर्म (१० वाँ भाव), नैधन (८वाँ भाव, विनाश या मृत्यु), मैत्र (चौथा भाव, सुहृद्), क्षेम (११ वाँ भाव, आय या लाभ)। इसके आगे आथर्वण ज्योतिष ने इन ९ दलों में करने या न करने योग्य वातों पर विस्तार के साथ विचार किया है। आथर्वण ज्योतिष का काल लगभग द्वितीय या प्रथम शताब्दी ई० पू० है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण अपने समय का एक विश्वकोश-सा है। इसका समय चौथी एवं छठी शताब्दी के वीच में रखा जा सकता है।

वृहदारण्यकोपनिषद् में यज्ञ के लिए शुभ दिनों की व्यवस्था की ओर संकेत मिलता है। ब्राह्मणों एवं कल्पसूत्रों ने वैदिक यजों के लिए शुभ नक्षत्रों एवं ऋनुओं की व्यवस्था की थी। गृह्म एवं धमंसूत्र भी घरेलू कृत्यों के लिए कुछ हेर-फेर के साथ ब्राह्मणों, वृहदारण्यकोपनिषद् एवं कल्पसूत्रों के समान ही व्यवस्था देते हैं। उदाहरणायं, आश्व० (१११३११), आपस्तम्ब० (६११४९), बौघायन० (१११०११), पारस्कर० (१११४) तथा अन्य गृह्मसूत्र व्यवस्था देते हैं कि पुंसवन (जो कृत्य लड़का उत्पन्न होने के लिए होता है) का सम्पादन गर्भाघान के उपरान्त तीसरे मास में तिष्य नक्षत्र में या पुस्क नक्षत्र वाले चन्द्र के दिन किया जाना चाहिए। भारद्वाजगृह्म ने स्पष्ट रूप से पुसवन के लिए तिष्य, हस्त अनुराघा, उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र निर्धारित किये हैं (११२१)। चौल के लिए आपस्तम्बगृह्म (६११६३) ने जन्म के उपरान्त पुनर्वसु नक्षत्र ठीक माना है। पुनर्वसु का अर्थ ही है नया घन या नयी वृद्धि। कौशिकसूत्र ने पापनक्षत्र (४६१२५) एवं पुनक्षत्र (भाग्यशाली) का उल्लेख किया है (३५१२)। विवाह के लिए कितप्य विभिन्न व्यवस्थाएँ हैं। आप० गृ० के मत से शिशिर (माघ एवं फाल्गुन) के दो मासों एवं ग्रीष्म के आषाक के अतिरिक्त सभी मास विवाह के लिए ठीक हैं। गोभिलगृह्म ने केवल शुभ नक्षत्र की चर्चा की है। पारस्कर का उल्लेख लम्बा है। बौधायन गृ० (११११४-२२) ने घोषित किया है कि 'विवाह के लिए सभी मास उचित हैं, किन्तु कुछ ऋषि आपाढ़, माघ एवं फाल्गुन को विजत ठहराते हैं; विवाह के नक्षत्र हैं रोहिणी, मृगशीर्थ, उत्तरा

२६६

फाल्गुनी एवं स्वाती । अन्य कृत्यों के नक्षत्र हैं पुनवंसु, तिष्य, हस्त, श्रोणा (श्रवण) एवं रेवती । आदव० गृह्य ने सभी महत्त्वपूर्ण संस्कारों के शुभ कालों के लिए यों कहा हैं (१।४।१-२)—'चौल, उपनयन, गोदान एवं विवाह का सम्पादन उत्तरायण में, चन्द्र-वृद्धि काल वाले पक्ष में तथा शुभ नक्षत्र में होना चाहिए; कुछ ऋषियों के मत से विवाह सभी कालों में सम्पादित हो सकता है।' आदव० में आया है कि विवाहोपरान्त कन्या को मौन घारण करना चाहिए तथा ध्रुव, अरूधती एवं सप्तिष-मण्डल के दर्शन के उपरान्त ही बोलना चाहिए। यह बात पूर्व-मोमांसासूत्र में और आगे आयी है—'देवों के सम्मान में किये जाने वाले कृत्य उत्तरायण में, शुक्लपक्ष के किसी शुभ दिन में किये जाने चाहिए (६।८।२३)।'

उपर्युक्त कथनों से प्रकट होता है कि ईसा से कई शताब्दियों पूर्व वैदिक एवं घरेलू कृत्यों के लिए केवल शुभ नक्षत्र का निर्घारण होता था न कि किसी तिथि का। सप्ताह के दिनों का भी उल्लेख नहीं किया जाता था। राशियों भी विणित नहीं हैं और ग्रहों की ओर भी संकेत नहीं है, केवल शुभ नक्षत्र में कृत्य-सम्पादन की

व्यवस्था है।

किसी शुभ दिन या नक्षत्र की खोज (विशेषतः विवाह जैसे कृत्यों के लिए या गृह्य-कृत्यों के लिए या किसी संकल्प-पूर्ति के लिए) मध्यकालीन संस्कृत ग्रन्थों में मृहूर्त की खोज के नाम से विख्यात है। अतः 'मृहूर्त' शब्द के अर्थ एवं इतिहास पर विचार करना आवश्यक है।

### अध्याय १६

## मुहतं

'मुहूर्त' शब्द दो बार ऋग्वेद में आया है।' शुनुद्रि (सतलज) एवं विपाशा (व्यास) के संगम पर आये हुए विश्वामित्र ऋषि एवं निदयों के संवाद में इस प्रकार आया है—'मेरे वचनों (तुम्हारी स्तुति में कहे गये) के लिए, जिनके उपरान्त सोम का अपंण होगा, तुम, जो एक व्यवस्थित नियम या कम में हो, थोड़ी देर के लिए रुक जाओ। दूसरे स्थान पर आया है—विभवशाली इन्द्र बहुत-सी मायाओं का प्रयोग करके अपने ही शरीर से अधिकतर बहुत-से रूप धारण करता है, क्योंकि वह सम्बोधित मन्त्रों से आहूत होकर व्यवस्थित नियम का पालन करता है, जो सोम का रस निश्चित या अनिष्वित कालों में पीता है, वह आकाश से थोड़ी देर के लिए तीन बार आता है।' इन दोनों कथनों में 'मुहूर्त' शब्द का अर्थ है 'अल्प काल, थोड़े क्षण।' यही अर्थ शत० बा० (१।८। ३।१७: तन् मुहूर्त धारियत्वा; २।३।२।५: अब प्रातः अनिशत्वा मुहूर्त सभायामासित्वापि) एवं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में आया है, यथा रघुवंश (५।५८)।

शत० बा० (१०।४।२।१८ एवं १२।३।२।६) में 'मुहूर्त' का दूसरा अर्थ भी है। ऐसा आया है कि दिन के १५ मुहूर्त एवं रात्रि के १५ मुहूर्त (अहोरात्र के ३० मुहूर्त ) होते हैं और वर्ष में कुछ १०८०० (३०×३६०) मुहूर्त होते हैं। यहाँ मुहूर्त दिन का १५ वाँ भाग (अर्थात् सामान्य रूप से छगभग २ नाड़िका या घटिका) है। ऋ० (१०। १८९।३) में दिन-रात्रि के ३० भागों की ओर एक गूढ़ संकेत हैं, यथा 'त्रिशद् घाम वि राजित वाक्पतंगाय घीयते', अर्थात् 'सूर्य की किरणों से दिन (एवं रात्रि) के ३० घाम प्रकाशित होते हैं', 'उस पक्षी (सूर्य) को यह स्तुति अर्पित है' (प्रतिवस्तोरह द्युभिः)। तै० बा० (३।१०।१।१-३) में दिन एवं रात्रि के मुहुर्ती का उल्लेख है। वेदांगज्योतिष

१. रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीक्ष मृहुतं येवैः। ऋ० (३।३३।५)। यह निक्कत (२।२५) द्वारा यों व्याख्यायित है—उपरमध्वं मे वचसे सोम्याय सोमसम्पादिने ऋतावरीः ऋतवत्यः...मृहूर्तम् एवैः अयनैः अवनैर्वा। मृहूर्तः मृहुः ऋतुः। ऋतुः अर्तेः गतिकर्मणः। यृहुः मृढः इव कालः। यहां 'मृहूर्तं' का अर्थ है 'अल्प समय के लिए, एक क्षण के लिए।' निक्कत ने इसकी व्युत्पत्ति 'मृहुः एवं 'ऋतु' (वह काल जो क्षी झ ही समाप्त हो जाता है) से की है।

२. रूपं रूपं सघवा बोभवीति भाषाः कृष्वातस्तन्यं परि स्वाम् । त्रियंद्दियः परि मुहूर्तमागात्स्वैमंन्त्रैरनृतुप ऋतावा ।। ऋ० (३।५३।८) । सवन (दिन में सोभरस निकालना) तीन हैं: प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन एवं तृतीयसवन । देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड २ ।

३. चित्रः, केतुः, प्रभान्, आभान्, संभान्, ज्योतिष्मान्, तेजस्वान्, आतपन्, तपन्, अभितपन्, रोचनः, रोचमानः, शोभनः, शोभमानः, कल्याणः, ये दिन के मुहुतं हैं। रात्रि के ये हैं—दाता, प्रदाता, आनन्दः, मोदः, प्रभोदः, आवेशयन्, निवेशयन्, संवेशनः, संशान्तः शान्तः, आभयन्, प्रभवन्, संभवन्, संभूतः, भूतः।

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

२६८

wine.

के मत से दो नाड़िकाएँ एक मुहूर्त की छोतक (ऋग्वेद का वेदांगज्योतिष, क्लोक ७) हैं और सब से बड़े एवं सब से छोटे दिन में ६ मुहूर्तों (१२ घटिकाओं) का अन्तर पड़ता है। मनु (११६४), कौटिल्य (अर्थशास्त्र २, अघ्याय २०, पृ० १०७-१०८, शामशास्त्री का सम्पादन) एवं कितपय पुराणों ने रात-दिन को ३० मुहूर्तों वाला कहा है। अतः बाह्मण-काल के बाद मुहूर्त का दूसरा अर्थ रहा है 'दो घटिकाओं की अविध।' कौषीतिक-उपनिषद् (११३) ने 'येष्टिह' नामक मुहूर्तों का उल्लेख किया है।

ऐसा प्रकट होता है कि ईसा के कई शताब्दियों पूर्व दिन के १५ मुहुतों के नाम तै० ब्रा० में उल्लिखित नामों से भिन्न पड़ गये थे। ब्राह्ममुहतं एक प्रसिद्ध मुहतं है, जिसका उल्लेख बौ० घ० सू० (२।१०।२६), मनु (४।९२) एवं याज्ञ० (१।११५) ने किया है। महाभारत (द्रोणपर्व, ८०।२३) में ब्राह्ममुहूर्त का उल्लेख है। कालिदास के रघ्वंश (५।३६) में आया है कि अज का जन्म ब्राह्ममुहूर्त (ब्रह्मा देवता वाले अभिजित् में) में हुआ था। कुमारसम्भव (७।६) में आया है कि पार्वती की नारी-सम्बन्धिनियों ने उनको मैत्र मुहूर्त में, जब चन्द्र उत्तराफाल्युनी नक्षत्र में था, विवाह के लिए अलंकृत किया था। और देखिए अन्य शुभ तिथियों के लिए सभा० (२।१५, २५।४), वन० (२५३।२८)। आथर्वण ज्योतिष (१।६-११) में १५ मुहुर्तों के नाम ये हैं---रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, सावित्र, वैराज, विश्वावस्, अभिजित् (मध्या ह्न में), रौहिण, बल, विजय, नैर्ऋत, वारुण, सौम्य, भग। मुहर्तदर्शन (या विद्याभाषवीय) में भी ये नाम हैं, कुछ अन्तर यह है-विश्वावसु के स्थान पर गान्धर्व है, वारुण के पूर्व शाक जोड़ दिया गया है और सौम्य छोड़ दिया गया है और कहा गया है कि अभिजित्, वैराज, श्वेत, सावित्र, मैत्र, बल एवं विजय सुमकार्य-सिद्धिजनक हैं। और देखिए महाभारत, आदि० (१२३१६), उद्योग० (६।१७-१८)। मनु (२।३०) में आया है कि शिशु के जन्म के १०वें या १२वें दिन शुभ तिथि, मुहूर्त एवं नक्षत्र में नामकरण करना चाहिए। ऐसा माना जा सकता है कि मनु एवं विद्यामाववीय में ७ शुभ मुहूर्त समान ही हैं। पुराणों में भी १५ नाम आये हैं, किन्तु भिन्नता के साथ। मत्स्य (२२।२) में अभिजित् एवं रौहिण नाम आये हैं और कहा गया है कि नये गृह के निर्माण के लिए आठ शुभ मुहर्त हैं। इसमें कुतप नामक आठवें मुहर्त का उल्लेख है (२२।८४)। उपर्युंक्त बातों से प्रकट है कि मुहूर्तों के नाम दो बार पंड़े, एक बार तै० ब्रा० में और दूसरी बार आथर्वणज्योतिष एवं पुराणों में। एक तीसरा युग ऐसा आया कि ये नाम पृष्ठभूमि में पड़ गये या व्यावहारिक रूप से विलुप्त-से हो गये, जैसा कि वराहिमहिर और अन्य ग्रन्थों के अवलोकन से प्रकट होता है। केवल ३० मुहूर्तों के देवताओं के नाम रह गये और उन्हीं हो उनके नाम द्योतित होने लगे। बृहत्संहिता (४२।१२ एवं ९८।३) में वे नाम नहीं आते, किन्तु वृहद्योगयात्रा में ३० देवताओं के नाम आते हैं। वृहत्संहिता (९८।१) में आया है— किन्हीं नक्षत्रों में करने के लिए जो कार्य व्यवस्थित हैं वे उनके देवताओं की तिथियों में किये जा सकते हैं और करणों तथा मुहुतों में भी

४. स्वातौ (श्वेते?) मैत्रेष माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे । तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत्।। मत्स्य० (२५३।८-९)।

५. शिवभुजगिमत्रिपिःयवसुजलिवश्वविरिञ्चिपंकजप्रभवाः। इन्द्राग्नीन्द्रुनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि। क्व्राजाहिर्बुक्त्याः पूषा वत्रान्तकाग्निभातारः। इन्द्रवितिगुरुहिरिरिवत्वष्ट्रिनिलाख्याः क्षणा रात्रौ।। अहः पञ्चवशाशे रात्रेश्चेवं मृहूतं इति संज्ञा। बृहद्योगयात्रा (६१२-४)। और देखिए रत्नमाला (७११-२)। यह द्रष्टव्य है कि रात्रि-सम्बन्धी मृहूतं वायु ० (४३।४४) की तालिका से मिलते हैं। और देखिए मृहूतंमातंण्ड (२१४), अलबक्नी (सचौ, जिल्द १, पृ० ३३८३४२)।

के सम्पादित हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई कृत्य आर्द्रां नक्षत्र में करने को प्रतिवादित है, तो वह शिव के मूहूर्त (दिन के प्रथम मुहूर्त) में किया जा सकता है, क्योंकि दोनों (आर्द्रा एवं प्रथम मुहूर्त) का देवता एक ही (छद्र) है। आथर्वणज्योतिष (२।१-११, एवं ३।१-६) में दिन के १५ मुहूर्तों में किये जाने वाले कार्यों पर विस्तारपूर्वक लिखा हुआ है। उदाहरणार्थ, भयंकर कार्य रौद्र में, प्रिय कार्य मैंत्र में, शत्रुओं के अकल्याण के लिए जादू-टोना-सारमट में, काम्य कृत्यों एवं संकल्य-सफलता के लिए अभिजित् में, विजय के लिए आक्रमण विजय में, श्रुम एवं शांनित के कृत्य (इसी) विजय में, श्राह्मणकुमारी से विवाह मग मुहूर्त में (क्योंकि ऐसा करने से पत्नी दुश्चरित्र नहीं होती)। यह द्रष्टव्य है कि पतंजलि (वार्तिक, पाणिनि, ५।१।८०) ने ऐसे व्यक्ति की चर्चा की है जो महीना मर प्रतिदिन एक मुहूर्त तक पाठ पढ़े।

वासन्तिक विषुव के उपरान्त रात्रि की अपेक्षा दिन कमशः बड़े होते जाते हैं और शारदीय विषुव के उपरान्त रात्रियाँ लम्बी होती जाती हैं। किन्तु एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक ३० मुहूर्त होते हैं, अतः यह कहना अधिक युक्तिसंगत है कि एक मुहूर्त दो घटिकाओं (४८ मि०) के बराबर है। किन्तु यह भी तो कहा जाता है कि दिन में १५ मुहूर्त होते हैं। वेदांगज्योतिष के स्थानीय मान के अनुसार भारत में सब से बड़ा दिन ३६ घटिकाओं का है, ऐसी स्थिति में १५ संख्या वाले मुहूर्तों में प्रत्येक की अविध २६६ घटिका होगी, और सबसे छोटा दिन जब २४ घटिकाओं का होगा तो उसकी अविध १६ घटिका की होगी। इस अन्तर को हम विष्णुधर्मोत्तर (१।७३।६८) एवं ब्रह्माण्डपुराण (१।२।२१।१२२-१२३) में भी पाते हैं।

हमने बहुत पहले यह जान लिया है कि प्राचीन वैदिक काल में मुहूर्त के दो अर्थ प्रकट हो चुके थे, यथा (१) 'थोड़ी देर' एवं (२) 'दो घटिकाएँ।' किन्तु दिन के कुछ मुहूर्त (दो घटिकाओं की अविध वाले) शुभ घोषित हो गये, अतः कमशः मुहूर्त का तीसरा अर्थ भी परिलक्षित हो गया, यथा 'वह काल जो किसी शुभ कृत्य के लिए योग्य हो' ('कालः शुभिक्यायोग्यो मुहूर्त इति कथ्यते।' मुहूर्तदर्शन, विद्यामाध्वीय १।२०)। आगे चलकर हम देखेंगे कि इसी तीसरे अर्थ में मध्य काल के घर्मशास्त्र-ग्रन्थों ने 'मुहूर्त' का प्रयोग किया है।

उपर्युक्त तीसरे अर्थ की अभिज्ञता के लिए हमें ग्रहों, द्वादक भावों (कुण्डली में निर्मित घाम या गृह या स्थान)
एवं राशियों का ज्ञान कर लेना आवश्यक है। किन्तु ऐसा करने के पूर्व यह भी जान लेना आवश्यक है कि ई॰
पू० चौथी शताब्दी के उपरान्त भारत के श्रेष्ठ मस्तिष्कों में क्या परिवर्तन आ चुका था। हमने यह देख लिया है
कि किस प्रकार आकाश-निरीक्षक एवं गणक हेय दृष्टि से देखे जाने लगे ये और घन के लिए फिल्रिन-ज्योतिष कहने
वाले लोग अयोग्य ब्राह्मण ठहरा दिये गये थे। किन्तु ई० पू० ५वीं या छठी शताब्दी तक कुछ लोग ज्योतिषी को,
विशेषतः राजा के मामले में, बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे। गीतमधमंसूत्र (११११२-१३, १५-१६) में प्रतिपादित
है—'राजा को चाहिए कि वह ऐसे पुरोहित (प्रासाद-पुरोहित) की नियुक्ति करे जो विद्या, अच्छे कुल, वक्तृता,
सौन्दर्य, उपवयस्कता (न तो अधिक बूढ़ा और न कम अवस्था का), चरित्र से सम्पन्न हो और न्यायशील एवं
तपस्वी हो; ऐसे पुरोहित द्वारा निर्देशित धार्मिक कृत्य करने चाहिए; राजा को चाहिए कि वह दैवोत्पातिचन्तकों का
सम्मान करे, क्योंकि आचार्यों ने ऐसा कहा है कि देश-कल्याण उन पर आधारित है।' यह घारणा दृढतर होती
गयी और यहाँ तक कि स्मृतिकार याज्ञवल्क्य (१।३०७-३०८) ने ईसा की आरंभिक शताब्दियों में उद्घोषित किया

६. यत्कार्यं नक्षत्रे तद्देवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम् । करणमुहुर्तेष्विष तत् सिश्चिकरं वेबतासदृशम् ॥ वृहत्संहिता (९८।३) ।

है—'जो-जो ग्रह दुःस्य (दुष्ट या बुरे नक्षत्र से उपहत या प्रभावित) हों उनकी पूजा यत्न से की जानी चाहिए। बहुग ने ग्रहों को वर दिया है कि जब पूजित हो जाओ तब पूजक का कल्याण करो। राजा का उत्कर्ष एवं अपकर्ष ग्रहों पर आघारित है; अतः ग्रह पूज्यतम हैं।' निःसन्देह याज्ञ० (१।३४९,३५१) ने कहा है—'कर्मसिद्धि दैन एवं पौरुष पर अवलम्बित है, इन दोनों में दैन पूर्वजन्म में किया गया कर्म (इस जन्म में अभिन्यक्त) ही है। जिस प्रकार एक पहिए से रथ नहीं चलता है, उसी प्रकार बिना पौरुष के दैन की सिद्धि नहीं होती।'

दैव एवं पीरुष की तुलनात्मक महत्ता पर घर्मशास्त्र-ग्रन्थों में, विशेषतः महाभारत में, अधिक विवेचन है। तीन विचारघाराएँ भी हैं--(१) दैव सर्वशक्तिमान् है, (२) पौरुष सर्वोपरि है एवं (३) दोनों में मध्य का मार्ग प्रशस्त है (देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड ३)। बृहद्योगयात्रा का प्रथम अध्याय (२० रलोक) एवं योगयात्रा का प्रथम अध्याय (२२ क्लोक) दैव (भाग्य) एवं पुरुषकार (पौरुष) पर विवेचन उपस्थित करते हैं। इतना होने पर भी राजा से लेकर रंक तक सभी लोग ज्योतिष के पूर्ण प्रभाव में थे। आज भी बहुत-से पढ़े-लिखे लोग तक ज्योतिष के बड़े प्रभाव में हैं। वह ज्योतिष जो कुण्डलियों का निर्माण करता है और व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित है, होराशास्त्र या जातक के नाम से विख्यात है। वराहमिहिर के काल में विद्वान् लोग भी 'होरा' शब्द के उद्गम के विषय में अनिभन्न थे। बृहज्जातक (११३) में आया है-- 'कुछ लोगों के मत से 'होरा' अहोरात्र के पहले एवं अन्तिम अक्षर के निकाल देने से बना है। होराशास्त्र पूर्वजन्मों में किये गये अच्छे या बुरे फलों को भली-भाँति व्यक्त करता है।" यह द्रष्टव्य है कि बृहज्जातक दो बातों पर बल देता है--(१) यह होराशास्त्र को कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्तों से समन्वित करता है (कर्म को भोग से नष्ट करने के लिए पुनर्जन्म), (२) शास्त्र वताता है कि कुण्डली एक, नक्शा या योजना मात्र है जो पूर्व जन्म में किये गये कर्मों से उत्पन्न किसी व्यक्ति के जीवन के भविष्य की और निर्देश करती है। होराशास्त्र यहाँ यह नहीं कहता कि व्यक्ति की कृण्डली के ग्रह उसे यह या वह करने के लिए बाध्य करते हैं, प्रत्युत वह कहता है कि कुण्डली केवल यह बताती है कि व्यक्ति का भविष्य किन दिशाओं की ओर उन्मुख है। ये सिद्धान्त पश्चात्कालीन मध्यवर्ती लेखकों द्वारा भी दुहराये गये हैं। उदाहरणार्थ, रघुनन्दन ने अपने उद्वाहतत्त्व (पृ० १२५) में दीपिका के मत को स्वीकार किया है कि ग्रह केवल यह बताते हैं कि पूर्व जन्मों में पाप किये गये थे, ग्रह स्वयं बुरे प्रभाव नहीं डालते। उन्होंने मत्स्यपुराण का उद्धरण दिया है--पुराने जीवनों (पूर्व जन्मों) में किये गये पाप वर्तमान जीवन में रोगों, दुर्गतियों एवं प्रियजन-मृत्यु के रूप में प्रतिफल देते हैं। सम्भवतः एक तीसरा अन्तर्हित सिद्धान्त भी था, यथा नक्षत्र ऐसे मन्दिर हैं जिनमें देवता निवास करते हैं (नक्षत्राणि वै सर्वेषां देवानामायतनम्, श॰ त्रा॰ १४।३।२।१२; देवगृहा वै नक्षत्राणि। य एवं वेद गृह्येव भवति, र्तै० ब्रा० १।२।५।११)। और देखिए मत्स्य० (१२७।१४-१५)। वेबिलोन एवं असीरिया के लोगों ने अपने ज्योतिष को तीन घारणाओं पर निर्मर समझा था—यथा (१) नक्षत्र मन्दिर हैं, जिनमें देव रहते हैं; (२) नक्षत्र भविष्य के विषय में मनुष्य को देवों का मन्तव्य बताते हैं; (३) मानव-इतिहास मार्दुक की अध्यक्षता में स्वर्गिक

७. देवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिव्यंवस्थिता। तत्र देवमभिव्यक्तं पौरुषं पौवंदेहिकम्।। यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत्। एवं पुरुषकारेण विना देवं न सिध्यति।। याज्ञ० (१।३४९, ३५१)।

८. अत एव दीपिकायाम्—ये ग्रहा रिष्टिसूचकाः—इत्यनेन ग्रहाणां पूर्वसिद्धपापबोधकत्विमिति, न तु पाप-जनकत्वम् । तथा च मत्त्यपुराणम् । पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यींत्मस्तपोधनाः । रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च । तिष्टिधाताय वक्ष्याचि सदा कृत्याणकारकम् ॥ उद्वाहतत्त्व (पृ० १२५) ।

सभा में पूर्व-निश्चित किया जाता है। ये सिद्धान्त प्रथम को छोड़ कर वराहिमिहिर एवं उनके पश्चात् होने वाले लेखकों के सिद्धान्तों से भिन्न हैं। बेबिलोन एवं ग्रीस (यूनान) में कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त नहीं पाये जाते। अतः वहाँ के लोग परोक्ष रूप से अपने ज्योतिष द्वारा लोगों को उच्चाशय वाला नहीं बना सकते थे कि वे वर्तमान जीवन को सदाचारपूर्ण बना सकें। प्राचीन काल की अनैतिक एवं शिशुवत् दन्तकथाओं के रहते हुए भी ग्रह-सम्बन्धी भावना के प्रभाव एवं पूजा ने अधिकांश मस्तिष्कों को पकड़ रखा था और लोगों को वह अपेक्षाकृत बहुत अधिक बुद्धिवादी एवं विश्वसनीय जँचती थी।

कल्याणवर्मा की सारावली (२।२ एवं ४) ने इसका अनुसरण किया है और जोड़ा है कि लोगों को इस शास्त्र में 'जातक' नाम से जो ज्ञात है, वह 'होरा' नाम से विख्यात है, या 'होरा' शब्द (जो 'अहोरात्र' के आदि एवं अन्तिम अक्षर 'अ' एवं 'त्र' के विलोप से बना है) 'दैविविमर्शन' (नियित के विषय में विवेचन) का पर्यायवाची ही है। 'संस्कृत ज्योतिष में 'होरा' के दो अन्य अर्थ भी हैं; यथा लग्न (वह राशि या लक्षण जो किसी विशिष्ट क्षण में पूर्व क्षितिज में उदित होता रहता है) एवं राशि का अर्थ अंश (बृहज्जातक, १।९)। ज्योतिष एवं ज्योति-िषयों की महत्ता एवं उपयोगिता के विषय में अतिशय प्रशंसात्मक वचन कहे गये हैं। सारावली (२।५) में आया है—'धनार्जन में जातक (ज्योतिष) से बढ़कर कोई अन्य इतना बड़ा सहायक नहीं है, आपित्तयों के समुद्र में यह पोत के समान है तथा यात्रा या आक्रमण में यह मन्त्री के समान है।'' वराहमिहिर ने भी गर्व के साथ कहा है—'जो वन में रहते हैं (वानप्रस्य या मुनि हैं), सांसारिक विषय-भोगों से रहित हैं और विना सम्पत्ति के हैं, वे भी नक्षत्रों की गति के जानकार ज्योतिषी से प्रश्न पूछते हैं। बिना ज्योतिषी के राजा उसी प्रकार अन्ये के समान मार्ग में अवस्थित हैं, जैसे कि बिना दीप के रात्रि तथा विना सूर्य के नम है। यदि ज्योतिशास्त्रज्ञ एवं ज्योतिषी न हो तो शुभ मुहूर्त (काल), तिथि, नक्षत्र, ऋतुएँ एवं अयन (सूर्य की उत्तरायण एवं दक्षिणायन गतियाँ) आकुल हो उठें अर्थात् उनसे संभ्रम उत्पन्न हो जाय। जो कुछ एक देश-काल सर्वज्ञ सांवत्सर (ज्योतिषी) जानता है वह एक सहस्न हाथी या चार सहस्न अश्वारोही नहीं जान सकते या कर सकते' (बृहत्संहिता, २।७-९)। और देखिए कालविवेक (पृ० ४)।"

राजमार्तण्ड (श्लोक ४) में आया है—'पुरोहित, गणक (ज्योतिःशास्त्रज्ञ), मन्त्री एवं दैवज्ञ (ज्योतिषी, फिलितज्ञ)—ये सभी चाहे कितना भी कष्ट या आपत्ति हो, राजा द्वारा पोषित (रक्षित) होने चाहिए, जैसा कि स्त्रियों

के विषय में किया जाता है।"

९. आद्यन्तवर्णलोपाद्धोराशास्त्रं भवत्यहोरात्रम् (५।१ रात्रात्) ।...जातकिमिति प्रसिद्धं यल्लोके तिदह कीत्यंते होरा। अथवा दैवविमर्शनपर्यायः खल्ययं शब्दः॥ सारावली (२।२ एवं ४)।

१०. अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदर्णवपोतः। यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः।। सारावली (२।५)।

११. वनं समाधिता येपि निर्ममा निष्परिप्रहाः। अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ।। अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः। तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ।। मृहूर्ततिधिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा। सर्वाच्येवाकुलानि स्युनं स्यात्सावत्सरो यवि ।। बृह्संहिता (२।७-९)। न तत्सहम्नं करिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम्। करोति देशकालको यदेकी देवचिन्तकः।। बृ० सं० (२।२०)।

१२. पुरोघा गणको मन्त्री देवजञ्च चतुर्थकः। एते राज्ञा सदा पोष्याः कृच्छे णापि स्त्रियो यथा।। राजमार्तण्ड

(श्लोक ४)।

# वर्णकास्त्र का इतिहास

२७२

यह द्रष्टव्य है कि वराहिमिहर अधिकतर इस सिद्धान्त का त्याग करते हैं कि कुण्डली एक चित्र मात्र (नक्शा) है जो प्रमावों (परिणामों) को अभिव्यंजित करती है, प्रत्युत वे निश्चयात्मक भाषा में ग्रहों के विषय में उद्घोषित करते हैं कि वे स्थितियों के नियामक भी होते हैं। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। वृहज्जातक (५१६) में उन्होंने कहा है—'ऋषियों की घोषणा है कि वह व्यक्ति निश्चित रूप से पर पुरुष से उत्पन्न है, जिसकी कुण्डली में वृहस्पित की दृष्टि लग्न पर या चन्द्र पर या सूर्ययुक्त चन्द्र पर न हो या यदि चन्द्र सूर्य से युक्त हो और उसके साथ उद्ध (हानिकर) ग्रह (मंगल या शिन) हों।''' पुनः वृहज्जातक (६१११) में आया है—'प्रथम, पाँचवें, सातवें, आठवें, तबें या बारहवें घर में किसी हानिकर (दुष्ट या अशुभ) ग्रह से समन्वित चन्द्र से (नये उत्पन्न शिशु की) मृत्यु होती है, यदि वह शुक्र या बृह या बृहस्पित से युक्त न हो या वह इन तीनों शक्तिशाली ग्रहों में किसी एक की दृष्टि में न हो (तो भी वैसा होता है)।' पुनः बृहज्जातक (१४११) में आया है—'जब सूर्य किसी अन्य ग्रह से समन्वित हो तो वह निम्म फल उत्पन्न करता है—चन्द्र से समन्वित होने पर व्यक्ति लकड़ी की मधीन वनाने वाला या पत्थर से कार्य करने वाला होता है; मंगल से बुरे आचरणों वाला; बुध से कुशल, बुद्धिमान् प्रसिद्ध एवं प्रसन्न व्यक्ति; बृहस्पित से कूर या दूसरों के कार्य को करने की उत्कट इच्छा वाला; शुक्र से रंगमंच की जीविका करने वाला या आयुषजीवी; शनि से घातुविशेषज्ञ या विभिन्न प्रकार के बरतनों को बनाने वाला होता है।' सारावली (३३।४८-६१) ने बहुधा विभिन्न स्थितियों के फलों का उल्लेख किया है।

कुछ और कहने के पूर्व यह कह देना आवश्यक है कि ज्योतिष में अटल विश्वास करने वाला केवल भारत ही नहीं था। सिकन्दर के उपरान्त सम्पूर्ण यूरोप में भी ऐसी ही वात पायी जाती थी। यह हमने देख लिया है कि वेबिलोन के ज्योतिषी लोग राजा को सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहों की अवस्थितियाँ बताया करते थे (देखिए आर॰ कैम्पवेल टाम्सन कृत 'दी रिपोर्ट आव दी मैजिशीयनंस एण्ड ऐस्ट्रालाजर्स आव निनेवेह एण्ड वेबिलोन', जिल्द १ एवं २, संख्या ९, १५, १६, २१, ३२, ३३, ५२, ४३, ६३, ६६, ६७, ७२, ७४, ७६, ८६, १५१, १६४)। किन्तु कुण्डली-युक्त ज्योतिष का विकास वहाँ कालान्तर में हुआ। और देखिए 'ओल्ड टेस्टामेण्ट इजाइआह' (ई० पू० ७५९-७१०): ४७।१ एवं १५; डैनिएल (४।७, १।२० एवं २।२ तथा २७)। चाल्डियनों के अनुसार पाँच ग्रह विशेषतः मनुष्यों के भाग्यों को नियन्त्रित करते थे और इन ग्रहों से बेबिलोन के पाँच नगर समन्वित माने जाते थे। और देखिए बौचे लेक्लेर्क ('ल' ऐस्ट्रालाजी ग्रीक, पृ० ५७२)। हेरोडोटस (२।८२) ने मिस्र देशवासियों के विचित्र व्यवहारों की चर्चा की है, यथा—वे प्रत्येक मास एवं दिन को किसी देवता के लिए पित्र मानते थे। वे ऐसा समझते थे कि जन्म के दिन से व्यक्ति के भाग्य, चरित्र एवं मृत्यु सूचक देवतायुक्त दिन निश्चित कर दिये जाते हैं। किन्तु इससे कुण्डली-ज्योतिष (होराशासत्र) की ओर निर्देश नहीं मिल पाता। मिलियों को सिकन्दर-युग के पूर्व राशि-जान प्राप्त नहीं था। आरिम्सक यूनानी ज्योतिषाचार्यों को फलित ज्योतिष का ज्ञान नहीं था, उन्होंने सिकन्दर द्वारा बेबिलोन पर अधिकार कर लेने के उपरान्त वेबिलोनी लोगों से यह ज्ञान लिया, क्योंकि तभी बेबिलोन के ज्योतिषाचार्य यूनान पहुँचने लगे। इसके बाद ही यूनानी मस्तिष्क ज्योतिष से प्रभावित

१३. न लग्निमन्दुं च गुर्दानरोक्षते न वा शशांकं रविणा समागतम्। सपापकोऽर्केण युतोथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात्।। बृहज्जातक (५१६)। लघुजातक (४१४) में भी इसी के समान उक्ति है। सारावली में एक ऐसा ही क्लोक है 'पश्यित न गुरुः शिक्तं लग्नं च विवाकरं सेन्दुम्। पापयुतं वा सार्कं चन्द्रं यदि जारजातः स्यात्।।' यह बष्टब्य है कि उत्पल को बराहिमिहिर के सिद्धान्त एवं कथन का समर्थन करना आवश्यक लगा।

होने लगा। फलित ज्योतिष से परिचित होने से पूर्व यूनानी लोग भविष्यफल का ज्ञान आप्तवचनों, स्वप्न-व्याख्याओं, विल किये हुए पशुओं की अँतिहियों एवं यक्तत (कलेजे) के निरीक्षण, पक्षियों की उड़ान एवं प्रकारों (चिल्लाहटों), ग्रहणों, घूमकेतुओं एवं उल्कापातों से करते थे। बेबिलोन के देवता वेल के पुजारी बर्सोसस ने अपने आश्रयदाता एण्टिओक्स प्रथम सोटर (ई० पू० २८०-२६१) को वेबिलोन एवं चाल्डिया के इतिहास पर एक ग्रन्थ बनाकर दिया, उसी पुजारी को बेबिलोनी ज्योतिष (फलित) को युनान में प्रसारित करने तथा सर्वप्रथम एशिया माइनर के दक्षिण-पश्चिम कोण में स्थित कोस नामक स्थान की पाठशाला में उसे पढ़ाये जाने का यश प्राप्त हुआ था। युनान से रोम में फलित ज्योतिष लगभग ई० पू० दूसरी शताब्दी में पहुँचा। तभी से यूनान एवं रोम के घर-घर में राशियों की चर्चा होने लगी। पोसिडोनिअस-जैसे स्टोइकों ने इसका समर्थन किया। कैटो ने अपने कृषि-सम्बन्धी ग्रन्थ में चाल्डियनों के ज्योतिष-ज्ञान के विरुद्ध सावधान किया है और ई० पू० १३९ में एक आदेश निकला, जिससे चाल्डिया के लोग इटली से वाहर कर दिये गये। डायडोरस सिसलस (रोम के आगस्टस के समकालीन) ने कृण्डली बनाने की चाल्डिया-विधि एवं सिद्धान्त का वर्णन किया है। होरेस (मृत्यू ई० पू० ८) ने अपनी माइसेनस नामक कविता में लिबा (तुला), स्कापिअन (वृश्चिक) एवं कैपिकार्नेस (मकर) के विषय में तथा जोव (बृहस्पति) की रक्षादायिनी शक्ति एवं शनि के हानिकारक स्वरूप की ओर संकेत किया है। स्ट्रैंबो (मृत्यू सन् २४ ई०) ने दृढता के साथ कहा है कि चाल्डियावासी ज्योतिष एवं कुण्डली-निर्माण में दक्ष थे। पेट्रोनियस (प्रथम शती) ने अपने 'सैंटि-रिकन' नामक उपन्यास में रात्रि के प्रीति-भोज में, जो ४० पृष्ठों में वर्णित है, एक ऐसे याल का उल्लेख किया है जिसमें सभी राशियों के आकार रचे हुए थे और प्रत्येक के साथ विशिष्ट भोजन रखा हुआ था (देखिए विल ड्रा लिखित 'सीजर एण्ड काइस्ट', पृ० २९८)। जुवेनल (प्रथम शती के अन्त में) ने चाल्डिया के ज्योतिष में अधिक विश्वास रखने वाली नारियों की बड़ी भत्सना की है। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि रोम एवं मध्य यूरोप में ज्योतिष के विरोध में कूछ नहीं कहा गया। सिसरो ज्योतिष में विश्वास नहीं करता था और उसका कहना था कि ग्रह बहुत दूर स्थित हैं। सेण्ट आगस्टाइन (३५४-४३० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'सिटी आव गाड' में ज्योतिष को भ्रम माना है।

बेबिलोन एवं यूनान के ज्योतिष में बहुत-से भेद थे। बेबिलोनी ज्योतिष मूलतः राज्य एवं राजकुल से सम्बन्धित था, किन्तु यूनानी ज्योतिष व्यक्तियों से; बेबिलोनी ज्योतिष का सम्बन्ध पुरोहित-वृत्ति से था, किन्तु यूनान के ज्योतिविद् सामान्य जन थे। ज्योतिष आगे चलकर यूरोप में अन्तरराष्ट्रीय महत्ता रखने लगा और ज्योतिः शास्त्र (ऐस्ट्रानामी) के साथ मूल्यवान् विषय के रूप में विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाने लगा। इसका प्रचलन विशेषतया इसके वैज्ञानिक ढाँचे के कारण था, जो कि ग्रहों, कोष्ठकों, बारह राशियों आदि से अभिव्यक्त होता था। कोर्पानकस, गैलिलिओ एवं केप्लर स्वयं ज्योतिष का व्यवहार करते थे या इसके व्यवहार का विस्तार करते थे। बेकन यह कहने को तैयार था कि नक्षत्रों में कोई प्राणघाती अवश्यंभाविता (फेटल नेसेसिटी) नहीं है किन्तु वे दुःख देने या बलपूर्वक बाध्य करने की अपेक्षा अनुग्रहशील हैं। टाल्मी का 'टेट्राबिब्लोस' नामक ग्रन्थ लगभग १४०० वर्षों तक अपना प्रभुत्व जमाये हुए था और आज भी वह ज्योतिष में विश्वास करने वालों के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। यह एक मनीरंजक बात है कि महान् जर्मन किव, नाटककार एवं दार्शनिक गेटे (१७४९-१८३२) ने अपने जन्म के ग्रहों की दृष्टियों (स्वरूपों) का उल्लेख करते हुए अपने संस्मरणों का आरम्भ किया है।

गत दो शताब्दियों में ज्योतिःशास्त्र-ज्ञान में गम्भीर वृद्धियों के कारण तथा हेलिओसेण्ट्रिक (भूयंकेन्द्रक) सिद्धान्त के पक्ष में जिओसेण्ट्रिक (भूकेन्द्रक) सिद्धान्त के त्याग के कारण यूरोप में फलित ज्योतिष का प्रभाव कम पड़ गया। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पश्चिम या अमेरिका में यह विलुप्त हो गया है। दोनों महायुद्धों

## वर्मशास्त्र का इतिहास

२७४

के भयंकर प्रभावों एवं क्लेशों के कारण इसके प्रभाव के प्रसार को शक्तिशाली गित मिली है। लाखों की संख्या में छपने वाले समाचार-पत्रों में प्रति दिन एवं प्रति सप्ताह नक्षत्रों से सम्बन्धित भविष्यवाणियाँ निकलती हैं। किन्तु ये भविष्यवाणियाँ अधिकतर अस्पष्ट होती हैं। बारह राशियों में प्रत्येक में लाखों व्यक्ति होंगे, किसका क्या भाग्य है? ऐसा कहा जाता है कि केवल अमेरिका में २५००० रजिस्टर्ड ज्योतिषी हैं।

टॉल्मी ने फलित ज्योतिष के पक्ष में बहुत सी बातें कही हैं। उसने इस बात पर बल देकर कहा है कि नक्षत्रों के प्रभावों की जानकारी करने के पूर्व ज्योतिषी को यह जान लेना आवश्यक है कि व्यक्ति किस देश, समाज, राष्ट्रीयता, रहन-सहन, आचार-विचार एवं वातावरण का है, नहीं तो भविष्यवाणी करने में भयंकर बृदियां हो सकती हैं—इथियोपिया का निवासी गोरा एवं सीघे केशों वाला तथा जमंनी का निवासी काला एवं चूंघराले बालों वाला सिद्ध हो जायगा, आदि-आदि। लघुजातक (४।१) में उत्पल ने भी इसी प्रकार कहा है कि प्योतिषी को चाहिए कि) वह व्यक्ति की जाति के परिज्ञान के उपरान्त उसकी मूर्ति का निर्देश करे, क्योंकि श्वपाक (चाण्डाल) एवं निषाद काले होते हैं; उसे यह सोचना चाहिए कि (जिसकी कुण्डली की जाँच हो रही है) वह व्यक्ति किस कुल में, गोरे लोगों या काले लोगों के यहाँ, उत्पन्न हुआ, और किस देश में, क्योंकि कर्णाटक के लोग काले, विदेह के श्याम एवं कश्मीर के गोरे होते हैं। 'स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिषाचायों ने भी देशाचार एवं लोकाचारों के ज्ञान पर बल दिया है। राजमार्तण्ड (श्लोक ३९९-४०१) में आया है—'सर्वप्रथम लोकाचारों पर विचार करना चाहिए; कितपय शताब्दियों से जो स्थिर है, उस पर विचार करना चाहिए; पण्डित लोग बुरा लगने वाली (लोकडुष्ट) बात का त्याग करते हैं; अतः ज्योतिर्विद् को लोकमार्ग से चलना चाहिए। कुल एवं देश की चित्तवृत्ति का खण्डन नहीं करना चाहिए...।' विपत्तियों या घटनाओं से सम्बन्धित सामान्य ज्योतिर्विद्या, टाल्मी के अनुसार, शाखा या संहिता के अन्तर्गत (संकीर्ण दृष्टिकोण से) आती है।

मुहूर्त-सम्बन्धी साहित्य बड़ा विशाल है। काल पर लिखे गये सभी ग्रन्थ, यथा हेमाद्रि, कालमाधव, कालतत्त्वविचन, निर्णयसिन्धु आदि वास्तव में मुहूर्त पर ही हैं, क्योंकि वे संस्कारों एवं धार्मिक कृत्यों के उचित काल का विवेचन करते हैं। 'मुहूर्त' शब्द से युक्त ग्रन्थ ये हैं—मुहूर्तकल्पद्रुम (विट्ठल दीक्षित कृत, १६२८ ई०), महूर्तगणपित (गणपित रावल कृत, १६८५ ई०), अनन्तपुत्र राम द्वारा लिखित मुहूर्तचिन्तामणि (राम के बड़े भाई नीलकण्ठ के पुत्र गोविन्द की इस पर टीका 'पीयूषधारा' है, १६०४ ई०), केशवपुत्र गणेश कृत मुहूर्ततत्त्व, विद्यामधव कृत मुहूर्तदर्शन (इस पर उसके पुत्र विष्णु की टीका है मुहूर्तदीपक), नागदेव कृत मुहूर्तदीपक, देविगिर के निकट टायर ग्राम के निवासी अनन्त के पुत्र नारायण का मुहूर्तमार्तण्ड (१५७२ ई०) एवं रघुनाथ कृत मुहूर्तमाला तथा मुहूर्तमुक्तावली। इनमें केवल तीन ही मुद्रित हैं—मुहूर्तदर्शन, मुहूर्तचिन्तामणि तथा मुहूर्तमार्तण्ड, अन्य पाण्डुलिपियों में हैं (बाम्बे एशियाटिक सोसाइटी, लाइब्रेरी)। इस प्रकरण में श्रीपित (१०३९ ई०) द्वारा लिखित ज्योतिषमार्तण्ड, भोज रिचत राजमार्तण्ड तथा अन्य काल-सम्बन्धी ग्रन्थों का सहारा लिया गया है। मुहूर्तचिन्तामणि (४८० श्लोकों में), मुहूर्तदर्शन (६०० श्लोकों में टीका के साथ) विशाल ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों की सभी बातें देना सम्भव नहीं है। मुहूर्तमार्तण्ड (१६१ श्लोकों में) ने मध्यम मार्ग अपनाया है। इसके विषय संक्षेप

१४८ सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिशांशे यस्य भास्करस्तावृक् । बिलनः सदृशी मूर्तिर्बृद्घ्वा वा जातिकुलदेशान् ॥ जाति बृद्घ्वा मूर्तिनिर्देशः, यतः श्वपाकनिषादा जातित एव कृष्णा भवन्ति । . . . कर्णाटाः कृष्णा वैदेहाः श्यामाः काश्मीरा गौराः ।

में यों है—िकन ग्रहों की स्थितियाँ एवं दृष्टियाँ, कौन युग, तिथियाँ, नक्षत्र, मास एवं देह-मन की दशाएँ शुभ कमों में विजित हैं; संस्कारों (यथा गर्भाघान, पुंसवन, जातकमं, कर्णछेदन, चौल, उपनयन, वेदाघ्ययन-समाप्ति) के उचित काल; विवाह के विषय (यह लगभग पूरे ग्रन्थ के एक तिहाई भाग में है, ५५ श्लोक में); गृह्याग्नि को जलाने के काल; गृह-निर्माण एवं प्रवेश के काल; यात्रा या आक्रमण करने के काल; शुभाशुभ शकुन; राज्याभिषेक, मूल्यवान् वस्त्रों एवं आभूषणों का घारण, कृषि-कर्म, पशुओं का क्रय-विक्रय, तिल एवं तिष्यफला के साथ स्नान, लुप्त वस्तुओं को प्राप्त करने, कूप-पुष्कर खोदने के, अधिक या अल्प समय के लिए अनघ्याय के काल; शरीर पर खिपकली या गिरगिट गिर जाने के फल; जन्म की राशि से कौन ग्रह शुभ या अशुभ हैं तथा किस राशि में हैं; संक्रान्तियों का पुण्यकाल। यह द्रष्टव्य है कि इन कृत्यों में बहुत-से आज भी सम्पादित होते हैं, यद्यपि इनके सम्पादन में कमी होती जा रही है।

यह जान लेना चाहिए कि शकुनों के विषय में वराहिमिहिर ने सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि अन्य जन्मान्तरों में किये गये शुभाशुभ कर्मों का फल ही लोगों की यात्रा या आक्रमण के समय शकुनों द्वारा अभिव्यक्त होता है।<sup>६५</sup>

जहाँ एक ओर विवाह जैसे पिवत्र अवसरों पर बाल बनवाने, नवीन वस्त्र घारण करने के विषय में मुहूर्त निकाला जाता था, वहीं चौर्य कर्म के लिए भी मुहूर्तमुक्तावली में मुहूर्त निकालने की व्यवस्था है, यथा जब आश्लेषा, मृगशीर्ष, भरणी, स्वाती, घनिष्ठा, चित्रा, अनुराघा नक्षत्रों में, शनिवार या मंगलवार को यदि रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) में चोरी की जाती है तो वह सफल होती है। यह मुहूर्त निकालने के विषय में एक विचित्र उत्सुकता या पागलपन का परिचायक है।

यह आवश्यक है कि हम थोड़ा जातक के कुछ अंशों का परिज्ञान कर लें। जातक की सभी वातों का उल्लेख करने में एक स्वतन्त्र प्रत्य बन जायगा, अतः हम संक्षेप में मुख्य-मुख्य बातों की ओर संकेत करेंगे। नक्षत्रों, उनके देवताओं (स्वामियों) एवं उनकी श्रेणियों के अतिरिक्त हमें कुण्डली में राशियों, ग्रहों एवं मावों (घरों या स्थानों) का ज्ञान भी रखना होगा। इस विषय में हम वराह की वृहत्संहिता एवं वृहज्जातक, सारावली, श्रीपित की ज्योतिष-रत्नमाला, राजमार्तण्ड तथा गणेश के जातकालंकार (१६१३-१४ ई० में प्रणीत) ग्रन्थों पर निर्मर रहेंगे। २७ या २८ नक्षत्रों एवं उनके देवताओं का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। यह द्रष्टव्य है कि नक्षत्रों के देवता से अधिकतर नक्षत्र या तिथि का भी संकेत मिलता है। यहाँ पर सर्वप्रथम नक्षत्र-विभाजन का उल्लेख होगा। वृहदारण्यकोपनिषद् (६१३११) से प्रकट है कि नक्षत्र बहुत प्राचीन काल (लगमग ई० पू० १०००) में ही पुण्य एवं पाप (शुभ एवं अशुभ) तथा नारी एवं पुरुष (पुंस) के रूप में उल्लिखत हो चुके थे। वेदांगज्योतिष (याजुष, क्लोक ४२) ने नक्षत्रों को उग्र एवं कूर भागों में बाँटा है (उग्राण्याद्रां च चित्रा च विशाखा श्रवणोश्वयुक्। कूराणि तु मघा स्वाती ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्॥)। वृहत्संहिता (९७१६-११) में वे ध्रुव (या स्थिर), तीक्षण (या दारुण), उग्र (या कर्ए), स्वप्त (या लघु), मृदु (मैत्र), मृदुतीक्षण (या साघारण या मिश्र), चर (या चल) कहे गये हैं।

बृ० सं० (९७।६-११) में आया है कि ध्रुव नक्षत्रों में राज्याभिषेक, शान्ति कृत्य, वृक्षारोपण, नगर-स्थापन, कल्याण-कर्म, बीजारोपण एवं अन्य स्थिर कर्म किये जाने चाहिए; तीक्ष्ण नक्षत्रों में हानि करने में सफलता,

१५. अन्यजन्मान्तरकृतं पुंसां कर्मं शुभाशुभम् । यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥ बृहद्योगयात्रा (२३।१)।

मन्त्र-प्राप्ति, भूत जगाना, बन्दी बनाना, पीटना, सम्बन्ध तोड़ना आदि किये जाते हैं; उग्र नक्षत्रों का प्रथोग दूसके की सम्पत्ति को नष्ट करने, घोखा देने, बन्दी बनाने, विष देने, आगजनी करने, हथियार से मारने एवं मार बालने में होता है; क्षिप्र (लघु) नक्षत्र बिकी करने, प्रेम करने, ज्ञान प्राप्त करने, अलंकरण, कलाओं, शिल्पों (यथा बढ़ईगिरी), ओषधियों, यात्राओं के लिए घोषित हैं; मृदु नक्षत्र मित्र-प्राप्ति, काम-कृत्यों, वस्त्रों, आभूषणों, शुभ उत्सवों (विवाह आदि) एवं गाना गाने में लाभप्रद हैं; मृदु-तीक्ष्ण (या साधारण) नक्षत्र मिला-जुला फल (जब मृदु या भीषण कर्म किये जाते हैं) देते हैं; चल नक्षत्र अध्रव (अस्थिर) कर्म में लाभप्रद होते हैं। मृहूर्तमार्तण्ड में आया है कि विज्ञ जन सफलता के लिए नक्षत्रों के नामों एवं वलों के अनुसार कर्म करते हैं। यह द्रष्टव्य है कि ज्योतिषर्तनाला (३१९) एवं मृहूर्तचिन्तामणि (२१२-८) आदि ने रिववार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, बृहस्पितवार, शुकवार, शिनवार को कम से धुव, चल, उग्र, मिश्र, लघु, मृदु एवं तीक्ष्ण कहा है, और बतलाया है कि इन दलों के तुल्य जो कर्म हैं उन्हें कम से उन्हीं सप्ताह-दिनों में करना चाहिए (संज्ञातुल्यिमहाचरिन्त सुधियों कार्यं हि संसिद्धये। मृ० मा० २१३)।

बु॰ जा॰ (अंच्याय १६।१-२) ने अश्विनी से लेकर आंगे के २७ नक्षत्रों में उत्पन्न लोगों की विशेषताओं पर १४ श्लोक लिखे हैं, यहाँ हम उदाहरण के लिए दो श्लोकों का अनुवाद दे रहे हैं-- अश्विनी में उत्पन्न व्यक्ति आभूषणों का प्रेमी, होता है, सुन्दर होता है, सुभग (दर्शनीय स्वरूप वाला या मोहक) होता है, (प्रत्येक बात में) दक्ष होता है एवं मितमान् (बुद्धिमान्) होता है; भरणी में उत्पन्न व्यक्ति कृतनिश्चयी, सत्यवादी, रोगरहित, दक्ष, चिन्तामुक्त (मुखी) होता है; कृत्तिका में उत्पन्न व्यक्ति बहुभुक्त (पेटू अर्थात् अधिक खाने वाला, परदारप्रेमी, अर्घेयंनान्, तेजस्वी, एवं प्रसिद्ध होता है; रोहिणी में उत्पन्न व्यक्ति सत्यवादी, पवित्र, प्रिय बोलने वाला (प्रियंवद), स्थिरमित एवं सुरूप होता है।' राजमार्तण्ड (क्लोक १६-४०) ने २७ नक्षत्रों के पर्याय दिये हैं, जिनके साथ नक्षत्रों के स्वामियों के नाम और नक्षत्रस्वामियों के पर्याय भी सम्मिलित हैं। ज्योतिषरत्नमाला, मुजबल एवं मुहुर्तचिन्तामणि (२।२२-२३) ने अभिजित् के साथ २८ नक्षत्रों को चार-चार के सात दलों में बाँटा है, जो ये हैं -- अन्धाक्ष, मन्दाक्ष, मध्याक्ष एवं स्वका। उन्होंने यह भी कहा है कि अन्धाक्ष में चुरायी गयी सम्पत्ति शीघ्र ही फिर पायी जा सकती है, मन्दाक्ष में चुरायी हुई प्रयत्न से, मध्याक्ष में चुरायी गयी नहीं प्राप्त होती किन्तु स्वामी को पता चलेगा कि वह चोर द्वारा ले जायी गयी है; स्वक्ष या मुलोचन में चुरायी गयी न तो मिलेगी और न उसके विषय में कुछ पता चलेगा। और देखिए वृ० सं० (अध्याय १४ एवं १५।१-२७), जिसका एक श्लोक यों है—'कृत्तिका में श्वेत पुष्प होते हैं, आहिताग्नि (जो पिवत्र अग्नियाँ जलाते हैं), मन्त्रज्ञ (वेद मन्त्रों का ज्ञाता), सूत्रों एवं माष्यों का ज्ञाता, आकरिक (खानों या माण्डारों के अधिकारी-गण), नापित (नाई), ब्राह्मण, पुरोहित, घटकार एवं अब्दज्ञ (ज्योतिषाचार्य) उत्पन्न होते हैं।"

१६. त्रियभूषणः सुरूपः सुभगो दक्षोविवनीषु मितमाञ्च । कृतिनिश्चयसत्यारुग्दक्षः सुिलतश्च भरणीषु ।। बहुभुक्परवाररतस्ते जस्बी कृत्तिकासु विख्यातः । रोहिष्यां सत्यशुचिः त्रियंवदः स्थिरमितः सुरूपश्च ।। बृहज्जातक (१६।१-२) । और देखिए बृ० सं० (अञ्याय १०१) ।

१७. आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः । आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्द्रज्ञाः ।। बृ० संहिता (१५।१) ।

बु॰ सं॰ (१०४।१-५) ने घोषित किया हैं कि कौन-कौन-से नक्षत्र (२७ में) उस काल के बंग हैं जिसे पुष्च कहा जाता है। यह प्राचीन चारणा का विस्तार मात्र है। तै॰ बा॰ (१।५।२-७) में आया है—'प्रजापित का हाथ हस्त नक्षत्र, उनका सिर चित्रा, उनका हृदय निष्ट्या (स्वाती), उनकी दोनों जाँघें विशासा के दो तारे और उनकी प्रतिष्ठा (आश्रय या स्थिरता) अनुराघा है। वास्तव में प्रजापित नक्षत्रों के दखों के रूप में हैं।'

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि राशि-ज्योतिष के अतिरिक्त नक्षत्र-ज्योतिष का विकास आरत में पूर्ण खपेण पूर्व काल में ही हो चुका था और टाल्मी महोदय केवल राशियों तक ही सीमित थे, उनका नक्षत्रों से सम्बन्ध नहीं के बरावर था।

१२ राशियाँ एक चक्र में पायी जाती हैं; प्रत्येक राशि २ रैं नक्षत्रों तक विस्तृत होती है, यथा मेष का विस्तार अस्विनी, भरणी एवं कृत्तिका के एक चौथाई भाग तक होता है, वृषम का विस्तार कृत्तिका के ३ भाग, पूरे रोहिणी एवं मृगशीष के आघे तक रहता है, आदि-आदि। मेप से लेकर आगे की सभी १२ राशियाँ कालपुरूच के निम्न अंगों से सायुज्य स्थापित करती वतायी गयी हैं—सिर (मेष), मुख (वृषम), छाती (वक्षस्थस्त), हृदय, आमाशय, मेखला (कमर), पेट (नाभि एवं गुप्तांगों के मध्य का माग), गुप्तांग, दोनों जाँघ, दोनों घुटने, दोनों पिडली, दोनों पाँव। वराह ने जोड़ा है कि 'राशि', 'क्षेत्र', 'गृह', 'ऋक्ष', 'भ' एवं 'भवन' जातक में पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं। काल के अंगों से राशियों का सायुज्य ज्योतिष-ग्रन्थों में इसलिए किया गया है कि यदि किसी व्यक्ति की कुण्डली में कोई दुष्ट ग्रह किसी राशि में रहता है तो व्यक्ति जसी शरीरांग से पीड़ित होता है जो कालपुरूष के किसी अंग की राशि से सम्बन्धित रहता है, किन्तु यदि जन्म के समय कोई शुभ ग्रह किसी राशि में रहता है तो व्यक्ति उससे सम्बन्धित अंग का श्रेय प्राप्त करता है। नीचे हम बारह राशियों के संस्कृत नाम अंग्रेजी एवं लैटिन नामों एवं पर्यायवाचियों के साथ दे रहे हैं।

संस्कृत	पर्याय •	अंग्रेजी	लैटिन
मेष	अज, छाग, क्रिय	रैम (Ram)	प्रीस (Arics)
वृषभ	उक्षा, वृष, गो, गोपति, ताउरी या (तवुरू)	बुल (Bull)	टौरस (Taurus)
मिथुन	युग्म, नृयुग, जितुम, जुतुम या जित्म	ट्वंस (Twins)	जेमिनि (Gemini)
कर्क	क्कीं, क्कंट, कुलीर	क्रैब (Crab)	कैंसर (Cancer)
सिह	हरि, मृगेन्द्र, लेय	ल्वायन (Lion)	लियो (Leo)
कन्या	अंगना, युवति, कुमारी, प्राथीन (प्राथेन)	वर्जिन (Virgin)	विगों (Virgo)
तुला	तौलि, घट, वणिज्, तुलाघर, जूक	बैलेंस स्केल (Balance Scale)	লিয়া (Libra)
वृश्चिक		स्कापियन (Scorpion)	स्कापियो (Scorpio)
घनु	चाप, घन्वी, ह्यांग, तौक्षिक (तौक्ष)	आर्चर (Archer)	सैगिट्टरियस (Sagittarius)
मकर	मृगास्य, मृग, आकोकेर	गोट (Goat)	कैप्रिकार्नस (Capricornus)
कुम्भ	घट, कुम्भघर, हृद्रोग	वाटर कैरियर(Water carier)	एक्वारिअस (Acquarius)
मीन	मत्स्य, झष, अनिमिष, इत्य या (चेत्य?)	দিহাল (Fishes)	पिस्केस (Piscus)

### वर्मशास्त्र का इतिहास

305

यह द्रष्टिव्य है कि पर्यायों की सूची और भी लम्बी हैं। उसी अर्थ के अन्य शब्द भी दिये जाते रहे हैं। सिंह के लिए मृगराज, मीन के लिए पृथुरोमा प्रयुक्त हो सकता है। वेबर आदि ने यह बताया है कि उपर्युक्त तालिका में जो रेखांकित शब्द हैं वे या तो यूनानी शब्द हैं या यूनानी शब्दों के रूपान्तरित संस्कृत शब्द हैं। यह ठीक कहा जा सकता है कि इन नामों में बहुत-से यूनानी राशियों के नामों से मिलते हैं। 'पायोन' यूनानी 'पायेन' होना चाहिए। कोई कारण नहीं दीखता कि 'कुलीर' को यूनानी शब्द माना जाये। कर्न ने इसे शुद्ध संस्कृत शब्द माना है। टाल्मी में कुलीर के तुल्य कोई शब्द नहीं है। 'कर्क' या 'कर्की' शब्द अयवंवेद (४१३८१६-७) में आया है और इसका अर्थ संभवतः 'श्वेत' है। वृहज्जातक (११८) के कथन का यही तात्पर्य है कि बारह राशियों के अन्य नाम मी हैं। वराहमिहिर ने अधिकतर यवन-मतों का उल्लेख किया है और अपना अन्तर्विरोध भी प्रकट किया है। प्रस्तुत लेखक ने 'यवनेश्वर एवं उत्पल' नामक लेख (जर्नल आव वाम्बे एशियाटिक सोसायटी, जिल्द २०, पृ० १-८) में दर्शाया है कि स्फुजिष्वज नामक राजा द्वारा लिखित लगभग ४००० रलोकों में 'यवनजातक' नामक एवं मीनराज द्वारा, जो अपने को यवनाधिपति कहता है, कई सहस्र रलोकों में लिखित 'वृद्धयवनजातक' नामक ज्योतिष ग्रन्थ पाये बाते हैं। प्रो० सेन-गुप्त की यह घारणा कि ऋ० (११५१११) जैसी ऋचाओं में उल्लिखित मेष एवं वृषभ शब्द राशियों की ओर निर्देश करते हैं (अभि त्यं मेषम्...) ठीक नहीं जैवती, क्योंकि स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है कि ऋग्वेद में अन्य शेष दस राशियों के नाम नहीं आते (ऐश्वेण्ट इण्डिएन कोनोलाजी, पृ० ९९)।

वृहज्जातक (१।५) द्वारा संक्षेप में वर्णित एवं उत्पल द्वारा व्याख्यायित राशियों का आकार इस प्रकार हैं—"मीन (पिस्केस) दो मछलियों (एक दूसरे की पूँछ के सम्मुख) के रूप में; कुम्भ एक पुरुष के समान, जो अपने कंघे पर खाली घड़ा लिये है; मिथुन एक पुरुष के रूप में जो हाथ में गदा एवं वीणा लिये एक नारी के साथ है; घनु उस पुरुष के समान व्यक्त है जिसके हाथ में घनुष है और जिसके पैर घोड़े के पैर के समान हैं; मकर का रूप घड़ियाल के सदृश है जिसका मुख मृग का है; तुला पुरुष के समान है जिसके हाथ में तुला (तराजू) है; कन्या नौका में स्थित कन्या के समान है, जिसके एक हाथ में अनाज की बाली एवं दूसरे में अग्नि हैं; शेष राशियाँ अपने नामों के अनुरूप अभिव्यक्त की गयी हैं। बहुत-सी राशियों के प्रभाव में आने वाले पदार्थों की चर्चा उत्पल (बृ॰ सं॰ ४०, की व्याख्या में) ने काश्यप का उद्धरण देकर की है, उदाहरणार्थ वस्त्रों, ऊन, वकरी (या भेड़) के बाल से बने वस्त्रों, मसूर-दाल, गेहूँ (गोघूम), अरालक (राल), जौ (यव), सोना एवं सूखी भूमि पर उगने वाले पौवों का स्वामी मेप है। और देखिए वामनपुराण (५।४९-५१)। वराह के वर्णन से पता चलता है कि मेष, वृषम, कर्कट, सिंह, वृश्चिक, मकर एवं मीन पशुओं (चौपायों या कीट-पतंगों) की आकृतियाँ हैं और शेष पाँच, प्रत्येक में विशिष्ट बातों के साथ, मानव आकृतियों द्वारा द्योतित हैं। ये राशि-नाम कम-या-अधिक वही अर्थ रखते हैं जो बेबिलोन, यूनान, भारत एवं अन्य यूरोपीय देशों में प्रयुक्त होते हैं। किन्तु उनकी पशु और मानव आकृतियों में सभी देशों में सादृश्य नहीं है। चीन में बारह राशियाँ यों हैं--चूहा, बैल, व्याघ्र, खरगोश, नाग (अग्नि फेंकता साँप), सर्प, अश्व, भेड़, बन्दर, मुर्गी, कुत्ता एवं सूअर। राशियों की संज्ञाओं का उद्गम अज्ञात है। मेष, वृषभ आदि नाम पूर्ण रूपेण कल्पनात्मक हैं; रानियाँ सुदूर स्थित हैं; एक-दूसरे से बहुत दूर हैं; दूर से विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होने से वृश्चिक, सिंह आदि रूपों में प्रतीत स्वगत-प्रतिच्छाया मात्र

१८. यत्स्यौ घटी नृमियुनं सगदं सवीणं चापी नरोऽञ्चजघनो मकरो मृगास्यः। तौलो ससस्यवहना प्लवगा च कन्या शेवाः स्वनामसदृशाः सचराञ्च सर्वे ॥ वृ० जा० (१।५)।

हैं (किसी को कुछ दिखाई पड़ता है किसी को कुछ)। एक ही प्रकार के नक्षत्रों को विभिन्न नाम दे दिये गये हैं। मिस्र के घामिक ज्योतिःशास्त्र में बारह राशियों का अभाव है, मिस्रियों को सिकन्दर-युग के पूर्व राशि-ज्ञान नहीं प्राप्त था, इस तरह बहुत थोड़ी सी राशियाँ रोम-काल से प्राचीन ठहरती हैं। असीरिया के लोगों ने ज्योतिष-ज्ञान यूफ़ोट (दजला-फरात) की घाटियों में विकसित किया था, अतः अधिक विद्वान् राशि-ज्ञान का उद्गम वेबिलोन में मानने को सन्नद्ध हैं। किन्तु वेब महोदय ऐसा नहीं मानते, वे वेबिलोन को इसका श्रेय न देकर यूनान को ही सभी ज्ञानों का मूल मानते हैं, वे कहते हैं कि यह ज्ञान क्लीयोस्ट्रेटस का दिया हुआ है, जो प्लिनी (या लिनी) के अनुसार ई० पू० ५२० का है। किन्तु वेब महोदय का मत ठीक नहीं है, हम वेबिलोन को ही राशि-ज्ञान का श्रेय देने को सन्नद्ध हैं। सब से अन्त में लिखे गये ग्रन्थ 'हिस्ट्री आव साइंस (१९५३ ई०) में लेखक श्री साटंन ने दर्शाया है कि वेबिलोन के लोगों ने क्लीओस्ट्रेटस से सहस्र वर्ष पूर्व ही राशि-ज्ञान प्राप्त कर लिया था, क्लीओस्ट्रेटस ने तो केवल राशियों को बराबर विस्तारों में आगे चलकर बाँटा था। यह प्रकट होता है कि मिस्र, मेसोपोटामिया एवं यूनान तीन देशों में मेसोपोटामिया को ही यह श्रेय मिलना चाहिए, जहाँ राशि-ज्ञान का सर्वप्रथम उदय हुआ। मारत के विषय में हम आगे लिखेंगे।

राशि-विभाजन-विभिन्न ढंग

राशिनाम	दिशा के स्वामी	पुरुष या स्त्री	चर या स्थिर	दिनबली या निशाबली	सौम्य या कूर	पृष्ठोदय या शीर्षोदय
मेष वृषम मिथुन कर्क सिह कन्या तुला वृश्चिक घन मकर कुम्भ	पूर्वं दक्षिण पश्चिम उत्तर पूर्वं दक्षिण पश्चिम उत्तर पूर्वं दक्षिण पश्चिम उत्तर	पुरुष स्त्री पु॰ स्त्री पु॰ स्त्री पु॰ स्त्री पु॰ स्त्री	चर स्थिर द्विस्वभाव चर स्थिर द्विस्वभाव चर स्थिर द्विस्वभाव चर स्थिर द्विस्वभाव चर स्थिर	नि । नि । नि । दि ।	कूर सौम्य कूर सौम्य कूर सौम्य कूर सौम्य कूर सौम्य कूर सौम्य	पृ० पृ० पृ० शी० पृ० शी० शी० शी० शी० पृ० पृ० पृ० पृ० दोनों (उभयोदय)

बृहज्जातक (१।१०-११) ने थोड़े में उपर्युक्त बातों पर प्रकाश डाला है और उत्पल ने पारिमाधिक विषयों की व्याख्या की है। शीर्षोदय राशि में की गयी रण-यात्रा से वांछित फल मिलते हैं, किन्तु पृष्ठोदय राशि में ऐसा करने से हार होती है और अपनी सेना का संहार होता है। जो लोग कूर राशि में उत्पन्न होते हैं वे कूर स्वभाव के तथा सौम्य राशि वाले मृदु स्वभाव के और पुरुष राशि में उत्पन्न लोग साहसी एवं स्त्री राशि वाले मृदु स्वभाव के

होते हैं। चर राशि वाले अस्थिर तथा स्थिर राशि वाले स्थिर स्वमाव के और दिस्वमाव वाले मिश्रित स्वमाव के होते हैं। किसी राशि के स्वामित्व की दिशा के ज्ञान से चोरी गयी हुई वस्तु की दिशा का पता चलता है या चोरी करने वाला व्यक्ति पकड़ा जायगा या हुत वस्तु मिलेगी, आदि का ज्ञान होता है। टाल्मी एवं बृहज्जातक की बातों में कहीं साम्य है तो कहीं असाम्य। बृहज्जातक (१।२०) एवं लघुजातक (१।६) ने रंगों में भी मेष आदि राशियों को बांटा है—'लाल, श्वेत, हरा (तोते का रंग), पाटल रंग (पिक या गहरा लाल), घूम के समान श्वेत, चितकवरा (चित्रविचित्र), काला, सुनहला, पीला, नानाविध रंग, गहरा भूरा (नेवले का रंग), श्वेत। टाल्मी में यह सब नहीं पाया जाता। राशियाँ चार मागों में विमक्त हैं—मानव (मिथुन, कन्या, तुला, घनु का अग्र रूप एवं कुम्म), चौपाया या चतुष्पद (मेष, वृष, सिंह, धनु का अन्तिम भाग, मकर का अग्रिम भाग), जलीय (कर्कट, मीन, मकर का अन्तिम भाग) एवं कीट (वृश्चिक)। देखिए टेट्राबिब्लोस, ४।४, पृ० ३८९ एवं ३९१, जहाँ पर यह वर्णन कुछ अन्तर से प्राप्त है।

वृहज्जातक (१७।१-१२) में उन व्यक्तियों के गुणों का वर्णन है जो चन्द्र युक्त मेष तथा आगे की राशियों में उत्पन्न होते हैं और अन्त में (१३वें क्लोक में) जो फल घोषित हैं वे तभी सत्य उतर सकते हैं जब कि चन्द्र, उसकी राशिएवं राशि-स्वामी प्रबल होते हैं। बृ० जा० (१।१९) में ऐसा आया है कि द्विपद राशियाँ (मिथुन, कन्या, तुला, कुम्म एवं वनु का अप भाग) यदि केन्द्र में हों तो दिन में प्रबल होती हैं; चतुष्पद राशियाँ (मेष वृष, सिंह, मकर का अप भाग एवं घनु का अन्तिम भाग) केन्द्र में रहने से रात्रि में प्रबल होती हैं; शेष अर्थात् जलीय राशियाँ एवं कीट राशियाँ (कुलीर, वृश्चिक, मीन एवं मक़र का अन्तिम भाग) केन्द्र स्थान में सन्ध्या समय शक्तिशाली होती हैं। बृ० जा० (१८।२०) में आया है कि वही (१७ वें अध्याय वाला, उपर्युक्त) फल तब भी प्राप्त होता है जब कि व्यक्ति के जन्म का लग्न मेष या कोई अन्य राशि हो।

अब हम ग्रहों के राशियों से सम्बन्धों एवं उनके संयुक्त प्रभावों के उल्लेख पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। हमने देख लिया है कि वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मणों में वृहस्पित को छोड़कर अन्य सभी ग्रहों के स्पष्ट उल्लेख का सर्वथा अभाव है, कुछ वैदिक सूक्तों में पाँच ग्रह एवं शुक्र (वेन), लगता है, सांकेतिक रूप से आये हैं। असुर के पुत्र स्वर्भानु को अन्धकार द्वारा सूर्य को ढँकते हुए विंगत किया गया है, अर्थात् ऐसा वर्णन है कि स्वर्भानु ने सूर्य को अन्धकार से क्रक लिया (ग्रहण उत्पन्न कर दिया, देखिए ऋ० ५।४०।५, ६, ८ एवं ९)। छान्दोग्योपनिषद् (८।१३) में आया है कि सत्य ज्ञान से पूर्ण आत्मा सभी पापों से मुक्त होने पर शरीर को उसी प्रकार छोड़ देता है जिस प्रकार अश्व अपने शरीर की घूल को केशों द्वारा झाड़ देता है या चन्द्र राहु से मुक्त हो जाता है। "मैत्रायणी उप० में शनि, राहु (कर्घ्वगामी पिण्ड) एवं केतु (अधोगामी पिण्ड) का उल्लेख है। "किन्तु वैदिक साहित्य में ग्रहों के ज्योतिष-प्रभावों (फल्ति) का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत में ग्रहों के दुष्ट प्रभावों की ओर बहुधा संकेत मिलते हैं, किन्तु वे नक्षत्रों तक ही सीमित हैं। राहु एवं केतु आकाश में विश्व-क्षय के लिए उदित होते हुए दिशत हैं। "कौटिल्य (अर्थशास्त्र २, अध्याय २४, पृ० ११६) ने बृहस्पित के स्थान, गमन एवं मेधीय गर्भाधान से,

१९. अश्व इव रोमाणि विव्य पापं चन्द्र इव राहोर्मुंखात्प्रमुच्य घूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमिन-सम्भवामि। छा० उप० (८।१३)।

२०. शनिराहुकेतूरगरक्षोयक्षनरिवहुगशरभेभादयोऽघस्ताबुद्यन्ति । मैत्रायणी उ० (७।६)।

२१. राष्ट्रकेतु यथाकांसे उविती जगतः क्षये। कर्णपर्व (८७।९२)।

शुक्र के उदय, अस्त एवं गमन तथा सूर्य के प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक प्रभाव से वर्षा के पूर्व ज्ञान, सूर्य से बीज-सिद्धि, बृहस्पित से अनाज की पर्याप्त पुष्टि एवं शुक्र से वर्षा होने का विचित्र उल्लेख किया है। यह द्रष्टव्य है कि भारत में सामान्य ज्योतिष (व्यक्तिगत या कुण्डली वाला नहीं) का प्रचलन, मेसोपोटामिया में राजपुरोहितों द्वारा दिये गये प्रतिवेदनों के समान, ईसा की कई शताब्दियों पूर्व से था। बृहज्जातक (२।२-३) ने सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुघ, बृहस्पित, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु नामक ग्रहों एवं उनके पर्यायों का उल्लेख किया है।

बेविलोनवासियों द्वारा ग्रह-निरीक्षण ई० पू० दूसरी सहस्राब्दी में िकया गया था। सर्वप्रथम शुक्र का अघ्ययन हुआ। शुक्र-निरीक्षण से उत्पन्न तालिकाएँ ई० पू० १९२१-१९०१ में बनीं। बृहस्पित एवं मंगल का भी निरीक्षण हुआ। बृहस्पित को स्वाभाविक रूप से अच्छा मान लिया गया, जब िक वह चमकदार हो या चन्द्र का अनुसरण करे। किन्तु मंगल अभाग्य का ग्रह था, किन्तु यदि वह दुर्बल हो या अस्त हो गया हो तो बुरे प्रभाव भी नष्ट हो जाते थे। शिन (अटल रूप से खड़ा रहने वाला) भाग्य का ग्रह कहा गया। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के काल में उत्पन्न व्यक्तियों के फल कहे गये। बेविलोनिया में ग्रहों को विभिन्न नाम भी मिले। विभिन्न कालों में ग्रहों के कम विभिन्न थे। ग्रह का वाचक अंग्रेजी शब्द 'प्लैनेट' यूनानी है, जिसका अर्थ है घूमने वाला। ग्रह तारों की तुलना में स्थान-परिवर्तन करते रहते हैं और विभिन्न कालों में विभिन्न स्थानों में रहते हैं। वर्तमान काल में तीन अन्य ग्रहों का ज्ञान हुआ है, गूरेनस (Uranus), नेप्चून (Neptune) एवं प्लूटो (pluto) जिनका पता कम से १७८१ ई०, १८४६ एवं १९३० ई० में चला।

बृहज्जातक (२।२-३), सारावली (४।१०-११) एवं राजमार्तण्ड (क्लोक ८-१५) ने सूर्य, चन्द्र एवं अन्य सात ग्रहों के विभिन्न नामों का उल्लेख किया है, यथा—

१. सूर्यं : रिव, भानु, इन, आदित्य, सिवता, भास्कर, अर्क, दिवाकर, तिग्मांशु, तपन, सहस्रांशु, प्रभाकर, उष्णकर, उष्णकर, प्रथमगु, मार्तण्ड, दिनमणि, दिनकर्ता, हेलि।

२. चन्द्र : विघु, इन्दु, चन्द्रमा, शीतांशु, सोम, मृगाङ्क, निशाकर, शीतरिम, निशानाथ, रोहिणीप्रिय, शशी, शीतगु, नक्षत्रपति।

३. मंगल : अंगारक, कुज, भौम, भूमिज, महीसुत, आवनेय, लोहितांग, क्षितिसुत, कूराक्ष, माहेय, रुघिर, वक्र, आर।

४. बुध: ज्ञ, विद्, बोधन, विबुध, कुमार, राजपुत्र, सौम्य, चन्द्रसुत, तारापुत्र, रौहिण्य, हिमरश्मिज, (हिम्न या हिम्ना)।

५. बृहस्पति : गुरु, इज्य, ईड्य, अंगिरा, सुरगुरु, सुरमन्त्री, सुराचार्य, वाक्पति, गिरीश, घिषण, सूरि, जीव।

६. शुक्र : भृगु,भृगुसुत, सित, भागंव, कवि, उशना, दैत्यमन्त्री, दानवपूजित, असुरगुरु, काव्य, आस्फुजित्।

७. श्रानैश्चर : सौरि, सूर्यपुत्र, मन्द, असित, अर्कनन्दन, आर्कि, भास्करि, दिनेशात्मज, सहस्रांशुज, पातंगि, यम, शनि, छायापुत्र, कोण।

८. राहु: तम, अगु, असुर, स्वर्भानु, सिंहिकासुत, दानव, सुरारि, मुजंगम, विधुन्तुद, अमृतचौर, उपप्लव।

९. केतु : शिखी, ब्रह्मसूत, घूम्रवर्ण।

उपर्युक्त नामों में रेखांकित नाम, कुछ पाश्चात्य लेखकों के मत से, यूनानी नाम हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है। कोई यूनानी नाम चन्द्र के लिए नहीं है। जीव शब्द वेद में आया है। ऋ० (१।१६४।३०, १०।१८।३७) में इसका अर्थ है प्राणी, एक व्यंक्ति। देखिए छा० उप० (६।३।२)। जब वृहस्पित सभी ग्रहों में श्रेष्ठ गिना जाने लगा और

ज्ञान एवं सुख का मूल बन गया (जीवो ज्ञान-सुखम्, बृ॰ जा॰, २।१) तो वह प्राणियों का जीवन अर्थात् जीव कहा जाने लगा। 'बृहस्पतिनृंषां जीवः' अर्थात् बृहस्पति मनुष्यों का जीव है (सारावली, १०।११६)। भुजबल में आया है— उसका अन्य ग्रह क्या बिगाड़ेंगे जिसकी कुण्डली में बृहस्पति केन्द्र स्थान में हो। हाथियों का झुण्ड एक सिंह द्वारा मारा जाता है।'रर

हम नीचे ग्रहों की विशेषताओं, यथा रंगों, स्वामियों, दिशाओं, तत्त्व, वेद, वणों, प्रभावों आदि की

एक तालिका उपस्थित करते हैं।

प्रह	रंग	स्वामी	दिशा	तत्त्व	बेद	वर्ण(जाति)	शुभ या अशुभ
सूर्य चन्द्र मंगल बुध बृहस्पति शुक्र	लाल श्वेत अति लाल हरा पीला विचित्र	अग्नि जल कार्तिकेय विष्णु इन्द्र इन्द्राणी	पूर्व उत्तर-पश्चिम दक्षिण उत्तर उत्तर-पूर्व दक्षिण-पूर्व	अग्नि पृथिवी आकाश जल	सामवेद अथवंवेद ऋग्वेद यजुर्वेद	क्षत्रिय वैश्य क्षत्रिय शूद्र बाह्मण बाह्मण	हानिकर क्षीण चन्द्र हानिकर हानिकर हानिकर ग्रहों से युक्त होने पर हानिकर सुभकर
शनि राहु	(चितकबरा) काला	प्रजापति	पश्चिम दक्षिण-पश्चिम	वायु		चाण्डाल	अशुभकर

योगयात्रा (६।१) में आठ दिशाओं के देवताओं एवं उनके ग्रहों में अन्तर प्रदर्शित किया गया है। इन्द्र, अग्नि, यम, निऋंति, वरुण, वायु, कुबेर एवं शिव कम से पूर्व, पूर्व-दक्षिण, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, पश्चिम, उत्तर एवं उत्तर-पूर्व नामक आठ दिशाओं के देवता या स्वामी हैं। यही बात ग्रहों के विषय में भी है।

इस प्रकार के विभाजन का उपयोग भी बताया गया है—ग्रहों के रंगों से चोरी गयी या खोयी हुई वस्तु का रंग एवं ग्रहों की पूजा के निमित्त फूलों की ओर संकेत मिलता है। ग्रह-पूजा में ग्रहों के साथ ग्रह-स्वामियों की पूजा भी होती है। ग्रहों की दिशाओं से राजा की रण-यात्रा की दिशा का ज्ञान किया जाता है। हितकर या अहितकर ग्रहों से व्यक्ति के अच्छे या बुरे चरित्र का पता चलता है। बु० जा० (२७) में आया है कि चन्द्र, सूर्य एवं बृहस्पित सत्त्व-गुण के स्वामी हैं, बुघ एवं शुक्र रजो-गुण के, मंगल एवं श्वित तमोगुण के स्वामी हैं। उत्पल ने प्रकट किया है कि वराह एवं यवनेश्वर में अन्तर है। यवनेश्वर ने सूर्य, मंगल एवं बृहस्पित को सात्त्विक, चन्द्र एवं शुक्र को रजोगुणी,

२२. कि कुर्वन्ति प्रहाः सर्वे यस्य केन्द्रे बृहस्पतिः। मत्तवारणसंघातः सिहेनैकेन ह्न्यते।। भुजबल (पृ० २८०, १२६२।

क्षित को तमोगुणी तथा बुध को अपने साथ संयुक्त ग्रह के गुण को घारण करने वाला माना है। और देखिए बृ॰, जा॰ (२।८-१०) एवं लघुजातक (२।१३-१९) जहाँ ग्रहों की विशेषताओं का वर्णन है। बृ॰ जा॰ (२।११, १२, १४) एवं सारावली (४।१५-१६) में एक अन्य तालिका पायी जाती है जिसमें ग्रहों से शासित मानवशरीर, उनकें स्थानों, वस्त्रों, रत्नों, मणियों एवं रसों का उल्लेख है—

प्रह	शरीरांग	स्थान	वस्त्र	रत्न एवं मणि	<b>***</b> *********************************
सूर्यं	अस्थियाँ	मन्दिर	महा (मोटा)	ताम्र ्	<b>उ</b> प्र
- चन्द्र	रक्त	जल-स्थान	नवीन वस्त्र	रत्न	नमक
मंगल	मज्जा	अग्नि-स्थान	एक भाग जला हुआ	सोना	कटु
बुघ	चर्म	क्रीड़ा-स्थल	भींगा	कांस्य	मिश्रित (सभीरस)
बृहस्पति	मांस	कोषागार	न तो नवीन और न बहुत पुराना	चाँदी	मघुर
যুক	वीर्य	शय्याकक्ष	मजबूत	मोती	बट्टा
शनि	मांसपेशियाँ	घूलि-बिल	फटा	लोहा	कषाय

ऐसा कहा गया है कि यदि बृहस्पित अपने गृह (अर्थात् धनु या मीन) में हो, तो वह सोने का भी स्वामी होता है। <sup>१३</sup> इस प्रकार के नियोजन से व्यावहारिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। ज्योतिषी को, यदि ग्रह प्रबल है, तो पता चल सकता था कि जन्म का स्थान क्या है, उसे चोर का पता भी चल सकता था और यह भी जात हो सकता था कि भोजन के लिए आमन्त्रित व्यक्ति को किस प्रकार का भोजन मिल सकता है।

बृ॰ जा॰ (२।५) में आया है कि सूर्य, मंगल एवं बृहस्पति पुरुष हैं, चन्द्र एवं शुक्र स्त्री हैं तथा बुष एवं शनि नपुंसक हैं। टेट्राबिब्लोस (१।६) में शनि पुंलिलग है। बृ॰ जा॰ (२।२१) के अनुसार चन्द्र, मंगल एवं शिन निशाप्रवल (रात्रि में शक्तिशाली) हैं, सूर्य, बृहस्पति एवं शुक्र दिवाप्रबल हैं तथा बुध दोनों (दिनप्रबल एवं निशाप्रवल) है। टेट्राबिब्लोस (१।७) में अन्तर है, वहाँ शुक्र को निशाप्रवल और शनि को दिवाप्रबल कहा गया है।

कुछ राशियाँ ग्रहों के स्वगृह (अपने गृह) घोषित हैं, कुछ राशियाँ उनकी उच्च कहीं गयी हैं और उच्च के कुछ अंश परमोच्च घोषित हैं; उच्च से सातवीं राशि नीच कही गयी है और नीच के कुछ अंश परमनीच घोषित

२३. अकृषि ताम्रमणि हेमयुक्तिरजतानि मौक्तिकं लोहम्। वक्तव्यं बलवव्भिः स्वस्थाने हेम जीवेपि।। लघुजातक (उत्पल द्वारा बृ० जा० २।१२ में उद्घृत)। ग्रहों एवं मृख्य घातुओं में जो सम्बन्ध स्थापित किया गया, वह रंगसादृश्य पर निर्भर था। विभिन्न ग्रह शरीर के विभिन्न अंगों पर शासन करते हैं, इस सिद्धान्त ने वैद्यकशास्त्र पर ज्योतिशवास्त्र का प्रभाव डाला।

### बमंशास्त्र का इतिहास

558

हैं। सूर्य एवं चन्द्र में प्रत्येक की एक ही राशि स्वगृह है, किन्तु अन्य पाँच ग्रहों की दो-दो राशियाँ स्वगृह हैं। देखिए निम्न तालिका—

वह	स्वगृह	उच	उच्च राशि		नीच राशि	
सूर्य चन्द्र मंगल बुघ बृहस्पति शुक्र	सिंह कर्कट  मेष एवं वृश्चिक  मिथुन एवं कन्या  घनु एवं मीन वृषभ एवं तुला  मकर एवं कुम्भ	मेष वृषम मक्र कन्या कर्कट मीन	१० अंश ३ अंश २८ अंश १५ अंश ५ अंश २७ अंश	तुला वृश्चिक कर्कट मीन मकर कन्या मेष	१० अंश ३ अंश २८ अंश १५ अंश ५ अंश २७ अंश २० अंश	

उच्च एवं नीच राशियों के बगल के अंश कम से परमोच्च एवं परमनीच के द्योतक हैं। इसकी व्याख्या स्फुजिब्बज के यवनजातक एवं मीनराज के वृद्धयवनजातक में की गयी है। सूर्य को सिंह स्वगृह इसिलए दिया गया कि वह अत्यन्त शक्तिशाली राशि है तथा चन्द्र को शीतलता के कारण जल-राशि कर्कट। सूर्य एवं चन्द्र में प्रत्येक ने अन्य पाँच ग्रहों को शेष राशियों में से एक-एक राशि दी है, यथा कन्या, तुला, वृश्चिक, घनु एवं मकर सूर्य द्वारा बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पित एवं शनि को दी हुई हैं (ये ग्रह दूरी के आधार पर व्यवस्थित हैं) तथा चन्द्र ने उन्हीं पाँचों ग्रहों को मिथुन, वृश्चिक, मेष, मीन एवं कुम्भ में कम से एक-एक राशि दी है। टेट्राबिब्लोस (११९७) ने भी इसी प्रकार की व्याख्या स्वगृहों के विषय में की है और बृ० जा० (१११३) में निर्णीत उच्च एवं नीच राशियाँ से उसका मेल बैठ जाता है। किन्तु टाल्मी ने परमोच्च एवं परमनीच के अंश नहीं दिये हैं।

वह राशि जिसमें उसका स्वामी रहता है, या जिस पर उसके स्वामी की दृष्टि रहती है, या जहाँ बुध या बृहस्पति बैठा रहता है, या जब उस पर उनकी दृष्टि होती है और यदि वह शेष ग्रहों में एक या अधिक ग्रहों से आकान्त नहीं रहती, या उस पर किसी की दृष्टि नहीं रहती, तो वह राशि शिक्तशाली (प्रवल) होती है। एक और व्यवस्था है कि वृश्चिक राशि यदि सातवें घर में रहती है, तो प्रबल होती है; मानव राशियाँ (मिथुन, कन्या, तुला, घनु का अग्र भाग एवं कुम्भ) लग्न में। जल-राशियाँ (कर्कट, मीन, मकर का अन्तिम भाग) तब प्रबल होती हैं जब वे चौथे घर में रहती हैं तथा चतुष्पद राशियाँ (मेष, वृष, सिंह, घनु का अन्तिम भाग एवं मकर का अग्र भाग) दसवें घर में प्रवल होती हैं। देखिए वृ० जा० (१।१७)।

ग्रहों की स्वाभाविक शक्तिमत्ता निम्न कम में है—शनि, मंगल, बुघ, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्र, सूर्य में प्रत्येक आगे वाला ग्रह अपने से पीछे वाले से अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली होता है। यदि किन्हीं दो या अधिक ग्रहों की शक्ति अन्य दृष्टियों से बराबर हो तो इसी कम को ध्यान में रखकर यह निश्चय करना चाहिए कि कौन अधिक बलशाली है। रें

कुण्डली में ज्योतिष-सम्बन्धी बारह घर होते हैं, और उनमें प्रत्येक के बहुत-से पर्याय हैं, जिनमें बहुत-से यह बताते हैं कि कौन सी विशिष्ट बातें उस घर की दशा से जानी जा सकती हैं। इनका उल्लेख बृ॰ जा॰ (१।१५-१९), ल॰ जा॰ (१।१५-१९) एवं सारावली (३।२६-३३) में हुआ है, यथा—

# कुण्डली के द्वादश स्थान (भाव)

पहला घर : होरा, तन्, कल्प, शक्ति, मूर्ति, लग्न, देहः अंग, उदय, वपु, आद्य, विलग्न।

दूसरा घर : घन, स्व, कुटुम्ब, अर्थ, कोश।

तीसरा घर : सहोत्य, विक्रम, पौरुष, सहज, दुश्चिष्य।

चौथा घर : बन्धु,गृह, सुहुद्, पाताल, हिबुक, वेश्म, सुख, चतुरस्न, अम्बु, जल, अम्बा, यान, वाहन।

पाँचवाँ घर : सुत, घी, पुत्र, प्रतिभा, विद्या, वाक्स्थान, त्रिकोण।

छठा घर : अरि, रिपु, क्षत, व्रण।

सातवाँ घर : जाया, जामित्र, चून, चून, पत्नी, स्त्री, चित्तोत्य, अस्तभवन, काम, स्मर, मदन।

आठवाँ घर : मरणं, रन्ध्र, मृत्यु, विनाश, चतुरस्र, छिद्र, विवर, लय, याम्य।

नवाँ घर : शुभ, गुरु, घर्म, पुण्य, त्रित्रिकोण, त्रिकोण, तप।

दसवाँ घर : आस्पद, मान, कर्म, मेजूरण, आज्ञा, ख, गगन, तात, व्यापार।

ग्यारहवाँ घर : आयं, भव, लाभ, आगम, प्राप्ति।

बारहवाँ घर : व्यय, रि:फ (या रिष्फ), अन्त्य, अन्तिम।

यह द्रष्टव्य है कि उपर्युक्त भावों के नाम (उपाधियाँ अथवा संज्ञाएँ) दो प्रकार के होते हैं—(१) वे, जो घर के किसी विशिष्ट कार्य का बिना संकेत किये केवल नाम मात्र घारण करते हैं, यथा होरा, दुश्चिक्य, मेषूरण, रि:फ, चतुरस्र; (२) वे, जो घरों के विशिष्ट कार्यों का निर्देश करते हैं, यथा तनू (देह), स्व (घन-सम्पत्ति) या कुटुम्ब, सहज (भाई)।

बहुत-से घरों (भावों) की कुछ विशिष्ट उपाधियाँ या नाम हैं। पहला, चौया, सातवाँ एवं दसवाँ घर कण्टक, केन्द्र, चतुष्टय कहा जाता है; केन्द्र के आगे के घर पणकर (दूसरा, पाँचवाँ, आठवाँ एवं ग्यारहवाँ) कहे जाते हैं; तीसरा, छठा, नवाँ एवं बारहवाँ आपोक्लिम के नाम से विख्यात हैं; छठा, आठवाँ एवं बारहवाँ त्रिक कहलाता है; तीसरा, छठा, दसवाँ एवं ग्यारहवाँ उपचय तथा शेष अपचय कहे जाते हैं। गर्ग के मत से तीसरा, छठा, दसवाँ एवं ग्यारहवाँ तभी उपचय कहे जाते हैं जब कि उन पर हानिकर ग्रहों की दृष्टि न हो या उनके स्वामी का शत्रु न हो। त्रिकोण को यूनानी शब्द कहा गया है।

घरों (भावों) के कितपय नामों से प्रकट होता है कि उनसे निम्न बातों की भविष्यवाणी की जा सकती

२४. मन्दार-सौम्य-वाक्पित-सित-चन्द्रार्का यथोत्तरं बिलनः । नैसींगकबलमेतद् बलसाम्येऽस्मादिषकचिन्ता ।। लघुजातक (२।७); उत्पल द्वारा बृ० जा० (२।२१) में उद्धृत; इसका चतुर्यं चरण यह है 'शरुबुगुशुच्रसाद्धा वृद्धितो वोर्यवन्तः' जहाँ 'शरुबुगुशुच्रस' में कम से शनि, विधर (मंगल), बुष, गुरु क्षुक, चन्द्र एवं सिवता हैं।

139

है—पहले भाव से स्वास्थ्य एवं शरीर-वृद्धि; दूसरे से कुटुम्ब की सम्पत्ति; तीसरे से भाई (एवं बहिनें) एवं शौर्य; वौथे से सम्बन्धी, मित्र, सौक्य, घर-द्वार एवं माता; पाँचवें से पुत्र, बृद्धि, ज्ञान; छठे से शत्रु एवं त्रण; सातवें से पत्नी, प्रेम-कर्म, विवाह; आठवें से मृत्यु, दीष एवं पाप; नवें से धर्म, बड़े छोग (संमान्य आदि), तप; से पत्नी, प्रेम-कर्म, विवाह; आठवें से मृत्यु, दीष एवं पाप; नवें से धर्म, बारहवें से व्यय, ऋण आदि। दसवें से कर्म, मान, स्थिति एवं पिता; ग्यारहवें से अच्छे गुणों की प्राप्ति; बारहवें से व्यय, ऋण आदि।

धिवो (ग्रुण्ड्रिस, पू० ६८) ने जैकोबी का अनुसरण करके प्रतिपादित किया है कि बारह भावों वाला सिद्धान्त, जो वराहमिहिर द्वारा विकसित किया गया और भारतीय फिलत ज्योतिष का एक प्रमुख अंग है, पाक्चात्य देशों में फिर्मीक्स मैटनंस (चौथी शती के मध्य में) के पूर्व नहीं पाया जाता, और यूनानी ज्योतिष का प्रवेश भारत में किमींकस एवं वराहमिहिर के मध्य काल में ही हुआ। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ऐसी उक्ति 'अन्धे व्यक्ति हारा बन्धे व्यक्ति का अनुसरण' वाली कहावत चरिताय करती है। पहली बात यह है कि टाल्मी के टेट्राबिब्लोस (राट,पू० १९१, ३११०,पू० २७३-२७५) में भावों की धारणा का अभाव नहीं है, जहाँ पहले, सातवें, नवें, दसकें एवं ग्यारहवें भावों की ओर संकेत है, हाँ यह सत्य है कि टाल्मी ने भावों की पद्धित पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। सम्भवतः यह बात जैको बी एवं थिबो को नहीं सूझी। दूसरी बात यह है कि भावों का सिद्धान्त सबसे पहले वराह में ही नहीं आया। स्वयं वराह ने अपने पूर्ववर्ती कितपय भारतीय लेखकों की ओर संकेत किया है जिनके ग्रन्थों में यह पद्धित भली-भौति विकसित हो चुकी थी। ऐसा विष्वास नहीं किया जा सकता कि इतना बड़ा विशाल साहित्य लगभग एक सौ वर्षों में ही प्रणीत हुआ और वह भी फिर्मीक्स के उपरान्त। इसके अतिरिक्त गर्ग, पराशर जैसे लेखक, जो वेदांगज्योतिष एवं सिद्धान्तों के मध्यकाल में रखे गये हैं (ई० पू० लगभग ८०० एवं ई० के उपरान्त २५० ई० के बीच में), यह सिद्धान्त जानते थे। कर्न (बृ० सं० की भूमिका, पृ० ५०) ने गर्ग को ई० पू० ५० में रखा है।

थिबो ने, आश्चर्य है, ज्योतिष पर विश्वकोश लिखते समय टाल्मी का भी ठीक से अध्ययन नहीं किया और न आयर्वणज्योतिष, वैखानससूत्र, विष्णुधर्मोत्तर जैसे प्रन्थों की परीक्षा की, जहाँ ज्योतिष नक्षत्रों पर आधारित है। यह सचमुच बड़े आश्चर्य का विषय है। तीसरी बात यह है कि थिबो ने भारत में रहने वाले यूनानियों द्वारा लिखित संस्कृत ग्रन्थों का लेखा-जोखा नहीं लिया, जिनकी ओर वराह ने अधिकतर संकेत किया है, और कहीं-कहीं उनकी बातों का विरोध किया और खण्डन भी किया है तथा उत्पल ने जिनके सैकड़ों वचन उद्धृत किये हैं। देखिए स्फुजिप्यज द्वारा लिखित प्राचीन यवनजातक। ऊपर कहा जा चुका है कि फिर्मीकस के कई शतियों पूर्व कम-से-कम ५ भावों के नाम मिलते हैं। यह सम्भव है कि फिर्मीकस ने वराह के पूर्ववर्ती ज्योतिषा-चायों के उद्धरण लिये हों और वे आचार्य यूनानी थे और संस्कृत में ही उन्होंने अपने ग्रन्थ लिखे थे। यह भी सम्भव है कि टाल्मी ने भी ऐसा किया हो, क्योंकि वह भावों को जानता था, यद्यपि उसका भाव-सम्बन्धी विवरण नव-सिखुवा सा है। इसके अतिरिक्त यह भी बात है कि १२ घरों (भावों) में सभी संस्कृत-प्रन्थों में यूनानी नामानुवर्ती नाम नहीं मिछते। यूनानी नामों के अनुवर्ती नाम पहले, तीसरे, चौथे, सातवें, दसवें एवं बारहवें भावों तथा कुछ माव-दलों (यथा केन्द्र, पणफर एवं आपोक्लिम) में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय भावों से प्राप्त कुछ विशिष्ट बातें (जो वृ॰ जा॰ में उल्लिखित हैं) फिर्मीक्स के कथनों से सर्वथा मेल नहीं खातीं। वराह ने दूसरे माव को 'कुटुम्ब' एवं 'स्व' (सम्पत्ति) कहा है तो फिर्मीकस ने उसे 'लुकम' (अर्थात् कोई अपनी जीविका कैसे कमाएगा) की संज्ञा दी है; वराह में ग्यारहवें भाव का 'आय' नाम है तो फिर्मीक्स ने उसे सत्कर्मी की संज्ञा दी है; फिर्मीक्स में चौथा भाव पिता या माता-पिता का है तो वराह ने उसे वन्यु (संबन्धी) कहा है। फिर्मीकस में छठा एवं १२वाँ भाव कम से सम्पत्ति एवं बन्दीगृह हैं तो बराह ने उन्हें 'वैर' एवं 'व्यय' माना है। कुछ पारिमाषिक शब्दों की व्याख्या अभी नहीं हो सकी है। होरा का एक अथं है 'राशि का अधं'। विषम संख्याओं (१, ३, ५, ७, ९, ११) की राशियों के प्रथम अर्घ का देवता है सूर्य, दूसरे अर्घ का देवता चन्द्र है; किन्तु सम राशियों (२, ४, ६, ८, १० एवं १२) के प्रथम अर्घ का देवता चन्द्र है तथा दूसरे अर्घ का देवता है सूर्य (वृ० जा० १।११)। इसका उपयोग यह है कि सूर्य के होरा में उत्पन्न व्यक्ति स्वभाव से उद्योगी या साहसी होता है और जो चन्द्र के होरा में उत्पन्न होता है वह मृदु स्वभाव का होता है। वृ० जा० (१।१२) में कुछ लोगों (यवनेश्वर, उत्पल्ल के अनुसार) का यह मत विणत है कि प्रथम होरा का स्वामी वही है जो राशि का स्वामी होता है तथा दूसरे होरा का स्वामी कुण्डली के ११वें घर का स्वामी होता है। इस मत का फल यह होगा कि सभी प्रह होराओं के स्वामी हो सकते हैं निक्व केवल सूर्य एवं चन्द्र ही ऐसे हो सकते हैं, जैसा कि वराह, सत्य आदि का कहना है। प्रत्येक राशि (३० अंश) तीन मागों में बँटी हुई है, जिनमें प्रत्येक में १० अंश होते हैं और वे देक्काण (या देक्काण) या दृकाण या दृगाण कहे जाते हैं (वृ० जा० ३।५, सम्भवतः मात्रा के आघार पर ये विभिन्न नाम हैं)। प्रत्येक राशि के तीनों भागों के स्वामी कम-से स्वयं राशि के स्वामी (प्रथम भाग के), पाँचवीं राशि के स्वामी (दूसरे भाग के) तथा नवीं राशि के स्वामी (तीसरे भाग के) होते हैं। उदाहरणार्थ, वृषभ के विषय में (जिसका स्वामी शुक्र है) प्रथम, दूसरे एवं तीसरे भागों के स्वामी कम से शुक्र, बुध (वृषभ से आगे पाँचवीं का स्वामी) एवं शनि (वृषभ से नवीं का स्वामी) हैं। यही बात अन्य राशियों के विषय में भी है।

'द्रेष्काण' के विषय में दो शब्द आवश्यक हैं। वेबर आदि के मत से यह यूनानी शब्द 'डेकैनोई' (Decanoi) है। 'डेकान' प्राचीन मिस्र में प्रचित थे जहाँ मूलतः कोई राशि नहीं थो। डेकानल पढ़ित ई० पू० तीसरी शती में मिस्र में प्रकट हुई। मूल रूप में डेकान प्रभावशाली नक्षत्र या नक्षत्र-समूह थे जो प्रत्येक दस दिनों की ३६ अविषयों में रात्रि के किन्हीं विशिष्ट घण्टों में उदित होते थे और इन अविषयों से मिस्री वर्ष बनता था। डेकान मूलतः 'जेनाई' (देवता) थे जो मिस्री वर्ष की ३६ दस-अविषयों के स्वामी थे। दस दिनों की प्रत्येक अविष सूर्यास्त पर पूर्व कितिज में उगने वाले आगे के डेकान से संकेतित होती थी। बोचे लेक्लर्क ('एल' ऐस्ट्रॉलोजी ग्रीक, पू० २१५-२४०) ने कहा है कि मिस्री भाषा में कोई विशिष्ट नाम (यथा यूनानी शब्द 'डेकानोस') नहीं पाया जाता और डेकान के कई पर्याय हैं। बोचे महोदय ने यही सिद्ध किया है कि मिस्री राशियाँ रोम-कालीन हैं और यूनानी राशियों की अनुकृतियाँ हैं।

बृहज्जातक में एक विशिष्ट अध्याय है २७ वाँ, जिसमें ३६ घलोक हैं। इस अध्याय का नाम ब्रेष्काणाध्याय है जिसमें ब्रेष्काणों के ३६ देवताओं का उल्लेख है। लगता है, यह अध्याय देवता-अधीक्षकों के रूप में डेकानों की मिस्री धारणा की ओर संकेत करता है। भाषा लाक्षणिक है। यहाँ राशियों के भागों की चर्चा की गयी है। ३६ डेकानों में दो-तिहाई पुष्व हैं और शेष स्त्रीलिंग द्योतक। कुछ पुष्य-नारी मिश्रित आकृतियाँ, चतुष्पद, पक्षी या सर्प मी आते हैं। वराह (२७।२, १९, २१) ने स्पष्ट कहा है कि वे केवल वही विवरण दे रहे हैं जो यवनवर्णित है। टाल्मी के टेट्राबिक्लोस में ऐसा कुछ नहीं है और वराह ने टाल्मी एवं मिलिल्अस के पूर्ववर्ती किसी भारतवासी यूनानी के संस्कृत-प्रत्य की ओर संकेत किया है। ज्योतिष-सम्बन्धी काव्य 'ऐस्टोनोमिका' के लेखक मिलिल्अस ने सन् ९ ई० में डेकानों का प्रयोग किया है, किन्तु प्रतीत होता है कि इनका प्रयोग टाल्मी के काल में यूनान से लुप्त हो गया था। सारावली (४९।२) ने ३६ द्रेष्काणों का विवरण दिया है जो बृहज्जातक से भिन्न है। लगता है, उसके समक्ष कोई ऐसा संस्कृत-ग्रन्थ था जो किसी अन्य यवन का था और वह बृहज्जातक द्वारा अवलम्बित ग्रन्थ से सर्वणा मिन्न था।

अब हम कुछ अन्य पारिकाषिक शब्दों की व्याख्या करेंगे। किसी ग्रह की राशि तथा राशि के होरा, ब्रेव्काण, नवांश, द्वादशांश एवं त्रिशांश—कुछ छ: मिलकर बह के वर्ग या वड्वर्ग कहे जाते हैं (बृ० आ० १।९)। मेथ, कर्फ,

तुला एवं मकर (जो चर राशियाँ हैं) का नवांश वर्गोत्तम कहा जाता है, यही बात वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ (जो स्थिर राशियाँ हैं) के पाँचवें नवांश तथा मियुन, कन्या, घनु एवं मीन (जो द्विस्वभाव वाली राशियाँ हैं) के नवें नवांश के विषय में भी है (वे भी वर्गोत्तम हैं, बृ॰ जा॰ १।१४) और वे शुभ फलदायक हैं। राशियों के वर्गोत्तम-नवांश राशियों के नाम वाले होते हैं। चन्द्र के घर से आगे के दूसरे घर में जब सूर्य को छोड़कर कोई अन्य ग्रह रहता है तो सुनका योग होता है; चन्द्र के घर से आगे १२ वें घर में जब सूर्य को छोड़कर कोई अन्य ग्रह होता है तो अनका योग होता है तथा चन्द्र के घर से आगे के दूसरे तथा १२ वें घर में (अर्थात् दोनों में) जब ग्रह होते हैं तो दुरुषरा योग होता है। जब चन्द्र केन्द्र में नहीं होता, या जब केन्द्र में सूर्य के अतिरिक्त कोई अन्य ग्रह नहीं होता और उपयुक्त तीनों योग नहीं होते तो केमद्रुम नामकं योग होता है। बृहज्जातक (१३।४) के अनुसार अनफा एवं सुनफा के प्रकार ३१-३१ (प्रत्येक में ३१) होते हैं, दुरुघरा के १८० प्रकार होते हैं। जब कुण्डली में किसी राशि में सूर्य होता है तो उससे आगे की दूसरी राशि वेशि कहलाती हैं (वृ० जा० १।२०)। उपर्युवत पाँचों शब्द यूनानी कहे गये हैं। 'लिप्ता' शब्द, जिसका अर्थ होता है 'एक अंश का ६० वाँ भाग', भी यूनानी कहा गया है। और देखिए 'हरिज' (होराइजन) जो 'होरोज' (यूनानी) का द्योतक माना गया है। वे शब्द, जिन्हें वेबर, कर्न आदि ने यूनानी टहराया है, कुल मिलाकर ३७ हैं-किय, तावृरि, जितुम, कुलीर, लेय, पाथेन, जूक, कौर्प्य, तौक्षिक, आकोकर, हृद्रोग, इत्य, हेलि, आर, हिम्न, जीव, आस्फुजित, कोण, होरा, द्रेष्काण, केन्द्र, त्रिकोण, पणफर, आपोक्लिम, मेषुरण, दुश्चिक्य, हिबुक, जामित्र, द्यून, रि:फ, अनफा, सुनफा, दुश्घरा, केमद्रुम, वेशि, लिप्ता, हरिज । कुलीर एवं त्रिकोण, कर्न के अनुसार, संस्कृत शब्द हैं। जीव, 'झूस' नहीं है। यूनानी शब्द ज्यूस (या इयूस, (zeus)) संस्कृत शब्द द्यौस् से मिलता है किन्तु 'जीव' से नहीं। 'झ्यूस' भारोपीय शब्द है और इसका अर्थ है 'स्वर्ग' या 'आकाश'। 'द्रेष्काण' या 'द्यूतम्' के विभिन्न रूपों की गणना की आवश्यकता नहीं है। 'होरा' शब्द भारतीय ज्योतिष के आरम्भिक काल में तीन अर्थों में प्रयुक्त होता था, जिनमें कोई भी 'घंटा' के अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है। यह सम्भव है कि यदि यह यूनानी है तो मिस्र या बेबिलोन से उघार लिया गया है, क्योंकि 'घंटा' के अर्थ में यह पश्चात्कालीन है और यह निश्चित नहीं है कि हिपार्कस (ई० पू० १४०) ने इसे उस अर्थ में प्रयुक्त किया था। यदि उपर्युक्त चार शब्द छोड़ दिये जायें तो ३३ शब्दों के विषय में यह तर्क किया जा सकता है कि इन पर यूनानी प्रभाव है। इनमें कुछ, यथा राशियों के १२ नामों, ग्रहों के ६ नामों, कुछ सावों, यथा हिबुक, जामित्र, बुन एवं केन्द्र के कई संस्कृत पर्याय हैं (कभी-कभी, एक दर्जन), जिनका प्रयोग बृ० जा० में हुआ है। अतः इन पर भी विचार करना व्यर्थ है। ये 'बृहज्जातक' द्वारा इसलिए प्रयुक्त हुए कि कई भारतीय युनानियों ने, जिन्होंने संस्कृत में ग्रन्थ लिखे थे, उनका प्रयोग किया था और बृहज्जातक ने विवरण की पूर्णता के लिए उनका प्रयोग किया। यहाँ तक कि 'केन्द्र' शब्द के, जिसका अर्थ है पहला, चौथा, सातवाँ एवं दसवाँ घर, दो संस्कृत पर्याय हैं 'कण्टक' एवं 'चतुष्टय'। इसके संस्कृत एवं यूनानी अर्थों में अन्तर भी है (यूनानी शब्द केण्ट्रान का अर्थ है कील)। अतः केवल १० शब्द, यथा अनफा, मुनफा आदि, ऐसे हैं जिनका भारतीय फलित ज्योतिष में बहुत अल्प योगदान है। ऐसा कहना कि वराह-मिहिर द्वारा विकसित मारतीय ज्योतिष इन शब्दों के प्रयोग के कारण यूनानी ज्योतिष पर आधारित है, बहुत बड़ी मूल एवं दूर का कोलाहल है। यह मानना अत्यन्त सन्देहपूर्ण है कि भारतीय, कुछ ऋषियों या दार्शनिकों को छोड़कर, यूनान गये और वहाँ से लीट कर आने पर उन्होंने यूनानी ज्योतिष का ज्ञान भारत को दिया; प्रत्युत हमारे पास प्रचुर प्रमाण हैं कि यूनानी भारत में बसे, उन्होंने संस्कृत में श्विलालेख और विस्तार के साय ज्योतिष के ग्रन्थ लिखे। देखिए बौचे-लेक्लर्फ लिखित 'ल' ऐस्ट्रालाजी (Bouche'-leclerca : 'L' Astrologie Greque) एवं जी॰ आर॰ काए (आक्योंलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, मेम्बायर, सं॰ १८, पू॰

३९-४०) जहाँ कम से यूनानी, लैटिन, फ्रेंच नामों और राशियों, ग्रहों आदि के यूनानी शब्दों के विकास पर प्रकाश डाला गया है।

वृ० जा० (२।१५-१७), लघुजातक (२।१०-१२), सारावली (४।२८-३१), मुहूर्त-चिन्तामणि (६।२७-२८) आदि ग्रन्थों में ग्रहों के मित्रभाव, वैरभाव एवं पारस्परिक भिन्नता तथा उदासीनता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मित्र एवं शत्रु दो प्रकार के होते हैं—स्वाभाविक एवं प्रासंगिक (तात्कालिक)। देखिए तालिका—

ग्रह	मित्र	হাসু	उदासीन (या सम)
सूर्यं	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	शुक्र, शनि	बुघ
चन्द्र	सूर्य, बुघ	कोई नहीं	मंगल, बृहस्पति, शुक्र, शनि
मंगल ं	सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति	बुध	शुक्र, शनि
बुघ	सूर्य, शुक	चन्द्र	मंगल, बृहस्पति, शनि
वृहस्पत <u>ि</u>	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बुध, शुऋ	शनि
शुऋ	बुघ, शनि	सूर्य, चन्द्र	मंगल, बृहस्पति
शुक्र शनि	बुघ, शुऋ	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बृहस्पति

उपर्युक्त तालिका के परिदर्शन से पता चलेगा कि सम्बन्धों में परस्परता (बदले की भावना) नहीं है। उदाहरणार्थ, बुध का शत्रु चन्द्र है, किन्तु वही बुध को मित्र मानता है; चन्द्र का कोई शत्रु नहीं है, किन्तु शुक्र चन्द्र को शत्रु मानता है। यवनों के अनुसार कोई ग्रह सम (न मित्र न शत्रु) नहीं हैं, या तो वे मित्र हैं या शत्रु।

प्रासंगिक मित्रता एवं शत्रुता के विषय में ये नियम हैं—जब ग्रह प्रत्येक से दूसरे, तीसरे, चौथे, दसवें, ग्यारहवें या वारहवें घर में होते हैं तो वे विवाह, आक्रमण या यात्रा आदि के अवसरों पर मित्र होते हैं, और नहीं तो वे उसी राशि में या ५वें, ६ठें, ७वें, ८वें, ९वें घरों में (प्रत्येक से) शत्रु होते हैं। यहाँ भी विभिन्न मत हैं, जिन्हें हम छोड़ रहे हैं।

ग्रहों का बल चार प्रकार का होता है—स्थान, दिशा, चेष्टा, काल के अनुसार। कोई ग्रह अपने स्थान में तभी बलवान् होता है जब कि वह अपने घर में हो, या उच्च हो या अपने मित्र के घर में हो या अपने त्रिकोण में हो या नवांश में हो। यही स्थानबल कहलाता है। बुघ एवं बृहस्पित पूर्व में (अर्थात् जब वे लग्न में होते हैं) शक्ति-मान् होते हैं; सूर्य एवं मंगल दक्षिण में (जब वे १०वें घर में होते हैं); शिन पश्चिम में (सातवें घर में); चन्द्र एवं शुक्र उत्तर में (चौथे घर में) बलवान् होते हैं। इसे दिग्बल कहा जाता है। सूर्य एवं चन्द्र उत्तरायण में (अर्थात् मकर से आगे ६ राशियों में) और; शेष ग्रह तभी बलवान् होते हैं जब वे वक्र होते हैं या चन्द्र से संयुक्त होते हैं या जब युद्ध (सूर्य एवं चन्द्र को छोड़कर अन्य ग्रहों के साथ) होता हैं, इनमें उत्तर वाला अपक्षाकृत अधिक बलवान् होता है। गर्ग (अर्भुतसागर में उद्धृत) का कथन है कि ग्रह्युद्ध तभी होता है जब कोई ग्रह किसी अन्य ग्रह को ढेंक लेता है, या जब यह थोड़ा ही ढेंकता है, या जब एक का प्रकाश दूसरे के प्रकाश को पृष्ठभूमि में कर देता

है, या जब कोई ग्रह दूसरे से थोड़ा बायीं ओर रहता है। इसको चेष्टाबल कहते हैं। चन्द्र, मंगल एवं शिन रात्रि में प्रबल होते हैं, बुघ रात एवं दिन दोनों में, अन्य ग्रह दिन में बलवान् होते हैं; कूर एवं सौम्य ग्रह कम से मास के कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष में बलवान् होते हैं; ग्रह अपने बारा शासित वर्ष में बलवान् होता है, या अपने सप्ताह-दिन में या होरा में या अपने बारा शासित मास में। यही कालबल है। यवनेश्वर का कथन है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दस दिनों तक चन्द्र मध्यबली होता है, किन्तु आगे के दस दिनों (शुक्ल एकादशी से कृष्ण पंचमी) तक चन्द्र का बल श्रेष्ठ होता है तथा अन्तिम दस दिनों (कृष्ण षष्ठी से अमावास्था) तक चन्द्र अल्पबली होता है, किन्तु यदि चन्द्र पर सौम्य (बृहस्पित आदि) ग्रहों की दृष्टि पड़ती है तो वह सदा बलवान् होता है।

सारावली (५।२) में ग्रह के नी प्रकार के स्वरूपों का उल्लेख है, यथा दीप्त (उच्च-होने पर प्रज्वलित), स्वस्य (अपने घर में मुस्थिर), मृदित (मित्र के स्वगृह में प्रसन्न), शान्त (शुभ वर्ग में अवस्थित), शक्त (चमकते रहने पर सामर्थ्यवान्), निपीड़ित (दूसरे ग्रह से पराभूत), भीत (नीच होने पर डरा हुआ), विकल (सूर्य-प्रकाश हुट जाने पर विकल) एवं खल (जब वह दुष्ट संगति में रहता है तब दुष्ट होता है)। सारावली (५। ५-१३) ने इन नौ परिस्थितियों में पड़े हुए ग्रह का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

ज्योतिष-प्रन्थों में अनुश्रुतियों को भी मान्य किया गया है। वराहमिहिर की योगयात्रा (३।१९-२०) में आया है—'सूर्य अंग (बिहार) में उत्पन्न हुआ, चन्द्र यवनों के देश में, मंगल अवन्ती में, बुध मगध में, बृहस्पित सिन्धु में, शुक्र भोजकट में, शिन सौराष्ट्र में, केतु म्लेच्छों के देश में एवं राहु किलग में। यदि ये ग्रह प्रभावित होते हैं तो अपनी उत्पत्ति के देशों में कष्ट ढहाते हैं, अतः राजा को उन देशों पर आक्रमण करना चाहिए, जब एक या अधिक ग्रह प्रभावित हों।

भारतीय ज्योतिष का एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है दृष्टि। बृहज्जातक (२।१३), लघुजातक (२।८), सारावली (४।३२-३३) एवं मुहूर्तदर्शन (१।२७) में निम्न नियम हैं—अपने घर में स्थित सभी ग्रह ७वें घर में पूर्ण दृष्टि वाले होते हैं। शिन अपने घर से तीसरी एवं १०वीं राशि पर पूर्ण दृष्टि वाला होता है और अपने घर से तीसरे एवं १०वें ग्रहों पर भी पूर्ण दृष्टि वाला होता है। इसी प्रकार बृहस्पित अपने घर से ५वीं एवं १वीं राशि पर तथा अपने से ५वें एवं १वें ग्रहों पर पूर्ण दृष्टि रखता है; मंगल चौथी एवं ८वीं राशियों तथा उनमें से प्रत्येक के ग्रह पर पूर्ण दृष्टि वाला होता है। सूर्य, चन्द्र, बुघ एवं शुक्र अपने-अपने घरों से ७वीं राशि पर तथा अपने से ७वें ग्रह पर पूर्ण दृष्टि रखते हैं। सभी ग्रह तीसरी एवं १०वीं पर देविं एवं १वीं एवं १वीं पर है दृष्टि तथा चौथी एवं ८वीं पर है दृष्टि रखते हैं। इन सात (तीसरी, चौथी, ५वीं, ७वीं, ८वीं, १वीं एवं १०वीं) राशियों को छोड़कर किसी अन्य राशि (या स्थान) पर किसी ग्रह की दृष्टि स्पष्ट रूप से विणित नहीं है तथा आंशिक दृष्टियों का फल भी आंशिक (दे, दे, दे) होता है। टाल्मी में दृष्टियों का व्यौरा भिन्न है। अतः दृष्टियों के बारे में भी टाल्मी एवं वराहमिहिर में पर्यान्त अन्तर है।

एक अन्य सिद्धान्त है गोचर। इसका तात्पर्य है जन्म की राशि से शुभ या अशुभ स्थानों में, अद्यतन अविघ में प्रहों की शुभ या अशुभ स्थितियों पर विचार-विमर्श। इसका विवेचन मुहूर्तचिन्तामणि में है। उदाहरणार्थ, यदि सूर्य जन्म की राशि से छठे स्थान पर हो तो वह शुभ होता है, किन्तु यदि उसी समय जन्म की राशि से १२वें स्थान पर शिन को छोड़कर कोई अन्य ग्रह अवस्थित हो तो वह शुभ होता हुआ भी अशुभ हो जाता है। किन्तु यह फल तब नहीं होता जब कि ग्रह दूसरे ग्रह का पिता या पुत्र होता है (जैसे, शिन सूर्य का पुत्र तथा बुध चन्द्र का पुत्र है)। इसी प्रकार यदि बुध जन्म-राशि से दूसरे घर में हो या चौथे या छठे या ८ वें या १० वें या ११ वें में हो तथा अन्य ग्रह (चन्द्र को, जो बुध का पिता है, छोड़कर) कम से ५वें, तीसरे, ९वें, पहले, ८वें या

१२वें में हों तो वघ, जो शुम है, उस समय के लिए अशुभ हो जाता है। एक शब्द कारक है, जिसकी व्याख्या आवश्यक है। यह जिटल प्रश्न है। वृ० जा० (२२।१) एवं सारावली (७।८ एवं ११) ने इस पर विचार किया है। जितने भी ग्रह अपने गृह या उच्च या मूलितकोण में होते हैं और पहले, चौथे, सातवें एवं दसवें स्थान में होते हैं तो वे एक-दूसरे के कारक होते हैं, किन्तु वह ग्रह, जो कुण्डली के १० वें गृह में होता है, विशिष्ट रूप से कारक होता है। मान लीजिए, लग्न कर्क है और उसमें चन्द्र है (अर्थात् वह चन्द्र का स्वगृह है) और मंगल, शिन, सूर्य एवं वृहस्पित अपने उच्च (मकर, तुला, मेष एवं कर्कट) में हैं, तो वे एक-दूसरे के कारक होते हैं। इस विषय में बहुत-से नियम हैं (वृ० जा० २२, सारावली ६)। सारावली (७।७-१२) ने एक दूसरा अर्थ भी दिया है—प्रत्येक ग्रह विशिष्ट रूप से लोगों से सम्बन्धित होता है, उन पर शासन करता है या कितपय वातें प्रकट करता है। किवयों, पुष्पों, भोज्यों, मिणियों, चाँदी, शंख, लवण, जल, वस्त्रों, भूषणों, नारियों, घी, तिल, तैलों एवं निद्रा का स्वामी चन्द्र है। मांगलिक वस्तुओं, धर्म, ऐश्वयं-कृत्यों, महत्ता, शिक्षा, नियोगों (आजाओं), पुरों, राष्ट्रों, यानों, शयनों, आसनों, सोना, धान्यों, निवासों एवं पुत्रों का स्वामी वृहस्पित है।

अव हम ग्रहों की दशा एवं अन्तर्वशा पर विचार करेंगे। विशोत्तरी सिद्धान्त में मनुष्य की कल्पित अधिकतम आयु १२० वर्ष है तथा अष्टोत्तरी में वह १०८ वर्ष है। ये वर्ष ग्रहों में विभिन्न वर्ष-संख्याओं में विभाजित हैं और ऐसा कहा गया है कि दशाओं के विभिन्न विभाजन अन्तर्दशाएँ हैं। यह सिद्धान्त वृहज्जातक के आठवें अध्याय में वर्णित है और इसकी व्याख्या में उत्पल ने यवनेश्वर से बहुत पद्य उद्धृत किये हैं। अष्टकवर्ग का सिद्धान्त वृहज्जातक के नवें अध्याय में उत्पल है। कहा गया है कि सात ग्रह एवं लग्न आठ सत्ताएँ हैं और वे अपने पूर्ण याशुभ फल तभी उत्पन्न करती हैं जब कि वे मनुष्य के जीवन की विशिष्ट अविधयों एवं विशिष्ट घरों में हों। स्थान-संकोच से हम इसकी व्याख्या नहीं करेंगे।

वृहत्संहिता, वृहज्जातक तथा यात्रा वाले दो प्रन्थों में वराहमिहिर ने अपने पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्यों का उल्लेख किया है। यहाँ संक्षेप में उनका उल्लेख होगा। निम्न सूची में सामान्य रूप से खगोल विद्या (ज्योति:शास्त्र) के ग्रन्थों के नाम नहीं आये हैं। अत्रि, जिन्होंने, बृ० सं० ४५।१ के अनुसार उत्पातों पर लिखा है, वे गर्ग के शिष्य थे: बादरायण (बृ० सं० ३९।१) जिनसे उत्पल ने अपनी टीकाओं में बहुत से पद्य उद्धत किये हैं, जिनमें एक ऐसा है (बृ॰ जा॰ ६।२) जिसमें शिशु की अकालमृत्यु पर यवनेन्द्र का मत वर्णित है; भागुरि (जिसे बृ॰ सं॰, ८५।१ ने शकुनों पर लिखने वाला प्राचीन लेखक माना है); भारद्वाज (बृ० सं० ८५।२ में विभित्त एक लेखक, जिसके ग्रन्थ पर उज्जयिनी के राजा द्रव्यवर्धन ने अपना शकुन-ग्रन्थ आधारित किया); भृगु (बृ० सं० ८५।४३); च्यवन (बृ० यो० २९।३); देवल (बृ० सं० ७।१५ एवं योगयात्रा ९।१२); देवस्वामी (बृ० जा० ७।७); द्रव्यवर्घन (उज्जियनी का राजा एवं शकुनों पर लिखने वाला); गर्ग (बृ० सं० की टीका में उत्पल ने गर्ग के ३०० से अधिक पद्य उद्धृत किये हैं; बृ० सं० ३५।३ की व्याख्या में उत्पंत्र ने गर्गिलिखत मयूरचन्द्रिका ग्रन्थ का उल्लेख किया है, बु॰ सं॰ १।५ की व्याख्या में उसने वेदांगज्योतिष पर गर्ग के ३ पद्य उद्धृत किये हैं); वृद्धगर्ग (उत्पल, बृ० सं० १।११); गार्गी (उत्पल ने बृ० जां० की टीका में इसे उद्धृत किया है, इसका दूसरा नाम है भगवान्); गौतम (बृ॰ यो॰ २९।३); जीवशर्मा (बृ॰ जा॰ ७।९; उत्पल १३।३); काश्यप (बृ॰ यो॰ १९।१); कारयप (उत्पल, बृ० सं० ४०।२); माण्डव्य (बृ० सं० १०३।३, उत्पल, बृ० जा० ६।६, ११।३ एवं ५, १३।२ एवं १२।४); मणित्थ (वृ० जा० ७।१, ११।९); मय (वृ० सं० २४।२, ५५।२९, ५६।८, वृ० जा० ७।१ आदि); नारद (बृ॰ सं॰ ११।५, २४।२); पराशर (बृ॰ सं॰ ७।८, १७।३, बृ॰ जा॰ ७।१ आदि); पौलिश; पितामह (बृ॰ सं॰ १।४); रत्नाविल (बृहद्योगयात्रा २।१); ऋषिपुत्र (बृ० सं० ४८।८५); सत्य (बृ० जा० ७।३, ९-११, १३,

## धर्मशास्त्रः का इतिहास

१२।२, २०।१०; बृ० यो० ११।३४); सारस्वत (वृ० सं० ५३।९९); सिद्धसेन (बृ० जा० ७।७); उद्याना (योगयात्रा ५।३); वज्र (बृ० सं० २१।२); विस्ष्ठ (बृ० सं० ५१।८, योगयात्रा २।३,८।६); विष्णुगुप्त (बृ० जा० ७।७); यवन (बृ० जा० ७।१,८।९, ११।१,२१।३, २६।१९,२१; लघुजातक ९।६)।

उपर्युक्त लेखकों के ग्रन्थ कई शताब्दियों में बिखरे रहे होंगे, क्योंकि उनकी प्रसिद्धि एवं महत्ता के लिए समय अपेक्षित है। गर्ग से लेकर वराहिमिहिर तक पाँच शताब्दियों का समय है। गर्ग का काल ई० पू० ५० है। गर्ग के काल से कम-से-कम दो शित्यों उपरान्त टाल्मी का जन्म हुआ और फिर्मिकस उसके ४०० वर्षों के उपरान्त हुआ। गर्ग ने राशियों के विषय में लिखा है, अतः स्पष्ट है कि भारतीयों ने यूनानियों से राशि-ज्ञान नहीं प्राप्त किया। यूनानियों को सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त (ई० पू० चौथी शती) बेबिलोन से कुण्डली-सम्बन्धी ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त हुआ था।

'जोडिअक' (Zodiac) नामक यूनानी शब्द के विषय में कुछ जानकारी आवश्यक है। 'ज्योतिष्चक' इसका संस्कृत रूपान्तर-सा लगता है। यह शब्द यूनानी शब्द 'जोडिअन' (Zodian) से निकला है जिसका अर्थ है 'छोट पशु' किन्तु इसका शाब्दिक अर्थ है 'पशुओं का वृत्त'। हेरोडोटस (११७०) में यह 'अंकित या तक्षित आकृति' के अर्थ में आया है। यह उस समय व्योम-चक में कुछ नक्षत्र-दलों की किन्पत आकृतियों में किसी एक के विषय में प्रयुक्त होता था। 'जोडिअक' (राशिचक) व्योम की एक मेखला (वृत्त) है जो लगभग १६ अंश चौड़ी है और रिवमार्ग द्वारा दो भागों में विभक्त है, जिसमें सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रह घूमते हैं। 'साइन्स आव दि जोडिअक' (Signs of the Zodiac) दो अर्थों में प्रयुक्त हो सकता है, यथा (१) नक्षत्रों के १२ दल, जो रिवमार्ग (एक्लेप्टिक, Ecleptic) की सिन्निष्ठ में बिखरे दीखते हैं और स्थिति-व्यितक्रम, विस्तार-असाम्य एवं चमक का चौतन करते हैं; तथा (२) व्योम-मेखला के समान निर्मित (माने हुए) विभाग, जिनमें प्रत्येक ३० अंश (रेखांश) तक विस्तृत है। सामान्यतः यह माना जाता है कि प्रथम अर्थ दूसरे से प्राचीन है। मेइस्सनेर ने संकेत किया है कि बेबिलोन में ई० पू० ६ठी शती में नेवुचड़ नेज्जार के राज्यकाल में (ई० पू० ५६७) केवल नक्षत्रों के चित्र प्रकट किये जा सके थे और बारह नक्षत्र-दल ई० पू० ४१८ के लगभग दारा के राज्य-काल में बने। इन चित्रों का निर्माण किसने किया और इन्हें विभिन्न नाम किसने दिये, इसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः नाम विभिन्न कालों में दिये गये। मेइस्सनेर का कथन है कि ई० पू० १३वीं शती में नक्षत्र-चित्र बन गये थे और उस समय के सीमा-पत्थरों में भी वे पाये जाते हैं।

शियापरेली ने 'ऐस्ट्रानामी इन दि ओल्ड टेस्टामेंण्ट' (पृ० ८५) में लिखा है कि वेबिलोन में खड़े पत्थर खेतों में सीमा-चिह्नों (अुदुर्ल, वेबिलोनी भाषा) के रूप में रखे जाते थे या सामान्य लोगों की सूचना के लिए सम्पत्ति-अधिकार के सूचक के रूप में गाड़ें जाते थे। इनमें अब तक ३० पत्थर पाये गये हैं, जिन पर आकृतियाँ खिंची हुई हैं और इस अर्थ के शिलालेख हैं कि जो उन्हें हटायेगा उस पर भयानक अभिशाप पड़ेंगे। पृ० ८६ पर शियापरेली ने ई० पू० १२ वीं शती के वेबिलोनी स्मारक-चिह्न का चित्र दिया है जिसमें चन्द्र, सूर्य एवं शुक्र केन्द्र स्थल में अंकित हैं और उनके चतुर्दिक् बहुत-सी आकृतियाँ हैं, जिनमें वृश्चिक (बिच्छू), मेष (भेड़, जिसकी पूँछ मछली की है) एवं घनु बड़ी सरलता से पहचाने जा सकते हैं।

ऐंसा तर्क किया जा सकता है कि ऋग्वेद की दो ऋचाएँ (१।२४।८ एवं १।१६४।११) राशियों की मेंखला का द्योतन करती हैं—'राजा वरुण ने एक चौड़ा मार्ग बनाया हैं जिससे सूर्य उसका अनुगमन कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

283

सके'; 'ऋत के चक्र में बारह तीलियाँ हैं और वह बार-बार व्योम में चक्कर काटता है किन्तु शकता नहीं।'<sup>२५</sup>

उपर्युक्त वेबिलोनी सीमा-पत्थर एवं स्भारक-चिह्न यह सिद्ध करने को पर्याप्त हैं कि वेबिलोनिया में ई० पू० १००० के पूर्व ज्योतिष्चक की ४ या ५ राशियाँ प्रचिलत हो चुकी थीं, किन्तु राशियों की आकृतियों की पूरी सूची वेबिलोनिया (या वेबिलोन) में लगभग ई० पू० छठी शती में प्रचिलत हो सकी। सार्टन ने बड़ी सावधानी के साथ यह सम्भावना व्यक्त की है कि ईरान, भारत एवं चीन में वेबिलोनी प्रभाव पड़ा, किन्तु उन्होंने आगे चलकर इस विषय को सन्दिग्ध ही रख छोड़ा (देखिए 'हिस्ट्री आव साइंस, पृ० ७८)। विद्वानों ने यह बात मान ली है कि सब से प्राचीन कुण्डिलयाँ मेसोपोटैमिया में ही पायी जाती हैं, न कि यूनान या मिस्र में। सार्टन का कथन है (पृ० ४५३) कि 'होरोस्कोपोस' शब्द बहुत बाद में यूनान में बना, इसका प्रयोग मैनिलियस ने प्रथम शती में तथा क्लीमेंट (अलेक्जेंड्रिया के निवासी) ने (१५०-२२० ई०) तीसरी शती के पूर्वाध में किया। इस शब्द का प्रयोग इस काल के पूर्व नहीं जा सकता। अत्यन्त प्राचीन यूनानी कुण्डिली मिस्र से ई० पू० ४ में आयी और प्रो० नेयुगेबावर (ई० एस्० ए०, पृ० ८५, जे० ओ० एस्०, जिल्द ६३, पृ० ११५-१२४) का कथन है कि उन्हें ई० पू० ४ से ५०० ई० तक लगभग की ६० कुण्डिलयाँ प्राप्त हुई हैं। अत्यन्त प्राचीन डेमोटिक एवं यूनानी कुण्डिलयाँ ईसा की प्रथम शती में लिखी गयीं।

हमने ऊपर देख लिया है कि वैदिक काल में न केवल सामान्य ज्योतिष-विद्या (फिलत ज्योतिष) का विकास हो चुका था, प्रत्युत नक्षत्रों पर आघारित व्यक्ति-सम्बन्धी ज्योतिष अथवंवेद के काल से ही पढ़ा जाने लगा था और भाव आदि नामों से मिलती हुई नाम-संख्याओं अथवा पारिभाषिक शब्दों का आरम्भ हो चुका था, जन्म के नक्षत्र पर आघारित भविष्य-वाणियाँ की जाने लगी थीं, इतना ही नहीं, जन्म के नक्षत्र से दूर स्थित नक्षत्रों पर आघारित ज्ञान भी प्राप्त किया जाने लगा था। यह बात पश्चात्कालीन ज्योतिष-विद्या के आरम्भिक स्वख्यों की ओर, जो माध्यमिक काल में अति विकसित हुए (यथा, व्यक्ति का भविष्य जन्म-काल पर ही निश्चित हो जाता है, उसकी नियति का पता कुण्डली से लग सकता है) संकेत करती है। यह ज्ञात है कि भारत का मेसोपोटेमिया एवं पास के देशों से सम्बन्ध अति प्राचीन काल से है। सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त ई० पू० चौथी शती में यह सम्बन्ध और दृढ हो गया। ऐसा कहा जा सकता है कि सिकन्दर के आक्रमण के उपरान्त भारत ने, जहाँ पर नक्षत्र-ज्योतिष विकसित हो चुका था, वेबिलोनी स्मारक-चिह्नों एवं सीमा-पत्थरों पर अंकित राशियों की आकृतियों को लेकर अपने अनुख्य बना लिया।

बोधगया के सीमा-स्तम्भों पर बनी आकृतियों को देखकर यह बात हठात् मन में बैठ जाती है कि भारतीयों ने ई० पू० प्रथम शती में राशियों की आकृतियों की पहचान कर ली थी। स्तम्भों पर वृष से तुला, घन एवं मकर की आकृतियाँ तक्षित हैं। इससे सिद्ध हो जाता है कि राशि-जान में भारतीयों ने यूनान से कुछ भी उघार नहीं लिया, जैसा कि वेबर आदि पाश्चात्य विद्वामों ने लिखा है। बोधगया में तक्षित आकृतियाँ वेबिलोनी आकृतियों से बहुत मिलती हैं। अभाग्यवश सभी स्तम्भ सुरक्षित नहीं रह सके हैं। देखिए इस विषय में बहुआ कृत 'गया एवं बुद्ध गया' (पृ० ९०-९२, १२, जिल्द २)।

२५. उदं हि राजा वरणश्चकार सूर्याय पन्यामन्वेतवा उ। ऋ० (१।२४।८), वाज० सं० (८।२३), ते० सं० (१।४।४५।१); द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वीत चर्क परि खामृतस्य। ऋ० (१।१६४।११), अथर्ववेद (९।९।१३)।

# वर्मशास्त्र का इतिहास

वेबिलोन एवं भारत के आपसी सम्बन्ध के विषय में दो शब्द लिखना अनिवार्य है। ए० एच० सईस का कथन है कि ई० पू० तीसरी शती में बेबिलोन एवं भारत में सांस्कृतिक एवं सम्भवतः सामाजिक सम्बन्ध स्थापित था और यह सम्बन्ध स्थल-मार्ग से ही था, क्योंकि अभी तक जल-मार्ग से सम्बन्ध-स्थापन के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिल पाया है। जेनेसिसों एवं राजाओं के हिन्नू इतिहास-कथाओं में आये हुए तमिल शब्दों से सिद्ध होता है कि फिलस्तीन में मोर, चावल, भारतीय चन्दन आदि का प्रयोग होता था। लगभग ई० पू० १४०० के बोगोजकेई शिलालेख में हिट्टियों के राजा एवं मितन्नी के राजा के मध्य हुई सन्धियों से प्रकट होता है कि मितनी के वंश के लोगों के देव-दल में वैदिक देव भी सम्मिलित थे, यथा इन्द्र, वरुण, मित्र एवं नासत्य। इतना ही नहीं, बोगोजकेई के ग्रन्थरक्षागारों वाले चार पत्रकों के आलेखनों से स्पष्ट हो गया है कि मितन्नी देश के किसी किक्कुली नामक व्यक्ति ने अश्वों के शिक्षण पर जो ग्रन्थ लिखा है उसमें बहुत-से ऐसे पारिभाषिक शब्द हैं जो संस्कृत शब्दों से मिलते हैं और मितन्नी, नूजी एवं सीरिया के राजाओं एवं सामन्तों के नाम भारोपीय मूल के ही हैं। बावेर-जातक ने बेबिलोन एवं भारत के पारस्परिक व्यापार का उल्लेख किया है। यूनानी राजदूत, यथा मेगस्थनीज (जिसे सिल्युकस ने चन्द्रगुप्त मीर्थ के पास भेजा था), देईमेकस (जो चन्द्रगुप्त मीर्थ के पुत्र बिन्दुसार के राजत्व-काल में आया था), भारत में भेजे गये थे और यह कहना ठीक ही है कि भारत से भी सेल्सिंउ एवं टालेमिक दरबारों में लोग जाते थे और इस प्रकार का आदान-प्रदान अशोक द्वारा भेजे गये धर्मदूतों से बहुत पहले से ही प्रचलित था। अशोक ने पाँच राजाओं के पास बौद्ध घर्मदूत भेजे थे, जिनके नाम ये हैं-अन्तियोग (सीरिया के एंण्टिओक्स), तूरमय (मिस्र के टाल्मी द्वितीय), अन्तिकिन (मैसीडोनिया के एण्टिगोनस), मगा (सीरिन के मगस)

एवं (इपिरसं के) अलिकसुन्दर। मैथ्य के गॉस्पेल (१।१-२) में आया है कि वेथलहेम में जब ईसा का जन्म हुआ तो पूर्व से विज्ञ लोग जेरूसलेम में यह कहते हुए आये कि उन्होंने पूर्व में नवजात शिशु के रूप में प्रकट होते हुए नक्षत्र को देखा है और वे उसकी पूजा करने को आये हैं। फिलोस्ट्रेटस द्वारा लिखित टायना के अपोल्लोनियस के जीवनवृत्त (तीसरी शती के प्रथम चरण) में आया है कि भारत में वेबिलोनियों का आदर-सत्कार होता था और भारतीय राजा इआर्चस ने अपोल्लोनियस को सात अँगुठियाँ दी थीं जिनके नाम सात ग्रहों पर आघारित थे और

यहाँ पर यही सिद्धान्त प्रतिपादित करने का प्रयत्न हो रहा है कि भारतीयों ने बेबिलोन में स्मारक-चिह्नों एवं सीमा-पत्थरों बर अंकित राशि-आकृतियों को देखकर, लगभग ई० पू० चौथी एवं तीसरी शती में, वहाँ के ज्ञान को अपने यहाँ प्राचीन काल से प्रचलित नक्षत्र-ज्योतिष में यथास्थान मिलाया और राज्ञि-ज्योतिष का विकास अपने ढंग से किया। वराहमिहिर ने द्रेष्काणों की चर्चा करते हुए स्पष्ट लिखा है कि वे यवनों के मतों का दिग्दर्शन करा रहे हैं। यदि सम्पूर्ण भारतीय ज्योतिष यवनों से लिया गया होता तो वराहमिहिर उसे स्पष्ट कहते और उनके मतों का विवरण क्यों उपस्थित करते ?

> म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते कि पुनर्देवविद् द्विजः।। (बृहत्संहिता २।१५)

वराहमिहिर के इस कथन से स्पष्ट है कि यवन ज्योतिष-परम्परा एवं भारतीय ज्योतिष-परम्परा एक ही नहीं थी और यवनों ने ज्योतिष पर संस्कृत में ग्रन्थ लिखे थे। तराह ने स्पष्ट रूप से कई बातों पर यवनों से विरोध प्रकट किया है।<sup>३६</sup> ई० पू० २०० के आसपास वासन्तिक विषुव (दिन-रात्रि का सममान) मेष राशि

२६. वराह एवं यवनों के अन्तर्विभेदों में कुछ निम्न हैं: (१) यवनों के मतों के अनुसार सभी ग्रह होरा

398

जिन्हें उसे सप्ताह के दिनों में पहनना था।

मण्डलीय रेखा के आरम्भ में था, जो मेष राशि की आकृति से सर्वथा मिलती-जुलती थी। भारतीय ज्योतिर्विद्, जब मेष आदि राशियों का प्रयोग करने लगे, तो वे राशियों की गणना में कृत्तिका से आरम्भ करने की परिपादी छोड़ कर अश्विनी नक्षत्र से करने लगे और उसे प्रथम नक्षत्र के रूप में मानने लगे, यद्यपि उत्तरा-भाद्रपदा की अग्रगति के कारण वासन्तिक विषुव का विन्दु पीछे रह गया था। ईसा पूर्व की शतियों में राशि-पद्धति के विषय में भारतीय ज्योतिषियों के प्रारम्भिक प्रयासों का विकास जानना एवं उसका वर्णन करना कठिन है, क्योंकि वराह-मिहिर के श्रेष्ठ ग्रन्थ वृहज्जातक ने सभी पूर्वदर्ती ग्रन्थों को ग्रस लिया और वे ऋमशः काल के मुख के ग्रास हो गये, और यही बात टाल्मी के दो ग्रन्थों 'सिण्टैनिसस' (या एल्मागेस्ट) एवं 'टेट्राबिब्लोस' के विषय में भी है, नयोंकि उन्होंने भी अपनी श्रेष्ठता से अपने पूर्ववर्ती युनानी ज्योतिष-प्रन्थों की श्री छीन ली और वे इन दोनों के प्रभाव के कारण कमशः विलुप्त हो गये। यद्यपि सभी विद्वानों ने यह माना है कि यूनानी कुण्डली-ज्योतिष वेबिलोनी ऐस्ट्रॉनॉमी (ज्योति:शास्त्र) एवं ऐस्ट्रॉलॉजी (फिलत ज्योतिष) से प्रभावित हुआ था, किन्तु दोनों के बीच की सम्बन्ध-रेखा विलुप्त हो गयी है। यह सम्भव है कि भारतीय एवं युनानी पढ़ितयों में बहुत-सी समान बातें पायी जायँ, क्योंकि दोनों पर वेविलोनी पद्धति का प्रभाव था। किन्तु ऐसा कहना कि भारतीय पद्धति, जो वराहिमिहिर द्वारा विकसित हुई, फिर्मिक्स एवं पौलस अलेक्जिण्ड्रिनस से उधार ली गयीं, सर्वथा भ्रामक है। प्रो॰ नेयुगेबावर ने, ऐसा कहते हुए कि सूर्यसिद्धान्त युनानी केन्द्रभ्रष्ट एवं परिघि-विधियों (एक्सेण्ट्रिक एवं एपिसाइक्टिक डीवाइसेज) पर अवलम्बित है, स्वीकार किया है कि वे विधियाँ भारतीयों द्वारा परिमाजित की गयीं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि अनुकरण नहीं हुआ प्रत्युत प्रारम्भिक प्रेरणा का बुद्धिमानी से परिमार्जन किया गया। हमने पहले ही देख लिया है कि बृहज्जातक द्रेष्काणों एवं भावों (कुण्डली के स्थानों) के बारे में फिर्मिकस से मतैक्य नहीं रखता। प्रस्तुत लेखक की यही प्रमुख घारणा है और प्रतिपादन है कि भारतीय ज्योतिष में टाल्मी के पूर्व ही राशियों एवं भावों के विषय में विकास हो गया था।

कुण्डलियों अथवा जन्मपत्रों का निर्माण केवल व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत कम्पनियों, जहाजों, पशुओं, गृह-नीवों, नगरों एवं देशों के जन्मपत्र भी बनते हैं। जब कोई व्यक्ति कोई बात जानने के लिए ज्योतिषी के पास जाता है तो ज्योतिषी प्रश्न करने के काल की राशि (लग्न) का ज्ञान करता है। उस दिन एवं काल के ग्रहों के स्थानों की गणना करता है और तब शकुन एवं भावी लक्षण आदि बताता है। जन्म-पत्रिका बनाने के

(राशि के अर्थांश) के स्वामी हो सकते थे, किन्तु बृहज्जातक (१।११-१२) में ऐसी वात नहीं है; (२) यवनों के अनुसार चन्द्र कभी भी हानिकर ग्रह नहीं है, किन्तु बृ० जा० (२।५) इसे कुछ बातों में अहितकर मानता है; (३) यवनों ने मंगल को सात्त्विक माना है, किन्तु बृ० जा० (२।७) ने इसे तामिसक माना है; (४) यवनों के अनुसार ग्रह आपस में केवल मित्र या शत्रु हो सकते हैं, किन्तु बृ० जा० (२।१५) में आया है कि वे न तो मित्र ही हो सकते हैं और न शत्रु; (५) यवन एवं वराह (बृ० जा० २।१८) ग्रहों की तात्कालिक मित्रता एवं शत्रुता के विषय में मर्तक्य नहीं रखते; (६) यवनों ने वज्रयोग को चर्चा की है, किन्तु बृ० जा० (१२।३ एवं ६) के मत से ऐसा योग असम्भव है; (७) यवनों के मत से केवल कुम्भ-द्वादशांश अशुभ है, किन्तु बृ० जा० (२१।३) ने इसमें दोष दिखाया है।

२७. प्रश्न-काल से सम्बन्धित ज्योतिष पर दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, वराहिमिहिर के पुत्र पृथुयशा की षट्पञ्चाशिका एवं उत्पल की आर्यासप्तित । प्रथम ग्रन्थ के दो श्लोक ये हैं—-'होरास्थितः पुर्णतनुः शशांको जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन । क्षिप्रं प्रणष्टस्य करोति लिब्धं लाभोपयातो बलवाज् शुभश्च ॥ दूरगतस्यागमनं सुतधनसहजस्थितंग्रंहैर्लंग्नात् ।

### वर्मज्ञास्त्र का इक्किस

लिए वर्ष, मास, दिन, घण्टा या घटिका एवं जन्म का स्थान जानना आवश्यक है। वम्बई, पूना या कलकत्ता जैसे नगरों के अक्षांशों एवं देशान्तरों के आघार पर पंचांग वनते हैं। ये ऐसी तालिकाओं (सारणियों) का निर्माण करते हैं जिनके अनुसरण से व्यक्ति के जन्म-काल की राशि का ज्ञान होता है। किन्तु इन नगरों की तालिकाओं से अन्यत्र बने पंचांगों में उचित लग्न के ज्ञान की यथार्थता नहीं पायी जा सकती। जन्म-पत्र वर्ग-आकृतियों में या वृत्त-आकृतियों में बनते हैं, किन्तु वर्ग-आकृतियों में भी लग्न रखने के कई भेद हैं (जन्म के समय क्षितिज में उदित होती हुई राशि ही लग्न है)।

सौम्यैनंष्टप्राप्तिः लघ्वागमनं गुरुसिताम्याम् ॥' (५ एवं ३५)। ३५ वें इलोक में प्रयुक्त 'लग्नात्' का अर्थ है प्रश्न के समय का लग्न। उसी प्रत्य का ५५ वां इलोक है—'अंशकाज्जायते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः। राशिम्यः कालिबिबेशा वयो जातिश्च लग्नपात्॥' इसका अर्थ है 'प्रश्न करते समय के लग्न के नवांश से हृत वस्तु का संकेत मिलता है, लग्न के द्रेष्काणों से चोर की विशेषताओं का पता चलता है (जैसा कि बृ० जा० अध्याय २७ में उल्लिखित है), राशियों से समय, दिशा एवं स्थान का परिज्ञान होता है, तथा लग्न के स्वामी से चोर की अवस्था एवं जाति जानी जाती है।'

388

## अध्याय १७

# धार्मिक कृत्यों के मुहूर्त

अब हम घार्मिक कृत्यों एवं व्यक्तियों के कर्मों के लिए व्यवस्थित मुहूतों पर प्रकाश डालेंगे। किन्तु ऐसा करने में हम थोड़े ही कृत्यों एवं कर्मों का उल्लेख करेंगे।

सर्वप्रथम कुछ सामान्य नियमों का उल्लेख आवश्यक है। आथवंण ज्योतिष' का कथन है कि यदि व्यक्ति सफलता चाहता है तो उसे तिथि, नक्षत्र, करण एवं मुहूर्त पर विचार करके कमें या कृत्य करना चाहिए; यि उचित तिथि न मिल सके तो शेष तीनों पर आश्रित होना चाहिए, यदि प्रथम दो (अर्थात् तिथि एवं नक्षत्र) न प्राप्त हो सकें तो अन्तिम दो का आश्रय लेना चाहिए, किन्तु यदि प्रथम तीन (तिथि, नक्षत्र एवं करण) न प्राप्त हो सकें तो केवल मुहूर्त का सहारा लेना चाहिए, किन्तु यदि प्रथम तीन (तिथि, नक्षत्र एवं सफलता मिलती है। कुछ वार्मिक कृत्य प्रतिपादित कालों में ही होने चाहिए, उन परिस्थितियों में वृहस्पित एवं शुक्र की अवस्था (बाल्य एवं वृद्धावस्था), वृहस्पित का सिह राशि में होना, या दक्षिणायन तथा मलमास का घ्यान नहीं रखना चाहिए, यथा पुंसवन से लेकर अन्नप्रान्त तक के कृत्यों में। राजमार्तण्ड में आया है कि 'आतं अवस्था में ग्रहों एवं दिनों की ज्योतिष-स्थित पर विचार नहीं करना चाहिए, मृगु ने कहा है कि ये नियम (शुभ स्थितियों से संबंधित) तभी माने जाने चाहिए, जब जीवन स्वस्थ हो (बाते ठीक दशा में हों)। 'सोम, बुघ, बृहस्पित एवं शुक्र वार सभी कमों के लिए शुभ फलदायक हैं; केवल वे ही कमें रिववार, मंगलवार एवं शनिवार को सफल होते हैं जिनको करने के लिए वे प्रतिपादित हों अथवा उचित ठहराये गये हों। किन्तु नारदीय पुराण (१।५६।३५९-६०) का कथन है कि बुववार, वृहस्पितवार एवं शुक्रवार सर्वोत्तम हैं, रिववार एवं सोमवार की स्थिति मध्यम है तथा अन्य दो, मंगलवार एवं शनिवार उपनयन के लिए निन्द ठहराये गये हों।

सामान्य नियम यह है कि सभी संकल्पित कर्म सफल होते हैं यदि वे तब किये जायेँ जब लग्न से तीसरे, छठे, १० वें एवं ११ वें घर किसी शुभ ग्रह के साथ हों या उन पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टि हो और जब लग्न

१. चतुर्भिः कारयेत्कर्म सिद्धिहेतोविचक्षणः । तिथिनक्षत्रकरणमु तेनेति निश्चयः ।। दूरस्थस्य मुहूर्तस्य क्रिया च त्वरिता यदि । द्विजपुण्याहघोषेण कृतं स्यात्सर्वसम्पदम् ।। आयर्वणज्योतिष (७।१२ एवं १६) ।

२. ग्रहवत्सरशुद्धिश्च नार्तं कालमपेक्षते । स्वस्थे सर्विमिदं चिन्त्यमित्याह भगवान्भृगुः ॥ राजमार्तण्ड (क्लोक

३८८)।
३. सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः । भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिच्यति ।। रत्नमाला (३।१५); आचार्यसौम्यकाव्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः। वारौ तु मध्यमौ वैव व्रतेन्यौ निन्दितौ मतौ ।। नारदीयपुराण (१।५६।३५०-६९)। दोनों से संयुक्त हो, जब ८ वाँ एवं १२ वाँ घर दोष रहित हो और चन्द्र तीसरे, ६ठे, १०वें या ११वें घर में हो (मुह्तेंचिन्तामणि, २।४४)।

यह द्रष्टच्य है कि हमारे मध्यकालिक धर्मशास्त्रकारों ने आरम्भिक सरल उत्सवों एवं कृत्यों को मुहुर्त के

विस्तारों से बोझिल बना डाला है।

संस्कारों में हम सर्वप्रथम जातकर्म (बच्चे के जन्म के समय के कृत्य) को उठाते हैं। रत्नमाला में आया है—जातकर्म का सम्पादन मृदु, ध्रुव, क्षिप्र या चर नक्षत्र में होना चाहिए, सन्त लोग नामकरण के लिए वृहस्पति या शुक्र की चतुष्टय स्थिति (शिश् की कुण्डली के पहले, चौथे, सातवें या दसवें भाव) की प्रशंसा करते हैं (१३।२) । जन्म के विषय में कुछ लेखक (यथा, मुहूर्तमार्तण्ड, ४।१९) गण्डान्त की चर्चा करते हैं, जो जन्म, विवाह, यात्रा या आक्रमण के लिए अशुभ है; अर्थात् १५ वीं तिथि का दो घटिकाओं तक प्रतिपदा से सायुज्य, इसी प्रकार एक घटिका के अर्घ माग तक जब कर्क एवं सिंह, या वृश्चिक एवं घनु, या मीन एवं मेष संयुक्त हों, और चार घटिका तक जब रेवती एवं अश्विनी, आश्लेषा एवं मघा, ज्येष्ठा एवं मूल एक-दूसरे से संयुक्त हों। ये गडान्त सायुज्य बच्चे के पिता या माता आदि के लिए हानिकारक होते हैं। इसी प्रकार के फल की घोषणा आश्लेषा एवं मूल के कुछ भागों में हुए जन्म के विषय में भी की गयी है। नामकरण के विषय में मन् ने कहा है कि जन्म के उपरान्त १० वें या १२ वें दिन में या किसी शुभ तिथि में या शुभ गुण वाले मुहर्त या नक्षत्र में इसका सम्पादन होना वाहिए। वौल या चुडाकमं के विषय में आश्व॰ गृ॰ (१।१७।१) में आया है कि इसका सम्पादन कुलपरम्परा के अनुसार जन्म के उपरान्त तीसरे वर्ष में होना चाहिए; किन्तु मन् (२।२५) के अनुसार यह पहले या तीसरे वर्षं में सम्पादित हो सकता है। चौल, उपनयन, गो-दान एवं विवाह के विषय में आश्व० गृ० (१।४।१-२) ने कहा है कि इनका उचित काल है उत्तरायण, शुक्लपक्ष तथा शुभ नक्षत्र। आपस्तम्बगृह्यसूत्र (१६।३) में आया है कि नील का सम्पादन जन्म के तीसरे वर्ष में पुनर्वसु नक्षत्र में होना चाहिए। किन्तु मध्यकालिक धर्मशास्त्रलेखकों ने बहुत-सी बातें भर दी हैं। देखिए राजमार्तण्ड (जिसमें इस विषय में ३२ श्लोक हैं), स्मृतिच० (१, पृ० २३), अपरार्क (पु० २९, याज्ञ० १।११-१२)।

ऐसे ही नियम प्रौढ लोगों के सामान्य क्षौर (बाल बनवाने) के विषय में भी हैं। कुछ क्लोक यों हैं—'निम्नोकत नक्षत्र क्षौर के लिए हितकर हैं—हस्त, चित्रा, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, घनिष्ठा, शतिभवक, रेवती, अिवनी, ज्येष्ठा, पुष्य एवं पुनर्वसु या जब नक्षत्र उदित होते समय चन्द्र से युक्त हो और ताराबल हो। मकर, घनु, कन्या, मिश्रुन या वृष के उदय के समय भी क्षौर का सम्पादन प्रतिपादित है। ऐसा करने से सम्पत्ति, शिवत एवं बुद्धि का विकास होता है। जब किसी अन्य राशि के उदित होते समय क्षौर किया जाता है तो व्याघि, भय की उत्पत्ति होती है। राजा की आजा, बाह्मण की सम्मति, विवाह के समय, मृत-सूतक पर, बन्दीगृह से छूटने पर तथा किसी वैदिक यज की दीक्षा लेने के समय क्षुरकर्म सब समय आजापित है।

४. मृदुध्रुविक्षप्रचरेषु भेषु सूर्ताविषयं खलुजातकमं। गुरीभृगौ वापि चतुष्टयस्थे सन्तः प्रशंसन्ति च नामषेयम्।। रत्नमाला (१३।२)।

५. नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहुतें वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।। मनु (२।३०)।

६. हस्तात्रयं मृगशिरः श्रवणत्रयं च पौष्णाश्विश्वकृत्रगुरुभानि पुनर्वसू च। क्षौरे तु कर्मणि हितान्युदयक्षणे च युक्तानि,चोडुपतिना यदि शस्तताराः।। क्षौरं प्रशस्तं मृगचापलग्ने कन्यास्यलग्ने मिथुने वृषे च। पुष्टिं बलं

अव हम उपनयन के मुहूर्त की चर्चा करेंगे। यह संस्कार दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्करों में एक है। आश्व० गृ० (१।४।१) ने चार संस्कारों के लिए एक बहुत सरल नियम दिया है, जिसका उल्लेख अभी थोड़ी दूर पहले किया जा चुका है। आप० घ० सू० (१।१।१।१९) के मत से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का उपनयन कम से वसन्त, ग्रीष्म एवं शरद में होना चाहिए और अवस्था गर्भाघान के उपरान्त कम से ८, ११ एवं १२ वर्ष होनी चाहिए। देखिए यही बात मनु (२।३६) एवं याज्ञ० (१।१४) में। यह द्रष्टव्य हैं कि न तो किसी सूत्र ने और न मनु एवं याज्ञ की स्मृतियों ने इस विषय में ग्रह-स्थिति या राशियों या सप्ताह-दिनों या मासों की स्थिति का उल्लेख किया है। आगे चल कर बहुत से नियम बनते और जुटते चले गये। राजमार्तण्ड में ७० क्लोक (३०४ से ३७३ रलोक) हैं। इसके अनुसार वर्ष-गणना गर्भाघान से की जाती है। उपनयन के लिए उचित मुहूर्त प्राप्त करना वड़ा दुष्कर कार्य हो गया है। एक नियम यह है--उपनयन एवं विवाह आदि शुभ कृत्य जन्म के नक्षत्र, मास, दिन पर नहीं होने चाहिए और जेष्ठ पुत्र या ज्येष्ठ पुत्री के शुभ कृत्य ज्येष्ठ मास में नहीं किये जाने चाहिए। जन्म मास के विषय में ऋषियों में मत-भेद है। विसष्ठ के मत से केवल जन्म-मास वर्जित है; गर्ग के अनुसार जन्म से केवल आठ दिन, अत्रि के अनुसार केवल दस दिन और भागुरि के अनुसार जन्म से केवल १५ दिन वर्जित हैं (राजमार्तण्ड, नि॰ सि॰, पृ॰ २६३ में उद्धृत)। उपनयन-सम्पादन चन्द्र के न रहने पर (जब वह सूर्ये की किरणों से न चमके), शुक्र के छिप जाने पर, जब सूर्य राशि के प्रथम अंश में रहे, अनध्याय (वेदाध्ययन जब वर्जित हो) के दिनों में तथा गलग्रह में नहीं होना चाहिए (अपरार्क, पृ० ३२; स्मृतिच० १, पृ० २७; हेमाद्रि, काल, पृ० ७५१)। कुछ तिथियाँ एवं काल गलग्रह कहलाते हैं, यथा सप्तमी से विद्ध अष्टमी, त्रयोदशी से चतुर्दशी, प्रतिपदा से द्वितीया आदि। यदि बृहस्पति जन्म की राशि से दूसरी, ५ वीं, ७ वीं, ९ वीं या १० वीं राशि में हो तब वह अति शुभ है; जब वह जन्म-राशि से प्रथम, तीसरी, छठी या १० वीं राशि में हो तो शान्ति कृत्य से शुद्ध होने पर शुभ होता है; किन्तु जब बृहस्पति जन्म-राशि से चौथी, ८ वीं या १२ वीं राशि में हो तो वह अशुभ माना जाता है (मुहूर्तचिन्तामणि ५१४६)।

ज्योतिषियों ने एक सुविधाजनक सिद्धान्त यह निकाला है कि दुष्ट ग्रह का शमन किया जा सकता है और हानिकर फल दूर किये जा सकते हैं, या यदि सम्पूर्ण दोष दूर न किया जा सके तो शान्ति कृत्यों के द्वारा उनका प्रभाव कम किया जा सकता है, या रत्नों या धातुओं आदि के व्यवहार से दोष का शमन हो सकता है। यथा मंगल एवं सूर्य को प्रसन्न करने के लिए मूंगा पहनना चाहिए, शुक्र एवं चन्द्र के लिए चौदी, बुध के लिए सोना, वृहस्पति के लिए मोती, शनि के लिए लौह तथा अन्य दो (राहु एवं केतु) के लिए राजावर्त घारण करना चाहिए (रत्नमाला, १०।१५; पीयूषधारा, मु० चि० ४।११)। और देखिए रत्नमाला (१०।२९), बृ० सं० (१०३।४८)।

उपनयन में बृहस्पित को बड़ी महत्ता प्राप्त है, क्योंकि वह देवों का गुरु है एवं वाणी का स्वामी है और उपनयन का सम्बन्ध वेदाध्ययन से है। बृहस्पित की स्थिति पर ध्यान दिया जाता है। किन्तु बृहस्पित के ठीक न रहने पर कुछ अपवाद भी लक्षित किये गये हैं। एक अपवाद यह है— यदि बृहस्पित जन्म-राशि से ८ वें घर में हो या सिंह राशि (जो सूर्य का स्वगृह है) में हो या नीच (मकर में) हो, या अपने शत्रु के घर में हो तो भी उपनयन

बुद्धिविवर्धनं च शेथेषु रोगं कुरुते भयं च ।। नृपात्रया बाह्यणसंमतेन विवाहकाले मृतसूतके च । बद्धस्य मोक्षे ऋतुदीक्षणे च सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्म भेषु ।। राजमार्तण्ड (२५८, २७२, २७९), भुजबल (पृ० १३०-१३१), अपरार्क (पृ० ३०), स्मृतिच० (१,पृ० २३)। अन्तिम श्लोक बृ० सं० (९८।१४) में भी है।

शुभ होता है यदि चैत्र में सम्पादित हो, जब कि सूर्य मीन (बृहस्पित के स्वगृह) में हो। यह अपवाद इसिलए है कि उपनयन का मुख्य काल है गर्भाघान से आठवाँ वर्ष और अन्य दशाएँ गौण महत्त्व की होती हैं (घर्मसिन्धु, पृ० २०१)। ब्राह्मणों के उपनयन एवं समावर्तन में कुछ ही नक्षत्र शुभ माने गये हैं, यथा हस्त, चित्रा, स्वाती, पृष्य, घनिष्ठा, रेवती, अश्विनी, मृगशीर्ष, पुनवंसु एवं श्रवण; जब चन्द्र शक्तिशाली हो (अर्थात् शुक्ल पक्ष की पंचमी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक) तो किसी प्रतिपादित तिथि पर उपनयन सम्पादित होना चाहिए (हेमादि, काल, पृ० ७४९; राजमा०, श्लोक ३१६; अपरार्क, पृ० ३२)।

विवाह के लिए अति जटिल नियम प्रतिपादित हैं। आश्व० गृ० (१।४।१-२) ने चार संस्कारों (चौल उपनयन, गोदान एवं विवाह) के लिए बड़ा सरल नियम दिया है—उत्तरायण, शुक्ल पक्ष एवं कोई शुभ नक्षत्र। बाँधा० गृ० (१।१।१८-२०) के अनुसार विवाह किसी भी मास में हो सकता है, किन्तु कुछ लोगों के अनुसार आषाढ़, माघ एवं फाल्गुन वर्जित हैं, शुभ नक्षत्र हैं रोहिणी, मृगशीर्ष, उत्तरा-फाल्गुनी एवं स्वाती। आप० गृ० में भी यहीं बात है। कौशिकसूत्र (७५।२-४) मध्यकालीन एवं वर्तमान काल के व्यवहार की विधि तक पहुँच जाता है और प्रतिपादित करता है कि विवाह-सम्पादन कार्तिक-पूणिमा से वैशाख-पूणिमा तक हो सकता है, या अपने मन के अनुसार हो सकता है, किन्तु चैत्र का मास या आघा चैत्र छोड़ देना चाहिए। मध्य एवं वर्तमान काल में मतैक्य नहीं है। राजमातंण्ड ने चैत्र एवं पौष को छोड़कर सभी मास मान लिये हैं। किन्तु धर्मसिन्धु के मत से माघ, फाल्गुन, वैश्वाख एवं च्येष्ठ शुभ हैं, मार्गशीर्ष मध्यम है; कुछ प्रन्थों में आषाढ़ एवं कार्तिक आज्ञापित हैं और देशाचार को मान्यता दे दी गयी है।

अब नक्षत्रों, सप्ताह-दिनों, ग्रह-स्थितियों, विशेषतः बृहस्पित, शुक्र, सूर्य एवं चन्द्र पर विचार करना चाहिए। किन्तु ऐसा करने के पूर्व ११ वीं शतीं के पूर्वार्घ में प्रणीत राजमार्तण्ड एवं भुजबल की कन्या-विवाह-सम्बन्धी सम्भित पर ज्योतिष में विश्वास करने वाले तथा उसके अनुसार चलने वाले व्यक्तियों का घ्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। राजमार्तण्ड में आया है—जब (आकामक) राजा ने देश पर अधिकार कर लिया हो, जब युद्ध चल रहा हो, जब माता-पिता का जीवन भय में (संशय में) हो तो प्रौढ कन्या के विवाह के लिए किसी (शुभ) काल की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए; यदि कन्या अति प्रौढ हो और धर्म-विरोधिनी न हो तो उसे, अविशुद्ध होने पर भीं, विवाह के लिए दे देना चाहिए, और इस पर विचार नहीं करना चाहिए कि चन्द्र एवं लग्न शक्तिशाली हैं अथवा

७. राज्ञा प्रस्तेऽथवा युद्धे पितणां प्राणसंशये। अति प्रौढा तु या कत्या न तु कालं प्रतीक्षते।। अतिप्रौढा तु या कत्या न तु धर्मविरोधिनी। अविशुद्धा तु सा देया लग्नचन्द्रवर्लीवना।। राजमातंण्ड (श्लोक ३९७-३९८), उद्घाहतस्व (पृ० १२४), नि० सि० (पृ० ३०३) द्वारा उद्धृत। संवर्त (श्लोक ६७) में प्रतिपादित है कि यौवनावस्था से पूर्व कत्या का निवाह हो जाना चाहिए, किन्तु आठ वर्ष की कन्या का निवाह प्रशंसित होना चाहिए। पराशर (७।९) का कथन है कि यौवनावस्था प्राप्त कन्या से निवाह करने पर ब्राह्मण पंक्ति में बैठ कर भोजन करने के अयोग्य हो जाता है और वह वृषली का पित हो जाता है। राजमार्तण्ड (श्लोक ३९१) में आया है: 'अष्टवर्षा भवेद गौरी दशवर्षा च कन्यका। संप्राप्ते द्वादशे वर्षे परस्तानु रजस्वला।।' अतः प्रौढ कन्या के निषय में कुछ लांछन लग गये हैं। भुजबल (पृ० १५२) में आया है: 'दशवर्षव्यतिकान्ता कन्या शुद्धिवर्वाजता। तस्मात्तारेन्द्रलग्नानां शुद्धौ पाणिग्रहो मतः॥' अतः राजमार्तण्ड ने 'अविशुद्धा' शब्द का प्रयोग किया है। उद्घाहतत्त्व ने इस नियम को यह कहकर मृदु बना दिया है कि प्रौढ कन्या के निवाह में केवल चन्द्र एवं लग्न का निचार करना चाहिए।

नहीं। भुजवल (या भुजवलमीम) ने कहा है—ऋषियों की घोषणा है कि कण्या के विषय में ग्रहों, वर्षों, मास. अयन, ऋतु एवं दिनों की शुद्धता (शुभकरता) पर तभी विचार होता है जब वह दस वर्षों की रहती है (उद्वाह-तत्त्व, पृ० १२४ एवं ज्योतिस्तत्त्व, पृ० ६०५ में उद्धृत)।

विवाह-नक्षत्रों के विषय में मतभेद है, किन्तु रोहिणी, मृगशीषं, मधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरामाद्रपदा, हस्त, स्वाती, मूल, अनुराधा, रेवती के विषय में सभी सहमत हैं (बृ० सं० १००११)। हरदत्त आदि ने ४ नक्षत्र और जोड़ दिये हैं, यथा, अध्वनी, चित्रा, श्रवण एवं धनिष्ठा। किन्तु यदि इनमें कोई किसी दुष्ट (या हानिकर) ग्रह से संयुक्त हो तो उसे छोड़ देना चाहिए। सप्ताह में सोम, बुध, बृहस्पति एवं शुक्रवार शुभ हैं, और अन्य तीन मध्यम हैं। ज्योतिस्तत्त्व द्वारा उद्भृत एक श्लोक के अमुसार सप्ताह के दिनों का रात्रि में प्रभाव नहीं होता, विशेषतः मंगलवार, शनिवार एवं रिववार का। तिथियों में अमावास्या वर्जित है; रिक्ता तिथियाँ (चौथी, नवमी एवं चतुर्दशी) बुछ अच्छी हैं; अन्य तिथियाँ शुभ फलदायक हैं; शुक्ल पक्ष अत्युत्तम है; तथा कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी तक की तिथियाँ मध्यम हैं।

यदि वृहस्पति शुभ हो तो छ: वर्षों के उपरान्त कन्या का विवाह सम वर्षों में करना चाहिए, किन्तु जब सूर्य शुभ हो तो लड़के का विवाह विषम वर्षों में करना चाहिए; किन्तु दोनों का विवाह शुभ है यदि चन्द्र कल्याणकर हो। यदि बृहस्पति उच्च हो, स्वगृही हो या अपने मित्र के गृह में हो तो वह पूर्ण जीवन, धन-सम्पत्ति के विविध प्रकार आदि देता है; किन्तु यदि वह प्रथम या आठवें गृह में हो, या नीच हो, या अपने शत्रु के गृह में हो, या अस्त हो तो वह वैघव्य एवं सन्तित-कलेश प्रदान करता है। विवाह के समय लग्न के विषय में निम्नोक्त ग्रहों को वर्जित करना चाहिए : सूर्य को अपने से तीसरे, छठे एवं ८वें घर में ; चन्द्र को दूसरे, तीसरे या चौथे घर में, मंगल को तीसरे या छठें घर में; बुध एवं बृहस्पति को आठवें एवं १२ वें घर में। यदि शुक्र छन में हो, या अपने से दूसरे, चौथे, पाँचवें, नवें या १०वें घर में हो, और उससे शनि, राहु एवं केतु तीसरे, छठे एवं आठवें घर में हों, और लग्न से ११ वें घर में प्रत्येक ग्रह हो तो विवाह से आनन्द की प्राप्ति होती है। यदि विवाह के समय बृहस्पति जन्म की राशि से दूसरे, ५ वें, ७ वें ९ वें एवं ११ वें घर में हो तो वह कच्या के लिए शुभ होता है; यदि वह पहले, तीसरे, छठे या १० वें में हो तो वह शान्ति-कृत्य कर देने से शुभकर हो जाता है; यदि वह चौथे, ८ वें या १२ वें में हो तो अशुभकर होता है; किन्तु यदि वह विवाह के समय कर्क, घनु या मीन में हो तो अशुभता का त्याग कर देता है, भले ही वह चौथे, ८ वें, या १२ वें में (जन्म की राशि से) हो। आपित्त काल में चौथे या १२ वें घर में अवस्थित बृहस्पति दो शान्तियों (बृहस्पति-होमों) से तथा आठवें में अवस्थित बृहस्पति तीन शान्तियों (शान्ति-कृत्यों) से शुभ हो जाता है। लड़के (वर) के विषय में जन्म की राशि से तीसरे, ६ठे, १०वें या ११वें घर का सूर्य शुभ होता है; किन्तु अन्य राशियों में अवस्थित सूर्य होम कर देने से शुभ हो जाता है।

यदि कन्या यौवनावस्था में आ गयी हो तो बृहस्पित की शुगता पर विचार नहीं करना चाहिए, यहाँ तक कि यदि कन्या की राशि से बृहस्पित ८वें गृहमें हो तब भी तीन शान्तियाँ करके विवाह सम्पादित कर देना चाहिए।

यदि वृहस्पति सूर्य के घर (अर्थात् सिंह राशि) में हो और सूर्य बृहस्पति के घर (मीन या घनु) में हो तो इसे गुर्बादित्य कहा जाता है और यह सभी कृत्यों के लिए निन्दित माना जाता है।

सिंहस्य गुरु के विषय में मध्यकाल के प्रन्थों में बहुत कुछ उल्लिखित हैं, जिसे आज भी लोग यथावत् मानते आये हैं। राजमार्तण्ड ने इस पर छः श्लोक लिखे हैं। जब बृहस्पित (गुरु) सिंह राशि में होता है तो कृतिपय कृत्य अशुभ माने जाते हैं, यथा रणयात्रा, विवाह, उपनयन, गृह-प्रवेश, देव-प्रतिमा-प्रतिष्ठापन। ऋषियों ने कुछ

परिमार्जन उपस्थित किये हैं। पराशर में आया है कि गंगा एवं गोदावरी के मध्य के देशों में, जब वृहस्पति सिहस्य हो, विवाह -कृत्य नहीं करना चाहिए तथा सभी (भारत के) देशों में जब वृहस्पति मघा नक्षत्र (अर्थात् सिह के प्रथम नक्षत्र) में हो और सूर्य मीन में हो तो विवाह नहीं होना चाहिए। विसष्ठ ने कहा है—'गंगा के उत्तर एवं गोदावरी के दक्षिण के देशों में सिहस्य गुरु में विवाह एवं उपनयन बुरा नहीं है (भुजबल, पृ० २७५; राजमार्तण्ड, श्लोक १०५७; नि० सि०, पृ० ३०५)।

मुहतों के जिटल स्वभाव के कारण विवाह के लिए गोधूलि या गोरज नामक लघु मार्ग अपनाया जाता है। राजमार्तण्ड ने इस विषय में १० बलोक दिये हैं (५५०-५५९) जिनमें तीन यों हैं — वह समय जब कि सूर्य अस्त होता हुआ कुंकुम या लाल चन्दनलेप के समान प्रतीत होता है, जब कि नभ में स्थित तारागण अपने प्रकाश से टिमटिमाते हुए नहीं दीखते, जब कि नभ गायों के खुरों की नोकों से चूणें की हुई घूलि से भर जाता है वह वेला घनघान्य की वृद्धि करने वाली गोघूलिका कहलाती है। इस मुहूर्त में ग्रह, तिथियाँ, विष्टि या तारागण या नक्षत्र (ऋक्ष) विघ्न नहीं उत्पन्न करते; यह अव्याहत योग भागव द्वारा विवाह-काल एवं यात्रा के लिए उद्घोषित है। जब कोई अन्य विशुद्ध लग्न नहीं हो तो ऋषिगण इस गोघूलिका (मुहूर्त) को विशुद्ध कह कर आदेश देते हैं; किन्तु यदि विशुद्ध एवं बलवान् लग्न प्राप्त हो जाय तो गोघूलिका मुहूर्त शुम फल नहीं प्रदान करता। घर्मसिन्धु (पृ० २५४) ने केवल मुहूर्तमार्तण्ड (४।३८) को उद्धृत किया है, जहाँ यह आया है कि यह मुहूर्त केवल शूद्रों के लिए है, किन्तु अत्यन्त कठिनाई के समय, जब कि कन्या यौवनावस्था को प्राप्त हो गयी हो, यह बाह्यणों एवं बन्य वर्णों के लोगों के लिए शुम हो सकता है। आजकल भी कभी-कभी सभी वर्णों द्वारा यह गोरज-मुहूर्त अपनाया जाता है।

विवाह-सम्बन्धी बहुत-से जिटल ज्योतिषीय विषय हैं, यथा दशयोगचक एवं सप्तशलाकाचक, जिनको हम स्थान-संकोच से यहीं छोड़ देते हैं। किन्तु एक विषय पर, जिसके बारे में आज भी विचार होता है, हम संक्षेप में कुछ कहेंगे, यथा वघू एवं वर की जन्म-राशि एवं नक्षत्रों से सम्बन्धित आठ कूटों की तुलना पर गुणों की गणना करना। इस विषय को वधूवरमेलापक विचार या घटितगुणविचार की संशा मिली हैं। आठ कूट ये हैं—वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, गणमैत्री, राशिकूट एवं नाड़ी (मु० चि० ६।२१)। वर्ण का एक गुण या लक्षण, वश्य के दो, तारा के तीन . . . इस प्रकार कुल ३६ गुण हैं। इनमें सभी, कहीं भी व्याख्यायित नहीं हैं, यहाँ तक कि सब से अन्त में आने वाले ग्रन्थ भी सभी कृटों का विवरण नहीं उपस्थित करते। धर्मसिन्धु ने अन्त के चार कूटों पर ही विचार किया है। आजकल भी बाह्मणों एवं अन्य जातियों में गण एवं नाड़ी को विशेष महत्त्व दिया

८. यावत्कुंकुमरक्तचन्दनिभोष्यस्तं गतो भास्करो यावच्चोडुगणो नभःस्थलगतो नो दृश्यते रिश्मिभः। गोमिश्चापि खुराप्रभागदिलतं व्याप्तं नभः पांसुभिः सा वेला धनधान्यवृद्धिजननी गोधूलिका शस्यते।। नास्मिन्प्रहा न तिथयो न च विष्टिवारा ऋकाणि नैव जनयन्ति कदा न विष्नम्। अव्याहतः स तु नामवा (सततमेव?) विवाहकाले यात्रासु चायमुदितो भृगुजेन योगः।। लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद् गोधूलिकं साधु तदादिशन्ति। लग्ने विशुद्धे सित वीर्ययुक्ते गोधूलिकं नैव शुभं विषते॥ राजमातंष्ड (श्लोक, ५५१, ५५६ एवं ५५९); ज्योतिस्तत्त्व (पृ० ६१०-६११)। मिलाइए बृ० सं० (१०२।१३): गोपैर्यष्ट्या हतानां खुरपुटदिलता या तु घूलिदिनान्ते सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुल्यनसुतारोग्यसौभाग्यकत्रों। तिस्मन्काले न चक्षं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगः स्थातः पुंसां सुखार्थं शमयित दुरितान्युत्यितं गोरजस्तु॥

जाता है। इन दोनों पर इस महाग्रन्थ के खण्ड २ में विचार हो चुका है। मु॰ मा॰ (४।१-१२), मु॰ चि॰ (६।२१-३५), संस्कार-प्रकाश (वीरिमित्रोदय का भाग) एवं संस्कार-रत्नमाला में इन आठ कृटों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। वहुत-सी बातों को एक नियम ने सरल बना दिया है, यथा यदि वसू एवं वर के जन्म की एक ही राशि हो, किन्तु दोनों के जन्म-नक्षत्र भिन्न हों, या नक्षत्र तो एक ही हो किन्तु राशियाँ भिन्न हों तो गण एवं नाड़ी आदि का विचार नहीं होता, यदि दोनों का नक्षत्र एक ही हो और वे दोनों विभिन्न दिशाओं में उत्पन्न हुए हों तो विवाह शुभ माना जाता है।

विवाह में बृहस्पित की अनुकूलता को बहुत महस्व दिया जाता है। रत्नमाला (१६।२६) में आया है—'बृष, जो उदय हो (सूर्य से दूर रहने पर), और जन्म-पत्र के प्रथम, चौथे एवं १० वें स्थान को ग्रहण करता हो, एक सौ ज्योतिषीय दोषों का शमन करता है; शुक्र इस प्रकार के दूने दोषों को दूर करता है और देवों के गुरु (बृहस्पित) जब प्रवल होते हैं तो शत-सहस्र दोषों को दूर करते हैं।'

विवाह में चन्द्रबल एवं ताराबल दोनों की आवश्यकता पड़ती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जन्म के नक्षत्र से तीसरा, पाँचवाँ एवं सातवाँ नक्षत्र कम से 'विपद्', 'प्रत्यरि' (शत्रु के सम्मुख) एवं 'वघ' (नाया) कहलाता है और वे सभी अपने नामों के अनुरूप फल प्रदान करते हैं; अतः उनका शुभ कृत्यों, विशेषतः विवाह में त्याग करना पड़ता है। जन्म से लेकर नक्षत्र तीन-दलों के आधार पर ९ भागों में बेंटे हैं। दूसरे दल में दुण्ट नक्षत्र हैं १२ वाँ, १३ वाँ एवं २५ वाँ। ऐसी व्यवस्था थी कि जहाँ चन्द्र वलवान् है तो ताराबल पर विचार नहीं किया जाता, किन्तु जहाँ चन्द्र दुवंल (जैसा कि कृष्ण पक्ष में) है वहाँ ताराबल महत्त्वपूर्ण होता है। कुछ लेखकों ने जन्म-नक्षत्र को भी कुछ कृत्यों में व्यक्ति माना है, यद्यपि वह अन्य कृत्यों में स्वीकार्य है। 'विपद्', 'प्रत्यरि' एवं 'वघ' नामक दुष्ट तारा बाह्मणों को गुड़, नमक एवं सोने का दान तिल के साथ देकर प्रसन्न किये जा सकते हैं।

विवाह के विषय में राजमार्तण्ड (क्लोक ६११-६१२) का कथन है—'तिथि से दिन का मूल्य चौगुना, नक्षत्र का १६ गुना, योग का सौ गुना, सूर्य का सहस्र गुना होता है और चन्द्र का मूल्य लाख गुना होता है; अतः अन्य वलों की अपेक्षा चन्द्रवल को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए।

अब भारत में राजा की महत्त्व नहीं रह गया है अतः राज्याभिषेक के मुहूती का महत्त्व नामभात्र का रह गया है, इंसलिए हम इस प्रकार के मुहूती का उल्लेख नहीं करेंगे। जो लोग पढ़ना चाहें वे देखें रत्नमाला (१४। १-८), मु० मा० (८।१), मु० चि० (१०।१-४), राजनीतिरत्नाकर (पृ० ८२-८४, डा० के० पी० जायसवाल द्वारा सम्पादित)।

एक अन्य ज्योतिषीय शब्द है यात्रा, जिसके दो अर्थ हैं: (१) तीर्थ के लिए या घन कमाने के लिए यात्रा तथा (२) विजय के लिए राजा की रण-यात्रा। प्रथम प्रकार सभी वर्णों में समान है, किन्तु दूसरा केवल क्षत्रियों या राजा के लिए हैं (मृ० चि० ११।१)। इस विषय में न केवल ज्योतिष-ग्रन्थों, प्रत्युत स्मृतियों, कौटित्य के अर्थशास्त्र एवं पुराणों में बहुत महत्त्व प्राप्त है। आश्रमवासिकपर्व (७।१२-१८), मनु (७।१८१-२१२), मत्स्य० (२४०-२४३), अर्गन० (२३३-२३५), विष्णुधर्मोत्तर (२।१७५-१७६), अर्थशास्त्र (९, उसका कार्य जो आकामक होना चाहता है, एवं १०, युद्ध के सम्बन्ध में) ने विस्तार के साथ यान या यात्रा का विवेचन किया है। वृहत्संहिता (अध्याय २, पृ० ६१, कर्न का सम्पादन एवं पृ० ७१, द्विवेदी का सम्पादन) में यात्रा के विषयों को इस प्रकार रखा गया है—यात्रा के अन्तर्गत उचित तिथियों, दिवसों, करणों, नक्षत्रों, महूर्तों, विलग्न (प्रस्थान के समय का लग्न), (विभिन्न) योग (ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों आदि के योग), शरीर-स्पन्दनों, स्वप्नों, विजय-स्नानों, ग्रह-यज्ञों,

गण-यागों (देव-गणों का दलों में पूजन, यथा गृह्यक), अग्मिलिंगों (होम के समय अग्नि-ज्याला के संकेतों), हाथी, घोड़ों के इंगितों, सेना के लोगों की बातचीतों एवं घेष्टाओं, नव-प्रहों, ६ गुणों (संघि, विप्रह, यान, आसन, दैधीभाव, आश्रय) के प्रयोग (प्रहों के बलानुसार), शुभाषाम क्स्तुओं एवं दृष्यों, चार उपायों (साम, दान, दण्ड, भेद), शकुनों, अश्रय। के प्रयोग (प्रहों के बलानुसार), शुभाषाम क्स्तुओं एवं दृष्यों, चर उपायों (साम, दान, दण्ड, भेद), शकुनों, सैन्य-निवेश (सेना-पड़ाय), अग्नि-वर्ण (अग्नि ज्वाला के रंग), मिन्त्रयों, चरों, दूतों, आटविकों की यथाकाल में नियुक्ति एवं परदुगों को प्राप्त करने के साधनों का ज्ञान सम्मिलित है।

वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में यात्रा के विषयों पर कई अघ्याय. (४३।५०, ८८-९६) लिखने के अतिरिक्त तीन अन्य प्रन्य लिखे हैं, यथा बृहद्योगयात्रा, योगयात्रा एवं टिक्कनिका। बृहत्संहिता के अतिरिक्त वराहमिहिर ने यात्रा पर ११०० क्लोक लिखे हैं। पश्चात्कालीन प्रन्य, यथा, रत्नमाला (१५।१-७४), राजमार्तण्ड (क्लोक ६५३-७९५), मु० चि० (११।१-१०९) ने भी यात्रा पर लिखा है। 'योगयात्रा' नाम पड़ने का कारण यों है—'जब युद्ध सिर पर खड़ा रहता है तो शुभ तिथियों, दिवसों, नक्षत्र आदि का विचार करने एवं उनको जोहने से अधिक देरी हो सकती है। अतः किसी स्थिर स्थानवर्ती किन्हीं पहों की स्थितियों (अर्थात् योग) पर ज्योतिषीय ढंग से विचार किया जाता है।' योगयात्रा एवं रत्नमाला में आया है—'जिस प्रकार विष भी (दूध जैसे पदार्थों से मिश्रित होने पर) अमृत के समान कार्य कर सकता है या जिस प्रकार मचु घृत से मिश्रित होने पर विष का कार्य कर सकता है, उसी प्रकार ग्रह अपनी विशिष्ट शक्ति का त्याग करके किन्हीं योगों के कारण अन्य फल दे सकता है। राजा योगों में रणयात्रा करते हैं, चोर एवं चारण शकुनों पर कार्य करते हैं, बाह्मण नक्षत्रों के गुणों के आघार पर कार्य करते हैं, अन्य लोग (इनके अतिरिक्त) मुहतों की शक्ति से अपनी कार्य-सिद्ध प्राप्त करते हैं।

यदि किसी व्यक्ति के जन्म (लग्न) के समय की राशि का पता न हो, तो यात्रा के विषय में प्रश्न करने के लग्न का प्रयोग ज्योतिष-सम्बन्धी बातों के लिए हो सकता है। यदि ऐसा लग्न मेष, कर्क एवं तुला हो या मकर हो और उसमें शुभ ग्रह हों या उस पर उनमें से किसी की शुभ दृष्टि हो, तो प्रश्न-क़र्ता अपने संकल्प में सफल होता है; किन्तु यदि लग्न में चाहे मंगल एवं चन्द्र हो या चन्द्र पर शनि की दृष्टि हो या वह ७वें या ८वें घर में हो और सूर्य लग्न में हो या कोई दुष्ट ग्रह लग्न में हो या चीथे, ७वें या ८वें घर में हो तो इन सभी स्थितियों में प्रश्नकर्ता (शत्रुओं द्वारा) हराया जायगा या नष्ट होगा (मु० चि० ११।४-५)। यात्रा में सप्ताह-दिवसों का कोई महत्त्व नहीं है। यात्रा के लिए षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, पूर्णिमा, अमावास्या, रिक्ता तिथियाँ (चौथी नवमी एवं चतुर्दशी) एवं शुक्ल प्रतिपदा प्रतिपादित नहीं हैं (अन्य हैं)। यात्रा ९ नक्षत्रों, यथा अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराघा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण एवं घनिष्ठा में प्रतिपादित है। योगयात्रा (४), रा॰ मा॰ (६९५-७५२), र॰ मा॰ (१५।१-७४), मु॰ चि॰ (११।५५-७४) ने कतिपय योगों का उल्लेख किया है जिनमें राजा सफल होता है। उदाहरणस्वरूप कुछ योग यों हैं—वह राजा, जिसकी रणयात्रा के काल के लग्न में बृहस्पति हो, बुघ एवं शुक्र कम से चौथे एवं पाँचवें घर में हों, मंगल एवं शनि छठे में हों, सूर्य तीसरे में हो तथा चन्द्र १० वें में हो, मनोवांछित फल की प्राप्ति करता है (यो० या० ४।६; मु० चि० ११।५५); राजा विजयी होता है जब बृहस्पति लग्न में हो और अन्य ग्रह दूसरे एवं तीसरे घर में हों (मु० चि० ११।५९); यदि प्रयाण के समय शुक्र, बुध एवं सूर्य क्रम से दूसरे एवं तीसरे घर में हों तो उसके शत्रु युद्धाग्नि में पतंगों के समान गिरते हैं (यो॰ या॰ ४।११); जब शुक्र चौथे, तीसरे या ११वें घर में रहता है, और उस पर वृहस्पति की दृष्टिं रहती है, जो केन्द्र (पहले, चौथे, ७ वें या १० वां घर) में रहता है और दुष्ट ग्रह ७ वें या ८ वें या ९ वें में न होकर अन्य घरों में होते हैं तो ऐसे योगों से राजा को घन (एवं विजय) अधिक मात्रा में प्राप्तं होता है।

कुछ अन्य बातों की ओर भी संकेत किया जा सकता है। पौप से आगे के चार मासों में वर्षा बिना ऋतु वाली कहीं जाती है; उसके उपरान्त ७ दिनों तक वर्त एवं यात्रा नहीं करनी चाहिए; बिना ऋतु की वर्षा से राजा के प्रयाण में कोई दोष नहीं होता, यदि स्थल पर मनुष्यों एवं पशुओं के चरण-चिह्न न हों। मु० चि० (११।७६) में आया है कि जब तक उपनयन, मूर्ति-स्थापन, विवाह, (होलिका जैसे) उत्सव, अशौच (जन्म-मरण पर सूतक) समाप्त न हो जायँ और अमृतु-वर्षा, वज्रपात या तुषारपात के उपरान्त ७ दिन बीत न जायँ तब तक यात्रा नहीं करनी चाहिए। देखिए र० मा० (१५।५९)।

गृह-प्रवेश की तिथि के उपरान्त नवमी दिन को गृह के बाहर जाना या जाने के उपरान्त प्रवेश करना तथा स्वयं नवमी वीजत है; यही वात सप्ताह-दिवस एवं नक्षत्र के विषय में भी है (मु० चि० ११।७९)।

शुक सम्मुख हो तो प्रस्थान नहीं करना चाहिए। यह विश्वास बहुत प्राचीन है, यह शान्तिपर्व एवं कालिदास में भी उल्लिखित है। यदि राजा या किसी ने किसी शुभ दिन या योग में यात्रा करने का निर्णय कर लिया हो, किन्तु किसी अप्रत्याशित या अनिवार्य कार्य से वास्तविक जाना न हो पाये तो उसे प्रस्थान (प्रारम्भ कर के कुछ दूर जाकर पुनः लौट आना या शुभ दिन पर कोई वस्तु भेज देना और उसके उपरान्त कुछ निश्चित दिनों के भीतर प्रयाण कर देना) रख देना चाहिए। ब्राह्मण को जनेऊ (यज्ञोपनीत), क्षत्रिय को कोई हथियार, वैक्य को मधु, शूद्र को कोई पवित्र फल (नारियल आदि) भेजना चाहिए या किसी भी वर्ण वाले को अपनी कोई प्रिय वस्तु भेजनी चाहिए (रा॰ मा॰, क्लोक ७७१; मु॰ चि॰ ११।८९)। इस विषय में, अर्थात् कितनी दूर जाय और लीट आयें, ऋषियों के मतों में भेद है। गार्ग्य के मत से व्यक्ति को अपने घर से दूसरे घर (बहुत सिन्नकट) में जाना चाहिए; भृगु के मत से अपने गाँव की सीमा पार करके दूसरे गाँव में ठहरना चाहिए; भरद्वाज के मत से शरक्षेप (एक तीर जितनी दूर पहुँचता है) तक, तथा विसष्ठ के मत से नगर के बाहर हो जाना चाहिए। प्रस्थान यात्रा की दिशा में ही होना चाहिए। यदि राजा प्रस्थान करे तो उसे १० दिनों तक एक स्थान पर नहीं टिका रहना चाहिए (अर्थात् वह ९ दिनों तक ठहर सकता है), सामन्त (माण्डलिक) सात दिनों तक तथा साधारण व्यक्ति पाँच दिनों तक; किन्तु कोई इन निर्वारित अविधयों से अधिक ठहर जाता है तो उसे पुनः नये महर्त में यात्रा करनी चाहिए (र० मा० १५।५६; मु० चि० ११।९२)। आजकल भी प्रस्थान की परम्परा है, और लोग बहुघा पड़ोसी के घर में चावल, सुपाड़ी, हल्दी आदि रखकर वास्तविक यात्रा के समय उसे लेकर चल देते हैं।

योगयात्रा (१३।३) ने व्यवस्था दी है कि रणयात्रा के समय राजा को 'मंगल' वस्तु का दर्शन, श्रवण एवं स्पर्श करना चाहिए। वेद एवं वेदांगों के पाठों के, शंखों के, ढोलक के, 'पुण्याह' (यह पवित्र दिन हैं) जैसे शब्दों के एवं पुराणों के स्वर; धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, महाभारत एवं रामायण; सारसों, चाषों, मयूरों, हंसों एवं जीवं-जीवक (चकोर) की चहचहाहट; पंकिल कछुओं की पीठों पर बैठे कौए; बिल्व वृक्ष, चौरी, चन्दन, बछड़े के साथ गाय, बकरी, प्रियंगुलता, मुने हुए अन्न, पुरुषों से भरे रथ शुभ वस्तुएँ हैं; झण्डे, सर्वोषिध, स्वस्तिक चिह्न,

९. यतो वायुर्यतः सूर्यो यतः शुक्रस्ततो जयः । पूर्वं पूर्वं ज्याय एवां सिन्नपाते युधिष्ठिर ।। शान्ति० (१००।२०); वृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरः शुक्रमिव प्रयाणे । कुमारसम्भव (३।४३) ।

१०. गृहाद् गृहान्तरं गार्ग्यः सीमनः सीमान्तरं भृगुः। शरक्षेपाद् भरद्वाजो विसष्ठो नगराद्वहिः॥ रा० मा० (क्लोक ७६९); मु० चि० (११।१०)।

मेंटों से युक्त पात्र; घोड़ा, अशुष्क सिरका, गोबर, सरसों, दर्पण, रस्सी से बँघा बैल, मांस, जलपूर्ण घड़ा, पगड़ी, बाँसुरी, छत्र, दही, मघु, घी, पीला रोगन, कुमारी लड़की, झंडे का स्तम्भ, सोना, कमल, शंख, श्वेत वैल, पुष्प, सुन्दर वस्त्र, मछली, सुन्दर ढंग से वस्त्रावृत ब्राह्मण, सड़क पर चलने वाले, वेश्याएँ, जलती अग्नि, हाथी, भींगी मूमि, अंकुश, हथियार; रत्न, यथा मरकत, माणिक्य, स्फटिक; पुत्र के साथ युवती नारी; इन चिह्नों एवं पदार्थी को इस प्रकार व्यवस्थित रखना चाहिए कि वे अपने आप दृष्टिगोचर हो जायँ। और देखिए अग्नि० (अध्याय ३४३),र० मा० (१५।९७-९८), मु० मा० (७।१५-१६) आदि। शुमाशुम दृश्यों, पशुओं, व्यक्तियों एवं पदार्थी की लम्बी सूचियाँ बृहत्संहिता (अध्याय ८६-९६, ऋषम, मागुरि, देवल, भारद्वाज आदि पर आधारित तथा गर्ग आदि के यात्रा-प्रन्थों के, जिनमें सभी प्रकार के शकुनों का उल्लेख है, यथा कुत्तों का भौकना, पक्षियों एवं कौओं की बोलियों पर आघारित), बृहद्योगयात्रा (अध्याय २१-२८), योगयात्रा (१३।१४), मु० चि० (११।९९-१००), मु० मा० (७।१७-१९), राजनीतिप्रकाश (पृ० ३३५-३६०) में पायी जाती हैं। योगयात्रा का एक रलोक उदाहरण के लिए यहाँ दिया जा रहा है—'निम्न अशुम हैं (यात्रा में : कपास, औषध (जड़ी-बूटी), काला अन्न, नमक, नपुंसक व्यक्ति, अस्थियाँ, ताल (हरताल), अग्नि, साँप, कोयला, विष, केंचुल (साँप की चर्म खोल), मल, केशारि (छुरा), रोगी, जिसने वमन किया हो, पागल, जड़ (लकवा का मारा हुआ), अंघा, तृण (घास), तुष (भूसी), क्षुत्क्षाम (क्षुघा से पीड़ित) व्यक्ति, तक (मठा), शत्रु, मुण्डित सिर वाला व्यक्ति, तेल लगाया हुआ व्यक्ति, विखरे बाल वाला व्यक्ति, पापी, लाल वस्त्र घारण करने वाला व्यक्ति।'

गृह्यसूत्रों एवं वर्मसूत्रों में भी गृह-निर्माण (वास्तु) एक महत्त्वपूर्ण विषय माना गया है। इस महात्म्य के खण्ड दो में गृह-निर्माण एवं प्रथम प्रवेश के विषय में लिखा हुआ है, किन्तु वहाँ ज्योतिषीय चर्चा नहीं हुई है। पारस्कर गृ० (३।४।१-२) में केवल ६तना आया है कि किसी शुभ दिन में गृह-निर्माण (शालाकर्म) करना चाहिए। हिरण्यकेशिगृह्य (१।२७।१) में विशेष वातें हैं; शालाकर्म उत्तरायण में, शुक्ल पक्ष में तथा रोहिणी या तीन उत्तराओं में करना चाहिए। मत्स्य० (अ०२५३) र० मा० (अ०१७) रा० मा० (इलो० ८०५-८८४) हेमाद्रि (काल० पृ०८१७-८२९) मुहूर्तदर्शन (९) ज्योतिस्तत्त्व (पृ०६६२-६७०) मु०चि० (१२।१-२९), नि० सि० (पृ०३६४) में गृह-निर्माण का उल्लेख है। मत्स्य० (२५२।२-४) ने वास्तुशास्त्र के १८ आचार्यों का उल्लेख किया है। मत्स्य० ने १२ महीनों में गृह-निर्माण के फलों का वर्णन किया है। आषाढ़ में गृह-निर्माण से रोग, अच्छी गायें, मृत्यु, अच्छे नौकर एवं पशुओं की प्राप्ति होती है; कार्तिक में नौकर, हानि, पत्नीकी मृत्यु, धनवान्य; फाल्गुन में चावल, चोरों से मय, बहुत-से लाम, सोना एवं पुत्र। शुभ नक्षत्र ये हैं—अश्विनी, रोहिणी, मूल,तीन उत्तराएँ, मृगशीर्ष, स्वाती, हस्त एवं अनुराघा; दिनों में रिववार एवं मंगलवार को छोड़ अन्य शुभ हैं। रा० मा० (क्लोक ८८६-८८७) ने बहुत-सी ज्योतिषीय आवश्यकताओं को दो क्लोकों में यों व्यक्त किया है: 'ऋषियों का कथन है कि गृह-निर्माण का शुभ कर्म शुभ तारा से युक्त पुनर्वमु, पुष्य, रोहिणी, मृगशीर्ष, चित्रा. धनिष्ठा, तीनों

११. कार्पासौषषकृष्णधान्यलवणक्लीवास्यितालानलं सर्पाङ्गारगराहिचर्मशकृतः केशारिसव्याधिताः। वातोन्मत्तजड्गान्यकतृणतुषक्षुत्कामतकारयो मुण्डाम्यक्तिवमुक्तकेशपितताः काषायिणश्चाशुभाः॥ बृहद्योगयात्रा (२७।६), योगयात्रा (१३।१४), टिक्किनिकायात्रा (९।१५); मत्स्य० (२४३।१-८), आदि० (२९।३४), नारवस्मृति (प्रकीणंक ५४), पियूषधारा (मु० चि० ११।९९-१००)।

उत्तराओं, रेवती, श्रवण, शतिभषक्, अनुराघा, स्वाती नक्षत्रों में, सोमवार, बुघवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार के दिन, शुभ योग पर, रिक्ता तिथियों (चौथी, नवमी एवं चतुर्दशी) को छोड़ कर किसी अन्य तिथि पर, उस दिन जब विष्टि न हो, जब शुभ ग्रह केन्द्र (प्रथम, चौथे, ७ वें एवं १० वें घरों) में हों, जब बृहस्पति लग्न या केन्द्र में हो, या शुक्र इन घरों में कहीं हो और गृही की राशि शुभ हो, जब कोई स्थिर नक्षत्र उदित हो रहा हो तब आरम्भ करना चाहिए या प्रथम गृह-प्रवेश करना चाहिए। रत्नमाला का कथन है कि गृह-निर्माण चर राशियों में नहीं होना चाहिए। बहुत-सी ऐसी जटिल गणनाएँ एवं रेखाकृतियाँ बनी हैं जो गृह-निर्माण के आरम्भ के उचित कालों का पता चलाती हैं, यथा आय, व्यय एवं राहुमुखचक्र जिनका विवेचन यहाँ नहीं किया जायेगा।

गृह-प्रवेश के सिलिसले में देखिए राजमार्तण्ड (श्लोक ८८७, ९००-९०८), रत्नमाला (१८।१-११), ज्योतिस्तत्त्व (पृ० ६७०-७१), मु० चि० (१३), नि० सि० (पृ० ३६६)। रा० मा० का कथन है कि गृह-प्रवेश रेवती, घनिष्ठा, शतिभषक्, रोहिणी, तीनों उत्तराओं, शुभ दिन, जब चन्द्र दुर्बल न हो, रिक्ता को छोड़ अन्य तिथियों में होना चाहिए। गृह-प्रवेश के समय फर्श पर पुष्प विखरे हों, तोरण बने हों, जलपूर्ण पात्र (कलश) रखे हों, जिनमें चन्दन, पुष्प एवं होम से देव-पूजा की गयी हो और जहाँ ब्राह्मणों द्वारा वेद-पाठ हो रहा हो।

देवमूर्ति-प्रतिष्ठापन के उचित कालों के विषय में बृ० सं० (६०।२०-२१), मत्स्य० (२६४), विष्णुघर्मोत्तर (३।९६), रा० मा० (क्लोक ९०९-९४३), हेमाद्रि (काल, पृ० ८३०-८४७), ज्योतिस्तत्त्व (पृ० ६६६-६६७ एवं ६७२-७३), नि० सि० (पृ० ३३४-३३५), घ० सि० (पृ० ३१८) में बहुत कुछ उल्लिखित है। बृ० सं० (६०। २०-२१) में आया है—'उत्तरायण, शुक्ल पक्ष में, जब चन्द्र बृहस्पति के वर्ग में हो, जब लग्न स्थिर राशि का हो। लग्न की नवमांश राशि स्थिर हो, जब शुम ग्रह केन्द्र में हों या जन्म-पत्रिका के ५ वें एवं ९ वें घर में हों, जब दुष्ट ग्रह तीसरे, छठे, १० वें या ११ वें स्थान में हों, ध्रुव या मृदु नक्षत्र श्रवण, पुष्य या स्वाती जैसे हों, शुभ दिन (मंगल को छोड़कर) पर देव-स्थापन होना चाहिए।'मत्स्य० (२६४।३-१२) के मत से जब मूर्ति की प्रतिष्ठा चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, माघ या फाल्गुन में हो, दक्षिणायन के उपरान्त शुक्ल पक्ष में हो, दूसरी, तीसरी, ५ वीं, ७ वीं, १० वीं तिथियों में हो, पूर्णिमा, त्रयोदशी (सर्वोत्तम तिथि) में हो या १६ नक्षत्रों (भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पुनवंसु, आक्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, घनिष्ठा, शततारका को छोड़ कर) में हो, जब लग्न पर बुघ, बृहस्पति एवं शुक्र की दृष्टि हो, शुभ योग हो, जब लग्न या नक्षत्र (प्रतिष्ठापन का) दुष्ट ग्रहों से गृहीत न हो और ब्राह्म मुहूर्त हो, तो शुभ फल प्राप्त होते हैं।

रत्नमाला (२०।२-३) ने विभिन्न देवों की मूर्ति-प्रतिष्ठा के लिए विभिन्न नक्षत्रों की व्यवस्था दी है और मनोरंजक बात यह है कि उसमें बौद्ध प्रतिमा-स्थापन के लिए श्रवण नक्षत्र का प्रतिपादन है। माताओं, भैरव, वराह, नर्रासह एवं त्रिविकम अवतारों, देवी (महिषासुरमिंदनी) की प्रतिमाओं की स्थापना दक्षिणायन में भी हो सकती है। लिंग-स्थापन के लिए विशिष्ट नियम हैं (देखिए निर्णयसिन्ध, पृ० ३३५-३३६)।

रा० मा० (क्लोक ९४२) के मत से मूर्ति-स्थापना के लिए द्वितीया, तृतीया, दशमी, त्रयोदशी एवं पञ्चदशी की तिथियाँ मान्य हैं, इतना ही नहीं, प्रत्युत स्थापक की इच्छा से सप्तमी एवं षष्ठी भी मान्य हो सकती हैं।

मध्यकालिक ग्रन्थों, यथा रा० मा०, मुजबल, मु० मा०, ज्योतिस्तत्त्व, नि० सि० में सूर्य के नीचे सभी विषयों (धार्मिक होना कोई आवश्यक नहीं) के मुहतीं एवं अशुभ कालों का विवेचन पाया जाता है, यथा पशुओं, गल्लों आदि का ऋय-विकय, कृषिकर्म, वृक्षारोपण, कूपों, पुष्करों आदि का खोदना, तैल-स्नान, त्रिफला-स्नान आदि के विषयों में।

उपर्युक्त बातों से प्रकट है कि भारतीयों के मन को लगभग दो सहस्र वर्षों से ज्योतिष ने किस प्रकार पकड़ रखा था। शुभ एवं अशुभ शकुनों के विषय में वराहमिहिर ने स्वयं कहा है—'यदि स्भी शुभाशुभ राशियाँ या लक्षण एक और हों और दूसरी ओर मनःशुद्धि हो तो मनःशुद्धि से ही सफलता की प्राप्ति होती है।' या 'एक ओर सभी शकुन और दूसरी ओर मनःशुद्धि, दोनों के युद्ध में मन भयाकान्त हो सकता है। यहाँ तक कि केवल वायु ही विजय या पराजय का कारण बन सकती हैं' (बृ० यो० या० १४।३।६, यो० या० ५।१५)। और देखिए मत्स्य० (२४३।२५-२७), विष्णुधर्मोत्तर० (२।१६३।३२), अग्नि० (२३०।१३) आदि।

ज्योतिष में सार्वभौम विश्वास के कारण लोगों ने अवतारों एवं नायकों की जन्म-पत्रिकाएँ भी निर्मित कर डाली। रामायण की कुछ पाण्डुलिपियों में राम की जन्म-पत्री भी बनी है, जिसकी कुछ वातें यों हैं—लग्न कर्क था, जिसमें चन्द्र एवं बृहस्पति का योग था, पाँच ग्रह उच्च थे। चन्द्र कर्क में रहने के कारण उच्च नहीं था, क्योंकि वह वृषभ में उच्च होता है। राम चैत्र शुक्ल नवमी को उत्पन्न हुए थे, अतः सूर्य मेप में था जो (सूर्य की उच्चता का द्योतक है। अतः बुध या तो सूर्य या मीन से युक्त होगा। इनमें कोई भी बुध का उच्च नहीं है। सम्भवतः बुध को शुक्र से संयुक्त समझना चाहिए, क्योंकि दोनों मित्र हैं, किन्तु जब बुध वृषभ में होगा तो वह शत्रु के घर में पड़ेगा। रामायण में राहु एवं केतु के उल्लेख का सर्वथा अमाव है।

परशुराम, हषवर्षन, शंकराचार्य आदि के जन्म-पत्रों का भी उल्लेख हुआ है, किन्तु वे ठीक नहीं हैं। कल्हण द्वारा वर्णित कश्मीर के राजा हर्ष (१०५९ ई० में उत्पन्न, शासन काल १०८९-११०१ ई०) का जन्म-पत्र ठीक जैंचता है। इस विषय में यहाँ इतना ही पर्याप्त है।

वर्तमान काल के वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं घर्म-विशेषज्ञों ने फलित ज्योतिष की सामान्यतः उपेक्षा की है। कुछ लोगों ने इसकी खिल्ली उड़ायी है, कुछ ने इसे अन्धविश्वासपूर्ण माना है और कुछ लोगों ने इसे भ्रामक एवं जाल मात्र समझा है। पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिकों द्वारा निन्दित किये जाने पर भी इसे लाखों लोग मानते हैं।

ज्योतिष का मौलिक सिद्धान्त यह है कि सूर्य, चन्द्र तथा ग्रह हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं और यह कहना वैज्ञानिक है। प्रश्न यह है कि क्या वृहज्जातक जैसे ग्रन्थों के ज्योतिष-सिद्धान्त बौद्धिक विश्लेषण एवं परीक्षाओं से ठीक उतरते हैं? यह कठिन प्रश्न है। हम बहुत-से ज्योतिषियों की करामातों का विवरण पढ़ते-सुनते हैं कि वे ठीक-ठीक बातें बता देते हैं, किन्तु जन्म-पत्र से जीवन की सभी बातों का परिज्ञान, भाग्य एवं उत्थान-पतन आदि का लेखा-जोखा जान लेना कठिन है।

ज्योतिशीय विवेचनों से कभी-कभी बद्धमूल घारणाएँ घर करती रही हैं। आक्लेषा या ज्येष्ठा में या गण्ड या गण्डान्त में उत्पन्न शिशु को लोग फेंक देते थे। इस विश्वास की जड़ें अथवेंवेद (६।११०।२-३) में भी पायी जाती हैं। प्रयोगपारिजात में उद्धृत गर्ग में आया है—'गण्डान्त पर दिन में उत्पन्न शिशु पिता की मृत्यु का कारण बनता है, रात्रि में उत्पन्न माता की मृत्यु का तथा सन्व्या में उत्पन्न अपनी मृत्यु का कारण बनता है; कोई गण्ड निरामय (भयरिहत) नहीं रह पाता। गण्ड में उत्पन्न बच्चों का त्याग कर देना चाहिए, या पिता को ६ मासों तक न तो उसे देखना चाहिए और न उसका स्वर सुनना चाहिए।' (शान्तिकमलाकर, नि० सि०, पृ० २४४)। मल्लाट ने व्यवस्था दी है—'ज्येष्ठा की अन्तिम घटिका में उत्पन्न या मूल की प्रथम दो घटिकाओं में उत्पन्न शिशु को त्याग देना चाहिए या पिता को उसका मुख आठ वर्षों तक नहीं देखना चाहिए; शिशु मूल के प्रथम चरण में उत्पन्न हो तो पिता की, दूसरे पाद (चरण) में माता की मृत्यु हो जाती है, तीसरे पाद में उत्पन्न होने से घन हानि होती है तथा चौथे पाद में शिशु के उत्पन्न होने से शुभ होता है; यही बात आक्लेषा में उत्पन्न होने से होती है, क्योंकि

इस प्रकार के कालों में उत्पन्न बच्चों के माता-पिता दीर्घजीवी होते देखे गये हैं, स्वयं बच्चों पर कोई विपत्ति नहीं आयी है।

टॉल्मी ने सामान्येतर कक्षों एवं प्राक्चकों का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यद्यपि वर्तमानकालिक ज्योतिःशास्त्रीय विवेचनों से परीक्षित होने पर उसके सिद्धान्त त्रुटिपूणं ठहरते हैं तथापि वह और उसके अनुयायी ग्रहणों के विषय में भविष्यवाणी करने में समर्थ थे। इससे विदित होता है त्रुटिपूणं घारणाओं से भी कुछ विषयों में सम्यक् अनुमान निकाले जा सकते हैं। वराहमिहिर तथा उनके अनुयायियों के सिद्धान्तों की जाँच भी सम्भव नहीं हो सकी है, क्योंकि पूर्व जीवनों में किये गये कमों की जाँच सम्भवतः नहीं हो सकती। लाखों व्यक्ति अपने पूर्व जीवन के कमों में कोई विश्वास नहीं रखते और न पूर्व एवं भविष्य के जीवनों में अभिष्ठिच रखते हैं। कुछ लोग अपने जीवन की भावी वातों में कुछ जानकारी प्राप्त करने में अभिष्ठिच अवश्य रखते हैं। जन्म-पत्र से भावी प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है, ऐसा ज्योतिष का विश्वास है। यदि ज्योतिषी लोग केवल भावी वातों की ही चर्चा करें और कोई भावात्मक बात न बतायें तो उनके पैर के नीचे की घरती ही सरक जायगी और उनकी वृत्ति समाप्त हो जायगी। आज न केवल भारत में प्रत्युत विश्व के अधिकांश भागों में ज्योतिष एक जीता-जागता विश्वास है, और ऐसा प्रतीत होता है कि इस विश्वास को वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक लोग नष्ट नहीं कर सकते। किन्तु ऐसा विश्वास करना कि ग्रहों के कारण ही जीवन-गतियाँ रूप घारण करती जाती हैं, बड़ी भयंकर घारणा होगी, क्योंकि अपराघी ऐसा कह सकता है कि उसने जो अपराघ किया उसका उत्तरदायत्व उसपर नहीं है, प्रत्युत उसने ग्रहों के प्रभाव में आकर ही यह अपराघ किया है, जिसमें उसका कोई वल या अधिकार नहीं है, वह तो असहाय रहा है, उसका क्या दोष है, आदि।

भारतीय ज्योतिष के इस संक्षिप्त विवरण को समाप्त करने के पूर्व संस्कृत के एक प्रन्थ भृगुसंहिता के विषय में गुछ लिखना आवश्यक है, जिसके विषय में यह विदित है कि उसमें मेष से लेकर आगे की १२ राशियों में उत्पन्न लोगों की जन्म-पित्रकाएँ उल्लिखत हैं, जहां ज्यक्तियों के पूर्व जन्मों के कमों की ओर संकेत हैं, ज्यक्तियों के जन्म से मृत्यु तक की ग्रह-स्थितियों एवं महत्वपूर्ण जीवन-घटनाओं का पूर्व उल्लेख हैं। जिनके पास मृगुसंहिता है वे सम्पूर्ण ग्रन्थ किसी अन्य को नहीं दिखाते, केवल वे जिज्ञासुओं के समक्ष ही उन्हें राय देने के लिए कुछ क्लोक पढ़ कर सुना देते हैं और लोग सुन कर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। इसमें बहुत-सी प्रवञ्चना है। प्रस्तुत लेखक ने वम्बई विश्वविद्यालय के देसाई संग्रह में भृगुसंहिता की चार पाण्डुलिपियाँ देखी हैं। यह संहिता गंगमादन पर्वत पर भृगु द्वारा अपने पुत्र शुक्र को पढ़ायी गयी है। इसमें मेष, वृषभ, भियुन एवं कर्क नामक चार लग्नों में प्रत्येक के ६०० जन्म-पत्रों का उल्लेख हैं, प्रत्येक जन्म-पत्र के विपय में १५ से २० श्लोक हैं जो एक ही लग्न में विभिन्न ग्रहों की विभिन्न स्थितियों पर प्रकाश डालते हैं। सभी सम्भव जन्म-पत्रों को यदि १५ या २० श्लोकों में उल्लिखित किया जाय तो भृगुसंहिता को किसी पुस्तकालय में रखना सम्भव नहीं हैं। छन्नों के रूप में १२ राशियों हैं, ९ ग्रह (राहु एवं केतु को सिम्मिलत कर) हैं और १२ माव हैं। यदि गणित का सहारा लिया जाय तो करोड़ों जन्म-पत्र बनेंग और १५ या २० श्लोकों में फल घोषित किये जाय तो करोड़ों श्लोकों का प्रणयन हो जायगा। अतः भृगुसंहिता से उद्धरण लेकर जन्म-पत्र का विवरण उपस्थित करना अधिकतर घोषा है।

भारतीय ज्योतिष में सब से अधिक महत्वपूर्ण विषय हैं राशियाँ, ग्रह एवं बारह भाव (घर या स्थान)। सर्वप्रथम राशियों की चर्चा करेंगे। कुछ तारागण या तारा-दल मेष या वृषभ आदि क्यों कहे जाते हैं। आकाश में तो भेड़ एवं वैल नहीं हैं। पृथिवीस्थित कुछ निरीक्षकों ने कल्पना की कि कुछ तारागण आँखों के सामने पशुओं, मानवीय आकृतियों एवं पौराणिक कल्पित जीवों के सदृश लगते हैं। यह हमने देख लिया है (दूसरे खंड के

अध्याय १६ में) कि चीनी एव जापानी लोग इन्हें विभिन्न नामों से पुकारते हैं। अतः राशियों के नामकरण में बहुत-से कल्पनात्मक एवं मनमाने ढंगों का सहारा लिया गया है। एक बार अभिहित हो जाने के उपरान्त राशियाँ कई प्रकार से विभाजित होती हैं और उनके वर्ग के अनुसार ही भविष्यवाणियाँ की जाती हैं। ये विभाजन समान कम में आने वाले (अपनी अनुभूति के अनुरूप) विचारों एवं कल्पना पर आघारित हैं। किन्तु मेष एवं मिथ्न (जो पुरुष एवं नारी दोनों है) दोनों पुरुष (पुल्लिंग) क्यों हैं और वृषभ एवं वृश्चिक स्त्री क्यों हैं ? इसका कोई उत्तर नहीं है, केवल यही कहा जा सकता है कि राशियों को दो भागों, पुरुष एवं स्त्रीलिंग में विभाजित करना था तो उन्हें अनुरूपता के लिए (एक को) पुरुष एवं (दूसरे को) स्त्री कह दिया गया। इसी कारण से समनुरूपता के कम में मेष एवं कर्क को तथा सिंह एवं वृश्चिक को स्थिर कहा गया। सूर्य (सभी प्रकाशों को देने वाले एवं विश्व के आश्रय), मंगल एवं शनि को कूर या पाप (दुष्ट) ग्रह कहा गया, बृहस्पति एवं शुक्र को शुभकर तथा क्षयशील चन्द्र को अशुभकर कहा गया। यहाँ विचारों के साहचर्य एवं उपमा का सहारा लिया गया है। बृहस्पति एवं शुक्र दोनों चमकदार एवं श्वेत हैं, किन्तु मंगल लाल (रक्त के रंग का) है। इसके अतिरिक्त प्रथम दो कम से देवों एवं असुरों के गुरु हैं। अतः वे शुभकर हैं और मंगल अशुभकर है। सूर्य, बृहस्पित एवं मंगल पुंल्लिंग, चन्द्र एवं शुक्र स्त्रीलिंग तथा बुघ एवं शनि नपुंसक विचार-साहचर्य के कारण ही हैं। चन्द्र एवं शुक्र मुन्दर एवं मृदु हैं, अतः वे स्त्रीलिंग हैं, किन्तु सूर्य (जिसमें भयानक अग्नि है), मंगल (रक्त रंग वाला) एवं वृहस्पति (देवों के आचार्य) पुंत्लिंग हैं। आज के ज्योति:शास्त्र के अनुसार चन्द्र शुष्क है और उसमें ज्वालामुखियों के अवशेष मात्र हैं, तथापि ज्योतिषियों के अनुसार वह स्त्रीलिंग है। संस्कृत में चन्द्र को 'शशांक' कहा जाता है। जापानी चन्द्र-देवी 'ग्वाटेन' खरगोश के साथ अंकित है।

अब हम स्वगृहों एवं उच्चों (ग्रहों की उच्चताओं) के सिद्धान्त की चर्चा करेंगे। बारह राशियाँ एवं सात ग्रह हैं; पाँच ग्रहों को दो-दो राशियाँ स्वगृह के रूप में दी गयी हैं और शेष दो ग्रहों को एक-एक राशि स्वगृह के रूप में मिली है। बृहज्जातक में सूर्य एवं चन्द्र की केवल एक-एक राशि मानी गयी है कम से सिंह एवं कर्क, किन्तु अन्य पाँच ग्रहों में प्रत्येक को दो राशियाँ दी गयी हैं। ऐसा क्यों है? कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सकता। दो राशियों को स्वगृह के रूप में लेना केवल अनुक्रम कां द्योतक है, यथा सिंह के उपरान्त एक तथा कर्क के उपरान्त एक, अर्थात् कन्या एवं भियुन बुध को; इसी प्रकार दूरी के आधार पर अन्य ग्रहों को राशियाँ दी गयी हैं। इसका परिणाम यह है कि वृषभ एवं तुला सुन्दर एवं चमकदार ग्रह शुक्र के स्वगृह हैं तथा धनु एवं मीन वृहस्पति के स्वगृह हैं। यदि हम उच्च के सिद्धान्त की बात करें तो कोई बौद्धिक ज्योतिशीय उत्तर नहीं मिलता कि मेष, वृषभ, मकर, कन्या, कर्क, मीन एवं तुला कम से सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र एवं शनि के. उच्च क्यों कहे गये हैं।

बारह भावों के नामकरण एवं उनकी व्यवस्था का भी कोई बौद्धिक आघार नहीं प्राप्त होता। जन्म एवं मरण व्यक्ति के जीवन के दो छोर हैं। यदि पहला भाव तन् हैं तो मृत्यु का भाव (अन्तिम भाव) १२ वां होना चाहिए, किन्तु वृहण्जातक आदि प्रन्थों में मृत्यु का भाव आठवां है। कुछ भावों के बारे में बहुत-से विषय हैं। उदाहरणार्थ, चौथे भाव में व्यक्ति के सम्बन्धी, मित्र, घर, आनन्द (मुख) एवं वाहन आदि हैं। पाँचवें भाव में पुत्र, ज्ञान, बुद्धि एवं वाणी है। मान लिया जाय कि यह भाव बड़े सुन्दर ढंग से व्यवस्थित हैतो भविष्यवाणी होगी कि व्यक्ति को कई पुत्र होंगे, वह विद्वान् होगा और अच्छा वक्ता होगा। किन्तु ये सब एक साँथ बहुत कम घटित होते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति पुत्रहोन होता है तथा अति विद्वान् व्यक्ति अधिकतर अच्छा वक्ता नहीं होता। अब हम ग्रहों की पारस्परिक मित्रता एवं शत्रुता का विवेचन करेंगे। इस विषय में कोई भी स्पष्ट कारण

नहीं मिलता। सिद्धान्त रूप से शुभ ग्रह शुन्न सूर्य का शत्रु क्यों है, जब कि दूसरा शुम ग्रह बृहस्पति उसका मित्र हैं? इसका उत्तर देना अित कठिन है। इतना ही नहीं, ये सम्बन्ध पारस्परिक सम्बन्धों पर नहीं आधारित हैं। चन्द्र का कोई शत्रु नहीं है, किन्तु शुन्न के दृष्टिकोण से शुन्न चन्द्र का शत्रु है। बुध (जो पौराणिक रूप से चन्द्र का पुत्र है) चन्द्र का मित्र है, किन्तु बुध के दृष्टिकोण के आधार पर उसका चन्द्र शत्रु है। एक और आश्चर्यजनक विषय है। मनुष्य के समान ग्रह भी (सूर्य एवं चन्द्र को छोड़ कर अन्य सभी) आपस में युद्ध करते हैं। इसके अतिरिक्त मंगल एवं बृहस्पित के बीच बहुत-से छोटे-छोटे ग्रह हैं; प्राचीन एवं मध्य कालों के जन्म-पत्रों में यूरेनिस, नेपचून, प्लूटो एवं बृहस्पित के कित्यय उपग्रहों की चर्चाही नहीं हुई है।

मारतीय ज्योतिष का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है दृष्टि, जिसकी व्याख्या गत अध्याय में हो चूको है। जब प्राचीन काल में ग्रहों की दूरी नहीं ज्ञात थी तो इस सिद्धान्त का महत्त्व था, किन्तु ज्ञान-परिधि बढ़ जाने से दृष्टि-सिद्धान्त का कोई औचित्य नहीं है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में प्रत्येक ग्रह एवं तारा वास्तव में एक-दूसरे को देखता है, बीव में कोई आकाशीय तत्त्व आ जाने से इस प्रकार के देखने में व्यतिक्रम उत्पन्न हो सकता है। किन्तु यह जानना कितना कठिन है कि कोई ग्रह या तारा एक चौथाई, या अर्घ या तीन-चौथाई दृष्टि (विभिन्न कोणों में) पर दूसरे ग्रह या तारा को देखता है।

जव कोई ज्योतिषी यह कहता है कि कोई ग्रह (मान लीजिए शुक्र) अपने घर (स्वगृह) में है, अर्थात् चन्द्र के साथ वृष भ में, तो इसका क्या तात्पर्य है? वृष भ राशि में कई तारे होते हैं, जिनमें सब से अधिक ज्योतिर्मान् रोहिणी है। प्रकाश एक सेकण्ड में १,८६,००० मील चलता है और वर्तमान ज्योतिःशास्त्र के अनुसार रोहिणी स पृथिवी पर पहुँचने में उसे ५७ वर्ष लगते हैं। स्थिति यों है: पृथिवी पर का निरीक्षक चन्द्र, शुक्र एवं रोहिणी को एक-दूसरे के पास देखता है। आज के ज्योतिःशास्त्र के अनुसार चन्द्र पृथिवी से लगभग २, ४०,००० मील, शुक्र इससे गुछ करोड़ मील तथा रोहिणी अरवों मील दूर है। वे सिनकट केवल दूर रहने के कारण हो कृष्टिगोचर होते हैं। यह एक ऐसी कठिनाई है जिसे ज्योतिषी भूल जाते हैं। जब कोई निरीक्षक आज रोहिणी को देखता है तो उसे जो किरणें आज दोख पड़ती हैं वे आज से ५७ वर्ष पूर्व वहाँ (रोहिणी) से चली थीं, किन्तु मंगल की किरणें अपने प्रस्थान से गुछ मिनटों में दीख जाती हैं तथा चन्द्र की डेढ़ सेकण्ड में दीख जाती हैं।

सम्भवतः राशि-ज्योतिष का प्रादुर्भाव भारत में ईसा के ३ शितयों पहले हुआ था। वराहिमिहिर के पूर्वजों तथा स्वयं उन्होंने मेष, वृषभ आदि राशियों को ज्योतिर्मण्डल के किसी विशिष्ट वृत्तांश में देखा, और उन व्यक्तियों की मानिसक विशेषताओं एवं वृत्तियों के विषय में नियम प्रतिपादित किये जो तब उत्पन्न हुए थे जब चन्द्र मेष में था, या उन व्यक्तियों के विषय में लिखा जो मेष या अन्य राशियों में उत्पन्न हुए थे, जब सूर्य, मंगल आदि ग्रह उन राशियों में थे। आज से दो सहस्र वर्ष पहले जहाँ वृषभ राशि थी, वहाँ आज मेष राशि होगी। ऐसी स्थिति में ज्योतिषीय गणना कैसे ठीक हो सकती है, जब कि समय के व्यवधान से राशि-स्थलों में इतना परिवर्तन हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचनों से भारतीय ज्योतिष के दोष स्वतः प्रकट हो जाते हैं, और विचारशील व्यक्ति स्वयं निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ज्योतिष के नियमों का प्रभाव उनके संकल्पों एवं क्रियाओं पर बहुत कम पड़ता है। अति प्राचीन काल में ज्योतिषीय विस्तार अधिक नहीं या, किन्तु गत दो सहस्र वर्षों में वह बहुत बढ़ गया तथा धार्मिक मान्यताएँ फलतः बहुत बोझिल हो गयीं। जो लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि सभी घटनाएँ ग्रहों एवं तारों से प्रभावित एवं अभिभूत हैं, वे एक प्रकार से भूल करते हैं। वे एक ओर भगवान् के नियन्त्रण को नगण्य ठहरा देते हैं और मानव की स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति को छीन लेते हैं। यदि ज्योतिषी ग्रहों के द्वारा निर्देशित धटनाओं को

### घर्षज्ञास्त्र का इतिहास

388

रोक नहीं सकते या उन्हें निरयंक नहीं सिद्ध कर सकते तो उनके पूर्व ज्ञान से हमें क्या लाभ है? यदि वे नियति की घटनाओं को रोक सकते हैं या उन्हें निरयंक सिद्ध कर सकते हैं तो वे इस सिद्धान्त को किस प्रकार प्रश्रय दे सकेंगे कि ग्रहों से ही घटनाएँ उद्भूत होती हैं?

अब प्रश्न उठता है कि उपनयन एवं विवाह जैसे घामिक कृत्य किस सीमा तक ज्योतिषीय निर्घारणाओं पर आघारित रहें। गृह्य सूत्रों एवं मनु के कालों में ज्योतिषीय आवश्यकताएँ बहुत कम थीं, ये आवश्यकताएँ कमशः बोझिल होती चली गयीं। ११ वीं शती में भी राजमार्तण्ड जैसे ग्रन्थों में विशिष्ट स्थितियों में विवाह आदि के समय घामिक कृत्यों के लिए ज्योतिषीय व्यवस्थाओं को शिथिल कर देने की बात चलायी गयी है। हमें गृह्यसूत्रों एवं मनु के नियमों तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए।

### अध्याय १८

# पंचांग (पंजी), संवतों, वर्षों, मासों आदि की कतिपय गणनाएँ

वतों एवं उत्सवों के सम्पादन के सम्यक् कालों तथा यज्ञ, उपनयन, विवाह आदि घामिक कृत्यों के लिए उचित कालों के परिज्ञानार्थं हमें पंजी या पंचांग की आवश्यकता पड़ती है। लोक-जीवन के प्रयोग के लिए घार्मिक उत्सवों एवं ज्योतिषीय बातों की जानकारी के हेतु बहुत पहले से ही दिनों, मासों एवं वर्ष के सम्बन्ध में जो ग्रन्थ या विधिक संग्रह वनता है उसे पंचांग या पंजिका या पंजी कहते हैं। भारत में ईसाइयों, पारसियों, मुसळमानों एवं हिन्दुओं द्वारा लगभग तीस पंचांग व्यवहार में लाये जाते हैं। वर्तमान काल में हिन्दुओं द्वारा नाना प्रकार के पंचांगों का प्रयोग होता है। इनमें कुछ तो सूर्यसिद्धान्त पर, कुछ आर्यसिद्धान्त पर, कुछ अपेक्षाकृत पश्चात्कालीन ग्रन्थों, यथा ग्रहलाघव आदि पर आचारित हैं। कुछ पंचांग चैत्र शुक्ल प्रतिपद् (प्रतिपदा) से, कुछ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ किये जाते हैं तथा कुछ ऐसे स्थान हैं, यथा हलार प्रान्त (काठियावाड़), जहाँ वर्ष का आरम्भ आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से होता है। गुजरात एवं उत्तरी भारत (वंगाल को छोड़ कर) में विक्रम संवत्, दक्षिण भारत में शक संवत् तथा कश्मीर में लौकिक संवत् का व्यवहार होता है। कुछ भागों (उत्तरी भारत एवं तेलंगाना) में मास पूर्णिमान्त (पूर्णिमा से अन्त होने वाले) होते हैं, अन्यत्र (बंगाल, महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत) में अमान्त (अमावास्या से अन्त होने वाले) होते हैं। इसका परिणाम यह है कि कुछ उपवास एवं उत्सव, जो भारत में सार्वभौभ रूप में प्रचलित हैं, यथा एकादशी एवं शिवरात्रि के उपवास एवं श्रीकृष्णजन्म-सम्बन्धी उत्सव विभिन्न भागों में विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा दो विभिन्न दिनों में होते हैं तथा कुछ कृत्यों के दिनों में तो एक मास का अन्तर पड़ जाता है। यथा पूर्णिमान्त गणना से कोई उत्सव आश्विन कृष्ण पक्ष में हो सकता है तो वही मास भाइपद कृष्ण पक्ष (अमान्त गणना के अनुसार) कहला सकता है और वहीं उत्सव एक मास उपरान्त मनाया जा सकता है। आजकल तो यह विभ्रमता और बढ़ गयी है जब कि जूछ पंचांग, यथा दक् या दक्प्रत्यय, जो नाविक पंचांग पर आधारित हैं, इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि ग्रहण जैसी घटनाएँ उसी प्रकार घटें जैसा कि लोग अपनी आँखों से देख लेते हैं। ऐसा लगता है कि दक्षिण भारत में बहुत-सी पंजिकाएँ हैं। तिमलनाडु में दो प्रकार हैं, एक दृक्-गणित पर आचारित और दूसरा वाक्य-विधि (आर्यभट पर आधारित मध्यकाल की गणनाएँ, जो अपेक्षाकृत कम ठीक फल प्रकट करती हैं) पर। पदकोटाई पंचांग (वाक्य-विधि वाले) उसी नाम वाले राजाओं द्वारा प्रकाशित होते हैं। श्रोरंगम् पंचांग (वाक्य प्रकार) रामानुजीय वैष्णवों द्वारा व्यवहृत होते हैं, किन्तु माध्वों (वैष्णवों के एक सम्प्रदाय केलागों) के लिए एक अन्य पंचांग है। स्मातों द्वारा व्यवहृत कञ्जनूर पंचांग अत्यंत प्रचलित है और वाक्य पंचांग है। स्मातं लोग शंकराचार्य के अधिकार से प्रकाशित दृक्-पंचांग को व्यवहार में नहीं लाते। तेलुगु लोग गणेश दैवज के ग्रहलाघव (सन् १५९० में प्रणीत) पर आधारित सिद्धान्त-चन्द्र पंचांग का प्रयोग करते हैं। मलावार में लोग द्क-पंचांग का प्रयोग करते हैं किन्तु वह परहित नाम वाली मलावार-पद्धति पर आधारित है न कि तिमलों इतरा प्रयुक्त दृक्-पंचांग पर। तेळुगृ लोग चन्द्र-गणना स्वीकार करते हैं और चैत्र शुक्ल से युगादि नामक वर्ष हा आरम्भ मानते हैं, किन्तु तमिल सौर गणना के पक्षपाती हैं और अपने चैत्र का आरम्भ मेप विपुत्र से करते हैं किन्तु उनके

वत एवं घामिक कृत्य, जो तिथियों पर आघारित हैं, चान्द्रमान के अनुसार सम्पादित होते हैं। बंगाली लोग सौर मासों एवं चान्द्र दिनों का प्रयोग करते हैं जो मलमास के मिलाने से त्रिवर्षीय अनुकूलन का परिचायक है।

तीन सिद्धान्त प्रयोग में आते हैं, यथा सूर्यसिद्धान्त (अपनी विशुद्धता के कारण सारे भारत में प्रयुक्त है), आर्यसिद्धान्त (त्रावणकोर, मलावार, कर्णाटक में माध्वों द्वारा, मद्रास के तिमल जनपदों में प्रयुक्त) एवं साह्म-सिद्धान्त (गुजरात एवं राजस्थान में प्रयुक्त)। अन्तिम सिद्धान्त अब प्रथम सिद्धान्त के पक्ष में समाप्त होता जा रहा है। सिद्धान्तों में महायुग से आरम्भ कर गणनाएँ की जाती हैं जो इतनी भारी भरकम हैं कि उनके आघार पर सीचे ढंग से पंचांग बनाना कठिनसाध्य है। अतः सिद्धान्तों पर आधारित करण नामक प्रन्थों के आधार पर पंचांग निर्मित होते हैं, यथा बंगाल में मकरन्द, गणेश का प्रहलाधव। प्रहलाधव की तालिकाएँ दक्षिण, मध्य भारत तथा भारत के कुछ भागों में प्रयुक्त होती हैं। सिद्धान्तों में आपसी अन्तर के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं—(१) वर्ष विस्तार के विषय में (वर्षमान का अन्तर केवल कुछ विपलों का है) और (२) कल्प या महायुग या युग में चन्द्र एवं ग्रहों की चन्न-गतियों की संख्या के विषय में।

ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि यह बात केवल भारत में ही पायी गयी है। आजकल का यूरोपीय पंचांग भी असन्तोषजनक है। प्रारम्भिक रूप में ई० पू० ४६ में जुलिएस सीजर ने एक संशोधित पंचांग निर्मित किया और प्रित चौये वर्ष ली व्यवस्था की। किन्तु उसकी गणनाएँ ठीक नहीं उतरीं, क्योंकि सन् १५८२ में वासन्तिक विषुव २१ मार्च को न होकर १० मार्च को हुआ। पोप ग्रेगोरी १३ वें ने घोषित किया कि ४ अक्टूबर के उपरान्त १५ अक्टूबर होना चाहिए (दस दिन समाप्त कर दिये गये)। उसने आगे कहा कि जब तक ४०० से भाग न लग जाय तब तक शती वर्षों, में 'लीप' वर्ष नहीं होना चाहिए (इस प्रकार १७००, १८००, १९०० ईसवियों में अति-रिक्त दिन नहीं होगा, केवल २००० ई० में होगा)। तब भी त्रृटि रह ही गयी, किन्तु ३३ शतियों से अधिक वर्षों के उपरान्त ही एक दिन घटाया जायेगा। आधुनिक ज्योति शास्त्र की गणना से ग्रेगोरी वर्ष २६ सेकण्ड अधिक हैं। सुधारवादी प्रोटेस्टेण्ट इंग्लैण्ड ने सन् १७५० ई० तक पोप ग्रेगोरी का सुधार नहीं माना, जब कि कानून बना कि २ सितम्बर को ३ सितम्बर न मान कर १४ सितम्बर माना जाय (११ दिन छोड़ दिये जायें)। तब भी यूरोपीय पंचांग में दोष रह ही गया। इसमें मास में २८ से ३१ तक दिन होते हैं, एक वर्ष के एक पाद में ९० से ९२ दिन होते हैं; वर्ष के दोनों अर्थाशों (जनवरीं से जून एवं जुलाई से दिसम्बर) में कम से १८१ (या १८२) एवं १८४ दिन होते हैं; मास में कर्म दिन २४ से २७ होते हैं तथा वर्ष एवं मास विभिन्न सप्ताह-दिनों से आरम्भ होते हैं। वर्तों का राजा ईस्टर सन् १७५१ के उपरान्त ३५ विभिन्न सप्ताह दिनों में (अर्थात् २२ मार्च से २५ अर्पेल तक) पड़ा, क्योंकि वह (ईस्टर) २१ मार्च पर या उसके उपरान्त पड़ने वाली पूर्णमा का प्रथम रिववार है।

यह पहले ही निर्देश किया जा चुका है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में शुद्ध ज्योतिःशास्त्रीय बातों का विवेचन नहीं होगा, अतः लेखक तत्सम्बन्धी विवरणों में नहीं पड़ेगा। किन्तु आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र शुछ बातों पर प्रकाश डाल दिया जायेगा। जो लोग भारतीय ज्योतिःशास्त्र (ऐस्ट्रॉनॉमी) के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं वे निम्न ग्रन्थों एवं लेखों को पढ़ सकते हैं—वारेन का कालसंकलित; सूर्यसिद्धान्त (िह्वटनी द्वारा अनूदित); वराहिमिहिर की पञ्चिसद्धान्तिका (थिबो एवं सुघाकर द्विवेदी द्वारा अनूदित); जे० वी० जित्स कृत 'इण्डिएन मेट्रालॉजी'; शंकर बालकृष्ण दीक्षित कृत 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र' (भराठी में उच्च कोटि का ग्रन्थ, हिन्दी में अनुवाद; सेवेल एवं दीक्षित का इण्डिएन कैलेण्डर (१८९६ ई०); सेवेल कृत 'इण्डिएन कोनोग्रैफी' (१९१२ ई०); सेवेल कृत 'सिद्धान्ताज एण्ड इण्डिएन कैलेण्डर'; लोकमान्य तिलक कृत 'वेदिक कोनोलोजी एण्ड वेदांगज्योतिष' (१९२५); दीवान बहादुर स्वामिकन्न पिललई कृत 'इण्डिएन एफिमेरिस' (सीत जिल्दों में); वी० बी०

केतकर कृत ज्योतिगंणितम्, केतकी, वैजयन्ती, ग्रहगणित, एवं एण्डिएन एण्ड फारेन कानोलाजी; जैकोबी के लेख (एपिग्रैफिया इण्डिका, जिल्द १, पृ० ४०३-४६०; जिल्द २, पृ० ४८७-४९८; जिल्द १२, पृ० ४७, वही, पृ० १५८);
सेवेल के लेख (ए० इ०, जिल्द १४, पृ० १, २४; जिल्द १५, पृ० १५९; जिल्द १६, पृ० १०० -२२१; जिल्द १७,
पृ० १७, १७३, २०५; इण्डिएन हिस्टारिकल क्वार्टरली, जिल्द ४, पृ० ४८३-५११, जिल्द १०, पृ० ३३२-३३६); नाटिकल एल्मैनेक (१९३५); प्रो० सेनगुप्त कृत 'एँस्येण्ट इण्डिएन कोनोलाजी' (१९४७, कलकत्ता विश्वविद्यालय); डा० के० एल० दफ्तरी कृत 'करण-कल्पलता' (संस्कृत में); 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र निरीक्षण' (मराठी में); डा० मेघनाय साहा का लेख 'रिफामं आव दि इण्डिएन कैलेण्डर' (साइंस एण्ड कल्चर, कलकत्ता, १९५२, पृ० ५७-६८, १०९-१२३); रिपोर्ट आव दि कैलेण्डर रिफामं कमिटी, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित, १९५५ (बहुत लाभदायक ग्रन्थ)।

सभी देशों में काल की मौलिक अविधयाँ एक-सी हैं, यथा दिन, मास, वर्ष (जिसमें ऋतुएँ भी हैं)। वर्ष युगों अथवा कालों के अंश या भाग होते हैं जो काल-कमों एवं इतिहास के लिए बड़े महत्त्व के हैं। यद्यपि काल की अविधयाँ, समान हैं तथापि मासों एवं वर्षों की व्यवस्था में दिनों के कम में अन्तर पाया जाता है, दिनों की अविधयाँ, समान हैं तथापि मासों एवं वर्षों की व्यवस्था में दिनों के कम में अन्तर पाया जाता है, दिनों की अविधयाँ (उपविभागों), दिन के आरम्भ-काल, ऋतुओं एवं मासों में वर्षों का विभाजन, प्रत्येक मास एवं वर्ष में दिनों की संख्या तथा विभिन्न प्रकार के मासों में अन्तर पाया जाता है। काल के बड़े मापक हैं सूर्य एवं चन्द्र। युरी पर पृथिवी के घूमने से दिन बनते हैं। मास प्रमुखतः चान्द्र अवस्थिति है तथा वर्ष सूर्य की प्रत्यक्ष गित है (किन्तु वास्तव में यह सूर्य के चतुर्दिक् पृथिवी का भ्रमण है)। अयनवृत्तीय वर्ष सूर्य के वासन्तिक विषुव से अग्रिम विधुव तक का काल है। अयनवृत्तीय (ट्रापिकल) वर्ष नक्षत्रीय वर्ष (एक ही अचल तारे पर सूर्य की दो लगातार अर्थात् एक के उपरान्त एक पहुँच के बीच का काल) अर्थात् साइडरीयल वर्ष से अपेक्षाकृत छोटा है और यह कमी २० मिनटों की है, क्योंकि वासन्तिक विषुव का बिन्दु प्रति वर्ष ५० सेकण्ड के रूप में पश्चिम और घूम जाता है।

आधुनिक पंचांग में संवत् का वर्ष, मास, मास-दिन तथा अन्य धार्मिक एवं सामाजिक रुचियों की वातें पायी जाती हैं। मनुष्य को युग, वर्ष, मास के विस्तारों का ज्ञान बहुत बाद को प्राप्त हुआ। चान्द्र मास २९३ दिन से कुछ अधिक तथा अयनवृत्तीय वर्ष ३६५% दिनों से कुछ कम होता है। ये विषभ अवधियाँ हैं। साधारण जीवन एवं पंचांगों के लिए पूर्ण (सम-विभक्त) दिनों की आवश्यकता होती है। इतना ही नहीं, वर्ष एवं मास का

१. पृथिबी की दो गितयों (अपनी घुरी पर इसकी प्रतिदिन की गित या चक्कर एवं सूर्य के चतुर्दिक् इसके वार्षिक चक्कर) के अतिरिक्त एक तीसरी गित भी है जिसे लोग भली भाति नहीं जानते हैं। पृथिबी पूर्णतः गोलक नहीं है, इसका निरक्षीय (भूमध्य रेखीय) व्यास इसके ध्रुवीय व्यास से बड़ा है। इसका फल यह होता है कि भूमध्य रेखा (निरक्ष) पर पदार्थ-समूह उभरा हुआ है जो उस स्थिति से अधिक है जब कि पृथिबी पूर्णरूपेण गोल होती। पृथिबी की चुरी पर एक हलकी सुच्याकार चक्कर में धूमने वाली गित है जो लट्टू के समान है और वह २५,८०० वर्षों में एक चक्कर लगा पाती है। यह वार्षिक हटना ५०".२ सेकण्ड का है, जो सूर्य एवं चन्द्र के निरक्षीय उभार पर खिचाव के कारण होता है। इसी से स्थिर तारे, यहां तक कि ध्रुव तारा, एक शती के उपरान्त दूसरी शती या दूसरे काल में अपने स्थानों से परिवर्तित वृष्टिगोचर होते हैं। (नार्मन लॉकर एवं हिक्की)

आरम्भ भली भाँति व्याख्यायित होना चाहिए, और उनमें ऋतुओं एवं किसी संवत् का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। ये ही पंचांग की आवश्यकताएँ हैं। उपयुंक्त दो ज्योतिःशास्त्रीय अविघयों की अतुल्यता ही पंचांगों की जटिलता की द्योतंक है। मुसलमानों ने अयनवृत्तीय वर्ष के विस्तार पर घ्यान न देकर तथा चन्द्र को काल का मापक मान कर इस जटिलता का समाधान कर लिया। उनका वर्ष विशुद्ध चान्द्र वर्ष है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानी वर्ष केवल ३५४ दिनों का हो गया और लगभग ३३ वर्षों में उनके सभी उत्सव वर्ष के सभी मासों में ष्म जाते हैं। दूसरी ओर प्राचीन मिस्र वालों ने चन्द्र को काल के मापक रूप में नहीं मांना और उनके वर्ष में ३६५ दिन थे (३० दिनों के १२ मास एवं ५ अतिरिक्त दिन)। उनके पुरोहित-गण ३००० वर्षों तक यही विघि मानते रहे; उनके यहाँ अतिरिक्त वर्ष या मलमास नहीं थे। ऋग्वेद (१।२५।८) में भी अतिरिक्त मास का उल्लेख है, किन्तु यह किस प्रकार व्यवस्थित था, हमें ज्ञात नहीं। हमें विदित है कि वेदांगज्योतिष ने पाँच वर्षों में दो मास जोड़ दिये हैं। प्राचीन कालों में मासों की गणना चन्द्र से एवं वर्षों की सूर्य से होती थी। लोग पहले से सही जान लेना चाहते थे कि व्रतों एवं उत्सवों के लिए पूर्णिमा या परिवा (प्रतिपदा) कव पड़ेगी, कब वर्षा होगी, शरद कब आयेगी और कव बीज डाले जायेँ और अन्न के पौघे काटे जायेँगे। यज्ञों का सम्पादन वसन्त ऋतू में या अन्य ऋतुओं में, प्रथम तिथि या पूर्णिमा को होता था। चान्द्र वर्ष के ३५४ दिन सौर वर्ष के दिनों से ११ कम पड़ते थे। अतः यदि केवल चान्द्र वर्ष की अभियोजना हो तो ऋतुओं को पीछे हटाना पड़ जायगा। इसी लिए कई देशों में अधिक मास की अभियोजना निश्चित हुई। यूनानियों में आकटाएटेरिस (आठ वर्षों के वृत्त) की योजना थी, जिसमें ९९ मास थे जिनमें तीसरा, पाँचवाँ एवं आठवाँ मळमास थे। इसके उपरान्त १९ वर्षों का मेटानिक वृत्त बना, जिसमें ७ अधिक मास (१९×१२+७=२३५) निर्वारित हुए। ओल्म्स्टीड (अमेरिकन जर्नल आव सेमेटिक लैंग्वेजेच, जिल्द ५५, १९३८, पृ० ११६) का कथन है कि वेबिलोन में मलमास-वृत्त आठ वर्षों का था, जिसे यूनानियों ने अपनाया। फांदिरंघम (जर्नल आव हेलेनिस्टिक स्टडीज, जिल्द ३९, प० १७९) का कहना है कि बेबिलोनी मलमास-पद्धति ई० पू० ५२८ तक असंयमित थी तथा यूनान में ई० पू० पाँचवीं एवं चौथी शितयों में अव्य-वस्थित थी। देखिए कैलेण्डर रिफार्म कमिटी की रिपोर्ट, पृ० १७५-१७६।

मारत में जन्म-पत्रिकाओं के उपयोग के लिए संवतों का प्रयोग लगभग २००० वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं है। संवत् का लगातार प्रयोग हिन्दू-सिथियनों द्वारा, जिन्होंने आधुनिक अफगानिस्तान एवं उत्तर-पिश्चिमी मारत में लगभग ई० पू० १०० एवं १०० ई० के बीच शासन किया, उनके वृत्तान्तों में हुआ। यह बात केवल भारत में ही नहीं पायो गयी, प्रत्युत्त मिस्र, बेबिलोन, यूनान एवं रोम में संवत् का लगातार प्रयोग बहुत आगे चलकर शुरू हुआ। ज्योतिर्विदाभरण में (जो पश्चात्कालीन रचना है, जिसमें यह आया है कि यह गतकि ३०६८ अर्थात् ईसा संवत् से ३३ वर्ष पूर्व में प्रणीत हुँआ) कलियुग के ६ व्यक्तियों के नाम आये हैं, जिन्होंने संवत् चलाये थे, यथा—युधिष्ठिर, विक्रम, शालिवाहन, विजयाभिनन्दन, नागार्जुन एवं कल्की, जो क्रम से ३०४४, १३५, १८०००, १००००, ४००००० एवं ८२१ वर्षों तक चलते रहे। प्राचीन देशों में संवत् का लगातार प्रयोग नहीं था, केवल शासन-वर्ष ही प्रयुक्त होते थे। अशोक के आदेश-लेखनों में केवल शासन-वर्ष ही प्रयुक्त हैं। कौटिल्य (अर्थशास्त्र, २।६,पृ० ६०) ने मालगुजारी संग्रह करने वाले के कार्य की व्यवस्था करने के सिलसिले में कालों की ओर भी संकेत किया है, जिनसे मालगुजारी एकत्र करने वाले सम्बन्धित थे, यथा राजवर्ष, मास, पक्ष, दिन आदि।

२. राजवर्ष मासाः पक्षो दिवसश्च ब्युष्टं वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः शेषाः पूर्णाः

यहीं बात व्यवहाररूप से कुषाणों एवं सातवाहनों के कालों तक चलती गयी, अर्थात् शासन-वर्ष ही प्रयुक्त होते रहे।

सैंकड़ों वर्षों तक भारत में विभिन्न प्रकार के संवत् प्रयोग में आते रहे, इससे कालनिर्णय एवं इतिहास में बड़े-बड़े श्रम उपस्थित हो गये हैं। संवतों की सूचियों के विषय में देखिए कनियम कृत 'इण्डिएन एराज'; स्वामिकश्च पिल्लई कृत 'इण्डिएन एफोमेरिस' (जिल्द १, भाग १, पू० ५३-५५); बी० बी० केतकर कृत 'इण्डिएन एण्ड फारेन कोनोलाजी' (पू० १७१-१७२); पी० सी० सेनगुप्त कृत 'ऐंश्येण्ट इण्डिएन एराज' (पू० २२२-२३८); डा० मेघनाथ साहा का लेख 'साइंस एवं कल्चर' (१९५२, कलकत्ता, पू० ११६) तथा कैलेण्डर रिफार्म किमटी (१९५५)। यहाँ हम कुछ ही संवतों की चर्चा करेंगे। अल्बरूनी (सचौ, जिल्द २, पू० ५) ने पाँच संवतों के नाम दिये हैं, यथा श्रीहर्ष, विक्रमादित्य, शक्त, वल्लभ एवं गुप्त संवत्। पहले के विषय में उसके दो विभिन्न कथन हैं और प्रश्न अनिर्णीत छोड़ दिया गया है।

प्राचीन काल में भी कलियुग के आरम्भ के विषय में विभिन्न मत रहे हैं। आधुनिक मत है कि किलयुग ई० पू० ३१०२ में आरम्भ हुआ। इस विषय में चार प्रमुख दृष्टिकोण हैं—(१) युधिष्ठिर ने जब राज्य-सिंहा-सनारोहण किया; (२) यह ३६ वर्ष उपरान्त आरम्भ हुआ जब कि युधिष्ठिर ने अर्जुन के पौत्र परीक्षित को राजा बनाया; (३) पुराणों के अनुसार कृष्ण के देहावसान के उपरान्त यह आरम्भ हुआ (विष्णु० ४।२४। १०८-११३); (४) वराहमिहिर के मत से युधिष्ठिरसंवत् का आरम्भ शक-संवत् के २४२६ वर्ष पहले हुआ, अर्थात्, दूसरे मत के अनुसार, किलयुग के ६५३ वर्षों के उपरान्त। ऐहोल शिलालेख ने सम्भवतः दूसरे मत का अनुसरण किया है; क्योंकि उसमें शक संवत् ५५६ से पूर्व ३७३५ किलयुग संवत् माना गया है। किलयुग संवत् के विषय में सब से प्राचीन संकेत आर्यभट द्वारा दिया गया है; उन्होंने कहा है कि जब वे २३ वर्ष के थे तब किलयुग

पृथगिधमासक इति कालः। अर्थशास्त्र (११।६, पृ० ६०)। पलीट, शामशास्त्री आदि ने इस बचन को कई ढंग से अनूदित किया है। विभिन्न अर्थों का कारण है 'च्युष्ट' शब्द का प्रयोग, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'प्रातःकाल या प्रकाश' और यहाँ तात्पर्य है 'वर्ष का प्रथम दिन, जो शुभ माना जाता है।' देखिए पाणिनि (५।१।९६-९७): तत्र च दीयते कार्य भववत्। व्युष्टादिम्योण्। प्रस्तुत लेखक इस कयन का अनुवाद यों करता है: 'प्राजवर्ष, सास, पक्ष, दिन, शुभ (वर्ष का प्रथम दिन), तीन ऋतुओं, यथा वर्षा, हेमन्त, ग्रीष्म के तीसरे एवं सातवें पक्ष में एक दिन (२० में) कम है, अन्य पक्ष पूर्ण हैं (मास में पूर्ण ३० दिन हैं), मलमास (अधिक मास) पृथक् (कालाविष्क) है। ये सभी वे काल हैं (जिन्हें मालगुजारी संग्रह करने वाला ध्यान में रखेगा)।' प्राचीन कालों में वर्ष में ६ ऋतुएँ थीं, १२ मास थे और थे प्रत्येक मास में ३० दिन। अर्थशास्त्र का यहाँ कथन है कि छः पक्ष ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक में १४ दिन हैं, अतः चान्त्र वर्ष (१४×६+१५×६+३०×६=३५४) ३५४ दिनों का होगा। इसे सौर वर्ष के साथ चलाने के लिए अधिक मास का समावेश किया गया।

३. जिशास जिसहस्रेष भारताबाहवाबितः । सप्ताब्बशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥ पञ्चाशतसु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च । समासु समतीतासु शकानामिष भूभुजाम् ॥ एपिग्रेफिया इण्डिका (जिल्द ४, पृ० ७) । यहाँ पर स्पष्ट रूप से कलियुग का आरम्भ महाभारत युद्ध के उपरान्त माना गया है । पश्चात्कालीन ज्योतिःशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार कलियुग संवत् के ३७१९ वर्षों के उपरान्त शक संवत् का आरम्भ हुआ । देखिए 'याताः षण्यनवी युगानि भिनतान्यन्यगुगांत्रित्रयं नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेवंत्सराः ॥ सिद्धान्तिशरोभिकः (११२८) । 'नन्दाद्रीन्दुगुणा' ३१७९ के बराबर है (नन्द=९, अद्रि=७, इन्दु=१, गुण=३) ।

के ३६०० वर्ष व्यतीत हो चुके थे (अर्थात् वे ४७६ ई० में उत्पन्न हुए)। एक चोल वृत्तान्तालेखन कलियुग संवत् ४०४४ (९४३ ई०) का है। देखिए जे० आर० ए० एस्० (१९११, पृ० ६८९-६९४), जहाँ बहुत-से शिला-लेखों में उल्लिखित कलियुग-संवत् का विवेचन किया गया है। मध्यकाल के भारतीय ज्योतिषियों ने माना है कि कलियुग एवं कल्प के आरम्भ में सभी ग्रह (सूर्य एवं चन्द्र समेत) चैत्र शुक्ल-प्रतिपदा को रिववार के सूर्योदय के समय एक साथ एकत्र थे। किन्तु बर्गेस एवं डा० साहा जैसे आधुनिक लेखक इस कथन को केवल कल्पनात्मक मानते हैं। किन्तु प्राचीन सिद्धान्त-लेखकों के इस कथन को केवल कल्पना मान लेना ठीक नहीं है। यह सम्भव हैं कि सिद्धान्त-लेखकों के समक्ष कोई अति प्राचीन परम्परा रही हो।

प्रत्येक घामिक कृत्य के संकल्प में कृत्यकर्ता को काल के बड़े भागों एवं विभागों को श्वेतवाराह कल्प के बारम्भ से कहना पड़ता है, यथा वैवस्वत मन्वन्तर, किलयुग, किलयुग का प्रथम चरण, भारत में कृत्य करने की भौगोलिक स्थिति, सूर्य, बृहस्पति एवं अन्य ग्रहों वाली राशियों के नाम, वर्ष का नाम, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, योग एवं करण के नाम। देवल का कथन है कि यदि कृत्यकर्ता मास, पक्ष, तिथि, (कृत्य के) अवसर का उल्लेख नहीं करता तो वह कृत्य का फल नहीं प्राप्त करेगा (शान्तिमयूख, पृ० २)। यह है भारतीयों के धार्मिक जीवन में संवतों, वर्षों एवं इनके भागों एवं विभागों की महत्ता। अतः प्रत्येक भारतीय (हिन्दू) के लिए पंचांग अनिवार्य है।

विक्रम संवत् के उद्भव एवं प्रयोग के विषय में कुछ कहना कि है। यही बात शक संवत् के विषय में भी है। किसी विक्रमादित्य राजा के विषय में, जो ई० पू० ५७ में था, सन्देह प्रकट किये गये हैं। इस संवत् का आरम्भ गुजरात में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से (नवम्बर, ई० पू० ५८) है और उत्तरी भारत में चैत्र कृष्ण प्रतिपदा (अप्रैल, ई० पू० ५८) से। बीता हुआ विक्रम वर्ष बराबर है ईसवी सन् +५७। कुछ आरम्भिक शिलालेखों में ये वर्ष कृत के नाम से आये हैं (यथा नन्द-पूप शिलालेख में २८२ कृत वर्ष; तीन यूपों के मौखरी शिलालेखों में २९५ कृत वर्ष; विजयगढ़ स्तम्भ-अभिलंख में ४२८; मन्दसौर में ४६१ तथा गदाघर में ४८०)। विद्वानों ने सामान्यतः कृत संवत् को विक्रम संवत् का पूर्ववर्ती माना है। किन्तु 'कृत' शब्द के प्रयोग की व्याख्या सन्तोषजनक नहीं हो सकी है। कुछ शिलालेखों में मालव-गण का संवत् उल्लिखत है, यथा नरवर्मा का मन्दसौर शिलालेख। कृत एवं मालव

४. लंकानगर्यामुदयाच्य भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव। मधोः सितादेदिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥ प्रहगणित, मध्ययाधिकार, क्लोक १५ (भास्कराचार्यं का); चैत्रसितादेश्दयाद् भानोदिनमासवर्ष-युगकल्याः। सृष्ट्यादौ लंकायां समं प्रवृत्ता दिनेऽकंस्य ॥ ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त (१।४)।

५. देखिए एपिग्रेफिया इण्डिका (जिल्ब ८, पू० २६१)। एपि० इण्डिका (जिल्ब २८, पू० ६३) में अकेंद्रवर देव के कई पट्ट-लेख हैं जिनमें युगान्व ४२४८ (किल्युग संवत्) का उल्लेख हैं, जो ६ फरवरी ११४८ ई० का है। और देखिए 'ऐनल्स आब साइंस' (जिल्ब ८, संख्या ३, १९५२, पू० २२१-२२८) जहां प्रो० नेजगेबावर एवं डा० ओ० विचम्इट का 'हिन्दू ऐस्ट्रानोमी एट न्यू मिस्टर इन १४२८' नामक लेख है, जिसमें इंग्लैण्ड के न्यूमिंस्टर स्थान में लिखित एक अज्ञात लेखक के एक प्रबन्ध की ओर संकेत किया गया है, जिसमें १४२८ वर्ष एवं न्यूमिंस्टर के अक्षांश के लिए अयोतिःशास्त्रीय गणनाएँ की गयी हैं। उस प्रबन्ध में कितियय अरबी लेखकों के उद्धरण हैं, जिनमें एक 'ओमर' (या उमर, बो ८१५ ई० में मरा) का उल्लेख है, और प्रबन्ध में आया है कि एल्फेंजो ने अबतार के ३१०२ वर्ष पूर्व १६ फरवरी को बाढ़ (फ्लड) के वर्ष का आरम्भ किया; यह तिथि स्पष्ट रूप से कल्युग संवत् (जिसे आरतीय ज्योतिषाचायों ने प्रयुक्त किया है) के बारम्भ से सर्वथा मिलती-जुलती है।

संवत् एक ही कहे गये हैं, क्योंकि दोनों पूर्वी राजस्थान एवं पश्चिमी मालवा में व्यवहृत हुए हैं। यह द्रष्टव्य है कि कृत के २८२ एवं २९५ वर्ष तो मिलते हैं किन्तु मालव संवत् के इतने प्राचीन शिलालेख नहीं मिलते। यह संभव है कि कृत नाम पुराना है और जब मालवों ने उसे अपना लिया तो वह 'मालव-गणाम्नात' या 'मालव-गण-स्थित' के नाम से पुकारा जाने लगा। किन्तु यह कहा जा सकता है कि यदि कृत एवं मालव दोनों बाद में आने वाले विक्रम संवत् की ओर ही संकेत करते हैं, तो दोनों एक साथ ही लगभग एक सौ वर्षों तक प्रयोग में आते रहे, जैसे कि हमें ४८० कृत वर्ष एवं ४६१ मालव वर्ष प्राप्त होते हैं। यह मानना कठिन है कि कृत संवत् का प्रयोग कृतयुग के आरम्भ से हुआ। यह सम्भव है कि 'कृत' का वहीं अर्थ है जो 'सिद्ध' का है (यथा 'कृतान्त' का अर्थ है 'सिद्धान्त') और यह संकेत करता है कि यह कुछ लोगों की सहमित से प्रतिष्ठापित हुआ है। ८ वीं एवं ९ वीं शती से विक्रम संवत् का नाम विशिष्ट रूप से मिलता है। इतना ही नहीं, संस्कृत के ज्योतिःशास्त्रीय ग्रन्थों में यह शक संवत् से भिन्नता प्रदिश्ति करने के हेतु सामान्यतः केवल संवत् नाम से उल्लिखित है। चालुक्य विक्रमादित्य पष्ठ के वेडरावे शिलालेख से पता चलता है कि राजा ने शक संवत् के स्थान पर चालुक्य विक्रम संवत् चलागा, जिसका प्रथम वर्ष था १०७६-७७ ई०।

लगभग ५०० ई० के उपरान्त संस्कृत में. लिखित सभी ज्योति:शास्त्रीय प्रन्थ शक संवत् का प्रयोग करते पाये गये हैं। इस संवत् का यह नाम क्यों पड़ा, इस विषय में कई एक मत हैं। इसे बुषाण राजा कनिष्क ने चलाया या किसी अन्य ने, अभी तक कुछ भी अन्तिम रूप से नहीं कहा जा सका है। यह एक ऐसी समस्या है जो भारतीय इतिहास एवं काल-निर्णय की अत्यन्त कठिन समस्याओं में परिगणित होती है। वराहिमिहिर ने इसे शक-काल (पंचिसद्धान्तिका एवं वृहत्संहिता १३।३) तथा शकेन्द्रकाल या शक-भूपकाल (बृ० सं० ८।२०-२१) कहा है। उत्पल (लगभग ९६६ ई०) ने बृ० सं० (८।२०) की व्याख्या में कहा है कि जब विक्रमादित्य द्वारा शक राजा मारा गया तो यह संवत् चला। इसके वर्ष चान्द्र-सीर-गणना के लिए चैत्र से एवं सीर गणना के लिए मेष से आरम्भ होते थे। इसके वर्ष सामान्यतः बीते हुए हैं और सन् ७८ ई० के वासन्तिक विष्व से यह आरम्भ किया गया है। सब से प्राचीन शिलालेख, जिसमें स्पष्ट रूप से शक संवत् का उल्लेख है, चालुक्य वल्लभेश्वर का है, जिसकी तिथि है ४६५ शक संवत् (अर्थात् ५४३ ई०)। क्षत्रप राजाओं के शिलालेखों में वर्षों की संख्या व्यक्त है, किन्तु संवत् का नाम नहीं है, किन्त् वे संख्याएँ शक काल की द्योतक हैं, जैसा कि सामान्यतः लोगों का मत है। कुछ लोगों ने कृषाण राजा कृतिष्क को शक संवत् का प्रतिष्ठापक माना है। पश्चात्कालीन, मध्यवर्ती एवं वर्तमान कालों में (ज्योतिर्विदाभरण में भी यही बात है) शक संवत् का नाम शालिवाहन है। किन्तु संवत् के रूप में शालिवाहन रूप १३ वीं या १४ वीं शती के शिलालेखों में आया है। यह संभव है कि सातवाहन नाम (हर्ष चरित में गायासप्तशती के प्रणेता के रूप में वर्णित) शालवाहन बना और पुनः शालिवाहन के रूप में आ गया। देखिए कैलेण्डर रिफार्म कमिंटी रिपोर्ट (पृ० २४४-२५६)।

कश्मीर में प्रयुक्त सप्तार्ष संवत् एक अन्य संवत् है जो लौकिक संवत् के नाम से भी प्रसिद्ध है। राजतरंगिणी (१।५२) के अनुसार लौकिक वर्ष २४ गत शक संवत् १०७० के बराबर है। इस संवत् के उपयोग में सामान्यतः शताब्दियाँ नहीं दी हुई हैं। यह चान्द्र-सौर संवत् है और चैत्र शुक्ल की प्रतिपदा को ई० पू० अप्रैल ३०७६ में आरम्भ हुआ। वृ० सं० (१३।३-४) ने एक परम्परा का उल्लेख किया है कि सप्तािष एक नक्षत्र में सौ वर्षों तक रहते हैं और जब युधिष्ठिर राज्य कर रहे थे तो वे मेष राशि में थे। सम्भवतः यही सौ वर्षों वाले वृत्तों का उद्गम है।

वहुत-से अन्य संवत् भी थे, यथा वर्षमान, बुद्ध-निर्वाण, गुप्त, चेदि, हर्ष, लक्ष्मणसेन (बंगाल में), कोल्लम या परशुराम (मलावार में), जो किसी समय (कम-से-क्म्म लौकिक जीवन में) बहुत प्रचलित थे। इनका जुल्लेख यहाँ नहीं होगा।

### वर्मशास्त्र का इतिहास

088

हमने यह देख लिया है कि वैदिक ग्रन्थों में वर्ष के कई नाम थे, यथा संवत्सर, समा, वर्ष। नारदसंहिता (३।१-२) में ऐसा आया है कि काल के नी प्रकार के मान थे, यथा ब्राह्म (ब्रह्मा का), दैवं (देवों का), मानुष (मानव), पिक्य (पितरों का), सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र एवं बार्हस्पत्य, किन्तु सामान्य भौतिक कार्यों में इनमें केवल पाँच ही प्रयुक्त होते हैं। वेदांग-ज्योतिष ने, लगता है, चार प्रकार दिये हैं, क्योंकि उसमें आया है कि एक युग (पाँच वर्षों के) में ६१ सावन मास, ६२ चान्द्र मास, ६७ नाक्षत्र मास होते हैं। हेमाद्रि (काल, पृ०९) ने केवल तीन वर्ष-मान बताये हैं, यथा चान्द्र, सौर एवं सावन । माघव (कालनिर्णयकारिका ११-१२) ने दो और लिखे हैं, यथा नाक्षत्र एवं बार्हस्पत्य । विष्णुचर्मोत्तर ने चार का उल्लेख किया है (बार्हस्पत्य छोड़ दिया है) । हेमाद्रि द्वारा वर्णित तीन अधिकतर धार्मिक एवं लौकिक कार्यों में प्रयुक्त होते रहे हैं। एक अमावास्या से दूसरी अमावास्या तक की अविध को चान्द्र सास कहते हैं, और ऐसे १२ मासों से ३५४ दिनों वाला एक चान्द्र वर्ष बनता है। इसे एक चन्दोदय से दूसरे चन्द्रोदय तक की अविध 'ल्यूनेशन' भी कहते हैं। चान्द्र मास की लम्बाई (अविध या विस्तार) २९.२४६ से २९.८१७ दिनों तक की होती है, क्योंकि चन्द्रकक्षा के थोड़े झुकाव (विपयगामिता) एवं अन्य कारणों से जूछ-त-कुछ अन्तर पड़ जाता है, किन्तु मध्यम लम्बाई है २९.५३०५९ दिन। सौर मास उस अविध का सूचक है जो सुर्य द्वारा एक राशि को पार करने से बनती है; इस प्रकार के १२ मासों से सीर वर्ष बनता है तथा सीर वर्ष का प्रथम दिन सौर मास का प्रथम दिन मेष होता है। यदि सूर्य का राशि में प्रवेश दिन में होता है तो वह दिन मास का प्रथम दिन होता है। यदि प्रवेश रात्रि में होता है तो दूसरा दिन मास का प्रथम दिन होता है। किसी राशि में सूर्य के प्रवेश का काल विभिन्न पंचांगों में विभिन्न होता है, किसी पंचांग में सूर्यास्त के पूर्व और किसी में सुयस्ति के उपरान्त होता है। अतः मास के प्रथम दिन के विषय में एक दिन का अन्तर हो सकता है। विभिन्न अयनाशों एवं वर्ष की लम्बाई के अन्तर के प्रयोग से दृक्, वाक्य एवं सिद्धान्त पंचांगों में अन्तर पड़ सकता है और पर्व-उत्सवों के जिषय में वर्ष के प्रथम दिन में भिन्नता पायी जा सकती है। सावन वर्ष ३० दिनों के १२ मासों का होता है और दिन की गणना एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक होती है। नाक्षत्र मास वह है जिसमें २७ नक्षत्रों में चन्द्र के गमन की अविव पूरी होती है। बाहंस्पत्य वर्ष वह है जो एक राशि में वृहस्पति के भ्रमण से बनता है (लगभग ३६१ दिन का वर्ष)। आजकल की गणना के अनुसार वृहस्पति सूर्य के चारों ओर ११.८६ वर्षों में चक्कर लपा लेता है। ये चार या पाँच काल-विभाग प्रारम्भिक ग्रन्थों में नहीं वर्णित हैं, यहाँ तक कि पश्चात्कालीन गणना में चार विभागों का उपयोग नहीं हुआ है, यद्यपि ज्योति:शास्त्रीय एवं धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में उनका उल्लेख अवश्य हुआ है। कौटिल्य (अर्थशास्त्र, २।२०,पृ० १०८) ने व्यवस्था दी है कि श्रमिकों का मास ३० अहोरात्र (दिन-रात्र)

६. बाह्यं देवं मानुषं च पित्र्यं सौरं च सावनम् । चान्द्रमाक्षं गुरोर्मानमिति मानानि वे नव ।। एषां तु नवसानां व्यवहारोऽत्र पञ्चिभः । तेषां पृथक्-पृथक् कार्यं वक्ष्यते व्यवहारतः ।। नारद-संहिता (३।१-२) । कल्प ब्रह्मा का दिन है (सूर्यंसिद्धान्त १।२०)! ; एक मानव-वर्ष देवों के एक दिन के बराबर है (एकं वा एतद् देवानामहो यत्संवत्तरः । तं ० बा०, ३।९।२२।१); एक मानव-मास पितरों का अहोरात्र है (मनु १।६६) । मानुषमान (मानव मान) विमिन्न (मिन्नित) है क्योंकि लोग विभिन्न उपयोगों के लिए चार मान प्रयुक्त करते हैं , जैसा कि सि० शि० (१। ३०-३१) में उल्लिखित है (न्नेयं विमिन्नं तु मनुष्यमानं मानैश्चतुर्भिन्न्यंवहारवृत्तेः ।। वर्षायनर्तु युगपूर्वकभन्न सौरान् मासास्तया च तिथयस्तुहिनां गुमानात् । यत्कृष्यकुसूतक चिकित्सितवासराद्यं तत्सावनाच्च घटिकादिकमार्क्षमानात् ।।) किन्तु उसने आगे कहा है (१।३२) कि यहाँ के मान मानव मान से किये जाते हैं (प्रहास्तु साध्या मनुजैः स्वमानात्)

का होता हैं, सीर मास १ दिन बड़ा होता है (एक मास में ३०६ दिन), चान्द्र मास में १ दिन कम (२९६ दिन), नाक्षत्र मास में २७ दिन, मलमास में ३२ दिन (या ३२ वें मास में यह घटित होता हैं?)। जो लोग घोड़ों को चराते हैं (या रखवाली करते हैं) उनके मास में (पारिश्रमिक के लिए) ३५ दिन तथा हस्तिवाहकों (पीलवानों) के मास में (पारिश्रमिक के लिए) ४० दिन होते हैं। बाह्यस्फुटसिद्धान्त (बृ० सं० २।४, पृ० ४० पर उत्पल द्धारा उद्घृत) में आया है कि सौर गणना से युग, वर्ष, विषुव, अयन, ऋतुओं, दिन एवं रात्रि की वृद्धि का ज्ञान होता है, चान्द्र गणना से तिथियों, करणों, मलमास, मास या क्षयमास, रात्रि के कृत्यों का ज्ञान होता है; सावन गणना से यज्ञों, सवनों (तीन सोम यज्ञों), ग्रह-गतियों, उपवासों, जनन-मरण-आशीचों, चिकित्सा, प्रायश्चित्तों तथा अन्य वार्मिक कृत्यों का परिचय मिलता है। देखिए विष्णुधर्मोत्तर (१।७२।२६-२७) भी।

अाधुनिक काल में वर्ष का आरम्म भारत के विभिन्न भागों में कार्तिक या चैत्र मास में होता है। प्राचीन कालों में विभिन्न देशों में विभिन्न उपयोगों के लिए विभिन्न मासों में वर्ष का आरम्म होता था। कुछ वैदिक वचनों से प्रकट होता है कि गणना पूर्णिमान्त थी और वर्ष फाल्गुन पूर्णिमा के उपरान्त आरम्म होता था। और वसन्त वर्ष की प्रथम ऋतु था (तै० बा० ११११२३; कौ० बा० ५११; शांखायन बा० १९१३; ताण्डच महा बा० ५।९।७-१२ आदि)। कालनिर्णय (पृ० ६१) में माघव ने कहा है कि वेद पूर्णिमान्त मास पर आख्ढ हैं। स्मृतिच० (श्राढ, पृ० ३७७) का कथन है कि दक्षिणापथ में अभान्त एवं उत्तरापथ (उत्तर भारत) में पूर्णिमान्त गणना होती है। वेदांगज्योत्तिष (११५) के मत से युग (पाँच वर्ष) का प्रथम वर्ष माघ शुक्ल (मकर संक्रान्ति या उत्तरायण) से आरम्म होता है। अल्बख्नी (सचौ २, पृ० ८-९) का उल्लेख है कि चैत्र, भाद्रपद, क्रार्तिक, मार्गशीर्ष से भारत के विभिन्न भागों में वर्ष का आरम्म होता है। कौटिल्य (अर्थशास्त्र २१६, पृ० ६३) ने कहा है कि प्रशासन के आय-व्यय-निरीक्षण-कार्यालय में कर्मसंवत्सर चान्द्र था जो आषाढ़ की पूर्णिमा को समाप्त होता था। वनभवं (१३०।१४-१६) में वर्ष के चैत्रारम्भ का उल्लेख है। यह सम्भव है कि वर्ष मार्गशीर्ष से आरम्भ होता था, क्योंकि अनुशासन, (१०६।१७-३०) ने मार्गशीर्ष से कार्तिक तक के एकभक्त वर्ष के फलों का वर्णन किया है। कृत्यरत्नाकर (पृ० ४५२) ने ब्रह्मपुराण को उद्घृत कर लिखा है कि कृत्युग में मार्गशीर्ष की प्रतिपदा से वर्ष आरम्भ होता था।

अव हम जुछ वातें ६० वर्ष-वृत्त वाले (पष्ट्यब्द) बाह्ंस्पत्य मान के विषय में कहेंगे। विष्णुधर्मोत्तर (१। ८२।८) का कथन है कि पष्ट्यब्द का प्रभव नामक प्रथम वर्ष माघ शुक्ल से आरम्भ हुआ, जब्म सूर्य एवं चन्द्र घिनिष्ठा नक्षत्र में थे और वृहस्पित से उनका योग था। वृ० सं० (४।२७-५२) में पष्ट्यब्द के विभव से ६०वें क्षय तक के फलों का उल्लेख है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर (१।८२।९), अग्नि० (अध्याय १३९) एवं भविष्य० (ज्योतिस्तत्त्व, पृ० ६९२-६९७ में उद्धृत)। पष्ट्यब्द के प्रत्येक वर्ष के साथ 'संवत्सर' शब्द जुड़ा हुआ है। दक्षिण में प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में बार्हस्पत्य नाम सदा परिवर्तित रहा है; किन्तु उत्तर भारत में 'प्रभव' के स्थान पर 'विजय' शब्द रहा है। बार्हस्पत्य वर्ष का विस्तार ३६१.९२६७ दिनों का है और यह नाक्षत्र वर्ष से ४.२३ दिन

७. त्रिश्वहोरात्रः प्रकर्ममासः । सार्वसौरः (सार्घः सौरः?) । अर्घन्यूनश्चान्द्रमासः । सप्तविश्वितनंक्षत्रमासः । द्वात्रिश्वद् मलमासः । पञ्चित्रशद्भववाहायाः । चत्वारिशद्धस्तिवाहायाः । अर्थशास्त्र (२।२०, पृ० १०८) । महाभाष्य (पाणिति ४।२।२१ के वार्तिक २ पर) ने भृतकमास (वेतन वाली नौकरी के मास) का उल्लेख किया है जो प्रकर्ममास का परिचायक-सा है ।

. ३२२

कम है। इसका परिणाम यह है कि ८५ नाक्षत्र वर्षों में ८६ बाईस्पत्य वर्ष हैं और ८५ वर्षों के उपरान्त एक वर्ष का क्षय हो जाता है।

मासों का विषय अत्यन्त जटिल है। भारतीयों ने आदि काल से ही चान्द्र-सौर पंचांग का प्रयोग किया है और यही बात बेबिलोन, चाल्डिया के लोगों, यहूदियों एवं चीनियों के बीच पायी गयी है। अतः सभी ने मलमास का सहारा लिया है। किन्तु भारतीयों में क्षय मास बहुत विरल था, जिसका अन्य देशों में अभाव था। यह अन्तर सूर्य एवं चन्द्र की गतियों एवं स्थानों की गणना के विभिन्न ढंगों के कारण उपस्थित हुआ। अधिक मास की अनिवार्यता पर कुछ शब्द यहाँ दिये जाते हैं। सौर वर्ष चान्द्र वर्ष से ११ दिनों से थोड़ा अधिक बड़ा होता है। यह अधिकता लगभग ३२ मासों में एक चान्द्र मास की होती है वेबिलोनियों के १९ वर्षों के एक वृत्त ७ मलमास (अर्थात) सव मिला कर २३५ चान्द्र मास) थे। इसी वृत्त को यूनान में अथेनियानिवासी मेटान के नाम पर मेटानिक साइकिल (वृत्त) कहा गया। इसी के आघार पर यहूदी एवं ईसाई पंचांग बने, विशेषतः ईस्टर से सम्बन्धित। वेदांग-ज्योतिष से प्रकट है कि एक युग (पाँच वर्षों के वृत्त) में दो मलमास होते थे, एक था ढाई वर्षों के जपरान्त, दूसरा आषाढ़ और दूसरा युग के अन्त में दूसरा पौष। यही बात कौटिल्य में है। पुराणों में मलगास की विविध अविधयों का उल्लेख है। एक अपेक्षाकृत अधिक निश्चित नियम यह है कि वह चान्द्र-मास, जिसमें संक्रान्ति नहीं होती, अधिक कहलाता है और आगे के मास के नाम से, जो शुद्ध या निजया प्राकृत कहलाता है, द्योतित होता है। यदि एक सौर मास में दो अमायास्या पड़ती हों तब मलमास होता है। चान्द्र मास में जब दो संकान्तियाँ होती हैं तो दो मास हो जाते हैं, जिनमें प्रथम स्वीकृत होता है और दूसरा छोड़ दिया जाता है। यह दूसरा क्षयमास कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब एक मास में दो संक्रान्तियाँ होती। हैं तो क्षयमास होता है। वह चान्द्र मास जिसमें सूर्य मेष राशि में प्रविष्ट होता है, चैत्र तथा जिसमें वह वृषभ राशि में प्रवेश करता है वह वैशाख फहलाता है।

अधिक एवं क्षय मासों के विषय में जुछ और कहना आवश्यक हैं। फाल्गुन से आश्विन तक के सात मास केवल अधिक हो सकते हैं, क्षय नहीं। कार्तिक एवं मार्गशीर्ष अधिक एवं क्षय दोनों हो सकते हैं, किन्तु ऐसा बहुत कम ही होता है। माघ अधिक हो सकता है, किन्तु यह अधिक या क्षय कभी नहीं हुआ है। (देखिए केतकर का ग्रन्थ, इण्डियन एण्ड फारेन कोनोलाजी, पृ० ४०)। किन्तु शुद्धिकौमुदी (पृ० २७२) में आया है कि शक्त संवत् १३९७ में माघ मास का क्षय हुआ था। मलमासतत्त्व (पृ० ७७४) में उद्धरण आया है कि माघ मलमास हो सकता है, किन्तु पौष नहीं। केतकर (पृ० ४०) के मत से पौष के अधिक मास होने की सम्मावना नहीं है किन्तु वह मार्गशीर्ष की अपेक्षा क्षय मास होने की अधिक सम्भावना रखता है। क्षय मास सामान्यतः अधिक मास के पूर्व या उपरान्त (तुरत उपरान्त नहीं) होता है, अतः जब जुछ वर्षों में क्षय मास होता है तो दो अधिक सास पाये जाते हैं। इस विषय में और देखिए कैलेज्डर रिफार्म किमटी रिपोर्ट, पृ० २४६-२५२।

शान्तिपर्व (३०१।४६-४७) ने संवत्सरों, मासों, पक्षों एवं दिवसों के क्षय का उल्लेख किया है। जब क्षयमास होता है तो इसके पूर्व का अधिक मास अन्य साधारण मासों के समान पवित्र रहता है, अर्थात् उसमें घामिक कृत्य करना मना नहीं है, तथा वह अधिक मास जो क्षयमास के उपरान्त आता है, धामिक कृत्यों के लिए विजत घोषित किया गया है। उदाहरण से इन दोनों को समझ लिया जाय। मान लीजिए चैत्र अमावास्या को मेष संकान्ति है, और अमावास्या के आगे की तिथि से दूसरी अमावास्या (जो वैशाख है) तक कोई संकान्ति नहीं है, और तब उसके उपरान्त प्रथम तिथि में वृषम संकान्ति है, तो ऐसी स्थिति में वह मास जिसमें संकान्ति नहीं है अधिक वैशाख कहा जायगा, और वह मास जिसमें वृषम संकान्ति पड़ती है शुद्ध वैशाख होगा। अब क्षय मास का उदाहरण

लें—मान लीजिए भाद्रपद अमावास्या को कृत्या संक्रान्ति है, उसके उपरान्त अधिक आश्विन के बाद शुद्ध अश्विन आता है, जिसकी प्रथम तिथि पर तुला संक्रान्ति है, इसके उपरान्त क्रांतिक शुक्ल प्रतिपदा को वृश्चिक संक्रान्ति है, और मार्गशीर्ष-शुक्ल प्रतिपदा को घनु संक्रान्ति है और उसी मास की अमावास्या को मकर संक्रान्ति पड़ती है। ऐसी स्थिति में दो संक्रान्तियों (धनु एवं मकर) वाला मास क्षयमास होगा और तब पीष (मार्गशीर्ष एवं पौष से बने) का एक मास होगा। जब माघ अमावास्या को कुम्म संक्रान्ति है तो फाल्गुन अधिक मास होगा और शुद्ध फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को मीन संक्रान्ति होगी। इस प्रकार उस वर्ष में, जिसमें क्षयमास होता है, अब मी १३ मास होते हैं और उसके दिन ३९० से थोड़े कम होते हैं।

चान्द्र तथा अन्य वर्षों के वर्णन के सिलसिले में हमने चान्द्र, सीर, सावन एवं नाक्षत्र मासों की ओर संकेत कर दिया है। जैसा कि कृत्यरत्नाकर में आया है (पृ० ८०), धर्मशास्त्र में नाक्षत्र मास की आवश्यकता नहीं पड़ती, यह केवल ज्योतिष-शास्त्र में ही चलता है। पंचांग सामान्यतः प्रत्येक वर्ष के लिए बनते हैं। उनमें १२ (या १३, जब मलमास होता है) के दो पक्षों के पृथक् पृष्ठ होते हैं। भारतीय पंचांग के पांच महत्त्वपूर्ण भाग हैं; तिथि, सप्ताह-दिन, नक्षत्र, योग एवं करण। मुहूर्तदर्शन (१।४४) के मत से इसमें राशियों के समावेश से छः तथा प्रहों की स्थितियों के उल्लेख से सात भाग होते हैं। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक वार (दिन) होता है। तिथियों एवं नक्षत्रों के विषय में अगे लिखा जायगा।

वारह महीनों एवं उनके दो-दो से गठित ६ ऋतुओं का उल्लेख बहुत प्राचीन है। देखिए तैत्तिरीय-संहिता (४।३।११। १),वाज ० सं० (१३।२५)। मासों के वैदिक नाम हैं—मधु, माघव, सुक्र, सुचि, नमस्, नमस्य, इष, ऊर्ज, सहस्य, तपस् एवं तपस्य। ब्राह्मणों में नक्षत्रों से ज्ञापित चान्द्र मासों का उल्लेख है। इसी से कुछ लोग सौर एवं चान्द्र ऋतुओं का भी उल्लेख करते हैं। सौर मास मीन राशि या मेष राशि से आरम्भ होते हैं तथा चैत्र आदि (या शेष वाले) कहलाते हैं।

पाणिनि ने मासों की ब्युत्पत्ति की है, यथा चित्रायुक्त पौर्णमासी से चैत्र, और स्पष्ट रूप से (४।२।२२) आग्रहायणी, फाल्गुनी, श्रवणा, कार्तिकी एवं चैत्री (४।२।२३) के नाम दिये हैं। 'पौर्णमासी' पूर्णमास से ब्युत्पन्न है (वार्तिक २, पा० ४।३।३५)। पुष्प नक्षत्र वाली पौर्णमासी तिथि 'पौर्षी' कही गयी है (पा० ४।२।२ एवं ४।२।३१)। इस प्रकार विकास के तीन स्तर हैं: (१)२७ नक्षत्रों के रूप प्रकट हुए और उनके नाम वैदिक संहिताओं में ही प्रचलित हो गये; (२) इसके उपरान्त पौर्णमासी चैत्री पौर्णमासी कही गयी आदि, क्योंकि उस तिथि पर चन्द्र चित्रा नक्षत्र में था, आदि; (३) इसके उपरान्त मासों के नाम यों पड़े—चैत्र, वैशाख आदि, क्योंकि उनमें चैत्री या वैशाखी पौर्णमासी थी। यह सब पाणिनि के बहुत पहले प्रचलित हुआ। आगे चलकर सौर मास मघु, माघव आदि चैत्र, वैशाख आदि चान्द्र मासों से द्योतित होने लगे और समानार्थी हो गये। यह कब हुआ, कहना कठिन है। किन्तु ईसा के बहुत पहले ऐसा हुआ। पौर्णमासी के दिन चन्द्र मले ही चित्रा या श्रवण नक्षत्र में या उसके पास न हो किन्तु मास तब भी चैत्र या श्रावण कहलाता है।

यह हमने देख लिया है कि प्राचीन ब्राह्मण-कालों में मास पूणिमान्त (पूर्णिमा से अन्त होने वाले) थे। यहाँ तक कि कनिष्क एवं हुविष्क जैसे उत्तर भारत के विदेशी शासकों के वृत्तान्तों में पूर्णिमान्त मासों का प्रयोग पाया जाता है, किन्तु कहीं-कहीं वहाँ मैसीडोनी नाम भी आये हैं।

ईसा पूर्व के शिलालेखों में मासों (ई॰ पूर्व दूसरी शती के मेनेण्डर के खरोष्ठी अभिलेख में कार्तिक चतुर्दशी का उल्लेख है) के नाम बहुत कम आये हैं। प्रचलित ढंग था ऋतु, तदुपरान्त ऋतु में नामरिहत मास तथा दिवस का उल्लेख। कहीं-कहीं केवल ऋतु, पक्षों की संख्या एवं दिन के नाम आये हैं। कभी-कभी मास की नाम आया है, किन्तु पक्ष या दिनों के नाम लगातार (१ ते ३० तक) नहीं आये हैं। यह स्थिति, अर्थात् पक्षों एवं दिनों की वर्णन-रहितता, ९ वीं शती तक वली गयी। आजकल लोग सृदि, विद या वदा का प्रयोग करते हैं, उनमें प्रथम (अर्थात् सुदि) शुक्ल दिन (या दिवस) या शुद्ध दिन का छोटा रूप है तथा दूसरा (विद) बहुल दिन या दिवस (य या व परिवर्तित होते रहते हैं) का छोटा रूप है। वद्य का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। यह नहीं समझ में आता कि ईसा के पूर्व एवं उपरान्त के बहुत-से शिलालेखों में 'पक्ष' शब्द का उल्लेख क्यों नहीं हुआ है, जब कि ब्राह्मणों एवं उपनिषदों जैसे प्राचीन प्रन्थों में उसका उल्लेख हुआ है।

दक्षिण भारत में मासों के नाम राशियों पर आधारित हैं,यथा मीन-मास, मेष-मास आदि। यही प्रयोग पाण्डय देश में भी प्रचलित था।

अधिक मास कई नामों से विख्यात है --अधिमास, मलमास, मलिम्लुच, संसर्प, अंहस्पति या अंहसस्पति, पुरुषोच्चममास । इनकी व्याख्या आवश्यक है। यह द्रष्टव्य है कि बहुत प्राचीन काल से अधिक मास निन्द्य ठहराये गये हैं। ऐत० बा० (३।१) में आया है: 'देवों ने सीम की लता १३ वें मास में खरीदी, जो व्यक्ति इसे बेचता है वह पतित है, १३ वाँ मास फलदायक नहीं होता।' तै० सं० में १३ वाँ मास 'संसर्प' एवं 'अंहस्पति' (१।४।४।१ एवं ६।५।३।४) कहा गया है। ऋग्वेद में 'अंहस्' का तात्पर्य पाप से है। यह अतिरिक्त मास है, अतः अधिमास या अधिकमास नाम पड़ गया है। इसे मलमास इसलिए कहा जाता है कि मानी यह काल का मल है। अथर्ववेद (८।६।२) में 'मलिम्लुच' आया है, किन्तु इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। काठकसंहिता (३८।१४) में भी इसका उल्लेख है। पश्चात्कालीन साहित्य में 'मिलम्लुच' का अर्थ है 'चोर'। और देखिए ऋग्वेद (१०।१३६।२), वाज० सं० (२२।३०), ज्ञां० श्री० सू० (६।१२।१५)। मलमासतत्त्व (पृ० ७६८) में यह व्युत्पत्ति है : 'मली सन् म्लोचित गच्छतीति मलिम्लुचः' अर्थात् 'मलिन (गंदा ) होने पर यह आगे बढ़ जाता है।' 'संसर्प' एवं 'अंहसस्पति' शब्द वाज सं० (२२।३० एवं ३१) में तथा 'अंहसस्पति' वाज ० सं० (७।३१) में बाये हैं। और देखिए तै॰ सं॰ (१।४।१४।१ एवं ६।५।३।४)। 'बंहसस्पति' का शाब्दिक अर्थ है - स्वामी।' पश्चात्कालीन लेखकों ने 'संसर्प' एवं 'अंहसस्पति' में अन्तर व्यक्त किया है। जब एक वर्ष में दो अधिमास हों और एक क्षय मास हो तो दोनों अधिमासों में प्रथम 'संसर्प' कहा जाता है और यह विवाह को छोड़कर अन्य घार्मिक कृत्यों के लिए निन्छ माना जाता है। अंहसस्पति क्षय मास तक सीमित है। कुछ पुराणों में (यथा पद्म०, ६।६४) अघिमास पुरुषोत्तम मास (विष्णु को पुरुषोत्तम कहा जाता है) कहा गया है और सम्भव है, अधिमास की निन्दाता को कम करने के लिए ऐसा नाम दिया गया है।

घमंशास्त्रीय ग्रन्थों में अघिमास के विषय पर बहुत कुछ लिखा हुआ है। कुछ वातें यहाँ दी जा रही हैं। अग्नि॰ (१७५।२९-३०) में आया है—वैदिक अग्नियों को प्रज्वलित करना, मूर्ति-प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, संकल्प के साथ वेद-पाठ, साँड छोड़ना (वृषोत्सगं), चूड़ाकरण, उपनयन, नामकरण, अभिषेक अधिमास में नहीं करना चाहिए। हेमांब्र (काल, पृ० ३६-६३) ने विजत एवं मान्य कृत्यों की लम्बी-लम्बी सूचियां दी हैं। और देखिए निर्णयसिन्धु (पृ० १०-१५) एवं घमंसिन्धु (पृ० ५-७)। कुछ सामान्य व्यवस्थाओं की चर्चा की जा रही हैं। सामान्य नियम यह है कि मलमास में नित्य कर्मों एवं नैमित्तिक कर्मों (कुछ विशिष्ट अवसरों पर किये जाने वाले कर्मों) को करते रहना ही चाहिए, यथा सन्ध्या, पूजा, पंचमहायज्ञ (ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव आदि), अग्नि में हिंब डालना (अग्निहोत्र के रूप में), ग्रहण-स्नान (यद्यपि यह नैमित्तिक है), अन्त्येष्टि कर्म (नैमित्तिक)। यदि शास्त्र कहता है कि यह कृत्य (यथा सोम यज्ञ) नहीं करना चाहिए तो उसे अधिमास में स्थिगत कर देना चाहिए। यह भी सामान्य नियम है कि काम्य (नित्य नहीं, वह जिसे किसी फल की प्राप्ति के लिए किया जाता है) कर्म

नहीं करना चाहिए। कुछ अपवाद भी हैं, यथा कुछ कर्म, जो अधिमास के पूर्व ही आरम्भ हो गये हों (यथा १२ दिनों वाला प्राजापत्य प्रायिचत्त, एक मास वाला चान्द्रायण वत), अधिमास तक भी चलायें जा सकते हैं। यदि दुर्शिक्ष हो, वर्षा न हो रही हो तो उसके लिए कारोरी इब्टि अधिमास में भी करना मना नहीं है, क्योंकि ऐसा न करने से हानि हो जाने की सम्भावना रहती है। ये बातों कालनिर्णय-कारिकाओं (२१-२४) में वर्णित हैं।

कुछ बातें ऐसी हैं जो मलमास के लिए ही व्यवस्थित हैं, यथा प्रतिदिन या कम-से-कम एक दिन ब्राह्मणों को ३३ अपूपों (पूओं) का दान करना चाहिए। कुछ ऐसे कमें हैं जो शुद्ध मासों में ही करणीय हैं, यथा वापी एवं तड़ाग (बावली एवं तलाव) खुदवाना, कूप बनवाना, यज्ञ कमें, महादान एवं वृत । कुछ ऐसे कमें हैं जो अधिमास एवं शुद्ध मास, दोनों में किये जा सकते हैं, यथा गर्भ का कृत्य (पुंसवन जैसे संस्कार), ब्याज लेना, पारिश्रमिक देना, मास-श्राद्ध (अमावास्या पर), आह्निक दान, अन्त्येष्टि किया, नव-श्राद्ध, मधा-नक्षत्र की त्रयोदशी पर श्राद्ध, सोलह श्राद्ध, चान्द्र एवं सीर ग्रहणों पर स्नान, नित्य एवं नीमित्तिक कृत्य (हेमाद्रि, काल, पृ० ५२; समयप्रकाश, पृ० १४५)।

जिस प्रकार हमारे यहाँ १३ वें मास (मलमास) में घामिक कृत्य वीजत हैं, पश्चिमी देशों में १३ वीं

संख्या अभाग्यसूचक मानी जाती है, विशेषतः मेज पर १३ चीजों की संख्या।

भारतीय पंचांगों के पाँच अंगों में एक सप्ताह-दिन भी है। अतः दिनों एवं सप्ताह-दिनों पर संक्षेप में लिखना आवश्यक है। दोनों सूर्योदयों के बीच की कालाविष्ठ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अविष्ठ मानी जाती है। यह सौर दिन है और लोक-दिन भी। किन्तु तिथि तो काल का चान्द्र विभाग है जिसका सौर दिन के विभिन्न दिग्-विभागों में अन्त होता है। 'दिन' शब्द के दो अर्थ हैं: (१) सूर्योदय से सूर्यास्त तक, (२) सूर्योदय से सूर्योदय तक। ऋष्वेद (६१९११) में 'अहः' शब्द का दिन के कृष्ण भाग (रात्रि) एवं अर्जुन (चमकदार या खेत) भाग की ओर संकेत है (अहश्च कृष्णमहर्र्जुनं चित्र वर्तिते रजसी वेद्याभिः)। ऋग्वेद में 'रात्रि' शब्द का प्रयोग उतना नहीं हुआ है जितना 'अहन्' का, किन्तु 'दिन' का सामासिक प्रयोग अधिक हुआ है, यथा 'सुदिनत्वं', 'सुदिन', 'मध्यन्दिन।' 'अहोरात्रं' (दिन-रात्रि) एक बार आया है (ऋ० १०१९०१२)। पूर्वाह्म (दिन का प्रथम भाग) ऋ० (१०१३४११) में आया है। दिन के तीनों भागों (प्रातः, संगव एवं मध्यन्दिन) का उल्लेख हैं (ऋ० ५११७१३)। दिन के पाँच भागों में उपर्युक्त तीन के अतिरिक्त अन्य दो हैं अपराह्म एवं अस्तम्य, अस्तगमन या सायाह्म। ये पाँचों माग शत्थवन्ता (२१३२१९) में उल्लिखत हैं। 'प्रातः' एवं 'सायम्' ऋ० (५१७७१२, ८१२१० इवं १०१४६१३ एवं ४०) में आये हैं। कौटिल्य (११९९), दक्ष एवं कात्यायन ने दिन एवं रात्रि को आठ भागों में बाँटा है। दिन एवं रात्रि के १५ मुह्तों का उल्लेख पहले ही हो चुका है।

दिन के आरम्भ के विषय में कई मत हैं। यहूदियों ने दिन का आरम्भ सायंकाल से माना है (जेनेसिस १।५ एवं १।१३)। मिस्रवासियों ने सूर्योदय से सूर्यास्त तक के दिन को १२ मागों में बौटा ; उनके घण्टे ऋतुओं पर निर्भर थे। वेबिलोनियों ने दिन का आरम्भ सूर्योदय से माना है और दिन तथा रात्रि को १२ मागों

८. काम्यारम्भं तत्समाप्तिं मलमासे विवर्जयेत्। आरब्धं मलमासात् प्राक् कृष्णुं चान्ताविकं तु यत्। तत्समाप्यं सावनस्य मानस्यानितलंघनात्।। आरम्भस्य समाप्तेश्च मध्ये स्याज्येन्मलिम्लुधः। प्रवृत्तमिललं काम्यं तदानुष्ठेयमेव तु।। कारीर्यादि तु यत्काम्यं तस्यारम्भसमापने। कार्यकालिकम्बस्य प्रतीकाया असम्भवात्।। अनन्यगितकं नित्यमग्निहोत्रादि न त्यजेत्। गत्यन्तरंपृतं नित्यं सोमयागावि वर्जयेत्।। का० नि० कारिका (२१-२४)।

में बांटा है, जिनमें प्रत्येक माग दो विषुवीय घण्टों का होता है। एथेंस एवं यूनान में ऐतिहासिक कालों में दिन, सामान्यतः, पंचांग के लिए सूर्यास्त से आरम्म होता था। रोम में दिन का आरम्भ आधी रात से होता था। भारतीय लेखकों ने दिनारम्भ सूर्योदय से माना है (ब्राह्मक्टुट-सिद्धान्तः ११।३३), किन्तु वे दिन के विभिन्न आरम्भों से अनिभन्न नहीं थे। पंचसिद्धान्तिका (१५।२० एवं २३) में आया है कि आर्यभट ने घोषित किया है कि लंका में दिन का आरम्भ अर्वरात्रि से होता है, किन्तु पुनः उन्होंने कहा है कि दिन का आरम्भ सूर्योदय से होता है और लंका का वह सूर्योदय सिद्धपुर में सूर्यास्त से मिलता है, यमकोटि में मच्या ह्न के तथा रोमक देश में अर्वरात्रि से मिलता है।

अायुनिक काल में लोक-दिन का आरम्भ अर्द्धरात्रि से होता है।

सप्ताह केवल मानव-निर्मित व्यवस्था है। इसके पीछे कोई ज्योतिःशास्त्रीय या प्राकृतिक योजना नहीं है। स्पेन-आक्रमण के पूर्व मेक्सिको में पाँच दिनों की योजना थी। सात दिनों की योजना यहूदियों, वेबिलोनियों एव दक्षिण अमेरिका के इंका लोगों में थी। लोकतान्त्रिक युग में रोमनों में आठ दिनों की व्यवस्था थी, मिसियों एवं प्राचीन अथेनियनों में दस दिनों की योजना थी। ओल्ड टेस्टामेण्ट में आया है कि ईश्वर ने छः दिनों तक सृष्टि की और सातवें दिन विश्वाम करके उसे आशीष देकर पितत्र बनाया (जेनेसिरा २।१-३)। एक्सोडस (२०।८-११,२३।१२-१४) एवं डेउटेरोनामी (५।१२-१५) में ईश्वर ने यहूदियों को छः दिनों तक काम करने का आदेश दिया है और एक दिन (सातवें दिन) आराम करने को कहा है और उसे ईश्वर के सैव्वाथ (विश्वामवासर) के रूप में पित्रत्र मानने की आज्ञा दी है। यहूदियों ने सैव्वाथ (जो सप्ताह का अन्तिम दिन है) को छोड़कर किसी दिन को नाम नहीं दिया है; उसे वे रिववार न कहकर शनिवार मानते हैं।

बोल्ड टेस्टामेण्ट में सन्ताह-दिनों के नाम (व्यक्तिवाचक) नहीं मिलते। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यू टेस्टामेण्ट में मी सन्ताह-दिन केवल संख्या से ही द्योतित हैं (मैथ्यू, २८।१; मार्क, १६।९; ल्यूक, २४।१)। सन्ताह में कोई न कोई दिन कितप्य देशों एवं वार्मिक सम्प्रदायों द्वारा सैव्बाय (विश्रामदिन) या पवित्र माना गया है, यथा सोमवार यूनानी सैब्बाय दिन, मंगल पारसियों का, बुध असीरियों का, बृहस्पति मिस्रियों का, शुक्र मुसलमानों का, शनिवार यहूदियों का एवं रिववार ईसाइयों का पवित्र या विश्राम दिन है।

सात दिनों के वृत्त के उद्भव एवं विकास का वर्णन ऐफ्० ऐच० कोल्सन के ग्रन्थ 'दी वीक' (कैम्ब्रिज यूनीविसिटी प्रेस, १९२६) में उल्लिखत है। उस ग्रन्थ की कुछ बातें निम्न हैं। डायोन कैसिअस (तीसरी शती के प्रथम चरण में) ने अपनी ३७ वीं पुस्तक में लिखा है कि पाम्पेयी ने ई० पू० ८३ में जेरूसलेम पर अधिकार किया, उस दिन यहदियों का विश्वाम दिन था। उसमें आया है कि ग्रहीय सप्ताह (जिसमें दिनों के नाम ग्रहों के नाम पर आधारित हैं) का उद्भव मिस्र में हुआ। डियो ने 'रोमन हिस्ट्री' (जिल्द ३, पृ० १२९, १३१) में यह स्पष्ट किया है कि सप्ताह का उद्गम यूनान में न होकर मिस्र में हुआ और वह भी प्राचीन नहीं है बल्कि हाल का है। इससे प्रकट है कि यूनान में सप्ताह का जान-प्रवेश ईसा की पहली शती में हुआ। पाम्पेयों के नगर में, जो सन् ७९ ई० में लावा (ज्वालामुखी) में दूब गया था, एक दीवार पर सप्ताह के छ: दिनों के नाम आलिखित हैं। इससे संकेत मिलता है कि सन् ७९ ई० के पूर्व ही इटली में सप्ताह-दिनों के नाम जात थे। कोल्सन महोदय इस बात से अमित हो गये हैं कि ट्यूटान देशों में 'वेंस्ड' एवं 'थस्टडे' जैसे नाम कैसे आये। सार्टन ने 'हिस्ट्री आव साइंस' में

९. लंकार्षरात्रसमये विनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः। भूयः स एव सूर्योदयात्प्रभृत्याह लंकायाम्।। उदयो यो लंकायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे । मध्याङ्को यमकोट्यां रोमकविषयेऽर्घरात्रः सः।। पंचसि० १५, २०, ३३।

लिखा है कि यहूदी सैंब्बाथ, मिस्री दिन-घण्टे एवं चाल्डिया के ज्योतिष ने वर्तमान सप्ताह की सृष्टि की है (पृ॰ ७६-७७)। सार्टन का मत है कि ग्रहीय दिनों का आरम्भ मिस्र एवं बेबिलोन में हुआ, यूनान में इसका पूर्वज्ञान नहीं था। आघुनिक यूरोपीय घण्टे बेबिलोनी घण्टों एवं मिस्री पंचांग की दिन-संख्या पर आघारित हैं। ई॰ पृ॰ दूसरी शती तक यूरोप में तथा मध्य एशिया में आज के सप्ताह-दिनों के नामों आदि के विषय में कोई ज्ञान नहीं था। टाल्मी ने अपने टेट्राविब्लास में सप्ताह का ज्योतिषीय-प्रयोग नहीं किया है। आज के दिनों के नाम ग्रहों पर आघारित हैं, यथा सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र एवं शनि नामक सात ग्रहों पर। कई कारणों से रिववार सप्ताह का प्रथम दिन हैं; एक कारण यह है कि उसी दिन सृष्टि का आरम्भ हुआ। जिस प्रकार दिनों का कम है, उसमें ग्रहों की दूरी, उनके गुरुत्व, प्रकाश एवं महत्ता का कोई समावेश नहीं है। याज्ञ० (१।२९३) ने ग्रहों का कम यों दिया है—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु। यही बात विष्णुपुराण (१।१२।९२) में भी है।

ऐसा तर्क दिया जाता है कि सप्ताह-दिनों का कम मिस्नियों के २४ घण्टों वाली विधि पर आधारित है, जहाँ प्रत्येक दिन-भाग कम से एक ग्रह से शासित है। रिववार को प्रथम भाग पर सूर्य का, २१ वें भाग के उपरान्त २२ वें भाग पर पुन: सूर्य का, २३ वें पर शुक्र का, २४ वें पर बुध का शासन माना जाता है तथा दूसरे दिन २५ वें भाग (या घण्टे) को सोमवार कहा जाता है। यदि यह व्यवस्था २४ घण्टों एवं घण्टा-शासकों पर आधारित है तो वहीं कम लम्बे ढंग से भी हो सकता है। २४ घण्टों के स्थान पर ६० भागों (घटिकाओं) में दिन को बाँटा जा सकता है। यदि हम चन्द्र से आरम्भ करें और एक घटी (या घटिका) एक ग्रह से समन्वित करें तो ५७वीं घटी चन्द्र की होगी, ५८वीं बुध की, ५९वीं शुक्र की, ६०वीं सूर्य की और सोमवार के उपरान्त दूसरा दिन होगा मंगलवार।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन कालों में किसी देश में (और आज भी ऐसा,है) सप्ताह-दिनों में एक के उपरान्त-एक दिनों में धामिक कृत्य नहीं होते थे। सप्ताह के दिनों के उद्भव एवं विकास के विषय पर मत-मतान्तर है। ऐसा कहा गया है कि भारतीय सप्ताह-दिन भारत के नहीं हैं, प्रत्युत वे चाल्डिया या यूनान के हैं। यहाँ हम यह देखेंगे साहित्यिक एवं शिलालेखीय प्रमाण हमें इस विषय में कितनी दूर ले जाते हैं। इस विषय में अत्यन्त प्राचीन शिलालेखीय प्रमाण है एरण का स्तभ-शिलालेख, जो बुचगुप्त (सन् ४८४ ई०) का है, जिसमें आषाढ़ शुक्ल द्वादशी एवं वृहस्पति का उल्लेख है। मान लिया जाय कि सप्ताह की घारणा अभारतीय है, तो इसके पूर्व कि वह सर्वसाघारण के जीवन में इस प्रकार समाहित हो जाय कि गुप्त सम्नाट् अपनी घोषणाओं में उसका प्रयोग करने लगें, तो यह मानना पड़ेगा कि ऐसा होने में कई शंतियों की आवश्यकता पड़ेगी।

अब हम साहित्यिक प्रमाण लें। आर्यभटीय (दशगीतिका, श्लोक ३) में गुरुदिवस (बृहस्पतिवार) का उल्लेख है। पंचिसद्धान्तिका (१।४) में मंगल (क्षितितनय दिवस) का उल्लेख है। पंचिसद्धान्तिका (१।८) में सोम

१०. काही ढ मनुयुग दल गतास्ते च मनुयुग छ्ना च। कल्पादेयुंगपादा ग च गुरुदिवसाच्च भारतात्पूर्वम्।।

शर्गीतिका, क्लोक ३। टीकाकार ने लिखा है: 'राज्यं चरतां युधिष्ठिरादीनायन्त्यो गुरुदिवसो भारतगुरुदिवसः।

द्वापरावसानगत इत्यर्थः। तिस्मिन् दिवसे युधिष्ठिरादयो राज्यमुत्सुज्य महाप्रस्थानं गता इति प्रसिद्धिः। तस्माद्गुरुदिवसात्

पूर्वकल्पादेरारम्य गता मन्वादय इहोक्ताः। इस क्लोक का अर्थ है: 'ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु हैं तथा ७२ युग एक

मन्वन्तर बनाते हैं; इस कल्प में भारतयुद्ध के बृहस्पितवार तक ६ मनु, २७ युग, ३ युगपाद व्यतीत हो चुके हैं।' 'काहः'

का अर्थ है कस्य ब्रह्मणः अहः दिवसः; आर्यभट के अनुसार ढ १४; इख ७२; ष् ७० एवं ख २; छ्ना २७ (छ्
७ एवं न या ना २०); ग ३।

दिवस (सोमवार) आया है। बृ० सं० (१०३।६१-६३) ने रिववार से शिनवार तक के कमीं का उल्लेख किया है। इसी विषय में उत्पल ने गर्ग नामक प्राचीन ज्योतिर्विद् के १८ अनुष्टुप् रलोकों का उद्धरण दिया है। कर्न ने गर्ग को ई० पू० पहली शती का माना है। इससे प्रकट है कि भारत में सप्ताह-दिनों का ज्ञान ई० पू० प्रथम शती में अवश्य या। फिलास्ट्रेटस ने टायना के अपोल्लोनियस (जो सन् १८ ई० में मरा) के जीवन-चरित में लिखा है कि किस प्रकार भारत में यात्रा करते समय अपोल्लोनियस (जो सन् १८ ई० में मरा) के जीवन-चरित में लिखा है कि किस प्रकार भारत में यात्रा करते समय अपोल्लोनियस ने ब्राह्मणों के नेता इचुंस से ७ अँगूठियाँ प्राप्त कीं, जिन पर ७ यहीं के नाम थे और जिन्हें उसे प्रतिदिन एक-एक करके पहुनना था। इससे भी यही प्रकट होता है कि ग्रह-नाम वाले सप्ताह-दिनों का ज्ञान भारतीयों को प्रथम शती में प्राप्त था। अतः ई० पू० प्रथम शती एवं ई० उपरान्त प्रथम शती के बीच में भारत के लोग ग्रहीय दिनों से परिचित थे।

वैसानस-स्मार्त-सूत्र (१।४) एवं बौघायनघर्मसूत्र (२।५।२३) में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुघ, बृहस्पति, शुक्र, शिम, राहु एवं केतु नामक ग्रहों के नाम आये हैं। प्रथम ग्रन्थ (२।१२) में बुधवार का भी उल्लेख है। आथर्वण-वेदांग-ज्योतिष (वारप्रकरण, रलोक १ से ८) में रिववार से लेकर शनिवार तक के कर्मों का उल्लेख है। गाथा-सप्तशती (हाल कृत प्राकृत काव्य-संग्रह) में मंगल एवं विष्टि का उल्लेख है (३।६१)। याज्ञ० (१।२९६) में बाज की भौति दिनों एवं राहु-केतु के साथ नवग्रहों की चर्चा है। यही बात नारदपुराण (१।५१।८०) में है। और देखिए मत्स्य० (९३।७), विष्णुधर्मोत्तर (७८।१-७) आदि। पुराणों में सप्ताह-दिनों के विषय में बहुत-से वर्जित एवं मान्य कर्मों के उल्लेख हैं। बहुत-से पुराणों की तिथियों के विषय में मतभेद है, किन्तु इतना तो प्रमाणों से सिद है कि ईसा की प्रथम दो शितयों में ग्रहों की पूजा एवं सप्ताह के दिनों के विषय में पूर्ण ज्ञान था। महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ में, जहाँ घमंशास्त्रीय उल्लेख अधिक संख्या में हुए हैं, सप्ताह-दिनों की चर्चा नहीं है। जैसा कि अभर कहा जा चुका है, यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है कि भारतीय लोग ई० पू० प्रथम शती एवं ई० उपरान्त प्रथम शती के बीच प्रहों की पूजा एवं प्रह्युक्त दिनों के ज्ञान से भली भाँति परिचित थें। एक अन्य द्रष्टव्य बात यह भी है कि दिनों के नाम पूर्णतया भारतीय हैं, उन पर यूनानी या अभारतीय प्रभाव नहीं है। किन्तु राशियों के नाम के विषय में ऐसी बात नहीं है, वहाँ 'क्रिय' एवं 'लेय' जैसे शब्द बाह्य रूप से आ गये हैं। टॉल्मी (सन् १५० ई०) ने २४ घण्टों एवं ६० भागों का उल्लेख किया है। भारतीयों में ६० घटिकाओं का प्रयोग प्राचीन है। भारतीयों ने दोपहर या रात्रि से दिन की गणना नहीं की, प्रत्युत प्रातः से की है। आश्वमेघिकपर्व (४४।२) में स्पष्ट कथन है कि पहले दिन आता है तब रात्रि आती है।

भारत में सात दिनों वाले दिन-वृत्त के विषय में कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना सम्भव है। बुध, बुक, मंगल, बृहस्पति एवं शनि पाँच ग्रहों के साथ प्राचीन वेबिलोनियों ने पाँच देवों की कल्पना की थी। ये देव आगे चलकर रोमक रूपों में परिवर्तित हो गये। प्रेम की देवी ईस्टर शुक्र के रूप में हो गयी, मर्दुक नामक बड़ा देव बृहस्पति हो गया... आदि। ये पाँचों ग्रह सूर्य एवं चन्द्र के साथ स्वर्गिक रूप वाले हो गये। चाल्डिया के मन्दिरों में जो पूजा होती थी और जो सीरिया तक प्रचारित थी, उसमें विशिष्ट दिन पर प्रत्येक देव की प्रार्थनाएँ होती थीं। जो देव जिस दिन पूजित होता था वह उसी दिन के साथ समन्वित हो गया। जो दिन सूर्य एवं चन्द्र के लिए पवित्र थे वे रिविवार एवं सौमवार हो गये। इंग्लैंग्ड में बुछ दिन-नाम प्रयोग में आ गये, यथा वेड्नस डे (वोडेंसडे) एवं थर्स डे (थोर्स डे)। किन्तु सप्ताह के दिन यूरोप में वेबिलोनी देवों के नाम से ही बने। भारत एवं वेबिलोन में आते प्राचीन काल से व्यापारिक तथा अन्य प्रकार के सम्पर्क स्थापित थे। इस विषय में हमने पहले ही चर्चा कर ली है। भारत में सूर्य-पूजा प्राचीन है, यथा कश्मीर में मार्तण्ड, उत्तरी गुजरात में मोढेरा, उड़ीसा में कोणार्क। आज भी कहीं-कहीं राहु एवं केतु के मन्दिर हैं, यथा अहमदनगर जिले में राहुरि स्थान पर। कौटिल्य ने काल के बहुत-से मार्गों का

(त्रुटि से युग तक) उल्लेख किया है और कहा.है कि दो नाड़िकाएँ एक मुहूर्त के तथा एक अहोरात्र (दिन-रात) ३० मुहूर्तों के बराबर हैं। इससे प्रकट है कि कौटिल्प को केवल ६० नाड़िकाओं वाला दिन ज्ञात था। एक नाड़ी बराबर थी एक घटी (या घटिका) के।

काल-गणना की अन्य विधि भी प्रचलित थी, यथा-- ६ बड़े अक्षरों के उच्चारण में जो समय लगता है उसे प्राण कहा जाता है; ६ प्राण मिलकर एक पल के बराबर होते हैं, ६० पल एक दण्ड, घटी या नाड़ी के बराबर (सूर्यसिद्धान्त १।११; ज्योतिस्तत्त्व, पृ० ५६२)। पाणिनि (३।२।३०) ने 'नाडिन्धम' की व्युत्पत्ति 'नाड़ी' से की है। 'नाड़ी' एक अति प्राचीन शब्द है।" यह ऋग्वेद (१०।१३५।७) में आया है जिसका अर्थ है मुरली। लगता है, आगे चलकर यह कालावधि का द्योतक हो गया जो शंख या मुरली या तुरही जैसे बाजे के बजाने से प्रकट किया जाता था और जो 'नाड़ी' के रूप में (एक दिन के ६० वें भाग में) घोषित हो गया, क्योंकि उन दिनों घड़ियाँ नहीं होती थीं। अतः ६० नाड़ियों एवं घटियों (दोनों शब्द पतञ्जलि द्वारा, जो ई० पू० १५० में विद्यमान थे, प्रयुक्त हुए हैं) का दिन-विभाजन बहुत प्राचीन है। सूर्यसिद्धान्त में २४ घण्टों की चर्चा है, किन्तु वह ग्रन्थ पश्चात्कालीन है और उस पर बाह्य प्रभाव हो सकता है, किन्त्र उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मारत में दिन-विभाजन की परिपाटी (अर्थात् दिन को घटियों एवं नाड़ियों में बाँटना) अति प्राचीन है और उस पर बाह्य प्रभाव की बात ही नहीं उठती। स्वयं पतंजिल ने नाड़ी एवं घटी के प्रयोग को पुराना माना है। अतः ई० पू० दूसरी शती से बहुत पहले नाड़ी एवं घटी का प्रचलन सिद्ध है। पूर्ण रूप से सप्ताह-दिनों पर भी बाह्य प्रभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। वेबिलोनी एवं सीरियाई प्रचलन के प्रभाव की बात उठायी जाती है, किन्तु इसे समानता मात्र से सिद्ध नहीं किया जा सकता। केवल पाश्चात्य हठवादिता प्रमाण नहीं हो सकती। देखिए कर्नियम (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द १४, पृ० १) जहाँ यूरोपीय एवं भारतीय सप्ताह-विभाजन की तालिकाएँ एवं रेखाचित्र दिये हुए हैं। अल्बरूनी (सची, जिल्द १, अध्याय १९, पृ० २१४-२१५) ने लिखा है कि भारतीय लोग ग्रहों एवं सप्ताह-दिनों के विषय में अपनी परिपाटी रखते हैं और दूसरे लोगों की परिपाटी की, मले ही वह अधिक ठीक हो, मानने को सन्नद्ध नहीं हैं।

११. 'नाड़ी' एवं 'नाड़िका' के कई अर्थ हैं—मुरली, नली, वमनी, एक आघा मुहूर्त। 'नाडिन्बम' का अर्थ स्वर्णकार है (क्योंकि वह एक नली से फूँककर आग घोंकता है)। काठकसंहिता (२३।४: सेवा वनस्पतिष्टु वाग्ववित या नाड्यां या तूणवे) से प्रकट होता है कि नाड़ी एक ऐसा वाद्य था जिससे स्वर निकलते थे।

### अध्याय १९

## कल्प, मन्वन्तर, महायुग, युग

युग (पाँच वर्ष) से लेकर सप्ताह एवं दिन के काल-विभाजन पर प्रकाश डालने के उपरान्त अब हम युग, महायुग, मन्वन्तर एवं कल्प की काल-विभाजन -सम्बन्धी चर्चा करेंगे। 'कल्प' शब्द का बीज ऋग्वेद (१०।१९०।३) में पाया जाता है, 'जहाँ ऐसा आया है—'सृष्टिकर्ता ने सूर्य, चन्द्र, दिन, पृथिवी एवं अन्तरिक्ष की, पहले की भौति, सृष्टि की।' निश्चित तिथि वाला अत्यन्त प्राचीन प्रमाण अशोक के अनुशासनों में पाया जाता है, यथा गिरनार एवं काल्सी का चौथा प्रस्तर-लेख (आव सबट कपा अर्थात् यावत् सवर्त-कल्पम्) तथा शहबाजगढ़ी एवं मानसेरा का पाँचवा प्रस्तर-लेख (आव कपम्—यावत् कल्पम्)। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि कल्प के विशाल विस्तार के सिद्धान्त ई० पू० तीसरी शती के बहुत पहले से घोषित थे। बौदों ने भी कल्पों के सिद्धान्त को अपनाया था, जैसा कि महापरिनिच्चानसुत्त (३।५३) से प्रकट है—'हे भगवन्, कृपा करके कल्प में रहें। हे महाभाग, असंख्य लोगों के कल्याण एवं सुख के लिए कल्प भर रहें।'

ऐसा विश्वास चला आ रहा है कि आदि काल में मानव-समाज आदर्श रूप से अित उत्कृष्ट या और कमकाः नैतिक बातों, स्वास्त्य, जीवन-विस्तार आदि में कमिक अपकर्ष होता चला गया और सुदूर भविष्य में पुनः नैतिक बातों बादि का स्वणं युग अवतरित होगा। इस विषय में हमने इस महाग्रन्य के सण्ड दे में पढ़ लिया है। 'युग' शब्द के कई अर्थ हैं—काल की अल्पाविष (ऋ॰ ३।२६।३), पाँच वर्षों का एक वृत्त, दीर्घाविष एवं सहस्रों वर्ष की अविष। प्रो॰ मन्कड़ ने 'पूना ओरिण्टिलस्ट' (जिल्द ६,पू॰ २११-२१२) में इसके दस अर्थ दिये हैं। उनकी सभी बातों ग्रहण नहीं की जा सकतीं, उदाहरणस्वरूप, जब वे शाकुन्तल (४ युगान्तरम् आरूड: सविता) में युग को दिन का चौथाई भाग मानते हैं। ऐसा कहीं भी उल्लिखित नहीं हुआ है। शाकुन्तल में उसका अर्थ होना चाहिए 'सूर्य आकाश में (पूर्व कितिज में) एक युग (बुरा) उभर आ गया है।' ऋ॰ (१०।६०।८,१०।१०१।३ एवं ४) में भी यही अर्थ है। महाभारत, मनु एवं पुराणों में युगों, मन्वन्तरों एवं कल्पों के विषय में बहुत कुछ विस्तार के साथ कथित है। युग चार हैं—कृत, त्रेता, हापर एवं तिष्य या किल और ये केवल भारत से सम्बन्धित माने गये हैं। हमने इस महाग्रन्थ के खण्ड ३ में पढ़ लिया है कि आरिमिक रूप में चूत (जुआ) के किन्हीं चार पाशों के

१. सूर्याचन्त्रमसौ भाता यवापूर्वमकस्पयत्। दिवं च पृथिवीं जान्तरिक्षमयो स्वः। प्रदृ० (१०।१९०।३)।

२. चत्वारि भारते वर्षे युगानि युग्यो विदुः। इतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम्।। वायु० (२४।१, ४५।१३७ एवं ५७।२२)। वौर देखिए मत्त्य० (१४२।१७-१८), महा० (२७।६४)। द्वापर युग के अन्त के विषय में कई बातें पायी जाती हैं। ऐसा आया है कि कौरवों एवं पाण्डवों का युद्ध द्वापर एवं किल की सन्ध्या में हुआ (आदि० २।१३)। शल्य० (६०।२५), चन० (१४९।३८) में आया है कि जब भारतयुद्ध होने वाला चातो कलियुग समीए, या। किन्तु बहुत-से पुराणों में ऐसा आया है कि कृष्ण ने जब अपने अवतार का अन्त किया और स्वर्ग चले गये

प्रक्षेपों (फेंकों) को युग कहा जाता था, किन्तु लगभग ई० पू० चौथी शती (यदि इससे पूर्व नहीं) युग मानवों से सम्बन्धित हो गया। आरम्भिक गुप्ताभिलेखों में कृत युग को महान् गुणों के वृत्त से सम्बन्धित माना गया है (एपि॰ इण्डिका, जिल्द २३, पू॰ ८१)। महाभारत में युगों, मन्वन्तरों एवं कल्पों के सिद्धान्त का विस्तार से उल्लेख हुआ है (वन० अध्याय १४९, १८८; शान्ति०, अ० ६९, २३१-२३२); मनु (१।६१-७४, ७९-८६), विष्णुधर्मसूत्र (२०।१-२१), विष्णुपुराण (१।३, ६।३), ब्रह्म० (५।२२९-२३२), मत्स्य० (१४२-१४५), बायु० (अध्याय २१, २२, ५७, ५८, १००), कूर्म० (१, अ० ५१ एवं ५३), ब्रह्माण्ड० (२।६ एवं ३१-३६, ३।१), मार्कण्डेय० (५८-६४, ६६-७०, ७१-९७) में भी युग-सम्बन्धी विशाल साहित्य है। ज्योति:शास्त्रीय प्रन्य भी, यया आर्यभटीय, सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त, सिद्धान्तिशरोमणि इनके विषय में उल्लेख करते हैं। किन्तु इनमें कहीं भी कल्पों, मन्वन्तरों एवं युगों के उद्भव के विषय में सन्तीयजनक व्याख्या नहीं पायी जाती। पाजिटर महोदय का कथन है कि युग-विभाजन का ऐतिहासिक आघार है। ऐसा हो सकता है और नहीं भी हो सकता। कतिपय पुराणों में बाया है कि युग-सिद्धान्त भारत तक ही सीमित था। सामान्यतः युगों के स्वभाव या स्वरूप का वर्णन इन प्रन्यों में एक-सा है, किन्तु विस्तारों में मतभेद है। मनुस्मृति के उल्लेख प्राचीनतम उल्लेखों में परिगणित हैं, अतः हम संक्षेप में उन्हें यहाँ सर्वप्रथम रखेंगे। सात मन् ये हैं स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चासुष एवं वैवस्वत । इसके उपरान्त निमेषों का विभाजन है (१८ निमेष=काष्ठा, ३०=काष्ठा=कला. ३० कला=मुहुर्त, ३० मुहुर्त=अहीरात्र)। ऐसा आया है कि मानव मास पितरों का बहोरात्र (दिन एवं रात्र) है, मानव वर्ष दैव अहोरात्र है। कृतयुग का विस्तार दैव-मान से ४००० वर्ष है, इसके पूर्व सन्ध्या ४०० वर्ष है, इसके उपरान्त सन्व्यान्त ४०० वर्ष है। शेष तीन, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग कम से ३०००, २००० एवं १००० दैव वर्ष के हैं; सन्व्या एवं सन्व्यान्त कम से हैं ६००, ४०० एवं २०० दैव वर्ष । इस प्रकार चार यगों का विस्तार १२००० वर्षी (४८००+३६००+२४००+१२००) का है, जिसे देवों का युग (यह दिव्य मानक है) कहा गया है; इत चारों के १००० वर्ष बह्या का एक दिन और उतनी ही बह्या की एक रात्रि है। १२००० दैव वर्षों के ७१ युगों में प्रत्येक को मन्वन्तर कहा जाता है और मन्वन्तर असंस्थ हैं और इसी प्रकार सुष्टियाँ एवं प्रलय भी असंस्य हैं। मनु में कल्प का उल्लेख नहीं है। मनुस्मृति के अतिरिक्त अन्य प्रन्थों में यथा विष्णु-पुराण (६।३।११-१२) में आया है कि १४ मन्यन्तरों का एक कल्प होता है, जो बह्या का एक दिन है। देवों का एक दिन एक मानव वर्ष है, अतः १२००० वर्षों की चतुर्युगी ४३,२०,००० मानव वर्षों के बराबर होगी (१२०००×३६०), जिसे मानुष काल-मानक कहा जाता है।

युगों की इन विशाल वर्ष-संस्थाओं का निर्देश कब और कैसे हुआ, यह अभी एक पहेली ही है। शत-पथ ब्राह्मण काल में द्वी लोग विशाल वर्ष-संस्थाओं से परिचित थे। वहाँ (१०।४।२, २२, २३ एवं २५) आया है कि एक वर्ष में १०,८०० मुहूर्त होते हैं (३० × ३६०, ३० अहोरात्र का खोतक है), प्रजापित ने ऋग्वेद की व्यवस्था

तो कलियुग का आरम्भ हो गया। यह बात बायु॰ (९९।४२८-२९), ब्रह्माच्ड० (३।७४।२४१), मत्स्य॰ (२७३। ४९-५०), विष्णु॰ (४।२४।११०), भागवत ॰ (१२।२।३२), ब्रह्म॰ (२१२।८) में दूसरे शब्दों में कपित है। मौसलपर्व (१।१३ एवं २।२०) में आया है कि कृष्ण भारत-युद्ध के ३६ वर्षों के उपरान्त स्वर्ग को चले गये। इन बातों से इतना तो स्पष्ट है कि भारत-युद्ध (महाभारत) के दुरन्त उपरान्त ही या कुछ वर्षों के उपरान्त द्वापर का अन्त हुआ।

इस प्रकार की कि इसके अक्षरों की संख्या १२००० व्याहृतियों (प्रत्येक व्याहृति में ३६ अक्षर होते हैं) के बराबर है, अर्थात् कुल अक्षर ४,३२,००० हैं; ऐसा भी कहा गया है कि ऋग्वेद में १०,८०० पंक्तियाँ (प्रत्येक पंक्ति में ४० अक्षर हैं, अतः १०८०० x४० == ४,३२,०००) हैं। प्रजापित ने अन्य दो वेदों की व्यवस्था भी की और तीनों वेदों में ८,६४,००० अक्षर हैं। ३६० यज्ञिय दिनों में १०,८०० मुहूर्त होते हैं और मुहूर्त के उपरान्त मुहुर्त पर ८० अक्षरों की वृद्धि होती है, अतः १०८०० ×८० =८,६४,००० अक्षर हुए। पेरिस के 'कालेज दि फांस' के प्रो॰ डा॰ जीन फ़िलियोजात ने एक मत प्रकाशित किया है कि शतपथ में दी हुई उपर्युक्त संख्या वैज्ञानिक है और हेराक्लिटस ने जो कहा है कि १०,८०० साघारण मानुष वर्ष 'महान् वर्ष' के द्योतक हैं और बेरोसस ने जो यह कहा है कि महान् ज्योतिषीय काल ४,३२,००० वर्षों का है, तो इन दोनों से शतपथ ब्राह्मण का कथन बहुत प्राचीन है,। अतः यदि उघार लेने की बात उठती है तो वह यह है कि यूनानियों ने भारत से उघार लिया (देखिए **डा॰ जे॰ फ्रिलियोजात, जे॰ ओ॰ आर॰, मद्रास, जिल्द २५, १९५७ ई०, पृ० १-८)। ब्रह्मा का एक दिन बराबर** है एक कल्प के, अर्थात् ४,३२,०००० ×१००० =४, ३२,००,००,००० वर्ष। ब्रह्मा के जीवन के १०० वर्ष के मानुष वर्षं जानने के लिए ४,३२,००,००,००० को २ से गुणा और पुनः ३६० और पुनः १०० से गुणा करना होगा, इस प्रकार बहा का वर्ष बराबर होगा ३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष के। यही बात अल्बरूनी (सची, जिल्द १, पु॰ ३३२) ने भी कही है। कुछ लोगों ने ब्रह्मा के जीवन को १०८ वर्ष माना है। ब्रह्मा अब तक ५० वर्ष के हो पुके हैं और यह उनके जीवन का दूसरा अर्घांश है, अब वाराहकल्प एवं वैवस्वत मन्वन्तर (सातवाँ) चल रहा है। अजीत छः मनु हैं स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष तथा आज के मनु हैं वैवस्वत (सातवें) । देखिए ब्रह्म (५।४-५), विष्णु० (३।१।६-७) । शेष ७ मनु विभिन्न रूपों से संज्ञापित हैं। नरसिंह-पुराण (२४।१७-३५) में माबी मनुओं के नाम ये हैं—सार्वाण, दक्ष सार्वाण, ब्रह्मसार्वाण, धर्मसार्वाणक, रद्रसावणि, रुचि एवं भीम ; ब्रह्म (५।५-६) में ७ में ४ नाम ये हैं सावणि, रैम्य, रौच्य एवं मेरुसावणि। नारदपुराण (१।४०।२०-२३) में १४ मनुओं के नाम आये हैं। ऐसा आया है कि प्रत्येक मन्वन्तर में विभिन्न ऋषियों, मन्-पुत्रों, देवों, राजाओं, स्मृतियों, इन्द्र एवं घर्म की सम्यक् व्यवस्था एवं लोगों की रक्षा के पालकों का दल होता है (ब्रह्मा॰ ५।३९; विष्णु॰ ३।१-२)। विष्णु॰ में ऐसा आया है कि कुछ देव चार युगों तक, कुछ एक मन्वन्तर तक और कुछ एक कल्प तक रहते हैं (१।१२।९३)। विष्णुधर्मसूत्र (२०।१-१५) में मनु के समान ही मन्वन्तरों एवं कल्पों का उल्लेख है किन्तु इसमें एक अन्य बात भी है कि ब्रह्मा का सम्पूर्ण जीवन पुरुष (विष्णु) के एक दिन के बराबर है और पुरुष की रात्रि भी इतनी ही लम्बी है। यह इंप्टव्य है कि यहीं मत अल्बरूनी (सची, जिल्द १, पृ० ३३२) ने पुलिश सिद्धान्त में भी पाया है। यह नहीं ज्ञात है कि उन यूरोपीय विद्वानों ने, जो पुलिश को पौलस अलेक्जैड्रिनस कहते हैं, यह किस प्रकार दर्शाया है कि उपर्युक्त बातें यूनानी ज्योतिर्विद् पौलस में पायी जाती हैं। अन्य विस्तार हम यहीं छोड़ते हैं।

३. मन्बन्तर का अर्थ है 'अन्य मनुः' या 'मनूनामन्तरमवकाशोऽविध्विं। यवि १००० महायुगों को १४ से माग वें तो प्रत्येक मन्वन्तर ७१ महायुग + कुछ और (अर्थात् १९ महायुग)। 'मनु' शब्द ऋग्वेद एवं अन्य संहिताओं में माया है। मनु को मानवता एवं ऋषियों (मुनियों) का पिता कहा गया है और कहा गया है कि वे मानवों के उचित मागं का प्रदर्शन करते हैं। देखिए ऋ० (२।३३।१३, ८।३०।३, ४।५४।१); तै० सं० (२।२।१०।२); काठक सं० (११६)। शतपथ बा० (१।८।१।१) में मनु एवं प्रलय की प्रसिद्ध गाया आयी है। तै० सं० (३।१।९।४-६) एवं ए० बा० (२२।९) में मनु एवं उनके पुत्र नामानेदिष्ट की कथा है।

कियुग के (जो पुराणों के अनुसार ४,३२,००० वर्षों तक चलेगा और जो ५०७१ वर्षों तक, सन् १९७० ई० में, वीत चुका है) निराशावादी एवं दारुण वृत्तान्तों का उल्लेख वन० (अध्याय १८८, १९०), शान्ति० (६९।८०-९७), हरिवंश (भिवध्यपर्व, अध्याय ३-५), ब्रह्म० (अध्याय २२९-२३०), वायु० (अ०५८, ९९), मत्स्य० (१४४।३२-४७), कूर्म० (१।३०) तथा अन्य पुराणों में किया गया है। देखिए इस महाग्रन्थ का खण्ड ३, जहाँ वनपर्व का संक्षेप दिया हुआ हैं। वायु० (अ०२१-२३) में ३३ कल्पों के नाम आये हैं। मत्स्य० (२९०) ने ३० कल्पों के नाम दिये हैं। ब्रह्माण्ड० (२।३१।११९) में आया है कि कल्प ३५ से न कम हैं और न अधिक।

पुराणों में प्रलय के चार प्रकार दिये गये हैं: नित्य (जो जन्म लेते हैं उनकी प्रति दिन की मृत्यु), नैमित्तिक (जब ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होता है, और विश्व का नाश होता है) प्राकृतिक (जब प्रत्येक वस्तु प्रकृति में विलीन हो जाती है) तथा आत्यन्तिक प्रलय (मोक्ष, सम्यक् ज्ञान से परमात्मा में विलीनता)। कतिपय पुराणों में नैमित्तिक एवं प्राकृतिक प्रलयों. का अति दु:खावह वर्णन पाया जाता है। कुर्मं० (२।४५। ११-५९) में उल्लिखित वर्णन का संक्षेप यहाँ दिया जा रहा है। जब एक सहस्र चतुर्युगों का अन्त होता है तो एक सी वर्षों तक वर्षा नहीं होती; परिणाम यह होता है कि प्राणी मर जाते हैं और पथिवी में विलीन हो जाते हैं: सूर्य की किरणें असहा हो जाती हैं, यहाँ तक कि समुद्र सूख जाते हैं; पर्वतों, वनों एवं महाद्वीपों के साथ पृथिवी सूर्य की भीषण गर्मी से जलकर राख हो जाती है। जब सूर्य की किरणें प्रत्येक वस्तु को जलाती गिरती हैं तो सम्पूर्ण विश्व एक विशाल अग्नि के सदृश लगता है। चल एवं अचल सभी वस्तुएँ जल उठती हैं। महासमुद्रों के जन्सु बाहर आकर राख बन जाते हैं। संवर्तक अग्नि प्रचण्ड आंघी से बढ़कर सम्पूर्ण पृथिवी को जलाने लगती है और उसकी ज्वालाएँ सहस्रों योजन उपर उठने लगती हैं, वे गन्धवीं, पिशाचीं, यक्षीं, नागीं, राक्षसीं की जलाने लगती हैं, केवल पृथिवी ही नहीं, प्रत्युत 'मृवः' एवं 'स्वः' लोक भी जल जाते हैं। तब विशाल संवर्तक बादल हाथियों के झुण्डों के समान, विद्युत से चमत्कृत हो आकाश में उठने लगते हैं, कुछ तो नीले कमलों के सदश, कुछ पीले, कुछ घूमिल, कुछ मोम से लगने लगते हैं और आकाश में छा जाते हैं और अति वर्षा कर अग्नि बुझाने लगते हैं। जब अग्नि बुझ जाती है, नाश के बादल सम्पूर्ण लोक को बाढ़ों से घर लेते हैं; पर्वत छिप जाते हैं, प्थिवी पानी में निमान हो जाती है और सभी कुछ जलार्णव हो जाता है और तब बह्या यौगिक निद्रा में बा जाते हैं। वन० (२७२।३२-४८) में नैमित्तिक प्रलय का संक्षिप्त वर्णन है।

कूर्मं० (१।४६) एवं विष्णु० (६।४।१२-४९) में प्राकृतिक प्रलय का वर्णन है जो सांस्य के वर्णन के समान है। संक्षेप में यों है—जब अघः लोकों के साथ सभी लोक अनावृष्टि से नष्ट हो जाते हैं और महत्त् से आगे के सभी प्रभाव नष्ट हो जाते हैं, तो जल सर्वप्रथम गन्य को सोख लेता है और जब गन्यतन्मात्रा नष्ट हो जाती है, पृथिवी जलमय हो जाती है; जल के विशिष्ट गुण रस-सन्धात्रा का नाश हो जाता है, केवल अग्नि शेष रहती है और सम्पूर्ण लोक अग्निज्वाला से परिपूर्ण हो जाता है; तब वायु अग्नि को आत्मसात् कर लेता है और क्ष्य-सन्धात्रा का विनाश हो जाता है; वायु सभी १० दिशाओं को हिला देता है; आकृश्च वायु के स्पर्श-गुण को हर लेता है और केवल आकृश्च ही शून्य-सा पड़ा रहता है और शब्द-सन्धात्रा चली जाती है। इस प्रकार सात प्रकृतियाँ महत् एवं अहंकार के साथ कम से समाप्त हो जाती हैं; यहाँ तक कि पुरुष एवं प्रकृति परमात्मा (विष्णु) में विलीन हो जाते हैं। विष्णु का दिन मानुष वर्षों के दो पराघीं के बराबर होता है।

कुछ ऐसे प्रन्य, यथा हरिवंश (भविष्यपर्व, अध्याय १०।१२-६८), कहते हैं कि कल्प के अन्त में केवल मुनि मार्कण्डेय बचे रहते हैं और प्रलय (या कल्प) के समय तक विष्णु में अवस्थित रहते हैं और फिर उनके मुख से

### वर्मशास्त्र का इतिहास

118

बाहर बा जाते हैं। ब्रह्म० (५२।१२-२९ एवं ५३।५५) का कथन है कि कल्पान्त के समय मार्कण्डेय एक वट वृक्ष देखते हैं और रत्नजटित एक शम्या पर पड़े हुए एक बालक (स्वयं विष्णु) को देखते हैं; इसके उपरान्त वे उसमें प्रवेश कर जाते हैं और वाद को बाहर आ जाते हैं। और देखिए मत्स्य० (१६७।१४-६६)! भगवद्गीता (८।१८-१९) में ब्रह्मा की रात्रि के आगमन पर सभी प्राणियों के बार-बार लय एवं ब्रह्मा के दिन के आरम्भ पर प्राणियों के पुनरद्भव की बात आयी है।

युगों, मन्वन्तरों एवं कल्पों का सिद्धान्त तथा कल्पनामय वर्षों की संख्या एवं प्रलय के भीषण रूप का वर्णन आदि अवास्तविक एवं मनोराज्यभयी कल्पना मात्र है। किन्तु इसमें अन्तर्हित भाव है अखिल ब्रह्माण्ड की काल-रहितता; यद्यपि समय-समय पर यह प्रकट होता है, क्रमशः घटता, नष्ट हो जाता है, केवल दिव्य प्रकाश के उपरान्त पूर्णता के रूप में पुनः प्रकट होने के लिए। इसमें यह भावना भी है कि मानव वास्तविकता के पीछे पड़ा रहता है और मौति-मौति के बादशों की प्राप्ति करना चाहता है। इसमें यह महान् भावना है कि मानव किसी विशिष्ट लक्ष्य को लेकर चलता है, विभिन्न प्रकार के बड़े-बड़े प्रयासों एवं उद्योगों के साथ उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करता है, कुछ सफलता के उपरान्त उस लक्ष्य का त्याग करता है और उस ढंग को भी छोड़ता है जिसके सहारे वह बागे बढ़ा था और पुनः किसी अन्य लक्ष्य का निर्घारण करता है और उसकी प्राप्ति के लिए बहुत काल तक इस आशा से प्रयत्न करता है कि सुदूर काल में वह ऐसे सभाज का निर्माण कर सके जो पूर्ण हो। पनु (१।८६) में आया है—'कृतयुग में तप सर्वोच्च लक्ष्य था, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ, किल में केवल दान।' यह बात मानव के विभिन्न सुन्दर उद्योगों एवं प्रेरणाओं की द्योतक है।

युगों, मन्वन्तरों एवं कल्पों के सिद्धान्त के विस्तारों के विषय में कई मत-मतान्तर हैं। कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं। आयंभट के मत से चारों युगों का विस्तार समान था, न कि ४, ३, २ एवं १ के समानुपात में; उन्होंने कहा है कि जब वे २३ वर्ष के थे तो तीन युगपाद एवं ३६०० वर्ष व्यतीत हुए थे (कालिकयापाद १०)। ब्रह्मगुप्त (१।९) ने कहा है कि यद्यपि आयंभट ने घोषित किया है कि कृतयुग आदि युगों के चार पाद बरावर हैं, किन्तु स्मृतियों में ऐसी बात नहीं पायी जाती। एक अन्य विरोवी बात भी है। आयंभट (दशघटिका, क्लोक ३) ने कहा है कि मन् ७२ युगों की एक अविध है, किंतु अन्य स्मृतियों एवं पुराणों ने मन्वन्तर को ७१ युग मान। है। आयंभट ने यह भी कहा है कि ब्रह्मा का दिन १००८ चतुर्युगों के बरावर है (ब्रह्मगुप्त १।१२)। प्रसिद्ध वैज्ञानिफ ज्योतिविद् मास्कराचार्य (१११४ ई० में उत्पन्न) ने अवर्य के साथ कहा है—'कुछ लोगों का कथन है कि ब्रह्मा का अर्घ जीवन (अर्थात् ५० वर्ष) समाप्त हो चुका है किन्तु कुछ लोगों के मत से ५८ वर्ष व्यतीत हुए हैं। चाहे जो सत्य परम्परा हो, इसका कोई उपयोगं नहीं है, ब्रह्मा के चालू दिन में जो दिन व्यतीत हो चुके हैं, उन्हीं में ब्रहों की स्थितियों को रखना है।'

उपर्युक्त बातों के सिलसिले में हमें संख्याओं, अंकों, उनकी प्राचीनता तथा तथा अंक-लेखन के विषय में भी थोड़ी विज्ञता प्राप्त कर लेनी चाहिए। ऋष्वेद में १ से १० तक के अंकों का बहुधा उल्लेख हैं। 'सहस्र' एवं 'अयुत' (१० सहस्र) भी उल्लिखित हैं (ऋ० ४।२६।७, ८।१।५ एवं ८।२१।१८)। और भी देखिए ऋ० (८।४६।२२), (१।५३।९), (१।१२६।३), (८।४।२०), (८।४६।२९) आदि। तै० सं० (४।४।११।३-४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

<sup>ु</sup> ४. तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्वानमेकं कलौ युगे ।। मनु (१।८६) । देखिए यही बात ज्ञान्ति (२३।२८), नायु० (८।६५-६६), पराक्षरस्मृति (१।२३) ।

में ईंटों की संख्याएँ आयी हैं, यथा १, १००, १०००, अयुत (१०,०००), नियुत, प्रयुत, अर्जुद, त्यर्जुद, समुद्र, मध्य, अन्त एवं पराघं। और देखिए वहीं (७।२।११-१९), (७।२।२०), (४।४।११।३-४) आदि। इन बातों से स्पष्ट है कि ई० पू० एक सहस्र वर्ष पहले से वर्षों की ज्योतिश्वास्त्रीय संख्याएँ परिज्ञात थीं। क्या यूनान में अर्जुद के आगे की संख्याएँ पायी गयी थीं? निष्कत (३।१०) ने एक, द्वि, त्रि, चतुर्, अष्ट, नव, दश, विश्वित, शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्जुद की व्युत्पत्ति की है। और देखिए पाणिनि (५।१।५९), समा० (६५।३-४), आयंभट (गणितपाद २), वायु० (१०१।९३-१०२)। यह द्रष्टव्य है कि प्राचीन यूनानियों के पास एक नियुत (दशलक्ष) के लिए कोई एक शब्द था ही नहीं।

विष्णुपुराण (६।३।४-५) के मत से परार्ष एक से आगे का १८ वा कम है, और प्रत्येक कम अपने से पूर्व के कम से दसगुना है। भारत में कई शितयों से प्रयुक्त १८ कमों की तालिका निम्न ढंग से है—"एक-दशसत-राहस्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः कमशः। अर्वुदमञ्जं खर्वेनिखर्वमहापद्मशंकवस्त्रस्मात्।। जलविश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः। संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वेः॥" लीलावती (परिभाषा, १०-११)। परार्थमिति दशगुणोत्तराःसंज्ञाः। संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वेः॥" लीलावती (परिभाषा, १०-११)।

(१)	एक	(80)	अब्ज या पच
(२)			सर्व
A STATE OF THE PARTY OF THE PAR	शत	(१२)	निसर्व
(8)	सहस्र	(१३)	महापद्म
(4)	अयुत	(5%)	शंकु
(६)	लक्ष	(१५)	जलिया समुद्र
(७)	प्रयुत	(१६)	अन्त्य
(4)	कोटि	(१७)	मध्य
(9)	अर्बुद	(86)	परार्व

संहिताओं के निर्देशों से प्रकट है कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भारतीयों को दशमलव पद्धित का ज्ञान था, किन्तु दशमलव स्थानीय था या स्थानमूल्य पद्धित वाला—इन दोनों में कौन-सा वैदिक काल में ज्ञात था, अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि आधुनिक दशमलव पद्धित भारतीय है, जिसे अरव वालों ने भारत से लिया और आगे चलकर यूरोपियों ने अरवों से उसे प्राप्त किया। यह पद्धित अरव वालों ने १२ वीं शती में यूरोप में प्रचारित की। यह पद्धित मानव के उच्चतम कोटि वाले आविष्कारों में एक है। इस विषय में बहुत कुछ लिखा जा चुका है और सिद्ध किया जा ज्ञुका है कि गणित-गुरु भारतीय ही रहे हैं। बहुत-से हठवादी यूरोपीय लेखक भारत को इसका श्रय नहीं देना चाहते थे। सन् १९५६ ई० में कास्टेंस रीड महोदय ने अपनीं पुस्तक फार्म जीरो टु इनिफनटी में लिखा है कि शूय दस अंकों में प्रथम अंक है और इसके द्वारा अनन्त तक की संख्याओं की परिगणना सम्भव है। इस अद्मुत आविष्कार पर पैयागोरस, यूक्लड एवं ऑकिमिडिज जैसे महान् यूनानियों का भी ध्यान नहीं जा सका था। मिस्रियों को भी दशमलव के स्थानीय मूल्य का ज्ञान नहीं था। बेबलोनी लोग भी इस ज्ञान से अछूते रहे हैं। यह कहना कठिन है कि भारत में यह ज्ञान कब उत्पन्न हुआ। किन्तु ईसा के पहले कई शितयों पूर्व भारतीयों ने इसका ज्ञान कर लिया था। छन्द-मात्रा के विषय पर पिगल मुनि का एक ग्रन्थ वेदांग है। पिगल का वह छन्द: सूत्र शून्य का प्रयोग करता है (८।२८-३१)। शतपब बा० (११।४।३।२०)

मी वेदांगों से परिचित है, किन्तु वह पिंगल के प्रन्थ से परिचित था कि नहीं, कोई संकेत नहीं मिलता। सम्भवतः क्षापस्तम्ब-धर्मसूत्र (२।४।८।१०-११) में यह 'छन्दोविचिति' के नाम से उल्लिखित हैं (षडंगो वेदः। छन्दः कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं शीक्षा छन्दोविचितिरिति)। शबर (लगभग २०० ई०, ४०० ई० के उपरान्त कभी नहीं) ने पिंगल के प्रन्थ को पाणिनि-सूत्र के समकक्ष रखा है। इससे पिंगल की प्राचीनता स्वतः प्रमाणित हो जाता है।

अंकों को लिखने की कई परिपाटियाँ थीं। एक परिपाटी ऐसो थी जिसके अनुसार एक अंक विभिन्न स्थानों के अनुसार विभिन्न मूल्यों वाला हो जाता था, यथा अंक २, केवल २ या २० या २०० आदि हो सकता था यदि उसे इकाई पर या दहाई पर या सैकड़ा स्थान पर रखा जाय। एक परिपाटी थी शब्दों द्वारा पूर्ण अंकों का द्योतन करना। यह ज्योतिषीय प्रन्थों में उत्तम परिपाटी थी, क्योंकि लम्बे-लम्बे आलेखनों में यह सरल सी थी और उन दिनों पाण्डुलिपियाँ ही बनती थीं, मुद्रण-यन्त्र नहीं थे। पाण्डुलिपियों के निर्माण में अंकों के लेखन में अशुद्धि हो सकती थी, किन्तु मात्राओं से सम्बद्ध होने के कारण शब्द में से कुछ भी छूटना सम्भव नहीं था, क्योंकि ऐसा होने पर क्युद्धि हठात् प्रकट हो जाती थी और लेखक शुद्ध कर लेते थे। यह था श्लोक या मात्रा के प्रयोग का चमत्कार। उदाहरणायं, तै० बा० (१।५।११११) में 'कृत' शब्द 'चार' के अर्थ में प्रमुक्त हुआ है। वराहमिहिर (छठी शती के आरम्भ में) ने शब्द-अंकों का प्रयोग किया है, किन्तु मूल्य-स्थान पद्धित के अनुरूप। नीचे हम शब्द-अंकों की सूची दे रहे हैं। यह अन्तिम सूची नहीं है। एक ही अंक या संख्या के लिए बहुत-से पर्याय पाये जाते हैं। देखिए अल्बरूनी (सनी, खण्ड १,५०१७९०९) एवं बुहलर की 'इण्डिएन पैलिओपाफी' (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, ,जिल्द ३३; परि-शिष्ट, ५०८३-८६)।

: शून्य, ख, अम्बर, गगन, अञ्च, आकाश, बिन्दु, पूर्ण।

एक : एक, मूमि, इन्दु, रूप, आदि, विष्णु।

दो : हि, असि या लोचन, पक्ष, अश्विनी, दस्न, दो:, दोषन्, मुज, यम या यमल।

तीन: त्रि, क्रम (विष्णु के तीन पाद, ऋ॰ १।२२।१८), ग्राम (संगीत में), राम, पुर (रुद्र द्वारा जलायी गयी नगरिया), लोक (पृथिवी, स्वर्ग एवं नरक), गुण (सत्त्व, रजस्, तमस्), अग्नि (गार्हपत्य, आह्वनीय एवं दक्षिणाग्नि)।

चार: चतुर्, अध्य (समुद्र), कृत, युग, वेद, श्रुति, वर्ण।

पाँच : पंच, इषु या शर (मदन के बाण), वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान), भूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश), अक्ष (इन्द्रियां), इन्द्रिय, पाण्डव या पाण्डु-सुत।

छद् : षट्, रस (मधुर, तिक्त, कषाय, छवण आदि), अंग (वेदांग), ऋतु, तर्क (द्रव्य से समवाय तक की तर्क-कोटियाँ), दर्शन (षट् दर्शन)।

सात : सप्त, ऋषि या मुनि, स्वर, अश्व (सप्ताश्व), गिरि, पर्वत, घातु।

बाठ: बष्ट वसु, सर्प, मंगल, मतंगज (बाठ दिशाओं के हाथी), सिदि।

नी: नव, संख्या (१ से ९ तक), नन्द (९ नन्द राजागण), रन्ध्र या छिद्र, निधि, अंक, गी, ग्रह या नभश्चर।

दस : दश, पंक्ति, आशा या दिशा (ऊर्घ्व एवं अघर को मिलाकर), अवतार, रावणशीर्ष।

५. वंक्तिविश्वतित्रिशच्चत्वारिशत्पञ्चाञ्चत्वारित्रत्पञ्चाञ्चत्वारित्रत्विशतिनवितशतम् । पाणिनि (६।१।५९)।

ग्यारह : एकादश, महेश्वर, रुद्र।

बारह : द्वादश, आदित्य, अर्क, सूर्य, मास।

तेरह: त्रयोदश, विश्वे (विश्वेदेवाः)।

चौदह : चतुर्देश, मनु, इन्द्र, भुवन, रत्न ।

पन्द्रह : पञ्चदश, तिथि।

सोलह: षोडश, कला (चन्द्रकलाएँ), नृप या राजा, अध्ट।

सत्रहः सप्तदश, अत्यष्टि।

अठारह : अष्टादश, घृति।

उन्नीस: एकोनिवशित, अतिधृति।

बीस: विंशति, कृति, नख (नाखून), अंगुलि। इक्कीस: एकविंशति, प्रकृति, मुर्च्छना (संगीत में)।

बाईस : द्वाविशति, जाति, आकृति।

चौबीस : चतुर्विशति, जिन या सिद्ध (२४ तीर्थंकर)।

पच्चीस: पंचिवंशति, तत्त्व (२५ सांख्य-सिद्धान्त)।

सत्ताईस : सप्तविंशति, भू, नक्षत्र।

वत्तीस : द्वात्रिशत्, दशन या द्विज (दोनों का अर्थ दाँत है)।

तैतीस : त्रयस्त्रिशत्, सुर (देवता)। उनंचास : एकोनपंचाशत्, तान (संगीत में)।

वराहमिहिर (पंचिसद्धान्तिका एवं बृहत्संहिता) एवं अन्य पश्चात्कालीन ज्योतिर्विदों ने अधिकतर अंकों एवं दशमलव स्थानों के लिए इसी प्रकार के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है। एक विशिष्ट द्रष्टव्य बात यह है कि शब्द-दल (जो संख्यासूचक होते हैं) के प्रथम शब्द इकाई के स्थान में होते हैं और उसके उपरान्त बाद वाले शब्द दहाई के स्थान में होते हैं, यथा सप्ताध्विवेद-संख्यम् अ४२७; नियम है— "अंकानां वामतो गितः।"

आर्यभट ने अपने ग्रन्थ 'दशगीतिकापाद' (श्लोक २) में एक अन्य विधि दी है, जहाँ क (का भी) से म तक १ से २५ अंकों के द्योतक हैं; य, र, ल, व, श, प, स, ह कम से २०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०,०१०० के द्योतक

हैं। अस्तु,

पंचांग के पाँच अंगों में एक अंग है योग। इसके लिए कोई प्रत्यक्ष ज्योतिषीय घटना नहीं है। यह सूर्य एवं चन्द्र के रेखांशों के योग से (या यह वह काल है जिसमें सूर्य एवं चन्द्र देश के १३ अंश एवं २० कला पूर्ण करते हैं) माना जाता है। जब योग १३.२० अंशों का होता है उस समय विष्कम्म योग का अन्त होता है; जब वह २६.४० अंशों का होता है तो प्रीति योग का अन्त होता है। योग २७ हैं और ३६० अंश बनाते हैं। रत्नमाला (४।१-३) में इस प्रकार के योग हैं—

देवता	नाम	देवता
यम	५. शोभन	बृहस्पति
विष्णु	६. अतिगण्ड	चन्द्र
चन्द्र	७. सुकर्मा	इन्द्र
ब्रह्मा	८. बृति	आपः
	देवता यम विष्णु चन्द्र	देवता नाम यम ५. शोभन विष्णु ६. श्रतिगण्ड चन्द्र ७. सुकर्मा

83

355

### बर्बसास्य का इसिहास

नाम	देवता	नवम	देवस
९. शूल	सर्प	१८. वरीयान्	कुबेर
१०. गण्ड	अग्नि	१९. परिघ	विश्वकर्मा
११. वृद्धि	सूर्य	२०. शिव	मित्र
१२. घ्रुव	पृथ्वी	२१. सिद्ध	कार्तिकेय
१३. व्याघात	पवन	२२. साध्य	सावित्री
१४. हर्षण	•द्र	२३. शुम	कमला
१५. वज्र	वस्प	२४. शुक्ल	गौरी
१६. सिब्ब	गणेश	२५. ब्रह्म	अश्विनौ
१७. व्यतीपात	शिव	२६. ऐन्द्र	पितर गण

### २७. वैघृति अदिति

ये नित्य योग कहे जाते हैं। रत्नमाला के मत से ये अपने नामों के अनुसार शुम या अशुम फल देते हैं।
मुहूर्तदर्शन (२।१६) के मत से इन २७ योगों में ९ निन्ध हैं, यथा परिष, व्यतीपात, वज्ज, व्याघात, वैघृति, विष्कम्भ,
शूल, गण्ड एवं अतिगण्ड। 'रत्नमाला' में कहा गया हैं कि व्यतीपात एवं वैघृति पूर्णरूपेण अशुम हैं, परिष का
पूर्वार्ष एवं अशुम नाम वाले योगों का प्रथम पाद अशुम हैं; सभी शुम कृत्यों में विष्कम्भ एवं वज्ज की तीन
घटिकाएँ, व्याघात की ९, शूल की ५, गण्ड एवं अतिगण्ड की ६ घटिकाएँ विजत हैं। और देखिए अग्निपुराण (१२७।
१-२), कालनिर्णय (पृ० ३२९-३३०) एवं कालनिर्णयकारिका (१०८-१०९)।

योगों की पद्धति बहुत प्राचीन मानी जानी चाहिए। याज्ञ० (१।२१८) में व्यतीपात योग का उल्लेख है। हर्षचरित (उच्छ्वास ४) में बाण ने कहा है कि जब हर्ष का जन्म हुआ तब व्यतीपात जैसे दोषों से दिन रहितं था (व्यतीपातादि-सर्वदोषाभिषंगरहितेऽहिन)। सामान्यतः वर्ष में १३ (कभी-कभी १४) व्यतीपात योग होते हैं और ९६ श्राद्धों में १३ व्यतीपातों के श्राद्ध सम्मिलित हैं। इन २७ योगों के अतिरिक्त कुछ और भी योग हैं जो किन्हीं तिथियों के साथ किन्हीं सप्ताह-दिनों के संयुक्त होने से उत्पन्न होते हैं या कि जब कोई ग्रह किन्हीं विशिष्ट राशियों में किन्हीं विशिष्ट तिथियों या नक्षत्रों पर बैठ जाते हैं। कपिलाषष्ठीः एवं अर्घोदय इसी प्रकार के योग हैं। व्यतीपात, जो २७ योगों में १७ वाँ है, दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—(१) जब अमावास्या रिववार को पड़ती है और चन्द्र श्रवण, अश्वनी, धनिष्ठा, आर्द्री एवं आश्लेषा नक्षत्रों में किसी के प्रथम पाद में रहता है, (२) जब शुक्ल पक्ष की बादशी को बृहस्पति एवं मंगल सिंह राशि में हों, सूर्य मेष में और जब वह हो तिथि हस्त नक्षत्र में हो। इन दोनों को कभी-कभी महाव्यतीपात भी कहते हैं। इन योगों पर दान करने की व्यवस्था दी गयी है (लघुशातातप १५०; हेमाद्रि, काल, पृ० ६७२)। सूर्यसिद्धान्त (११।१-२) ने व्यतीपात एवं वैघृत (या वैघृति) की व्याख्या की है। जब सूर्य एवं चन्द्र दोनों अयनों (उत्तरायण एवं दक्षिणायन) की ओर रहते हैं और जब दोनों के रेखांशों का जोड़ एक वृत्त में होता है और वे बराबर झुकाव में रहते हैं तब वैधृति योग होता है। जब सूर्य एवं चन्द्र अयनों के दोनों ओर रहते हैं और उनके झुकाव समान होते हैं तब वह व्यतीपात होता है और उनके रेखांशों का जोड़ अर्घवृत्त होता है। यह नहीं समझ में आता कि ये योग-काल अशुम क्यों माने जाते हैं। वैघृति नामक २७ वाँ योग समी दशाओं में व्यतीपात के समान ही है। भरद्वाज का कथन है कि इन दोनों योगों में दान करने से अनन्त फल मिलता है।

इन २७ योगों के अतिरिक्त बहुत-से योगों का उल्लेख पंचांगों में होता है, यथा अमृतसिद्धि, यमघण्ट,

दम्बयोग, मृत्युयोग, घबाड़ आदि। स्थान-संकोच से इनका वर्णन यहाँ नहीं होगा (देखिए रत्नमाला, ८।८; मुजबल-निबन्घ, पृ० ३१, श्लोक १२६ एवं पृ० २८, श्लोक ११४)।

पंचांग का पाँचवाँ अंग है करण। तिथि का अर्घ करण होता है, अतः एक तिथि में दो करण तथा एक चान्द्र मास में ६० करण होते हैं। करण के दो प्रकार हैं, : चर एवं स्थिर। वृ० सं० (९९।१-२) में देवता-नाम के साथ ७ चर करण ये हैं: (१) मव—इन्द्र; (२) बालव—ब्रह्मा; (३) कौलव—मित्र; (४) तैतिल—अर्यमा; (५) गर (या गज)—पृथिवी; (६) वणिज—श्री; (७) विष्टि—यम। देवता-नाम के साथ चार स्थिर करण ये हैं: (१) शकुनि—किल; (२) चतुष्पाद—वृष; (३) नाग—सर्प; (४) किस्तुष्न—वायु। तिथि का दो में विमाजन राशि के दो होराओं के विभाजन के समान है (बृहज्जातक १।९)। इन विभाजनों में पूर्ववर्ती कीन है? सम्भवतः तिथियों का दो करणों में विभाजन पूर्ववर्ती है।

'करण' शब्द 'क्र' घातु से बना है, यह तिथि को दो भागों में करता है, अतः यह करण कहा गया है। बहुत-से करणों के नाम विचित्र हैं, उनके अर्थ का बोघ नहीं हो पाता। करणों का उपयोग ज्योतिषीय (फलित ज्योतिषीय) है अतः उनका प्रयोग ४०० ई० के पूर्व ही हुआ होगा। इनके विषय में देखिए बृ० सं० (९९।३-५)।

घर्मशास्त्र के मध्य काल के लेखकों के मन में विष्टि नामक सातवें करण ने दारूण भय उत्पन्न कर दिया है। यह द्रष्टव्य है कि यदि चान्द्र मास की तिथियों को ६० भागों में बाँटा जाय और अमान्त मास की प्रतिपदा के दूसरे अर्घ में वव का आरम्भ हो तो विष्टि एक मास में आठ बार आयेगी, जैसा निम्न तालिका से व्यक्त है—

बव २	9	१६	२३	₹0	३७	88	48
ब्रालव—३	90	१७	२४	38	36	४५	42
कौलव४	88	26	२५	३२	38	४६	43
तैतिल-५	१२	88	२६	33	Yo .	४७	48
गर- ६	१३	२०	२७	\$8	88	28	94
वणिज७	88	78	२८	३५	85	88	५६
विष्टि८	१५	२२	२९	34	8.3	40	40

इनमें स्थिर करण होंगे शकुनि ५८, चतुष्पाद ५९, नाग ६० एवं किस्तुष्न १ (आगे के मास के प्रथम पक्ष की प्रतिपदा)।

करणों की प्रणाली मनोराज्यमयी कल्पना मात्र है। करणों के विषय में, विशेषतः विष्टि के विषय में (जो मास में आठ बार होती है) जो यह कहा गया है कि यह भुजंग (साँप) के आकार की है, दारुण है, आदि-आदि, वह ज्योतिषीय भावनाओं से सम्बन्धित कल्पना की उच्च उड़ान मात्र है।

६. कुर्याद् बवे शुभचरित्यरपौष्टिकानि धर्मिश्रयाद्विजिहितानि च बालवास्ये। संप्रीतिमित्रवरणानि च कौलवे स्युः सौभाग्यसंश्रयगृहाणि च तैतिलास्ये।। कृषिबीजगृहाश्रयंजानि गरे विणिज प्रवकार्यविणग्युत्तयः। न हि विष्टिकृतं विद्याति शुभं परघातविषादिषु सिद्धिकरम्।। कार्यं पौष्टिकमौषधादि शकुनौ मूलानि मन्त्रास्तथा गोकार्याणि चतुष्यदे द्विजिपतृनुदिश्य राज्यानि च। नागे स्थावरदारुणानि हरणं दौर्भाग्यकर्माण्यतः किस्तुष्ने शुभामिष्टिपुष्टिकरणं मंगृल्य-सिद्धिश्रियाः।। बृ० सं० (९९।३-५)।

### वर्मशास्त्र का इतिहास

पंचांगों के पाँचों अंगों की चर्चा कर लेने के उपरान्त हिन्दू पंचांगों के विषय में कुछ कह देना आवश्यक है। भारत में बहुत-से पंचांग हैं, और एक प्रकार से इस क्षेत्र में अराजकता-सी है। कदाचित् ही दो पंचांग आपस में मेल रखते होंगे। बहुत-से मारतीय ऐसा चाहते हैं कि भारतीय गणना-पद्धति आधुनिक वैज्ञानिक ज्योति:-शास्त्रीय पद्धति के पास ला दी जाय। यदि घराहमिहिर जैसे ज्योतिर्विद् आज होते तो वे ऐसा ही करते। वराह-मिहिर ने बृहत्संहिता (१०५१५) एवं बृहज्जातक (२८।८) में कहा है—"इस ग्रन्थ को प्रयोग में लाते समय जो कुछ अवैज्ञानिक लगे, या पाण्डुलिपि (लिखावट) में दोष के कारण जो कुछ त्रुटिपूर्ण जैंचे, या मेरे द्वारा जो कुछ त्रुटिपूर्ण हो गया हो या अल्प रह गया हो या न हो सका हो, वह, विद्वानों द्वारा राग का त्याग करके एवं विद्वानों के मुख से ज्ञान प्राप्त करके ठीक कर लिया जाना चाहिए।" आधुनिक काल में भारतवर्ष में ज्योतिषियों के तीन सम्प्रदाय हैं सूर्यसिद्धान्त (सौर पक्ष) का सम्प्रदाय, (२) ब्रह्मसिद्धान्त (ब्राह्म पक्ष) का सम्प्रदाय एवं (३) आर्यसिद्धान्त (आर्य पक्ष) का सम्प्रदाय। इनके अन्तर में दो बातें प्रमुख हैं—(१) वर्ष का मान (विस्तार) एवं (२) महायुग जैसी किसी विशिष्ट कालाविंघ में सूर्य, चन्द्र एवं ग्रहों के अमणों की संख्या। वर्ष के विस्तार का अन्तर इन सिद्धान्तों में बहुत अल्प है, यथा कुछ विपल (एक विपल १/६० पल, एक पल १/६० घटिका और एक घटिका २४ मिनट)। सूर्यसिद्धान्त के अनुसार वर्ष-विस्तार में ३६५ दिन, १५ घटिकाएँ एवं ३१.५२३ पल हैं, किन्तु वासन्तिक विषुव तक सूर्य के दोनों अयनों के बीच की अविध है ३६५ दिन, १४ घटिकाएँ एवं ३१.९७२ पल तथा नाक्षत्र वर्ष में ३६५ दिन, १५ घटिकाएँ, २२ पल एवं ५३ विपल पाये जाते हैं। इसका निष्कर्ष यह है कि सूर्यसिद्धान्त के अनुसार हिन्दू ज्योतिर्विदों का आरम्म-बिन्दु आज वासन्तिक बिषुव के बिन्दु से पूर्व में २३ अंश अधिक है। इस अन्तर को अयनांश कहा जाता है। विषुव से गिनने पर आकाशचारी पिण्डों के रेखांशों में ये अयनांश भी सम्मिलित हैं, अतः ये सायन (स=अयन) कहे जाते हैं। सूर्यसिद्धान्त एवं मध्यकालिक संस्कृत ग्रन्थों की विधियों से प्राप्त आकाशीय पिण्डों के स्थान निरयन गणना द्वारा प्रकट किये जाते हैं। आजकल अधिकांश पंचांगों के मत से, जो सूर्यसिद्धान्त पर आघारित हैं, मकरसंक्रान्ति सामान्यतः १४ जनवरी को पड़ती है, किन्तु आज की अधिकतम सही गणना के अनुसार यह २१ दिसम्बर को पड़नी चाहिए। उन पंचांगों के अनुसार, जिन्हें ठीक शुद्ध होने का गर्व है, मकरसंक्रान्ति ९ जनवरी को पड़ती है, अर्थात् हमारी मकर संक्रान्ति शुद्ध समय से २३ या १८ दिन उपरान्त पड़ती है और यही बात वासन्तिक एवं शारद विष्व तथा ग्रीष्म अयन आदि निरीक्षणों के विषय में भी पायी जाती है। आज भी अधिदानी (जिसमें शक संवत् ४४४ में वासन्तिक वियुव पड़ता था) को प्रथम नक्षत्र कहा जाता है, जब कि वासन्तिक विषुव-बिन्दु उत्तरा-माद्रपदा नक्षत्र (जिसे अब प्रथम नक्षत्र माना जाना चाहिए) में आ गया है। बाघुनिक गणना के समीप भारतीय पंचांग को मिलाने का प्रयास किया गया है, किन्तु अभी सफलता नहीं के बराबर प्राप्त हो सकी है। लीकमान्य बालगंगाघर तिलक ने सन् १९१४ (बम्बई), १९१७ (पूना) एवं १९१९ (साँगली) में तीन ज्योतिर्विद्-गोष्ठियां की और प्रस्ताव भी रखे गये, किन्तु परम्परावादी दृष्टिकोण के कारण विशेष सफलता नहीं प्राप्त हो सकी; आज भी लोग सूर्यसिद्धान्त से शासित होना पसंद करते हैं।

७. प्रन्यस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति लेख्याद् बहुश्रुतमुखाधिगम ऋमेण।
यद्भ मया कुकृतमल्पिमहाकृतं वा कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम्।।
—यु० सं० (१०५।५) एवं बृहज्जातक (२८।८)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

380

पंचांग-निर्माण में स्थान विशेष पर लोग घ्यान नहीं देते। पूना एवं बम्बई में दूरी का बन्तर है, रेखांशों का अन्तर है। दोनों के पंचांग एक नहीं हो सकते। १० या १५ मील की दूरी विशेष दूरी नहीं है, किन्तु पूना एवं वम्बई की दूरी अधिक है। वास्तव में प्रत्येक नगर का पंचांग पृथक् होना चाहिए।

नवम्बर सन् १९५२ में शासन की ओर से डा॰ मेघनाथ साहा की अध्यक्षता में पंचांग सुघार समिति (कलेण्डर रिफार्म किमटी) बनी, जिस पर सारे भारत के लिए एक पंचांग बनाने का भार सौंपा गया। उस सिमिति ने नवम्बर सन् १९५५ में अपना मूल्यवान् निष्कर्ष उपस्थित किया। लोक-पंचाग एवं धार्मिक पंचांग रिपोर्ट के पृ॰ ६-८ में अंकित हैं। स्वतन्त्र भारत के प्रशासन द्वारा सबके लिए समान पंचांग की व्यवस्था की जानी चाहिए। लोक पंचांग के लिए सिमिति द्वारा निम्न निष्कर्ष दिये गये हैं—

- (१) शक संवत् का प्रयोग होना चाहिए। शक संवत् १८८६ सन् १९६४-६५ ई० के बराबर है।
- (२) वर्ष का आरम्भ वासन्तिक विषुव के अगले दिन से होना चाहिए।
- (३) सामान्य वर्ष में ३६५ दिन हों, किन्तु प्लुत (लीप) वर्ष में ३६६ दिन हों। शक संवत् में ७८ जोड़ने पर यदि ४ से भाग लग जाय तब यह प्लुत वर्ष माना जायगा। किन्तु जब योग में १०० का भाग लग जाय तो जब उसमें ४०० से भाग लगेगा तभी प्लुत वर्ष माना जायगा, अन्यया वह सामान्य वर्ष ही समझा जायगा।
- (४) चैत्र (या छैत्र भी लिखा जाता है) वर्ष का प्रथम मास होगा और मासों के दिन निम्न प्रकार से होंगे-

चैत्र : ३० दिन (या ३१ दिन, प्लुत वर्ष में)
वैशाख : ३१ दिन आषित्र : ३० दिन
ज्येष्ठ : ३१ दिन कार्तिक : ३० दिन
आषाढ : ३१ दिन मागंशीर्ष : ३० दिन
शावण : ३१ दिन पौष : ३० दिन
माद्रपद : ३१ दिन माघ : ३० दिन
फाल्गुन : ३० दिन

संशोधित भारतीय पंचांग के दिनांक ग्रेगॉरी पंचांग के दिनांकों की संगति में हैं। दिनांक इस प्रकार हैं-

भारतीय ग्रेगरी भारतीय श्रेगरी चैत्र १ : मार्च २२ (सामान्य वर्ष में) अधिवन : सितम्बर २३ : मार्च २१ (लीप वर्ष में) कार्तिक : अक्तूबर २३ मार्गशीर्ष : नवम्बर २२ वैशाख १ : अप्रैल २१ ज्येष्ठ १ : मई २२ पीष : दिसम्बर २२ : जून २२ ः जनवरी २१ आषाढ १ माघ : जुलाई २३ फाल्गुन : फरवरी २० श्रावण १ भाद्रपद १ : अगस्त २३

संशोधित पंचांग के अनुसार भारतीय ऋतु-क्रम यों होणा-

ग्रीष्म : वैशाख एवं ज्येष्ठ हेमन्त : कार्तिक एवं मार्गकीर्ष वर्षा : आषाढ़ एवं श्रावण शिशिर : पौष एवं माघ शन्द् : माद्रपद एवं आश्विन वसन्त : फाल्गुन एवं चैत्र 385

घामिक पंचांग के विषय में निम्नांकित निष्कर्ष हैं-

(५) सीर मासों की गणना, जो उसी नाम वाले मासों की जानकारी के लिए आवश्यक हैं, वासन्तिक विषुव से २३ अंश एवं १५ कला (निश्चित अथनांश) पहले ही की जायगी। यह आज के अधिकांश पंचांग-निर्माताओं के व्यवहार की संगति के लिए है।

इस प्रकार मासों का आरम्भ निम्न रूप से होगा—सौर वैशाख सूर्य के २३°१५' रेखांश से आरम्भ होगा, सौर ज्येष्ठ और चैत्र तक अन्य सौर मास कम से ये होंगे—५३°१५', ८३°१५',११३°१५',१७३°१५', १७३°१५', २०३°१५', २३३°१५, २६३°१३', ३९३°१५', ३२३°१५', ३५३°१५'।

यह केवल समझौता मात्र है, जिससे परम्परा अचानक उखड़ न जाय। फिर भी इससे कालिदास एवं वराहमिहिर के कालों की ऋतुओं और आज की ऋतुओं में समानता नहीं पायी जा सकेगी। ऐसी आशा की जाती है कि शी झही सुघारों के फलस्वरूप चान्द्र एवं सौर पर्वोत्सव उन्हीं ऋ ओं में हो सकेंगे, जैसा कि आरम्भिक कालों में सम्भव था और उनका प्रचलन था।

- (६) जैसा कि पहले भी मान्य था, घामिक उपयोगों के लिए चान्द्र मास प्रतिपदा से आरम्भ होंगे और उस सौर मास के, जिसमें प्रतिपदा पड़ती है, नाम से पुकारे जायँगे। यदि सौर मास में दी प्रतिपदाएँ पड़ जायँगी तो प्रथम प्रतिपदा से आरम्भ होने वाला चान्द्र मास अधिक या मलमास कहलायेगा और दूसरी प्रतिपदा से आरम्भ होने वाला चान्द्र मास कहलायेगा।
- (७) १३° २०' नक्षत्र माग से चन्द्र के आगे चले जाने या अस्त का क्षण या उसमें सूर्य का प्रवेश परिवर्तित अयनांश से गणित किया जायगा। इस अयनांश का मूल्य (मान) २१ मार्च सन् १९५६ में २३° १५' ०" था। इसके उपरान्त यह ऋमशः बढ़ता गया है जिसका मध्यम मान लगभग ५०° २७" है।

इन व्यवस्थाओं से सूर्य द्वारा निर्घारित होनेवाले घामिक कृत्य, यथा विषुव-संक्रांति, उत्तरायण-संक्रान्ति एवं दक्षिणायन-संक्रान्ति ज्योतिषीय ढंग से उचित ऋतुओं में पड़ेंगी, किन्तु चान्द्र पंचांग से निर्घारित कृत्य आज की विधियों से ही चलते रहेंगे और संशोधित नियम द्वारा प्रयुक्त शोधन से ऋतुओं की गड़वड़ी रुक जायगी।

आज से १४०० वर्ष पहले जिन ऋतुओं में कृत्य होते थे उनसे आज के कृत्य २३ दिन पूर्व खिसक आये हैं। क्योंकि पंचांग-निर्माताओं ने विषुव-सम्बन्धी अग्रगमन पर ध्यान नहीं दिया। अब यह गड़बड़ी ऋमशः दूर हो जायगी। यों तो यह गड़बड़ी अचानक रोकी जा सकती है किन्तु संशोधकों ने सन्तुलन पर बल दिया है।

नक्षत्रों की गणना में परिवर्तित अयनांश का प्रयोग किया गया है, जिससे कि किसी विशिष्ट नक्षत्र में चन्द्र आकाश में उसी नाम के तारा या तारा-समूह में दिखाई पड़ जाय। यह वैदिक काल से ही चला आया है और पूर्णरूपेण वैज्ञानिक भी है।

- (८) दिन की गणना अर्घरात्रि से अर्घरात्रि तक होगी (८२३° पूर्व रेखांश एवं २३° ११' उत्तरी अक्षांश के मध्य से) किन्तु यह लोक-दिन है। घार्मिक उपयोगों में सूर्योदय से ही दिन की गणना होगी।
- (९) गणनाओं के लिए सूर्य एवं चन्द्र के रेखांशों का ज्ञान उनकी गतियों के समीकरणों से किया जाय, जिसके निरीक्षित मूल्यों से संगति बैठती रहे।
- (१०) भारतीय शासन द्वारा भारतीय पंचांग एवं नौ (नाविक) पंचांग का निर्माण होते रहना चाहिए, जिससे सूर्यं, चट्ट, ग्रहों तथा अन्य आकाशीय पिण्डों के स्थानों का अग्रिम ज्ञान होता रहे। प्रति वर्ष उपर्युक्त संशोधनों के आधार पर बने हुए लौकिक एवं धार्मिक नारतीय पंचांग का निर्माण होना चाहिये।

#### अध्याय २०

## शान्ति का वैदिक अर्थ एवं विधियाँ

शान्ति शब्द 'शम्' घातु से बना है, जिसके कई अर्थ हैं (यथा बन्द करना, बूर करना, बुरा प्रभाव हटाना, मना करना, प्रसन्न होना, शमन करना या प्राण हरना) और वह चौथे एवं दसवें घातु-गण से सम्बन्धित है। यह ऋग्वेद में नहीं आया है, किन्तु अथर्व ० एवं वाज ० सं० में प्रयुक्त हुआ है। किन्तु 'शम्' घातु एवं इसके कितपय रूप, व्युत्पत्तियाँ तथा 'शम्' अव्यय सैकड़ों वार ऋग्वेद में आये हैं (११९३।५, ११९०६।५, ३११७।३, ३११८।५ आदि में 'योः' के साथ शम्, यंथा 'शंयोः'; ११११४।२, १।८९।२, २।३३।१३ आदि में 'शं च योश्च')। इन स्थलों पर शब्दों का सामान्यतः अथं लगाया जाता है, 'सुख एवं कल्याण' या 'स्वास्थ्य एवं घन'। 'शम्' शब्द ऋग्वेद में १६० बार आया है। ऋ० (१। ११४।१) में आया है— 'हम लोग इन स्तुतियों को उस रह को देते हैं, जो शक्तिशाली है, जिसको जूड़ा है, जो वीरों पर शासन करता है, जिससे कि हमारे दो पैरों वाले एवं चार पैरों वाले प्राणियों का कल्याण हो तथा इस ग्राम में प्रत्येक वस्तु समृद्धिशाली एवं कष्टरहित हो।'' यहाँ 'शम्' का भाव स्पष्ट है। कहीं-कहीं वस्तुवाचक संजाओं के रूप में 'शम्' एवं 'योः' शब्द स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ 'शं च योश्च रहस्य विषम' (ऋ० २।३३।१३) एवं 'यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रह प्रणीतिषु, (ऋ० १।११४।२), अर्थात् 'हे रह, हम आपके मार्गदर्शन से उन 'शम्' एवं 'योः' को प्राप्त कर सकें, जिन्हें पिता मनु ने यज्ञ से प्राप्त किया।' निरुक्त (४।२१) में व्युत्पत्ति आयी है। 'शम्' एवं 'योः' का अन्वय-रूप अर्थ कम से 'सुख' एवं 'दु:ख-वियोग' है।

अथर्ववेद (१९१९) में 'शान्ति' शब्द १७ बार आया है। ३ से लेकर ५ तक के मन्त्रों में वाक एवं मन तथा पाँच इन्द्रियों की ओर संकेत आया है और ऐसा कहा गया है कि ये सातों बोर (भयंकर या अशुम) उत्पन्न करते हैं और इन्हीं में शान्ति उत्पन्न करने के लिए प्रयास करना चाहिए (१९१९।५)। ६ से ११ तक के मन्त्रों में देवों, ग्रहों, पृथिवीं, उल्कापातों, गौओं, नक्षत्रों, जादू-कृत्यों, राहु, घूमकेतु, क्द्रों, वसुओं, आदित्यों, ऋषियों एवं बृहस्पित की स्तुति सुख देने के लिए की गयी है। १२वें मन्त्र में इन्द्र, ब्रह्मा तथा अन्य देवों से प्रार्थना की गयी है कि वे स्तुतियों के प्रणेता को आश्रय दें, और १३वें में घोषणा है—'इस विश्व में (शान्ति द्वारा) जितनी वस्तुए प्रसन्न की गयीं, उन्हें सातों ऋषि जानते हैं। वे सभी मेरे सुख के लिए हों; सुख मेरा हो, भय से मेरी रहितता (छुटकारा) हो।' १४ वां मन्त्र जो वाज० सं० (३६११७) के समान है, घोषित करता है, 'पृथिवी, रोदसी, स्वर्ग, जल, वृक्ष-पौघे, सभी देव (इस वचन के) प्रणेता द्वारा किये गये कृत्यों से उन्हीं शान्तियों द्वारा प्रसन्न हो चुके हैं और शुम हो चुके हैं तथा उन शान्तियों द्वारा यहाँ जो कुछ दारुण है, कूर (अशुम) है, पाप है (उनके बुरे प्रमाव) दूर हों; वे सभी

१. इमा रुद्राय तबसे कर्पीदने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं प्रामे अस्मिन्ननातुरम्।। ऋ० (१:११४।१)।

प्रसन्न हों, शुन्न हों और हमारे लिए सुखप्रद हों।" अथर्व (१९।१०।१-१०) में 'शम्' ५१ बार आया है, वहाँ कई देवों के कल्याण के लिए प्रार्थना है और (१९।११) में एक 'शान्ति' है जिसमें 'शम्' १८ बार आया है। देखिए वाज सं (३६।८-१२), जहाँ 'शम्' कई बार आया है और एक मन्त्र (३६।१२) इस प्रकार है— 'दिव्य जल हमारे लिए अमिष्ट हों, वे हमें सुख, सहायता एवं रक्षा दें, वे हमारी ओर हमारे सुख एवं कल्याण के लिए बहें।"

तै॰ सं॰ में 'शमयित' एवं 'शान्ति' का प्रयोग एक ही संदर्भ में या एक ही वचन (वाक्य-समूह) में हुआ है। आया है— "रुद्र देवों में कूर (देव) हैं,...पुरोहित जब रुद्र (से सम्बन्धित वचन का) पाठ करता है, तो मानो कूर (कमें) करता है, 'मित्र के मार्ग में वह प्रसन्न करने के लिए कहता है।" और देखिए ऐतं॰ ब्रा॰ (१३।१०)। नै॰ सं॰ (३।४।१०।३) में रुद्र को वास्तोष्पित कहा गया है और उन्हें प्रसन्न करने के लिए बल दिया गया है। और देखिए तै॰ सं॰ (६।३।३।२-३) और मिलाइए वाज॰ सं॰ (५।४२-४३) एवं शत० ब्रा॰ (३।६।४।१३) जहाँ समान शब्द आये हैं।

उपर्युक्त वचनों से प्रकट होता है कि 'शम्', 'शमयित' एवं 'शान्ति' शब्दों का वैदिक संहिताओं में बड़ा महत्त्व है। ऋ॰ (१।१६।७, १।७७।२, ९।१०४।३) में 'शन्तम' शब्द अग्नि, इन्द्र, सोम (१।७६।१, ६।३२।१), याजक या गायक (८।१३।२२), देवों द्वारा रक्षा (५।७६।१, १०।१५।४) आदि के लिए लगभग चौबीस बार आया है और उसका सामान्यतः भाव है 'शुमकर या सुख देने वाला।' इसी प्रकार 'शन्ताित' (ऋ० १।११२।२०, ८।१८।७) का अर्थ है 'शुम करने वाला।'

'शमयित' (शम् से निर्गत) एवं 'शान्ति' शब्द ऋ० में नहीं पाये जाते, किन्तु तैत्तिरीय एवं अन्य संहिताओं तथा ब्राह्मणों में उनका प्रयोग हुआ है। ऋ० में कहीं-कहीं 'शिम' शब्द आया है (१।८७।५, २।३१।६, ३।५५।३,८।४५।२७, १०।४०।१), जिसका अर्थ सायण के अनुसार 'कर्म' (कर्म, यज्ञ आदि) है। 'शमी' शब्द भी आया है (१।२०।२,१।८३।४,१।११०।४,२।१।९ आदि)। यहाँ भी सायण ने 'शमी' को 'कर्म' के ही अर्थ में लिया है, न कि शमी वृक्ष के अर्थ में। किन्तु एक स्थान (ऋ० ६।३।२) पर 'शमी' लकड़ी या ईंधन के अर्थ में आया है।

कात्यायनश्रीतसूत्र (२६।५१: शान्तिकरणमाद्यन्तयोः) के अनुसार वाजसनेयी संहिता का सम्पूर्ण ३६ वाँ अध्याय प्रवर्ग्य कृत्य के आरम्भ एवं अन्त में शान्ति के रूप में प्रयुक्त होता है।

यज्ञ में पशु की बिल के पूर्व होता अधिगु प्रैष का पाठ करता है, जिसमें 'शम्' घातु का प्रयोग है, यथा ...हे अधिगु, तुर्महें (पशु को) इस प्रकार काटना या मारना चाहिए कि उसे ठीक से ले जाया जा सके' (अप्व॰ श्री॰ ३।३)। यहाँ 'शम्' घातु मार डालने के अर्थ में स्पष्ट रूप से प्रयुक्त है। यह अर्थ पूर्व लिखित अर्थों (प्रसन्न करना, बुरा प्रमाव दूर करना) से सर्वथा मिन्न है। किन्तु यह गौण अर्थ में ही प्रयुक्त है, अर्थात् यज्ञ में बिल दिये हुए पशु के अंगों को देकर देवों को प्रसन्न करना।

तैत्तिरीय बाह्मण (१।१।३।११) ने शमी वृक्ष या शाखा को देवों के ऋद रूपों को शान्त करने से सम्बन्धित किया है। आया है—'प्रजापित ने अग्नि उत्पन्न की, वे डर गये 'यह अग्नि मुझे जला सकती है।' उसने शमी

२. ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं क्र्रं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥ अयर्वं (१९१९।१४)।

<sup>े</sup> ३. शं नो वेवीरिमिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरिम स्रवन्तु नः॥ वाज० सं० (३६।१२), ऋ० (१०।९।४), अथर्ब० (१।६।१), सामवेद (३३), तं० क्रा० (१।२।१।१)।

(शाखा) से अग्नि (की भयंकर ज्वाला) को शान्त किया; यहीं शमी का शमित्व है, इसमें शमीमय सम्मार होता है, जिससे अग्नि के जलाने से बचाव हो सके।" माव यह है कि उत्पन्न होते ही अग्नि में भयंकर दाहकता थी जो शमी के प्रयोग से दूर की गयी; शान्ति वह कर्म या कृत्य है जो देव के कूर स्वरूप को प्रसन्न करता है और देव को शुभकर बनाता है। अगर देखिए ऐतरेय ब्राह्मण (३।२)। शतपथ बा० (१०।२।३।३६ एवं ३७) में भी शमी की शाखा से अग्नि-ज्वाला की शान्ति का उल्लेख है, और 'शमी' को 'शम्' से व्युत्पन्न ठहराया गया है और उसे शान्ति (प्रसन्न करने) का साधन समझा गया है।

ब्राह्मणों में शान्ति के कई साधनों का वर्णन है, किन्तु ये वड़े सरल हैं। कमी-कमी वेद-मन्त्र पाठ ही पर्याप्त माना गया है। तैत्तिरीय ब्रा॰ (१।१।८२) ने श्रौत अग्नियों को प्रज्वलित करने के समय साम-गान की व्यवस्था दी है। तीन साम हैं—रथन्तर, वामदेव्य एवं वृहत्, प्रत्येक कम से तीनों लोकों से सम्बन्धित है, "जब अग्नि निकाली जाती है तो वह वामदेव्य साम का गायन करता है; वामदेव्य अन्तरिक्ष है, और उसके (वामदेव्य गान) द्वारा यह अग्नि को अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठापित करता है। वामदेव्य शान्ति है; (वामदेव्य गान पर) वह शान्त (प्रसन्त) अग्नि को, जो पशव्य (पशु प्रदायक) है, निकालता है। वामदेव्य शान्ति है; (वामदेव्य गान पर) वह शान्त (प्रसन्त) अग्नि को, जो पशव्य (पशु प्रदायक) है, निकालता है। और देखिए तैं॰ सं॰ (३।४।२।६-७), ऐत॰ ब्रा॰ (३७।२)। सामिथेनी मन्त्रों के पाठ के पूर्व एवं पश्चांत् होता जप करता है। शांखायन का॰ (३।३) में आया है कि सामिथेनी सदा वज्र हैं और इनके साथ जप करने से अग्नि शान्त (प्रसन्न) होती है।

बुरे प्रभावों को दूर करने के लिए जल भी एक साधन रूप में घोषित है। जल शान्ति का साधन है (देखिए ऐत० ज्ञा० ३२।४)। तै० आरण्यक (४।४२) ने प्रवर्ग्य कृत्य में ३७ शान्ति-मन्त्रों का उल्लेख किया है।

वैदिक साहित्य से प्रकट होता है कि आरम्मिक काल में शान्ति का प्रयोग कई अर्थों में होता था, यथा (१) बुरे प्रभावों से दूर होने की अवस्था, (२) बुरे प्रभावों को दूर करने का साधन, जैसे जल, वैदिक मन्त्र या सूक्त एवं (३) शान्ति कृत्य।

यज्ञ-सम्बन्धी बातों में देवों को प्रसन्न या शान्त करने की सरल शान्तियों के अतिरिक्त ऋग्वेद में कुछ ऐसी अशुम घटनाओं की ओर भी संकेत मिलते हैं जिनको दूर करने के लिए उपाय बताये गये हैं। उदाहरणार्थ, ऋट० (१०।१६४।१-५) नामक ऋचा दुःस्वप्नों को दूर करने के लिए घोषित है। तीसरा मन्त्र घोषित करता है—'अग्नि उन सभी बुरे एवं अवांछित कर्मों को हमसे दूर फेंक दे (कर दे), जिन्हें हमने जागरण या स्वप्नकी अवस्था में किया हो, चाहे वे इच्छाजनित रहे हों या शापित रहे हों या इच्छा के अभाव में हुए हों।' ऋग्वेद (५।८२।४-५) में आया है—'हे सविता देव, आज सन्तित से युक्त कल्याण हमारे लिए उत्पन्न करो तथा बुरे स्वप्नों के प्रमावों को भयमीत करो; हे सविता देव, सभी पापों (दुष्कुत्यों) को दूर करो तथा हमें वह दो चो शुम हो।' 'हे राजा

४. प्रजापतिरिनमसूजत । सोऽबिमेत्र मा वश्यतीति । तं शम्याऽशमयत् । तंज्छम्ये शमित्वम् । यंच्छ-मीमयः सम्भारो भवति शान्त्या अप्रवाहाय । ते० बा० (१।१।३।२) । सायंण ने व्याख्या की है : 'शमयंत्यनेनेति व्युत्पत्त्या शमीति नाम सम्पन्नम् । अतस्तत्संभारः पूर्वं विद्यमानस्य बाहस्योपशान्त्ये, इतः परमवाहायं च सम्पद्यते ।'

५. अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम्। परा बुःखष्वण्यं सुष्ठ। विश्वानि देव सवितर्बुरितानि परा सुव। यद् भवं तम्न आ सुव।। ऋ०५।८२।४-५; यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह। स्तेनो वा यो दिप्सित वृको वा त्वं तस्माद्वरूण पाह्यस्मान्।। २०२०।१०; त्रिते बुःष्वप्यं सर्वमाप्ये परि अधास्यनेहसो व अतयः सुक्रतयो व अतयः।। ऋ०८।४७।१५।

बरुण, चाहे जो, मित्र या सहायक मेरे प्रति घोषित करता है कि मुझे स्वप्न से भय है, या कोई मी,चाहे चोर या भेड़िया मेरी हानि करना चाहता है, उससे आप हमारी रक्षा करें। ऋ० (८।४७।१५) में ऋषि घोषणा करता है—'हम समी दुःस्वप्न त्रित आप्त्य को दे देते हैं, आपकी कृपा किसी द्वारा रोकी नहीं जा सकती, आप द्वारा की गयी रक्षा अच्छी है।' देखिए ऋ० (८।४७।१४, १६-१८; १०।३६।४; १०।३७।४), जहाँ बुरे स्वप्नों की चर्चा हुई है। इसी प्रकार ऋ॰ में पक्षियों की बोलियों से अच्छे या बुरे शकुनों एवं उल्लू की बोली से अपशकुन की बात कही गयी है (२१४१११)। अोर देखिए ऋ० (२१४३११-३; १०११६५११-३; १०११६५१५) एवं अथर्व० (६१२७११-३; ६।२९।१-२) तथा आश्व० गृ० (३।७।७), मानव गृ० (२।१७), कौशिकसूत्र (४७।७) एवं ऋग्विधान (४।२०।२)। शांखायनगृह्य (५।६, ७, १० एवं ११) में आया है—'यदि कोई रोगग्रसित हो जाय तो उसे ऋ० (१।११४) के मन्त्रों के, जो रुद्र की स्तुति में कहे गये हैं, साथ गवेबुक अन्नों की आहुतियाँ देनी चाहिए। यदि किसी के घर में मबमिक्खर्यां छत्ता बना लें तो उसे ऋ० (१।११४) के साथ १०८ उदुम्बर-ट्कड़ों को दही, मधु एवं घी से युक्त कर यज्ञ करना चाहिए और उपवास करना चाहिए तथा ऋ० (७।३५) का पाठ करना चाहिए; यदि घर में चींटियाँ ढूह बना लें तो घर का त्याग कर देना चाहिए और तीन रातों (एवं दिनों) का उपवास करके महाशान्ति का कृत्य करना चाहिए। ऐतरेय आरण्यक (३।२।४) में दस स्वप्नों का उल्लेख है, यथा कोई व्यक्ति काले दाँत वाले काले पुरुष को देखता है, और वह पुरुष उसे मार डालता है, या सुअर उसे मार डालता है, या उस पर बन्दर झपटता है, वायु उसे तेजी से उड़ा ले जाती है; वह सोना निगलकर वमन कर देता है; मघु खाता है; कमलों के डंठल चूसता है; केवल एक (लाल) कमल-नाल लेकर चलता है; गदहों या सूअरों के झुण्ड हाँकता है; नलद पुष्पों की माला पहनकर वह काले बछड़े के साथ काली गाय को दक्षिण दिशा में हाँकता है। यदि कोई इनमें से एक भी स्वप्न देखता है तो उसे उपवास करना चाहिए, एक पात्र में दूध के साथ चावल पकाना चाहिए और उसकी आहुतियाँ अग्नि में डालनी चाहिए और रात्रिसुक्त (ऋ० १०।१२७।१-८) का पाठ करना चाहिए, अन्य भोजन (गृह में पका) ब्राह्मणों को देना चाहिए और स्वयं चावल खाना चाहिए। इसी आरण्यक में कुछ विचित्र प्रकृति-रूपों के देखे जाने की चर्चा है, यथा सूर्य को पीले चन्द्र की भाँति देखना, आकाश को मजीठ के रूप में देखना आदि।

छान्दोग्योपनिषद् (५।२।९) में आया है—'यदि कोई काम्य कृत्य में संलग्न रहने पर स्वप्न में स्त्री देखता है तो समझना चाहिए उसे समृद्धि प्राप्त होगी (इच्छित वस्तु प्राप्त होगी)।' छान्दोग्योपनिषनद् (८।१०।१), बृह्दारण्यकोपनिषद् (४।३।७-२०) एवं प्रश्न० (४।५) में स्वप्न-प्रकृति-रूपों के मनोविज्ञान पर विचार प्रकट किये गये हैं, जिन पर हम यहाँ विचार नहीं करेंगे।

अथर्व में भी स्वप्नों एवं कपोत (कबूतर) जैसे पक्षियों के विषय में कितपय वचन हैं। कौशिक-सूत्र में शान्ति के रूप में अथर्व के मन्त्र (४।४५।१ एवं ४६।१) उल्लिखित हैं (८।२०): 'स्वप्न देखने पर व्यक्ति अथर्व (२।४५।१ एवं ४६।१) के पाठ के साथ मुख-प्रक्षालन करता है, यदि वह भयानक स्वप्न देखता है तो मिश्र घान्य (कई अत्र ) अग्नि में डालता है या दूसरी दिशा (शत्रु के खेत) में डालता है; अथर्व (७।१००।१) के साथ करवट बदल लेता है, स्वप्न में खाते समय वह अथर्व (७।१०१।१) का पाठ करता है और देखने लगता है; अथर्व (६।

६. क्रिनिकदण्जनुषं · · · विदत्।। ऋ० २।४२।१। निचक्त (९।४) ने इसका अर्थ किया है। सायण के मत से यहाँ कपिजल पक्षी की ओर संकेत है।

४६।२) के पाठ से सभी स्वप्न नष्ट हो जाते हैं। दो पद्य इस प्रकार हैं—'हे स्वप्न, हम तुम्हारी जन्मभूमि जानते हैं, तुम देवों की बिह्नों के पुत्र हो, तुम यम के सहायक हो; तुम अन्तक हो, तुम मृत्यु हो; हे स्वप्न, हम तुम्हें वैसा समझते हैं; हे स्वप्न, तुम हमें दु:स्वप्नों से बचाओ; मैं दु:स्वप्न देखने पर घूम जाता (करवट बदल लेता) हूँ, ऐसा ही बुरे माग्य में भी करता हूँ, मैं बहा (वैदिक प्रार्थना) को अपनी सुरक्षा बनाता हूँ, मैं स्वप्नों से आगत दुश्चिन्ताओं को भी भगाता हूँ।' और देखिए कात्यायनश्रीतसूत्र (२५।११।२०)।

आपस्तम्बगृ० (८।२३।९) ने कितपय असावारण दृश्यों के लिए एक ही प्रकार की शान्ति की व्यवस्था दी हैं—'स्थणाविरोहण (घर के खम्भे अर्थात् थून्ही में अंदुर निकलने) में, घर पर मधुमक्खी का छत्ता होने पर, यदि चूल्हे पर कपोत पदिच ह्न दीख पड़े या घर में रोग उत्पन्न हो आय या अन्य अद्भुत उत्पात प्रकट हो जायें तो अमावास्था की अर्थरात्रि में, जहाँ जल-शब्द न सुनाई पड़े, व्यक्ति को अग्नि में सिमवा डालने से लेकर आज्य भाग की अद्वितयों तक के कृत्य करने चाहिए, तदनन्तर जप एवं आहुतियाँ देनी चाहिए। इसी प्रकार सामविचान बाह्मण में भी उत्पातों पर शान्ति की व्यवस्था है (५।२-३, ५।७।२ आदि)। अथर्व० (१९।९।९) में उल्कापात (नक्षत्रमुक्काभिहतं शमस्तु नः), षड्विश० (५।९।२) में भी उल्कापात तथा (५।१०।२) में मूर्ति के हँसने, रोने आदि की ओर संकेत है। स्थानाभाव से गृह्मसूत्रों में विणित शान्तियों का और उल्लेख नहीं किया जायगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक साहित्य, श्रीतसूत्रों, सामविधान-श्राह्मण एवं ऋष्टिधान में शान्तियों का प्रयोग न-केवल कुढ़ देवों या शक्तियों को प्रसन्न करने के लिए, प्रत्युत कुस्वप्न जैसी घटनाओं तथा सूर्य-चन्द्र-रूपों, अशुभ पक्षियों की वोलियों आदि के लिए भी होता था।

सभी प्रकार के शकुनों एवं उत्पातों की शान्तियों के विषय में पश्चात्कालीन वैदिक साहित्य में विशद विवेचन पाया जाता है। गृह्यसूत्रों, कौशिकसूत्र, अथवं-परिशिष्टों, पुराणों, बृहत्संहिता (अध्याय ४४), कृत्यकत्य-तरु (शान्तिक-पौष्टिक-काण्ड), बल्लालसेन एवं उनके पुत्र लक्ष्मणसेन के अद्मुतसागर, मदनरत्न (शान्तिखण्ड), रघुनन्दन के ज्योतिस्तत्व, कमलाकर मृष्ट के शान्तिकमलाकर एवं नीलकण्ठ के शान्तिमयूख में शान्ति-विषयक विशद चर्चाएँ पायी जाती हैं। इनमें अद्मुतसागर एक विशाल ग्रन्थ (७५१ पृष्ठों में) है। बहुत-से शान्ति-कृत्य अब प्रयोग में नहीं लाये जाते। हम यहाँ संक्षेप में कुछ ही शान्तियों का उल्लेख करेंगे।

की शिकसूत्र (अध्याय १३, किष्डका ९३-१३६) में अद्भुतों एवं उनकी शान्तियों का उल्लेख है। ९३ वीं किष्डका में ४२ औपर्सीगक उत्पातों का उल्लेख है, अन्य किष्डकाओं में कुशकुनों या उत्पातों तथा प्रत्येक की शान्ति का वर्णन है। इन शान्तियों में अर्थवंवेद के मन्त्र गौण महत्त्व रखते हैं, अधिकांश मन्त्र स्वतन्त्र रूप से आये हैं। यह द्रष्टव्य है कि बाद में ये शान्तियाँ प्रायश्चित्त के नाम से पुकारी गयी हैं।

मदनरत (लगमग १४२५ से १४५० ई०) में विणत शान्तिक-पौष्टिक विषय यह प्रकट करते हैं कि
मध्यकाल में शान्तियों का बड़ा महत्त्व था। इसकी अप्रकाशित पाण्डुलिप की अनुक्रमणिका में निम्न वर्णन है—
विनायकरनान; सूर्य से केतु तक नवग्रहों को प्रसन्न करने की शान्तियाँ; शनैश्चरव्रत; शनि को प्रसन्न करने की
शान्तियाँ (स्कन्द पुराण के नागरखण्ड एवं प्रभासखण्ड से उद्धरण लिये गये हैं); बृहस्पित एवं शुक्र की पूजा; पाँच
या अधिक ग्रहों के योग पर यामलों पर आधारित शान्तियाँ; विष्णुधर्मोत्तर० से उद्बृत ग्रहस्नान; ज्वर या अन्य

७. यामल तन्त्र कोटि के प्रन्य हैं, जिनकी संख्या बहुत है, किन्तु बहुवा उनकी संख्या ८ कहीं जाती है। गणेशयामल, ब्रह्मयामल, व्हयामल, विष्णुयामल, शक्तियामल आदि प्रन्थ भी हैं। स्मृतिकौस्तुभ ने कुछ तिथियों,

रोगों में तिथि एवं सप्ताह-दिन की शान्ति; नक्षत्रशान्ति; जन्म काल के ९ उम्र नक्षत्रों एवं शेष की शान्तियाँ; अमावास्या, मूल या आरलेषा या ज्येष्ठा नक्षत्रों में जन्म पर शान्तियाँ; पिता या बड़े भाई के नक्षत्र पर जन्म होने पर शान्ति; गण्ड, वैद्यृति, व्यतीपात योग, संकान्ति, विषनाड़ी, ग्रहणों पर जन्म होने पर शान्तियाँ; गोमुखप्रसव नामक शान्ति; गर्भावान से एक मास तथा उसके आमे के मासों के अूण की रक्षा के लिए घोषित शान्तियाँ; बलि; अूण-पीड़ा के मार्जन के लिए ओषघि; सरलता से जनन के साघन; जन्म के उपरान्त रक्षा के लिए; मन्त्रों के साथ प्रथम दिन पर बिल, नीराजन आदि; पवित्र जल से शिशु पर छिड़काव, देवों एवं पितरों का जल-तर्पण, होमों, यन्त्रों द्वारा देवों एवं पितरों को सन्तुष्ट करना; जन्मोपरान्त पहली तिथि से १२ वीं तिथि तक के कृत्यों के सामान्य नियम तथा प्रथम मास तथा आगे के एक वर्ष के मासों के कृत्य-नियम; दुष्ट आत्मा द्वारा पकड़े जाने पर मन्त्रों के साथ शिशु का लेप, वासना, स्नान; दूर्वा से होम, लम्बी आयु के लिए होम; अद्मुतों के लिए शान्ति तथा मूर्तियों, अग्नि, वृक्षों, वर्षा, जलाशयों के विषय में विचित्र घटनाओं, विचित्र जननों, जुड़वाँ उत्पत्ति, हथियारों, पशुओं, मन्दिर-घ्वंस एवं गृह-घ्वंस के विषय में विचित्र उपस्थितियों के बारे में शान्तियाँ; कतिपय उत्पातों एवं अद्भुतों की शान्तियाँ; कपोत पक्षी एवं कौओं की मैथुन-क्रिया दर्शन पर शान्तियाँ; शरीर पर गिरगिट एवं छिपकली गिरने पर शान्तियाँ; जनन-मरण के अशीचों पर शान्तियाँ; हाथी-घोड़ों के विषय की शान्तियाँ; सप्ताह-दिनों की शान्तियाँ; महाशान्ति; नवग्रहमख; अयुतहोम और उसकी विधि तथा नर्रासह०, देवी० एवं भविष्य० में विणित लक्षहोम एवं कोटिहोम के नियम; देवीपुराण में वर्णित वसोर्घारा। कण्डिका संख्या ९३ (कौशिक सूत्र) में वर्णित अद्भुत ये हैं-(घृत, मघु, मांस, सोना, रक्त आदि की भयंकर) वर्षा; यक्ष (वन्दर, पशु, कीए आदि जो मानव आकृति में प्रकट होते हैं); दो मेढ़कों की टर्रटर्र; कुल के सदस्यों का झगड़ा-फसाद (कलह); भूचाल; सूर्य-ग्रहण; चन्द्र-ग्रहण; औषसी (प्रातः ? या उषः काल) जब ऊपर नहीं जाती; जब वर्ष भयंकर हो जाता है, जब बाढ़ का भय होता है; जब ब्राह्मण अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करते हैं; जब देव-प्रतिमाएँ नाचने लगती हैं, नीचे गिर जाती हैं, हँसती हैं, गाती हैं और अन्य रूप घारण करती हैं; जब दो हल-साथी उलझ पड़ते हैं; जब दो रस्सियाँ या घागे एक-दूसरे से उलझ जाते हैं; जब एक अग्नि दूसरी के स्पर्ध में आ जाती है; जब कौआ जुड़वाँ बच्चा पैदा करता है; जब घोड़ी या गदहीं या नारी दो वच्चे जनती हैं; जब गाय से रक्त-दूध निकलता है; जब बैल गाय का दूध (थन से) पीने लगता है; जब एक गाय दूसरी गाय का थन पीने लगती है; जब गाय, घोड़ा, खच्चर या मानव आकाशफेन सूँघने लगते हैं; जब चींटियाँ अप्राकृतिक ढंग से व्यवहार करने लगती हैं; जब नीली मघु-मिक्खियाँ अप्राकृतिक ढंग से व्यवहार करने लगती हैं; जब कोई अपूर्व अद्मुत प्रकट होता है; जब गाँव, घर, अग्नि-शाला, समा-स्थल में कोई वस्तु टूट-फूट जाती है; जब शुष्क स्थान से पानी चलने लगता है; जब तिल से उतना ही तेल (?) निकलता है; जब यितय सामग्री पक्षियों, द्विपदों, चतुष्पदों के स्पर्श से अपवित्र हो जाती है; जब वेणी (लड़के या लड़की की)वायीं ओर हो

सफ्ताह-दिनों एवं नक्षत्रों की कुछ घटियों (नाड़ियों या घटिकाओं) को विषनाड़ी या विषघटी (जिनसे अशुम फल मिलते हैं) कहा है। किन्तु ज्योतिबीय प्रन्थों में केवल नक्षत्रों की कुछ घटियों को ही यह उपाधि दो गयी है और इन घटियों में उत्पन्न व्यक्ति माता, पिता, बन एवं अपनी हानि का कारण बताया गया है (वर्मसिन्धु,पृ०१८४)। मदनरत ने शान्तिक में २७ नक्षत्रों के विषय में विशद वर्णन उपस्थित किया है, यथा प्रत्येक नक्षत्र की विषयटी, अदिवनी में ५० वीं घटिका के उपरान्त तीन घटिका विषनाड़ी, भरणी में २४ के उपरान्त एक घटिका, पुनवंतु एवं पुष्प में कम से ३० एवं २० घटिकाओं के उपरान्त एक घटिका है।

जाती है; जब यज्ञिय स्तम्म से अंकुर निकल आते हैं; जब दिन में उल्कापात होता है; जब धूमकेतु अंबकार उत्पन्न कर देता है; जब बार-बार उल्कापात होता है; जब चोंच में मांस लेकर पक्षी किसी के घर पर उतरता है; जब बिना अग्नि के प्रकाश फूटने लगता है; जब अग्नि फूल्कार करने लगती है; जहाँ घृत, तैल, मघु टपकने लगता है; जब ग्रामाग्नि से कोई घर जल जाता है; जब दुर्घटना से किसी का घर जल जाता है; जब बाँस स्वर निकालने लगते हैं; जब जलाश्यय में पात्र फूट जाता है या बटलोही फूट जाती है या यवयुक्त पात्र फूट जाता है।

स्थानाभाव से उपर्युंक्त अद्मुतों की शान्तियों का विवेचन यहाँ सम्भव नहीं है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। जब भूचाल हो तो पाँच मन्त्रों के साथ घृत की आहुतियाँ दी जानी चाहिए, इनमें तीन जिल्लु (विल्लु) के विषय में हैं और इस प्रकार हैं—''जिस प्रकार सूर्य स्वर्ग में ज्योतिर्मान् है, वायु आकाश में है, अग्नि पृथिवी में प्रवेश करती है, उसी प्रकार यह जिल्लु अटल एवं स्थिर रहे। जिस प्रकार सरिताएँ रात-दिन अपने तत्त्व (मिट्टी, कीचड़ आदि) को समुद्र में डालती हैं, उसी प्रकार (देवों के) सभी वर्ग, एक मन होकर मेरे आवाहन (यज्ञ) में आयें; देवी पृथिवी सभी देवों के साथ मेरे लिए स्थिर हो, वह सभी दुष्टताओं को मगा दे और उन शत्रुओं को, जो मुझसे घृणा करते हैं, चीर-फाड़ डाले।'' 'स्वाहा' शब्द के साथ आहुतियाँ देकर उसे अथवं० (६१८७।१, ६१८८।१) के मन्त्रों और अथवं० (१२।१।२) के अनुवाक के पाठ के साथ आहुतियाँ देनी चाहिए। यही प्रायश्चित्त है (मूचाल के विषय में)। देखिए कौशिकसूत्र (अध्याय ९८)। और देखिए वही, अध्याय ९९ एवं १०० जहाँ कम से सूर्य-प्रहण एवं चन्द्र-प्रहण-सम्बन्धी शान्तियों का वर्णन है।

शान्तियों के सम्बन्ध में अद्भुत, उत्पात एवं निमित्त नामक तीन शब्दों को मली भाँति समझ लेना चाहिए। 'अद्भुत' प्राचीन शब्द है। ऋग्वेद में कई बार प्रयुक्त हुआ है और किसी देवता के लिए 'आश्चर्ययुक्त' के अर्थ में आया है। कहीं-कहीं यह 'मविष्य' एवं सम्भवतः 'औत्पातिक' के अर्थ में भी आया है निरुक्त (१।५) के अनुसार ऋ ० (१।१७०।१) की व्याख्या इस प्रकार है—'ऋषि अगस्त्य ने सर्वप्रथम इन्द्र को हिन देने का वचन दिया, किन्तु आगे चलकर उन्होंने वही मख्तों के लिए करना चाहा, इस पर इन्द्र ने अगस्त्य के पास आकर विरोध किया कि जो आज वचन दिया गया, वह नहीं है, और न वह कल भी होगा, कौन जाने, मविष्य में क्या होगा।'<sup>4</sup> यास्क ने 'अद्**मृ**त' का अन्वय 'अ-मूत' (जो अमी नहीं घटित हुआ है) से किया है और कहा है कि सामान्य माषा में अद्मुत का अर्थ यह भी है 'वह जो अभी घटित नहीं हुआ है।' गृह्यसूत्रों में 'अद्मुत' शब्द ही आया है और शान्तियों को 'अद्मुत शान्तियाँ कहा गया है। अद्भुत न केवल मूचालों, ग्रहणों, घूमकेतुओं, उल्कापातों आदि के लिए प्रयुक्त हुआ है, प्रत्युत यह असाघारण घटनाओं के लिए भी प्रयुक्त हुआ है, यथा गाय द्वारा. रक्त-दूघ देना, गाय द्वारा गाय का थन पीना आदि। वृद्ध-गर्ग ने 'अद्भुत' को ऐसी घटना समझा है, जो पहले न हुई हो (अर्थात् अपूर्व) अथवा जो पहले हुई हो, किन्तु उससे पूर्ण रूपेण परिवर्तित दूसरी घटना हो जाय । ६७ वाँ आधर्वण परिशिष्ट 'अद्मृत शान्ति' कहा जाता है। इसने अद्मुतों को सात दलों में बाँटा है—इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, कुबेर, विष्णु एवं वायु और प्रत्येक के कुछ अद्मुतों के नाम लिखे हैं, यथा रात्रि में इन्द्रघनुष (इन्द्र), गिद्ध (गृद्ध) या उल्लू का घर पर उतरना या कपोत का घर में प्रवेश (यम), बिना अग्नि का धुवाँ (अग्नि), किसी के जन्म के नक्षत्र पर ग्रहण (विष्णु)। परिशिष्ट सामवेद के अद्मुत उसके ब्राह्मण पर आधारित हैं।

८. निरुक्त (१।५): 'अगस्त्य इन्द्राय हर्विनिरुप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सांचकार स इन्द्र एत्य परिवेवयांचके। न नूनमस्ति नो व्वः कस्तद्वेव यदव्भृतम्। अन्यस्य चित्तमभिसंचरेण्यमुताबीतं विनश्यति।। (ऋ० १।१७०।१)।

### धर्मज्ञास्त्र का इतिहासं

श्रीत या गृह्यसूत्रों में 'उत्पात' शब्द विरल ही प्रयुक्त है । गौतमवर्मसूत्र (११।१२-१३, १५-१६) ने राजा को आदेश देते हुए कि उसे विद्वान, शीलवान् बाह्मण को पुरोहित बनाना चाहिए, यह व्यवस्था दी है कि उसे जो ज्योतिषी एवं शकुत-व्याख्या करने वाले करने को कहें उस पर ध्यान देना चाहिए और पुरोहित को चाहिए कि वह शान्ति-कृत्य करे (यथा वास्तु-होम) तथा इन्द्रजाल (जादू) कृत्य (राजा की ओर से) करे। किन्तु पुराणों एवं मध्यकालिक संस्कृत ग्रन्थों में उत्पात शब्द अद्भृत शब्द की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है, कभी-कभी दोनों समानार्थक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। गर्ग का कथन है---देवता मनुष्यों के दुष्कर्मों से अशुभकर हो जाते हैं और आकाश, अन्तरिक्ष एवं मूमि में अद्मुत (असाधारण घटनाएँ) उत्पन्न करते हैं। ये सभी लोकों के लिए देवों द्वारा उत्पन्न उत्पात हैं; ये उत्पात सब लोगों के नाश के लिए प्रकट होते हैं और अपने मयानक रूपों द्वारा लोगों को (अच्छा कार्य करने के लिए) प्रेरित करते हैं।' यहाँ अद्भुत एवं उत्पात शब्द एक दूसरे के पर्याय हैं। और देखिए मत्स्यपुराण (२२८।१-२)। सामान्यतः, उत्पात वे घटनाएँ हैं जो सब के लिए भयानक होती हैं। अमरकोश ने 'अजन्य', 'उत्पात' एवं 'उपसर्ग' को समानार्थक कहा है। गर्ग, वराहमिहिर एवं अथवं-परिशिष्ट ने उत्पात को स्वामाविक कम (स्थिति) का उलटा (विलोम) माना है। अमरकोश के अनुसार निमत्त का अर्थ है 'कारण या अग्रसूचक चिह्न।' निमित्त शुभ एवं अशुभ दोनों हो सकता है, यही उत्पात (जो सामान्यतः अशुभ होता है) एवं निमित्त का अन्तर है। एक अन्य अन्तर भी है। निमित्त बहुवा व्यक्ति के अंगों के फड़कने तक सीमित है (मत्स्य ० अध्याय २४१), किन्तु कहीं-कहीं व्यापक अर्थ में मी इसका प्रयोग हुआ है (निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव, गीता<sup>.</sup> १।३१)। देखिए रामायण (अयोध्या० ४।१७-१९), भीष्म० (२।१६-१७), विराट० (४६।३०) । मनु (६।५०) ने 'उत्पात' एवं 'निमित्त' में भेद किया है।

महामारत में अशुभ घटनाओं (निमित्तों या उत्पातों) का बहुत उल्लेख हुआ है, यथा समापवं (८०।२८-३१ ८१।२२-२५), वन० (१७९।४१, २२४।१७-१८), विराट (३९।४-६) आदि। प्रमुख उत्पात एवं अद्मुत ये हैं—मयंकर स्वप्न; अन्वह-तूफान (निर्धात); उल्कापात; दक्षिण में शृगालिन का रोना; बालू के कणों के साथ मयंकर एवं सूखी आंधी; मूचाल; असामान्य काल में सूर्य-महण; विना वादलों के विद्युत-चमक; मन्दिरों पर गृद्ध, कौओं का वास; दुर्ग की दीवारों एवं प्राकारों पर भी उनका वास; अचानक अग्नि; फटे झंडे या पताकाएँ; सूर्य-चन्द्र का मण्डल; निदयों में रकत-जल-प्रवाह; विना बादलों की वर्षा; रक्त या पंक की वर्षा; हाथियों की चिद्याइ, अन्धकार-पृक्त आकाश; घोड़ों का अश्रु-प्रवाह; स्वच्छ आकाश में वादल-गर्जन; निदयों का उलटा प्रवाह; बायें हाथ एवं आंख का फड़कना; मेढक की टर्स-टर्र; समुद्र का तूफान; मूर्तियों का कांपना, नाचना, हँसना एवं रोना; पीला सूर्य; सूर्यामिमुख हो कपोत, मैना एवं हिरण का क्दन, सूर्य के पास मुण्डरहित घड़ों का प्रकट होना; विचित्र जन्म, यथा गाय से गदहा, नेवले से चूहा (युद्धकाण्ड ३५।३०)। इन ग्रन्थों में शुभ चिह्न बहुत कम विणत हैं (बालकाण्ड २२।४, उद्योग० ८३।२३-२६, ८४।११७, भीष्म० ३।६५-७४, शान्ति० ५२।२५, आक्वमेधिक० ५३।५-६)। प्रमुख सुम लक्षण ये हैं—विना बादलों के स्वच्छ गगन; शीतल एवं स्पर्श से आनन्द देने वाली वायु का प्रवाह; धूल का न उड़ना, मनुष्य की दाहिनी ओर पक्षियों एवं पशुओं का जाना; घूमरहित अग्नि, जिसकी ज्वाला दाहिनी ओर हो; पुष्पवर्षा, चाष, क्रोंच, मोर जैसे शुभ पक्षियों का दाहिनी ओर चहचहाना (कर्णं० ७२।१२-१३)।

sko

९. ब्राह्मणं च पुरोदधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसम्पन्नं न्यायवृत्तं तपस्तिनम्। तत्प्रभूतः कर्माणि कुर्वीत। प्रान्यानं च वैवोत्पातिचन्तकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्वियेत। तवधीनमिष ह्येके योगक्षेमं प्रतिजानते। गौ० थ० सू० (११।१२-१३, १५-१६)।

गर्ग, पराशर, समापर्व, बृहत्संहिता (४५।२), मत्स्य० (२२९।५), अथर्व-परिशिष्ट (६९।१।२) आदि ने उत्पातों को तीन मागों में बाँटा है—िहव्य (स्विगिक वस्तुओं से उठने वाले), आन्तरिक्ष (आकाश में उमरने वाले) एवं भोम (पृथिवी में प्रकट होने वाले)। यह विमाजन प्राचीन है (अथर्व० १९।९।७)। गर्ग एवं बृ० सं०, मत्स्य० (२२९।६-९), अग्नि० (२६३।१२-१३) में तीनों प्रकार के उत्पातों का उल्लेख है। दिव्य उत्पात हैं—ग्रहों, नक्षत्रों, ग्रहणों एवं धूमकेतुओं की असामान्य दशाएँ; आंतरिक्ष उत्पात हैं—अन्धड़, तूफान, असामान्य घन-खण्ड, उल्कापात, सन्धाएँ, दिशाओं का अद्भृत लालिमायुक्त प्रकट होना, मण्डल, वायु में प्रमात्मक आकृति प्रकट हो जाना, इन्द्रघनुष एवं अद्भृत वर्षा (यथा रिक्तम जल, मछिलयों की वर्षा, कछुओं की वर्षा आदि); मौम उत्पात ये हैं—भूचाल, तालाबों की असामान्य स्थिति। वृ० सं० में आया है कि मौम उत्पात शान्तियों से दूर किये जाते हैं, आंतरिक्ष उत्पात शान्तियों से कुछ कम (मृदु) हो जाते हैं, किन्तु दिव्य उत्पात शान्तियों से नहीं दूर होते (जैसा कि उत्पल के मत से काश्यप ने कहा है, किन्तु वराहिमिहिर के अनुसार अधिक सोना, मोजन, गाय एवं मूमि के दानों, पृथिवी पर गाय का दूष शिव पर (छ के मन्दिर में) चढ़ाने एवं कोटिहोम कर्ने से दिव्य उत्पात दूर किये जा सकते हैं। यराहिमिहिर एवं मत्स्य० के अनुसार दिव्य उत्पात आठ प्रकार से बुरा फल देते हैं—स्वयं राजा पर, उसके पुत्र, कोश, वाहनों, राजधानी, रानी, पुरोहित एवं प्रजा पर।"

विभिन्न नामों वाली शान्तियों के नाम मत्स्य०, वराहमिहिर आदि द्वारा उल्लिखित हैं। मत्स्य० में वर्णित १८ शान्तियाँ संक्षेप में यों हैं- अभय शान्ति तब की जाती है जब राजा विजयी होना चाहता है या जब उस पर आक्रमण होता है, या जब उसे भय होता है कि उस पर माया की गयी है या जब वह शत्रुओं का नाश करना चाहता है या जब उस पर बड़ा मय आ जाता है। सौम्य शान्ति तब की जाती है जब राजरोग (टी॰ बी॰) हो जाता है, भावों से दुर्वल होने पर या यज्ञ करने की इच्छा होने पर। वैष्णवी ज्ञान्ति की व्यवस्था मुचाल में, दुर्मिक्ष में, अति वृष्टि में, अनावृष्टि में, टिड्डियों के भय में तथा चौरों की किया होने में होती है। रौद्री शान्ति का प्रयोग पशुओं एवं मानवों में महामारी उत्पन्न हो जाने पर या भूत-प्रेत के प्रकट होने पर या राज्याभिषेक में या आक्रमण होने पर या जब राज्य में कोई विश्वासघात होता है या जब शत्र -हनन होता है, तब की जाती है। ब्रोह्मी शान्ति की व्यवस्था तब की जाती है जब वेदाध्ययन के नष्ट होने का डर रहता है या जब नास्तिकता फैलने लगती है या जब कृपात्रों को सम्मान मिलने लगता है। जब अन्धड़-तूफान तीन दिनों तक चलते रहते हैं और वात से रोग फैलने लगते हैं तव वायकी शान्ति की व्यवस्था होती है। वारणी शान्ति अनावृष्टि में या जब असामान्य वर्षा (रक्त-जल की वर्षा आदि) होने लगती है तब की आती है। प्राजापत्य शान्ति असामान्य जनन में की जाती है। त्वाब्दी शान्ति हथियारों की असामान्य दशाओं में की जाती है। कौमारी शान्ति की व्यवस्था बच्चों के लिए होती है। आग्नेयी शान्ति अग्नि के अद्मुत रूपों में की जाती है। गान्ववीं शान्ति आज्ञोल्लंघन में, पत्नी एवं मृत्यों के नाश में या अश्वों के लिए की जाती है। आंगिरसी शान्ति हायियों के विकृत होने पर की जाती है। नैऋंती शान्ति पिशाचों के मय में की जाती है। याम्या शान्ति की व्यवस्था मृत्यु या दुःस्वप्न की घटनाओं में होती है। कौबेरी शान्ति घन की हानि में की जाती है। जब वृक्षों की असामान्य दशाएँ आती हैं तो पार्थियी शान्ति की व्यवस्था होती है। ज्येष्ठा या अनुराघा नक्षत्र में उत्पात होते हैं तो ऐन्द्री शान्ति की जाती है।

१०. आत्मसुतकोशवाहनपुरवारपुरोहितेषु लोके च। पाकमुपैति देवं परिकल्पित मध्यधानूपतेः॥ वृ० सं० (४५।७), मत्स्य० (२२९।१२-१३)।

## वर्षशास्त्र का इतिहास

245

अग्नि० (२६३।७-८) ने उपर्युक्त १८ शान्तियों का उल्लेख किया है और कहा है कि अमृता, अभया एवं सौम्या नामक शान्तियों सर्वोत्तम हैं। कितपय असामान्य उत्पातों की दशाओं में कई शान्तियों की चर्चा वराहमिहिर ने भी की है। स्थान-संकोच से हम उसकी चर्चा यहाँ नहीं कर सकेंगे। किन्तु एक शान्ति का उल्लेख आवश्यक है—'यदि कोई यक्षों (यातुधानों) को देखे, जब ज्योतिषियों द्वारा महामारी का निर्देश हो तो ऐसी स्थितियों में गर्ग ने उनके नाश के लिए निम्न शान्तियों दी व्यवस्था दी है—महाशान्ति, बलि, पर्याप्त मोजन, इन्द्र एवं इन्द्राणी की पूजा (मृ० सं० ४५।७९-८०)। बृ० सं० (४५।८२-९५) ने कुछ ऋतुओं में उपस्थित घटनाओं को उत्पात नहीं माना है और मत्त्य० (२२९।१४-२५) में आये हुए ऋषिपुत्र के वचनों को (कुछ अन्तरों के साथ) उद्धृत किया है, यथा चैत्र एवं नैशाख में निम्न शुम (ऐसे उत्पात जिनमें शान्ति की आवश्यकता नहीं होती) हैं—विद्युत-चमक, उल्कापात, मूचाल, चमकती सन्ध्याएँ, अन्धड़-तूफान, मण्डल, गगन-धूलि, वन-धूम, रिवतम सूर्योदय एवं सूर्यास्त ।

#### अध्याय २१

## कितपय विशिष्ट शान्तियाँ

अव हम कुछ विशिष्ट शान्तियों का उल्लेख करेंगे। इनमें अधिकांश वैदिक काल के पश्चात् की हैं। पहली है विनायक-शान्ति या गणपित-पूजा। यह उपनयन एवं विवाह जैसे संस्कारों के आरम्म में की जाती है, जिससे कि निविच्न फल की प्राप्ति हो, उत्पातों के अशुम प्रमाव दूरहों या सपिण्ड की मृत्यु से उत्पन्न प्रतिकूल परिणामों का निवारण हो सके। इसका स्वतन्त्र रूप से सम्पादन शुक्ल पक्ष की चतुर्थी या वृहस्पति या पुष्य, श्रवण, उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्वनी, मृगशीर्ष शुम नक्षत्रों में होता है। किन्तु जब इसका सम्पादन उपनयन जैसे संस्कारों के आरम्म में किया जाता है तब उस प्रमुख कृत्य का काल ही इसके लिए उपयुक्त माना जाता है। इसका संकल्प धर्मसिन्धु (पृ० २०५) में दिया हुआ है। मानवगृद्धा एवं वैजवापगृद्धा में चार विनायकों (सभी दुष्ट आत्माओं के रूप में) का उल्लेख है, किन्तु आगे चलकर याज्ञ० (१।२७१-२९४) में विनायक न-केवल विघ्नकर्ता माना गया है, प्रत्युत विघ्नहर्ता भी कहा गया है, किन्तु और आगे चलकर गणपित-पूजा को प्रत्येक कृत्य के लिए अनिवार्य ठहराया गया है (गोमिल १।१३)। याज्ञ० (१।२९३) में आया है कि विनायक की प्रतिपादित पूजा तथा ग्रह-पूजा से सर्वोत्तम फल एवं श्री की प्राप्ति होती है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर (२।१०५।२-२४)। ब्रह्माण्ड० में आया है कि गर्माधान से लेकर जातकर्म आदि संस्कारों, यात्रा, वाणिज्य, युद्ध-काल, देव-पूजा, संकट में तथा इच्छाओं की सिद्धि में गजानन की पूजा अवश्य की जानी चाहिए। मिविष्य० (अध्याय १४४) की गणनाथशान्ति याज्ञवल्य की विनायकशान्ति से मिलती जुलती है।

याज्ञवल्क्य (१-२९४-३०८), वैखानसस्मार्त-सूत्र (४।१३-१४), वौधायनगृह्यशेषसूत्र, मत्स्यपुराण (९३।१-१०५), विष्णुधर्मोत्तर (१।९३-१०५) एवं अन्य पुराणों, वृहद्योगयात्रा (१८।१-२४) एवं मध्यकालिक निबन्धों में नवग्रहों (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि,राहु एवं केतु) के शान्ति-कृत्य की व्यवस्था है। यह नवग्रह्शान्ति निवन्धों में विणत शान्ति-होमों का नमूना (प्रकृति) है। वैखानसस्मार्तसूत्र (४।१४) में आया है कि सभी धार्मिक कृत्यों के आरम्भ में नवग्रह्शान्ति का सम्पादन होना चाहिए।

- १. एवं विनायकं पूज्य ग्रहांद्रचैव विधानतः। कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं चाप्नोत्यनुत्तमाम्।। याज्ञ० (१।२९३), भविष्य० (ब्राह्मपर्व, २३।३०)।
- २. जातकर्मादिसंस्कारे गर्भाधानादिकेपि च। यात्रायां च वणिज्यादौ युद्धे देवार्चने शुभे।। संकृष्टे कामसिद्धधर्थं पूजयेद्यो गजाननम्। तस्य सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्त्येव न संशयः।। ब्रह्माण्ड० (३।४२।४४); ब्रह्माण्ड० (४।४४। ६५-७०) ने गणेश के ५१ नाम दिये हैं।
- ३. ग्रहपूजां पुरस्कृत्य सर्वकर्म संमारभेदिति विज्ञायते । वै० स्मा० सू० (४।१४); शान्तिकमल्सकर में आया है : 'अयं सर्वशान्तिप्रकृतिस्तु ग्रहयज्ञ उच्यते । तत्र स्कान्दयाज्ञवल्पयौ श्रीकामः शान्तिकामो वा… ।'

याज्ञवल्क्य (१।२९४) का कथन है--- 'जो श्री-प्राप्ति की कामना करने वाला है, सभी विपत्तियों को दूर करना चाहता है, (कृषि के लिए) वर्षा की कामना करता है, लम्बी आयु चाहता है, स्वास्थ्य चाहता है और शत्रुओं के निवारण के लिए इन्द्रजाल (जादू) कृत्य करने का इच्छुक है, उसे ग्रह-यज्ञ सम्पादित करना चाहिए। मत्स्य० (९३।५-६) के अनुसार नवग्रहमख तीन प्रकार का है—(१) अयुत्रहोम (जिसमें १०००० आहुति होती हैं), लक्षहोम एवं कोटिहोम। अयुतहोम का सम्पादन विवाहों, उत्सवों, यज्ञों, मूर्ति-प्रतिष्ठापनों एवं अन्य कर्मों में होता है, जिससे उनमें कोई बाधा न उपस्थित हो; इसका सम्पादन उन अवसरों पर भी होता है जब कि मन उद्विग्न होता है या जब कोई अशुभ शकुन या असामान्यु घटना घटती है।

याज्ञवल्क्यस्मृति में जो विधि है, वह संक्षेप में है और ग्रहयज्ञ-सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। हम मत्स्य० एवं वैखानस० से कुछ लेकर उस विधि को उपस्थित करते हैं। कम से ताम्र, स्फ्टिक, लाल चन्दन, सोना (बुघ एवं बृहस्पित दोनों के लिए), चाँदी, लोहा, सीसा, पीतल या (यदि ये सब उपलब्ध न हों) तो किसी वस्त्र-खण्ड पर ग्रहों के अनुरूप रंगों के चूर्ण से चित्रों या (चन्दन जैसे सुगंधित लेप से) वृत्तों द्वारा नव-ग्रहों की आकृतियाँ बना लेनी चाहिए। मत्स्य० (९३।११-१२) ने व्यवस्था दी है कि आकृतियों के चित्रांकन में सूर्य मध्य में होना चाहिए, मंगल, बृहस्पति, बुध, शुक्र, चन्द्र, शनि, राहु एवं केतु की आकृतियाँ चावल-अन्नों से कम से दक्षिण, उत्तर, उत्तर-पूर्व, पूर्व, दक्षिण-पूर्व, पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम एवं उत्तर-पश्चिम में प्रतिष्ठापित (अंकित)होनी चाहिए। याज्ञ (१।२९८) में व्यवस्था है कि पुष्पों, सुगंघित पदार्थों के रंग ग्रहों के उपयुक्त वस्त्रों, होने चाहिए, हिव दी जानी चाहिए, सभी ग्रहों के लिए गुग्गुल की घूप देनी चाहिए तथा पके चावल की आहुतियाँ मन्त्रों के साथ क्रम से नव-ग्रहों को दी जानी चाहिए।

४. विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु। निविच्नार्थं मुनिश्रेष्ठ तथोद्वेगाद्भुतेषु च।। कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु ॥ मत्स्य० (९३।८४), भविष्य० (४।१४१।८६-८७) । टिप्पणियों से अभिव्यक्त है कि याज्ञ० एवं मत्स्य॰ में बहुत-से पद्य एक ही हैं और मत्स्य॰ में अयेक्षाकृत अधिक विस्तार है। यह सम्भव है कि तीनों में याज्ञ० सबसे प्राचीन है, वै० याज्ञ एवं वै० स्मा० सू० से स्मा० सू० उसके उपरान्त तथा मत्स्य० तीनों के उपरान्त लिखित हुमा है।

५. मत्स्य० (९३।११-१२) को मिताक्षरा ने याज्ञ० (१।२९७) एवं वं ० स्मा० सू० (४।१३) की टीका में उद्भृत किया है : 'मध्याग्नेयदक्षिणैशान्योत्तरपूर्वपिष्चमनैर्ऋतवायव्याश्रिताः।' जो क्रम से सूर्य (मध्य में), चन्द्र (आ नेय अर्थात् दक्षिण-पूर्व में), मंगल (दक्षिण में), बुध (ऐझान अर्थात् उत्तर-पूर्व में), बृहस्पति (उत्तर में), शुक्र (पूर्व में), ज्ञान (पिक्चम में), राहु (नैऋत अर्थात् विक्षण-पिक्चम में) एवं केतु (वायव्य अर्थात् उत्तर-पिक्चम में)

की दिशाओं का द्योतक है।

६. नवप्रहों एवं उनके देवों के अनुरूप रंगों का उल्लेख वै० स्मा० सु० में इस प्रकार है: रक्तिसतातिरक्त-वयामपीतसितासितकृष्णयुम्रवर्णाः। अनलाप्पतिगृहहरीन्द्रशचीप्रजापतिशेषयमाधिदेवत्याः॥ मत्स्य० में कुछ अन्तर है; वहाँ (९३।१६-१७) रंग इस प्रकार हैं : सूर्य एवं मंगल के लिए लाल, चन्द्र एवं शुक्र के लिए अवेत, बुध एवं बहुस्पति के लिए पीत, शनि एवं राहु के लिए काला तथा केत्र के लिए धूम वर्ण । मत्स्य० (९३।१३-१४) के अनुसार ग्रहों के अधिदेव हैं: शिव, उमा, स्कन्द, हरि, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल एवं चित्रगुप्त (क्रम से सूर्य, चन्द्र आर्दि के लिए)।

## नवग्रहों की मन्त्रतालिका

ग्रह सूर्य	मम्त्रु,याज्ञ० (१।२९९-३०१)में आ कृष्णेन, ऋ० (१।३५।२)	मन्त्र, शत्स्प० (९३।३३-३७)में वही	मन्त्र, वैलानस० सूत्र (४।१४)में आसत्येन, तै० (३।४।११।२)
चन्द्र	इमं देवा, वाज० सं० (९।४० एवं १०।१८)	आप्यायस्व, ऋ० (१।९१।१६ या ९।३१।४)	सोमो घेनुं, ऋ० (१।९१।२०), वाज० सं० (३४।२१)
मंगल	अग्निर्मूर्घा, ऋ० (८।४४।१६)	वही	वही
बुघ	उद्बुध्यस्व,वाज०सं∙(१५।५४) तै० सं० (४।७।१३।५)	अग्ने विवस्वदुषसः, ऋ० (१।४१।१)	वही जो याज्ञ० में है
बृहस्पति	बृहस्पते अति यदर्यः, ऋ० (२।२३।१५)	बृहस्पते परिदीया रथेन, ऋ० (१०।१०३।४)	वही जो याज्ञ० में है
शुक्रं	अन्नात् परि-श्रुतः, वाज० सं० (१९।७५), मैत्रा० (३।११६)	शुक्रं ते अन्यत्, ऋ० (६।५८।१)	वही जो मत्स्य० में है
शनि	शन्नो देवीर्, ऋ०(१०।९।४)	वही	वही
राहु	काण्डात्, वाज० (१३।२०) तै० सं० (४।२।९।२)	कया निश्चत्र, ऋ० (४।३।११)	वही जो मत्स्य० में है
केतु	केतुं कृण्वन्, ऋ० (१।६।३)	वही	वही

विष्णुधर्मोत्तर (१।१०२।७-१०) के मन्त्र याज्ञ० के समान हैं। और देखिए मविष्य० (४।१४१।३४-३६) एवं पद्म० (५।८२।३०-३२)। याज्ञ० ने प्रत्येक ग्रह के लिए होम की सिमधाओं की संख्या १०८या २८ बतायी है, जो मधु या घृत या दही या दूध से मिश्रित होनी चाहिए और सूर्य से लेकर केतु तक के लिए सिमधा क्रम से अके, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पिप्पल, उदुम्बर, शमी, दूर्वा एवं कुश की होनी चाहिए। तीन वर्णों के व्यक्ति को प्रतिपादित विधि (पाद-प्रक्षालन आदि) से ब्राह्मणों का सम्मान करना चाहिए और उन्हें क्रम से गुड़ के साथ पका चावल (बखीर), दूध एवं शक्कर में पका चावल (खीर), हविष्य, दूध में पका साठी (६० दिनों में होने वाले धान) का चावल, दही के साथ पका चावल, घृत के साथ पका चावल, तिलचूर्ण के साथ पका चावल, मांसयुक्त चावल, कई रंगों वाला चावल (सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों के क्रम से) खिलाना चाहिए या अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो उपलब्ध हो देना चाहिए। दक्षिणा क्रम से यों है—दुधारू गाय, शंख, गाड़ी का बैल, सोना, वसन, श्वेत घोड़ा, काली गाय, लौह-अस्त्र, मेमना। यही वात विष्णुधर्मोत्तर (१।१०३।१-६) में भी है। व्यक्ति को किसी निश्चित काल में अपने नक्षत्र में स्थित प्रतिकूल ग्रह की विशिष्ट पूजा करनी चाहिए। याज्ञ० ने निष्कर्ष निकाला है कि राजाओं का उत्कर्ष-अपकर्ष ग्रहों पर निर्भर है। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर (१।१०६-९-१०), कृत्यकल्पतरु (शाद्धिक), शान्ति-मयूख (पृ० २१)।

#### धर्मशास्त्र का इतिहास

३५६

वैसानस स्मा॰ सू॰ (४।१३) ने नव-ग्रहों के लिए कुछ विभिन्न नैवेद्य मोजन दी व्यवस्था दी है। मत्स्य॰ ने अयुतहोम के वर्णन के अन्त में कहा है—'जिस प्रकार वाणों से रक्षा के लिए कवच होता है उसी प्रकार शान्ति (ग्रह-यज्ञ) दैवोपघातों से रक्षा करती है।"

मत्स्य० (९३।९२) में ऐसी घोषणा है कि लक्षहोम की आहुतियों एवं दक्षिणाओं में अयुतहोम का दसगुना तथा कोटिहोम लक्षहोम का सौगुना है तथा यही प्रकार ग्रहों एवं उनके देवों के आवाहन एवं विसर्जन में होममंत्रों, स्नान एवं दान के विषय में भी है। मत्स्य० (९३।१११-११२) में एक विज्ञप्ति है कि अन्नहीन यज्ञ राष्ट्र को जला देता है (अर्थात् राष्ट्र पर विपत्ति आती है), मन्त्रहीन यज्ञ से ऋत्विज जल जाता है, दक्षिणाहीन यज्ञ यजमान को जला देता है; यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं है। अतः दिग्द व्यक्ति को लक्षहोम कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि यज्ञ में (भोजन एवं दक्षिणा-सम्बन्धी) विग्रह (यजमान पर) सदा विपत्ति ढाता है। देखिए वृहद्योगयात्रा (१८।१-२४), योगयात्रा (अध्याय ६)।

याज्ञ० में ग्रहयज्ञ सरल एवं संक्षेप में है, किन्तु पुराणों, निवन्धों एवं आधुनिक ग्रन्थों में यह बहुत वोझिल हो गया है। दो-एक बातें यहाँ दी जा रही हैं। प्रत्येक ग्रह को गोत्र दे दिया गया है और उसके जन्म के लिए देश निर्धारित कर दिया गया है। अतः प्रत्येक ग्रह के आवाहन में इन दो बातों को जोड़ दिया जाता है। सूर्य से केतु तक गोत्र कम से यों हैं—काश्यप, आत्रेय, भारद्वाज, आत्रेय, आंगिरस, भार्गव, काश्यप, पैठीनिस एवं जैमिनि। और देखिए रघुनन्दनकृत संस्कारतत्त्व (पृ० ९४६), जहाँ पर यह उल्लेख है कि यदि ग्रह-पूजा बिना गोत्रों एवं देशनामों के की जायगी तो वह ग्रहों के लिए अनादर की सूचक होगी।

शान्तिमयूख (पृ० १२) जैसे कुछ मध्यकालिक ग्रन्थों ने स्कन्दपुराण के पद्यों को उद्धृत करते हुए कहा है कि श्रानि की प्रतिकूल दृष्टि के कारण सौदास को मानुष मांस खाना पड़ा, राहु के कारण नल को पृथ्वी पर घूमना पड़ा, मंगल के कारण राम को वनगमन करना पड़ा, चन्द्र के कारण हिरण्यकिशपु की मृत्यु हुई, सूर्य के कारण रावण का पतन हुआ, वृहस्पित के कारण दुर्योघन की मृत्यु हुई, बुध के कारण पाण्डवों को उनके अयोग्य कर्म करना पड़ा तथा शुक्र के कारण हिरण्याक्ष को युद्ध में मरना पड़ा।

कुछ निबन्धों में अशुम ग्रहों के लिए विशिष्ट दानों की चर्चा हुई है। यहाँ हम धर्मसिन्धु (पृ० १३५) से कुछ उदाहरण दे रहे हैं। सूर्य के लिए: लाल मिण, गेहूँ, गाय, लाल वसन, गुड़, सोना, ताम्र, लाल चन्दन, कमल; चन्द्र के लिए: बाँस के बने पात्र में चावल, कपूर, मोती, श्वेत वसन, घृतपूर्ण घड़ा, बैल; मंगल के लिए: प्रवाल (मूँगा), गेड्रं, मसूर दाल, लाल बैल, गुड़, सोना, लाल वसन, ताम्र; युध के लिए: पीला वसन, सोना, पीतल का पात्र, मुद्ग (मूंग) दाल, मरकतमणि (पन्ना), दासी, हाथीदाँत, पुष्प; बृहस्पित के लिए: पुष्पराग (पोलराज), हल्दी, शक्कर,

७. यथा बाणप्रहाराणां कवचं भवित वारणम् । तद्वव् वैवोपघातानां शान्तिर्भविति वारणम् ।। मत्स्य० (९३।८१), विष्णुधर्मोत्तर (१।१०५।१४) । मत्स्य० (२२८।२९) में पुनः आया है : 'बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वत् राजश्रृणां संनहनैर्युतानाम् । वैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम् ॥'

८. अंगेषु सूर्यो यवनेषु चन्द्रो भौमो ह्यवन्त्यां मगघेषु सौम्यः। सिन्धौ गुरुभोंजकटेषु शुक्रः सौरः सुराष्ट्रे विषये बभूव।। म्लेच्छेषु केतुश्च तमः कॉलगे जातो यतोऽतः परिपीडितास्ते। स्वजन्मदेशान्परिपीडयन्ति ततोभियोज्याः कितियेन देशाः।। योगयात्रा (३।१९-२०)। मिलाइए सारावली (७।१४-१५) जहां शुक्र को समतट में तथा राहु एवं केतु दोनों को द्रविड में जनमे कहा गया है।

घोड़ा, पीत अन्न, पीत वसन, नमक, सोना; शुक्र के लिए: कितपय रंगों के वसन, श्वेत अश्व, गाय, हीरा, सोना, चाँदी, लेप, चावल; श्रानि के लिए: इन्द्रनील (नीलम), माष, तिल, तिल का तैल, कुलित्थ (कुल्थी) की दाल, मेंस, लोहा, काली गाय; राष्ट्र के लिए: गोमेद, घोड़ा, नीला वसन, कम्बल, तिल का तैल, लोहा; केतु के लिए: लहसुनिया रत्न, तिल एवं तिल का तेल, कम्बल, कस्तूरी, मेमना, वसन।

शान्तियों की संख्या-सूची बहुत लम्बी है। उनका सम्पादन प्राकृतिक घटनाओं, यथा ग्रहणों, भूचालों, असामान्य वर्षाओं, अन्धड़-तूफानों, उल्कापातों, घूमकेतुओं, मण्डलों के लिए होता है; ग्रहों की गतियों एवं स्थितियों के अशुभ प्रभावों से रक्षा करने के लिए होता है; मानवों एवं पशुओं के विचित्र जन्मों पर होता है; घोड़ों एवं हाथियों की अच्छाई के लिए होता है; कुछ प्रतिकृल घटनाओं, यथा मूर्तियों के हँसने, रोने, गाने, गिरने, पशु-पक्षियों की बोलियों, शरीर पर छिपकली, गिरगिट के गिरने तथा कुछ पवित्र अवसरों पर होता है।

शान्ति-कृत्य, पौष्टिक कृत्य एवं महादान आदि साघारण आग्न में ही किये जाते हैं। देखिए शान्तिमयूख (पृ०४)। मनु० (३।६७) एवं याज्ञ० (१।९७) ने गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित धार्मिक कृत्यों का ही उल्लेख किया है। मिताक्षरा (याज्ञ० १।२८५-८६) ने विनायकशान्ति में साधारण (गृह की) अग्नि की ही व्यवस्था दी है।

मनु (४।१५०) एवं विष्णुघर्मसूत्र (७१।८६) में प्रतिपादित है कि सूर्य के लिए होम एवं शान्तिहोम गृहस्य द्वारा पर्वों (अर्थात् पूर्णमासी एवं अमावस्या) पर होना चाहिए। ये शान्तियाँ निश्चित कालों में होती थीं। इसी प्रकार जब भी किसी जाति का, कोई स्त्री या पुरुष ६० वर्ष पूरा कर लेता था, तो यह सम्भव माना जाता था कि वह शीघ्र ही मर जायगा, या उसकी माता या पिता या पत्नी या पुत्र मर सकते हैं, या माँति-माँति के रोगों से वह ग्रसित हो सकता है; इस प्रकार के भय को दूर करने के लिए एक शान्ति व्यवस्थित थी (आज भी यह की जाती है) जिससे वह लम्बी आयुपा सके, सभी प्रकार की विपत्तियों से मुक्त रहे और उसे पूर्ण समृद्धि प्राप्त हो। इस शान्ति को षष्ट शब्द श्राद्ध या उग्र रथशान्ति कहा जाता है।

उप्रस्थशान्ति के विषय में प्राचीनतम उल्लेख बीधायनगृह्यसूत्र (५।८) में पाया जाता है। इसका सम्पादन जन्म के मास एवं उसके नक्षत्र में होता है। जन्म के दिन पर जब व्यक्ति ६० वर्ष का हो जाता है, वह शुम स्नान करता है, आह्निक कृत्य करता है, बाह्यणों को निमन्त्रित कर उनमें एक को, जो वेदज्ञ होता है, वेदांगों को जानता है और मुचिरत्रवान् होता है, चुनता है। सर्वप्रथम गणेश-पूजा की जाती है, उसके उपरान्त पुण्याहवाचन होता है, मानृ-पूजा की जाती है और तब नान्दीश्राद्ध किया जाता है। व्यक्ति को सर्वोपिधर्यां लानी होती हैं, पाँच वृक्षों की शाखाएँ एवं पत्तियाँ, पाँच रत्न, पंचगव्य एवं पंचामृत एकत्र करना होता है। इसके उपरान्त नवग्रहे-पूजा की जाती है। एक या १ या १ पल की मार्कण्डेय-प्रतिमा वनायी जाती है जिसे दो वसनों से आच्छादित जलपूर्ण पात्र में रखा जाता है, इसके उपरान्त १६ उपचार कर मार्कण्डेय को १००८ या १०८ या २८ या ८ इन्यनाहुतियाँ दी जाती हैं तथा पका हुआ चावल, घृत, दूर्वा एवं सुन्दर पात्र मन्त्रों के साथ दिये जाते हैं। इसके उपरान्त कृत्यकर्ता दूर्वा एवं १००० या ५००० या १००० तिलाहुतियों के साथ मृत्युंजय (शिव) के सम्मान में होम करता है; इसके उपरान्त वह पृथक रूप से चिरंजीवी रूपों की पूजा करता है, यथा अश्वत्थामा, बिल, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृप एवं परशुराम की पूजा। इसके उपरान्त वह अपनी समर्थता के अनुसार मुने चने का होम करता है और

९. सावित्राञ् शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वेसु नित्यशः। मनु (४।१५०); पर्वेसु शान्तिहोमं कुर्यात्। वि० घ० सू० (७१।८६)।

श्रीस्नत, रुद्ध, आयुष्यमन्त्रों, पुरुषस्कृत तथा विशेषतः पूर्व वेद का पाठ करता है। उसे होम समाप्त कर पूर्णाहुति देनी चाहिए। इसके उपरान्त यजमान (कृत्यकर्ता, जिसने ६० वर्ष पूरे कर लिये हों) पर पात्र से जल छिड़का जाता है, ऐसा ही उसकी पत्नी, सगे सम्बन्धियों के साथ भी किया जाता है। इसके उपरान्त शान्तिमन्त्र, पुरुष-स्वत, ऋ० (१०।१८।१) का मन्त्र, आयुष्य मन्त्र, पावमान मन्त्र, शिवसंकल्प के ६ मन्त्रों (वाज० सं० ३२।१-६) एवं महाशान्ति का जप किया जाता है। इसके उपरान्त ऋत्विक् को पात्र, अभिषेक से सिक्त वसन, बछड़े के साथ सजायी हुई गाम का दान किया जाता है। बाह्मणों को वस दान एवं एक सौ मानों का सोना दिया जाना चाहिए। यजमान को आज्यावेक्षण करना चाहिए और सभी जीवों (कौओं आदि) को बिल देनी चाहिए। इसके उपरान्त उसे बाह्मणों से आशीर्वाद ब्रहण करना चाहिए और नवीन वस्त्र घारण करना चाहिए। इसके उपरान्त उसे नीराजन करके देवों को नमस्कार करना चाहिए तथा एक सहस्र या सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और तब अपने सम्बन्धियों के साथ स्वयं भोजन करना चाहिए। जो कोई इस शान्ति को ग्रहशान्ति के लिए प्रतिपादित नियमों के अनुसार करता है वह निश्चित रूप से सौ वर्षों तक जीएगा, सभी अभाग्य दूर होंगे और सभी समृद्धि उसकी होगी।

इस शान्ति को 'उग्ररथ' क्यों कहा गया है, कहना कठिन है। एक अन्य शान्ति ७० वर्ष की पूर्णता या ७७ वें वर्ष के ७ वें मास की ७ वीं रात्रि को की जाती है, जिसे भैमरथी-शान्ति कहा जाता है (शब्दकल्पद्रुम)। वौ० गृ० शेषसूत्र (१।२४) में एक शान्ति का उल्लेख है जो सौ वर्षों या १००० अमावास्याओं की समाप्ति पर की जाती है।

शान्ति-सम्पादन के काल के विषय में सामान्य नियम यह है कि यह कभी भी अवसर पड़ने पर होता है, यथा स्वप्न में देखे गये शकुनों से निर्देशित दुष्ट फलों के निवारण, ग्रहीं के दुष्ट या बुरे फलों, उत्पातों आदि से सुरक्षा पाने आदि के लिए। इसके लिए सूर्य के उत्तरायण, शुक्ल पक्ष आदि के लिए बाट नहीं जोही जाती; शान्ति-सम्पादन दक्षिणायन एवं मलमास में भी हो सकता है (मलमासतत्त्व, पृ० ७९६; कृत्यकल्प०)। यदि शी घ्रता न हो तो यह सम्पादन किसी शुम दिन, शुम तिथि, नक्षत्र में हो सकता है, यथा तीन उत्तराओं, रोहिणी, श्रवण, घनिष्ठा, शततारका, पुनर्वसु, स्वाती, मधा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा एवं रेवती में (धर्मसिन्धु, पृ० १७६)। लक्षहोम का सम्पादन शुम-ग्रहों एवं नक्षत्रों में होना चाहिए (मत्स्य० ९३।८६)। कोटिहोम का सम्पादन चैत्र या कार्तिक में होना चाहिए (मत्स्य० २३९।२०-२१)।

अद्मुर्ता एवं उत्पातों के लिए महाज्ञान्ति की व्यवस्था है। इसके विस्तार के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में विभिन्न वातें हैं। देखिए अद्मुतसागर (पृ० ३४१), ज्ञान्तिमयूख (पृ० १०६-१०८) एवं कमलाकरकृत ज्ञान्ति-रत्न। इसका सम्पादन रजस्वला होने पर (निर्णयसिन्धु, पृ० २३३), राज्यामिषेक, रण-यात्रा, दुःस्वप्नों, अज्ञुम निमित्तों आदि में (मिविष्योत्तर,१४३।२-४६) होता है। जब अज्ञुम ग्रह हों; उल्कापात हो; केतु-दर्शन हो; अन्यड, मूकम्प हो; मूल या गण्डान्त में जन्म हो; जुड़वाँ उत्पन्न हों; जब छत्र या झण्डे-पृथिवी पर गिर जायँ; जब कौआ, उल्लू या कवूतर गृह में प्रवेश कर जायँ; जब पाप (दुष्ट) ग्रह वक्र (विशेष जन्म-राशि या नक्षत्र में) हों; जब बृहस्पति, शिन, मंगल एवं सूर्य कम से प्रथम, चौथे, आठवें या बारहवें घर में हों; जब ग्रहगुद्ध हो; जब वसन, हथियार, घोड़े, गायें, रत्न एवं केश लुप्त हो जायँ; जब रात्रि में सामने इन्द्रधनुष दीख पड़े; जब घर की थून्ही (स्तम्भ या स्थाणु) टूट जाय; जब खज्बरी को गर्म रह जाय; जब ग्रहण हो तो महाशान्ति की जानी चाहिए। स्थान-संकोच से इसकी विधि (प्रयोग) का वर्णन यहाँ नहीं किया जायगा। विशेष वर्णन के लिए देखिए मिवष्यो-त्तर० (१४३।२-४६)।

अद्भृतसागर नामक विशाल ग्रन्थ में मण्डलों, इन्द्रघनुषों, तूफानों (महावातों), दिग्दाहों, उल्कापातों, वूमकेतुओं, भूचालों, घनरिहत वर्षा, रक्तवर्षा, मत्स्य-वर्षा आदि विरल प्राकृतिक घटनाओं का उल्लेख है, जिनमें कुछ के विषय में संक्षेप में यह है—वृहत्संहिता (३२।१२) में भूचाल के विषय में पहले के चार आचार्यों के मत प्रकाशित हैं: यह समुद्र में रहने वाले जीवों से उत्पन्न होता है (काश्यपमत); पृथिवी के मार को ढोने से थिकत दिग्गजों की लम्बी श्वासों से इसकी उत्पत्ति होती है (गर्ग आदि का मत); आकाश में प्रचण्ड वायु के पारस्परिक घात-प्रतिघात एवं भूमि पर गिरने से भूचाल-स्वर होता है (विसष्ठ आदि); यह अदृष्ट (पृथिवी के लोगों के पापों) से उत्पन्न होता है (वृद्धगर्ग आदि आचार्य)। विद्याप वृ० सं० (३२।३-७,३२।८-२२), अद्भृतसागर (पृ० ३८३-४०९), द्रोणपर्व (७७।४) एवं शल्यपर्व (५६।१० एवं ५८।४९)।

यद्यपि वराहिमिहिर के पहले से ग्रहणों के वास्तिवक कारण ज्ञात थे, किन्तु सामान्य जन में शितयों तक (और आज भी) कुछ विचित्र विश्वास रहा है। वराह ने वृद्ध गर्ग एवं पराशर जैसे प्राचीन आचार्यों की आलोचना की है, क्योंकि उन्होंने ग्रहण का कारण बुध से युक्त पाँच ग्रहों का संयोग माना है और सूर्य के मण्डल एवं मन्द किरणों को निमित्त माना है। " हम ग्रहण की शान्ति के विषय में स्थानाभाव से यहाँ कुछ और नहीं लिखेंगे। देखिए नि० सि० (पृ० ६८)।

उल्कापातों में भी शान्ति की व्यवस्था थी। इनके विषय में कई प्रकार की घारणाएँ थीं। गर्ग के अनुसार उल्काएँ लोकपालों दें द्वारा फेंके गये क्षेपणास्त्र-शस्त्र हैं जो शुभ या अशुभ घटनाओं का निर्देश करते हैं। कुछ लोगों के मत से ये वास्तव में वे महात्मा हैं जो स्वर्ग में अपने अच्छे कर्मों को भोगकर पृथिवी पर पुनः जन्म लेने को आते हैं। ये भयंकर अवसरों पर भी गिरती हैं, यथा शल्यपर्व (५८।५०-५१) में व्यक्त है कि भीम से गदायुद्ध करते समय जब दुर्योघन गिरा तो जलती हुई उल्का भयंकर स्वर एवं प्रचण्ड वात के साथ पृथिवी पर गिरी। और देखिए द्रोणपर्व (७।३८-३९), मत्स्य० (१६३।४३) एवं अद्भुतसागर (पृ० ३४२)। उल्कापातों में अमृता महाशान्ति करने की व्यवस्था है।

कुछ प्राकृतिक रूप, जो कुछ कालों में उत्पात कहे जाते हैं, अन्य अवसरों पर वैसे नहीं समझे जाते। वृ० सं० (४५।८२) में आया है: मधु एवं माधव (चैत्र एवं वैशाख) में निम्नोक्त शुभ हैं—विद्युत्, उल्कापात, भूचाल,

- १०. ब्रह्मपुराण (२१।२३-२४) में अूनाल का एक भिन्न कारण बताया गया है: 'यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदार्घूणितलोचनः। तदा चलित भूरेषा साद्रितोयाधिकानना।।'
- ११. न कथंजिदिप निमित्तैर्गृहणं विज्ञायते निमित्तानि । अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ॥ पंचग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति । तैलं च जलेष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ॥ बृ० सं० (५। १६-१७) ।
- १२. लोकपाल चार दिशाओं एवं चार मध्य दिशाओं के स्वामी या रक्षक हैं जो पूर्व से आरम्भित हो कम से यों हैं: इन्द्र, अग्नि, यम (दक्षिण के), सूर्य, वरुण (पश्चिम के), वायु, कुबेर (उत्तर) एवं सोम। कुछ यन्य सूर्य के स्थान पर निर्ऋति को रखते हैं। मनु (५।९६)।
- १३. उल्कास्वरूपमाह गर्गः। अस्त्राणि विसृजन्त्येते शुभाशुभिनवेदकाः। लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्यलितानि तु ।। उत्पल (बृ० सं० ३३।१) एवं अ० सा० (पृ० ३२१) : दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः। बृ० सं० (३३।१)।

दीप्तिमान् सन्ध्या, महाध्विन वाला तूफान (महावात), सूर्य एवं चन्द्र के मण्डल, आकाश में धूलि, वन में धूम, रिक्तम सूर्योदय एवं सूर्यास्त, वृक्षों से मोजन एवं रसों की प्राप्ति की सम्मावना, तैलयुक्त पदार्थ, कितपय पुष्प एवं फल, गायों एवं पक्षियों में काम-सम्बन्धी कियाएँ। निम्नोक्त ग्रीष्म (ज्येष्ठ एवं आषाढ़) में शुभ हैं : नक्षत्रों एवं उल्काओं के पात से गगन का घूमिल हो जाना, या जिसमें सूर्य एवं चन्द्र तिमिराच्छन्न हो जायँ, जो बिना अग्नि के मयंकर अग्निज्वाला से परिपूर्ण लगे, महास्वन, घूम, घूलि एवं प्रचण्ड वात, जिसमें सन्ध्या लाल कमल-सी दीख पड़े और जो अन्य इयुक्त समुद्र-सा प्रतीत हो और जब निदयाँ शुष्क हो जायँ। वर्षा (श्रावण एवं माद्रपद) में निम्नोनित भयंकर नहीं हैं : इन्द्रधनुष, मण्डल, विजली, शुष्क वृक्षों से अंकुर निकलना, पृथिवी का हिलना, चक्कर लगाना या असाघारण रूप घारण करना, पृथिवी में स्वन होना या उसमें महाछिद्र बन जाना या झीलों एवं निदयों में बहुत पानी हो जाना, अर्थात् बाढ़ का दृश्य उपस्थित हो जाना, कूपों का लबालव भर जाना, पर्वतों पर से घरों का लुढ़कना । शरद् (आश्विन एवं कार्तिक) में निम्न बुरे नहीं हैं : दिव्य नारियों (अप्सराओं), प्रेतों, गन्धर्वों, विमानों एवं अन्य अद्भुतों के दर्शन, गगन में दिन में भी ग्रहों, नक्षत्रों एवं अन्य तारों का दिखाई पड़ जाना, वनों, पर्वतों पर संगीत एवं गान का सुनाई पड़ जाना, अनाज के पौघों की अधिकता एवं जलामाव। हेमन्त (मार्गशीर्ष एवं पौष) में निम्न शुभ हैं : ठण्डी वायु एवं तुषारपात, पशु-पक्षियों की ऊँची बोलियाँ, राक्षसों, यक्षों तथा अन्य अदृश्य जीवों का प्रकट हो जाना; अमानुषी स्वर, आकाश एवं दिशाओं का तिमिराच्छन्न हो जाना, वनों एवं पर्वतों का घूमिल हो जाना, सूर्योदय एवं सूर्यास्त का ऊँचाई पर हो जाना। शिशिर (माघ एवं फाल्गुन) में निम्न दर्शन शुभ हैं : वर्फ गिरना, तीखी हवाएँ, भयंकर जीवों एवं अद्भुतों का प्रकटीकरण, नक्षत्रों एवं उल्काओं के पात से गगन का अंजन-सदृश एवं लोहित-पीत हो जाना, नारियों, गायों, भेड़ों, खच्चरों, पशु-पक्षियों में असामान्य शिशु-उत्पत्तियाँ, पत्तियों, अंकुरों एवं लताओं का विचित्र रूप घारण कर लेना। उपर्युक्त वातें जब अपनी ऋतुओं में घटती हैं तो शुभ होती हैं, किन्तु अन्य कालों में घटने पर वे भयंकर उत्पात एवं अद्भुत की द्योतक होती हैं।

महाभारत, कौशिकसूत्र (कण्डिका १०५), मत्स्य० (२४३), विष्णुधर्मोत्तर, वृहत्संहिता, अद्भुतसागर (पृ० ४२५-४३६), हेमाद्रि (व्रत, खण्ड २, पृ० १०७८-१०७९) एवं मदनरत्न (शान्ति) में एक विचित्र घटना का उल्लेख है और वह है देवों की प्रतिमाओं का कम्पन, नृत्य, हास, रुदन। भीष्मपर्व (१।२।११) में कौरवों के मन्दिरों की मूर्तियों के सम्बन्ध में ऐसा उल्लेख है। अरेर देखिए मत्स्य० (१६३।४५-४६, पद्म० ५।४२।१३७-१३८) जहाँ हिरण्यकशिपु-नृसिंह युद्ध के समय की देव-प्रतिभाओं की अस्तव्यस्तता का वर्णन है। अथर्वण-परिशिष्ट (५२) में यह वर्णन गद्ध में हुआ है। इन विचित्र लीलाओं से अनावृष्टि, अस्त्र-भय, दुभिक्षा महामारी, राजा एवं मन्त्रियों के नाश की सम्भावनाएँ होती हैं। इसके लिए शान्ति की व्यवस्था है, जिसकी चर्चा यहाँ नहीं होगी।

मानव-जन्म से सम्बन्धित शन्तियाँ कई हैं जो विभिन्न प्रकारों, रूपों एवं दशाओं में हुए जन्मों पर आधारित हैं, यथा मूल, आक्लेपा, ज्येष्ठा नक्षत्र, गण्डान्त आदि में हुए जन्मों, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी था अमावस्या, व्यतीपात

१४. अथ यत्रैतद्दैवतानि नृत्यन्ति च्योतन्ति हसन्ति गायन्ति वान्यानि वा रूपाणि कुर्वन्ति य आसुरा सनुष्या मा नो विदन्नमो देववर्थम्य इत्यभयेर्जुहुयात् । सा तत्र प्रायश्चित्तिः । कौशिकसूत्र (१०५) ।

१५. देवायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः। कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च। भीष्मपर्व (११२।११)। उन्मीलन्ति निशीलन्ति हसन्ति च रुदित्व च। विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च। प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद्भयम्।। मत्त्य० (१६३।४५-४६, पद्म० ५।४२।१३७-१३८)।

योग या वैधृति या ग्रहण पर, या जुड़वाँ जन्मों, या तीन पुत्रों के उपरान्त कन्या के जन्म या तीन कन्याओं के उप-रान्त पुत्र के जन्म पर की जाने वाली शान्तियाँ। इनमें कुछ आज भी सम्पादित होती हैं। मूल नक्षत्र का जन्म वहीं फल देता है जो ज्येष्ठा एवं आक्लेपा वाला देता है। स्थानाभाव से हम इन शान्तियों का उल्लेख नहीं कर सकेंगे।

कौशिकसूत्र (किण्डका ११० एवं १११), बृ० सं० (४५।५१-५४) एवं अद्भुतसागर (पृ० ५५९-५६९) में स्त्रियों, गौओं, घोड़ियों, गवहियों आदि के प्रसंव के विषय में प्रभूत वर्णन मिलता है। कुछ बातें यहाँ दी जा रहीं हैं। वराह का कथन है: 'जब स्त्री एक ही समय में दो या तीन या चार या अधिक बच्चे जनती है या अद्भुत रूप वाला बच्चा (राक्षस या राकस) उत्पन्न करती है, या जब समय से बहुत पहले ही बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं तब देश या कुछ का नाश हो जाता है' (४५।५२)। और देखिए मत्स्य० (२३५।१-३) एवं विष्णुधर्मोत्तर (२।१४०।१-३)। इसी प्रकार सर्वप्रथम अद्भुत रूप वाले बच्चों के जन्म, वेदन्नों की पित्नयों द्वारा मोर, गृद्ध आदि के जन्म, घोड़ियों द्वारा वछड़े एवं श्रुगालिन द्वारा कुत्ते के जन्म, चार या पाँच कन्याओं के जन्म के विषय में भीष्म० (३।२-७) में उल्लेख है। वृ० सं० (४५।५३-५४) में आया है: यदि वडवा (घोड़ी), ऊँटिन, मैंस, गोहस्ती को जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं तो वे मर जाते हैं। ऐसे जन्मों का प्रभाव ६ मासों तक रहता है। गर्ग ने इसके लिए दो क्लोकों की शान्ति की व्यवस्था दी है। जो व्यक्ति अपना मला चाहता है उसे जुड़वाँ या राक्षस उत्पन्न करने वाली स्त्रियों को दूसरे देश में भेज देना चाहिए, उसे ब्राह्मणों को उनकी इच्छा के अनुकूल दान देना चाहिए और शान्ति-सम्पादन करना चाहिए। विचित्र जन्म देने वाले पशुओं को उनके झुण्डों से पृथक् कर अन्य देशों में त्याग देना चाहिए, नहीं तो नगर, स्वामी एवं यूथ (पशु-समूह) का नाश हो जायगा।

भविष्य को जानने के कई ढंग होते हैं, यथा (१) ग्रहों एवं नक्षत्रों की स्थिति, (२) व्यक्तियों की जन्म-पत्रिकाएँ, (३) खंजन एवं कौओं आदि की उड़ान एवं बोलियाँ, (४) प्राकृतिक घटनाएँ (ग्रहण, उल्काएँ आदि), (५) स्वप्न, (६) अचानक सुने गये स्वन, (७) मनुष्यों, पशुओं आदि की दैहिक एवं मानसिक दशाएँ। प्रथम चार के वर्णन हो चुके हैं। अब हम स्वप्नों का विवरण उपस्थित करेंगे।

यह हमने बहुत पहले ही देख लिया है कि वैदिक साहित्य में स्वप्नों का सम्बन्य भाग्य या अभाग्य से लगाया गया है। रामायण-महाभारत, आथर्वण-परिशिष्ट (स्वप्नाध्याय, ६८, पृ० ४३८-४४९), बृहद्योगयात्रा (१६११-३१), पुराणों (वायु १९।१३-१८; मत्स्य २४२; विष्णुधर्मोत्तर २।१७६; भविष्य १।१९४; ब्रह्मवैवर्त, गृणेश-खण्ड ३४। १०-४० आदि) में अच्छे-बुरे स्वप्नों का उल्लेख है। अग्निपुराण (२२९, जिसके बहुत से क्लोक मत्स्य० २४२; भोजकृत मुजवल०, पृ० २९८-३०४ में पाये जाते हैं) एवं अद्भुतसागर (पृ० ४९३-५१५) में विस्तार के साथ स्वप्नों एवं उनकी शान्तियों का उल्लेख है। शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्र (३।२।४) की टीका में कहा है कि स्वप्नाध्याय के पाठक यह घोषित करते हैं कि हाथी आदि पर चढ़े हुए अपने को देखना शुभ है तथा गदहों से खींचे जाते हुए वाहन पर अपने को बैठा देखना अशुभ है। ऐसा प्रकट होता है कि अंगिरा जैसे प्राचीन लेखकों में विरले लोग ही ऐसा कहते हैं—'ग्रहों की गतियाँ, स्वप्न, निमित्त (आँख फड़कना आदि), उत्पात संयोग से ही कुछ फल उत्पन्न करते हैं; समझदार लोग उनसे भीत नहीं होते।'' बहुत-से अवसरों पर रामायण में कितपय स्वप्नों का उल्लेख हुआ

१६. गीतश्चायमथोंऽङ्गिरसा। ग्रहाणां चरितं स्वप्ननिमित्तौत्पातिकं सथा। फलन्ति काकतुालीयं तेम्यः प्राज्ञा न विभ्यति ॥ वेणीसंहार (२।१५)।

है। कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। त्रिजटा राक्षसी ने अपने बहुत-से स्वप्नों का वर्णन किया है जिनसे राक्षसों के नाश एवं राम के लिए शुभ का संकेत मिलता है (सुन्दरकांड, २७।२३)। दुःस्वप्न ऐसे थे: रावण का सिर घुटा हुआ है; उसने उस तेल को पी लिया, जिससे वह नहाया हुआ था; वह लाल वसन पहने था; मदोन्मत्त था; करवीर पुष्पों की माला पहने था; पुष्पक विमान से पृथिवी पर गिर पड़ा; वह गदहों द्वारा खींचे जाते हुए रथ में बैठा था आदि-आदि (१९-२७)। और देखिए वन० (२८०।६४-६६), अयोध्या० (६९।८), मौसलपर्व (३।१-४)।

पुराणों, पराशर, वराह के ग्रन्थों आदि के आधार पर अद्मृतसागर के शुभ एवं अशुभ स्वप्नों का उल्लेख इतना विशाल है कि उन सबका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है। देखिए मत्स्य० (२४२।२-१४), वृहद्योगयात्रा (अ० सागर, पृ०४९४)। मत्स्य० (२४२।२१-३५) में शुभ स्वप्नों का उल्लेख है। भद्रवाहु के जैन कल्पसूत्र में १४ अति शुभ स्वप्नों की चर्चा है, यथा हाथी, बैल, सिंह, श्री देवी का लेप, माला, चन्द्र, सूर्य, झण्डा, पात्र, कमल की वावली, समुद्र, दैवी स्थान (निवास), रत्नों की राशि, ज्वाला। और देखिए मत्स्य० (३४३।२-१२), योगयात्रा (१३।४), ज्योतिस्तत्त्व (पृ०७२९-७३०), वसन्तराजशाकुन (५।२-६)।

भारत में अपेक्षाकृत उच्च विचार यह था कि स्वप्न भविष्य की शुभाशुभ घटनाओं के संकेत मात्र हैं (वेदान्तसूत्र ३।२।४, शंकराचार्य की उस पर टीका)। किन्तु कुछ लोगों ने बुरे स्वप्नों से उत्पन्न फलों को दूर

करने की व्यवस्था भी दी है (मुजबल०, पृ० ३०४)।

आथर्वण-परिशिष्ट (६८, पृ० ४३८-४४९) ने कहा है कि विभिन्न व्यक्ति अपनी प्रकृतियों के आधार पर स्वप्न देखते हैं, यथा पित्त, वात एवं कफ की प्रकृति के अनुसार स्वप्न उटते हैं। उसमें वराह के समान ही शान्ति की व्यवस्था है।

्वर्मिसिन्धु (पृ० ३५९-३६०) में शुभाशुभ स्वप्नों का उल्लेख है और अशुभ स्वप्नों के प्रतिफलों के निवारण के उपाय भी बताये गये हैं, यथा ऋ० (२।२८।१०) एवं तैं० सं० (४।१४-१२३) के मन्त्रों के साथ सूर्य की पूजा, या अमावास्या को श्राद्ध करना, या चण्डी के सम्मान में सप्तशतीया विष्णु-सहस्रनाम आदि का पाठ।

सभी प्राचीन देशों एवं लोगों में स्वप्नों के विषय में विश्वास रहा है और उनके विश्लेषण के विषय में उत्सुकता पायी गयी है। बेबिलोन एवं असीरिया के दरवारों में चाल्डिया के ज्योतिषियों एवं स्वप्न-विश्लेषकों को बड़े आदर के साथ रखा जाता था। डैनिएल (अध्याय २) में उल्लिखित है कि वेबिलोन का राजा नेवुचद्नन्देज्जार चाल्डियावासियों को न केवल स्वप्न-विश्लेषण के लिए कहता था, प्रत्युत इस बात के लिए उन्हें उद्देलित करता था कि वे उन स्वप्नों को मी बतायें एवं उनका विश्लेषण करें जिन्हें वह मूल गया है, नहीं तो उन्हें मृत्युदण्ड दिया जायगा। यूनान के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक प्लेटो ने स्वप्नों को महत्त्वपूर्ण दैहिक एवं मानसिक लक्षण माना है, उसने कुछ स्वप्नों को अलौकिक आधार भी दिया है और अपनी पुस्तक टाइमियस (अध्याय ४६ एवं ४७) में व्याख्या की है कि स्वप्न ऐसे मावी दृश्य हैं जिन्हें निम्न श्रेणी की आत्माएँ ग्रहण करती हैं। जे० आर० ए० एस० (जिल्द १६,पृ० ११८-१७१) में एन० ब्लैण्ड ने मुसलमानों के ताबिर-विज्ञान या स्वप्न-विश्लेषण के विषय में एक लम्बा लेख लिखा है। नौशेरवाँ (५३१-५७९ ई०) के एक स्वप्न का मनोरम वर्णन मिलता है। नौशेरवाँ ने स्वप्न में देखा कि वह स्वर्णपात्र से शराब पी रहा है, और उसी पात्र में एक काले कुत्ते ने मुंह डालकर शराब पी ली। उसने अपने मन्त्री बुजुरमिहर से इसका अर्थ जानना चाहा। मन्त्री ने बताया कि इससे प्रकट होता है कि उसकी प्रिय रानी के शास कोई काला दास है जो उसका प्रेमी है। मन्त्री ने कहा कि राजा के समक्ष अन्तःपुर की नारियों को नग्न होकर नाचना चाहिए। उन नारियों में एक ने आनाकानी की और पता चला कि वह एक काली दासी थी। इस प्रकार वजीर (मन्त्री) की व्याख्या सच निकली। वजीर के नाम में 'वराहमिहिर' नाम की ध्विन निकलती है और ऐसा सोचना

विचित्र-सा नहीं लगेगा कि सम्भवतः प्राचीन काल का प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर नौशेरवाँ के दरबार में उच्च पद पर आसीन था, क्योंकि उसी काल में वह हुआ था।

आधुनिक काल में बहुत-से पढ़े-लिखे लोग स्वप्नों में कोई विश्वास नहीं रखते; कुछ लोग उनको आगामी घटनाओं का अमोघ लक्षण मानते हैं, किन्तु तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो स्वप्न-विश्लेषकों के तकों को सुन लेने को तो तैयार हैं, किन्तु स्वप्न के महत्त्व को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। देखिए कैथरिन टेलर कैंग की पुस्तक 'फैंक्रिक आव ड्रीम्स', फायड कृत 'इण्टरप्रीटेशंस आव ड्रीम्स' एवं उब्लू० एच० उब्लू० सैवाइन कृत 'सेकण्ड साइट इन डेली लाइफ।' इन ग्रन्थों के विवेचन की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

अव हम कुछ अन्य मनोरंजक शान्तियों का उल्लेख करेंगे। जब कोई प्रपात्र (पुत्र के पुत्र का पुत्र) जन्म लेता है तो प्रिप्तामह को उसका मुख देखने के लिए शान्ति करनी होती है। "इसमें संकल्प होता है। यिन्ति को गणेश पूजन से आरम्म कर मातृ-पूजन के कृत्यों को करके जलपूर्ण पात्र की प्रतिष्ठा करनी होती है, फिर उसमें वरुण की जाती है और ढोलक की ध्वनि के साथ नीराजन" कृत्य करना होता है; तदुपरान्त कम्बल से युक्त उदुम्बर के पीढ़े पर बैठकर ब्राह्मणों से प्रार्थना की जाती है कि वे उसके शरीर पर जल छिड़कें। ब्राह्मण वैसा करते हैं और वरुण का मन्त्र एवं गंगा का मन्त्र कहते हैं। अभिषेक के उपरान्त कृत्यकर्ता नवीन वस्त्र धारण कर गंगापूजन करता है। पीतल के पात्र में तरल धी रखा जाता है, कृत्यकर्ता उसमें सबंप्रथम अपनी परिछाई देखता है और फिर सोने के पात्र में रखे दीपक के प्रकाश में वह अपने प्रपौत्र का मुख देखता है। इसके उपरान्त वह सोने के एक सौ फूलों के साथ प्रपौत्र पर जल-बिन्दु छिड़कता है। फिर अभिषेक वाले पात्र से जल लेकर वह प्रपौत्र पर जल छिड़कता है। इसके उपरान्त वह समाप्ति पर एक गाय दान करता है और यथाशक्ति ब्रह्मभोज करता है। तब वह विष्णु-प्रतिमा का पूजन करता है और उसे पायस देता है और प्रार्थना मुख देखा है, ब्राह्मणों को दे देता है।

उद्कशान्ति एक अन्य शान्ति है जो आज मी बहुघा की जाती है। इसका सम्पादन बहुत-सी घटनाओं के प्रभाव के निवारण, स्वास्थ्य-लाभ, पित्त, वात एवं कफ से उत्पन्न रोगों को दूर करने आदि के लिए होता है। आजकल इस शान्ति का बहुत विस्तार किया जाता है। इसके विषय में देखिए बौघायनगृह्यशेषसूत्र (१।१४)। इसके विषय में हम स्थान-संकोच से यहाँ नहीं लिख रहे हैं।

धर्मसिन्धु ने एक शान्ति का उल्लेख किया है जो किसी के पुनर्जीवित हो जाने पर की जाती है। यदि किसी को मृत समझ कर लोग श्मशान ले जाते हैं और वह जीवित हो जाता है तो इस शान्ति की व्यवस्था होती

१७. प्रपौत्र की महत्ता के लिए देखिए इलोक 'पुत्रेण लोकान् जयित पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण कर्ष्नस्याप्नोति विष्टपम्।। मनु (९।१३७), विसिष्ट (१७।५), विष्णुधर्मसूत्र (१५।४६)।

१८. मम ब्रह्मलोकावाप्ति-सर्वतीर्थयात्रा-सकलवानजन्यपुण्यजातावाप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रपौत्रमुख-दर्शनं करिष्ये । तदंगं गणेशपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये इति संकल्प्य ।

१९. 'नीराजन' में मनुष्यों एवं अक्ष्वों के समक्ष दीयों का घुमाना या आरती करना होता है। वृ० सं० (४३।२) में नीराजन एक शान्ति भी है: 'द्वादक्यामध्यम्यां कार्तिकशुक्लस्य पंचदक्यां वा। आक्ष्वयुक्ते वा कुर्याश्री-राजनसंक्षितां शान्तिम्।।'

है। जिस व्यक्ति के घर में ऐसा व्यक्ति प्रवेश करता है वह मर जाता है, ऐसा विश्वास है। अतः एक होम किया जाता है, जिसमें १००८ उदुम्बर-सिमधाओं को दूध एवं घी में मिला कर अग्नि में डाला जाता है और गायत्री मन्त्र (ऋ० ३।६२।१०) का पाठ किया जाता है। होम के अन्त में किसी ब्राह्मण को एक किएला गाय और तिलपूर्ण पीतल का पात्र दिया जाता है। पात्र यथाशक्ति ८१ पलों या ४०३ या २०३ या ९ या ६ या कम-से-कम ३ पलों के वजन का होना चाहिए।

कुछ ग्रन्थों में भाद्रपद मास में गाय, माघ में मैंस या दिन में घोड़ी के बच्चा देने पर शान्ति की व्यवस्था दी हुई है। घी एवं तिल की १०८ आहुतियाँ दी जाती हैं तथा अस्यवामीय (ऋ० १।१६४) एवं 'तद्विष्णोः' (ऋ० १।२२४) के मन्त्रों का पाठ होता है। ऐसा विश्वास रहा है कि यदि मैंस माघ मास में बुधवार को या घोड़ी श्रावण मास में दिन में या गाय जब सूर्य सिंह राशि में हो, बियाए (बच्चा जने) तो स्वामी की मृत्यु ६ महीनों में

कमी हो जाती है। देखिए शान्तिकमलाकर, अद्भुतसागर (पृ० ५६८)।

आधुनिक काल में किसी नये गृह में प्रवेश के एक दिन पूर्व या उसी दिन वास्तुश।न्ति या वास्तु-शमन (मत्स्य॰ २६८।३) नामक शान्ति की जाती है। इस विषय में हमने इस महाग्रन्थ के खण्ड २ में पढ़ लिया है। पश्चात्कालीन निवन्धों में इसका विशद वर्णन है।

गृह में रहने वाली छिपकली (पल्ली, पिल्लका, कुड्यमत्स्य या गृहगोधिका) की ध्विनयों, गितयों (चालों) या शरीर के विभिन्न भागों पर इसके गिरने से सम्बन्धित अग्न सूचनाओं के विषय में शान्ति-व्यवस्था है। देखिए वसन्तराज-शाकुनं (अध्याय २७), अद्भुतसागर (पृ० ६६६-६६८), ज्योतिस्तत्त्व (पृ० ७०६-७०७), शान्तिरत्न या शान्ति-कमलाकर, धर्मसिन्धु (पृ० ३४७-३४८)। अन्तिम दो ग्रन्थों से कुछ वातें यहाँ दी जा रही हैं। यदि छिपकली पुरुष के दाहिने अंग में, सिर पर (ठुड्डी को छोड़कर), छाती, नाभि या पेट पर गिरे तो शुभ होता है, किन्तु ऐसा ही स्त्रियों के वाम अंग पर गिरने से शुभ माना जाता है। यही वात गिरगिट के चढ़ने पर भी होती है। यदि छिपकली और गिरगिट अंग पर गिरे तथा अंग पर दौड़ जाय तो व्यक्ति को बस्त्रसिहत स्नान कर लेना चाहिए और अशुभ को दूर करने तथा शुभ की वृद्धि के लिए शान्ति करनी चाहिए। यदि घर वाली छिपकली या गिरगिट से स्पर्श हो जाय तो स्नान कर लेना चाहिए, पंचगध्य पीना चाहिए, घृत में मुख देखना चाहिए, छिपकली या गिरगिट की स्वर्ण-प्रतिमा को लाल वस्त्र में लपेट कर उसको सम्मान गन्ध, पृष्प से देना चाहिए, जलपूर्ण पात्र में छद्र की पूजा करनी चाहिए, अग्न में मृत्युंजय मन्त्र के साथ १०८ खिर-समिधाएँ डालनी चाहिए, व्याहृतियों के साथ अग्न में तिल की १००८ या १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए और स्विष्टकृत् से लेकर अभिषेक तक का कृत्य करके सोना, वसन एवं तिल का दान करना चाहिए।

योगयात्रा (७।१-१२) एवं हेमाद्रि (व्रत, २, पृ० ८९४-८९७) ने अध्विनी से रेवती तक के नक्षत्रों एवं उनके देवताओं की पूजा एवं धार्मिक स्नानों का तथा तज्जिनित कितपय लामों का उल्लेख किया है। आथर्वण-परिशिष्ट (१, नक्षत्रकल्प, माग ३७-५०) में कृत्तिका से मरणी तक के नक्षत्रों में स्नान का विधान पाया जाता है। किन्तु बृहत्संहिता (४७।१-८७), आथर्वण-परिशिष्ट (५, पृ० ६६-६८), विष्णुधर्मोत्तर (२।१०३), योगयात्रा (७।१३-२१), कालिकापुराण (अध्याय ८९) एवं हेमाद्रि (व्रत, माग २, पृ० ६००-६२८) में पृष्य-स्नान या पृष्यामिषक नामक शान्ति का वर्णन है। ऐसा कहा गया है कि बृहस्पित ने इन्द्र के लिए यह शान्ति की, तब वृद्ध गर्ग ने इसे प्राप्त किया और उन्होंने इसका ज्ञान मागुरि को दिया। अधिकांश ग्रन्थों ने इसे राजा तक ही सीमित रखा है, क्योंकि राजा मूल होता है और प्रजा वृक्ष, मूल के आवात से वृक्ष प्रमावित होता है। अतः

राजा के कल्याण की चिन्ता की जाती है (जिससे प्रजा स्वतः सुखी हो जाय)। स्थानाभाव से इसका उल्लेख नहीं किया जायगा।

वृहद्योगयात्रा (१३।१-१०), मत्स्य० (२४१।१-१४), वसन्तराज (६।४।१-१४, पृ० ८७-९२) में स्पन्दन या स्फुरण से ,सम्बन्धित अग्रसूचकों के विषय में विशद उल्लेख है। तीनों ग्रन्थों में समान बातें पायी जाती हैं। वसन्तराज अन्य दोनों ग्रन्थों पर आधारित है, इसमें सन्देह नहीं है। वराहमिहिर मत्स्य० पर आधारित है कि मत्स्य० वराहमिहिर पर, कहना कठिन है; यह मी सम्भव है कि दोनों किसी अन्य ग्रन्थ पर आधारित हैं। हो सकता है कि वराहमिहिर ने मत्स्य० से उधार लिया हो। पुष्क के दाहिने अंगों का स्फुरण (स्पन्दन) शुभ एवं वायें का अशुभ होता है। यही बात न रियों में उलटी है। सिर से लेकर पाँव तक के अंगों के स्पन्दनों के फलों का वर्णन बहुत स्थान ग्रहण कर लेगा। केवल दो-एक उदाहरण यहाँ पर्याप्त होंगे। ललाट के स्फुरण से पृथिवी लाभ होता है; मस्तक से प्राप्त धन की वृद्धि होती है; मूनस (मौंह और नाक के मध्य स्थल) से प्रियसंगम होता है; आँख-स्थल से मृत्यु होती है; आँख के पास से धनागम होता है; बाहुओं से मित्र-स्नेह मिलता है; हाथ से धनागम होता है; पीठ से पराजय मिलती है; छाती से सफलता प्राप्त होती है और पैर के अपरी माग से उत्तम स्थान की प्राप्त होती है; पादतल से धन लाभ के साथ यात्रा होती है। मत्स्य० (२४१।१४) में आया है कि अशुम लक्षणयुक्त स्पन्दनों में बाह्मणों को सुवर्ण दान से प्रसन्न करना चाहिए।

अति प्राचीन काल से अंगों का प्रस्फुरण (विशेषतः हाथ एवं आँख का) मावी शुम एवं अशुम घटनाओं का सूचक माना जाता रहा है। मनु ने उत्पातों या निमित्तों, नक्षत्रों या अंगविद्या से अग्रसूचनाओं की घोषणा करके मिक्षा माँगना संन्यासियों (परिवाजकों) के लिए वर्जित ठहराया है (मनुस्मृति ६।५०)। कालिदास ने नायक के वाहु के फड़कने एवं शकुन्तला की दाहिनी आँख के फड़कने से उत्तम माग्य की घोषणा की है। के शेक्सपियर ने अपने नाटक 'ओथेलों में डेसडेमोना से कहलवाया है कि उसकी आँखों की खुजली से अशुम लक्षण प्रतीत होता है। वृहद्योगयात्रा (१३।१०), वृ० सं० (५१।१०) एवं वसन्तराज ने घोषित किया है कि तिलों, घावों, चिह्नों एवं मस्सों (शरीर के) के स्फुरणों से वैसे ही फल प्राप्त होते हैं जो उनके स्थान वाले शरीरांगों से उत्पन्न माने जाते हैं।

वृहत्संहिता (९३।१-१४), बृहद्योगयात्रा (२१।१-२१) एवं योगयात्रा (१०।१-७५) में रणयात्रा के अवसर पर हाथियों के दाँतों की व्यवस्था, दाँतों के कट जाने पर उनके चिह्नों, हाथियों के थक जाने के स्वरूप एवं उनकी गितयों के आधार पर अग्र सूचनाओं के विषय में सिवस्तार उल्लेख मिलता है। किन्तु इस विषय में किसी शान्ति की चर्चा नहीं है, अतः हम यहाँ कुछ विशेष नहीं लिखेंगे। अग्निपुराण (२९१।१-२४), विष्णुधर्मोत्तर

२०. देखिए मनु (६।५०): न चोत्पातिनिमत्ताभ्यां न नक्षत्रांगिवद्यया। नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत काहिचित्।। टीकाकारों ने अंगविद्या के कई अर्थ किये हैं। सम्भवतः यह सामुद्रिक है। मुनि पुण्यविजय ने अंगविज्जा नामक एक प्राकृत ग्रन्थ का प्रकाशन किया है, जिसमें निमित्तों के आठ प्रकार कहे गये हैं: अंग, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, स्वप्न, चिह्न, भौम एवं आन्तरिक्ष। और देखिए शाकुन्तल, अंक ५, श्लोक ११ एवं अंक ७, श्लोक १३।

२१. इति पिटकविभागः प्रोक्त आ मूर्धतोयं व्रणतिलकविभागोप्येवमेव प्रकल्प्यः । भवति मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्विभावितफलकारि प्राणिनां देहसंस्थम् ।। बृहत्संहिता (५१।१०); मशकं तिलकं पिटकं वापि व्रणमण चिह्नं किमपि कदापि । स्फुरति पदान्यधितिष्ठति यावत्स्यात् पूर्वोक्तं फलमिप तावत् ।। वसन्तराज० (६।४।११, पृ० ९१)।

(२।५०।१-९३), बौघा० गृ० सू० (१।२०) एवं हेमाद्रि (व्रत, जिल्द २, पृ० १०३६-१०५१) ने हाथियों के रोगों के निवारण के लिए शान्तियों की व्यवस्था दी है, अतः बौघा० गृ० सू० से गजशान्ति का वर्णन उपस्थित किया जा रहा है जो सम्भवतः सबसे प्राचीन और सरल है—

"किसी मास के शुक्ल पक्ष की अब्द्रमी या चतुर्दशी तिथि को या श्रवण नक्षत्र में स्वामी को चाहिए कि वह बाह्मणों को मोजन दे और उनसे घोषित कराये 'यह शुम दिन है, कल्याण हो, समृद्धि हो।' वह सर्वप्रथम तिल एवं चावल की हिंव तैयार करे, गायत्री मन्त्र (ऋ० ३१६२।१०) का पाठ करके जल लाये, दो घड़ों का मुख पुंच चावल की हिंव तैयार करे, गायत्री मन्त्र के साथ ढँक दे और उनके ऊपर नारियल या कोई फल रख दे तथा पका चावल पश्चिम दिशा में रखे और दोनों घड़ों को पाँच दूर्वा-दलों पर रख दे। इसके उपरान्त हस्तिशाला को दर्म की मालाओं से सिज्जत करके अग्नि में मोजन छोड़े, जिसकी गंघ हाथी को मिले। तब स्वामी अश्वत्थ का चम्मच (चमश्), ईंघन एवं दर्म घास तैयार रखता है। इसके उपरान्त वह साधारण होम की किया करता है और घृतसूक्त (ऋ० ८।८१।१-९) का पाठ करता है। तब पुरोहित घृत एवं पाँच मन्त्रों (तै० सं० ४।५।१-५) के साथ १००८ अतिरिक्त आहुतियाँ देता है। इसके उपरान्त स्विष्टकृत् आहुति से लेकर गोदान की किया-विधि अपनायी जाती है। तब पवित्र अग्नि के समक्ष 'भूतों को स्वाहा' के साथ शेष मोजन को दूर्वा पर रखा जाता है। इसके उपरान्त वह (पुरोहित) थाली में रखे मोजन को हाथी को खिलाता है और आयुष्यसूक्त के पाठ के साथ घड़ों के नोचे की पाँच दूबों को खिलाता है। इसके उपरान्त वह (पुरोहित) प्रणीता का जल छिड़कता है और 'आपो हि ब्हा' (ऋ० १०।९।१-३) आदि के साथ हाथी को पवित्र करता है। उत्तर तब हाथी हिस्तशाला में लाया जाता है। वह लम्बी आयु वाला हो जाता है।"

अग्निपुराण (अध्याय २९१) में विणत गजशान्ति पूर्णतया भिन्न है। विष्णुधर्मसूत्र (२।५०।१-९३) में इसका अति विस्तार है। हेमाद्रि (त्रत, माग २, पृ० १०३६-१०५१) में भी इसका विशद वर्णन है जो 'पालकाप्य' द्वारा उद्घोषित है। अमरकोश में हाथियों के आठ प्रकार हैं, जिनमें प्रत्येक एक दिशा से सम्बन्धित है, यथा—ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम एवं सुप्रतीक। और देखिए उद्योगपर्व (१०३। ९-१६), द्रोणपर्व (१२१।२५-२६), जहाँ दिग्गजों का उल्लेख है। विष्णुधर्मोत्तर (२।५०।१०-११) में आठ नाम हैं, किन्तु वहाँ सार्वभौम के स्थान पर नील नाम आया है। हेमाद्रि के कितपय क्लोक हस्त्यायुर्वेद (आनन्दाश्रम

संस्करण, अघ्यायृ ३५ एवं ३६) से उद्धृत हैं । किन्तु हम यहाँ अधिक वर्णन नहीं उपस्थित कर सकेंगे ।

वृहत्संहिता (९२।१-१४), वृहद्योगयात्रा (२२।१-२१) एवं योगयात्रा (११।१-१४) में घोड़ों की चालों, हिनहिनाने, कूद-फाँद, टाप से पृथिवी कुरेदने तथा उनके आसनों आदि के शुभाशुभ प्रतिफलों का उल्लेख पाया जाता है, किन्तु वहाँ किसी प्रकार की शान्ति का वर्णन नहीं है, अतः हम अन्य बातें यहाँ नहीं देंगे। अग्निपुराण (२९०।१-८), विष्णुधर्मोत्तर (२।४७।१-४२), बौ० गृ० सू० (१।१९) एवं हेमादि में एक शान्ति का उल्लेख है जिसके द्वारा घोड़ों के रोगों का निवारण होता है। स्थानाभाव से इस शान्ति का उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा है।

शान्तियों का सम्बन्ध शकुनों से भी है। ऋग्वेदसंहिता (४।२६।६, ९।८६।१३, ९।९६।१९ एवं २३, ९।१०७।२०, ९।११२।२, १०।६८।७ आदि) में 'शकुन' का अर्थ है 'पक्षी' और वह 'शकुनि' (ऋ० २।४२।१,

<sup>ें</sup> २२. प्रणीता जल वह है जो अग्नि के उत्तर एक पात्र में मन्त्र-पाठ के साथ रख दिया जाता है।

२।४३।२ एवं ३) एवं 'शकुन्ति' (ऋ० २।४२।३, २।४३।१) का पर्यायवाची है। ऋ० (१०।१६।६) 'यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद) में कौआ को काला पक्षी कहा गया है। हमने वहुत पहले देख लिया है कि कपोत जैसे पक्षियों को ऋग्वेद में अभाग्य एवं भय का सूचक माना गया है। इसी से 'शकुन' शब्द कालान्तर में पक्षियों की बोली, गति आदि से सम्नित हो भय एवं विपत्तियों का सूचक वन गया। शकुनों पर विशद साहित्य मिलता है। कुछ ग्रन्थ ये हैं—

मत्स्यपुराण (अध्याय २३७, २४१, २४३), अग्नि० (अध्याय २३०-२३२), विष्णुवर्मोत्तर० (२।१६३-१६४), पद्म० (४।१००।६५-१२६), वृ० सं० (अ० ८५-९५), वृ० यो० (अ० २३-२७), यो० या० (अ० १४), भद्रवाहु का 'निमित्त', वसन्तराजशाकुन, सोमेश्वर चालुक्य (११२६-११३६ ई० सन्) का मानसोल्लास (२।१३), अद्भुतसागर, राजनीतिप्रकाश (पृ० ३४५-३४७)। इनमें वसन्तराज-शाकुन अत्यन्त विशद है और इसका उद्धरण अद्भुतसागर आदि ग्रन्थों ने लिया है। इस ग्रन्थ का परिचय देना आवश्यक है। यह बीस वर्गों में विमाजित है और इसमें विभिन्न छन्दों में १५२५ क्लोक हैं। रे इसमें आया है - मैं उन शक्नों को उद्घाटित करूँगा, जो इस विश्व में जीवों के वर्गों द्वारा अभिव्यक्त हैं, यथा—दो पदों वाले (मनुष्य एवं पक्षी), चार पद वाले (हाथी, अरव आदि), पट् पदों वाले (मयुमिक्खयाँ), अष्ट पदों वाले (अनुश्रुतियों अर्थात् किल्पत कथाओं वाले पश्, यथा शरम), ऐसे जीव जिनके बहुत-से पद हों (यथा—विच्छू), विना पद वाले (यथा—सर्प आदि) जीवों द्वारा। वह शक्न हैं, जिसके द्वारा शुभाशभ फलों का निश्चित ज्ञान प्राप्त किया जाता है, यथा--गित (बायीं या दायीं) ओर आदि), (पक्षियों एवं पशुओं के) स्वर, उनके आलोकन एवं भाव-चेष्टा। जो व्यक्ति शकुनशास्त्र में पारंगत होता है वह यह जान कर कि उसका किसी पदार्थ से कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी या ऐसा नहीं होगा, उसे त्याग देता है या उसे कार्यान्वित करता है। इसके केवल अध्ययन मात्र से ही पाठक को आनन्दमय ज्ञान प्राप्त हो जाता है और फल मिल जाते हैं। इस ग्रन्थ ने वराहिमिहिर (वृ० सं० ८५।५) का मत घोषित किया है कि शकुन यात्रा करते समय या घर में रहने पर, किसी भी अवस्था में, पूर्वजन्म के कर्मों के फल घोषित करते हैं। यह ग्रन्थ इस विरोध का उत्तर देता है कि यदि कोई व्यक्ति पूर्वजन्म के कर्मों के फलों से छुटकारा नहीं पा सकता तो इस शास्त्र का महत्त्व ही क्या है। इसका कथन है कि पूर्वजन्मों के कर्म किन्हीं कालों एवं स्थानों में फल देते हैं और मनुष्य पूर्वजन्मों के कर्मों के फलों से छुटकारा उसी प्रकार पा सकता है जिस प्रकार वह सर्पों, अग्नि, काँटों आदि भयावह पदार्थों से पाता है। यदि भाग्य (नियति) ही निश्च<mark>यात्मक</mark>

२३. प्रकीतिता विश्वतिरेव यस्मिन्वर्गा महाज्ञाकुनसारभूताः। सहस्रमेकं त्विह वृत्तसंख्या तथा सपादानि शतानि पञ्च।। वसन्तराज (११।१२)।

तत्त्व हैतो राजनीति-शास्त्र एवं शासन-शास्त्र से क्या लाभ, जिनके ज्ञान से राजा उद्योगपूर्वक इस संसार की रक्षा करते हैं? विद्वानों ने घोषित किया है कि दैव (भाग्य) केवल वह कर्म है जो पूर्वजन्मों में संगृहीत होता है, पूर्वजन्म के कर्म मनुष्य के उद्योग से ही प्राप्त होते हैं, तब कोई कैसे कह सकता है कि दैव मनुष्य के उद्योग पर निर्मर नहीं रहता?

वसन्तराज के विषय २० वर्गों एवं १५२५ श्लोकों में विभाजित हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यों है—(१) शास्त्रप्रतिष्ठा (३१ श्लोक); (२) शास्त्रसंग्रह (१३ श्लोक); (३) अभ्यर्चन (३१ श्लोक); (४) मिश्रक (७२ श्लोक); (५) शुभाशुभ (१६ श्लोक); (६) नरेंगित (५० श्लोक); (७) श्यामास्त (४०० श्लोक); (८) पिक्षिविचार (५७ श्लोक); (९) चाश (५ श्लोक); (१०) खंजन (२७ श्लोक); (११) करापिका (११ श्लोक); (१२) काकस्त (१८१ श्लोक); (१३) पिंगलिकास्त (२०० श्लोक); (१४) चतुष्पद (५० श्लोक); (१५) पट्पद, बहुपद एवं सर्प (१३ श्लोक); (१६) पिपीलिका (१५ श्लोक); (१७) पल्ली-विचार (३२ श्लोक); (१८) श्व-चेष्टित (२२२ श्लोक); (१९) शिवास्त (९० श्लोक); (२०) शास्त्रप्रभाव (२४ श्लोक)।

वसन्तरांज के प्रन्थ की एक विशेषता यह है कि इसका आधे से अधिक माग (७८१ क्लोक) तीन पक्षियों के स्वरों से सम्बन्धित है, यथा क्यामा पर ४०० क्लोक, कौआ पर १८७ क्लोक एवं पिंगलिका (उल्लू के समान पक्षी) पर २०० क्लोक। ३१२ क्लोक कुत्तों के मूंकने एवं गति पर तथा उनके शोरगुल पर २२२ क्लोक हैं और इसी प्रकार शृगालिनी की बोली पर ९० क्लोक हैं। यह द्रष्टव्य है कि शाक्त लोगों का ऐसा विश्वास है कि शृगालिनी काली की दूती है और शुभ है; इसके स्वर को प्रातःकाल सुनने पर व्यक्ति को नमस्कार करना चाहिए और ऐसा करने पर सफलता मिलती है। उपर्युक्त बातें यह स्पष्ट करती हैं कि वसन्तरांज ने शकुन के अर्थ का विस्तार कर डाला है और उसके अन्तर्गत सनुष्यों एवं पशुओं के कर्मों पर आधारित निमित्तों को सम्मिलित कर लिया है।

वसन्तराज ने अन्त में स्वयं कहा है कि वह शकुन है, जो इस लोक में स्मिरत होता है, सुना जाता है, जिसका स्पर्श किया जाता है, जिसे देखा जाता है या जो स्वप्नों में उद्घोषित होता है, वयोंकि इन सभी से फल प्राप्त होते हैं। उसका कथन है कि शकुन उतना ही प्रामाणिक है जितने कि वेद, स्मृतियाँ एवं पुराण हैं, क्योंकि यह सत्य ज्ञान देने में कभी असफल नहीं होता है। उसके कुछ मनोहारी वक्तव्य संक्षेप में यहाँ कहे जा सकते हैं—यदि उल्लू रात्रि में घर के ऊपरी भाग पर बैठ कर बोलता है तो दुःख का संकेत मिलता है और गृह-स्वामी के पुत्र की मृत्यु हो जाती है (८।४०)। ऐसा आज भी विश्वास किया जाता है। निमित्तसूचक स्वरों में कौए की बोली प्रधान है। कुत्तों का भूकना सभी शकुनों का सार है। बृहद्योगयात्रा में ऐसा आया है कि कुछ पशु एवं पक्षी कुछ ऋतुओं में अग्रसूचना के लिए व्यर्थ हैं, यथा—रोहित (लाल) हिरन, अश्व, बकरी, गदहा, ऊँट, खरगोश शिशिर ऋतु में निष्फल होते हैं। कौआ एवं कोकिल वसन्त ऋतु में निष्फल होते हैं; सूअर, कुत्ता, मेडिया आदि पर भाद्रपद में विश्वास नहीं करना चाहिए; शरद् में कमल (या शंख), साँड एवं कौंच जैसे पक्षी निष्फल सिद्ध होते हैं; श्रावण में हाथी एवं चातक निष्फल होते हैं; हेमन्त में व्याघ्र, मालू, बन्दर, चीता, मैंस तथा वे जीव जो विलों में रहते हैं (यथा सर्प) तथा मानवीय बच्चों के अतिरिक्त सभी शिशु निष्फल होते हैं। यही बात वसन्तराज ने भी ज्यों-की-त्यों कही है (४।४७-४८)। वसन्तराज ने वराहिमिहिर से बहुत उधार लिया है।

वसन्तराज (२।२-४) का कथन है कि शकुनों के विषय में पाँच सर्वोत्तम हैं, यथा—पोदकी पक्षी, कुत्ता, कौआ, पिंगला पक्षी एवं श्रृगालिनी। सरस्वती, यक्ष (कुबेर), चण्डी एवं पार्वती की सखी कम से पोदकी, कुत्ते (तथा चील), पिंगला एवं श्रृंगालिन के देवता एवं देवी हैं। उसने आगे कहा है कि सभी पशुओं एवं पक्षिओं के देवता होते हैं, अतः शकुन-वक्ता को चाहिए कि वह उन्हें न मारे, क्योंकि उन्हें मारने पर उनके देवता रुष्ट हो जाते

हैं। उपश्रुति के विषय में वसन्तराज का कथन अवलोकनीय है। 'प्रदोष या प्रातःकाल जब कि लोग बहुघा मौन रहते हैं, उस समय यदि कोई व्यक्ति कोई कार्य करने को सन्नद्ध रहता है तो उसे उपश्रुतियों (दिव्य वाणी या आकाशवाणी) के सभी स्थानों पर विचार करना चाहिए। बिना किसी संकेत पर एक बच्चा जो कुछ कह उठता है वह युगान्त, तक मृषा नहीं हो सकता। उपश्रुति के अतिरिक्त मनुष्यों के लिए कोई अन्य ऐसा सुबोध एवं सत्य शकुन नहीं हो सकता। मानसोल्लास (२।१३, श्लोक ९२०-९२६,पृ० ११०-११३) एवं वसन्तराज (६,पृ० ७८-८०, श्लोक ५-१२) ने 'उपश्रुति' नामक मविष्यवाणी की जानकारी के एक विचित्र ढंग का उल्लेख किया है— 'जब सभी लोग सोये रहते हैं और जनमार्ग पर कोई व्यक्ति नहीं रहता, तीन विवाहित नारियों को किसी कुमारी कन्या के साथ गणेश की पूजा (गन्ध, पुष्प आदि से) करनी चाहिए; इसके उपरान्त चण्डिका का अभिवादन कर कुडव-पात्र में अन्न को अक्षत के साथ मरना चाहिए और उस पर सात बार मन्त्र-पाठ करना चाहिए; तब उस अन्नराशि पर झाडू के घास वाले भाग को रखकर उस पर गणेश-प्रतिमा रखनी चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे उस कुडव को गणेश-प्रतिमा के साथ किसी रजक (घोबी) के घर ले जायें। घर के सम्मुख अपने मन की बात (संकल्प) को मौन रूप से ही कह कर श्वेत अक्षतों को फेंक देना चाहिए। इसके उपरान्त उन्हें घ्यानपूर्वक सुनना चाहिए। जब वे घर के मीतर से किसी पुरुष, स्त्री या बच्चे या किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वैरसंलाप (अपने मन से कहा गया कुछ भी) सुनें, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, तो उन्हें सुने गये वचन के अर्थ पर विचार करना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त निष्कर्ष भविष्य के संकल्प के विषय में असत्य नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार की विधि चाण्डाल के घर जाकर भी अपनायी जा सकती है।'र५

२५. प्रदोषकाले यदि वा प्रभाते लोके क्वचित् किञ्चन भाषमाणे। उपश्रुतिः कार्यसमुद्यतेन सार्वित्रकी वा परिभावनीया।। यद्वालकेनोक्तमनोदितेन तत्स्यादसत्यं न युगान्तरेपि। उपश्रुतेर्नान्यदिहास्ति किञ्चित्सत्यं सुबोधं शकुनं जनानाम् ।। यसन्तराज (६, पृ० ८०-८१) 'उपश्रृति' ऋ० (१।१०।३) में भी आया है और उसका अर्थ केवल यह है 'सुनने के लिए पास में आना।' और देखिए ऋ० (८।८।५ एवं ८।३४।११)। अर्चियत्वा गणाघीशं ।। कुमार्याः सहिता नार्यतिस्त्रः सुप्ते जनेऽखिले। अक्षतैः पूरयेयुस्ता यत्किञ्चित् कुडवादिकम्। चण्डिकाये नमः कृत्वा सप्तकुत्त्रोऽभियन्त्रितम् ॥ संमार्जनीकृतावेष्टे स्थापयेयुर्गणाषिपम् । व्रजेयुस्तं समादाय स्जकस्य निकेतनम् ॥ तद्गेहस्य पुरोभागे निक्षिपेयुः सिताक्षतान् । मनोगतं समुद्दिश्य शृणुयुः सुसमाहिताः ।। श्रूयते वचनं किञ्चिद् रजकालयम ध्यगम् । नार्या नरेण बालेन प्रोक्तमन्येन केनचित् ।। स्वैरसंलापनोद्भूतं शुभं वा यदि वाशुभम् । शृण्वन्तीभिः फलंजेयं तहाक्यार्थविच।रतः।। चण्डालिनलपेऽप्येवं श्रवणे बोघने क्रमः। यद् ब्रूयुर्वचनं तत्र तत्तथा न तदन्यथा।। मानसोल्लास (२।१३, क्लोक ९२०-९२६) । वसन्तराज ने अधिकांश में ये ही शब्द कहे हैं । किसने किससे उघार लिया है, कहना किन है। सम्भवतः दोनों ने किसी अन्य से उद्धरण लिया है, अर्थात् सम्भवतः दोनों का मूल एक ही है। 'कुडव' अञ्च की एक तौल है और वह 'प्रस्य' की चौयाई होती है। हेमाद्रि (व्रत, भाग १, पृ० ५७) एवं पराशरमाधवीय (२।१, पू० १४१) द्वारा उद्धृत भविष्यपुराण के अनुसार २ पल प्रसृति, २ प्रसृति कुडव ४ कुडव प्रस्थ, ४ प्रस्थ आहक, ४ आहक द्रोण, १६ द्रोण खारी। शवर (जैमिनि १०।३।४५) ने कुडव, आहक, द्रोण एवं खारी का उल्लेख किया है। पाणिनि ने आढक एवं खारी का उल्लेख किया है (५।१।५३ एवं ५।४।१०१)। प्राचीन स्मृतियों के अनुसार रजक (धोबी) सात अन्त्यजों में परिगणित है--रजकश्चर्मकारश्च नटके बुख्ड एव च। कैवर्तमेदभिल्लाइच सप्तेते चान्त्यजाः स्मृताः।। अत्रि १९९, अंगिरा, यम (३३)। अभी कुछ वर्ध पूर्व

## वर्मशास्त्र का इतिहास

उपश्रुति के समान ही एक विचित्र ढंग पद्म० (पातालखण्ड, १००।६५-१६६) में भी वर्णित है। ऐसा उल्लिखित है कि विभीषण को, जब उसने रामेश्वर नामक स्थापित शिव-लिंग का दर्शन कर लिया था, तब द्रविड़ों ने सिकड़ियों से बाँच लिया और जब किसी को इसका पता न चल सका तो राम ने स्वयं शम्मु से पूछा और शम्भू ने बताया कि पुराणों (श्लोक ५१-५३ में वर्णित) का निमित्तात्मक शब्दों के रूप में उपयोग हो सकता है। विधि यों है--पाँच वर्ष से अधिक किन्तु दस वर्ष से कम अवस्था अविवाहित कन्या अथवा युवा होने के पूर्व किसी कन्या का गन्ध, पुष्प, धूप एवं अन्य उपचारों से सम्मान करना चाहिए और उससे निम्नोक्त शब्द कहने चाहिए, 'सत्य बोलो, प्रिय सत्य बोलो; हे कल्याणकारिणी सरस्वती, आपको प्रणाम है, आपको प्रणाम है।' उसे दूर्वा के तीन जोड़े देने चाहिए जिन्हें वह किसी ग्रन्थ के दो पृष्ठों के बीच में डालेगी। इन्हीं पृष्ठों के बीच का क्लोक संकल्प की सफलता को बतायेगा। श्लोक का अर्थ भली भाँति बैठाया जायगा और संकल्पित बात से उसका मेल बैठाया जायगा। यदि पृष्ठ स्पष्ट न हों अथवा आधे जल गये हों, तो ऐसा कहा गया है कि उस श्लोक को भाग्य द्वारा भेजा गया माना जाना चाहिए, जैसा कि उपश्रुति विधि से जाना जाता है। ऐसा उल्लिखित है कि इस विधि का प्रयोग प्रति दिन नहीं करना चाहिए। विधि-प्रयोग के पूर्व पुराण की पूजा की जानी चाहिए और प्रातःकाल शकुन के लिए उसका उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार के शकुन के लिए स्कन्दपुराण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कुछ लोगों के मत से विष्णु एवं रामायण से भी सहायता ली जा सकती है। किन्तु पद्म ० के मत से विष्णुपुराण का उपयोग शकुन के लिए नहीं करना चाहिए, क्योंकि यदि कोई सदाचरणहीन व्यक्ति उसका उपयोग करेगा तो उससे अशुम संकेत प्राप्त होंगे। स्वयं शम्मु ने स्कन्दपुराण की पूजा की और पूछा कि शिवमक्त विभीषण को सिकड़ियों से क्यों बाँघा गया। इस प्रकार तीन क्लोक प्रकट हुए जिनमें दो इस प्रकार हैं—

बद्घ्वा समुद्रं स तु राघवेन्द्रो रुरोध गुप्तान् क्षणदाचरेन्द्रान्।
योद्धं समागत्य समाययुस्ते लंकापुरस्थास्त्वितकायमुख्याः।।
अट्टशूला जनपदा शिवशूला द्विजास्तथा।
प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे।। (पद्म०, पा० १००।१३३-१३४)

यहाँ पर दूसरा क्लोक पहेली-रूप है और कल्यिंग के स्वरूपवर्णन में भी आया है। और देखिए वनपर्व (१८८) ४२)। अन्त में पुराण का कथन है कि महामारत का आदिपर्व या इसके सभी पर्व शकुन के लिए प्रयोजित हो सकते हैं।

उपर्युक्त विधि के समान ही निमित्तों एवं शकुनों का पता चलाने के लिए हिन्दी के महाकवि तुलसीदास (संवत् १५८९ या सन् १५३२ ई० में जन्म) की दो कृतियाँ—रामाज्ञा (या रामशकुनावली, जिसमें ३४३ दोहे हैं)

लेखक को एक नवीन प्रकाशित एवं ए० लियो ओपेनहाइम द्वारा लिखित 'वि इंटरिप्रटेशन आफ ड्रीम्स इन दि ऐंश्येंट नियर 'ईस्ट' ग्रन्थ पढ़ने को मिला, जिसके साथ लेखक द्वारा अनूदित 'असीरियन ड्रीम बुक' भी थी (जिल्द ४६, भाग ३, १९५६, अमेरिकन फिलासाफिकल सोसाइटी, न्यू सीरीज)। लेखक ने स्वप्न-विषयक मनोरंजक बातों के समानान्तर स्वरूपों की ओर संकेत नहीं किया है; किन्तु पू० २११ पर लेखक ने संयोग से घटने वाली वाणियों (असम्बन्धित लोगों द्वारा उच्चरित) की ओर संकेत अवश्य किया है जो प्राचीन काल में न-केवल फिलस्तीन में, प्रत्युत मेसोपोटामिया में भी विख्यात थीं।

300

एवं रामशलाका प्रसिद्ध हैं। देखिए इस विषय में श्री जी० ए० ग्रियसेंन (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द २२, पृ० २०४) एवं एच० जैकोबी (फेस्टगेव, पृ० ४४९-४५५)।

यह द्रष्टव्य है कि चरकसंहिता जैसे वैज्ञानिक ग्रन्थ भी वैद्य को निर्देश देते हैं कि वह रोगी की एवं समाचार देने वाले की दशा पर घ्यान दे, अन्य कियाओं का अवलोकन करे और अशुम शकुनों पर घ्यान दे। यह सब इन्द्रिय-स्थान (अध्याय १२) में वर्णित है। दो-एक बातें यहाँ दी जा रही हैं—'वह रोगी केवल एक मास तक जीवित रहेगा, जिसके सिर पर गोवर के सूखे चूणं के समान चूणं या मूसी उमरती है; वह रोगी एक पक्ष से अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकता जिसकी छाती स्नान करते या चन्दन लगाते समय सूख जाय जब कि अन्य शरीरांग अभी गीले ही रहें। वे दूत (समाचारवाहक), जो रोगी के यहाँ से वैद्य के पास उस समय पहुँचते हैं जब कि वह अग्न में आहुतियाँ डालता रहेता है या पितरों को पिण्डदान करता रहता है, रोगी को मार डालेंगे (अर्थात् इससे रोगी की आसन्न मृत्यु प्रकट होती है)। दयनीय दशा वाली, डरी हुई, आतुरता से चलती हुई, दुःखी, गन्दी एवं व्यक्ति चारिणी नारी; तीन व्यक्ति (साथ आने वाले), टेढ़े अंग वाले (विकलांग), नमुंसक—ऐसे व्यक्ति उन लोगों के समाचारवाहक होते हैं जो मरणासन्न होते हैं। समाचारवाहक द्वारा बुलाये जाने पर जब वैद्य उसके द्वारा रोगी की दशा का वर्णन सुनता हुआ कोई अशुम लक्षण देखता है, या किसी दुखी व्यक्ति, शव या मृत व्यक्ति के लिए किये जाने वाले अलंकरण को देखता है तो उसे रोगी के पास नहीं जाना चाहिए। दही, पूर्ण अनाज, बाह्मण, बैल, राजा, रत्न, जलपूर्ण पात्र, श्वेत अश्व आदि शुम लक्षण कहे गये हैं। किन्तु वैद्य को चाहिए कि वह अपने द्वारा देखे गये अशुम शकुनों की घोषणा न करे, क्योंकि ऐसा करने से रोगी को धक्का लग सकता है और उन लोगों को मी कष्ट मिल सकता है जो उस घोषणा को सुनते हैं।'

शान्ति-सम्बन्धी पूठेनीय मन्त्रों तथा विषयों की जानकारी के लिए ऋग्वेद के शान्ति-सूक्त एक स्थान पर निम्न प्रकार से रखे जा सकते हैं—

- (१) आ नो मद्राः (ऋ० १।८९।१-१०)।
- (२) स्वस्ति न इन्द्रो (ऋ० १।८९।६-१०)।
- (३) शंन इन्द्राग्नी (ऋ० ७।३५।१-११)।
- (४) यत इन्द्र मयामहे (ऋ० ८।६१।१३-१८)।
- (५) मद्रं नो अपि वातय मनः (ऋ० १०।२०।१)।
- (६) आशु: शिशानी (ऋ० १०।१०३।१-१३)।
- (७) मुञ्चामि त्वा (ऋ० १०।१६१।१-५)।
- (८) त्यम् शु (ऋ० १०।१८५।१-३)।
- (९) महि त्रीणाम् (ऋ० १०।१८५।१-३)।
- (१०) रात्री व्यस्यत् (ऋ० १०।१२७।१-८)।

उपर्युक्त सूक्तों में अधिकांश पूर्ण रूप से या खण्डांश में अथवंवेद, तैत्तिरीय सं० एवं अन्य वैदिक संहिताओं में पाये जाते हैं।

कुछ ऐसे मन्त्र मी हैं जिन्हें 'रक्षोघन' (समी दुष्ट आत्माओं का हनन करने वाले) कहा जाता है, यथा— कृणुश्व पाजः (ऋ० ४।४।१-१५), 'रक्षोहणम्' (ऋ० १०।८७।१-२५), इन्द्रासोमा तपतम्' (ऋ० ७।१०४।१-२५), 'अग्ने हंसि न्यत्रिणम्' (ऋ० १०।११८।१-९), 'ब्रह्मणाग्निः' (ऋ० १०।१६२।१-६)। इनमें मी कुछ पूर्णं रूप से या खंड अंश में तै० सं०, अथवंतेद एवं अन्य वैदिक ग्रन्थों में पाये जाते हैं।

३७२

तैत्तिरीय संहिता (४।५) के ग्यारह अनुवाक, जिनका आरम्भ 'नमस्ते रुद्र मन्यव' से होता है, रुद्राध्याय या केवल रुद्र कहे जाते हैं। उनका एक वाचन 'आवर्तन' कहा जाता है, किन्तु इनका ग्यारह बार का वाचन 'एकादिशनी' कहा जाता है। 'एकादिशनी' के ग्यारह बार के वाचन का नाम 'लघुरुद्र' है, लघुरुद्र के ग्यारह वार के वाचन को 'महारुद्र' एवं ग्यारह महारुद्र 'अतिरुद्र' कहे जाते हैं। रुद्र के तीन स्वरूप हो सकते हैं—जप, होम (अग्नि में मन्त्रों के साथ आहुतियाँ डालना), अभिषेक (मन्त्र पाठ के साथ पवित्र जल को देवता पर निरन्तर चढ़ाना)। रुद्राध्याय के पाठ के लिए यजमान (यदि वह स्वयं ऐसा न कर सके तो) किसी ब्राह्मण को नियुक्त कर सकता है। ऐसा एकादिशनी के लिए भी हो सकता है। किन्तु लघुरुद्र एवं महारुद्र के लिए सामान्यतः ग्यारह एवं अतिरुद्ध के लिए २१ ब्राह्मण नियुक्त होते हैं। रुद्राभिषेक का उल्लेख बौधायनगृश्वशेषसूत्र (२।१८।११-१६) में हुआ है।

'श्यम्बकं यजामहें' (ऋ० ७।५९।१२; तै० सं० १।८।६।२; वाज० सं० ३।६०) मन्त्र को 'मृत्युंजय' कहा जाता है। इसका जप अल्पाविध में होने वाली मृत्यु से बचने के लिए किया जाता है। बौधायनगृह्यशेषसूत्र (३।११) ने अपेक्षाकृत अधिक विस्तार के साथ इस कृत्य की व्यवस्था दी है और इसके अनुसार जप के मन्त्र हैं 'अपैतु मृत्युः' (तै० सं० ३।७।१४।४), 'परं मृत्यो' (तै० बा० ३।७।१४।५), 'मा नो महान्तम्' (ऋ० १।११४।७), 'मा नस्तोके' (तै० सं० ३।४।११।२), 'श्यम्बकं यजामहे' (तै० सं० १।८।६।२), 'यं तु सहस्रम्' (तै० सं० ३।१०।८।२)।

इस अध्याय में वर्णित बहुत-सी शान्तियाँ अब प्रचलित नहीं हैं। आजकल ऐसी हवा बह रही है कि जो शान्तियाँ की भी जाती हैं, ऐसा लगता है, वे भी मविष्य में विलुप्त हो जायँगी।

## अध्याय २२

# पुराण-साहित्य का उद्गम एवं विकास

हमने इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में पुराणों पर एक संक्षिप्त अध्याय लिख दिया है। वहां यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार तैत्तिरीय आरण्यक, छान्दोग्य एवं वृहदारण्यक उपनिषदों ने इतिहास एवं पुराण (कमी-कमी सामूहिक रूप से 'इतिहासपुराणम्' और कमी-कमी 'इतिहास: पुराणम्' कहा गया है) का उल्लेख किया है और किस प्रकार विद्यमान पुराण ईसा की छठी शती के पूर्व के हैं। यह भी प्रदिश्ति किया गया है कि परम्परा से प्रमुख पुराणों की संख्या १८ रही हैं और मत्स्य, विष्णु, वायु एवं मविष्य नामक पुराणों में घमंशास्त्र विषयक बहुत-सी बातें कही गयी हैं। गरुड़-पुराण एवं अग्निपुराण में ऐसे सैकड़ों पद्य हैं जो याज्ञवल्क्यस्मृति के समान ही हैं, सभी पुराणों के विस्तार में अत्यधिक अन्तर भी है, बहुत-से पुराणों ने स्वयं लघु कृतियों का उल्लेख किया है जो उपपुराण के नाम से विख्यात हैं। पुराण तीन दलों में विमक्त हैं, यथा—सास्विक, राजस एवं तामस (जैसा कि गरुड़ ११२२३।१७-२०, एवं पद्म ६।२६३।८१-८४ में किया गया है)। हमने पुराणों के उन अध्यायों की ओर भी संकेत कर दिया है जहाँ घमंशास्त्रीय बातें, यथा—आचार, आह्निक, दान, राजघमं, श्राद्ध, तीथं आदि विणित हैं।

इस विभाग में हम ईसा की आरम्भिक शितयों में पुराणों के प्रमाव से उत्पन्न उन कितपय माव-नाओं, आदर्शों एवं प्रयोगों का उल्लेख करेंगे जो समय-समय पर प्राचीन मारतीय जनता पर अपना प्रभाव एवं परिवर्तन छोड़ते गये हैं।

आगे की वातों पर प्रकाश डालने के पूर्व कुछ आरम्भिक बातें कह देना आवश्यक है। साहित्य-वर्ग में पुराणों का उल्लेख उस काल से बहुत पहले हुआ है, जिसकी ओर हमने पहले संकेत किया है (देखिए, इस ग्रन्थ का प्रथम खण्ड)। अथवंवेद (११।७।२४) ने पुराण को एक वचन में लिखा है : 'ऋक् एवं साम के पद्य, छन्द, पुराण यजु के नियमों के साथ यिज्ञय मोजन के शेष अंश से उदित हुए, (जैसे कि) देव लोग, जो स्वर्ग में रहते हैं। उसने अपना स्थान परिवर्तित किया और बृहत् दिशा की ओर चला गया; और इतिहास एवं पुराण, गाथाएँ, बीरों की प्रशंसा में कहे गये पद्यों (नाराशंसी) ने उसी प्रकार अनुसरण किया। शवायम्बाह्मण (११।५।६।८) ने मी 'इतिहास-

१. मत्स्य (५३।१८-१९), अग्नि (२७२।४-५) एवं नारद (१।९२।२६) ने वायु को अठारह महापुराणों में यरिगणित किया है, किन्तु विष्णु (३।६।१९), मार्कण्डेय (१३४।८), कूर्म (१।१।१३), पद्म (१।६२।२), लिंग (१।३९।६१), भागवत (१२।७।२३), ब्रह्मवैवर्त (३।१३३।१४) ने वायु के स्थान पर शेव रखा है और वायु को अठारह महापुराणों की सूची से सर्वया हटा विया है।

२. ऋवः सामानि छन्वांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जितिरे सर्वे विवि वेवा विविश्विताः॥ अथर्व० (११।७।२४); स बृह्तीं विश्वमनुष्यचलत्। तिमितिहासश्च पुराणं च गायाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। अथर्व० (१५।६।१०-११)।

पुराणम्' (एक सामासिक शब्द के रूप में) का उल्लेख किया है और उसमें ऐसा आया है कि पारिप्लव के ९वें दिन होता पुरोहित अन्य बातों के साथ इस प्रकार निर्देश देता है-- 'पुराण वेद है; यह वही है; ऐसा कहते हुए . उसे कोई पुराण कहना चाहिए (१३।४।३।१३)।" शांखायन श्रीतसूत्र (१६।२।२७) एवं आश्वलायन श्रीतसूत्र (१०।७) के अनुसार पारिप्लव के दो दिनों में इतिहासवेद एवं पुराणवेद का पाठ होना चाहिए। किन्तु ये दोनों सूत्र (यद्यपि ये ऋ ि से सम्बद्ध हैं) पाठ करने के दिन के विषय में भिन्न मत देते हैं। यह कहना कठिन है कि अथर्ववेद, शतपथब्राह्मण एवं उपनिषद् पुराण नामक ग्रन्थों से परिचित थे या नहीं, अथवा वे केवल किसी एक पुराण नामक ग्रन्थ से परिचित थे। किन्तु तै० आरण्यक (२।१०) ने इतिहास एवं पुराण को बहुवचन में लिखा है, जिससे प्रकट होता है कि पश्चात्कालीन वैदिक काल में तीन या अधिक पुराण नामक ग्रन्थ थे जिन्हें अश्वमेघ जैसे पवित्र यज्ञ करमे वाले पढ़ते थे। ऐसा सोचना ठीक मी हो सकता है कि एकवचन में प्रयुक्त 'पुराणम्' शब्द किसी विशिष्ट प्रकार के ग्रन्थ का परिचायक था। उपनिषदों में 'इतिहास-पुराण' को पाँचवाँ वेद कहा गया है और शत० घा० में 'इतिहास-पुराणम्' सामासिक शब्द है, इससे ऐसा अनुमान निकाला जा सकता है कि 'इतिहास' एवं 'पुराण' कुछ बातों एवं विषयों में एक-दूसरे के समान थे। आपस्तम्बधर्मसूत्र (१।६।१९।१३) ने एक पुराण (एकवचन में) के दो पद्य उद्धृत किये हैं (प्रत्येक दो स्थानों पर), जिनमें एक मविष्यत् पुराण का कहा गया है और दूसरे स्थान पर एक पुराण का संक्षेप उपस्थित किया गया है, जिसमें ऐसा आया है कि जब कोई व्यक्ति किसी को हानि पहुँचाने के लिए आक्रमण करता है तो यदि वह व्यक्ति जिस पर आक्रमण किया गया है, आक्रामक को मार डालता है तो ऐसा करने से पाप नहीं लगता। इससे स्पष्ट होता है कि आपस्तम्ब के समक्ष मविष्यत् नामक एक पुराण था और ऐसा या ऐसे पुराण भी थे जिसमें या जिनमें भोजन-सम्बन्धी, गृहस्थ एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी जैसे आश्रमों के नियम भी थे और उनमें आततायी को मृत्युपर्यन्त रोकने एवं प्रलय तथा पुनः सृष्टि के विषय में वर्णन मिलता था। ये बातें स्मृतियों एवं पुराणों के अन्तर्गत आं जाती हैं। 'पुराण' शब्द का अर्थ है 'प्राचीन', अतः 'मविष्यत् पुराण' शब्द विरोधसूचक शब्द है। आपस्तंब के बहुत पहले से 'पुराण' नामक शब्द ऐसे ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त होता था जिसमें प्राचीन गाथाएँ आदि रहती थीं; इस प्रकार के कतिपय ग्रन्थ प्रणीत रहे होंगे, और सम्मवतः उनमें समकालीन घटनाएँ मी संगृहीत होती रहीं और ऐसी घटनाएँ भविष्यवाणी के रूप में रख दी गयीं। इसी से 'भविष्यत्पुराण' नाम पड़ा।

३. मध्वाहुतयो ह वा एता देवानां यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाया नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते। शतपथ ११।५।६।८; अयाष्टमेऽहन्। मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति। तानुपदि-शतीतिहासो वेदः सोयमिति कंचिवितिहासमाचक्षीत। अय नवमेऽहन्।...तानुपदिशति पुराणं वेदः सोयमिति कंचिव्युराणमाचक्षीत। श० बा० १३।४।३।१२-१३। टीका के अनुसार इतिहास कल्पित कथा है। यथा—- 'आरम्भ में कुछ नहीं था, केवल जल था', और पुराण का अर्थ है पुरूरवा एवं उर्वशी जैसे कथानक। मिलाइए गोपवश्चाह्मण (१।१।२१)।

४. यह ब्रष्टच्य है कि वराहपुराण (१७७)।३४) ने स्पष्ट रूप से भविष्यत्पुराण का उल्लेख किया है। संकेत मिला है कि कृष्ण के पुत्र साम्ब ने भविष्यत् नामक पुराण का नवीकरण किया और चार स्थानों में सूर्य-प्रतिमाएँ स्थापित कीं, यथा—(१) यमुना के विकाण में,(२) यमुना एवं मुल्तान के मध्य में, जिसे कालप्रिय कहा गया, (३) मूलस्थान (आज के मुल्तान) में एवं (४) मथुरा में। देखिए भविष्य० (१।७२।४-७) जहां सूर्य-प्रतिमा के तीन केन्द्रों कान्उल्लेख है। मत्स्य० (५३।६२) ने भी भविष्यत्० का उल्लेख किया है।

आपस्तम्ब ने भविष्यत्-पुराण एवं पुराण का उल्लेख किया है, इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ई० पू० ५०० के पूर्व कितपय पुराण थे, जिनमें एक था भविष्यत्पुराण और उस समय के प्रसिद्ध पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग एवं स्मृति के विषयों का समावेश था।

उपर्युक्त निष्कर्ष अन्य ग्रन्थों से भी प्रमाणित होता है। गौतमधर्मसूत्र ने व्यवस्था दी है कि बहुश्रुत वह ब्राह्मण है जो लोगों के आचार-व्यवहार, वेद, वेदांग, वाकोवाक्य (कथनोपकथन), इतिहास एवं पुराण जानता है। उसमें यह भी आया है कि राज्य-शासन एवं न्याय-कार्य में राजा को वेद, धर्मशास्त्र, वेद के छह अंगों, (चार) उपवेदों एवं पुराण पर अवलम्बित होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से प्रतीत होता है कि यद्यपि हम अथर्ववेद, शतपथब्राह्मण एवं उपनिषदों में उल्लिखित पुराण अथवा पुराणों के विषयों के संबन्ध में कोई निश्चित मत प्रकाशित नहीं कर सकते, किन्तु आपस्तम्ब एवं गौतम के काल तक विद्यमान पुराणों के विषयों से मिलते-जुलते विषयों का समावेश करने वाले पुराण उपस्थित थे, ऐसा कहा जा सकता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में आया है कि त्रयी का अर्थ है तीनों वेद, यथा-ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद और अथर्ववेद एवं इतिहासवेद (भी) वेद हैं। इससे प्रकट होता है कि कौटिल्य के काल में इतिहास तीनों वेदों के समान एक निश्चित प्रकार की कृति था। एक अन्य स्थान पर कौटिल्य ने व्यवस्था दी है, 'अर्थशास्त्र में प्रवीण एवं राजा का मला चाहने वाले मन्त्री को चाहिए कि वह अन्य मार्गदर्शकों द्वारा पथभ्रष्ट किये गये राजा को इतिवृत्त (इतिहास अथवा ऐतिहासिक घटनाओं) एवं पूराणों के द्वारा उचित मार्ग पर ले आये।' राजा के प्रतिदिन की चर्या के लिए नियम बनाते समय कौटिल्य ने व्यवस्था दी है कि दिन के बाद वाले भाग में राजा को इतिहास सुनना चाहिए; इतिहास को उन्होंने पूराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण (साहसपूर्ण अथवा साहिसकों या वीरों के उदाहरण), धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र (शासन एवं राज्य-शिल्प के विज्ञान) से समन्वित माना है। लगता है, कौटिल्य ने यहाँ पर इतिहास को महाभारत माना है। महाभारत ने अपने को इतिहासों में सर्वश्रेष्ठ माना है, अपने को धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र एवं कृष्णवेद कहा है। राजा के कर्मचारियों में ऐसे नाम आये हैं--कार्तान्तिक (फलित ज्योतिष विशेषज्ञ), नैमित्तिक (शकून एवं पूर्व सूचनाओं की जानकारी रखने वाले), मौहर्तिक (शुम काल जानने वाले), पौराणिक, सूत एवं मागघ, जिन्हें वेतन के रूप में १००० पण मिलते थे। अपेक्षाकृत अति प्राचीन एवं आरम्भिक दक्षस्मृति (२।६९) ने दिन के छठे एवं सातवें भाग में सभी द्विज गृहस्थों के लिए इतिहास एवं पुराण के अध्ययन की व्यवस्था दी है। औशनसस्मृति ने कहा है कि वेदांगों एवं पुराणों का अध्ययन उत्सर्जन के उपरान्त मास

- ५. तस्य च व्यवहारी वेवो धर्मशास्त्राण्यङ्गान्युपवेदाः पुराणम्। गौ० घ० सू० (११।१९)।
- ६. सामार्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी अर्थववेदेतिहासवेदौ च वेदाः। अर्थशास्त्र (१।३); मुख्येरवगृहीतं वा राजानं तित्रयाश्रितः। इतिवृत्तपुराणाम्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित्।। अर्थशास्त्र (५।६, पू० २५७)।
- ७. पूर्वमहर्भागं हस्त्यक्वरथप्रहरणिवद्यासु विनयं गच्छेत्, पश्चिमितिहासश्रवणे । पुराणिमितिवृत्तमाख्यायि-कोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः । अर्थशास्त्र (१।५,पृ० १०)।
- ८. अर्थशास्त्रिमिवं प्रोक्तं घर्मशास्त्रिमिवं महत्। कामशास्त्रिमिवं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना। "इतिहासोत्तमावस्माज्जायन्ते किवबुद्धयः। अस्याख्यानस्य विषये पुराणं वर्तते द्विजाः। आदिपर्व (२।८३, ८५-८६)।
  आदिपर्व (६२।२३) में महाभारत को घर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं मोक्षशास्त्र कहा गया है। मार्कण्डेयपुराण (१।६-७)
  ने महाभारत को चारों पुरुषार्थों का शास्त्र और चारों वर्णों के उचित कर्मों की जानकारी का साधन माना है।

के कृष्ण पक्ष में करना चाहिए। मनुस्मृति (३।२३२) ने जो यह कहा है कि श्राद्ध कृत्य में निमन्त्रित ब्राह्मणों को वेदों. घर्मशास्त्रों, गाथाओं, इतिहासों, पूराणों एवं खिल मन्त्रों का पाठ करना चाहिए, उससे स्पष्ट होता है कि उसमें जिन पुराणों की ओर संकेत किया गया है, वे आज के विद्यमान पुराण ही हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति ने १४ विद्यास्थानों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं: पूराण, न्याय (तर्कशास्त्र), मीमांसा (वैदिक व्याख्या के नियम), धर्मशास्त्र, ४ वेद एवं ६ वेदांग। लगता है, याज्ञ के काल में ये विद्याएँ महत्ता के अनुसार कमबद्ध रखी गयी थीं। याज्ञ ने उन ऋषियों की ओर संकेत किया है, जिन्होंने वेदों, पूराणों, विद्याओं (छह अंगों), उपनिषदों, रलोकों (इतिहास ?), सत्र ग्रन्थों (यथा जैमिनि या न्याय के सदृश सूत्र-ग्रन्थों), माष्यों तथा जो कुछ साहित्य में विद्यमान हैं उनकी व्याख्या की है या जिनका प्रवर्तन किया है। एक अन्य स्थान पर याज्ञ० ने व्यवस्था दी है कि गृहस्थ को स्नान के उपरान्त प्रात:काल देवों एवं पितरों की पूजा करनी चाहिए और जप-यज्ञ करना चाहिए तथा अपनी योग्यता के अनुसार वेद, अथर्ववेद, इतिहास एवं पुराणों तथा दार्शनिक ग्रन्थों के कितपय भागों का पाठ करना चाहिए। इससे पता चलता है कि इतिहास एवं पुराणों को एक-साथ रखा जाता था, वे दोनों वैदिक साहित्य से मिन्न थे तथा कम-से-कम ईसा की तीसरी शती में याज्ञ के काल में धार्मिक बातों में पुनीतता एवं प्रामाणिकता ग्रहण कर चुके थे। महामाष्य (पाणिनि ४।२।५९-६०) के एक वार्तिक ने आख्यान (यथा—यावकीतिक, यायातिक), आख्यायिका (यथा—वासव-दित्तक, सौमनोत्तरिक), इतिहास (ऐतिहासिक), पुराण (पौराणिक) में ठक् (इक) प्रत्यय लगा कर शब्द-निर्माण की व्यवस्था दी है.। महामारत की कतिपय उक्तियों में 'पुराण' एकवचन में प्रयुक्त है (आदि० ५।२, ३१।३-४, ५१।६, ६५।५२; उद्योग० ७८।४७-४८; कर्ण० ३४।४४; शान्ति० २०८।५; अनुशासन० २२।१२, १०२।२१), और कहीं-कहीं बहुवचन में (आदि० १०९।२०; विराट० ५१।१०; स्त्रीपर्व १३।२; शान्ति० ३३९।१०६; स्वर्गा-रोहण ५।४६-४७ जहाँ मुराणों की संख्या १८ है) । वनपर्व (१९१।१५-१६) में मत्स्यपुराण एवं वायु० द्वारा उद्घोषित एक पुराण का उल्लेख हुआ हैं। ऐसा कहना असम्भव है कि पुराण-सम्बन्धी अनेक संकेत पश्चात्कालीन क्षेपक हैं, यद्यपि कुछेक हो सकते हैं। जब महामारत में पुराण-गाथाएँ एकत्र की गयीं उसके पूर्व आज का कोई पुराण उतना विशद नहीं था, ऐसा कथन ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसे कथन के लिए कोई प्रमाण नहीं है।

बाण (७ वीं शती का पूर्वार्घ) जैसे प्रारम्भिक संस्कृत ग्रन्थकार, शबर (२००-४०० ई० ते पश्चात्कालीन नहीं) जैसे भाष्यकार, कुमारिल (७ वीं शती), शंकराचार्य (६५०-८०० ई० के किसी काल में) एवं विश्वरूप (८००-८५० ई०) इस विषय में कोई संदेह नहीं छोड़ते कि उनके समय में पुराणों के विषय आज के विषयों के सदृश ही थे। जैमिनि (१०।४।२३) के भाष्य में शबर ने यज्ञों के सम्बन्ध में देवता की परिमाषा करते हुए लिखा है कि एक मत के अनुसार वे अग्नि आदि हैं जिनका उल्लेख इतिहास एवं पुराणों में स्वर्ग में रहने वालों के रूप में हुआ है। कादम्बरी एवं हर्षचरित में बाण ने महाभारत एवं पुराणों का बहुधा उल्लेख किया है जिनमें कादम्बरी

९. पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गिमिश्रताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः। याज्ञ० ११३; यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा । क्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्च किंचन वाङमयम्।। याज्ञ० ३।१८९; वेदाथवंपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः। जपयज्ञप्रसिद्ध्ययं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत्।। याज्ञ० (१।१०१)। मिलाइए, विष्णुपुराण ५।१।३७-३८ एवं याज्ञ० १।३। कभी-कभी याज्ञ० की सूची में चार उपवेदों, यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्ववंवेद एवं अर्थशास्त्र को मिला लिया जाता है और संख्या १४ से १८ हो जाती है। देखिए, विष्णुपुराण (३।६।२५-२६, जहाँ १४ विद्या० एवं उपवेदों का उल्लेख है)।

की दो एवं हर्षचरित की एक उक्ति मनोरंजक है। जाबालि मुनि की कुटी का वर्णन करते हुए बाण ने एक श्लेष का प्रयोग किया है, 'पुराण में वायुप्रलिपत' (वायु देवता द्वारा उद्घोषित, प्रलिपत या जल्पना) था, किन्तु कुटी में (वातव्याघि का प्रलाप) नहीं था।<sup>१०</sup> इसी प्रकार तारापीड के प्रासाद के वर्णन में बाण ने श्लेष प्रयुक्त किया है, जहाँ उसे पुराण के तुल्य माना है (दो अर्थ ये हैं, 'जहाँ विश्व का संचित धन उचित रूप में व्यवस्थित है', 'जिसमें लोकों के सम्पूर्ण गोलकों का वर्णन है; जिसका प्रत्येक भाग उचित रूप में व्यवस्थित हैं')। कादम्बरी के उत्तरभाग (बाण के पुत्र द्वारा प्रणीत) में आया है कि सभी आगमों (परम्परा से चले आये हुए घार्मिक ग्रन्थ), यथा—पुराणों, रामायण एवं भारत में शापों के विषय में बहुत-सी कहानियाँ हैं। यहाँ पुराणों को पहले रखा गया है, इससे प्रकट होता है कि वे रामायण एवं भारत (महाभारत) से सम्भवतः अधिक सम्मानित एवं प्रचलित थे। हर्षचरित भें ऐसा आया है कि पुस्तकवाचक सुदृष्टि ने बाण एवं उसके सम्बन्धियों तथा. मित्रों का सम्मान करने के लिए वायु द्वारा प्रवर्तित पुराण का संगीतमय पाठ कराया, जो मुनि (व्यास) द्वारा रचा गया था, जो अति विशद है, जो विश्व-व्यापी (सभी स्थानों पर ज्ञात) है, जो पावन है, जो हर्ष के चरित से भिन्न नहीं है (जिसके लिए पुराण में प्रयुक्त सभी विशेषण उपयुक्त हैं)। यह प्रकट होता है कि यहाँ वायु पुराण स्पष्ट रूप से उल्लिखित है (जिसके लिए पवमान-प्रोक्त एवं पावन शब्द आये हैं)। यहाँ यह भी कहा गया है कि पुराणों में विश्व के कितपय भागों का वर्णन पाया जाता है। यह वर्णन वायु, मत्स्य (अध्याय ११४-१२८), ब्रह्माण्ड (२।१५) की ओर संकेत करता है। ऐसा तर्क किया जा सकता है कि वाण द्वारा उल्लिखित पुराण ब्रह्माण्ड हो सकता है, क्योंकि उस पुराण में आया है—'आरम्भ एवं अन्त में ब्रह्मा ने उसे वायु को दिया, जिससे वह कितपय दैवी एवं अर्घ दैवी व्यक्तियों को प्राप्त हुआ और अन्त में उसे सूत ने व्यास से प्राप्त किया।' यह तर्क स्वीकार्य नहीं हो सकता, क्योंकि वाण को यह स्पष्ट रूप से कहने में कोई रोक नहीं सकता था कि सुदृष्टि द्वारा श्रह्माण्ड पुराण का पाठ कराया गया था।

कुमारिल मट्ट ने अपने तन्त्रवार्तिक में कई स्थानों पर पुराणों एवं उनमें पायी जाने वाली वातों की ओर संकेत किया है। दो-एक मनोरंजक उक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं, जैमिनि (१।३।१) पर कुमारिल का कथन है—"अतः सभी स्मृतियों की प्रामाणिकता उस प्रयोजन से सिद्ध है जो उनके द्वारा किया जाता है; उनमें (स्मृतियों में) सब कुछ धर्म एवं मोक्ष से सम्बन्धित है (प्रामाणिक है), क्योंकि वह वेद से उत्पन्न होता है; जो कुछ अर्थ एवं सुख से सम्बन्धित है वह लोगों के व्यवहार पर आधारित है। इस प्रकार एक अन्तर किया जाना चाहिए। यही तर्क इतिहास एवं पुराणों के उपदेश वाक्यों में भी प्रयुक्त होता है। उपाख्यानों की व्याख्या अर्थ-

- १०. पुराणे वायुप्रलिपतम्। काद०, पूर्वभाग, वाक्य-समूह ३७; पुराणिमव यथाविभागाविस्थितसकलभुवनकोशम्। काद०, पूर्वभाग, वाक्य-समूह ८५ (राजकुल)। स्वयं वायुपुराण, में आया है कि सूत ने नैमिष वन में
  मुनियों से वायु द्वारा प्रवित्त पुराण सर्वप्रथम कहा (१।४७-४८ पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातिरक्ष्वना। पृष्टेन
  मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैमंहात्मिभः॥); वायु० के अध्याय ३४-४९ में भुवनविन्यास है; आगमेषु सर्वेष्वेव पुराणरामायणभारतादिव सम्यगनेकप्रकाराः शापवार्ताः। काद०, उत्तरभाग (चन्द्रापीड के हृदय टूटने के सम।चार पर
  राजा तारापीड को सान्त्वना देने के लिए शुकनास की वक्तृता)।
- ११. पुस्तकवाचकः सुदृष्टि... गीत्या पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ । हर्षचरित ३, चौथा नाम-समूह; दोनों के लिए प्रयुक्त आर्या छन्द है 'तदिष मुनिगोतर्भातपृथ तदिष जगद्व्यापि पावनं तदिष । हर्षचरितादिभन्नं प्रतिभाति मे पुराणिमदम् ॥' हर्ष० ३, ५वाँ याक्य-समूह । पवन का अर्थ है वायु और इसी से पावन 'वायवीय' के स्थान पर आयत है।

वादों में प्रयुक्त होने वाले तर्क से की जा सकती है (अर्थात् वे वेद के स्तुतिद्योतक वाक्यों। के सदृश प्रयोजन एवं प्रामा-णिकता वाले हैं)। पृथिवी के विमागों का कथन प्रदेशों के अन्तर को समझने के उपयोग में आता है, जिसके द्वारा घर्मांघर्म से उत्पन्न फलों को भोगा जाता है, जो कुछ अंश में अपने अनुभव पर आघारित होता है तथा कुछ अंश में वेद पर आघारित होता है। पुराणों में वंशों का जो कमबद्ध निरूपण होता है उससे ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जातियों और उनके गोत्रों के ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह वास्तविक अनुभूतिमूलक एवं स्मृतिमूलक होता है (अर्थात् वह वास्तविक अनुमूति एवं परम्परा से चले आये हुए ज्ञान पर आधारित होता है); देशों एवं काल के परिमाणों से सांसारिक आदान-प्रदान एवं ज्योति:शास्त्र-सम्बन्धी व्यवहार में सहायता प्राप्त होती है और वे वास्तविक प्रत्यक्ष, गणित, परम्परा एवं अनुमान पर आघृत होते हैं। भावी कथन (भविष्य में घटने वाली वातों का कथन) वेद पर आघृत है, क्योंकि वह धर्माधर्म से उत्पन्न फलों के विभिन्न प्रकार के ज्ञानों की अनुभूति कराता है और अनादि काल से चले आये हुए युगवैशिष्ट्य-ज्ञान का परिचय देता है।"<sup>१२</sup> इस कथन से यह स्पष्ट है कि कुमारिल को इतिहास एवं पुराणों का जो परिचय था उसमें गाथाएँ, पृथिवी स्थिति-ज्ञान (भूगोल), वंश-सूचियाँ, काल-परिमाण एवं भविष्य में घटने वाली घटनाओं का उल्लेख था। कुमारिल (जै० १।३।७) का एक अन्य कथन भी द्रष्टव्य है---'पूराणों में ऐसा वर्णित है कि कलियुग में शाक्य (गौतम वृद्ध) एवं अन्य उदित होंगे जो वर्म के विषय में विप्लव खड़ा करेंगे, उनके शब्दों को कौन सुनेगा ?' इससे प्रकट है कि सातवीं शती के पूर्व पुराणों में कलियुग के स्वरूप का निरूपण पाया जाता था और कुमारिल को पुराण ज्ञात थे। वे बुद्ध को विष्णु का अवतार नहीं मानते थे, प्रत्युत वे उनकी मर्सना करते थे। क्षेमेन्द्र ने अपना दशावतार ग्रन्थ सन् १०६६ ई० में लिखा है, अपरार्क ने मत्स्यपुराण (अध्याय २८५) से एक लम्बा वाक्य-समूह उद्धृत किया है, जिसके सात क्लोकों में विष्णु के दस अवतारों (बुद्ध भी सम्मिलित किये गये हैं) का उल्लेख है, जयदेव के गीतगोविन्द ने बुद्ध को अवतार माना है। इन बातों से स्पष्ट है कि १००० ई० के पूर्व बुद्ध विब्गु के एक अवतार के रूप में मान लिये गये थे, यद्यपि सातवीं शती में कुछ पुराणों ने उनकी निन्दा की थी। 'स्वर्ग' शब्द के अर्थ के विषय में विचार करते हुए कुमारिल ने पूछा है—'क्या यह नक्षत्रों का लोक है या मेरु पर्वत का पृष्ठ भाग है, जैसा कि इतिहास एवं पुराणों में आया है, या यह मात्र सुख की एक स्थिति का द्योतक है ?'' इससे प्रकट है कि कुमारिल के काल में पुराणों में मेरु का पृष्ठ माग स्वर्ग के रूप में निरूपित था।

१२. तेन सर्वस्मृतीनां प्रयोजनवती प्रामाण्यसिद्धिः। तत्र यावद्धमंमोक्षसम्बन्धि तद्वेदप्रभवम्। यत्त्वर्थमुख-विषयं तल्लोकव्यवहारपूर्वकमिति विवेक्तव्यम्। एषैवेतिह्र(सपुराणयोरप्युपदेशवाक्यानां गतिः। उपाख्यानानि त्वर्थवादेषु व्याख्यातानि। यत्तु पृथिवीविभागकथनं तद्धमधिमंसाघनफलोपभोगप्रदेशविवेकाय। किंचिद्दर्शनपूर्वकं किंचिद्देदमूलम्। वंशानुक्रमणमि बाह्मणक्षत्रियजातिगोत्रज्ञानार्थं दर्शनस्मरणमूलम्। देशकालपरिमाणमि लोकज्योतिः-ज्ञास्त्रव्यवहारसिद्धपर्थं दर्शनगणितसंप्रदायानुमानपूर्वकम्। भाविकथनमि त्वनादिकालप्रवृत्तयुगस्वभावयमधिमान्-नुष्ठानफलविपाकवैचित्र्यज्ञानद्वारेण वेदमूलम्। तन्त्रवातिक (जै० १।३।१: धर्मस्य शब्दमूलत्वादशब्दमनपेक्षं स्यात्)।

१३. स्मृयन्ते च पुराणेषु घर्मविप्लुतिहेतव । कलौ शाक्यादयस्तेषां को वाक्यं श्रोतुर्महित ।। तन्त्रवातिक पृ० २०३, जै० १।३।७। कुछ पुराणों, यथा—वराह (११३।२७-२८), ब्रह्म (१२२।६८-७०), पद्म (६।२१।१३-१५) ने विष्णु के दस अवतारों (बुद्ध को सिम्मिलित करते हुए) का वर्णन किया है। किन्तु इन पुराणों में पश्चात्कालीन क्षेपक आ गये हैं और इनकी तिथियों के विषय में निश्चित बात करना सम्भव नहीं है।

१४. तथा स्वर्गशब्देनापि नक्षत्रदेशो वा वैदिकप्रवादपौराणिकयाज्ञिकदर्शनेनोच्यते...यदि वेतिहासपुरा-

शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्र के भाष्य में पुराणों के विषयों एवं उनके उन विशिष्ट स्वरूपों का उल्लेख अधिकतर किया है जो आज पुराणों में यथावत् पाये जाते हैं, यद्यपि उन्होंने किसी पुराण का नाम नहीं लिया है। उदाहरणार्थ, उनका कथन है कि पुराण द्वारा यह प्रतिष्ठापित है कि अतीत एवं मावी कल्पों की संख्या के विषय में कोई सीमा नहीं है (वे० सू० २।१।३६)। वे० सू० (१।३।३०) में आचार्य शंकर ने दो क्लोक उद्धृत किये हैं जिन्हें वे स्मृतिमूलक मानते हैं, किन्तु वास्तव में वे विष्णुपुराण (१।५।५९-६०) के हैं और मनु एवं याज्ञ० जैसी प्राचीन स्मृतियों में नहीं पाये जाते । वे० सू० (३।१।१५ : अपि च सप्त) में भाष्य का कथन है कि वे, जिन्होंने पुराण पढ़े हैं या उन्हें जानते हैं, ऐसा कहते हैं कि रौरव आदि सात नरक हैं, जहाँ पापी लोग दुष्कर्म करने के फलस्वरूप जाते हैं। विष्णुपुराण ने तामिल, रौरव आदि सात नरकों का उल्लेख किया है, जहाँ वेदविरोधी, यज्ञविरोधी एवं उचित धर्माचरण न करने वाले जाते हैं। मनु (४।८७-९०), याज्ञ० (३।२२२-२२४), विष्णुधर्मसूत्र (४३।२-२२) ने २१ नरकों का उल्लेख किया है और सभी पुराणों ने २१ या इससे अधिक नरकों की ओर संकेत किया है। इस विषय में हमने इस ग्रन्थ के प्रथम खंड में ही पढ़ लिया है। वे० सू० (१।३।२६ एवं ३३) में भाष्य ने कहा है कि वैदिक मन्त्रों, अर्थवाद-वाक्यों, इतिहास एवं पुराण तथा प्रचलित विश्वास के आघार पर लोग समझ सकते हैं कि देवों को शरीर प्राप्त हैं। वे० सू० (२।१।१) में शंकराचार्य ने एक ऐसा क्लोक उद्धत किया है जो वायुपुराण में भी है और १।३।३० में ५ क्लोक स्मृति के कहे गये हैं जो वायुपुराण (९।५७-५९ एवं ६४-६५) के हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका में विश्वरूप ने पुराणों पर दो मनोरंजक टिप्पणियाँ दी हैं। याज्ञ० (३।१७०) में जहाँ विश्व-विकास के सांख्य-सिद्धान्त का वर्णन है, उसकी टीका में विश्वरूप का कथन है कि यह सिद्धान्त (विश्व की सुष्टि एवं विलयन का सिद्धान्त) पुराणों में पाया जाता है। याज्ञ० (३।१७५) में जहाँ यह कहा गया है कि पितृलोक का मार्ग अगस्त्य नक्षत्र एवं अजवीथि के मध्य में है, विश्वरूप की टिप्पणी है कि पुराणों में आकाश में सूर्य की कई वीथ्रियाँ (मार्ग) हैं और अजवीथि अगस्त्य के अनन्तर है।

उपर्युक्त निरूपण से यह व्यक्त होता है कि शवर से विश्वरूप तक के लेखकों ने पुराणों के विषयों के बारे में जो कुछ संकेत अथवा उल्लेख किये हैं उनसे यह प्रकृट है कि ईसा की दूसरी शती से लेकर छठी या सातवीं शती तक के पुराणों में वे ही बातें पायी जाती हैं जो आज के पुराणों में देखने को मिलती हैं।

आगे कुछ लिखने के पूर्व यहाँ युग-पुराण (गार्गी-संहिता का एक अंश) के बारे में कुछ चर्चा कर देना आवश्यक है, क्योंकि यह उन प्रारम्भिक एवं विद्यमान पुराणों में परिगणित है, जिन्हें 'पुराण' की संज्ञा एवं विद्या प्राप्त है। कर्न महोदय ने वृहत्संहिता की अपनी मूमिका (पृ० ३२-४०) में इस विरल पुराण की चर्चा की और विद्वानों के समक्ष इसके बहुमूल्य ऐतिहासिक आंकड़ों को एक कटी-छँटी पाण्डुलिपि से निकाल कर रखा। आगे चल कर डा० जायसवाल महोदय ने कर्न की अपूर्ण पाण्डुलिपि तथा अन्य दो पाण्डुलिपियों से युगपुराण का संशोधित संस्करण उपस्थित किया जो अनुष्टुप् छन्द की ११५ अर्घ पंक्तियों में है। पुनः प्रो० लेवी की प्रति मी प्राप्त हुई, जिसका उपयोग डा० जायसवाल ने किया (जे० बी० ओ० आर० एस्०, जिल्द १४)। और देखिए प्रो० के० एच्० ध्रुव का लेख (वही, जिल्द १६, पृ० १८-६६), प्रो० डी० के० मनकड़ का ग्रन्थ (चास्तर प्रकाशन, वल्लमविद्यानगर,

णोपपत्रं मेरुपृष्ठम्, अथवा अन्वयव्यतिरेकाभ्यां विभक्तं केवलमेव मुखम्।...तन्त्रवार्तिक, पू० २९९ (जै० १।३।३०)। बहुत-से पुराणों में देव एवं उपदेव मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग के निवासी कहे गये हैं। देखिए, मत्स्य (२।३७-३८), पद्म (५।८।७२-७३)।

१९५१), जहाँ जायसवाल के युग-पुराण सम्बन्धी मतों की आलोचना आदि है और ऐतिहासिक तथ्यों की ओर पर्याप्त निर्देश हैं।

युगपुराण को प्रो॰ मनकड़ द्वारा प्राप्त पाण्डुलिपि में स्कन्दपुराण कहा गया है। यह वृहत्संहिता का ११३ वाँ अध्याय है। 'स्कन्दपुराण' नाम सम्भवतः इसलिए पड़ा है कि इस पुराण के आदि में स्कन्द ने विभिन्न युगों की विशेषताओं के विषय में शिव से प्रश्न पूछा है। कृत, त्रेता एवं द्वापर की विशेषताओं का उल्लेख कम से ११-२८, २९-४५ एवं ४६-७४ पंक्तियों में हुआ है (देखिए प्रो॰ मनकड़ का संस्करण)। प्रो॰ मनकड़ के संस्करण में ७५-२३५ पंक्तियाँ एवं डा॰ जायसवाल के संस्करण में १-११५ पंक्तियाँ (जे॰ बी॰ ओ॰ आर॰ एस॰, जिल्द १४, पृ० ४००-४०८) कल्युग की विशेषताओं एवं ग्रन्थ के पूर्व की कुछ शितयों के राजनीतिक, सामाजिक एवं आधिक इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। युगपुराण में विणत कल्युग की विशेषताएँ वनपर्व (१८८।३०-६४) में उल्लिखित विशेषताओं से सर्वथा मिल जाती हैं। दोनों में श्लोक का अर्घांश एक ही है।

महत्त्वपूर्ण बातें संक्षेप में यों हैं—'द्रौपदी की मृत्यु के उपरान्त किलयुग का आरम्म हुआ। किलयुग के आरम्म में परीक्षित् का पुत्र जनमेजय एक प्रसिद्ध राजा होगा, िकन्तु वह ब्राह्मणों से विरोध करेगा। किलयुग में शिशुनाग का पुत्र उदायि गंगा के दक्षिण िकनारे पर पाटिलपुत्र नगर वसायेगा, जो पुष्पपुर के नाम से पुकारा जायेगा, पाँच जो सहस्र, सौ, पाँच वर्षों, पाँच मासों, पाँच दिनों एवं पाँच मुहूर्तों तक अवस्थित रहेगा। उस पुष्पपुर में शालिशूक नामक उद्भान्त एवं दुष्ट राजा होगा, जो अपने गुणी बड़े माई विजय को साकेत में स्थापित करेगा। तब वीर यवन, पाञ्चाल एवं माथुर लोग साकेत पर आक्रमण करेंगे और कुसुमपुर को, जिसकी िकलेबन्दी मिट्टी की होगी जीत लेंगे। यवनों के इस आक्रमण से समी देश आकुल हो जायेंगे। इसके उपरान्त अनार्य लोग आयों के व्यवहारों का अनुसरण करेंगे। किलयुग के अन्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य समान रूप से वस्त्र घारण करेंगे और एक-सा व्यवहार करेंगे। लोग नास्तिक सम्प्रदायों में सम्मिलित होंगे और पत्नियों के लिए (उन पर बलात्कार करने के लिए) एक-दूसरे से मित्रता करेंगे। शूद्र लोग 'ओम्' के साथ आहुतियाँ डालेंगे तथा दूसरों को 'मोः' शब्द से सम्बोधित करेंगे और ब्राह्मण लोग दूसरों को 'हे आर्य' कहेंगे। यवन नगर (पुष्पपुर)में पाँच राजा स्थापित करेंगे। यवन लोग मध्यदेश में बहुत समय तक नहीं रहेंगे। यवनों के नाश के उपरान्त साकेत में सात शिवतशाली राजा होंगे। मध्यदेश में रक्तरंजित युद्ध होंगे। सभी आग्निवेश्य राजा युद्ध में समाप्त होंगे और यही दशा प्रजा की होगी।'

'इसके ज्रुपरान्त किंग के राजा सात के विरोध से लोमी शक नाश को प्राप्त होंगे, पृथिवी का सत्यानाश होगा एवं पुष्पपुर में शून्यता प्राप्त होगी। रक्त-चक्षु अमलात पुष्पपुर को प्राप्त करेगा। म्लेच्छराज अमलात असहाय जनता एवं चारों वर्णों का नाश करेगा। अमलात अपने सम्बन्धियों के साथ नाश को प्राप्त होगा और एक राजा होगा जिसका नाम गोपाल होगा, वह एक वर्ष राज्य कर के मर जायगा। इसके उपरान्त पुष्यक नामक न्यायी राजा होगा जो केवल एक वर्ष तक राज्य करेगा। दो अन्य राजाओं के उपरान्त अग्निमित्र राजा होगा जो एक कन्या के लिए ब्राह्मणों से मयंकर युद्ध करेगा। उसके उपरान्त उसका पुत्र २० वर्षों तक राज्य करेगा। शवरों से युद्ध होने के कारण प्रजा की दशा बुरी होगी। तब सात राजा राज्य करेगा। इसके उपरान्त शकों का विप्लव होगा जो प्रजा की एक-चौथाई का नाश कर देंगे और लोगों को अनैतिक त्रना देंगे। इस प्रकार युगपुराण एक निराशा-जनक टिप्पणी के साथ समाप्त होता है।

युगपुराण शकों के आगे के वंशों की चर्चा नहीं करता, अर्थात् वह आन्ध्रों, आभीरों एवं गुप्तों के विषय में मौन है, अतः वह उन पुराणों से पुराना है जिनमें इन वंशों की भी चर्चा है। डा० जायसवाल ने इसे ई० पू० प्रथम शती के उत्तरार्घ में रखा है, जो ठीक ही जैंचता है। प्रो॰ ए॰ के॰ नारायण ने एक पुस्तक लिखी है जो अभी हाल में छपी है,। उसका नाम है 'दी इण्डो-ग्रीन्स' (आक्सफोर्ड, १९५७)। इस पुस्तक में युगपुराण के कुछ कठिन वाक्यों पर सुन्दर टिप्पणियाँ दी हुई हैं। उन्होंने यह बताया है कि कर्णपर्व में यवन लोग सर्वत्र म्लेच्छों से मिन्न एवं वीर कहे गये हैं (कर्णपर्व ४५।३६)।

मत्स्य (५३।३-११), वायु (१।६०-६१), ब्रह्माण्ड (१।१।४०-४१), लिंग (१।२।२), नारदीय (१।९२। २२-२६), पद्म (५।१।४५-५२) में आया है कि पुराण मौलिक रूप से एक ही था और ब्रह्मा ने सर्वप्रथम इसके विषय में विचार किया, इसके उपरान्त उनके अघरों से वेद निकले। मौलिक रूप में पुराण में एक सौ करोड़ क्लोक थे तथा व्यास ने इसका सार ४ लाख क्लोकों में प्रत्येक द्वापर युग में घोषित किया। पुराणों की कोई प्राचीन परम्परा थी या आरम्भ में केवल एक ही पुराण था, जो कल्पना मात्र है, यह सब कुछ निश्चितता से कहना सम्भव नहीं है। ऊपर हमने देख लिया है कि बहुत प्राचीन काल में (तैत्तिरीय आरण्यक के काल में) पुराण बहुवचन में प्रयुक्त होते थे। अतः यह कहा जा सकता है कि वर्तमान कालिक पुराण प्राचीन पुराणों के उत्तराधिकारी मात्र हैं, यद्यपि प्राचीन पुराणों के विषय में हम कुछ मी नहीं के बराबर जानते हैं।

पुराणों की (आगे चलकर एवं स्वयं पुराणों द्वारा घोषित महापुराणों की) संख्या परम्परा से अठारह है। ये कितपय पुराणों में विणित हैं, यथा—विष्णु (३१६१२२३), वराह (११२१६९-७२), लिंग (११३९१६१-६३), मत्स्य (५३११), पद्म (१०११-५४), मिवष्य (१११६१-६४), मार्कण्डेय (१३४१७-११), अग्नि (२७२), मागवत (१२११३४-८), वायु (१०४) २-१०), स्कन्द (प्रमासखण्ड, २१५-७)। अठारह नामों एवं उनके विस्तार तथा विषयों के बारे में अन्तर मिलता है। मत्स्य (५१११८-१९), अग्नि (२७२१४-५), नारदीय (११९२१६२-२८) ने वायु को १८ में चौथा माना है, जब कि अधिकांश पुराण शिवपुराण को चौथे स्थान पर रखते हैं। स्कन्द (प्रमास खण्ड २१५ एवं ७) ने चौथे स्थान पर शिव को रखा है न कि वायु को और वायवीय (सम्मवतः ब्रह्माण्ड) को अन्तिम स्थान पर। देवीभागवत में एक श्लोक आया है जिसमें १८ पुराणों के प्रथम अक्षर आये हैं और वहाँ शिवपुराण नहीं है। स्मेरपुराण (९१५-१२) की १८ वाली सूची में वायु चौथे स्थान पर है (यहाँ शिव नहीं है) और ब्रह्माण्ड अन्त में। सूतसंहिता (१११७-११) ने १८ पुराणों के नाम दिये हैं, वायु को छोड़ दिया और उसके स्थान पर शिवपुराण को रखा है। दोनसागर ने अपनी मूमिका के श्लोकों (११-१२, पृ० २-३) में वायवीय एवं शैव को पृथक्-पृथक् रखा है। हेमाद्रि (दान, माग-१,पृ० ५३१) द्वारा उद्धृत कालिकापुराण के श्लोकों में शिव, कालिका, सौर तथा विह्नज (आग्नेय, जो वास्तिवक है) प्रमुख अठारह पुराणों में परिगणित हैं। डा० ए० डी० पुसल्कर की धारणा है कि वायु को ही अठारह पुराणों में रखा जाना चाहिए न कि शिवपुराण को। स्थान न अपने ग्रन्थ

१५. मह्यं भद्वयं चैव बत्रयं वचतुष्टयम्। अनापाँलगक्स्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।। देवीभागवत (१। ३१२)। मह्य मत्स्य, मार्कण्डेय; भर्य भविष्य, भागवत; बत्रयं ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्माण्ड; वचतुष्टय वराह, वामन, वायु, विष्णु; अ, ना, प, लिं, ग कम से अग्नि, नारदीय, पद्म, लिंग, गरुड़; कू कूमं; स्क स्कन्द। विल्सन ने विष्णु के अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि उनकी वराह वाली पाण्डुलिपि में गरुड़ एवं ब्रह्माण्ड के नाम नहीं आये हैं, प्रत्युत वायु एवं नरसिंह के नाम १८ की सूची में हैं। अवश्य ही यह पाण्डुलिपि इस विषय में विचित्र है।

१६. डा० ए० डी० पुसल्कर (विद्या भवन सीरीज, बम्बई, १९५५) द्वारा लिखित 'स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड पुराणज आव इण्डिया,' (अध्याय २, पू० ३१-४१)। मत्स्य (५३११८-१९) में वही विणित है जो वायुपुराण में लिखित है। में (१०३० ई० में लिखित) एक पुराण-सूची दी है, उसमें केवल शिवपुराण को वायुपुराण के स्थान पर रख दिया गया है तथा बन्य बन्तर नहीं प्रकट किया गया है। अलबरूनी को विष्णुपुराण पढ़कर सुनाया गया था। इससे स्पष्ट है कि प्रमुख पुराणों की सूची ईसा की दसवीं शती के बहुत पहले पूर्ण हो चुकी और विष्णुपुराण में वह सूची सन् १०३० ई० के बहुत पहले आ गयी रही होगी। अलबरूनी ने एक अन्य सुनी-सुनायी सूची भी दी है, जो यों है—आदि, मत्स्य, कूमं, वराह, नरिसह, वामन, वायु, नन्द, स्कन्द, आदित्य, सोम, साम्ब, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, ताक्ष्यं (गरुड़), विष्णु, ब्रह्म एवं भविष्य। इस सूची में वायु का नाम है, किन्तु शैव (शिव पुराण या शैव पुराण) का नहीं। इस सूची में कुछ पुराणों में विणत कुछ उपपुराण भी सिम्मलित कर लिये गये हैं (यथा—आदि, नरिसह, नन्द, आदित्य, सोम एवं साम्ब) और कुछ ऐसे पुराण जो एकमत से महापुराण कहे जाते हैं (यथा—पद्म, भागवत, नारद, अन्ति, लिंग एवं ब्रह्मवैवर्त) छोड़ दिये गये हैं। इससे स्पष्ट है कि कुछ उपपुराण, यथा—आदि, नरिसह, आदित्य, साम्ब, नन्द (नन्दी?) कम-से-कम सन् १००० ई० के कुछ वर्ष पहले ही प्रणीत हो चुके रहे होंगे। बालम्मट्ट (१८ वीं शती के उत्तरार्घ में) ने मिताक्षरा (याज्ञ० १।३) की टीका में लिखा है कि वायवीयपुराण को शैवपुराण भी कहा जाता था।

अब हम नीचे १८ पुराणों की सूची दे रहे हैं। इसमें प्रत्येक पुराण के श्लोकों की संख्या के विषय में मी जानकारी दी जा रही है।

			A company of the particular to the second of
क्रम-संख्या	पुराण का नाम	मत्स्य, वायु १०४ एवं अन्य ग्रन्थों के अनुसार रुलोकों की संख्या	अन्य पुराणों के अनुसार इलोकों की संख्या तथा टिप्पणी
8	ब्रह्म	१०,००० नारद (९२।३१) एवं मागवत (१२।१३।४) के अनुसार	अग्निपुराण (२७२।१) के अनुसार २५,०००।
2	पहा	44,000	Statement Cream Colors Colors
3			<u></u>
	विष्णु	२३,०००	कतिपय ग्रन्थों में संख्या ६ से २४ सहस्र तक लिखी हुई है।
Å	वायु	२४,०००	अग्नि (२७२।४-५) के अनुसार १४,००० एवं देवी- मागवत (१।३।७) के अनुसार २४,६००।
4	भागवत	86,000	
Ę	नारदीय	२५,०००	Line a life of the Pathan and the late
9	मार्कण्डेय	9,000	स्वयं मार्कण्डेय (१३४।३९) के अनुसार ६९०० तथा
	अरिन	१६,०००	नारद (१।९८।२ एवं वायु १०४।४) के अनुसार ९०००। मागवत (१२।१३।५) के अनुसार १५,४०० तथा अग्नि (२७२।१०-११) के अनुसार १२ं,०००।
9	माँविष्य	88,400	अग्नि (२७२।१२) के अनुसार १४,०००।
80	ब्रह्मवैवतं	86,000	11 1 ( 12 (12 1) 1 2 2 2 2 1 1 1 2 2 2 2 2 2 2 2 2

कम-संख्या	पुराण का नाम	मत्स्य, वायु १०४ एवं अन्य ग्रन्थों के अनुसार स्लोकों की संख्या	अन्य पुराणों के अनुसार क्लोकों की संख्या तथा टिप्पणी
११	लिंग	११,०००	
१२	वराह	78,000	
\$\$	स्कन्द	८१,०००	अग्नि (२७२।१७) के अनुसार ८४,०००। देखिए आगे का अध्याय २३, स्कन्दपुराण का विवरण।
88	वामन	20,000	
१५	कूर्म	<b>१८,०००</b>	नारद (१।१०६।३) एवं मागवत (१२।१३।८) के अनुसार १७,०००, अग्नि (२७२।१२) के अनुसार ८,०००।
१६	मत्स्य	१४,०००	अग्नि (२७२।२०-२१) के अनुसार १३,०००।
१७	गरुड़	₹८,०००	भागवत (१२।१३।८) एवं देवीमागवत (१।३) के अनुसार १९,०००, तथा अग्नि (२७२।२१) के अनुसार ८,०००।
86 -	व्रह्माण्ड	१२,२०० मत्स्य (५३।५४) के अनुसार	भागवत (१२।१३-८) एवं अग्नि (२७२।२३) के अनुसार १२,०००।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अठारह पुराणों में कुल ४,००,६०० क्लोक हैं, जैसा कि अधिक पुराणों की सूचियों से प्रकट होता है। यह संख्या कुछ पुराणों में विणत ४ लाख की संख्या से मिल जाती है। किन्तू विद्यमान पुराणों की क्लोक-संख्या उतनी नहीं है जितनी कि कही गयी है। उदाहरणार्थ, विष्णुचित्ती एवं वैष्णवा-कूतचन्द्रिका नामक विष्णुपुराण (३।६।२३) की टीकाओं से प्रकट होता है कि विष्णुपुराण में ६,८,९,१०,२२,२३ से लेकर २४ सहस्र क्लोक तक पाये जाते हैं। दोनों टीकाएँ ६००० क्लोकों वाले विष्णुपुराण की टीका करती हैं। यही वात कूर्मपुराण के साथ भी पायी जाती है, जहाँ यह बहुत-से पुराणों के कथनानुसार १७,००० या १८,००० क्लोकों वाला है, वहाँ आज इसमें केवल ६००० क्लोक पाये जाते हैं। नारदीय के अनुसार १०,००० एवं अग्नि के अनुसार २५,००० श्लोकों वाले ब्रह्म में आज लगभग १४,००० श्लोक हैं। दूसरी और स्कन्द में ८१,००० क्लोक कहे गये हैं, किन्तु मुद्रित संस्करण में इससे कई सहस्र अधिक क्लोक पाये जाते हैं। मिवष्य (ब्राह्मपर्व) में आया है कि प्रत्येक पुराण में पहले मौलिक रूप में १२,००० रलोक पाये जाते थे, किन्तु विस्तार होता गया, क्योंकि गाशाएँ बढ़ती गयीं, यहाँ तक कि स्कन्द में एक लाख रलोक हो गये और मिवष्य में ५०,००० क्लोक। जिस ऋम में पुराण रखे गये हैं, वह भी सदैव एक-सा नहीं रहा है। अधिकांश पुराण ब्रह्म को प्रथम स्थान में रखते हैं एवं उपर्युक्त तालिका को ही मानते हैं, किन्तु वायु (१०४।३) एवं देवीमागवत (१।३।३) ने सूची का आरम्भ मत्स्य से किया है। स्कन्द (प्रभासक्षण्ड २।८-९) ने ब्रह्माण्ड को प्रथम स्थान में रखा है। मागवत (१२।७।२३-२०) ने अन्य ऋम में पुराणों की सूची दी है। वामनपुराण (१२।४८) ने मत्स्य को सर्वोपरि स्थान दिया है। सभी पुराणों के विषयों की चर्चा मत्स्य (अध्याय ५३), अग्नि (अध्याय २७२), स्कन्द (प्रभासखण्ड, २।२८-७६), नारदीय (जिसमें ब्रह्म से ब्रह्माण्ड तक के सभी १८ पुराणों के विषयों पर १८ अध्याय हैं, १।९२।-३०-३१ से लेकर १।१०९ तक) ने की है। वायुपुराण को छोड़ कर अन्य प्रमुख पुराणों की संख्या के विषय में कोई मतभेद नहीं है।

पुराणों-सम्बन्धी प्रश्न और जिटल हो उठता है जब हम कुछ पुराणों में विणित उपपुराणों के नाम पाते हैं, यद्यिप कुछ पुराण उनकी चर्चा नहीं करते। उदाहरणार्थ, मत्स्य (५३।५९-६२) ने नार्रासह, नन्दी, आदित्य एवं साम्ब को उपपुराणों के नाम से पुकारा है, उसमें यह भी व्यक्त है कि नार्रासह का विस्तार १८,००० रलोकों तक हो गया और उसने पद्मपुराण द्वारा उद्घोषित नृसिंह अवतार वर्णन विस्तारित कर दिया है। कुर्म (१।१।१६-२०), पद्म (४।१११५-९८), देवीमागवत (१।३।१३-१६) ने अठारह उपपुराणों के नाम दिये हैं। कुछ उपपुराणों के नाम प्रमुख पुराणों के नाम के समान ही हैं, यथा—स्कन्द, वामन, ब्रह्माण्ड एवं नारदीय। प्रो० हज्जा (उपपुराण, जिल्द १) के अनुसार उपपुराणों की संख्या १०० है। बहुत ही कम उपपुराण प्रकाशित हो सके हैं, और जो प्रकाशित हैं उनके विषय प्रमुख पुराणों के विषयों से बहुत सीमा तक मेल रखते हैं और सभी 'पञ्च-लक्षण' नामक पुराण-परिमाषा को असत्य ठहराते हैं। ऐसा पहले ही व्यक्त किया जा चुका है कि सभी प्रमुख अठारह पुराणों के श्लोकों की संख्या सिम्मिलत नहीं है और न किसी पुराण में ऐसा आया है कि ४ लाख की श्लोक-संख्या में उपपुराणों के श्लोक भी सिम्मिलत हैं। मत्स्य एवं कूर्म ने उपपुराणों के विषय में जो टिप्पणी दी है, उस पर ध्यान देना आवश्यक है। मत्स्य (५३।५८-५९ एवं ६३; हेमाद्वि, बत, माग १, पृ०२१-२२) के अनुसार सभी उपपुराण प्रमुख पुराणों के उपभेद हैं; वहाँ यह बल्पूर्वक कहा गया है—'यह जान लो कि जो अठारह पुराणों से स्पष्ट रूप से पृथक् घोषित हैं वह उन्हीं से उत्पन्न भी हुआ है'।'' कूर्म भी अस्पष्ट ही है, उसमें आया है कि मृनियों १८ पुराणों का अध्ययन

१७. पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् । अनन्तरं च वक्त्रेम्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥ पुराणमेक-मेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनध । त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः । कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ॥ व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे । चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥ तदण्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते । अद्यापि देवलोकेऽस्मिन् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ तदण्यात्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् । पुराणानि दशाऽष्टौ च सांप्रतं तिवहोच्यते ॥ मत्स्य (५३।३-११); पद्म (५।१।४५-५२) में मत्स्य के ये सभी श्लोक हैं। वायु (१।६०-६१) एवं ब्रह्माण्ड (१।१।४०-४१) में प्रथम श्लोक पाया जाता है । ब्रह्मपुराण (२४५।४) में आया है, आद्यं ब्राह्माभिष्ठानं च सर्ववाञ्छाफलप्रदम् । विष्णुपुराण (३।६।२०) में आया है 'आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते ॥', देवीभागवत (१।३।३) ने मत्स्य को प्रथम स्थान दिया है ।

१८. उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये संप्रतिष्ठिताः। पाद्ये पुराणे यत्रोक्तं नार्रासहोपवर्णनम्।। तस्वाव्यदश्च साहस्रं नार्रासहमिहोध्यते।...अब्दादशम्यस्तु पृथक् पुराणं यत्प्रदिश्यते। विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विति-गंतम्।। मत्स्य ५३।५८-५९ एवं ६३ (हेमाद्वि, व्रत, भाग १,पृ० २१-२२ द्वारा उद्धृत)। ये क्लोक स्कन्द (प्रशासखण्ड २।७९-८३) में भी आये हैं। कृत्यरत्नाकर (पृ० ३२) ने व्याख्या की है, 'विनिगंतमुद्भूतम्। यथा कालिकापुराणात्।' प्रो० हज्जा ने (स्टडीज आदि, जिल्द १,पृ० १६, टिप्पणी ३३) में परिभाषाप्रकाश (पृ० १५) का उद्धरण दिया है 'एतान्यपुपुराणानि पुराणेभ्य एव निगंतानीति याज्ञवल्क्येन पुराणत्वेन संगृहीतानि', और टिप्पणी की है कि इससे प्रकट होता है कि उपपुराण याज्ञवल्क्य को विदित थे। प्रो० हज्जा यहाँ भ्रम में पड़ गये हैं, उनकी टिप्पणी

करने के उपरान्त उनके संक्षिप्त संस्करण रूप में उपपुराण बनाये। १९ विमिन्न ग्रन्थों की उपपुराण-सूचियाँ, जिनमें अधि-कांश प्रो० हज्जा ने अपने उपपुराण-सम्बन्धी लेख (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द २१, पृ० ४०-४८) एवं 'स्टडीज' (पृ० ४-१३) में रखी हैं, एक-दूसरे से मेल नहीं रखतीं। मत्स्य० ने केवल चार उपपुराणों के नाम गिनाये हैं, अतः ऐसा सोचना कि उस श्लोक के समावेश के समय तक केवल चार ही उपपुराण थे, अतार्किक नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि उस समय तक केवल उन चार ही को उपपुराण की महत्ता प्राप्त हो सकी थी। बहुत-से उपपुराण पश्चात्कालीन हैं। नरसिंह, विष्णुधर्मोत्तर, देवी जैसे थोड़े से उपपुराण सम्मवतः ७ वीं या ८ वीं शती के हैं। प्रो॰ हज्जा ने १८ उपपुराणों के निर्माण-काल को ६५०-८०० ई० के बीच रखा है (ए० बी॰ ओ॰ आर॰ आई०, जिल्द २१, पृ० ५१ एवं 'स्टडीज इन उपपुराणज', जिल्द १) । उन्होंने यह माना है (पृ० १४) कि उपपुराण-साहित्य में बहुत-से ग्रन्य अपेक्षाकृत बाद के हैं, किन्तु उन्होंने बड़े साहस के साथ उद्घोष किया है कि उपपुराणों को आरम्भ गुप्त-काल के लगभग हो चुका था। इस उद्घोष के लिए हमारे पास कोई भी प्रमाण नहीं है। उपपुराणों के प्रणयन की तिथियों पर लम्बा विवेचन यहाँ अनावश्यक है। हमें जानना चाहिए कि जब प्रमुख १८ पुराणों ने अपना आज का रूप पा लिया, उन दिनों उपपुराणों की संख्या छोटी थी, वे प्रमुख पुराणों के संक्षिप्त रूप माने जाते थे। वे पुराण, जिन्होंने उपपुराणों का उल्लेख किया है, ऐसा नहीं कहते कि वे दैवी प्रेरणा से युक्त व्यास द्वारा प्रणीत हुए (प्रत्युत किन्हीं मुनियों द्वारा, जैसा कि कुर्म का कथन है), आरम्भिक रूप में उन्हें १८ पुराणों जैसी प्रामाणिकता नहीं प्राप्त थी। सौर (जो स्वयं एक उपपुराण है) उपपुराणों को खिल कहता है (९।५)। स्मृतितत्त्व (१५२०-१५७० ई०) या वीरिमत्रोदय (१७ वीं शती के पूर्वार्ध में) जैसे मध्यकालीन निबन्धों ने ही (जो महापुराणों एवं उपपुराणों से कई शतियों के उपरान्त लिखे गये, जिनके लेखकों को इन दो प्रकारों वाले पुराणों के काल की दूरी का ज्ञान नहीं था) पुराणों को घर्म का मूल माना है (याज्ञवल्क्यस्मृति में) और वे हीं ऐसा कह सकते हैं कि

सर्वथा त्रृटिपूणं है। इस वाक्य में जो कुछ है उसका यही अर्थ है कि वीरिमश्रोदय ने १७ वीं जाती (याजवल्क्य के लगभग १५०० वर्षों के उपरान्त) में ऐसा विचार किया कि याज ने अपनी स्मृति (याज ११३) के 'पुराण' ज्ञब्द में 'उपपुराणों' को भी रखा। यह मित्र मिश्र का मत है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि हम इसे मानें; हमें इससे कोई अनुमान निकालने की आवश्यकता नहीं है। धर्म-साधन के रूप में पुराण को ही याज ने माना है, किन्तु उनके समय में कितने पुराण प्रणीत हो चुके थे, इस विषय में वे पूर्णतया मौन हैं। उनके समय में तीन से अधिक पुराण थे, ऐसा सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। ऐसा सोचना असम्भव है कि उन्होंने 'पुराण' शब्द के अन्तर्गत उपपुराणों को भी रखा है, और वह भी केवल इस बात पर कि कुछ उपपुराणों की रचना सन् १००० ई० के पूर्व हो चुकी थी।

१९. अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु । अष्टावका पुराणानि श्रुत्वा संक्षेपती द्विजाः ।। कूर्म० (१।१।१६)। यह और आगे वाले क्लोक, जिनमें १८ उपपुराणों का उल्लेख है, हेमाद्रि (व्रत, भाग १, पृ० २१), रघुनन्दन (मल-मासतस्व, पृ० ७९२-७९३), मित्र मिश्र (परिभाषाप्रकाक्ष, पृ० १३-१४, जो वीरिमित्रोवय का एक अंश है) तथा अन्य मध्यकालीन लेखकों द्वारा उद्धृत हैं। ये लेखक १५ वीं शती के उपरान्त के हैं, केवल हेमाद्रि १३ वीं शती के उत्तरार्घ का है। ऐसा कहना कि ये क्लोक हेमाद्रि में क्षेपक रूप में आ गये हैं, ठीक भी हो सकता है। यह द्रष्टव्य है कि रघुनन्दन ने पहले स्पष्ट रूप से नार्रासह , नन्दी, आदित्य एवं कालिका नामक चार उपपुराणों के नाम लिये हैं और तब कूर्म० से १८ उपपुराणों के नाम उद्धृत किये हैं।

## धर्मशास्त्र का इतिहास

देराणों के साथ उपपुराण भी हैं। मित्र मिश्र मिश्र में लेसे लेखक ही ऐसी उक्ति कह सकते हैं, किन्तु उनके मत को स्वीकार करने के लिए हम बाघ्य नहीं हो सकते। यह भी सन्देहात्मक है कि याज्ञवल्क्य पुराण शब्द से आज के महापुराणों की ओर संकेत करते हैं या वे यह जानते थे कि उनके काल में इनकी संख्या अठारह थी। यदि कुछ उपपुराण अपने की ओर संकेत करते हैं या वे यह जानते थे कि उनके काल में इनकी संख्या अठारह थी। यदि कुछ उपपुराण अपने की महापुराणों की माँति ही प्रामाणिक मानें तो यह वैसा ही है जैसा कि महापुराण अपने विषय में कहते हैं कि कि सान सर्वप्रथम पुराणों के विषय में सोचा और तब उनके अघरों से वेदों की उद्मूति हुई। इस प्रकार के आत्म-गौरव की बात पर आज के विद्वान् किसी प्रकार का घ्यान नहीं देते। उपपुराण मुनियों एवं ऋषियों के द्वारा ही उत्पन्न हुए। कई महरवपूर्ण बातों में उपपुराण महापुराणों से स्पष्ट रूप से मिन्न हैं। प्रथम बात यह है कि १८ पुराण अर्घ-दैवी विभूति व्यास द्वारा प्रणीत समझे गये हैं; दूसरी बात यह है कि मत्स्य० एवं कूर्म० के अनुसार ये (उपपुराण) पुराणों के संक्षेप हैं; तीसरी बात यह है कि उपपुराणों के क्लोक सभी पुराणों के सम्मिलित क्लोकों की संख्या चार लाख में सम्मिलित नहीं हैं; चौथीं बात यह है कि आरिम्मिक टीकाकार एवं निवन्धकार (यथा मिताक्षरा, कृत्यकल्पतरु) या तो किसी उपपुराण का उल्लेख ही नहीं करते या करते भी हैं तो केवल आघे दर्जन बार और वह भी यदा-कदा; अन्तिम बात यह है, जैसा कि स्वयं प्रो० हच्चा कहते हैं कि विभन्न सम्प्रदायों के अनुयायी, यथा—शाक्त, सौर, पाञ्चरात्र अपने पुराणों में क्षेपक भरते जाते थे और कुछ के विषय में तो इतना कहा जा सकता है कि उन्होंने सर्वथा नये एवं स्वतन्त्र प्रत्य लिख डाले, जिनके द्वारा वे अपने विचारों का प्रसार करते थे और उन्हें पुराणों की संज्ञा से विमूषित करते थे।

घर्मशास्त्र की प्रारम्भिक टीकाएँ एवं निबन्ध अति प्रसिद्ध उपपुराणों की ओर बहुत ही कम संकेत करते हैं। मिताक्षरा ने, यद्यपि इसने ब्राह्म का नाम लिया है (याज्ञ० ११३ एवं ४५), निम्नोक्त पुराणों से उद्धरण लिया है, मत्स्य (बहुत अधिक), विष्णु (याज्ञ० ३१६), स्कन्द (याज्ञ० ३१२०), मित्र्य (याज्ञ० ३१६), मार्कण्डेय (याज्ञ० ११३६, २५४, ३११९, २८७, २८९) एवं ब्रह्माण्ड (याज्ञ० ३१३०)। किन्तु याज्ञवल्क्यस्मृति की इस प्रसिद्ध टीका में कहीं किसी उपपुराण का उल्लेख नहीं है। लक्ष्मीघर के कल्पतर (१११०-११३० ई० के लगभग प्रणीत) ने महापुराणों के बहुत-से उद्धरण विये हैं, किन्तु केवल छह उपपुराणों के नाम लिये हैं, यथा—आदि (शुद्धि पर केवल दो बार), नन्दी (दान एवं नियतकालिक पर बहुत-से उद्धरण), आदित्य, कालिका, देवी, नर्रासह (इन सभी चारों के उद्धरण विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में)। अपरार्क (१२ वीं शती के पूर्वार्ध में) ने ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, मित्रध्यत्, मार्कण्डेय, वायु, विष्णु एवं मत्स्य के उद्धरण दिये हैं, किन्तु नाम से केवल आदि, आदित्य, कालिका, देवी, नन्दी, नृसिंह, विष्णु-धर्मोत्तर (सात बार), विष्णुरहस्य (एक बार) एवं शिवधर्मोत्तर (एक बार) को पुकारा है। दानसागर (११६९ ई० में लिखित) में आया है 'उक्तान्युपपुराणानि व्यक्तदानविधीनि च।' अर्थात् 'उपपुराणों का प्रकाशन हुआ है जो दानिधि बताते हैं', और इसमें ये नाम आये हैं—आद्ध (आदि या ब्रह्म ?), आदित्य, कालिका, नन्दी, नर्रासंह, मार्कण्डेय, विष्णुधर्मोत्तर एवं साम्ब। इसमें टिप्पणी आयी है कि विष्णुरहस्य एवं शिवरहस्य केवल संग्रह रूप में हैं। उपपुराणों के विषय में १९७० ई० के उपरान्त के लेखकों की चर्चा अनावश्यक है।

लगमग एक दर्जन मुख्य पुराणों में १८ पुराणों की ओर जो संकेत मिलते हैं तथा उनमें कुछ के विषयों का जो उल्लेखन है, उससे स्वमावतः ऐसा अनुमान निकल आता है कि ये वचन (उक्तियाँ) तब जोड़े गये जब सभी अठारह पुराण अपने पूर्ण रूप को प्राप्त हो चुके थे। ऐसा विश्वास करना सम्मव नहीं है कि सभी मुख्य पुराण एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही काल में प्रणीत हुए, या एक ही काल में बहुत-से लेखकों द्वारा लिखे गये। इसके अतिरिक्त पुराणों के बहुत-से संस्करण या तो एक ही पाण्डुलिपि पर या अनियमित ढंग से एकत्र की गयी कुछ पाण्डु-लिपियों पर आधारित हैं, जैसा कि महाभारत के उस संस्करण के विषय में कहा जा सकता है जो बी॰ ओ॰ आर॰

आई० (भण्डारकर ओरिएण्टल रिचर्स इंस्टीट्यूट, पूना) द्वारा प्रकाशित हुआ है। अतः बहुत-से निष्कर्ष, जो पुराणों के प्रचलित प्रकाशित संस्करणों पर या पाण्डुलिपियों पर आधारित हैं, केवल अनुमानित ही मानने चाहिए, क्योंकि वे आगे चलकर भ्रामक एवं त्रुटिपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। विण्टरनित्ज महोदय ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आव इण्डियन लिट,रेचर' (अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, जिल्द १, पृ० ४६९) में जो कहा है, यथा—'महामारत में प्रत्येक विमाग, इतना ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक क्लोक की तिथि का निर्णय पृथक् रूप से होना चाहिए।' यही बात हम पुराणों के विषय में और अधिक बल देकर कह सकते हैं, विशेषतः ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक प्रयोजनों के विषय में, जब हम किसी विभाग या पंक्ति का प्रयोग करना चाहते हैं।

यह ठीक है कि पुराणों एवं कुछ प्राप्त उपपुराणों में बहुत-सी प्राचीन गाथाएँ एवं परम्पराएँ पायी जाती हैं किन्तु ये आख्यान आदि इस प्रकार बहुत-से हाथों में पड़कर दूषित हो गये हैं या इतने बढ़ गये हैं, क्योंकि सम्प्रदाय-विशेष ने अपनी मान्यताओं को उमारने के लिए अथवा अपने सम्प्रदाय की पूजा-पद्धित को श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए आख्यानों एवं परम्पराओं में इतनी वृद्धि कर डाली है कि उनसे तथ्य निकालने के पूर्व तथा प्राचीन एवं मध्यकाल के विश्वासों एवं भारतीय समाज के सामान्य स्वरूप को जानने के लिए हमें बहुत सतर्क रहना पड़ेगा।

हमारे पास अभी तक कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं प्राप्त हो सका है जिसके आघार पर हम विष्णुघर्मोत्तर को छोड़कर किसी अन्य उपपुराण को ८ वीं या ९ वीं शती के पूर्व प्रणीत जान सकें। पुराणों के विषय में भी बहुत-से क्षेपकों का अनाचार एवं अतिचार कम नहीं है। १८ पुराणों, उनकी संख्या एवं विषयों के बारे में बहुत-से मयंकर क्षेपक हैं। किन्तु पुराणों में अति प्राचीन वातें हैं और वे उपपुराणों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय हैं, क्योंकि उनके उद्धरण ८वीं एवं ९वीं शताब्दी के लेखकों या उनसे भी पुराने लेखकों की कृतियों में मिल जाते हैं।

अमरकोश ने 'इतिहास' को 'पुरावृत्त' (अर्थात् अतीत में जो घटित हुआ वह) एवं 'पुराण' को 'पञ्चलक्षण' (अर्थात् जिसमें पाँच लक्षण या विशेषताएँ हों) माना है। निःसंदेह यह ठीक ही है कि कुछ पुराण 'पुराण' को 'पञ्चलक्षण' कहते हैं और उन पाँच लक्षणों को यों कहते हैं—सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय के उपरान्त पुनः सृष्टि), वंश (देवों, सूर्य, चन्द्र एवं कुलपितयों के वंश), मन्वन्तर (काल की विस्तृत सीमाविधयां), वंशानुचरित या वंश्यानुचरित (सूर्य, चन्द्र एवं अन्य वंशों के उत्तराधिकारियों के कार्य एवं इतिहास)। मागवत के अनुसार पुराणों में दस विषयों का उल्लेख है। उसमें यह मी कहा गया है कि कुछ लोगों के मत से केवल पाँच विषयों की चर्चा है। '' मागवत के दस विषय हैं—सर्ग, विसर्ग (नाश के उपरान्त विलयन या सृष्टि), वृत्ति (शास्त्र-हारा व्यवस्थित या स्वामाविक जीवन-वृत्तियाँ अर्थात् जीने के साधन), रक्षा (जो लोग वेदों से घृणा करते हैं उनका अवतारी देवता नाश करते हैं), अन्तर (मन्वन्तर), वंश, वंश्यानुचरित, संस्था (लय के चार प्रकार), हेतु (सृष्टि का कारण, यथा आत्मा, जो अविद्या के वश में होकर कर्म एकत्र करता है) एवं अपाश्रय (आत्माओं का आश्रय, अर्थात् ब्रह्म)। मत्स्यपुराण ने पुराणों की अन्य विशेषताओं की चर्चा की है, यथा—सभी पुराणों में मनुष्यों के चार पुरुषार्थों का

२० पुराणलक्षणं ब्रह्मन् ब्रह्मांविभिनिं रूपितम् । शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ।। सर्गोस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च ।। वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः । दशिभलंक्षणंर्युक्तं पुराणं तद्विद्यो विदुः । केचित्पंचिववं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया ।। भागवत १२।७।८-१०; ११-१९ तक के श्लोकों में वस लक्षणों का अर्थं है: हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरिवद्याकर्मकारकः । ये चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमृतापरे ।। व्यतिरेकान्वयो यस्य जाप्रतुस्वपनमुष्पितषु । मायामयेषु तद् ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ।। भागवत (१२।७।१८-१९) ।

उल्लेख है; धर्म के विरुद्ध आचरण करने के प्रतिफल भी विणित हैं; पुराणों का सास्विक, राजस एवं तामस भागों में विभाजन है; सात्विक एवं राजस पुराण कम से हिए एवं ब्रह्मा की महत्ता की प्रशंसा करते हैं, तामस पुराण अग्नि एवं शिव की महत्ता गाते हैं, मिश्रित पुराण सरस्वती एवं पितरों की महत्ता गाते हैं। मनु ने केशव से जो प्रश्न किये हैं (मत्स्य० २।२२-२४) वे उन विषयों के परिचायक हैं जो पुराण में कहे जायँगे, यथा—सृष्टि एवं प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंश्याचरित, विश्व का विस्तार तथा दान, श्राद्ध, वर्णों, आश्रमों, इष्ट एवं पूर्त, देव-मूर्ति-प्रतिष्ठापन आदि से सम्बन्धित नियम।

यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि अमरकोश में पूराणों की विशेषताओं के विषय में पाँच लक्षणों का उल्लेख क्यों हो गया है। अमरकोश को हम ५ वीं शती के उपरान्त का ग्रन्थ नहीं कह सकते। र यह सम्भव है कि उस काल के पूर्व पूराणों की संख्या अधिक नहीं थी, वे तब तक अति वृद्धि को नहीं प्राप्त हो सके थे और चूँकि इतिहास एवं पूराण एक साथ ही पाँचवें वेद के रूप में उपनिषदों द्वारा पुकारे जाते थे, अतः उन दोनों के कुछ विषय समान थे। इतिहास में सम्भवतः सृष्टि, प्रलय, मन्वन्तरों आदि का निरूपण नहीं होता था, उसमें केवल राजाओं के वंशों का वर्णन तथा अतीत के वीरों के साहसिक कर्मों एवं गाथाओं का उल्लेख होता था। कभी-कभी इतिहास (महाभारत) पुराण की संज्ञा पा लेता है और कुछ वर्तमान पुराण अपने को इतिहास कह उठते हैं। उदाहरणार्थ, वायुपुराण (१०३।४८, ५१) एक ही संदर्भ में अपने को इतिहास एवं पुराण दोनों कहता है। रेर ब्रह्मपुराण अपने को पुराण एवं आख्यान दोनों कहता है (२४५।२७ एवं ३०)। महामारत जो अपने को सामान्यतः इतिहास कहता है (यथा आदि १।१९, २६, ५४) या इतिहासों में सर्वश्रेष्ठ कहता है, तब मी अपने को 'आख्यान' (आदि० २।३८८-८९), '<mark>काव्य' (आदि० २।३९०), 'कार्ष्णंवेद' (आदि० १।२६४) एवं 'पुराण' (आदि० १।१७) कहता है।<sup>२३</sup> इससे प्रकट</mark> होता है कि प्रारम्भिक रूप में दोनों के बीच में केवल एक झीनी चादर जैसा अन्तर था। पुराण को 'पञ्चलक्षण' रूप में परिमाषित करते हुए अमस्कोश एवं कुछ पुराणों ने उन विषयों की ओर संकेत कर दिया है जो पुराणों को इतिहास एवं संस्कृत साहित्य की अन्य शाखाओं से मिन्न करते हैं। यह हमने बहुत पहले ही देख लिया है कि आपस्तम्ब के पूर्व के पुराण एवं मविष्यत्पुराण में न-केवल सर्ग एवं प्रतिसर्ग का ही उल्लेख था, प्रत्युत स्मृति-सम्बन्धी विषय भी सम्मिलित थे। पुराणों एवं अमरकोश में दी हुई परिभाषा से यह निष्कर्ष निकालना नहीं चाहिए कि प्राचीन पुराणों में केवल पाँच ही विषय निर्घारित थे, जैसा कि किर्फेल साहब विश्वास करते हैं (देखिए किर्फेल का आइन्लीतुंग (पृ०

२१. मैक्समूलर ('इण्डिया, ह्वाट कैन इट टीच अस', पू० ३२८, १८८२) ने लिखा है कि अमरकोश का चीनो अनुवाद ५६१-५६६ ई० में हुआ। शीरस्वामी की टीका युक्त अमरकोश के सम्पादन में श्री ओक महोदय ने इसे चौची शती का माना है। होइन्लं (जे० आर० ए० एस्०, १९०६, पू० ९४०-९४१) ने एक हलके एवं खींचा-तानी वाले प्रभाण के आवार पर अमरकोश को ६२५ ई० एवं ९५० ई० के मध्य में कहा है।

२२. इमं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽपि च।।...घन्यं यशस्यमायुष्यं पुष्यं वेदैश्च संमतम्। कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना।। वायु (१०३।४८-, ५१), और देखिए वायु १०३।५६ (इतिहास) एवं ५८ (पुराण), ब्रह्माण्ड ४।४।४७, ५० (जो वायु १०३।४८ एवं ५१ ही है)।

२३. जयो नामेतिहासोयं श्रोतव्यो विजिगीवुणा। उद्योग ०१३६।१८; जयो नामेतिहासोयं श्रोतव्यो मोक्ष-मिच्छता। स्वर्गारोहणिक० (५।५१); इतिहासोत्तमावस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः। आदि० (२।३८५)। अनाश्चित्येद-माल्यातं क्या मुवि न विद्यते। आदि० २।३७ एवं ३८८; इदं कविवरै: सर्वेराख्यानमुपजीव्यते।। आदि० २।३८९। २२, पुराण पञ्चलक्षण); जर्नल आव वेंकटेश्वर ओ० आई०, जिल्द ७ एवं पृ० ९४, (जहाँ किर्फेल का मत दिया हुआ है)। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पाँच विषय ऐसे थे जो पुराणों को साहित्य की अन्य शाखाओं से पृथक् सिद्ध करते थे और विशेषतः इतिहास से, जो इसका सजातीय था। या यह भी हो सकता है कि ये पाँच लक्षण पुराणों के लिए आदर्श रूप में निर्घारित किये गये थे और पुराण-वर्ग के प्रारम्भिक प्रतिनिधि ग्रन्थों में ये पाँच लक्षण (आप० ध० सू० के पूर्व) नहीं पाये जाते थे।

विद्यमान पुराणों में पाँच से अधिक विषय पाये जाते हैं। कुछ पुराण इन पाँच विषयों को स्पर्श मात्र करते हैं और अन्य विभिन्न विषयों पर विश्वद वर्णन उपस्थित करते हैं। केवल कुछ पुराण ही पाँच लक्षणों पर प्रमूत प्रकाश डालते हैं। आज के महापुराणों के विस्तार के तीन प्रतिशत से कम ही अंश में 'पंचलक्षण' का विवरण समाप्त हो जाता है। जितने पुराण हैं उनमें केवल विष्णुपुराण ही 'पंचलक्षण' परिमाषा के अनुसार सम्यक् ठहरता है, किन्तु इसमें कुछ अन्य विषय भी उल्लिखित हैं। यदि गणना की जाय तो पता चलेगा कि विद्यमान प्रमुख १८ पुराणों में लगमग १,००,००० रलोक ऐसे हैं, जो व्रत, श्राद्ध, तीर्थ एवं दान के चार विषयों पर प्रमूत प्रकाश डालते 'हैं। वहुत-से पुराणों में समान अध्यायों एवं विषयों का समावेश पाया जाता है (यथा मत्स्य एवं पद्म, वायु एवं ब्रह्माण्ड में लम्बे-लम्बे अंश एक-दूसरे से लिये गये हैं। यह सम्मव है कि आज के प्रमुख पुराण आदि काल के पुराणों के, जो सम्मवतः उन दिनों संख्या में १८ नहीं थे और याज्ञवल्क्य-स्मृति से पहले प्रणीत हुए थे, एकपक्षीय एवं वृद्धिप्राप्त प्रतिनिधि मात्र हों। आज हमें जो कुछ ज्ञात है, उसके आधार पर यह कहना सम्मव नहीं है कि आदि काल में याज्ञवल्क्य० के पूर्व पुराण क्या थे और उनमें किन-किन विषयों का समावेश होता था। १८ की संख्या सम्मवतः इसलिए प्रसिद्ध हुई कि महाभारत के सम्बन्ध में कई बातों में वह महत्त्वपूर्ण थी—महाभारत १८ दिनों तक चलता रहा, उसमें १८ अक्षीहिणी सेनाएँ लड़ी थीं, महाभारत में १८ पर्व हैं और गीता में मी १८ अध्याय हैं। "

पुराणों को कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, यथा—(१) ज्ञान-कोशीय, यथा अग्नि, गरुड़ एवं नारदीय; (२) विशेषतः तीर्थ से सम्बन्धित, यथा पद्म, स्कन्द एवं भविष्य; (२) साम्प्रदायिक, यथा लिंग, वामन, मार्कण्डेय; (४) ऐतिहासिक, यथा वायु एवं ब्रह्माण्ड। सम्भवतः वायु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य एवं विष्णु विद्यमान पुराणों में सबसे प्राचीन हैं, यद्यपि उनमें भी समय-समय पर प्रभूत वृद्धियाँ होती रही हैं।

सात पुराणों में ऐतिहासिक सामग्रियाँ पायी जाती हैं, यथा महामारत तक के प्राचीन वंश तथा महामारत से आगे आन्ध्रों एवं गुप्तों के अम्युदय तक के वंश; ये सात पुराण हैं—वायु (९९।२५०-४३५), विष्णु (४।२०।१२ से

२४. जवाहरणार्थ, मत्स्य अध्याय ५५ एवं ५७-६० सर्वया पद्म के ५१२४१६४-२७८ हैं, मत्स्य ६२-६४=पद्म ५१२१६१-१६४, मत्स्य ६१-७०=पद्म ५१२३१२-१४६, मत्स्य ७१।७२=पद्म ५१२४११-६४, मत्स्य ७४-८०=पद्म ५१२११२१८१-३२१, मत्स्य ८३।९२=पद्म ५१२१८१-२१३ आदि। किर्फेल ने 'पुराण पञ्चलक्षण' (तथा जिल्ब ७, पृ० ८४-८६, जे० वी० ओ० आई०) में ब्रह्माण्ड एवं वायु के एक अध्याय में समानता प्रविशत की है और टिप्पणी की है कि ब्रह्माण्ड कुछ बातों में (११२७, जिसमें १२९ इलोक हैं तथा २१२१-५८ जिसमें २१४१ इलोक हैं) वायु से नहीं मिलता, वायु के २७०४ इलोक ब्रह्माण्ड से किसी प्रकार की समानता नहीं प्रकट करते (देखिए पुराण पंचलक्षण, पृ० १३ एवं जे० वी० ओ० आई०, जिल्व ७, १९४६, पृ० ८७)। किर्फेल ने ब्रह्माण्ड एवं वायु के समान अध्यायों की एक तालिका प्रस्तुत की है (पृ० १५-१६ एवं जिल्व ७, पृ० ८८-९०, जे० वी० ओ० आई०)। २५. देखिए ओट्टो स्टीन का १८ संख्या सम्बन्धी लेख (पूना ओरिएण्टिलस्ट, जिल्व १, पृ० १-३७)।

#### धर्मशास्त्र का इतिहास

४।२४।४४ तक), ब्रह्माण्ड (३।७४।१०४-२४८), सागवत (१।९२।९-१६, ९।२२।३४-४९ एवं १२।१७), बरुड़ (१४० एवं १४१।१-१२), पविष्य (३।३ एवं ४, यह वृत्तान्त व्यावहारिक रूप में सर्वथा व्यर्थ एवं निरर्थक है)। मत्स्य में आन्ध्र राजाओं की पूरी सूची पायी जाती है और उसमें (२७३।१६-१७) आया है कि २९ आन्ध्र राजा ४६० वर्षों तक राज्य करेंगे, किन्तु वायू (९९।२५७-३५८) के अनुसार ३० आन्ध्र राजा ४५६ (४०६?) वर्षों तक राज्य करेंगे। वायू (९९।३५५) एवं मत्स्य (३७३।१६) दोनों पुलोमा (पुलोवा, वायु में) को आन्ध्रों का अन्तिम राजा कहते हैं। टॉल्मी ने, जिसने अपनी पुस्तक 'मारत का भूगोल' सन् १५० ई० में प्रकाशित की, लिखा है कि उसके समय में टोलेमाइओज बैठान (पैठन) का राजा था (देखिए जे० आई० एच, जिल्द २२, १९४३, पृ०८४, एपास्टिल्स आव कल्याण)। अतः स्पष्ट है कि ये ऐतिहासिक वृत्तान्त १५० ई० के उपरान्त ग्रन्थों में संगृहीत हुए होंगे। केवल चार पुराणों, यथा वायु, ब्रह्माण्ड, मागवत एवं विष्णु ने सामान्य रूप से कहा है कि गुप्त कुल के राजा गंगा की तलहटी में प्रयाग, साकेत (अयोघ्या) एवं मगघ में राज्य करेंगे, किन्तु गुप्त राजाओं के नाम विशेष रूप से नहीं आये हैं। गुप्त-सम्बन्धी पंक्तियाँ बहुत अंश तक अशुद्ध हैं। पाजिटर (डाइनेस्टीज आव दि किल एज, पृ० १२) आदि ने तक दिया है कि समुद्रगुप्त एक महान् विजेता था, जैसा कि प्रयाग के स्तम्म की प्रशस्त से अमिव्यक्त है (फ्लीट, गुप्त इंस्क्रिक्शंस, सं० १)। अधिकांश लेखकों का मत है कि गुप्त-वंश का राज्य ई० ३२० में आरम्म हुआ। ऐसा तर्क उपस्थित किया जाता है कि यदि पुराणों के शोधकर्ता या शोधकर्ताओं को समुद्रगुप्त की महत्त्वपूर्ण विजयों का पता रहा होता तो वे उसका नाम तो अवश्य ही लेते, अतः पुराणों का शोधकर्ताओं करने समुद्रगुप्त की महत्त्वपूर्ण विजयों का पता रहा होता तो वे उसका नाम तो अवश्य ही लेते, अतः पुराणों का शोधकर्ताओं करने इत्य ६० में हुआ।

पुराणों से सम्बन्धित बहुत बड़ा साहित्य निर्मित हो गया है। जो लोग इस विषय में अभिरुचि रखते हों अथवा जिन्हें विशेष जानकारी प्राप्त करनी हो वे निमोक्त कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों या लेखों आदि का अवलोकन कर सकते हैं—विल्सन की मूमिका (विष्णुपुराण का अंग्रेजी अनुवाद, जिल्द १, १८६४); एफ० ई० पार्जिटर के ग्रन्थ, यथा—'पुराण टेक्स्ट्स आव दि डाइनेस्टीज आव दि कलि एज' (१९१३), 'ऐंस्येण्ट इण्डियन जीनियालाजीज' (आर॰ जी॰ मण्डारकर मेंट ग्रन्थ, पृ० १०७-११३), 'इण्डियन हिस्ट्रारिकल ट्रेडिशन' (आक्सफोर्ड, १९२२) ; डब्लू॰ किर्फेल के ग्रन्थ, यथा—'डास पुराण पञ्चलक्षण' (बॉन, १९२७), 'डाइ कॉस्मोग्रैफी उर इण्डेर' (१९२०), 'भारतवर्ष' (स्टुटगार्ट, १९३१); त्रीज की कृति, यथा—'पुराण स्टडीज'(पत्री कमेमोरेशन जिल्द, पृ० ४८२-४८७); हरप्रसाद शास्त्री द्वारा एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल के तत्त्वावघान में उपस्थापित पाण्डुलिपियों की विवरणात्मक पुस्तक-सूची (जिल्द ५, मूमिका) तथा उनका लेख (महापुराण, जे० बी० ओ० आर० एस्०, जिल्द १५, पृ० ३२३-३४०); प्रो॰ बी॰ सी॰ मजुमदार का लेख (आशुतोष मुखर्जी रजत जयन्ती ग्रन्थ, ३, ओरिण्टैलिया, भाग २, पृ० ९-३०); डा० ए० बनर्जी-शास्त्री का लेख (ऐंश्येण्ट इण्डियन हिस्टॉरिकल ट्रेडिशन, जे० बी० ओ० आर० एस्०, जिल्द १३, पृ० ६२-७९, जिसमें मैकडोनेल, पार्जिटर आदि के अप्रामाणिक वक्तव्यों को शुद्ध करने का प्रयास किया गया है) ; 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इण्डिया' (जिल्द १, पृ० २९६-३१८) ; विन्तरिनत्ज्ञ की 'हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर' (इंगलिश अनुवाद, जिल्द १,पृ० २९६-३१८) ; प्रो० एच्० सी० हष्त्रा की 'स्टडीज इन दिनि पुरानिक रेकर्ड्स आव हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स' (ढाका, १९४०), 'पुराणज इन दि हिस्ट्री आव स्मृति' नामक लेख (इण्डियन कल्चर, जिल्द १, पृ० ५८७-६१४) ; 'महापुराणज्ञ' (ढाका यूनिवर्सिटी स्टडीज, जिल्द २, पृ० ६२-६९) ; 'स्मृति चैप्टर्स इन पुराणज' (आई० एच्० क्यू०, जिल्द ११, पृ० १०८-१३०); 'प्री-पुरानिक हिन्दू सोसाइटी राइट्स एण्ड कस्टम्स इंफ्लुएंस्ड बाई दि इकनामिक एण्ड सोशल व्यूज आव दि सैकेडोटल क्लास' (ढाका यूनिवर्सिटी स्टडीज, जिल्द १२, पृ० ९१-१०१); 'इंफ्लुएंस आव तन्त्र ऑन स्मृतिनिबन्घज़' (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द १५, पृ० २२०-२३५ एवं जिल्द १६, पृ॰ ३८-६२); 'पुराण लिटरेचर एज नोन टु बल्लालसेन' (जे॰ ओ॰ आर॰, मद्रास, जिल्द १२, पृ॰ १२९१४६); 'सम माइनर पुराणज़' (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द १९, पृ० ६९-७९); 'दि अश्वमेघ, दि कॉमन सोसं ऑव ओरिजिन आव दि पुराण पंचलक्षण एण्ड दि महामारत' (ए०वी०ओ०आर० आई०, जिल्द ३६, पृ० १९०-२०३, १९५५); 'सम लॉस्ट उपपुराणज़' (जे० ए० एस्०, कलकत्ता, जिल्द २०, पृ० १५-३८); दास गुप्त की 'इण्डियन फिलॉसफी' जिल्द ३,पृ० ४९६-५११ (ऑन फिलॉसॉफिकल स्पेकूलेशंस आव सम पुराणज़); डा० डी० आर० पाटिल का लेख 'गुप्त इंस्क्रिपंस एण्ड पुरानिक ट्रेडिशंस' (डी० सी० आर० आई०, जिल्द २,पृ० २-५८, गुप्तामिलेखों एवं पुराणों की पंक्तियों की तुलना); प्रो० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार के ग्रन्थ, यथा—'दि पुराण, ए स्टडी' (आई० एच्० क्यू०, जिल्द ८,पृ० ७४७-६७) एवं 'पुराण इंडेक्स' (तीन जिल्दों में); डा० ए० डी० पुसल्कर का लेख (प्रोग्रेस आव इण्डिक स्टडीज में, १९१७-१९४२, बी० ओ० आर० आई० की रजत-जयन्ती, पृ० १३९-१५२) एवं 'स्टडीज इन एपिकस एण्ड पुराणज आव इण्डिया' (वी० वी० वम्बई, १९५३); प्रो० डी० आर० मनकड के लेख, युगों पर (पी० ओ०, जिल्द ६, माग ३-४,पृ० ६-१०), मन्वतरों पर (इ० हि० क्वा०, जिल्द १८, पृ० २०८-२३०) एवं बी० वी० (जिल्द ६, पृ० ६-१०) में; डा० घुर्ये का समापति-माषण (ए० आई० ओ० सी०, १९३७, पृ० ९११-९५४); डा० ए० एस् अल्तेकर का लेख (जे० बी० ए० यू०, जिल्द ४, पृ० १८३-२२३); डा० यदुनाथ सिंह, 'ए हिस्ट्री आव इण्डियन फिलॉसॉफी' (जिल्द १,पृ० १२५-१७७, पुराणों के दर्शन पर); श्री आर० मार्टिन स्मिथ के दो लेख (जे० ए० ओ० एस्०, जिल्द ७७, सं० २, एप्रिल-जून, १९५७ एवं सं० ४, दिसम्बर १९५७)।

पार्जिटर एवं किर्फेल के महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों के विषय में कुछ टिप्पणियाँ देना आवश्यक है। पार्जिटर ने आदि काल से महामारत तक के इतिहास का ढाँचा खड़ा किया है। उन्होंने महामारत की तिथि ई० पू० ९५० मानी है (ए० आई० एच्० टी०, अध्याय १५, पृ० १८२)। उनका मत है कि प्राचीन मारत में दो परम्पराएँ थीं, अत्रिय एवं ब्राह्मण। उन्होंने कई वार ब्राह्मणों के ऐतिहासिक ज्ञान के अमाव की ओर संकेत किया है और ऐसा घोषित किया है कि पुराण क्षत्रिय परम्परा के परिचायक हैं। उनके मत से तीन जातीय मूल (जड़ें) थे, मानव (या मान्व, जैसा कि उन्होंने कहा है), ऐल एवं सौद्धुम्न, जो कम से द्रविड, आर्य एवं मुण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके मत से, पुराण प्राकृत में लिखे गये ग्रन्थों के संस्कृत रूप हैं और वे ग्रन्थ थे कलियुग के वंशों से सम्बन्धित। बाद के लेखकों ने महाभारत वाली उनकी तिथि नहीं मानी है, क्योंकि तत्सम्बन्धी उनके तर्क न्यायपूर्ण, वस्तुगत एवं पक्षपातरिहत नहीं हैं और वे बहुधा आत्मगत घारणाओं से परेशान हो औसत पर अधिक उतर आते हैं। इनके मत से महाभारत का युद्ध नन्दों से १०५० वर्ष पूर्व हुआ था; अर्थात् महाभारत की तिथि है ई० पू० १४७५। पाण्डुलिपियों एवं मुद्रित पुराणों से हमें परीक्षित् के जन्म एवं नन्द के सिहासनारोहण के बीच के काल में चार अवधियाँ प्राप्त होती हैं, यथा—१०१५ वर्ष (विष्णुपुराण), १०५० वर्ष (वायु, ब्रह्माण्ड एवं मत्स्य की पाण्डुलिपि), १११५ वर्ष (मागवत), १५०० वर्ष (विष्णुपुराण), वास्य की कुछ पाण्डुलिपियाँ)। वास्य पाण्डिटर ने बलपूर्वक तर्क दिया है कि परम्परा

२६. यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्वाभिषेचनम्। एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चवज्ञोत्तरम्।। विष्णु (४।२४।३२); भागवत (१२।२।२६) में आया है 'आरम्य भवतो जन्म...सहस्रं तु ज्ञातं पञ्चवज्ञोत्तरम्।' महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः। एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाञ्चद्वत्तरम्।। मत्स्य २७३।३५ (यहां आया है, एवं वर्षं०), वायु ९९। ४१५ (यहां आया है, महावेवाभिषेकात्तु), ब्रह्माण्ड ३।७४।२२७ (यहां आया है, महानन्वाभिषेकान्तं)। श्रीषर ने भागवत के १२।२।२६ की टीका में कहा है कि नवें स्कन्च में भागवत ने परीक्षित् के समकालीन मगुषराज मार्जार से आगे के २० राजाओं के ज्ञासन-काल के लिए १००० वर्ष माने हैं। इसके उपरान्त ५ प्रद्योतन राजाओं ने १३८

प्रामाणिक है और पौराणिक वंशावलियाँ सर्वथा ठीक हैं (आर० जी० भण्डारकर प्रेजेण्टेशन वाल्यूम, पृ० १०७-११३ एवं ए० आई० एच्० टी०, अघ्याय १०,पृ० ११९-१२५)। इसके अतिरिक्त यह मी कहा जा सकता है कि यह एक सामान्य अनुमृति है कि एक प्रसिद्ध घटना एवं अन्य घटना के वीच के वर्षों का जोड़ बड़ी सरलतापूर्वक स्मरण रखा जा सकता है और मौखिक रूप से सैकड़ों वर्षों तक चला जा सकता है, किन्तु सैकड़ों राजकीय नामों का इस प्रकार चलते जाना सरल नहीं है, कुछ नाम सरलतापूर्वक बीच में ही खिसक जा सकते हैं। और मी, स्वयं मत्स्य. ब्रह्माण्ड एवं वाय का कथन है कि वे इक्ष्वाकू एवं वृहद्रथ के मध्यग केवल प्रसिद्ध राजाओं का ही उल्लेख करेंगे। पौरव वंश में बहत-से राजा थे, किन्तू सबका उल्लेख नहीं हुआ है। अतः यह सम्मावना है कि पश्चात्कालीन वंशों के बहत-से राजाओं के नाम भी छूट गये हों (उदाहरणार्थ, मत्स्य २१३।१६ के अनुसार आन्ध्र २९ थे, वाय ९९।३५७ के अनुसार ३०)। केवल राजाओं के शासन-वर्षों को गिन लेने से ही यह नहीं पता चल सकता है कि अमुक वंश का राज्य इतने वर्षों तक चलता रहा। पाजिटर महोदय को अपने मन में दो बातों (अर्थातु परम्परा एवं पौराणिक वंशावलियों की विश्वसनीयता तथा अत्यधिक प्रसिद्ध घटनाओं के बीच के काल को स्मरण रखने की सुगमता) के साथ महाभारत की तिथि का भी पता चलाना चाहिए था। परीक्षित एवं नन्द के बीच की अविध से सम्बन्धित वक्तव्य को पार्जिटर महोदय अविश्वसनीय मानते हैं, क्योंकि उनके मत से १०१५ एवं १०५० नामक संख्याएँ असंगत हैं। पुराणों की अधिकांश उक्तियों में कोई-न-कोई असंगति अवश्य देखने में आती है। अतः उन्हें यह देखने का प्रयास करना चाहिए था कि १०१५, १०५० एवं १५०० में कौन-सी संख्या प्राचीनतम एवं उत्तम पाण्डुलिपियों से प्रमाणित होती है, विशेषतः जब इन तीन संख्याओं के संस्कृत पर्यायवाची शब्द, यथा पंचदश, पञ्चाशत् एवं पञ्चशत, लेखकों द्वारा (जो पाण्डुलिपियाँ तैयार करते हैं) गड़बड़ी में पड़ सकते हों और सादृश्य के कारण कुछ के कुछ लिख लिये गये हों। यदि हम कम अविघ वाली संख्या ही लें, अर्थात् १०१५ वर्ष, तो महामारत को हम १४४० ई० पू० में रखेंगे (नन्द के राज्यामिषेक के वर्ष ई० पू० ४२५ में १०१५ वर्ष जोड़ने से)। बहुत-से पाश्चात्य लेखकों एवं प्रो॰ एस्॰ एन्॰ प्रघान (क्रॉनॉलॉजी आव ऐंक्येण्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९२७, पृ॰ २४९) ने पौराणिक वक्तव्यों में दोष देखा है, वे उन्हें अव्यावहारिक मानकर छोड़ देते हैं। प्रो० प्रधान ने तीन कुलों के राजाओं को वास्तविक मान लिया है, और विश्वास किया है कि प्रत्येक के लिए २८ वर्ष मध्यम अविध है, और २८ से गुणा करके महामारत की तिथि ई० पू० ११५० निश्चित की है। यहाँ पर उनके तकों पर विचार करना सम्भव नहीं है। वे यह मूल जाते हैं कि स्वयं पुराणों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्होंने केवल मुख्य या महत्त्वपूर्ण राजाओं का ही उल्लेख किया है। और भी, पाजिटर जैसे अन्य लेखक भी हैं जो अन्य देशों की भाँति मारत जैसे देश में भी एक राजा के शासन-काल के लिए १७ या १८ वर्षों का औसत पर्याप्त समझते हैं। हम प्रो० प्रधान के तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। पाश्चात्य लेखकों में अधिकांश, मारतीय विषयों में प्राचीन तिथियाँ निर्धारित करने में संकोच करते हैं या विरक्तता प्रदिशत करते हैं। पार्जिटर महोदय कोई अपवाद नहीं हैं। पाण्डुलिपियों के द्वारा शक्तिशाली समर्थन के रहते हुए भी उपर्युक्त तीन कालाविषयों में से किसी एक को सीघे तौर से मान लेने की अपेक्षा वे कुछ ऐसे साघनों का सहारा लेते हैं जो उनके विचित्र जादूगरी के प्रयासों के परिचायक हैं (ए० आई० एच्० टी॰,पृ॰ १८०-१८३)। उनकी पद्धति की कुछ व्याख्या एवं परीक्षा आवश्यक है।

वर्षों तक राज्य किया। तब शिशुनागों ने ३६० वर्षों तक राज्य किया। इस प्रकार परीक्षित् एवं नन्द के राज्याभिषेक की अविधि १४९८ वर्षों की हुई। इसी से वे उक्त अविध को १५०० वर्षों वाली मानते हैं।

व्यास को भारत-युद्ध के समय में, जो द्वापर युग के अन्त का द्योतक है, जीवित कहा गया है और यह मी कहा गया है कि उन्होंने १८ पुराणों का भी प्रणयन किया था। महाभारत के पूर्व के राजा-नण, पाण्डव वीर और उनके कुछ उत्तराधिकारी वंशज एवं उनके कुछ समकालीन राजा-गण मत्स्य०, वायु०, ब्रह्माण्ड० आदि द्वारा अतीत कहे गये हैं। अधिसोमकृष्ण या अधिसीमकृष्ण ", जो अर्जुन से आगे का छठा उत्तराधिकारी था, उस समय जीवित था जब सत्र में मुर्नियों द्वारा पुराणों का वाचन हुआ था। वायु० (९९।२८२) एवं मत्स्य० (२७१।५) दोनों में ऐसा आया है कि इक्ष्वाकु वंश में वृहद्बल से छठा (या पाँचवाँ, जैसा कि मत्स्य में आया है) उत्तराधिकारी वंशज दिवाकर उस समय जीवित था जब पुराणों का वाचन हुआ था। इसकें उपरान्त ये पुराण (वायु९९।३०, मत्स्य २७१।२३ एवं ब्रह्माण्ड ३।७४।११३) ऐसा वर्णन करते हैं कि जरासंघ (मगघ का राजा) के वंश में, जो पाण्डवों का समकालीन था और जिसका पुत्र सहदेव महामारत में मारा गया, एक सेनजित् था, जो अधिसीमकृष्ण एवं दिवाकर का समकालीन था, और जो सहदेव से सातवें क्रम में था। ये समी तीन राजा पुराणों में वर्तमान राजा कहे गये हैं और वे राजा, जो इन तीनों के उपरान्त राजा हुए, मिवष्य में कहे गये हैं। पाजिटर महोदय सर्वप्रथम ऐक्ष्वाक, पौरव एवं मागघ वंशों के उन राजाओं का योग लगाते हैं, जो वास्तव में संज्ञापित हुए हैं (जिनके नाम गिनाये गये हैं) और उन लोगों को छोड़ देते हैं जिनके नाम नहीं आये हैं (क्योंकि स्वयं पुराणों ने कहा है कि वे केवल प्रमुख राजाओं को ही परिगणित कर रहे हैं)। इस प्रकार योग १४०८ (वर्ष) होता है। उन्होंने इन तीन वंशों के राजाओं (जिनके नाम आये हैं ्और जो कम से ४७, ५० एवं ३१ की संख्या में आते हैं) का औसत शासन-काल निकाला है। वे वास्तविक ऐतिहासिक औसतों की जाँच में राजाओं की लम्बी सूचियों (यथा ४७, ५० एवं ३१) को असम्भव ठहराते हैं। बड़े आश्चर्य की बात यह है कि पार्जिटर महोदय ऊपर कही गयी यह महत्त्वपूर्ण बात मूल जाते हैं कि ऐक्ष्वाक, मागघ एवं पौरव वंशों में सामान्यतः केवल महत्त्वपूर्ण राजाओं के ही नाम पुराणों द्वारा उह्लिखित हैं; वे दूसरी बात यह भूल जाते हैं कि आज के पुराण प्राचीन पुराणों के टुकड़े एवं अंश मात्र हैं, क्योंकि ब्रह्माण्ड (३।७४) में सभी पौरव एवं ऐक्ष्वाक राजा सर्वथा अवर्णित हैं। पाजिटर महोदय महापद्म तक के दस राज्यों के राजाओं के शासन कालों का औसत निकालते हैं और प्रत्येक के राज्य के लिए इस प्रकार २६ वर्ष का माध्यम उपस्थित करते हैं। इसके उपरान्त वे पूर्वी एवं पश्चिमी देशों के चौदह राजाओं की परीक्षा कर प्रत्येक के शासन-काल के लिए १८ वर्षों का माध्यम उपस्थित करते हैं। पाजिटर महोदय का कथन है कि पूर्वी देशों के राजाओं का शासन-काल पश्चिमी राजाओं की अपेक्षा कम होता है, अतः १८ वर्ष का माध्यम वे भारतवर्ष के लिए पर्याप्त समझ लेते हैं। उनका कथन हैं कि ऐसा मानना हमारी उदारता एवं सचाई का द्योतक है। इसके उपरान्त वे शासनों की मध्यमावस्था १८ को २६ (दश शतियों के राजाओं की मध्यम संख्या) से गुणा करते हैं और ४६८ वर्षों की संख्या निर्घारित करते हैं। इस संख्या को वे महापद्म नन्द की तिथि ई० पू० ३८२ (जिसका निर्घारण मी उन्होंने स्वयं किया है) से जोड़ देते हैं और इस प्रकार ई० पू० ८५० (=४६८+३८२) को वे अधिसीमकृष्ण, दिवाकर एवं सेनजित् (जो वर्तमान राजा

२७. अधिसीम कृष्ण की वंश-परंपरा यों है: अर्जुन—पुत्र अभिमन्यु—पुत्र परीक्षित्—पुत्र जनमेजय—पुत्र शतानीक, उसके उपरान्त अश्वमेधवत्त, और उसके उपरान्त अधिसीम कृष्ण। देखिए वायु (९९।२४९-२५८, जिसका अन्तिम क्लोक यह है—अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतीयं महायशाः। यस्मिन् प्रशासित महीं युष्माभिरिदमाह-तम्॥) मत्स्य (५०।५५-६७) में वे ही शब्द हैं जो वायु में हैं, किन्तु वहां अधिसीमकृष्ण को शतानोक का पुत्र कहा गया है।

थे) के शासन-काल की आरम्मिक तिथि ठहराते हैं। इस के उपरान्त वे वर्तमान राजाओं एवं युधिष्ठिर के बीच के राजाओं का पाँच का माघ्यम (औसत) मानकर पाँच राजाओं के लिए लगभग १०० वर्ष मान लेते हैं और इस प्रकार ई० पू० १५० तक पहुँच जाते हैं, जो उनके अनुसार मारत-युद्ध की तिथि है। वे पुराणों (एवं महामारत) के ज्योति:-शास्त्रीय प्रमाण को एक वाक्य में यह कहकर कि 'ज्योतिःशास्त्रीय वक्तव्यों में वैज्ञानिक यथार्थता नहीं पायी जाती और वे बाद में ही कहे गये होंगे', निरादृत कर देते हैं। इस ग्रन्थ के लेखक ने महाभारत, पुराणों, वराहिमिहिर, आयं मट एवं शिलालेखों के प्रमाणों के आघार पर महाभारत की सम्मावित तिथि पर विचार किया है (खण्ड ३), अतः यहाँ पर इसके विषय में विस्तार करना अनावश्यक है। किन्तु प्रस्तुत लेखक को पार्जिटर की विधियाँ बहुत ही भामक एवं त्रुटिपूर्ण जैंचती हैं। किर्फेल जैसे पश्चात्कालीन लेखकों ने पार्जिटर द्वारा प्रतिपादित दो परम्पराओं वाला सिद्धान्त स्वीकृत नहीं किया है और न यही माना है कि पुराण खरोष्ठी लिपि में लिखित प्राकृत माषा के मौलिक ग्रन्थों के संस्कृत रूप हैं (देखिए 'पुराण टेक्ट्स आदि' की. मुमिका, पृ० १६)। एक अन्य महत्त्वपूर्ण एवं स्वतन्त्र साधन का उपयोग न तो पाजिटर ने किया है और न किफेंल ने। ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग ई० पू० ३०० में मेगस्थनीज को ऐसी सूची दी गयी थी जिसमें बच्चुस से लेकर अलेक्जैण्डर तक के राजाओं (१५३ या १५४) के नाम थे, जो कुल मिलाकर ६४५१ वर्षों एवं ३ मासों तक राज्य करते रहे (मैकिण्डिल, ऐंश्येण्ट इण्डिया ऐज डेस्काइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड ऐरियन, १८७७, पु० ११५ एवं कैम्ब्रिज हिस्ट्री आय इण्डिया, जिल्द १, १९२२, पु० ४०९)। यदि थोड़ी देर के लिए कल्पना की जाय कि राजाओं का विवरण अप्रामाणिक है तब भी यह तथ्य रह जाता है कि लगभग ई० पू० ३०० में भारतीयों के पास ऐसे राजाओं की एक सूची थी जो उस तिथि से पूर्व सहस्रों वर्षों तक राज्य करते रहे, न कि कुछ सौ वर्षों तक (जैसा कि पाजिटर महोदय हमें विश्वास दिलाते रहे हैं!)।

हमने बहुत पहुले ऊपर देख लिया है कि आपस्तम्ब ने भविष्यत्पुराण का उल्लेख किया है और एक पुराण से चार क्लोक उद्धृत किये हैं। उस पुराण को भविष्यत्पुराण नाम से सम्भवतः इसलिए पुकारा गया क्योंकि उसमें भविष्यवाणी के रूप में ऐसे राजाओं के नाम एवं वृत्तान्त दिये हुए हैं जो महाभारत के वीरों के उपरान्त उनके वंशों की कुछ पीढ़ियों एवं उनके समकालीन राजाओं के पश्चात् हुए थे; इतना ही नहीं, यह भी सम्भव है कि वह पुराण किसी मुनि द्वारा या व्यास द्वारा प्रणीत हुआ था। क्योंकि कलियुग का आरम्भ महाभारत के उपरान्त माना जाता है; पराशर, पराशर के पुत्र व्यास, व्यास के पुत्र शुक्त अधिक या कम रूप में पाण्डवों के समकालीन थे बौर वे सभी द्वापर युग में होने वाले कहे जाते हैं तथा सभी अठारहों पुराण व्यास द्वारा द्वापर युग में रचित माने गये हैं। अतः अधिसीमकृष्ण एवं उसके समकालीनों के वंशों के कलियुगी राजाओं का इतिहास पुराणों द्वारा मविष्यवाणी के रूप में उपस्थित किया गया है। पाजिटर एवं किर्फेल में दोनों ने यह नहीं देखा कि तथाकथित मावी राजा दो दलों में विमाजित हैं, यथा—ऐल, ऐक्ष्वाक एवं मागघ नामक वंशों के कम से अधिसीमकृष्ण, दिवाकर एवं सेनिजित से लेकर उनके उत्तराधिकारियों तक (यथा—ऐक्ष्वाक वंश में सुमित्र एवं ऐल वंश में क्षेमक) का एक

२८ अत्रानुवंश्वरलोकोयं भविष्यज्ञं स्वाहृतः । इक्ष्याकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति । सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्यति वं कलौ ।। वाय ९९।२९२, मत्स्य २७१।१५-१६, ब्रह्माण्ड ३।७४।१०६; अत्रानुवंशक्लोको-ऽयं गीतो विष्रः पुराविदेः । ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिवंशो देविष्यत्कृतः । क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वं कलौ ।। वाय ९९।२७८, ब्रह्माण्ड ३।७४।२६५, मत्स्य ५१।८८। तीसरे वंश की अन्तिम पीढ़ी के लोगों के विषय में कोई अनुवंशक्लोक नहीं है ।

दल, तथा दूसरा वह दल जिसमें प्रचोत, शुंग, आन्ध्र, शक आदि वंशों के पश्चात्कालीन राजा सम्मिलित हैं। प्रथम दल के राजा सम्भवतः प्राचीन भविष्यत्पुराण या किसी अन्य पुराण में उल्लिखित हैं, जैसा कि आपस्तम्ब में आया है, किन्तु दूसरे दल के राजा-गण उस समय नहीं हुए थे जब मविष्यत्पुराण प्रणीत हुआ (ई० पू० ५००-४०० के पूर्व), प्रत्युत, वे आगे के कालों में लिखित पुराणों में ही चिंचत हो सके। मत्स्य एवं वायु के वचनों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। " मत्स्य में आया है, 'इसके उपरान्त मैं ऐड (ऐल), ऐक्ष्वाक एवं पौरव वंशों के मावी राजाओं की घोषणा करूँगा और इनके साथ मैं उनकी भी घोषणा करूँगा जिनके साथ ये तीनों गुणशील अथवा धर्मात्मा वंश नाश को प्राप्त होंगे तथा मैं उन सभी राजाओं का वर्णन कहुँगा जो मविष्य (पुराण) में कहे गये हैं। इन लोगों से मिन्न राजा उभरेंगे, यथा—क्षत्र (? क्षत्रिय वर्ग के), पारशव (पारशी जाति या ऐसे लोग जो शूद्र वाप एवं ब्राह्मणी माँ से उत्पन्न होते हैं), शूद्र (राजा के रूप में) एवं अन्य जो विदेशी हैं, अन्ध्र, शक, पुलिन्द, चुलिक, यवन, कैवतं (मछली मारने वाले), आभीर, शबर एवं अन्य, जो म्लेच्छ (जाति) से उद्भृत हैं—इन सभी को मैं क्रम से नाम लेकर घोषित करूँगा। इन (दोनों दलों) में प्रथम है अधिसीमकृष्ण जो अभी जीवित है, और मैं इसके वंश के उन राजाओं का वर्णन करूँगा जो भविष्य (पूराण) में वर्णित हैं।' यह वक्तव्य इसे पूर्णरूपेण स्पष्ट करता है कि प्राचीन भविष्यत्प्रराण में ऐल, ऐक्ष्वाक एवं पौरव नामक तीन वंशों के राजा उनके अन्तिम राजा तक उल्लिखित थे, किन्तु पश्चात्कालीन राजा, यथा-आन्ध्र एवं शक, उसमें नहीं चींचत थे। प्रस्तुत लेखक पाजिटर की इस बात से सहमति रखता है (पृ० ८, मूमिका, 'पुराण टेक्स्ट्स' आदि) कि 'मविष्ये कथितान्' (मत्स्य ५०।७७) या 'मविष्ये पठितान्' (वायु ९९।२९२) भविष्य (पुराण) में वींणत वंशजों की ओर संकेत करते हैं और वे केवल 'मविष्य में वर्णित' का ही अर्थ नहीं देते। किन्तु यह वात नहीं समझ में आती कि वे 'मविष्यत्' को 'मविष्य' का विगड़ा हुआ रूप क्यों मान बैठते हैं। 'मविष्यत्' वैसा ही शुद्ध शब्द है जैसा कि 'मविष्य' क्योंकि बहुत वक्तव्यों में ऐसा प्रयोग देखा गया है, यथा वराह (१७७।३४), मत्स्य (५३।६२)।

२९. अत ऊर्घ्वं प्रवश्यामि भविष्या ये नृपास्तया। ऐडेक्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वये तथा।। येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्वाकुकुलं शुभम्। तान्सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथिताभूपान्।। तेम्योपरे पि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः। क्षत्राः पारश्वाः श्रूबास्त्यान्ये ये बहिश्चराः।। अन्वाः (अन्धाः) शकाः पुलिन्वाश्च चूलिका यवनास्तया। कैवर्ताभीरश्वादा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः।। पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चेव ताभूपान्। अधिसीम (सीम?) कृष्णश्चेतेषां प्रथमं वर्तते नृपः। तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्।। मत्स्य (५०१०३-७७)। मिलाइए वायु १९१२६६-२७० (केवल ये अन्तर पाये जाते हैं, यथा— 'पर्यायतः' एवं 'भविष्ये तावतो नृपान्' के लिए 'भविष्ये पठितान्', 'वर्षाग्रतः')। 'पारश्वाः' (पार्श्वाः या पर्शवः) सम्भवतः 'पर्शुं नामक किसी लड़ाकू जाति के लिए प्रयुक्त हुआ है। देखिए 'पश्वादियोषयादिम्यामणजौ' (पाणिनि ५।३१११७) जिससे यह प्रकट होता है कि पाणिनि के काल में पर्शु यौधेय के सदृश 'आयुषजीविसंघ' था। डेरियस के बेहुस्तुन अभिलेख (ई० पू० ५२२-४८६) से प्रकट होता है कि 'पर्शुं लोग प्राचीन पारसी लोग थे। देखिए डा० डी०सी० सरकार कृत ('सेलेक्ट इंस्किप्शंस्,' जिल्व १, पृ० १-६, जहां 'पर्स' एक देश के नाम के रूप में आया है। अपर-जो अन्य अर्थ विया हुआ है वह संवर्भ में नहीं बैठ पाता। पुलिन्व लोग विन्ध्य भाग में रहते थे और अशोक के १३ वें अभिलेख में अन्धों के साथ समन्वित हैं। अमरकोश में आया है 'भेवाः किरातश्वरपुलिन्वा मलेख्यजातयः।'

सम्भवतः पार्जिटर महोदय आपस्तम्व के 'मविष्यत्' को पश्चात्कालीन 'मविष्य' के सदृश समझ लेना चाहते हैं। किन्तु नाम-साम्य के अतिरिक्त कोई अन्य प्रमाण ऐसा नहीं है जिसके आघार पर ऐसा समझा जाय या कहा आय। अतः ऐसा प्रकट होता है कि वर्तमान पुराण ऐल, ऐक्ष्वाक एवं पौरव के वंशजों का वृत्तान्त 'प्राचीन मिव्य्य' के आघार पर देते हैं, किन्तु अन्य एवं अपेक्षाकृत पश्चात्कालीन राजाओं के वृत्तान्त के लिए वे अन्य वातों या मौिखक परम्पराओं का, जिन्हें वे संगृहीत कर सके, सहारा लेते हैं। अन्य परिस्थितियों से यह अनुमान दृढता प्राप्त करता है। आज के पुराण प्राचीन राजाओं के बारे में 'अनुवंश क्लोक' या गाथाएँ उद्धृत करते हैं, यथा—कार्तवीर्य (बायु ९४।२०, मत्स्य ४३।२४, ब्रह्माण्ड ३।१८-२०, ब्रह्म १३।१७) । ये पुराण ऐल एवं ऐक्ष्वाक वंशों के अन्तिम राजा के नाम भी बताते हैं, यथा—कम से सुमित्र एवं क्षेमक। किन्तु अपेक्षाकृत पश्चात्कालीन राजाओं, यथा— आन्भ्रों, शुंगों आदि के बारे में इन पुराणों में कोई गाथा या क्लोक नहीं उद्धृत हुए हैं। पार्जिटर महोदय का कहना है (प० १३, 'पूराण टेक्स्ट्स' आदि) कि प्राचीन मविष्य में गुप्त राजाओं का संकेत मिलता है, किन्तु इस कथन की पृष्टि में हमें कोई प्रमाण नहीं प्राप्त होता। प्राचीन मविष्य का निर्माण आपस्तम्ब (ई० पू० चौथी या पाँचवीं शती) के पूर्व हो चुका था, इससे स्पष्ट है कि मूल रूप में उसमें गुप्तों की ओर किसी प्रकार का संकेत सम्भव नहीं है. क्योंकि गुप्तों का शासन सन् ३२० ई० से आरम्भ होता है। मत्स्य ने गुप्तों का उल्लेख नहीं किया है, वह केवल आन्ध्रों के अघ:पतन का उल्लेख करता है। अतः ऐसा समझा जाना चाहिए कि मत्स्य का प्रणयन अथवा संशोधन तीसरी शती के मध्य या अन्त में हुआ होगा, किन्तु यह सम्भव है कि कुछ अध्याय या श्लोक उस तिथि के उपरान्त जोड़े गये हों। जब वायु (९९।३८३), ब्रह्माण्ड (३।७४।१९५), विष्णु (४।२४।१८) एवं मागवत (१२।१।३७) ने गुप्तों को शासकों के रूप में वर्णित किया तो प्रथम दो ने सम्भवतः ये श्लोक तभी जोड़े जब गुप्त-शासन का आरम्म मात्र हुआ था और विष्णु एवं भागवत (जो अशुद्ध है) ने सम्भवतः वायु एवं ब्रह्माण्ड की पाण्ड्लिपियों से उधार लिया होगा। यह स्पष्ट है कि इन जारों में प्रथम दो लगमग ३२०-३३५ ई० में प्रणीत हुए या संशोधित हुए, और अन्य दो उनसे और बाद।

किर्फेल का 'पुराण पंचलक्षण' नामक ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें पौराणिक विषय का अध्ययन एक नये ढंग से हुआ है। इस ग्रन्थ की जर्मन मूमिका का अंग्रेजी अनुवाद श्री वेंकटेश इंस्टीट्यूट (तिरुपति) के जर्नल (जिल्द ७, पृ० ८०-१२१ एवं जिल्द ८, पृ० ९-३३) में हुआ है। किर्फेल ने पाजिटर के बहुत-से मतों से अपना विरोध प्रकट किया है। उनके प्रमुख निष्कर्ष ये हैं—अग्नि एवं गरुड के संक्षेप एवं विष्णु में गद्य-विस्तार के रहते हुए भी पुराणों के केवल तीन ही पूर्ण दल हैं, यथा—बह्म एवं हरिवंश, ब्रह्माण्ड एवं वायु, तथा मत्स्य के; अन्य पुराण तो उनके छोटे या बड़े अंश मात्र हैं। उपर्युक्त तीन दलों में ब्रह्माण्ड एवं वायु मौलिक रूप से एक ही पुराण थे, विशेषतः इसलिए कि दोनों के अधिकांश एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। किर्फेल का यह भी कहना है कि पाजिटर महोदय का यह मत आमक है कि वायु एवं ब्रह्माण्ड के संयोजन (अर्थात् उनमें आगे जो जोड़ दिया गया है) प्राचीन मविष्य (पुराण) से लिये गये हैं (किर्फेल, पृ० १८, जिल्द ७, उपर्युक्त जर्मल ), प्रत्युत उधार लिया हुआ विषय किसी अन्य प्राचीन स्वतन्त्र ग्रन्थ से है। किर्फेल पाजिटर के इस सिद्धान्त को नहीं मानते कि पुराण प्राकृत माधा के संस्कृत रूपान्तर हैं और न यही स्वीकार करते कि विष्णु अपने वर्तमान रूप में वायु या ब्रह्माण्ड से बाद का है, ऐसा होते हुए भी कि इसमें पुराणों के पंचलक्षण अपने मौलिक रूप में उपस्थित हैं। पुराणों का १८ प्रकारों में विमाजन, उनका सात्रिक, राजस एवं सामस में बँटना मौलिक नहीं है, प्रत्युत वे पुराणों के अन्तिम परिष्कृत रूपों के द्योतक मात्र हैं। पीजिटर ने ऐसा विवार किया था कि कोई उद-पुराण था, जिसने पंच-रक्षणों को व्यवस्थित वा और

उनका पूर्ण एवं स्पष्ट व्याख्यात्मक निर्वाह किया था। किर्फेल महोदय इस कथन को विशुद्ध कल्पनात्मक मामते हैं (उक्त जर्नल की जिल्द, ८, पृ० ३१)।

प्रस्तुत लेखक किर्फेल महोदय के अधिकांश मतों को प्रयोगात्मक रूप से स्वीकार करता है, किन्तु यह मानने को तैयार नहीं है कि पंच-लक्षण (सर्ग आदि) सम्पूर्ण पुराण साहित्य के प्राचीनतम मौलिक अंश हैं।

इस प्रकरण के विषय के साथ पुराणों की तिथि अथवा युग पर विवेचन करना समीचीन नहीं होगा। तो भी दो-एक वार्ते कह देना पूर्णतया अप्रासंगिक नहीं लगता।

पुराणों के विषय में प्रस्तुत लेखक के विचार ये हैं—अथवंवेद, शतपथ ब्राह्मण एवं प्राचीन उपनिषदों में उल्लिखित 'पुराण' के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है, किन्तु इतना स्पष्ट है कि पुराण ने वेदों के समान ही पुनीतता के पद को प्राप्त कर लिया था और वैदिक काल में वह इतिहास के साथ गहरे रूप से सम्बन्धित था। पुराण-साहित्य के विकास की यह प्रथम सीढ़ी थी, किन्तु हम प्राचीन कालों के पुराण के मीतर के विषयों को विल्कुल नहीं जानते। तैं० आ० ने 'पुराणानि' का उल्लेख किया है, अतः उसके समय में कम-से-कम तीन पुराण तो अवश्य रहे होंगे (क्योंकि यह बहुवचन में है और द्विवचन में रहने पर केवल दो का बोध होता)। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र ने एक पुराण से चार क्लोक उद्धृत किये हैं और एक पुराण को मिवष्यत्पुराण नाम से पुकारा है, जिससे प्रकट होता है कि पाँचवीं या चौथी ई० पू० शती तक कम-से-कम मिवष्यत्पुराण नामक पुराण था, और अन्य पुराण रहे होंगे या एक और पुराण रहा होगा जिसमें सर्ग एवं प्रतिसर्ग तथा कुछ स्मृति-विषय रहे होंगे। इसे हम पुराण-साहित्य के विकास की दूसरी सीढ़ी कह सकते हैं, जिसके विषय के बारे में हमें कुछ थोड़ा-बहुत ज्ञात है।

महामारत ने सैंकड़ों क्लोक (क्लोकों, गाथाओं, अनुवंश क्लोकों के नाम से विख्यात) उद्धृत किये हैं जिनमें कुछ तो पौराणिक विषयों की गन्य रखते हैं और कुछ पौराणिक परिधि में आ जाते हैं। कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं। वन-पर्व ने विश्वामित्र की अतिमानुषी विमूति के विषय में एवं उनके इस कथन के विषय में कि वे ब्राह्मण हैं दो क्लोक उद्धृत किये हैं। अनुशासनपर्व ने कुछ ऐसी गाथाएँ उद्धृत की हैं जो पितरों द्वारा पुत्र या पुत्रों की महत्ता के विषय में गायी गयी हैं। ये गाथाएँ शब्दों एवं मावों में इसी विषय में कहे गये पौराणिक वचनों से मेल रखती हैं। उद्योगपर्व (१७८।४७-४८) में मीव्म ने परशुराम से एक क्लोक कहा है, जो मक्त द्वारा गाया गया था और पुराण में घोषित था। पुराणों में भी क्लोकों, गाथाओं एवं अनुवंश क्लोकों के उद्धरण पाये जाते हैं, जो लोगों में गाये जाते थे और 'पौराणिक' (वायु ७०।७६, ८८।११४-११६, ८८।१६८-१६९ में, ब्रह्माण्ड ३।६३।६९-७० में)या 'पुराविदः'

३०. यत्रानुवंशं भगवान् जामबग्न्यस्तया जगाँ। विश्वामित्रस्य तां वृष्ट्वा विभूतिमितमानुषीम्।। कान्यकुब्जे-पिबत्सोमिनिन्तेण सह कौशिकः। ततः क्षत्रावपात्रामद् ब्राह्मणोस्मीति चान्नवीत्।। वनपर्व (८७।१७-१८)। वैदिक यज्ञ में केवल बाह्मण ही सोम का पान कर सकते थे, क्षत्रिय नहीं। वेखिए इस प्रन्य का खण्ड २।

३१. गायाश्चाध्यत्र गायन्ति पितृगीता युधिष्ठिर। सनत्कुमारो भगवान्युरा मय्यम्यभाषत ॥ अपि नः स कुले जायाद्यो नो वद्यात् त्रयोदशीम् । मद्यासु सिंपःसंयुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ आजेन वापि लौहेन मद्यास्वेव यतवतः । हस्तिन्छायासु विधिवत्कर्णन्यजनवीजितम् ॥ एष्टन्या बहवः पुत्रा यद्येकोपि गयां व्रजेत् । अनुशासनपर्वं (८८।११-१४।) मिलाइए विष्णुपुराण (३।१६।१७-२०), ब्रह्माण्ड (३।१९।१०-११), वायु (८३।११-१२), जिन्हमें सभी के आषे इलोक हैं 'अपि नः . . . शीम्' जैसा कि अनु० में है ।

या 'पुराणज्ञाः' (वायु ८८।१७१ एवं ९५।१९, ब्रह्माण्ड ३।६३।१७१) कहे गये हैं। वायु (९३।९४-१०१) ने ययाति द्वारा गायी गयी बहुत सी गायाएँ उल्लिखित की हैं, जिनमें बहुत सी आदिपर्व (७५।५०-५३ एवं ८५।१२-१५), ब्रह्माण्ड (३१६८-१०३) एवं अन्य पुराणों में भी पायी जाती हैं। यह सम्भव है कि ये गाथाएँ एवं श्लोक उन लोगों द्वारा घोषित हुए हों, जो यह जानते थे कि पुराण आपस्तम्ब द्वारा जाने गये पुराण या पुराणों से लिये गये हैं। याज्ञ० (१।३) ने पुराण को घर्म-साधनों में एक साधन माना है, जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ ऐसे पुराण, जिनमें स्मृति की बातें पायी जाती थीं, उस स्मृति (अर्थात् याज्ञवल्क्यस्मृति) से पूर्वे ही, अर्थात् दूसरी या तीसरी शती में प्रणीत हो चुके थे। पुराण-साहित्य के विकास की यह तीसरी सीढ़ी है। यह कहना कठिन है कि वर्तमान मत्स्य मौलिक रूप से कब लिखा गया, किन्तु यह तीसरी शती के मध्य या अन्त में संशोधित हुआ, क्योंकि इसमें आन्ध्र वंश के अघःपतन की चर्चा तो है, किन्तु गुप्तों का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु यह सम्भव है कि मत्स्य का मौलिक बीज इससे कई शतियों पुराना हो। यही बात वायु एवं ब्रह्माण्ड के साथ भी है। थे दोनों लगभग ३२०-३३५ ई॰ के आसपास संगृहीत हुए या सर्म्बाघत हुए, क्योंकि इन्होंने गुप्तों की ओर संकेत तो किया है किन्तु गुप्त राजाओं के नाम नहीं लिये हैं। आज के रूप में ये दोनों पुराण (वायु एवं ब्रह्माण्ड) विकास की तीसरी सीढ़ी में ही रखे जा सकते हैं। महापुराणों में अधिकांश ५वीं या छठी शती और ९वीं शती के बीच में प्रणीत हुए या पूर्ण किये गये। यह है पुराण-साहित्य के विकास की चौथी सीढ़ी। उपपुराणों का संग्रहण ७वीं या ८वीं शताब्दी से आरम्म हुआ और उनकी संख्या १३ वीं शती तक या इसके आगे तक बढ़ती गयी। यह है पुराण-साहित्य के विकास की अन्तिय सीढ़ां। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूराणों ने हिन्दू समाज को ईसा के पूर्व की कुछ शतियों से प्रमावित करना आरम्भ किया और ईसा के उपरान्त १७ वीं या १८ वीं शती तक और वे आज भी प्रभावित किये हुए हैं। नवीं शती के उपरान्त कोई अन्य महापुराण नहीं प्रकट हुए, किन्तु अतिरिक्त विषयों का समावेश कुछ पुराणों में होता रहीं, जिसका सबसे बुरा उदाहरण है मिविष्य का तृतीय माग, जिसमें 'आदम एवं ईवं, पृथिवीराज एवं जयचन्द, तैमूर, अकबर, चैतन्य, मट्रोजि, नादिरशाह आदि की कहानियाँ भर दी गयी हैं।

'पुराण' शब्द ऋग्वेद में एक दर्जन से अधिक बार आया है, वहाँ यह विशेषण है और इसका अर्थ है 'प्राचीन, पुरातन या वृद्ध।' निघण्डु (३।२७) ने पुराण के अर्थ में छः वैदिक शब्द दिये हैं, यथा 'प्रत्नम्', 'प्रदिवः', 'प्रवयाः', 'सनेमि', 'पूर्व्यमु', 'अह्नाय'। यास्क (निश्क्त, ३।१९) ने पुराण की व्युत्पत्ति की है 'पुरा नवं मवित' (जो पूर्व काल में नया था)। ऋग्वेद में 'पुरातन' (प्राचीन) शब्द नहीं आता। 'पुराण' बीच वाले 'पुरा अण' द्वारा 'पुरातन' का अति प्राचीन रूप हो सकता है। प्राचीन के अर्थ में 'पुराण' शब्द आगे चलकर ऐसे ग्रन्थ का द्योतक माना जाने लगा जो प्राचीन गाथाओं (कथानकों) से सम्बन्धित हो; यह संज्ञा हो गया और अथवंवेद, शतपथ एवं उपनिषदों के काल में ऐसे ग्रन्थों के लिए प्रयुक्त होने लगा जिनमें प्राचीन कथाएँ हों। जब पुराण प्राचीन कथानकों वाले ग्रन्थ का द्योतक हो गया, तो मिवष्यत्-पुराण कहना स्पष्ट रूप से आत्म-विरोध का परिचायक हो गया। किन्तु सम्मवतः इस विरोध पर घ्यान नहीं दिया गया या इस विचार से इस पर लोगों ने ध्यान नहीं दिया कि ऐसे ग्रन्थ जिनमें प्राचीन कथाएँ रहती थीं, कमशः हाल की घटी कथाओं को भी सम्मिलित करने लगे और इसीलिए वे मिवष्यवाणी की शैली को अपना बैठे और बाद वाली घटनाओं एवं कथानकों को स्थान देने लगे।

वायु ने 'पुराण' शब्द की व्युत्पत्ति 'पुरा' (प्राचीन काल में, पहले) एवं घातु 'अन्' (साँस लेना या जीना) से की है, अतः इसके अनुसार 'पुराण' का शाब्दिक अर्थ है 'जो अतीत में जीवित है' या 'जो प्राचीन काल की

साँस लेता है।' पद्मपुराण ने थोड़ी भिन्न व्युत्पत्ति की है, यथा—'यह पुराण कहलाता है, क्योंकि यह अतीत को चाहता है या उसे पसन्द करता है' ('पुरा' एवं घातु 'वश्' से; 'वश्' का अर्थ है चाहना या पसन्द करना)। । रेरे

उपस्थित पुराणों में गुप्तों एवं उनके उत्तराधिकारी वंशजों की वंशाविलयों एवं कुलों का वृत्तान्त क्यों नहीं पाया जाता ? इस प्रश्न का उत्तर सन्तोषजनक ढंग से नहीं दिया जा सकता। एक कारण यह हो सकता है कि कुछ पुराणों का मौलिक बीजारोपण (यथा मत्स्य का) गुप्तों के अभ्युदय के पूर्व ही हो गया था, किन्तु वायु एवं ब्रह्माण्ड तब प्रणीत हुए जब गुप्त-शासन अभी शैशवावस्था में था। दूसरा कारण यह हो सकता है कि पाँचवीं एवं इसके आगे की शताब्दियों में, जब कि उपस्थित पुराणों में अधिकांश का प्रणयन हुआ, उत्तरी भारत हूणों (तोरमाण एवं मिहिरकुल) से पदाकान्त था, कितपय सम्प्रदाय एवं धर्म-मतमेद उत्पन्न हो गये थे, बौद्धधर्म शक्तिशाली हो गया था, अतः बुद्धिमान् एवं वेद के मक्त लोगों का प्रथम कर्तव्य हो गया कि वे सामान्य जनता का मन धर्म-मतमेद से अलग करें (वौद्ध जैसे लोगों को समझायें या उनके प्रमाव में आने से लोगों को रोकें), जनता में नयी विचारघाराकी नींव डालें एवं अपने प्राचीन व्यवहारों एवं परम्पराओं में विभिन्न सम्प्रदायों एवं धार्मिक मतभेदों को पचा डालें। अतः बुद्धिमान् वर्गों ने अहिसा, सत्य, भिन्त के नैतिक गुणों, व्रतों, तीर्थयात्राओं, श्राद्धों एवं दानों की महत्ता पर बल देना श्रेयस्कर समझा, और सम्मवतः वे इस मनः स्थिति में नहीं थे कि वे बाह्य आकामकों का वृत्तान्त उपस्थित करते या उन छोटे-छोटे सामन्तों की गाथा गाते जो पारस्परिक झगड़ों में उलझे हुए थे और कूर आकामकों को भगा देने में अशक्त थे। गुप्तों एवं उनके उत्तराधिकारियों के वंशों की बोर पुराणों के मौन का कारण पाजिटर महोदय बाह्मणों को समझते हैं; वे ब्राह्मणों के सिर पर सारा दोष मढ़ देते हैं और उनकी निम्नलिखित आलोचना द्रष्टव्य है—'उस अवस्था के उपरान्त परम्परागत इतिहास का पूर्ण अमाव मली भौति समझा जा सकता है, क्योंकि पुराण के संग्रहण ने परम्परा पर एक मुहर लगा दी थी तथा पुराण शीघ्र ही ब्राह्मणों के हाथ में पड़ गये जिन्होंने जो कुछ प्राप्त किया उसका संरक्षण तो किया, किन्तु इतिहास-सम्बन्धी ब्राह्मणीय उपेक्षा के कारण उन्होंने पश्चात्कालीन राजाओं के विषय में कुछ नहीं जोड़ा।' थोड़ी देर के लिए यदि यह मान लिया जाय कि बाह्मणों में इतिहास-सम्बन्धी चेतनता नहीं थी, तब भी पाजिटर की सम्मित पूर्णरूपेण एकपक्षीय है। पाजिटर महोदय यह नहीं बताते और न कोई तर्क ही उपस्थित करते कि यूतों ने (जिनका व्यवसाय ही था ऐतिहासिक परम्पराओं का संग्रह करना एवं संरक्षण करना, जैसा कि वे स्वयं कहते हैं, देखिए ए० आई० एच्० टी०, प्० ५८) क्यों नहीं अपना वह व्यवसाय प्रचलित 'रखा और क्यों नहीं आग़े के राजाओं की वंशाविलयाँ लिखीं तथा इतिहास के अन्य विषयों को जोड़ा ? और न पाजिटर महोदय इसकी ही व्याख्या करते हैं कि सूत लोग क्यों अपने प्राचीन व्यवसाय से बंचित कर दिये गये और उन्होंने क्यों अपनी यह वृति ब्राह्मणों को सींप दी ? यह सम्भव है कि कनिष्क एवं हुण असे बाह्म वर्गों ने सूतों को, जो सामाजिक रूप में बहुत निम्न वर्ग के समझे जाते थे, कोई बढ़ावा नहीं दिया, और वे सम्भवत: बौद्ध हो गये, क्योंकि बौद्ध धर्म की जातक कथाएँ इतनी मोहक एवं प्रसिद्ध रही होंगी कि उनको सुनाने का व्यवसाय करके जीवन-निर्वाह करना सूतों के लिए कोई कंठिन कार्य नहीं रहा होगा।

३२. यस्मात्युरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्। निष्कतमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। वायु (१।२०३), पुरा परम्परां विष्ट पुराणं तेन वे स्मृतम्। पद्म (५।२।५३); ब्रह्माण्ड (१।१।६७३) में आया है—यस्मास्युरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्समृतम्। निष्कत . . . मुच्यते।।

#### धर्मशास्त्र का इतिहास

800

व्यास एवं सूत से सम्बन्धित अनुश्रुतियों पर भी संक्षेप में विचार कर लेना आवश्यक है। पुराणों ने घोषित किया है कि व्यास पराशर के पुत्र थे, वे कृष्ण द्वैपायन भी कहे जाते थे और स्वयं विष्णु के अवतार थे (ब्रह्मा के भी अवतार कहे गये हैं, यथा वायु ७७।७४-७५, शिव के भी अवतार कहे गये हैं, यथा कूर्म० २।११।१३६)। उनका हैपायन रे नाम इसलिए पड़ा कि उनका जन्म यमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था और कृष्ण नाम इसलिए पड़ा क्योंकि उनका रंगकाला (कृष्ण) था। उनकी माता सत्यवती थीं और पुत्र थे शुक। उन्होंने वेद को चार मागों में विभाजित या व्यवस्थित किया, अतएव वे व्यास कहलाये (घातुं 'अस्' तथा उपसर्ग 'वि'; 'अस्' का अर्थ है 'फेंकना')। उन्होंने चारों वेदों में चार शिष्यों को प्रशिक्षित किया, यथा—पैल, वैशम्पायन, जैमिनि एवं सुमन्तु जो क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद में पारंगत हुए। उनके पाँचवें शिष्य थे सूत रोमहर्षण, जिन्हें इतिहास-प्राण में प्रशिक्षित किया गया। सूत के पुत्र थे सौति, जिन्होंने महामारत का पाठ शौनक एवं अन्य मुनियों को नैमिषारण्य में सुनाया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जब कभी धर्म की हानि देखी गयी, मानवों के कल्याण के लिए व्यास ने जन्म लिया (ब्रह्म० १५८।३४)। कूर्म० (१।५२।१-९) ने विमिन्न व्यासों के २७ नाम दिये हैं, किन्तु वायु० (२३।११५-२१९), ब्रह्माण्ड० (२।३५।११६-१२५), विष्णु० (३।३।११-१९) ने वैवस्वत मन्वन्तर (जो आजकल चल रहा है) के २८ द्वापर युगों के २८ व्यासों के नामों का उल्लेख किया है। व्यास ने पुराणों को किस प्रकार एक स्थान पर संगृहीत किया, इसके विषय में कई पुराणों में इस प्रकार आया है- उसने, जो पुराण के अर्थ के विषय में प्रवीण था, आख्यानों, घटनाओं, गाथाओं से सामग्रियां लेकर तथा कल्पों का सम्यक् निरूपण करके पूराण संहिता का प्रणयन किया। " इससे स्पष्ट है कि जहाँ वैदिक विषय ब्राह्मणों द्वारा अद्वितीय ढंग से संरक्षित होते थे, प्राचीन इतिहास-पूराण, जो पंचम वेद कहा गया है, उसी प्रकार सावधानी से रक्षित नहीं हो पाता था। इसीलिए चारों वेद और पाँचवें वेद में समय-समय पर नयी-नयी बातों का समावेश होता रहता था।

३३. अस्मिन्युगे कृतो व्यासः पाराश्यः परन्तपः (परन्तपः?)। द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः।। ब्रह्मणा चोदितः सोस्मिन्देदं व्यस्तुं प्रचक्रमे। अय शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदकारणात्।। ऋग्वेदश्रादकं पैलं जग्राह विधिवद् द्विजम्। यजुर्वेदश्रदक्तारं वैशम्पायनमेव च।। जैमिनिं सामवेदार्थं श्रादकं सोन्वपद्यतः। तथैवाथवं-वेदस्य सुमन्तुमृष्विसत्तमम्।। इतिहास पुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि। मां चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः।। वायु (६०११-१६)। ब्रह्माण्ड (२।३४।११-१६, सभी शब्द एक प्रकार से समान हैं)। मिलाइए विष्णु (३।४। ७-१०), कूर्म (१।५२।१०-१५), विष्णुवर्मोत्तर (१।७४)। कूर्म (१।५१।४८), पद्म (५।१।४३), भगवत (१।४।१४-२५ एवं १२।६।४९-८०) एवं नारवीय (१।१।१८) ने व्यास को नारायण कहा है। आदिपवं ने पुराणों के वक्तव्यों को मान लिया है, 'विव्यासैकं चतुर्या यो वेदं वेदविदां वरः। आदि ६०।२ एवं ५; यो व्यस्य वेदांश्चपुर-स्तपसा भगवानृषिः। लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्यात्कृष्णत्वमेव च।। आदि (१०५।१५)।

३४. आख्यानेश्चाप्युपास्थानेर्गायाभिः कल्पशुद्धिभिः। पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्यविशारदः॥ विष्णु (३१६। १५), ब्रह्माण्ड (२१३४।२१, यहाँ कल्पजोक्तिभिः आया है), वायु (६०।२१, यहाँ कुलकर्मभिः आया है)। 'कल्पजोक्तिभिः' का अर्थ होगा 'ऐसे शब्द या वृत्तान्त जो कल्पों (काल की लम्बी अविधयों) से सम्बन्धित होते हैं। विष्णुपुरा की टीका में आया है, 'स्वयं वृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः। श्रुतस्यार्थस्य कथनमृपाख्यानं प्रचक्तते॥'

व्यास को जो वेद को व्यवस्थित करने की अनुश्रुतिपूर्ण महत्ता प्राप्त है, उसके विषय में पाजिटर का एक अपना सिद्धान्त है, जिसका संक्षेप में यहाँ विवरण देना एवं उसकी जाँच करना आवश्यक है। उन्होंने ऋग्वेद को ब्राह्मणों का सबसे बड़ा ग्रन्थ ठहराया है और कहा है कि यह बहुत-से लेखकों के स्तोत्रों का संग्रह है और कुछ सिद्धान्तों के आधार पर इसकी व्यवस्था की गयी है। पार्जिटर के शब्द ये हैं-- 'यह (ऋग्वेद) स्पष्ट रूप से एक या कई व्यक्तियों द्वारा संगृहीत एवं संगठित किया गया है, किन्तु वैदिक साहित्य इस विषय में कुछ भी नहीं कहता। बाह्मण लोग इस विषय में अनिभन्न नहीं रहे होंगे, क्योंकि उन्होंने इसका संरक्षण किया और अद्मृत सावधानी के साथ इसके शब्दों को शुद्ध रखा।...वैदिक साहित्य अधिकांश सभी स्तोत्रों के लेखकों के नाम को जानता है या उनका उद्घोष करता है, यहाँ तक कि कुछ मन्त्रों के लेखकों के नाम मी ज्ञात हैं, तथापि इसने उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों से अपने को अनिमज्ञ रखना चाहा, जिसने या जिन्होंने ऋग्वेद का संग्रहण एवं संग्रथन किया। यदि मान लिया जाय कि इसने प्रारम्भिक वृत्तान्त की रक्षा तो की किन्तु आगे के महत्त्वपूर्ण विषय के बारे में अनिमज्ञ रहा तो ऐसा मानना हास्यास्पद होगा।' किसने या किन्होंने ऋग्वेद का संग्रह किया या उसे संग्रथित किया, वैदिक साहित्य के इस विषय में मौन रहने से पार्जिटर महोदय अचानक एक मावात्मक एवं दृढ निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं, जैसा कि पाश्चात्य लेखकों में देखा जाता है। संस्कृत साहित्य एवं भारतीयता-शास्त्र (इण्डोलाजी) के पाश्चात्य लेखक किसी 'मौन' पर तर्क देने लगते हैं कि 'वैदिक साहित्य ने जान वूझकर इन विषयों को दबाया है (ऐंश्येण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, पृ०९)। पार्जिटर ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि महाभारत एवं पुराण व्यास नाम से भरे पड़े हैं और वारम्बार उद्घोषित करते हैं कि वेद व्यास द्वारा संप्रथित किया गया है। वे इस ओर हमारा घ्यान आकृष्ट करते हैं कि वैदिक साहित्य व्यास पाराशर्य के बारे में महत्त्वपूर्ण ढंग से मौन है (व्यास, सामविधान ब्राह्मण के अन्त में एवं तैत्तिरीय आरण्यक में, वंश-सूची में, विश्वक्सेन के शिष्य के रूप में उल्लिखित हैं)। इसके उपरान्त पार्जिटर महोदय व्यास के विषय में मौन रूपी दुरिमसिन्ध को बार-बार दुहराते हैं (एै० इ० हि० ट्रे०, पृ० १०)। पार्जिटर इस प्रकार का मौन-सम्बन्धी अभियोग लगा कर एक तर्क के साथ उमर पड़ते हैं—'ब्राह्मणों ने ऐसा सिद्धान्त अग्रसारित किया कि वेद अनादि काल से ही चला आ रहा है, अतः यह कहना कि किसी ने इसका संग्रह किया या इसे संग्रथित किया, इस सिद्धान्त की जड़ को ही काट देना है...' (वही, पू० १०)।

वैदिक साहित्य के तथाकथित मौन-सम्बन्धी पाजिटर-सिद्धान्त के विरोध में कई समाधान उपस्थित किये जा सकते हैं। पहली बात यह है कि पाजिटर महोदय तथ्य-सम्बन्धी अपने वक्तव्य के विषय में अमुर्ग्रादित रहे हैं। पाजिटर इस बात से पूर्णतया अनिमज्ञ हैं, यहाँ तक कि ऋग्वेद में भी ऋक् मन्त्रों, यजुस् वचनों एवं साम गीतों में अन्तर प्रकट किया गया है। देखिए ऋकों के लिए ऋ० २।३५।१२,५१६।५,५२७।४,५।४४।१४-१५, दोनों में ऋक् मंत्र एवं साम के मन्त्र अलग-अलग वर्णित हैं; यजुस् के लिए देखिए ऋ० ५।६२।५, १०।१८१।३; साम गीतों के लिए देखिए ऋ० २।४३।२ (उद्गातेव शकुने साम गायिस),८।८१।५ (श्रवत् साम गीयमानम्), ८।९५।७ (शुद्धेन साम्ना)।

रामायण-महामारत एवं पुराणों से पता चलता है कि मौलिक रूप से वेद एक था, किन्तु चार दलों में विमाजित एवं संग्रथित किया गया और ये चारों संग्रथित संग्रह-दल संरक्षण एवं प्रसार के लिए व्यास के चार विभिन्न शिष्यों को सौंपे गये। ऋग्वेद में दो व्यवस्थाएँ हैं, एक मण्डलों एवं सुक्तों के रूप में और दूसरी अष्टकों, अध्यायों एवं वर्गों में। तैत्तिरीय संहिता एवं अथवंवेद काण्डों में संग्रथित हैं। इन स्थानों में कहीं भी ऐसा नहीं आया है कि ये स्तोत्र पहले से ही हैं या संग्रथित हैं या मण्डलों या अध्यायों या काण्डों में व्यास द्वारा व्यवस्थित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त वेद के संग्रथनकर्ता के नाम को दवाने के विषय में जो तर्क उपस्थित किया गया है वह

दुर्वल है; हास्यास्पद कहने की बात ही क्यों उमाः जाय। ऋग्वेद के प्रत्येक स्तोत्र या प्रत्येक मन्त्र का एक ऋषि है, जो प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार लेखक नहीं था (जैसा कि पाजिटर ने कहा है), प्रत्युत द्रष्टा था। ब्राह्मण-प्रन्थों, उपनिषदों एवं स्मृतियों से यह स्पष्ट है कि बहुत प्राचीन काल से ही एक कठिन नियम बना था कि कोई भी बिना ऋषि, छन्द, देवता एवं विनियोग (प्रयोग) जाने किसी मन्त्र को न तो पढ़ा सकता था, न जप में कह सकता था और न यज्ञ में उसका प्रयोग कर सकता था, नहीं तो इन चारों बातों में उपेक्षा दिखाने वाले या प्रमादी या असावधान व्यक्ति को दाष्ण फल भुगतने पड़ते थे। स्तोत्र एवं मन्त्र विभिन्न दलों में इसलिए विभाजित एवं संगठित थे कि उनका उपयोग विभिन्न धार्मिक कृत्यों, पृतीत यज्ञों या अन्य कार्यों (यथा—शान्ति आदि) में हो सके। यह स्मरण रखना कोई आवश्यक नहीं है कि कृत्यों, यज्ञों एवं अन्य उपयोगों के लिए किसने मन्त्रों को संप्रथित किया। ब्राह्मण-प्रन्थों एवं श्रौत सूत्रों ने विभिन्न उपयोगों के लिए उन्हीं मन्त्रों के प्रयोग की विधि की व्यवस्था दी है और उनकी अनुक्रमणिकाओं में ऋषियों (द्रष्टाओं), छन्द, स्तोत्र-देवताओं एवं कतिपय मन्त्रों के नाम दिये हुए हैं। वेद का प्रत्येक मन्त्र ऋषि द्वारा दिशत माना गया है और अमर है, केवल एक या कई सरणियों में मन्त्रों को संगृहीत करने, या उन्हें या स्तोत्रों को विभिन्न वर्गों में विभिन्न उपयोगों के लिए संग्रथित करने से मन्त्रों एवं स्तोत्रों की अमरता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अतः पाजिटर का वह तर्क जो वेद के संग्रथनकर्ता के नाम को छिपाने के विषय में कहा गया है, कोई तर्क ही नहीं है।

पार्जिटर महोदय ने संभव समाघानों या व्याख्याओं पर विचार करने की ओर सोचा ही नहीं। एक व्याख्या नीचे दी जा रही है। महाभारत एवं पुराण (एक विशद साहित्य) व्यास द्वारा प्रणीत माने गये हैं, जिन्हें, जैसा कि हमने ऊपर देख लिया है (पाद-टिप्पणी ३३), विष्णु या विष्णु का अवतार कहा गया है। चार वेद एवं प्रत्येक वेद की विभिन्नं शाखाएँ लोगों को मली माँति विदित थीं। वेद का चार भागों में विभाजन दैवी शक्ति से प्रेरित व्यास का कार्यं था, जिनके संग्रथित पुराण वेद से भी पूर्व के एवं उससे भी उत्तम माने गये थे। ऐसा था व्यास का महत्त्व। वेद की अमरता एवं अनादिता की रक्षा तो करनी ही थी और साथ ही व्यास को गौरवशाली बनाना था। महामारत के लेखक एवं पुराणों को अठारह भागों में विमाजित करने वाले व्यास को सरलतम ढंग से गौरव देना चाहिए था यह उद्घोष करके कि वे वेद के विभाजन एवं संग्रथन के उत्तरदायी भी थे। यदि ईसा के पूर्व एवं उपरान्त कुछ शताब्दियों में व्यास को यह सब गौरव दिया गया था तो वही माना हुआ वेद का व्यवस्थापक एवं संग्रथनकर्ता प्रारम्भिक ब्रैदिक साहित्य में क्योंकर वर्णित हुआ और (जैसा कि अधिकांश विद्वान् मानते हैं) बुद्ध से कुछ शताब्दियों पूर्व (अर्थात् ई॰ पू॰ छठी शती के पूर्व) उसकी महत्तां का वर्णन बन्द कर दिया गया ? ऐसा कोई नहीं कह सकता कि मण्डलों या अष्टकों या काण्डों की व्यवस्था अमर है। केवल स्तोत्र या मन्त्र ही अमर कहे गये हैं। यहाँ तक कि ऋग्वेद का परपाठ भी अनित्य कहा गया है और शाकल्य द्वारा लिखित माना गया है, जिसकी आलो-चना निरुक्त (६।२८) में हुई है। याज्ञ० (३।२४२) की टीका में विश्वरूप ने स्पष्ट रूप में कहा है कि वेद के पढ एवं कम के संगठन में मानवीय प्रयास है। यह सिद्धान्त सभी बातों पर प्रकाश डाल देता है और पार्जिटर महोदय के उस सिद्धान्त से कई गुना अच्छा है जो यह बताता है कि जान-बूझकर व्यास के विषय में मौन का सहारा लिया गया।

अपने उद्गम एवं प्रसार के विषय में पुराण एकमत होकर नहीं बोलते। इसका उद्घोष करने के उपरान्त कि व्यास ने पुराणों के संरक्षण एवं प्रचार का कार्य सूत को दिया, वायु एवं अन्य पुराण विभिन्न बातें कहते हैं। वायु (६१।५'५-६१) में आया है—'सूत के ६ शिष्य थे, यथा—सुनीति आत्रेय, अकृतव्रण काश्यप, अग्निवर्चा मारद्वाज मित्रयु विसष्ठ सार्वीण सौमदत्ति एवं सुशर्मा शांशपायन। इनमें तीन, अर्थात् काश्यप, सार्वीण एवं

शांशपायन ने नयी पुराण-संहिताएँ निर्मित कीं और सूत के पास चौथी और मूल संहिता रही। ये समी चार काण्डों में विभाजित की गयीं, उनमें विषय वही था, किन्तु वेद की शाखाओं के समान वे पाठों में अन्तर रखती थीं (अर्थात् उनमें पाठान्तर पाया गया)। शांशपायन की संहिता को छोड़ कर सभी में चार सहस्र क्लोक थे। ये ही चार मौिलक संहिताएँ (ब्रह्माण्ड २१३५१६६) या पूर्वसंहिताएँ (वायु ६११५८) कही जाती रही हैं। ब्रह्माण्ड (२१३५१६३-७०) में यही बात अधिकांशतः इन्हीं शब्दों में लिखित है। विष्णु (३१६११६-१७), अग्नि (२७११११-१२) में संक्षेप में है, किन्तु ये दोनों वायु से मिलते हैं। मागवत (१२१७४-७) कुछ बातों में इनसे मिन्न है। इस कहानी में कुछ सार है, जैसा कि वायु के कितपय अध्यायों के कुछ इधर-उधर विखरे हुए क्लोकों से पता चलता है (५६११, ६०१३३-३४, ६२११, ८९११६)। यही बात ब्रह्माण्ड के कितपय क्लोकों से विदित होती है, यथा २१३४१३४, २१३६११ आदि। इसमें शांशपायन ने प्रश्न किया है और सूत ने उत्तर दिया है।

महाभारत एवं पुराणों में सूत का व्यक्तित्वा एक पहेली के समान है। सूत को रोमहर्षण या लोमहर्षण कहा गया है, क्योंकि वे अपनी भावभीनी वक्तृता से श्रोता के रोंगटे खड़े कर देते थे। " स्कन्द में ऐसा आया है कि स्वयं सूत महोदय के रोंगटे (रोम) खड़े हो जाते थे, जब वे द्वैपायन से शिक्षा ग्रहण करते थे। सूत का एक अर्थ है 'सारिथ' और दूसरा है 'वह व्यक्ति जो प्रतिलोम से जनमा हो', यथा—ब्राह्मण नारी एवं क्षत्रिय पुरुष से उत्पन्न और इसके सजातीय शब्द मागध का अर्थ है 'वह व्यक्ति जो वैश्य पुरुष एवं क्षत्रिय नारी से उत्पन्न हुआ हो' (देखिए मनु १०।७१, याज्ञ० १।९३-९४) । कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने भी सूत एवं मागघ के वारे में यही बात कही है, किन्तु कुछ जोड़ा भी है, यथा—'पुराणों में उल्लिखित सूत एवं मागध इनसे मिन्न हैं, क्योंकि वह (सूत) सामान्य ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों से भिन्न है।' कौटिल्य के कहने का अर्थ यह है कि उनके समय में सूत एवं मागघ प्रतिलोग जाति के थे, किन्तु पुराणों में वर्णित प्रथम वाचकों के रूप में सूत एवं मागघ एक अलग श्रेणी, के हैं, अर्थात् वे प्रतिलोम जाति के नहीं हैं और दोनों ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों से मिन्न हैं (अर्थात् पुराणों के सूत अधिक या कम मुनि के रूप में या अर्घ दैवी रूप में पूजित हैं)। वायु (१।२६-३३ एवं ६२-१४७), पद्म (२।२७।६५-८७, ५।१।२९-३२), ब्रह्माण्ड (२।३६।१५८-१७३), स्कन्द (प्रमासखण्ड १।८) का कथन है कि पितामह (ब्रह्मा) के यज्ञ में सूत, उस दिन जब सोम रस निकाला जाता है, विष्णु के एक अंश के रूप में उदित हुए और इसी प्रकार मागघ मी उत्पन्न हुए। " उन्हीं पुराणों में ऐसा आया है कि इन्द्र (क्षत्रिय जाति के प्रतीक) वाली हिव बृहस्पति (ब्राह्मण जाति एवं विद्या के प्रतीक) की हिव से मिल गयी, और सूत उसी समय उत्पन्न हो गये जब मिश्रित हिव देवों को दिन्गियी। इससे (पश्चात्कालीन) सूत के वे ही कर्तव्य निर्घारित रहे हैं, जो आरम्मिक या मौलिक सूत के लिए व्यवस्थित थे और यह

३५. लोमानि हर्षयांचक्रे श्रोतृणां यत्सुभाषितैः । कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेस्मिल्लोमहर्षणः ॥ वायु (१।१६); तस्य ते सर्वरोमाणि वचसां हर्षितानि यत् । द्वैपायनस्यानुभावात्ततोभूद्रोमहर्षणः ॥ स्कन्द० (प्रभासखण्ड, १।६) ।

३६. वैश्यान्मागषवैदेहको । क्षत्रियात्सुतः । पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषतः । अयंशास्त्र ३।७ । सूत एवं मागध के उद्गम के विषय में बहुत पहले भी आया है, यथा गौ० घ० सू० ४।१५-१६, 'प्रतिलोमास्तु सुतमागष्ट्रायोगवकृत-वैदेहकचण्डालाः । ब्राह्मण्यजीजनत्पुत्रान् वर्णेम्यः आनुपूर्व्याद् ब्राह्मण-सुत-मागष्ट-चण्डालान् ।

३७. एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पैतामहे शुमें। सूतो सुत्यां समृत्यन्नो सौत्येहिन महामितः ।। तिस्त्रन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोथ मागवः। वायु (६२।१३५-१३६), ब्रह्म (४।६०-६१)। 'सूत' शब्द 'सु' बातु से ध्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है 'निकालना'।

कहा गया था कि सूत ब्राह्मण नारी एवं क्षत्रिय पुरुष से उत्पन्न पुत्र है। एक दूसरी कथा भी इसी पर जुड़ी हुई है (वायु ६२।१४७, ब्रह्माण्ड २।३६।१७०-१७३ तथा अन्य पुराणों में) कि मौलिक सूत एवं मागध ने वेन के पुत्र पृथु की प्रशंसा में गीत गाये थे, जिससे प्रसन्न होकर राजा पृथु ने अनूप देश सूत को तथा मगध देश मागध को दान में दिया और उसी काल से सूत एवं मागध राजा की प्रशंसा में गान गाने लगे और उसे आशीर्वादों के साश प्रातः जगाने लगे। "स्वयं वायु (१।३१-३४) ने कहा है कि सूत का जन्म तब हुआ था जब कि पृथु वैन्य के यज्ञ में सोम का रस निकाला गया था।

वर्तमान वायु एवं अन्य पुराणों के लेखकों को यह जात है कि उनके समयों में सूत एवं मागघ को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था, सूतों की वृत्ति थी देवों, मुनियों एवं राजाओं के कुलों (जो इतिहास एवं पुराणों में पाये जाते हैं) पर घ्यान देना और उनके प्रति सचेत रहना, जिससे वे प्रचारित होते रहें। ये पुराण इस बात से अपने को निन्दित मानते थे कि शौनक जैसे मुनियों ने सूत से पुराणों की शिक्षा प्रहण की थी, क्योंकि सूत उन दिनों (पुराणों के काल में) प्रतिलोम जाति के थे, जिसके विषय में गौतम, विष्णुधर्मसूत्र एवं स्वयं कौटित्य ने व्यवस्था दी है कि प्रतिलोम लोग शूद्र हैं, आयों द्वारा निन्दित हैं और उपनयन, वेदाध्ययन, अध्यापन आदि जैसे ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के कमों से विजत हैं। आह्मण द्वारा क्षत्रिय से शिक्षा-प्रहण उपनिषद्-काल में भी अस्वामाविक माना जाता था। देखिए गार्य बालांक से कहे गये राजा अजातशत्रु के शब्द। "अतः शौनक जैसे महामुनियों के इतिहास एवं पुराण के प्रशिक्षक के रूप में सूत की स्थिति को बताने के लिए सूत के जन्म की गाथा का निर्माण किया गया और वे एक विशिष्ट स्थित में रखे गये। यह कौटित्य के कई शितयों पहले ही हुआ होगा क्योंकि वे सूत एवं मागध की निम्न स्थिति से परिचित थे और पौराणिक सूत एवं प्रतिलोम सूत तथा मागध में अन्तर प्रकट करते हैं। सूत की दैवी उत्पत्ति को मले ही कोई न माने, किन्तु अति प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग बिना किसी मनस्ताप एवं मानहानि के सूत से गाथाओं एवं आख्यानीं को सुन सकते थे, किन्तु जब प्रचलित पुराण संगृहीत हुए तो स्थिति में पूर्ण परिवर्तन हो चुका था।

३८. ततः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः । अनूपदेशं सूताय मगर्वं मागधाय च ।। तदा व पृथिवीपालाः स्तूयन्ते सूतमागवेः । आशीर्वादेः प्रबोध्यन्ते सूतमागधवन्तिभः ॥ वायु (६२।१४७-१४८), ब्रह्माण्ड (२।३६।१७१-१७३) । आन्प्रिवं (५७।११२-११३) में भी अनूप एवं मगध का दान कम से सूत एवं मागध के लिए वर्णित है। और वेखिए ब्रह्माण्ड (४।६७) । पद्म (५।१।३१) में आया है कि पृथु ने सूत को सूत का देश दिया था। मागव को मगध से निकला हुआ समझना सामान्य व्युत्पत्ति का लक्षण है। अनूप का अर्थ है ऐसा देश जहाँ पानी हो या दलवल हो। पद्म (२।२७।८६-८७) ने सूत आदि को विये गये अन्य देशों का भी उल्लेख किया है।

३९. सूत उवाच । . . .स्ववमं एव सूतस्य सद्भिद्ं ष्टः पुरातनैः । देवताना मृथीणां च राज्ञां चामिततेजसाम् ॥ वंशानां चारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम् । इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥ न हि वेदेष्वधीकारः किचत् सूतस्य दृश्यते । वैन्यस्य हि पृथोयंज्ञे वर्तमाने महात्मनः । सुत्यायामभवत्सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः । वायु १।३१-३४, पद्म ५।१।२७; देखिए ब्रह्माण्ड २।३६ । पृथुवैन्यप्रतिलोमास्तु घमंहीनाः । गौतमघमंसूत्र (४।२०); त एते प्रतिलोमाः स्ववमातिकमाद्राज्ञः सम्भवन्ति । . . . शूद्रसवमाणो वा अन्यत्र चण्डालेभ्यः । अर्थशास्त्र ३।७, पृ० १६५; प्रतिलोमात्स्वार्यविगहिताः । विष्णुवर्मसूत्र १६।३।

४०. सहीवाचाजातशत्रुः प्रतिलोमं चैतद्यद् ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयाद् ब्रह्म मे वक्ष्यतीति । बृहु० उ० २।१।१५। वेसिए कौषीतिकबा० उ० ४।१८, जहाँ सर्वथा ये ही शब्द आये हैं।

# पौराणिक अनुसंघान पर प्रो॰ हज्जा एवं दीक्षितार के विचार

804

पार्जिटर एवं किर्फेल के उपरान्त प्रो० आर० सी० हज्जा के कार्य के विषय में भी चर्चा कर देना आवश्यक है, क्योंकि उन्होंने पुराणों के विषय में बहुत परिश्रम के साथ सोचा-विचारा है। उनके अध्यवसाय, वैर्य एवं उत्साह को देखकर उनके प्रति श्रद्धा उमड़ती है। किन्तु दु:ख की बात यह है कि उन्होंने पुष्ट प्रमाणों के न रहते हुए भी आज के पुराणों एवं उपपुराणों को बहुत प्राचीन तिथियाँ देने की मनोवृत्ति बना डाली है। वे पुराणों के अध्ययन में इतने तल्लीन हो गये हैं कि वे वहाँ भी पुराणों की गन्व पा जाते हैं, जहाँ उनकी गति नहीं है। उदाहरणार्थ, प्रो॰ हजा (पुराणिक रेकड् स आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, पृ० ६) ने ऐसा समझा है कि पितरों को दिये गी मोजन को खा लेने पर जो प्रायश्चित्त की व्यवस्था हारीत द्वारा निर्वारित की गयी है, वह पुराणों के कथन के अनुसार ही है, जैसा कि विज्ञानेश्वर कहते हैं। किन्तु मिताक्षरा (विज्ञानेश्वर कृत याज्ञवल्क्य-स्मृति की टीका) में स्पष्ट आया है कि 'पुराणेषु' शब्द का संकेत है 'पुराण' नामक श्राद्ध की ओर, न कि 'पुराण' ग्रन्थों की ओर।\*\* प्रो० हज्जा में एक अन्य दोष यह है कि वे सरल शब्दों में भी अधिक अर्थ देखने लगते हैं और अपने निष्कर्ष के विषय में अधिक सावधान नहीं हैं, जो कि उनके समान अनुमव एवं ख्याति वाले विद्वान् को शोमा नहीं देता। अपने एक लेख 'दि अरुवमेघ, दि कामन सोर्स आव आरिजिन आव दि पुराण पंचलक्षण एण्ड दि महाभारत' (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३६, १९५६, पृ० १९०-२०३) में उन्होंने अथर्ववेद (११।७।२४) को उद्धृत किया है, जिसमें ऋक् एवं साम मन्त्र पृथक्-पृथक् वर्णित हैं, और 'पुराण' (पुराणं यजुषा सह) शब्द 'यजुस्' से सम्बन्धित है। प्रो॰ हज्जा कहते हैं कि यह स्थापना उन्हें बहुत ही महत्त्वपूर्ण जँची है और वे यह कहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं कर सकते कि पुराण-पंचलक्षण एवं महामारत का उद्गम अश्वमेघ यज्ञ से है, विशेषतः पारिप्लव आख्यानों से। हम इस लेख की परीक्षा विस्तार के साथ यहाँ नहीं कर सकेंगे। किन्तु मौलिक विरोधों एवं वातों की चर्चा कर दी जा रही है। 'पुराणं यजुषा सह' का सीघा अर्थ है 'पुराण एवं यजुस्' ('देवदत्तः सपुत्र आगतः' जैसे वाक्यीं के समान)। याज्ञ० (१।१०१) ने व्यवस्था दी है कि आह्निक स्नान के उपरान्त वैदिक गृहस्थ को प्रति दिन (तीनों) वेदों, अथवंवेद, इतिहास के साथ पुराणों एवं आध्यात्मिकी विद्या (उपनिषदों) के अंशों का जप करना चाहिए। " यहाँ 'पुराणानि

४१. मिताक्षरा ने याज्ञ० (३।२९) पर विचार करते हुए निषिद्ध भोजन करने पर किये जाने वाले प्रायरिचत्तों की विश्व व्याख्या उपस्थित की है। विभिन्न प्रकार के श्राद्धों में किये जाने वाले भोजन के विषय में इसने कई एक प्रमाण उद्धृत किये हैं—हारीतेनाप्युक्तम्। एकादशाहे भुक्त्वाल्लं भुक्त्वा सञ्चयने तथा। उपोष्य विधिवत्त्तात्वा कूष्माण्डेर्जुहुयाद्घृतम्।। इति। विष्णुनाप्युक्तम्। प्राजापत्यं नवश्राद्धे...पञ्चगर्यं द्विभासिके।। इतं चापद्विषयम्। अनापदि वु चान्द्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं वु मिश्रके। एकाह्रस्तु पुराणेषु प्राजापत्यं विधीयते।। इति हारीतोक्तं द्रष्टव्यम्। प्राजापत्यं वु मिश्रके इत्येतदाद्यमासिकविषयं द्रष्टव्यम्। श्राद्ध तीन प्रकार के होते हैं, नवश्राद्ध (मृत्यु के उपरान्त १० दिनों तक), मिश्र या नविमश्र (दस दिनों के उपरान्त लगातार एक वर्ष तक करते जाना) एवं पुराण (जो मृत्यु के एक वर्ष उपरान्त किया जात। है)। 'पुराणेषु' शब्द का अर्थ है पुराणेषु श्राद्धेषु। हारीत ने नव, मिश्र एवं पुराण नामक तीनों श्राद्धों में भोजन कर लेने पर प्रायदिचत्त की व्यवस्था दी है। यहाँ इलोक में जो 'पुराणेषु' शब्द आया है उसका पुराण नामक प्रन्थों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस महाप्रस्थ के खण्ड ४ में इन श्राद्धों के विषय में विस्तार के साथ बार्ते दी हुई हैं।

४२. वेदावर्षपुरागानि सेतिहासानि शक्तितः । जयवज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत् ॥ याज्ञ० १।१०१। मिलाइए कूर्म (२।४६।१२९) : एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नशः । एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते ॥

सितिहासानि' को हम 'पुराणों एवं इतिहास' के अर्थ में ही ग्रहण करते हैं। यह नहीं समझ में आता कि 'पुराणं यजुषा सह' नामक शब्द इस विश्वास के लिए क्योंकर महत्त्वपूर्ण हैं कि अश्वमेध में ही पुराण एवं महामारत का मूल है। उस लेख के २०२ वें पृष्ठ पर प्रो० हच्या शंकराचार्य के भाष्य (छान्दोग्य ३।४।१-२ पर) से एक उद्धरण देते हुए एक गहरी मूल करते हैं। उनका कहना है, 'शंकर द्वारा रात्रि का बहुवचन (रात्रिषु) में प्रयोग करना इस बात का द्योतक है कि उनके मत से इतिहास एवं पुराण पारिष्ठित में प्रत्येक रात्रि में प्रयुक्त होते थे, केवल ८ वीं एवं ९वीं रात्रियों में ही नहीं, जैसा कि शतपथना एवं शांखायनश्रीतसूत्र में आया है' अश्वमेध यज्ञ एक वर्ष तक चला और पारिष्ठित का श्रवण वर्ष मर चला, प्रत्येक पारिष्ठित १० दिनों का होता है ('दिन' के स्थान पर 'रात्रि' भी हो सकता है क्योंकि होता का जप प्रातः, मध्या ह्र एवं सायं इष्टियों के हो जाने के उपरान्त होता था)। दस दिनों की प्रत्येक अवधि के उपरान्त कितने मन्त्र पढ़े जायेंगे, किस प्रकार के आख्यान सुनाये जायेंगे, यह सब निश्चित रहता है, तथा इतिहास एवं पुराण केवल अष्टमी एवं नवमी को ही सुनाये जायेंगे। प्रत्येक अवधि दस दिनों की होती थी, अतः वर्ष में ३६ अवधियां होती रही होंगी। इसी से शंकराचार्य ने 'पारिष्ठवासु रात्रिषु' (बहुवचन में) कहा है, और यह नहीं कहते कि इतिहास एवं पुराण समी रात्रियों (सर्वासु रात्रिषु) में कहे जाने चाहिए, जैसा कि प्रो० हज्जा ने सर्व १९५८ई० में 'स्टडीज इन दि उपपुराणज' (जिल्द १,पृ० १-४००, सौर एवं वैष्णव

प्रो॰ हज्जा ने सन् १९५८ई॰ में 'स्टडीज इन दि उपपुराणज' (जिल्द १,पृ॰ १-४००, सौर एवं वष्णव उपपुराण, कलकत्ता संस्कृत कालेज सीरीज १९५८) का प्रकाशन किया है, जिसके विषय में हम संक्षेप में कुछ आगे कहेंगे।

प्रो॰ रामचन्द्र दीक्षितार ने भी पुराणों पर बहुत-कुछ लिखा है। इनके प्रकाशनों में भी प्रो॰ हज्जा में पायी जाने वाली दुर्बलताएँ हैं। उदाहरणार्थ, अपने एक लेख (१३ वीं इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस की प्रोसीडिंग में प्रकाशित, पृ॰ ४६-५०) में इन्होंने दर्शायाँ है कि विष्णुपुराण ई॰ पू॰ ६ ठी या ७ वीं शती में प्रणीत हुआ, क्योंकि उसमें (जो प्रति आज मिलती है, उसमें) व्रतों, उपवासों एवं तीर्थों पर विवेचन नहीं है। मानी हुई बात है कि आज का कोई विद्वान् इस तिथि को स्वीकार नहीं कर सकता। प्रो॰ दीक्षितार को चाहिए था कि वे कुछ विषयों के अभाव पर अपने तक को आधारित न करके उस पुराण के भीतर की बातों पर विचार करते हुए सम्भावित तिथि की चर्चा करते।

पुराणों के विषय में चर्चा करते हुए हमें बंगाल के राजा बल्लालसेन कृत 'दानसागर' में लिखित आरम्भिक बातों पर व्यान देना व्यवश्यक है। इस ग्रन्थ का सम्पादन श्री भवतोष मट्टाचार्य (बी० आई० सीरीज, १९५३-५६) ने किया है। राजा बल्लालसेन द्वारा लक्षित बातें उनकी विश्लेषणात्मक शक्ति की द्योतक हैं, जो अन्य मध्यकालीन संस्कृत-लेखकों में नहीं पायी जातीं। उन्होंने गोपथबाह्मण, रामायण, महामारत, स्मृतियों एवं गौतम, मनु, याज्ञ-वल्क्य के वर्मशास्त्रों, (शंख एवं लिखित को दो मानते हुए) दान-बृहस्पति एवं बृहस्पति (दोनों पृथक्-पृथक्), विस्कृत आदि वर्मशास्त्रों (कुल २८) के अतिरिक्त छान्दोग्यपरिशिष्ट (कात्यायन कृत), १३ प्रमुख पुराणों (ब्रह्म, वराह, आग्नेय, मिवष्य, मत्स्य, वामन, वायवीय, मार्कण्डेय, वैष्णव, शैव, स्कान्द, पद्म एवं कूर्म) तथा कूर्म एवं आदि पुराणों में उल्लिखत उपपुराणों (यथा आद्य, साम्ब, कालिका, नान्द, आदित्य, नारसिंह, विष्णुधर्मोत्तर जो मार्कण्डेय द्वारा वर्णित है) का उल्लेख किया है, जिनमें दानों की विधि का वर्णन है। उन्होंने विष्णुधर्म

४३. भाष्य का वचन यह है : 'इतिहासपुराणं पुष्पम् । तयोश्चेतिहासपुराणयोरश्वमेधे पारिप्लवासुरात्रिष् कर्मां गत्वेन विनियोगः सिद्धः।'

(कुल आठ) नामक शास्त्र का भी उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि अपने ग्रन्थ में हमने १३७५ दानों पर इन सभी ग्रन्थों का सहारा लिया है। उन्होंने कुछ ऐसे पुराणों एवं उपपुराणों का उल्लेख किया है जिन्हें उन्होंने कुछ कारणों से दान-सम्बन्धी अपने ग्रन्थ में छोड़ दिया है।

दानसागर के कुछ वक्तव्य वड़े महत्त्वपूर्ण हैं। " वल्लालसेन का कहना है कि हमने मागवत, ब्रह्माण्ड एवं नारदीय की वातें नहीं दी हैं, क्योंकि इनमें दानों का वर्णन नहीं है। अपने ग्रन्थ में उन्होंने लिंगपुराण का सहारा नहीं लिया, क्योंकि यह बड़ा होते हुए भी मत यपुराण में घोषित महादानों में कोई अन्य बात नहीं जोड़ता। उन्होंने भविष्यपुराण को केवल सप्तमी की व्रतविधियों तक अपने काम का माना है, क्योंकि अष्टमी एवं नवमी की व्रतिविधियाँ तान्त्रिकों, बौद्ध आदि पाषण्डियों की मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों से रंगायित हैं। वल्लालसेन ने अपने

४४. बृहदिष लिंगपुराणं मत्स्यपुरोदितमहादानै: । अवधायं तुल्यसारं दानिनबन्धेत्र न निबद्धम् ॥ (५८) । सप्तम्यैव पुराणं भविष्यमि संगृहीतमित्यत्तात् । त्यक्त्वाष्ट्रमीनवम्यौ कल्पौ पाषण्डिमिग्रंस्तौ ॥ लोकप्रसिद्धमेति-दिष्णुरहस्यं च शिवरहस्यं च । द्वयमिह न परिगृहीतं संग्रहरूपत्वमवधायं ॥ भविष्योत्तरमाचारप्रसिद्धमितिषि च । प्रामाण्यज्ञापकाद् दृष्टेग्रंन्यादस्मात् पृथक् कृतम् ॥ प्रचरद्रपतः स्कन्दपुराणेकांशतोधिकम् । यत्वण्डित्रतयं पौण्ड्रदेवावित्ति-कथाश्र्यम् ॥ ताक्ष्यं पुराणमपरं बाह्ममान्यमेव च । त्रयोविश्वतिसाहस्रं पुराणमपि वैष्णवम् । षट्सहस्रमितं लेगं पुराणमपरं तथा । दीक्षाप्रतिष्ठापाषण्डपुक्तिरत्नपरीक्षणेः ॥ मृषावंशानुचरितैः कोषव्याकरणादिभिः । असंगतकथा-वन्धपरस्परविरोधतः ॥ तन्मीनकेतनादीनां भण्डपाषण्डिलिग्नाम् । लोकवञ्चनमालोक्य सर्वमेवावधीरितम् ॥ एतत्पुराणोपपुराणसंख्याबिहिष्कृतं कश्मलकर्मयोगात् । पाषण्डशस्त्रानुगतं निरूप्य देवीपुराणं न निबद्धमत्र ॥ (६७) । विष्णुपुराण की दोका विष्णुचित्तो का कथन है कि विष्णुपुराण के छः पाठान्तर हैं, यथा ६००० क्लोकों वाला, ८००० वाला, ९०००, १०,०००, २२,००० एवं २४,००० क्लोकों वाला; किन्तु दानसागर ने २३,००० क्लोकों वाले विष्णुपुराण की चर्चा की है, जिसे उसने छोड़ दिया है । मेघातिषि (मनु ४।२००) का कथन है कि प्रत्येक आश्रम की अपनी विशिष्टताएँ हैं, यथा बदुक को मेखला, मृगचर्म, पलाश-दण्ड धारण करना होता है, गृहस्यको बाँस की छड़ी, कर्णभूषण आदि, वानप्रस्थ को जीर्णशीर्ण वस्त्र एवं जटाजूट तथा संन्यासी को काषाय वस्त्र आदि धारण करना होता है । जो लोग इन आश्रमों में न रहते हुए भो इन लक्षणों से युक्त होकुर जीविकोपार्जन करते हैं, वे पायकर्म करते हैं । परा० मा० (१।२,पृ० ३८६ ने 'लिंगिन्' का अर्थ 'पाशुपतावयः' लगाया है ।

४५. कल्पतर (व्रत, पृ० २७४-३०८) एवं हेमाद्रि (व्रत, जिल्व १, पृ० ९२१-९५६) में दुर्गा की प्रशंसा में भिविष्यपुराण से नवमी तिथि के लिए कितप्य क्लोक उद्धृत हुए हैं। दुर्गा के कई नाम हैं, यया चिष्डका, नन्दा आदि, जिनमें शाक्त गम्ध आती है। उदाहरणार्थ, उभयनवमी-व्रत (कल्पतर, व्रत, पृ० २७४-२८२) के बारे में ऐसी व्यवस्था दी हुई है कि व्यम्बिका नामक अध्यक्षणा दुर्गा को लाल पुष्पों से सम्मानित करना चाहिए और भैसे के मांस का नैवेद्य देना चाहिए। इसी प्रकार नामनवमी व्रत (वही, पृ० २८३-२८८) में नैवेद्य मछली एवं मांस का है तथा महानवमी व्रत (पृ० २९६-२९८) में मंगला के लिए पायस एवं मांस का नैवेद्य व्यवस्थित है। नन्दानवमी में दुर्गा को नन्दा कहा गया है और सन्त्र है 'ओं नन्दाय नमः' (पृ० ३०४) तथा महानवमी व्रत (आक्विन-शुक्ल ९) में मद्य एवं मांस के साथ मैंसों, भेड़ों एवं बकरों के मुण्डों सहित पूजा की व्यवस्था है। इन सभी नवमी-व्रतों में कुमारियों को भोजन कराने की व्यवस्था है, जो शाक्त पूजा की विशेषता है। ११ वीं शती के बहुत पहले से उत्तरी भारत के लोगों को तान्त्रिक सम्प्रदाय ने प्रभावित कर रखा था, जैसा कि सूर्यमन्त्र 'खखोल्काय नमः' से प्रकट है;

समय के प्रिय ग्रन्थ विष्णुरहस्य एवं शिवरहस्य को अपने ग्रन्थ में कोई स्थान नहीं दिया है, क्योंकि वे केंवल संग्रह मात्र हैं। भविष्योत्तर (पुराण) को भी जो लोगों द्वारा व्यवहृत था और कट्टर सिद्धान्तों के विरोध में नहीं था, दान-सागर में स्थान नहीं मिला है, क्योंकि इसकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं थी। निम्निलिखित ग्रन्थों का भी दानसागर में कित्पय कारणों से उपयोग नहीं हुआ है, तीन खण्ड, अर्थात् स्कन्दपुराण के पौण्ड्र, रेवा एवं अवन्ति की कथाएँ, ताक्ष्यं (गरुड़) पुराण, अपर ब्रह्म एवं आग्नेय पुराण, २३००० क्लोकों वाला विष्णुपुराण, दूसरा (अपर) लिंगपुराण (जिसमें ६००० क्लोक हैं; ये सभी छोड़ दिये गये हैं। इनके बिह्निकार के कारण नीचे पाद-टिप्पणी में बतला दिये गये हैं।

दानसागर में बल्लालसेन ने जो बातें कही हैं उनसे कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। मिताक्षरा, कृत्यकल्पतरु एवं अपरार्क की टीका के उपरान्त दानसागर ही उन निबन्धों में आता है जिनकी तिथियाँ अपेक्षाकृत

निश्चित-सी हैं। दानसागर में मिताक्षर, कृत्यकल्पतरु एवं अपरार्क का उल्लेख नहीं है।

पूराण-सम्बन्धी उल्लेखों में प्रमुख ये हैं—दानसागर ने वायु एवं शिव को प्रमुख पुराणों (महापुराणों) में गिना है; लिंग, ब्राह्म, आग्नेय एवं विष्णु नाम के दो-दो पुराण हैं; ये चारों नाम वाले अन्य पुराण प्रामाणिक नहीं हैं; तान्त्रिक सम्प्रदाय की विधियाँ भूणास्पद हैं, अतः देवीपुराण एवं भविष्य के कुछ माग बहिष्कृत हैं; स्कन्द के तीन खण्ड उपयोगी नहीं हैं; गरुड़ पुराण प्रामाणिक नहीं है। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि कूर्म (१।१।१७-२०) के मत से स्कन्द, वामन, ब्रह्माण्ड एवं नारदीय जैसे कुछ उपपुराण महापुराण के ही नाम घारण करते हैं। कल्पतरु (ब्रह्मचारिखण्ड, पृ० २५) द्वारा उद्धृत मविष्यपुराण से लिये गये एक वक्तव्य पर प्रो० हज्जा ने विश्वास किया है, जहाँ ऐसा आया है कि 'जय' नामक उपाधि निम्नोक्त ग्रन्थों के लिए लगायी गयी है, यथा—१८ पुराण, रामायण, विष्णुवर्मादिशास्त्र, शिवधर्म, महाभारत, सौरधर्म एवं मानवधर्म (मनुस्मृति ?) । विष्णुधर्मपुराण की चर्चा हम आगे करेंगे। किन्तु इस कथन की प्रामाणिकता एवं प्राचीनता के विषय में गहरा सन्देह है। यह कल्पतरु में उद्धृत है, अतः यह १०५० ई० से पूर्व का है। १८ पुराणों की महत्ता गाने के लिए 'जय' का अर्थ विस्तारित किया गया है। उद्योगपर्व (१३६।१८-१९) एवं स्वर्गारोहणिक (५।४९ एवं ५१) में 'जय' का प्रयोग केवल महाभारत के लिए हुआ है। अतः जब सभी पुराण प्रणीत हो चुके थे तव, अर्थात् नवीं शती के उपरान्त ही उपर्युक्त वक्तव्य सम्मिलित किया गया होगा। 'विष्णुधर्मादिशास्त्राणि' बहुवचन में है, इससे स्पष्ट है कि कई ऐसे ग्रन्थ थे जो विष्णुधर्म से सम्बन्धित थे। स्वयं कल्पतरु से प्रकट है कि 'जय' वाला श्लोक कुछ लोगों द्वारा 'स्मृति' के समान उल्लिखित है। अतः इसे मिवष्य का क्लोक मानना संदेहास्पद है। बल्लालसेन ने दानों पर केवल आठ उपपुराणों का उल्लेख किया है (जिनमें मत्स्य द्वारा उल्लिखित चार भी सम्मिलित हैं)।

प्रो० हजा ने उपपुराणों के विषय में जो कार्य किया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उन्होंने साम्ब, विष्णुधर्म, विष्णुधर्मोत्तर, नर्रासहपुराण आदि प्रमुख उपपुराणों की जो तिथियाँ निर्धारित कीं हैं, वे प्रस्तुत लेखक को मान्य नहीं हो सकतीं। उनकी तिथियाँ यों हैं—साम्ब, ५०० एवं ८०० ई० के मध्य; विष्णुधर्मपुराण, २००-३००

देखिए भविष्य (१।२१५।१-६), जहाँ मूल मन्त्र एवं उसके अनुबंध, जिनमें कुछ ये हैं: 'ओं विटिविटि शिरः, ओं ज्वालिने इति शिखा, ओं सहस्रकिरणोज्ज्वलाय फट् कथ्वंबन्धः।' (जल्पतर, वत, पृ० १९९)। यह द्रष्टच्य है कि अग्निपुराण (२७२।३) ने ऐसे विष्णुपुराण की चर्चा की है जिसमें २३,००० इलोक थे।

ई०; विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ४००-५०० ई०; नर्रांसहपुराण, ४००-५०० ई०। प्रो० हज्जा ने इन तिथियों के निर्घारण में जो तर्क दिये हैं, वे सभी निर्यंक एवं लचर हैं। हम इस विवेचन को यहीं छोड़ते हैं।

पुराणों के विषय में बहुत-से ग्रन्थ, अनुवाद एवं लेख प्रकाशित हुए हैं। हम यहाँ कुछ का उल्लेख कर रहे हैं। इयोजीन वर्नाफ ने भागवत पुराण को फांसीसी भाषा में सन् १८४० ई० से लेकर कई वर्षों में ५ भागों में अनूदित किया। विष्णु ऐवं मार्कण्डेय का अनुवाद कम से एच्० एच्० विल्सन एवं पाजिटर ने किया। प्रो० किर्फेल ने 'प्राण पञ्चलक्षण' (१९२७, बॉन) की भूमिका लिखी (अनुवाद, जर्नल, श्री वेंकटेश इंस्टीच्यूट, जिल्द ७, पृ० ८१-१२१ एवं जिल्द ८, पृ० ९-३३); किर्फेल (फेस्ट-क्रिफ्ट जैकोबी, पृ० २९८-३१६) का लेख; के० पी० जायसवाल का 'क्रॉनालॉजिकल टेबुल्स इन पुराणिक क्रॉनिकल्स' (जे० बी० ओ० आर० एस०, जिल्द ३,पृ० २४६-२६२) ; 'पुराणज एण्ड इण्डस आर्यस' एवं 'स्टडीज आव ऐंश्येण्ट जिआग्रफी इन अग्निपुराण' (इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, १९३३, जिल्द १८, पृ० ४६१ एवं ४७०) प्रो० रामचन्द्र दीक्षितार का वायु एवं मत्स्य का अध्ययन तथा पुराणों की अनुक्रमणिका, तीन जिल्दों में; रुवेन का 'पुराणिक लाइन आव हीरोज' (जे० आर० ए० एस्, १९४१, पृ० २४७-२५६ एवं पृ० ३३७-३५०); जे० ए० एस्० बी० (१९३८, जिल्द ४, लेख १५, पृ० ३९३); 'पुराणज आन गुप्तज़' (इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, जिल्द २१,पृ० १४१); डा० डी० आर० पाटिल (बी० डी० सी० आर॰ आई॰, जिल्द २, पृ॰ १४८-१६५); एच्॰ सी॰ रायचीधुरी (प्रोसीडिंग, दसवीं ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, पृ॰ ३९०); डा० बी० सी० मजूमदार का 'ऑरिजिन एण्ड कैरेक्टर आव पुराण लिटरेचर' (आशुतोष मुकर्जी रजत जयन्ती जिल्द ३, ओरिएण्टैलिया, भाग २, पू० ९-३०); इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली (जिल्द २२, पू० २२१-२२३) के पुष्ठ ३० का क्लोक र ; पेनुकोण्डा दान-पत्र (एपि० इण्डिका, जिल्द १४, पु० ३३८) जहाँ गंगराज माघव द्वितीय को शास्त्रों, इतिहास एवं पूराणों का सार-संक्षेप-ज्ञाता कहा गया है; पूराणों के अध्ययन की चर्चा सन् ५७८ ई० (एपि० इण्डिका, जिल्द २८, प्० ५९) में हुई है।

अब आगे प्रस्तुत लेखक ने प्रकाशित पुराणों एवं निबन्धों के आधार पर सभी पुराणों एवं उपपुराणों पर अपनी टिप्पणियाँ दी हैं। इसका विश्वास है कि सबसे प्राचीन निबन्ध जो अब तक प्रकाश में आ चुके हैं वे लगभग ११०० ई० के पूर्व के नहीं हो सकते। यद्यपि विद्वानों में मतभेद है, तब भी मिताक्षरा, कृत्यकल्पतरु (जो धर्मशास्त्र के कितपय विषयों पर एक सामान्य निबन्ध है) एवं अपरार्क का ग्रन्थ (जो याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका के रूप में है, किन्तु है निबन्ध ही) ऐसे प्रकाशित निबन्ध हैं जो कम या अधिक रूप में समकालीन ही कहे जा सकते हैं और उनके प्रणयन का काल ११०० से ११४० ई० के बीच माना जा सकता है। कृत्यकल्पतरु ने व्यवहार की अर्वा करते हुए प्रकाश, हलायुध, कामधेनु एवं पारिजात का उल्लेख किया है। इतना ही नहीं, कृत्यकल्पतरु (नियत०, पृ० २८०) ने स्मृतिमञ्जरी (गोविन्दराज लिखित) द्वारा परारीक (आ० घ० सू० १११७।२६ में) की व्याख्या उपस्थित की है और श्राद्ध पर (पृ० ४६ एवं २५९) भी ऐसा करते हुए संकेत किया है। इस महाग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हमने देख लिया है कि प्रकाश, पारिजात, स्मृतिमञ्जरी प्रसिद्ध निबन्ध हैं, इसी प्रकार गोपाल कृत कामधेनु भी निबन्ध ही है। गोपाल लक्ष्मीधर के मित्र थे, किन्तु अपने ग्रन्थ में लक्ष्मीधर ने गोपाल को मूत काल ('चक्रे') एवं अपने

४६. वलोक यह है: 'रामायणपुराणाभ्यामशेषं भारतं ददत्। अकृतान्वहमच्छेद्यां स च तद्वाचनस्थितिम्।।' देखिए इ० हिस्टा० क्वा०, जिल्द २२, पृ० २२१-२२३। इसमें आया है कि राजा ने भारत, रामायण एवं पुराणों के दैनिक वाचन की व्यवस्था की थी। यह क्लोक ईसा के उपरान्त छठी शती का है।

ग्रन्थ को वर्तमान में ('तन्यते') उल्लिखित किया है, जिससे प्रकट होता है कि कामघेनु का प्रणयन कल्पतर के कुछ वर्ष पहले हो चुका था। प्रकाश, पारिजात एवं कामधेनु की प्रतिलिपियाँ नहीं प्राप्त हैं, अतः उनके विस्तार आदि के विषय में कुछ कहना असम्भव है, किन्तु स्मृतिमञ्जरी के प्रायश्चित्त नामक विभाग की पाण्डुलिपि के अन्त के सार-संक्षेप से प्रकट होता है कि वह पर्याप्त लम्बी रही होगी और पश्चात्कालीन कृत्यकल्पतरु की विधियों के अनसार ही प्रणीत हुई होगी। क्योंकि इसका आरम्म परिमाषाखण्ड एवं ब्रह्मचारि-विमाग से हुआ था और तब गृहस्थ-धर्मों, दान, शुद्धि एवं आशौच, श्राद्ध का वर्णन किया गया और फिर वानप्रस्थ एवं प्रवज्या (कल्पतरु के मोक्ष-काण्ड के समान) तथा अन्त में प्रायश्चित्तों पर लिखा गया। कल्पतरु से पूर्व रचित ये ग्रन्थ विस्तार एवं आकार में लक्ष्मीघर की कृति से छोटे थे, किन्तु हेमाद्रि, चण्डेस्वर, मदनरत्न, वीरिमत्रोदय एवं नीलकण्ठ के मयूखों की प्रसिद्धि के समक्ष लक्ष्मीघर की कृति भी मन्द पड़ गयी। कामघेनु एवं सम्भवतः स्मृतिमञ्जरी के पूर्व ही भोज (११ वीं शती के दूसरे चरण में) ने मुजबल एवं राजमार्तण्ड जैसे कई ग्रन्थों का प्रणयन किया (या कराया); जिनमें पुंसवन से विवाह तक के संस्कारों की तथा वरतों, यात्रा, शान्तियों, प्रतिष्ठा से सम्बन्धित ज्योतिषीय आवश्यकताओं पर प्रकाश डाला गया है (देखिए प्रस्तुत लेखक का लेख, जे० ओ० आर०, मद्रास, जिल्द २३, १९५३-५४, पृ० ९४-१२७, जहाँ भोज के पाँच ग्रन्थों पर विवेचन उपस्थित किया गया है)। तो ऐसी स्थिति में कृत्यकल्पतरु में कोई नवीनता नहीं थी, हाँ, वह विस्तार में वड़ा था, विषयों के तार्किक विवेचन और महाकाव्यों तथा पुराणों से उद्धरण लेने में प्रमुखता रखता था। मिताक्षरा में पुराणों के उद्धरण कम हैं, किन्तु अपरार्क एवं कल्पतरु बहुत उद्धरण देते हैं। कल्पतरु ने लगभग ६०० <mark>क्लोक देवीपुराण से और २०० से अघिक क्लोक कालिका, आदित्यपुराण, निन्दपुराण एवं नर्रासहपुराण नामक उपपुराणों</mark> में प्रत्येक से उद्धृत किये हैं। किन्तु उसने विष्णुधर्मोत्तर से एक भी श्लोक नहीं लिया है। कल्पतरु ने इसे सम्भवतः प्रामाणिक नहीं माना है, यद्यपि अपरार्क एवं दानसागर ने इसका कुछ उपयोग अवश्य किया है। विशद कल्पतरु के विद्वान् सम्पादक प्रो॰ आयंगर ने कठिन परिश्रम पूर्वक इसके कतिपय क्लोकों को पुराणों के उद्धरणों के रूप में सिद्ध करके विद्वानों का कार्य सरल कर दिया है, किन्तु प्रो० आयंगर की सभी बातें स्वीकार्य नहीं हो सकतीं। उन्होंने यहं प्रदिशत किया है कि हेमाद्रि, चण्डेश्वर एवं मित्र मिश्र ने किस प्रकार कल्पतरु को यथास्थान ज्यों-का-त्यों उतार लिया है। यह असम्मव नहीं है कि स्वयं कल्पतरु ने अपने पूर्ववर्ती पारिजात, प्रकाश, स्मृतिमञ्जरी एवं कामधेनु से बहुत-कुछ उधार लिया हो। किन्तु वे ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं हैं, अतः इस विषय में सप्रमाण कुछ कहना सम्भव नहीं है।

प्रत्युत्त लेखक ने राजमार्तण्ड (जिसमें १४६२ श्लोक हैं) के तिथियों, व्रतों एवं उत्सवों से सम्बन्धित २८६ श्लोकों का सम्पादन किया है (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३६, माग ३-४, १९५६, पृ० ३०६-३९९)। इसमें इन्द्रध्वजोत्थापन जैसे कितपय व्रतों एवं उत्सवों का उल्लेख है और ग्रन्थ कल्पतरु से ७५ वर्ष पुराना है। कल्पतरु ने मोज के विषय में मौन साध लिया है, किन्तु कामधेनु, गोविन्दराज, प्रकाश एवं हलायुध का उल्लेख किया है, कहीं भी राजमार्तण्ड में विणत व्रतों का उल्लेख नहीं है। लगता है, लक्ष्मीघर ने यह नहीं चाहा कि उनके व्रत-सम्बन्धी वर्णन एवं मोज के वर्णन में किसी प्रकार की तुलना की जाय।

पुराणों की तिथियों के विषय में सचौद्वारा अनुवादित अल्बरूनी का ग्रन्थ कुछ प्रकाश देता है। पृ० १३० में आया है कि उसने (अल्बरूनी ने) निम्नोक्त पुराणों के विषय में सुना है—आदि, मत्स्य, कूर्म, वराह, नार्रासह, वामन, वायु, नन्द, स्कन्द, आदित्य, सोम, साम्ब, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, ताक्ष्यं (अर्थात् गरुड़), विष्णु, ब्रह्म एवं भविष्य। इस सूची से स्पष्ट है कि इसमें पुराण एवं उपपुराण दोनों सम्मिलित हैं। अल्बरूनी ने यह भी कहा है कि उसने मत्स्य, आदित्य एवं वायु के कुछ अंश मात्र देखे हैं। पृ० १३१ (सचौ के अनुवाद का पृष्ठ) पर एक

## पौराणिक अनुशीलन पर प्रस्तुत ग्रन्थकार का अभिमत

अन्य सूची है जो उसे विष्णु से पढ़कर सुनायी गयी थी (अर्थात् १८ प्रमुख पुराण, जिनमें वायु के स्थान पर शैव रख दिया गया है)। पुनः पृृंप २२९ पर उसने आदित्य से पृथिवी के नीचे के कुछ भागों का वर्णन किया है और प्रदिशत किया है कि किस प्रकार इससे वायुपुराण मिन्न है तथा पृ० २४८ पर उसने विष्णु, वायु एवं आदित्य से मेरु के विषय में वर्णन दिया है। अल्बल्नी ने सन् १०३० ई० में अपना ग्रन्थ लिखा, अतः यह प्रतीत होता है कि उसके द्वारा उल्लिखित पुराण कम-से-कम १००० ई० के पूर्व अवश्य उपस्थित हो गये होंगे।

प्रो॰ हज्जा आदि के कुछ लेख आदि, जो पुराणों एवं उपपुराणों पर प्रकाश डालते हैं, डा॰ पुसल्कर द्वारा एक स्थान पर संगृहीत कर दिये गये हैं, यथा 'स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणज' (पृ॰ २१८-२२५), उनमें कुछ का उल्लेख हम करेंगे। प्रो॰ हज्जा ने लगमग १६ लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराये, जो उनके ग्रन्थ 'स्टडीज इन पुराणिक रेकर्ड्स आव हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स' में संगृहीत हैं।

888

### अध्याय २३

# पुराणों एवं उपपुराणों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ

[संकेत: अकारादि कम के अनुसार यहाँ पुराणों का विन्यास किया जा रहा है। प्रो० हज्जा को ह० एवं उपपुराण को उप० लिखा जायगा। प्रो० हज्जा के ग्रन्थ को हम 'स्टडीज' कहेंगे, साथ ही उसे पी० आर० एच० आर० मी कहेंगे]

अग्निपुराण— 'वर्तमान अग्निपुराण' (ह०), इण्डियन हिस्ट्रारिकल क्वार्टरली, जिल्द १२, पृष्ठ ६८३-६९१; 'शुद्ध आग्नेय, उपनाम विह्निपुराण' का अध्ययन (ह० द्वारा 'आवर हेरिटेज़' में, जिल्द १, पृ० २०९-२४५ एवं जिल्द २, माग १, पृ० ७६-१०९); 'शुद्ध आग्नेय पुराण की खोज' ह० द्वारा '(जे० ओ० आई०, वड़ोदा, जिल्द ५, १९५६, पृ० ४११-४१६, इसमें यह व्यक्त किया गया है कि आनन्दाश्रम प्रेस द्वारा प्रकाशित आज का अग्निपुराण मौलिक नहीं है, वास्तिवक आग्नेय या विह्न अभी तक अप्रकाशित है); दानसागर (पृ० ७, श्लोक १३) में आग्नेय का उल्लेख है। जैसा कि अधिकांश पुराणों में पाया जाता है; आग्नेय पुराण ने यह कहकर अपनी महत्ता गायी है कि (२७२।१३ एवं १७) इस महापुराण में हरि विभिन्न ज्ञानों के रूप में निवास करते हैं और आग्नेय एक ऐसा महापुराण है जिसमें वेद एवं सभी विद्याएँ पायी जाती हैं।

आविपुराण (उप०)—मारतीय विद्या, जर्नल, वम्बई (जिल्द ६, १९४५, पृ० ६०-७३)। इसके विषय में प्रो० हजा की मान्यता है कि इसके प्रारम्मिक एवं पश्चात्कालीन दो पाठ हैं। वायु० (१०४।७) ने ब्राह्म० के सहित १८ पुराणों में एक आविक का उल्लेख किया है। अल्बरूनी (जिसने पुराणों एवं उपपुराणों को एक में मिला दिया है) ने एक आदिपुराण का नाम लिया है। वेंक० प्रेस ने २९ अध्यायों में एक आदि पुराण मुद्रित किया है। प्रो० हजा का कथन है कि एक प्राचीन आदिपुराण भी था, जो आज उपलब्ध नहीं है। उनके अनुसार इसकी तिथि १२०४ एवं १५२५ ई० के बीच में कहीं है (स्टडीज, पृ० २८८)। आदि एवं आद्य दोनों का अर्थ एक ही है। किन्तु कुल्लूक (मनु २।५४) ने आदि से कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं जो गृहस्थरत्नाकर (पृ० ३१४) द्वारा ब्राह्म के बताये गये हैं। निबन्धों ने आदि एवं आवित्यपुराण में सम्भ्रमता उत्पन्न कर दी है। देखिए ह० (स्टडीज, माग १, पृ० ३०२-३०३)। प्रकाशित प्रति पश्चात्कालीन है, क्योंकि लक्ष्मीधर एवं अपरार्क द्वारा उद्धृत श्लोक इसमें नहीं पाये जाते (देखिए स्टडीज, जिल्द १, पृ० २८६-२८९)।

आदित्यपुराण—मत्स्य (५३।६२) द्वारा उप पु० विणत, अल्बरूनी (सचौ १, पृ० १३०, २२९, २२८) द्वारा उल्लिखित; कृत्यकल्पतरु द्वारा राजधर्मं (लगमग २ श्लोक), दान (लगमग १२५ श्लोक), श्राद्ध (लगमग २० श्लोक) एवं व्रत (लगमग २२ श्लोक) पर उद्धृत। स्मृतिचिन्द्रका ने आिह्नक एवं श्राद्ध पर आदि एवं आदित्य के श्लोक उद्धृत किये हैं एवं दोनों को पृथक्-पृथक् 'शौच' पर उद्धृत किया है (माग १, पृ० ९४)। यही बात अपरार्क एवं दानसागर में भी पायी जाती है; दोनों ने आदि एवं आदित्य के उद्धरण लिये हैं।

एकाम्न (उड़ीसा का एक ग्रन्थ)। ह० (पूना ओरियण्टलिस्ट, जिल्द १६, पृ० ७०-७६ एवं स्टडीज, भाग १, पृ० ३४१) ने यह १० वीं या ११ वीं शती की कृति मानी है। कालिका—(वेंक० प्रेस, वम्बई द्वारा ९३ अध्यायों में उप० रूप में प्रकाशित)। देखिए ह० (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द २२, पृ० १-२३); शर्मा (इण्डि० हि० क्वा०, जिल्द २३, पृ० ३२२-३२६) ने ऐसा विचार व्यक्त किया है कि यह उपपुराण कामरूप के राजा धर्मपाल के शासन-काल में पूर्ण हुआ; ह० (भारतीय विद्या, जिल्द १६, १९५६, पृ० ३५-४०) ने शर्मा के मत का विरोध किया है। प्रो० गोड़े ने इसकी तिथि के विषय में जे० ओ० आर० (मद्रास, जि० १०, पृ० २८९-२९४) में लिखा है। और देखिए डा० राघवन (वही, जिल्द १२, पृ० ३३१-३६०), जिन्होंने व्यक्त किया है कि इसके तीन पाठान्तर हैं। ह० ने आज की प्रति एवं पहले की प्रति में अन्तर दिखाते हुए आज की प्रति को १० वीं या ११ वों शती का माना है। कल्पतरु ने कालिका के क्लोक (व्रत एवं दान पर १००, गृहस्थ पर १४, व्यवहार पर १२, नियतकाल एवं तीर्थ पर ५, ब्रह्मचारी पर २) उद्धृत किये हैं। इसी प्रकार अपरार्क एवं दानसागर में भी इसके उद्धरण हैं। वेंक० संस्करण में विष्णुधर्मोत्तर का उल्लेख हैं (९१-७० एवं ९२।२)। आज जो प्रति उपलब्ध है उसके आधार पर कालिका को १००० ई० में रखा जा सकता है।

किल्कुराण—देखिए ह० (स्टडीज, जिल्द १, पृ० ३०३-३०८)। इसके तीन संस्करण हैं और समी कलकत्ता के हैं। ह० के कथनानुसार यह पश्चात्कालीन पुराण है, इसे किसी ने उद्धृत नहीं किया है, फिर भी इसे १८ वीं शताब्दी के उपरान्त का नहीं कहा जा सकता है।

कूमं—(वेंक० प्रेस संस्करण); यह पूर्वार्घ (५३ अध्याय) एवं उत्तरार्घ (४६ अध्याय) मागों में बँटा हुआ है। देखिए ह० ('पुराणज इन हिस्ट्री आव स्मृति', इण्डि० कल्चर, जिल्द १, पृ० ५८७-६१४; 'स्मृति चैप्टर्स आव कूमें', इण्डि० हिस्टा० क्वा०, जिल्द ११, पृ० २६५-२८६ एवं स्टडीज, पृ० ५७-७५)। ह० का कथन है कि यह आरम्म में एक पाञ्चरात्र कृति था, जो पाशुपत बनाने के लिए परिवर्तित कर दिया गया। बहुत इलोकों में कूमें ने कहा है कि परमात्मा एक है (-२।११।११२-११५), किन्तु नारायण एवं ब्रह्मा (१।९।४०) या विष्णु एवं शिव (१।२।९५) के रूपों में दो और कमी तीन (१।१०।७०)। स्मृतिचिन्द्रका (माग १,पृ० १९९) ने इसके (१।२।९४,९५,९७-९९) उद्धरण दिये हैं, जिनके द्वारा कोई विष्णु की पूजा (ऋ० १।२२।२० या १०।९८ के मन्त्रों के साथ) या शिव की पूजा रूद्रगायत्री या रुद्रों के साथ (तै० सं० ४।५।१-११), या 'त्र्यम्बकम्' (ऋ०७।५९।१२,तै० सं०१।८।६।२) के साथ या 'ओं नमः शिवाय' के साथ कर सकता है। स्मृतिच० ने आह्निक पर ८४ एवं श्राद्ध पर १९ श्लोक उद्धृत किये हैं। एक स्थान (१।१।२१-२२) पर इसमें आया है कि पुराण की चार संहिताएँ थीं, यथा—ब्राह्मी, आगवती, सौरी एवं वैष्णवी और प्रस्तुत संहिता ६००० श्लोकों में ब्राह्मी संहिता है। नारदीय (१।१०६।१-२२) ने अन्य तीन संहिताओं का संक्षेप उपस्थित किया है। अपरार्क ने उपवास पर इसके तीन श्लोक (पृ० २०१, ३०४ एवं २०७) उद्धृत किये हैं।

गणेशपुराण-देखिए ह०, जर्नल आव दि गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीच्यूट, इलाहावाद।

१. कालिका (९२।२) में आया है : 'विष्णुधर्मोत्तरे तन्त्रे बाहु त्यं सर्वतः पुनः । द्रष्टव्यस्तु सदाचारो द्रष्टव्यास्ते प्रसादतः ॥' इसके उपरान्त पुत्र की इच्छा रखने वाले वेताल एवं भैरव की कथा कही गयी है ।

२. कौमं समस्तपापानां नाशनं शिवभिन्तदम्। इदं पद्यं च शुश्राव पुराणज्ञेन भाषितम्।। ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तयैव गुरुतल्पगः। कौमं पुराणं श्रुत्वैव मुच्यते पातकात्ततः।। पद्म (पातालखण्ड १०२, ४१-४२)।

गरुषुराण—गत अध्याय में कहा गया था कि बल्लालसेन ने इसका विहिष्कार किया है। देखिए ह० (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द १९,पृ० ६९-७९; स्टडीज,पृ० १४१-१४५); ए० पी० करमकर, 'बृहस्पितनीतिसार' (सिद्ध-मारती, जिल्द १,पृ० २३९-२४०); डा० एल्० एस० स्टर्नबाच (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३७, पृ० ६३-११०)जिन्होंने चाणक्यराजनीतिशास्त्र एवं बृहस्पितसंहिता (गरुड़पुराण की) पर लेख लिखा है। स्मृतिच० (२,पृ० २५७, एकादशी पर) ने गरुड़ का उद्धरण दिया है। आज के गरुड़पुराण की प्रति ने पराशरस्मृति का संक्षेप ३९ श्लोकों में दिया है। इसकी तिथि ई० छठीं शती के पूर्व एवं सन् ८५० के उपरान्त नहीं रखी जा सकती।

देवीपुराण—(उपपुराण)। देखिए ह० (न्यू इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द ५, ५० २-२०) जिन्होंने इसे सातवीं शती के उत्तरार्घ का माना है। देखिए दानसागर जिसने इसके उपयोग का विहष्कार किया है। संक्रान्ति के विषय में चर्चा करते हुए मुजबल-निबन्ध (लगमग १०४० ई०) ने इसे उद्धृत किया है। कल्पतरु ने कई खण्डों में देवीपुराण को उद्धृत किया है, यथा राजधर्म में २१० श्लोक (८८ श्लोक राजधानी की किलेबन्दी पर), बकरियों एवं मैसों की विल के साथ आश्विन शुक्ल नवमी पर देवी की पूजा में ३७ श्लोक, देवी के सम्मान में पताका खड़ी करते समय के ५२ श्लोक, कार्तिक-अमावस्या पर गवोत्सर्ग के १० श्लोक; वतकाण्ड में लगमग ८० श्लोक (दुर्गाष्टमी पर २५ श्लोक, नन्दावत पर ४४ श्लोक, एक गद्ध खण्ड के साथ), दान पर; ४५ श्लोक (यथा—तिलघेनु एवं घृतघेनु पर २८, विद्यादान पर ५६, कूप, वापी, दीघिका आदि के निर्माण पर ९८, वाटिका एवं वृक्षारोपण पर २७, साधु-संन्यासियों के विश्वाम-स्थल-निर्माण पर १० श्लोक); तीर्थकाण्ड में १०१ श्लोक; नियतकालकाण्ड में ३० श्लोक; ब्रह्मचारि-काण्ड में थोड़े श्लोक; गृहस्थकाण्ड में ६ श्लोक; श्राद्धकाण्ड में एक श्लोक। अपरार्क ने लगमग ३४ श्लोक उद्धृत किये हैं जिनमें ३ स्थापक के गुणों के विषय में हैं, क्योंकि स्थापक को पाञ्चरात्र के मातृ-सम्प्रदाय एवं श्रीव शास्त्रों के अनुसार वाम एवं दक्षिण मार्गों का ज्ञान होना आवश्यक था।

देवीभागवत— (१२ स्कन्घों में वेंक० प्रेस द्वारा प्रकाशित)। देखिए ह० (जे० ओ० आर०, मद्रास, जिल्द २१, पृ० ४९-७९, जहाँ यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि यह भागवत के उपरान्त लिखा गया है)। देखिए ताडपत्रीकर (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द २३, पृ० ५५८-५६२) द्वारा लिखित 'देवी-भागवत एवं मागवत'; इण्डि० हिस्टा० क्वा० (जिल्द २७, पृ० १९१-१९६) में रामचन्द्रन का कथन है कि देवगढ़ में नर-नारायण का उमरा हुआ चित्रांकन देवीमागवत पर आघारित है (देखिए देवीमागवत ४।५-१०); किन्तु प्रो० हज्जा श्री रामचन्द्रन की बात नहीं मानते।

नित्युराण—(उपपुराण)। देखिए ह० 'बृहन्नन्दिकेश्वर एण्ड नन्दिकेश्वर' (डा० बी० सी० ला-मेट ग्रन्थ, माग २,पृ० ४१५-४१९, एवं जर्नेल आव दिगंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीच्यूट, इलाहाबाद, जिल्द २, पृ० ३०५-३२०); प्रो० रंगस्वामी आयंगर (न्यू इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द ४, पृ० १५७-१६१) ने नन्दिपुराण पर चर्चा करते हुए लिखा है कि मौलिक पुराण लुप्त है, तथा लक्ष्मीघर द्वारा उद्धृत क्लोक दान के विमिन्न प्रकारों के विषय में ही हैं। कल्पतरु ने दान पर २०० क्लोक उद्धृत किये हैं, जिनमें १४० विद्यादान पर, १२ आरोग्यदान (इनमें ऐसी व्यवस्था है कि एक ऐसा अस्पताल बनवाया जाय जिसमें आयुर्वेद के आठ अंगों का ज्ञाता वैद्य हो और औषधियों आदि की समुचित व्यवस्था हो) पर हैं। अपरार्क ने विद्यादान पर १०० क्लोक उद्धृत किये हैं एवं आरोग्यदान पर कल्पतरु की मौति उद्धरण दिये हैं। कल्पतरु ने नियतकाल पर भी इस पुराण से उद्धरण लिये हैं। यह ग्रन्थ उन चार उपपुराणों में है जिन्हें मत्स्य ने स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया है। अल्बरूनी ने इसे नन्दपुराण कहा है जो सम्भवतः नन्दिपुराण का स्रोतक है। लक्ष्मीघर, अपरार्क एवं दानसागर ने इससे पर्याप्त संख्या में उद्धरण लिये हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि यह उपपुराण आठवीं या नवीं शताब्दी में अवश्य प्रणीत हो गया होगा।

नर्रांसहपुराण (या नृश्ंसहपुराण)——कल्पतरु ने वृत पर चर्चा करते हुए इस उपपुराण से २९ क्लोक लिये हैं (ये क्लोक आज की प्रति में प्राप्त हैं, देखिए २६।२-२०); तीर्थं की चर्चा में कल्पतरु ने इससे ६६ लोक लिये जो इसके अध्याय ६५।२-२१ में हैं। इसी प्रकार कल्पतरु ने नियतकाल पर ६५, मोक्ष पर ५७, दानकाण्ड पर १३, ब्रह्मचारिकाण्ड पर ४ क्लोक उद्धृत किये हैं। अपरार्क ने भी इस उपपुराण से प्रमूत उद्धरण देकर इसे मान्यता दी है। समृतिच० ने भी इसे उद्धृत किया है। लगता है, कल्पतरु एवं अपरार्क के समय इसका आकार बड़ा था। यह द्रष्टव्य है कि ऐल वंश का अन्तिम राजा क्षेमक इस पुराण में नरवाहन का पुत्र एवं उदयन तथा वासवदत्ता का पौत्र कहा गया है। आज जो प्रति प्राप्त है उसकी तिथि लगमग नवीं शती है।

नारदपुराण (वेंक० प्रेस द्वारा प्रकाशित) --- देखिए ह० (इण्डि० कल्चर, जिल्द ३, प्०४७७-४८८, स्टडीज, जिल्द १, पृ० ३०९-३४५, 'बृहन्नारदीय' एवं 'नारदीय' आदि)। बृहन्नारदीय का प्रकाशन कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी एवं वंगवासी प्रेस द्वारा ३८ अध्यायों एवं ३६०० श्लोकों में हुआ है। ह० के अनुसार वृहन्नारदीय एक कट्टर वैष्णव साम्प्रदायिक कृति है और इसमें पुराण की विशेषताओं का अभाव है। ह० ने यह भी कहा है कि मत्स्य (५३।२३) द्वारा अवलोकित (जिसमें २३००० क्लोक थे और जिसमें नारद ने बृहत्कल्प के घर्मों की घोषणा की है) एवं अग्नि (२७२।८) द्वारा उल्लिखित नारदीय आज के नारदीय से भिन्न था और आज वाले नारदीय ने बृहन्नारदीय से बहुत कुछ उधार लिया है (स्टडीज, जिल्द १, पृ० ३३६-३४१)। वेंक० प्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण दो भागों में विभक्त है, प्रथम १२५ अध्यायों में है और द्वितीय ८२ अध्यायों में (कुल लगभग ५५१३ श्लोकों में)। द्वितीय भाग के ५५१३ क्लोकों में ३४०० तीर्थों से सम्बन्धित हैं और शेष रुक्मांगद एवं मोहिनी की गाथा से सम्बन्धित हैं । प्रथम भाग में विष्णु एवं भिवत की प्रशंसा, भारत का भूगोल, सगर की कथा, भगीरथ एवं गंगा-माहात्म्य, <mark>कुछ</mark> वृतों, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, पातकों, सदाचार एवं श्राद्ध जैसे विषयों का उल्लेख है। नारदीय का एक श्लोक (१।९।४०) किरातार्जुनीय क्लोक ैसे मिलता है और घोषणा करता है कि यदि कोई ब्राह्मण महान् विपत्ति में भी बौद्ध मन्दिर में प्रवेश करता है तो वह सैकड़ों प्रायश्चित्तों के उपरान्त भी इस पाप से छुटकारा नहीं पा सकता, क्योंकि बौद्ध पाषण्डी और वेदविनिन्दक हैं। प्रथम भाग में वैष्णवागम (३७,४) एवं पंचरात्र-विधि (५३।९) का वर्णन है। स्मृतिच० ने नारदीय से एकादशी एवं मोहिनी-गाथा के विषय में कई श्लोक उद्धृत किये हैं। अपरार्क ने एकादशी के उपवास के विषय में दो क्लोक उद्धृत किये हैं। उपर्युक्त दशाओं से यह स्पष्ट होता है कि आज का नारदीयपुराण ७०० एवं १००० ई० के बीच कभी संगृहीत हुआ।

पद्मपुराण—ह० (इण्डि० कल्चर, जिल्द ४, पृ० ७३-९५), श्री एम० वी० वैद्य (काणे-मेट-जिल्द, पृ० ५३०-५३७, यहाँ ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि पद्म का तीर्थयात्रा वाला विमाग महामारत-तीर्थयात्रा विमाग से प्राचीन है), डा० वेल्वेल्कर (एफ० डब्लू० फेस्टिकिपट, पृ० १९-२८) का कथन है कि पद्म महामारत पर आधारित है। प्रो० लूडर्स ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पद्म में उल्लिखित ऋष्यश्रृंग की वार्ता महामारत वाली वार्ता से प्राचीन है (इण्डि० हिस्ट्रा० क्वा०, जिल्द २०, पृ० २०९, जहाँ लूडर्स का मत दिया हुआ है)। ह० ने 'स्टडीज इन पुराणिक

३. अविवेको हि सर्वाधामापदां परमं पदम् । नारदीय (१।९।५०); मिलाइए 'सहसा विदंघीत न क्रियास-विवेकः परमापदां पदम् ।' किरात० २।३०।

४. बौद्धालयं विशेद्यस्तु महापद्यपि वै द्विजः। न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरिप . . . बौद्धाः पाखण्डिनः प्रोक्ताः यतो वेदिविनिन्दिकाः॥ नारदीय (१।१५।५०-५२)।

रेकर्ड्स आव हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स' में व्यक्त किया है कि पद्म के दो पाठ हैं, जिनमें एक उत्तर भारतीय है और दूसरा दक्षिण भारतीय। पहला ५ खण्डों में और दूसरा ६ खण्डों में है। आनन्दाश्रम एवं वेंक० प्रेस में केवल दक्षिण भारतीय संस्करण ही प्रकाशित है, यद्यिप दोनों प्रेसों के पाठों की व्यवस्था में अन्तर है। ह० का कथन है कि पद्म का उत्तर-काण्ड ९०० ई० के उपरान्त का, किन्तु १५०० ई० के पूर्व का है। एक बात द्रष्टव्य है कि मत्स्य एवं पद्म के सैकड़ों क्लोक एक-समान हैं और हेमाद्रि जैसे कुछ लेखक वही बात कभी मत्स्य की और कभी पद्म की कहते हैं। मत्स्य में स्मृति-विषयक बहुत-सी वातें पायी जाती हैं तथा मध्यकालीन निवन्धों ने उससे बहुत-से उद्धरण लिये हैं, अतः प्रस्तुत लेखक की ऐसी घारणा है कि पद्म ने ही मत्स्य से उधार लिया है। ऐसा पद्म ने कब किया, इस विषय में कोई निश्चित तिथि नहीं दी जा सकती, किन्तु यह कार्य १००० ई० के पूर्व ही हो गया होगा। पद्म (४।१०२।४०-४१ एवं ४।११०।४८३) ने कूर्म का उल्लेख किया है तथा ४।५।३२-४३ में क्लेष एवं परिसंख्या जैसे अलंकार आये हैं। कल्पतरु,अपरार्क एवं स्मृतिच० ने पद्म को उद्धृत किया है। आनन्दाश्रम प्रेस के संस्करण में ६२८ अध्याय एवं ४८,४५२ क्लोक हैं। इसमें अक्वत्य को बोधिसत्त्व (सृष्टिखण्ड ५५।१६) कहा गया है और गुर्जरदेश (२।५१३६-३७) के वनस्थल नामक स्थान का उल्लेख हुआ है।

ब्रह्मपुराण-आनन्दाश्रम वाला प्रकाशन पश्चात्कालीन संकलन-सा लगता है। देखिए ह० 'एपॉक्रिफल ब्रह्मपुराण' (इण्डियन कल्चर, जिल्द २, पृ० २३५-२४५ एवं पुराणिक रेकर्ड्स आदि, पृ० १४५-१५७)। ह० का कथन है कि प्रकाशित ब्रह्म में जीमूतवाहन, अपरार्क, बल्लालसेन, देवण्णमट्ट एवं हरदत्त में पाये जाने वाले उद्धरण नहीं मिलते हैं, इसमें महामारत, विष्णु, वायु एवं मार्कण्डेय के पूरे अध्याय तक उद्धृत हो गये हैं, और यह १० वीं शती एवं १२ वीं शती के बीच में कहीं प्रणीत हुआ होगा। एच० ओट्टो श्रेडर का कथन है कि प्रस्तुत ब्रह्म के २२६-२४४ अघ्याय, जिनमें सांख्य एवं योग का विवेचन हुआ है, महामारत से लिथे गये हैं (इण्डि॰ कल्चर, जिल्द २, पृ० ५९२-९३)। दानसागर ने दो ब्रह्मपुराणों की चर्चा की है और एक का उसने उपयोग नहीं किया है। कल्पतरु ने ब्रह्मपुराण से १५०० क्लोक लिये हैं (६०० नियतकाल पर, ६६ तीर्थ पर, ६० मोक्ष पर, ७८ राजधर्म पर, २१ भृहस्य पर, २२ व्यवहार पर, १५ व्रतों पर, १५ ब्रह्मचारी पर)। कल्पतरु ने वायु एवं मत्स्य से भी उद्धरण लिये हैं, किन्तु ब्रह्म वाले उद्धरण सब से अधिक हैं। श्राद्ध की चर्चा में कल्पतरु ने ब्रह्मपुराण से कुछ ऐसे श्लोक उद्धृत किये हैं जो बुद्ध एवं बौद्ध साघुओं के लिए किसी विशिष्ट तिथि पर सम्मान की बात चलाते हैं। प्रकाशित ब्रह्म में २४५ अध्याय एवं १३,७८३ श्लोक हैं। ७० से १७५ तक के अध्यायों के ४६४० श्लोकों में कतिपय तीथों का उल्लेख है, अध्याय २८ हे ६९ तक कोणादित्य, एकाम्र अवन्ती, पुरुषोत्तम-तीर्थ जैसे तीर्थों का वर्णन है। सम्पूर्ण पुराण अथवा कम-से-कम एक विभाग १७५वें अध्याय तक समाप्त-सा दृष्टिगोचर होता है और १७६ वें अध्याय से वासुदेव-माहात्म्य का आरम्भ होता है जो २१३ वें अध्याय तक चला जाता है। यहाँ वर्णनकर्ता व्यास हैं न कि ब्रह्मा जो प्रथम अध्याय से लेकर १७५वें अध्याय तक वर्णनकर्ता रहे हैं। ४२वें तथा उसके आगे के अध्यायों से बहुत-से श्लोक तीर्थचिन्तामणि द्वारा उद्धृत किये गये हैं। वाचस्पति १५ वीं शती के उत्तरार्घ में हुए थे, अतः आज के ब्रह्मपुराण का प्रथम भाग १३ वीं शती के पश्चात् नहीं रखा जा सकता। आज के ब्रह्म के कितपय श्लोक ब्रह्माण्ड एवं वायु में पाये जाते हैं। यह सम्मव है कि जिस ब्रह्मपुराण को बल्लालसेन ने छोड़ दिया था वह आज वाला ही संस्करण हो और कल्पतरु एवं बल्लालसेन के समक्ष कोई अन्य संस्करण था, जो अपेक्षाकृत पुराना था। आज का ब्रह्म सम्भवतः ऐसे मूमिमाग में संगृहीत हुआ था जहाँ से गोदावरी (गौतमी) दण्डकारण्य में वहती है। ऐसा आया है कि दण्डकारण्य परम पुनीत देश है (८८।१८, १२३।११७ एवं १२९।५५) और वहाँ से गोदावरी वहती है (१२९।६३, ६६)। ऐसा कहा गया (८८।२२-२४) है कि 'जनस्थान' गौतमी पर वह स्थान है जहाँ जनक वंश के राजा ने यज्ञ किया था।

ब्रह्मवैवर्त यह एक विशद ग्रन्थ है जो आनन्दाश्रम (पूना) द्वारा चार खण्डों में प्रकाशित हुआ है, यथा— ब्रह्म, प्रकृति, गणपित एवं कृष्णजन्म। इसमें घर्मशास्त्र-विषयक बातें भी हैं, यथा—जातियाँ, दान, व्रत, नरक, वर्णाश्रमधर्म, स्त्री आदि। स्मृतिच०, हेमाद्रि आदि ने इस पुराण से बहुत-से उद्धरण लिये हैं, जो प्रकाशित पुराण में नहीं पाये जाते। विल्सन ने विष्णुपुराण की भूमिका में लिखते हुए ऐसा कहा है कि ब्रह्मवैवर्त को पुराण नहीं कहना चाहिए। देखिए ह० (ए० वी० ओ० आर० आई०, जिल्द १९, पृ० ७५-७६ एवं पुराणिक रेकर्ड्स आदि, पृ० १६६ १६७)।

सहाण्ड (वेंक० प्रेस द्वारा प्रकाशित—यह चार पादों में विमाजित है, यथा—प्रक्रिया (५ अध्याय), अनुषंग (३३ अ०), उपोद्घात (७४ अ०) एवं उपसंहार (४ अ०) और अन्त में ४० अध्यायों में लिलतोपाख्यान है। कूर्म में स्पष्ट रूप से आया है कि नैमिषारण्य में एक सत्र में प्रवृत्त ऋषियों को ब्रह्माण्ड पुराण सुनाया गया। स्कन्द (प्रमासखण्ड २।८-९) में आया है कि आरम्भ में केवल एक पुराण था, जिसका नाम ब्रह्माण्ड था और उसमें एक सौ करोड़ क्लोक थे जो आगे चल कर अठारह मागों में विमक्त हो गये। सम्भवतः इसका प्रणयन गोदावरी के उद्गम के पास कहीं हुआ था, क्योंकि इममें आया है कि वह स्थान, जो सह्य पर्वत की उत्तरी चोटियों के पास है और जहाँ से गोदावरी प्रसूत होती है, विक्व में सबसे सुन्दर एवं रमणीक है और वहाँ परशुराम द्वारा स्थापित गोवर्घन नाम की राजधानी थी। इसके प्रथम दो पादों में सृष्टि, मारतवर्ष एवं पृथिवी का भूगोल, मन्वन्तरों, व्यास के शिष्यों, वेद की शाखाओं के विभाजन आदि का उल्लेख है। तीसरा खण्ड (या पाद) सबसे लम्बा है, इसमें वैवस्वत मन्वन्तर एवं देवों, असुरों, गन्धवाँ, ऋषियों तथा उनकी सन्तानों की सृष्टि के विषय में वर्णन करने के उपरान्त श्राद्ध के स्वरूपों का विश्वद उल्लेख है; परशुराम की तपस्याओं, उनके द्वारा अस्त्र-शस्त्र-प्राप्ति, कार्तवीर्य एवं क्षत्रियों की हत्या, उनके रक्त से पाँच तालावों के मरने का विश्वद वर्णन है। इसके उपरान्त सगर का कथानक, मगीरथ द्वारा गंगा के उतारने की कथा, समुद्र से गोकर्ण की रक्षा, सूर्पारक की कथा, सूर्य एवं चन्द्र के वंशों की कथा आदि वर्णित हैं। इसके उपरान्त धन्वन्तरि द्वारा भारद्वाज से आयुर्वेद के आठों अंगों के ज्ञान की प्राप्ति का उल्लेख है। चौथे खण्ड (पाद) में इसमें मनुओं, ज्ञान, कर्म, मोक्ष आदि का उल्लेख है।

ब्रह्माण्ड प्राचीनतम पुराणों में परिगणित है और इसके सैकड़ों श्लोक वायु में भी पाये जाते हैं। मिताक्षरा (याज्ञ०३।३०९) ने ब्रह्माण्ड का श्लोक उद्धृत कर कहा है कि यदि कोई व्यक्ति शैवों, पाशुपतों, लोकायितकों एवं नास्तिकों, निषिद्ध मार्ग पर जाने वाले तीनों वर्णों के लोगों एवं शूद्रों का स्पर्श करता है तो उसे वस्त्र सिहत जल में प्रवेश करना चाहिए। अपरार्क ने इससे ७५ श्लोक लिये हैं जिनमें ४३ श्राद्ध-सम्बन्धी हैं। स्पृतिचन्द्रिका ने बहुत-से उद्धरण लिये हैं। इन वातों से प्रकट होता है कि इस पुराण को मत्स्य के समान बहुत प्रारम्भिक काल का नहीं कहा जा सकता। इसमें एक लम्बा सामासिक प्रयोग आया है (३।४८।८ एवं २०), भीमसेन एवं नारद का उल्लेख संगीतशास्त्र-लेखकों में हुआ है (३।६१।४२-४३), गान्धवं पर एक अध्याय है (३।६२), पहले के आचार्यों की

५. अत्र पूर्वं स भगवानृषीणां सत्रमासताम् । स वै प्रोवाच ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मभावितम् ॥ कूर्म (२।४३।१४) ।

६. शैवान् पाशुपतान् स्पृष्ट्वा लोकायतिकनास्तिकान् । विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत् ॥ मिता० (याज्ञ० ३।३०९), स्मृतिच० (१, पृ० ११८)।

७. तस्याग्रेसरतैन्ययूथचरणप्रक्षुण्णशैलोच्चयक्षोदापूरितिनम्नभागमवनीपालस्य संयास्यतः। ब्रह्माण्ड पुराण् (३१४८।८)।

ओर भी संकेत है, नाट्य के ३० अलंकारों एवं इन अलंकारों के चार उपयोगों (६२।३२) की ओर निर्देश है। इस पुराण को चौथी एवं छठी शितयों के बीच में कहीं रखा जा सकता है। विवेचन के लिए देखिए पार्जिटर (ए० आई० एच्० टी०, पृ० २३, ७७) एवं ह० (पी० आर० एच्० आर०, पृ० १७।१९)। ब्रह्माण्ड में व्युत्पत्ति-सम्बन्धी अधिक अभिष्ठिच प्रकट हुई है, यथा—वैश्य एवं शूद्ध (२।७।१५७-१५८), देव, मनुष्य-प्रजा, राक्षस एवं यक्ष (२।८। ९-१०, २०, ३४), त्र्यम्बक एवं एद्ध (२।९।३-४ एवं ७८), राजन् (२।२९।६४), वसुघा, मेदिनी एवं पृथिवी (२।३७। १-३), अत्रि, वसिष्ठ, पुलह एवं पुलस्त्य (३।१।४४-४६), कुबेर (३।८।४४-४५) आदि शब्दों की व्युत्पत्तियाँ।

बृहद्धर्मपुराण (उप०)। देखिए ह० (गोहाटी यूनि० का जर्नल, स्टडीज आदि, जिल्द १, पृ० ११५ एवं

२७७)। यह १३वीं या १४वीं शती में बंगाल में प्रणीत हुआ।

भविष्यपुराण मत्स्य (५३।३०-३१), अग्नि० (२७२।१२) एवं नारदीय (१।१००) में उल्लिखित वातें वेंक० प्रेस द्वारा प्रकाशित मिवष्य से नहीं मिलतीं। यह चार पर्वों में विभाजित है, यथा आहा, मध्यम, प्रतिसगं एवं उत्तर। केवल ब्राह्म पर्वे की तिथि प्राचीन है। प्रतिसगं पर्व में आधुनिक प्रक्षेप भी हैं, यथा आदम एवं ईव, पृथ्वीराज एवं संयोगिता, देहली के म्लेच्छों, रामानुज, कबीर, नरश्री (नरसी?), नानक, चैतन्य, नित्यानन्द, रैदास, मध्वाचार्य, मट्टोजि आदि की कहानियाँ। बल्लालसेन ने भविष्योत्तर का बहिष्कार कर दिया था, यद्यपि वह उसके काल में पर्याप्त प्रसिद्ध था। अपरार्क ने दान के विषय में भविष्योत्तर से १६० क्लोक उद्धृत किये हैं। स्मृतिच० ने एक क्लोक लिया है (भाग १, पृ० २०३)। अतः मविष्योत्तर को हम १००० ई० के आगे नहीं उतार सकते। कल्पतरु ने सैकड़ों क्लोक उघार लिये हैं। मिताक्षरा (याज्ञ० ३।६) ने सर्प के काटने पर सर्प की स्वर्ण-मूर्ति के दान की चर्चा में मविष्य को उद्धृत किया है। अपरार्क ने १२५ क्लोक लिये हैं, जिनमें लगभग ९० क्लोक प्रायिवत्तों से सम्बन्धित हैं।

एक बात द्रष्टव्य है कि अपरार्क द्वारा लिये गये मिवष्य के उद्धरणों में अंगिरा, गौतम, पराशर, मनु, विसष्ठ एवं शंख के मत उद्धृत हैं। अपरार्क के उद्धरणों के कुछ वक्तव्यों से आज के प्रचलित भविष्य की तिथि पर प्रकाश पड़ता है। इसने आठ व्याकरणों की ओर मी निर्देश किया है, यथा—ब्राह्म, ऐन्द्र, याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र एवं वैष्णव। किन्तु प्रसिद्ध आठ व्याकरणों से यह तालिका मिन्न है (केवल ऐन्द्र मिलता है)। इसमें विदेशी शब्द 'आर' (मंगल) एवं 'कोण (शिन) मिलते हैं और ऐसा आया है कि शिव, पार्वती, गणेश, सूर्य आदि के समान इन ग्रहों की पूजा भी होनी चाहिए। मिलते हैं और एसा आया है कि शिव, पार्वती, गणेश, सूर्य अवित है। ईसैसे प्रकट होता है कि इस पुराण को ६ठी या ७वीं शती के पूर्व नहीं रखा जाना चाहिए। देखिए ह० (इण्डि० कल्चर, जिल्द ३, पृ० २२३-२२९ एवं पी० आर० एच्० आर०, पृ० १६७-१७३ जहाँ मिवष्योत्तर की चर्चा है)। वायु (९९।२६७) में जिस मिवष्य (तान् सर्वान् कीर्तियिष्यामि मिवष्ये पठितान् नृपान्। तेम्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षितः।।) की चर्चा है वह आप० घ० सू० में उल्लिखित प्राचीन मिवष्यत् है। वराहपुराण (१७७।३४ एवं ५१) ने दो बार स्पष्ट रूप से मिवष्यत् पुराण की चर्चा की है, यह दूसरा संकेत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा प्रकट होता है कि मिवष्य नामक पुराण साम्ब द्वारा संशोधित हुआ था और साम्ब ने सूर्य की एक प्रतिमा स्थापित की थी।

८. देखिए नाट्यशास्त्र ३२।४८४ 'गान्धवंमेतत्कथितं मया हि पूर्वं यदुक्तं त्विह नारदेन।'

९. भविष्यत्युराणमिति ख्यातं कृत्वा पुनर्नवम् । साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तस्विवत् ॥ वराह

भागवतपुराण—मिताक्षरा, अपरार्क, कल्पतह, स्मृतिचित्रका जैसे आरिम्मक निबन्धों ने इस पुराण से कुछ भी उद्धरण नहीं लिया है। दानसागर को इस पुराण का पता था, किन्तु दान-सम्बन्धी बातों के अभाव के कारण उसने इसकी चर्चा नहीं की। इसकी तिथि बहुत ही विवादग्रस्त है, यह पाँचवीं शती से १० वीं शती तक खींची जाती है। डा॰ पुसल्कर ('स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणज', १९५३, पृ० २१४-२१६) ने इसके सम्बन्ध के सभी लेख एकत्र कर डाले हैं। श्री एस॰ एस॰ शास्त्री (ए० वी॰ ओ॰ आर० आई॰, जिल्द १४, पृ० २४१-२४९) ने 'दो मागवतों' की चर्चा में देवीभागवत-पुराण को इस मागवत से प्राचीन माना है। ह॰ (जे॰ ओ॰ आर०, मद्रास, जिल्द २४, पृ० ४८-७९) ने इस मत का उलटा कहा है, अर्थात् देवीभागवत को भागवत से पश्चात्कालीन माना है। श्री वी॰ एन० कृष्णमूर्ति शर्मा (ए० बी॰ ओ॰ आर० आई॰, जिल्द १४, पृ० १८२-२१८) ने मागवत को ५ वीं शती का माना है। प्रो॰ दासगुप्त ने अपने ग्रन्थ 'इण्डियन फिलासफी' के चौथे माग में इस पुराण की चर्चा की है, किन्तु उनका मत जे॰ बी॰ आर० एस० (जिल्द ३६, पृ० ९-५०) में आलोचित हो चुका है। पद्मपुराण (माग ४, अध्याय १८९-१९४) में ५१८ श्लोकों में मागवतपुराण का एक माहात्म्य है। इस पुराण का लेखक तिमल देशवासी है, ऐसा श्री अमरनाथ राय ने कहा है (इण्डि॰ हिस्टा॰ क्वा॰, जिल्द ८, पृ० ४९-५३)। प्रस्तुत लेखक का कथन है कि यह पश्चात्कालीन पुराण है, क्योंकि कल्पतह के मोक्षकाण्ड में भी इसका उल्लेख नहीं हुआ है, जब कि उसी काण्ड में विष्णुपुराण से ३०० श्लोक उद्धृत हुए हैं। वर्तमान संस्करण को नवीं शती के पूर्व रखने के लिए हमारे पास कोई प्रचुर एवं साधिकार प्रमाण नहीं है।

मत्स्यपुराण (आनन्दाश्रम संस्करण)—इसमें २८१ अध्याय एवं १४,०६२ क्लोक हैं। यह प्राचीन पुराणों में मुख्य है और सम्मवतः इसमें अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक स्मृति-सम्बन्धी अध्याय हैं। इसमें मनुस्मृति एवं महाभारत के बहुत-से क्लोक आये हैं। याज्ञवल्वयस्मृति के भी कुछ क्लोक आये हैं (यथा याज्ञ० १।२९५, मत्स्य ९३।२; याज्ञ २।२७५।२९५-६ एवं ३०३, मत्स्य २२७।२००, २०२-२०३ एवं २०४)। लगता है, मत्स्य ने शिव एवं विष्णु को समान तुला पर रखा है। इसने न केवल विष्णु के मत्स्यावतार की महत्ता गायी है, प्रत्युत इसने तारकासुर के वघ पर १२७० क्लोक एवं त्रिपुर के वघ पर ६२३ क्लोक दिये हैं और ये दोनों शिव द्वारा हते गये हैं। वामन-पुराण (१२।४८) ने इसे प्रमुख पुराणों में परिगणित किया है।

मिताक्षरा (याज्ञ १।२९७) ने मत्स्य के अध्याय ९४ के ९ क्लोक (जो ग्रहों की प्रतिमाओं के आकार के सम्बन्ध में हैं) तथा अध्याय ९३ के दो (११-१२) क्लोक, जो एक मण्डल में क्वेत चावलों के साथ प्रत्येक को स्थापित करने के विषय में हैं, उद्भृत किये हैं। कल्पतह ने व्रत पर सैंकड़ों, दान पर लगभग ७५०, राजधर्मकाण्ड में ४१०, गृहस्थकाण्ड में ११५, श्राद्ध पर ११२, नियतकाल पर ६७, व्यवहारकाण्ड में १८, ब्रह्मचारी पर ६ एवं मोक्ष पर २, इस प्रकार लगभग २००० क्लोक उद्भृत किये हैं। अपरार्क ने लगभग ४०० क्लोक लिये हैं। दानसागर, स्मृतिचन्द्रिका

१७७।५१। वराह ने सूर्य के तीन मन्दिरों का उल्लेख किया है (१७८।५-७), एक यमुना के दक्षिण में, दूसरा मध्य में जिसे कालप्रिय कहा जाता है और तीसरा मूलस्थान (आज के मुलतान) के पित्रचम में। भविष्यपुराण ने सूर्य की पूजा के तीन महत्वपूर्ण स्थानों का उल्लेख किया है (यथा—मुण्डीर, कालप्रिय एवं मित्रवण)। दिलीपकुमार विश्वास की यह बात ठीक जैंचती है (१५ वीं इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस की प्रोसीडिंग का सार-संक्षेप, पृ०३०) कि मुण्डीर आज का मोढेरा है जो उत्तरी गुजरात में है और जहाँ पर लगभग एक सहस्र वर्षों से एक मुन्दर सूर्य-मन्दिर अवस्थित है।

एवं हेमाद्रि की चर्चा करना अनावश्यक है, क्योंकि इनमें तो बहुत-से श्लोक उद्धृत हैं ही। इससे प्रकट है कि १००० ई० के बहुत पहले आज का संस्करण ज्यों-का-त्यों उपस्थित था। विष्णु, वायु, सम्भवतः मविष्य (१) एवं मार्कण्डेय को छोड़कर अन्य पुराणों के विषय में इससे अधिक नहीं कहा जा सकता।

प्रस्तुत लेखक के मत से मत्स्य १८ पुराणों में सब से प्राचीन एवं सुरक्षित पुराणों में एक है, इसकी तिथि २०० ई० एवं ४०० ई० के बीच में कहीं होगी। हाँ, यह सम्भव है कि यतस्ततः दो-एक श्लोक क्षेपक के रूप में इस पुराण में आ गये हों।

मत्स्यपुराण में स्मृति-विषयक अध्यायों की तिथियों के लिए देखिए ह० (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द १७, पृ० १-३६ एवं पी० आर० एच० आर०, पृ० २६-५२) एवं प्रो० रामचन्द्र दीक्षितार (मत्स्यपूराण, ए स्टडी, मद्रास. १९३५, पृ० १-१४०) । अनिरुद्ध (लगमग ११६० ई०) की पितृदयिता (पृ० ९२) में स्वल्प-मत्स्यपुराण के चार क्लोक उद्धृत हैं और श्री मनोरञ्जन शास्त्री (जे० जी० जे० आर० आई०, जिल्द ९, पृ० १८३-१८८) ने इस पर एंक लेख लिखा है। तीर्थों एवं व्रतों के बारे में मत्स्य एवं पद्म के बहुत-से अध्याय एक-से हैं। शंकराचार्य ने पौराणिकों के जो श्लोक उद्भृत किये हैं वे मत्स्य के हैं। " तर्पण में जिन मुनियों को जल दिया जाता है उनमें (मत्स्य-प्रोक्त) कपिल, आसूरि, वोढ़ एवं पञ्चिशिख भी हैं। सांख्यकारिका में इन चारों में प्रथम दो एवं अन्तिम सांख्य-सिद्धान्त के तीन महान् प्रवर्तक कहे गये हैं। इसमें वररुचि नाट्य-वेद के उद्मट विद्वान् कहे गये हैं। इस के २४वें अध्याय में आया है कि अप्सरा उर्वशी एवं उसकी सखी चित्रलेखा केशी नामक राक्षस द्वारा पकड़ ली गयी थीं, और पुरूरवा ने केशी को हराकर उर्वशी को छुड़ाया तथा इन्द्र ने पुरूरवा को उर्वशी दे दी। जब उर्वशी भरत द्वारा प्रणीत 'लक्ष्मी-स्वयंवर नामक नाटक में लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी और पुरूरवा के प्रेम में आसक्त होने के कारण वह भरत द्वारा बताया गया अपना अनुकूल अभिनय भूल गयी, तब भरत ने उसे लता हो जाने का शाप दे दिया। यह कहना कठिन है कि मत्स्य को यह आख्यान कालिदास के 'विक्रमोर्वेशीय' नामक नाटक से प्राप्त हुआ या कालिदास को मत्स्य से। नामों एवं घटनाओं के विषय में मत्स्य एवं कालिदास के कथानक एक-दूसरे से बहुत मिलते हैं। मत्स्य (२४।२४) में आया है कि केशी को हराने के लिए पुरूरवा को वायव्य-अस्त्र का प्रयोग करना पड़ा। नाटक में मी यही उल्लिखित है। अन्तर की बातें यों हैं—नाटक में लक्ष्मी-स्वयंवर का प्रणयन सरस्वती द्वारा किया हुआ माना गया है, किन्तु मत्स्य इस विषय में मौन है। मत्स्य में आया है कि भरत ने उर्वशी को लता वन जाने का शाप दिया, किन्तु नाटक इस विषय में कुछ नहीं कहता, उसमें इतना आया है कि वह लता के समान जो दुर्बल हो गयी उसका कारण कुमार (कार्तिकेय) थे। निर्णय इस बात पर निर्मर रहता है कि मत्स्य की तिथि किसी अन्य साक्ष्य से

१०. तथा चाहुः पौराणिकाः—अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्। प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदिचिन्त्यस्य लक्षणम्।। शंकराचार्यं, वे० सू० २।१।२७। यह मत्स्य (११३।६) है। यह श्लोक भीष्मपर्व (५।१२) में भी है, किन्तु वहां 'योजयेत्' के स्थान पर साबयेत् है। पौराणिक (पुराणमधीते इति पौराणिकः, जैसा कि पाणिनि ४।२।५९ का कहना है) शब्द से निर्देशित होता है कि आचार्यं ने पुराण की ओर संकेत किया है न कि महाभारत की ओर। 'कपिलश्चासुरिश्वेव वोद्धः पञ्चशिक्षस्तथा। सर्वे ते तृष्तिमायान्तु महत्तेनाम्बुनाखिलाः।।' मत्स्य १०२।१८ (स्मृतिच० १।१९३ द्वारा उद्भृत)। अन्त में सांख्यकारिका का कथन है: 'एतत्पवित्रमपृयं मुनिरासुरये अनुकम्पया प्रददौ । आसुरिरिप पञ्चशिक्षाय तेन च बहुबा कृतं तन्त्रम् ॥' दोग्धा वरुविश्चेव नाट्यवेदस्य पारगः। मत्स्य० २५; लक्ष्मोस्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम्। मत्स्य० २४।२८।

क्या है। प्रस्तुत लेखक के मत से कालिदास मत्स्य की घटना से परिचित थे। कुछ लोगों का मत है कि कालिदास लगभग ई० पू० ५७ में विक्रमादित्य के काल में थे। किन्तु प्रस्तुत लेखक को यह मान्य नहीं है। यह सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि ई० पू० ५७ में उत्तर मारत एवं मध्य मारत में विक्रमादित्य नामघारी कोई शक्तिशाली राजा था। नवरत्नों वाली गाथा निर्थक है और यदि वह सार्थक भी है तो विक्रमादित्य नामक राजा (जिसके राज्य में वे नवरत्न थे) ५ वीं या ६ ठी शती में हुआ होगा, तभी अमरिसह, वराहिमहिर एवं कालिदास समकालीन कहे जायेंगे। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक सिक्के पर आया है—'क्षितिमवजित्य सुचरितैदिवं जयित विक्रमादित्यः।' प्रस्तुत लेखक के मत से कालिदास की तिथि ३५० ई० एवं ४५० ई० के मध्य में कहीं है।

मार्कण्डेय-पुराण-इसके दो संस्करण हैं : बी० जे० (१८६२) एवं वेंक० प्रेस के। प्रस्तुत लेखक ने दूसरे संस्करण का सहारा लिया है। दोनों संस्करणों में अध्यायों के क्लोकों की संख्याओं में अन्तर पाया जाता है। पार्जिटर ने इस पुराण का अंग्रेजी अनुवाद किया है। बी० जे० के संस्करण में ४२ अध्यायों तक मार्कण्डेय कोई बात नहीं करते किन्तु शेष अध्यायों में वे ही प्रमुख वक्ता हैं। यह एक विचित्र पुराण है। प्रथम अध्याय महामारत के विषय में जैमिनि द्वारा मार्कण्डेय से पूछे गये चार प्रश्नों के साथ आरम्भ होता है, यथा—(१) निर्गुण वासुदेव ने मानव रूप क्यों घारण किया ? (२) द्रौपदी पाँच भाइयों की पत्नी क्योंकर बनी ? (३) वलराम ने ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त तीर्थयात्रा से क्यों किया (अपनी मृत्यू से क्यों नहीं किया) ? (४) द्रौपदी के पाँच अविवाहित पुत्र, जो स्वयं महान् योद्धा थे, इस प्रकार क्यों असहाय मार डाले गये, जब कि उनके सहायक स्वयं महान् योद्धा पाण्डव लोग थे। मार्कण्डेय उन्हें विन्घ्याचल के बुद्धिमान् पक्षियों के पास जाने की सम्मति देते हैं और इस प्रकार उत्तर चौथे अघ्याय से सातवें अध्याय में दिये हुए हैं। यह समझ में नहीं आता कि जैमिनि, जो पुराणों में व्यास के शिष्य कहे गये हैं, व्यास के पास न जा कर मार्कण्डेय के पास प्रश्नोत्तर के लिए क्यों गये। इस पुराण का एक अंश देवीमाहात्म्य या सप्तशती कहलाता है (वेंक ० प्रेस संस्करण के अध्याय ७८-९० एवं बी० जे० संस्करण के अध्याय ८१-९३), जिसे आघुनिक विद्वान् क्षेपक मानते हैं। यदि यह क्षेपक भी है तब भी यह १० वीं शताब्दी के पूर्व का है, क्योंकि इसकी प्राचीनतम पाण्डुलिपि की तिथि ९९८ ई० है; यह छठी शती का भी हो सकता है। " मार्कण्डेयपुराण में व्रत, तीर्थयात्रा या शान्ति पर श्लोक नहीं हैं, किन्तु आश्रमों के कर्तव्यों, राजधर्म, श्राद्ध, नरकों, कर्मविपाक, सदाचार, योग (दत्तात्रेय द्वारा अलर्क को समझाया गया), कार्तवीर्य की कथाओं, उसके पौत्र कुवलयाश्व की एवं मदालसा की कथाओं, सृष्टि, मन्वन्तरों, भूगोल आदि पर बहुत-सी बातें दी हुई हैं। इसमें कोई साम्प्रदायिक दृष्टिकोण नहीं है। देवी-माहात्म्य को छोड़कर प्रार्थनाएँ एवं स्तोत्र नहीं के बराबर हैं। इसके एक-दूसरे से असम्बद्ध तीन मार्ग हैं, यथा--१ से ४२ अध्यायों तक ज्ञानी पक्षिगण वक्ता हैं, ४३ से अन्त तक मार्कण्डेय एवं शिष्य कोष्टुिक का संवाद चालू रहता है, केवल देवीमाहात्म्य में ऐसा नहीं है, जो कि एक स्वतन्त्र माग है।

कल्पत्रु ने मोक्ष पर मार्कण्डेय के योग से १२० श्लोक उद्धृत किये हैं। इसी प्रकार इसके ब्रह्मचारिकाण्ड में ९, श्राद्ध पर १२, नियतकाल पर १७, गृहस्थ पर १९, राजधर्म पर ३ एवं व्यवहार पर एक श्लोक उद्धृत किया गया

११. सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तु ते।। मार्कण्डेय ८८।९, देवीभागवत ७।३०।६६। 'नारायणी' सुपाश्वं पर एक पीठ है। उपर्युक्त 'सर्वमंगलमांगल्ये' दिधमती-माता नामकं अभिलेख (जोधपुर में प्राप्त) में, जिसकी तिथि २८९ गुप्त-संवत् है, मिलता है (एपि० इण्डि०, ११, पू० २९९)। यह अभिलेख सन् ६०८ ई० का है, अतः यह स्पष्ट है कि देवीमाहात्म्य का उद्धृत क्लोक ६०० ई० से पुराना है।

है। अपरार्क ने ८५ क्लोक (४२ योग- पर, शेष श्राद्ध, दान, आतिच्य, शुद्धि आदि पर) लिये हैं। स्मृतिचिन्द्रका ने १५ क्लोक आह्निक पर, ४० श्राद्ध पर उद्धृत किये हैं। मार्कण्डेय ने कितपय क्लोक मनु एवं महामारत से लिये हैं। मार्कण्डेय में लम्बे-लम्बे रूपक मी आये हैं, यथा ३।५९-७० (जहाँ प्रज्ञा को दुर्ग-मित्ति एवं आत्मा को उसमें नियास करने वाला राजा कहा गया है) एवं ३५।८-१३ (अहमित्यंकुरोत्पन्न: आदि)। इसमें बहु विख्यात यह विचार आया है कि नारियों को अपने जन्म के घर में बहुत दिनों तक रहना श्रेयस्कर नहीं है, बान्धवों की यही इंच्छा रहती है कि विवाहित स्त्री अपने पित के गृह में रहे। मार्कण्डेय का कथन है कि दुःख का एकमात्र कारण है स्वत्व (अर्थात् यह मेरा है) और निवृंत्ति है इसका अभाव (अर्थात् यह मेरा नहीं है)। अध्याय १६०।३० में लग्न एवं होरा का उल्लेख है। इसमें गीता का यह सिद्धान्त आया है कि बिना फल की इच्छा के किया गया कर्म व्यक्ति को संसार के बंघन से नहीं बाँधता। दूसरी ओर इन पुराण में उन दत्त या दत्तात्रेय की कथा भी आयी है कि, जिन्होंने अलर्क को योग की शिक्षा दी थी (अध्याय १६ से आगे) और जो विष्णु के अवतार के रूप में विणत हैं तथा मद्यप, स्त्रियों की संगति के विषयी एवं सह्याद्वि पर पत्थर एवं लकड़ी से वने जलाशय के पास रहने वाले कहे गये हैं (१६।१३२) तथा अवधूत के रूप में उल्लिखत हैं (१७।३)। ५४ वें अध्याय में ऐसा आया है (जैसा कि हमने देख लिया है, ब्रह्माण्ड २।१६।४३-४४) कि सह्य की श्रीणयों के उत्तर में एवं गोदावरी के सिन्नकट जो स्थान है वह विश्व में सबसे अधिक रमणीक है।

यह पुराण आरम्भिक पुराणों में परिगणित है और इसकी तिथि चौथी एवं छठी शतियों के बीच में कहीं पड़ सकती है।

िलगपुराण (वेंकटेश्वर प्रेस संस्करण) — जैसा कि इसमें (२।५) आया है, इसमें ११,००० श्लोक हैं। कल्पतरु ने तीर्थं की चर्चा में इससे अविमुक्तक (बनारस, अब इसे वाराणसी कहा जाने लगा है) एवं इसके अन्य उपतीर्थों के विषय में लगमग्र १००० श्लोक उद्धृत किये हैं। अपरार्क ने अष्टमी एवं चतुर्दशी की तिथियों में शिवपूजा एवं ग्रहणों में स्नान एवं श्राद्ध के विषय में छः श्लोक उद्धृत किये हैं। स्मृतिचिन्द्रिका ने ग्रहण-स्नान, वेदाध्ययन आदि के विषय में इससे कुछ श्लोक ग्रहण किये हैं। दानसागर (पृ० ७, श्लोक ६४) के मत से ६,००० श्लोकों वाला एक अन्य लिंगपुराण भी था जिसका उसने उपयोग नहीं किया। देखिए ह० (इण्डियन कल्चर, जिल्द ४, पृ० ४१५-४२१ एवं पी० आर० एच० आर०, पृ० ९२-९६)।

१२. **बान्यवेषु चिरं वासो नारीणां न यशस्करः । मनोरयो बान्यवानां नार्या भर्तृगृहे स्थितिः ॥ मार्क० ७४।१९। मिलाइए शाकुन्तल ५ 'सतीमपि ज्ञातिकुलैंकसंश्रयां जनोन्यथा भर्तृमतीं विशंकते।'** 

१३. ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतिः। मार्क० ३५।६; न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसंधितम्। मार्क० ९२।१५।

१४. वत्तात्रिय एवं कार्तवीर्य को दिये गये उनके वरों की गाथा कई पुराणों में आयी है। देखिए मत्स्य (४३।१५), ब्रह्म (१३।१६०)। ब्रह्माण्ड (३।८।८४) में एक पौराणिक क्लोक उद्धृत है: 'अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानम-कल्मवम्। दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते।।' भागवत (१।३।५२) में विष्णु के २२ अवतार उल्लिखित हैं, जिन्होंने अलर्क एवं प्रह्लाद को आन्वीक्षिकी (अध्यात्मविद्या) का ज्ञान दिया। मार्क० (वैक्र० प्रेस, १७।१०।१३) में दत्तात्रेय ने कहा है: 'ये च मां पूजियष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः। मांसमद्योपहारैक्च मिष्टाक्रेक्चल्मसंबर्तः।...तेम्रामहं पद्यं पुष्टिं पुत्रवारधनादिकीम्। प्रदास्याम्यवधूतक्च हनिष्याम्यवमन्यताम्।।'

#### पुराणों एवं उपपुराणों पर सीकद्त टिप्पणियां

EPN

वराहपुराण (बी० आई० संस्करण)—इसमें २१७ अघ्याय एवं १६५४ क्लोक हैं, कुछ अध्याय पूर्णतया गद्य में हैं (यथा ८१-८३, ८६-८७ एवं मुवनकोश पर ७४) तथा कुछ गद्य एवं पद्य दोनों में हैं (यथा ८०, ८४, ८५, ८८ एवं ८९)। यह वष्णव पुराण है और वराहावतार में विष्णु द्वारा पृथिवी से कहा गया माना गया है। यह द्रष्टव्य है कि इस पूराण में व्यास नहीं आये हैं, यद्यपि सूत कई अध्यायों (यथा १, २, ३९, ५०, १२७, १३७-१३८, १४८, १५१, १८१, २१३) के आरम्म में आये हैं। इसमें वत, तीर्यं, दान, मूर्तियाँ एवं उनकी पूजा, आलीच, श्राद्ध, कर्मविपाक, नरक, जगत्सृष्टि, भूगोल, प्रायश्चित्त आदि धर्मशास्त्रीय सामान्य विषयों पर चर्चा की गयी है। कस्पतक ने १५० क्लोक वृत पर, ४० श्राद्ध पर, २५० तीर्थ पर, १७ नियतकाल पर, ५ दान पर एवं ४ गृहस्थकाण्ड पर उद्धृत किये हैं। एक विचित्रता यह है कि इसने लोहारगल एवं स्तुतस्वामी नामक ऐसे तीर्यों का उल्लेख किया है, जो अन्य पुराणों में नहीं पाये जाते। अपरार्क ने कई विषयों में इसे उद्धृत किया है।

ब्रह्मपुराण ने वराहपुराण को कन्याराशि में प्राप्त सूर्य की स्थिति में पौर्णमासी के दिन पितरों के आब के विषय में उद्धृत किया है। मिवष्योत्तरपुराण (३२।१२) ने भी इसे उद्धृत किया है। बराह ने नन्दवर्धन नामक शक राजकुमार की चर्चा की है (१२२।३४) और एक शक राजा का उल्लेख किया है (१२२।५६)।

देखिए ह० (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द'१८, पृ० ३२१-३३७)। वराहपुराण की तिथि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। यद्यपि यह आरम्भिक पुराणों में नहीं आता, तब भी यह १० वीं शती के पूर्व का अवश्य माना जा सकता है।

वामनपुराण (वेंक० प्रेस संस्करण)—मत्स्य, वायु, वराह आदि की तुलना में यह एक छोटा पुराण है। वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में ५४५१ श्लोक हैं। अध्याय २६, ४४ एवं ९३ गद्य में हैं। इसके विस्तार के लिए इसमें बहुत-सी कथाएँ हैं, यथा—शंकर द्वारा ब्रह्मा का एक सिर काट लेना; प्रह्लाद एवं उसके शिक्र बिल तथा उसके (बिल के) अधःपतन की कथा; देवी की महत्ता एवं उसके वीरोचित कार्य; देवों की प्रार्थना पर शिव एवं उसा का विवाह; कार्तिकेय का जन्म एवं उनके विभिन्न नामों की व्याख्या; बलात्कार करने के अपराधी एवं शुक्र द्वारा शापित दण्ड की कथा; विस्विष्ठ एवं विश्वामित्र का वैमनस्य; गजेन्द्रमोक्ष आदि। इसमें सामान्य धर्मशास्त्रीय विषयों की संक्षिप्त चर्ची है, यथा—तीर्थ, सदाचार, आश्रमधर्म, सामान्य धर्म, व्रत, कर्मविपाक आदि। कल्पतरु ने तीर्थ पर ८८ श्लोक, व्रत पर ८०, दान पर १४ श्लोक और अपरार्क ने नियतकाल पर ११ श्लोक उद्धत कियें हैं।

वामनपुराण ने कामशास्त्रों (९१।७३) एवं मंगलवार (४१।२४) का उल्लेख किया है। इसने स्पष्ट रूप से मत्स्य को सर्वोत्तम पुराण माना है। उस दण्ड की कथा, जिसने शुक्र की कन्या के साथ बलात्कार करैना चाहा था और जो अपने राज्य के साथ नाश को प्राप्त हुआ लगता है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र की प्रतिष्विन है (दाण्डक्यो नाम मोजः कामाद् ब्राह्मणकन्याम् अभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। ११६, पृ० ११)। इसमें आया है कि राजा को राजा ('राजन्') इसलिए कहा जाता है कि वह प्रजा का रंजन करता है। यही बात कालिदास ने भी कही है। १५ इसमें आया है कि उमा को 'उमा' इसलिए कहा गया क्योंकि उसे 'उ, मा' कहकर तप करने से मना किया गया था। यह कहा गया है कि शिव ने मूँज घास की मेखला पहन कर एवं आषाढ़ (पलाश) का दण्ड घारण कर वैदिक विद्यार्थी का रूप घारण किया था। यह भी कुमारसम्मव (५) की प्रतिष्विन-सा है। स्मृतिचन्द्रिका (१, पृ० १६८) ने

१५. ततो राजेति शब्दोस्य पृथिव्यां रञ्जनादभूत्। वामन (४७।२४); मिलाइए 'राजा प्रकृतिसञ्जनात् ।' रघु० (४।१२); राजा प्रजारञ्जनलब्धवर्णः परन्तपो नाम यथार्थनामा। रघु० (६।२१)।

वामन से दो क्लोक उद्धृत किये हैं, जिनमें यह आया है कि व्यक्ति को स्नान एवं होम के उपरान्त कुछ शुभ पदार्थों को स्पर्श करके व्यवसाय आदि के लिए घर के बाहर जाना चाहिए।

उपर्युक्त बातों के आधार पर वामनपुराण को ६०० एवं ९०० ई० के मध्य में कहीं रखा जा सकता है। देखिए ह० (इण्डि० हिस्ट्रॉ०, क्वा०, जिल्द ११, पृ० ११५-१३० एवं पी० आर० एच० आर०, पृ० ७६-९२)।

वायुपुराण (आनन्दाश्रम संस्करण)—इसमें ११२ अध्याय एवं १०,९९१ क्लोक हैं। लगता है, ब्रह्माण्ड की माँति यह भी चार पादों में विमाजित है, यथा—प्रिक्या (अध्याय १-६), अनुषंग (अध्याय ७-६४), उपोद्घात (६५-९९) एवं उपसंहार (१००-११२)। वराह की माँति इसका भी आरम्भ 'नारायणं नमस्कृत्य' से होता है। दूसरे क्लोक में व्यास की प्रशस्ति गायी गयी है जो अन्य संस्करणों में नहीं पायी जाती। तीसरे क्लोक में शिवमित्त की ओर निर्देश है। १०४ वां अध्याय बहुत-से संस्करणों में उपलब्ध नहीं है और 'गयामाहात्म्य' वाले अन्तिम अध्याय, कुछ लेखकों के मत से, पश्चात्कालीन परिवर्धन हैं। बहुत-से अध्यायों में शिवपूजा की ओर विशेष संकेत हैं, लगता है यह कुछ पक्षपात है, यथा २०।३१-३५, २४।९१-१६५, ५५ एवं १०१।२१५-३३०। सम्मवतः इसी पक्षपात को दूर करने के लिए अथवा साम्प्रदायिक सन्तुलन के लिए गयामाहात्म्य के अध्याय जोड़ दिये गये हैं। इतना ही नहीं, अध्याय ९८ में विष्णु की प्रशंसा है और दत्तात्रेय, व्यास,फल्की विष्णु के अपवतार कहे गये हैं। किन्तु बुद्ध का उल्लेख नहीं हुआ है। अध्याय ९९ सबसे बड़ा है, इसमें ४६४ क्लोक हैं और इससे में बहुत-सी प्राचीन परिकल्पित एवं ऐतिहासिक कथाएँ हैं। इस पुराण में कुछ ऐसे क्लोक हैं जो महामारत, मनु एवं मत्स्य में पाये जाते हैं। इस पुराण में भी मत्स्य की माँति धर्मशास्त्रीय सामग्री प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। यह पुराण प्राचीनतम एवं अत्यन्त प्रामाणिक पुराणों में परिगणित है; किन्तु इसमें कुछ पश्चात्कालीन क्षेपक एवं परिवर्धन मी हैं।

कल्पतरु ने इसकें उद्धरण वृत एवं नियतकाल के विभागों को छोड़ कर कितपय अन्य विभागों में लिये हैं। श्राद्ध पर १६० क्लोक, मोक्ष पर ३५, तीर्थ पर २२, दान पर ७, ब्रह्मचारी पर ५ एवं गृहस्थ पर ५ क्लोक उद्धृत हैं। अपरार्क ने लगभग ७५ क्लोक (६० श्राद्ध पर तथा अन्य १५ उपवास, द्रव्य शुद्धि, दान, संन्यास एवं योग पर हैं) उद्धृत किये हैं। स्मृतिचन्द्रिका ने श्राद्ध, अतिथि, अग्निहोत्र एवं सिमधा पर २४ क्लोक उद्धृत किये हैं।

वायु ने गुप्त-वंश की ओर एक चलता संकेत कर दिया है। इसे पाँच वर्षों का एक युग विदित है (५०।१८३)। इसने मेष, तुला (५०।१९६), मकर एवं सिंह (जिसमें बृहस्पित मी है) की चर्चा (८२।४१-४२) भी की है। अध्याय ८७ में पूर्वाचार्यों के सिद्धान्तों के आघार पर गीतालंकारों का वर्णन किया है। ब्रह्माण्ड का अध्याय (३।६२) उसी विषय पर है जो वायु में है और क्लोक भी समान ही हैं।

वायु में गुप्त-वंश की चर्चा आयी है और बाण ने अपने हर्षचित एवं कादम्बरी में इसका उल्लेख किया है अतः इसकी तिथि ३५० ई० एवं ५५० ई० के बीच में कहीं होगी। शंकराचार्य ने अपने वेदान्तसूत्र में एक श्लोक जिस पुराण से उद्धृत किया है वह वायुपुराण ही है(वे० सू० २।१।१=वायु० १।२०५), केवल 'नारायण' शब्द के बदले वायु में 'महेश्वर' रखा गया है। और भी देखिए वायु ४।२७-२८=वे० सू० १।४।१; वायु ९।१२०--वे० सू० १।२।२५। थोड़े-बहुत अन्तरों के साथ बात एक ही है। योगसूत्र (१।२५) पर वाचस्पति ने तत्त्ववैशारदी में वायु (१२।३३ एवं १०।६५-६६) को उद्धृत किया है।

देखिए, प्रो॰ दीक्षितार का लेख 'सम आस्पेक्ट्स आव दि वायुपुराण' (१९३३, ५२ पृष्ठों में, मद्रास यूनि०); हि॰ (इण्डि॰ हिस्ट्रॉ॰ क्वा॰, जिल्द १४,पृ॰ १३१-१३९ एवं पी॰ आर॰ एच॰ आर॰, पृ॰ १३-१७); श्री डी॰ आर॰ पार्टिल का 'कल्चरल हिस्ट्री फाम दि वायुपुराण' (१९४६, पूना, पी-एच्॰ डी॰ अनुसंघान)।

## पुराणों एवं उपपुराणों पर संक्षिप्त टिप्पणियां

824

विष्णुपुराण—(वेंक० प्रेस संस्करण एवं शक संवत् १८२४ में मेसर्स गोपाल नारायण एवं कम्पनी द्वारा प्रकाशित, जिसमें रत्नगर्भ मट्टाचार्य की टीका वैष्णवाकूतचिन्द्रका तथा विष्णुचित्ती नामक एक अन्य टीका भी है)। आज का (वेंक० प्रेस वाला) संस्करण ६ अंशों, १२६ अध्यायों एवं लगभग ६००० श्लोकों में विमाजित है। गद्य में भी कई अध्याय हैं, यथा चौथे अंश में अध्याय ७,८ एवं ९; गद्य,एवं पद्य वाले अध्याय हैं १,२,६,११,१२ आदि जो चतुर्थ अंश के हैं। पंच-लक्षण रूप में यह पुराण अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह विस्ठि के पुत्र पराशर द्वारा मैत्रेय के प्रति कहा गया है। पराशर ने इसे सारस्वत से, सारस्वत ने नर्मदा के तट पर राजा पुरुकुत्स से सुना था और पुरुकुत्स ने दक्ष आदि से तथा दक्ष आदि ने इसे ब्रह्मा से सुना था।

ब्रह्माण्ड (३१६८।९७-१०३) के सात क्लोक विष्णु (४११०।२३-२७) से मिलते हैं (उस विषय में जो ययाति ने तृष्णा के बारे में कहा है)। यही ब्रह्मपुराण में भी है (१२१४०-४६)। लगता है, सभी ने इस विषय में महामारत (आदिपर्व ७५१४४,८५१९ एवं अनुशासन ७।२१) से उघार लिया है। मिताक्षरा (याज्ञ० ३१६) ने नारायणविल पर विष्णुपुराण से १४ क्लोक उद्धृत किये हैं। कल्पतरु ने मोक्ष पर २५०, नियतकाल पर ७०, ब्रह्मचारी पर २१, श्राद्ध पर २८, तीर्थ पर २१, गृहस्थकाण्ड पर ४५ क्लोक लिये हैं। अपरार्क ने विष्णुपुराण से ७५ एवं स्मृति-च० ने १०० क्लोक उद्धृत किये हैं। काव्यप्रकाश (४) ने इससे (५११३।२१-२२) वो क्लोक लिये हैं, जिनमें एक गोप-कन्या द्वारा कृष्णमित से मोक्ष-पद की प्राप्ति की सूचना दी हुई है (यहाँ अतिशयोक्ति पर आधारित रसम्विन के उदाहरण हैं)। कहीं-कहीं विष्णुपुराण में अद्वैत दर्शन का सिद्धान्त विवेचित हैं ''—'जो मोक्ष की इच्छा रखता है उसे चाहिए कि वह सब के साथ समान व्यवहार करने का प्रयत्न करे, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष एवं रंगने वाले जीव अनन्त विष्णु के ही विभिन्न रूप हैं, जो यह जानता है उसे चाहिए कि वह इस विश्व को अपने समान ही जाने।' एक अन्य स्थान पर विष्णुपुराण में आया हैं ''—'मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण हैं; वह मन जो विषय-संगी है बन्धनयुक्त होता है और जब वह निविषय होता है तो मोक्ष प्राप्त कराने वाला होता है।' यह पुराण गीता के मूल सिद्धान्त की ओर भी ले जाता है, यथा 'विना फल की इच्छा किये जो कर्म किया जाता है वह बन्धन की ओर नहीं ले जाता।''

विष्णुपुराण की तिथि निश्चित करना किठन है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह प्राचीन पुराणों में परिगणित है और इसकी वातें बहुत अधिक प्रक्षिप्त नहीं हैं। कल्पतरु, अपरार्क एवं स्मृतिचिन्द्रका में उद्भृत बातें आज के संस्करण में उपलब्ध हैं, इससे यह सिद्ध है कि लगभग १००० वर्षों से यह ज्यों-का-त्यों है। यह द्रष्टव्य है कि अन्य पुराणों की माँति इसमें व्यास एवं सूत बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ नहीं रखते। जैसा कि कुछ अन्य पुराणों भी भावा है, इसका कथन है कि व्यास के चार शिष्य थे, जिन्हें उन्होंने वेद सिखाये और पाँचवें शिष्य सूत लोमहर्षण थे (३। अध्याय ३-७)। किन्तु इस पुराण के वर्णनकर्ता के रूप में सूत का दर्शन नहीं होता। चौथे अंश में एक

१६. यतितव्यं समत्वे च निर्वाणमिप चेच्छता। देवा मनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरीसृपाः ॥ रूपमेतदनन्तस्य विष्णोभिन्नमिव स्थितम्। एतद् विजानता सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्। द्रष्टव्यमात्मविद्वष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपघृक् ॥ विष्णुपु० (१।१९।४६-४८)।

१७. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धाय विषयासंगि मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥ विष्णुपु० ६।७।२८।

१८. बुभुजे विषयान् कर्म चक्रे चानिभसंहितम् । विष्णु ६।७।१०५; 'तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये।' विष्णुपु० १।१९।४१।

अवलोकनीय बात यह है कि इसने शाक्य, शुद्धोदन एवं राहुल का उल्लेख किया है और ऐसा आया है कि शुद्धोदन इस्वाकुवंश के बृहद्बल से २३ वीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था। क्षेपकों की, विशेषतः गद्यांशों में, सम्मावनाएँ स्पष्ट हैं। इसमें राशियों, लग्न एवं होरा का उल्लेख हुआ है। वाचस्पति ने अपने योगभाष्य की टीका में (२।३२) यमों एवं नियमों (विष्णु ६।७।३६-३८) का नाम लेकर इस पुराण से बातें उद्धृत की हैं। और देखिए विष्णु ६।७।४९ एवं योगभाष्य ३।४९। वाचस्पति ने अपना न्यायसूचीनिबन्ध ८८८ वत्सर में लिखा, जिसे विक्रम संवत् मानना चाहिए, क्योंकि वे उत्तर मारतीय थे और 'वत्सर' शब्द का प्रयोग हुआ है न कि 'शक' शब्द का। अतः इस निबन्ध की तिथि हुई सन् ८३१ ई०।

निम्नर्लिखित निर्देश उपर्युक्त प्रश्न के विषय में पढ़े जा सकते हैं—विल्सन की भूमिका (विष्णुपु०, जिल्द १ का अनुवाद); ह० (विष्णुपु० की तिथि, ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द १८, पृ० २६५-२७५ एवं पी० आर० एच० आर०, पृ० १९-२६) ने इसे १००-३५० ई० के बीच रखा है; प्रो० दीक्षितार (प्रोसीडिंग, इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस, १३ वाँ अधिकेशन, पृ० ४६-५०); जैकोबी (जे० ओ० एस०, ए० बी० एस पृ० ३८६-३९६)। दानसागर ने २३,००० श्लोक वाले एक विष्णुपुराण का उपयोग नहीं किया है। आज के विष्णुपुराण को ३०० ई० एवं ५०० ई० के बीच में कहीं रखना सत्य से बहुत दूर नहीं होगा।

विष्णुधर्मपुराण (उप्०)—हमने इसकी तिथि के विषय में चर्चा करते हुए प्रो० हज्जा के विचार पढ़ लिये हैं। प्रो० अशोक चटर्जी ने इसे १२५०-१३२५ ई० के बीच रखा है (ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३८, पृ० ३०५-३०८)। हरप्रसाद शास्त्री का कथन है कि इसकी एक पाण्डुलिपि सन् १०४७ में की गयी। बुहलर ने कहा है कि यह एवं विष्णुधर्मोत्तर अल्बरूनी के मत से घर्म-पुस्तकों हैं (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द १९, पृ० ४०७)। हरप्रसाद शास्त्री के मत के लिए देखिए 'नेपाल ताड़पत्र पाण्डुलिपि' (पृ० ५३)।

विष्णुधर्मोत्तर (उँप०, वेंक० प्रेस संस्करण)—यह एक विशद ग्रन्थ है। हमने इस पर पहले भी (गत अध्याय में) पढ़ लिया है। कल्पतरु ने अपने व्रत, तीर्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, राजधर्म, मोक्ष एवं अन्य कार्ण्डों में इससे उद्धरण नहीं लिया है। अपरार्क ने केवल ३० श्लोक (जिनमें २४ दान पर हैं) लिये हैं। स्मृतिच० ने भी ३० श्लोक लिये हैं। किन्तु दानसागर ने दान पर बहुत-से श्लोक उद्धृत किये हैं। यह छठी शती से पुराना और १०वीं शती के पश्चात् का नहीं हो सकता, किन्तु इसके कुछ अंश पश्चात्कालीन क्षेपक या परिवर्धन के रूप में हैं। इसके प्रथम माग के अध्याय ५२-६५ शंकर-गीता के नाम से विख्यात हैं। कालिकापुराण ने स्पष्ट रूप से (९१।७० एवं ९२।२) विष्णुधर्मोत्तर की ओर संकेत किया है कि उसमें राजनीति एवं सदाचार पर बातें दी हुई हैं।

साम्बपुराण (उप०, वेंक० प्रेस संस्करण)—देखिए ह० ('साम्बपुराण ध्यू दि एजेज', जे० ए० एस० बी०, जिल्द १८, १९५२, पृ० ९१-१११; 'ऑन साम्बपुराण ए शैव ग्रन्थ', ए० बी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३६, १९५५, पृ० ६२-८४ एवं 'स्टडीज आदि', जिल्द १, पृ० ३२-१०८)। आरम्भिक निबन्धों, यथा—कल्पतरु, अपरार्क या स्मृतिच० ने इससे उद्धरण नहीं लिया है। दानसागर ने इससे चार क्लोक उद्धृत किये हैं। प्रो० हज्या ने जो यह कहा है कि भविष्य एवं ब्रह्मपुराण ने साम्ब से उद्धरण लिया है, प्रस्तुत लेखक को मान्य नहीं है, क्योंकि साम्बपुराण के विषय में स्वयं प्रो० हज्या ने विज्ञापित किया है कि इसमें कुछ ऐसे अंश हैं जो माँसि-माँति के कालों एवं स्थानों में विभिन्न रूप धारण करते रहे हैं। किन्तु इतना कहा जा सकता है कि अल्वरूनी ने सन् १०३० ई० में साम्ब नामक पुराण का उल्लेख किया है।

शिवपुराण (कुछ पुराणों के मत से एक महापुराण)—वेंक० प्रेस द्वारा दो जिल्दों में प्रकाशित, देखिए ह० 'प्रॉब्लेम दी लेटिंग टु शिवपुराण' (अवर हेरिटेज, कलकत्ता, १९५३, जिल्द १, माग १, पृ० ४६-४८)। डा० पुसल्कर

### पुराणों एवं उषधुराणों वर संक्षित्र टिप्पणियां

(स्टडीज इन एपिनस एण्ड पुराणज, पृ० ३१-४१) का कथन है कि मुद्रित वायु एक शुद्ध महापुराण है तथा शिवपुराण पश्चात्कालीन कृति है और वह मात्र उपपुराण है। अल्बरूनी (सचौ; जिल्द १, पृ० १३१) में इसके विषय का प्राचीनतम संकेत एवं उल्लेख है। दानसागर ने इसे उद्धृत किया है, किन्तु कल्पतर, अपरार्क एवं स्मृतिच० ने नहीं। इस सात संहिताओं में विभक्त है, यथा—विद्येश्वर, रुद्रसंहिता (सृष्टि, सती, पार्वती, कुमार एवं युद्ध नामक पाँच भागों में), शतरुद्ध, कोटिरुद्ध, उमा, कैलास, वायवीय (दो भागों में)। इसमें लगमग २३,००० रुलोक हैं। शतरुद्धसंहिता (अध्याय ४२) में १२ ज्योतिर्लिंगों का उल्लेख है, वे रुद्ध के अवतार कहे गये हैं और उनका वर्णन उपस्थित किया गया है। कोटिरुद्धसंहिता (अध्याय ३५) में शिव के एक सहस्र नाम दिये हुए हैं। कैलाससं० (अध्याय ५) में पूजा के मण्डल का वर्णन है तथा अध्याय ७।५-२६ में कितपय मुद्राओं एवं न्यासों की व्यवस्था है। रुद्धसंहिता के 'पार्वती' भाग में जो वर्णन है वह इस पुराण को कुमारसम्मव के समान प्रकट कर देता हैं।

शिवधर्म—देखिए ह० (जे० जी० जे० आर० आई०, जिल्द १०, पृ० १-२०); अपराकं (पृ० २७४, याज्ञ०

१।१९३) ने इससे एक श्लोक उद्घृत किया है, जो याज्ञवल्यस्मृति का अन्वय मात्र है।

सौर (उप०)—देखिए ह० (एन० आई० ए०, जिल्द ६, पृ० १०३-१११ एवं १२१-१२९; बी० बी०, जिल्द ४, पृ० २१२-२१६ एवं स्टडीज, जिल्द १, पृ० ३४८।

स्कन्दपुराण—यह विशालतम पुराण है और इससे सम्वन्धित समस्याएँ बड़ी चक्करदार हैं। यह दो रूपों में प्राप्त है; एक सात खण्डों में विभाजित है, यथा—माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, आवन्त्य, नागर एवं प्रमास; और दूसरा ६ संहिताओं में विभक्त है, यथा—सनत्कुमार, सूत, शांकरी, वैष्णवी, ब्राह्मी एवं सौर। वेंकं० प्रेस ने सात खण्डों वाला स्कन्द प्रकाशित किया है और आनन्दाश्रम प्रेस ने माधवाचार्य की टीका के साथ सूतसंहिता का प्रकाशन किया है। इसके विस्तार के विषय में कई पाठ हैं, यथा ८१,००० रलोक, १,००,००० रलोक (पी० आर० एच० आर०, पृ० १५८), ८६,००० (वही, पृ० १५९)। इस पुराण का नाम स्कन्द तो है, किन्तु स्कन्द देवता का वर्णन विशद एवं प्रमुख़ रूप से नहीं हुआ है। स्कन्द का नाम पद्म (५।५९।२) में आया है। स्कन्द (१।२।६।७९) सर्वथा किरातार्जुनीय (२।३० 'सहसा विदधीत न कियाम्') के समान है। " स्कन्द का काशीखण्ड (२४।८) क्लेष एवं परिसंख्या में बाण की शैली के समान है, यथा--'यत्र क्षपणका इव दृश्यन्ते मूलघारिणः' (श्लोक २१) या 'विभ्रमो यत्र नारीषु न विद्वत्सु च र्कीहचित्' (श्लोक ९) । नाट्यवेद एवं अर्थशास्त्र का उल्लेख काशीखण्ड (पूर्वीघं ७।४-५) में हुआ है। घन्वन्तरि एवं चरक का उल्लेख काशीखण्ड (पूर्वार्घ १।७१) में आयुर्वेद पर हुआ है। 'झोटिंग' शब्द काशीखण्ड (७२।७४) में आया है (झोटिंगा राक्षसाः कूराः) । आरम्भिक टीकाओं एवं निवन्धों में धूर्मशास्त्र-विषयक प्रकरणों के सिलसिले में स्कन्द से उद्धरण लिये गये हैं। मिताक्षरा (याज्ञ०२।२९०) ने वेश्या की स्थिति के विषय में चर्चा करते हुए इसका उल्लेख किया है। कल्पतरु ने व्रत पर १५, तीर्थ पर ९२, दान पर ४४, नियतकाल पर ६३, राजधर्म (कौमुदीमहोत्सव) पर १८, श्राद्धकाण्ड में केवल ४ एवं गृहस्थकाण्ड में २ क्लोक उद्धृत किये हैं। अपरार्क ने केवल १९ क्लोक लिये हैं, जिनमें एक उद्धरण तान्त्रिक परम्परा में आ गया है। "दानसागर ने दान पर इससे ४८

१९. सहसा न कियां कुर्यात् पदमेतन्महापदाम् । विमृश्यकारिणं धीरं वृणते सर्वसम्पदः ॥ स्कन्य (१२।६।७९)।

२०. अपरार्क ने याज्ञ० (१।२०४) की टीका में गोदान के विषय में चर्चा करते समय स्कन्दपुराण को उद्भृत किया है। साढ़े पाँच क्लोकों को उद्भृत करने के उपरान्त एक गद्य मन्त्र इस प्रकार उद्भृत है—'ओं हीं नर्मी

#### धर्मशास्त्र का इतिहास

क्लोक लिये हैं और स्मृतिच॰ ने कुल २३। इस पुराण के इतने बड़े आकार के रहने पर भी इसके उद्धरण बहुत कम लिये गये हैं। यह एक विचित्र बात है। एक क्लोक में कालिदास की ध्विन मिलती है और देवल का मत भी एक स्थान पर झलक उठता है। उतने विशाल ग्रन्थ में क्षेपकों का आ जाना सरल है। अतः तिथि-निश्चय करना किन है। नेपाल दरबार पुस्तकालय की एक पाण्डुलिपि सातवीं शती की है, जैसा कि हरप्रसाद शास्त्री का कथन है। अतः यदि हम स्कन्दपुराण की तिथि के विषय में यह कहें कि यह सातवीं शती के पूर्व नहीं रखा जा सकता और न नवीं शती के पश्चात् का हो सकता है, तो हम सत्य से बहुत दूर नहीं होंगे।

भगवित ब्रह्ममार्तिवज्णुभगिनि राद्रदेवते सर्वपापिवमोचिनि स्वरूपं स्मर इडे इडान्ते हव्ये चान्द्रे घृतिमित सरस्वति - सुभुते एह्योहि हुंकर हुंकुर सर्वलोकमये एह्यागच्छागच्छ स्वाहा । इति घेनुकर्णजपः ।'

२१. मरणं प्रकृतिश्वेव जीवितं विकृतिर्यदा। स्कन्द (१।२।१०।२७); मिलाइए 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः ॥' रघुवंश (८।८७); त्रीणि ज्योतीिष पुरुष इति वै देवलोऽब्रवीत् । भार्या कर्म च विद्या च संसाध्यं यत्नतस्त्रयम् ॥ स्कन्द (१।२।१५।१०)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

४२८

#### अध्याय २४

# धर्मशास्त्र पर पुराणों का प्रभाव

साहित्यिक कृतियों एवं समाज का एक-दूसरे पर घात-प्रति-घात होता है। ईसा के पूर्व एवं पश्चात की शतियों तक भारतीय समाज ने बौद्ध घर्म, जैन धर्म एवं अन्य विरोधी सम्प्रदायों द्वारा टुकड़े-टुकड़े हो जाने के कारण एवं यूनानियों, शकों, पह्लवों, हुणों तथा अन्य बाह्य लोगों के आक्रमणों एवं अत्याचारों के फलस्वरूप वैदिक घर्मावलम्बी चिन्तकों को सोचने के लिए विवश किया और उन्हें ऐसे ग्रन्थों के प्रणयन के लिए अनुप्राणित एवं अभिप्रेरित किया जिनमें नये दृष्टिकोणों एवं व्यवहारों का समावेश हो और उनके फलस्वरूप वैदिक एवं स्मृति-घर्म की पुनर्व्याख्या हो सके। जब ये ग्रन्थ प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण हो गये तो वेद के अनुयायियों का प्रयास यही था कि वे उनका अनुसरण करें और यथासम्मव पुराणों की आवश्यकताओं के अनुसार व्यवहारों एवं धार्मिक कृत्यों में अनुकुलता स्थापित करें। हमें यही देखना है कि पुराणों ने किस प्रकार पुनर्व्यवस्थापन की समस्या का समाघान किया। हमें यह अवश्य जानना चाहिए कि प्रचलित हिन्दू धार्मिक व्यवहारों से यही प्रकट होता है, जैसा कि प्रत्येक कृत्य के आरम्भ में लिये गये संकल्प से स्पष्ट होता है, कि उनसे श्रुति (वेद), स्मृति एवं पुराणों (श्रुति-'स्मृति-पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थम्) द्वारा घोषित फल कर्ता को प्राप्त होता रहे। इस किया, के मूल में दो बातें थीं, यथा-(१) बौद्ध घर्म, जैन घर्म की शक्ति एवं मर्यादा तथा विमिन्न उत्पन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के प्रभाव को समाप्त करना' तथा (२) बौद्ध धर्म के आकर्षक स्वरूपों से अधिकांश लोगों के मन को हटाना और उनके मन में यह बैठाना कि वे पुन व्यंवस्थित एवं पुन: प्रकाशित हिन्दू घर्म से उन्हीं सामाजिक एवं आघ्यात्मिक लामों को प्राप्त कर सकते हैं जो बौद्ध धर्म से परिलक्षित अथवा अभिसंघानित होते हैं, तथा यह भी बताना कि वेद के अनुयायियों के धार्मिक सिद्धान्त बौद्ध धर्म की शिक्षाओं से मेल रखते हैं और बौद्ध धर्म की बातें वैदिक व्यवहारों से ही ली गयी हैं। अन्ततोगत्वा बौद्ध धर्म अपने उद्गम स्थान भारत से विलुप्त हो गया। बौद्ध धर्म के भारत से विलुप्त हो जाने के कारणों पर प्रकाश हम इस माग के अन्त में डालेंगे, किन्तु यहाँ पर इतना तुरत कह देना आवश्यक है कि बौद्ध धर्म के अधःपतन एवं विलुप्त होने के मूल में पुराणों का एक प्रमुख हाथ था, क्योंकि उन्होंने बौद्ध धर्म के बहुत-से सिद्धान्तों पर स्वयं वल दिया तथा उन्हें अपना लिया, यथा—अहिंसा पर बल दिया, बुद्ध को विष्णु का अवतार घोषित कर दिया, निरामिष मोजन को तपस्या का एक प्रमुख अंग मान लिया तथा मठों एवं वैरा-ग्यवाद का उपयोग किया, जैसा कि मनु एवं याज्ञवल्क्य की स्मृतियों में कथित था।

१. महावग्ग (मुत्तनिपात का भाग) में ऐसा आया है कि बुद्ध के समय में ६३ दार्शनिक सम्प्रदाय वे (देखिए सैंग्रेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द १०, भाग २,पृ,० ९२)।

२. पाजिटर ('पुराण टेक्ट्स आव दि डायनेस्टीज आव दि कलि एज', पृ० २८, पावटिपूरणी) का विचार है कि पौराणिक साहित्य द्वारा हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार हुआ और बौद्ध धर्म का अधःपतन हुआ।

पुराणों ने अपने कर्तव्य के पालन में इस बात की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया कि वेद की समझने के लिए इतिहास एवं पूराण का ज्ञान आवश्यक है। एक प्रसिद्ध श्लोक है—'इतिहास एवं पुराण के (अध्ययन एवं व्यवहार) द्वारा वेद को शक्तिशाली बनाना चाहिए; अल्प ज्ञान वाले व्यक्ति से वेद भय करता है, क्योंकि वह (अल्पज्ञ) हानि पहुँचा सकता है।" मनु का कथन है कि वे ब्राह्मण, जिन्होंने वेद का अध्ययन नियमानकल (वेदाध्ययन के नियमों के अनुसार) और उन ग्रन्थों के साथ, जो उसे शक्तिशाली बनाते हैं, िरुया है, शिष्ट कहलाते हैं, और वे वेद के अर्थ को प्रत्यक्ष कराने के हेतु बनते हैं। वायुपुराण में ऐसा वलपूर्वक कथित हुआ है कि जो ब्राह्मण चारों वेदों का उनके (छः) अंगों एवं उपनिषदों के साथ ज्ञाता है, वह विचक्षण या समझदार तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि पूराणों का ज्ञाता न हो जाय। उपनिषदों में एक ही ब्रह्म से 'आकाश' की सृष्टि के विषय में संक्षेप में संकेत मात्र है (तै॰ उप॰ २।१)। यही वात 'तेज' (छा॰ उप॰ ६।२।३) एवं 'जल' (छा० उ० ६।२।४) के विषय में भी है। किन्तु पुराणों में विस्तार के साथ इन तत्त्वों की उत्पत्ति एवं विलयन का विवरण पाया जाता है (वायु ४।१७, ब्रह्म १-३, अग्नि १७, ब्रह्माण्ड २।३, कूर्म १।२, ४, ७, ८ आदि)। ऐतरेय बाह्मण एवं कठोपनिषद् में उल्लिखित हरिश्चन्द्र एवं निचकेता की कहानियाँ ब्रह्मपुराण (अध्याय १०४ एवं १५०. हरिश्चन्द्र), समापर्व (अध्याय १२, हरिश्चन्द्र) एवं अनुशासन (अध्याय ९१, निचकेता) में पर्याप्त विस्तार के साथ दी हुई हैं। यम एवं यमी का विख्यात कथनोपकथन (ऋ०१०।१०) नर्रासहपुराण (१३।६-३६) में विस्तारित है। विष्णुपुराण (४।६।६४) में पुरूरवा एवं उर्वशी की कथा आयी है और साथ ही साथ ऋग्वेद (१०।९५) की ऋचा की ओर भी संकेत है, किन्तु ऋचा का प्रथम चरण कुछ अशुद्ध रूप से उद्धृत है। '

पुराण न केवल अपने को वेद को बल देने वाला कहते हैं, प्रत्युत वे इस प्रिक्रिया में बहुत आगे बढ़ जाते हैं। कूर्म में आया है—'इतिहास (महामारत) के साथ सभी पुराणों को एक ओर रख दो और दूसरी ओर सर्वोत्तम वेद को; ये पुराण (वेद से) मारी पड़ जायेंगे।" महामारत में मी ऐसा ही साधिकार व्यक्त किया गया है।

- ३. इतिहासपुराणाम्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताह्नेदो मामयं प्रहरिष्यति।। आदिपर्व (१।२६७-२६८), बायु (१।२०१), पद्म (५।२।५१-५२), ब्रह्माण्ड (१।१।१७१), विसष्ठधर्मसूत्र (२७।६१), लघुव्यास-स्मृति (२।८६), वृद्धात्रि (अव्याय ३, पृ० ५०, जीवानन्द संस्करण 'प्रतरिष्यति' पढ़ता है)। स्मृतिचन्द्रिका (१, पृ० ३) ने इसे बृहस्पति का क्लोक माना है। प्रायश्चित्ततस्य (पृ० ५११) ने इसे विसष्ठ से उद्धृत किया है। कूर्म (१।२।१९) में ऐसा आया है: 'इतिहासपुराणाम्यां वेदार्थानुपवृंहयेत्।' रामानुज ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में इसे उद्धृत किया है।
  - ४. धर्मेणाधिगतो येस्तु वेदः सपरिबृहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ।। मनु (१२।१०९)।
- ५. यो विद्याच्चतुरो वेदान्सांगोपनिषदो द्विजः। न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः॥ वायु (१। २००), स्कन्द (प्रभासलण्ड २।९३); पद्म (५।२।५०-५१, यहाँ दूसरी अर्थाली यों पढ़ी गयी है: 'पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः'), ब्रह्माण्ड में प्रथम अर्थाली है (१।१।१७०)।
- ६. विष्णुपुराण (४।६।६४) में यह गद्यांश आया है : 'ततोश्चोन्मत्तरूपो जाये हे तिष्ठ मनिस घोरे तिष्ठ - वचित कपिटके तिष्ठेत्येवमनेकप्रकारं सुक्तमवोचत्।' मिलाइए ऋग्वेद (१०।९५।१) 'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे बचांसि मिश्रा कृणवावहै नु।'
  - ७. एकत्रसमु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नशः। एकत्र परमं वेबमेतवेवातिरिच्यते।। कूमं (२।४६।१२९)।

पुराण वेद से अपनी वरीयता अथवा श्रेष्ठपदता (कभी-कभी वरावरी) घोषित करते हैं। मत्स्य (५३।३-११), पदा (५।१।४५-५२), ब्रह्म (२४५।४), विष्णुंपु० (३।६।२०), देवीभागवत (१।३१३) आदि में आया है कि ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के पूर्व पुराणों के विषय में सोचा और तब वेद उनके अधरों से टपके। बहुत-से पुराण वेद के समान (वेदसंमित) कुहे गये हैं, यथा—वायु (१।११,४।१२), ब्रह्म (१।२९, २४५।४ एवं २१), विष्णु (१।१।१३, ६।८। १२), पद्म ६।२८२।११६<sup>८</sup> कंतिपय पुराण देवों द्वारा कहे गये माने गये हैं, यथा ब्रह्मा (ब्रह्मपुराण १।३०), वायु (वायु १।१९६) । कुछ पुराण विष्णु के अवतारों द्वारा कहे गये हैं, यथा मत्य (१।२६) या वराह (२।१-३) । वेद के वचनों के जप से सभी पाप कट जाते हैं, इसी प्रकार पुराणों के पठन या श्रवण या पाठ से सभी पाप कट जाते हैं (वायु १०३।५८; मत्स्य २९०।२०; विष्णु ६।१।८।३ एवं १२) । कुछ पुराणों ने अपनी प्रशंसा करने में अति-शयोक्ति कर दी है, यथा-वराहपुराण (२१७।१२-१३, २१७।१५-१६) में आया है कि इस पुराण के दस अध्यायों के पढ़ने से वही फल प्राप्त होता है, जो अग्निष्टोम एवं अतिरात्र यज्ञों के सम्पादन से। और देखिए ब्रह्म (२५४। ३४-३५), अग्नि (३८४।१३-३०) एवं देवीमागवत (१२।१३।११-१७) । इतना ही नहीं, पुराण वैदिक यज्ञों से बढ़कर तीर्थ-यात्राओं, व्रतों, मिनत आदि को मानते हैं। पद्म (१।३८।२ एवं १८) में आया है कि केवल गया जाने या फल्गु में स्नान कर लेने से वही फल प्राप्त होता है, जो अश्वमेध यज्ञ करने से होता है। स्कन्द (१।२।१३।५९-६०) में आया है, 'वेदोक्त यज्ञिय कृत्यों का कोई उपयोग नहीं देखा जाता, उनमें कोई जीवन नहीं है, वे अविद्या के अन्तर्गत हैं और उनसे हिंसा होती है। यदि (यज्ञ का) सम्पादन इंधन (सिमधा) जैसे निर्जीव पदार्थों से होता है, पूज्यों एवं कुशों से होता है तो फल भी वैसा ही होगा, क्योंकि कर्म कारण पर निर्मर रहता है।' देखिए शान्तिपर्व (३३७) जहाँ मुनियों एवं देवों में अन्न या बकरी के मांस की आहुतियों के विषय में चर्चा हुई है। ऋग्वेदीय काल में देवों के यज्ञों में मांस की आहतियाँ दी जाती थीं, किन्तु कहीं-कहीं ऐसे संकेत मिलते हैं कि उस काल में घृत एवं सिमधा की आहृतियों से वही फल मिलता था जो पशु-मांस की आहुतियों से घोषित था-- 'जो कोई अन्नि के लिए समिधा से या घृत की आहुति से या वेद मन्त्र से या निमत होकर अच्छा यज्ञ करता है, उसी के लिए द्रुतनामी घोड़े दौड़ते हैं और उसका ही यश अत्यन्त द्युतिमान् होता है; उसके पास देवों या मनुष्यों द्वारा किसी मी दिशा से कोई अनिष्ट नहीं पहुँचता' (ऋ० ८।१९।५-६)। एक दूसरा मन्त्र मी है---'हे अग्नि, हम आपके पास अपने हृदय से उत्पन्न ऋक्-मन्त्र के साथ आहुति देते हैं। वे ऋचाएँ आपके यहाँ बैल या साँड़ या गाय हों (ऋ० ६।१६।५७)।

वेद एवं यज्ञों के विषय में कितपय उपनिषदों में पायी जाने वाली मनोवृत्ति पुराणों में मी लक्षित होती है, यथा मुण्डकोपनिषद् में आया है—'व्यक्ति को दो विद्याएँ जाननी चाहिए: परा (उच्चतर) एवं अपरा (निम्नतर); अपरा में चारों वेद, शिक्षा, कल्प (पिवत्र यज्ञों वाले सूत्र), व्याकरण, छन्द, ज्योतिष सिम्मलित हैं; परा में वह है जिसके द्वारा अक्षर (न मिटने वाली, वास्तविक सत्ता अथवा तत्त्व) का ज्ञान होता है' (१।१।४-५)। इसी उपनिषद् में अपरा विद्या की मर्त्स ा भी है—ये यज्ञ अवृढ (चूने वाली) नौकाओं के समान हैं जिनमें १८ (व्यक्ति) हैं, जिन पर वे घोषित कर्म निर्मर रहते हैं जो अवर हैं; वे मूर्ख व्यक्ति जो इन्न कर्मों को सर्वोत्तम समझ अपनाते हैं, पुन: वृद्धा-

एकतश्चतुरो वेदा भारतं चैतदेकतः। पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया घृतम्।। चतुर्म्यः सरहस्येम्यो वेदेम्यो द्याधकं यदा। तदाप्रभृति लोकेस्मिन्महाभारतम् च्यते।। आदिपर्व (१।२७१-२७३)।

८. पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसंमितम् । वायु १।११; गुरुं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसंमितम् । ब्रह्म १।२९; पुराणं नारदोपाख्यमेतद्वेदार्थसंमितम् । नारदीय १।१।३६। वस्था एवं मृत्यु को प्राप्त होते हैं। " कठोपनिषद् का कथन है कि जो अविद्या एवं विद्या है, दोनों एक दूसरे से बहुत दूर हैं, विपरीत हैं और विभिन्न फल देने वाली हैं। " जब नारद सनत्कुमार के पास गये और उनसे शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की तो सनत्कुमार ने पूछा, 'बताओ, तुम कितना जानते हो, तब मैं बताऊँगा कि उसके आगे क्या है। तब नारद ने बताया कि वे चारों वेद, इतिहासपुराण (नामक) पाँचवाँ वेद, कितपय अन्य विद्याएँ जानते हैं। इस पर सनत्कुमार ने कहा कि तुमने (नारद ने) जो चार वेद एवं अन्य विद्याएँ पढ़ी हैं, वे नाममात्र हैं। इसके उपरान्त सनत्कुमार ने नारद को कमशः परमात्मा का ज्ञान दिया। बृहदारण्यकोपनिषद् (११४।१०) ने उस व्यक्ति की मत्संना की है, जो यह समझ कर कि वह देवता से भिन्न है किसी इष्ट की पूजा करता है। जो व्यक्ति सत्य नहीं जानता, वह देवताओं वाले यिजय पशु के समान है। इसी प्रकार, उपनिषदों के कितपय वचनों द्वारा व्यक्त होता है कि वे तप, उदारता, ऋजुता, अहिंसा एवं सत्यता को यज्ञ के सम्पादन के बराबर या उससे उत्तम समझते हैं (देखिए छान्दोग्य २११७।४, प्रक्त १११५, मुण्डक ११२।११)।

यद्यपि उपनिषदों के कुछ वचनों में 'परम आत्मा' का ज्ञान चारों वेदों से उत्तम माना गया है, किन्तु सामान्यतः उपनिषदें वेदों को प्रमाण मानती हैं और अपने कथनों की पुष्टि में वेद के मन्त्र उद्धृत करती हैं। उदाहरणार्थ, ऐत॰ उप॰ (२।५) ने ऋ॰ (४।२७।१: तदुक्तमृषिणा गर्में नु आदि) को, प्रश्नोपनिषद् (१।११) ने ऋ॰ (१।१६४।१२: पंचपादं पितरम्) को, बृहदारण्यकोपनिषद् (२।५।१५।१७ एवं १९) ने ऋ॰ (१।११६।१२,१११९०।२२,६।४७।१८: रूपं रूपं प्रतिरूपो) को उद्धृत किया है। उपनिषदों ने पुनः वल देकर कहा है कि ब्रह्म-विद्या उसी को दी जानी चाहिए जो श्रोत्रिय (वेदज्ञ) हो, जो कर्तव्यशील हो और जिसने शिरोव्रत सम्पादित कर लिया हो। वह उपन का कथन है कि वेदाध्ययन, यज्ञों, दानों आदि से ब्रह्म-ज्ञान की तैयारी होती है (अर्थात् ये ब्रह्मज्ञान के उपकरण हैं): ब्राह्मण (तथा अन्य लोग) वेदाध्ययन, यज्ञों, दानों, तपों एवं उपवास से इसे (परम आत्मा को) जानने की इच्छा करते हैं। उपर्युक्त बातें स्पष्ट करती हैं कि उपनिषदें वेदों एवं यज्ञों की सम्पूर्णतः मर्त्मना नहीं करतीं, प्रत्युत ब्रह्मज्ञान के लिए इन्हें आवश्यक उपकरण के रूप में स्वीकार करती हैं।

- ९. हे विद्ये वेदितन्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्ववेदः शिक्षा कल्पो न्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अय परा यया तदक्षरमधिगम्यते।। मुण्डकोप०
  (१।१।४-५); प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अब्दादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते
  पुनरेवापियन्ति।। मुण्डकोप० १।२।७। १८ व्यक्ति ये हैं, १६ पुरोहित, यज्ञकर्ता एवं यज्ञकर्ता की पत्नी। वेदान्तसूत्र
  (१।२।२१) के भाष्य में शंकराचार्य ने कहा है कि यह इलोक अपरा विद्या की भर्त्सना के लिए है।
  - १०. दूरमेते विपरीते विष्ची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता। कठोप० १।२।४।
- ११. तदेतद् ऋचाम्युक्तम् । क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्नत एकिषं श्रद्धयन्तः । तेषामेवैतां ब्रह्मबिद्धां वदेत शिरोवतं विधिवद् यैस्तु चीर्णम् ॥ मुण्डकोप० ३।२।१० । शिरोवत में सिर पर अग्नि रखना होता है (जैसा
  कि आयर्वण नियम है) । देवीभागवत (११।९।१२-१३) में आया है—'अग्निरित्यादिभिः मन्त्रैः षड्भिः शुद्धेन
  अस्मना । सर्वागोद्धलनं कुर्यात् शिरोव्रतसमाह्मयम् ॥ . . . याविद्वद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा ।' अयर्वशिरस्
   प्रन्त्र ६ हैं—'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलिमिति भस्म, स्थलिमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वं हवा इदं भस्म ।'
- १२. तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन । वृह० उप० ४।४।२२; देखिए
  नीता १८।५ : यशदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।

इसमें सन्देह नहीं कि पुराण यत्र-तत्र अपने को वेदों से श्रेष्ठ ठहराते हैं तथा अपने मूल्य एवं प्रमाव को सिद्ध करते हैं, किन्तु वे उपनिषदों के समान ही वेदों के प्रति मनोवृत्ति रखते हैं। वे वेदों को प्रमाण मानते हैं और कितपय कुत्यों में वैदिक मन्त्रों का प्रयोग करते हैं। मत्स्य (अध्याय ९३) ने नव-ग्रहों के होम की विधि में वैदिक मन्त्रों का उल्लेख किया है जिनमें ५ मन्त्र याज्ञ० (११३००-३०१) से मिन्न हैं। देखिए मत्स्य (९३१११-१२)। उद्धाहतत्त्व में रघुनन्दन का कथन है कि 'आं कृष्णेन' तथा अन्य मन्त्र चारों वेदों को मानने वालों में समान हैं। यही बात भवदेव मट्ट ने भी कही है। मत्स्य में ऐसी व्यवस्था है कि जव घर के पास या उसमें (उल्लू जैसे) अशुम पक्षी देखे जायें या इसी प्रकार पशु चिल्लायें तो होम किया जाना चाहिए और ऋ० (१०११६५११-५) की पाँच ऋचाओं के जप के लिए पाँच ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिए। देवमूर्ति या लिंग की स्थापना की विधि के वर्णन में मत्स्य (अध्याय २६५) ने (उस उत्सव के लिए) विविध ऋचाओं की व्यवस्था दी है। और देखिए अग्निपुराण (४११६-८) जहाँ मन्दिर-निर्माण के सिलसिले में ऋचाओं का उल्लेख किया गया है, यथा—ऋ० (१०१९१६-३, १०११४, ९१५८११-४) आदि। नारदीयपुराण (२१७३१८३-९०) ने प्रत्येक क्लोक के अन्त में वैदिक प्रार्थना के अंग्र रखे हैं (ऋ० ७१६६११६, तै० आ० ४१४१२-५ एवं वाज० सं० ३६१२४ में वे प्रार्थनाएँ हैं)। मागवत का ११२१२ मुण्डकोपनिषद (२१२८) से उद्धत है।

पुराण बहुत-सी वातों में न-केवल वैदिक मन्त्रों की व्यवस्था करते हैं, प्रत्युत बहुत-से पौराणिक मन्त्रों के प्रयोग की भी चर्चा करते हैं। ऐसा लगता है कि ईसा की प्रथम शती के आरम्भ में ही या कुछ शतियों उपरान्त ही ब्राह्मणों के धार्मिक कृत्यों में वैदिक मन्त्रों के साथ पौराणिक मन्त्र भी व्यवहृत होने लगे। याज्ञ० (१।२२९) में व्यवस्था है कि विश्वेदेवों को श्राद्ध के समय ऋ० (२।४१।१३: 'हे विश्वेदेव लोग, आइये, मेरे इस आह्वान को सुनिए और इन कुशों पर वैठिए') के मन्त्र के साथ बुलाना चाहिए। इस पर मिताक्षरा (लगमग ११०० ई०) में आया है कि याज्ञ० द्वारा उल्लिखित मन्त्र के साथ स्मार्त मन्त्र का भी प्रयोग होना चाहिए, और वह मन्त्र स्कन्द एवं गरुड़ में पाया जाता है। व्यवस्था ने व्यवस्था दी है कि 'देवों, पितरों, महायोगियों, स्वधा एवं स्वाहा को नमस्कार; वे सदा उपस्थित हैं' नामक मन्त्र का वाचन पिण्डदान के समय श्राद्ध के आरम्भ एवं अन्त में करना चाहिए; जब मन्त्र दुहराया जाता है तो पितर लोग शीघ्र आ जाते हैं और यातुधान लोग माग जाते हैं, यह मन्त्र पितरों की तीनों लोकों में रक्षा करता है।' इस मन्त्र को 'सप्ताचिः' (जिसमें सात ज्वाला हों) की संज्ञा मिली है (वायु ७४।२०, ब्रह्माण्ड ३।११।३०, विष्णुधर्मोत्तर १।१४०।६८, हेमाद्वि, श्राद्ध, पृ० १०७९ एवं १२०८, जिसने ऐसा

- १३. मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सबक्षिणम्। देवाः कपोत इति वा जप्तव्याः पञ्चिमिद्विजैः॥ मत्स्य २३७। १३।
- १४. मन्त्र यह है—-'आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महावलाः। ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते।। यह गरुड़पुराण (१।२१८।७) है। किन्तु इसे अपरार्क ने पृ०४७८ पर बृहस्पित का एवं पृ०४८१ पर ब्रह्मपुराण का कहा है।
- १५. मन्त्र यह है—'देवतास्यः पितृस्यश्च महोयोगिश्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्युत भावायु ७४।१५-१६। और देखिए ब्रह्माण्ड (३।११।१७-१८)। मिताक्षरा (याज्ञ० १।१२१) में आया है कि इस मन्त्र का प्रयोग शूद्रों द्वारा दैनिक पंच यज्ञों में होना चाहिए, किन्तु कुछ अन्य लोगों का कथन है कि शूद्रों की केवल 'नमः' कहने का ही अधिकार है।

कहा है कि यह सात पुराणों में आया है)। अग्निपुराण के अध्याय २०६ में अगस्त्य को अर्घ्य देते समय ऋ० (१।१७९।६) को क्लोक १३ के रूप में रखा गया है।

पुराणों ने न-केवल वैदिक संहिताओं से ही कुछ कृत्यों के लिये मन्त्र लिये हैं, प्रत्युत उन्होंने बहुत-से उपनिषद्-वचनों को कुछ परिवर्तनों के साथ प्रयोग में लाने की व्यवस्था कर दी है। उदाहरणार्थ, कूर्म (२।९। १२, १३ एवं १८) ने तैं उप० (२।४: यतो वाचो निवर्तन्ते), श्वेताश्वतरोपनिषद् (३।८: वेदाहमेतं पुरुषं) आदि से लिया है। विष्णु पु० (६।५।६५) का पद्य है—'द्वे विद्ये वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः', जिसमें मुण्डक उप० (१।१।४) का उद्धरण है। वायु (२०।५ एवं २०।२८) क्रम से मुण्डकोपनिषद् (२।२।४) एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।५) हैं। वायु (१४।१३) सर्वथा श्वेताश्वतर० (३।१६) है और यही वामन (४७।६४-६५) में है। वामन (४७।६७) ऋ० (१।१०।१) के समान ही है।

इससे कुछ मनोरंजक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। किन्तु वास्तव में, जैसा कि हमने ऊपर देख लिया है, पुराणों में बहुत-से वैदिक मन्त्र हैं। भागवतपुराण (११४१२५) में आया है— 'स्त्रियों, शूद्रों एवं केवल नामधारी ब्राह्मणों को वेद का अधिकार नहीं है; अतः मुनि (व्यास) ने कृपा करके उनके लिए मारत का आख्यान प्रस्तुत किया।' देवीमागवत का कथन है—'स्त्रियों, शूद्रों एवं ब्राह्मणों (केवल नामधारी) को वेद का अध्ययन वर्जित है, पुराण उनके लाभ के लिए संगृहीत किये गये हैं।' इन बातों से प्रकट होता है कि शूद्रों के लिए महामारत-श्रवण वही महत्त्व रखता था जो ब्राह्मणों के लिए वेद और शूद्र भी महाभारत से आत्म-ज्ञान (मोक्ष) प्राप्त कर सकते थे।

यद्यपि ब्राह्मणों ने पाँचवीं एवं उसके पश्चात् की शताब्दियों में शूद्रों को, जो हिन्दू ज़नता में सब से अधिक

१६. स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।...तस्माद् भारतमाख्यानं कृपया मुनिन। कृतम्।। भागवत १।४।२५। परिभाषाप्रकाश (पृ० ३७) में उद्धृत, जिसमें ऐसा वक्तव्य है-- वेदकार्यकारित्वावगमाद् भारतस्य वेदकार्यात्मज्ञानकारित्वसिद्धिः। 'स्त्रीशूद्रद्विजवन्धूनां न वेदश्रवणं मतम् । तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च ।। देवीभागवत १।३।२१। शंकराचार्य ने वे० सू० (१।३।३८) में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि शूद्रों को वेदाध्ययन पर आधृत बहा विद्या का अधिकार नहीं है। किन्तु उन्होंने शूद्रों के लिए आत्मज्ञान का सर्वथा निषेध नहीं किया है। उन्होंने विदुर एवं धर्मव्याध के उदाहरण दिये हैं कि वे पूर्व जन्मों के सुकृत्यों के कारण ब्रह्मज्ञानी थे, वे ब्रह्मज्ञान के फल (मोक्ष, संसार से अन्तिम छुटकारा) को पायेंगे, शूद्रों को महाभारत एवं पुराणों के पढ़ने का अधिकार है, जैसा कि 'वह चारों वर्णों को सुनाये', इससे व्यक्त है, और इसी प्रकार वे ब्रह्म एवं मोक्ष का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं—"येषां पुनः पूर्वकृतसंस्कारवशाद्विदुरघर्मव्याषप्रभृतीनां ज्ञानोत्पत्तिस्तेषां न शक्यते फलप्राप्तिः प्रतिषेद्धुं ज्ञानस्यै-कान्तिकफलत्वात् । 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्' इति चेतिहासपुराणाधिगमे चातुर्वर्ष्यस्याधिकारस्मरणात् । वेदपूर्वकस्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणामिति स्थितम् ॥ भाष्य (वे० सू० १।३।३८) । वे० सू० (३।४।३६) में शंकराचार्य ने वाच-क्नवी नामक एक स्त्री की चर्चा की है जिसे ब्रह्मज्ञान था, 'रैक्व-वाचक्नवी-प्रभृतीनामेवंभूतानामिप ब्रह्मवित्त्वश्रुत्यु-पेलब्धेः।' गार्गी वाचक्नवी ब्रह्मज्ञान की खोज करने के लिए प्रसिद्ध है (बृहदारण्यकोपनिषद् ३।६।१, ३।८।१ एवं १२)। महाभारत (स्वर्गारोहणपर्व ५।५०-५१) में आया है कि वह घर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष नामक पुरुषार्थी के विषय, में जो कुर्छ कहता है वह अन्यत्र भी प्राप्त है, किन्तु वह जो कुछ इन विषयों पर नहीं कहता वह अन्यत्र नहीं है, महाभारत का श्रवण मोक्षार्थी बाह्मणों, राजाओं एवं गर्भवती नारियों द्वारा होना चाहिए।

थे, प्रसन्न रखना चाहा और उन्हें बौद्धधर्म से दूर खींचने के लिए भरसक प्रयत्न किया, किन्तु तब भी द्विजों एवं शूद्रों में भेद रखा ही, केवल एक ही छूट यह दी कि वे द्विजों के समान ही पूजा कर सकते हैं और अपने कृत्यों एवं उत्सवों में (पौराणिक) मन्त्रों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, पद्म (४।११०।२८६-२८९) ने मस्मस्नान की अनुमति देते हुए व्यवस्था दी है कि तीन वर्णों के पुरुष वैदिक मन्त्रों का प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु शूद्रों के लिए पौराणिक मन्त्र ही निर्देशित हैं (पद्म ४।११०।२९०-२९३)। पद्म में पुनः आया है कि शूद्र लोग न तो 'प्राणायाम' कर सकते हैं और न 'ओम्' का उच्चारण कर सकते हैं, वे 'प्राणायाम' के स्थान पर 'श्विव' कह सकते हैं (पद्म ४।११०।३१६)। १७

कमशः कुछ विषयों में पौराणिक विधियाँ वैदिक विधियों से ऊपर उठ गयीं। अपरार्क (पृ० १४) ने कहा है कि देवपूजा में लोगों को नर्रासहपुराण आदि में विणित विधि अपनानी चाहिए, न कि पाशुपतों या पांचरात्रों की विधि (पृ० १५), यही बात मन्दिर में मूर्ति-प्रतिष्ठा आदि के कृत्यों में भी करनी चाहिए। "

नरसिंहपुराण (६३।५-६) का कथन है कि 'ओम् नमो नारायणाय' मन्त्र से सभी प्रकार के पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं और इसके जप से व्यक्ति सभी पापों से मुक्ति पा जाता है तथा अन्ततोगत्वा विष्णु में विलीन हो जाता है।

अग्निपुराण (अध्याय २१८) ने राज्यामिषेक की विधि का वर्णन किया है और अध्याय २१९ में लगमग ऐसे ७० पौराणिक मन्त्रों की व्यवस्था दी है, जो अभिषेक के समय कहे जाते हैं। और देखिए विष्णुधर्मोत्तर (२।२१) जहाँ वैदिक मन्त्रों (२।२२) के साथ १८४ पौराणिक मन्त्रों के प्रयोग की विधि है। राजनीतिप्रकाश (पृ० ४९-८३), नीतिमयूख (पृ० १-४), राजधर्मकौस्तुम (पृ० ३१८-३६३) के समान मध्यकालीन निवन्धों ने वैदिक एवं पौराणिक मन्त्रों की समन्वित विधि विष्णुधर्मोत्तर से ली है। राजनीतिप्रकाश (पृ० ४३०-४३३) ने प्रार्थनाओं एवं आशीर्वचनों के रूप में ऐसे मन्त्र उद्धृत किये हैं, जो विष्णुधर्मोत्तर में पाये जाते हैं।

पद्मपुराण (४।९४।६८-९०) ने घनशर्मा नामक व्यक्ति की वड़ी मनोरंजक गाथा कही है। घनशर्मा के पिता ने केवल श्रीत मार्ग का अनुसरण किया और वैशाख स्नान जैसी पौराणिक व्यवस्थाओं का अनुसरण नहीं किया, इसीसे वे भयंकर एवं दुखी प्रेत हुए। कुछ क्लोक तो बड़े मनोरम हैं, 'मैंने अज्ञानवश केवल वैदिक कृत्य किये और मैंने देव माधव के सम्मान में कभी वैशाखस्नान की विधि नहीं अपनायी, और न एक भी वैशाख मास की पूर्णिमा का व्रत रखा, जो ऐसे पापों के पेड़ को, जो पापकर्म आदि के इन्धन से उत्पन्न ज्वाला के समान कष्ट कारकू है, काट देता।

१७. प्राणायामश्च प्रणवः शूद्रेषु न विषीयते । प्राणायामपदे ध्यानं शिवेत्योंकारवर्णनम् ॥ (पद्म ४।११०।३१६) ।

१८. नर्रों सहपु० (अध्याय ६२) ने विष्णुपूजा की विधि का वर्णन किया है। अपरार्क (पू० १५) में यों आया है---'एवं प्रतिब्धायापि पुराणाद्युक्तैवेतिकर्तव्यता ग्राह्या नान्या। तेषामेव व्यामिश्रधर्मप्रमाणत्वेन भविष्यपुराणे परिज्ञातत्वात्।'

१९. कि तस्य बहुभिर्मन्त्रैः कि तस्य बहुभिर्नर्तैः । ओं नमो नारायणेति मन्त्रः सर्वार्थसाघकः ।। इमं मन्त्रं जपेद्यस्तु शुचिर्भूत्वा सप्राहितः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।। नर्रोसह० (६३।६-७); कि तस्य बहुभिर्मन्त्रै-भिर्मित्यंस्य जनार्वने । नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ।। विष्णुर्येषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दी-वरश्यामो हृदयस्थो जनार्वनः ।। वामनपु० (९४।५८-५९); मत्स्य का कथन है, 'ओं नमो नारस्यणेति मूलमन्त्र उदाहृतः ।'

है; यह तो वैसा ही है जैसा कि बहुत-से शास्त्रों एवं कई वेदों को उनके सहायक विस्तृत साहित्य के साथ पढ़ लेने पर होता है, जब कि पुराणों का अध्ययन न किया गया हो। कि इससे प्रकट होता है कि पुराणों को महत्ता केवल शूद्रों को सुविधा देने के कारण ही नहीं प्राप्त हुई, प्रत्युत उन ब्राह्मणों के लिए व्यवस्थित विधियों के फलस्वरूप भी प्राप्त हुई, जो पहले केवल वैदिक कृत्य ही करते थे।

कमशः पुराणों का प्रभाव बढ़ता गया। पहले ऐसा कहा गया कि वेद से प्राप्त (अथवा समझा गया) धर्म परमोच्च और पुराणों में घोषित धर्म अवर (हीन अथवा गौण) है। र किन्तु यह घारणा परिवर्तित हुई और धर्म तीन प्रकार के घोषित हुए — मिश्र, वैदिक एवं तान्त्रिक और भागवत एवं पद्म में ऐसा कहा गया कि विष्णु की पूजा इन तीनों में किसी भी विधि से की जा सकती है। र पद्म ने जोड़ा है कि वैदिक एवं मिश्रक विधियाँ ब्राह्मणों आदि के लिए उचित घोषित हैं, किन्तु तान्त्रिक पूजा-विधि वैष्णव एवं शूद्रों के लिए है। देवी भागवत (११।१।२१-२३) में आया है कि श्रुति (वेद) एवं स्मृति धर्म की आँखें हैं, पुराण इसका हृदय है, और यही धर्म इन तीनों द्वारा घोषित है, यह धर्म इन तीनों के अतिरिक्त और कहीं नहीं पाया जा सकता; पुराणों में कभी-कभी वह भी उद्घोषित हुआ है जो तन्त्रों में पाया जाता है, किन्तु उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए।

मिवष्य (ब्राह्मपर्व १।४३-४७) ने शतानीक एवं सुमन्तु की वार्ता में सर्वप्रथम मनु से अति तक के अठा-रह धर्मशास्त्रों का उल्लेख किया है और कहा है कि वेद, मनु आदि के शास्त्र एवं अंग तीन वर्णों के लिए, न कि शूद्रों के लाम के लिए उद्घोषित हुए हैं, बेचारे शूद्र, लगता है, असहाय हैं; वे चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति कैसे कर सकेंगे? वे आगम (परम्पराजन्य विद्या) से वंचित हैं; ब्राह्मणों में बुद्धिमानों द्वारा उनके लिए कौन-सी परम्पराजन्य विद्या उद्घोषित है जिसके द्वारा वे धर्म, अर्थ एवं काम के तीन पुरुषार्थ पाने में समर्थ होंगे? सुमन्तु ने उत्तर दिया है— 'मनोषियों द्वारा चारों वर्णों, विशेषतः शूदों के लिए जो धर्मशास्त्र उद्घोषित हैं, उन्हें सुनिए, यथा—''१८ पुराण,

२०. मया केवलमेवैकश्रौतमार्गानुसारिणा। उद्दिश्य माधवं देवं न स्नातं मासि माधवे।। वैदिकं केवलं कर्म कृतमज्ञानतो मया। पायन्धनदवज्वालापापद्रुमकुठारिका।। कृता नैकापि वैशाखी विधिना वत्स पूर्णिमा। अञ्चता यस्य वैशाखी सोऽवैशाखो भवेन्नरः। दश जन्मानि स ततस्तिर्यग्योनिषु जायते।। पद्म (४।९४।६८।-८८-९०; बहुशास्त्रं समभ्यस्य बहून्वेदान् सविस्तरान्। पुंसोऽश्रुतपुराणस्य न सम्यग्याति दर्शनम्।। पद्म (४।१०५।१३)।

२१- अतः स परमो धर्मो यो वेदादिधगम्यते । अवरः स तु विज्ञेयो यः पुराणादिषु स्मृतः ॥ व्यास (अपरार्क, पृ०९; हेमाद्रि, वत १, पृ०२२; परिभाषाप्रकाश, पृ०२९) । कृत्यरत्नाकर (पृ०३९) ने 'अपरः स तु विज्ञेयो' पढ़ा है। यह द्रष्टव्य है कि अपरार्क ने 'अवरः' पढ़ा है किन्तु अपरार्क के लगभग दो शतियों के उपरान्त कृ० र० ने 'अपरः' (अन्य अर्थात् दूसरा) पढ़ा है।

२२. वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मलः। त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत्।। भागवत (१११२७।७, नित्याचारपद्धित, पृ० ५१० द्वारा उद्धृत); पद्म० (४।९०।३-४) ने इस प्रकार पढ़ा है—'वैदिक... श्रीविष्णोस्त्रिविधो मलः। त्रयाणामुदितेनैव विधिना हरिमर्चयेत्।। वैदिको मिश्रको वापि विप्रादीनामुदाहृतः। तान्त्रिको विष्णुभक्तस्य श्रूइस्यापि प्रकीर्तितः।। देखिए अग्निपु० (३७२।३४) जहाँ ये शब्द समान रूप से आये दें। मिलाइए वृद्धहारीतस्मृति (११।७७)ः 'श्रौतस्मार्तागमैविष्णोस्त्रिविधं पूजनं स्मृतम्। एतच्छौतं ततः स्मातै पौष्ष्येण च यत्स्मृतम्।।'

रघुवंश के राम का चरित (रामायण), पराशर के पुत्र (व्यास) द्वारा घोषित भारत (महामारत); कृपालु व्यास ने चारों वर्णों के कल्याण के लिए एक ऐसे शास्त्र का प्रणयन किया जिसमें वेद एवं धर्मशास्त्रों का सम्पूर्ण अर्थ दिया हुआ है। भव (सागर) में निमग्न वर्णों के लिए यह एक उत्तम नौका है।" इससे स्पष्ट है कि पुराणों, महाभारत एवं रामायण में प्राक्कालीन (प्राचीन) परम्पराएँ एवं विचार पाये जाते हैं और वे मानी लोगों की शिक्षा के साधनों के रूप में एवं सामान्य लोगों को प्रकाश देने के निमित्त प्रणीत हुए थे। वास्तव में कुछ पुराण, यथा—अग्नि, मत्स्य, विष्णुधर्मोत्तर आदि ज्ञानोदिधस्वरूप (विश्वकोशीय) हैं और उनमें राजनीति, शासन, व्यवहार (कानून), आयुर्वेद, ज्योतिष, फलित-ज्योतिष, किवता, संगीत, शिल्प आदि विषयों की सांगोपांग चर्चा है। इन (पुराणों में मारतवर्ष का देश के जीवन एवं चरित्र के रूप में) वर्णन है और उनमें मारत की उपलब्धियों, दुर्वल-ताओं एवं सीमाओं का दिग्दर्शन है। दो प्रश्न हठात् उठ पड़ते हैं--(१) क्या वे पुराण, जिनमें वैदिक मन्त्र उद्धृत हैं, शूद्रों द्वारा पठित हो सकते थे ? यदि मान लिया जाय कि वैदिक मन्त्रों का उच्चारण शूद्र नहीं कर सकते थे, तो क्या वे विना ब्राह्मणों की सहायता के, स्वयं पुराणों का अध्ययन कर सकते थे? सभी निवन्धों एवं टीकाओं के लेखक इस वात में एकमत हैं कि पुराणों (जो सभी वर्णों के कल्याणार्थ वैदिक मन्त्र भी रखते हैं) में सम्मिलित वैदिक मन्त्रों को शूद्र लोग न तो पढ़ सकते हैं और न सुन सकते हैं। उन्हें केवल तीन उच्च वर्णों के लोग ही अपने प्रयोग में ला सकते हैं। किन्तु कुछ लेखक पद्मपुराण के एक वचन का सहारा लेकर इस बात को मानते हैं कि शूद्र धार्मिक कृत्यों में पौराणिक मन्त्रों का पाठ कर सकते हैं। किन्तु अन्य लेखक, यथा—निर्णयसिन्धु एवं शूद्रकमलाकर के लेखक कमलाकरभट्ट जैसे लोग, भविष्य पु० के श्लोकों का सहारा लेकर ऐसा कहते हैं कि शूद्र के लिए किये गये कृत्य में पौराणिक मन्त्रों का पाठ केवल ब्राह्मण कर सकते हैं, शूद्र ब्राह्मण द्वारा पढ़े जाते हुए पुराण को केवल सुन सकता है। श्रीदत्त जैसे कुछ लेखकों का एक तीसरा मत मी है कि शूद्र-लोग पौराणिक मन्त्र का पाठ कर सकते हैं; किन्तु वे स्वयं पुराण को पढ़ नहीं सकते, केवल ब्राह्मण द्वारा पढ़े जाते हुए पुराण को सुन सकते हैं। धर्मसूत्रों के कालों में केवल वैदिक मन्त्रों का प्रयोग होता था अतः गौतम (१०। ६६: अनु-ज्ञातोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः) ने शूद्रों के लिए वैदिक मन्त्र के स्थान पर केवल 'नमः' कहने की छूट दी है। ईसा के पूर्व कई शताब्दियों तक शूद्रों ने बुद्ध के उपदेश सुने थे, क्योंकि वे सभी के लिए घोषित थे। कुमारिल जैसे अपेक्षाकृत पर्याप्त आरम्मिक लेखक यह जानते थे कि बौद्धों में अधिकांश संख्या शूद्रों की है। उनका कथन है---'कतिपय दम, दान आदि के वचनों को छोड़कर, शाक्य एवं अन्य लोगों के वचन, विद्या के चौदह प्रकारों के विरुद्ध हैं। ये वचन बुद्ध एवं उन लोगों द्वारा उद्घोषित हैं, जो तीनों वेदों द्वारा उपस्थित मार्ग से दूर थे और उनके विरुद्ध कार्य करते थे। ये वचन उन लोगों में प्रचारित एवं प्रसारित हैं, जो विमूढ़ बना दिये गये हैं, जो तीनों वेदों की सीमा से वाहर हैं, जो चौथे वर्ण (अर्थात् शूद्र) में आते हैं (अर्थात् परिगणित हैं) और जो जाति खो चुके हैं।'

२३. शाक्याविवचनानि तु कितपयदमयानाविवचनवर्जं सर्वाण्येव समस्तचतुर्देशविद्यास्यानविरुद्धानि त्रयीमार्गव्युत्थितविरुद्धाचरणैरच बुद्धाविभिः प्रणोतानि । त्रयीबाह्योस्यश्चतुर्थवर्णनिरविसतप्रायेस्यो व्यामूढेस्यः समिपितानीति न वेदमूल्यनेन सम्भाव्यन्ते । तन्त्रवातिक (जैमिनि १।३।४, पृ० १९५, आनन्दाश्रम सं०) । १४ विद्यास्यान\_
याज्ञ० (१।३) एवं भिवष्य (ब्राह्मपर्व २।६) में उद्धृत हैं (४ वेद, ६, वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र) ।
कभी-कभी ४ अन्य विद्यास्यान भी जोड़ दिये जाते हैं, यया 'आयुर्वेदो घनुर्वेदो गान्धवंश्चैव ते त्रयः । अर्थशास्त्रं चतुर्यंतु विद्या ह्यब्दादशैव ताः ।। भविष्य (ब्राह्म २।७) एवं विष्णुपु० ३।६।२८। यह श्लोक एवं अंगानि वेदाश्चित्वारः

अतः उन विद्वान् ब्राह्मणों ने, जो जन-समुदाय (जिसमें शूद्र भी थे) को बौद्ध चंगुल से छीन लेना चाहते थे, सहस्रों पौराणिक मन्त्र प्रणीत किये जिनका श्राद्धों, वर्तों आदि में प्रयोग होने लगा। इसी से प्रारम्भिक निवन्धकार (यथा श्रीदत्त आदि) शूद्रों द्वारा पौराणिक मन्त्रों के पाठ के लिए अनुमति देने को सन्नद्ध थे। किन्तु मारत में बौद्धों के अधः पतन के कई शतियों उपरान्त कमलाकर (जिसने निर्णयसिन्धु का प्रणयन सन् १६१२ ई० में किया) जैसे कट्टर ब्राह्मण लेखकों ने कठोर रूप धारण कर लिया और शूद्रों के लिए प्रतिबन्ध लगा दिया कि वे किसी ब्राह्मण द्वारा पढ़े जाते हुए पुराण को श्रवण मात्र कर सकते हैं और स्वयं पौराणिक मन्त्र भी नहीं कह सकते। यह द्रष्टव्य है कि नर्रासहपुराण ने शूद्रों के कर्तव्यों की व्यवस्था करते हुए विधान किया है कि शूद्र ब्राह्मण द्वारा कथित पुराणों को सुन सकता है और नर्रासह (विष्णु के अवतार) की पूजा कर सकता है।

नारदीयपुराण (२।२४।१४-२४) में श्रुति, स्मृति एवं पुराणों के प्रयोग के विषय में निम्नोक्त बात आयी है—'विद कई रूपों में स्थित है। यज्ञकर्म की किया (में भी) वेद है; गृहस्थाश्रम में स्मृति वेद है; ये दोनों 'कियावेद' एवं 'स्मृतिवेद' पुराणों में प्रतिष्ठित हैं। जिस प्रकार यह अद्भुत संसार पुराण पुरुष (परमात्मा) से उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं है कि सारा साहित्य पुराणों से उत्पन्न हुआ। मैं पुराणार्थ (पुराण के अर्थ या मन्तव्य) को वेदार्थ से अधिक विस्तृत (महत्त्वपूर्ण) मानता हूँ। सभी वेद सदैव पुराणों पर स्थिर रहते हैं। वेद अल्पन्न से इसिलए डरता रहता है कि वह उसे (वेद को) हानि पहुँचा देगा। वेद में न तो ग्रहसंचार (ग्रहों की गतियाँ) हैं, न (धार्मिक कृत्यों के लिए) उचित कालों को बताने वाली शुद्ध गणनाएँ हैं, न तिथिवृद्धि या तिथिक्षय पर कोई विचार है और न (उसमें) पर्वों (अमावस्या, पूर्णिमा आदि), ग्रहों आदि पर विशिष्ट निर्णय ही है। इन विषयों पर प्राचीन काल में निर्णय (या निश्चय) इतिहास एवं पुराणों में लिखा गया है। जो वेद में नहीं देखा गया है वह स्मृतियों में लिखत है, और जो उन दोनों (वेदों एवं स्मृतियों) में नहीं दिखाई देता वह पुराणों में उद्घोषित है। जो वेदों द्वारा घोषित है और जो उपांगों द्वारा घोषित है, वह स्मृतियों एवं पुराणों द्वारा घोषित है। जो व्यक्ति पुराणों को किसी अन्य रूप में देखता है वह तिर्यग्योनि में उत्पन्न होगा।" और देखिए स्कन्द (प्रमासखण्ड, २।९०-९२)। नारदीय (१।१।५७-५९) में पुन: आया है, 'जो दुष्ट व्यक्ति पुराणों को अर्थवाद के रूप में (प्रशंसात्मक या निन्दात्मक कथन के रूप में) लेते हैं उनके सभी पुण्य नष्ट हो जाते हैं, जो दुष्ट व्यक्ति उन पुराणों को, जो कर्मों के बुरे-प्रमावों को नष्ट करने वाले होते हैं, अथर्वाद कहते हैं, वे नरक में जाते हैं।"

(विष्णु ३।६।२७) कल्पतर (ब्रह्मचारि०,पृ०२) एवं हेमाद्रि (व्रत, भाग १,पृ० १८) एवं कृ० र० (पृ०२७) द्वारा उद्धृत किये गये हैं। निरवसित का अर्थ है बहिब्कृत, देखिए पाणिनि—-'शूद्राणामनिरवसितानाम्' (२।४। १०) एवं इस पर महाभाष्य।

२४. पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराषमाः। तैर्राजतानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः॥ समस्तकर्म-निर्मूलसाषनानि नराषमाः। पुराणान्व्यर्थवादेन (पुराणान्यर्थवादेन ?) ब्रुवन् नरकमञ्नुते॥ नारदीय (१।१।५७-५९)

अर्थवादाधिकरण जैमिनि (१।२।१-१८) में है। निम्नोक्त वैदिक वचन हैं---'सोरोदोद्यदरोदीत्तद्रुद्रस्य खद्रत्यम्' (तै० सं० १।५।१), 'स आत्मनो वपामुदिक्खदत्' (तै० सं० २।१।१), 'देवा वै देवयजनमध्यवसाय दिशो -त्र प्राजानन्' (तै० सं० ६।१।५।१), 'तरित ब्रह्महत्यांऽयोऽक्वमेधेन यजते' (तै० सं० ५।३।१२।२), 'न पृथिव्यामिन- इचेतव्यो नान्तरिक्षे न दिवि' (तै० सं० ५।२।७)। प्रक्त है: 'क्या इन वचनों को शाब्दिक रूप में लिया जाय, या

# वर्मशास्त्र पर पुराणों के प्रभाव का कारण

258

पुराणों ने लोगों के घार्मिक कृत्यों, व्यवहारों एवं आदर्शों में कतिपय महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। सर्वसे अधिक पुराणों का विशिष्ट विचार एवं सार है थोड़े प्रयत्न से ही महान् पुण्यों एवं प्रतिफलों की प्राप्ति । विष्णुपुराण (६।२) में आया है कि मुनियों ने व्यास से प्रश्न पूछा—'किस युग में थोड़ा-सा धर्म मी बड़े पुण्यों की उत्पत्ति करता है ?' व्यास गंगा में स्नान कर रहे थे, वे बाहर आकर बोले, 'शूद्र अच्छा है, किल अच्छा है' और वे पुनः नदी में डूब गये; पुनः बाहर निकल कर बोले, 'स्त्रियाँ अच्छी हैं और घन्य हैं; उनसे बढ़कर अन्य कौन घन्य है ?' जब वे स्नान और प्रातःकियाएँ सम्पादित कर चुके तो मुनियों ने उनसे कलि, शूद्रों एवं नारियों के अच्छे एवं घन्य होने का कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया—"कोई भी व्यक्ति कलियुग में एक दिन में तपों, ब्रह्मचर्य एवं जप से उतना ही पुण्य कमा लेता है जितना कृतयुग (सत्ययुग) में १० वर्षों में, त्रेता में एक वर्ष में और द्वापर में एक मास में प्राप्त होता था। अतः मैंने किल को उत्तम कहा। किल में व्यक्ति केवल केशव के नाम के लगातार कथन से जो प्राप्त करता है वह कृतयुग में गम्मीर घ्यान से, त्रेता में यज्ञों से तथा द्वापर में पूजा से प्राप्त होता है। मैं किल से इसीलिए प्रसन्न हूँ कि इसमें व्यक्ति अंल्प प्रयास से ही घर्म की महत्ता प्राप्त कर लेता है। तीन उच्च वर्णों के लोग कठिन नियमों के पालन के उपरान्त वेदों का अध्ययन करते हैं, पुनः उन्हें यज्ञ करने पड़ते हैं जिनमें अर्थ की आवश्यकता पड़ती है; यदि वे अपने कर्त्तव्य उचित ढंग से नहीं करते तो वे पाप के भागी होते हैं, वे मनचाहा न तो खा सकते हैं और न पी सकते हैं प्रत्युत वे भोजन-सम्बन्धी कतिपय नियमों के पालन पर आधारित रहते हैं; द्विज लोग बहुत कष्ट के उपरान्त उच्च लोकों की प्राप्ति करते हैं; शूद्र तीन वर्णों की सेवा करके उत्तम लोकों की प्राप्ति करता है; उसे पाकयज्ञों (विना मन्त्रों वाले) का अधिकार है, अतः वह द्विज की अपेक्षा अधिक धन्य है। उसे मोजन-सम्बन्धी कठोर नियमों का पालन नहीं करना होता और तभी मैंने उसे उत्तम या अच्छा कहा। नारी भी विचार, शब्द (वचन) एवं कर्म द्वारा अपने पति की सेवा करके बहुत कम कष्ट के साथ उन लोकों की प्राप्ति करती है जिन्हें उसका पति बहुत प्रयास एवं कष्ट करके प्राप्त करता है, इसी से मैंने तीसरी बार यह कहा कि स्त्रियाँ घन्य हैं। कल्प्रिया में घर्म की प्राप्ति थोड़ा कष्ट उठाने से हो जाती है और लोग अपने आत्मा की विशेषताओं के जल से अपने पापों को घो लेते हैं, शूद्र लोग द्विजों की सेवा करके तथा स्त्रियाँ अपने पतियों की सेवा करके वही फल पाती हैं। इसी से मैंने इन तीनों को धन्य कहा।" यही बात ब्रह्मपुराण (२२९।६२-८०) में भी है। और देखिए विष्णुपु० (६।२।१५-३० एवं ३४-३६)। विष्णुपुराण का कथन है कि व्यक्ति को उस समाज में, जिसमें वह जन्म लेता है, अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए, या जो कार्य उसने अपने हाथ में लिया है उसे करना चाहिए; जो व्यक्ति ऐसा करता है वह चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, उच्च स्प्रेकों की प्राप्ति करता है। यही बात गीता (१८।४५-४६) में भी है। भें वेदों, जैमिनिसूत्रों, वेदान्तसूत्रों के सदृश प्राचीन ग्रन्थों ने इस बात पर कभी भी विचार नहीं किया कि स्त्रियाँ एवं शूद्र किस प्रकार आध्यात्मिक जीवन एवं अन्तिम सुन्दर गर्ति प्राप्त कर सकते हैं। वेदान्तसूत्र (१।३।३४-३८) ने शूद्र को वेद एवं उपनिषदों के अध्ययन से वंचित माना है। बुद्ध के उपदेश कुछ दूसरे थे। उनके अनुसार सभी लोग, चाहे जिस वर्ण या जाति के हों, दु:खों से छुटकारा पा सकते हैं। अतः शुद्रों का ध्यान बौद्ध धर्म की ओर अधिक गया। भगवद्गीता एवं पुराणों ने भारतीय समाज के दृष्टिकोण को परिवर्तित

इनका कोई अर्थ है ? उत्तर है : 'विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः' (जै० १।२।७), अर्थात् ये प्रशंसात्मक या 'स्तुति रूप हैं और केवल विधियों की प्रशंसा के लिए उनके अंग हैं।

२५. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।...यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वभिदं ततम् । स्वकर्मणा तमस्यर्च्यं सिद्धिं बिन्दित मानवः।। भगवद्गीता (१८।४५-४६)।

कर दिया, छोटे या बड़े, सभी को उच्च आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने का अधिकार हो गया। जो व्यक्ति सामाजिक कर्त्तव्य को समझकर अपना काम करता जाय और सांसारिक फलों के पीछे न पड़े और अपने सभी कर्मों को मगवान् के नाम सम्पित कर दे, वह आध्यात्मिक जीवन की उच्चता का अधिकारी हो जाता है। पद्मपुराण में व्यास ने युधिष्ठिर से कहा है— 'कल्युग में मनु द्वारा एवं वेदों द्वारा व्यवस्थित नियमों का पालन असम्भव है। एक कर्म्य जो सब को करना चाहिए, वह एकादशी-व्रत है जो मास में दो बार किया जाना चाहिए। यह वड़ा सरल है, इसमें अल्प धन लगता है, बहुत कम क्लेश होता है, किन्तु महाफलदायक है, और यह सभी पुराणों का सारभूत है। व्यक्ति को पवित्र होना चाहिए और द्वादशी को पुष्पों से केशव-पूजा के उपरान्त सर्वप्रथम ब्राह्मणों को खिलाकर तब स्वयं खाना चाहिए। जो लोग स्वर्ग-प्राप्ति चाहते हैं, उन्हें ऐसा व्रत जीवन मर करना चाहिए। यहाँ तक कि एका-दशी-व्रत करने वाले पापी, दुराचारी एवं धर्मवर्जित लोग भी यमलोक (नरक) नहीं जाते' (पद्म ६।५३।४-९)। सूतसंहिता (१।७।२२) में आया है कि 'सत्य ज्ञान (आत्म-ज्ञान) की प्राप्ति का प्रयत्न सभी कर सकते हैं; (संस्कृत के अतिरिक्त) अन्य माथा द्वारा और अधिक समय के प्रयास से (निम्न श्रेणी के लोगों का) कल्याण ही होगा।' इससे प्रकट होता है कि पुराणों ने सब के समक्ष उन सरल विधियों एवं साधनों को रखा जिनके द्वारा लोग इस लोक के उपरान्त सुन्दर गित प्राप्त कर सकें।

बौ॰ घ॰ सू॰ (२१४।३०), स्मन् (३।२६) एवं विसष्ठ (११।२८) में आया है कि श्राह्म में बहुत-से ब्राह्मणों को नहीं आमन्त्रित करना चाहिए, क्योंकि बड़ी संख्या से इन पाँचों की हानि होती है, यथा—अतिथियों का उचित सम्मान, स्थान एवं काल का औवित्य, स्वच्छता तथा योग्य (सुपात्र) ब्राह्मणों की प्राप्ति। अनुशासनपर्व (९०।२) अविद में आया है कि देवों की पूजा में ब्राह्मणों के ज्ञान, वंश एवं चित्र की परीक्षा का विशेष प्रयास नहीं करना चाहिए, किन्तु पितरों के श्राद्ध में इस प्रकार की परीक्षा न्यायसंगत है। पुराण इन दोनों व्यवस्थाओं के विरोध में जाते हैं। वे श्राद्धकर्म में कृपणता के बड़े विरोधी हैं। वे नहीं चाहते कि लोग श्राद्ध, एकादशी जैसे व्रतों में कंजूसी प्रकट करें। विष्णुपुराण ने पितरों द्वारा कहे गये ९ श्लोक दिये हैं (३।१४।२२-३०) जिनमें दो का अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है—'क्या वह मितमान् एवं घन्य व्यक्ति हमारे कुल में जन्म लेगा जो कृपणता (वित्तशाठ्य) न प्रदिशत कर हमें पिण्ड देगा और यदि वह सम्पत्तिवान् है तो क्या हमारे लिए ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, महायान, घन

२६. सित्त्रयां देशकालौ च ज़ौचं बाह्मणसम्पदः। पञ्चैतान् विस्तरो हिन्त तस्माञ्चेहेत विस्तरम्।। मनु (३।२६); कूर्मपुराण (२।२२।२७); बौ० घ० सू० (२।४।३०); विसष्ठ (११।२८)। अन्तिम दो ग्रन्थ चौथे पाद को 'तस्मात्तं परिवर्जयेत्' ऐसा पढ़ते हैं।

२७. ब्राह्मणान्न परीक्षेत क्षत्रियो बानधर्मवित् । दैवे कर्मणि पित्र्ये तु न्याय्यमाहुः परीक्षणम् ।। अनुशासनपर्व (९०।२); हे० (श्राद्ध,पृ०५११ में उद्धृत); दैवे कर्मणि ब्राह्मणं न परीक्षेत् । प्रयत्नात्पित्रये परीक्षेत । विष्णुध० (८२।१-२); न ब्राह्मणान् परीक्षेत सवा देये तु मानवः । दैवे कर्मणि पित्रये च श्रूयते वै परीक्षणम् ।। वायु० (८३।५१) ।

२८. अपि धन्यः कुले जायावस्माकं मितमान्नरः। अकुर्वन् वित्तशाठ्यं यः पिण्डान्नो निर्विपिष्यति॥ रत्नं वस्त्रं महायानं सर्वभोगादिकं वसु। विभवे सित विश्रेभ्यो योऽस्शानुद्दिश्य दास्यित॥ विष्णु० (३१४।२२-२३), वराह० (१३।५०-५१: 'सर्वं तोयादिकम्' २४-३०) जो श्राद्धिकयाकौमुदी द्वारा उद्धृत एवं व्याख्यायित हुए हैं।

तथा अन्य भोगादिक सामग्री देगा ?' पद्म (१।९।१८१) भें भें आया है कि वित्तशाठ्य के त्याग से पितरों को तृष्ति प्राप्त होती है। मत्स्य (५६।११) में आया है कि कृष्णाष्टमीव्रत में कंजूसी नहीं प्रदर्शित करनी चाहिए। पद्म में आया है कि जो धनवान् व्यक्ति एकादशी पर जागर को कंजूसी के साथ मनाता है वह अपना आत्मा खो बैठता है (६।३९।२१)। ब्रह्म (१२३।१७४) के सामान्य रूप से कहा है कि जो व्यक्ति धार्मिक कृत्य वित्तशाठ्य (कृपणता) से करता है वह पातकी है।

मनु (३।१४९) ने व्यवस्था दी है कि देवों के सम्मान में किये जाने वाले कृत्य में घार्मिक व्यक्ति को चाहिए कि वह मोजन के लिए निमन्त्रित किये जाने वाले ब्राह्मणों की जाँच न करे, किन्तु पितरों के श्राद्ध में ब्राह्मणों की योग्यता (पात्रता) की जाँच अवश्य करनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि देवपूजा में कोई मी बुलाया जा सकता है। हमें मनु (३।१२८) के सामान्य नियमों पर ध्यान देना चाहिए। देवों या पितरों के कृत्यों में कृत्यकर्ता को चाहिए कि वह श्रोतिय (वेदज्ञ ब्राह्मण) को ही भोजन दे। मनु ने ३।१४९ में जो कहा है उसका अर्थ यह है कि देवों के कृत्यों में कुल आदि का गम्भीर परीक्षण आवश्यक नहीं है।

वायु (८२।२७) में आया है कि गया में ब्राह्मणों के कुल, शील, विद्या एवं तप की परीक्षा नहीं की जानी चाहिए। वराह (१६५।५५ एवं ५७) में आया है कि मथुरा के ब्राह्मण देवता के समान हैं, मथुरा का वह ब्राह्मण जो एक वेद-मन्त्र (ऋचा) भी नहीं जानता, अन्य स्थान के उस ब्राह्मण से उत्तम है जो चारों वेदों का ज्ञाता हो। पर पद एवं स्कन्द (काशीखण्ड ६।५६-५७) में आया है कि तीथों पर ब्राह्मणों का परीक्षण नहीं होना चाहिए और मनु का कथन है कि तीथों के अन्नेच्छुक ब्राह्मणों को मोजन दिना चाहिए। पर

यह सम्भव है कि वायु, वराह एवं पद्म के उपर्युक्त वचन पश्चात्कालीन क्षेपक हों। जब बौद्ध धर्म अपनी पराकाष्ठा पर था तो बौद्ध साधुओं की लम्बी जमातें लोगों द्वारा भोजन पाती थीं। जब १२ वीं एवं १३ वीं शितयों के उपरान्त बौद्धधर्म मारत से विलुप्त हो गया तो लोगों में एक विश्वास मर गया था कि दिद्ध ब्राह्मणों को भोजन देना पुण्य कार्य है, जैसा कि पूर्व काल में बौद्ध साधुओं को खिलाया जाता था, और पुराणों ने केवल सामान्य जनता के मनोभावों को ही व्यक्त कर दिया। उन दिनों सामान्य जनता में ऐसा विश्वास मर गया था, नहीं तो क्षेपकों के आ जाने से ही लोग वैसा न करते। पश्चिम एवं पूर्व के लेखक, १९ वीं एवं २० शती में प्रचलित धारणाओं पर आधारित हो पुराणों में व्यवस्थित ब्राह्मणों के लिए बने नियमों के विश्द्ध अति कठोर एवं अपरिमित निन्दा-सूत्र कह डालते हैं, ऐसा करके वे एक सहस्र या अधिक वर्षों पूर्वप्रणीत पुराणों के लेखकों के प्रति अन्याय करते हैं। ऐसे लेखकों को मध्यकालीन दशाओं, विचारों एवं ब्राह्मणों के कमों की तुलना उन पोपों, ईशाई पादिरयों,

- २९. वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमाहरन्। पद्म (१।९।१८१); घनवान् वित्तशाठ्येन यः करोति प्रजागरम्। तेनात्मा हारितो नूनं कितवेन दुरात्मना।। पद्म (६।३९।२१)।
  - ३०, वित्तशाठ्येन यो धर्मं करोति स तु पातकी। ब्रह्म (१२३।१७४)।
- ३१. न विचार्यं कुलं शीलं विद्या च तप एव च। पूजितेस्तैस्तु राजेन्द्र मुक्ति प्राप्नोति मानवः ॥ वायु (८२। २७); अनृग् वै माथुरो यत्र चतुर्वेदस्तथापरः । वेदैश्चतुभिनं च स्यान्मायुरेण समः क्वचित् ॥...मथुरायां ये वसन्ति विष्णुरूपा हि ते नराः ॥ वराह (१६५।५५ एवं ५७)।
- ३२. तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन। अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरक्षवीत्।। पद्म ५।२९।२१२। ध्रिशा० कि० कौ० ने प्रथम अर्थाली को ब्रह्म० (पृ० ३४) एवं देवीपुराण (पृ० २६६) से उद्धृत किया है।

885

इन्क्वीजिशनों (धार्मिक अत्याचारों) एवं यूरोप के मठीय विधानों से करनी चाहिए जो १० वीं शती से लेकर १५ वीं शती तक प्रचलित थे। तुलना करने से पता चलेगा कि यूरोप की परिस्थितियाँ उन शितयों में मारतीय परिस्थिति से कई गुनी भयंकर एवं हीन थीं। ३३

उपर्युक्त सिद्धान्तों के फलस्वरूप पुराणों ने बड़े बल के साथ दानों (विशेषतः मोजन का दान), पवित्र स्थानों के जलों में स्नान एवं तीर्थ-यात्राओं, व्रतों, अहिंसा, मिक्त, देवनाम-जप, श्राद्ध आदि की व्यवस्थाएँ की हैं। इन पर हम संक्षेप में यहाँ वर्णन करेंगे।

पुराणों ने पितत्र वैदिक यज्ञों तथा तीर्थयात्राओं एवं स्नानों में तुलना स्थापित की है। वनपर्व (८२।१७ आदि) में आया है—"मुनियों द्वारा प्रवर्तित पूत यज्ञ दिर्द्ध व्यक्ति द्वारा सम्पादित नहीं हो सकते; यज्ञों में बहुत-से उपकरणों, माँति-माँति के सामानों की आवश्यकता होती है जिन्हें केवल राजा या घनिक व्यक्ति ही संजो सकते हैं, दिर्द्ध व्यक्तियों का कोई अन्य सहारा नहीं है, उन्हें अपने पर ही निर्भर रहना पड़ता है। तीर्थं स्थानों में जाने से पुण्य मिलता है और यह यज्ञों के सम्पादन से अपेक्षाकृत विशिष्ट है। जो पुण्य तीर्थं स्थानों में जाने से प्राप्त होता है वह अग्निष्टोम जैसे यज्ञों से, जिनमें प्रमूत दक्षिणा-दान किया जाता है, नहीं प्राप्त होता।"

अनुशासनपर्व एवं पुराणों ने वतों एवं उपवासों की महत्ता इसी महान् सिद्धान्त के आघार पर की है। अनुशासनपर्व (१०७।५-६) में आया है कि पुण्य के मामले में उपवास यज्ञों के बराबर हैं। पद्मपुराण (३।२१। २९) में उपवास यंज्ञों से श्रेष्ठ गिने गय़े हैं, ऐसा आया है— 'विष्णुव्रत श्रेष्ठ होता है; एक सौ वैदिक यज्ञ इसके बराबर नहीं हो सकते। एक यज्ञ करके व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त कर सकता है, किन्तु जो कार्तिकव्रत करता है, वह वैकुष्ठ (विष्णु-लोक) जाता है।''

#### दान

सर्वप्रथम हम दान.को लेते हैं। ऋग्वेदिक काल से ही दानों की प्रशस्तियाँ गायी जाती रही हैं। हमने इस

३३. यूरोप के प्रत्येक देश में, विशेषतः स्पेन में इन्क्वीजिशन-सम्बन्धी असम्य व्यवहारों एवं अत्याचारों के विषय में देखिए डब्लू० एच० रूल कूँका प्रन्य 'हिस्ट्री आव इन्क्वीजिशन', १८६८ (विशेषतः पृ० २९८-३१४ जहाँ 'गोवा में किये गये इन्क्वीजिशन' की चर्चा है), राफेल सबिटनी का प्रन्य 'टाक्वेंमेडा एण्ड दि स्पेनिश इन्क्वीजिशन' (आठवाँ संस्करण, १९३७), 'वि स्पेनिश इन्क्वीजिशन' (प्रो० ए० एस्० टरर्बावले, होम पूनिवसिंटी लाइब्रेरी, १९३२ द्वारा लिखित) जहाँ पृष्ठ २३५ पर लेखक महोदय दुःखित हो कहते हैं कि स्पेन में पवित्र कार्यालय (होली आफिस) द्वारा भयंकर नाश के दृश्य उपस्थित किये गये। और देखिए कंम्बिज मेडिएवल हिस्ट्री (जिल्व ६, अध्याय २०) का अध्याय 'हेरेसीज एण्ड दि इन्क्वीजिशन दि मिडिल एजेज' (१९२९, पृ० ६९९-७२६) तथा वहीं, जिल्व ६, पृ० ६९४-६९५ जहाँ यह प्रविश्वत है कि 'इंडल्जेंसेज़' (अर्थात् पापों के लिए क्षमा-प्रदान एवं स्वर्ग में प्रवेश के लिटिफिकेट) नियमानुकूल लाइसेंसघारी व्यापारियों द्वारा बेचे जाते थे और यह व्यवस्था ईसाई चर्च के उच्च मिन्त्रियों द्वारा की गयी थी, किसी को अपराघ-स्वीकरण एवं प्रायश्वित करने की आवश्यकता नहीं थी!!

३४ इदमंगिरसा प्रोक्तमुपवासफलात्मकम् । विधि यज्ञफलैस्तुल्यं तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ अनु० (१०७।५-६) । श्रेष्ठं विष्णुवतं विप्र तत्तुल्या न शतं मखाः । कृत्वा ऋतुं व्रजेत्स्वर्गं बैकुष्ठं कार्तिकब्रती ॥ पद्म (३।२१।२९) । यही बात पद्म (६।९६।२५) में भी बुहरायी गयी है।

महाग्रन्थ के खण्ड २ में दान-सम्बन्धी बातों की चर्चा कर दी है। महाभारत ने बहुत-से स्थानों पर (विशेषतः अनु-शासनपर्व में) एवं पुराणों, यथा मत्स्य (अध्याय ८२-९२ एवं २७४-२८९), अग्नि (अध्याय २०८-२१३) वराह (९९-१११), पद्म (५।२१।८१-२१३, जो मत्स्य के अध्याय ८३-९२ से सर्वथा मिलता है), पद्म (२।३९-४० एवं ९४, ३।२४), कूर्म (२।२६) ने दान पर विस्तार के साथ उल्लेख किया है। किन्तु यहाँ हम दान के केवल दो विषयों पर, यथा--मोजन-दान एवं ब्राह्मणों को दिये जाने वाले दान पर प्रकाश डालेंगे। ऋग्वेद ऐसे व्यक्ति की मर्त्सना करता है और उसे पापी कहता है जो न तो देवों को मोजन देता है और न अपने मित्रों को, और केवल अपना पेट भरता है।<sup>३५</sup> ऐत० ब्रा० एवं तै० ब्रा० ने अन्न (मोजन) को प्राण कहा है।<sup>३६</sup> बौ० घ० सू० में आया है—''सभी प्राणी अन्न पर निर्मर रहते हैं, वेद का कथन है कि 'अन्न प्राण है', अतः अन्न दूसरे को देना चाहिए, अन्न सर्वश्रेष्ठ हिव है।"<sup>३७</sup> मनु एवं वि० घ० सू० में आया है—'जो केवल अपने लिए मोजन पकाता है (देवों एवं अन्य लोगों के लिए नहीं) वह केवल पाप खाता है।' पद्म में बहुत सुन्दर ढंग से एक वचन आया है—'जो लोग सदा लूले-लँगड़े, अन्घे, वूढ़े, दुखियों, असहायों तथा दरिद्रों को खिलाते हैं, वे स्वर्ग में सदैव सुख पाते हैं; कूपों एवं तलावों के निर्माण से अक्षय पुण्य प्राप्त होता है, जहाँ जलवासी जीव एवं पृथिवी पर विचरण करने वाले पशु इच्छा होने पर जल पीते हैं, क्योंकि जल प्राणियों का जीवन है और प्राण जल में केन्द्रित है।' ब्रह्म (२१८।१०-३२), पद्म (५।१९।२८९-३०७) एवं अग्नि (२११।४४-४६) में विद्वान् ब्राह्मणों को मोजन (अन्न) बाँटने की बड़ी प्रशंसा गायी गयी है। 'सभी दानों में अन्न दान सर्वश्रेष्ठ कहा गया है; अन्न ही मनुष्यों का जीवन है, इसी से सभी जीव उत्पन्न होते हैं; लोक अन्न पर ही निर्मर हैं, इसी से अन्न की प्रशंसा है; अन्न-प्रदान से व्यक्ति स्वर्ग-प्राप्ति करता है। जो व्यक्ति न्यायपूर्वक प्राप्त किये हुए अन्न को वेदज्ञ ब्राह्मणों को देता है वह सभी पापों से मुक्ति पा जाता है' (ब्रह्म, २१८।१०-१३, २२-२३)। अग्नि का कथन है, 'हाथियों, अश्वों, रथों, पुरुष दासों या नारी दासियों तथा घरों के दान अन्न दान के सोलहवें अंश को (पुण्य में) भी नहीं पा सकते। वह व्यक्ति जो महापाप कर बैठता है और उसके वाद यदि अन्न दान करता है तो वह पापों से स्वतन्त्र हो जाता है और अक्षय लोकों की प्राप्ति करता है' (२११।४४-४६)। कुर्म में आया है, 'ब्रह्मचारी को श्रद्धा से प्रतिदिन अन्न देना चाहिए (जब वह मिक्षा माँगने आये), इससे सभी पापों से मुक्ति मिलती है और ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती हैं (२।२६।१७)। इसी प्रकार पद्म (५।१५।१४०-१४१) में आया है-'जो व्यक्ति यतियों को पात्रपूर्ण मिक्षा देता है, वह सभी पापों से विमुक्त हो जाता है और किसी दुर्गति को नहीं पाता।' बहुत प्राचीन कालों से ही गृहस्य को पंच आह्निक यज्ञ करने पड़ते थे, जिनमें दो थे बलिहरण एवं अतिथि-सत्कार (मनु ३।७०); उन लोगों के लिए जो जातिच्युत होते थे, पाप-रोगी होते थे तथा चाण्डालों, कुत्तों, कौओं, यहाँ तक कि कृमिओं को भूमि पर भोजन रख दिया जाता या

३५. मोधमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वश्र इत्स तस्य । नार्यमणं पुष्यित नो सखायं केवलाघो भवित केवलादी ॥ ऋ॰ (१०।११७।६)।

३६. अन्नं प्राणमन्नमपानमाहुः। तै० बा० २।८।८।३; अन्नं ह प्राणः। ऐ० बा० (३३।१) में, जहाँ नारव ने पाँचवीं गाथा कही है।

३७. अन्ने श्रितानि भूतानि अन्नं प्राणमिति श्रुतिः। तस्मावन्नं प्रवातव्यमन्नं हि परमं हविः।। बौ० घ० सूर्वे (२।३।६८)।

३८. अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्यात्मकारणात् । मनु ३।११८, विष्णुघमंसूत्र ६७।४३।

888

(आप० घ० सू० २।४।९।५; मन् ३।९२)। इन व्यवस्थाओं के पीछे थी सार्वमौम दया, दाक्षिण्य आदि सुन्दर मनो-मावों की अभिव्यक्ति, सभी सामाजिक वर्गों, नियमों एवं एक-दूसरे के विरोध में जाने वाली भावनाओं के रहते हुए भी एक भावना सजग थी कि एक ही प्रकाश सभी स्थानों में व्याप्त है जो निम्न-से-निम्न जन्तुओं को प्रकाशित करता रहता है और सम्पूर्ण विश्व को एक बन्ध-श्रेणी देखता है। यही आदर्श सदैव रहा है, किन्तु अब मोजन-अभाव, अधिक दामों एवं अन्न-नियन्त्रण नियमों के कारण प्राचीन दया-दाक्षिण्य-सम्बन्धी भावनाएँ विलुप्त होती जा रही हैं।

यह द्रष्टव्य है कि सभी ब्राह्मण पुरोहित नहीं थे और आघुनिक काल में भी यही बात पायी जाती है। इसी प्रकार सभी हिन्दू मन्दिरों एवं तीर्थों में सभी पुजारी ब्राह्मण नहीं हैं। मन्दिरों के पुजारियों की परम्परा एवं संस्था अपेक्षाकृत पश्चात्कालीन है और आज भी ऐसे पुजारी हीन दृष्टि से देखे जाते हैं। मनु (३।१५२) में आया है कि देवलक (वह ब्राह्मण जो किसी मन्दिर की मूर्ति की पूजा करके अपनी वृत्ति चलाता है), यदि उसने तीन वर्षों तक लगातार वही कार्य किया है तो श्राद्ध में निमन्त्रित होने के लिए अयोग्य है, देव-यज्ञ में भी उसे नहीं रखा जाता। आरम्मिक काल से ही ब्राह्मणों के समक्ष यही आदर्श था कि वे दरिद्र रहें, उनका जीवन सादा और विचार उच्च रहे, वे बन-लिप्सा में न पढ़ें, वे वेद एवं शास्त्रों के अध्ययन में मित रखें तथा उच्च संस्कृति वाले हों और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण की परम्परा आगे बढ़ाते जायें। याज्ञ० (१।२१३) जैसी स्मृतियों में आया है कि यदि ब्राह्मण धार्मिक दान पाने योग्य भी हो तब भी उसे दान अस्वीकार कर देना चाहिए, ऐसा करने से उसे वहीं लोक प्राप्त होता है जो दाता के लिए निश्चत होता है। ब्राह्मणों में इसी प्रकार के उच्च आदर्शों के संरक्षण के लिए याज्ञ० (१।३३३) ने व्यवस्था दी है कि राजा गायों, सोने एवं भूमि का दान करे और विद्वान् ब्राह्मणों को घर दे तथा उन्हें विवाह आदि के उपकरण (कुमारियाँ, विवाह-त्र्यय आदि) दे। आजकल लोग बहुघा प्राचीन मारत की संस्कृति एवं साहित्यक मर्यादा-परम्पराओं की चर्चा करते हैं। किन्तु किसने इस विशाल वैदिक एवं संस्कृत साहित्य की रचना की; उसकी रक्षा की और सहस्रों वर्षों तक उसका प्रचार-प्रसार किया ? उत्तर यहीं होगा कि यह कुछ ब्राह्मणों के कारण ही सम्मव हो सका, जो सहस्रों वर्षों तक प्राचीन आदर्शों के साथ चलते रहे।

यदि ऋग्वेद को आर्य माषा का सबसे प्राचीन साहित्यिक स्मारक माना जाय तो यह प्रश्न हो सकता है कि किन लोगों ने इसके दस सहस्रों से अधिक मन्त्रों को अद्वितीय ढंग से सुरक्षित रखा कि कहीं भी केवल वाक्-प्रेषणी-यता के रहते हुए (कानों कान आते हुए) भी कोई भी अन्तर नहीं पड़ा और एक ही पाठ सुरक्षित रहा? तो उत्तर यही होगा कि कह दुष्कर कार्य ब्राह्मणों ने ही किया। इस कार्य में ब्राह्मणों का उत्सर्ग कितना महान् रहा है, इसकी कल्पना मात्र से हमारे रोम-रोम पुलकित हो उठते हैं। ब्राह्मणों को वेद का अध्ययन उसके अंगों के साथ करना पड़ता था, जिसके पीछे कोई लाम का उद्देश्य निहित नहीं था। वे ऐसा अपना कर्त्तव्य समझ कर करते थे, वे वेद का अर्थ समझाने के लिए उसे तथा अन्य अंगों को पढ़ाते थे, पहले से कोई शुल्क नहीं लेते थे। वे अपने कुल को इन्हीं वेद-वेदांगों में लगाते थे, यज्ञ करते थे और स्वयं दान करते थे। उनकी जीविका का साधन था यज्ञों एवं धार्मिक कृत्यों में पौरोहित्य करना एवं दान लेना। ये साधन विभिन्न प्रकार के, योग्यतानुकूल एवं कष्ट-साध्य रहे होंगे।

ब्राह्मणों को कोई घामिक कर उगाहने का अधिकार नहीं था, जैसा कि पश्चिमी देशों में होता था। रेंग्लिकन चर्च में पादिरियों की एक लम्बी पंक्ति पायी जाती है, वैसी बात ब्राह्मणों के विषय में नहीं थी। अतः ब्राह्मणों को बताया गया है कि वे अपनी जीविका के लिए राजा या घनिक व्यक्ति के पास जायें (गौतम रें।६३, 'योगक्षेमांर्यमीश्वरमिंघगच्छेत्')। यह द्रष्टव्य है कि बौद्धममें के प्रसार के पूर्व सूत्रों एवं स्मृतियों ने यही बात बलपूर्वक कही थी कि घार्मिक दान केवल सुपात्र ब्राह्मणों को, जो विद्वान् एवं सदाचारी होते हैं, देने चाहिए। और देखिए आपस्तम्ब धर्म सूत्र (२।६।१५।९-१०), विसष्ठ धर्म सू० (३।८, ६।३०), मनु (३। १२८, १३२, ४।३१), याज्ञ० (१।२०१), दक्ष (३।२६ एवं ३१)। सभी ब्राह्मण दान के अधिकारी नहीं माने जाते थे, जो गुणवान् होते थे वे ही पात्र कहे जाते थे। पात्र की कुछ परिमाषाएँ यहाँ दे देना ठीक होगा। अनुशासनपर्व (२२।३३-४१) ने योग्य (पात्र) ब्राह्मण के गुणों का वर्णन यों किया है—'ऐसे ब्राह्मणों को दान देना, जो कोघरिहत, घर्मपरायण, सत्यनिष्ठ एवं आत्मसंयमी होते हैं, महाफलदायक होता है। ऋषियों का कथन है कि वही ब्राह्मण 'पात्र' है जो चारों वेद पढ़ता है, (वेदों के) अंगों को पढ़ता है, जो छः प्रकार के कार्यों (यथा—मद्य-मांस से दूर रहना, मर्यादा पालन करना, पवित्र रहना, वेदाध्ययन, यज्ञ-सम्पादन, दान देना) में प्रवृत्त रहता है। केवल एक ब्राह्मण, जो प्रज्ञावान् हो, श्रोत्रिय (वेदज्ञ) हो, शीलवान् हो, अपने सम्पूर्ण कुल को वचा लेता है। किसी ब्राह्मण के विषय में ऐसा सुनकर कि वह गुणों से परिपूर्ण है, साधुसम्मति से अच्छा समझा जाता है, उसे दूर देश से मी बुलाना चाहिए और स्वागत करना चाहिए तथा सभी प्रकारों से उसे सम्मानित करना चाहिए।' याज्ञवल्क्य ने बहुत ही संक्षेप में पात्र ब्राह्मण की परिभाषी की है—'पात्रता केवल (वैदिक) अध्ययन से ही नहीं, केवल तपों से ही नहीं उत्पन्न होती; वही व्यक्ति पात्र (किसी घार्मिक दान का अधिकारी) समझा जाता है जहाँ ये दोनों (अर्थात् वेदाध्ययन एवं तप) तथा अच्छा आचरण परिलक्षित हो।" मनु का कथन है कि ऐसे ब्राह्मण को, जिसने वेदाध्ययन नहीं किया है, जो लालची है तथा प्रवञ्चक है, दान देना व्यर्थ है और दानकर्ता नरक में जाता है (४।१९२-१९४)। मगवद्गीता (१७।२२) ने कुपात्र व्यक्ति को दान देने की मर्त्सना की है और उसे तामस (तमस् से प्रभावित, अबोघता या भ्रम से उत्पन्न) माना है।

जब बौद्धधर्म पर्याप्त प्रचलित एवं प्रमावशाली सिद्ध हुआ तथा उसे राजाओं का आश्रय मी मिलने लगा तो आहाणों को बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ा। उन्हें ब्राह्मणों की संख्या पर्याप्त रूप में उच्च रखनी पड़ती थी, उन्हें उन ब्राह्मणों के लिए, जो वेदाध्ययन में लगे रहते थे, जीविका-साधन जुटाने पड़ते थे; इतना ही नहीं, उन्हें प्रचलित बौद्ध विचारों में कतिपय को यथासम्मव अपने ग्रन्थों में पचा लेना पड़ता था। प्रत्येक ब्राह्मण में स्वयं अपने वेद एवं उसके सहायक साहित्य में पाण्डित्य प्राप्त करने एवं उसे स्मरण रखने की योग्यता, बुद्धि एवं लगन नहीं मी हो सकती थी। यदि एक सौ ब्राह्मण कुलों पर यह मार सौंपा गया होगा तो उनमें केवल दस प्रतिशत कुल ही अपने वेद का पाण्डित्य प्राप्त कर सकते थे। किन्तु यह सदैव सम्मावना रही होगी कि जो स्वयं वेद के पण्डित नहीं थे, उनके कुछ पुत्र ऐसे थे जो वेद के प्रकाण्ड पण्डित रहे होंगे। अतः ब्राह्मणों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता पड़ती थी और उन्हें मोजन आदि दिया जाता था, नहीं तो उन्हें अपनी जीविका

३९. अनुशासनपर्व के कुछ इलोक ये हैं (२२।३३-४१)—अक्रोबना धर्मपराः सत्यनित्या वसे रताः। तादृशाः साधवो विप्रास्तेम्यो दत्तं महाफलम्।। सांगांश्च चतुरो वेदानधीते यो द्विजर्षभः। षड्म्यः प्रवृत्तः कर्मम्यस्तं पात्र-मृषयो विदुः।। प्रज्ञाश्रुताभ्यां वृत्तेन शिलेन च समन्वितः। तारयेत कुलं सर्वमेकोऽपीह द्विजोत्तमः।।. निशम्य च गुणोपेतं बाह्मणं साधुसम्मतम्।। दूरादानाय्य सत्कृत्य सर्वतश्चापि पूजयेत्।। श्लोक ३३, ३६, ३८, ४१; 'षडम्यः प्रवृत्तः' पर नीलकण्ठ की टीका यों है—'अनुपदोक्तः मधुमांसवर्जनमर्यादापालनशौचेः सह अध्ययनयागदानेम्यः, तान्यन्ष्ठातं प्रवृत्तः इत्यर्थः।'

४०. न विद्या केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्र वृत्तिमिमे चोभे ति पात्रं प्रकीर्तितम् ॥ याज्ञ० (१।२००) ।

कमाने में अपनी शक्ति एवं समय का उपयोग करना पड़ता और वेदाध्ययन आदि कार्य पिछड़ जाता। इन्हीं कारणों से कुछ पुराणों ने ब्राह्मणों को दान देने की बात पर लगातार बल दिया है।

जब अधिकांश पुराण लिखे गये थे उन दिनों बाह्यणों के समक्ष माँति-माँति की किठनाइयाँ एवं विरोधी शिक्तयाँ उपस्थित थीं। ई० पू० तीसरी शती से लेकर ई० उ० सातवीं शती तक बौद्ध घर्म को अशोक, किनिष्क एवं हुमें के समान राजाओं का आश्रय प्राप्त था। बौद्ध घर्म वास्तव में जाित के विरोध में क्रान्ति नहीं था, प्रत्युत वह यज्ञ-प्रणाली, वेद एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए वेद के मार्ग के विष्द्ध खड़ा था। बुद्ध ने कोई नवीन घर्म नहीं प्रवितित किया, प्रत्युत वे हिन्दू घर्म के एक बड़े सुधारक थे। उन्होंने नैतिक प्रयास, अहिंसा, सत्य आदि पर बहुत बल दिया, जो पहले से ही हिन्दू धर्म में समन्वित हो चुके थे और उसके प्रमुख अंग बन चुके थे और आज भी उसी प्रकार से बने हुए हैं। बनारस (वाराणसी) के पास सारनाथ में बुद्ध ने जो प्रथम उपदेश दिया, उसमें उन्होंने दो अतिरेकों (निरितशयों) को छोड़ देने की बात कही, यथा—'विषयों के पीछे पड़ा रहना एवं निरर्थक तपों काव्य-वहार', यही मध्यम मार्ग उन्हों सूझ पड़ा था जो उनके ज्ञान एवं निर्वाण का कारण बना। रें उन्होंने चार 'आर्यसत्यानि' (चार सत्यों) की व्याख्या की, यथा—दुःस, दुःस का कारण, अर्थात् तृष्णा (तण्हा) जिसे दुःस-समुदय मी कहा जाता है, दुःस-निरोध एवं दुःस-निरोधगामिनी पिटपदा, अर्थात् दुःस के निरोध के लिए मार्ग। रें अन्तिम को 'अष्टांगिक मार्ग' कहा जाता है, यथा—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकत्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् ध्यान। रें बुद्ध एवं उनके शिष्यों द्वारा ये सिद्धान्त सब के समक्ष रखे गये। ये विशेषतः उन शुद्धों को अधिक प्रमावित करते थे जिनकी सामाजिक स्थिति वैदिक एवं स्मृतियों के कालों में बड़ी

४१. देखिए वम्मचक्क-प्यवत्तन-मुत्त (वर्म के राज्य का प्रतिष्ठागन), सैन्नेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द ११

४२. यह ब्रष्टव्य है कि उपनिषदों एवं महाभारत में भी तृष्णा या काम के त्याग पर बल दिया गया है। देखिए—-यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः। अथ मत्यों अमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।। कठ० (६। १४); या दुस्त्यजा दुर्मतिभिया न जीर्यति जीर्यतः। यैषा प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।। वनपर्व (२।३६), अनुशासनपर्व ७।२१, ब्रह्माण्ड ३।६८।१००; यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्। तृष्णाक्षय-सुखस्यैत् कलां नार्हति षोडशीम्।। शान्ति० १७४।४६, वायु ९३।१०१, ब्रह्माण्ड ३।६८।१०३।

४३. देखिए धम्मचक्कप्पवत्तन-मुत्त (सैकेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द ११, पृ० १४७, जहाँ 'अष्टांगिको मागंः' दिया हुआ है। पालि शब्द ये हैं—सम्मा-दिट्ठि, सम्मा-संकल्पो, सम्मा-वाचा, सम्मा-कम्मन्तो, सम्मा-आजीवो, सम्मा-वायामो, सम्मा-तित (सम्यक् स्मृति), सम्मा-समाधि। और देखिए दोग्धनिकाय (पालि टेक्स्ट सोसायटी) जिल्द १, पृ० १५७; महावग्ग (ओल्डेनवगं), जिल्द १, पृ० १० (११६१८) एवं धम्मचक्क-प्पवत्तन-सुत्त (सारनाथ को बहिन विजरा द्वारा सम्पादित, पृ० ३): दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध, दुःखविरोधगामिनी पटिपदा के लिए देखिए महावग्ग (११६१९-२२), वही पृ० १०।ये चारों 'आर्यसत्यानि' अर्थात् चार श्रेष्ठ सत्य कहे जाते हैं क्योंकि वे आर्य (बुद्ध) द्वारा प्राप्त हुए थे। योगसूत्रभाष्य में व्याख्यायित चिकित्सा-शास्त्र एवं योग के चार प्रकार के सूत्रों से ये आर्यसत्यानि मिलते हैं: 'यथा चिकित्साशास्त्रं चतुर्ब्यूहम्—रोगो, रोगहेतुरागेग्यं भैषज्यमिति, एवमिदमपि शास्त्रं चतुर्ब्यूहमेव, तद्यथा—संसारः, संसारहेतुः, मोक्षः, मोक्षोपायः इति। तत्र दुःखबहुलः संसारो हेयः। प्रधानपुरुषयोः संयोगे हेयहेतुः। संयोगस्यात्यन्तिकी निवृत्तिहर्निम्। हानोपायः सम्यग्दर्शनम्। योगभाष्य (योगसूत्र २।१५)।

हीन थी। शूद्र के समक्ष वेद-पाठ वींजत था, शूद्र यज्ञ नहीं कर सकते थे और उस काल में वे तीन उच्च वर्णों की सेवा करते थे। मनु (८।४१३) में शूद्रों की यही स्थिति थी, अर्थात् वे ब्राह्मणों की सेवा करने को परमातमा द्वारा उत्पन्न किये गये थे। किन्तु यह स्थिति केवल आदर्श थी, या कार्योन्वित नहीं होती थी। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि सम्पूर्ण मारत बौद्ध हो गया था। लाखों प्राचीन हिन्दू धर्मावलम्बी थे। हाँ, इसका मय अवस्य था कि राज्याश्रय मिल जाने एवं सरल तथा आकर्षक उपदेशों के कारण बहुत-से लोग प्राचीन धर्म को छोड़ सकते थे।

जिन दिनों बौद्ध घर्म अपने उत्कर्ष की चोटी पर था, ब्राह्मणों को प्राचीन वैदिक घर्म के झण्डे को फहराते रखना था, इसके लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता था कि सामान्य जनता और यहाँ तक कि ज्ञानवान् लोग बौद्ध घर्म के चंगुल से बचे रहें और प्राचीन घार्मिक मार्ग को न छोड़ें। स्वयं बौद्ध घर्म ने अपने बहुत-से आदशौं एवं सिद्धान्तों में ईसा की प्रारम्भिक शित्यों एवं उनके उपरान्त भी बड़े-बड़े परिवर्तन कर दिये थे। बुद्ध के आरम्भिक सिद्धान्त व्यक्ति के अपने (व्यक्तिगत) प्रयास एवं निर्वाण के लक्ष्य तक सीमित थे। आरम्भिक बौद्ध ग्रन्थों में आत्मा के अस्तित्व का अस्वीकरण घोषित था और परमात्मा के विषय में कोई विचार-विमशं नहीं था। " यद्यपि बुद्ध ने निर्वाण के बारे में कहा, किन्तु उन्होंने उसकी परिभाषा नहीं की और न यही बताया कि निर्वाण-प्राप्ति के उपरान्त व्यक्ति की क्या स्थिति होती है। अश्वघोष ने निर्वाण की तुलना बुझी हुई ज्वाला से की है (सौन्दरनन्द, अध्याय १६।२८-२९)। बुद्ध के समय में कर्म-सिद्धान्त लोगों के मन में समाया हुआ था, अतः उन्होंने उसे ज्यों-का-त्यों अपना लिया, जो अबौद्धों को अनात्मा वाले बौद्ध सिद्धान्त के विपरीत लगता है। धम्म शब्द पालि 'घम्मपद' (यह शब्द 'मिलिन्द पन्हों' में प्रयुक्त हुआ है, अतः यह कृति ई० पू० दूसरी शती के पूर्व की है) में तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, यथा—(१) सत्य या कानून (नियम या व्यवहार) जो बुद्ध द्वारा उपदेशित हुआ, (२) वस्तु या रूप (आकार) तथा (३) जीवन का ढंग।

जैसा हमने ऊपर देख लिया है, बुद्ध द्वारा एवं उनके परिनिर्वाण के दो-एक शती बाद अनुयायियों द्वारा उपदेशित मौलिक बौद्धधर्म इस संसार के दुःखों से छुटकारा पाने या निर्वाण प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों के समक्ष एक कठोर नैतिक आचरण मात्र था। अति आरम्भिक बौद्धधर्म की तीन केन्द्रीय मान्यताएँ थीं, यथा—बुद्ध, धर्म एवं संघ नामक तीन रत्न या शरण, चार आर्य सत्य तथा अष्टांगिक मार्ग। धीरे-धीरे एक नया सिद्धान्त भी प्रकट हुआ। अप यह प्रचारित हुआ कि केवल अपने मोक्ष या निर्वाण के लिए प्रयत्न करना मात्र स्वार्थ है, स्वयं बुद्ध ने

४४. देखिए 'मिलिन्द पन्हों', सैकेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द ३५, पृ० ८८-८९, जहाँ इस सिद्धान्त के विषय में कि आत्मा नहीं है, विवेचन उपस्थित किया गया है। पृ० ५२०, ७१-७७ पर कम्म (कर्म) नामक बौद्ध सिद्धान्त एवं उस सिद्धान्त पर, जो जन्मे हुए नाम-रूप (नाम एवं आकार) कहता है न कि आत्मा, विवेचन है। सौन्दरनन्द (बिल्लियोथिका इण्डिका, १६।२८-२९) में आया है: 'दीपो यथा निर्वृत्तिमम्युपेतो नैवावनिं गच्छिति नान्तिरिक्षम्। दिशं न कांचिद्धिदिशं न कांचित् स्नेहअयात् केवलमेति शान्तिम्।। एवं कृती निर्वृतिमम्युपेतो नैव...कांचित् क्लेश-क्षयात् केवलमेति शान्तिम्।।'

४५. श्री एच० कर्न ने अपने ग्रन्थ 'मैनुअल आव बुढिज्म' (गुण्ड्रिस में, पृ० १२२) में कहा है कि बौढ़ों का महायानवाद भगवद्गीता का ऋणी है। मिलाइए 'लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः . . . सर्वभूतिहते रताः ॥' ५।२५, जो महायान सिद्धान्त से मिलता है।

सम्पूर्ण मानवता के लिए कृपालु होकर ४५ वर्षों तक लोगों में उपदेश किया कि वे निर्माण की प्राप्ति करें, अतः दौद्धों को अकेले अपनी मुक्ति (छुटकारा) की चिन्ता न कर कृपालु हो अन्य लोगों के छुटकारे की बात सोचनी चाहिए और ऐसा करने में बार-बार जन्म लेने को सन्नद्ध रहना चाहिए, अपने निर्वाण की चिन्ता नहीं करनी चाहिए और न संसार से ही डरना चाहिए। जिन लोगों ने इस नवीन दृष्टिकोण को अपनाया उन्होंने बुद्ध को देवत्व का रूप दिया और कहा कि सिद्धार्थ को कई बार जन्म लेकर सेवा करने, लोगों की सहायता करने आदि से बुद्धत्व प्राप्त हुआ और यह आचरण-मार्ग उत्तम है (महायान, बड़ा यान या वाहन या विधि या ढंग) तथा व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग व्यक्ति मात्र तक सीमित है, अर्थात् स्वार्थपूर्ण है (जो हीनयान, हीन वाहन या ढंग या विधि) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह दृष्टिकोण जो महायान के नाम से प्रचारित हुआ, बड़ा आकर्षक सिद्ध हुआ और एशिया के अधिकांश देशों ने इसे ही अपनाया।

४६. बौद्धवर्म पर अनेक प्रन्य हैं। 'महायान' के लिए देखिए डब्लू० एम० मैकगोवर्न कृत 'ऐन इण्ट्रोडक्शन दु महायान बुद्धिज्म' (लंदन, १९२२); डा० एम० एन० दत्त कृत 'ऐस्पेक्ट्स आव महायान बुद्धिज्म (१९३०); डा० हरदयाल कृत 'बोधिसत्त्व डाक्टिन इन संस्कृत लिटरेचर' (केगन पाल, लंदन, १९३२); प्रो० केनेथ डब्लू० मार्गन द्वारा सम्पादित एवं बहुत-से देशों के लेखकों द्वारा लिखित (हीनयान एवं महायान दोनों पर) 'दि पाथ आव दि बुद्ध' (न्यूयार्क, १९५६)।

जो लोग बौद्धधर्म के विषय में सामान्य रूप से एवं हीनयान तथा महायान के विषय में विशेष जानकारी प्रहण करना चाहते हैं उनके लिए कुछ अन्य प्रकाशनों की चर्चा यहाँ की जा रही है। वे लोग देखें --थेरी स्टेबंटस्की कृत 'सेण्ट्रल कांसेप्शन आव बुद्धिज्म' (लंदन, १९२३), 'दि कांसेप्शन आव निर्वाण' (लेनिनग्राड, १९२७), 'बुद्धिस्ट लाजिक', जिल्द १ (१९५८); जे॰ जी॰ जेनिंग्स कृत 'वेदान्तिक बुद्धिज्म आव दि बुद्ध' (आक्सफोर्ड यूनि॰ प्रेस, १९४८); एडमण्ड होम्स कृत 'कीड आव बुद्ध' (पाँचवाँ संस्करण); डा० शशिभूषण दासगुप्त कृत 'इण्ट्रोडक्शन टु तान्त्रिक बुद्धिज्म' (कलकत्ता यूनि०, १९५०); हुज आई० फासेट कृत 'दी फ्लेम एण्ड दि लाइट' (लंदन एवं न्युयार्क, १९५८); डा॰ बी॰ आर॰ अम्बेडकर कृत 'दि बुद्ध एण्ड हिज धम्म' (१९५७); प्रो॰ एफ॰ मसतानी कृत 'कम्परेटिव स्टडी आव बुद्धिण्म एण्ड किविचयानिटी' (टोकियो, १९५७)। असंग-कृत महायान-सूत्रालंकार (प्रो० सिलवाँ लेवी हारा सम्पादित है ने दो क्लोकों (१।९-१०) में दोनों सम्प्रदायों के अन्तरों (५ अन्तरों) को प्रकट किया है। डा० जे॰ तका कुसु द्वारा अनूवित इत्सिंग का 'रेकर्ड्स आव वि बृद्धिस्ट रेलिजिन' (आक्सफोर्ड, १८९६), इसमें आश्चर्य की बात यह कही गयी है कि दोनों साम्प्रदायिक सिद्धान्त मूल धर्म से सर्वया मिलते हैं। दोनों सत्य को समान रूप से मानते हैं और हमें निर्वाण की ओर ले जाते हैं। बुद्ध ने आत्मा या ईश्वर की बात ही नहीं की (भले ही उन्होंने इनके अस्तित्व को भावात्मक रूप से न माना हो), उन्होंने व्यक्ति के आत्मा एवं अमरता को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने उपनिषद् की 'आनन्दो ब्रह्मोति व्यजानात्' नामक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिक्षा पर कोई बल नहीं दिया। उन्होंने निर्वाण को परम ज्ञान्ति की स्थिति कहा है, साधारण जीवन को दुःखात्मक माना है और बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि निर्वाण इस जीवन में भी प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने अपने को परमात्मा नहीं कहा, प्रत्युत भानव कहा। महायान सिद्धान्तों के कई प्रकार हैं और परिभाषाओं में बड़ी विभिन्नता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि वे प्रन्य जो महायान की शिक्षा देते हैं, व्यावहारिक रूप में मानव बुद्ध के आदर्श का त्याग करते हैं, बुद्ध एवं भावी बुढ़ों की पूर्जा की शिक्षा देते हैं और प्रतिपादन करते हैं कि निर्वाण प्राचीन विधि से नहीं प्राप्त किया जा

बुद्ध ने वाराणसी के सारनाथ नामक स्थान पर जो शिक्षा दी उससे बोधिसज्ञवों के सिद्धान्त का मेल नहीं बैठता। हीनयान एवं महायान के आदशों में अन्तर है। मौलिक शिक्षा व्यक्ति-प्रयास, नैतिक विकास, दु:ख तथा इच्छाओं या कामनाओं तथा स्वयं जीवन की लालसा के दूरीकरण पर निर्मर है। 'क्या मैं गत युगों में जीवित था या नहीं?' ऐसे प्रक्तों पर विचार करने को बुद्ध समय नष्ट करना समझते थे। इसी प्रकार, 'क्या मैं मविष्य में रहूँगा? क्या मेरा अस्तित्व है या नहीं है?' प्रक्त भी बुद्ध के लिए व्यर्थ थे। सब्बासवसुत्त (९-१३) में आया है कि अष्टांगिक मार्ग से चलता हुआ विज्ञ पुरुष जानता है कि किन विषयों पर विचार करना और किन विषयों पर नहीं। देखिए, सेकेड बुक आव दि ईस्ट (जिल्द ११, पृ० २९८-३००)। बौद्धधर्म ने एशिया के अर्घ माग पर जो अपना प्रमाव डाला वह निर्वाण पाने का वचन देकर नहीं, प्रत्युत अपनी उस शिक्षा द्वारा, जिनमें अधिक सुलम वेदनता (हार्दिक अनुभवशीलता), सिक्रय दाक्षिण्य, (उदारता), अच्छाई, मघुरता एवं सज्जनता आदि के गुण विद्यमान थे। महायान ने सेवा मावना एवं मक्ति पर अधिक बल दिया। हीनयान एवं महायान दोनों की शिक्षा अपने-अपने ढंग से आकर्षक थी।

बौद्धमं ने पंच शीलों पर बल दिया है जो सभी बौद्धों के लिए अनिवार्य थे। " यथा— "किसी प्रकार का आघात एवं जीव-नाश न करना; चोरी न करना; काम-सम्बन्धी अपवित्रता से दूर रहना; झूठ से दूर रहना तथा उन्मत्त करने वाले पेय पदार्थों से दूर रहना।" इन पंच शीलों में पाँच अन्य अनुशासन या उपदेश जोड़ दिये गये। (दोनों मिलकर दश-शिक्षापद कहे जाते हैं), जो बौद्ध उपासकों के लिए आवश्यक थे, यथा— "वर्जित काल में भोजन न करना; नृत्य, संगीत, तमाशा आदि सांसारिक मनोरंजनों से दूर रहना; अंजनों एवं आमूषणों का प्रयोग न करमा; लम्बे-चौड़े एवं अलंकृत पलंगों या खाटों को व्यवहार में न लाना तथा सोना-चौदी न ग्रहण करना।" ये शील प्राचीन उपनिषदों एवं धर्मसूत्रों से ग्रहण किये गये हैं। छान्दोग्योपनिषद् (५।११।५) में आया है कि केकय के राजा अश्वपति को इसका गर्व था कि उसके राज्य में न तो कोई चोर था, न कोई कदर्य (कृपण) एवं मद्य पान करने वाला था, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसके घर में अग्विवेदिका न हो (अर्थात् सभी आहितान्व थे अर्थात् यज्ञ करने वाले थे), कोई अविद्धान् नहीं था, कोई स्वैरी (व्यभिचार करने वाला) नहीं था, स्वैरिणी (व्यभिचारिणों नारी) की तो बात ही नहीं थी। " इसी उपनिषद् ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है— जो सोने की चोरी करता है, जो सुरा पीता है, जो गुर-शय्या को अपवित्र करता है (पूज्य स्त्रियों के साथ गमन करता है), जो ब्रह्महत्या

सकता, वह इस जीवन में नहीं प्राप्त किया जा सकता, प्रत्युत शतियों एवं युगों तक अच्छे कमी, सेवा-कार्यों तथा सद्व्यवहारों के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकता है।

कुछ लोगों के मत के अनुसार मन्त्रयान एवं वज्जयान नामक सम्प्रदाय महायान की शाखाएँ कहे जाते हैं। वज्जयान के विषय में हम अगले अध्याय में सिवस्तार पढ़ेंगे। श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार वज्जयान (७००-१२०० ई०) महायान (४००-७०० ई०) का पर्यायवाची है; वह केवल उसका उत्तरकालीन विकास है (देखिए पू० २११, जे० ए०, जिल्ब २२५, १९३४ में प्रकाशित 'एल् आरजिने दु वज्जयान एटलेस ८४ सिद्धज्ञ')।

४७. देखिए खुद्दकपाठ ३, दोग्घनिकाय (२।४३, पृ०६३) एवं श्री कर्न कृत 'मैनुअल आव इण्डियन बुढिज्म', पृ० ७०, जहाँ पंचशील पर विवेचन उपस्थित किया गया है।

४८. स ह प्रातः संजिहान उवाच 'न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वेरी स्वेरिणी

करता है—इन चारों का पतन होता है और पाँचवाँ वह (पितत होता) है जो इन चारों का साथ करता है। " यह हम आगे देखेंगे कि अहिंसा पर उपनिषदों में भी किस प्रकार बल दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), यौन शुचिता (ब्रह्मचर्य), सत्यता किस प्रकार अत्यन्त प्राचीन उपनिषदों में भी बलपूर्वक व्याख्यायित थे। परिव्राजक को सम्पूर्ण सम्पत्ति छोड़ देनी पड़ती थी और अपनी जीविका के लिए भिक्षा माँगनी पड़ती थी (देखिए बृहदारण्यकोपनिषद् ३।५।१ एवं ४।४।२२, जाबालोपनिषद् ५, गौतम ३।१०-१३, वसिष्ठ १०)। अत्य पाँच अनुशासन, यथा सोना एवं चाँदी को ग्रहण न करना, अंजनों एवं आभूषणों, पुष्पों, नृत्यों, गानों आदि के परित्याग की बात गौतम (२।१९ एवं ३।४), वसिष्ठ (१०।६) आदि में है जो वैदिक छात्रों एवं परिव्राजकों के लिए अनुशासित हैं। देखिए एच० कर्न (मैनुअल आव इण्डियन बुद्धिजम, गुण्ड्रिस, पृ० ७०) जिन्होंने कहा है कि साधुओं (भिक्षुओं) की श्रेष्ठ नैतिकता केवल वही है जो चौथे आश्रम में द्विज के जीवन-नियम में, जब वह यित हो जाता है, देखी जाती है और इस विषय में सारी बातें धर्मसूत्रों एवं धर्मशास्त्रों से ली गयी हैं।

# अहिंसा

महाभारत एवं पुराणों ने अहिंसा पर बड़ा बल दिया है। यही बात उपनिषदों में भी है। छान्दोग्य ने कई बार चर्चा की है—- ' दे दे दे हैं आया है कि तप, दान, आर्जव, अहिंसा एवं सत्य वचन ही (बिना किसी उत्सव आदि के यज्ञ की) दक्षिणा है। इस बात की चर्चा करते हुए कि वह व्यक्ति जो आत्मा का सत्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है, इस संसार में लौटकर नहीं आता, छान्दोग्योपनिषद् ने कहा है, 'वह तीर्थों (यज्ञों) के अतिरिक्त कहीं भी किसी जीव को कब्द नहीं देता।' वृहदारण्यकोपनिषद् (५।२) का कथन है कि किस प्रकार प्रजापित ने देवों, असुरों एवं मानवों

४९. तदेष क्लोकः । स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंक्च गुरोस्तत्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमक्चा-चरंस्तैरिति । छा० उप० ५।१०।९ ।

५०. एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणायाश्च लोकंषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षा-चर्यं चरन्ति । वृह० उप० ३।५१ (आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त ब्राह्मण लोग पुत्रेषणा, वित्तेषणा एवं लोकंषणा से दूर हट जाते हैं और भिक्षुक की भाँति भ्रमण करते हैं) । अथ परिस्राङ् विवर्णवासा भुण्डोऽपरिग्रहः शुचिरब्रोही भैक्षणो ब्रह्मभूयाय भवतीति । जाबालोप० ५, शंकराचार्य द्वारा वेदान्तसूत्र ३।१।३ एवं ३।४।२० पर उद्धृत ।

५१. वर्जयेन्सयुमांसगन्धमाल्य-दिवास्वप्नाभ्यंजनवानोपानच्छत्र-काम-कोध-लोभसोह-वाद्यवादन-स्नान-दन्तधावननृत्यगीत-परिवाद-भयानि ।। गौ० २।१९; मुण्डोऽसमोऽपरिग्रहः । वसिष्ठ १०।६ । पुरोहितों के अन्य शीलों के लिए
मिलाइए गौतम (२।१९) एवं दोग्धनिकाय (भाग १, पृ० ६४ सामाञ्ना-फल-सुत्त १।४५) : 'विरतो विकालभोजना ।
नच्च-गीत-वादित-विसूक्षदस्सना पटिविरतो होति । माला-गन्ध-विलेपन-धारण-घण्डण-विभूसण त्याणा पटिविरतो होति । उच्चासयन-मह।सयना पटिविरतो होति । जातरूप-रजतपटिगाहणा पटिविरतो होति । आमक-मंसपटिगाहणा पटिविरतो होति ।'

५२. अय यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनिमिति ता अस्य दक्षिणाः। छा० उप० ३।१७।४; आचार्यकुलाद् वेदमधीत्य...स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदघदात्मिन सर्वेन्द्रियाणि संग्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेन्यः... न च पुनरावतंते। छा० उप० ८।१५; तदेतत्त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयामिति। बृह् ० उप० ५।२।

से कहा कि 'द द द' स्वर, जो गरज़ते हुए वादलों से उत्पन्न होता है, देवों को दम (आत्म-संयम) की आवश्यकता बताता है; असुरों को दया एवं मनुष्यों को दान बताता है। गौतम (८।२४-२५) ने आत्मा के आठ गुणों की चर्चा की है ', जिनमें पहला है सब प्राणियों के प्रति दया; उनका कथन है कि वह व्यक्ति, जिसने ४० संस्कार कर लिये हैं, किन्तु यदि उसने आठ गुण नहीं प्राप्त किये हैं, ब्रह्म में समाहित नहीं हो सकता। आदिपर्व में आया है, 'अहिंसा समी प्राणियों के लिए परम धर्म है, अतः ब्राह्मण को चाहिए कि वह किसी को भी कोई कष्ट न दे। 'अहिंसा परमो धर्मः' कई बार महाभारत में आया है (यथा—द्रोणपर्व १९२।३८, शान्ति० २६५।६, ३२९।१८, अनुशासन० ११५।२५, ११६।३८, आश्वमेधिकपर्व २८।१६-१८, ४३।२१)। शान्तिपर्व (२९६।२२-२४) में सभी लोगों के लिए १३ गुणों का वर्णन है, जिनमें प्रथम दो हैं क्रूरता से दूर रहना एवं अहिंसा। विसन्ठ (४।४), मनु (१०।६३) एवं याज्ञ o (१।१२२) ने सभी वर्णों के लोगों के लिए कुछ गुणों को आवश्यक माना है।

पुराणों ने भी अहिंसा पर बहुत बल दिया है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं। '' वामनपुराण में आया है---'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, दान, क्षान्ति (सहन शक्ति या सहिष्णुता), दम (आत्म-संयम), शम (इन्द्रिय-निश्चलता या शान्ति), अकार्पण्य, शौच (पवित्रता), तप-यही दशांग घर्म है जो सभी वर्णों के लिए है। पदा में आया है कि प्राणिहिंसा करने वाले वेदाध्ययन, दान, तप एवं यज्ञों से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं करते; अहिंसा सर्वोत्तम धर्म, सर्वोत्तम तप एवं सर्वोत्तम दान है---यही मुनियों का कहना है; जो लोग दयालु हैं वे मच्छरों, रेंगने वाले प्राणियों (साँप

५३. दया सर्वभूतेषु शान्तिरनसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहेति। यस्यैते चत्वारिशत्संस्करा न चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकतां गच्छति । गौ० घ० सू० (८।२४-२५)। मत्स्य (५२।८-११) ने भी गौतम द्वारा प्रकाशित आठ गुणों की चर्चा की है। और देखिए मार्कण्डेंय (२५।३२-३३)।

५४. अहिंसा परमो धर्मः सर्वप्राणभृतांवर। तस्मात्प्राणभृतः सर्वान्न हिंस्याद् क्लाह्मणः क्वचित्।। आदि० २।१३-१४; अहिंसां सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः। द्रोण० १९२।३८; अहिंसा सर्वभूतेषु धर्मेभ्यो ज्यायसी मता। शान्ति० २६५।६; न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत् । शान्ति० ३२९।१८; अहिंसा परमो धर्मस्तर्याहिंसा परं तयः। अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्यः प्रवर्तते।। अनुशासन० ११५।२५; अहिंसा परमो धर्मो हिंसा चाधर्मलक्षणा। आक्वमेधिक० ४३।२१।

५५. ऑहसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शमः। अकार्पण्यं च शौचं च तपश्च रजनीचर। दशांशे राक्षसञ्चेष्ठ धर्मीऽसौ सार्वविणकः ।। वामन १४।१-२; न वेदैर्न च दानैश्च न तपोभिर्न चाध्वरैः। कथंचित् स्वर्गीत यान्ति पुरुषाः प्राणिहिंसकाः ।। अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसैव परं तपः । अहिंसा परमं वानिमत्याहुर्मुनयः सवा ।। मज्ञकान् सरीसृपान् वंशान्यूकाद्यान्मानवांस्तथा। आत्मौपम्येन पश्यन्ति मानवा ये दयालवः॥ पद्म १।३१।२६-२८; ये श्लोक पद्मपुराण ६।२४३।६९-७१ में दुहराये गये हैं। तस्मान्न हिंसायज्ञं च प्रशंसन्ति महर्षयः। उञ्छो मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपो-घनाः। एतद् दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः।। अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः। ब्रह्मचर्यं तपः शौच-मनुक्रोशं (शः ?) क्षत्रा वृतिः। सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्।। मतस्य १४३।३०-३२; ब्रह्माण्ड २।३१। ३६-३८ में वही है जो मत्स्य १४३।३०-३२ है। 'उच्छो मूल फलं...मूलमेतत्सनातनम्' आक्वमेधिकपर्व ९१।३२-३४ में भी है। सनातनधर्न जन्द के लिए देखिए माधववर्मा का खानपुर पत्रक (एपि० इण्डिका, जिल्द २७, पृ० ३१२) 💬 'श्रुतिस्मृतिविहितसन।तनधर्मकर्मनिरताय', प्रो० वी० वी० मिराशी द्वारा सम्पादित, इन्होंने इस लेख को ६ठी शताब्दी का माना है।

आदि), जुँओं आदि तथा मानवों को अपने समान ही मानते हैं। मत्स्य में यहाँ तक आया है कि महर्षि लोग ऐसा यज्ञ करने को नहीं कहते, जिसमें हिंसा होती है; खेत में गिरे हुए अन्नों को एकत्र कर दान करने से, मूलों, शाकों एवं जलपूर्ण पात्र अपनी सामर्थ्य से दान करने से ऋषि लोग तप करते हुए स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुए; अक्रोघ, अलोम, दम (आत्म-निग्रह), मूतदया (जीवदया), शम (इन्द्रिय-निग्रह), ब्रह्मचर्य, तप, शौच (पवित्रता), सुकुमारता, क्षमा, वैर्य (निश्चलता) — यह सनातनधर्म का मूल है, जो कठिनता से पालन किया जा सकता है। ब्रह्माण्ड (२।३१। ३५ : 'तस्मादहिंसा धर्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः) में आया है कि महर्षियों ने अहिंसा को धर्म का द्वार कहा है। पद्म (५।४३।३८) में आया है—'अहिंसा के बराबर कोई दान या तप नहीं है।' यह मनोरंजक एवं द्रष्टव्य है कि मत्स्य एवं ब्रह्माण्ड ने अहिंसा को 'सनातनघर्म' कहा है और पशु-यज्ञों की मर्त्सना की है। कूर्म का कथन है— " 'अहिंसा, कत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (धन-सम्पत्ति को इकट्ठा न करना) को संक्षेप में 'यम' कहा जाता है, जिससे मनुष्यों के मन में पवित्रता (चित्त-शुद्धि) उत्पन्न हो जाती है। परम ऋषियों ने घोषित किया है कि सदैव विचार, शब्द एवं कर्म से किसी को क्लेश न देना अहिंसा है। अहिंसा से बढ़कर कोई घर्म नहीं है, अहिंसा (के व्यवहार) से बढ़कर कोई सुंख नहीं है। (वैदिक) विधि से जो हिंसा हो जाय वह अहिंसा ही घोषित हैं, (२।११।१३-१५)। उपनिषदों ने मर्यादित (सीमित) अहिंसा की बात चलायी है, किन्तू सामाञ्ज-फल-सूत्त जैसे मौलिक पालि ग्रन्थों ने सभी प्राणियों की हिंसा को वर्जित बतलाया है। पुराणों में अधिकांश ने जनता में यह विश्वास जमाने के लिए कि वे बौद्ध शिक्षाओं से किसी प्रकार पीछे नहीं हैं, असीमित अहिंसा पर बल दिया है। देश-काल विचित्र होता है, वह क्या-क्या परिवर्तन नहीं ला देता। लंका, बरमा, चीन, जापान आदि देशों के बौद्ध मछली, मांस खाने में कोई निषेध नहीं बरतते, किन्तु पुराणों के लगातार परामर्श पर लाखों भारतीय (न केवल ब्राह्मण, प्रत्युत वैश्य आदि, यहाँ तक कि वे शूद्र जो वैष्णव हैं) निरामिषमोजी हैं, यद्यपि शतियों पूर्व बौद्ध धर्म यहाँ से विलुप्त हो गया है।

यह द्रष्टव्य है कि कुछ पुराण अहिंसा के अतिरेक के विरुद्ध भी हैं। ब्रह्माण्ड एवं वायु का कथन है कि उस

५६. ऑहसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहो । यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम् ॥ कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूनेवु सर्वदा । अक्लेशजननं प्रोक्ता ऑहसा परमिषितः ॥ ऑहसायाः परो धर्मो नास्त्याहसापरं सुखम् । विधिना या भवेद्धिसा त्वाहसेव प्रकीतिता ॥ कूर्म २।१३-१५ । लिंगपुराण (८।८-९) ने योग के आठ साधन बताये हैं जिनमें प्रथम यम है और पाँच साधनों को कूर्म में उल्लिखित कहा है । 'यम' कई प्रकार से वाणत हैं । कूर्म, लगता है, योगसूत्र (२।३०-३१) का अनुसरण करता है, यथा—'अहिंसा—सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः । शौच-सन्तेष-तपः-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।' मनु (४।२०४) ने सामान्य रूप से कहा है कि व्यक्ति को यमों एवं एवं नियमों के नाम नहीं गिनाये हैं । मेम्नातिथि ने व्याख्या की है कि यम निवधात्मक हैं, यथा ऑहसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह अर्थात् दूसरे की सम्पत्ति न ग्रहण करना अथवा दान न ग्रहण करना; तथा नियम भावात्मक कि माम गिनाये हैं, यथा—व्यक्ति को वेदाध्ययन सर्वव करना काहिए (मनु ४।१४७) । याज्ञ० (३।३१२-३१३) ने दस यमों के नाम गिनाये हैं, यथा—ब्रह्मचर्य, करणा, शान्ति (सिह्मुता), दान, कुटिल व्यवहार (आचरण) का अभाव, ऑहसा, अस्तेय, मामुर्य, इन्द्रिय-निग्रह एवं दस नियम । वैखानसरमात्सूत्र (९-४) ने दस यमों के नाम लिये हैं ।

व्यक्ति (आततायी या साहसिक) को, जिसके मर जाने से बहुत-से लोग सुख से जीवन व्यतीत करते हैं, मार डालना न पातक है और न उपपातक, अर्थात् इससे न बड़ा पाप लगता है न छोटा पाप ।'°

पूर्त

पूर्त-धर्म पर पुराण अत्यन्त वल देते हैं, यथा जनकल्याण कार्य, दान, समाज-सेवा, दरिद्रों एवं दुखियों की सेवा आदि करने पर। ऋग्वेद में 'इष्टापूर्त' शब्द एक बार आया है-- " 'तुम परम व्योम में अपने पितरों (पूर्व पुरुषों), यम एवं इष्टापूर्त (यज्ञों एवं जनकल्याण के लिए किये गये कर्मों से उत्पन्न फल) के साथ मिल जाओ। 'इष्ट' शब्द ऋग्वेद में कई स्थानों पर आया है (१।१६२।१५, १।१६४।१५, १०।११।२, १०।८२।२), किन्तु केवल ऋ॰ (१०।१२।२) को छोड़कर, जहाँ यह 'यज्ञ' के अर्थ में प्रयुक्त-सा लगता है, कहीं भी इसका अर्थ निश्चित नहीं है। 'पूर्त' ऋग्वेद (६।१६।१८, ८।४६।२१) में आया है, किन्तु अर्थ निश्चित नहीं हो पाता। 'इष्टापूर्त' शब्द कतिपय उपनिषदों में आया है। छान्दोग्योपनिषद् (५।१०।३) में आया है—'किन्तु जो लाग ग्राम में रहते हुए यज्ञों का जीवन बिताते हैं, जनकल्याण का कार्य करते हैं एवं दान देते हैं, वे घूम आदि की ओर जाते हैं।" इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद् (१।९) में आया है—'वे, जो यज्ञों का ढंग व्यवहृत करते हैं तथा वे जो जनकल्याण के कार्म को ही कर्तव्य समझते हैं, केवल चन्द्रलोक को पहुँचते हैं और पुनः इस लोक में लौट आते हैं। मुण्डकोपनिषद् में कथित है—'मूढ (भ्रमित) लोग, जो यज्ञों एवं जनकल्याण के कार्यों को ही उत्तम कार्य समझते हैं, किसी अन्य कार्य को उनसे श्रेयस्कर नहीं मानते, वे स्वर्ग की चोटी पर अपनी सुकृति का फल मोगकर पुनः इस लोक में या इससे हीन लोक में प्रवेश करते हैं।' मनु (४।२२७) ने 'इष्ट' एवं 'पूर्त' का उल्लेख किया है और प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति को प्रसन्न होकर यज्ञिय दान एवं पूर्त प्रकार के दान आदि का व्यवहार सुपात्र ब्राह्मण की प्राप्ति पर सामर्थ्य के अनुसार करना चाहिए। '° अमरकोश ने 'इष्ट' को यज्ञों के एवं 'पूर्त' को कूप, तालाब खुदवाने आदि के अर्थ में लिया है। मार्कण्डेय (१६।१२३-१२४) ने निम्नोक्त ढंग से इन्हें परिमाषित किया

५७. यहिंमस्तु निहते भद्रे जीवन्ते बहवः सुखम्। तिस्मन् हते नास्ति शुभे पातकं चोपपातकम्।। ब्रह्माण्ड २।३६।१८८; वायु ६९।१६२ (यहाँ जीवन्ते के स्थान पर लभन्ते आया है)। यही बात दूसरे शब्दों में ब्रह्मपुराण (१४१।२२) में आयी है, यथा—-'यिस्मिनिपातिते सौख्यं बहूनामुपजायते। मुनयस्तद्वधं प्राहुरश्वमेवेशताधिकम्।।' कल्पतरु (गृहस्थकाण्ड, पृ०३००) ने इसे वायु का माना है (थोड़ा पाठान्तर है, यथा—जीवन्ते के स्थान पर एघन्ते आया है)।

५८. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् । ऋ० (१०।१४।८); इष्टस्य मध्ये अदितिनि चातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि बोचित ।। ऋ० (१०।११।२)।

५९. अय य इसि ग्राम इब्टायूर्ते दतिमत्युपासते ते चूममिससम्भवन्ति घूमाब्रात्रिम् . . . । छा० उप० ५।१०।३ । तथे ह वै तदिब्टायूर्ते कृतिमत्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमिभजयन्ते । त एव पुनरावर्तन्ते । प्रश्न० १।९; इष्टायूर्ते मन्यमाना वरिब्छं नान्य ब्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं होनतरं वाविशन्ति ।। मुण्डको-पनिषद् १।२।१०।

६०. दानधर्मं निवेवेत नित्धमैष्टिकपौतिकम् । परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ।। मूनु (४।२२७); 'त्रिष्वय ऋतुकर्मेष्टं पूर्तं सातादिकर्मणि ।' अमरकोश । 0

### वर्मशास्त्र का इतिहास

है—'अग्निहोत्र (पिवत्र अग्नियों को रखना), तप, सत्य, वेदाध्ययन, आतिथ्य एवं वैश्वदेव—ये इष्ट हैं; कूप, वापी (बावड़ी), तड़ाग (तालाव) खुदवाना, देवमंदिरों का निर्माण, अर्म्याधयों को भोजन देना—ये पूर्त नाम से घोषित हैं।''' अग्निपुराण में भी ऐसी ही बातें हैं। पद्म (६।२४३।१०-१४) ने पूर्तकार्य को यों कहा है—'विष्णु एवं शिव के मन्दिरों, तालावों, कूपों, कमल-सरोवरों, वटों, पिप्पलों (पीपलों), आमों, कक्कोलों, जामुनों, नीमों के वनों, पुष्प-वाटिका का निर्माण, प्रातः से सायं तक, अन्नदान वस्तियों के वाहर जल-प्रवन्ध आदि।' स्कन्द (१०।२।१०) में आया है'—'धर्मशास्त्रों में 'पूर्त' शब्द का प्रयोग मन्दिरों, तालावों, वावड़ियों, कूपों एवं वाटिकाओं के निर्माण के अर्थ में हुआ है।' पद्म (६।२४४।३४-३५) का कथन है कि जो लोग मठों, गोशालाओं, मार्गों पर आरामों, साधु-यितयों के निवासों, दिरहों एवं असहायों के लिए पर्णकुटियों, वेदाध्ययन के लिए विशाल भवन, ब्राह्मणों के लिए गृहों का निर्माण करते हैं, वे इन्द्रलोक (स्वर्ग) में प्रवेश करते हैं। अत्रि का कथन है कि इष्ट एवं पूर्त द्विजों के सामान्य धर्मसाधन हैं, शूद्र पूर्त-धर्म का सम्पादन कर सकता है किन्तु वैदिक कर्म (यज्ञ आदि) का नहीं। '' और देखिए अनुशासन पूर्व (अध्याय ५८)। किन्तु वराहपुराण एवं कुछ स्मृतियों में ऐसा आया है कि इष्ट से केवल स्वर्ग की प्राप्ति होती है किन्तु पूर्त से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। '

कमी-कमी हम पुराणों में ऐसी बातें मी पा जाते हैं जिनमें आधुनिकता की गन्ध मिल जाती है, विशेषतः जब वे समाज-सेवा, आर्त जनों के दुःख एवं क्लेश के निवारण आदि के विषय में चर्चा करते हैं। मार्कण्डेय में एक राजा कहता है—'मनुष्य उस सुख को स्वर्ग या ब्रह्मलोक में नहीं पाते जिसे वे आर्त जनों को आश्रय या सहायता देकर प्राप्त करते हैं। यज्ञों, दानों एवं तपों से यहाँ तथा परलोक में उस व्यक्ति को कोई सहारा नहीं प्राप्त हो सकता जिसका मन आर्त जनों के परित्राण में नहीं लगा हो।' विष्णुपुराण ने कहा है—'मतिमान् को विचार, शब्द एवं

- ६१. अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव साधनम् । आतिय्यं वैश्वदेवं च इष्टिमित्यिभिधीयते ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमिथिभ्यः पूर्तिमित्यिभिधीयते ॥ मार्कण्डेय (१६।१२३-१२४) । अग्नि (२०९।२-३) ने 'चानुपालनं', 'च प्राहुरिष्टं च नाकदम्', 'अन्नप्रदानमारामाः पूर्तं धर्मं च मुक्तिदम्' का पाठान्तर दिया है । 'वापीकूप-तडागानि . . .'को अपरार्क (पृ०२४,२९०) ने महाभारत से उद्धृत किया है । उपर्युक्त दोनों अत्रिसंहिता (४२-४४) में भी हैं ।
  - ६२. सुरक्षलयसरोवापीकूपारामादिकल्पना। एतदर्थं हि पूर्ताख्या धर्मशास्त्रेषु निश्चिता।। स्कन्द (१०२।१०)।
- ६३. इष्टापूर्तो द्विजातीनां सामान्यौ घर्मसायनौ। अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्वे धर्मे न वैदिके।। अत्रि (४६)। अपरार्क (पृ० २४) ने इसे जातूकर्ण्य का माना है। और देखिए अपरार्क (पृ० २९०) जहाँ नारद से इष्ट एवं पूर्व के विषय में उदाहरण दिये गये हैं।
- ६४. इष्टापूर्तं द्विजातीनां प्रथमं घर्मसाधनम् । इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मोक्षं च विन्दति ।। वराह (१७२-३३), यमस्मृति (६८), अत्रिसंहिता (१४५)।
- ६५. न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरै:। यदार्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थिमिति मे मितः।। यज्ञदानतपांसीह
  परत्र च न भूतये। भवन्ति तस्य यस्थार्तपरित्राणे न मानसम्।। मार्कण्डेय (१५।५७ एवं ६२); प्राणिनामुपकाराय
  यन्देवेह परत्र च । कर्मणा मनसा वाचा तदेव मितमान् वदेत् ।। विष्णु ३।१२।४५; परोपकरणं येषां जागिति हृदये
  सताम्। नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे ।। तीर्थस्नानैर्न सा शुद्धिर्बहुदानैर्न तत्फलम्। तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्यमुपकृत्य
  र्यवाप्यते ।। परिनिर्मथ्य वाग्जालं निर्णोतमिदमेव हि । नोपकारात् परो धर्मो नापकारादधं परम् ।। स्कन्द (काशीखण्ड,

कर्म से वही कहना चाहिए (करना चाहिए) जो प्राणियों के लिए यहाँ एवं परलोक में कल्याणकर हो।' स्कन्द (काशीखण्ड) में आया है—'जिनके हृदय में परोपकार की मावना जगी रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और प्रत्येक पद पर उन्हें सम्पदा की प्राप्ति होती है। वह शुद्धि तीर्थंस्नान से नहीं प्राप्त होती, वह फल माँति-माँति के दानों से नहीं प्राप्त होता और न वह कठोर तपों से प्राप्त होता है, जो परोपकार से प्राप्त होता है। सभी प्रकार के वाग्जाल का मन्थन करने के उपरान्त यही निष्कर्ष निकलता है कि परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और न दूसरों की हानि करने से बढ़कर कोई पाप है।' ब्रह्मपुराण में आया है—'उसका जीवन सफल (धन्य) है, जो सदा दूसरों का कल्याण करता है; अग्नि, जल, सूर्य, पृथिवी एवं विविध प्रकार के धान्य परोपकार के लिए उत्पन्न होते हैं, विशेषतः सज्जन दूसरों के कल्याण के लिए जीते हैं।'

यह आश्चर्यजनक है कि भागवतपुराण में वह संकेत मिलता है जो आधुनिक समाजवादी सिद्धान्तों में परि-लक्षित होता है—'मनुष्यों का स्वत्व केवल वहीं तक है जितने से उनका पेट भरता है, जो व्यक्ति उससे अधिक को अपना कहता है वह चोर है इसलिए दण्डनीय है।'

#### भिवत

पुराणों ने मिनत पर अधिक बल दिया है। हम यहाँ पर प्राचीन काल से अब तक के मिनत-सम्बन्धी इतिहास पर प्रकाश नहीं डालेंगे। उसके लिए अलग-अलग ग्रन्थ हैं, जिनमें कुछ नीचे लिखे भी जायेंगे। सामान्य रूप से कुछ शब्द मिनत के विषय में लिख देना आवश्यक है। इसके उपरान्त हम इस सम्बन्ध में पुराणों की बातें कहेंगे।

मिलत-सिद्धान्त के संकेत ऋग्वेदीय सूक्तों एवं मन्त्रों में भी मिल जाते हैं, जिनमें कुछ ईश्वर-मिलत से परिपूर्ण से लगते हैं, विशेषतः वरुण एवं इन्द्र को सम्वोधित मन्त्रों में। उदाहरणार्थं,—'मेरे सभी विचार (या उक्तियाँ) मिलकर प्रकाश ढूँढ़ते हुए, उसके लिए इन्द्र की स्तुति करते हैं। जिस प्रकार पिलयाँ अपने पित का आलिंगन करती हैं या अपने सुन्दर नवयुवक प्रेमी से आलिंगनवद्ध होती हैं, उसी प्रकार वे (विज्ञार) उसका (इन्द्र का) जो वानों का दिव्य दाता है, आलिंगन करते हैं'; 'तुम्हारी मित्रता (तुम्हारे मक्तों के साथ) नष्ट नहीं होने वाली (सदा चलने वाली, नित्य) है, उसके लिए, जो गाय चाहता है, तुम गाय हो जाते हो, जो अश्व चाहता है उसके लिए तुम अश्व हो जाओ'; 'हे इन्द्र, तुम मेरे पिता या भाई से, जो मुझे नहीं खिलाते, अच्छे (धनी) हो; (तुम) एवं मेरी माता, हे वसु, वरावर हैं, और धन एवं अनुग्रह देने के लिए (मेरी) रक्षा करते हैं'; 'तुमने कक्षीवान् को, जिसने तुम्हें एक सूक्त सुनाया एवं सोम की आहुतिदी, और जो वूढ़ा हो गया था, वृच्या दी, जो नवयुवती थी; तुम वृष्णश्व की पत्नी वने; तुम्हारे ये सभी (अनुग्रह) सोम-निपेकों की आहुतियों के समय उद्घोषणा के पात्र हैं'; 'तुम, जो चमकने वाले हो, प्रत्येक घर में छोटे मनुष्य का रूप धारण करके आओ और मेरे दाँतों से निकाले जाते हुए इस सोमरस को मुने अन्न, अयूप (पूआ) एवं स्तवक के साथ पीओ।' (ऋ० १०।४२।११, १।६२।११ से मिलाइए; ६।४५।२६; ८।११६; ८।९१।२; १।५१।१३)। मिलाइए ऋ० ३।४३।४; १०।४२।११; १०।११२।१० (इन समी में इन्द्र को सखा कहा गया है)। उपर्युक्त वचनों से पता चलता है कि वैदिक ऋषि लोग सख्य-भिवत के स्तर पर पहुँच चुके थे, वे इन्द्र को माता के उपर्युक्त वचनों से पता चलता है कि वैदिक ऋषि लोग सख्य-भिवत के स्तर पर पहुँच चुके थे, वे इन्द्र को माता के

६।४-५ एवं ७); जीवितं सफलं तस्य यः परार्थोद्यतः सदा। अग्निरापो रिवः पृथ्वी धान्यानि विविधानि च। परार्थं वर्तनं तेषां सतां चापि विशेषतः ॥ ब्रह्म (१२५।३६-३७)।

६६. यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमंहित।। भागवत (७।१४।८)। रूप में समझ लेते थे, इन्द्र अपने मक्त के लिए पत्नी मी बन जाता था, इन्द्र अपने मक्त से लेकर वह सोमरस भी पी लेता था जो अन्य यन्त्रों के अमाव में दाँत से ही निकाला गया हो। ये ऋग्वेदीय प्राचीन कथाएँ हमें मध्यकाल की कथाओं का स्मरण दिलाती हैं, यथा राम द्वारा बदरी-फल खाना जो शबरी द्वारा जूठे किये जा चुके थे, क्योंकि मित्त में सराबोर मील नारी शबरी बेरों को चख-चखकर रखती जाती थी, जिससे राम को मीठे फल मिलें न कि खट्टे; पंढरपुर के देवता बिठोवा जिन्होंने महार (चमार, अस्पृश्य) का रूप घारण किया और बीजापुर के नवाब को उतना घन दे दिया, जो उस अन्न का दाम था जिसे उनके मक्त दामाजी ने, जो अन्नागार के अफसर थे, अकाल-पीड़ित लोगों में बाँट दिया था। वरुण को सम्बोधित कुछ मन्त्र भी सख्य मित्र के द्योतक हैं, यथा—'हे वरुण, वह कौन-सा अपराघ मैंने किया है जिसके कारण तुम अपने मित्र एवं माट (चारण, स्तोता) मुझको हानि पहुँचाना चाहते हो; घोषित करो, हे अजेय, स्वेच्छाचारी देव, जिससे तुम्हें (प्रसन्न करके) मैं पाप से मुक्त होऊँ और शीध्र ही नमस्कार के लिए तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ।' देखिए ऋ० ७।८६।४; ७।८८।५; ७।८९।५। यह द्रष्टच्य है कि ऋग्वेद में एक ऐसा मन्त्र है जिसमें नमः (नमस्कार) का देवताकरण पाया जाता है, यथा—'नगः स्वयं शक्ति-धाली है; मैं नमस्कार के साथ सेवामाव देता हूँ; नमस्कार ने पृथिवी एवं द्यौ को सँमाल रखा है; देवों को नमस्कार; नमस्कार इन देवों पर शासन करता है, जो कोई (मुझसे) पाप हो जाता है, मैं नमः (नमस्कार) से ही उसका शमन कर लेता हूँ।''ण

यद्यपि प्रमुख उपनिषदों में 'मिन्त' शब्द नहीं आया है किन्तु कठ एवं मुण्डक उपनिषदों में मिन्ति-सम्प्रदायों का यह सिद्धान्त कि यह केवल मगवद्मिहिमा है जो भक्त को बचाती है, पाया जाता है, यथा—'यह परम आत्मा (गुरु के) प्रवचन से नहीं प्राप्त होता और न मेधा (बुद्धि) से और न बहुश्रुतता (अधिक ज्ञान) से; परमात्मा की प्राप्ति उसी को होती है जिस पर परमात्मा का अनुग्रह होता है; उसी के सामने यह परम आत्मा अपना स्वरूप प्रकट करता है' (कठोप० २।२२; मुण्डकोप० ३।२।३)। यह कथन इस सिद्धान्त का द्योतक है कि परमात्मा का अनुग्रह ही मक्त को मोक्ष प्रदान करता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् ने 'मिन्त' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में किया है जो गीता तथा अन्य मिन्त-विषयक ग्रन्थों में प्राप्त होता है'—'ये कथित बातें उस उच्च आत्मा वाले व्यक्ति में, जो परमात्मा में परम मिन्त रखता है और वही मिन्ति जो मगवान् में है, गुरु में रखता है, अपने-आप प्रकट हो जाती हैं।' इसी उपनिषद् ने मिन्त सम्प्रदाय के दृष्टिकोण (सिद्धान्त) पर बल दिया है—'मैं, मोक्ष का इच्छुक उस परमात्मा की शरण में पहुँचता हूँ जिसने पूर्व काल में ब्रह्मा को प्रतिष्ठापित किया, जिसने उसको (ब्रह्मा को) वेदों का ज्ञान प्रदान किया और जो प्रत्येक आत्मा की मेधा को प्रकाशित करता है।'

श्वेताश्वतर उप॰ में प्रयुक्त 'प्रपद्ये' शब्द रामानुज जैसे वैष्णव सम्प्रदायों में 'प्रपत्ति' नामक सिद्धान्त का अाधार बन गया है।

६७. नम इदुग्रं नम आ विवासे नमी दाघार पृथिवीमुत द्याम्। नमी देवेम्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनी नमसा विवासे ॥ ऋ० (६।५१।८)।

६८. यस्य देवे परा भक्तिर्यया देवे तथा गुरौ । तस्येते कथिता ह्याः प्रकाशन्ते महात्मनः ।। श्वेताश्व० ६।२३; यो ब्रह्माणं विद्याति पूर्वं यो वे वेदांश्च प्रहिणोति तस्मे । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये ।। श्वेता-श्व० ६।१८ । स्वंप्नेश्वर ने शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र (४।१।१) के भाष्य में इस अन्तिम मन्त्र का आधार लिया है ।

किन्तु मिन्त सम्प्रदाय के आरम्भिक उल्लेख शान्तिपर्व के नारायणीय उपाख्यान (चित्रशाला संस्करण, अध्याय ३३५-३५१) एवं मगवद्गीता में पाये जाते हैं। मेगस्थनीज का कथन है कि हेराक्लीस (हरिकृष्ण) की पूजा सौसेन्वाय (शौरसेनों) द्वारा जोबरेस (यमुना) के तटों पर होती थी और उसकी दो नगरियाँ थीं—मेथोरा (मंथुरा) एवं क्लेड्स्बोरा (कृष्णपुर?)। नारायणीय० (३३५।१७-२४) में ऐसा आया है कि राजा उपरिचर वसु नारायण के मक्त थे, उन्होंने सूर्य द्वारा घोषित सात्वत नियमों के अनुसार देवेश की पूजा की, उन्होंने यह सोच-कर अपने राज्य, सम्पत्ति, पत्नी एवं घोड़े भगवान् के लिए समर्पित कर दिये कि ये सभी भगवान् के हैं, और सात्वत नियमों के अनुसार उन्होंने यिश्वय कृत्य किये।

शान्तिपर्व में सात्वत एवं पांचरात्र की पहचान की गयी है ' और यह कहा गया है कि 'चित्रशिखण्डी' (जिनकी शिखाएँ चमकदार या विचित्र थीं ) नामक सात ऋषियों (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु एवं वसिष्ठ) ने (पंचरात्र) शास्त्र घोषित किया और नारायण ने उनसे कहा कि यह शास्त्र लोक में प्रामाणिक होगा और राजा वसु बृहस्पति से (जिन्हें यह सात ऋषियों द्वारा क्रमशः प्राप्त होगा) इसे सीखेंगे। शान्तिपर्व के अध्याय ३३६ में ऐसा आया है कि क्षीरसागर के उत्तर में श्वेतद्वीप नामक राज्य था, जहाँ नारायण के मक्त रहते थे, जो 'एकान्ती' कहे जाते थे और पंचरात्र एकान्तधर्म कहा जाता था। पंचरात्र सम्प्रदाय का एक विचित्र सिद्धान्त है जो चार व्यूहों (मूर्तियों या आकारों) वाला होता है, यथा—परम व्यक्ति वासुदेव हैं, प्रत्येक आत्मा संकर्षण है, प्रद्युम्न मन है जो संकर्षण से उत्पन्न होता है तथा अनिरुद्ध अहंकार है जो प्रद्युम्न से उत्पन्न होता है। " यह वही वासुदैव के चार रूपों वाला (जिनमें से प्रत्येक अपने पूर्व से निकलता है) सिद्धान्त है, जिसका खण्डन, शंकराचार्य के मत से, ब्रह्मसूत्र (२।२।४२-४५) में हुआ है। शान्तिपर्व (३४८।८) ने स्पष्ट रूप से अर्जुन के लिए उपदिष्ट गीता की ओर निर्देश किया है। शान्ति॰ (३४९।६२) में ऐसा उल्लिखित है कि सांख्य, योग, पांचरात्र, वेद एवं पाशुपत ऐसी पाँच विद्याएँ हैं जिनका दृष्टिकोण एक-दूसरे से मिन्न है तथा किपल (सांख्य), हिरण्यगर्म (योग), अपान्तरतमा (वेद), शिव (पाशुपत) एवं स्वयं मगवान् (पांचरात्र) द्वारा प्रवर्तित हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुर्राण (१।७४।३४) में ऐसा वक्तव्य आया है-- 'ब्रह्म की खोज के लिए पाँच सिद्धान्त हैं, यथा-सांख्य, योग, पांचरात्र, वेद एवं पाशुपत।' शान्तिपर्व (३३९।६८) पर आधारित हो कतिपय लेखक (विशेषतः रामानुज सम्प्रदाय के) ऐसा कहते हैं कि सम्पूर्ण पांचरात्र पद्धति में वैदिक प्रामाणिकता है, किन्तु अपरार्क (पृ० १३) एवं परिमाषाप्रकाश (पृ० २३) इसे पूर्णरूपेण वैदिक नहीं मानते, प्रत्युत वैकल्पिक मानते हैं।"

६९. काम्यनैमित्तिका राजन् यज्ञियाः परमित्रयाः । सर्वाः सात्वतमास्थाय विषिं चन्ने समाहितः ।। पाञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः । प्रायणं भगवत्प्रोक्तं भुञ्जते वाग्रभोजनम् ॥ शान्ति० ३३५।२४-२५ ।

७०. यो वासुदेवो भगवान् क्षेत्रज्ञो निर्गुणात्मकः। ज्ञेयः स एव राजेन्द्र जीवः संकर्षणः प्रभुः॥ संकर्षणाच्च प्रयुम्नो मनोभूतः स उच्यते। प्रयुम्नाव् योऽनिषद्धस्तु सोऽहंकारः स ईश्वरः॥ शान्ति० ३३९।४०-४१।

७१. वासुवेव सम्प्रदाय को पाञ्चरात्र क्यों कहा गया, इसका उत्तर अभी तक सन्तोषप्रद नहीं विया जा सका है। लगता है, इस सम्प्रदाय का किन्हों पाँच बातों से सम्बन्ध है। किन्तु 'रात्र' या 'काल' शब्द क्यों प्रयुक्त हुआ है? यही तो कठिनाई है। शान्ति (३३६।४६) में पाञ्चरात्र को पंचकाल भी कहा गया है (तैरिष्टः पञ्चकाल्जे हिरिरेकान्तिभिनंरेः)। बहुत से अनुमान लगाये गये हैं, जिनमें कुछ निम्नोक्त हैं, यथा—(१) पाँच रातों तक नारायण ने इसे अनन्त, गरुड़, विश्वक्तेन, ब्रह्मा एवं रुद्र को पढ़ाया; (२) परमसंहिता (३१।१९) में आया है फि परमात्मा ने यह

४५८

#### धर्मशास्त्र का इतिहास

वेदान्तसूत्र में मागवत एवं पांचरात्र पद्धति के विषय में चार सूत्र हैं। " महान् आचार्य अपनी व्याख्या में एकमत नहीं हैं। शंकर कहते हैं कि ये सभी चार सूत्र भागवतों के सिद्धान्त का खण्डन कर देते हैं। रामानुज का कथन है कि प्रथम दो सूत्र भागवत सिद्धान्त का खण्डन कर देते हैं किन्तु अन्तिम दो नहीं। शंकराचार्य ने इसे स्पष्ट किया है कि मागवतों के ये सिद्धान्त कि परम देव वासुदेव परम सत्य हैं, उनके चार रूप हैं, तथा वासुदेव की पूजा उनके स्वरूप का एकाग्र चित्त से ध्यान करने में है, आपत्तिजनक नहीं हैं; जो सिद्धान्त खण्डित होने योग्य है वह है भागवतों द्वारा कहा जाने वाला, संकर्षण नामक आत्मा की वासुदेव से उत्पत्ति का सिद्धान्त और यह कि प्रद्युम्न (मन) संकर्षण से उदित होता है तथा अनिरुद्ध (अहंकार) प्रद्युम्न से। शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्र (२।२। ४५) में जो कहा है " उससे प्रकट होता है कि उनके समय में शाण्डिल्य को लोग भागवत या पांचरात्रशास्त्र का

सिद्धान्त पाँच रातों तक चार मुनियों, यथा—सनत्कुमार, सनक, सनन्दन एवं सनातन को सिखाया; (३) इस सम्प्रवाय ने याँच शिक्षाओं, यथा—सांख्य, योग, पाशुपत, बौद्ध एवं आहंत को काला कर दिया (रात्रि काली होती है); (४) यह (पाञ्चरात्र) पाँच स्वरूपों, यथा—पर, व्यूह, विभव (अर्थात् अवतार), अन्तर्यामी एवं अर्चा (प्रतिमा-मूर्तियों) की शिक्षा वेता है; (५) यह वैष्णवों के पाँच कर्तव्यों, यथा—ताय (बाहु एवं अन्य अंगों पर तप्त-मुद्धा से चिह्न या दाग लगाना), पुण्ड़ (किसी रंगीली वस्तु से मस्तक पर बनी खड़ी रेखाएँ), नाम (वासुदेवीय नाम रखना), मन्त्र (यथा ओं नमो नारायणाय) एवं याग (वासुदेव की मूर्तियों की पूजा) का विश्लेषण करता है। आल्वार साहित्य ने पंचषा प्रकृति (यथा पर एवं अन्य) का उल्लेख किया है। देखिए के० सी० वरदाचारी का लेख 'सम कन्द्रीव्यूशन्स आव आल्वासं दु दि फिलॉसाफो आव भक्ति' (रजतजयन्ती खण्ड, बी० ओ० आर० आई०, पू० ६२१)। अरमसंहिता (११३९-४०) का कथन है क पाँच तत्त्व, पाँच तन्मात्राएँ, अहंकार, बुद्धि एवं अव्यक्त (सांख्य के पाँच तत्त्व) माने पुरुष की रातें हैं, अतः यह शास्त्र (जो इन पाँचों से मुक्त होने का उपाय बताता है) पाञ्चरात्र कहलाता है।

७२. वेदान्तसूत्र (२)२।४२-४५) में चार सूत्र हैं—"उत्पत्त्यसम्भवात्, न च कर्तुः करणम्, विज्ञानािदभावे वा तदप्रतिषेषः, विप्रतिषेषाच्च।" यद्यपि रामानुज ने इन चारों में अन्तिम दो पर अपनी टीका की है और बहुत वड़ा-चढ़ा कर अपनी वात कही है और तीन ऐसी उक्तियां उद्धृत की हैं जिन्हें पाञ्चरात्र कहा जा सकता है, तय पि वे अपने श्रीभाष्य में या अपने वेदार्थसंग्रह में यह नहीं व्यक्त करते कि वे सात्वत हैं या पाञ्चरात्र।

७३. वेदिवप्रतिषेषश्च भवति। चतुर्षं वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा शाण्डिल्य इदं शास्त्रमिधगतवानित्यादिवेदनिन्दादर्शनात्। शांकरभाष्य (वे० सू० २।२।४५)। शंकराचार्य 'तत्र भागवता मन्यन्ते' से आरम्भ करते हैं (ब्रह्मसूत्र
२।२।४२) तथा पुनः कहते हैं (२।२।४४): 'न च पञ्चरात्रसिद्धान्तिभवांसुदेवादिष्वेकिस्मिन् सर्वेषु वा ज्ञानैश्वर्यादितारतम्यकृतः किच्च भेदोम्युपगम्यते।' यह ब्रष्टच्य है कि शान्तिपर्य में पाञ्चरात्र को सात्वत्वममं (३४८।३४
एवं ८४) कहा गया है। बाण ने अपने हर्षचरित (आठवाँ उच्छ्वास) में महान् आचार्य दिवाकरित्र के पास
आये हुए विभिन्न घर्मों एवं दर्शनों के विभिन्न सिद्धान्तों के मानने वालों में भागवतों एवं पाञ्चरात्रिकों का भी उल्लेख
किया है—'विटपच्छायासु निषण्यः...भागवतैर्विणिभिः केशलुञ्चनैः कापिलैजैनलोकायितकैः...पौराणिकैः साप्ततन्तवैः शैवैः शाब्दैः पाञ्चरात्रिकैरन्यैश्चात्र स्वसिद्धान्ताज् शृष्यद्भिः आदि।' सम्भवतः बाण ने भागवत को सामान्य
भित्त-सम्प्रदाय के रूप में रखा है और पाञ्चरात्र को भागवत सम्प्रदाय को विभिन्न शाखाओं में एक शाखा के रूप
में माना है, जिसको एक विशेषता थी कि वह चार ब्यूहों वाला सिद्धान्त मानता था। यह 'ब्राह्मणश्चमणन्याय' के
समान है। वृद्धहारीतस्मृति (११।१८१-१९२) में आया है कि शाण्डिल्य ने अवैदिक विधि से विष्णु की पूजा करने
केलिए एक ग्रंथ का प्रणयन किया, जिससे विष्णु ने उन्हें नरक में पड़ जाने का शाप दिया, किन्तु जब शाण्डित्य उनसे

प्रवर्तक मानते थे, क्योंकि वे चारों वेदों में परम कल्याण की बात नहीं पा सकते थे। द्रोणपर्व (२९।२६-२९) में परमात्मा की लोक-कल्याणकारी चार मूर्तियों के विषय में एक अन्य एवं भिन्न निर्देश है, यथा—एक मूर्ति इस पृथिवी पर तप करती है, दूसरी इस लोक के अच्छे एवं बुरे कमों पर एक आँख रखती है, तीसरी इस लोक में मानव रूप में आती है और मानव के समान कार्य करती है, और चौथी एक सहस्र वर्षों तक सोती रहती है और जब जागती है तो योग्य लोगों को वरदान देती है।

यह द्रष्टव्य है कि महाभारत में भी नारद का नाम पांचरात्र से सम्बन्धित है। ऐसा आया है—'यह रहस्यमय सिद्धान्त जो चारों वेदों से समन्वित है, जिसमें सांस्य एवं योग के कल्याणकारी फल हैं और जो पांचरात्र के नाम से विख्यात है, सर्वप्रथम नारायण के अघरों से प्रस्फुटित हुआ और फिर नारद द्वारा सुनाया गया।' (शान्तिपर्व 3391888-888)1

भिक्त सम्प्रदाय के अन्य बड़े समर्थक हैं भगवद्गीता (जो नारायणीय छपाख्यान ३४८।८ में स्पष्ट रूप से घोषित है), भागवतपुराण एवं विष्णुपुराण। गीता में भिक्त एवं भक्त शब्द कई बार आये हैं। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि तथाकथित नारदमिक्तसूत्र, नारद-पांचरात्र, शाण्डिल्य-मिक्तसूत्र तथा अन्य पांचरात्र-संहिताएँ जो प्रकाशित हैं, गीता से पश्चात्कालीन हैं। अग्नि० (३९।१-५) में पांचरात्र पर प्रणीत २५ ग्रन्थों का उल्लेख है। महेश्वरतन्त्र ने भी विष्णु द्वारा प्रवर्तित २५ पांचरात्र तन्त्रों का वर्णन किया है और उनकी मर्त्सना की है और कहा है कि वे सब सत्य का प्रतिपादन नहीं करते (२६।१६)।

भक्ति के प्रतिपादन पर विशाल साहित्य है। थोड़े-से संस्कृत के ग्रन्थों, उनके अनुवादों एवं कुछ अंग्रेज़ी के ग्रन्थों का यहाँ उल्लेख होगा। वर्थ, हाप्किंस, कीथ, डा० आर० जी० मण्डारकर आदि ने श्री कृष्ण के स्वरूप के विषय में विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं कि वे उस विष्णु के स्वरूप क्योंकर हैं जो ऋग्वेद में सूर्य का एक अन्य रूप है, और आगे चलकर ब्राह्मणकाल में जो सबसे बड़ा देवता हो गया (यथा—ऐत० क्रा॰ 'अग्निर्वे देवानां अवमः, विष्णुः परमः) तथा यज्ञ का स्वरूप माना गया (यज्ञो वै विष्णुः)। जव पाण्डवों के मित्र कृष्ण परम देव मान लिये गये तो गीता में पूर्ण अवतारों के सिद्धान्त की अभिव्यक्ति हो गयी। भिन्ति-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ये हैं-शान्तिपर्व का नारायणीय उपाख्यान (अध्याय ३२२-३५१, चित्रशाला संस्करण एवं ३२२-३३९ आलोचनात्मक संस्करण); मगवद्गीता; कतिपय पुराण, जिनमें विष्णु एवं भागवत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं भं; शाण्डिल्य का मिक्तसूत्र, स्वप्नेश्वर

दया की प्रार्थना करते हुए उनके चरणों में गिर पड़े तो वे प्रसन्न हो उठे और नरक-वास के शाय की अवधि को कम कर विया।

७४. यह ब्रष्टच्य है कि रामानुज (जन्म, शक संवत् १०४९, ई० ११२७) ने उस भागवत को ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य में कहीं भी उद्भुत नहीं किया है, जो वल्लभ एवं चैतन्य तथा उनके शिष्यों जैसे मध्यकालीन वैष्णवों के लिए सर्वोत्तम एवं एक मात्र प्रमाण था। किन्तु उन्होंने विष्णुपुराण से एक सौ से अधिक क्लोक उद्धृत किये हैं। वास्तव में वेदार्थसंग्रह में रामानुज का कथन है कि जिस प्रकार श्रुतियों में नारायण का अनुवाक (विभाग) पर-बहा के विशिष्ट स्वरूप का उद्घाटन करता है, उसी प्रकार विष्णुपुराण परब्रह्म के विशेष प्रदर्शन में प्रवृत्त है, तथा अन्य पुराणों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि वे इसके विरोध में न हों (यथा सर्वासु श्रुतियु केवल परब्रह्मस्वरूपविशेषप्रदर्शनायैव प्रवृत्तो नारायणानुवाकस्तथेदं वैष्णवं चं पुराणं . . . परब्रह्मस्वरूपविशेषिनर्णयायैव-प्रवृत्तम् । अन्यानि सर्वाणि पुराणान्येतदिवरोधेन नेयानि । वेदार्थसंग्रह, वाक्य-समूह ११०-१११, प्० १४१-१४२

का इस पर भाष्य (जीवानन्द, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, १८७६) एवं कोवेल द्वारा इन दोनों का अंग्रेजी अनुवाद (१८७८); शाण्डिल्यसंहिता (मिनतखण्ड) जो अनन्तशास्त्री फड़के द्वारा सरस्वती मवन सीरीज में सम्पादित है (१९३५); नारदमक्तिसूत्र, अंग्रेजी अनुवाद, नन्दलाल सिंह द्वारा (पाणिनि आफिस, इलाहाबाद, १९११); नारद-पांचरात्र (ज्ञानामृतसार विमाग के साथ) ११ अध्यायों में, अंग्रेजी अनुवाद, स्वामी विजयानन्द (वही, १९२१) ; सर आर० जी मण्डारकर का 'वैष्णविज्म शैविज्म आदि' (१९१३) ; दास गुप्त की 'हिस्ट्री आव इण्डियन फिलॉसाफी' (जिल्द ४, १९४९), जहाँ इन्होंने मागवतपुराण एवं मध्व, वल्लभ, चैतन्य एवं उनके अन्य अनुयायियों के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है; ग्रियर्सन का लेख 'ग्लीनिंग्स फाम मक्तमाला आव नाभादास' (जे॰ आर॰ ए॰ एस॰, १९०९,प० ६०७-६४४); डकन ग्रीनलेस कृत 'हिस्ट्री आव श्रीवैष्णवाज,' (अडघार, १९५१); नारदमक्तिसूत्र (मूल, अनुवाद एवं टिप्पणी, स्वामी त्यागीशानन्द, रामकृष्ण मठ, मेलापुर, मद्रास, १९४३, जो ५ अध्यायों एवं ८४ सूत्रों में है); पंचरात्र एवं अहिर्बुब्न्य-संहिता पर डा॰ ओटो श्रेडर की भूमिका (अडचार, १९१६); अहिर्बुब्न्य-संहिता (दो जिल्दों में, अडचार, १९१६); जयाख्य-संहिता, संस्कृत एवं अंग्रेजी भूमिका के साथ (गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज, १९३१); परमसंहिता (गायकवाड़ ओ॰ सी॰, १९४६, डा॰ एस्॰ के॰ आयंगर कृत अंग्रेजी भूमिका); नारद-पांचरात्र की बृहद्ब्रह्मसंहिता (आनन्दाश्रम सीरीज, १९१२); नारायणतीर्थ-कृत भिनतचिन्द्रका (शाण्डिल्य के भिनतसूत्र की टीका) जो सरस्वती भवन सीरीज में है (१९१२ एवं १९३८); मित्र मिश्रं का भिक्तप्रकाश (चौखम्बा सीरीज, १९-३४); अनन्तदेव का भिक्तिनिर्णय (पं० अनन्तशास्त्री फड़के द्वारा सम्पादित, बनारस, १९३७)। दक्षिण भारत में मिनत साहित्य बहुत अधिक है, यथा आळवारों के स्तोत्र, किन्तु कितपय कारणों से इसकी ओर निर्देश नहीं किया जा रहा है।

पुराणोक्त मिन्त के स्वरूप के विषय में चर्चा करने के पूर्व 'मिन्त' एवं 'मागवत' शब्दों की व्याख्या संक्षेप में आवश्यक है। शाण्डिल्य ने मिन्त की परिमाषा (सा परानुरक्तिरीश्वरे) की हैं ', जो दो प्रकार से व्याख्यायित

(डकन कालेज संस्करण, १९५६)। रामानुज ने वेदान्तसूत्र (२।२।४१ एवं ४५) के भाष्य में पौष्करसंहिता, सात्वतसंहिता एवं परमसंहिता को पाञ्चरात्र संहिताओं में परिगणित किया है, किन्तु कहीं भी उन्होंने यह नहीं अंगीकार किया है कि वे पञ्चरात्र सिद्धान्त के अनुयायी हैं। भागवत पर बहुत-सी टीकाएँ और टीकाओं पर बहुत-सी उप टीकाएँ हैं (वास गुप्त ने जिल्द ४, पू०१-२ में भागवत की ४० टीकाओं की सूची दी है)। यहाँ पर मध्व एवं अन्य बड़े वेदणव आचार्यों के शिष्यों एवं अनुयायियों की बहुत-सी टीकाओं की ओर संकेत करना अनावश्यक है। बल्लभाचार्य (१४७९-१५३१ ई०) के अनुसार सन्देह की स्थित में भागवत परम प्रमाण है (वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राण चैव हि। समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्। उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम्।। तत्त्व-दीपनिबन्ध, अहमदाबाद, १९२६); और देखिए प्रो० जी० एच्० भट्ट (इण्डि० हिस्टा० क्वा०, जिल्द ९, ३००-३०६)। बल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग (जिसका अर्थ है कृष्णानुग्रह) है और उनका कथन है कि कल्युग में भिक्त की प्राप्ति भी कठिन है।

•••• ७५. अयातो भिक्तिजिज्ञासा। सा परानुरिक्तरीक्वरे। क्षाण्डिल्य (१।१।१-२); स्वप्नेक्वर ने यह टीका की है—'आराध्यविषयकरागत्वमेव सा। इह तु परमेक्वरिविषयकान्तःकरणवृत्तिविक्षेष एव भिक्तः।' जिस क्लोक को आषार माना गथा है वह यह है—'या प्रीतिरिविवेकानां विषयेष्वनपायिनी। त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु॥' विष्णुपु० (१।२०।१९)। स्वप्नेक्वर नेगीता उद्धृत की है—'मिष्चित्ता मद्गतप्र।णा बोधयन्तः परस्परम्। कथययन्तक्व

हो सकती है—'मिक्त का सर्वोच्च रूप है परमेश्वर में अनुरिक्त' या 'परमेश्वर के प्रति सर्वोच्च अनुरिक्त ही मिक्त है।' शाण्डिल्य के भाष्यकार स्वप्नेश्वर ने प्रथम व्याख्या ठीक मानी है, किन्तु नारदमक्तिसूत्र, तिलक आदि ने दूसरी व्याख्या अपनायी है। स्वप्नेश्वर ने व्याख्या की है---'भिक्त' का सामान्यतः अर्थ होता है 'उसके प्रति अनुराग जिसे जीतना है या जिसकी पूजा करनी है', किन्तु इस शास्त्र में इसका अर्थ है—'मन की ऐसी विशेष स्थिति जिसमें परमेश्वर ही लक्ष्य हो।' ऐसा कहकर स्वप्नेश्वर ने विष्णुपुराण का श्लोक उद्धृत किया है जिसमें मक्त प्रह्लाद ने कहा है—'वह अटल प्रीति जिसे अविवेकी लोग सांसारिक वस्तुओं के लिए चाहते हैं, मुझमें से, जो तुम्हें सदैव स्मरण करता है, कभी न हटे। 'गीता में भी 'प्रीति' शब्द आया है। उसमें आया है कि ('मक्ति' शब्द 'मज्' घातु से निःसृत हुआ है) "जिनके मन मुझमें लगे हैं, जिनके प्राण मुझे समर्पित हैं, जो एक-दूसरे को बोधित करते रहते हैं, जो मेरे बारे में कहते रहते हैं, वे सदैव तुष्ट रहते हैं और प्रसन्न रहते हैं। इनमें जो सदैव (लगातार) मक्ति में लगे रहते हैं और प्रीतिपूर्वक मेरी सेवा करते रहते हैं, उन्हें मैं ऐसा ज्ञान देता हूँ जिसके द्वारा वे मुझ तक पहुँचते हैं।" स्वप्नेश्वर ने व्याख्या की है कि 'अनुरक्ति' शब्द ('अनु' उपसर्ग के साथ) का प्रयोग यह बतलाने के लिए हुआ है कि ईश्वर के प्रति प्रीति या रक्ति तब उदित होती है जब भक्त ईश्वर का ज्ञान एवं उसकी अन्य उपाधियों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। विष्णुपुराण में 'मिक्त' के स्थान पर 'अनुराग' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जहाँ पर राम एवं उनके माइयों के स्वर्गारोहण की चर्चा करते हुए ऐसा वर्णन है कि कोसल राजधानी के लोग, जो भगवान् (विष्णु) के उन अवतीर्ण अंशों के प्रति अटूट श्रद्धा (भिक्त) रखते थे और जिनके मन उनमें लगे थे, उन्हीं के साथ उसी लोक की स्थिति में पहुँच गये। शाण्डिल्य ने आगे कहा है " कि यह ऐसा उपदेश है जिससे वह व्यक्ति अमर हो जाता है जो भगवान् में निवास करता है (जो भगवान् में स्थित रहता है)। छान्दोग्य० (१।१।३०) में आया है-- जो ब्रह्म में स्थित रहता है वह अमरत्व प्राप्त करता है।' तात्पर्य यह है कि परमात्मा में स्थित रहने से अमरत्व प्राप्ति की जो बात है उससे व्यक्ति में परमात्मा की जानकारी के लिए प्रयत्न करने या परमात्मा के प्रति परम मक्ति उत्पन्न करने के प्रयत्न के प्रति कोई उदासीनता नहीं आयेगी। यह द्रष्टव्य है कि नारद के सूत्र शाण्डिल्य के सूत्रों के केवल अन्वय मात्र हैं।" शाण्डिल्य में आगे (सूत्र ७) आया है कि मिनत, ज्ञान की माँति कर्स नहीं है, क्योंकि यह इच्छा के प्रयत्न का

मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।। तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । बवामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।'
(१०१९-१०) । 'अनुरक्ति' पर स्वप्नेश्वर ने कहा है—'भगवन्महिमादिज्ञानावनु पश्चात् जायमानत्वीबनुरक्तिरित्युकतम् ।' स्वप्नेश्वर ने विष्णुपुराण (४।४।१ १०३) का हवाला विया है, यथा—'येपि तेषु भगववंशेष्वनुरागिणः
कोसलनगरजानपदास्तेपि सन्मनसस्तत्सालोक्यतामेवापुः।' भगवत का कथन है कि परमोच्च भक्ति को अवाधित
(अव्यवहित) एवं अहैतुकी होना चाहिए ('अहैतृक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमें') । भागवत (३।२९।१२) । आगे
के श्लोक ने परम-लक्ष्य के चार स्तर वींणत किये हैं—'सालोक्यसाप्टिसामीप्यसायुज्येकत्वमप्युत' (एकत्व पांचवां ने अवीत् अन्तिम लक्ष्य है) ।

७६. तत्संस्य स्यामृतत्वोपवेशात् । शाण्डित्य (१।१।३०); स्वप्नेश्वर ने व्याख्या की है—'तिस्मित्रीश्वरे संस्था भिवतर्यस्य स तथोक्तः।' छान्दोग्य में घोषित है—'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' (२।२३।१) और यही अर्थ ब्रह्मसूत्र

(१।१।७) 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्' से भी प्रकट होता है।

७७. 'अवातो भिन्तं व्याख्यास्यामः। सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।' नारदभित्तसूत्रः (१।३)।

0

अनुसरण नहीं करती अतः यह ज्ञान से भिन्न है, जैसा कि गीता ने कहा है कि आत्म-समर्पण की स्थिति कई जन्मों के ज्ञान के उपरान्त आती है।

हम लोगों के पूर्व पुरुषों में श्रेणी-विभाजन की एक बड़ी प्रवृत्ति थी। भिक्त को भी लौकिकी (सामान्य लोगों की), वंदिकी (वेदविहित) एवं आध्यात्मिकी (दार्शनिक), यथा—पद्म० (५।१५।१६४); या मानसी, वाचिकी एवं कायिकी (शरीर द्वारा की हुई, यथा—उपवास, व्रत आदि), यथा पद्म० (५।१५।१६५-१६८); सात्विकी, राजसी एवं कामसी (भागवत ३।२९।७-१० एवं पद्म ६।१२६।४-११); उत्तमा, मध्यमा एवं कनिष्ठा (ब्रह्माण्ड ३।३४।३८-४१) आदि विविध श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

रामानुजीय एवं अन्य वैष्णव शाखाओं के ग्रन्थों में प्रपत्ति (आत्म-समर्पण) को भिक्त से मिन्न माना गया है। इसमें पाँच बातें हैं—अनुकूलता का संकल्प, प्रतिकूलता का त्याग, यह विश्वास कि परमात्मा (भक्त की) रक्षा करेगा; भक्त की रक्षा के लिए भगवद्भजन तथा आत्मिनिक्षेप कर देने पर असहायता के माव का प्रदर्शन। मिन्त के अन्य पर्याय शब्द हैं ध्यान, उपासना आदि और वह प्रपत्ति की सहायिका है। '' गीता में इस प्रकार का भेद नहीं बताया गया है। गीता (२।७) में अर्जुन ने अपने को 'प्रपन्न' (जो मोक्ष के लिए आ पहुँचा हो या जिसने मोक्ष के लिए आत्म-समर्पण कर दिया हो) कहा है। गीता के अन्त में अन्तिम परामर्श वही है जो पश्चात्कालीन ग्रन्थों में प्रपत्ति है—'अपने मन को मुझमें लगाओ, मेरे भक्त हो जाओ, मेरा यज्ञ करो, मुझे नमस्कार करो; तुम अवश्य ही मुझ तक पहुँचोगे; मैं सत्य ही घोषित करता हूँ, तुम मेरे प्रिय हो। सभी कर्तव्यों को त्याग कर मेरी शरण में आ जाओ; मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त करूँगा; दुखी न होओ।'' और देखिए गीता ७।१४, १५ एवं १५।४ जहाँ 'प्रपद् शब्द के अन्य प्रयोग आये हैं। गीता एवं अन्य ग्रन्थों में मिन्ति पर जो सिद्धान्त प्रतिपादित है वह यही है कि

७८. ब्रह्माण्ड ने नारव, शुक्त, अम्बरीष, रिन्तिबेब, मारुति, बलि, विभीषण, प्रह्लाव, गोपियों एवं उद्धव को इत्तमा भिक्त के अन्तर्गत भक्तों में गिना है, विसष्ठ एवं मनु को मध्यमा भिक्त के अन्तर्गत तथा साधारण लोगों को किन्छा के अन्तर्गत परिगणित किया है। नारवभिक्तसूत्र (८३) ने इनमें कई को 'भक्त्याचार्याः' कहा है, 'इत्येवं ववन्ति। जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमारच्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्य-शेष-उद्धव-आरुणिबलिहनुमय्-विभीषणावयो भक्त्याचार्याः।' कुमार ब्रह्मा के पुत्र नारव के लिए प्रयुक्त हुआ है।

७९. व्यान्शब्ववाच्या भिक्तिवद्याभेवाद् बहुविषा।...प्रपत्तिर्नाम 'आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रिक्षव्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मिनिक्षेपकार्पण्यम्' इत्याद्यंगपञ्चकयुक्ता। यतीन्द्रमतदीपिका (पृ०६४)। इस प्रन्य में आया है कि यह प्रपत्ति गुंच के मुख (अधरों) से सुनी जानी चाहिए और तभी वह इसकी व्याख्या नहीं उपस्थित करता। कुछ लोग 'आत्मिनिक्षेपः कार्पण्यं' पढ़ते हैं और इस प्रकार प्रपत्ति के अंगों को ६

८०. मन्मना भव मब्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुष। मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। सर्वधर्मान् विरित्यक्य मामेकं शरणं वज। अहं त्वा सर्वपापेम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुन्यः।। गीता (१८।६५-६६)। यहाँ पर 'वर्मान्' का अर्थ है वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि) एवं आक्षमों (यथा—गृहस्य, वानप्रस्य आदि) के कर्तव्य, या 'वर्नान्' उन कर्मों की ओर निर्देश करता है जो वेद एवं स्मृतियों में व्यवस्थित हैं। यह अन्तिम प्रवोधन नवम अध्याय का पुनरावर्तन-सा है, यथा—'अन्मना...नमस्कुष। मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्यरायणः।।' (११३४)।

भिनत से भगवान् का 'प्रसाद' (अनुग्रह या कृपा) प्राप्त होता है जिससे भक्त मोक्ष प्राप्त करता है। " गीता (१८। ५६, ५८, ६२) में आया है—'वह व्यक्ति, जो यद्यपि सदैव कर्म करता रहता है, किन्तु मुझ पर ही पूर्णरूपेण निर्मर रहता है, मेरे अनुग्रह से अक्षय एवं अमर स्थान प्राप्त करता है; यदि तुम मुझ पर अपना मन केन्द्रित करो, तुम मेरी कृपा से सभी कठिनाइयों को पार कर जाओगे, तुम भगवान् की शरण में सम्पूर्ण हृदय से जाओ, हे अर्जुन, उसी की कृपा से परम शान्ति एवं अमर स्थान पाओगे। विष्णुपुराण में मगवान् ने प्रह्लाद से कहा है—'तुम्हारा मन मुझमें निश्चल एवं भिक्त पूर्वक अवस्थित है, तुम मेरे प्रसाद (कृपा या अनुग्रह) से निर्वाण प्राप्त करोगे। मगवान् के प्रसाद की चर्चा कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् में मी है ं--- 'छोटे-से-छोटा एवं बड़े-से-बड़ा आत्मा समी जीवों के हृदय में निहित है; वह व्यक्ति जो अकतु (विना किसी इच्छा का है) एवं वीत-शोक (शोकरहित) है, सृष्टिकर्ता की कृपा से आत्मा की महत्ता को देखता है।

गीता एवं नारायणीय उपाल्यान की वातों में बड़ा अन्तर है। गीता में, यद्यपि परमात्मा को वासुदेव कहा गया हैं , किन्तु चार व्यूहों वाला सिद्धान्त, जो कि नारायणीय की विशेषता है, नहीं पाया जाता। इतना ही नहीं, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध जैसे नाम भी गीता में नहीं आते। प्रस्तुत लेखक के मत से गीता नारायणीय उपा-ख्यान से पुरानी है, क्योंकि इसमें मक्ति का सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित है, जब कि नारायणीय में पांचरात्र, वाला सिद्धान्त कई भिवत-शाखाओं में से एक है। नारायणीय से पता चलता है कि गीता का प्रतिपादन पहले हो चुका था और नारद द्वारा श्वेतद्वीप से लाया गया ज्ञान वही है जो हरिगीता (अध्याय ३४६।१०-११, ३४८।५३-५४) में उद्घोषित है। शान्ति० (३४८।५५-५७) में उल्लिखित है कि केवल एक व्यूह था, या दो, तीन या चार थे तथा एकान्ती लोग अहिंसा पर बहुत बल देते थे। वासुदेव की पूजा पाणिनि से प्राचीन है, क्योंकि पाणिनि ने 'वासुदेवक' शब्द की रचना का उल्लेख किया है और उसका अर्थ किया है, 'वह, जिसकी पूजा का आघार वासुदेव हो' (पाणिनि ४।३।९५ एवं ९८, 'मिनतः'।...'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्।' वासुदेवः मिनतः सेव्यः यस्य स वासुदेवकः)। देखिए डा॰ भण्डारकर का ग्रन्थ 'वैष्णविज्म, शैविज्म आदि' (वाक्य-समूह २-१०, जिल्द ४, संगृहीत ग्रन्थ) जहाँ वासुदेव पूजा की प्राचीनता के विषय में विवेचन है। पाञ्चरात्र के विषय में धर्मशास्त्र के मध्यकालीन लेखकों की सामान्य धारणा का प्रतिनिधित्व पारिजात नामक ग्रन्थ में है, जो कृत्यरत्नाकर में उद्भृत है और उसमें आया है कि पाञ्चरात्र एवं पाशुपत शास्त्र तभी तक प्रामाणिक हैं जब तक वे वेदों के विरोध में नहीं जाते। यही दृष्टिकोण सूतसंहिता में भी पाया जाता है, जिस पर प्रसिद्ध माधवाचार्य ने एक टीका लिखी है।

- ८१. भक्तिप्रपत्तिम्या प्रसन्न ईश्वर एव मोक्षं दवाति। अतस्तयोरेव मोक्षोपायत्वम्। यतीन्द्रमतवीपिका (90 E8) 1
- ८२. यया ते निश्चलं चेतो मिय भक्तिसमन्वितम् । तथा त्वं मत्प्रसादेन निर्वाणं परमाप्स्यसि ।। विष्णुपुराष्ट्र (११२०१२८)।
- ८३. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गृहायाम् । तमऋतुः पश्यति वीतशोको वातुः प्रसाबाव् महिमानमात्मनः ।। कठोप० (२।२०), श्वेताश्व० (३।२०, जहाँ आत्मा गुहायां निहितोस्य जन्तोः, अऋतुम्, महि-यानमीशम् का पाठ आया है)।
- ८४. बहुनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । बासुदेवः सर्विमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ गीता (७।१९); बृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि । गीता (१०।३७) ।

#### बमंबास्य का इतिहास

RER

कुछ पुराणों में 'वासुदेव' शब्द 'वसुदेव' से व्युत्पन्न न मान कर (वसुदेव के पुत्र को न मान कर) 'वस्' (अर्थात् वास करना या रहना) घातु से निष्पन्न माना गया है। " 'वासुदेव इसीलिए कहा जाता है कि सभी जीव परमात्मा में निवास करते हैं और वासुदेव सभी जीवों में सब के आत्मा के रूप में निवास करते हैं। मिलाइए गीता (९।२९): मैं सभी प्राणियों के लिए समान हूँ; न तो कोई मेरा अप्रिय है और न कोई प्रिय; किन्तु जो मुझे श्रद्धा के साथ मजते हैं वे मुझमें वास करते हैं और मैं भी उनमें वास करता हूँ।'

'भगवत्' शब्द की व्याख्या भी आवश्यक है। यह शब्द सामान्यतया वासुदेव के लिए प्रयुक्त होता था। विष्णुपुराण (६।५।७४ एवं ७५) में आया है—'भग शब्द समाहार रूप से ६ गुणों के लिए व्यवहृत हुआ है, यथा—ऐश्व्यं, वीर्य (पुरुषार्थ), यश, शुभता, ज्ञान एवं सांसारिक वस्तुओं के प्रति वैराग्य (उदासीनता) की पूर्णता। यह महान् भगवान् शब्द परमन्नह्म वासुदेव के लिए प्रयुक्त है किसी अन्य के लिए नहीं।' विष्णुपुराण (६।५।७८-७९) ने पुनः कहा है कि 'भगवत्' शब्द अन्य लोगों के लिए गौण रूप में प्रयुक्त हो सकता है, यदि उनमें विशेष गुण हों, यथा—"वह व्यक्ति 'भगवान्' कहा जा सकता है, जो (लोक की) उत्पत्ति एवं प्रलय, जीवों की प्रगति (फल) एवंगति (अन्तिम नियति) का ज्ञान रखता हो और यह जानता हो कि विद्या एवं अविद्या क्या है।"

भागवत वह है, जो मगवत् (अर्थात् वासुदेव) की पूजा करता है। यह एक अति पुरातन शब्द है। ईसा पूर्व दूसरी शती के बेसनगर स्तम्म के लेख में मागवत शब्द आया है, वहाँ अन्तलिकित (ऐण्टियाल्काइडिस) के दूत एवं तक्षशिला के यूनानी हेलियोदोर (हेलियोडोरस) ने अपने को भागवत (वासुदेव का मक्त) कहा है (देखिए प्रो॰ ए॰ के॰ नारायण कृत 'इण्डो-ग्रीक्स', १९५७)। ऐसा प्रतीत होता है कि 'भगवान्' विशेषण शिव के लिए भी प्रयुक्त होता था। श्वेताश्वतरोपनिषद् (३।११) ने शिव को 'भगवान्' (सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः) कहा है। पतव्यालि ने अपने भाष्य (पाणिनि, ५।२।७६) में 'शिव-मागवत' (शिवो भगवान् मिक्तिरस्य शिवभागवतः, अर्थात् वह मक्त जो अपने साथ शिव के आयुघ त्रिशूल को लेकर चलता है) लिखा है। चित्तीड़गढ़ (राजस्थान) में नगरी नामक स्थान के पास घोसुण्डी के संस्कृत प्रस्तराभिलेख (एपि॰ इण्डि॰, जिल्द १६, पृ॰ २५-२७ एवं इण्डि॰ ऐण्टी॰, जिल्द ६१, पृ॰ २०३-२०५) में संकर्षण एवं वासुदेव को भगवान् कहा गया है और दोनों को सर्वेक्वर माना गया है (लगभग ई॰ पू॰ दूसरी शती), किन्तु बेसनगर-लेख में केवल 'वासुदेव' आया है और हेलियोदोर

८५. सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मिन । भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ।। विष्णुपु० (६।५।८०), ब्रह्मपु० (२३३।६८, यहाँ 'निवसन्ति परात्मिन' आया है) । एक अन्य श्लोक है—'भूतेषु वसते योन्तर्व- सन्त्यत्र च तानि यत् । घाता विघाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥' विष्णुपु० (६।५।८२), ब्रह्मपु० (२३३।७०, किन्तु यहाँ यह आया है कि इसमें वही कथन है जो प्रजापित ने महान् ऋषियों को बताया) । विष्णुपु० (१।२।१२-१३) में बाया है—'सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः । ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥'

८६. ऐस्वयंस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चेव वण्णां भग इतीरणा।। एवमेव महाञ्छव्दो मैत्रेय भगवानिति। परमज्ञ ह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः।। विष्णुपु० (६।५।७४ एवं ७६)। वृद्धहारीतस्मृति (६।१६४-१६५) में आया है— 'ऐश्वयं च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा। ज्ञानं बलं यदेतेवां वण्णां भग इतीरितः। एश्वर्णुणेः प्रपूर्णो यः स एव भगवान् हरिः॥' शंकराचार्यं ने ब्रह्मसूत्र (२।२।४४) के भाष्य में व्यूहों के विषय में कहा है— ईश्वरा एवते सर्वे ज्ञानं श्वर्यशक्तिवलवार्यतेजोभिरंश्वरं वर्में रिन्वता अभ्युपगम्यन्ते।' शंकराचार्यं ने सम्भवतः विष्णुपु० (६।५।७८-७९) का अनुसरण किया है।

ने अपने को भागवत कहा है। कुछ प्रारम्भिक लेखों में, यथा—सिंहबर्मा के पीकर दान-पत्र (एपि० इण्डि॰, जिल्द ७, पृ० १६१) एवं गुप्त अभिलेख संख्या ८ (पृ० २७) में सिंहवर्मा एवं समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय परम भागवत कहे गये हैं। ब्रह्मपुराण (१९०।२०) में अकूर को महाभागवत कहा गया है। पद्मपुराण (६।२८०।२७) ने भहाभागवत की परिभाषा की है।

प्राचीन ग्रन्थों में तीन मार्ग उल्लिखित हैं, यथा—कर्ममार्ग, भिक्तमार्ग एवं ज्ञानमार्ग। यहाँ पर थोड़ा मिक्त एवं ज्ञान के मार्गों पर लिखना आवश्यक-सा है। ये दोनों मार्ग हमें एक ही लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की ओर ले जाते हैं। किन्तु दोनों की पहुँच के ढंग मिन्न हैं। ज्ञानमार्ग (या अव्यक्तोपासना) में ब्रह्म के, परमात्मा या निर्गुण के रूप में केवल पुस्तकीय ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती; उसके लिए 'ब्राह्मी स्थिति' परमावश्यक है (गीता २।७२)। यह लम्बे प्रयोग एवं प्रयास से ही सम्भव है (गीता २।५५ आदि)। ज्ञान मार्ग में व्यक्ति जो कुछ करता है वह ब्रह्मापंण होता है (गीता ४।१८-२४)। मिनतमार्ग में मनंत ईश्वर के प्रसाद के लिए आत्म-समर्पण कर देता है और वह जो कुछ करता है वह अपने आराध्य देव को समर्पित कर देता है (यह सगुण एवं व्यक्त उपासना है)। गीता (१२।१) में अर्जुन ने मगवान् से प्रश्न किया है-- 'जो अनन्यप्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार (इस प्रकार) से निरन्तर आपके मजन-ध्यान में रहकर आपको (सगुण परमेश्वर को), और दूसरे लोग जो केवल अविनाशी एवं निराकार (अव्यक्त) ब्रह्म को ही अति श्रेष्ठ माव से मजते हैं, उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं ?' इंसका उत्तर गीता (१२।२-७) में इस प्रकार है--'मुझमें मन लगाकर निरन्तर मेरे मजन-ध्यान में लगे हुए जो मक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धां से युक्त होकर मुझ (सगुण रूप परमेश्वर) को मजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं। किन्तु जो व्यक्ति इन्द्रियों के समुदाय को मली माँति वश में करके सर्वव्यापी, अनिर्वचनीय (अकथनीय), सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी (सिच्चदानन्दघन ब्रह्म) को निरन्तर अभिन्न माव से (समबुद्धि से) मजते हैं, वे सभी प्राणियों में रत तथा सब में समान माव वाले मुझको ही प्राप्त होते हैं। उनके विषय में. जिनके मन अव्यक्त में लगे रहते हैं, क्लेशं अधिकतर है (अर्थात् निराकार ब्रह्म में आसक्त रहने वाले व्यक्तियों के साधन में परिश्रम विशेष है), क्योंकि अव्यक्त लक्ष्य की प्राप्ति देहघारी जीवों द्वारा कठिनता से होती है। किन्तु वे व्यक्ति जो सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें समर्पित कर देते हैं और मुझको ही सर्वोत्तम लक्ष्य समझ कर मजते रहते हैं, हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी मक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूपी संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।' नवें अध्याय में मिन्तिमार्ग के विषय में यों कथित है—'यह विद्याओं में प्रमुख है, रहस्यों (गोपनीयों) में प्रमुख है, यह अति पवित्र है, प्रत्यक्ष फलदायक है, धर्मयुक्त

८७. तापादिपंचसंस्कारी नवेज्याकर्मकारकः। अर्थपंचकिवद् विप्रो महाभागवतः स्मृतः॥ पद्म० (६१२८०। २७), ताप आदि के लिए देखिए ऊपर इसी अध्याय की पाद-िष्पणी ७१; नव प्रकार की पूजा के लिए देखिए आगे वाली टिप्पणी। जिन पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत रामानुज सम्प्रदाय के सिद्धान्त विवेचित हैं वे ये हैं—(१) जीव, (२) ईश्वर, (३) उपाय (ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग), (४) फल या पुरुषार्थ (मानवजीवन के लक्ष्य), (५) विरोधिनः (भगवत्प्राप्ति के मार्ग में विरोधीगण अर्थात् बाधाएँ)। नारायण-कृत अर्थपंचक नामक प्रन्य में इन पाँचों शीर्षकों के ५-५ विभाग भी लिखे गये हैं। देखिए डा० आर० जी० भण्डारकर का लेख 'प्रोसीडिंग्स आद-दि इष्टरनेशनल कांग्रेस आव ओरिएण्टलिस्ट्स', वियेना, १८८६; आर्थ विभाग, पू० १०१-११०, जहां अर्थपंचक का निष्कर्ष विया गया है।

४६६

है, अविनाशी है तथा बड़ा सुगम है' (गीता ९।२)। गीता के अनुसार मक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग से अपेक्षाकृत सरल है।

मागवत (७।५।२३-२४) में मिन्त के ९ प्रकार कहे गये हैं — विष्णु के विषय में सुनना, उनका कीर्तन करना (बार-बार नाम लेना), स्मरण करना, पाद-सेवन करना (विष्णु की मूर्ति की सेवा करना), अर्चन करना, (पूजा करना), वन्दन करना (नतमस्तक हो प्रणाम करना), दास्य भाव ग्रहण करना (अपने को विष्णु का दास सम- जना), विष्णु को सखा (मित्र) के रूप में मानना एवं आत्मिनवेदन (अर्थात् उन्हें अपने आपको समिपत कर देना)। नारदमितसूत्र (८३) के अनुसार यह ११ प्रकार की है, यथा—गुणमाहात्म्य, रूप, पूजा, स्मरण, दास्य, सख्य, वात्सल्य, कान्त, आत्मिनवेदन, तन्मयता, परम विरह की ११ आसिक्तयाँ। वृद्धहारीतस्मृति (८१-८३) ने थोड़ अन्तर के साथ ९ प्रकार किये हैं। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि ये ९ प्रकार एक ही समय प्रयोजित होते हैं। एक भक्त इनमें से किसी एक का सहारा लेकर सच्चा मक्त हो सकता है और मोक्ष पा सकता है (शाण्डिल्यसूत्र ७३)। गीता (७।१६-१७) में आया है— उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु एवं ज्ञानी—ऐसे चार प्रकार के मक्त मुझको मजते हैं। उनमें नित्य मुझमें एकीमाव से स्थित अनन्य प्रेममिक्त वाला ज्ञानी मक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रियहूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रियहैं। 'शाण्डिल्य॰ में आया है कि मिन्त के चार स्वरूप, यथा—स्मृति, कीर्तन, कथा (उनके विषय की कथाएँ कहना) एवं नमस्कार उन लोगों के लिए हैं जो आर्त हैं या प्रायश्चित्त करना चाहते हैं। विष्णुपुराण (२।६।३९) में आया है कि कृष्ण का स्मरण समी प्रायश्चितों में श्रेष्ठ है। शाण्डिल्य॰ में पुन: आया है कि व्यक्ति जो महापातकी हैं वे केवल आर्तों वाली मिन्त कर सकते हैं, किन्तु पापमोचन के उपरान्त वे अन्य मिन्त-प्रकारों का आश्चय ले सकते हैं।

गीता में नवधा मिन्त के स्पष्ट नाम नहीं आये हैं, किन्तु इनमें अधिकांश कितपय श्लोकों (यथा गीता ९। १४, २६, २७) से तथा पुराणों के वचनों से एकत्र किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, विष्णुपुराण (२।९।३९) में आया है—'जो भी तपों से पूर्ण•एवं दानादि वाले प्रायश्चित्त हैं उनमें कृष्णनामस्मरण सबसे उत्तम है।' इसी पुराण में एक स्थान पर पुनः आया है—'मिन्त के साथ उनके नाम का अनुसरण पाप विलयन का सर्वोत्तम साधन है, जिस प्रकार अग्नि धातुओं का है।' भागवत (११।२।३६) में आया है—'मन्त अपने शरीर, वाणी, मन, इन्द्रियों, बुद्धि या

८८, श्रदणं कीर्तनं विक्णोः संमरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मिनवेदनम् ।। इति पुंसापिता विक्णो मिन्तिश्चेष्मवलक्षणा । क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽघीतमुत्तमम् ।। भगगवत ७।५।२३-२४ । प्रह्लाद इसे अपने पिता से कहता है । 'स्मृतिकीर्त्योः कथावेश्चातों प्रायश्चित्तभावात् । शाण्डिल्य ७४; स्मरणकीर्तनकथानमस्कारा-दीनामार्तभक्तौ निवेशः । स्वप्नेश्वरः महापातिकनां त्वातों । शाण्डिल्य ८२; पतनहेतुपापरतानां च पुनरातिभक्तौ प्रवाधिकारः प्रायश्चित्तवत् तत्पापक्षयस्य सर्वापेक्षयाभ्याहतत्वात् । . . . तदपगमे त सुतरामधिकारसिद्धः । देखिए भिन्तप्रकाश (वीरमित्रोदय का एक अंश, पृ० ३०-१२८) जहाँ नवधा भिन्त की व्याख्या की गयी है । तान्त्रिकों ने भी भिन्त के इन नौ रूपों को अपनाया है, जैसा कि रुद्रयामल (२७।१०३-१०४) में आया है—'मननं कीर्तनं ध्यानं स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं . . . निवेदनम् । एतद्भिक्तप्रसादेन जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥'

विष्णु (स्वप्नेश्वरं द्वारा शाण्डिल्यभिक्तिसूत्र ७४ की व्याख्या में उद्धृत)।

आतमा या घातु-स्वमाव से जो कुछ करता है उसे सब कुछ नारायण को समर्पित कर देना चाहिए।' यह गीता (९।२७) के समान ही है और इसे दास्य मिक्त कहा जा सकता है; किन्तु अर्जुन की मिक्त सख्य मिक्त है (गीता ४।३, कृष्ण ने अर्जुन को अपना मक्त एवं मित्र कहा है)। ऐसा प्रकट होता है कि गीता ने भक्त द्वारा जीवन में अपनी स्थिति के अनुरूप कर्तव्य-पालन को भगवान् की पूजा (अर्चन या पूजा) कहा है— 'अपने कर्तव्यों के पालन द्वारा उस भगवान् की पूजा से (जहाँ फल की कोई कामना न हो) जिससे यह लोक निकला हुआ है, और जिससे यह लोक परिव्याप्त है, व्यक्ति पूर्णता प्राप्त करता है (केवल पुष्पों के चढ़ाने या नाम के अनुस्मरण से ही नहीं)।' इसी को निष्काम कर्म कहा गया है।

उपर्युक्त निष्कामकर्म को, जो गीता का मुख्य सिद्धान्त है, पुराणों ने स्वीकार किया है। अग्निपुराण (अध्याय ३८१) ने ५८ क्लोकों में गीता का निष्कर्ष उपस्थित किया है जो अधिकांशतः गीता के ही वचन हैं। एक क्लोक के साय लिक्स का अन्त किया गया है और अन्तिम क्लोक में मिक्त पर बल दिया गया है। "गरुड़पुराण ने गीता को २८ क्लोकों में रखा है (१।२१०-२३८)। पद्मपुराण (६।१७१-१८८) ने गीता के १८ अध्यायों में प्रत्येक का माहात्म्य उपस्थित किया है (कुल १००५ क्लोकों में)। और देखिए कूर्म (१।३।२१; २।७।२८), मार्कण्डेय (९२।१५) एवं मागवत (११।३।४६)।

उपनिषदों का अद्वैत सिद्धान्त (यथा-ईशा० १६; तै० उप० ३।४ एवं ८; वृ० उप० २।४।१४, ४।३।३०-३१, ४।५।१५) ज्ञानियों के लिए है। उपनिषद् सर्वसाधारण को कुछ नहीं देतीं, उनसे भगवान्, या परम तत्त्व, मानव के अन्तिम रूप, परमात्म-प्राप्ति के मार्ग के विषय में साधारण लोगों को कुछ नहीं प्राप्त होता और न उनकी समस्याओं का समाधान ही मिलता है। गीता ने सामान्य अथवा साधारण व्यक्ति की समस्याएँ उठायी हैं, इसने निम्न स्तर के लोगों को भी आशा दी है कि उनके जीवन में भी वह परम तत्त्व एवं सत्य स्वरूप समा सकता है, यदि ऐसे लोग अपने दैनिक कर्तव्यों एवं अपनी स्थिति के अनुरूप कर्मों को मगवान् में समर्पित कर दें तो उन्हें मुक्ति मिलेगी; यदि लोग श्रद्धा के साथ भगवान् की कृपा पूर्ण शरण में आ जायँ तो मोक्ष-पद की प्राप्ति हो जाय। गीता (९।३०-३२) में उद्घोषणा है-- 'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यमाव से मेरा मक्त होकर मुझको मजता है, तो वह साघु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। अर्थात् उसने मली माँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के मजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही वर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन, तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। हे अर्जुन, स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चाण्डाल आदि जो कोई मी हों, वे भी मेरी शरण में आकर गरम गति को प्राप्त करते हैं। अौर देखिए शाण्डिल्यसूत्र (७८)। पुराण उसी स्वर से उद्घोषित करते हैं जिस स्वर में गीता के वचन हैं, बल्कि वे अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं बलशाली हैं। ब्रह्मपुराण ने गीता (९।३२) का अन्वय मात्र दै दिया है—'मेरा मक्त, भले ही वह चाण्डाल हो, किन्तु सत्य श्रद्धा से अपनी कामना की तुष्टि पाता है; अन्यों के विषय में कहने की क्या आवश्यकता है ?' पद्मपुराण (१।५।१० एवं ४।१०।६६) में आया है—'पुल्कस, यहाँ तक कि

९०. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमम्यच्यं सिद्धं विन्वति मानवः ॥ गीता (१८।४६) । ९१. अतः प्रवृत्ति . . . म्यच्यं विष्णुं सिद्धं च विन्वति । कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा । ब्रह्मादिस्त-म्बप्यन्तं जगद् विष्णुं च वेत्ति यः । सिद्धिमाप्नोति भगवद्भक्तो भागवतो ध्रुवम् ॥ अग्निपु० (३८१।५६-५८) १ कर्माण्यसंकित्पततत्फलानि संन्यस्य विष्णो परमात्मभूते । अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तिस्मल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥ विष्णु० (२।३।२५) ।

स्वपाक और म्लेच्छ जातियों के लोग भी, यदि वे हरि के चरणों की सेवा करते हैं, वन्छ एवं महाभाग हो जाते हैं; 'एक स्वपाक भी वैष्णव है यदि उसके अघरों पर हरि का नाम हो, जिसके हृदय में विष्णु विद्यमान हों, और जिसके उदर में विष्णु का नैवेद्य (चढ़ा हुआ प्रसाद) जाता हो।' भागवतपुराण (२।४।१८) में निम्नोक्त वक्तव्य पाया जाता है—'उस प्रमविष्णु को नमस्कार, जिसकी शरण में पहुँचने पर किरात (पर्वतवासी, यथा भील आदि), हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कंक, यवन, खस आदि तथा अन्य पापी व्यक्ति शुद्ध हो जाते हैं।'' ये केवल वचन मात्र नहीं हैं, प्रत्युत ये कार्यान्वित भी होते थे। मध्यकाल में नारी मिक्तिनियाँ हुई हैं, यथा मीरावाई (उत्तरी भारत) तथा आण्डाल (दक्षिणी भारत); रायदास (रैदास), जो चमार थे और रामानन्द के शिष्य थे; अजामिल जैसे पापी भी सन्तों के समान सम्मानित हुए थे। कबीर (एक मुसलमान जुलाहा) एवं तुकाराम जैसे अनपढ़ सन्तों की वाणियाँ कट्टर ब्राह्मणों द्वारा भी वड़े मनोयोग से पढ़ी जाती हैं।

११ वीं शती के उपरान्त जब भारत पश्चिमोत्तर मांग के मुस्लिम आक्रमणों से आक्रान्त हो उठा तो इसके समक्ष एक महान् चुनौती आ उपस्थित हुई। वह चुनौती कई ढंगों से स्वीकार की गयी। पहला ढंग था स्मृतियों के विस्तृत निवन्धों का प्रणयन, जिनमें सबसे प्राचीन उपलब्ध निवन्ध है कृत्यकल्पतर, जो लक्ष्मीघर (लगमग १११० से ११३० ई०) द्वारा प्रणीत है। लक्ष्मीघर उत्तरी मारत के हैं, और दूसरे प्राचीन निवन्धकार हैं हेमाद्रि (१३वीं शती के तीसरे चरण में), जो दक्षिण मारत में उत्पन्न हुए थे। दूसरा एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ढंग था आध्यात्मिक। १३ वीं शती से १७ वीं शती तक अमूतपूर्व आध्यात्मिक पुनरुद्धार की उत्क्रान्तियाँ पनपीं, जिनके फलस्वरूप मारत के सभी मागों में सन्तों एवं रहस्यवादियों का प्रादुर्भाव हुआ, यथा—जानेश्वर, नामदेव, रामानन्द, कबीर, चैतन्य, दादूर (राजस्थान), नानक, वल्लमाचार्य, एकनाथ, तुकाराम, रामदास आदि, जिनके प्रमुख तत्त्व एक ही थे, यथा परमात्मा एक है, आत्म-शुद्धि, जाति की उच्चता की मर्त्सना, पूजा के आडम्बरों की निन्दा तथा मोक्ष के लिए भगवान् में आत्मसमर्पण। तीसरा ढंग था स्वतन्त्र राज्यों की सृष्टि, यथा—विजयनगर (१३३०-१५६५ ई०), महाराष्ट्र (शिवा-जी तथा पेशवाओं के शासन-काल में) एवं सिक्खों का पंजाब में राज्य। इस अन्तिम का विवरण हम यहाँ नहीं करेंगे।

१२. किरातहूणान्ध्रपुलिन्वपुल्कसा आभीरकंका यवनाः खसादयः। येन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्म प्रभविष्णवे नमः।। भागवत २।४।१८। जब विश्वामित्र के ५० पुत्रों ने अपने पिता द्वारा गोद लिये गये पुत्र शुनश्लोप को अपने बड़े भाई के रूप नहीं स्वीकार किया तो विश्वामित्र ने शाप दिया कि इनकी सन्तानें अन्ध्र होंगी, निम्न जाति की स्थित वाली होंगी और वे शबर आदि होंगी तथा अधिक संख्या में दस्यु होंगी—'ताननुव्याजहारान्तान्वः प्रजा भक्षीष्टित। त एतेऽन्ध्राः पुण्डाः शबराः पुलिन्वाः मूर्तिबा इत्युवन्त्या बहवो भवन्ति वैश्वामित्रा दस्यूनां भूषिष्ठाः। ऐ० बा० (७।१८, अध्याय ३६।६)। और देखिए एपि० इण्डि० (जिल्द ८, पृ० ८८), जहाँ शिवदत्त के पुत्र ईश्वरसेन नामक आभीर राजा के ९ वें वर्ष का अभिलेख वर्णित है। पुल्कस एवं श्वपाक अस्पृश्य तथा अन्त्यज कहे गये हैं। वाजसनेयसंहिता (३०।१६) में किरातों को गुफाओं में रहने वाले कहा गया है। मौसलपर्व (७।४६-६३) में आभीरों को दस्यु एवं क्लेच्छ कहा गया है। जब अर्जुन कृष्ण के अन्तर्वान होने के उपरान्त यादव-स्त्रियों को लिये जा रहे थे तो आभीरों ने उन पर पञ्चनव में आक्रमण कर दिया और उन स्त्रियों को हर लिया (मौसलपर्व, ८।१६-१७)। और देखिए विष्णुपुराण (५।३८।१२-२८)। मत्स्य (२७३।१८) ने दस क्षाभीर राजाओं का उल्लेख किया है। खस जातियों में एक परम्परा थी अपने मृत भाई की पत्नी से विवाह कर छेना।

मिलत के सिद्धान्त ने हिन्दू समाज के सभी दलों को प्रभावित किया और जब पुराणों द्वारा मिलत का प्रचार वढ़ा तो बौद्ध धर्म से हिन्दू लोग वाहर निकलते गये। अपितु, स्वयं महायानी बौद्ध सम्प्रदाय ने मिलत सिद्धान्त को अपना लिया और 'मिलिन्द प्रश्न', 'सद्धमंपुण्डरीक' जैसे ग्रन्थों में ऐसे वचनों का समावेश हो गया जो गीता से बहुत मिलते-जुलते हैं। गीता में ऐसी आश्चर्यजनक सिहण्जुता एवं संयोजन पाया जाता है जो महान् पैगम्बरों द्वारा संस्थापित अन्य धर्मों में नहीं उपलब्ध होता। गीता (९।२३) में आया है—'यहाँ तक कि वे लोग, जो अन्य देवों के मक्त हैं और उन्हें मिलत एवं विश्वास के साथ पूजते हैं, (परोक्ष रूप से) मुझे ही मजते हैं, किन्तु अशास्त्रीय विधि से।' भागवतपुराण (१०।४०।८-१०) में यही बात बढ़ाकर कही गयी है। शे शान्तिपर्व (३४१।३६) में भी यही विचार उल्लिखित है ''—'जो ब्रह्मा, शिव या अन्य देवताओं की पूजा करते हैं और जिनका आचरण प्रबुद्ध है • (अन्त में) वे मुझ परम तत्त्व के पास ही आते हैं।' इस सिद्धान्त का स्रोत ऋग्वेद में पाया जाता है, जहाँ यह आया है ''—'उसी एक को मुनि लोग कई नामों से कहते हैं; वे उसे अग्न, यम, मातरिश्वा (वायु) कहते हैं।' हम यहाँ पर मिलत की विभिन्न शाखाओं, यथा—रामानुज, मध्व, चैतन्य, वल्लम आदि द्वारा प्रवर्तित शाखाओं का उल्लेख स्थानामाव से नहीं कर सकेंगे।

पुराणों ने मिनत के प्रचार में अत्युक्ति मी कर दी है। ब्रह्मपुराण (२१६।८७-८९) में आया है—'मोह में आकर बहुत पाप कर डालने पर भी पाप को हरने वाले हिर के स्मरण से व्यक्ति नरक में नहीं जाता है। वे व्यक्ति जो सदैव जनार्दन का स्मरण करते हैं वे शठता करने पर भी मृत्यूपरान्त मुखमय विष्णुलोक चले जाते हैं। वह व्यक्ति मी, जो अत्यन्त कोघ में आसक्त रहता है, हिर के नाम का स्मरण करने से पापरहित हो जाता है और मुक्तिपद प्राप्त कर लेता है, जैसा कि चेदि देश के राजा ने किया था।'' वामनपुराण (९४।५८-५९) में आया है कि जो विष्णु का मक्त है उसे बहुत-से मन्त्रों की आवश्यकता नहीं है। 'नमो नारायणाय' नामक मन्त्र सर्वार्थसाधक है। जो विष्णु के लिए मिनत रखते हैं, उनकी जय होती है, जिनके हृदय में इन्दीवर श्याम जनार्दन बसते हैं उनकी पराजय का प्रक्त ही नहीं उठता। वामन एवं पद्म का कथन है कि विष्णु के नाम लेने से वैसे ही फल भ्राप्त होते हैं जो इस पृथिवी के पिवत्र तीर्थों एवं स्थानों में जाने से मिलते हैं।

९३. येप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेषि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। गीता ९।२३; त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम्। बह्वाचार्यविमेदेन भगवन्तमुपासते।। सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवम-येश्वरम्। येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यपिधयः प्रभो।। यथाद्विप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो। विशन्ति सर्वतः सिन्धं तद्वस्वां गतयोऽन्ततः।। भागवत (१०।४०।८-१०)।

९४. ब्रह्माणं शितिकण्ठं च याश्चान्या देवताः स्मृताः । प्रबुद्धचर्याः सेवन्तो मामेवैष्यन्ति यत्परम् ॥ शान्ति॰ (३४१।३६)।

९५. एकं सिंद्रप्रा बहुषा वदन्त्यिनं यमं मातिरिश्वानमाहुः ॥ ऋ० (१।१६४।४६)।

१६. चेदि देश का राजा सम्भवतः शिशुपाल था, जिसकी कथा सभापवं (अध्याय ४३-४६) में आयी है। वह कृष्ण की बहिन का पुत्र था। कृष्ण ने उसके १०० अपराधों को क्षमा कर देने का वचन दिया था और अन्त में युविष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर उसे मार डाला। शिशुपाल की कथा विष्णुपु० (४।१५।१-१७) ने भी आयी है और ऐसा उल्लेख है कि शिशुपाल भी कृष्ण का नाम सदैव लेता रहता था और उन्हें शत्रु के रूप में सदैव स्मरण रखता था, इसी से वह अन्त में भगवान के पास पहुँच गया।

X190

# धर्मशास्त्र का इतिहास

कतिपय पूराण, विशेषतः विष्णु एवं मागवत मिक्त के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रयोगों, उसकी प्रशंसाओं तथा उससे सम्बन्धित कथानकों से परिपूर्ण हैं। स्थानाभाव से हम विस्तार में नहीं जा सकते। कुछेक विशिष्ट बातें यहाँ दे दी जा रही हैं। भागवतपुराण की प्रशंसा में पद्मपुराण में यों आया है- सहस्रों अश्वमेघ और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ शुक द्वारा कही गयी गाया के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकते। जो कोई भागवत के आधे क्लोक या चौथाई श्लोक का पाठ करता है वह अश्वमेघ एवं राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। जो मृत्यु के समय शुकशास्त्र (भागवत) सुनता है, गोविन्द उससे प्रसन्न होकर वैकुष्ठ प्रदांन करते हैं; विष्णु के नाम लेने से सभी पाप कट जाते हैं, यह स्वयं एक प्रायश्चित्त है, क्योंकि स्मरण करते समय केवल विष्णु ही मन में अवस्थित रहते हैं। ' एकं अन्य वात हैं अजामिल की कथा (मागवत ६।१।२० एवं ६।२; पद्म १।३१।१०९ एवं ६।८७।७ आदि)। अजामिल जिसने अपनी ब्राह्मण पत्नी का त्याग किया था और एक दासी को रख लिया था, चरित्र-भ्रष्ट था तथा चोरी एवं जुए के दुर्गुणों से परिपूर्ण था। जब वह ८० वर्ष की आयु में अपनी मरण-सेज से अपने कनिष्ठ पुत्र नारायण को (जो दस दासीपुत्रों में एक था) जोर से पुकारने लगा और स्नेहवश उसी नाम को मन में रखे रहा तो वह पापमुक्त हो गया और कठिन तपःसाध्य स्थिति को प्राप्त हो गया। इस प्रकार की क्थाओं से एक विश्वास-सा जग उठा कि मृत्यु के समय अन्तिम विचार अपने अनुरूप नया जीवन प्रदान करता है (अन्ते मितः सा गितः)। उपनिषदों में इस अन्तिम विचार का मूल बीज उपस्थित है (छा० उप० ३।१४।१, ८।२।१०, बृ० उप० ४।४।५)। 'मिलिन्द प्रश्न' (एसं० बी० ई०, जिल्द ३५, पू० १२३-१२४) में अन्तिम विचार के महत्त्व की इस मावना पर प्रश्नोत्तर हुआ है। ऐसा सम्मव है कि केवल एक बार भगवान् के नाम का आह्वान, पश्चात्ताप के उपरान्त श्रद्धापूर्वक केवल एक सत्कर्म तथा भगवान् की इच्छा के अनुरूप आत्म-समर्पण अपराघ एवं पापमय जीवन के फल को काट दे। अजामिल के जीवन की गाथा का यही नैतिक निष्कर्ष है। किन्तु इससे एक दुर्मावना उत्पन्न हो सकती है कि व्यक्ति जीवन मर दुराचारी रहे, भ्रष्ट रहे तथा हर सम्भव पाप एवं अपराध करता रहे, किन्तु यदि वह मरते समय मगवान् का नाम ले ले तो उसके सभी पाप कट जायेंगे। यह एक मयंकर सिद्धान्त है। गीता (८।५-७) इस पर प्रकाश डालती है—'वह व्यक्ति, जो मुझे मरते समय स्मरण करता है और शरीर त्याग कर इस संसार से चला जाता है, मेरा तत्त्व प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जब व्यक्ति मरता है उस समय वह जो कुछ आकार या स्वरूप स्मरण करता है, वह उसी को प्राप्त होता है, क्योंकि वह उसी आकार या प्रतिमा या स्वरूप में सदैव संलग्न था। अतः मुझे सदा स्मरण करो और युद्ध करो; इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझमें अपना मन एवं बुद्धि लगाकर तुम मुझे प्राप्त करोगे। इस हचन का तात्पर्य यह है (गीता का ऐसा निर्देश है) कि व्यक्ति मगवान् का नाम मरते समय तभी स्मरण कर सकेगा जब वह जीवन भर वैसा करता रहेगा, जब कि वह अपने कर्तव्यों का पालन निष्काम माव से करता रहेगा। ऐसा अधिकतर नहीं होता और यह एक प्रकार से असम्मव है कि व्यक्ति जीवन भर पाप करता रहे और अन्त में मरते समय भगवान् का नाम लेने लगे। यही बात पुनः कही गयी है (८।१०-१३; १३।३ : यो यच्छूढः स एव सः)।

इस सिद्धान्त के रहते हुए भी कि परमात्मा एक है, और यह जानते हुए कि चाहे जिस रूप में हम किसी देवता को पूजें, वह पूजा परमात्मा को ही प्राप्त होती है, वैष्णवों एवं शैवों में बड़े भयंकर वाक्-युद्ध होते रहे हैं। उदाहरणार्थं, वराहपुराण (७०।१४ 'नारायणः परो देवः') ने रुद्र द्वारा विष्णु की महत्ता घोषित करायी है, और शैव सिद्धानों को, वेदों के वाहर की वातें कह कर निन्दित किया है और ऐसा मत प्रकाशित किया है—'यह अवैदिक मत स्वयं शिव ने विष्णु की प्रार्थना पर लोगों को भ्रम में डालने के लिए प्रवित्त किया है।' कुछ पुराणों ने ऐसा प्रचीर करना आरम्भ किया कि बौद्ध एवं जैन असुर एवं देवों के शत्रु हैं, और वे भगवान् द्वारा जान-बूझकर भ्रमित

कर दिये गये हैं। उदाहरणार्थ, मत्स्य (२४।४३-४९) में आया है कि रिज के पुत्रों ने इन्द्र को राज्य एवं यज्ञों के माग (अंश) से वंचित कर दिया; इन्द्र की प्रार्थना पर बृहस्पति ने वेद के विरुद्ध जिन-धर्म नामक ग्रन्थ लिखकर रिज के पुत्रों को भ्रमित कर दिया और तब इन्द्र ने उन्हें मार डाला। वायु (९६।२३०-३२), मत्स्य (४७।११-१२); मागवत (१।३।२४) ने, लगता है, ऐसा कहा है कि स्वयं विष्णु ने लोगों को भ्रम में डाल दिया। अग्नि (१६। १-४) में भी आयाँ है कि विष्णु ने बोद्धों को भ्रमित कर दिया था। विष्णुपुराण (३।१७-१८) में उल्लिख़ित है कि जब देव लोग असुरों (जो तप करते थे और वेदाध्ययन करते थे) द्वारा पराजित हुए तो वे विष्णु के पास गये और सहायता के लिए प्रार्थना की; इस पर विष्णु ने अपने शरीर से माया-मोह उत्पन्न किया और उसे देवों को समर्पित कर दिया। मायामोह नंगा था, उसने अपना सिर मुंडा रखा था और उसके हाथ में मोर के पंख थे। वह नर्मदा के तटों पर तप करने वाले असुरों के पास गया (३।१८।१२) और बोला कि यदि वे उसकी बात मानेंगे तो मुक्ति की प्राप्ति करेंगे। उसने उन्हें वेद के मार्ग से विचलित कर दिया और उन्हें हठवादी तर्क के नियम बतलाकर धर्म से विचलित कर दिया । इसके उपरान्त वह अन्य असुरों के पास जाकर बोला कि पशु-यज्ञ पापमय है और उन्हें निर्वाण एवं विज्ञानवाद का पाठ पढ़ाया। कुछेक वचन बड़े विचित्र हैं—'कुछ ही क्षणों में असुर लोग मायामोह द्वारा मोहित हो गये और तीनों वेदों पर आश्रित मार्ग का अवलम्बन छोड़ दिया। कुछ ने वेदों की निन्दा की, कुछ ने देवों की, तथा यज्ञ-कार्यकलापों एवं ब्राह्मणों की निन्दा की। (उन्होंने सोचा या कहा कि) 'धर्म के लिए (यज्ञों में) हिंसा (पशु-बिल) उचित हैं ऐसा कथन तर्कसंगत नहीं है; ऐसा कहना कि अग्नि में हिव डालने से (उस लोक में) फल मिलेगा, मूर्खता है; (यदि ऐसा कहा जाय कि) बहुत-से यज्ञों के द्वारा ही इन्द्र को देवत्व की स्थिति प्राप्त हुई और वह शमी वृक्ष की समिघा का उपभोग करता है, तो वह पशु जो शमी की पत्तियाँ खाता है, इन्द्र से बढ़कर है। यदि वेद एसा चाहते हैं कि यज्ञ में बिल दिया हुआ पशु स्वर्ग प्राप्त करता है, तो यजमान स्वयं अपने पिता को यज्ञ में क्यों नहीं मार डालता (और उसे स्वर्ग में भेज देता)? यदि कोई (पुत्र) (इस विचार से) श्राद्ध करता है कि जो किसी द्वारा खाया जाता है (श्राद्ध में ब्रह्ममोज) उससे दूसरे (यजमान के मृत पिता) की तृप्ति होती है, तो यात्री लोग (अपनी पीठ पर) अन्न न ढोते और न थकते।' ये ऐसे तर्क हैं जिन्हें नास्तिक (चार्वाक लोग) प्रयोग में लाते हैं। 🛰 यह द्रष्टव्य है कि कुलार्णवतन्त्र जैसे तान्त्रिक ग्रन्थ शिव से ऐसा कहलाते हैं कि उन्होंने कुछ शास्त्रों का उद्घोष केवल दुष्ट लोगों को, जो कौल धर्म नहीं जानते हैं, मोहित करने के लिए किया था। "

९७. स्वल्पेनैव हि कालेन मायामोहेन तेऽमुराः। मोहितास्तत्यजुः सर्वा त्रयोमार्गाश्चितां कयाम्।। केचिव् विनिन्दांवेदानां देवानामपरे द्विज । यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजन्मनाम्।। नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय चेध्यते। हवींच्यनलदग्धानि फ्लायेत्यमंकोदितम्।। यज्ञैरनेकेदेवत्वमदाप्येन्द्रेण भुज्यते। शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पत्रभुक् पशुः॥ निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वगंत्राप्तियंदीच्यते। स्विपता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते।। तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः। कुर्याच्छाद्धं ध्रमायान्नं न वहेयुः प्रवासिनः॥ विष्णुपु० (३।१८।२४-२९)। इसी प्रकार के मायामोह के विषय में देखिए पद्म० (५।३।३४६-३९०, अन्तिम पद्म २४ तोर्यंकरों की ओर संकेत करता है)। सर्वदर्शनसंग्रह (महामहोपाध्याय वासुवेवशास्त्री अभ्यंकर द्वारा सम्पादित, १९२४) में चार्याकदर्शन के अध्याय में कुछ इलोक बृहस्पति से उद्धृत हैं, यथा—पशुश्चेन्निहतः स्वगं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति। स्विपता यज्ञमानेन त्रज्ञ-कस्मान्न हिस्यते॥ पृ० १३। देखिए पद्म (५।१३।३७०-३७४)।

९८. भ्रामित। हि मया देवि पशवः शास्त्रकोटिषु । कुलघमं न जानन्ति वृथा शास्त्राभिमानिनः ।। पशुशास्त्राणि

जैनों एवं बौद्धों की भर्त्सना करते हुए पुराण इत**ें आगे चले गये कि वे गीता (९।२३)** के वचन को मी मूल गये (देखिए टिप्पणी ९३) और कहने लगे कि जो ब्राह्मण वैष्णव नहीं है वह नास्तिक (पाषण्डी) है; स्वयं किष्णु ने बुद्ध का रूप घारण करके एक भ्रामक शास्त्र की उद्घोषणा की और सभी शास्त्र, यथा-पाशुपत, कणाद का वैशेषिक, गौतम का न्याय, कपिल का सांख्य एवं बृहस्पति का चार्वाक तामस हैं; शंकर का मायावाद एक भ्रामक कास्त्र है और प्रच्छन्न (छिपा हुआ, दूसरे वेश में) वौद्ध है तथा जैमिनि का विशाल शास्त्र (पूर्वमीमांसा) निन्दित है क्योंकि इसने देवों को अपनी पद्धति के मीतर निरर्थक सिद्ध कर दिया है। पद्मपुराण (६।२६३।६७-७१ एवं ७५-७६) में इस प्रकार आया है "-- "हे देवि, सुनिए, मैं कम से तामस शास्त्रों के विषय में बताता हूँ, जिनके स्मरण मात्र से ज्ञानी लोग भी पतित हो जाते हैं। सर्वप्रथम मैंने शैव शास्त्रों, यथा पाशुपत का उद्घोष किया; इसके उपरान्त मेरी शक्ति से अभिमूत हो बाह्मणों ने निम्नोक्त शास्त्र उद्घोषित किये, यथा—कणाद ने वैशेषिक पद्धति का उद्घोष किया; न्याय एवं सांख्य पद्धतियां कम से गौतम एवं कपिल द्वारा उद्घोषित हुई; अति गहित चार्वाक सिद्धान्त की उद्घोषणा बृहस्पति ने की; स्वयं विष्णु ने बुद्ध का रूप घारण करके दैत्यों का नाश करने के लिए उन बौद्धों के भ्रामक सिद्धान्त की उद्घोषणा की जो नंगे चलते हैं या नीला वस्त्र घारण करते हैं। स्वयं मैंने हे देवि, ब्राह्मण रूप घारण करके कलियुग में उस मायावाद के भ्रामक शास्त्रों की उद्घोषणा की, जो प्रच्छन्न बौद्ध हैं। ब्राह्मण जैमिनि ने उस पूर्वमीमांसा का प्रणयन किया जो अपने निरीक्वरवादी दृष्टिकोण के कारण व्यर्थ है।" सांख्यप्रवचन-माष्य में विज्ञानिमक्षु (लगमग १५५० ई०) ने पद्मपुराण (६।२६३) के कितपय श्लोक उद्धृत किथे हैं और एक ऐसा विचित्र मत प्रकाशित किया है कि कोई मी शास्त्र, जो आस्तिक (जो आत्मा को मानता ) है, अप्रामाणिक नहीं है **और न क**हीं कोई विरोध है, प्रत्येक शास्त्र अपनी परिधि में शक्तिशाली एवं सत्य है। वह मौलिक सांख्यसूत्र, जिस पर जसने टीका की है, यह असम्भव स्थापना रखता है कि सांख्य की शिक्षाएँ ब्रह्म की विमुता एवं एकता वाले सिद्धान्त के विरोध में नहीं पड़तीं। साम्प्रदायिक अनन्यसमानता एवं कट्टरपन इतना आगे बढ़ गया कि ब्रह्माण्ड० में अगस्त्य एवं राम की वार्ता के बीच में कह दिया गया है कि कृष्ण (जो स्वयं विष्णु के एक अवतार हैं) के १०८ नाम इतने शक्तिशाली हैं कि विष्णु के १००८ नामों को तीन बार कहने से जो पुंण्य प्राप्त होता है वह कृष्ण के १०८ नामों में केवल एक को एक बार कह देने से प्राप्त हो जाता है। "

सर्वाणि मर्यवरक्तियतानि हि । मूर्त्यन्तरं तु गत्वैव मोहनाय दुरात्मनाम् ॥ कुलार्णवतन्त्र (२।९६-९७, आर्थर एवालाँ द्वारा सम्यादित) ।

९९. शृणु देवि प्रवश्यामि तामसानि यथाक्रमम् । येषां स्मरणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामिष ॥ प्रथमं हि मर्बा धोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् । मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः प्रोक्तानि च ततः शृणु ॥ कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् । गौतमेन तथा न्यायं सांख्यं तु कपिलेन वे ॥ धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाक्रमितर्गाहितम् । दैत्यानां नाशनार्थायं विष्णुना वृद्धक्षिणा ॥ वौद्धशास्त्रमसत्प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम् । मायावादमसत्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते । भयेष किषतं देवि कली बाह्मणकपिणा ॥ . . . द्विजन्मना जीमिनिना पूर्वं चेदमपार्थकम् । निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम् ॥ पद्म० (६।२६३।६७-७१ एवं ७५-७६, सांख्यप्रवचनभाष्य, पृ० ६-७ में विज्ञानभिक्षु द्वारा उद्धृते) ।

१००. शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नाम्नामच्दोत्तरं शतम् । सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यतत्फलम् ।। एकावृत्त्या तुं कृष्णस्य नामेकं तत्प्रयच्छति । तस्मात्पुण्यतरं चैतत् स्तोत्रं पातकनाशनम् ।। ब्रह्माण्ड० (३।३६।१८-२०।) २१-४१

## पुराणों में असहिष्णुता की कट्वितयां

१७३

विष्णुपुराण एवं पद्मपुराण में ही ऐसी निन्दोक्तियाँ नहीं पायी जातीं कि स्वयं विष्णु या शिव को नास्तिकों एवं वेदिवरोधियों को मोह में डालने के लिए भ्रामक सिद्धान्त प्रतिपादित करने पड़े, प्रत्युत अन्य पुराण भी यही गीत गाते हैं। उदाहरणार्थ, कूर्मपुराण ने कई शास्त्रों एवं पद्धतियों के विरोध में कई स्थानों पर विचार प्रकट किये हैं। दो-एक वचन यहाँ दिये जा रहे हैं। देवी कहती हैं— 'बहुत-से शास्त्र जो इस लोक में विद्यमान हैं और श्रुतियों एवं स्मृतियों के विरुद्ध हैं वे तामस हैं, यथा—कापाल, मैरव, यामल (एक प्रकार के तान्त्रिक ग्रन्थ), वाम (तान्त्रिकों के एक वर्ग की वाम कियाएँ), आईत (जैन सिद्धान्त), ये तथा अन्य केवल मोह उत्पन्न करने के लिए हैं। मैंने दूसरे जन्म में लोगों को मोह में डालने के लिए इन शास्त्रों को प्रकट किया'; 'अतः उन लोगों की उनसे, जो वेद-प्रमाव से बाहर हैं, रक्षा के लिए तथा पापियों के नाश के लिए हम, हे शिव, उन्हें मोहित करने के लिए • शास्त्र लिखेंगे। इस प्रकार माघव (कृष्ण) द्वारा बताये जाने पर रुद्र ने शास्त्र प्रणीत किये और लोगों को भ्रमित किया तथा रुद्र द्वारा प्रेरित हो विष्णु ने भी वैसा ही किया; दोनों ने कापिल, नाकुल, वाम, मैरव (पूर्व एवं उत्तर-कालीन), पाञ्चरात्र, पाशुपत तथा सहस्रों अन्य शास्त्र बनाये।' र्शंकर मानवमुख्डों की माला पहन कर एवं श्मशान से भस्म लेकर शरीर में लगाकर, जटाजूट वाँचे हुए, इस संसार को मोहित करते हुए तथा अन्य लोगों के कल्याण के लिए भिक्षा माँगते हुए इस पृथिवी पर उतरे।' 'शब्दों द्वारा भी पाञ्चरात्र एवं पाशुपत लोगों का सम्मान नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे नास्तिक हैं, वीजित वृत्तियाँ करते हैं और वाम शाक्त आचरण करते हैं। जब बीद साधु, निर्ग्रन्थ, पाञ्चरात्र सिद्धान्तवादी, कापालिक, पाशुपत एवं अन्य समान नास्तिक लोक (पाषण्डी लोग) जो दुष्ट एवं मोहित होते हैं, श्राद्ध का मोजन खा लेते हैं तो वह श्राद्ध निरर्थक हो जाता है, उसका इस लोक एवं

वाले क्लोकों में कृष्ण के १०८ नाम आये हैं। विष्णु के १००८ नाम महाभारत, अनुशासनपर्व (१४९।१४-१२०) एवं गचड़पुराण (१।१५।१-१६०) में आये हैं।

१०१ यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु । श्रुतिस्मृतिविष्द्वानि निष्ठा तेषां हि तामसी ।। कापालं भैरवं खैव यामलं वाममाहर्तम् । एवं विधानि चान्यानि मोहनार्यानि तानि तु ।। मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषां भवान्तरे ।। कूर्म० १।१२।२६१-२६३; और वेलिए कूर्म० १।१६।१७-१९ एवं २४-२६ जहां कापाल, नाकुल, वाम, भैरव, पांचरात्र एवं पाशुपत उसी कार्य के लिए उत्पन्न उल्लिखित हैं। ताराभित्तसुधाणंव (छठी तरंग) ने कूर्म० का उद्धरण वेते हुए कहा है कि ये वचन केवल वेद की प्रशंसा में कहे गये हैं, उन्हें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वे तान्त्रिक आगमों को अप्रामाणिक सिद्ध करते हैं। 'नाकुल' वही हैं जो लकुलीश-पाशुपत-वर्शन में विणत हैं (वेलिए सर्व-वर्शनसंग्रह)। लिगपुराण (२४।१२४-१३३) में लकुली के विषय में विस्तार से उल्लेख है। वायुपुराण (२३।२२१-२२४) में आया है कि लकुली एक श्रीव सम्प्रवाय का प्रवर्तक था और कायारोहण (आधुनिक कारवण, बड़ोवा के डभोई तालुका में अवस्थित) उसका सिद्ध-क्षेत्र था। मयुरा अभिलेख, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल (गुप्त संवत् ६१, ई० ३८०) का है, बताता है कि पाशुपत सम्प्रवाय का प्रवर्तक लकुली ईसा के उपरान्त प्रथम शती में डुआ था (एपि० इण्डि॰, जिल्ब २१)। वेलिए डा॰ आर० जी० भण्डारकर कृत वेष्णविज्म, शीविज्म आदि, प्०१६६ एवं 'ऐण्डिक्वटीज इन कारवन विथ रेफेरेंस दु लकुलीश विश्वार (जनल आव बाम्बे यूनि०, जिल्ब १८, भाग ४, पृ० ४२-६७); एपि० इण्डि॰, जिल्ब २१, पृ०१-९-९-९ जे० बी० बी० आर० ए० एस्०, जिल्ब २२, पृ०१५१-९-९ (दोनों में डा० डी० आर० भण्डारकर के लेख हैं); इण्डि॰ हिस्ट्रा० क्वा०, जिल्व १९, १९४३, पृ०२७०-२७१, जहां पर लकुली सम्प्रवाय के उद्गम एवं इतिहास का उल्लेख है।

808

परलोक में कोई उपयोग जहीं होता। कुछ नास्तिक सम्प्रदायों की जानकारी के लिए देखिए श्री राघाकृष्ण चौधरी कृत लेख हिरेटिकल सेक्टस इन दि पुराणज (ए० वी० ओ० आर० आई०, जिल्द ३७, १९५६)।

गीता (१६ वाँ अध्याय) ने मानवों को दो श्रेणियों में वाँटा है—दैवी प्रवृत्ति वाले एवं आसुरी प्रवृत्ति वाले और दूसरी श्रेणी के लोगों को ७-२० रलोकों में वाँणत किया है। कुछ रलोकों से प्रकट होता है कि वहाँ नास्तिकों आदि की ओर निर्देश है, क्योंकि ८वें रलोक में आया है—'उनके कथनानुसार यह विश्व सत्यरहित है (अर्थात् इसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जिसमें लोगों का विश्वास हो), इसमें कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं है (यथा गुण या दोष), यह शासक-रहित है, यह केवल कामजनित संयोग द्वारा उत्पन्न है।' उनके विचारों एवं आकांक्षाओं के उल्लेख के उपरान्त गीता ने निष्कर्ष निकाला है—'ये ऐसे यज्ञकर्म करते हैं जो केवल नाम मात्र हैं, उनमें केवल छाद्धिकता है और वे विधि-व्यवस्था के प्रतिकूल हैं; वे मुझे अपने लोगों एवं अन्य लोगों में घृणा की दृष्टि से देखते हैं; इन अपवित्र एवं कूर दुष्टों को मैं सदैव आसुरी योनियों में फेंकता जाता हूँ; आसुरी जन्मों में प्रविष्ट हो वे मोहित रहते हैं, प्रत्येक जन्म में वे अत्यन्त बुरी स्थितियों में पड़ जाते हैं और मेरे पास नहीं पहुँच पाते हैं।' पद्म एवं अन्य पुराणों ने पाशुपतों, पाञ्चरात्रों एवं अन्य अवैष्णवों के विषय में जो कुछ कहा है उससे उपर्युक्त कथन पूर्णतया मिन्न है।

भागवत-माहात्म्य या पद्म० में आया है कि मिन्ति का उद्मव सर्वप्रथम द्रविड़ देश में हुआ, इसकी वृद्धि कर्णाटक में हुई, यह महाराष्ट्र के कुछ ही स्थानों में पायी गयी और गुर्जर देश में इसकी अवनित हुई; यह मयंकर कियुग के कारण पाखण्डियों द्वारा खण्डित हो गयी और चिरकाल तक दुर्वल पड़ी रही; किन्तु वृन्दावन (मथुरा के पास) पहुँच कर इसने नवीन रूप धारण किया और सुरूपिणी हो गयी (मागवतमा० १।४।४८-५०; पद्म० ६।१८९।५४-५६)। मागवत (११।५।३८-४०) में पुन: आया है कि कि कियुग में लोग कहीं-कहीं पूर्णतया नारायण-मक्त होंगे, किन्तु द्रविड़ देश में, जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, कावेरी एवं महानदी पश्चिम में बहती हैं, ऐसे लोग अधिक विस्तार से पाये जायेंगे, जो लोग इन निदयों का जल पीते हैं वे सामान्यत: वासुदेवमक्त होते हैं।

यह अधिकतर देखने में आता है कि अधिकांश नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्कान्तियाँ आगे चलकर हीन अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। यह बात भागवत धर्म के साथ भी हुई। अत्रि-संहिता में भागवतों के विषय में एक व्यंग्यात्मक संकेत मिलता है (क्लोक ३८४)—'वेदिविहीन लोग शास्त्र (व्याकरण, वेदान्त, न्याय आदि) पढ़ते हैं; शास्त्रहीन लोग पुराण पढ़ते हैं; पुराणहीन लोग कृषक होते हैं; किन्तु जो वहाँ भी भ्रष्ट होते हैं, वे भागवत हो जाते हैं।''' अत्रि के कहने का तात्पर्य यह है कि भागवत लोग आलसी होते हैं, जो न तो वेद पढ़ते हैं, न शास्त्र पढ़ते हैं और न अपनी जीविका के लिए औरों की पुराण पढ़कर सुनाते हैं, यहाँ तक कि खेती (श्रम) भी नहीं करते, वे केवल विष्णु या कृष्ण के मक्त बनकर अन्य लोगों के दानों पर मोटे-मुस्टण्डे बने रहते हैं, मानो भगवान् की भिक्त में पड़कर वे सब कुछ का त्याग कर बैठे हैं। वे मराठी भाषा में 'बुवा' और हिन्दी में 'बाबाजी' के नाम से विख्यात हैं।

मिनत सम्प्रदाय का एक अन्य मनोरंजक विकास है मधुरा भिनत, जो कृष्ण एवं राघा की भिनत से सम्बन्धित है और चैतन्य एवं वल्लमाचार्य द्वारा संस्थापित वैष्णववाद के रूप में प्रकट हुई है। इस विषय में देखिए डा॰ एस॰ के॰ दे कृत 'दि वैष्णव फेथ एण्ड मूवमेण्ट इन बेंगाल' (कलकत्ता, १९४२) एवं प्रस्तुत लेखक का ग्रन्थ 'हिस्ट्री आव संस्कृत पोइटिक्स' (१९५१), जहाँ पृ॰ २९८-३०२ में रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वलनीलमणि के विषय में उल्लेख

१०२. वेदैविहीनाइच पठन्ति शास्त्रेण होनाइच पुराणपाठाः। पुराणहोनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागनता भवन्ति ॥ अत्रिसंहिता (३८४ वाँ क्लोक)।

है। वल्लभाचार्य द्वारा संस्थापित भिन्त-सम्प्रदाय में गुरु को अत्यिधिक महत्त्व दिया गया है, वह गुरु वल्लभाचार्य के वंशजों में होता है और उसे दिव्य सम्मान दिया जाता है। एक अन्य भिन्त-शाखा राम एवं सीता को लेकर चली है जो रामायण एवं अन्य परम्पराओं में पालित हुई है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम और उनकी पत्नी सीता मधुरा भिन्त के अति शालीन प्रतीक हैं। वल्लभाचार्य के अनुयायियों में गुरु भन्त से आशा करता है कि वह उसे (गुरु को) कृष्ण समझे और स्वयं अपने को गोपी समझे। स्थानाभाव के कारण हम अन्य भिन्त-शाखाओं का विवरण यहाँ नहीं उपस्थित कर सकेंगे।

# वेदार्थ पर कुछ विचार

आराधना एवं कर्मकाण्ड के प्रसंग में वैदिक एवं पौराणिक मन्त्रों को परम महत्त्व प्रदान किया गया है। तन्त्रों एवं पूर्वमीमांसा के प्रकरण में हम उन पर विस्तार से विवेचन उपस्थित करेंगे। किन्तु थोड़े में, विशेषतः वैदिक मन्त्रों के विषय में, यहाँ कुछ कहा जा सकता है। ऋग्वेद में 'मन्त्र' शब्द लगमग २५ बार आया है। केवल एक बार 'मन्त्रकृत्' शब्द आया है। रे॰ अपने ग्रन्थ 'ऋग्माष्य-मूमिका' (अंग्रेज़ी में) में कपाली शास्त्री ने यह त्रुटिपूर्ण बात कही है—'हम ऋक् संहिता में मन्त्र के प्रणेता के रूप में ऋषि का उल्लेख बहुवा पाते हैं', और वे केवल ऋ० ९।११४।२ एवं १।६७।२ का हवाला दे पाते हैं। किन्तु १।६७।२ में 'मन्त्रकृत्' शब्द आया मी नहीं है। ऋ० १।६७।२ में प्रत्यक्ष रूप से 'ऋषि' की ओर कोई संकेत नहीं है, केवल 'नर' की ओर है। प्राचीन काल में मन्त्रों द्वारा इन्द्र को दिन में तीन वार थोड़ी देर के लिए बुलाया जाता था (ऋ० ३।५३।८)। इसी प्रकार विज्ञ लोग यम को हिव देने के लिए मन्त्रों द्वारा बुलाते थे (ऋ० १०।१४।४)।ऋ० (१०।८८।१४) में आया है—-'हम मन्त्रों के साथ अपना स्वर वैश्वानर अग्नि की ओर उठाते हैं, जो विज्ञ हैं और जो सभी दिनों में प्रकाश के साथ चमकते हैं। कभी-कभी 'मन्त्र' शब्द एकवचन में भी आया है, यथा ऋ० १।४०।५-६, ७।३२।१३, १०।१९१।३। और मी देखिए ऋ० १।३१।१३, १।७४।१, १।१४७।४, १।१५२।२, २।३५।२, ६।५०।१४, ७।७।६, १०।५०।४ एवं ६, १०।१०६।११। दो स्थानुों (ऋ० १०।९५।१ एवं १०।१९१।३) में 'मन्त्र' शब्द का अर्थ है 'परामर्श, एकत्र हो मन्त्रंणा करना।' ऋ० (१।२०।४) में 'ऋभुओं' को 'सत्यमन्त्राः' कहा गया है और ऐसा कहा गया है कि उन्होंने अपने माता-पिता को युवा बना दिया थो। 'ऋम्' कौन हैं और 'सत्यमन्त्राः' से उनका क्या सम्बन्ध है, इस विषय में मतभेद है, स्पष्ट रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ऋ॰ (७।७६।४) प्रहेलिकामय कथन है। इसका अर्थ है—'केवल वे (अंगिरा), हमारे पुराने पितर लोग विद्वान् (विज्ञ) लोगों और उचित मार्ग का अनुसरण करते हुए देवों के साथ का आनन्द लेते रहे और उन्होंने (स्वर्मानु या ग्रहण द्वारा) छिपाये गये प्रकाश (सूर्य) को प्राप्त किया; उन्होंने, जिनके मन्त्र सत्य थे, उषा को प्रकट किया।' कुछ वचनों में, जहाँ स्तोम या ब्रह्म जैसे शब्द आये हैं, कहा गया है कि अक्त द्वारा स्तोम या ब्रह्म निर्मित किये गये या चमकाये गये (ऋ० १०।३९।१४, ५।२९।१५, ७।३२।२ एवं १०।५०।७)। 'गिर्' (कई सौ बार), 'घीति' (लगभग सौ बार), 'ब्रह्म' (एक सौ से अधिक बार), 'यित' (लगभग सौ बार), 'मनीषा' (६० बार से अधिक), 'वचस्' एवं

१०३. ऋषे मन्त्रकृतां स्तोनैः कश्यपोद्धर्वयन् गिरः। सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीश्वां पतिरिन्द्रायेन्दो परि स्रव।। ऋ० (९।११४।२); हस्ते द्यानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्याद् गृहा निवीदन्। विदन्तीमत्र नरो वियं वी द्वा यत्तष्टान् मन्त्रौ अशंसन्।। ऋ० (१।६७।२); सायण ने व्याख्या को है: 'अग्नौ हविभिः सह पलाविते सित सर्वे देया अभैवुरित्यर्थः।' अजो न क्षां दाघार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रोभः सत्यैः। ऋ० (१।६७।३)।

'वचस्या' (सौ बार से अधिक), 'स्तोम' (२०० बार से अधिक), 'सुकीर्ति' (पाँच बार), 'सुक्त' (चार बार); ये शब्द 'विचार, शब्द या विचारे हुए स्तोत्र या प्रशस्ति-वाक्य' के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कितपय प्रसंगों में ऋग्वेद के ऋषियों का कथन है कि यह एक नया पद्य या प्रशस्ति है (जिसे वे प्रयुक्त कर रहे हैं)। देखिए ऋ० ५।४२।१३, ६।४९।१, ७।५३।२, १।१४३।१, ६।८१, ८।७४।७, १०।४।६, ६।६२।५, १।६०।३, ९।९१।५, ९।९।८। यह द्रष्टव्य है कि 'सुकीर्ति' एवं 'सुक्त' जसे शब्द, जो केवल ४ या ५ वार प्रयुक्त हुए हैं 'नव्य' (नवीन) कहे गये हैं किन्तु 'मन्त्र' शब्द, जो कितनी ही बार प्रयुक्त हुआ है, 'नवीनता' के विशेषण से कभी भी सुशोमित नहीं किया गया है। इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बहुत-से मन्त्रों के समूह पहले से ही विद्यमान थे, जिनसे अवसर पड़ने पर प्रार्थनाएँ ग्रहण की जाती थीं, यद्यपि समय-समय पर नये पद्य भी जोड़े जाते थे। यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं ऋग्वेद ने 'घीति' जैसी प्रार्थनाओं को दैवी कहा है और उन्हें अश्विनों, उषा एवं सूर्य (८।३५।२) की प्रार्थनाओं की श्रेणी में रखा है और यह भी कहा है कि प्राचीन प्रार्थनाएँ पूर्व-पुरुषों से प्राप्त की गयी हैं (३।३९।२, 'सेयमस्मे सनजा पित्र्याघीः')। ऋग्वेद के बहुत-से मन्त्र एवं सुक्त शुद्ध रूप से दार्शनिक, सृष्टि-सम्बन्धी, रहस्यवादी एवं कल्पनाशील हैं, यथा १।१६४।४, ६, २९, ३२, ४२, १०।७१, १०।९० (पुरुषसूक्त), १०।१२१ (हिर्ण्यगर्भ), १०।१२९, १०।८१-८२ (विश्वकर्मा), १०।७२, १०।१२५ (वाक्), १०।१५४ (मृत्यूपरान्त की स्थिति), १०।१९० (सृष्टि)।

वैदिक मन्त्रों के अर्थ एवं उपयोग के विषय में कई मतभेद हैं। यहाँ इतना कहा जा सकता है कि पूर्वमीमांसा के अनुसार सम्पूर्ण वेद का सम्बन्ध यज्ञों से है, वेद दो श्रेणियों में विभाजित है— 'मन्त्र एवं ब्राह्मण या विधि वाक्य', जो वेद के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वैदिक वचनों में बहुत-से अर्थवाद हैं (या तो वे विधियों की प्रशस्तियाँ हैं या रूपक द्वारा व्याख्या के योग्य हैं, या वे केवल वही दुहराते हैं जो विद्यमान है या केवल काल्पनिक हैं), तथा मन्त्र केवल यजमान या पुरोहितों के मन में यह बात बैठाने का कार्य करते हैं कि यज्ञ में क्या करना है तथा मन्त्रों में प्रयक्त शब्द वही अर्थ रखते हैं जो सामान्यतः संस्कृत भाषा में पाये जाते हैं।

यास्क के पूर्व (ईसा से कई शतियों पूर्व) वैदिक मन्त्र-व्याख्या की कई शाखाएँ थीं, यथा ऐतिहासिकों (जिन्होंने तिरुक्त २।१६ में ऐसा कहा है कि वृत्र 'त्वष्टा' का पुत्र एवं असुर है, नैरक्तों के अनुसार वृत्र का अर्थ 'वादल' है। वेद में युद्धों का आलंकारिक विवरण है, तथा वे युगल जिन्हें ऋ० १०।१७।२ के अनुसार सरण्यु ने त्यागा था, इन्द्र एवं माध्यमिका-वाक् थे, जब कि ऐतिहासिकों के अनुसार वे यम एवं यमी हैं, जैसा कि निरुक्त १२।१० में वर्णित है) की शाखा, नैदानों की शाखा (स्याल एवं ,साम, निरुक्त ६।१९), पुराने याज्ञिकों की शाखा (निरुक्त ५।११, ऋ० १।१६४।३२०। परिव्राजकों एवं नैरुक्तों ने याज्ञिकों की शाखा की व्याख्या विभिन्न ढंग से की है। निरुक्त में ऐसे १७ पूर्ववर्ती लोगों का उल्लेख है जो उससे भिन्न मत रखते थे और आपस में भी एक-दूसरे से भिन्न थे, यथा-आग्रायण, औदुम्बरायण, कौत्स, गार्ग्य, गालव, शाकटायन, शाकपूणि। कई ऐसे मन्त्र हैं जिनके दो-दो अर्थ निरुक्त द्वारा किये गये हैं (यथा-ऋ 0 ८।७७।४, निरुक्त ५।११)। ऋ 0 १।१६४ में कई मन्त्रों के दो अर्थ या अधिक अर्थ कहे गये हैं, सायण ने ३९ वें मन्त्र के चार अर्थ किये हैं, ४१ वें मन्त्र का अर्थ सायण ने दो प्रकार से किया है और वे दोनों अर्थ यास्क (निरुक्त ११।४०) से मिन्न हैं; ४५ वें मन्त्र की व्याख्या सायण ने ६ प्रकार से की है, इसका अर्थ महाभाष्य ने भी कियां है। ऋ० ४।५८।३ (चत्वारि शृंगाः) का अर्थ आरम्भिक कालों से ही कई प्रकार से किया जाता रहा है। निरुक्त (१३।७) ने इसे यज्ञ से सम्बन्धित माना है। यही बात महामाष्य में भी पायी जाती है। सायण ने इसे अग्नि (यज्ञीय) से सम्बन्धित माना है। यह एक पहेली ही है। शबर ने पूर्वमीमांसासूत्र (१।२।३८) के भाष्य में इसका अर्थ किया है, किन्तु कुमारिल ने अपना मतभेद प्रकट किया है। ऋ० (१।१६४) में ११-१३ एवं ४८ मन्त्र बहुत ही कल्पनाशील एवं कवित्वमय हैं, इनमें वर्ष, ऋतुओं, मासों, सम्पूर्ण दिनों एवं रात्रियों का वर्णन है।

कुछ वर्ष पूर्व श्री अरिवन्द घोष ने अपने 'हीम्स टु दि मिस्टिक फायर' (गूढ़ अर्थ में अनूदित, १९४६) में एवं उनके भक्त शिष्य श्री टी॰ वी॰ कपाली शास्त्री ने 'ऋग्माष्यमूमिका' (संस्कृत एवं इसका अंग्रेज़ी अनुवाद, पाण्डिचेरी, १९५२) में ऋग्वेद के मन्त्रों के विषय में एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जिसका थोड़े में यहाँ विवरण उपस्थित किया जा रहा है। श्री अरिवन्द्र घोष ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का शब्दशः सम्पादन एवं अंग्रेजी अनु-वाद करना चाहा था, परन्तु अन्य कार्यों में अति व्यस्त होने के कारण उन्होंने वह विचार त्याग दिया और वे प्रथम, द्वितीय एवं छठे मण्डलों के २३० मन्त्रों तक उपर्युक्त ग्रन्थ निर्मित कर सके। उन्होंने इस ग्रन्थ में ४८ पृष्ठों की मूमिका में अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जिन दिनों यह ग्रन्थ लिखा जा रहा था, प्रस्तुत लेखक (काणे) को श्री अरविन्द घोष लिखित ६३४ पृष्ठों का ग्रन्थ 'आन दि वेद' (१९५६ ई० में प्रकाशित) मिला। ६० से अधिक सूक्त इस विशाल ग्रन्थ में व्याख्यायित हैं और उपर्युक्त सिद्धान्त २८३ पृष्ठों में विवेचित हुआ है। 'आन दि वेद' के ९ वें पृष्ठ पर उनक कथन है---'सायण द्वारा स्वीकृत नैगिमक विघान ज्यों-का-त्यों रह जाय, यूरोपीयों द्वारा स्वीकृत प्रकृतिवादी विचारघारा सामान्य मान्यताओं के अनुरूप मले ही मान ली जाय, किन्तु इन सब के पीछे वेद का एक सत्य एवं गुप्त रहस्य अब भी छिपा पड़ा हुआ है—वे रहस्यभरे शब्द जो पिवत्रात्माओं के लिए कहें गये थे तथा उनके लिए नि:सृत हुए थे जो ज्ञान के रूप में जगे हुए थे।' इस पुस्तक में वे 'ऋत' का अर्थ 'सत्य' मानने पर अडिंग हैं और पृ० ८४ पर 'ऋतम्' को 'सत्य-चेतना' के अर्थ में (ट्रूय-कांशसनेस) लिया है। ऋग्वेद के उन सैंकड़ों स्थानों की, जहाँ 'ऋत' शब्द प्रयुक्त हुआ है, तुलना करके उन्होंने अपने अर्थ को ही सम्यक् एवं समीचीन माना है, जो अधिकांश लेखकों को मान्य नहीं है। लोग प्रकाश (लाइट) एवं चेतना (कांशसनेस) के आधुनिक एवं ऋग्वेदीय अर्थों के अन्तर को जानना चाहेंगे। जहाँ तक प्रस्तुत लेखक को ज्ञात है, प्राचीन प्रतीकवादी भाषा में 'चेतना' 'प्रकाश' के अनुरूप मानी जाती है। श्री अरविन्द घोष ने अपनी पुस्तक 'आन दि वेद' में सम्पूर्ण वेद के केवल १/१५ अंश (ऋग्वेद में कुल १०१७ या १०२८ सूक्त हैं) का उल्लेख किया है। उन्होंने प्रथम ग्रन्थ में ऋग्वेद के केवल १/४० वें माग का अनुवाद करके यह चाहा है कि लोग उनकी मान्यता स्वीकार कर लें। उन्होंने 'ऋत' जैसे शब्दों की व्याख्या तक नहीं की है।

श्री अरिवन्द घोष ने यह स्वीकार किया है कि सायणाचार्य ने वेद की आध्यात्मिक प्रामाणिकता अस्बीकृत नहीं की है और माना है कि ऋचाओं में महत्तर सत्य भरा पड़ा है (प्राक्कथन, पृ०३)। उन्होंने पुनः कहा है (प्राक्कथन, पृ०९) कि हमें यास्क (उन्होंने यास्क का उद्धरण नहीं दिया है, किन्तु सम्मवतः निरुक्त ११२०ः 'साक्षात्-कृतघर्माण ऋषयो बमुवः' की ओर उनका आश्रय है) के संकेत को गम्मीरतापूर्वक लेना चाहिए। इसके उपरान्त उनका कथन है कि बहुत-सी वैदिक ऋचाएँ रहस्यवादी अर्थ वाली हैं (पृ०१७) और ऋषियों ने उन्हें गोपनीय बनाने के लिए दो अर्थों में रखा है, जो संस्कृत माषा की एक सरल विधि है (पृ०१९)। यह एक ऐसी घारणा है जो मात्र कल्पना है और अन्य लोगों द्वारा मान्य नहीं हो सकती। वैदिक मन्त्र सहस्रों वर्ष पूर्व प्रणीत हुए, जब वे समी लोग, जिनके बीच ऋषि रहा करते थे, उसी माषा का व्यवहार करते थे, यद्यपि उनकी बोल चाल की माषा उतनी परिमार्जित एवं कवित्वमय नहीं रही होगी जैसी मन्त्रों की है, और वे मन्त्र आजकल के लोगों को सम्बोधित नहीं थे जिनके विचार, परिस्थितियाँ एवं भाषाएँ भिन्न एवं पूर्णतया सर्वथा पृथक् हैं। गृह एवं शिष्य, दोनों (श्री अरिवन्द घोष एवं श्री कपाली शास्त्री) यह सोचकर कि जो किठनाई आज के पाठकों के समक्ष है वही मन्त्रों के प्रणयन के समय मी थी, लोगों को भ्रम में डालते हैं (यह सम्मव है कि वेदोनों स्वयं भ्रम में हैं)। ऋग्वेद का सर्वोच्च अथवा उत्कृष्ट विचार यह है कि इन्द्र, वहण, अग्नि, यम, मातरिक्वा आदि विभिन्न देवों के मीतर केवल एक ही शक्ति है तथा मौलिक रूप में वही एक है। "आरम्भ में न तो कोई दिन आ, न रात्रि थी और न थी अमरता"—स्वयं

श्री अरविन्द ने वर्णन किया है (पृ० ३२) कि ऋग्वेद का यह १।१६४।४६ एवं १०।१२९।२ अंश वैदिक शिक्षा (ज्ञान) की चरमावस्था है। एक ही सत्ता वाला यह सिद्धान्त (कृष्टिकोण) ऋ० ८।५८।२ में मी है, यथा— 'एक और वही अग्न कई स्थानों में प्रज्वलित होता है, एक ही सूर्य सम्पूर्ण विश्व में प्रविष्ट होता है और कई हो जाता है; एक ही उषा इस सभी (भौतिक) विश्व को प्रकाशित करती है, एक ही यह सब हुआ (विभिन्न रूपों में परिणत होता है)।' इस मौलिक सत्य को लेकर कोई गोपनीयता नहीं बरती गयी और आज का कोई भी थोड़ी-सी संस्कृत जानने वाला साघारण व्यक्ति इसे समझ सकता है। यदि इतनी शितयों के उपरान्त, भाषा के परिवर्तन के कारण, आज का व्यक्ति बहुत-से मन्त्रों को नहीं समझ सकता, तो हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि प्राचीन ऋषियों (प्रष्टाओं) ने अर्थ छिपाने का अपराघ किया और उन्होंने जान-बूझ कर मन्त्रों में दो अर्थ भर दिये। हाँ, कहीं-कहीं कवित्वमय उक्तियों में रूपक एवं श्लेष का आ जाना स्वामाविक है और कुछ द्रष्टाओं ने किव-चातुर्य प्रकट कर दिया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। "" यदि हम उनका अर्थ नहीं समझ पाते हैं तो यह द्रष्टाओं (ऋषियों) का दोष नहीं है, जिस प्रकार यदि कोई अन्धा व्यक्ति मार्ग में किसी खम्भे से मिड़ जाता है और सिर फूट जाने से कष्ट में पड़ जाता है और अपने को दोष न दे खम्भे को दोषी ठहराना आरम्भ कर देता है, उसी प्रकार हमारी मी स्थित होगी यदि हम अपने अज्ञान को दोष न देकर प्राचीन ऋषियों को अपनी कल्पना द्वारा प्रसूत योजना से दोषी बनायें और कहें कि उन्होंने जान-बूझ कर दो अर्थ किये हैं, अथवा यह किया है या वह किया है। ""

श्री अरिवन्द घोष ने यह स्वीकार किया है (पृ० ३३) कि ऋग्वेद में कुछ ऐसे शब्द हैं जो कुंजी का कार्य करते हैं, यथा—ऋत, ऋतु, केतु, श्रवस्; उन्होंने यह भी माना है कि इन शब्दों के अर्थों को ठीक-ठीक बैठाने के लिए बृहत् कार्य करना चाहिए। किन्तु उन्होंने इन कुंजी-शब्दों (जिनमें 'केतु' को छोड़ कर, प्रत्येक ऋग्वेद में सैकड़ों बार आया है) का अध्ययन नहीं किया है। उन्हें ऋग्वेदीय वचनों में प्रयुक्त इन शब्दों की तुलना करनी चाहिए थी और संहिताओं एवं ब्राह्मणों में पाये जाने वाले शब्दों के प्रकाश में उनका अध्ययन करना चाहिए था। उन्होंने 'ऋत' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के १।१६४।७ एवं ४।२१।३ (सदनात्—ऋतस्य) में तथा 'ऋतस्य पथ्या' का प्रयोग (ऋ० ३।१२।७) देखकर झट से यह निष्कर्ष निकाल लिया कि 'ऋतस्य पथ्या' का अर्थ है 'सत्य का मार्ग' और

१०४. गुर (श्री अरिवन्द घोष) एवं शिष्य (श्री कपाली शास्त्री) दोनों मन्त्रों के कवित्यसय स्वरूप के विषय में एक-दूसरे से, पृथक् मत रखते हैं। श्री अरिवन्द (पृ० ३४) ने यह कहने के उपरान्त कि उनका अनुवाद साहित्यिक हैन कि पूर्णतया शाब्दिक, मन्त्रों को महान् कविता ('ग्रेट पोइट्री') कहा है और उन्हें रंगों एवं आकारस्थापन में (कर्लारंग एवं इमें जेंच) परम शोमन एवं लय में उत्कृष्ट तथा मुन्दर माना है। अब हम जरा उनके शिष्य की बात भी जान लें। पृ० ६५ पर श्री कपाली शास्त्री कहते हैं: 'स्तोत्रीय कविता असामान्य है, अन्य कविता से भिन्न है, यहाँ तक कि अति उत्कृष्ट नमूनो से भी पृथक् है।' इसके उपरान्त वे पाठकों, प्रस्तुत लेखक के समान अन्य लोगों, यहाँ तक कि उपलक्षित ढंग से स्वयं अपने गुरु की यह कहकर भत्साना करते हैं: 'वैदिक मन्त्रों को साहित्यिक एवं सौन्दर्या- निश्चित्तमय कविता के अन्तर्गत रखना अग्राह्य (अथवा अस्वीकृत) है।' वे ऐसा क्यों कहते हैं? पृ० ३१ में श्री शास्त्री बलपूर्वक कहते हैं कि 'मन्त्र दो अर्थ वाले हैं, (१) आन्तरिक, जो मनोवैज्ञानिक या आध्यात्मिक हैं और सत्य अर्थ वाले हैं तथा (२) बाह्य या स्थूल अर्थ वाले, जो सामान्य लोगों के लिए हैं' और उन्होंने यह जोड़ा है कि इस्वंक शब्दों का प्रयोग जान-बूझ कर किया गया है किन्तु वह स्वाभाविक एवं अनायास रूप से हुआ है।

१०५. यथो एतर्वविस्पष्टार्था भवन्तीति । नैष स्थाणोरपराघो यदेनमन्घो न पश्यति पुरुषापराधः स भवति । निरुक्त (१।१६) । ॰ यह कह दिया कि हमें सत्य के मार्ग का अन्वेषण करना चाहिए (प्राक्कथन, पृ० ३०)। हमने इस महाग्रन्थ के चौथे खाड़ में देख लिया है कि ऋग्वेद में ऋत का अर्थ तीन प्रकार का है, यथा—(१) जगत् में नियमित एवं सामान्य व्यवस्था; (२) देवों के विषय में सम्यक् एवं व्यवस्थित विवि; (३) 'मानव का नैतिक आचरण।' ऋग्वेद में 'ऋत' वहीं नहीं है जी 'सत्य' है, प्रत्युत दोनों में अन्तर प्रकट किया गया है। ऋग्वेद (५।५११२) में विश्वेदेवों को 'ऋत-धीतयः' (जिनके विचार ऋत पर अटल या स्थिर हैं) एवं 'सत्यधर्माणः' (जिनके धर्म या व्यवस्थाएँ या नियम सत्य हैं या स्थिर हैं) कहा गया है और ऋषि ने जनसे यज्ञ में आने के लिए तथा अग्नि की जिह्ना से (आज्य एवं सोम) पीने के लिए प्रार्थना की है। ऋग्वेद (१०।१९०।१) में ऋत एवं सत्य दोनों को (सृष्टिकर्ता के) किटन एवं देदीप्यमान तप से उत्पन्न कहा गया है। ऋग्वेद में 'ऋत' का अर्थ, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बहुत व्यापक है उसका सम्वन्य एक महान् धारणा से है, किन्तु 'सत्य' का अर्थ एक संकुचित रूप में है, यथा 'मात्र 'सत्य' या स्थिर व्यवस्था। ऋग्वेद (९।११३।४) में सोम को ऋत, सत्य एवं श्रद्धा की घोषणा करने वाला कहा गया है। 'का अतः जब श्री अरविन्द 'ऋत' का अर्थ 'सत्य' लगाते हैं तो वे बड़ी तृटि करते हैं और अपने त्रृटिपूर्ण अनुवाद से महान् निष्कर्ष निकालने पर उतारू हो जाते हैं।

इसी प्रकार श्री अरिवन्द ने 'ऋतिचत्' को 'सत्य-चित्' '(ट्रु.य-कांशस) के अर्थ में लेकर त्रुटि की है (ट्रू.य-कांशस का अर्थ, उनके अनुसार, चाहे जो हो)। इस विषय में देखिए उनका प्राक्कथन (फोरवर्ड, पृ०३०)। पृ०४६ में उनके शिष्य श्री कपाली शास्त्री एक पग आगे बढ़कर कहते हैं कि मन्त्रों में सत्य ज्ञान को ऋतिचत् (ट्रु.य-कांशसनेस) कहा गया है। ऐसा लगता है कि गुरु एवं शिष्य दोनों ब्रह्म के लिए प्रयुक्त 'सत् +िवत् + आनन्द में संलग्न 'चित्' के फेर में पड़ गये हैं। दोनों ने 'ऋतिचित्' को 'ऋते एवं 'चित्' दो पृथक वस्तुओं के अर्थ में ले लिया है। 'ऋतिचित्' शब्द ऋग्वेद में पाँच बार आया है, यथा १।१४५।५, ४।३।४, ५१३।९ (यहाँ 'ऋतिचित्' अग्न की उपाधि है), ७।८५।४ (यहाँ यह होता का विशेषण है) एवं ४।१६।१० (यहाँ यह इन्द्र की पत्नी शची के सन्दर्भ में नारी शब्द की विशेषता वताता है) में। '' प्रस्तुत लेखक को आश्चर्य होता है कि गुरु एवं शिष्य दोनों ने इन स्थलों पर प्रयुक्त 'ऋतिचित्' के अर्थ को जानने का प्रयत्न क्यों नहीं किया। उन्होंने ऋ० २।२३।१७ में प्रयुक्त 'ऋणिचत्' की ओर, जो ब्रह्मणस्पित की उपाधि है, अपना ध्यान नहीं दिया। ''

श्री अरिवन्द एवं श्री कपाली शास्त्री के अन्य अप्रामाणिक प्रस्तावों एवं निष्कर्षों की चर्चा कर्ने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। अब यहाँ श्री अरिवन्द के अन्तिम निष्कर्ष को उपस्थित किया जा रहा है (प्राक्कथन, पृ० २९)—

१०६. ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्नया।। ऋ० ५।५१।२; ऋतं च सत्यं चामीद्वात्तपसोऽध्यजायत । ततो राज्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।। ऋ० १०।१९०।१; ऋतं वदसृतद्युम्न सत्यं वदन् सत्यकर्मन् । श्रद्धां वदन् सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ऋ० ९।११३।४।

१०७. व्यववीद् वयुना मत्यें स्योऽिर्मावदाँ ऋतिचिद्धि सत्यः।। ऋ० १।१४५।५। यह द्रष्टव्य है कि यहाँ 'ऋतिचित्' एवं 'सत्य' दोनों अग्नि की उपाधियाँ हैं। इन दोनों को पृथक्-पृथक् अर्थ वाला मानना ही पड़ेगा। 'स सुऋतुर्ऋतिचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान्। ऋ० ७।८५।४, जिसका अर्थ यों है: 'हे अदिति के पुत्रो, वह होता, जो तुम्हें शक्ति (उच्च स्वर) के साथ नमस्कार करता है, जो ऋत जानता है (नैतिक चित्रत्र या जगत्-सम्बन्धी नियम जानता है) वह अच्छे कमौं (या इच्छा) वाला व्यक्ति बने।' १।१४५।५ में 'सत्य' शब्द का अर्थ होगा सच्चा या शुद्ध। 'चित्' शब्द 'चि' (एकत्र करना) से या 'चित्' (जानना) से निष्पक्ष हो सकता हैन

१०८. स ऋणिचिदृणया ब्रह्मणस्पतिद्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ ऋ० २।२३।१७।

"इस प्रकार वेद को समझने पर जो प्रकट होता है वह कौन गुप्त अर्थ है अर्थात् वह कौन गोपनीय (अलौकिक या गूढ़) रहस्य छिपा हुआ है? ... वह विचार जिस पर सब कुछ केन्द्रित है, वह है सत्य, प्रकाश, अमरता की खोज। बाह्य रूप से प्रकट होने वाले सत्य से बढ़कर गूढ़ एवं उच्च वह सत्य है, वह प्रकाश मनुष्य की समझ से बढ़ कर बड़ा एवं उच्च है, जो ऐशोन्मेष एवं प्रबोधन से प्राप्त होता है, और वह अमरता वह है जिसके लिए आत्मा को उठना है (जागना है)। हमें उसके लिए मार्ग ढूँढ़ना है, इस सत्य एवं अमरता के संस्पर्श को प्राप्त करना है।" यह एक महान् उपसंहार है, किन्तु यह सब कच्ची एवं कम्पित होने वाली नींव पर आधृत है, क्योंकि यहाँ 'ऋत' एवं 'चित्' के ग़लत अर्थों का सहारा लिया गया है। श्री कपाली शास्त्री (पृ० ४६) ने अपने गुरु के इस निष्कर्ष को ज्यों-का-त्यों रख दिया है।

श्री शास्त्री महोदय ने (पृष्ठ २२।२६) सायण के विरोध में निन्दात्मक लेख लिखा है, किन्तु अन्त में उन्हें यह (पृ० २७-२८) मानना पड़ा है कि सायण वेद के पाठकों के लिए न-केवल उपयोगी हैं, प्रत्युत अपरिहार्य हैं। पृ० २३ पर उन्होंने जैमिनि का सूत्र अनुदित किया है—'वेद का उद्देश्य किया-संस्कार के लिए है, वे शब्द जिनका सम्बन्ध इससे नहीं हैं, व्यर्थ हैं', और कहा है कि इससे यह स्पष्ट व्यवस्था झलकती है कि वेद का एकमात्र उद्देश्य है किया-संस्कार-विधि, जो इससे सम्पर्क नहीं रखते (अर्थात् विधि या किया-संस्कार से सम्पर्क नहीं रखते) वे मन्त्र निरर्थक हैं। प्रस्तुत लेखक को ज्ञात होता है कि श्री शास्त्री महोदय ने पूर्वमीमांसासूत्रों का अध्ययन सावधानी से नहीं किया है और न वस्तुस्थित का प्रकाशन ही सम्यक् रूप से किया है; उन्होंने जो उद्धृत किया है वह मात्र पूर्वपक्ष है। जीमिन का प्रसंग यों है—

'आम्नायस्य त्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानां तस्मादनित्यमुच्यते।'...

'विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्यु:।'--पू० मी० सू० (१।२।१ एवं ७)

इस दूसरे सूत्र का अर्थ है—'क्योंकि वे वचन (जो सीघी तौर से क्रिया-संस्कारों अथवा विधि-कर्मों से सम्बंधित नहीं हैं) जो वाक्यरचना के विचार से विधि की व्यवस्था करने वाले वचनों से पूर्णतया (एक रूप से) सम्बन्धित हैं, वे विधियों को मान्यता देने वाले कहे जाते हैं।' श्री शास्त्री यह कहकर सन्तोष नहीं करते कि 'मघुच्छन्द ऋषिगण एवं अन्य मन्त्रद्रष्टा थे, इन प्राचीन द्रष्टाओं के समक्ष देवता उपस्थित थे', प्रत्युत वे और आगे कहते हैं—'परोक्ष को देखने वाला सत्य को देखने वाला भी कहा जाता है; अतः किव—द्रष्टा सत्यश्रुत (कवयः सत्यश्रुतः) हैं, वेद में प्रसिद्ध हैं' (पृ० ६४)। प्रस्तुत लेखक को आश्चर्य है और लगता है कि श्री शास्त्री ने वेद में आये हुए इन वाक्यों को सावधानी से नहीं पढ़ा है जहाँ 'कवयः सत्यश्रुतः' प्रयुक्त हुआ है। 'कविः' एवं 'कवयः' शब्द ऋग्वेद में कई बार आये हैं, किन्तु 'सत्यश्रुतः' केवल तीन बार आया है, यथा ५।५७।८, ५।५८।८ एवं ६।४९।६; ऋ० ५।५७।८ तथा ५।५८।८ तो एक ही हैं। ऋ० ५।५७।८ एवं ५।५८।८ में महतों को 'कवयः' (विज्ञ या समझदार) एवं 'सत्यश्रुतः' (सत्य पुरस्कार देने में प्रसिद्ध) उपाधियों से सम्बोधित किया गया है, न कि ऋषियों को। ऋ० ६।४९।६

१०९. हये नरो मक्तो मृळता नस्तुवीम घासो अमृता ऋतज्ञाः। सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्ष माणाः।। ऋ०५।५७।८ एवं ५।५८।८; पर्जन्यवाता वृष्ठमा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि। सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्मिर्जगतः स्थातुर्जगदा कृणुष्वम्।। ऋ०६।४९।६। ५।५७।८ के उत्तराधं में 'सत्यश्रुतः कवयः' के साथ और जो शब्द आये हैं वे पूर्वाधं में मक्तों की उपाधियाँ हैं। ६।४९।६ के उत्तराधं में 'सत्यश्रुतः कवयः' सम्बोधन है जैसा कि पवपाठ से प्रकट होता है और मक्तों के लिए सम्बोधित है, जैसा कि ५।५७।८ एवं ५।५८।८ से प्रकट है। 'सत्यश्रुतः कवयः' शब्द वेद के कवियों की ओर, किन्हीं भी तीन कारकों में, संकेत नहीं करता।

(जिसका प्रथम अर्घ माग पर्जन्य एवं वायु देवता को सम्बोधित है) इस प्रकार है—'हे जगत् को प्रतिष्ठापित करने वाले! (हे मस्त् गण), जो सत्य फल देने में प्रसिद्ध हैं और विज्ञ हैं, ऐसे आप जगत् को उस मनुष्य की ओर घुमा दें जिसके गीतों से आप प्रशंसित हैं' (यह ऋचार्घ, ऐसा प्रकट होता है, मस्तों के झुण्ड या समूह को सम्बोधित है)। अब और टिप्पणी व्यर्थ है। "

मीमांसकों ने एक समेट में (झाडूमार ढंग से) यह सामान्यवाद प्रकाशित कर दिया है कि सम्पूर्ण वेद यज्ञ के लिए ही है। ऐसा कहने में वे बहुत आगे चले गये, किन्तु ऐसा करने के लिए उनके पास पर्याप्त तर्काघार या। हमने इस ग्रन्थ के खण्ड २ में यह देख लिया है कि किस प्रकार स्वयं ऋग्वेद से प्रकट है कि उन दिनों भी तीन सवनों, कई पुरोहितों, तीन अग्नियों वाले यज्ञ होते थे, यथा—अतिरात्र (ऋ० ७।१०३।७) एवं त्रिकद्रुक (ऋ० १।३२।३, २।११।१७, ८।१३।१८, ८।९२।२१, १०।१४।१६) नामक यज्ञ । मीमांसकों के पीछे प्राचीन परम्पराएँ थीं । किन्तु श्री अरविन्द के सिद्धान्त सर्वथा मिन्न हैं । बहुत ही निर्बल आधारों एवं त्रुटिपूर्ण अर्थों पर वे वैदिक मन्त्रों के साधारण एवं गूढ़ अर्थ वाले तथा देखने में भड़कीले ढाँचे का निर्माण करके उद्घोषणा करते हैं कि ऋषियों ने अपने सिद्धान्तों को गोपनीय रखना चाहा था और वे जो कुछ कहना चाहते थे, वह सत्य था, प्रकाश था और या चेतना। यह हमने पहले ही देख लिया है कि ऋग्वेद में कई दार्शनिक एवं कल्पनात्मक ऋचाएँ हैं। किन्तु वहाँ संगोपन-सम्बन्धी कोई प्रवृत्ति नहीं है। यदि केवल सत्य (ट्र्थ), प्रकाश (लाइट) एवं चेतना (कांशसनेस) तक ही वैदिक ऋषियों का सम्बन्ध था तो इसके लिए दस सहस्र पद्यों की आवश्यकता नहीं थी। लोग यह जानना चाहेंगे कि ऋ 0 ७।५५ (सोता हुआ प्रलोमन या कान्ति या शोभा या माया आदि), ७।१०३ (मण्डूक-स्तुति), १०।३४ (जुआरी का गान), १०।११९ (इन्द्र पर सोम की शक्ति की आनन्द-पूलकितावस्था), १०।१६६ (शत्रुओं के नाश का आवाहन), १०।१९१ (सहयोग एवं सहकारिता वाली) ऋचाओं में वह कौन-सा रहस्य या उच्चतर अथवा गूढ़तर सत्य का प्रकाश या चेतना है जो साधारण लोगों की दृष्टि से छिपा कर रखी हुई है। इसी प्रकार बहुत-सी ऐसी ऋचाएँ उदाहरण-स्वरूप प्रकट की जा सकती हैं, जहाँ पर सत्य, प्रकाशुं एवं चेतना वाला सिद्धान्त पूर्णतया असफल एवं आघारहीन सिद्ध हो जायगा। इसके अतिरिक्त यह पूछा जा सकता है कि ऋ० १।१६४।४६, १०।१२९।२ एवं ८।५८।२ (जो ऊपर उद्धृत है) में वह कौन-सा (आध्यात्मिक या गूढ़) रहस्य है, जो अत्यन्त महान् सत्य को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है। यदि मीमांसकों ने बहुत लम्बा एवं चौड़ा सामान्यवाद प्रकाशित किया है तो श्री अरविन्द ने बहुत ही क्षीण आधार पर उससे भी बड़ा एवं लम्बा-चौड़ा सामान्यवाद उद्घाटित कर दिया है, अर्थात् एक छोटी बात को बिना किसी पुष्ट आघार के बड़ी महत्ता दे देनी चाही है।

ऋग्वेद के मन्त्रों का एक अर्थ होता है, न कि वे तान्त्रिक ग्रन्थों के मन्त्रों के समान बहुधा निर्धिक शब्दों के समुज्वय मात्र होते हैं। निरुक्त (१।१५-१६) में एक विवाद दिया हुआ है, जहाँ यह आया है कि निरुक्त के अमाव

११०. श्री अरिवन्द एवं उनके शिष्यों का कहना है कि उन्होंने वेद के विषय में एक ऐसा नया प्रकाश प्रहण किया है जो प्राचीन एवं जायुनिक विद्वानों को गोचर नहीं हो सका है। श्री अरिवन्द एवं उनके शिष्यों ने यास्क, जैमिनि, सायण एवं अन्य द्वीकाकारों को बड़ी निष्ठुरता के साथ पकड़ा है। श्री अरिवन्द ने जो वैदिक निशाम्यास या रात्रि-अध्ययन किया है वह क्यों एवं कैसे गलत एवं त्रृटिपूर्ण है, यह कहने की स्वतन्त्रता अन्य लोगों को भी मिलनी चाहिए। श्री अरिवन्द के भक्तों एवं समर्थकों से प्रार्थना है कि वे प्रस्तुत लेखक की श्री अरिवन्द के सिद्धान्तों से संबंधित आलोचनाओं को अन्यथा एवं असम्मानसूचक न समझें।

४८२

## धर्मशास्त्र का इतिहास

में मन्त्रों में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ प्रकट न हो पाता, वहीं कौत्स का यह दृष्टिकोण मी दिया हुआ है कि मन्त्रों के अर्थ को मानने के लिए निरुक्त निर्श्वक एवं निरुप्योगी है, क्योंकि स्वयं मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं है (या वे व्यर्थ या निर्श्वक या उद्देश्यहीन या अनुपयोगी हैं)। यास्क ने उत्तर दिया है कि मन्त्रों के अर्थ अवश्य हैं क्योंकि उनमें ऐसे शब्द प्रयुक्त हैं जो सामान्य संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं, और वे इस कथन के उपरान्त ऐतरेय ब्राह्मण (११५) का एक वचन उद्धृत करते हैं। शा शबर (जै० १।२।४१) का कथन है कि जब कोई व्यक्ति अर्थ नहीं लगा पाता तो वह अन्य वैदिक वचनों की विवेचना के सहारे किसी अर्थ को पा लेता है, या निरुक्त एवं व्याकरण के अनुसार धातुओं के आधार पर कोई-न-कोई अर्थ कर लेता है।

## अवतार-विवेचन

विस्तार से विणत पुराण-विषयों में एक महत्त्वपूर्ण विषय है अवतार-विवेचन। घामिक पूजा, व्रतों एवं उत्सवों के विविध स्वरूपों पर अवतारों से सम्बन्धित पौराणिक घारणाओं का बड़ा प्रभाव पड़ा है। इस महाग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में हमने अवतारों के विषय में अध्ययन कर िलया है। वहाँ ऐसा कहा गया है कि अवतारों के सिद्धान्तों का आरम्भ तथा बहुत-से प्रसिद्ध अवतार वैदिक साहित्य में पाये जाते हैं, यथा—शतपथन्नाह्मण में मनु एवं मत्स्य का उपाख्यान (१।८।१।१-६), कूर्म का (७।५।१।५) एवं वराह का उपाख्यान (१४।१।२।११), वामन (१।२।५।१) एवं देवकीपुत्र कृष्ण का उपाख्यान (छान्दोग्योपनिषद् ३।१७।६)। अवतारों की संख्या एवं नामों में मी बहुत मिन्नता पायी जाती है। किन्तु पहले अवतार-विवेचन विस्तार से नहीं हुआ था, अतः पुराणों एवं सामान्य वातों के आधार पर कुछ विशिष्ट बातें यहाँ कही जा रही हैं।

'अवतार' (घातु 'तृ' एवं उपसर्ग 'अव') शब्द का अर्थ है उतरना अर्थात् ऊपर से नीचे आना, और यह शब्द देवों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो मनुष्य रूप में या पशु के रूप में इस पृथिवी पर आते हैं (अवतीणं होते हैं) और तब तक रहते हैं जब तक कि बह उद्देश्य, जिसे लेकर वे यहाँ आते हैं, पूर्ण नहीं हो जाता। पुनर्जन्म (री-इनकार-नेशन) ईसाई वर्म के मौलिक सिद्धान्तों में एक है। किन्तु उस सिद्धान्त एवं मारत के सिद्धान्त में अन्तर है। ईसाई वर्म में पुनर्जन्म एक ही है, किन्तु मारतीय सिद्धान्त (गीता ४।५।८ एवं पुराणों में) के अनुसार ईश्वर का जन्म कई बार हो चुका है और मविष्य में कई बार हो सकता है। यह एक सन्तोष की बात साधारण लोगों में समायी हुई है कि जब संसार की गित एवं कार्यों में गड़बड़ी होती है तो मगवान् यहाँ आते हैं और सारी कुव्यवस्थाएँ ठीक करते हैं। यह विश्वास न-केवल हिन्दुओं एवं बौद्धों में पाया जाता है, प्रत्युत अन्य घर्मावलिम्बयों में (पिश्चम के कुछ घनी एवं शिक्षित लोगों में भी) जो एक-दूसरे से बहुत दूर हैं, पाया जाता है। तब भी बहुत-से हिन्दू ऐसा नहीं विश्वास करते कि शंकराचार्य, नानक, शिवाजी या महात्मा गान्धी जैसे महान् व्यक्ति, सन्त एवं पैगम्बर अवतारों के रूप में पुनः आवश्यकता पड़ने पर (जब धर्म की हानि होती है, असुर, महा-अज्ञानियों की वृद्धि होती है आदि)

१११. अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्यप्रत्ययो न विद्यते।...तिद्दं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्यं स्वार्थसाधकं च।...अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्।...यथो एतद् ब्राह्मणेन रूपसम्पन्ना विधीयन्त इति, उदितानुवादः स भवति। एतद्दे यञ्चस्य समृद्धं यत्कर्मं क्रियमाणमृगभिवदित। निरुक्त (१।१५-१६); अविशिष्टस्तु वाक्यार्थः। जै० (१।२। ३२); अविशिष्टस्तु लोके प्रयुज्यमानानां वेदे च पदानामर्थः। स यथैव लोके विवक्षितस्तयैव वेदेपि भवितुमर्हति।.. अर्थप्रत्यायनार्थमेव एत्रे मन्त्रोच्चारणम्।। शबर का भाष्य।

जन्म लेते हैं। बौद्धों ने अपने धार्मिक सिद्धान्त महायान के अनुसार बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त करने के पूर्व बहुत-से बोधिसत्त्वों के अवतारों के रूप में जन्म लेते हुए प्रदिश्त किया है। आधुनिक काल में भी बहुत-से व्यक्ति स्वयं अपने को तथा उनके अनुयायी-गण उन्हें अवतार कहते हैं। कुछ दिन पूर्व श्री जे० जी० बेन्नेट (हाडर एण्ड टाउघटन, १९५८) ने 'सु-बु-द' (सुशील, बुद्ध एवं धर्म) नामक एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने निर्देशित किया है और अपना विश्वास प्रकट किया है कि इण्डोनेशिया के निवासी पिवत्र सुबुह एक अवतार हैं, वे ऊपर से एक दूत के रूप में आये हैं जिनकी बाट मानव-संसार जोह रहा था। मारतीय अवतार-सिद्धान्त युगों एवं मन्वन्तरों के सिद्धान्त से सम्वन्धित है। जब संसार गम्भीर क्लेश में पड़ जाता है, तब मनुष्यों का ऐसा विश्वास होता है कि परमात्मा के अनुग्रह से मुक्ति आयेगी और उनका यह विश्वास सत्य-सा प्रकट हो जाता है—जब कोई विशिष्ट व्यक्ति किसी उदात्त मावना से प्रेरित होकर किसी विशिष्ट काल में किसी विशिष्ट स्थान पर आविर्मूत हो जाता है।

मध्य एवं वर्तमान काल में विष्णु के दस अवतार कहे जाते रहे हैं, यथा—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह या नरिसंह, वामन, परशुराम, राम (दशरथ के पुत्र), कृष्ण, बुद्ध एवं किल्क। वराहपुराण इन दस अवतारों को एक कम में रखता है। " वराह-पेरुमल मन्दिर में शंकर-नारायण की प्रतिमा के ऊपर लिण्टेल माग में जो शिलालेख है उसमें उक्त क्लोक तक्षित है, केवल प्रथम ६ अक्षर खण्डित हैं। " मगवद्गीता (४।७-८) में मगवान् के अवतरण के विभिन्न रूपों के विषय में आया है—जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म का उत्थान होता है, मैं अपना सर्जन करता हूँ। युग-युग में में अच्छे लोगों की रक्षा, दुष्टों के नाश एवं धर्म-संस्थापन के लिए जन्म लेता हूँ। " यही भावना महाभारत के कुछ अन्य पर्वों में भी पायी जाती है, यथा—वनपर्व (२७२।७१) एवं आश्वमेधिक-पर्व (५४।१३)। कृष्ण एवं सम्भवतः राम ('रामः शस्त्रभृतामहम्', गीता १०।३१) को छोड़कर दशावतारों में किसी का नाम मगवद्गीता में नहीं आया है। महाभारत में अवतारों के नामों एवं संख्या में एक-क्रमता नहीं पायी जाती। शान्तिपर्व के नारायणीय उपाख्यान में केवल ६ अवतारों एवं उनके कार्यों का उल्लेख हुआ है (३३९।७७-१०२), यथा—वराह (समुद्ध में मग्न पृथिवी को ऊपर लाते हुए), नरिसंह (हिरण्यकिशपु नामुंक राक्षस को मारते हुए), वशान्त (विल को हराते एवं पाताल में उसे निवास कराते हुए), मार्गव राम (क्षत्रियों का नाश करते हुए), दशरथ-

११२. मत्स्यः कूर्मी वराहरूच नर्रीसहोथ वामनः। रामो रामरूच कृष्णरूच बुद्धः कल्की च ते दश।। वराह ४।२।

११३. देखिए आक्योंलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, श्री एच्० कृष्ण शास्त्री द्वारा (मेम्बायर नं० २६) । महा-बलियुरम् (पृ० ५) के प्रस्तर-तक्षित मन्दिर में दो पल्लव राजाओं की मूर्तियों एवं पाँच पल्लव-अभिलेखों पर श्री एच० कृष्ण शास्त्री ने लिखते हुए व्यक्त किया है कि यह लेख ७ वीं शती के उत्तरार्घ का है। सुरक्षित लेख इतना है...हस्य नार्रासहश्च वामनः। रामो रामस्य (श्च) रामस्य (श्च) बुद्ध (ः) कल्की च ते दश।। इस मेम्बायर के उसी पृष्ठ पर लिखा है कि मध्य प्रदेश के सीरपुर के एक तीर्य पर लगभग आठवीं शती का एक मन्दिर के है जिसमें राम एवं बुद्ध की प्रतिमाएँ अगल-बगल में ध्यान मुद्रा में बैठायी हुई हैं।

११४. यदा यदा हि घर्मस्य ... सृजाम्यहम्। ... घर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। गीता (४।७-८); मिलाइए हरिवंश १।४१।१७ 'यदा यदा...भारत। घर्मसंस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभुः॥' जज्ञे पुनः पुनिविष्णुर्यज्ञे च शिथिले प्रभुः। कर्तुं धर्मव्यवस्थानमधर्मस्य च नाशनम्।। वायु (९८।६९), मत्स्य (४७। २३५, यहाँ 'धर्मे प्रशिथिले' एवं 'असुराणां प्रणाशनम्' का पाठ आया है); बह्वाः संसरमाणो वै योनीवंतीिम सत्तम्। धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।। आश्वमेधिक ५४।१३; असतां निग्रहार्थाय धर्मसंरक्षणार्यं च। अद्तीर्णो

पुत्र राम (रावण को मारते हुए), कृष्ण (कंस, नरकासुर, कालयवन, जरासंघ, शिशुपाल को मारते या हराते हुए)। उसी अध्याय में दस नाम इस प्रकार आये हैं हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नरसिंह, वामन, राम (मार्गव), राम (दाशरिथ), सान्त्रत, किल्क। यहाँ बुद्ध का नाम नहीं है। कृष्ण को सात्वत कहा गया है और एक नाम हंस आया है। आदि० (११८।१२) में वासुदेव को सात्वत कहा गया है। हरिवंश (१।४१।११) में ऐसा कथित है कि प्राचीन काल में सहस्रों अवतार हुए हैं और मविष्य में भी सहस्रों होंगे। यही बात शान्तिपर्व (३३९।१०६) में भी है। और देखिए मागवत (१।३।२६) एवं अग्नि (१६।११-१२) । हरिवंश (१।४१।२७) में अघोलिखित नाम आये हैं—वराह, नर्रासह, वामन, दत्तात्रेय, जामदग्न्य (परशुराम), राम, कृष्ण एवं वेदव्यास । किन्तु केशव को नवाँ अवतार कहा ं गया है (१।४१।६)। अतः यह समझा जा सकता है कि मत्स्य एवं कूर्म की भी गणना हुई है, यद्यपि इनके नाम स्पष्ट रूप से आये नहीं हैं और विष्णुयशा किल्क को भावी अवतार कहा गया है। दस अवतारों के नाम वराह (४।२,४८।१७-२२, ५५।३६-३७), मत्स्य (२८५।६-७) ", अग्नि (अध्याय २-१६, जहाँ दसों की गाथाएँ दी हुई हैं), नर्रासह (अध्याय ३६), पद्म (६।४३।१३-१५) में आये हैं। वायु (९८।६८-१०४) में अवतारों का उल्लेख अन्य ढंग से हुआ है और दस नाम ये हैं-वराह, नर्रासह, वामन, दत्तात्रेय, मान्धाता, जामदग्न्य, राम (दाशरिय), वेदव्यास वासुदेव, किल्क विष्णुयशा। ब्रह्माण्ड (३।७३।७५) में वर्तमान दस नामों से मिन्न नाम आये हैं। भागवत में विष्णु के अवतारों का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है-१।३।१-२५ में २२ अवतारों का उल्लेख है जिनमें ब्रह्मा, देविष नारद (जिन्होंने सात्वतसिद्धान्त चलाया), नर-नारायण, किपल (जिन्होंने आसुरि को सांख्य सिद्धान्त पढ़ाया), दत्तात्रेय, ऋषम (नामि एवं मेरुदेवी के पुत्र) १९६, घन्वन्तरि, मोहिनी, वेदव्यास, वलराम एवं कृष्ण, बुद्ध, किल्क भी सम्मिलित हैं। २।७ में २३ अवतारों का उल्लेख है, जिनमें बहुत-से १।३ में भी पाये जाते हैं। २।७ में ध्रुव, पृथु (बेन के पुत्र), हियग्रीव भी उल्लिखित हैं, जिनमें प्रथम दो कहीं और अवतारों के रूप में नहीं घोषित हैं। भागवत (११।४०।१७-२२) में निम्नोक्त अवतार वर्णित हैं--मत्स्य, हयशीर्ष, कुर्म, सूकर, नरसिंह, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बुद्ध, कल्कि। भागवत (११।४।१६-२२) में १६ अवतार उल्लिखित हैं-सामान्यतः वर्णित दसं तथा हंस, दत्त (दत्तात्रेय), कुमार (नारद), ऋषभ, व्यास एवं हयग्रीव। मत्स्य (९९।१४) एवं पद्म (५।१३।१८२-१८६) में १२ अवतारों का उल्लेख है। प्रपंचसारतन्त्र (अद्वैत-गुरु शंकराचार्य द्वारा लिखित कहा गया) के पटल २०।५९ में मत्स्य, कूर्म, वराह,

मनुष्याणामजायत यदुक्तये।। स एव भगवान् विष्णुः कृष्णिति परिकीत्यंते। वनपर्व २७२।७१-७२। ब्रह्मपुराण (१८०।२६-२७ एवं १८१।२-४) में गीता के ही शब्द हैं। वेवीभागवत (७।३९) में है 'यदा यदा...भंवति मूबर। अम्यु...तदा वेषान् विभम्यंहम्।।'

११५. मत्स्य का २८५।६-७ अंश क्षेपक है, क्योंकि एक अन्य स्थान पर अवतारों के नाम भिन्न हैं। मत्स्य के ४७।१०६ में भृगु द्वारा विष्णु को दिये गये शाप का उल्लेख है, क्योंकि विष्णु ने अपनी पत्नी को मार डाला था अतः उन्हें सात बार मनुष्य-योनि में उत्पन्न होना पड़ा और वे सात अवतार हैं—वत्तात्रेय, मान्धाता, जामवग्न्य (भागंव) राम, राम दाशरिष, वेदव्यास, बुद्ध, किल्क तथा तीन अन्य (४७।२३७-३४०), यथा—नारायण, नर्रासह एवं वामन जोड़ दिये गये हैं; मत्स्य (५४।१५-१९) में नक्षत्रपुष्य-त्रत और दस अवतारों का उल्लेख है।

११६. ऋषभ, जो नाभि के पुत्र थे, जैनों के प्रथम तोथंकर-से लगते हैं, और वे सम्भवतः बुद्ध के समान विष्णु के अवत.र कहे गये हैं। भागवत (१।३।२४) में बुद्ध के लिए कहा गया है—ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोह।य सुर्राद्धयाम्। बुद्धों नाम्नाऽजनसुतः कीकटेषु भविष्यति।।; नमो बुद्धाय बृशुद्धाय दैत्यदानवमोहिने। १०।४०।२२,। नृसिंह, कुब्ज (अर्थात् वामन), तीन रामों (मागंव राम, दाशरथ राम एवं बलराम), कृष्ण एवं किल्क के नाम आये हैं (इसमें बुद्ध का नाम नहीं है)। अहिर्बुघ्न्यसंहिता (५।५०-५७) में वासुदेव के ३० अवतारों के नाम आय हैं जिनकी सूची श्री ओटो श्रेडर ने अपनी पंचरात्र एवं अहिर्बुघ्न्यसंहिता की मूमिका में उपस्थित की है। विष्णुपराण (१।९।१३९-१४१) में आया है कि लक्ष्मी विष्णु के अवतारों में उनके साथ आती हैं। पुराणों ने विष्णु के विमिन्न अवतारों के क्रिया-कलापों का पर्याप्त उल्लेख किया है। किन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि शिव के अवतार नहीं थे। वायू (अध्याय २३) ने महेश्वर के २८ अवतारों का उल्लेख किया है जिनमें अन्तिम हैं नकुली (लकुली), जैसा कि २२१ वें श्लोक में विणित है। वराह (१५।१०-१९) में बुद्ध को छोड़कर सभी अवतारों के नाम हैं। वराह (४८।२०-२२) में आया है कि नरिसंह की पूजा से पापों के मय से मुक्ति मिलती है, वामन की पूजा से मोह का नाश होता है, परशुराम की पूजा से घन की प्राप्ति होती है, कूर शत्रुओं के नाश के लिए राम की पूजा करनी चाहिए, पुत्र की प्राप्ति के लिए वलराम एवं कृष्ण की पूजा करनी चाहिए, मुन्दर शरीर के लिए बुद्ध की तथा शत्रु घात के लिए किल्क की पूजा करनी चाहिए। अन्तिपुराण (४९।१-९) में दस अवतारों की मूर्तियों की विशेष-ताओं का उल्लेख है। बुद्ध की प्रतिमा के विषय में यों वर्णन है—मूर्ति में शान्तातमा वाला मुख होना चाहिए, कर्ण लम्बे हों, अंग गौर हो, बुद्ध मगवान् उत्तरीय घारण किये हों, पद्मासन में बैठे हों और हाथों में वरद एवं अमय की मुद्रायें हों। ""

विष्णु के दस अवतारों की परिगणना सम्पूर्ण मारत में कम-से-कम दसवीं शती तक प्रचलित हो चुकी थी, जैसा कि क्षेमेन्द्र ने अपने दशावतार-चरित (सन् १०६६ ई० में प्रणीत) एवं जयदेव (लक्ष्मणसेन के दरबारी किव) ने गीतगोविन्द में उल्लिखित कर रखा है। इसके अतिरिक्त अपराक (१२ वीं शती के पूर्वाचें में) ने भी मत्स्य द्वारा विणत दशावतारों के श्लोक का उद्धरण दिया है। " कुमारिल (सातवीं शती) ने बुद्ध को अवतार नहीं माना, किन्तु तब तक बहुत-से लोगों ने उन्हें अवतार मान लिया था (देखिए पाद-टिप्पणी सं० १२०)। इसके अतिरिक्त, अवतारों की संख्या, नामों एवं कम के विषय में बहुत-से दृष्टिकोण रहे हैं। देखिए डा० कत्रे का लेख (इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, जिल्द १०, पृ० ३७-१३०) जिसमें ३३ अवतारों का विवेचन है। वराह अवदार का उल्लेख तोरमाण के एरण शूकर-प्रस्तरामिलेख (गुप्त इंस्क्रियांस, पृ० १५८-१६०) में हुआ है। इसकी तिथि ६ठी शती का प्रथम चरण है। "र रघुवंश (४।५३ एवं ५८) ने सह्य पर्वत के पास, पिश्चमी समुद्र से, राम (मार्गव)

११७. शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौरांगश्चाम्बरावृतः। अध्व पद्मस्थितो बुद्धो वरवाभयवायकः॥ अग्नि (४९।८); बृहत्संहिता ५७।४: पद्मांकितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिः सुनीचकेशश्च। पद्मासनोपविष्टो पितेव जगतो भवित बुद्धः॥; देखिए वराह ४८।२०-२२; वामनं मोहनाशाय वित्तार्थं जमदग्निजम्। कूरशत्रुविनाशाय यजेद्दाशरियं बुद्धः। बलकृष्णौ यजेद्धीसान् पुत्रकामो न संशयः। रूपकामो भजेद् बुद्धं शत्रुपाताय कल्किनम्।।

११८. मत्स्यः कूर्मो वराहः पुरुषहरिवपुर्वामनो जामवन्यः। काकुत्स्यः कंसहन्ता स च सुगतमृनिः किकनामा च विष्णुः ॥ बशावतारचरित १।२।

११९. अभिलेख का प्रथम क्लोक है: 'जयित वरम्युद्धरणे घनघोणाघातवूर्णितमहोधः। देवो वराहमूर्तिस्त्रेलोक्य-महागृहस्तम्भः।। गुप्त इंस्क्रिप्तांस, पृ० १५९। यह अभिलेख हूणराज तोरमाण के राज्यकाल के प्रथम वर्ष में फाल्गुन की १० वीं तिथि को, जब कि नारायण के शूकर अवतार के मन्दिर का निर्माण हुआ था, तक्षित किया गया। अनुमानित तिथि है लगभग ५०० से ५१० ई०। यह अवतार कभी-कभी आदिवराह, यज्ञवराह, श्वेतवराह, महावराह द्वारा पृथिवी की पुनः प्राप्ति का उल्लेख किया है। ऋ० (१०।११०) की सर्वानुक्रमणी (पृ० ४२) ने जमदिन ऋषि या उनके पुत्र राम का उल्लेख किया है। मेघदूत में विष्णु के वाम पाद को विल के ऊपर रखने का उल्लेख है (वामनावतार)। माघ ने शिशुपालवघ (१५।५८) में बोधिसत्त्व (बुद्ध) को हरि का अवतार माना है (वहाँ कामदेव की सेना से बुद्ध को मोहित करने के प्रयास की ओर निर्देश है)। माघ लगमग ७२५-७७५ ई० के आसपास हुए थे। वामन एवं कृष्ण नाम के अवतारों की जानकारी पतंजिल के महामाध्य से प्राचीन है, क्योंकि इसमें बिल के बन्धन एवं कंस-वध के नाटकीय प्रतिरूपों का उल्लेख पाया जाता है। एलोरा की दशावतार गुफा में वराह, नरिसह, वामन एवं कृष्ण की प्रतिमाएँ हैं। ये गुफाएँ आठवीं शती की कही गयी हैं। उपर्युक्त बातों से प्रकट है कि कुछ अवतार, यथा वामन, परशराम एवं कृष्ण, ईसा से कई शितयों पूर्व से ज्ञात थे और सभी दस अवतार कुछ लेखकों एवं अन्य लोगों द्वारा सातवीं शती तक मान लिये गये थे।

घर्मशास्त्र-सम्बन्धी उपकरणों की वृद्धि में अवतारों की घारणा ने बहुत कुछ सहयोग दिया। अवतारों की घारणा एवं मान्यता से बहुत-से व्रतों एवं उत्सवों का घामिक कृत्यों में समावेश हो गया, यथा—वराहपुराण में द्वादशी व्रतों के विषय में एवं मत्स्य से लेकर किल्क तक दस अवतारों के सम्मान में ३९-४८ अध्याय लिखित हैं। अवतारों की जयन्तियों के विषय में पृथक् पर्व बने, यथा—वैशाख शुक्ल १४ को नर्रीसह-जयन्ती, वैशाख शुक्ल ३ को परशुराम-जयन्ती। १२०

अवतारों एवं उनकी जयन्तियों का वर्णन बहुत-से घर्मशास्त्र ग्रन्थों में भी पाया जाता है, किन्तु डा० पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित (गंगा ओरिएण्टल सीरीज) टोडरानन्द (माग १) में सबसे अधिक विस्तार से वर्णन है। पुराणों ने दान, श्राद्ध, तीर्थ, व्रत आदि पर सहस्रों श्लोक प्रणीत किये हैं जो घर्मशास्त्र के ग्रन्थों में सविस्तार उद्धृत हैं। स्थानाभाव से हम यहाँ उनकी ओर संकेत नहीं कर सकेंगे।

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि पुराणों में केवल घामिक विषयों तथा पंच-लक्षणों (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित या वंश्यानुचरित) का ही उल्लेख है। कुछ पुराणों में अघोलिखित विषयों पर सिवस्तार वर्णन है—राजाओं, मन्त्रियों, सेनापित, न्यायाघीश, दूत, लेखक, राजवैद्य के कर्तव्य, राज्यामिषेक, आक्रमण आदि। इस प्रन्य के खण्ड ३ में इन विषयों में कुछ पर विवेचन हो चुका है। राजनीतिक विषयों की अति विशद चर्चा मत्स्य (अ० २१५-२२६, २४०), अग्नि (२१४-२४२), विष्णुधर्मोत्तर (२, अ० २-७, १८-२१, २४-२६, २८, ६१-६३, ६६-७२,१ ४५-१५२, १७७) में हुई है। अन्य पुराणों, यथा—गरुड़ (१।१०८-११५), मार्कण्डेय (२४, वेंकटेक्वर

भी कहा गया है। मिलाइए हर्षचरित (३): 'महावराहपीवरस्कन्थपीठे नरकासुर इव भूवो गर्भादुद्भूतः।' देखिए 'रायल कांक्वेस्ट्स एण्ड कल्चरल माइग्रेशंस', शिवराम मूर्ति (कलकत्ता, १९५५), जहाँ चौथी शती के 'आदिवराह' िनी आकृति छपी है (प्लेट संख्या २ सी)।

१२० निर्णयसिन्धु में पुराणसमुच्चय से निम्नोक्त इलोक उद्धृत है : मत्स्योऽभूद् धृतभुग्दिन मधुसिते, कूर्मो विद्यो माधवे, वाराहो गिरिजासुते नभिस, यद् भूते सिते माधवे । सिहो, भाद्रपदे सिते हरितिथो श्रीवामनो, माधवे रामो गौरितियावतः परमभूद् रामो नवम्यां मधोः ।। कृष्णोष्टम्यां नभिस सितपरे, चादिवने यद्दशम्यां बुद्धः, कल्की नभिस समभूच्छुक्लषष्ट्यां क्रमेण ।। भिक्तप्रकाश (वीरिमित्रोदय का एक भाग, पृ० ७९) ने भी इसे उद्धृत किया है । निर्णय-सिन्धु में भी ऐसी टिप्पणी है कि कुछ लोगों ने विभिन्न तिथियों वाले वचन उद्धृत किये हैं और कुछ कोंकणी लेखकों ने वराहगुराण के इलोक उद्धृत किये हैं, जिनमें मत्स्यजयन्ती आषाद शुक्ल ११, बुद्ध की पौष शुक्ल ७ आदि हैं।

0

प्रेस संस्करण, या २७, बनर्जीसंस्करण), कालिका (८७) में भी राजनीतिक बातों का उल्लेख है। यह द्रष्टव्य है किं मत्स्य (२४०।२) एवं अन्ति (२२८।१) दोनों में 'आऋन्द' एवं 'पाष्णिग्राह' नामक दो पारिमाषिक शब्द आये हैं, जो 'मण्डल-सिद्धान्त' के अन्तर्गत कहेगये हैं (कौटिल्य ४।२,पृ० २६०)।

अत्यन्त आरम्भिक निबन्धों में कृत्यकल्पतर ने राजधर्म पर एवं व्यवहार-काण्ड पर मत्स्यपुराण को पर्याप्त रूप से उद्धृत किया है। इस निबन्ध ने ब्रह्म० को भी उद्धृत किया है, किन्तु वे उद्धरण प्रकाशित संस्करण (आनन्दाश्रम) में नहीं मिलते, यद्यपि वे मित्र मिश्र के राजनीतिप्रकाश में तथा अनन्तदेव के राजधर्मकौस्तुम में भी उद्धृत हैं। राजधर्म पर कृत्यकल्पतर ने विष्णुधर्मोत्तर को अपने राजधर्म में उद्धृत नहीं किया है, किन्तु राजनीतिप्रकाश में वह अधिकतर उद्धृत हुआ है, यथा—वि० घ० २।१८।१, ५-१४=रा० नी० प्र० प्र०, ६६-८१ (राज्यामिषेक पर मन्त्रों एवं सात देवों के आवाहन के लिए); वि० घ० २।२३।१-१३=रा० नी० प्र०, पृ० ८२-८३। राजधर्मकौस्तुम ने वि० घ० को २१ बार उद्धृत किया है। मत्त्य, अग्नि एवं विष्णुधर्मोत्तर में राजधर्म एवं उससे सम्बन्धित विषयों पर कई सहस्र क्लोक हैं। गरुडपुराण (१।१०८-११५) में राजनीति पर लगमग ४०० क्लोक हैं जिनमें बहुत-से सुमाषित रूप में हैं और मनुस्मृति आदि में भी आये हैं (यथा गरुड १।१०९।१ एवं ५२, १०।७ एवं ११५।६३ कम से मनु ७।२१३, ८।२६, २।२३९ एवं ९।३ के जैसे हैं, महामारत एवं नारदस्मृति, उदाहरणार्थं, न सा समा जो गरुड ११५।५२ है वह नारद ३।१८ ही है)। स्वयं गरुड में आया है कि वह अर्थशास्त्र पर आधारित नीति (राजधर्म) का सार-संक्षेप रखेगा, किन्तु १०८-११४ वाले अध्यायों के अन्त में जो आया है वह बृहस्पित द्वारा उद्घोषित नीतिशास्त्र है। बाण की कादम्बरी का एक आरम्भिक क्लोक मी गरुड में आया है वह वृहस्पित द्वारा उद्घोषित नीतिशास्त्र है। बाण की कादम्बरी का एक आरम्भिक क्लोक मी गरुड में आया है वह वृहस्पित द्वारा उद्घोषित नीतिशास्त्र है। बाण की कादम्बरी का एक आरम्भिक क्लोक मी गरुड में आया है।

मार्कण्डेयपुराण (२४।५, २३-३३ या अध्याय २७ एवं २१-३१, बनर्जी संस्करण) के कुछ क्लोक रा० नी० प्र० (पृ० ३०-३१) द्वारा उद्धृत हैं (राजाओं के कर्तव्यों पर तथा उनके द्वारा इन्द्र; सूर्य, यम, सोम एवं वायु नामक पंच देवों के विलक्षण गुणों के अपनाये जाने पर)। दायमाग ने रिक्थ एवं उत्तराधिकार वाले सापिण्ड्य को अशीच के सापिण्ड्य से पृथक् मानने में मार्कण्डेयपुराण को उद्धृत किया है। राजा द्वारा मनाये जाने वाले 'कौमुदीमहोत्स्व' पर कृत्यकल्पतरु ने (राजधर्म, पृ० १८२-१८३) स्कन्दपुराण को उद्धृत किया है। यही उद्धरण रा० नी० प्र० (पृ० ४१९-४२१) में भी है।

कृत्यकल्पतरु (राजधर्म काण्ड) ने वसोधारा पर भविष्यपुराण से एक लम्बा वचन उद्धृत किया है, जो रा० नी० प्रकाश द्वारा देवीपुराण से उद्धृत है। कालिकापुराण ने ८७ वें अध्याय में राजनीति पर १३१ श्लोक लिखे हैं, जिनमें राजा द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कर्तव्यों पर एक निष्कर्ष उपस्थित किया गया है। इस अध्याय में उशना एवं वृहस्पति के ग्रन्थों का उल्लेख है (श्लोक ९९ एवं १३०) और राजा द्वारा ऐसे ब्राह्मणों को सम्मानित करने की ओर निर्देश है, जो ज्ञान, विद्या, तप एवं आयु में श्रेष्ठ हों आगे इसमें राजा को इन्द्रियनिग्रह, (साम, दान, दण्ड एवं भेद नामक) चार उपायों के पालन; जुआ, मद्यपान, विषय-भोग, आखेट-यापन आदि के त्याग; ६ गुणों (यान, आसन ००

१२१ अकारणाविष्कृतकोपवारिणः खलाद् भयं कस्य न नाम जायते। विषं महाहेविषमस्य दुवंचः सुदुःसहं संनिपतेत् सदा मुखे।। गरुड़ १।११२।१६; मिलाइए कादम्बरी का प्रारम्भिक क्लोक ५ : 'अकारणाविष्कृत-वेरदारुणादसञ्जनात् कस्य भयं न जायते। विषं महाहेरिव यस्य दुवंचः सुदुःसहं संनिहितं सदा मुखे।।' (खल-वन्दना)

### वर्मशास्त्र का इतिहास

आदि) के पालन; राजकुमारों, मन्त्रियों, रानियों की तथा अन्य स्त्री-जाति की सम्बन्धिनियों की उपघा (कई प्रकार से चरित्र के विषय में लोज करना) द्वारा परीक्षा करने की सम्मित दी गयी है।<sup>१२९</sup>

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यकाल के अधिकांश निबन्धकारों को कौटिल्य का अर्थशास्त्र उपलब्ध नहीं था और इसी से उन्होंने राजधर्म के विषयों में पुराणों को अधिक उद्धृत किया है। किन्तु आरम्भिक पुराणों में (यथा मत्स्य आदि में) कौटिल्य का उद्धरण पाया जाता है। देखिए प्रस्तुत लेखक का लेख 'कौटिल्य एण्ड दि मत्स्यपुराण'

(डा० बी० सी० लॉ भेट ग्रन्थ, ज़िल्द २, पृ० १३-१५)।

9

338

न्याय-व्यवहार, रिक्य, वसीयत (उत्तराधिकार) आदि के बारे में भी पुराणों ने निबन्धकारों के दृष्टिकोणों "को प्रमावित किया है। कृत्यकल्पतरु ने व्यवहार पर कालिकापुराण से साक्ष्य के विषय में एवं कितपय वर्णों के लिए समुचित दिव्य-गरीक्षण-विधियों के बारे में लगमंग बारह श्लोक उद्धृत किये हैं (पृ० ७९, २०५, २१०, २११, २२१, २३१, २३८)। बारह प्रकार के पुत्रों, पुनर्मव, स्वयंदत्त तथा राजा के उत्तराधिकारी और दास के विषय में कालिकापुराण से रा० नी० प्र० (पृ० ३५ एवं ४०) ने तीन श्लोक उद्धृत किये हैं। दत्तकमीमांसा (पृ० ६०, आनन्दाश्रम संस्करण) एवं व्यवहारमयूख (पृ० ११४, यद्यपि यहाँ ऐसा उल्लिखित है कि इस पुराण की दो तीन पाण्डुलिपियों में वे नहीं पाये जाते) ने कालिकापुराण के अध्याय ९१ के ३८ से लेकर ४१ श्लोक उद्धृत किये हैं (जिनमें गोद लिये जाने वाले पुत्रों और किस अवस्था तक ये गोद लिये जा सकते हैं आदि के विषय में संकेत हैं)। युग्म बच्चों में कौन बड़ा माना जाता है, इस विषय में मयूख ने मागवत (३।१९।१८) पर की गयी श्रीघर की टिप्पणियाँ उद्धृत की हैं। मागवत में आया है कि जो पहले उत्पन्न होता है वह छोटा होता है। इसको लेकर व्यवहारमयूख ने कहा है कि पुराणों में स्मृतियों के विरोध में पड़ने वाली बातें बहुधा देखने में आती हैं। रेप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

१२२. मिलाइए कौटिल्य (१।१०) का शीर्षक 'उपघाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्।' सीरस्वामी ने 'उपघा' की व्याख्या करते हुए कौटिल्य का यह शीर्षक उद्धत किया है।

१२३ यत्तु 'द्वौ तदा भवतो गभौ सुतिबँशविपर्ययात्' इत्यादिना भागवते पश्चाज्जातस्य ज्येष्ठ्यमुक्तं तदम्यनेन बाध्यते। पुराणेषु स्मृतिविरुद्धाचाराणां बहुशो दर्शनात्। व्य० म० (पृ० ९८)।

# अध्याय २५ भारत से बौद्ध धर्म के विलीन होने के कारण

गत अध्याय के आरम्भ में कहा जा चुका है कि अपनी जन्म-मूमि से बौद्ध धर्म के विलीन होने के जितने कारण रहे हैं, उनमें पुराणों का सबसे अधिक सहयोग था। मारत से बौद्ध धर्म का विलीनीकरण पूर्णरूपेण हो गया और यह सब अचानक हुआ। ऐसा क्यों हो सका? यह एक जटिल समस्या है। इसके लिए किसी एक कारण को या थोड़े-से कुछ अन्य कारणों को मान लेना युक्तिसंगत नहीं जँचता। इस विलीनीकरण की महत्त्वपूर्ण घटना के पीछे मीतरी एवं बाहरी दोनों प्रकार के कारण बहुत लम्बे काल से परिचलित रहे होंगे। इनमें से कुछ कारण रेतो कम या अधिक मात्र कल्पनात्मक थे। पाँचवीं शती के प्रथम चरण में फाहियान को बौद्ध घर्म अपनी उत्कर्षावस्था में दिखाई पड़ा था, किन्तु सातवीं शती है के पूर्वीर्घ में युवाँ च्वाँग (ह्वेन-साँग) की दृष्टि में वह अवनित के मार्ग पर अग्रसर हो रहा था। आठवीं शती के आरम्म में वौद्ध धर्म की अधिक अवनित हो चुकी थी, जैसा कि इ-ित्संग का अभिवचन है। भारत से वौद्ध धर्म के सर्वथा विलुप्त हो जाने के कारणों पर हम यहाँ संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। इस विषय में हम कतिपय विद्वानों की उक्तियों की समीक्षा करने का प्रयास करेंगे। इस विषय पर कुछ विद्वानों के ग्रन्थ एवं लेख इस प्रकार हैं—ए० बर्थ कृत 'रिलिजंस आव इण्डिया' (जे० वुड द्वारा अनूदित, १८८२) ; 'पर्जीक्यूशन िं आव बुद्धिस्ट इन इण्डिया', राइज डेविड्स द्वारा (जर्नल आव पालि सोसाइटी, १८९६, पृ० ८७-९२) ; कर्न की 'मैन्युअल आंव बुद्धिज्म' (जर्मन ग्रुण्ड्रिस में,पृ० १३३-१३४); राइज डेविड्स कृत 'बुद्धिस्ट इण्डिया' (१९०३, पृ० १५७-१५८, ३१९); इण्डि॰ हिस्टा॰ नवा॰ (जिल्द ९, पृ० ३६१-३७१, जहाँ म० म० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा दिये गये बौद्ध धर्म के विलोप के कारणों का उल्लेख है); 'दि सम आव हिस्ट्री' जो हैरेने ग्राउसेट द्वारा लिखित एवं ए० एच० टेम्पुल पैटर्सन द्वारा अनूदित है (टावर बिज प्रकाशन, १९५१); डा० आर० सी० मित्र कृत 'दि डिक्लाइन आव बुद्धिज्म इन इण्डिया' (१९५४, विशेषतः पृ० १२५-१६४); देविमत्त धम्मपाल कृत 'लाइफ एण्ड टीचिंग आव बुद्ध' (जीं० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास, १९३८); 'बुद्धिज्म के २५०० विष' (प्रो० पी० वी० वापट द्वारा सम्पादित, १९५६); प्रो० केन्नेथ डब्लू० मार्गन द्वारा लिखित 'दि पाथ आव ंदि बुद्ध' (पृ० ४७-५०, न्यूयार्क, १९५६); एन० ंजि० ओ०' कोनर, राल्फ फ्लेचर सेयमूर द्वारा 'हाऊ बुद्धिज्म लेफ्ट इण्डिया' (चिकागो, १९५७)।

मारत से बौद्ध घर्म के वास्तविक निष्क्रमण के कारणों पर विचार करने के पूर्व कुछ विशिष्ट वातों पर प्रकाश डाल देना आवश्यक है। बुद्ध अपने काल के व्यवहृत हिन्दू धर्म के केवल एक सुधारक मात्र थे। उन्होंने न तो इसका अनुमव किया और न ऐसा कर्तव्य ही समझा कि वे किसी एक नये धर्म का निर्माण कर रहे हैं और न तो उन्होंने हिन्दू धर्म का और न इसके सभी विश्वासों एवं व्यवहारों का परित्याग ही किया। बुद्ध ने अपने कुछ उपदेशों में वेदों एवं हिन्दू ऋषियों की ओर ससम्मान संकेत किया है। उन्होंने योग की क्रियाओं एवं ध्यान की महत्ता स्वीकार की है। उनकी शिक्षाओं में तत्कालीन हिन्दू विश्वासों में से कुछ तो ज्यों-के-त्यों आ गये हैं, यथा कर्मवाद एवं पुनर्जन्म-सम्बन्धी तथा जगत्-परिवर्तन-सम्बन्धी सिद्धान्त। बुद्ध की शिक्षा का एक बहुत अंश उपनिषद्-क काल के सिद्धान्तों का अंग मात्र था। जिन दिनों बुद्ध का जन्म हुआ था, जनता में विचारों एवं व्यवहारों की दो

9

प्रमुख घाराएँ प्रवाहित थीं, जिनमें एक थी देवों के लिए यज्ञ-कर्म के मार्ग से सम्बन्धित और दूसरी थी नैतिक प्रयास, आत्म-निग्रह एवं आध्यात्मिक लक्ष्य के मार्ग से सम्बन्धित। हमने गत अध्याय में यह देख लिया है कि उपनिषदों ने वेदों एवं उनके द्वारा व्यवस्थित अथवा उनमें पाये जाने वाले यज्ञों को हीन स्तर पर रखा है (वेदों को अपरा विद्या के अन्तर्गत कहा गया है) तथा उच्च नैतिक गुणों की सम्प्राप्ति के उपरान्त आध्यात्मिक ज्ञान को यज्ञों की अपेक्षा उच्च माना है। उपनिषदों ने पहले तो वैदिक यज्ञों को प्रतीकात्मक ढंग से व्याख्यायित करना चाहा है, यथा बृहदारण्य-कोपनिषद् (११११) में, जहाँ उषा, सूर्य एवं संवत्सर को यज्ञिय अरव का कम से सिर, आँख एवं आत्मा कहा गया है, या छान्दोग्योपनिषद् (२१२११-२) में जहाँ 'साम' के पाँच मार्गों को प्रतीकात्मक ढंग से पृथिवी, अग्नि, आकाश, सूर्य एवं स्वर्ग कहा गया है। इसके उपरान्त उपनिषदों ने वेद का केवल नाम लेना आरम्भ किया और उसे ब्रह्मविद्या से नीचे बहुत ही निम्न श्रेणी में रखा (यथा—बृह० उप० ४।४।२१, १।४।१०, छा० उप० ७।१-४, मुण्डक० १।१।४-५)।

इतना तो सभी संस्कृत विद्वान् सामान्यतः स्वीकार करते हैं कि कम-से-कम वृहदारण्यक एवं छान्दोग्य जैसी अत्यन्त प्राचीन उपनिषदें बुद्ध से बहुत पहले की हैं और उनमें बुद्ध या उनकी शिक्षाओं या पिटकों के विषय में कोई संकृत नहीं मिलता। दूसरी ओर, यद्यपि दर्जनों सुत्तों में ब्राह्मणों एवं बुद्ध की या बुद्ध के शिष्यों एवं धर्मदूतों की समाओं की आख्याएँ मिलती हैं, किन्तु उन समाओं में दोनों ओर की आपसी सद्भावनाएँ एवं मृदुताएँ स्पष्ट झलकती हैं। आरम्भिक पालि-ग्रन्थों या ब्राह्मण-ग्रन्थों में कहीं भी किसी प्रकार की एक-दूसरे के विरोध में कोई कटुता नहीं प्रदिश्तित है, न तो उन पालि-ग्रन्थों में ब्राह्मणवाद के सिद्धान्तों की और न ब्राह्मण ग्रन्थों में बुद्ध की वैधिमिकता की मर्त्सना हुई है। इतना ही नहीं, इन सभी सभाओं एवं संवादों में उपनिषदों की ब्रह्म-सम्बन्धी केन्द्रीय घारणा की न तो बुद्धदेव ने और न आरम्भिक बौद्ध-प्रचारकों ने खिल्ली उड़ायी है। बुद्ध ने जो कुछ कहा है

उसे हम नीचे संक्षेथ में दे रहे हैं-

'हे मिक्षुओ, यहाँ तक कि मैंने पूर्व काल के सम्यक् ज्ञानवान् लोगों द्वारा अनुसरित प्राचीन मार्ग को देखा है। और, हे मिक्षुओ, वह प्राचीन पथ, प्राचीन मार्ग, जो उन सम्यक् ज्ञानवान् लोगों द्वारा अनुसरित हुआ है, क्या है? सर्वथा इसी अष्टांगिक मार्ग (सम्यक् विचार आदि) की माँति। हे मिक्षुओ, यह वही प्राचीन मार्ग है जो पूर्व काल में सम्यक् रीति से ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्तियों द्वारा अनुसरित हुआ था। उसी मार्ग से मैं गया हूँ, और उसी मार्ग से चलता हुआ मैं जरा एवं मृत्यु के विषय में भली प्रकार ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ। मली प्रकार जान लेने के उपरान्त मैंने इसे मिक्रुओं, मिक्षुकियों, उपासकों, पुरुषों एवं स्त्रियों से कहा है। यही ब्रह्मचर्य चारों ओर प्रसारित है, विस्तारित है, सब को ज्ञात है और सर्वप्रिय है तथा देवों एवं मनुष्यों द्वारा प्रकट किया गया है।" यह द्रष्टव्य है कि बुद्ध ने जिस अष्टांगिक मार्ग को दुःख दूर करने का सरल उपाय माना है उसे उन्होंने उन लोगों द्वारा अनुसरित माना है

१. देखिए संयुत्तनिकाय (पालि टेक्स्ट सोसाइटी), भाग २ (निदानवग्ग), एम० लेयान फीयर द्वारा सम्पादित (पू० १०६-१०७)। कुछ वाक्य यों हैं—'एवमेव ख्वाहं भिक्खवे अह्सं पुराणं मग्गं पुराणंजसं पुब्बकेहि सम्मासंबुद्धेहि अनुयातं।। कतमो च सो भिक्खवे मग्गो पुराणंजसो...अनुयातो। अयमेव अट्ठंगिको मग्गो। सेग्यथापि समादिट्ठि।...अयं रवो भिक्खवे पुराणमग्गो अनुयातो। तं अनुगच्छि । तं अनुगच्छन्तो जरामरणं अभिङ्आय आचिक्खि भिक्खनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं। तथिदं भिक्खवे ब्रह्मचरियं इद्धं चेव फीतं च वित्यारिकं बहुजङ्गं पृथुभूतं याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितं ति।'

0

जो प्राचीन काल में हुए थे और सम्यक् सम्बुद्धि से परिपूणं थे। बुद्धदेव ने अपने को विलक्षण नहीं कहा है, प्रत्युत उन्होंने यही कहा कि मैं केवल सम्बुद्ध लोगों की पंक्ति में आ जाता हूँ और इस बात पर बल देकर वे कहते हैं कि जिन सद्गुणों की ओर मैं मनुष्यों का ध्यान आकृष्ट करता हूँ वे प्राचीन काल के हैं। घम्मपद एवं सुत्तिनपात (महावग्ग, वासेट्ठ सुत्त) में वास्तविक सद्गुणी को ब्राह्मण के समान कहा गया है—"मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ जो शरीर, वचन एवं विचार से किसी को दुःख नहीं देता, जो इन तीनों से संयत रहता है, अर्थात् जो अपने को इन तीनों से सुरक्षित रखता है"; "कोई व्यक्ति जटा रखने से, गोत्र से, जाति से ब्राह्मण नहीं होता, वह व्यक्ति जिसमें सत्य एवं घर्म विराजमान है, सुखी है और ब्राह्मण है"; "उस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण नहीं होता, वह व्यक्ति जिसमें सत्य एवं वर्मा विराजमान है, सुखी है और ब्राह्मण है"; "उस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण नहीं होता, वह व्यक्ति जिसमें सत्य एवं घर्म विराजमान है, सुखी है और ब्राह्मण है"; "उस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण नहीं होता, वह व्यक्ति जिसमें सत्य एवं वर्म विराजमान है, सुखी है और ब्राह्मण है"; "उस व्यक्ति को मैं ब्राह्मण नहीं होता, वह व्यक्ति जिसमें सत्य एवं वर्मा उत्ता और जल में कमलपत्र के समान है (जल में रहता कमलदल पानी को अपने ऊपर नहीं रखता) या आरे के ऊपर सरसों के दोने (जो उस आरे पर नहीं ठहरता) के समान है।" इसके अतिरिक्त, ऐसा नहीं प्रतीत होता कि किसी काल में सम्पूर्ण मारत या इसके बढ़े-बड़े माग पूर्णतया बौद्ध हो गये थे। मारत के लोग एक प्रकार से सदैव हिन्दू थे। समी कालों में लाखों लाख ऐसे मारतीय थे जो हिन्दू थे न कि बौद्ध। इतना ही नहीं, जब अशोक, किनिष्क एवं हर्ष जैसे राजाओं के आश्रय में बौद्ध धर्म पल रहा था, उन दिनों भी बौद्ध धर्म केवल मठों एवं पाठशालाओं तक सीमित था और लोगों में एक महती सहिष्णुता विद्यमान थी। उदाहरणार्थ, हर्ष के पिता सूर्य के उपासक थे और वह स्वयं शिव का मक्त था, उसका बड़ा माई राज्यवर्ध परमसौगत (बुद्ध का मक्त) था और हर्ष ने बौद्ध यात्री युवा च्वांग (ह्वेन-साँग) के प्रति अनुग्रह प्रकट किया था।

- २. यस्स कायेन वाचाय मनसा नित्य दुक्कतं। संवुत्तं तीहि ठानेहि तमहं बूमि ब्राह्मणम् ॥ न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणो। यम्हि सच्चं च घम्मो च सो सुखी सो च ब्राह्मणो।। वारि पोक्खरपत्तेव आरगोरिव सासवो। यो न लिम्पित कामेसु तमहं बूमि ब्राह्मणम् ॥ घम्मपद (३९१, ३९३, ४०१, डा० पी० एल० वद्य का संस्करण, देव-नागरी लिपि में, १९३४); सुत्तनिपात (महावग्ग, वासेट्ठसुत्त) में अन्तिम क्लोक आया है। 'न जटाहि' आदि से मिलाइए महाभारत के वनपर्व का क्लोक (२१६।१४-१५): 'यस्तु शूब्रो वमें सत्ये धर्में च सततोत्यितः। तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद द्विजः॥' 'वारि पोक्खरपत्तेव' आदि को मिलाइए छान्दोग्योपनिषद् (४।१४-३): 'यथा पुष्करप्ता आपो न क्लिब्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न क्लिब्यत इति।' एवं गीता (५।१०) 'लिप्यते न स पापेन पद्म-पत्रमिवास्भसा।'
- ३. देखिए 'रिलिजंस आव ऐंक्येण्ट इण्डिया' (यूनिवर्सिटी आव लन्दन, १९५३), जिसके लेखक प्रो० रेनी ने पृ० १०० पर इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है।
- ४. देखिए बाँसखेड़ा पत्रक (६२८-२९ ई०), एपि० इण्डि०, जिल्द ४, पू० २१०-२११ तथा मधुवन पत्रक (६३१-३२ ई०), एपि० इण्डि०, जिल्द १, पू० ७२-७३ (बुहलर) एवं एपि० इण्डि०, जिल्द ७, पू० १५७-१५८ कीलहार्न)। ह्वेन-साँग ने यह नहीं लिखा है कि राज्यवर्धन बुद्ध का भक्त था, किन्तु उसने हवं को आरम्भ से ही बौद्ध कहा है और एक काल्पनिक कहानी दी है कि किस प्रकार वह राजगद्दी पर बैठने से रोका गया और 'कुमार' की उपाधि धारण करने को एक ऐसे बोधिसत्व द्वारा प्रेरित किया गया जो पूजा के प्रभाव में आकर अलौकिक दंग से प्रकट हो गया था। इससे यह प्रकट होता है कि बुद्ध से सम्बन्धित विवरणों को हमें बहुत सोच-समझ कर स्वीकार करना चाहिए। देखिए वाटर्स, 'ह्वेन-साँग्स ट्रेवल्स इन इण्डिया' (लम्बन, १९०४, जिल्द १, पू० ३४२), जहाँ यह गाथा दी हुई है।

### वर्मशास्त्र का इतिहास

प्रो० के॰ डब्लू॰ मार्गन जैसे कुछ हाल के लेखकों का कथन है कि बौद्ध धर्म के अपकर्ष के कारण थे संघ की शक्ति का ह्रास, मुस्लिम आक्रमण एवं हिन्दू जनता का विरोध (देखिए 'दि पाथ आव दि बुद्ध', पृ० ५८)।

श्री ए० कुमारस्वामी के इस कथन में पर्याप्त सत्यता प्रतीत होती है कि बौद्ध धर्म एवं ब्राह्मण धर्म का जितना गम्मीर अध्ययन किया जाय, उतना ही दोनों के बीच का अन्तर जानना किन हो जाता है, या यह कहना किन हो जाता है कि किन रूपों में बौद्ध धर्म, वास्तव में अशास्त्रीय या अहिन्दू है (देखिए उनका ग्रन्थ 'हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म', पृ० ४५२)। बुद्ध एवं उनके उत्तराधिकारी अनुयायियों ने ब्राह्मण धर्म की कुछ लोक-प्रचलित मान्यताओं पर ही आक्रमण किया था। राइज डेविड्स महोदय ने अपने 'दि रिलेशंस विटवीन अलीं बुद्धिज्म एवं ब्राह्मणिज्म' (इण्डि० हिस्टा० क्वा०, जिल्द १०, पृ० २७४-२८६) नामक माषण में यह प्रदिशत करने का प्रयास किया है कि त्रिपिटकों से यह नहीं प्रकट होता कि उनका ब्राह्मणों से कोई विरोध था और बुद्ध ने वहीं कहा जो उन दिनों के ब्राह्मणवाद के प्रमुख तत्त्वों में विद्यमान था। बुद्ध ने उपनिषदों की उस शिक्षा को स्वीकार किया (या कम-से-कम उस शिक्षा से उनका कोई विवाद नहीं था) कि ब्रह्मानन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए नैतिक आचरण अति उच्च होना चाहिए (बृ० उप० ४।४।२३ 'तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतिस्तृतिक्षुः समाहितो मूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्यित'; कठोपनिषद् १।२।२३, १।३, ८, ९, १३, १५; प्रक्नोपनिषद् १।१५-१६; मुण्डकोपनिषद् १।२।१२-१३)।

बुद्ध एवं तत्कालीन हिन्दू धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के बीच उपस्थित मतभेदों के विषय थे जाति-विमाजन, जाति-अभिमान, वेदों की एकमात्र प्रामाणिकता एवं यज्ञों के प्रति स्थापित महत्ता। वुद्ध का कथन था कि सदाचार एवं ज्ञान सर्वोत्तम हैं, उन्होंने स्पष्ट रूप से ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया, प्रत्युत यह उद्घेषित किया कि इस विषय में निश्चितता प्राप्त कर लेना अनावश्यक है, और न उन्होंने कुछ प्रश्नों के विषय में अपने निश्चित वृद्धिकोंण ही प्रकट किये, यंथा यह विश्व नित्य है या अनित्य। क्योंकि उनके मतानुसार ऐसे प्रश्नों पर विचार-विमर्श करना 'सिद्धान्त-किया की जटिलता या दुर्भेद्ध संकुलता, प्रृंखला आदि उत्पन्न करना है...और न ऐसा करने से निवृत्ति, विराग, निरोध, उपशम (शान्ति), अभिज्ञान, सम्बोधि एवं निर्वाण की ही प्राप्ति हो पाती है। बुद्ध ने पूजा एवं प्रार्थना के विषय में अधिक नहीं सोचा-विचारा। उनके मतानुसार महत्त्वपूर्ण बात थी चिन्ता एवं दुःख से व्यक्ति का छूट जाना तथा निर्वाण (जिसकी स्थिति के विषय में उन्होंने स्पष्ट एवं सम्यक् रूप से कभी

५. अपनी पुस्तक 'रिलिजंस आव इण्डिया' (पृ० १२५-१२६) में बार्य ने उस सिद्धान्त का उपहास किया है और उसे मात्र कल्पनात्मक कहा है जिसके आघार पर संघ-संख्या एवं आरम्भिक बौद्ध घर्म को जाति-प्रथा की प्रभुता एवं बाह्मणों के आध्यात्मिक प्रभुत्व के विरोध की प्रतिक्रिया कहा गया है।

६. देखिए मज्ज्ञिम-निकाय (चूल-मालुंक्यसुत एवं अग्गि-वच्चगोत्तसुत्त), वी० त्रॅकनेर द्वारा सम्पादित, जिल्द १, सुत्त ६३ एवं ७२, पृ० ४३१ एवं ४८६ 'न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिन्नाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्ति।' ये ही शब्द दोग्धनिकाय के पोट्ठपद-सुत्त में भी पाये जाते हैं जहाँ पोट्ठपद ने बुद्ध से पूछा है कि यह विश्व नित्य है या अनित्य, यह अनन्त है या सान्त, यह देह एवं आत्मा भिन्न हैं या एक ? बुद्ध ने उत्तर दिया है कि हमने इन विषयों की व्याख्या इसलिए नहीं की है कि इनसे कोई उपयोग सिद्ध नहीं होता और न इनसे निर्वाण की प्राप्ति ही होती है (पालि टेक्ट्स सांसाइटी, जिल्द १, पृ० १८८-१८९)।

४९२

9

0

भी कोई व्याख्या नहीं उपस्थित की) की प्राप्ति। प्रारम्भिक सिद्धान्त (हीनयान) के अन्तर्गत ऐसा व्यक्त है कि सम्बोधि का अनुभव एवं निर्वाण मनुष्यों द्वारा इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है, यदि वे बुद्ध के निर्धारित मार्ग का अनुसरण करें। अस्तु, अब हम बौद्ध धर्म के लोप के उन कारणों को उपस्थित करेंगे जिन्हें विद्वानों ने समय-समय पर व्यक्त किया है।

(१) शासकीय उत्पीडन को कुछ विद्वानों ने मुख्य कारणों में एक कारण माना है। शुंग वंश के पुष्यिमित्र ने, ऐसा अभियोग लगाया गया है, ऐसी उद्घोषणा की थी कि जो कोई किसी श्रमण का सिर लायेगा वह एक सौ दीनार पायेगा; कश्मीर के राजा मिहिरकुल को युवाँ च्वाँग (अथवा ह्वेन-साँग, जैसा कुछ विद्वान् लिखते हैं) ने

७. 'निर्वाण' का शाब्दिक अर्थ है 'बुझा हुआ' या 'ठण्डा हो जाना।' बुद्ध की शिक्षा को ध्यान में रखकर यदि इसका अर्थ लगाया जाय तो कहा जा सकता है--काम (विषय या कामना) की अग्नि, कोघ एवं सोह का बुझना, और इनका नैतिक शुचिता, दया-दाक्षिण्य एवं ज्ञान के रूप में परिवर्तित हो जाना। यह बाइबिल दाले स्वर्ग का द्योतक नहीं है। यह सम्यक् सम्बोधि, शान्ति एवं सुख की उस स्थिति का द्योतक है, जो केवल मृत्यु के बाद ही नहीं, प्रत्युत इसी जीवन में और इसी पृथिवी पर प्राप्त की जा सकती है। यह दास्तव में वर्ण-नातीत है, जैसा कि पालि उदान (८) में कथित है-- अव्यक्त, अजन्मा, निराकार आदि' और बह्म के लिए प्रयुक्त 'नेति नेति' (बृ० उप० २।३।६, ४।२।४, ४।४।२१, ४।५।१५) से मिलता-जुलता है।

८. अज्ञोकाबदान (सं० ३९) के जब्द (दिव्यावदान, कोवेल एवं मील द्वारा सम्पादित, केम्ब्रिज, १८८६, पृ० ४३४) 'यावत् पुष्यमित्रो यावत्संघारामं भिक्षूंच्च प्रघातयन् प्रस्थितः। स यावच्छाकलमनुप्राप्तः। तेनाभिहितम्। यों मे श्रमणिशरो दास्यित तस्याहं दोनारशतं दास्यामि।... यदा पुष्यमित्रो राजा प्रघार्तितस्तदा मौर्यवंशः समु-च्छितः।' अधिकांश में लोगों ने पुष्यमित्र को शुंग कहा है एवं 'सेनानी' शब्द उपाधि रूप में पुराणों, हर्षचरित (६) एवं अयोध्या शिलालेख (एपि० इण्डि०, जिल्द २०, पृ० ५४) में आया है, किन्तु उपर्युक्त अवदान ने इसे मौर्य कहा है। इससे प्रकट होता है कि या तो दिव्यावदान (जो पश्चात्कालीन कृति है) का लेखक इस दिषय में . शुद्ध ज्ञान नहीं रखता था या वह वचन त्रुटिपूर्ण या क्षेपक है। देखिए हिस्ट्री काँग्रेस की छठी बैठक (अलीगढ़ १९४३, प्० १०९-११६) की प्रोसीडिंग्स्, जहाँ श्री एन्० एन्० घोष ने यह सिद्धान्त घोषित किया है कि पुष्यमित्र ने बौद्धीं को अवश्य उत्पीडित किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने ऐसा नहीं किया। दूसरी ओर डा राय चौधरी (पोलिटिकल हिस्ट्री आव इण्डिया, ५वाँ संस्करण) इस सिद्धान्त को नहीं मानते कि पुष्यमित्र बौद्धों का घातक या उत्पीडक था। आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प (त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज, भाग ३, ५३ वाँ अध्याय, पृ० ६१९-६२०) में भविष्यवाणी के रूप में ऐसा उल्लिखित है कि गोमिमुख्य (तथा गोमिषण्ड भी) नामक कोई राजा पूर्व भारत से कश्मीर तक अपने राज्य का विस्तार करता हुआ बुद्ध के शासन को तिरोहित कर देगा, विहारों का नाश करेगा तथा भिक्षुओं को मार डालेंगा। काशीप्रसाद जायसवाल ने 'इम्पीरियल हिस्ट्री आव इण्डिया इन ए संस्कृत टेक्स्ट' (पृ० १९) में ऐसा विचार प्रकट किया है कि गोमिमुख्य पुष्यिमत्र का प्रच्छन्न नाम है और जो बात उपर्युक्त उद्धृत है, वह ८०० ई॰ के लगभग लिखी गयी है और उसका तिब्दती अनुवाद सन् १०६० ई॰ में हुआ। देखिए रामप्रसाद चन्द का लेख 'पुष्यिनत्र एण्ड दि शुंग एम्पायर' (इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टली, जिल्द ५, पृ० ३९३-४०७) और देखिए पृ० ३९७, जहाँ दिव्यावदान के अन्तिम वाक्यों का अंग्रेजी में अनुवाद भी है तथा पृ० ५८७-६१३ तथा हरिकिशोर प्रसाद द्वारा लिखित लेख 'पुष्यिमत्र शुंग एण्ड बुद्धिस्ट्स' (जे० बी० आर० एस०, जिल्ब ४०, प्० २९-३०) ।

#### वर्मशास्त्र का इतिहास

A6.8

उत्पोडक कहा है और लिखा है कि उसने गन्धार में बौद्ध स्तूपों को गिरा दिया, उसने मठों एवं सैकड़ों बौद्धों को मार डाला (देखिए 'इन दि फूटस्टेप्स आव बुद्ध,' रेने ग्रोस्सेट द्वारा लिखित, पृ० ११९-१२०); युवाँ च्वाँग ने लिखा है कि राजा शशांक ने बोधिवृक्ष का उच्छेद कर दिया, बुद्ध-प्रतिमा के स्थान पर महेश्वर की प्रतिमा रख दी तथा बुद्ध के धर्म का नाश किया (देखिए बील की पुस्तक 'बुद्धिस्ट रेकर्ड्स आव दि वेस्टर्न वर्ल्ड,' जिल्द २, पृ० ११८, १२२ एवं वाटर्स की पुस्तक 'युवाँ च्वाँग्स ट्रैवेल्स', जिल्द २, पृ० ११५-११६); कुमारिल के कहने पर राजा सुधन्वा ने एक अनुशासन निकाला कि हिमालय से लेकर कुमारी-अन्तरीप तक (जो सर्वथा असंगत है) अपने उस नौकर को, जो बौद्धों की हत्या नहीं करेगा, मार डालूँगा। '

ये उदाहरण प्रसिद्ध विद्वान् राइज डेविड्स द्वारा पालि टेक्स्ट्स सोसाइटी के जर्नल (१८९६, पृ० ८७-९२) में परीक्षा की कसौटी पर जाँचे गये हैं। उन्होंने यह कहकर कि पालि पिटकों में कहीं भी उत्पीडन की चर्चा नहीं हुई है, पालि ग्रन्थों का स्वर ब्राह्मणों की प्रशंसा से युक्त है, कहीं भी किसी प्रकार के धार्मिक उत्पीडन अथवा घात या व्य-क्तियों के विनाश की कथा उल्लिखित नहीं है; बलपूर्वक घोषणा की है कि वे इन गाथाओं में विश्वास नहीं करते। किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि मैं पुष्यमित्र से सम्बन्धित किवदन्ती को सर्वथा झूठ मानने को सन्नद्ध नहीं हूँ (किन्तु 'अवदान' का लेखक पूरी जानकारी नहीं रखता था और जो वचन आयें हैं वे अशुद्ध हैं, अतः ऐसा निर्णय अभी नहीं दिया जाना चाहिए)। वे सुघन्वा एवं कुमारिल की गाथा को सभी उत्पीडन-सम्बन्धी गाथाओं में सबसे आधारहीन मानते हैं और कहते हैं कि वह केवल अत्युक्तिपूर्ण दर्प मात्र है। राइज डेविड्स का कथन है—'दोनों विरोधी धर्मों

९. देखिए राइज डेविड्स कृत 'बुद्धिस्ट इण्डिया', पृ० ३१८-३२० (५वाँ संस्करण, १९१७, प्रथम संस्करण १९०३ ई० में प्रकाशित) जहाँ उत्पोडन के विषय में दिया हुआ है, और देखिए देविमत्त धम्मपाल कृत 'लाइफ एण्ड टोचिंग आव बुद्ध' (पृ० ७) जहाँ ऐसा उल्लिखित है कि कुमारिल एवं शंकर ने केवल विवादात्मक युद्ध किया था। कुमारिल के तन्त्रवार्तिक में भी ऐसा आया है कि बौद्ध लोग मीमांसकों से विवादात्मक युद्ध (शास्त्रार्थ) करने से डरते हैं, और वे जहाँ एक ओर यह कहते हैं कि प्रत्येक वस्तु क्षणिक है वहीं वे मूर्खतापूर्वक यह गर्व से कहते हैं कि उनके पवित्र प्रन्य अमर हैं और इस प्रकार वे वेद के सिद्धान्तों से ऋण लेते हैं— 'यथा मीमांसकत्रस्ताः शाक्यवैशे- विकादयः। नित्य एवागमोऽस्माकमित्याहुः शून्यचेतनम्।।' पृ० २३५; 'तत्र शाक्यैः प्रसिद्धापि सर्वक्षणिकवादिता। त्यज्यते वेदिस्त्रान्ताज्जलपद्भिनित्यमागमम्।।' पृ० २३६। देखिए तन्त्रवातिक, पृ० ३७६-३७७ जिससे प्रकट होता है कि कुमारिल बुद्ध की शिक्षा की उपयोगिता को किसी सीमा तक मानने को सन्नद्ध थे। अन्य प्रन्थ भी यही प्रकट करते हैं कि यह केवल विवादात्मक युद्ध (शास्त्रार्थ) मात्र था, यथा—सुवन्धु (छठी शती) की वासवदत्ता नाद्य-पुस्तक में आया है— 'केविज्जमिनिसतानुसारिण इव तथागतमतद्यंसिनः', पृ० १४४ नाल का संस्करण)।

१०. माघवाचार्य के शंकरिदिग्वजय (१।५६ एवं ५९) में ऐसा वर्णित है कि राजा सुधन्वा इन्द्र का अवतार या और कुमारिल स्कन्व (जिन्हें कुमार भी कहा जाता है) के अवतार थे। उस ग्रन्थ में सुधन्वा की आजा इस प्रकार है—'व्यवादाज्ञां ततो राजा ववाय भुतिविद्विषाम्। आ सेतोरा तुषाराद्रेवोद्धानावृद्धवालकम्। न हन्ति यः सहन्तव्यो मृत्यानित्यन्वशाभृगः।।' (शंकरिदिग्वजय १।९२-९३)। यह प्रत्यक्ष रूप से असंगतिपूर्ण गाथा है। प्राचीन मारत में किसी भी राजा ने, सुधन्वा की तो बात ही निराली है, हिमालय से लेकर रामेश्वर तक राज्य नहीं किया। आगे, यह भी द्रष्टव्य है कि वह आजा जिसे प्रचारित रूप में हम मान भी लेते हैं, केवल राजा के भृत्यों को ही वी गयी, सब को नहीं। शंकरिवित्वजय (१५।१) में ऐसा उल्लिखत है कि जब शंकराचार्य ने अपनी दिग्वजय

के अनुयायी एक सहस्र वर्षों तक लगातार शान्तिपूर्वक एक-दूसरे के साथ रहते चले आये हैं और यह सह-अस्तित्व अशोक के काल से लेकर आगे तक की मारतीय जनता की विशेषताओं की ओर हमारा घ्यान आकृष्ट करता है।' इससे प्रकट होता है कि मारत में धार्मिक उत्पीडन नहीं हुआ और पाश्चात्य धार्मिक उत्पीडन की गाथाओं की आवृत्ति यहाँ नहीं हो सकी। डा० आर० सी० मित्र ने भी अपनी पुस्तक 'डिक्लाइन आव बुद्धिज्म इन इण्डिया' (पृ० १२५-१३०) में उत्पीडन-सम्बन्धी गाथाओं के विषय में ऐसा ही निष्कर्ष उपस्थित किया है। वार्थ ने अपनी पुस्तक 'रिलिजंस आव इण्डिया' (पृ० १३६) में यह माना है कि सभी वातें यही सिद्ध करती हैं कि बौद्ध धर्म अवसाद के कारण क्षय को प्राप्त हुआ और हमें इसके अपने दोषों में ही इसके विलीन होने के कारण ढूँढ़ने चाहिए। उन्होंने अपने कथन को इस प्रकार पुष्ट किया है—'सिक्के एवं शिलालेख तथा अत्यन्त विश्वास करने योग्य प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि शासन-सम्बन्धी शक्तियाँ विशेष रूप से सिहण्णु एवं उदार थीं' (पृ० १३३), और वे इसकी पुष्टि में उदाहरण भी देते हैं। दे

रामेश्वर के लिए प्रारम्भ की तो उनके साथ राजा सुधन्वा भी गया। माधवाचार्य अपने नायक की गरिमा बढ़ाने के उत्साह में गाया-पर-गाया जोड़ते जाते हैं और इतिहास एवं काल-कम को हवा में उछाल देते हैं, अर्थात् वे इतिहास एवं काल से सम्बन्धित कमों को तोड़ देते हैं। उदाहरणार्य, उन्होंने वर्णन किया है कि आचार्य अभिनवगुप्त (जो एक महान् श्रेव एवं तान्त्रिक आचार्य थे) शंकर द्वारा शास्त्रार्थ में (१५।१५८) हरा दिये गये और यह भी लिखा है कि अभिनवगुप्त ने महान् आचार्य के विरोध में मारण का प्रयोग किया था। अभिनवगुप्त की कृतियों से स्वयं प्रकट है कि उनके साहित्यक कर्म ९८० एवं १०२० ई० के मध्य में सम्पादित हुए थे (देखिए प्रस्तुत लेखक का प्रन्थ 'हिस्ट्री आव संस्कृत पोइटिक्स', १९५१, पृ० २३१-२३२), किन्तु शंकराचार्य को कोई भी विद्वान् ८०० ई० के उपरान्त का नहीं मानता। माधवाचार्य ने (१५।१५७) यह भी कहा है कि शंकराचार्य ने 'खण्डनखण्डखाख' के लेखक श्रीहर्ष को भी, जिन्हें गुरु, भट्ट एवं उदयन नहीं हरा सके थे, अपने तकों से हराया। श्रीहर्ष १२ वीं शती के अन्त में हुए थे। तारानाथ ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आव बुद्धिक्म' में लिखा है कि सम्भवतः इसी समय बौद्धों के प्रवल शत्रु शंकराचार्य एवं उनके शिष्य भट्टाचार्य प्रकट हुए, जिनमें प्रथम (शंकराचार्य) बंगाल में एवं दूसरे (भट्टाचार्य) उड़ीसा में। उसके थोड़े समय के उपरान्त बौद्ध लोग दिक्षण में कुमारलील एवं कणादरु द्वारा उत्पीडित हुए। यहाँ बौद्ध राजा शालिवाहन का उल्लेख है, यद्यपि बौद्धों का कथन है कि कुमारलील, शंकराचार्य या भट्टाचार्य आदि के शास्त्राय के अन्त में धर्मकीर्ति की विजय हुई (इण्डियन ऐण्टोक्वरी, जिल्व ४, पृ० ३६५)। यह प्रकट है कि उक्त वृत्तान्त सर्वया भ्रामक है। देखिए डा० मित्र कृत 'डिक्लाइन आव बुद्धिक्म', पृ० १२९।

११. यस्मिन्देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितः। तथैव परिपाल्योऽसौ यदा वशमुपागतः॥ वामिक उत्पीडन एवं तोड़-फोड़ के कुछेक उदाहरणों के सम्पूर्ण अस्वीकार से कुछ प्राप्ति नहीं होती। किन्तु ऐसे उदाहरण बहुत ही थोड़े हैं और उनकी अल्पता इस बात को बल देती है और प्रमाणित करती है कि दो सहस्र वर्षों से अधिक काल तक भारतीय जनता में महान् धार्मिक सहिष्णुता विराजमान थी। ऐब्लूर से प्राप्त एक शिलालेख (एपि० इण्डि०, जिल्द ५, पृ० २१३, २४३) से एक मनोरंजक उदाहरण की प्राप्त होती है, जहाँ एकान्तद राम नामक एक कट्टर शैव की गाया विणत है। शिव के कट्टर भक्त एकान्तद राम ने हुलिगर (लक्ष्मेश्वर) के जैनों के साथ, जिनके मुखिया संकगौडा थे, एक शर्त बदी और ताड़पत्र पर लिखकर दाव लगाया कि वह अपना सिर काट कर हुलिगर में सोमनाथ के चरणों पर रख देगा और सात दिनों के उपरान्त अपने सिर को पुनः प्राप्त कर होगा।

धर्मशास्त्र का इतिहास

398

यह अवलोकनीय है कि याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने ऐसी व्यवस्था दी है कि जब कोई राजा किसी अन्य देश पर अधिकार कर ले, तो उसका यह कर्तव्य होता है कि वह विजित देश के आचार, व्यवहार एवं कुल-स्थिति का सम्मान करे। अशोक स्वयं बुद्ध-शिक्षाओं का अनुयायी था, किन्तु उसने यह आज्ञापित किया है कि सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रति सम्मान प्रकट किया जाय और उसने स्वयं ऐसा ही किया था (१२ वाँ प्रस्तर-लेख)—'न तो अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा और न अन्य सम्प्रदायों की अवमानना होनी चाहिए', 'अन्य सम्प्रदायों का सम्मान प्रत्येक रूप में होना चाहिए', 'केवल समवाय श्लाघ्य है, अर्थात् लोगों को एक-दूसरे के धर्म को सुनना एवं सम्मान करना चाहिए।'' सातवें स्तम्म (दिल्ली-टोपरा, पृ० १३६) में अशोक ने घोषित किया है कि मैंने महामात्र नामक अधिकारियों की नियुक्ति की है, जो संघ (शिक्षा या उपदेश करने वाले भिक्षुओं का समुदाय), ब्राह्मणों, आजीवकों, निगन्यों एवं अन्य सभी पासण्डों (पाषण्डों या पाखण्डियों) की सुरक्षा व्यवस्था देखेंगे। सहस्रों वर्षों तक भारत एक ऐसा देश रहा है जहाँ पूर्णरूपेण सहिष्णुता बरती गयी है, जो शाब्दिक अर्थ में स्वयं एक धर्म है। किन्तु

यदि इसमें उसे सफलता प्राप्त हो गयी तो जैनों को अपने धर्म एवं परमात्मा का त्याग करना पड़ेगा। एकान्तद राम सफल हो गया, किन्तु जैनों ने जिनदेव की प्रतिमा को त्यागना अस्वीकार किया, जिस पर एकान्तद ने जैनों द्वारा मेजे गये घोड़ो एवं रक्षकों को हरा कर भगा दिया, जिन-मन्दिर तोड़ दिया और वहीं एक वड़ा शिव-मन्दिर वनवा दिया। जैनों ने राजा बिज्जल से शिकायत की, जिन्होंने राम की वुला सेजा और उससे पूरी बातें जाननी चाहीं। राम ने लिखित प्रमाण उपस्थित कर दिया और पुनः वैसी ही शर्त बदी, जिसे जैन मानने की तैयार नहीं हुए। बिज्जल ने जैनों से अपने पड़ोसियों के साथ शान्तिपूर्वक रहने को कहा, एक जयपत्र (राम की सफलता का प्रमाण-पत्र) दिया और सोमनाथ के मन्दिर के लिए एक प्राम दान में दिया। यह स्पष्ट है कि राम द्वार। जैन-प्रतिमा हटायी गयी और उसके स्थान पर शिव-प्रतिमा रखी गयी (यहाँ अलौफिक बातों पर विचार नहीं किया जा रहा है)। राम को हम ११६२ ई० के कुछ ही पूर्व रख सकते हैं। स्थानीय झगड़ों में, जैसा कि उपर्युक्त लेख से व्यक्त है, तथा किसी जन-समुदाय या राजा की सम्पूर्ण नाश अथवा उत्पीडन-सम्बन्धी सामान्य नीति में बड़ा अन्तर होता है।

१२. देखिए 'इंस्किप्शंस आव अशोक' (जा॰ हुत्श द्वारा सम्पादित, १९२५, पृ० २०-२१, जहाँ पर गिरनार का प्रस्तर-लेख अनुवादित है)। डा॰ मीनाक्षी अपने प्रन्य 'एडिमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अण्डर दि पल्लवज' (मद्रास यूनि॰, १९३८, पृ० १७०-१७२) में यह कहने के उपरान्त कि पल्लव राजा लोग अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति सिहल्णु थे, इस बात की ओर संकेत करते हैं कि पल्लवमल्ल राजा ने कुछ फठोर ढंगों एवं उत्पीडन का सहारा लिया था। प्रो॰ आनल्डं टायन्बी ने 'ईस्ट एवं वेरट' (आक्सफोर्ड यूनि॰ प्रे॰) ने निर्देश किया है कि ईसाई धर्म एवं मुस्लिम धर्म ने 'जीओ एवं जीने दो' के सिद्धान्त का अनुशीलन कदाचित् ही किया है और दोनों विश्व-इतिहास को अपमानित करने वाले महाभयंकर द्वन्हों, कूरतम निर्दयताओं एवं दुष्कमों के उत्तरदायी हैं (पृ० ४९)। इसी प्रकार बो॰ ओ॰ बोग्ट ने अपने प्रन्य 'कल्ट एण्ड कल्चर' में मुसलमानों एवं ईसाई धर्मदूतों के उस अडिग एवं अटल औद्धत्यपूर्ण अहंकार की भत्सना की है जिसके द्वारा वे अपने धार्मिक सिद्धान्त को परमात्मा द्वारा प्राप्त प्रमाण मानते हैं: उन्होंने शोक के साथ यह व्यक्त किया है कि धर्म यदि अपनी उत्प्रेरणा-सम्बन्धों धारणा से अतीत एवं भविष्य को आलिगन-सूत्र में बाँधने की प्रक्रिया में सार्वजनीनता नहीं प्रकट करता (पृ० ७०), तो वहं नाश को प्राप्त हो। जायगा

## प्राचीन भारत में बर्मीनरपेक्षता और सह-अस्तित्व

860

यूरोपीय घार्मिकता सदैव असहिष्णु रही है, और जब कभी यह असहिष्णु नहीं रहीं है, तो यह मानसिक विरोध (ईर्ष्या) या सम्पूर्ण उदासीनता के तुल्य ही रही है। भारतीयों में अधिकांश धार्मिक व्यक्ति सदैव अतीत में ऐसा मानते रहे हैं और आज भी ऐसा स्वीकार करते हैं कि जीवन के रहस्य एवं आत्मा की मुक्ति के विषय में बहुत-से वैकल्पिक मार्ग हो सकते हैं। भारतीय लोग उन कितपय लाखों लोगों के इस कथन पर कि उनके द्वारा सम्मानित पैगम्बर को ही भेगवान् और परलोक की ज्ञान-प्राप्ति का एकाधिकार प्राप्त है, बाल-साहस मानकर उपेक्षा के साथ मुसकराते रहे हैं। यहाँ अन्य विरोधी सिद्धान्तों एवं सम्प्रदायों के प्रति ऐसी सिहण्णुता सदैव विराजमान रही है; अशोक के पहले कई शतियों पूर्व से लेकर १३०० ई० तक, जब कि मुसलमानों ने भारत को तहस-नहस करना आरम्भ कर दिया, इसके कदाचित् ही विरल अपवाद पाये गये हों। कुछ थोड़े-से उदाहरण (प्राचीन एवं पश्चात्कालीन 🎜 दोनों) यहाँ दिये जाते हैं---

(१) खारवेल ने, जो किलग का जैन राजा था, अपने राज्यकाल के नवें वर्ष में ब्राह्मणों को कर-मुक्त कर दिया (ईसा पूर्व द्वितीय या प्रथम शती, देखिए एपि० इण्डि०, जिल्द २०, पू० ७९ एवं ८८); (२) नासिक गुफा-लेख (संख्या-१०) में आया है कि क्षहरात वंश के क्षत्रप नहपान के दामाद उपवदात ने पवित्र निदयों के तटों पर तथा भरुकच्छ (भड़ीच), दशपुर एवं गोवर्धन (नासिक) के देवों एवं ब्राह्मणों को बहुत दान दिये तथा बौद्ध संघ के मोजन के लिये भूमि-खण्ड दान किया; (३) गुप्त सम्राट् सामान्यतः विष्णु के मक्त थे, किन्तु उन्होंने भी बौद्धों को दान दिये, यथा-गुप्त लेख सं० ५ (गुप्त इंस्क्रिप्शंस, फ्लीट, पृ० ३१-३४) में आया है कि आम्रकार्दव (चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक राज्य कर्मचारी) ने आर्यसंघ को गुप्त संवत् के ९३ वें वर्ष (४१२-१३ ई०) में विशेष दान दिया; (४) आन्ध्रदेश में श्रीपर्वत के इक्ष्वाकु राजा सिरि चान्तमूल ने अग्निष्टोम, वाजपेय एवं अरवमेघ यज्ञ किये, किन्तु उसके कुल की स्त्रियों में अधिकांश बौद्ध थीं, जिनमें एक ने परम बुद्ध के सम्मान में एक स्तम्म बनवाया (एपि० इण्डि०, जिल्द २०, पृ०८ एवं जायसवाल की 'हिस्ट्री आव इण्डिया', ५० से ३५० ई०, पृ० १७५); (५) वलमी (काठियावाड़) के मैत्रक राजाओं में सभी महेश्वर (शिव) के पूजक थे; बम्बई यूनि० के जर्नल (जिल्द ३, पू० ७४-९१) में इनके पाँच दान-पत्रों का उल्लेख किया गया है जिनमें चार बौद्धों के लिए तथा एक ब्राह्मण के लिए हैं। इनमें प्रथम गारुलक महाराज वराहदास नामक सामन्त द्वारा वलमी के २३० वें वर्ष (५४९ ई०) में दिया गया और अन्य स्वयं वलमी-राजाओं द्वारा। बौद्धों को दिये गये चारों दान यक्षशूर-विहार एवं पूर्णमट्ट-विहार (दोनों मिक्षुकियों के मठ थे) को दिये गये मूमि-खण्डों एवं ग्रामों से सम्बन्धित हैं, जिनसे मिक्षुकियों को वस्त्र, अन्न, विस्तर, आसन, दवा आदि तथा बीद प्रतिमाओं के लिए धूप, पुष्प, चन्दन आदि की व्यवस्था की जा सके। (६) उड़ीसा के राजा ने, जिसका नाम शुमा-करदेव था, जो बौद्ध राजा का पुत्र था और अपने को परमसौगत कहा करता था, आठवीं शती के उत्तरार्ध में विभिन्न गोत्रों वाले सौ ब्राह्मणों को दो ग्रामों का दान किया (एपि० इण्डि०, जिल्द १५, पृ० ३-५, नेउलपुर दान); (७) बंगाल के राजा विग्रहपाल ने, जो बौद्ध पालवंश का था, अपने राज्य-काल के १२ वें वर्ष में चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर बुद्धके सम्मान में गंगा-स्नान करके (भगवन्तं बुद्धभट्टारकमुद्दिश्य) एक सामवेदी ब्राह्मण को दान दिया (अंगच्छी दान-पत्र, एपि० इण्डि०, जिल्द १५, पृ० २९३, लगमग १००० ई०); (८) विग्रहपाल के उत्तराधिकारी महीपाल ने विषुव-संक्रान्ति पर गंगा में स्नान करके बुद्ध के सम्मान में एक ब्राह्मण को एक ग्राम दान में दिया (एपि० इण्डि०, जिल्द १४, पृ० ३२४); और देखिए इण्डियन ऐण्टीक्वेरी (जिल्द २१, पृ० २५३-२५८) जहाँ बंगाल के बौद्ध राजा देवपालदेव द्वारा ९वीं शती के अन्त में एक विद्वान् ब्राह्मण को एक प्राम दिये जाने की चर्चा है। (९) कसिया से प्राप्त कलचुरि प्रस्तरामिलेख (एप्ि० इण्डि०, जिल्द १८, पृ० १२८) में गद्य में प्रथम आवाहन रुद्र का और उसके उपरान्त बुद्ध का हुआ है; प्रथम दो स्लोक शंकर की स्तुति में हैं, तीसरा तारा (बौद्ध देवी) की

स्तुति में तथा चौथा एवं पाँचवाँ क्लोक बुद्ध (मुनीन्द्र) की प्रशंसा में कहा गया है। (१०) कन्नीज के गहड़वार राजा गोविन्दचन्द्र की चौथी रानी कुमारदेवी ने, जो एक कट्टर हिन्दू थी, एक विहार वनवाया, जिसमें उसने वर्मचक जिन अर्थात् बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की (एपि० इण्डि०, जिल्द ९, पृ० ३१९ एवं ३२४); (११) स्वयं गोविन्द-चन्द्र ने ६ ग्रामों का दान शाक्यरक्षित नामक एक विद्वान् वौद्ध को (जो उड़ीसा से आया था) तथा उसके शिष्य को किया, जो जेतवन महाविहार (देखिए 'सहेत-महेत' नामक गोविन्दचन्द्र का पत्रक, संवत् ११८६, सन् ११२८-२९ ई०, एपि॰ इण्डि॰, जिल्द ११, पृ॰ २० एवं २४) के संघ के कल्याण के निमित्त था। (१२) पूर्वी बंगाल के बौद्ध राजा श्रीचन्द्र के मदनपुर दान-पत्र से प्रकट है कि राजा ने अगस्तितृतीया पर स्नान करके बुद्धमट्टारक के सम्मान में ু शुक्रदेव नामक एक ब्राह्मण को भूमि-दान किया। ' (१३) चालुक्य त्रिभुवनमल्ल उर्फ 'विक्रमादित्य' (शक संवत् १०१७, १०९५-९६ ई०) के काल का दम्बल शिलालेख बुद्ध के स्तवन से आरम्म होता है और उसमें दो विहारों के दान की चर्चा है, जिनमें एक बुद्ध का है जो घर्मपुर या घर्मवोलल (घारवाड़ जिले में दम्बल) के सेट्टियों द्वारा निर्मित हुआ और दूसरा तारादेवी का है, जो लोकिकगुण्डि (या आधुनिक लक्कुण्डि) के सेट्टि द्वारा बनवाया गया था। (१४) एपि॰ इण्डिका (जिल्द १६, पृ॰ ४८, ५१) के लक्ष्मणेश्वर के शिलालेख (सन् ११४७ ई०) से प्रकट है कि एक सेनापित शैव, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन नामक चारों सम्प्रदायों का उद्धारक था (चतुस्समयसमुद्धरणम्)। (१५) श्रावस्ती (आधुनिक सहेत-महेत) से प्राप्त एक शिलालेख से प्रकट होता है कि वास्तव्य कुल के विद्याघर नामक एक व्यक्ति ने बौद्ध श्रमणों के लिए एक मठ उसी बस्ती (जहाँ शिलालेख प्राप्त हुआ था) में बनवाया (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द १७, पृ० ६१)। (१६) तंजौर के सेवप्प नायक के कुम्भकोणम् नामक शिलालेख (१५८० ई०) से पता चलता है कि तिरुमलियराजपुरम् के ब्राह्मण-ग्राम ('अग्रहार') में कुछ भूमि क़ा दान, तिरुविलदुर के बुद्ध-मन्दिर से सम्बन्धित एक व्यक्ति को दिया गया था। <sup>१४</sup>

उपर्युक्त उदाहरण यह व्यक्त करते हैं कि मारत के सभी भागों, उत्तर से दक्षिण तक में, राजाओं के एवं उनके कर्मचारियों के मध्य धार्मिक सिहण्णुता एवं सभी धर्मों की सुरक्षा करना यह एक सामान्य नियम-सा था। यदि कहीं कोई अपवाद था तो वह किसी व्यक्ति-विशेष, राजा या कर्मचारी या उसके समान किसी व्यक्ति तक ही सीमित था। दूसरी ओर, यद्यपि अशोक, जो प्रजा के अन्य धर्मों के प्रति आदर-सम्मान प्रकट करने में प्राचीन मारतीय सिहण्णुता का उत्तराधिकारी था, और जिसके ७ वें एवं १२ वें प्रस्तर-लेख सिहण्णुता का उज्ज्वलतम उदाहरण या प्रतीक थे, आगे चल कर वही यह कहने में सन्तोष प्रकट करने लगा कि जम्बूद्वीप के देव लोग झूठे (अमान्य)पड़ गये और वह गर्व के साथ घोषित करने लगा कि यह परिणाम 'मेरी महत्ता का प्रभाव नहीं,

प्रत्युत मेरे उत्साह का है।'

यह द्रष्टव्य है कि अशोक की अहिंसा भी आरम्भ में पूर्ण नहीं थी, प्रत्युत सीमित थी। अपने प्रथम प्रस्तर-लेख में उसने कहा है कि राजा की रसोई में पहले सहस्रों पशु मारे जाते थे, अब यह हत्या प्रति दिन दो मोरों एवं एक

१३: श्रोचन्द की तिथि के विषय में मतभेद है। देखिए डा० आर० सी० मजूमदार कृत 'हिस्ट्री आव बंगाल' (जिल्द १, पृ० १९६), जहां श्रीचन्द की तिथि कुछ विद्वानों द्वारा ११ वीं शती के आरम्भ में रखी गयी है।

१४, अन्तिम दो उदाहरणों से प्रकट होता है कि यद्यपि कन्नौज के राजा जयचन्द हरा दिये गये थे और कन्नौज पर मुसलमानों का अधिकार सन् ११९३ ई० में हो चुका था, तथापि बौद्ध घर्म १३ वीं शती के प्रथम चरण में उत्तरी भारत से पूर्णतया विलीन नहीं हुआ था और बौद्ध घर्म के कुछ अवशेष दक्षिण में १६ वीं शती तक विद्यमान थे।

## प्राचीन भारत में सर्व-वर्मसमभाव और अशोक

866

हिरन तक सीमित हो गयी है (वह मी कमी-कमी,) और ये तीन पशु भी मिवष्य में नहीं मारे जायेंगे (काप्से इस्किप्शनम् इण्डिकेरम्, जिल्द १, पृ० १-२)। यह अन्तिम प्रण कार्यरूप में परिणत हुंआ कि नहीं, कोई नहीं जानता। इसके अतिरिक्त, अशोक ने सभी प्रकार के प्राणियों की रक्षा करने की उत्सुकता को बहुत अधिक बढ़ावा दे डाला और एक अधिनायक की माँति मनुष्य-स्वमाव के विरोध में अपनी राजशक्ति का प्रयोग किया। दिल्ली-टोपरा स्तम्म के चौथे लेख में अशोक ने उल्लेख किया है कि उसके लजूक नामक कर-व्यवस्थाधिकारियों का हजारी मनुष्यों से पाला पड़ता था और उन्हें दण्ड देने, यहाँ तक कि प्राण-दण्ड देने तक का अधिकार था और उसमें तीन दिनों की छूट की चर्चा है, जिसमें प्राण-दण्ड पाने वालों के सम्बन्धियों को इसका अवसर प्राप्त हो सके कि वे लजूकों से दण्ड-व्याक्षेप या क्षमा की माँग कर सकें। पाँचवें दिल्ली-टोपरा स्तम्भ-लेख (का० इं० इण्डि०, जिल्द १, पृ० १२५-१२८) में राज्यामि-षेक के २६ वें वर्ष के उपरान्त्र अशोक ने घोषित किया है कि २३ प्रकार के पक्षी एवं अन्य पशु (यथा तोता, मैना, लाल या जंगली हंस अर्थात् चक्रवाक या क्वेत हंस, पण्डूक, कुछ विशिष्ट मछलियाँ एवं कछुवे) बिल्कुल नहीं मारे जायेंगे, भेड़ एवं शूकरी, जो अभी छोटी हैं या दूध देने वाली हैं या इनके बच्चे अभी ६ मास से कम अवस्था के हैं वे भी नहीं मारी जायेंगी। उसने कुछ पूर्णिमाओं को एवं उनके एक दिन पूर्व एवं उपरान्त मछली बेचना, अष्टमी, चतुर्दशी एवं अमावस्या पर बैलों, मेड़ों एवं घोड़ों को बिघया करना तथा पुष्य, पुनर्वसु एवं चतुर्मीसियों में घोड़ों एवं बैलों पर तप्त लोहे के चिह्न या दाग लगाना वन्द करा दिया। इन उपर्युक्त आदेशों से निर्धन लोगों पर बुरा प्रभाव अवश्य पड़ा होगा, और ये नियम लोगों को अवश्य कठोर लगे होंगे, विशेषतः जब इनके विषय में लजूकों को समी प्रकार के अधिकार थे। जीवन के पश्चात्कालीन भाग में, ऐसा लगता है, अशोक ने हिन्दू देवों की पूजा का विनाश चाहा था। रूपनाथ प्रस्तर-लेख (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द ६, पृ० १५४-१५६) में ऐसा आया है कि वह कुछ वर्षों तक उपासक मात्र (केवल बुद्ध की पूजा करने वाला) था, किन्तु अभी आस्थावान् नहीं हो सका था, किन्तु एक वर्ष या अधिक काल से (अस्थावान् हो गया) और उस अविध में वे देव, जो जम्बूद्वीप (मारत) में सच्चे कहे जाते थे, झूठे पड़ गये और यह उसकी आस्था (उत्साह, प्रयत्न आदि) का परिणाम थाने " इससे यह अर्थ निकाला

१५ यहाँ पर ब्रह्मिगिर, रूपनाथ एवं अन्य छः स्थानों पर पाये गये प्रस्तर-लेखों के महत्त्वपूर्ण शब्द उद्धृत हुए हैं (कुछ भावान्तर हैं और कहीं-कहीं कुछ छूट भी गया है)। यहां प्रो० जूल्स ब्लोच ('लेस इंस्क्रिप्शंस डी' अशोक', पेरिस, १९५०, पृ० १४५-१४८) द्वारा उपस्थापित मूल दिया जा रहा है—'देवानं पिये हेवखाह। साति-रेकानि अब्दातियानि व (स्सानि) य सुमि पाकासके (उपासके ?) नो च बाढ़ि पक्कते (पक्कन्ते)। सातिलेके च छवच्छरे य सुमि हकं संघ (संघे) उपते बाढि पक्कन्ते। या इमाय कालाय जम्बुदिपस्सि अमिस्सा देवा हुसु ते दानि मिस्सा कटा। पक्कमस्स हिएस फले। नो च एसा महतता पापोतवे। खुद्दकेन पि पक्कमिनेन सिक्ये पिपुले पि स्वगं आरोदेवे (शेष छूट गया है)।'इस अनुशासन की एरंगुडी प्रतिलिपि यों है—'इमिना च कालेन अमिस्सा मुनिस्सा वेवेहि ते दानि मिस्मिमूता।' आस-पास के दो अन्य भाषान्तर यों हैं—'इमिना च कालेन अमिस्सा समाना मुनिस्सा जम्बुदीपस्सि मिस्सा वेवेहि।' इनमें कहीं-कहीं छूट पड़ गयो है और त्रुटियों भी हैं और अर्थ प्रकट नहीं हो पाता। सम्भवतः इन अन्तिम शब्दों का वाक्य यों अनूदित हो सर्कता है—'उस काल के अन्तर में जो मनुष्य सत्य थे (या यदि हम 'अमिस्सा' को 'अमिश्या' के रूप में लें, 'जो देवों से मिश्रित नहीं हो सके थे') वे झूठे पड़ गये, (या 'देवों से मिश्रित हो गये')। 'पक्कमस' से आगे के शब्दों का अर्थ यों है—'यह उपकम (उत्साह) का फल है; यह महत्ता से (उससे जो महत्त्वपूर्ण स्थिति वाला हो) नहीं प्राप्त हो सकता; क्षुद्र व्यक्ति द्वारा भी उपकृम से

### धर्मशास्त्र का इतिहास

जा सकता है कि जब वह आस्थावान् या कट्टर बौद्ध हो गया तो उसने लोगों को देव-पूजा से दूर कराने का प्रयत्न किया और सम्मवतः उस दिशा में कुछ कठोर नियम भी बनाये। प्रस्तुत अभिलेख पर डा० हुत्श का अनुवाद (का० इं० इण्डि॰, जिल्द १, पृ॰ १६६) स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस विषय में अब हम आगे कुछ नहीं लिखेंगे। सम्राट् हर्षवर्षन के विषय में ह्वेन-साँग ने लिखा है कि उसने पंच देशों में पशु-मांस खाना वर्जित

कर दिया और जीव-हिंसा कर्म के लिए प्राण-दण्ड निर्घारित किया (वाटर्स, पृ० ३४४)। यह भी अधिकांश लोगों को बुरा लगा होगा और सम्भवतः इसे लोगों ने घार्मिक उत्पीडन के रूप में ग्रहण किया होगा। यह द्रष्टव्य है कि हर्ष ने पशु-पक्षी-हत्या के विरुद्ध अपने. उत्साह एवं शत्रु-विजय के लिए लम्बी सेना रखने के बीच में , किसी प्रकार के

संकोच का अनुमव कहीं किया।

अन्य धर्मों के प्रति बरती जाने वाली सिंहण्णुता एवं परस्पर सहयोग से रहने की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण उदाहरण दिये जा सकते हैं। लगभग ३६० ई० में श्रीलंका के बौद्ध राजा मेघवर्ण की प्रार्थना पर बोधगया में तीन मंजिलों वाले संघाराम के निर्माण की अनुमति हिन्दू गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने दी। देखिए 'अर्ली हिस्ट्री आव इण्डिया' (चौथा संस्करण, १९२४, पृ० ३०३-३०४, वी० ए० स्मिथ द्वारा लिखित), जहाँ इतिहासकार ने इतना और कहा है कि जब ह्वेन-साँग बोघगया गया हुआ था तो उस संघाराम में एक सहस्र मिक्षु रहते थे। मुहम्मद उफी नामक एक व्यक्ति ने एक घटना का उल्लेख किया है। यद्यपि मुहम्मद ग़जनवी ने काठियावाड़ एवं गुजरात को कई बार लूटा और मन्दिरों को तोड़ा-फोड़ा एवं अपवित्र किया, तथापि हिन्दुओं ने आततायी एवं आकामक मुसलमानों एवं व्यवसायी मुसलमानों में व्यावहारिक अन्तर बनाये रखा। पारसियों द्वारा उकसाये जाने पर सम्भात के कुछ हिन्दुओं ने एक मस्जिद तोड़ डाली एवं कुछ मुसलमानों को मार डाला। उनमें से एक बचा हुआ मुसलमान सिद्धराज नामक राजा के पास गया और उसके समक्ष अपनी प्रार्थना रखी। वेश परिवर्तित कर राजा ने स्वयं सारी बातों का पता चलाया, अपराधियों को दण्डित किया और मुसलमानों को मस्जिद के पुर्नीनमाण के लिए एक लाख बलोत्र दिये और स्तीब को चार वस्त्र-खण्ड दिये, जो मस्जिद में सुरक्षित रख दिये गये। उफी का कथन

स्वगं प्राप्त किया जा सकता है। पो० रंगस्वामी आयंगर प्रेजेण्टेशन वाल्यूम (पू० २५-३०) में श्री रामचन्द्र दोक्षितार ने तर्क उपस्थित किया है कि अशोक हिन्दू है, क्योंकि उसने 'स्वगं' की बात कही है। यह तर्क ठीक नहीं है, क्योंकि स्वर्ग अनुशासन में यह आया है कि इस अनुशासन के पूर्व ढाई वर्षों तक अशोक बुद्ध का उपासक मात्र था और इससे एक वर्ष से कुछ पूर्व वह संघ (भिक्षुओं के समुदाय) में पहुँचा और उपक्रमी अयवा उत्साही बौद्ध बन गया (या सम्भवतः भिक्षु बन गया)। आरम्भिक पालि प्रन्यों में भी ऐसा आया है कि स्वर्ग से देवता लोग उतर कर बुद्ध का सम्मान करने आया करते थे। अतः 'स्वगं' शब्द के उल्लेख से कुछ अर्थ नहीं निकालां चा सकता। ्यवि पवित्र पालि प्रत्य रहे भी हों तो अशोक उनमें पारंगत नहीं था। उसने कहीं भी निर्वाण का उल्लेख नहीं किया है और न अपने अनुशासनों में कहीं 'चार आर्य सत्यों' या 'अष्टांगिक मार्ग' या 'प्रतीत्य-समृत्पाद' नामक बौद्धों के मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख ही किया है। सम्भवतः उसने नैतिक आचरण की शुद्धता के प्रयत्न से सम्बन्धित बौद्ध शिक्षा से आकृष्ट होकर ही उन सिद्धान्तों को स्वीकार किया था और यज्ञों को अस्वीकार किया था। ऐसा लगता है कि वह देवों में विश्वास करता था और चाहता था कि लोग स्वर्ग-प्राप्ति के लिए उपक्रम एवं उद्योग करें (देखिए छठा प्रस्तर-लेख, गिरनार---'परत्र च स्वगा आराधयन्तु' और इसी प्रकार के शब्दों के लिए १० वां प्रस्तर-लेख)। केंबल इतना ही भावात्मक ढंग से उपस्थित किया जा सकता है।

400

ċ

# मध्यकालीन भारत की वार्मिक उदारता के स्वलम्त उदाहरण और अन्यन्न के प्रत्युदाहरण

408

है कि जीवन में मैंने इस प्रकार की घटना कहीं और नहीं सुनी। देखिए इलियट की 'हिस्ट्री आव इण्डिया' (जिल्द २, पृ० १६२-१६३)। सोमनाथ-पट्टन लेख (इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द ११, पृ० २४१) एक अत्यन्त महर्त्वपूर्ण लिखित प्रमाण है। हमंज के एक जहाज वाले व्यक्ति ने पित्रत्र सोमनाथ-पट्टन की बस्ती में एक भूमि-खण्ड खरीद लिया, वहाँ एक मस्जिद, एक घर एवं एक दूकान बनवायी। उपर्युक्त पत्रक (लेख) का तात्पर्य था उस भूमि की बिकी को स्वीकृत कर लेना, उससे प्राप्त घन का व्यय सोमनाथ के शिया नाविकों द्वारा मनाये जाने वाले विशिष्ट मुस्लिम घामिक उत्सवों में करने की व्यवस्था करना और इसकी व्यवस्था करना कि जो कुछ शेष हो वह मक्का एवं मदीना के पित्रत्र नगरों में भेज दिया जाय। इसकी तिथि चार संवतों में है, यथा रस्ल-मुहम्मद संवत् अर्थात् हिष्त्री वर्ष ६६२, विक्रम सं० १३२० (=१२६४ ई०), वलभी वर्ष ९४५ एवं सिंह संवत् १५१ (अर्थात् सम्भवतः चालुक्य सिद्धराज जयसिंह का)। दक्षिण भारत के हिन्दू राजाओं ने सीरिया के तत्कालीन ईसाइयों को बहुत-सी सुविधाएँ दे रखी थीं।

उपर्युक्त उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि मध्यकाल में भी, जब मुसलमान मारत पर आक्रमण एवं अत्याचार कर रहे थे, भारतीय राजा एवं प्रजाजन सिह्ण्यु थे। पाठक गण स्वयं सोचें कि १३ वीं शती में यदि कोई हिन्दू ईसाई या मुस्लिम देशों में किसी मन्दिर के निर्माण का साहस करता या ईसाई या मुस्लिम वर्म एवं जीवन के विषय में लिखने के लिए सामग्री एकत्र करने का साहस करता तो उसकी क्या गित होती, जब कि ११ वीं शती में अल्बब्ली बिना किसी अत्याचार या कष्ट के हिन्दू पण्डितों एवं सामान्य जनों से विश्वद सामग्री एकत्र करने में समर्थ हो सका था।

मुस्लिम बादशाह कितने असिहण्णु थे, इस विषय में विस्तार से कहने की कोई आवंश्यकता नहीं है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। हम यहाँ 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इण्डिया' की जिल्द ३ के पृष्ठों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करेंगे। फीरोज शाह तुगलक ने एक ब्राह्मण को जिन्दा जला दिया, क्योंकि उसने अपने धर्म के प्रसार की जुरत (साहस) की थी (वही, पृ० १८७); यही कृत्य सिकन्दर छोदी ने एक ब्राह्मण के साथ किया (पृ० २४६), उसने हिन्दू मन्दिरों को बहुत बड़ी संख्या में तोड़-फोड़ डाला; कश्मीर के सुल्तान सिकन्दर ने अपनी प्रजा के सामने दो विकल्प रखे: मुसलमान बनो या देश के बाहर जाओ (पृ० २८०); बंगाल के हुसेनशाह ने एक सेना नवद्वीप के विध्वंस के लिए मेजी और बहुत-से ब्राह्मणों को बलात् मुसलमान बना दिया। जहाँगीर ने अपने संस्मरण (मेम्वायर्स, ए० रोजर्स द्वारा अनुदित एवं एच्० वेवरिज द्वारा सम्पादितं, १९०९, पृ० ७२-७३) में लिखा है कि उसने गुरु अर्जुनसिंह को उनके धार्मिक कार्यकलाप के फलस्वरूप मार डाला। देखिए यदुनाथ सरकार कृत 'हिस्ट्री आव' औरंगजेव' (जिल्द ३, अध्याय ३०, पृ० २६५-२७९), जहाँ कतिपय फरमानों का उल्लेख है, जो सोधनाथ, मथरा, विश्वनाथ (बनारस, जो अब पुन: वाराणसी कहा जाने लगा है) एवं उज्जैन के मन्दिरों को तोड़ देने के लिए निकाले गये थे। और देखिए उस प्रन्य का एपेण्डिक्स ५। यहाँ, यूरोप में यहदियों पर किये गये अत्याचारों, 'इंक्वि-जिशन' द्वारा विशेषतः स्पेन एवं पोर्तुगाल में आचरित मयंकर कूर यातनाओं की ओर ध्यान ले जाने की आवश्यकता नहीं है। इन मीषण दूष्कर्मों से विश्व के इतिहास के पन्ने गन्दे हो गये हैं। यहदियों पर किये गये अत्याचारों और उत्पीडनों आदि के विषय में पढ़िए सेसिल रॉथ कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आव दि ज्यूयिश पीपुल' (मैक्मिलन एण्ड कम्पनी, १९३६), अध्याय २०-२१। दो-एक उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं। 'इन्विविज्ञान' द्वारा धर्म के कार्य या 'आँटोस-द-फा' उपस्थित किये जाते थे। सहस्रों व्यक्तियों की उपस्थिति में, उन व्यक्तियों पर, जिनके विषय में पवित्र कैथोलिक वर्मं के विरोध में सन्देह उत्पन्न हो जाता था, महादारुण यातनाएँ ढाही जाती थीं। जो प्रायश्चित्त करने के लिए मान जाते थे उनकी सम्पत्ति छीन ली जाती थी और वे बन्दीगृह में डाल दिये जाते थे, या देश-निष्कासित कर दिये जाते थे या दास बनाकर नाव खेने या युद्ध-पोत पर पतवार चलाने के लिए भेज दिये जाते थे। कुँछ लोग, जो धैर्म-

.

विरोधिता को स्वीकार नहीं करते थे और अपने दृष्टिकोण पर आरूढ रहते थे, उसी क्षण जला दिये जाते थे। राजा एवं मद्र लोग ऐसे अवसरों को अपनी उपस्थित से सुशोमित करते थे। ऐसे उत्पीडनों की उस समय विशेष रूप से व्यवस्था की जाती थी जब कि मद्र लोगों के यहाँ विवाह होते थे या राज्य करने वाले राजा को पुत्रोत्पत्ति होती थी। तीन शितयों के भीतर जब तक यह महान् दारुण धार्मिक अत्याचार-नाटक खेला जाता रहा, लगभग ३,७५,००० व्यक्ति इसकी चपेट में आये, जिनकी १/१० संख्या जीते-जी जला डाली गयी (देखिए सेसिल राथ कृत उपर्युक्त पुस्तक, १९३६, पृ० ३१२)। हेनरी सी० ली ने अपने ग्रन्थ 'सुपरिस्टिशन एण्ड फोर्स' (१८७८, पृ० ४२६-४२७) में लिखा है—'इंक्विजशन का सारा ढंग इस प्रकार का था कि दारुण एवं मयंकर कष्ट का मिलना अवश्यम्भावी था। इसकी कार्यवाहियाँ गुप्त रहा करती थीं; बन्दी को उसके अभियोगों के विषय में किसी प्रकार की जानकारी नहीं रहा करती थी और न उन साक्ष्यों को वह जान पाता था जिन पर वे (अभियोग) आघृत रहते थे। वह अपराधी मान लिया जाता था और न्यायाधीश तथाकथित अपराधी द्वारा अपने उपर थोपे हुए अपराध को स्वीकार कर लेने के लिए उस पर अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ लगा देते थे। इसको पूर्ण करने के लिए कोई भी साधन अधम एवं कूर नहीं समझा जाता था।'

गोवा में प्रोतुंगालों के शासन में हिन्दुओं की क्या स्थिति थी? इस विषय में जानकारी प्राप्त करना शिक्षाप्रंद होगा। गोवा में कुख्यात 'इंक्विजिशन' सन् १५६० ई० में स्थापित हुआ और इसने अपना दारुण, असिहष्णु एवं अमानुष कृत्य लगमग २५० वर्षों तक चलाया। जो लोग इस विषय में अभिरुचि रखते हैं, वे सन् १९२३ में पोर्तुगाली सरकार द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ 'ए इण्डिया पोर्चुगूइजा' (जिल्द २, विशेषतः गोवा हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश एण्टोनियों डे नोरुन्हा का लेख 'ओस इण्डसे डे गोवा' पठनीय है) को पढ़ सकते हैं। जे० एच० डे कुन्हा राइवरा (जो मारत में सन् १८५५ से १८७० ई० तक पोर्तुगीज गवर्नर जनरल का सेकेटरी था) द्वारा लिखित निबन्ध 'हिस्टारिकल एसे आन दि कोनकनी लैंग्वेज' का एक संक्षिप्त वक्तव्य प्रकाश डालने वाला सिद्ध होगा। उसमें इस प्रकार आया है (पोर्चुगीज माषा में)—'अब हम उन कारणों की खोज करेंगे जो पोर्तुगाली शासन में कोंकणी माषा की संस्कृति के विकास के पक्ष या विपक्ष में थे। विजय के प्रथम उत्साह में मन्दिर गिराये गथे; हिन्दू धर्म के समी प्रतीक नष्ट कर दिये गये और वे समी पुस्तकों, जो जन-माषा में लिखित थीं, जिनमें मूर्तिपूजा विषयक सिद्धान्त एवं शिक्षाएँ प्रतिपादित थीं अथवा जिनमें ऐसी बातों का सन्देह था, जला डाली गयीं। एक ऐसी इच्छा परिव्याप्त थी कि जन-संख्या का वह सम्पूणं माग, जो शी छतापूर्वक ईसाई धर्मावलम्बी न बनाया जा सके, नष्ट कर दिया जाये; यह इच्छा केवल उसी काल में नहीं थी, प्रत्युत दो शितयों के उपरान्त मी बनी रही। एक व्यक्ति ऐसा मी था जिसने प्रशासक-जैसी गम्भीरता के साथ सरकार को ऐसा परामर्श दिया कि वह वैसी ही नीति का अनुसरण करती रहे।' अस्तु,

(२) मारत से बौद्ध धर्म के विलीन होने के दूसरे प्रमुख कारण पर अब हम प्रकाश डालेंगे। सिद्धार्थ (बुद्ध) द्वारा अपनी राजकीय स्थित, युवती पत्नी, बच्चे एवं गृह का त्याग, दुःख एवं चिन्ता से मानव की मुक्ति के हेतु मार्ग दूंदने के लिए परिवाजक बन इधर-उधर भटकना, उसके उपरान्त वर्षों तक शरीर को तप से सुखाना, ध्यान के लिए सर्वथा एकान्त में चला जाना, मार (कामदेव) से उनका युद्ध एवं अन्तिम विजय, उनका ऐसा विश्वास कि मैंने मुक्ति का मार्ग ढुँढ़ लिया है, अपने द्वारा प्राप्त किये हुए सत्यों को लगभग ४५ वर्षों तक गाँव-गाँव, नगर-नगर घूम-घूम कर प्रसारित करना, यज्ञों में अबोध एवं मूक प्राणियों की बिल के विरोध में उनका अभियान, शान्ति एवं

<sup>·</sup> १६. प्रो॰ ए॰ के॰ प्रियोत्कर कृत 'वि प्रिटिंग प्रेस इन इण्डिया' (बम्बई, १९५८), पृ॰ १६१ से उद्धृत ।

सन्तोष के साथ पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर संसार से चला जाना—ऐसा था बुद्ध का महत्त्वपूर्ण एवं गरिमामय जीवन। इसके वल पर उनका अति उदात्त एवं विशिष्ट व्यक्तित्व मनुष्यों को अनायास अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। एडविन अर्नाल्ड ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'लाइट आव एशिया' की मूमिका (पृ० १३) में वुद्ध की शिक्षा के विषय में उन्मुक्त भाव से प्रशस्ति-गान किया है--- "यह श्रद्धास्पद घर्म, जिसमें सार्वमीम आशा की अमरता है, असीम प्यार की अक्षयता है, अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के विश्वास में कभी न क्षय होने वाला तत्त्व है तथा मानवीय स्वतन्त्रता (विमुक्ति) के विषय में किया गया अब तक का सब से गर्वीला वचन है।" बुद्ध द्वारा जो प्रकाश-दीप जलाया गया वह योग्य एवं सामर्थ्यवान् शिष्यों के हाथों तब तक जलता रहा जब तक छठी शती में बौद्ध धर्म अपनी महत्ता के िखर पर नहीं पहुँच गया। उस काल में एक प्रतिकिथा उठ खड़ी हुई थी। प्राचीन बौद्ध धर्म में पर्याप्त परिवर्तन हो गये थे और आदर्शों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे थे। हमने इस विषय में ऊपर देख लिया है। इस वर्म में ईश्वर के विषय में कोई स्पष्ट घारणा नहीं थी, बहुत-से ऐसे सम्प्रदाय उठ खड़े हुए जो पूर्णंतया ईश्वरवादी थे, स्त्रयं बुद्ध की पूजा की जाने लगी, और लोग उन्हें भगवान् मानने लगे, वच्चयानी तान्त्रिक सम्प्रदायों के विचित्र सिद्धान्तों एवं दुष्प्रयोगों के चंगुल में बहुत-से सम्प्रदाय पड़ गये। इसका परिणाम यह हुआ कि वौद्ध धर्म कई विरोधी रूढियों का सम्मिश्रण-सा हो गया और पारस्परिक द्रोह एवं झगड़ों से इसकी दीवारों में दरारें पड़ने लगीं। जब बुद्ध का देहावसान हो गया उसी समय सिद्धान्तों को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ, जो राजगृह में वुलायी गयी प्रथम संगीति में प्रकट हुआ, दूसरी संगीति एक सौ वर्षों के उपरान्त वेसालि (वैशाली) में हुई और तीसरी अशोक के शासन-काल में पाटलिपुत्र में हुई। परम्पराओं से यह प्रकट है कि कुल चार संगीतियाँ हुईं जिनमें शास्त्रीय मापदण्ड निर्घारित किये गये, किन्तु अशोक (लगमग २५० ई० पू०) के पूर्व की कोई पालि पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। इन विवादों एवं माँति-माँति के उत्तरों-प्रति-उत्तरों के कारण तथा उनके फलस्वरूप जो घर्म-भेदमूलक शाखा-प्रति-शाखाएँ उत्पन्न हुईं उनसे बौद्ध धर्म की हानि हुई। श्री एन० जे० ओ' कोन्नोर ने इस कारण को उन चार प्रमुख कारणों में प्रधान माना है जिनके फलस्वरूप वौद्ध घर्म का ह्रास होता चैला गया और अन्त में यह एक दिन भारत से विलीन हो गया।

(३) सातवीं शती का अन्त होते-होते मारत कई छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँट गया, जो सदा एक दूसरे से युद्ध करते रहते थे। बौद्ध घर्म को अशोक, किनष्क एवं हर्ष जैसे समर्थ, प्रमु-सत्तासम्पन्न, उत्साही एवं प्रजावत्सल सम्राटों का आश्रय नहीं प्राप्त हो सका। अब उसे राजकीय आश्रय मिलना असम्मव था, हाँ, बंगाल के पाल-वंशीय राजाओं से कुछ वर्षों तक स्नेह अवश्य मिला, किन्तु बौद्ध घर्म अब हास की ओर ही उन्मुख हो गया था।

(४) बौद्ध घर्म के महान् सिद्धान्तों के योग्यतम एवं उद्मट व्याख्यातागण अपने घर्म के प्रचारार्थ इस देश को छोड़कर अन्य देशों में चले गये। डा० राघाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया एण्ड चाइना' में ऐसे २४ महत्त्वपूर्ण मारतीय विद्वानों का उल्लेख किया है जो बुद्ध के उपदेशों के प्रचारार्थ चीन में तीसरी शती से ९७३ ई० तक जाते रहे (पृ० २७); उन्होंने कुछ ऐसे चीनी विद्वानों का उल्लेख किया है जो बौद्ध घर्म-सम्बन्धी पवित्र स्थलों के दर्शनार्थ एवं बौद्ध घर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए भारत में आते रहे हैं (पृ० २७-२८)।

(५) गौतम बुद्ध द्वारा स्थापित एवं प्रकाशित उच्च नैतिक आदशों का पालन उनके अधिकांश अनुयायियों को, विशेषतः उनके व्यक्तिगत उदाहरणों के अन्तिहित हो जाने के उपरान्त, कष्टकारी लगा होगा। महापरिनिब्बान-सुत्त (सैंकेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द ११, पृ० १२७) में आया है कि उस सुभद्द ने, जो बुढ़ौती में संघ में सिम्मिलित हुआ था, बुद्ध के निर्वाण के उपरान्त अपने उन साथियों से कहा जो बहुत दुखी थे— "रोओ नहीं, विलाप न करो। हम महान् श्रमण से छुटकारा पा गये। 'यह तुम्हारे योग्य नहीं है, यह तुम्हें शोमा नहीं देता' इस प्रकार कहे जाने पूर

हम कोघ में आ जाया करते थे; अब हम मनोनुकूल करेंगे और जो करना नहीं चाहते हैं वह नहीं करेंगे।" सामान्य जन एक ही प्रकार के उपदेशों को सदैव नहीं पसन्द करते, यथा, इस प्रकार के विचार कि क्लेश ही मनुष्यों के भाग्य में है, ने रस मठ-जीवन, मनोमावों के प्रति विराग तथा निर्वाणप्राप्ति का वचन, जो कदाचित् ही सुन्दर ढंग से व्याख्यायित हो सका हो। निर्वाण का अर्थ सम्मवतः बुद्ध के मतानुसार था 'अहंता एवं कामना का नाश, एक ऐसी आनन्द-स्थिति जो ज्ञानातीत थी; न कि सम्पूर्ण नाश या समाप्त हो जाना।' किन्तु अधिकांश लोग इस अन्तिम अर्थ को ही निर्वाण मानते थे। बुद्ध व्यर्थं की कल्पनात्मक स्थिति के प्रतिकूल थे, विशेषतः उन वातों के विषय में जो उनके विशुद्ध नैतिक प्रयत्न एवं उद्देश्य के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं और उनसे मेल नहीं रखती थीं। बहुत-से दार्शनिक एवं कल्पनात्मक प्रश्न, यथा—यह विश्व नित्य है या नहीं, यह अनन्त है या अन्तयुक्त, आत्मा वही है जो देह है या देह से मिन्न है, तथागत मृत्यु के उपरान्त रहते हैं या नहीं आदि प्रश्न बुद्ध द्वारा अनुत्तरित ही रहे (देखिए मज्झिमनिकाय, ६३, ट्रेंकनर संस्करण, जिल्द १)। घीरे-घीरे मिक्षुओं एवं मिक्षुकियों के मठ प्रमादों, विषयों एवं अनैतिक आचरणों के अड्डे हो गये और वज्रयानी तन्त्रवादियों के समान पथम्प्रष्ट लोगों के दुष्कर्मों एवं व्यभिचारों के केन्द्र बन गये। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने, जो किसी समय स्वयं बौद्ध मिक्षु थे, अपने निबन्ध 'वज्रयान एण्ड दि ८४ सिद्धज' (जर्नल, एशियाटिक० जिल्द २२५, १९३४, पृ० २०९-२३०) में लिखा है—"मठ एवं मन्दिर लोगों द्वारा पवित्र मन से दिये गये धन से परिपूर्ण थे। मिक्षु का जीवन साधारण उपासक की अपेक्षा अधिक सुखमय था। अनुशासन ढीला पड़ गया और अयोग्य व्यक्ति संघ में प्रविष्ट हो गये। " सुन्दर चित्रकारियों, एकान्त मूमि, देवियों एवं देवताओं के परिवेष में जो उन्मुक्त जीवन प्रवाहित होता चला आ रहा था, इससे लोगों का ध्यान विषय-वासना, भोग-लिप्सा, मैथुन की ओर अवश्य आ गया होगा। कथावत्यु (२३।१) से हमें ज्ञात है कि अन्धक-शाखा किसी विशिष्ट उंदेश्य के लिए मैथुन की अनुमति देती थी; यह रहस्यवादी सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गया था। १८ दक्षिण में आकर, मन्त्रों के प्रयोग, मानस आचरणों एवं इन्द्रियों के आनन्द के लिए कुछ विशिष्ट कियाओं के समावेश से वज्रयान पूर्ण हो गया।"

(६) गौतम (९।४७, ६८, ७३), मनृ (४।१७६, २०६, १०।६३) एवं याज्ञवंल्क्य (१।१५६, ३।३१२-३१३) जैसी स्मृतियों ने वेद एवं ब्राह्मण को सम्मान देने के साथ-साथ चारों वर्णों के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, दान, दम, दया, शान्ति, ब्रह्मचर्यं तथा अन्य गुणों पर बल दिया है, जैसा कि बुद्ध एवं अन्य प्रारम्भिक बौद्ध

१७. बा० ए० एस० अल्तेकर (१७ वी अखिल भारतीय ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, अहमदाबाद, १९५३, पृ० २४३-२४६) धारा आचारसार (नवागन्तुक बौढ़ों के लिए प्रतिपादित नियम) की अमणेर-टीका पर जो निबन्ध लिखा गया है उसमें भत्संनाओं का (जिनमें कुछ पृ० २४५ पर लिखित हैं) उल्लेख हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि भिक्षुओं की एक लम्बी संख्या ऐसी होती थी जिससे बौढ़ धमं को कुख्याति मिलती थी। 'मिलिन्द-प्रश्न' (संकेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्ब ३५, पृ० ४९-५०) में एक प्रश्न है—'लोगों ने संघ की शरण क्यों ली है ?' इसके 'उत्तर में नागसेन ने महत्त्वपूर्ण उत्तर विया है कि कुछ लोगों ने इसलिए संघ की शरण ली है कि उनके दुःख का अन्त हो जाये और वे पुनः दुःख में न पढ़ें, 'बिना विश्व से लगाव रखे पूर्णरूपेण चला जाना हमारा सब से बड़ा उद्देश्य हैं'; ... कुछ लोगों ने संसार का त्याग राजाओं के अत्याचार के भय से किया है; कुछ लोग लूटे जाने के भय से यहां आ गये हैं; कुछ ऋणों से परेशान हो यहां चले आये हैं और कुछ लोग केवल जीविका साधने के लिए यहां प्रविद्ध हो गये हैं।

१८. एकाविष्पायो मेथुनो घम्मो पटिसेवित्तव्यो ति । आमन्ता । कथावत्यु (२३।१) ।

ग्रन्थों ने अपने अनुयायियों के लिए निर्देश किया है। १९ मनु (५१४५) एवं विष्णुघर्मसूत्र (५१।६८) में आया है— 'वह व्यक्ति जो केवल अपने आनन्द के लिए अहानिकर पशुओं (यथा हरिण) को मारता है, वह जीते-जी या मृत्यु के उपरान्त न तो सुख-वृद्धि कर पाता और न चैन से पलता ही है।' ऐसा ही वचन घम्मपद (१३१) में भी आया है। यहाँ तक कि ऋ (१०।८५।१) में आया है— यह पृथिवी सत्य द्वारा आघृत है, आकाश सूर्य द्वारा ठहरा हुआ है।' मुण्डकोपनिषद् (३।१।६) में आया है—'केवल सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं।'

- (७) उन ब्राह्मणों का शक्तिशाली विश्वास (धर्म) एवं जागरूकता, जिन्होंने वेद, उपनिषदों के दर्शन, मध्यम मार्ग की यौगिक क्रियाओं (यथा--गीता में ६।१५-१७), विश्वास एवं मक्ति से सब के लिए मुक्ति-प्राप्ति के सिद्धान्त आदि को एक में बाँघ दिया और जो सब के मन में अटल विराजमान था।
- (८) वौद्ध घर्म के वेग को रोकने के हेतु अपने घार्मिक विश्वासों एवं प्रयोगों में परिवर्तन करने के लिए एवं हिन्दू धर्म को अधिक जनप्रिय करने के लिए ब्राह्मणों एवं समाज के अन्य नेताओं ने ईसा के पूर्व एवं उपरान्त कई शतियों तक आदान-प्रदान की विलक्षण नीति अपना ली थ्री। पुराने वैदिक देव (इन्द्र, वरुण आदि) पृष्ठमूमि में पड़ गये, बहुत-से वैदिक यज्ञ छोड़ं दिये गये, देवी, गणेश एवं मातृका आदि देव-देवियाँ प्रसिद्धि को प्राप्त हो गयीं, वैदिक मन्त्रों के साथ पौराणिक मन्त्रों का प्रयोग होगे लगा। वराहमिहिर (छठी शती का पूर्वार्घ) ने वैदिक मन्त्रों के साथ साधारण मन्त्रों का प्रयोग किया है (बृ० सं० ४७।५५-७०, ४७।७१)। यहाँ तक कि अपरार्क (पृ० १४-१५) ने देवपूजा में नर्रासहपुराण एवं देवप्रतिमा-प्रतिष्ठा में पौराणिक विधि की बात उठायी है। इसके अतिरिक्त अहिंसा, दान, तीर्थयात्रा एवं त्रतों पर बल दिया गया और यहाँ तक कह दिया गया कि अन्तिम दो (यात्रा, व्रत) वैदिक यज्ञों से अपेक्षाकृत अधिक लामकर हैं। इस प्रकार के परिवर्तनों ने बौद्ध धर्म के प्रमाव को अवश्य कम् कर दिया। पौराणिक गाथाएँ जातक गाथाओं से होड़ लगाने लगीं, देवों एवं अवतारों से सम्बन्धित कथाएँ लोगों के मनों को आकृष्ट करने लगीं। वाण (सातवीं शती का पूर्वार्घ) की कादम्बरी में आया है कि उज्जयिनी के लोग महामारत, पुराणों एवं रामायण के अनुरागी थे। श्री ओ' कोन्नोर ने इसे बौद्ध धर्म के हास के चार प्रमुख कारणों में अन्तिम कारण माना है।
- (९) सातवीं शती से बुद्ध हिन्दुओं द्वारा विष्णु के एक अवतार कहे जाने लगे और दसवीं शती तक वे सम्पूर्ण भारत में इस प्रकार परिज्ञात हो गये।
- १९. ऑह्रसा सत्यमस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं वर्मं चातुर्वर्ण्येऽत्रवीत्मनुः।। मन् (१०।६४); अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रहः। वानं वमो वया क्षान्तिः सर्वेषां वर्मसाधनम्।। याज्ञ०(१।२२); अयाष्टा-वात्मगुणाः। दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहेति। यस्पैते चत्वारिशत्संस्कारा नि चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं गच्छति । गौतमवर्मसूत्र (८।२३-२५) । मत्स्य० (५२।८-१०) वेद एवं आचार की ओर निर्देश करके इन आठ गुणों को आत्मगुण कहता है-- वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारव्येव तिद्ववाम् । अष्टावात्मगुणास्तिस्मन् प्रयानत्वेन संस्थिताः ॥' मत्स्य० (५२।७-८) । अत्रिस्मृति (इलोक ३४-४१) ने भी इन्हीं आठ का उल्लेख किया है और इनकी व्याख्या की है, तथा हरदत्त ने (गौतम की व्याख्या में) इन आठ पुणों की परिभाषा में आठ क्लोक उद्भृत किये हैं। घम्मपद (क्लोक १३१) में आया है—'सुखुकामानि भूतानि यो बच्डेन विहिसति। अत्तनो सुलमेसानो पेच्च सो न लमते सुलम्।।'

### धर्मशास्त्र का इतिहास

408

(१०) मुसलमानी कट्टरता एवं उनके भारतीय आक्रमण ने बौद्ध घर्म को अन्तिम घनका दिया। लगभग १२०० ई० में एवं उसके उपरान्त नालन्दा एवं विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालय नष्ट कर डाले गये और अधिक संख्या में निर्दयतापूर्वक मिक्षु मार डाले गये। जो लोग इस प्रकार के संहार से बच गये वे तिब्बत या नेपाल में भाग गये। देखिए एच० एम० इलियट कृत 'हिस्ट्री आव इण्डिया' (जिल्द २, पृ० ३०६) जहाँ बिस्तियार खिलजी के अत्याचार का वर्णन है, जो तबाकत-ए-नासिरी से लिया गया है। उसमें लिखा है कि बिस्तायार खिलजी अपनी सेना लेकर विहार गया और वहाँ लूटपाट की, उसके हाथ में प्रमूत सम्पत्ति पड़ी, वहाँ के निवासी अधिकतर ब्राह्मण थे, जिनके सिर मुण्डित थे, वे मार डाले गये, बहुत-सी पुस्तकें पायी गयीं और ऐसा माना गया कि सम्पूर्ण स्थान एक अध्ययन का नगर (मद्रसा अर्थात् मदरसा) था। इस वर्णन से प्रकट होता है कि मुण्डित-सिर ब्राह्मण बौद्ध मिक्षु थे।

ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए कि बौद्ध मिक्षुओं ने सम्पत्ति का सम्पूर्ण त्याग कर दिया था। देखिए इण्डियन ऐण्टीक्वेरी (जिल्द ७, पृ० २५४-२५६, शिलालेख २ एवं ९) जहाँ मिक्षु एवं मिक्षुणी दाता के रूप में उल्लिखित हैं, और देखिए किन्चम का 'मिलसा स्तूप' (पृ० २३५-२३६) जहाँ बहुत-से मिक्षु एवं कुछ मिक्षुणियाँ दाता के रूप में उल्लिखित हैं। आरम्भिक बौद्ध धर्म का साधारण जनता पर जो आकर्षण था, उसका कारण इसके द्वारा प्रचारित

आत्मत्याग, अनुशासन, सेवा एवं बलिदान की मावना थी।

जब मुसलमानी आक्रमणों से मिक्षुओं का विनाश हो गया तो सामान्य जनता किंकर्तव्य-विमूढ हो गयी, वह या तो मुस्लिन हो गयी या हिन्दुओं में समा गयी। यह पूर्व ही कहा जा चुका है कि बुद्ध स्त्रियों को संघ में नहीं रखना चाहते थे, किन्तु अपने परम मक्त आनन्द के बार-बार कहने पर वे झुक गये और मविष्यवाणी की कि यह पवित्र घम जो एक सहस्र वर्षों तक चलने वाला था अब उतने वर्षों तक नहीं चलेगा, केवल ५०० वर्षों तक ही रह सकेगा। देखि कुल्लवग्ग (सैकेड बुक आव दि ईस्ट, जिल्द २२, पृ० ३२५)।

मिक्षुओं के लिए पातिमोक्ख की २२७ घाराएँ थीं जो मास में दो बार चार मिक्षुओं की समा में सुनायी जाती थीं और नियमों के उल्लंघन को वहाँ स्वीकार करना पड़ता था। यदि चुल्लवग्ग (सै० बु० ई०, २०, पृ० ३३०-३४०) को पढ़ा जाय तो पता चलेगा कि जब बहुत-से मिक्षु एवं मिक्षुणियाँ मठों में एकत्र होते थे तो शालीनता एवं नैतिकता का सामान्य पालन कुछ लोगों के लिए टूट-सा जाता था। प्रारम्म में मिक्षुओं द्वारा मिक्षुणियों के समक्ष पातिमोक्ख सुनाया जाता था और मिक्षुणियाँ अपने दोषों को मिक्षुओं के समक्ष स्वीकार करती थीं, किन्तु आगे चलकर इस विधि में परिवर्तन हुआ और ऐसा नियम बना कि केवल मिक्षुणियाँ ही अपने लिए ऐसा करेंगी। पृ० ३३३ में आया है कि मिक्षुणियाँ आपस में झगड़ पड़ती थीं और मुक्केबाजी करने लगती थीं। पृ० ३३५ में ऐसा उल्लेख है कि कुछ मिक्षु मिक्षुणियों पर गन्दा पानी छोड़ देते थे और कमी-कमी अपने अंगों एवं जाँघों को मिक्षुणियों के समक्ष खोल देते थे।

प्रस्तुत लेखक ने ऊपर बौद्ध धर्म के विलोप के मुख्य कारणों का जो लेखा-जोखा उपस्थित किया है वह अधिकांश लोगों के मतों के अनुसार ही है। विभिन्न लेखकों ने अपनी रुचि के अनुसार इनमें कुछ को अति महत्त्वपूर्ण कहा है। ये कारण भारत में बौद्ध धर्म के नाश के मूल में थे, किन्तु प्रस्तुत लेखक के मत से इसका प्रमुख कारण यह था कि मारतीय समाज की अधिक संख्या ने यह अनुमव किया कि बौद्ध धर्म के लेखकों द्वारा जो यह कहा गया और बल दिया गया कि यह संसार दुःख से परिपूर्ण है, सभी कामनाओं को त्याग देना चाहिए और विहारवासी (परिव्राजकीय) जीवन विताना चाहिए, वह सामान्य लोगों के लिए बहुत असद्ध था, और आश्रमों पर आधारित हिन्दू जीवन ने, जिसमें कर्तव्यों एवं अधिकारों की विशिष्ट व्याख्या थी, विशेषतः गृहस्थाश्रम पर जो इतना बल दिया गया था, लोगों के समक्ष कौटुम्बिक जीवन का ऐसा आदर्श रखा जो अति नियमानुकूल एवं अनुशासित था और उसके द्वारा परमोज्ब

सुख की उपलब्धि सम्भव थी। कामनाओं के त्याग की माक्ना ने मानव समाज की स्थिरता एवं लगातार चलते रहने की प्रक्रिया पर प्रमाव दाला और लोगों में कमशः शारीरिक एवं मानसिक शक्ति का हास दृष्टिगोचर होमे लगा तथा प्रमाद, अनैतिकता एवं जातिगत आत्महनन की मावना घर करने लगी। मनु (३।७७-७८, ६।८९-९०), विस्कृत धर्मसूत्र (८।१४-१७), विष्णुधमेसूत्र (५९।२९), दक्ष (२।५७-६०) तथा अन्य ऋषियों एवं लेखकों ने गृहस्य आश्रम को सर्वश्रेष्ट माना है। महाभारत (शान्ति० २७०।६-११) एवं रामायण (अयोध्या० १०६।२) एवं पुराणों ने भी यही बात कही है।

केवेल घर्मशास्त्रों ने ही नहीं, प्रत्युत कालिदास जैसे किवयों ने भी समाज में गृहस्थाश्रम को सर्वोच्च महत्त्व दिया है। रघुवंश (५।१०) में राजा रघु ने एक विद्वान् ब्राह्मण विद्यार्थी से कहा है—'अब यही समय है कि आप दूसरे आश्रम में प्रवेश करें, जो अन्य आश्रमों (में रहने वाले व्यक्तियों) के लिए उपयोगी है। शाकुन्तल (१) में भी यही बात पायी जाती है।

जब बुद्ध परमात्मा के रूप में बौद्धों द्वारा पूजित होने लगे, जब बौद्धों ने इसी जीवन में स्वार्थमरी कामनाओं के त्याग एवं अष्टांगिक मार्ग के अनुसरण द्वारा साध्य निर्वाण-प्राप्ति के मौलिक सिद्धान्त का बहिष्कार कर दिया, जब बौद्धों ने मिक्त के सिद्धान्त को अपना लिया और उन्होंने सुकुत्यों के फलस्वरूप बोधिसत्त्वों के सतत विकास के सिद्धान्त को अपना लिया, तब हिन्दू एवं बौद्ध के बीच की दूरी कम हो गयी और कमशः समाप्त-सी हो गयी। इसी मौलि हिसद्धान्त से हट जाने के कारण बौद्ध धर्म भारत से तिरोहित हो गया। ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म को बहुत विस्तृत कर दिया, उन्होंने आध्यमिक आदर्शवाद, बहुत-से देवों की पूजा, वैदिक तथा अन्य धार्मिक कियाओं (यथा कर्ममार्ग) को उच्चत आध्यात्मिक जीवन के लिए उचित उहराया और उन्हें मान्यता दी। हिन्दूवाद की अन्तिम विजय यह व्यक्त करती है कि इसके धर्म एवं दर्शन में शक्ति एवं विशालता है, जो कि बौद्ध धर्म की एकपक्षता एवं उसके कितपय रूपों में नहीं पायी जाती थी और न उसमें मानव-मन की पिपासा को शान्त करने की शक्ति थी, क्योंकि वह (बौद्ध धर्म) इन बातों में मूक था।

पुराणों एवं घमंशास्त्रों ने अहिंसा पर इतना वल दिया कि मारत के लाखों व्यक्ति कट्टर निरामिष्रमोजी हो गये?, कट्टर निरामिषता न-केवल ब्राह्मणों में ही पायी गयी, प्रत्युत वैश्यों एवं शूद्रों में भी फैल गयी, जब कि आज के कित्पय बौद्ध देशों में बौद्ध लोग निरामिषमोजी नहीं हैं। बौद्ध धर्म ने जो आदर्श उपस्थित किये वे सभी देशों के बौद्धों के लिए आज प्रयास के विषय (कष्टसाध्य) मात्र हैं। बुद्ध ने पशु-यज्ञों के विरोध में अभियान किया, अशोक ने पशु-पक्षी के प्रति की जाने वाली निर्ममता के विरोध में नियम एवं अनुशासन घोषित किये, तब भी यह देखने में आया कि मारतीय राजाओं ने ईसा के पूर्व एवं उपरान्त कई शितयों तक बैदिक यज्ञ (पशु-यज्ञ भी) किये। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—(१) सेनापित पुष्यमित्र (लगभग १५० ई० पू०) ने दो अश्वमेघ यज्ञ किये (एपि० इण्डिका, जिल्द २२, पृ० ५४-५८), हरिवंश (३।२।३५) में आया है कि सेनानी काश्यप-द्विज ने कलियुग में अश्वमेघ यज्ञ किया, कालिदास के मालविकाग्निमित्र (अंक ५) में राजसूय यज्ञ किये जाने का उल्लेख है।(२)कॉलग के जैन राजा खारवेल ने अपने शासन के ६ठे वर्ष में राजसूय यज्ञ किये (एपि० इण्डि०, जिल्द २०, पृ० ७९)। (३) मारशिव वंश के मवनाग ने (लगभग २०० ई०) दस अश्वमेघ यज्ञ किये (गुप्त इस्क्रिप्शंस, सं० ५५, सं० २३६-२३७; वाकाटक रुद्धसेन द्वितीय की धमंपत्नी प्रमावती गुप्ता के लेख में भी इसका उल्लेख है)। (४) वाकाटक सम्राट् प्रवरसेन प्रथम (लगभग २५० ई०) मवनाग का दौहित्र एवं चार अश्वमेघों का सम्मदनकर्ता कहा गया है (एपि० इण्डिका, जिल्द १५; पृ० ३९)। (५) गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त (लगभग ३२५-३७० ई०) बहुत काल से छूट हुए अश्वमेघ को पुनः करने वाला कहा गया है (देखिए बिल्सद प्रस्तर-लेख, गुप्त इस्क्रियांस, सं० १०, पृ० ४२, स्कन्त्यांस, सं० विहार स्तम्म-लेख, वही, संख्या

१२, पृ० ५१)। (६) पल्लवराज शिवस्कन्दवर्मा (लगमग ३००-३५० ई०) को अग्निष्टोम, वाजपेय एवं अश्वमेघ करने वाला कहा गया है (एपि० इं०, जिल्द १, पृ० २)। (७) पल्लवराज सिंहवर्मा मी अश्वमेघकर्ता कहा गया है (एपि० इं०, जिल्द ८, पृ० १५९)। (८) चालुक्यराज पुलकेशी प्रथम (लगमग ५७० ई०) ने अश्वमेघ यज्ञ किया (ऐहोल शिलालेख, एपि० इं०, जिल्द ६, पृ० १)। (९) चालुक्यराज पुलकेशी द्वितीय ने भी अश्वमेघ यज्ञ किया (वही, जिल्द ६, पृ० १, जिल्द ९, पृ० ९८)। (१०) विष्णुकुण्डी माघववर्मा (वाकाटक कुल के एक सम्बन्धी) ने ११ अश्वमेघ, एक सहस्र अग्निष्टोम, पौण्डरीक, पुरुषमेघ, वाजपेय, षोडशी एवं राजसूय यज्ञ (लगमग ७ वीं या ८ वीं शती में) किये। यह सम्मव है कि यह मात्र गर्व का द्योतक (अत्युक्ति) हो।

यह द्रष्टव्य है कि विद्वान् ब्राह्मण भी कभी-कभी विस्तार के साथ वैदिक यज्ञ करते थे। उदाहरणार्थ, भवभूति से पहले की पाँचवीं पीढ़ी में दक्षिणापथ के पद्मपुर में उनके पूर्व-पुरुष ने वाजपेय यज्ञ किया था। वाजपेय में १७ संख्या के अनेक वर्ग होते थे और उसमें १७ पशुओं की बलि होती. थी। भवभूति ८ वीं शती के पूर्वार्ध में हुए थे अतः उनसे पूर्व की पाँचवीं पीढ़ी में लगभग सौ वर्ष पूर्व अर्थात् ७ वीं शती के पूर्वार्ध में उनके पूर्व-पुरुष ने वाजपेय यज्ञ किया था।

आजकल बुद्ध और उनके सिद्धान्तों की प्रशंसा करने का एक फैशन (परिपाटी) हो गया है और साथ-ही-साथ जहाँ बौद्ध घर्म की प्रशंसा में लोंग आकाश तक स्वर-गुंजार करते हैं वहीं हिन्दू घर्म की खिल्ली भी उड़ायी जाती है। बुद्ध के मौलिक सिद्धान्तों एवं हिन्दू समाज के वर्तमान व्यवहारों तथा सीमाओं की जो तुलना की जाती है वह गहित है। प्रस्तुत लेखक इस प्रवृत्ति का विरोघी है। यदि तुलना करनी ही है तो वह बौद्ध धर्म के पश्चात्कालीन रूपों एवं वर्तमान बौद्ध व्यवहारों को एक ओर रखकर तथा हिन्दू घर्म के आज के रूपों एवं व्यवहारों को दूसरीं ओर रखकर की जानी चाहिए। उपनिषदों का दर्शन गौतम बुद्ध के दर्शन की अपेक्षा अधिक स्पष्ट (परिमार्जित) था; उन्होंने अपने दर्शने को उपनिषदों के दर्शन पर ही आघारित किया। यदि हिन्दू धर्म कालान्तर में ह्रास को प्राप्त हो गया और उसने बुरी प्रवृत्तियाँ अभिव्यंजित कीं, तो वही स्थिति या उससे भी गयी वीती स्थिति थी पश्चात्कालीन बौद्ध धर्म की। जिस बौद्ध घर्म ने हमें वह गद्र बुद्ध दिया जो मानव था, किन्तु वह आगे चलकर देवता हो गया और उसकी प्रतिमाओं की पूजा होने लगी और लोग उसे एवं उसके धर्म को लेकर इतने उन्मत्त हो गये कि वज्रयान जैसी महाविकृत वृत्तियों को फूलने-फलने का अवसर प्राप्त हो गया। आज के अर्थशास्त्रियों ने बौद्ध घर्म के बारे में जो कुछ कहा है उसके प्रतिकूल कथन में प्रस्तुत लेखक स्वामी विवेकानन्द की उक्तियाँ उद्धृत करना चाहता है, जो पर्याप्त शक्तिशाली एवं न्यायपूर्ण हैं (देखिए 'दि सेजेज आब इण्डिया', कम्पलीट वर्बस, जिल्द ३, पु० २४८-२६८, ७ वाँ संस्करण, १९५३, मायावती, अल्मींडा) — "आरम्भिक बौद्धों ने पशुओं के वध के विरोध में आक्रोश प्रकट किया और वेदों के यज्ञों की मत्संना की; और ये यज्ञ प्रत्येक घर में होते थे...। इन यज्ञों की परिसमाप्ति हुई और उनके स्थान पर गननचुम्बी मन्दिरों, विशाल उत्सवों एवं मड़कीले पूरोहितों या अन्य उन सभी बातों को, जो आधुनिक समय में दीख रही हैं, खुलकर चमकने का अवसर प्राप्त हो गया। जब.मैं आज के लोगों द्वारा लिखित ग्रन्थों को पढ़ता हूँ तो हँसी आती है, ैंउन्हें यह जानना चाहिए कि बुद्ध ब्राह्मणवादी मुतिपूजा के नाशक थे। वे यह नहीं जानते कि बौद्ध घर्म ने मारत में ब्राह्मणवाद एवं मूर्तिपूजा को उत्पन्न किया...। इस प्रकार पशुओं के प्रति दया का उपदेश देने पर भी, उदात्त नैतिक धर्म के रहते हुए भी, आत्मा की नित्यता या अनित्यता के विषय में वाद-प्रति-वाद होने पर भी, बौद्ध धर्म का सम्पूर्ण भवन खण्ड-खण्ड होकर ध्वस्त हो गया और वह ध्वंस वास्तव में महादारुण था। क्योंकि जुगुप्सित उत्सव, अत्यन्त अश्लील पुस्तकें तथा धर्म के नाम पर अत्यन्त पशुवतु जो रूप सामने आये वे सभी इस भ्रष्टता के परिणाम थे।"

# धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-४

### [अनुक्रमणिका]

(पृ० १ से ५०८ तक)

37 अंकपर्याय ३३६, ३३७ अगस्त्यसंहिता ३४, ३६ अग्नि ७, ७२ अग्निपुराण १२, १३, १६, १६, २२, ३८, ४३, ४७, ६०, ६२, ८४, ८४. ३४२, ४१२, ४३४ अग्न्याधेय २६१ अघा 249 अघोरचतुर्दशी १८ अचला सप्तमी 85 अहाडा 03 अतिविजया-एकादशी ६८ अतिवेध ४७ ६, ७, १४, २४, २६, ७२, २३८, २४६, ३४३, ३४६, ३४७

अतिथि-सत्कार 883 अद्भुत शान्ति ३४६ अद्भूतसागर २६२, ३५६, ३६२ अधिक मास २४६, ३२२, ३२३, ३२४ अधिसीम कृष्ण ३६३, ३६४ अन ङ्ग व योदशी अनङ्गपवित्रारोपण ६६ अनन्तचतुर्दशी 33 ,53 अनन्दानवमी अनफा २८८ अनुमति २४, २६ अनुराधा 59 अनुवत्सर २४७

अनुशासनपर्व १०, ४२, ४३

अन्तर्दशा 935 अन्धाक्ष २७६ अन्ध्क २३ अन्नकूट 33,00 अपचय २८५ अपराजिता-पूजा ७०, ७१, १०० ३०, ४१०, ४१८, ४८४, ४०४ अपरार्क अपामार्ग ७३, ७४ अभिजित् ८१, २६८ अभिरूपपति-व्रत १०० अम्यंग-स्नान ७५, ७६ अमरकोश ११, ३४, २४३, ३८७, ३८८, ४५३ अमान्त अमावस्या. २४, ७६, 900 अमुक्ताभरण-सप्तमी १०० अयन 57, 58 अयन-संक्रान्ति 50, 53, 909 अयनांश ३४० अयाचित भोजन ३६, ४३, १०१ अरण्यद्वादशी 909 अरविन्द घोष ४७७, ४७८, ४८९ अरन्धनाष्टमी 909 अरुणोदय-वेघ 80 अरुन्धती ६9, 909 यर्क-वत 909 अर्काष्टमी १०१ अर्घ 909 अर्जुन ४२, ६६, ३२५ अर्जनक ५४

## ५१० • धर्मशास्त्र का इतिहास

अर्जुनी २४१ २४३ अर्थशास्त अली हिस्ट्री बॉव इण्डिया ५०० अलबरूनी २४६, २६०, ३१७, ३२६, ३८२, ४१० अल्लाडनाय २३ अवतार-विवेचन ४५२ अवमदिन १०२ अविघ्नविनायक १०२ अवियोगवत १६, १०२ अशून्यवत १०३ अशोक-कलिकाभक्षण १०३ अशोक २४०, १०३, ४६६, ४६८ अश्मन्तक वृक्ष ७१ अश्वत्य ७२, १०४ अश्वदीक्षा १०४ बरिवनी ५१ अष्टकवर्ग २६१ मब्दका २६ असिंघारावत १०४ अहर्गण २५६ बह्त्याकामधेनु २३, ४८, ६० अहिंसा ४५०, ०५१, ४५२. अहिर्ब्डन्यसंहिता ४५५ बहिबँ धनम्नान १०५ अक्षरारम्भ ७० मित ६१, ६१, ६४ बितसंहिता ४७४ आ आंगिरस ५३ आकामावे ५३ वाग्रयण ७५ आग्रयणेष्टि ५० **बाज्यकम्बलविधि** 904 बायवंण-ज्योतिष २७, २४३, २६४, २६८, २६७ जायवंण-परिशिष्ट ३६२ वादित्यपुराण २०, ७७, १०६, ४१२ बादित्यमण्डल-विधिः १०६

बादित्यसूरि २३ आदित्यहृदय-विधि '१०६ आदिपुराण ४१२ आदेश ४ आनन्तयंत्रत १०७ आनन्दवन यति ३४ आनन्दसफलसप्तमी १०७ आपस्तम्बगृह्यसूत 90 १०, ११, १६, २६, ४३, ६३, २४३, आपस्तम्ब धर्मसूत्र 384 आपस्तम्बश्रीतसूत १०, ५० आप्रोक्लिम २५४ £3 वाम-श्राद आमिक्षा ६ आम्रपुष्पभक्षण १०७ बायुःसंक्रान्तित्रत १०८ आर० सी० मित्र, डॉ० X3X बार० जी० भण्डारकर XX आर० सी० हजा, प्रो० ३८६, ४०५, ४११ आरोग्यवत १०५ आर्कटिक होम इन दि वेदाज बार्दा ६१, १०६, २४४ आद्रीभिषेक १०८ आर्यभट ३३४, ३३५ आयंसिद्धान्त ३१४ आलेख्यसर्पपञ्चमी १०८ आशादशमी १०५ आश्रेषा २५५ आश्लेषा ८१, २४४ आश्वयुजी ७८ आश्वलायनगृह्यसूत १०, ५२ **आश्वलायनश्रीतसूत्र** आहिताग्नि 39 आज्ञासंक्रान्ति १०५ इंस्टीच्यूट जर्नल ७३ 'इण्टरप्रिटेशंस ऑव ड्रीम्स' ३६३

अनुक्रमिका • ५११

इण्डियन एण्टीक्वेरी ७८, ६३ इण्डियन ऐफिसेरिस 33 इण्डियन ऐस्ट्रानॉमी, ऐस्ट्रालॉजी एण्ड मैथमैटिक्स २४६ इण्डियन मेट्रालॉजी २४६ इण्डियन सर्पेण्ट लोर, ५२ इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटंरली ६९ इण्डिया २४६ इण्डिया एण्ड चाइना ५०३ इदावत्सर २४७ इंन्क्विजिशन ५०१, ५०२ इन्द्र ४३, ६१, १०१ इन्द्रद्युम्न ६० इन्द्रध्वज-उत्यानोत्सव १०६ इन्द्राणी ५३ इष्टजाति-अवाप्ति १०६ इसैआह ११ ई इंजिप्ट ६१ ईंशानसंहिता ८६ इंश्वरगणगौरी-व्रत 309 इंश्वर-व्रत 990 990

उग्र-नक्षत उत्तमभतृ प्राप्ति ११० उत्तरायण ८०, ११० उत्यापन-एकादशी ११० उत्पत्त्येकादशी ११० उत्पात ३५०,३५१ उत्पल २७४, २७८, २८२ उत्सर्जन 990 'उदगयन' ५४ उदकशान्ति ३६३ उद्यापन ५७, ११० उद्योग-पर्व १० उद्वाहतत्त्व 200 उन्मीलनी ४८, ११० उपश्रुति ३६१, ३७०

उपाकमं १११
उपाक्कलिता १११
उत्र डन वेदकैलेण्डर, नामेंस ज्योतिषम् २४६
उभयद्वादशी १६, ५२१
उमा ६६
उमादिपूजा १११
उवंशी ४२०
उत्का-दान ७५
'ऋ ग्माध्यभूमिका' ४७७
ऋ ग्वद ४, ५, ७, १४, २५, ३५, ५२, ६६, ६१, ६६, ६१, २६६, ६१, २६६, ३४६, ३७१, २६७, २६०, ३४३, ३४४, ३४६, ३७१, ४४५, ४७६

ऋत ४, ४, ६ ऋतचित् ४७६ ऋतु २४६ ऋतुयाजी २४६ ऋतुव्रत २२, १११ ऋषिपञ्चमी ६०, ६२, ११२ ऋक्ष २५१

. **Q** 

ए० एच० सईस २६४ ? एकभक्त-व्रत ४३ एकादशीतस्व १२, २३, ४० एकाम्र ४१२ ए० कुमार स्वामी ४१२ एच० एम० इलियट ५०६ एडविन अर्नाल्ड ५०३ एन ० जी ० बनर्जी ६१ एन ० जे ० ओ ० कोन्नोर ५०३, ५०५ एन० बंलैण्ड ३६२ 'ए शार्ट हिस्ट्री आव दि ज्यूयिश पीपुल' 'एशियाटिक रिसर्चेज' ६६ एस॰ एन॰ प्रधान, प्रो॰ ३१२ एस० एन० दे, प्रो० ४६ 'एस्ट्रानॉमिकल कम्प्यूटेशंस आव दि हिन्दूज' , २४६ 'ए हिस्ट्री आव साइंस' २५७

### ५१२ • धमंशास्त्र का इतिहास

'ऐंश्येण्ट एस्ट्रानॉमी एण्ड कास्मामॉनी' २४६ ऐतरेय आरण्यक ३४६ ऐतरेय ब्राह्मण ६, २६, ४२, ८८, २४६ ऐनेविजमैण्डर २५७ ऐत्मगस्ट २४४, २५७ एरटोनोमिका २५७ ऐस्ट्रानामी इन दि ओल्ड टेस्टामेण्ट २६२ ओरायन ४, २४६, २४४ ओल्ड टेस्टामेण्ट इजाइआह २७२ कटदानोत्सव ११२ कठोपनिषद ४३२ कथावत्यु ५०४ कद्र ५१ कपाली ६६ कपाली शास्त्री ४७७,४८० कपिञ्जल २६२ कमलष्ठी ११२ कमलाकर भट्ट १३,४३७ करक चतुर्थी ११२ करणः २६७,३३६ करवीर-प्रतिपदावत ११३ कर्कट-सक्रान्ति ८० कर्कोटक ४१ कर्न २८६ व कर्म २१,३४,४१,६३, २६४,३२४ कर्मप्रदीप १६ कलेण्डर रिफार्म कमेटी १६ कुट्टिकड दशी ११३ कल्किपुराण ४१३ कल्प ३३० कल्पतरु १५,१६,२२,३२,३३,११३,३६६,४१० कल्पादि ,११३ कल्याणवर्मा २७१ कल्याणसप्तमी ११३

कश्यप ऋषि ६१ काञ्चनपुरीव्रत १७,११३ काठक गृह्यसूत ८६,६० कात्यायन २१,४१ कात्यायनश्रीतसूत ३४४,३४७ कात्यायनी ६९,११३ कादम्बरी १ कामद १०६, ११४ कामदेव-पूजा ११४ कामधेनु ४१० कामसूत ५६,६० कामत्रयोदशी ११४ काम्य श्राद्ध ५३ कायिक वत २२ कारीट ७४ कारीरी इष्टि ३२५ कार्तिक ६३,११४,११६ काल २३८,२३६,२४०,२४३ कालतत्त्वविवेक ५६,७३,८७ कालतत्त्वविवेचन ४० कालनिर्णय २१,२३,३०,३४,३८,४०,४४,४४,६१,८१, 54,89,82 कालनिर्णय-कारिका २३ कालपुरुष २७७ कालभैरवाष्टमी ११६ कालमयुख २३ कालमाधव . २२ कालविवक २३,३०,४०,४१,८१,६१,६२,६४,२१७ काल-संकलित २४६ कालसार २३,८८ कालसिद्धान्तर्दाशनी २४३ कालादर्शः २३,३० कालिका ४१३ कालिकापुराण १३,१६,६३,४८३ कालिदास १८,४६,६९,७२,२६८,४२० कालिय 49 काली ६७६६,११७

वानुक्रमिका • ५१३

.

काणीखण्ड ३८ काशीनाथ ₹₹ . कास्टेंस रीड ३३५ किर्फेल ३८८,३१६ कीर्ति-संक्रान्तित्रत् ११७ कीलहार्न (प्रो०) १६ कुक्कुटी-मर्कटीव्रत ११७ कुतप २६८ कुबेरपूजा ७५ कुमारवष्ठी ११७ कुमारसम्भव ६९,२६८ कुमारिका ६७ कुमारिल भट्ट ३७७,३७८ कुमारी ६१,११७ कुम्भ ७६, ८२ कुम्भपर्व ११७ कुलाणंवतन्त्र ४७१ कूर्मपुराण ४८,७६,२४२,४१३ क्टमाण्ड-दशमी ११८ क्षमाण्ड-बलि ६६ कृतिका ६१,२४४ कृत्तिकानक्षत्र 3 € कृत्तिकास्नान ११८ कृत्यकल्पतरः १२,२३,३४,४३,४७,४८,६०,८१,६२, 808,850 कृत्यतत्त्व २३,३८,४६,५५,५७,७५,६१,६५ कृत्यरत्नाकर १२,१४,२३,३१,३२,३३,४१,७२.६१ कृत्यसमुच्चय २३ कृष्ण ३४,४३,४४,६०,६९,६०,३२४ कृष्ण-एकादशी ४१,११६ कृष्णजन्माष्टमी ५१,५३,११८ केतु २८१ केप्लर २७३ केमद्रम २८८ केयी २५०

के० बी० रंगस्वामी आयंगर

कटी २७३

कैम्ब्रिज हिस्ट्री बाव इण्डिया कोजागर ११६ कोटिहोम ११६ कोपरिनकस २५७,२७३ कोलबुक २४६ कौटिल्य २४८,२६३,२८० कौतुक १२० कौमुदी-उत्सव ७३ कौमुदी-महोत्सव ७८,११६ कौशिकसूत ३४६ कौषीतकी उनिषद् २६८ कीषीतकी ब्राह्मण २३६,२४६ कोशीतकीगृह्यसूत्र २६ क्रमपूजा १२० 'क्रॉनालॉजी आव ऐंश्येण्ट इण्डिया' क्लीओस्ट्रटस २७६ स खञ्जनदर्शन १२० खण्डाएकादशी ४७ खर्व ३० खल २६० गंगानाथ झा गजच्छाया १२० गज-नीराजनाविधि गणगौरीवृत १२० गणपतिचतुर्थी १२१ गणपत्यथर्व शीर्ष ६० गणेश २७४ गणेशखण्ड ६० गणेशचतुर्थी ५६,१२१ गणेशपुराण ४१३ गणेश-पूजन ६० गणेश-प्रतिमा ५६,६० गण्डान्त २६८,३०८ गदाघर २३ गदाधरपद्धति ६१

### ५१४ • धर्मशास्त्र का इतिहास

गन्धाष्टक १२१ 'गया एवं बृद्ध गया' २६३ गरुड़ध्वज अभिलेख ५४ गरुड़पुराण १४,१७, २७,४२,४७,४६,६८४, ४१४,४८७

गर्ग २८, २६१, २६२ गर्माधानक २६५ गलप्रह २६६ . गांधी 69 गान्धारी ४७ गायदांड ७७ गायदाण् ७७ गार्थ २४ गाईपत्य अग्नि ६ मीतगोविन्द ४८५ गुण्डिचायाता १२१ गुरु गोविन्दसिंह ६७ गुर्वादित्य २४, ३०१ गृहपञ्चमी १२१ गेटे २७३ गैतिलियो २७३ गोचर २६० गोदावरी ६२ गोधूलिं या गोरज ३०२ गोपद विराव १२२ गोपाष्टमी १२२ गोपीनाथ कविराज 95 गोमिल १६ गोमिल-गृह्यसूत १०, २६, २७, २४४ गोमयादिसप्तमी १२२ गोयुग्मव्रत १२२ गोदर्धनपूजा ७७, १२३ गोविन्दचन्द्र ३६ गोविन्दद्वादशी 973 गोविन्दप्रबोध 923

गोविन्दानन्द २३

973

गोष्ठाष्टमी

गोष्पदतिरात १२२, १२३ गौतम १०, ४३, ६१ गीतमधर्मसूत्र २६६, ३५० गौरी ५६ गौरीगणेशचतुर्थी १२३ प्रहण ७६, ८६, ६४, ६४ ग्रह-तालिका २५२, २५३, २५४, २५६ ग्रहयाग १२४ . ग्रहयुद्ध २८६ ग्रीस ६१, २५६ ग्रुण्डिस २१५, २४६ ग्लैनविले २४५ घटितगुणविचार ३०२ घृतकम्बल १२४ घृतस्नापनविधि १२४ घृतावेक्षणविधि १२४ घोटकपञ्चमी १२४ घोरा ८१ घोसुण्डी अभिलेख ५४ च चक्राकार गति ४ चण्ड ६३ चण्डिका ६७

च चक्राकार गति ४ चण्ड ६३ चण्डिका ६७ चण्डिका ६७ चण्डिकापूजा ६४, १२४ चण्डि ६६ चण्डेश्वर २३ चतुर्दंशी ६४, ६६, ६६ चतुर्दंशी ६४, ६६, ६६ चतुर्दंशिचन्तामणि २३ चतुर्वंगिचन्तामणि २३ चतुर्वंगिचन्तिषेष १२५ चन्द्रवर्षान-निषेष १२५ चन्द्रवर्षान-निषेष १२५ चन्द्रवर्षान-निषेष १२५ चन्द्रवर्षान-निषेष १२५ चन्द्रवर्षान-विषेष १२५ चन्द्रवर्षान-विषेष १२५

बनुकमिका ० ५१५

दरकसंहिता २४२ चक्षुर्वत १२४ चातुर्मास्य यज्ञ ५० चातुर्मास्ययाजी २४६ चातुमस्यव्रत ४६, १२६ चान्द्र-उत्सव ह६ चान्द्रमास ३२० चान्द्रायण वत १२६ चामुण्डा ६९ चाल्डिया २७२, २७३ चित्रा ८१ चुल्लवग्ग ५०६ चूड़ामणि १४, १२६ चेष्टाबल २६० चैन १३६ चैतावली १२७ चील या चूड़ाकर्म २१८

छान्दोग्योपनिषद् ६, ५३, २३६, २८०, ३४६, ४४६

जन्मतिथिकृत्य १२७ जन्माष्टमी ४८, ५६, ५७, १२७ जन्माष्टमीतत्त्व २३ जमदिग्न ६१ जय १०६, १२७ जयदेव ४८५ जयन्त १०६ जयन्त भट्ट २४१ जयन्ती ४८, ४५ जयन्तीनिणय ५५, ५७ जयन्तीसप्तमी १२७ जयमंगल ८६ जया ४८, ७१, ८७ जयातिथि १२८ जविस २४६ जागर ५४ जाप्रद्गौरीपञ्चमी १२६

जातक २७० जातकर्म २६८ जातकालंकार २७५ जाब ११ जाबाल 59 जाबालि ६३ जामित २८४ जाम्बवंत ६० जाम्बवती ६० जिओसेण्ट्रिक २७३ जितेन्द्रिय २३ जी० आर० काए २८८ जीमूतवाहन २३ जीवत्पुत्रिकाष्टमी १२६ जुलिएस सीजर ३१४ जुवेनल २७३ ज्या ७७ जे० एच० डे० कुन्हा राइवरा ५०२ जे० फिलियोजात (डा०) ३३२ जैकोबी, प्रो० २४६, २४८, २८६ जैन ११, ५४ जीमिनि ११, ४०, ८०, ८६, ६०, ३७६, ४०० जोडिअक २६२ ज्येष्ठ-कृत्य १२६ ज्येष्ठा ५१ ज्योतिविदाभरण ३१६ ज्योति:शास्त्र ८० ज्योतिषमातंण्ड २७४ ज्योतिषरत्नमाला २७५ ज्योतिस्तत्त्व ३०७

ट टाइमियस ३६२ टामस हीय, सर २४५ टाल्मी २४४, २४५, २५७, २५८, २६४, २७४, २७६७ २८४, २६५

टिक्किनका ३०४ ट्रेटाविक्लोस २८०, २८३, २८४ २६४,

### ५१६ • धर्मशास्त्र का इतिहास

डब्ल ० एच० डब्ल् ० सैबाइन ३६३ डायडोरस सिसलस २७३ हायोन कैसिबस ३२६ डिक्लाइन आव बुद्धिज्म इन इण्डिया ४६५ डियो ३२६' डेविस २४५ डैनिएल २७२, ३६२ 8 दुण्ढिराजपूजा १२६ ढोण्डा ६० त तत्पर ५१ तन् ३१० तन्त्र २४४ तप्तमुद्राघारण १३० तक्षक ४१, ४२ ताम्बल-संक्रान्ति १३० ताराबल २६८, ३०३ ताराविराववत १३० तालजंघ २१ तिथि २६, २७, २९४ तिथितत्त्व २१, २८, ३१, ३२, ३४, ३६, ३६, - ४६, ४१, ४४, ४६, ४७, ६०, ६३, ७२, ७४, ८२, 50, 89, 88 तिथिविवेक २३ तिध्यकं २३ तिन्दुकाष्टमी "१३० तिल ५३, १३१ तिलक ४, ६७, १३० तिलचतुर्थी १३० हिज्य २५१ तुरायण १३१

तुर्क २१

तुलसीविराव १३१

तुला ७६, दर

तुलापुरुष ३६

त्रिटप्राप्तिवत १३१ तेविज्जस्त २६२ तैतिरीय आरण्यक ६, १४, ६६, ७२ तैतिरीय उपनिषद् प तैतिरीय ब्राह्मण २६, ७२, २६७, ३४४ तैतिरीय संहिता ७, ६, २४, २६, २६, ४२, ६६ थिबो २४४, २४६, २४८, २४०, २५७, २६०, २८६ दत्तावेयजन्म १३३. दधिवत १३४ दफ्तरी २४६ दमनकमहोत्सव १३४ दमनभञ्जी १३४ दर्प ३० दर्श २६ दर्श-इष्टि ६ दर्शनगीचर ६४ दर्शनिर्णय २३ दशगीतिकापाद ३३७ दशघटिका ३३४ दशनिणंयी ५७ दशमलव पद्धति ३३५ दशयोगचक्र ३०२ दशहरा ३७, ७१, ७२, १३४ दशावतारचरित ४५५ दध्टोद्धरणपञ्चमी १३५ दसेरा ७३ दक्षिणायन ५० दान १३, १३५ दानसागर ३६६, ४०६, ४०६ दामोदर ३४ दारिद्रयहरणषष्ठी १३५ दिग्घनिकाय. २६३ दिग्बल २८६ दिनक्षय १३५ दिवाकर ३६३, ३६४

धनुसमिका । ५१७

'दि रिलेशंस बिटवीन अर्सी बुद्धिज्य एण्ड बाह्मणिज्य' ४६२ दिवाकरव्रत २३, १३६ 'दिवाली फोकलोर' ७८ 'दि सेजेज आव इण्डिया' ५० ८ दीपदान ७४, ७७, १३६ दीपलक्षण १३६ दीपान्वितामावास्या १३६ दीपावली ७०, ७३ दीप्त २६० दीप्तिव्रत १३६ दुरुधरा २८८ दुर्गेन्ध-दुर्भाग्यनाशन-त्रयोदशी १३६ दुर्गा ६३, ६४, ६७ दुगीपूजा ६ है, १३६ दुगपूजाप्रयोगतत्त्व ६३ दुर्गाभिक्ततरंगिणी ६३, ६६, ६६ दुगर्चिनपद्धति २३, ६३, ६६, ६७, ६.म दुर्गाष्टमी ६३, ६६, १,३६. दुर्गोत्सव ६३,७३ १३६ दुर्गोत्सवपद्धति ६३ दुर्गोत्सव-विवेक २३, ६३ दुश्चिक्य २८४ द्वा १३७ दूर्वा-नैवेद्य ५६ द्वाष्टमी १३७ दृक्-पंचांग ३१३ दृष्टिट २६०, ३११ देईमेक्स २१४ देवतापूजा १३ देवनक्षत्र २६१ देवयात्रोत्सव १३७ देवल १२, ३१, ३२, ४७, ७७, २४४ देवशयनोत्यान-महोत्सव १३८ देविका ६३ देवी ५० देवीपुराण २१, ६३, ६७, ६८, ७६, ८०, ८१, ६२, ४१४

देवीपूजा १३, १३८ देवीप्रतिमा ६७ देवीमागवृत ६८, ४१४ देवीमाहातम्य ६३ वेवीव्रत १३८ देवेश्वर १२ देव्यान्दोलन १३८ दोलयाता ६०, १३८ दोलयात्राविवेक ६० दोलोत्सव १३८ दोहिनप्रतिपदा १३८ चूत ७७, २८४ द्यूत दिवस ७३ बूत प्रतिपदा ७७, १३८ बून २८४ द्राक्षाभक्षण १३८ द्रेष्काण २८७ द्वादशाह सप्तमी १३६ द्वादशी ४४, ४६, ४७, ४८, १३8 **दिराषा**ढ 980 धनञ्जय 49 धनतेरस ७३ धनपूजा ७३ धनत्रयोदशी १४० धन् ७६ धन्यप्रतिपदा १४१ धन्वन्तरि जयन्ती ७३ घरणीवत १४१ धमं ५, ६ धर्मघटदान १४१ धर्मन् ५, ६ धर्मराज पूजा १४१ धर्मसिन्धु १२, २१, ३३, ४४, ४६ ४६, ४७, ७०, ६२, दद ६१, ३०२, ३६२ धर्मावाप्तिवत 949 घाना 98

## ५१८ • धमंशास्त्र का इतिहास

घान्यसंक्रान्तिवत १४१ बान्यसप्तक १४२ धामविराववत 985 घारणपारण-वतोद्यापन १४२ ध्य १४२ मुलिबन्दन १४२ धृतराष्ट्र ४१, ४२ धीम्य १६ ध्युजनवमी १४३ व्वांकी ५१ न नक्त ३६, ४१ नक्तवत २१, १४३ नदी-स्नान १४५ नदीविराववत १४४ नन्व १०५ नन्दा २७, १४४ नन्दानवमीवत १४५ नन्दासप्तमी १४५ नन्दिपुराण ४१४ नरकचतुर्दशी ७४, १४६ नरकपूर्णिमा १४६ नरकासुर ७४ नर्रासिश्चतुदंशी १४६ नरसिंहपुराण ४१५, ४३५ नरसिंहाष्टमी १४६ नमंदा ६२,६३ नवप्रहशान्ति ३५३,३५४ नवनक्षत्रशांति १४६ नवरात ६३,६६ नंबरातप्रदीप ६३ नत्र्यहारोचन १४७ नवसस्येष्टि ७८ नवान्नभक्षण १४७ नक्षत २४१, २४४, २६७ नक्षत्र तिथि वार-प्रह-योग-त्रत १४३ नक्षत-विशेषे पदार्थविशेष निषेध १४४ नक्षत्रवत २२, १४४ नक्षत-सूची, नाम, देवता बादि २५२, २५३, २५४ नक्षत्रहोमविधि १४४ नक्षत्रार्थं वत १४४ नाग ५२ नागचतुर्यी १४७ नागदष्ट १३४ नागदष्टोद्धरणवत १४७ नागपञ्चमी-द्रत ५१,१४७ नागमैत्रीपंचमी १४७ नानाघाट अभि लेख ५४ नामकरण २६६ नामसप्तमी १४५ नारद ४१, ४२, ४७, ६६, ४६१ नारदपुराण २७, ४२, ४३, ४४, ५७, ४१५ नारदीयपुराण १६, ३१, ३२, ३६, ४२, २६७, ४३८ नारायण १२, ४५६ नारायणीय उपाख्यान ४५७ नामन लाकी अर (सर) २५७ नाक्षत्र मास ३२० निकुम्भ पूजा १४६ निघण्टु ३६८ नित्यव्रत ३४ निपीड़ित २६० निम्बसप्तमी १४६ निरुक्त ८, १४, २४, २६, ३६८, ४७६ निर्जला-एकादशी १४६ निर्णय सिन्धु १८, २०, २८, ३०, ३४, ३४, ३८, ४९, ४४, ४८, ४४, ४८, ६१, ७०, ८३, ६०, ६१, ६२ 830 निर्णयामृत २३, ४४, ६३, ५६ निर्दिष्ट हेतु ४,६ निर्वाण ४६२ निशीय काल ५६ निशुम्भ ६३ निषाद दूर, दद निषद १४६

अनुक्रमणिका । ५१९

निक्षमार्क-सप्तमी १४६ नीराजन ६८, ७६, ७८ नीराजनविधि १५० नीराजना ७२ नीलकण्ठ २३ मीलज्येष्ठा १५० नीलवृष-दान १५० नृसिंह जयन्ती १५० नेयुगे बावर, प्रो० २६४, २६१ नेमिनाथ ५४ नैधन २६४ नैयतकाल ३३, ६८, ८१, ६२ नैऋत २६८ न्यायमञ्जरी २४१ न्यूगेबोर, प्रो० २४५ 4 पञ्चांग ३१३, ३४० पञ्चजन ५२ पञ्चलक्षण ३८७ पञ्चघट-पूर्णिमा १५१ पञ्चभंगदल १४१ पञ्चमहानव्रत ११ पञ्चमहापापनाशनद्वादशी १५१ पञ्चरत्न १५२ पञ्चशील ११ पञ्चसंवत्सर २४६ पञ्चिसद्वान्तिका २४६ २५६ पटवास विलासिनी पणकर २८५ पतझड़ हु॰ पतञ्जलि ५४, २४०, २४१ २६६ पतिष्नी पाणिरेखा २६२ पदार्थ-निरूपण २४२ पद्मकयोग १५२ पद्मनाम द्वादशी १४२ पद्मपुराण १४, १६, १७, २२, ४२, ४३, ४३, ६०, ७३, ७८, ८४, ३६६, ४१४, ४३४, ४७२

परममैत २४६, परविद्वा २७, ५६ परशुरामजयन्ती ३७, १४३ पराशरस्मृति २०, ६२ परिवर्तिनी ४६ परिसंवत्सर २४७ पल्लव १४३ पवन बत १५३ पवितारोपण-त्रत १५३ पक्ष १४१ पक्षविंचनी-एकादशी १५१ पाञ्चरात ४६, ४५७, ४५६ पाणिनि १०, २६, ५४, २४०, २४४, २६२, ३२६ पातिमोक्ख ५०६ पादोदक-स्नान १५४ पापनाशिनी ४८ पापनाशिनी-सप्तमी १५४ 'पारकर्मसमाप्ती' ४८ पारण या पारणा ४७, ४८ १७ ११४ पारस्कर गृह्यसूत १०, ४२, २६१, ३०६ पाजिटर ३६०, ३६१, ३६३, ३६३ ४०१ पार्वती १८, १६ पाशा १५४ पाषाण-चतुर्दशी १४४ पिठोरी अमावस्या १५५ पितामह-सिद्धान्त २४८ पिपीतक-द्वादशी १४५ पिशाचमोचन १५५ पी० के० गोडे (प्रो०) ७३ पीटर डोएग २४५ पुंसवन २६५ पुक्कस ८१ पुदुकोट्टाई ३१३ पुनर्वसु ३४, ८१, २५५ पुरश्चरण-सप्तमी १५७ पुराणश्रवणविधि १५७ पुराण पञ्चलक्षण ३८६, ३६६,

### ५२० । वर्गशास्त्र का इतिहास

पुरुषसूक्त १३ पुरुषार्थविन्तामणि २२, ३७, ५६, ६८, 90, 59, 55, Eo पुरोडाश १४ पुलस्त्य २६० पलह २६० पुलिक-बन्धन १५८ पलिश २६० पषाद्वितीया १४5 पुष्य ६१, २४४ पृष्यद्वादशी १५५ पुष्य-स्नान १५५ पुष्याभिषेक १५८, ३६४ पृष्यमित ४६३ पुष्यार्कद्वादशी १५५ पुत्रद १०६ पत्रदविधि १५६ प्त्र-सम्तमी १५७ प्रतोत्पत्ति वत १६७ पूजा ६८, १६८ पूर्णमास-इष्टि ६ पूर्णमासी तिथि २५, २७ पूर्णा २७, २५ पूर्णाहति १५५ पूर्णिमा ७६, ८६, ६०, १४६ पूर्णिमान्त 8x पूर्णीपवास ४३ पूर्त ४४३ पूर्वविद्धा ३३ पुर्वाफाल्गुनी ५१ पूर्वाभाद्रपदा ५१ पूर्वीषाढ़ा ५१ वेट्टोनियस २७३ पैठीनसि २१ पैल ४०० पोंगल 53 पोप ग्रेगोरी ३१४

पौसिडोनिअस २७३ वीर्णमासी 329 पौलस्त्य २६० °पौलसं अलेक्जैड्रिनस ३३२ पीष ६३, १६० पौष्टिक 950 प्रकीर्णक 22 प्रकीणंककाण्ड २४३ प्रजापति २४, १६० प्रतिपदा ३३, ७०, ७७, १६१ प्रत्वर २६४ प्रथमाष्टमी १६१ प्रदीप्तनवमी १६१ प्रदोष ६६, १६१ प्रदोष निशीय ५६ प्रपत्ति ४६२ 989 प्रपादान 80 प्रयुक्ताट प्रबोधिनी ४५ प्रभास-खण्ड ३६ प्रमाणवातिकभाष्य 285 प्रलय ३३३ प्रशस्तपाद २४२, २४३ प्रश्नोपनिषद् ४५३ प्रसेन ६० प्रह्लाद ७६ प्रज्ञाकर गुप्त २४२ प्रातः वेघ ४७ प्रातःस्नान १६१ 88 प्रायश्चित्ततस्व प्रावरणषष्ठी १६२ प्रेतचतुर्दशी 987 प्लक्ष ७५ 305 िलनी फ फलतृतीया 987 फलसप्तमी १६३

**अनुज्ञमणिका ७ ५२१** 

फिलितण्योतिष २५६, २६३, २७४ फाल्गुन ८६. ६० फाल्गुन-कृत्य १६४ फाल्गुनिका ८६ फिर्मीकस मैंटर्नस २८६, २६२ फाम जीरो टुइनफिनिटी' ३३४, 'फैब्रिक आव ड्रोम्स' ३६३

बकपञ्चक १६४ बत्तिस शिरालेन (सतारा) बरुआ २६३ बर्गेस २४६, २५७ बल २६८, २८६ बलि ६६, ६८, ७६ बलिपूजन ७६ बलिप्रतिपदा ७७ बलिप्रतिपद् १६४ बलिबन्धन ७६ बलिविजय उत्सव ७३ बलिहरण ४४३ बल्लाल सेन ४०६, ४०७, ४०८ बहुला १६५ बाइबिल ११ बाण १४, ३७, ६३, ७७ बार्हस्पत्यमान ३२१ बाईस्पत्य वर्ष ३२० बालगंगाघर तिलक २४६, २५८ बिल्वित रात्रवत १६४ बुद्धजन्ममहोत्सव १६५ बुद्ध ४४६, ४४७, ४४६, ४८६, ४६० बुध २५१ बुधाब्टमी १६६ बूहलर २४६ बृहज्जातक २७०, २७२, २७४, २७८, २८०, २६४

बृहत्संहिता २७, ६९, ७२, ६१, १६, १४३, २६२,

२६८, २७४, ३०४

बृहदारण्यकोपनिषद् ८, २४, ४४, ४२, २३६, २४३, २६२, २६४, २७४, ३४६, ४३२, ४४० बृहद-गोरी व्रत १६६ बृहद्धमंपुराण ४१८ बृहद्यम दह बृहद्योगयाता २७०, ३०४, ३०६ बृह द्योगी-याज्ञवल्बय १६ बृहन्नन्दिकेश्वर पुराण ६३ बृहस्पति २८१ बेकन २७३ बेबिलोन २७३, २१२ वोगोजकेइ २१४ बोधिनी ४१, ४४ बोधिसत्त्व ४८६ बीचे लेक्लेकं २७२, २८७ बौद्धमं ११, ४४५, ४४७, ४८६ बोधायन ४२ बौधायनगृस्यशेषसूत ३७२ बीधायनगृह्यसूत २६१, ३५७ बीधायनधर्मसूत ३२८, ४४० ब्रह्मगायती १६६ ब्रह्मद्वादशी १६६ ब्रह्मणः परिमरः ह ब्रह्मणस्पति ५६ ब्रह्मपुराण १७, ३७, ४८, ६०, ८३, २४२, ४१६, ४५५ ब्रह्मावप्ति १६७ ब्रह्मवैवर्तपुराण १३, ४१, ४५, ४७, ४८, ५१, ५४, ५७, ६०, ४१७ ब्रह्मसावितीवत ३८, १६७ ब्रह्माण्डपुराण ६०, ३६८, ४१७ ब्राह्मण्याप्राप्ति १६७ ब्राह्मपर्व २१, २३, ३३ ब्राह्मसिद्धान्त ३१४ ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त ३२१ भक्ति ४५५, ४६२, ४६६ भग २६८, ४६४

#### ५२२ • धर्म शास्त्र का इतिहास

जनवत ४६४ मगबद्गीता ४४, ५२, २४०, ४४५, ४५६, ४६२, 8 EX, 808, 853 भद्र १०५ बद्रकाली ६६, १६७ भद्रकालीनवमी १६७ भद्रचतुष्टयद्रत १६८ भद्रविधि १६८ एडा २७ भद्रावत १६८ भरणी ५१ भरवाज ६१ भत् हरि २४३ भवानी ६१, १६६ मविष्यपुराण १३,१४, १६, २१, २८, ३१, ३३, ३६, ३७, ४०, ४१, ४७, ६४, ६८, ७८, ८२, ३६४, ४१८, ४३६ भविष्योत्तरपुराण १६, ३८, ४१, ४३, ४४, ४६, ७४, 5E, Eo, 3X5 भागवत ४६, ५४, ४६६ मागवतपुराण ५४, ६०, ७४, २४२, ४१६, ४५६ भागवत-माहात्म्य ४७४ माग्यऋकदादशी १६६ भाद्रपद कृत्य १६६ भारतीय-ज्योतिःशास्त्र-निरीक्षण २४६ ्र भा खाजगृह्यसूत २६५ भाव ३१० भास्कर-प्रिया-सप्तमी १६६ भीमदादशी १६६ भीष्माष्टमी १७० मुजबल २४, २८२, ३००, ३०१, ४१० मूतचतुरंशी ७५, १७१ मृत महोत्सव १७१ मूतमात्र्युत्सव १७१ भूपालकृत्यसमुच्चय २३ भूपालसमुच्चय २३ मगुवत १७१

भैमी एकादशी १७१ भैरवजयन्ती 909 भगुसंहिता ७०, ३०६ भ्रातद्वितीया ७५, ६७, १७२ स मंगल १७२, २८१ मंगल-चण्डी १७२ मंगल-मालिका ७८ मंगलाष्टक १७३ मकर ७६, दर मकर-संक्रान्ति ७६, ५० मघा ५१, २४१ मणिभद्र ५१ मत्स्य ऋषि २५६ मत्स्यजयन्ती १७३ मत्स्यद्वादशी १७३ मत्स्यपुराण १६, १६, ३६, ४० ४२, ५३, ६०, ६६, ७६, २७०, ३३४, ३४१, ३४६, ३६४, ३६८, ३१६ मत्स्य-माँस-भक्षणनिषेध १७३ मदनद्वादशी 903 मदनत्रयोदशी ११४, १७३ मदनरतन ५५, ६२, ३४७ मदन-महोत्सव १७४ मधुसूदन-पूजा १७४ मधुर त्रय १७४ मधुरा भिनत ४७४ मच्याक्ष २७६ मनसा-देवी ५१, ५२ मनसा-पूजा ५१ मनसा वत ५२, १७४ मनिलिअस २५७ मन् ११, २०, ३७, ४५, ६६, ७२ मनुस्मृति १०, १३, १६, २६, ४३, ७६, २४१, २४३, २६८, ३७६, ४४१, ४५३ मनोरय-द्वादशी १७४ मनोरथ-संक्रान्ति १७४ 59 मन्दा

जनुसम्बिका ० ५२३

मन्दाकिनी द9 मन्दार-षष्ठी १७५ मन्दाक्ष २७६ मन्वन्तर ३३१ मन्त्रपूत ६६ मरीचि १३, ८१ मरीचिसप्तमी १७५ मलमास ७६, २४८, २४६, ३२२, ३२३ मलमासकृत्य १७५ मल्लद्वादशी १७५ मल्लारि महोत्सव १७६ महती चतुर्थी ५ ह महाकार्तिकी ३१, १७६ महाकाली ६६ महाचैती ३१, १७६ महाजयसप्तमी १७६ महाज्यैष्ठी ३१, १७६ महातृतीया १७६ महाद्वादशी १७६ महानन्दानवमी १७७ महानवमी १७७ महानारायण उपनिषद् २४०, २४३ महापरिनिब्बानसुत्त ५०३ महापौषी ३१, १७७ महाफलद्वादशी १७७ महाफाल्गुनी ३१, १७७ महाबलि ६६ महाभद्राष्टमी १७७ महाभारत १०, १७, २३,३८, ४७, ६९, २४०, २४८, २६४, २६४, ३६७, ४४३, ४८३ महामाष्य ५४, ६७, महामाघी ३१, १७५ महामादी ३१ महामार्गशीर्वी ३१, १७८

महाराविपूजा

महालय १७६

महालक्ष्मीपूजा १७८

७४

महाविषुव २५६ महावेध ४७ महावैशाखी ३१, १७६ महावत १७१ महाशिवराति ७१, ८४ महाश्विनी ३१ महाश्वेताप्रियविधि १०६, १७६ महाश्रावणी ३१ महाषाढ़ी ३१ महाष्टमी ६७, १८० महासप्तमी १८० महासावित्रीवत ३८ महिषासुर ६३,७२ महेन्द्र-कृच्छृ १८० महेश्वराष्टमी १८० महोदरी ८१ मांगल्यसप्तमी १७३ माकरी सप्तमी १८० माघ ६३, १८०, ४८६ माण्डूक्योपनिषद् २३६ माधव २३, २४, ४०, ४८, ६१, ८४ मानसप्रत २२ मार्कण्डेयपुराण ४३, ६३, ६४, ६७, १६, ४२१, ४५३, 850 मार्गपाली ७७ मार्गपालीबन्धन ७७, १८१ मार्गशीर्ष ६३, १८१ मार्तण्डसप्तमी १८२ मालतीमाधव ६६ मास २५१, ३२२, ३२३ मासरक्षपौर्णमासीवत १८३ मासत्रत २२, १८२ मिताक्षरा ११, १३, ४१० मियुन ७१, दर मिसलेनिएस एसेज २४६ मिहिरकुल ४६३

मित्रमिश्र

23

## ५२४ ० धर्मकास्त्र का इतिहास

श्रित्रसप्तमी १८३ मीन ७६, दर मुक्नदवनयति ३४ मुक्तिद्वारसप्तमी १५३ मुण्ड ६३ मुण्डकोपनिषद् २४३, ४३१ मदित २६० महतं २४७, २६७, २७४ मुहूर्तकल्पद्रुम २७४ मुहूर्तगणपति २७४ मुहर्तचिन्तामणि ७०, २७४, २७६ मृहतंदर्शन २७४ मुहर्तदीपक २८, २७४ मुहूर्तमार्तण्ड २७४, ३०२ मुहूर्तमाला २४७ मुहूर्तमुक्तावली २७४ मूल द9 मूल्यसांवत्सरिक २६२ मृगव्याघ ८८ मृगशीर्ष ८१, ८८, १८३, २४६ मृच्छक्टिक १८, ६१ मेइस्सनेर २६२ मेगस्यनीज २६४ मंघदूत ४६ मेचनाथ साहा (डॉ०) १६, ३४० मेघपालीतृतीया १८३ मेघातिथि ११ मेनन २४६ ॰ मेष ७१, ५२ मेषूरण २८५ मैक्समूलर ३, २४६, २५८ मैनिलियस २६३ मैत २६४, २६८ मैद्रायणी संहिता २४६ मैती-उपनिषद् २४० मौसलपर्व ६० म्सेन्छ २१

य यद्नाथ सरकार ५०१ यमचतुर्थी १८४ यमतर्पण ७५, १८४ यमद्वितीया ७८, १८४ यमादर्शन-सयोदशी १८५ यवन २१ यवनेश्वर २५२ यवागू २१ यक्षकर्दम १८४ यक्षरावि ७३ यज्ञ ४ यान ३०३ यास्क ८, २४६, ३६८, ४७६, ४८२ यात्रा १८४, ३०३ याशवल्क्य १६,३६६ याज्ञवल्क्यस्मृति १०, १३, १६, १६, ४३, ५०, ७२,७६ द४, १३, ३७६, ४४४

युग २४७, ३३०, ३३१
युगादितिथियाँ १८६
युगान्त्य-श्राद्ध १८६
युग्मवाक्य २६, ३०, २४४
युधिष्ठिर ५४, ८६
युवाँ च्वाँग ४६३, ४६४
यूनान ६१, २७३
योग ३३७, ३३८
योग-एकादशी वेघ ४७
योगयाता ग्रन्थ २६२, २७०, २८२, ३०४, ३०६
योगसूत्रभाष्य २४२
योगस्तरभाष्य २४२
योगसेवर-द्वादशी १८६
योगलोक २३

रक्तसप्तमी १८६
रङ्गपञ्चमी ११, १८६
रघु ७२, १०
रघुनन्दन १२, ६४, २७०
रघुनाय-शिरोमणि २४२

अनुकमणिका • ५२५

रघुवंश ६१, २६८, ४८४, ४०७ रटन्ती-चतुर्दशी १८६ रत्नमाला २४, २७, ३०३, ३०७, ३३७, ३३८ रत्नधच्ठी 958 रत्नानि १८६ रत्नावली 95 रथनवमी 950 रथयाचा 959 रथसप्तमी 950 रथोत्सव 950 रम्भातृतीया 950 रविवारवत 955 रविषष्ठी 955 रवीन्द्र १७ ्रसकल्याणिनी १८८ रक्षापंचमी 956 रकाबन्धन ४१, ४३, ४७, १८६ राइज डेविड्स ४६२, ४६४ राका. २४, २६ 'राका होलाके' राघवद्वादशी 329 राजतरंगिणी ५२ राजधर्मकीस्तुभ ४८७ राजनीतिप्रकाश ६७, ३०६ राजनीतिरत्नाकर ३०३ राजमातंण्ड २३, २४, २७, ३०, ३१,३७, ३८, ४६, ४७, ४१, ४८, ८३, २७१, २७४, २६७, ३००,४१० राज्याप्तिदशमी १८६ राधाकृष्णन् (डॉ) राधाष्टमी १८६ राम ३४,७१ रामचन्द्र दीक्षितार, प्रो॰ ४०६ रामचन्द्रदोलोत्सव १८६ रामजयन्ती १६० रामनवमी 29, 980 रामनवमीवत ३४,३६

रामलीला

EE, 197

रामायण २३ रामार्चनचन्द्रिका ₹8, ३€ रावण ७२ राशियां २७७, २७८ राहु ६२, ६३, २८१ राहुमुखचक्र ३०७ राहुल सांकृत्यायन ५०४ राक्षसी ५१ राज्ञीस्नापन 958 रि:फ २८४ रिलिजंस आव इंडिया XBX रिवमण्यष्टमी 980 रुद्र 55 रुद्रधर २० रद्रलक्षवति ११० च्द्रवत १६० रूपसंक्रान्ति १६१ रूपसत 989 रूपावाप्ति १६१ रेवती ६१ रोगहा १०६, १९१ रोच १६१ रोटक १६१ रोम २७३ रोहिणी ६७, ६१, ६६ रोहिणीचन्द्र-शयन रोहिणीवत १६२ रोद्र २६८ रौद्रविनायकयाग F39 रौहिण २६८ ल लंका ७१ २७४, २८० लघुजातक लघ्विष्णु 95 ललितावत १६४ ललिताषष्ठी १६४ लल्ल 28

#### ५२६ । धर्मशास्त्र का इतिहास

लवणदान ११४ लक्षनमस्कारवत-संकल्प १६३ लक्षवित व्रत १६३ लक्षहोम १६३ सहसीधर १२, १८, २३, ३८६ लक्ष्मीपूर्जन ७३, ७४, १६३ लक्ष्मीप्रद वत १६३ 'लाइट आव एशिया' ५०३ लार ३६ लावण्यावाप्तिवत १६४ लिगपुराण १७, २०, ४३, इद, ४२२ लियोनार्ड बुली, सर २४५ 'लीप' ३१४ लीलावती ३३५ ल्बर २५७ लोहाभिसारिका कृत्य ६८, १६४ लीहित्यस्नान १६५

वंजुली ४८, १९५
'वज्यान एण्ड दि ८४ सिद्धज' ५०४
वटसावित्रीवृत २३, ३८, ६७, १६५
वत्सद्वादशी १६५
वत्सराधिप १६५
वद्गराधिप १६५
वष्गरमेलापक विचार ३०२
'नपवं १०°
वरदचतुर्थी ५६, १६६
वरतवमी १६६
वराहकासप्तमी १६६
वराहपुराण १७, ३२, ४२, ५५, ५६,

वराहपुराण १७, ३२, ४२, ५४, ५६, ६८, ८६, ४२३

वराहमिहिर २४, २७, ६१, २४३, २४६, २५६, २६४, २७४, २७८, २८२, ३०४, ५०५

वरुणप्रधास ५०, २४७

वर्षापनविधि १६७ वर्ष २४८, ३१४, ३१६, ३२० वर्षक्रियाकीमुदी १३, १४, २३, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३८, ४२, ४६, ६६, ७२, ८७, ६१ वल्लभाचार्य ४७४ वल्लभोत्सव १६७ वसन्त ६०, ६१ वसन्तराज ३६५, ३६८ वसन्तोत्सव १६७ वसिष्ठ ६१, ६१, ६६ वस्तविराव 785 वाक्य-विधि 393 वाचस्पति २०,४२६ वाचिकव्रत २२ वाजसनेयी संहिता ७, ५२, ६६, २४३, २४६ वाजिनीराजना ७२ वास्स्यायन पर वामनजयन्ती १६८ वामनपुराण २८, ४६, २७८, ४२३ वायन ३६ वायुप्राण ४२, ५४, २४२, ३६८, ४२४, ४४१, ४८५ वारवत २२, १६६ -वारुण २६५ वारणी ११६ वारेन २४६ वातिक ५४ वातिकालंकार २४२ वासुदेवक ५४ वास्तुशान्ति ३६४ वास्देवद्वादशी १६६ विमोट २४४, २४६ विकल 380 विजय ११६, २६८ विजयद्वादशी १६६ विजयमृहर्त XX विजयविधि 339 विजया २७, ४८, ७१, १६६

अनुक्रमिका ७ ५२७

विजया दशमी 00,09,80 विजयासप्तमी 200 विण्टरनित्ज २५६, ३८७ विष्मृत-भोजन वितस्तापूजा २०० विद्वा २८, ३२, ४३, ४७ विद्धा एकादशी ४७ विद्धा दशमी विद्यापति ६३, ६८ विद्यामाधवीय २६८ विद्यावाप्तिवत 200 विधान ३,४ विधानसप्तमी २०१ विनायक ६३ विनायकचतुर्थी २०१ विनायकस्नपन चतुर्थी २०१ विपत्कर २६५ विभूतिद्वादशी २०१ विरोचन ७६ विलियम जोन्स १६ विवाह ३०० विवेकानन्द स्वामी ५०८ विशाखा ५१ विशोकद्वादशी २०२ विशोकषष्ठी २०२ विशोक-सक्रान्ति २०२ विश्वनाथ २३ विश्वरूप ८४, ४०२ विश्वामित ६१ विश्वावसु २६८ विश्वदेवदशमी २०३ विषुव ५२, २६६ विषुव-काल २४६ विषुवत् ६१ विषुव-संक्रान्ति ५०, ६३ विष्टि-भद्रा २०३ विष्णु २०३

विष्णुभट्ट २३ विष्णुधमं-पुराण ४२६ विष्णु-धर्मसूत १८, २०, ३६, ८२, ८३, ६४ विष्णुधर्मोत्तर पुराण १३, २३, ८२, २४२, २६३, ४<mark>२६</mark> विष्णुपंचक २०४ विष्णुपद ८०, २०४ विष्णुपदी द०, द१, द३, २०४ विष्णु-पुराण ४६, ६०, ७४, २४२, ४२४, ४३१, ४५४ 348 विष्णुप्रबोध २०४ विष्णुलक्षवति २०४ विष्णु-विजय उत्सव ७३ विष्णुवत १७, २२, २०४ विष्णु-शयन ४५, ४६, २०५ विष्णुशृंखल-योग २०५ वी॰ एम॰ बाप्टे (प्रो॰) ४, ४ वीरप्रतिपदा ७७, २०५ वीरासन २०५ वृत् ३, ४ वृन्ताक-त्याग-विधि वृन्दावन ६० वृन्दावनद्वादणी २०६ वृद्धविसष्ठ दर वृद्धविसठ-सिद्धान्त २४४ वृश्चिक ७१, १२ वृषभ ७६, ८२ वृषोत्सर्ग २०६ वृक्षोत्सव विधि २०५ वृत्र ६१ वेदव्रत २०६ वेदांग-ज्योतिष २४४, २६७, २६६, २७५ २८, ४७, ३४ वंघ वेब २७३ वेबर २४४, २४६, २५६, २७८, वेशि २८८ वैकुण्ठ-चतुर्दशी २०७ वैखानस ४६

## ५२८ • धर्मशास्त्र का इतिहास

वैद्यानस-स्मार्त-सूत्र २६३, ३२८, ३४३, ३४६ बैराज २६८ वेशस्पायन ४०० वैशाख-कृत्य २०७ वैशेषिक-सूत्र २४१, २४२ वैश्वदेव ५०, २४७ बैंडणव ४६ 'वैद्याव फेय एण्ड मृवमेण्ट' ४६ 'बैंडणविज्म शैविज्म' ५४, ४६३ बोगेल ४२ व्यवहारमयूख २० व्यास ४७, ४००, ४०१ व्यास-पूजा २०८ व्योमषष्ठी २०६ व्रज ३ ३, ४, ४, ३३, ३७, ४०, ५७, ५५, ६६ व्रत-उत्सव (१२३३) सूची, पृ० ६७ से २३७ व्रतकाण्ड व्रतकालविवेक १२, १८, २३, ३०, ३८, ४२ व्रतकोश व्रततस्व 93 व्रतपति ब्रतप्रकाश २३,३८,४६ २३, २४, ३३, ३४, ३७, ३८, ४०, ४६, ४८ ६9, ६८, ७०, ७७ ्रवतषष्ठी २०१ वतार्क १३, २३, ३४, ३४, ३६, ४६, ४३, ४८, ६१ व्रतोद्यापन-कौमुदी २३ शंकर बालकृष्ण दीक्षित २४५ शंकरमट्ट घारे २३ शंकराचार्य-जयन्ती शंख २० शंखधर २२

शंखस्मृति १०

शक्त २६०

शक २१, ३१६

शतद्युम्न २५६ शतपथबाहंमण ६, २४, २६, २३८, २६७, ३४४ शतभिषक् ५१ शतभिषास्नान २०६ शनिप्रदोषव्रत 290 शबर ११, १३, ८१, ३३६, ३७६, ४८२ शबरोत्सव ६७ शमी ७१, ३४३, ३४४, ३४५ शयन २१० शयनी ४१, ४३, ४५ शयादान २१० शकंरा-सप्तमी २१० शमीपूजन ७१, ७२, २१० शांखायन गृह्यसूत १० शांखायन ब्राह्मण ५, ६१ शांखायन श्रीतसूत १० शांविडस्य ४६०,४६१ शाण्डिल्यसूत ४६७ शाक-सप्तमी २११ शाखा २४४ शातातप ८१, ६३ 380 शान्त शान्ता ६० शान्ताचतुर्यी २११ शान्ति ३४३, ३४४, ३४१, ३४३, ३४७, ३४६ शान्तिपर्व १०, १६ शान्तिमयुख ३५६ शाम्भरायणीवत २११ शालिवाहन ३१६ शियापरेली 787 शिरोव्रतं 292 शिव ५५, ६६ शिवधर्म ४२७ शिवपुराण ४२६ शिवकृष्णाष्टमी 292 शिवनक्षत्र-पुरुषव्रत २१२ शिवपूजा ७५

अनुक्रमणिका • ५२९

शिवरातिवत ५५, ५६, ५७, ६६ शिवव्रत २२, २१३ शिवत्रतेषु पूजा २१३ शिवाचतुर्थी २१४ शिवातिथि शिशुपालवध ४८६ शीतलाष्टमी 298 शीर्ष ६६ शुक्र २८१ मुक्ल एकादणी ४१ शुक्ल द्वादशी २१४ शुद्धा २न शुद्धिविवेक 20 शुनासीरीय २४७ शुनासीरीय यज्ञ ५० शुभद्वादशी २१५ शुभसप्तमी 294 शुस्भ ६३ मूलपाणि १२, १८, २३, ८३ श्रृंग दह शैवमहावृत २१५ शोणित ६६ म्यामामहोत्सव २१६. श्येनग्रासविधि २१६ श्रवण ५१ श्रवणद्वादशी २१६ श्राद्धः ५३ श्राद्धकाल ६३ श्रावणपूणिमा ४३, २१६ श्रावणपूर्णिमाकृत्य ५३, २१६ श्रीदत्त ११, १२, २३ श्रीपंचमी २१७ श्रीपति २७४, २७५ श्रीप्राप्तिवत २१८ श्रीरंगम् ३१३ श्रीवृक्षनवमी २१८ श्वेत २६८

ध्वेतास्वतर उपनिषद् २३६, ४५६ षट्तिली २१६ षडशीति ६१ षडशीतिमुख ५० षडक्षर-मन्त्र २१८ षड्वर्ग २८७ षष्ट्यब्द पूर्ति ३२१ षष्ठीदेवी २१६ स संकल्प ४ संकष्ट-चतुर्थी २१६ संक्रान्ति ७६, ८०, ८२, ८४, ६३ संक्रान्तिवत २२, २२० संक्रान्तिश्राद 53 संक्रान्तिस्नान 220 संघाटक-व्रत २२० संघ्या २२१ संध्यावेध ४७ सयोगपृथक्त ३५, ४१ संवत् ३१७, ३१८ संवत्सर २६, २४७ संवत्सरप्रदीप है४ संवत्सरवत २२, २१६ संवत्सरारम्भविधि २१६ संस्कारप्रकाश ३०३ संस्काररत्नमाला ३०३ संहितापारग २४४ सखण्डा २८ सख्यभित ४५५ सत्यनारायण वृत २२० सत्यव्रत 39 सत्याषाढश्रीतसुत्र २१ सदावत २२० सन्तानाष्टमी २२१ सन्निहिता ६३ सप्तमी-निणंय २२१

## ५३० • धर्मशास्त्र का इतिहास

229 सप्तमीस्नापन सप्तम्यकं-त्रत 222 ३०२ सप्तशलाका चक्र सप्तसप्तमीकल्प २२२ 222 सप्तसागर वत सप्ताह ३२६ सम्भ्रम २३ 23, 89, 88 समयप्रकाश श्तमयप्रदीप ११, २२, २३, ३२, ४१ समयमयूख २३, ३३, ४५, ४६, ४७, ६८, ७०, ८१ समुद्र-स्नान २२३ सम्पत्कर २६२ सम्पुट-सप्तमी २२३ सम्पूर्ण एंकादशी ४७ सम्प्राप्तिद्वादशी २२३ सरस्वतीपूजाविधि २२३ सरस्वतीस्थापन २२४ सर्पपंचमी २२४ सर्पबलि ५२, २२४ सपंविषापह-पंचमी २२४ सर्वगन्ध २२४ सर्वफलत्याग २२४ सर्वसंगलवयोदशी २२४ सवींषधि २२५ सर्वपसप्तमी २२५ ० सस्योत्सव , २२४ सहस्रभोजनविधि 775 सत्रजित् ६० सांख्यकारिका २४१ साकमेध ५०,२४७ सामक २६४ साम ११ साम्बपुराण ४२६ साम्राज्य-लक्ष्मीपीठिका सारमट , २६= सारस्वतवत २२६ साराव्रली २७१, २७४, २६०

सार्टन २४५, २५७, २५८, २७६ सार्वभीमद्रत २२६ सावन २४६, ३२० साबिव २६८ साविवीवत ३८, २२६ सिंह ७६, ५२ सिहस्थ गुरु २२६, ३०१ सिइयु २५५ सिगमण्ड फायड ३६३ 'सिण्टैक्सिस' २९५ सिता सप्तमी २२७ सिद्ध २२७ सिद्धान्तचन्द्र 393 सिद्धार्थकादि सप्तमी २२७ सिनीवाली २५, २६ सिसरो २७३ सीता ७१, २२७ सीमोल्लंघन २२८ सुकृतद्वादशी २२५ सुख चतुर्थी २२६ सुखराति ७३, २२८ सुखसुप्तिका ७३, २२६ सुखा ६० सुगतिपौषमासीकल्प २२६ सुजन्मद्वादशी २२६ सुदि ३२४ सुदिनत्व २६१ सुदेश-जन्मावाप्ति २३० सुनफा १८८ सुन।मद्वादशी २३० सुन्दर-सेनक ८४, ८५ सुपरिस्टिशन एण्ड फोर्स ४०२ सुपाणि १४ सुमद्रा ६७ सुमन्तु ४०० सुरूपद्वादशी २३० सूत रोमहर्षण ४००

अनुक्रमणिका । ५३१

सुश्रुतसंहिता २४३ सूर्य २६१ सूर्यप्रहण ८२, ६१, ६२, ६५ सूर्यपूजा-प्रशंसा २३० सूर्यप्रज्ञप्ति २५६ सूर्यं रष याता-माहात्म्य २३० सूर्यवत २३, २३१ सूर्यंसिद्धान्त २४२, ३१४, ३३८ सूर्योदय वेध ४७ सेंट पीटर्सवर्ग कोश ३ 'सेकण्ड साइट इन डेली लाइफ' ३६३ सेप्ट आगस्टाइन २७३ सेनजित् ३१३, ३१४ सेसिल-राथ ५०१ सोमनाथ-पट्टन ५०१ सोमवती-अमावस्या २३१ सोमवार वत २३१ सोमवत २३२ सोमायन-ब्रत २३२ सीभाग्यतृतीयावत सीभाग्यव्रत २३३ सौभाग्य-संक्रान्ति २३३ सीभाग्याष्टक २३४ सोम्य २६८ सौम्यविधि २३४ सीर-उत्सव 33 सीर मास ३२० सौर व्रत २३४ स्कन्दपुराण २७, ३७, ३८, ४३, ४५ स्कन्दबच्छी २३४, २३५ 'स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणज' ४११ 'स्टडीज इन दि उपपुराणज' ४०६ स्ट्रैबो २७३ 'स्तृ' २४१ स्यानबल २८६ स्नपन ६८ म्नुहीविटपे-मनसापूजा २३४

स्मातं ४६, ४७ स्वातं अग्नि ११ स्मृतिकीस्तुम ३७, ४८, ७७, ८०, ८८, ६०, ६४ स्मृतिचन्द्रिका १५, २० स्मृतिमञ्जरी ४०१, ४१० स्मृतिमुक्ताफल ४६ स्यमन्तक मणि ६०, २३६ स्वप्नेश्वर ४६१ स्वस्य २१० स्वक्ष २७६ स्वारोपित वत १० 8 हंसव्रत २३४ हनुमत्-जयन्ती २३४ हयपंचमी २३६ हरिक्रीडाशयन २३६ हरितालिका २३, ४८, ६७, २३७ हरितिथि २३७ हरिप्रबोघोत्सव २३७ हरिवंशपुराण २३, ५४, ५५ हरिवासर २३७ हर्षवर्धन ५०० AYPENERY IF IS CARALING JACKERSHIP INAPPROPRIEDAL हाराप्त्रचंद्र प्रद्राचार्यं, १२४३ हारीत वैकटनीय विकेश २३, ४७ Jangam**nadi Mat**he Var<del>ana</del>si " 'हिन्द् ज्योतिःशास्त्र का अविश्वात' हिंदू हालीडेज एण्ड सेरेमनीज ६१ हिप्पार्कस २५८, २८८ हिब्क २८५ हिमपूजा २३७ 'हिस्टारिकल एसे आन दि कोनकनी लैंग्वेज 'हिस्टारिकल व्यू आव हिंदू एस्ट्रानॉमी' हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेबर ३८७ हिस्द्री आव इण्डिया ५०६ हिस्द्री आव औरंगजेब ५०१

क्ष रकर्म

### ५३२ • धर्मशास्त्र का इतिहास

हिस्दी बाव साइंस २७६ हीम्सट् दी मिस्टिक फायर ४७७ हेनरी सी० ली ५०२ हेमबाद १३ हेमाद्रि १४, १६, ३०, ३१, ३४, ३७, ४१, ४३, ४७, ४१, ४३, ४४, ४८, ६२, ६६, ७०, ७४, ८४, 49, 48, 57, 28

हैराक्लिटस २४६, ३३२ हेरोडोटस २७२ हेलिबोसेप्ट्रिक २७३ हेसियोड २५६ होम १३. ६८, २३७ होमर २४५ होरा २४४, २७०, २७१, २६४, २६७ होरेस २७३ होरोस्कोपास २६३ होलाका ८६, ६० होलिका पर, ६०, २३७ इदयविधि २३७ ह्विटनी २४४, २४६, २५४, २५७ ह्वेनसाँग ५००

क्षरपवित्रत क्षेमेन्द्र वह ३ त्रयोदशपदार्थं वर्जनसप्तमी वयोदशीवत ७३, ८७, १३२ 95% विकाण्डमण्डन त्रिकोण 25% तिमध्र 932 विविक्रम त्तीया १३३ विसम 933 विस्गन्ध १३४ तिस्थलीसेत ३८ विस्पर्शा 932

त्रिस्पृशा 939 वृटि ५१ त्र्यम्बकन्नत 933 933 त्र्यहस्पृक्

978

१२० SRI JAGADGI 'RU V. CHWARADHYA नानावाप्तिवत श्रीयतिपदा JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL

# LIBRARY

Jangamwadi Math, Varanasi ACC No.





